

दी इंडियन लॉ रिपोर्ट्स

इलाहाबाद संस्करण



सत्यमेव जयते

इलाहाबाद हाई कोर्ट के सभी प्रकाशन योग्य निर्णय

२०२५ – भाग १

(जनवरी)

पृष्ठ १ से ११०७

उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन प्रकाशित
इंडियन लॉ रिपोर्टर अनुभाग, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

इंडियन लॉ रिपोर्टिंग काउंसिल

इलाहाबाद संस्करण

अध्यक्ष

माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली

परिषद

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार

माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी

माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी.चौहान

माननीय न्यायमूर्ति श्री जितेन्द्र कुमार सिन्हा

संपादक मंडल

वरिष्ठ विधि संपादक

१. श्री विनय सरन, वरिष्ठ अधिवक्ता

२. श्री समीर शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता

कनिष्ठ विधि संपादक

१. श्री अनूप बरनवाल, अधिवक्ता

२. सुश्री प्रिया अग्रवाल, अधिवक्ता

३. श्री आशुतोष मणि त्रिपाठी, अधिवक्ता

४. सुश्री नूर सबा बेगम, अधिवक्ता

५. श्री सरोज गिरि, अधिवक्ता

६. सुश्री मनीषा चतुर्वेदी, अधिवक्ता

७. श्री अरविन्द कुमार गोस्वामी, अधिवक्ता

८. श्री विनीत दूबे, अधिवक्ता

९. . श्री प्रशान्त मिश्रा, अधिवक्ता

१० . श्री अबू बख्त, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्तिगण

मुख्य न्यायमूर्ति	
माननीय मुख्य न्यायमूर्ति श्री अरुण भंसाली	
न्यायमूर्ति	
१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज कुमार गुप्ता (वरिष्ठ न्यायमूर्ति इलाहाबाद)	३२. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक वर्मा
२. माननीय न्यायमूर्ति श्री अंजनी कुमार मिश्रा	३३. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह
३. माननीय न्यायमूर्ति श्री महेश चंद्र त्रिपाठी	३४. माननीय न्यायमूर्ति श्री पीयूष अग्रवाल
४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक कुमार बिरला	३५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्याम शमशेरी
५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अतुल रहमान मसूदी (वरिष्ठ न्यायमूर्ति लखनऊ)	३६. माननीय न्यायमूर्ति श्री जसप्रीत सिंह
६. माननीय न्यायमूर्ति श्री अश्वनी कुमार मिश्रा	३७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव सिंह
७. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजन रॉय	३८. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान
८. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा	३९. माननीय न्यायमूर्ति श्री करुणेश सिंह पवार
९. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चन्द्रा	४०. माननीय न्यायमूर्ति डॉ० योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
१०. माननीय न्यायमूर्ति श्री विवेक चौधरी	४१. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष माथुर
११. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौमित्र दयाल सिंह	४२. माननीय न्यायमूर्ति श्री रोहित रंजन अग्रवाल
१२. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर बी सराफ	४३. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० फैज आलम खान
१३. माननीय न्यायमूर्ति श्री सलिल कुमार राय	४४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राज बीर सिंह
१४. माननीय न्यायमूर्ति श्री जयंत बनर्जी	४५. माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन चन्द्र दीक्षित
१५. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजेश सिंह चौहान	४६. माननीय न्यायमूर्ति श्री शेखर कुमार यादव
१६. माननीय न्यायमूर्ति श्री इरशाद अली	४७. माननीय न्यायमूर्ति श्री दीपक वर्मा
१७. माननीय न्यायमूर्ति श्री सरल श्रीवास्तव	४८. माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी
१८. माननीय न्यायमूर्ति श्री जे.जे. मुनीर	४९. माननीय न्यायमूर्ति श्री दिनेश पाठक
१९. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता	५०. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार
२०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ	५१. माननीय न्यायमूर्ति श्री समित गोपाल
२१. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजित कुमार	५२. माननीय न्यायमूर्ति श्री डोनादि रमेश
२२. माननीय न्यायमूर्ति श्री रजनीश कुमार	५३. माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार पचौरी
२३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अब्दुल मोईन	५४. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष चन्द्र शर्मा
२४. माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव मिश्रा	५५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार श्रीवास्तव- प्रथम
२५. माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट	५६. माननीय न्यायमूर्ति श्री चन्द्र कुमार राय
२६. माननीय न्यायमूर्ति श्री नीरज तिवारी	५७. माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल
२७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज	५८. माननीय न्यायमूर्ति श्री समीर जैन
२८. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रकाश पाडिया	५९. माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव
२९. माननीय न्यायमूर्ति श्री आलोक माथुर	६०. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुभाष विद्यार्थी
३०. माननीय न्यायमूर्ति श्री पंकज भाटिया	६१. माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह
३१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ लवानिया	६२. माननीय न्यायमूर्ति श्री श्री प्रकाश सिंह

६३. माननीय न्यायमूर्ति श्री विकास बुद्धवार
६४. माननीय न्यायमूर्ति श्री विक्रम डी चौहान
६५. माननीय न्यायमूर्ति श्री सौरभ श्रीवास्तव
६६. माननीय न्यायमूर्ति श्री ओम प्रकाश शुक्ला
६७. माननीय न्यायमूर्ति श्री मौ० अजहर हुसैन इंदरिशी
६८. माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्रा
६९. माननीय न्यायमूर्ति श्री सुरेन्द्र सिंह-प्रथम
७०. माननीय न्यायमूर्ति श्री नलिन कुमार श्रीवास्तव
७१. माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिजवी
७२. माननीय न्यायमूर्ति श्री मनीष कुमार निगम
७३. माननीय न्यायमूर्ति श्री अनीश कुमार गुप्ता
७४. माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती नंद प्रभा शुक्ला
७५. माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र
७६. माननीय न्यायमूर्ति श्री विनोद दिवाकर
७७. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रशांत कुमार
७८. माननीय न्यायमूर्ति श्री मंजीव शुक्ला
७९. माननीय न्यायमूर्ति श्री अरुण कुमार सिंह देशवाल
८०. माननीय न्यायमूर्ति श्री प्रवीण कुमार गिरि

1.इला	वर्णमाला सूचकांक आईoएलoआरo जनवरी 2025 (भाग-1)	1
अंकित अग्रवाल बनाम श्रीमती मोनिका अग्रवाल		पृष्ठ-494
अजीत सिंह यादव बनाम श्रीमती नीलम यादव		पृष्ठ-502
अनंत कुमार यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-424
अनिल कुमार गंगवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-567
अनिल पाठक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-658
अन्नू खटिक और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य		पृष्ठ-101
अब्बास व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य		पृष्ठ-199
अरुण कुमार यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य		पृष्ठ-827
आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य		पृष्ठ-225
आनंद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-951
आनंद कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-391
आशा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-822
आशीष यादव बनाम प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य		पृष्ठ-1014
आशुतोष पांडेय एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-588
इकबाल सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य		पृष्ठ-158

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम कल्लन और अन्य	पृष्ठ-252
ओम प्रकाश एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-379
ओम प्रकाश कुशवाहा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-79
कलामुद्दीन @ शानू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-929
कलावती देवी उर्फ कलावती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-262
कुंवर पाल एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-443
कृष्ण चंद्र सिंह उर्फ मुन्ना सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-364
कृष्णावती देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-324
गिरजा शंकर एवं 3 अन्य बनाम राम सजीवन एवं 10 अन्य	पृष्ठ-211
गुरमेल सिंह एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-914
गोपाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-576
जगदीश सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-139
जितेन्द्र व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-354
जिला गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-899
डॉ. मीनाक्षी सक्सेना बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-550

डॉ. राजेश कुमार सिंह और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	पृष्ठ-744
दिलीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-318
देवेंद्र कुमार @ झुन्ना और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-164
नन्द किशोर शुक्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-544
नवीन कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-937
निम्मी इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड (पूर्व में सत्य होम्स प्राइवेट लिमिटेड) बनाम फुन्दन एवं अन्य	पृष्ठ-476
पद्माकर दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-527
पवन कुमार कोठीवाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-428
प्रेम चंद एवं अन्य बनाम चरत कुमार बंसल	पृष्ठ-894
प्रेमांशु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-343
फराहीम करैशी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-358
फिरोज मलिक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-841
बजरंगी सिंह यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-7
भरतेंदु प्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-302
भारत संघ एवं अन्य बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण लखनऊ एवं अन्य	पृष्ठ-992

मनीष कुमार बनाम महाप्रबन्धक कार्मिक मानव संसाधन प्रबन्धन एवं अन्य	पृष्ठ-533
मेसर्स अन्नपूर्णा कंस्ट्रक्शन कंपनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-402
मेसर्स आर्य राइस मिल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-420
रमेश चंद्र बारी एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-604
रवि कुमार शुकला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-555
राकेश टेकरीवाल बनाम अपर आयुक्त प्रशासन-1 देवीपाटन मंडल गोंडा एवं अन्य	पृष्ठ-673
राघवेंद्र सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-781
राज देव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-787
राजवीर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-702
राजेश्वरी देवी बनाम उप निदेशक, चकबंदी, शाहजहाँपुर व अन्य	पृष्ठ-646
राम अवतार अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-331
राम सजीवन कोरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-728
राम सूरत सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य	पृष्ठ-754
विकास कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-408
विशु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-453

1.इला	वर्णमाला सूचकांक आईओएलओआरओ जनवरी 2025 (भाग-1)	5
वी-मार्क इंडिया लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-720
व्यूनाउ इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-862
शबाना बानो बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-461
शमीमा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-192
शरद कुमार और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य		पृष्ठ-761
शिव दत्त शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-512
श्याम लाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-733
श्री रमन अरोड़ा बनाम सुशील कुमार (मृतक) एवं अन्य		पृष्ठ-488
श्रीधर प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य		पृष्ठ-73
श्रीमती अंजू श्रीवास्तव बनाम उ०प्र० स्टेट एग्री इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य		पृष्ठ-983
श्रीमती पिन माया कुमल बनाम भारत सरकार एवं अन्य		पृष्ठ-1004
श्रीमती पुरुषोत्तमी बनाम राजस्व बोर्ड व अन्य		पृष्ठ-626
श्रीमती मंजू राकेश बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-722
श्रीमती रचना सोनी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-655
श्रीमती रेखा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य		पृष्ठ-738

श्रीमती रेखा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-23
संजय गौर, अधिवक्ता एवं बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य	पृष्ठ-311
संदर्भ- आपराधिक अपीलों की सुनवाई में पालन की जाने वाली प्रक्रिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-1028
सभापति वर्मा बनाम वेद प्रकाश	पृष्ठ-874
सर्वजीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य	पृष्ठ-91
सुरेंद्र मणि बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-681
सूरज कुमार @ विश्वप्रताप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	पृष्ठ-83
सूर्य कुमार त्रिपाठी मृतक एवं अन्य बनाम राम पाल	पृष्ठ-217
सौरभ सक्सेना बनाम भारत संघ एवं अन्य	पृष्ठ-922
हरि चंद एवं अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य	पृष्ठ-637
हरि शंकर बनाम राकेश कुमार	पृष्ठ-508

(2025) 1 ILRA 4

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल,

आपराधिक विविध जमानत आवेदन संख्या 23378 वर्ष 2024

बजरंगी सिंह यादव

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

....प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

पी.के. सिंह, प्रवीण कुमार सिंह, सुनील कुमार पांडे

प्रतिपक्षी के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 - धारा 8/21 और 37 - जमानत - अभियोजन पक्ष के कथनानुसार, वाहन से चार पैकेटों में प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) बरामद किया गया, जिसका कुल वजन 1 किलोग्राम था। वाहन आवेदक/चालक द्वारा चलाया जा रहा था, जिसमें दो अन्य व्यक्ति भी बैठे थे। जब पुलिस ने वाहन को रोका, तो स्थापित प्रक्रिया के अनुसार तलाशी ली गई और वाहन में बैठे तीनों व्यक्तियों की जेबों से प्रत्येक से 250 ग्राम के तीन पैकेट बरामद किए गए और आवेदक की सीट के नीचे से 250 ग्राम प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) का एक पैकेट बरामद हुआ। आवेदक ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 50 और 52-ए के अंतर्गत आवश्यक अनुपालन नहीं किया गया और नमूने तैयार करके रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजे गए। सह-अभियुक्त को पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया है और वह 28.03.2024 से जेल में बंद है। (प्रस्तर 3, 4)

अभिनिर्धारित हुआ, आवेदक द्वारा उठाया गया तर्क सर्वोच्च न्यायालय द्वारा काशिफ मामले (नीचे) में दिए गए निर्णय में संक्षेपित दिशानिर्देशों के आधार पर न्यायनिर्णीत हुआ। (प्रस्तर 27)

आवेदक और सह-अभियुक्त के संयुक्त कब्जे से, साथ ही कथित वाहन से, प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) की भारी बरामदगी को देखते हुए, आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई आधार नहीं है। आवेदक के विरुद्ध पांच अन्य आपराधिक मामले दर्ज हैं और बरामदगी व्यावसायिक मात्रा से अधिक थी। (प्रस्तर 28)

जमानत आवेदन खारिज। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सिमरनजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, आपराधिक अपील संख्या 1443 वर्ष 2023, 2023 सुप्रीम (एससी) 658
2. मंगीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2023 सुप्रीम (एससी) 703
3. भारत संघ बनाम मोहनलाल और एक अन्य, 2016 सुप्रीम (एससी) 82
4. भारत संघ बनाम राम समुझ और एक अन्य, (1999) 9 एससीसी 429, (प्रस्तर 7, 8)
5. भारत संघ बनाम शिव शंकर केसरी, (2007) 7 एससीसी 798, (प्रस्तर 6, 7)
6. भारत संघ बनाम रतन मल्लिक उर्फ हाबुल, (2009) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 831, (प्रस्तर 14)
7. केरल राज्य आदि बनाम राजेश इत्यादि, एआईआर 2020 एससी 721, (प्रस्तर 20, 21)
8. भारत संघ बनाम प्रतीक शुक्ला एआईआर 2021 एससी 1509
9. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली) नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो बनाम लोकेश चड्ढा, (2021) 5 एससीसी 724
10. भारत संघ नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो, लखनऊ बनाम मोहम्मद नवाज खान, (2021) 10 एससीसी 100, (प्रस्तर 23, 25, 26, 28, 29)
11. मेघ सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2003 क्रिमिनल लॉ जर्नल 4329, (प्रस्तर 9 से 13, 16)
12. देहल सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 2011 (72) एससीसी 661
13. नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो बनाम काशिफ, आपराधिक अपील संख्या 5544 वर्ष 2024, एसएलपी (क्रिमिनल) संख्या 12120 वर्ष 2024 से उत्पन्न, निर्णीत दिनांक 20.12.2024 (प्रस्तर 20, 21, 23, 24, 31 से 39)
14. पूरन मल बनाम निदेशक निरीक्षण (अन्वेषण) नई दिल्ली और अन्य, (1974) 1 एससीसी 345
15. पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह, (1999) 6 एससीसी 172
16. हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम पृथ्वी चंद और अन्य, (1996) 2 एससीसी 37
17. पंजाब राज्य बनाम मक्खन चंद, (2004) 3 एससीसी 453
18. भारत संघ बनाम मोहनलाल और अन्य, (2016) 3 एससीसी 379
19. यूसुफ उर्फ आसिफ बनाम राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1328
20. मोहम्मद खालिद और अन्य बनाम तेलंगाना राज्य, (2024) 5 एससीसी 393

(माननीय न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना।

2. इस जमानत याचिका के माध्यम से, आवेदक मामला अपराध संख्या 130 वर्ष 2024, अंतर्गत धारा 8/21 स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसे आगे "एनडीपीएस अधिनियम" कहा गया है), पुलिस स्टेशन- कोतवाली, जिला- गाजीपुर में परीक्षण के दौरान जमानत की मांग करता है।

3. अभियोजन पक्ष के कथनानुसार जैसा कि प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्र.सू.रि.) से पता चला है कि स्कॉर्पियो संख्या यूपी 32 एलके4587 से चार पैकेटों में प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) बरामद की गई, जिसका कुल वजन 1 किलोग्राम था। प्रश्नगत वाहन को अभियुक्त चला रहा था, जिसमें दो अन्य व्यक्ति भी बैठे थे। पुलिस द्वारा वाहन को रोकने पर, निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार तलाशी ली गई और स्कॉर्पियो में बैठे तीनों व्यक्तियों की जेबों से 250 ग्राम के तीन पैकेट बरामद हुए। इसके अलावा, वाहन चला रहे अभियुक्त की सीट के नीचे से 250 ग्राम प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) का एक और पैकेट मिला।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आवेदक जो उक्त वाहन का चालक है, और वाहन से कथित तौर पर बरामद की गई प्रतिबंधित वस्तुएं उपरोक्त से उसका कोई संबंध नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया है कि आवेदक का आपराधिक इतिहास है जिसमें 5 मामले दर्ज हैं और वह जमानत पर है। इसके बाद यह तर्क दिया गया है कि अधिनियम की धारा 50 और 52-ए के अंतर्गत आवश्यक अनुपालन नहीं किया गया और नमूने तैयार करके रासायनिक परीक्षण के लिए नहीं भेजे गए। अन्य दो अभियुक्तों को पहले ही जमानत पर रिहा किया जा चुका है। अंत में यह तर्क दिया गया कि आवेदक 28.03.2024 से जेल में बंद है। इस संबंध में सर्वोच्च न्यायालय के **सिमरनजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य 2023 सुप्रीम (एससी) 658; मंगीलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य 2023 सुप्रीम (एससी) 703; और भारत संघ बनाम मोहनलाल और अन्य 2016 सुप्रीम (एससी) 82** के निर्णयों पर भरोसा किया गया है।

5. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने जमानत याचिका का विरोध करते हुए कहा कि आवेदक को दो अन्य सह-अभियुक्तों के साथ मौके पर ही गिरफ्तार किया गया था, जिनके पास 1 किलोग्राम प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) था। आवेदक से बरामद मात्रा व्यावसायिक मात्रा से कहीं अधिक है। उन्होंने आगे कहा कि बरामदगी वाहन से की गई थी और यह सचेत कब्जे का प्रमाण है तथा आवश्यक अनुपालन किया गया था। उन्होंने यह भी बताया कि बरामद प्रतिबंधित पदार्थ का नमूना रासायनिक विश्लेषण के लिए भेजा गया था और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट आ चुकी है जिसमें बरामद पदार्थ को प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) पाया गया है।

6. मैंने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेख में मौजूद सामग्री का परिशीलन किया है।

7. यह एक ऐसा मामला है जिसमें आवेदक और अन्य सह-अभियुक्तों के कब्जे से 1 किलोग्राम मात्रा में प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) बरामद की गई है।

8. एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 उन अपराधों में जमानत देने के क्षेत्र को नियंत्रित करती है जो संज्ञेय और गैर-जमानती हैं। धारा 37 को यहाँ इस प्रकार उद्धृत किया गया है;

“ 37. अपराध संज्ञेय और गैर-जमानती होंगे- (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) में निहित किसी बात के बावजूद-

(ए) इस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय प्रत्येक अपराध संज्ञेय होगा;

(बी) धारा 19, धारा 24 या धारा 27ए के अंतर्गत दंडनीय अपराधों और वाणिज्यिक मात्रा से जुड़े अपराधों के अभियुक्त किसी भी व्यक्ति को जमानत पर या अपने निजी बंधपत्र पर तब तक रिहा नहीं किया जाएगा जब तक कि-

(i) लोक अभियोजक को ऐसी रिहाई के आवेदन का विरोध करने का अवसर न दिया गया हो, और

(ii) जहां लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, वहां न्यायालय संतुष्ट है कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।

(2) उपधारा (1) के खंड (बी) में निर्दिष्ट जमानत देने संबंधी सीमाएं दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (2 वर्ष 1974) या उस समय लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत जमानत देने संबंधी सीमाओं के अतिरिक्त हैं।”

9. उपर्युक्त प्रावधानों के अनुसार, न्यायालय को जमानत देने से पहले यह कारण दर्ज करना होगा कि आवेदक उस अपराध का दोषी नहीं है और इसके अलावा यह भी कि जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।

10. सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ बनाम राम समुझ और एक अन्य (1999) 9 एससीसी 429 के मामले में उपरोक्त प्रावधान पर विचार करते हुए निम्नानुसार अभिनिर्धारण दिया;

7. यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उपर्युक्त विधायी अधिदेश का पालन किया जाना चाहिए। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हत्या के मामले में, अभियुक्त एक या दो व्यक्तियों की हत्या करता है, जबकि मादक पदार्थों का व्यापार करने वाले व्यक्ति कई निर्दोष युवा पीड़ितों की मृत्यु का कारण बनते हैं या उन्हें जानलेवा आघात पहुंचाते हैं, जो कमजोर होते हैं: इससे समाज पर हानिकारक प्रभाव और घातक परिणाम होते हैं; वे समाज के लिए खतरा हैं; भले ही उन्हें अस्थायी रूप से रिहा कर दिया जाए, पूरी संभावना है कि वे गुप्त रूप से मादक पदार्थों की तस्करी और/या व्यापार की अपनी कुटिल गतिविधियों को जारी रखेंगे। इसका कारण इसमें शामिल बड़ा दांव और अवैध लाभ हो सकता है। इस न्यायालय ने एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत दंड

के संबंध में तर्क पर विचार करते हुए, दुरंद दीदियन बनाम मुख्य सचिव, केंद्र शासित प्रदेश गोवा (1990) 1 एससीसी 95 में ऐसी गतिविधियों के प्रतिकूल प्रभाव के बारे में संक्षेप में निम्नानुसार संप्रेक्षण किया है:

“24. हम अत्यंत चिंता के साथ यह कहना चाहते हैं कि गुप्त रूप से स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की तस्करी और अवैध व्यापार के कारण आम जनता के एक बड़े वर्ग, विशेषकर किशोरों और छात्रों में नशे की लत लग गई है, और हाल के वर्षों में यह समस्या गंभीर और चिंताजनक रूप ले चुकी है। इसलिए, समाज पर हानिकारक प्रभाव डालने वाली इस तेजी से फैलती और विनाशकारी समस्या को प्रभावी ढंग से नियंत्रित और समाप्त करने के लिए, संसद ने विवेकपूर्ण तरीके से अधिनियम 81 वर्ष 1985 को लागू करके अनिवार्य न्यूनतम कारावास और अर्थदंड का प्रावधान किया है।”

8. बाज़ार में खतरनाक नशीले पदार्थों की बाढ़ को रोकने के लिए, संसद ने यह प्रावधान किया है कि एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के अभियुक्त व्यक्ति को परीक्षण के दौरान जमानत पर रिहा नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि धारा 37 में दी गई अनिवार्य शर्तें पूरी न हों, अर्थात्,

- (i) यह मानने के लिए उचित आधार है कि अभियुक्त ऐसे अपराध का दोषी नहीं है; और
- (ii) कि जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा अपराध करने की संभावना नहीं है।

11. भारत संघ बनाम शिव शंकर केसरी, (2007) 7 एससीसी 798 में, सर्वोच्च न्यायालय ने एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के अंतर्गत जमानत प्रदान करने की शर्तों को विस्तृत रूप से समझाया। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 6 और 7 को यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:

“6. प्रावधान में ही यह स्पष्ट है कि जब तक दो शर्तें पूरी नहीं हो जातीं, तब तक किसी भी व्यक्ति को जमानत नहीं दी जाएगी। ये शर्तें हैं: न्यायालय को यह संतुष्टि होनी चाहिए कि यह मानने के लिए पर्याप्त आधार है कि अभियुक्त दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। दोनों शर्तों का पूरा होना आवश्यक है। यदि इनमें से कोई भी शर्त पूरी नहीं होती है, तो रोक लागू हो जाती है और अभियुक्त को जमानत पर रिहा नहीं किया जा सकता है।

7. धारा 37(1)(बी)(ii) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति “उचित आधार” है। इस अभिव्यक्ति का अर्थ प्रथम दृष्ट्या आधारों से कहीं अधिक है। इसका तात्पर्य यह मानने के लिए पर्याप्त संभावित कारणों से है कि अभियुक्त आरोपित अपराध का दोषी नहीं है, और यह उचित विश्वास ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों के अस्तित्व की ओर इंगित करता है जो स्वयं में इस बात की संतुष्टि दर्ज करने के लिए पर्याप्त हैं कि अभियुक्त आरोपित अपराध का दोषी नहीं है।”

12. भारत संघ बनाम रतन मल्लिक उर्फ हाबुल, (2009) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 831 सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार संप्रेक्षित किया;

"14. हम यह बात शीघ्र ही जोड़ना चाहेंगे कि एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के संदर्भ में जमानत के आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय को 'दोषी नहीं' होने का निष्कर्ष दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है। इस स्तर पर, यह न तो आवश्यक है और न ही वांछनीय है कि साक्ष्यों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करके यह निश्चित निष्कर्ष निकाला जाए कि अभियुक्त ने एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत अपराध किया है या नहीं। यह देखा जाना चाहिए कि क्या यह मानने का कोई उचित आधार है कि अभियुक्त उन अपराधों का दोषी नहीं है जिनके लिए उस पर आरोप लगाया गया है और यह भी कि जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा उक्त अधिनियम के अंतर्गत कोई अपराध करने की संभावना नहीं है। उक्त दोनों शर्तों के अस्तित्व के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि सीमित उद्देश्य के लिए है और यह अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के प्रश्न तक ही सीमित है।"

13. केरल राज्य आदि बनाम राजेश आदि, एआईआर 2020 एससी 721 में, सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 37 के दायरे पर विचार किया और राम समुझ (उपरोक्त) में पहले के निर्णय पर भरोसा करते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया;

"20. धारा 37 की योजना से यह स्पष्ट होता है कि जमानत देने की शक्ति का प्रयोग न केवल दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अंतर्गत निहित सीमाओं के अधीन है, बल्कि धारा 37 द्वारा लगाई गई सीमा के भी अधीन है, जो गैर-बाधा खंड से शुरू होती है। उक्त धारा का क्रियात्मक भाग नकारात्मक रूप में है और अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को जमानत देने पर रोक लगाता है, जब तक कि दो शर्तें पूरी न हों। पहली शर्त यह है कि अभियोजन पक्ष को आवेदन का विरोध करने का अवसर दिया जाना चाहिए; और दूसरी यह है कि न्यायालय को यह संतुष्टि होनी चाहिए कि यह मानने के लिए उचित आधार है कि वह व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी नहीं है। यदि इन दोनों शर्तों में से कोई भी पूरी नहीं होती है, तो जमानत देने पर प्रतिबंध लागू हो जाता है।

21. "उचित आधार" अभिव्यक्ति का अर्थ प्रथम दृष्ट्या आधारों से कहीं अधिक है। इसमें यह मानने के लिए पर्याप्त संभावित कारण शामिल हैं कि अभियुक्त कथित अपराध का दोषी नहीं है। इस प्रावधान में परिकल्पित उचित विश्वास के लिए ऐसे तथ्यों और परिस्थितियों का अस्तित्व आवश्यक है जो स्वयं में यह संतुष्टि प्रदान करने के लिए पर्याप्त हों कि अभियुक्त कथित अपराध का दोषी नहीं है। विचाराधीन मामले में, उच्च न्यायालय ने धारा 37 के अंतर्निहित उद्देश्य को पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया है कि दंड प्रक्रिया संहिता या उस समय लागू किसी अन्य कानून के अंतर्गत जमानत देने को विनियमित करने वाली सीमाओं के अतिरिक्त, एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत जमानत के मामले में इसका उदार दृष्टिकोण वास्तव में अनुचित है।"

14. सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ बनाम प्रतीक शुक्ला एआइआर 2021 एससी 1509** मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि पक्षों की दलीलें दर्ज करना मात्र न्यायिक या विवेकपूर्ण मस्तिष्क के अनुप्रयोग का संकेत नहीं है। एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 में वे कानूनी मानदंड दिए गए हैं जिनका पालन निर्धारण में किया जाना चाहिए कि क्या जमानत देने का मामला बनता है।

15. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली) नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो बनाम लोकेश चड्ढा (2021) 5 एससीसी 724 में न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारण दिया:

" एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 में यह प्रावधान है कि धारा 19, धारा 24 या धारा 27ए के अंतर्गत दंडनीय अपराधों तथा व्यावसायिक मात्रा से जुड़े अपराधों के अभियुक्त किसी भी व्यक्ति को जमानत पर रिहा नहीं किया जाएगा, यदि लोक अभियोजक आवेदन का विरोध करता है, जब तक कि न्यायालय संतुष्ट न हो कि यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि वह ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना नहीं है।"

16. हाल ही में भारत संघ द्वारा नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो, लखनऊ बनाम मोहम्मद नवाज़ खान (2021) 10 एससीसी 100 के एक निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभियुक्त की जमानत रद्द करते हुए कहा कि उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि यदि अभियुक्त को जमानत पर रिहा किया जाता है, तो यह मानने का उचित आधार होना चाहिए कि वह भविष्य में कोई अपराध नहीं करेगा। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे इस प्रकार हैं:

"23. उपरोक्त पूर्वनिर्णय के आधार पर, जमानत देते समय उच्च न्यायालय और इस न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली कसौटी यह है कि क्या यह मानने के लिए उचित आधार हैं कि अभियुक्त ने कोई अपराध नहीं किया है और क्या जमानत पर रहते हुए उसके द्वारा कोई अपराध करने की संभावना है। एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत दंडनीय अपराधों की गंभीरता को देखते हुए और देश में मादक पदार्थों की तस्करी के खतरे को रोकने के लिए, एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत जमानत देने के लिए कड़े मापदंड निर्धारित किए गए हैं।

25. हम इन सभी परिस्थितियों पर बारी-बारी से विचार करेंगे। प्रतिवादी पर एनडीपीएस अधिनियम की धारा 8 के अंतर्गत अपराध का आरोप है, जो उक्त अधिनियम की धारा 21, 27-ए, 29 और 60(3) के अंतर्गत दंडनीय है। अधिनियम की धारा 8 किसी व्यक्ति को किसी भी स्वापक औषधि या मनःप्रभावी पदार्थ को अपने पास रखने से प्रतिबंधित करती है। कब्जे की अवधारणा धारा 20 से 22 में भी उल्लिखित है, जो अधिनियम के अंतर्गत अपराधों के लिए दंड का प्रावधान करती हैं। मदन लाल बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य [मदन लाल बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, (2003) 7 एससीसी 465 : 2003 एससीसी (क्रिमिनल) 1664] में इस न्यायालय ने यह अवधारित किया कि: (एससीसी पृष्ठ 472, प्रस्तर 19-23 और 26)

"19. सचेत कब्जा था या नहीं, इसका निर्धारण तथ्यात्मक पृष्ठभूमि के संदर्भ में किया जाना है। अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों से जो तथ्य निकाले जा सकते हैं, वे यह हैं कि सभी अभियुक्त व्यक्ति एक वाहन में यात्रा कर रहे थे और जैसा कि परीक्षण न्यायालय ने नोट किया है, वे एक दूसरे को जानते थे और यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि वे एक ही गंतव्य से एक ऐसे वाहन में एक साथ कैसे यात्रा कर रहे थे जो सार्वजनिक वाहन नहीं था।

20. धारा 20(बी) प्रतिबंधित वस्तुओं के कब्जे को अपराध बनाती है। धारा 20 अधिनियम के अध्याय 4 में आती है, जो ऐसी वस्तुओं के कब्जे से संबंधित अपराधों से संबंधित है। यह तर्क दिया जाता है कि कब्जे को अवैध बनाने के लिए, सचेत रूप से कब्जा होना आवश्यक है।

21. यह बात स्पष्ट की जाती है कि जब तक कब्जे में आवश्यक मानसिक तत्व शामिल न हो, अर्थात् सचेत कब्जा और ऐसे कब्जे की प्रकृति के बारे में जागरूकता के बिना मात्र अभिरक्षा न हो, तब तक धारा 20 लागू नहीं होती है।

22. "अधिकार" अभिव्यक्ति एक बहुरूपी शब्द है जो विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थ धारण करता है। यह अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग अर्थ रख सकता है। जैसा कि अधीक्षक एवं विधिक मामलों के परामर्शी, पश्चिम बंगाल बनाम अनिल कुमार भुंजा [अधीक्षक एवं विधिक मामलों के परामर्शी, पश्चिम बंगाल बनाम अनिल कुमार भुंजा, (1979) 4 एससीसी 274 : 1979 एससीसी (क्रिमिनल) 1038] के मामले में संप्रेक्षित किया गया था कि सभी कानूनों के संदर्भ में सभी स्थितियों पर समान रूप से लागू होने वाली "कब्जे" की पूरी तरह से तार्किक और सटीक परिभाषा तैयार करना असंभव है।

23. "सचेत" शब्द का अर्थ है किसी विशेष तथ्य के प्रति जागरूकता। यह मन की एक ऐसी अवस्था है जो जानबूझकर या सोची-समझी होती है।

24. एक बार कब्जा सिद्ध हो जाने पर, जो व्यक्ति यह दावा करता है कि कब्जा सचेत रूप से नहीं लिया गया था, उसे इसे सिद्ध करना होगा, क्योंकि कब्जा कैसे हुआ, यह उसके विशेष ज्ञान में है। अधिनियम की धारा 35 कानून में उपलब्ध अनुमान के आधार पर इस स्थिति को वैधानिक मान्यता देती है। धारा 54 के संदर्भ में भी यही स्थिति है, जहाँ अवैध वस्तुओं के कब्जे से भी अनुमान लगाया जा सकता है।

25. "सचेत कब्जा" क्या होता है, इस पर भी धर्मपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य [धर्मपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2010) 9 एससीसी 608 : (2010) 3 एससीसी (क्रिमिनल) 1431] मामले में विचार किया गया था, जहाँ यह अभिनिर्धारित किया गया था कि प्रतिबंधित वस्तु के कब्जे की जानकारी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से प्राप्त की जानी चाहिए। सचेत कब्जे का मानक कई व्यक्तियों वाले सार्वजनिक परिवहन वाहन और एक-दूसरे को जानने वाले कुछ व्यक्तियों वाले निजी वाहन के मामले में अलग होगा। मोहन लाल बनाम

राजस्थान राज्य [मोहन लाल बनाम राजस्थान राज्य, (2015) 6 एससीसी 222 : (2015) 3 एससीसी (क्रिमिनल) 881] मामले में, इस न्यायालय ने यह भी संप्रेक्षित किया कि "कब्जा" शब्द का अर्थ दुर्भावना के साथ शारीरिक कब्जा; दुर्भावना के साथ निषिद्ध पदार्थों पर अभिरक्षा; छिपाव के परिणामस्वरूप प्रभुत्व और नियंत्रण का प्रयोग हो सकता है; या प्रतिबंधित वस्तु के अस्तित्व के बारे में व्यक्तिगत जानकारी और इस जानकारी के आधार पर आशय।

28. प्रतिवादी के कब्जे से प्रतिबंधित पदार्थ की बरामदगी न होने के संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के संदर्भ में, हम ध्यान देते हैं कि भारत संघ बनाम रतन मल्लिक [भारत संघ बनाम रतन मल्लिक, (2009) 2 एससीसी 624 : (2009) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 831] मामले में, इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने एक अभियुक्त की जमानत रद्द कर दी और उच्च न्यायालय के उस निष्कर्ष को पलट दिया, जिसमें यह धारित किया गया था कि चूंकि प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) एक ट्रक के केबिन के ऊपर विशेष रूप से बनाई गई गुहा से बरामद की गई थी, इसलिए अभियुक्त के "कब्जे" में कोई प्रतिबंधित पदार्थ नहीं पाया गया था। न्यायालय ने अवलोकित किया कि केवल प्रतिबंधित पदार्थ के कब्जे पर निष्कर्ष निकालना धारा 37(1)(बी) के मापदंडों को पूरा नहीं करता है और उच्च न्यायालय द्वारा मामले पर विवेक का प्रयोग नहीं किया गया था।

29. रतन मल्लिक [भारत संघ बनाम रतन मल्लिक, (2009) 2 एससीसी 624 : (2009) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 831] मामले में इस न्यायालय के निर्णय के अनुरूप, हमारा यह मत है कि उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में प्रतिवादी के पास प्रतिबंधित वस्तु के कब्जे के अभाव का निष्कर्ष, उसे एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37(1)(बी)(ii) के अंतर्गत आवश्यक जांच के स्तर से मुक्त नहीं करता है।"

17. सर्वोच्च न्यायालय ने मेघ सिंह बनाम पंजाब राज्य, 2003 क्रिमिनल लॉ जर्नल 4329, मामले में कब्जे और धारा 50 के लागू होने के प्रश्न पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि 'कब्जा' शब्द में सचेत कब्जा भी शामिल है। इसके अलावा, धारा 50 किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत तलाशी के मामले में लागू होती है और यह किसी वाहन, कंटेनर, बैग या परिसर की तलाशी पर लागू नहीं होती है। प्रासंगिक प्रस्तर संख्या 9 से 13 और 16 को यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है;

9. 'कब्जा' शब्द एक बहुआयामी शब्द है जो विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग अर्थ धारण करता है। यह अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग अर्थ रख सकता है। जैसा कि अधीक्षक एवं परामर्शी, विधिक मामले, पश्चिम बंगाल बनाम अनिल कुमार भुंजा और अन्य, (एआइआर 1980 एससी 52) के मामले में संप्रेक्षित किया गया था, सभी कानूनों के संदर्भ में सभी स्थितियों पर समान रूप से लागू होने वाली 'कब्जा' की पूरी तरह से तार्किक और सटीक परिभाषा तैयार करना असंभव है।

10. 'सचेत' शब्द का अर्थ है किसी विशेष तथ्य के प्रति जागरूकता। यह मन की एक ऐसी अवस्था है जो जानबूझकर या सोची-समझी होती है।

11. जैसा कि गुणवंतलाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (एआइआर 1972 एससी 1756) में उल्लेख किया गया है, किसी दिए गए मामले में कब्जा भौतिक कब्जा होना आवश्यक नहीं है, बल्कि रचनात्मक हो सकता है, जिसमें विचाराधीन वस्तु पर शक्ति और नियंत्रण होता है, जबकि जिस व्यक्ति को भौतिक कब्जा दिया जाता है वह उस शक्ति या नियंत्रण के अधीन उसे धारण करता है।

12. 'कब्जा' शब्द का अर्थ कब्जे का कानूनी अधिकार है (हेल्थ बनाम डाउन (1972) (2) ऑल ईआर 561 (एचएल) देखें)। एक दिलचस्प मामले में यह देखा गया कि यदि कोई व्यक्ति अपनी बंदूक अपनी माँ के फ्लैट में रखता है जो उसके अपने घर से अधिक सुरक्षित है, तो उसे उस बंदूक पर कब्जा माना जाना चाहिए। (सुलिवन बनाम अर्ल ऑफ कैथनेस (1976 (1) ऑल ईआर 844 (क्यूबीडी) देखें)।

13. एक बार कब्जा सिद्ध हो जाने पर, जो व्यक्ति यह दावा करता है कि कब्जा सचेत रूप से नहीं लिया गया था, उसे यह सिद्ध करना होगा, क्योंकि कब्जा कैसे हुआ, यह उसके विशेष ज्ञान में है। अधिनियम की धारा 35 कानून में उपलब्ध अनुमान के आधार पर इस स्थिति को वैधानिक मान्यता देती है। धारा 54 के संदर्भ में भी यही स्थिति है, जहाँ अवैध वस्तुओं के कब्जे से भी अनुमान लगाया जा सकता है। इस स्थिति को मदन लाल और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य (2003 (6) स्केल 483) मामले में उजागर किया गया था।

16. धारा 50 को सरसरी तौर पर पढ़ने से स्पष्ट होता है कि यह केवल किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत तलाशी के मामले में लागू होती है। यह किसी वाहन, कंटेनर, बैग या परिसर की तलाशी पर लागू नहीं होती। (देखें कलेमा तुम्बा बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (जेटी 1999 (8) एससी 293), पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह (जेटी 1999 (4) एससी 595), गुरबक्स सिंह बनाम हरियाणा राज्य (2001 (3) एससीसी 28)। धारा 50 की भाषा से स्पष्ट है कि तलाशी किसी व्यक्ति के संबंध में होनी चाहिए, न कि परिसर, वाहन या वस्तुओं की तलाशी के संबंध में। यह स्थिति बलदेव सिंह के मामले (उपरोक्त) में संविधान पीठ द्वारा निर्विवाद रूप से स्थापित की गई थी। उपरोक्त स्थिति को देखते हुए, अधिनियम की धारा 50 के गैर-अनुपालन के संबंध में तर्क भी निराधार है।“

18. अधिनियम की धारा 50 के प्रावधान से निपटते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने देहल सिंह बनाम हिमाचल प्रदेश राज्य, 2011 (72) एससी 661 के मामले में यह अवधारित किया कि धारा 50 किसी व्यक्ति की तलाशी से संबंधित है, न कि वाहन की, और इस प्रकार आवेदक को राजपत्रित मजिस्ट्रेट अधिकारी की उपस्थिति में तलाशी के अधिकार के बारे में सूचित करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

19. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा करना किसी सहायता का नहीं है क्योंकि राज्य ने यह तर्क दिया है कि अधिनियम की धारा 50 का आवश्यक अनुपालन किया गया है और न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट के अनुसार, बरामद प्रतिबंधित पदार्थ हेरोइन पाया गया था।

20. धारा 52ए को अधिनियम 2 वर्ष 1989 द्वारा अंतःस्थापित किया गया था और यह 29.05.1989 से प्रभावी हुई। धारा 52ए के अंतःस्थापन से पहले, केंद्र सरकार ने एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए 17.03.1986 को एक अधिसूचना जारी की थी और नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो (एनसीबी) का गठन किया था। एनसीबी ने स्थायी निर्देश संख्या 1 वर्ष 88 दिनांक 15.03.1988 जारी किया था। संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित 1988 के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के दृष्टिगत धारा 52ए को जोड़ने की आवश्यकता उत्पन्न हुई।

21. धारा 52ए के उक्त सम्मिलन के बाद, स्थायी आदेश संख्या 1 वर्ष 1989 का अनुपालन किया गया। समय-समय पर, केंद्र सरकार स्वापक औषधि और मनःप्रभावी पदार्थों, नियंत्रित पदार्थों और वाहनों के निपटान के संबंध में अधिसूचनाएँ जारी करती रही है। अधिनियम की धारा 52ए के अनुपालन से संबंधित मामला माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो बनाम काशिफ अंतर्गत आपराधिक अपील संख्या 5544 वर्ष 2024** में, जो विशेष अनुमति याचिका (क्रिमिनल) संख्या 12120 वर्ष 2024 से उत्पन्न हुई है, जिसका निर्णय 20.12.2024 को हुआ था, विचार के लिए आया था।

22. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एनडीपीएस अधिनियम के विधायी उद्देश्य और इतिहास तथा धारा 52ए के अन्तःस्थापन पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 52ए का शीर्षक ही इस बात को स्पष्ट करता है कि जब्त की गई स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के शीघ्र निपटान के लिए यह प्रावधान शामिल किया गया था, जो स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक उपायों में से एक है। निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 20, 21, 23 और 24 यहाँ नीचे दिए गए हैं:

“ 20. अब, धारा 52ए के संदर्भ में, उसमें प्रयुक्त भाषा से यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान जब्त स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के शीघ्र निपटान के लिए, उनकी खतरनाक प्रकृति, चोरी की आशंका, प्रतिस्थापन, उचित भंडारण स्थान की कमी और अन्य प्रासंगिक कारकों को ध्यान में रखते हुए, सम्मिलित किया गया था। उक्त धारा में प्रयुक्त स्पष्ट भाषा के अलावा, इसका शीर्षक भी यह स्पष्ट करता है कि उक्त प्रावधान जब्त स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के निपटान के लिए सम्मिलित किया गया था। व्याख्या के सुस्थापित नियम के अनुसार, किसी भी प्रावधान की व्याख्या में किसी भी संदेह या अस्पष्टता को दूर करने और विधायी आशय को समझने के लिए धारा शीर्षक या सीमान्त टिप्पणी पर भरोसा किया जा सकता है। धारा शीर्षक स्वयं अधिनियम का एक महत्वपूर्ण भाग है, और इसे न केवल धारा के प्रावधानों की व्याख्या के रूप में पढ़ा जा सकता है, बल्कि यह केवल प्रस्तावना की तुलना में बाद की धारा के प्रावधानों के अर्थान्वयन के लिए एक बेहतर कुंजी भी प्रदान करता है। (ईस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड बनाम संजय ट्रांसपोर्ट एजेंसी और अन्य, (2009)) 7 एससीसी 345)

21. धारा 52ए को "जब्त स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का निपटान" शीर्षक के साथ अन्तःस्थापित करना, साथ ही "स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की अवैध तस्करी से प्राप्त या उसमें प्रयुक्त संपत्ति की जब्त का प्रावधान करना, स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के प्रावधानों को लागू करना" शब्दावली का अन्तःस्थापन होकर एनडीपीएस अधिनियम के लंबे शीर्षक में अधिनियम 2 वर्ष 1989 द्वारा 29.05.1989 से प्रभावी है, जो कोई संदेह की जगह नहीं छोड़ता कि उक्त धारा 52ए के प्रावधान जब्त की गई स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के शीघ्र निपटान के लिए इसे शामिल किया गया था, जो स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक उपायों में से एक है। धारा 52ए का शीर्षक, यानी जब्त की गई स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों का निपटान, इस प्रावधान को शामिल करने के उद्देश्य और कारण को स्पष्ट करता है और इस शीर्षक के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। धारा 52ए को पढ़ने मात्र से ही यह स्पष्ट है कि इसकी उपधारा (1) केंद्र सरकार को स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की खतरनाक प्रकृति, चोरी की आशंका, प्रतिस्थापन, उचित भंडारण स्थान की कमी या किसी अन्य प्रासंगिक विचार को ध्यान में रखते हुए, उन्हें जब्त करने के बाद यथाशीघ्र निपटान के लिए निर्दिष्ट करने का अधिकार देती है। यह निपटान ऐसे अधिकारी द्वारा और ऐसे तरीके से किया जाएगा जैसा कि केंद्र सरकार उपधारा (2) में निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करने के बाद निर्धारित करे।

23. जैसा कि ऊपर दर्शाया गया है, धारा 52ए की उपधारा (2) में जब्त किए गए प्रतिबंधित या नियंत्रित स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के निपटान के लिए उपधारा (1) में परिकल्पित प्रक्रिया निर्दिष्ट की गई है। संबंधित अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट को उपधारा (2) के अंतर्गत आवेदन करने में कोई विचलन या देरी, या मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे आवेदन पर निर्णय लेने में देरी को अधिकतम अनियमितता कहा जा सकता है, न कि अवैधता, जिससे अभियोजन का पूरा मामला रद्द या अमान्य हो जाए। न्यायालयों द्वारा अब तक विकसित न्यायशास्त्र, "अनियमित कार्यवाही" और "अवैध कार्यवाही" के बीच स्पष्ट अंतर करता है। अनियमितता का निवारण किया जा सकता है, जबकि अवैधता का नहीं। अनियमितता को परिणाम को प्रभावित किए बिना अनदेखा या सुधारा जा सकता है, जबकि अवैधता कार्यवाही को रद्द कर सकती है। प्रक्रिया, नियम या विनियम का कोई भी उल्लंघन, जो प्रक्रिया में चूक का संकेत देता हो, अनियमितता माना जा सकता है और इससे कानूनी कार्यवाही के परिणाम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, लेकिन इसे कार्यवाही को रद्द करने वाली अवैधता नहीं कहा जा सकता। 24. धारा 52ए को केवल जब्त की गई प्रतिबंधित दवाओं और पदार्थों के शीघ्र निपटान के उद्देश्य से ही जोड़ा गया था, उनकी खतरनाक प्रकृति, चोरी की आशंका, उचित भंडारण स्थान की कमी आदि को ध्यान में रखते हुए। प्रतिबंधित दवाओं और पदार्थों के शीघ्र निपटान के मुद्दे पर कोई दो राय नहीं हो सकती, विशेष रूप से जब इसे स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन के प्रावधानों को लागू करने के लिए जोड़ा गया था। हालांकि, मजिस्ट्रेट को आवेदन करने के लिए अधिकृत संबंधित अधिकारी द्वारा उक्त प्रावधान का विलंबित अनुपालन या गैर-अनुपालन कभी भी ऐसी अवैधता नहीं माना जा सकता है जो अभियुक्त को जमानत पर रिहा होने या परीक्षण में दोषमुक्त होने का दावा करने का हकदार बनाए, जब अन्वेषण अधिकारी

द्वारा यह स्थापित करने के लिए पर्याप्त सामग्री एकत्र की गई हो कि प्रतिबंधित पदार्थ की तलाशी और जब्ती अधिनियम के अनिवार्य प्रावधानों के उचित अनुपालन में की गई थी।“

23. सर्वोच्च न्यायालय ने **पूरन मल बनाम निदेशक निरीक्षण (अन्वेषण) नई दिल्ली और अन्य (1974) 1 एससीसी 345** के मामले में संविधान पीठ के निर्णय और **पंजाब राज्य बनाम बलदेव सिंह (1999) 6 एससीसी 172** के मामले में संविधान पीठ के निर्णय के साथ-साथ **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम पृथ्वी चंद और अन्य (1996) 2 एससीसी 37** और **पंजाब राज्य बनाम मकखन चंद (2004) 3 एससीसी 453** के मामलों में दिए गए निर्णयों के आलोक में धारा 52ए के दायरे पर विचार किया और यह अभिनिर्धारित किया कि अन्वेषण के दौरान कानूनी और उचित तरीके से एकत्र किए गए और जब्त किए गए प्रतिबंधित पदार्थों के संबंध में परीक्षण के दौरान उपयोग किए जाने वाले साक्ष्य को, अधिनियम की धारा 52ए के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को आवेदन करने के लिए अधिकृत संबंधित अधिकारी द्वारा की गई किसी भी प्रक्रियात्मक अनियमितता के आधार पर सरलता से खारिज नहीं किया जा सकता है। **काशिफ (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 31, 32 और 33 को यहाँ नीचे उद्धृत किया गया है:-

“ 31. उपरोक्त निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि इस न्यायालय ने अनेक निर्णयों में, एनसीबी और केंद्र सरकार द्वारा जारी स्थायी आदेशों और अधिसूचनाओं के अनुपालन में मौके पर तलाशी और जब्ती की प्रक्रिया को अनुमोदित किया है, और अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अधिकारियों द्वारा की गई तलाशी और जब्ती से संतुष्ट होने और एफ.एस.एल. रिपोर्ट आदि के वैज्ञानिक साक्ष्यों से संतुष्ट होने पर दोषसिद्धि को बरकरार रखा है। इसके अलावा, पूरन मल और बलदेव सिंह के मामलों में संविधान पीठों द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, तलाशी और जब्ती करने में किसी भी प्रक्रियात्मक अवैधता से ही एकत्रित किए गए संपूर्ण साक्ष्य अस्वीकार्य नहीं हो जाते। न्यायालय को साक्ष्य की स्वीकार्यता का निर्णय उस संदर्भ और तरीके के आधार पर करना होगा जिसमें साक्ष्य एकत्रित किए गए थे और परीक्षण के दौरान उनका उपयोग किया जाना था। अन्वेषण के दौरान कानूनी और उचित तरीके से एकत्रित किए गए और जब्त किए गए प्रतिबंधित पदार्थ के संबंध में परीक्षण के दौरान उपयोग किए जाने वाले साक्ष्य को, यदि कोई प्रक्रियात्मक अनियमितता अधिनियम की धारा 52ए के अंतर्गत मजिस्ट्रेट को आवेदन करने के लिए अधिकृत संबंधित अधिकारी द्वारा हुई हो, तो उसके आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता।

32. महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिकृत अधिकारी धारा 52ए की उपधारा (2) के अंतर्गत तीन उद्देश्यों के लिए आवेदन कर सकता है - (ए) उसके द्वारा तैयार की गई सूची की सत्यता प्रमाणित करने के लिए; या (बी) मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में जब्त की गई औषधियों, पदार्थों और वाहनों की तस्वीरें लेने और ऐसी तस्वीरों को सही प्रमाणित करने के लिए; या (सी) मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में ऐसी औषधियों या पदार्थों के प्रतिनिधि नमूने लेने की अनुमति देने और इस प्रकार लिए गए नमूनों की किसी भी सूची की सत्यता प्रमाणित करने के लिए। इसमें उल्लिखित तीनों उद्देश्यों के बीच प्रयुक्त संयोजक "या" से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपधारा (2) के अंतर्गत आवेदन करने के उद्देश्य वैकल्पिक हैं, न कि संचयी। एकाधिक वैकल्पिक उद्देश्यों को निर्दिष्ट करने

वाले ऐसे प्रावधान को अनिवार्य प्रावधान नहीं माना जा सकता है, और न ही इसका पालन न करना अभियोजन के मामले के लिए घातक होगा।

33. यद्यपि यह सत्य है कि उपधारा (2) के अंतर्गत प्रमाणित सूची, ली गई तस्वीरें और नमूने की सूची को उपधारा (3) के आलोक में न्यायालय द्वारा प्राथमिक साक्ष्य माना जाना चाहिए, फिर भी पंचनामा, ज़ब्तੀ जापन, गिरफ्तारी जापन आदि जैसे दस्तावेज़ जो अन्वेषण अधिकारी द्वारा मौके पर या अन्वेषण के दौरान तैयार किए गए हैं, साक्ष्य अधिनियम की धारा 62 के अर्थ में प्राथमिक साक्ष्य हैं और इनका साक्ष्य मूल्य अन्य प्राथमिक साक्ष्यों के समान ही है। प्रतिबंधित पदार्थ की तलाशी और ज़ब्त से संबंधित ऐसे प्राथमिक साक्ष्यों को केवल इसलिए अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि अधिनियम की धारा 52ए का कोई उल्लंघन या अनुपालन नहीं पाया गया है।”

24. सर्वोच्च न्यायालय ने आगे जाकर अवधारित किया कि **भारत संघ बनाम मोहनलाल और अन्य (2016) 3 एससीसी 379** के मामले में दिए गए निर्णय में, प्रतिबंधित वस्तुओं की चोरी का मुद्दा मुख्य मुद्दा था। **मोहनलाल (उपरोक्त)** मामले में मुख्य बिंदु धारा 52ए के अंतर्गत जब्त प्रतिबंधित वस्तुओं का निपटान था। **काशिफ (उपरोक्त)** मामले के निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर 34 और 35 यहां नीचे दिए गए हैं:

“34. हमारी राय में, उच्च न्यायालय द्वारा इस न्यायालय के **भारत संघ बनाम मोहनलाल और अन्य (2016) 3 एससीसी 379** के निर्णय पर भरोसा करना पूरी तरह से गलत है। उक्त मामले में, प्रतिबंधित वस्तुओं की चोरी का मुद्दा मुख्य मुद्दा था। न्यायालय ने दिनांक 13.06.1989 के स्थायी आदेश संख्या 1 वर्ष 89 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुपालन न होने और प्रतिबंधित वस्तुओं की चोरी तथा उनके बाजार में वापसी और प्रचलन की संभावना को देखते हुए, मादक पदार्थों की खोज, निपटान या विनाश की प्रक्रिया की वास्तविक समीक्षा करने और यदि कोई खामियां हों तो उन्हें दूर करने के लिए आवश्यक सुधारात्मक कदम उठाने के लिए एक न्यायमित्र नियुक्त किया था। इसके बाद, न्यायालय ने जब्त स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों की ज़ब्त, भंडारण, निपटान/विनाश तथा न्यायिक पर्यवेक्षण के संबंध में प्रश्न उठाए थे। मोहनलाल के मामले में मुख्य बिंदु धारा 52ए में परिकल्पित जब्त प्रतिबंधित वस्तुओं का निपटान था। यद्यपि इसमें यह माना गया है कि नमूने लेने की प्रक्रिया मजिस्ट्रेट की उपस्थिति और पर्यवेक्षण में की जानी चाहिए, लेकिन इसमें कहीं भी यह नहीं कहा गया है कि धारा 52ए (2) के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का अनुपालन न करने या विलंबित अनुपालन से परीक्षण अमान्य हो जाएगा या अभियुक्त को जमानत पर रिहा होने का अधिकार मिल जाएगा।

35. अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो ज़ब्त के समय मौके पर नमूना लेने पर रोक लगाता हो, और न ही उक्त अधिनियम की धारा 52ए ऐसा करती है। इसके विपरीत, एनसीबी और केंद्र सरकार द्वारा धारा 52ए के लागू होने से पहले और बाद में, नियमावली, 2022 के बनने तक जारी किए गए स्थायी आदेशों और अधिसूचनाओं में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार, संबंधित अधिकारी को पंच साक्षियों और उस व्यक्ति की उपस्थिति में, जिसके कब्जे से नशीला पदार्थ बरामद किया गया था, बरामद प्रतिबंधित पदार्थों के नमूने दो प्रतियों में

पंचनामा बनाकर लेने होते थे। केवल बचे हुए पदार्थ के संबंध में ही धारा 52ए में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक था।”

25. सिमरनजीत बनाम पंजाब राज्य, (आपराधिक अपील संख्या 1443 वर्ष 2023); यूसुफ उर्फ आसिफ बनाम राज्य 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1328 और मोहम्मद खालिद और अन्य बनाम तेलंगाना राज्य (2024) 5 एससीसी 393 के मामलों में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए अद्यतन निर्णय पर विचार करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने काशिफ (उपरोक्त) में प्रस्तर 36, 37 और 38 में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“ 36. इस स्तर पर, हमें सिमरनजीत बनाम पंजाब राज्य (आपराधिक अपील संख्या 1443 वर्ष 2023), यूसुफ उर्फ आसिफ बनाम राज्य (2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1328) और मोहम्मद खालिद और अन्य बनाम तेलंगाना राज्य ((2024) 5 एससीसी 393) के अद्यतन निर्णयों पर विचार करना होगा, जिनमें इस न्यायालय ने धारा 52ए के अनुपालन न होने के आधार पर और मोहनलाल मामले में किए गए संप्रेक्षणों पर भरोसा करते हुए दोषसिद्धि को रद्द कर दिया है। इस तथ्य के अलावा कि उक्त मामलों का निर्णय प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर किया गया है, किसी भी निर्णय में धारा 52ए के संबंध में या एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत परीक्षण के दौरान एकत्र किए गए किसी अन्य साक्ष्य की स्वीकार्यता के मुद्दे पर कोई कानून निर्धारित करने का प्रस्ताव नहीं किया गया है। इसलिए, हमने धारा 52ए और अन्य वैधानिक स्थायी आदेशों के विधायी इतिहास के साथ-साथ न्यायिक निर्णयों पर भी विचार किया है, जो स्पष्ट रूप से इस अपरिहार्य निष्कर्ष की ओर ले जाते हैं कि धारा 52ए का विलंबित अनुपालन या उल्लंघन न तो परीक्षण को अमान्य करता है और न ही दोषसिद्धि को प्रभावित करता है, और न ही जमानत मांगने का एकमात्र आधार हो सकता है। हमारी राय में, पूरन मल और बलदेव सिंह के मामलों में संविधान पीठों द्वारा दिए गए निर्णय, कम सदस्यों वाली पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों में किए गए किसी भी संप्रेक्षण पर प्राथमिकता रखते हैं, जो अधिनियम की योजना, आशय और उद्देश्य तथा बाध्यकारी पूर्व निर्णयों पर विचार किए बिना दिए गए हैं।

37. यह दोहराने की शायद ही आवश्यकता है कि प्रत्येक कानून न्याय के उद्देश्यों को आगे बढ़ाने के लिए बनाया गया है, न कि मात्र तकनीकी खामियों के आधार पर इसे विफल करने के लिए। यदि किसी कानून की भाषा अपने सामान्य अर्थ और व्याकरणिक संरचना में अधिनियम के स्पष्ट उद्देश्य के साथ स्पष्ट विरोधाभास पैदा करती है, तो उस पर एक ऐसी व्याख्या की जा सकती है जो शब्दों के अर्थ या वाक्य की संरचना को भी बदल दे। यह भी एक स्थापित कानूनी स्थिति है कि जहां किसी कानून का मुख्य उद्देश्य और आशय स्पष्ट है, उसे कानून के निर्माता की अकुशलता या अज्ञानता के कारण निष्प्रभावी नहीं बनाया जाना चाहिए। मैक्सवेल ऑन इंटरप्रीटेशन ऑफ स्टैट्यूट्स के दसवें संस्करण के पृष्ठ 229 पर निम्नलिखित अंश मिलता है: -

“जहां किसी कानून की भाषा, अपने सामान्य अर्थ और व्याकरणिक संरचना में, अधिनियम के स्पष्ट उद्देश्य के साथ स्पष्ट विरोधाभास पैदा करती है, या किसी ऐसी असुविधा, बेतुकेपन, कठिनाई या अन्याय की ओर ले जाती है जो संभवतः इच्छित नहीं है, वहां शब्दों के अर्थ और यहां तक कि वाक्य की संरचना को भी संशोधित

करने वाली व्याख्या की जा सकती है। ... जहां किसी कानून का मुख्य उद्देश्य और आशय स्पष्ट है, उसे कानून निर्माता की अकुशलता या कानून के अज्ञान के कारण निरर्थक नहीं बनाया जाना चाहिए, सिवाय आवश्यकता की स्थिति में, या प्रयुक्त भाषा की अत्यंत जटिलता के मामले में।”

38. जैसा कि इस न्यायालय ने **के.पी. वर्गीस बनाम आयकर अधिकारी, एर्नाकुलम और अन्य (1981) 4 एससीसी 173**, में संप्रेक्षित किया है, यदि संभव हो तो, विधिक प्रावधानों की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि निरर्थकता और अनुचित परिणाम से बचा जा सके। जहाँ विधिक प्रावधानों की सीधी और शाब्दिक व्याख्या से स्पष्ट रूप से निरर्थक और अन्यायपूर्ण परिणाम निकलता है, वहाँ न्यायालय विधायिका द्वारा प्रयुक्त भाषा को संशोधित कर सकता है या उसमें कुछ बदलाव भी कर सकता है, ताकि विधायिका के स्पष्ट आशय को प्राप्त किया जा सके और तर्कसंगत व्याख्या तथा न्यायसंगत परिणाम प्राप्त हो सके।”

26. सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय के प्रस्तर 39 में एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत मामलों में जमानत आवेदन पर विचार करने, धारा 52ए के उद्देश्य और जब्त स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के निपटान के संबंध में दिशानिर्देश निर्धारित किए थे, जो नीचे दिए गए हैं:

“ 39. उपरोक्त चर्चा का सार निम्नलिखित रूप में संक्षेपित किया जा सकता है:

(i) एनडीपीएस अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या अधिनियम की योजना, उद्देश्य और प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए; साथ ही समाज पर इसके समय प्रभाव को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। इसकी व्याख्या शाब्दिक रूप से की जानी चाहिए, न कि उदारतापूर्वक, जिससे अंततः अधिनियम के उद्देश्य, प्रयोजन और प्रस्तावना का उद्देश्य ही विफल हो सकता है।

(ii) जमानत याचिका पर विचार करते समय न्यायालय को एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के प्रावधानों को ध्यान में रखना चाहिए, जो अनिवार्य हैं। धारा 37 में उल्लिखित निष्कर्षों को दर्ज करना एनडीपीएस अधिनियम के अंतर्गत अपराधों में शामिल अभियुक्तों को जमानत देने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

(iii) जब्त स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों के निपटान की प्रक्रिया निर्धारित करने वाली धारा 52ए को शामिल करने का उद्देश्य जब्त किए गए प्रतिबंधित पदार्थों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करना था। इसे 1989 में स्वापक औषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों को लागू करने और उन्हें प्रभावी बनाने के उपायों में से एक के रूप में शामिल किया गया था।

(iv) धारा 52ए की उपधारा (2) में उपधारा (1) में परिकल्पित प्रक्रिया निर्धारित की गई है, और इसके अनुपालन में कोई चूक या देरी मात्र एक प्रक्रियात्मक अनियमितता होगी जो न तो अभियुक्त को जमानत पर रिहा होने का हकदार बनाएगी और न ही केवल उस आधार पर परीक्षण को अमान्य करेगी।

(v) अन्वेषण के दौरान या उसके बाद तलाशी और ज़बती करने में पाई गई किसी भी प्रक्रियात्मक अनियमितता या गैरकानूनी गतिविधि से अन्वेषण के दौरान एकत्र किए गए संपूर्ण साक्ष्य स्वतः ही अमान्य

नहीं हो जाएंगे। न्यायालय को सभी परिस्थितियों पर विचार करना होगा और यह पता लगाना होगा कि क्या अभियुक्त को कोई गंभीर हानि हुई है।

(vi) धारा 52ए के अनुपालन में किसी भी प्रकार की चूक या देरी से न तो परीक्षण अमान्य होगा और न ही अभियुक्त को जमानत पर रिहा होने का अधिकार मिलेगा। न्यायालय को अन्य परिस्थितियों और अन्वेषण के दौरान एकत्र किए गए अन्य प्राथमिक साक्ष्यों के साथ-साथ एनडीपीएस अधिनियम की धारा 54 के अंतर्गत अनुमत वैधानिक अनुमान पर भी विचार करना होगा।“

27. आवेदक की ओर से उठाया गया तर्क सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **काशिफ (उपरोक्त)** मामले में दिए गए अद्यतन निर्णय में संक्षेपित दिशानिर्देशों के आधार पर तय किया जा चुका है।

28. अभियुक्त और अन्य सह-अभियुक्तों के संयुक्त कब्जे से तथा संबंधित वाहन से भारी मात्रा में बरामद प्रतिबंधित पदार्थ (हेरोइन) को देखते हुए, मुझे एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के अंतर्गत अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने का कोई उचित आधार नहीं मिलता है। इसके अलावा, अभियुक्त के विरुद्ध पांच अन्य आपराधिक मामले दर्ज हैं और बरामद की गई मात्रा व्यावसायिक सीमा से अधिक है।

29. अतः, पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों, अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों और आवेदक की संबंधित अपराध में संलिप्तता को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई आधार नहीं मिलता है।

30. परिणामस्वरूप, जमानत याचिका **खारिज** की जाती है।

(2025) 1 ILRA 17

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-25993 वर्ष 2024

श्रीमती रेखा

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

राहुल उपाध्याय

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, आर.पी.एस. चौहान

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 363, 302 और 201 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 309 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 15(3), 21, 21-ए, 45, 47, 39 (ई) और 39 (एफ) - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 - धारा 2 (14)(v), 2 (22), 2 (21), 30, 31 और 37 - बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 - धारा 2(डी), 3, 4, 13, 14 और 15 - यूपी जेल मैनुअल, 2022 - नियम 335, 336, 337, 339 - मॉडल जेल मैनुअल, 2016 - नियम 26.36 से 26.44 - विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 - धारा 2(सी), 12 और 13 - जमानत - अदालत के समक्ष मुद्दा शिक्षा, कल्याण, विकास के लिए समग्र वातावरण, जेल कैदियों के बच्चों में मजबूत नैतिक ताने-बाने का विकास और उनके साथ जेलों में रहने वाले कैदियों के बच्चों में नैतिक ढांचे का विकास था - आवेदक 16.10.2023 से जेल में थी - जमानत 14.05.2024 को विचारण न्यायालय ने आवेदन खारिज कर दिया - आवेदक का 5 साल का बेटा जेल में उसके साथ रह रहा था और पूरी तरह से उस पर निर्भर था। (प्रस्तर-4)

अवधारित, आवेदक की पहचान मुख्य अपराधी के रूप में की गई है, जिसने अपने नाबालिग सौतेले बच्चे की हत्या कर दी और उसके शरीर को घर में स्थित टैंक में फेंक दिया और उसे इंगित करने पर शव बरामद किया गया - आवेदक का अपराध करने का मकसद था जो गंभीर था - संभावना है कि आवेदक ने अपराध किया था - जमानत के लिए कोई मामला नहीं बनाया गया था - इस प्रकार, विचारण में तेजी लाने के लिए विचारण न्यायालय को निर्देश दिए गए हैं और संबंधित अधिकारियों को भी निर्देश दिए गए हैं कि वे विभिन्न प्राधिकारियों और विशेषज्ञों के साथ उचित परामर्श के बाद दो माह के भीतर आवेदक के पुत्र के लिए बाल देखभाल योजना तैयार करें। (प्रस्तर-93, 96, 114)

जमानत याचिका खारिज (ई-13)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. रामू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला० 4618
2. अनिल गौर @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 623
3. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (6) 511
4. अमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 (8) ए.डी.जे. 523
5. भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 734

6. नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 (5) ए.डी.जे. 766
7. अनुरुद्ध बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 (8) ए.डी.जे. 469
8. अविनाश मेहरोत्रा बनाम यू.ओ.आई. और अन्य, 2009 (6) एस.सी.सी. 398, (प्रस्तर-28, 30, 32, 33)
9. आरडी उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2007) 15 एस.सी.सी. 337, (प्रस्तर-45)
10. प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य, 2005 (3) एस.सी.सी. 551, (प्रस्तर-63-ए)
11. राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2019 (4) ए.डी.जे. 316, (प्रस्तर-38, 39)
12. एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य, 1996 (6) एस.सी.सी. 756, (प्रस्तर-17)
13. पुनः किशोरों की निजता का अधिकार, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2055, (प्रस्तर-28.2, 29.1)
14. शीला बरसे बनाम चिल्ड्रन एंड सोसाइटी, 1987 (3) एस.सी.सी. 50, (प्रस्तर-5)
15. लक्ष्मी कांत पांडे बनाम यू.ओ.आई., 1984 (2) एस.सी.सी. 244, (प्रस्तर-6, 7)
16. जन अदालत, सेंटर ऑफ पैरा-लीगल सर्विसेज एंड लीगल एड ए सोसाइटी बनाम महाराष्ट्र राज्य, सचिव, गृह विकास विभाग के माध्यम से, 2017 एस.सी.सी. ऑनलाइन बॉम 239, (प्रस्तर-38)
17. बाबुल खान बनाम कर्नाटक राज्य, 2020 एस.सी.सी. ऑनलाइन कर 3438, (प्रस्तर-96)
18. सुपूर्णानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2018 (11) ए.डी.जे. 550, (प्रस्तर-32 से 35)
19. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और अन्य बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क, 1995 पूरक (4) एस.सी.सी. 541, (प्रस्तर-3, 4)
20. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग बनाम केंद्रीय उत्पाद शुल्क, 2004 (6) एस.सी.सी. 437 (प्रस्तर-3)
21. एलिजाबेथ जैकब बनाम जिला कलेक्टर, इडुक्की और अन्य, 2008 (15) एस.सी.सी. 166, (प्रस्तर-19)
22. सोसाइटी फॉर एनलाइटनमेंट एंड स्वेचिछक एक्शन और अन्य बनाम यू.ओ.आई. 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 2922, (प्रस्तर-3)
23. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2021 (6) ए.डी.जे. 511, (प्रस्तर-58)
24. न्यू इंडिया एश्योरेंस कॉम्प लिमिटेड बनाम श्री यामिन और अन्य, 2023 (10) ए.डी.जे. 421, (प्रस्तर-48 से 51)
25. जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन ऑल 463 (प्रस्तर-42)
26. राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-30292 वर्ष 2024, (प्रस्तर-9, 10, 13)
27. भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला 734
28. जितेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-9126 वर्ष 2023
29. नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 (5) ए.डी.जे. 766

(माननीय न्यायमूर्ति श्री अजय भनोट द्वारा दिया गया)

1- चर्चा को सुविधाजनक बनाने के लिए निर्णय को निम्नलिखित वैचारिक ढांचे में संरचित किया जा रहा है:

I	परिचय		
II	पक्षों के लिए अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ		
III	इस मामले में उत्पन्न होने वाले कानूनी मुद्दे और जमानत क्षेत्राधिकार		
IV	बच्चे		
		A	सामान्य
		B	संविधान और बच्चे
		C	बच्चों की शिक्षा और समग्र विकास
		D	अंतर्राष्ट्रीय उपकरण
V	जेल में बच्चे: अदृश्य परीक्षण और पिजरे में बंद बचपन - एक अध्ययन		
VI	वैधानिक ढांचा:		
		A	किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015
		B	बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009
		C	यूपी जेल मैनुअल, 2022
		D	मॉडल जेल मैनुअल, 2016
		E	विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987
		F	संवैधानिक कानून प्रवचन : निर्णयज विधि
VII			
		A	बाल संरक्षण प्रणाली: हितधारकों के कर्तव्य और निर्देश
		B	हितधारकों का प्रशिक्षण
		C	राज्य सरकार की प्रतिक्रिया और विभिन्न विभागों के बीच तालमेल
VIII	कानून का कार्यान्वयन और न्यायालयों की भूमिका: जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश 3 राज्य और		

	राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश 4 राज्य		
IX	जमानत आवेदन में आदेश		
		A	जमानत के गुण-दोष और मुकदमे में तेजी लाने के निर्देश
		B	चाइल्ड केयर प्लान बनाने और आवेदक के नाबालिग बच्चे के अधिकारों का एहसास करने के निर्देश
X	अनुपालन के लिए प्रतियों का संचलन		

I. प्रस्तावना

1. जमानत की अस्वीकृति के परिणामस्वरूप अपने माता-पिता के साथ जेल में बंद होने वाले बच्चों के अधिकार इस मामले में विचार के लिए उठते हैं (जमानत के लिए अन्य आधारों के अलावा)।

II. पक्षों के लिए अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ

2. आवेदक के अधिवक्ता श्री राहुल उपाध्याय ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं:

- आवेदक का बेटा जो 5 वर्ष का है, उसकी कैद के बाद जेल में उसके साथ रह रहा है। आवेदक के बच्चे के अधिकारों का उल्लंघन भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए के साथ अन्य लाभकारी कानूनों के साथ किया जा रहा है, जो जेल में उसके कारावास के कारण किया जा रहा है।
- जेल में नाबालिग बच्चे के समग्र विकास को सुनिश्चित करने के लिए अपेक्षित समर्थन प्रणाली नहीं है जैसा कि कानून के उपरोक्त प्रावधानों में माना गया है।
- उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, जेल में रहने से बच्चे के जीवन पर छाया पड़ेगी और उसके भविष्य पर असर पड़ेगा।
- आवेदक अकेले इस आधार पर जमानत का हकदार है।

राज्य की ओर से प्रस्तुतियाँ

3. श्री अशोक मेहता, अतिरिक्त महाधिवक्ता श्री परितोष कुमार मालवीय, एजीए-1 की सहायता से निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ दीं:

I. राज्य सरकार की संविधान के तहत और उन बच्चों के लिए विभिन्न लाभकारी कानूनों में एक अनुकूल वातावरण प्रदान करने और पर्याप्त समर्थन प्रणाली का निर्माण करने के लिए बिना शर्त प्रतिबद्धता है जो अपने माता-पिता के कारावास के परिणामस्वरूप जेल में रहते हैं।

II. राज्य सरकार संवैधानिक न्यायालयों की धारकों में प्रतिपादित बच्चों के उक्त वर्ग के मौलिक अधिकारों और लागू सांविधिक अधिनियमों द्वारा निहित अधिकारों को प्राप्त करने के लिए सभी प्रयास करेगी।

III. राज्य इस तथ्य से अवगत है कि सभी बच्चों को देश के कर्तव्यनिष्ठ नागरिकों के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है, जिनमें वे भी शामिल हैं जो अपने माता-पिता के साथ जेल में रह रहे हैं।

IV. राज्य की ओर से दाखिल शपथ-पत्र का हवाला देते हुए यह कहा गया है कि राज्य सरकार आवश्यक अधोसंरचना विकसित करेगी, वैधानिक सहयोगी तंत्र को सक्रिय करेगी तथा इस माननीय न्यायालय द्वारा दिनांक 01.10.2024 को पारित पूर्व आदेशानुसार बच्चों को सभी सुविधाएं प्रदान करेगी। राज्य सरकार उक्त निर्देशों का अनुपालन करने के लिए कदम उठा रही है तथा इस वाद में विरोधी पक्षकार नहीं है। यद्यपि यह निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया कि विभिन्न विभागों के बीच पूर्ण समन्वय और सहयोग स्थापित करने में समय लग रहा है।

III. इस मामले में उत्पन्न होने वाले कानूनी मुद्दे और जमानत क्षेत्राधिकार:

4. आवेदक का 5 साल का बेटा पूरी तरह से उस पर निर्भर है। इस मामले में आवेदक को जमानत देने से इनकार करने पर पांच साल का बच्चा उसके साथ जेल परिसर में रहने के लिए मजबूर होगा। पारिवारिक परिस्थितियां और सामाजिक जड़ें उन मानदंडों में से हैं जिन्हें किसी आरोपी की जमानत याचिका पर निर्णय लेते समय ध्यान में रखा जाता है।

5. अपने 6 माता-पिता को जमानत देने से इनकार करने के परिणामस्वरूप एक बच्चे को दी गई संपार्श्विक क्षति सबसे महत्वपूर्ण हो जाती है जब बच्चे को आरोपी माता-पिता के साथ जेल में रहना पड़ता है। न्यायालय डिफॉल्ट रूप से जेल में कैद होने के परिणामस्वरूप ऐसे बच्चों की दुर्दशा के प्रति अपनी आँखें बंद नहीं कर सकता है।

6. प्रत्येक माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चे की भलाई, शिक्षा और अच्छी तरह से विकास सुनिश्चित करें। हालांकि, माता-पिता यदि जेल में हैं, वे इन दायित्वों को पूरा नहीं कर सकते हैं। प्रत्येक बच्चे को शिक्षा का मौलिक अधिकार है, और देश के कर्तव्यनिष्ठ नागरिक के रूप में उनके विकास के लिए अनुकूल वातावरण है। जेल में इस तरह के डिफॉल्ट कारावास से पीड़ित बच्चों के अधिकारों की उपेक्षा राज्य की विफलता और न्यायिक प्रक्रिया की अपर्याप्तता को दर्शाएगी। इन बच्चों के अधिकारों से वंचित होने से राज्य की क्षमता और

संविधान और कानूनों को बनाए रखने की न्यायिक प्रक्रिया की क्षमता पर सवालिया निशान लग जाएगा। ऐसे गंभीर मुद्दों से बचना जो जमानत क्षेत्राधिकार में विचार के लिए सीधे उठते हैं, न्यायिक कार्यों के परित्याग के समान होगा। इस तरह के प्रविधि को अच्छे और सुसंगत अधिकारियों द्वारा छोड़ दिया गया है।

7. जमानत क्षेत्राधिकार में न्याय का निष्पक्ष प्रशासन इस न्यायालय को यह सुनिश्चित करने का आदेश देता है कि अपने माता-पिता (इस मामले में मां) की जमानत याचिका को अस्वीकार करने के परिणामस्वरूप बच्चे को होने वाले प्रतिकूल परिणामों को कम किया जाए और जेलों में रहने वाले कैदियों के नाबालिग बच्चों के अधिकारों की रक्षा की जाए।

8. इस न्यायालय की संवैधानिक स्थिति जमानत के अधिकार क्षेत्र में नहीं है। जमानत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय, किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विचार के लिए विभिन्न कानूनी मुद्दे उत्पन्न हो सकते हैं जो सीधे न्याय के निष्पक्ष प्रशासन को प्रभावित करते हैं। जमानत आवेदनों पर निर्णय लेते समय कानून के अनुसार ऐसे मुद्दों को निर्धारित करने के लिए न्यायालय के पास अधिकार क्षेत्र है।

9. जमानत क्षेत्राधिकार में निष्पक्ष न्याय प्रदान करने के लिए कानून के अनुसार ऐसे मुद्दों का निर्धारण इस न्यायालय के विभिन्न अधिकारियों द्वारा किया गया है। [संदर्भ: **रामू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, अनिल गौर @ सोनू @ सोनू तोमर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, अमन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश और अनुरुद्ध बनाम उत्तर प्रदेश**]
बच्चों के अधिकार : संवैधानिक प्रावधान और वैधानिक और कानूनी ढांचे

चतुर्थ (ए) सामान्य

10. बच्चे निरंतर संघर्ष से घिरी दुनिया में प्रकृति के अटूट आशावाद के वादे को पकड़ते हैं। बच्चे मानव जाति की सबसे कीमती संपत्ति हैं, लेकिन मानव प्रजाति का सबसे कमजोर वर्ग भी हैं। बच्चों को हमेशा कानून में एक अलग वर्ग माना गया है।

चतुर्थ (बी) संविधान और बच्चे

11. संविधान निर्माताओं ने स्वीकार किया कि बच्चे राष्ट्र की सबसे कीमती संपत्ति हैं, और बच्चों की विशेष जरूरतों को समझा। संविधान में बच्चों के लिए एक अलग जगह बनाई गई थी। संविधान में बच्चों के लिए समर्पित विभिन्न प्रावधान हमारी संवैधानिक योजना में बच्चों के कल्याण को दिए गए सर्वोपरि स्थान को प्रमाणित करते हैं।

12. इस संबंध में भारत के संविधान के प्रासंगिक प्रावधान नीचे दिए गए हैं:

I. भारत के संविधान का अनुच्छेद 15 (3) राज्य सरकार को बच्चों के लिए विशेष प्रावधान करने में सक्षम बनाता है:

"15(3) इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को महिलाओं और बच्चों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से नहीं रोकेगी।

II. बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का उल्लेख राज्य नीति के गठन के लिए एक निर्देशक सिद्धांत के रूप में किया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 45 में इस प्रकार कहा गया है:

45. बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबंध: राज्य, इस संविधान के प्रारंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर, चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक सभी बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।

III. भारत के संविधान का अनुच्छेद 21-A 6-14 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा के अधिकारों को मौलिक अधिकार तक बढ़ाता है।

"21 (क) राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा इस रीति से प्रदान करेगा जो राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे।

IV. भारत के संविधान का अनुच्छेद 47:

47. पोषण के स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाना तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार करना राज्य का कर्तव्य: राज्य, अपने लोगों के पोषण के स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा उठाने तथा लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में से एक मानेगा और विशेष रूप से, राज्य मादक पेयों और औषधियों के औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं।

V. भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 (e) और अनुच्छेद 39 (f) बच्चों को शोषण के अभिशाप से बचाने और बच्चों को योग्य नागरिकों के रूप में विकसित करने के लिए अवसर और सुविधाएं पैदा करने के लिए राज्य की भूमिका पर विचार करते हैं।

"39 (ई) कि श्रमिकों, पुरुषों और महिलाओं के स्वास्थ्य और शक्ति, और बच्चों की निविदा उम्र का दुरुपयोग नहीं किया जाता है और नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण उनकी उम्र या ताकत के लिए अनुपयुक्त व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है;

39 (च) कि बच्चों को स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थिति में विकसित होने के अवसर और सुविधाएं दी जाती हैं और यह कि बचपन और युवाओं को शोषण और नैतिक और भौतिक परित्याग के खिलाफ संरक्षित किया जाता है।

चतुर्थ (सी)। बच्चे: शिक्षा और समग्र विकास

"यदि कोई राष्ट्र सभ्यता की स्थिति में अज्ञानी और स्वतंत्र होने की उम्मीद करता है, तो वह अपेक्षा करता है जो कभी नहीं था और न कभी होगा"

~ थॉमस जेफरसन

13. शिक्षा किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता और आर्थिक समृद्धि का इंजन है। शिक्षा ने मानव प्रजातियों के संरक्षण का आश्वासन दिया है, और मानव सभ्यता की उन्नति की गारंटी दी है।

14. शिक्षा केवल रोजगार सुरक्षित करने के लिए कक्षा में दी जाने वाली किताबी शिक्षा नहीं है। शिक्षा की अवधारणा मानव अस्तित्व के विभिन्न पहलुओं को अपनाने के लिए पर्याप्त व्यापक है और मानव जीवन के हर पहलू को छूती है। होमो सेपियन्स की अपने स्थान और अपने आसपास के ब्रह्मांड के संबंध को जानकर खुद को समझने और विकसित करने की क्षमता भी शिक्षा में शामिल है।

15. शिक्षा एक समग्र वातावरण पर विचार करती है जो उत्कृष्टता की तर्ज पर मानव संकायों के विकास के लिए अनुकूल है। स्वस्थ जीवन शैली की आदतों को विकसित करना, मजबूत नैतिक मूल्यों और चरित्र का विकास, और व्यावसायिक और शैक्षणिक ज्ञान को आत्मसात करना कानून द्वारा शासित किसी भी राष्ट्र की शिक्षा के दृष्टिकोण का हिस्सा है।

16. शिक्षा हमारी संवैधानिक दृष्टि को प्राप्त करने का प्राथमिक साधन है। सर्वपल्ली राधाकृष्णन का यह विचार कि "सरकार का उद्देश्य इतनी दक्षता नहीं है क्योंकि शिक्षा हर समय के लिए सच है" देश के शासन में एक मार्गदर्शक कारक है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के तहत शिक्षा के अधिकार को एक मौलिक अधिकार के रूप में शामिल किया गया था ताकि प्रस्तावना में संक्षेप में दर्शाए गए हमारे संवैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। विधायिका ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 को अधिनियमित करके शिक्षा के मौलिक अधिकार को साकार करने के लिए व्यापक ढांचा और विस्तृत तंत्र भी तैयार किया।

17. जेल के कैदियों के बच्चे जो जेलों में बाढ़ वाले के साथ रहते हैं, कारावास की स्थिति में रहते हैं। जेल समग्र विकास के लिए वातावरण प्रदान नहीं करती है और एक अच्छी तरह से गोल व्यक्तित्व के विकास में बाधा डालती है। बच्चे वास्तविक दुनिया से कट जाते हैं और अपने आयु वर्ग के साथ स्वतंत्र रूप से घुलने-मिलने में असमर्थ होते हैं। वे जेल में नकारात्मक प्रभावों के लिए भी अतिसंवेदनशील होते हैं। इस वर्ग के बच्चों की शिक्षा के लिए जेल का माहौल अनुकूल नहीं है। वास्तव में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 ए द्वारा

बच्चों को गारंटीकृत शिक्षा के अधिकार, और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 द्वारा उनमें निहित शिक्षा के अधिकार को जेलों की सीमित शर्तों द्वारा प्रभावी रूप से नकारा जा सकता है।

18. संवैधानिक योजना में शिक्षा का पवित्र स्थान और कैदियों के बच्चों को इसे प्रदान करने की प्रस्तुत आवश्यकता को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अविनाश मेहरोत्रा बनाम भारत संघ और अन्य में इस प्रकार विस्तृत किया गया था:

28. शिक्षा हमारे संविधान और संस्कृति में एक पवित्र स्थान रखती है.

30. अनुच्छेद 21-ए को शामिल किए जाने के बाद के वर्षों में, हमने स्पष्ट किया है कि शिक्षा का अधिकार व्यक्ति को एक अहस्तांतरणीय मानव अधिकार के रूप में जोड़ता है। हमने *आरडी उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य* में इस अधिकार के व्यापक दायरे का पता लगाया है। [(2007) 15 एस.सी.सी. 337 : ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1946] यह मानते हुए कि राज्य को सभी स्थानों पर सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान करनी चाहिए, यहां तक कि जेलों में भी, कैदियों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। हमने शिक्षा के अधिकार की अनुल्लंघनीयता की भी पुष्टि की है। (महत्व सन्निविष्ट)

32. शिक्षा व्यक्ति के जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि स्वास्थ्य और गरिमा, और नागरिकों के प्रति अपने सर्वोच्च कर्तव्य को पूरा करने के लिए राज्य को इसे व्यापक और पूरी तरह से प्रदान करना चाहिए।

33. अन्य मौलिक अधिकारों के विपरीत, शिक्षा का अधिकार न केवल राज्य पर, बल्कि प्रत्येक बच्चे के माता-पिता या अभिभावक पर और स्वयं बच्चे पर भी बोझ डालता है। अनुच्छेद 21-ए, जो इस प्रकार है, मुख्य रूप से राज्य पर एक दायित्व रखता है:

"21-ए। *शिक्षा का अधिकार*:- राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को इस रीति से निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा जो राज्य विधि द्वारा निर्धारित करे। (महत्व सन्निविष्ट)

चतुर्थ (डी)। अंतर्राष्ट्रीय उपकरण

19. बच्चों के जीवन में सुधार लाने के लिए राष्ट्रों के समूह की आम सहमति को बच्चों के अधिकारों से संबंधित कानून के अंतर्राष्ट्रीय उपकरणों में दर्शाया गया है।

20. किशोर न्याय कानून के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून की प्रयोज्यता को स्वीकार करते हुए, प्रताप सिंह बनाम झारखंड राज्य में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"63. किशोर न्याय से संबंधित कानून को किशोर न्याय की समस्या के समाधान के लिए एक कदम के रूप में माना जाना चाहिए, जो दुखद मानवीय हितों में से एक था जो राष्ट्रीय सीमाओं को पार करता है। उक्त अधिनियम को न केवल नियमों के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए, बल्कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा और किशोरों के संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियमों को भी पढ़ा जाना चाहिए।

21. राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में इस न्यायालय ने अंतर्राष्ट्रीय कानून के विकास और विभिन्न अंतरराष्ट्रीय उपकरणों में अंतर्राष्ट्रीय कानूनी मूल्यों के अभिसरण पर ध्यान दिया था:

"38. कानून के साथ संघर्ष में बच्चों की स्थिति ने विश्व समुदाय की चिंताओं को उलझा दिया। 1985 में बीजिंग नियमों और किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियमों को अपनाने से चिंताओं को अंतर्राष्ट्रीय समुदाय की चेतना में रखा गया था।

39. किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम एक ऐसा दस्तावेज है जो सभी राष्ट्रों के बीच अंतरराष्ट्रीय राय और मूल्यों के अभिसरण की आम सहमति को दर्शाता है। वास्तव में, किशोर न्याय के प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र मानक न्यूनतम नियम सार्वभौमिक मूल्यों का एक बयान है। भारत में किशोर न्याय अधिनियमों की उत्पत्ति उपर्युक्त अंतर्राष्ट्रीय मामलों और इस विषय पर संयुक्त राष्ट्र के अन्य अभिसमयों से हुई है। जैसा कि देखा जाएगा, अदालतों ने आसानी से अंतरराष्ट्रीय संधियों और सम्मेलनों को हमारे मामले कानून न्यायशास्त्र के कोष में शामिल कर लिया है।

22. एम.सी. मेहता बनाम तमिलनाडु राज्य में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का भी लाभप्रद रूप से संदर्भ दिया जा सकता है:

"17. विश्व समुदाय के प्रति हमारी प्रतिबद्धता के बारे में भी खुद को अवगत कराना उचित होगा। मौजूदा मामले के लिए यह ध्यान रखना पर्याप्त होगा कि भारत ने बाल अधिकारों पर कन्वेंशन को स्वीकार कर लिया है, जिसे 20-11-1989 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा संपन्न किया गया था। यह कन्वेंशन इस बात की पुष्टि करता है कि बच्चों के अधिकारों के लिए विशेष सुरक्षा की आवश्यकता होती है और इसका उद्देश्य न केवल इस तरह की सुरक्षा प्रदान करना है, बल्कि दुनिया भर में बच्चों की स्थिति में निरंतर सुधार सुनिश्चित करना है, साथ ही साथ शांति और सुरक्षा की स्थिति में उनके विकास और शिक्षा को भी सुनिश्चित करना है। इस प्रकार, कन्वेंशन न केवल बच्चे के नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करता है, बल्कि बच्चे के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और मानवीय अधिकारों की सुरक्षा भी प्रदान करता है।

V. जेल में बच्चे: अदृश्य परीक्षण और पिंजरे में बंद बचपन - एक अध्ययन

23. विभिन्न विशेषज्ञ निकायों ने जेलों में रहने वाले कैदियों के बच्चों की स्थिति की जांच की है। इस संबंध में एक प्रमुख अध्ययन टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुंबई द्वारा किया गया था। उक्त अध्ययन का

प्रासंगिक भाग यह बताता है कि कैसे जेल का वातावरण बच्चों के मानस में कहर बरपाता है, और उनके जीवन को प्रभावित करता है, यहां निकाला गया है:

पिंजरे में बंद बचपन: माताओं के साथ जेल के अंदर बच्चे

सिर्फ जीना ही काफी नहीं है... व्यक्ति के पास धूप, स्वतंत्रता और थोड़ा सा फूल होना चाहिए।

हंस क्रिश्चियन एंडरसन

वयस्क आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ संपर्क बच्चों और परिवारों के लिए हानिकारक हो सकता है। विभिन्न अपराधों को करने के लिए आरोपी या दोषी महिलाओं के बीच हिरासत में रहना छह साल या उससे कम उम्र के किसी भी बच्चे के लिए कभी भी सामान्य नहीं हो सकता है। जेल का माहौल बच्चों के समग्र विकास के लिए अनुकूल नहीं है। जेल में पैदा होने वाले कई बच्चे कभी भी सामान्य पारिवारिक जीवन का अनुभव नहीं करते हैं, कभी-कभी छह साल की अनुमत आयु तक। बच्चों को उनकी माताओं के साथ कैद करने से उनके मानस को कैद कर लिया जाता है। लंबे समय तक नकारात्मक और हिरासत के वातावरण में रहने के कारण, इन बच्चों के समाजीकरण पैटर्न गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं। पुरुष आकृतियों की एकमात्र छवि आधिकारिक पुलिस और जेल अधिकारियों की है। वे घर की अवधारणा से अनजान हैं, जैसा कि सामान्य बच्चे इसे समझते हैं। उनके मानस पर उनके पर्यावरण का प्रभाव इतना मजबूत है कि लड़कों को महिला लिंग की तरह प्रतिरूपण करते और बात करते हुए पाया जा सकता है, जो केवल महिला वार्ड में सीमित महिलाओं के बीच बड़े हुए हैं। सड़क पर आवारा जानवरों (माँ के साथ अदालत के रास्ते में देखे गए) जैसे असामान्य दृश्य उनके लिए भयावह हैं। बच्चों को अपनी माताओं के साथ बार-बार एक जेल से दूसरी जेल में स्थानांतरित करने के सामान्य उदाहरण हैं, जिससे वे उखड़ जाते हैं और परेशान हो जाते हैं। ऐसे बच्चे हिंसक और आक्रामक हो जाते हैं, या वैकल्पिक रूप से, जेल में वापस ले लिया गया व्यवहार दिखाते हैं। वे अपनी माताओं द्वारा शारीरिक पिटाई का भी शिकार हो जाते हैं जो कभी-कभी अपने प्रियजनों पर अपनी कुंठा निकालते हैं।

VI. वैधानिक ढांचा

24. वैधानिक ढांचे जो कमजोर बच्चों के अधिकारों को विनियमित और नियंत्रित करते हैं और इस मामले पर लागू होते हैं, उनमें किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2015-20, कानूनी सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987, बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009, यूपी जेल मैनुअल 2022 और मॉडल जेल मैनुअल, 2016 शामिल हैं।

VI (A) किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015

25. किशोर न्याय अधिनियम एक व्यापक अधिनियम है जो उन बच्चों की पहचान करने के लिए प्रदान करता है जो हाशिए पर रहने वाले वर्गों से संबंधित हैं या अन्यथा देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है। अधिनियमन बच्चों के अधिकारों को फलीभूत करने के लिए प्राधिकरण और तंत्र भी बनाता है।

26. जो माता-पिता जेल में हैं, वे अपने बच्चों की भलाई के लिए उपाय करने में असमर्थ हैं। बच्चों की उक्त श्रेणी जे.जे. अधिनियम की धारा 2(14)(v) के दायरे में है:

"धारा 2 (14) "देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे" का अर्थ है एक बच्चा-

(v) जिसके माता-पिता या अभिभावक हैं और ऐसे माता-पिता या अभिभावक को समिति या बोर्ड द्वारा बच्चे की सुरक्षा और कल्याण की देखभाल और सुरक्षा के लिए अयोग्य या अक्षम पाया जाता है; नहीं तो

धारा 2 (22) "समिति" का अर्थ है धारा 27 के तहत गठित बाल कल्याण समिति

धारा 2 (21) "बाल देखभाल संस्थान" का अर्थ है बाल गृह, खुला आश्रय, पर्यवेक्षण गृह, विशेष गृह, सुरक्षा का स्थान, विशेष दत्तक ग्रहण एजेंसी और बच्चों को देखभाल और सुरक्षा प्रदान करने के लिए इस अधिनियम के तहत मान्यता प्राप्त एक उपयुक्त सुविधा, जिन्हें ऐसी सेवाओं की आवश्यकता है;

27. किशोर न्याय अधिनियम की धारा 30 बाल कल्याण समिति के कार्यों और जिम्मेदारियों को निर्धारित करती है। इस प्रावधान का विधायी उद्देश्य बच्चों की उपरोक्त श्रेणी को सी.डब्ल्यू.सी. के कर्तव्यों के दायरे में लाना भी है:

"धारा 30- समिति के कार्यों और जिम्मेदारियों में निम्नलिखित शामिल होंगे-

- (i) अपने समक्ष पेश किए गए बच्चों का संज्ञान लेना और उन्हें प्राप्त करना;
- (ii) इस अधिनियम के अंतर्गत बच्चों की सुरक्षा और कल्याण से संबंधित और उन्हें प्रभावित करने वाले सभी मुद्दों की जांच करना;
- (iii) बाल कल्याण अधिकारियों या परिवीक्षा अधिकारियों या जिला बाल संरक्षण इकाई या गैर-सरकारी संगठनों को सामाजिक जांच करने और समिति के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निदेश देना;
- (iv) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों की देखरेख के लिए फिट व्यक्तियों को घोषित करने के लिए जांच करना;
- (v) पालक देखभाल में बच्चे को रखने का निर्देश देना;
- (vi) बाल व्यक्तिगत देखभाल योजना के आधार पर देखभाल और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों की देखभाल, संरक्षण, उचित पुनर्वास या बहाली सुनिश्चित करना और इस संबंध में माता-पिता या अभिभावकों या फिट व्यक्तियों या बाल गृहों या उपयुक्त सुविधा को आवश्यक निर्देश देना;
- (vii) बच्चे की आयु, लिंग, विकलांगता और आवश्यकताओं के आधार पर संस्थागत सहायता की आवश्यकता वाले प्रत्येक बच्चे को नियुक्त करने के लिए पंजीकृत संस्थान का चयन करना और संस्था की उपलब्ध क्षमता को ध्यान में रखते हुए;
- (viii) देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों के लिए आवासीय सुविधाओं के प्रति माह कम से कम दो निरीक्षण दौरे अवधारित करना और जिला बाल संरक्षण इकाई और राज्य सरकार को सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार के लिए कार्रवाई की सिफारिश करना;

(ix) माता-पिता द्वारा समर्पण विलेख के निष्पादन को प्रमाणित करना और यह सुनिश्चित करना कि उन्हें अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने के साथ-साथ परिवार को एक साथ रखने के लिए सभी प्रयास करने का समय दिया जाए;

(x) यह सुनिश्चित करना कि परित्यक्त या खोए हुए बच्चों को उनके परिवारों को वापस लाने के लिए सभी प्रयास यथानिर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए, जैसा कि निर्धारित किया जाए;

(xi) अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पण किए गए बच्चे को उचित जांच के बाद दत्तक ग्रहण के लिए कानूनी रूप से निशुल्क घोषित करना;

(xii) मामलों का स्वतः संज्ञान लेना और देखरेख और संरक्षण के जरूरतमंद बच्चों तक पहुंचना, जिन्हें समिति के समक्ष पेश नहीं किया जाता है, बशर्ते कि ऐसा निर्णय कम से कम तीन सदस्यों द्वारा लिया गया हो;

(xiii) यौन अपराधों से बालकों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (32 वर्ष 2012) के अंतर्गत विशेष किशोर पुलिस इकाई अथवा स्थानीय पुलिस द्वारा, जैसा भी मामला हो, यौन शोषण के शिकार बच्चों के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना, जिन्हें देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों के रूप में सूचित किया गया है, के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना;

(xiv) धारा 17 की उप-धारा (2) के तहत बोर्ड द्वारा निर्दिष्ट मामलों से निपटना;

(xv) जिला बाल संरक्षण इकाई या राज्य सरकार के सहयोग से बच्चों की देखरेख और संरक्षण में शामिल पुलिस, श्रम विभाग और अन्य एजेंसियों के साथ समन्वय करना;

(xvi) किसी बाल देखभाल संस्था में किसी बच्चे के साथ दुर्व्यवहार की शिकायत होने की स्थिति में, समिति जांच करेगी और पुलिस या जिला बाल संरक्षण इकाई या श्रम विभाग या चाइल्ड लाइन सेवाओं, जैसा भी मामला हो, को निदेश देगी;

(xvii) बच्चों के लिए उपयुक्त कानूनी सेवाओं तक पहुंचना;

(xviii) ऐसे अन्य कार्य और जिम्मेदारियां, जो निर्धारित की जा सकती हैं।

28. जे.जे. अधिनियम की धारा 31 सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष देखभाल की आवश्यकता वाले बच्चों के उत्पादन पर विचार करती है। जेलों में रहने वाले कैदियों के बच्चों को भी सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष पेश किया जा सकता है। इस प्रावधान के तहत जेल अधिकारी और पुलिस अधिकारी 'किसी भी लोक सेवक' के दायरे में आते हैं।

"31. समिति के समक्ष पेश करना:

(1) देखरेख और संरक्षण के अपेक्षित किसी भी बच्चे को निम्नलिखित में से किसी भी व्यक्ति द्वारा समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकेगा, अर्थात्: -

(i) कोई पुलिस अधिकारी या विशेष किशोर पुलिस इकाई या नामित बाल कल्याण पुलिस अधिकारी या जिला बाल संरक्षण इकाई का कोई अधिकारी या तत्समय प्रवृत्त किसी श्रम कानून के तहत नियुक्त निरीक्षक;

(ii) कोई लोक सेवक;

(iii) चाइल्डलाइन सेवाएं या कोई स्वैच्छिक या गैर-सरकारी संगठन या कोई एजेंसी, जो राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हो;

- (iv) बाल कल्याण अधिकारी या परिवीक्षा अधिकारी;
- (v) कोई सामाजिक कार्यकर्ता या जन-उत्साही नागरिक;
- (vi) स्वयं बच्चे द्वारा; नहीं तो
- (vii) नर्सिंग होम, अस्पताल या प्रसूति गृह की कोई नर्स, चिकित्सक या प्रबंधन: परन्तु बालक को यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर बिना किसी समय की हानि के लेकिन चौबीस घंटे की अवधि के भीतर समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

(2) राज्य सरकार, जांच की अवधि के दौरान, समिति को रिपोर्ट प्रस्तुत करने की रीति और बालक को बाल गृह या फिट सुविधा या योग्य व्यक्ति, जैसा भी मामला हो, भेजने और सौंपने के तरीके का उपबंध करने के लिए इस अधिनियम के अनुरूप नियम बना सकेगी।

29. सी.डब्ल्यू.सी. द्वारा पारित किए जाने वाले प्रकृति के आदेशों की गणना जे.जे. अधिनियम की धारा 37 में की गई है:

"37. देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे के संबंध में पारित आदेश।

(1) समिति इस जांच के माध्यम से संतुष्ट होने पर कि समिति के समक्ष बच्चा एक बच्चा है जिसे देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है, सामाजिक जांच रिपोर्ट 1 [***] पर विचार करने और बच्चे की इच्छाओं को ध्यान में रखते हुए यदि बच्चा एक दृष्टिकोण लेने के लिए पर्याप्त रूप से परिपक्व है, निम्नलिखित में से एक या अधिक आदेश पारित कर सकता है, अर्थात्:-

- (ए) घोषणा कि एक बच्चे को देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है;
- (ख) बाल कल्याण अधिकारी या नामित सामाजिक कार्यकर्ता के पर्यवेक्षण के साथ या उसके बिना माता-पिता या अभिभावक या परिवार को बच्चे की बहाली;
- (ग) ऐसे बच्चों के आवास के लिए संस्था की क्षमता को ध्यान में रखते हुए, या तो इस निष्कर्ष पर पहुंचने के बाद कि बच्चे के परिवार का पता नहीं लगाया जा सकता है या यदि उसका पता लगाया जा सकता है तो भी दत्तक ग्रहण के प्रयोजन के लिए बच्चे को बाल गृह या फिट सुविधा या विशेष दत्तक ग्रहण एजेंसी में रखना, परिवार में बच्चे की बहाली बच्चे के सर्वोत्तम हित में नहीं है;
- (घ) दीर्घकालिक या अस्थायी देखभाल के लिए उपयुक्त व्यक्ति के साथ बच्चे की नियुक्ति;
- (ई) धारा 44 के तहत पालक देखभाल आदेश;
- (च) धारा 45 के तहत प्रायोजन आदेश;
- (छ) बच्चे की देखभाल, सुरक्षा और पुनर्वास के संबंध में व्यक्तियों या संस्थानों या सुविधाओं को निदेश जिनमें बच्चे को रखा गया है, जिसमें प्रस्तुत आश्रय और सेवाओं जैसे चिकित्सा देखभाल, मनोरोग और मनोवैज्ञानिक सहायता से संबंधित निर्देश शामिल हैं, जिसमें आवश्यकता आधारित परामर्श, व्यावसायिक चिकित्सा या व्यवहार संशोधन चिकित्सा, कौशल प्रशिक्षण, कानूनी सहायता, शैक्षिक सेवाएं और अन्य विकासात्मक गतिविधियां शामिल

हैं, आवश्यकतानुसार, साथ ही जिला बाल संरक्षण इकाई या राज्य सरकार और अन्य एजेंसियों के साथ अनुवर्ती कार्रवाई और समन्वय;

(ज) धारा 38 के अधीन यह घोषणा करना कि बच्चा दत्तक ग्रहण के लिए कानूनी रूप से स्वतंत्र है।

(2) समिति निम्नलिखित आदेश भी पारित कर सकेगी-

(i) पालक परिचर्या के लिए उपयुक्त व्यक्तियों की घोषणा;

(ii) अधिनियम की धारा 46 के तहत देखभाल के बाद सहायता प्राप्त करना; नहीं तो

(iii) किसी अन्य कार्य से संबंधित कोई अन्य आदेश जैसा कि विहित किया जा सकता है"

30. सी.डब्ल्यू.सी. के कार्यों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन री: किशोरों की निजता का अधिकार में निम्नानुसार निर्धारित किया गया था:

"28.2 यदि कोई बच्चा किसी ऐसे व्यक्ति के साथ रह रहा है जिसने बच्चे को चोट, शोषण या दुर्व्यवहार किया है या बच्चे की सुरक्षा के लिए लागू किसी अन्य कानून का उल्लंघन किया है, तो उक्त बच्चा देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाला बच्चा बन जाता है। इस प्रकार, यदि कोई बच्चा जो पाक्सो अधिनियम के तहत किसी अपराध का शिकार है, आरोपी के साथ रह रहा है, तो बच्चा देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाला बच्चा बन जाता है। यहां तक कि एक बच्चा जिसके माता-पिता या अभिभावक हैं और यदि ऐसे माता-पिता या अभिभावक बच्चे की देखभाल करने के लिए अयोग्य पाए जाते हैं, तो ऐसे मामले में, बच्चा किशोर न्याय अधिनियम की धारा 2 की उप-धारा (14) के तहत परिभाषा के अंतर्गत आता है। इसलिए, सी.डब्ल्यू.सी. को देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले ऐसे बच्चों को बुनियादी जरूरतों और सुरक्षा प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग करना होगा।

29.1 धारा 30 के खंड (vi) के तहत, सी.डब्ल्यू.सी. का यह कर्तव्य है कि वह बच्चे की व्यक्तिगत देखभाल योजना के आधार पर देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों की देखभाल, सुरक्षा, उचित पुनर्वास या बहाली सुनिश्चित करे। सी.डब्ल्यू.सी. तब तक इंतजार नहीं कर सकती जब तक कि देखभाल और सुरक्षा की जरूरत वाले बच्चों को उसके सामने पेश नहीं किया जाता। धारा 30 के खंड (xii) के तहत, सी.डब्ल्यू.सी. को मामलों का स्वतः संज्ञान लेना चाहिए और देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चों तक पहुंचना चाहिए। यहां जो महत्वपूर्ण है वह धारा 30 का खंड (xiii) है, जो अनिवार्य करता है कि यौन शोषण के शिकार बच्चों के पुनर्वास के लिए कार्रवाई करना सी.डब्ल्यू.सी. का कर्तव्य है, जो देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता वाले बच्चे हैं।

छठा (बी) बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009

31. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 21ए के बाद अधिनियमित किया गया था, देश में सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने के संवैधानिक इरादे को पूरा करने के लिए कानूनी साधन है।

32. इस मामले से संबंधित शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के कुछ प्रावधानों पर अब चर्चा की जाएगी।

33. जो बच्चे जेल में अपने माता-पिता के साथ रहते हैं, वे भी अपनी विशेष और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण विभिन्न नुकसानों से पीड़ित होते हैं। उक्त बच्चे शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 2 (डी) की श्रेणी में आते हैं:

"2 (घ) "वंचित समूह से संबंधित बच्चा" का अर्थ है [विकलांग बच्चा या] अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या ऐसे अन्य समूह से संबंधित बच्चा जो सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, भौगोलिक, भाषाई, लिंग या ऐसे अन्य कारक के कारण नुकसान उठाता है, जैसा कि उपयुक्त सरकार द्वारा अधिसूचना द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है;

34. धारा 3 बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार प्रदान करती है:

धारा 3. बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार।

[(1) धारा 2 के खंड (घ) या खंड (ड) में निर्दिष्ट बालक सहित छह से चौदह वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक पड़ोस के स्कूल में निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार होगा।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए, कोई भी बच्चा किसी भी प्रकार की फीस या प्रभार या व्यय का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा जो उसे प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने और पूरा करने से रोक सके।

(3) धारा 2 के खंड (ई) के उपखंड (ए) में निर्दिष्ट विकलांगता वाला बच्चा, विकलांग व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 (1 वर्ष 1996) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, और धारा 2 के खंड (ई) के उपखंड (बी) और (सी) में निर्दिष्ट बच्चा, निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए निशक्त बच्चों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो निशक्त व्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995 के अध्याय V के उपबंधों के अंतर्गत निशक्त बच्चों को प्राप्त हैं:

बशर्ते कि खंड (एच) में निर्दिष्ट "बहु-विकलांगता" वाले बच्चे और ऑटिज्म, सेरेब्रल पाल्सी, मानसिक मंदता और बहु-विकलांगता वाले व्यक्तियों के कल्याण के लिए राष्ट्रीय न्यास अधिनियम, 1999 (44 वर्ष 1999) की धारा

2 के खंड (ओ) में निर्दिष्ट "गंभीर विकलांगता" वाले बच्चे को भी घर आधारित शिक्षा का विकल्प चुनने का अधिकार हो सकता है।

35. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 4 में उन बच्चों के लिए विशेष प्रावधान हैं जिन्हें प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश नहीं दिया गया है या जिन्होंने प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं की है:

"धारा 4. प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त नहीं करने वाले या पूरी नहीं किए गए बच्चों के लिए विशेष प्रावधान-

जहां छह वर्ष से अधिक आयु के बच्चे को किसी भी स्कूल में प्रवेश नहीं दिया गया है या यद्यपि वह भर्ती है, अपनी प्रारंभिक शिक्षा पूरी नहीं कर सकता है, तो उसे उसकी आयु के लिए उपयुक्त कक्षा में प्रवेश दिया जाएगा: बशर्ते कि जहां एक बच्चे को उसकी उम्र के लिए उपयुक्त कक्षा में सीधे प्रवेश दिया जाता है, तो, उसे दूसरों के बराबर होने के लिए, विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करने का अधिकार होगा, इस तरह से, और ऐसी समय-सीमा के भीतर, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है: परन्तु यह भी कि इस प्रकार प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश लेने वाला बच्चा चौदह वर्ष के बाद भी प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने तक निशुल्क शिक्षा का हकदार होगा।

36. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 13 कोई कैपिटेशन शुल्क नहीं देती है और प्रवेश के लिए स्क्रीनिंग प्रक्रिया का प्रावधान करती है:

"धारा 13: प्रवेश के लिए कोई कैपिटेशन शुल्क और स्क्रीनिंग प्रक्रिया नहीं।

(1) कोई भी स्कूल या व्यक्ति, किसी बच्चे को प्रवेश देते समय, कोई कैपिटेशन शुल्क नहीं लेगा और बच्चे या उसके माता-पिता या अभिभावक को किसी स्क्रीनिंग प्रक्रिया के अधीन नहीं करेगा।

(2) कोई स्कूल या व्यक्ति, यदि उपधारा (1) के प्रावधानों का उल्लंघन करता है, -

(ए) कैपिटेशन शुल्क प्राप्त करता है, जुर्माने से दंडनीय होगा जो लगाए गए कैपिटेशन शुल्क के दस गुना तक बढ़ सकता है;

(ख) किसी बच्चे को स्क्रीनिंग प्रक्रिया के अधीन करने पर, वह जुर्माने से दंडनीय होगा जो पहले उल्लंघन के लिए पच्चीस हजार रुपये और प्रत्येक बाद के उल्लंघन के लिए पचास हजार रुपये तक बढ़ाया जा सकता है।

37. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 14 में कहा गया है कि किसी भी बच्चे को आयु प्रमाण के अभाव में स्कूल में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा:

" धारा 14. प्रवेश के लिए उम्र का प्रमाण।

(1) प्रारंभिक शिक्षा में प्रवेश के प्रयोजनों के लिए, किसी बच्चे की आयु जन्म, मृत्यु और विवाह पंजीकरण अधिनियम, 1886 (6 वर्ष 1886) के उपबंधों के अनुसार जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र के आधार पर या ऐसे अन्य दस्तावेज के आधार पर, जो विहित की जाए, के आधार पर निर्धारित की जाएगी।

(2) किसी भी बच्चे को आयु प्रमाण के अभाव में स्कूल में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

38. शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 15 शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ के बाद भी बच्चे के प्रवेश की कल्पना करती है।

"धारा 15. प्रवेश से इनकार नहीं।

एक बच्चे को शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर स्कूल में प्रवेश दिया जाएगा जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है:

बशर्ते कि किसी भी बच्चे को प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा यदि विस्तारित अवधि के बाद ऐसा प्रवेश मांगा जाता है:

परन्तु यह भी कि विस्तारित अवधि के बाद भर्ती किया गया कोई भी बच्चा अपनी पढ़ाई उस रीति से पूरा करेगा जैसा कि समुचित सरकार द्वारा निर्धारित किया जाए।

39. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए के तहत गारंटीकृत संवैधानिक अधिकार और शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के आधार पर बच्चों को निहित शिक्षा का अधिकार उन बच्चों पर पूरी ताकत के साथ लागू होता है जो अपने कैदी माता-पिता के साथ जेल में रह रहे हैं। जेल कैदियों के उक्त बच्चे अपने अधिक सौभाग्य से परिचालित समकक्षों के रूप में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के पूरी तरह से हकदार हैं। राज्य सरकार के साथ-साथ स्थानीय प्राधिकारी भी उपर्युक्त बच्चों की शिक्षा के अधिकार को प्राप्त करने के लिए कानून से बंधे हैं।

40. राज्य को जेलों में बच्चों के लिए शिक्षा के उनके संवैधानिक और वैधानिक अधिकारों की प्राप्ति को सुविधाजनक बनाने के लिए आवश्यक संवैधानिक दायित्वों और अनिवार्य वैधानिक कार्यों का निर्वहन करना होगा। न्यायालयों को शिक्षा के अधिकार सहित बच्चों के अधिकारों को बनाए रखने के अपने पवित्र कर्तव्य का पालन करना होगा।

41. किंडरगार्टन और प्ले स्कूलों में गतिविधियाँ उन प्रारंभिक वर्षों में बच्चों के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। ऐसे प्ले स्कूलों और किंडरगार्टन में पेशेवर रूप से डिजाइन की गई शिक्षाशास्त्र और गतिविधियाँ बच्चों को बड़े पैमाने पर प्रभावित करती हैं। छोटे शिक्षार्थियों के लिए विशेषज्ञों द्वारा बनाई गई गतिविधि आधारित शिक्षा उनके शारीरिक विकास, मानसिक विकास और भावनात्मक स्थिरता में योगदान कर सकती है। इस प्रकृति की शिक्षा और गतिविधियाँ उस आयु वर्ग के बच्चों के लिए जीवन के अर्थ को बढ़ाती हैं। राज्य के अधिकारियों/स्थानीय

प्रशासन द्वारा बच्चों को उनकी पात्रता के अनुसार प्रीस्कूल/किंडरगार्टन/प्ले स्कूल/प्राथमिक स्कूलों में भी प्रवेश दिया जाएगा। स्कूल जेल परिसर के बाहर स्थित होंगे।

VI (C)। उत्तर प्रदेश जेल मैनुअल, 2022

42. यूपी जेल मैनुअल, 2022 में अपनी माताओं के साथ जेल में रहने वाले बच्चों के कल्याण को संरक्षित किया गया है। जेल मैनुअल उनके अधिकारों को सुनिश्चित करता है और उपरोक्त अधिकारों को बनाए रखने के लिए जेल अधिकारियों पर एक कर्तव्य डालता है:

"335. जेल में पैदा हुए बच्चे:

(क) जहां तक संभव हो और बशर्ते कि महिला कैदी के पास उपयुक्त विकल्प हो, अधीक्षक संबंधित न्यायालय को अवगत कराएगा और चिकित्सा विवरण के साथ तथ्य की रिपोर्ट भेजेगा, ताकि न्यायालय गर्भवती कैदी को जमानत पर रिहा करने की संभावना पर विचार कर सके।

(ख) जेल में जन्म, स्थानीय जन्म पंजीकरण कार्यालय में पंजीकृत किया जाएगा, लेकिन यह तथ्य कि बच्चे का जन्म जेल में हुआ है, प्रमाण पत्र में दर्ज नहीं किया जाएगा। केवल इलाके के पते का उल्लेख किया जाएगा।

(ग) जहां तक परिस्थितियां अनुमति देती हैं, जेल में जन्म लेने वाले बच्चों के नामकरण संस्कार (नामकरण संस्कार) के लिए सभी सुविधाएं बढ़ाई जाएंगी।

(घ) माता-पिता द्वारा वहन किए गए खर्च पर इस प्रकार पैदा हुए बच्चे के लिए धार्मिक संस्कार करने की अनुमति दी जा सकती है।

(ङ) जेल में रहने के दौरान एक बच्चे को विचाराधीन कैदी या दोषी के रूप में नहीं माना जाएगा।

336. बच्चों को अपनी माताओं के साथ रहने की अनुमति दी जानी चाहिए

विशेष परिस्थिति में, अधीक्षक जेल में मां को अपने बच्चों को अदालत के आदेश के बिना जेल में रखने की अनुमति देगा, जब तक कि वे छह वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेते।

337. ऐसे मामले जिनमें बच्चे को जेल में नहीं रखा जा सकता

(क) जब कोई बच्चा 6 वर्ष की आयु प्राप्त कर लेता है या एक महिला कैदी की मृत्यु हो जाती है और वह अपने पीछे एक बच्चा छोड़ जाती है, तो अधीक्षक संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा जो बच्चे की उचित

देखभाल की व्यवस्था करेगा। यदि संबंधित रिश्तेदार बच्चे का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो जिला मजिस्ट्रेट बच्चे को या तो एक अनुमोदित संस्थान या राज्य समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित घर में रखेगा।

(ख) समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित किसी संस्था या गृह में सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार मां से मिलने की अनुमति दी जाएगी। निदेशक, समाज कल्याण विभाग, यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बच्चों को अधीक्षक द्वारा निर्धारित तिथियों पर इस उद्देश्य के लिए जेल में लाया जाए।

339. बच्चों की देखभाल

(क) कारागार से जुड़ी एक क्रेच और एक नर्सरी होगी जहां महिला कैदियों के बच्चों की देखभाल की जाएगी। तीन साल से कम उम्र के बच्चों को क्रेच में जाने की अनुमति दी जाएगी और तीन से छह साल के बीच के बच्चों की देखभाल नर्सरी में की जाएगी। जेल अधिकारी अधिमानतः जेल परिसर में उक्त क्रेच और नर्सरी चलाएंगे।

(ख) जेल में रहने वाली महिला कैदियों के बच्चों को उचित शिक्षा और मनोरंजन के अवसर दिए जाएंगे। जब उनकी माताएं जेल में काम कर रही हों, तो बच्चों को एक महिला हेड वार्डर या महिला वार्डर के प्रभार में क्रेच या नर्सरी में रखा जाएगा। क्रेच या नर्सरी की सुविधा वार्डर और अन्य महिला जेल कर्मचारियों के बच्चों तक बढ़ाई जा सकती है।

(ग) कैदियों के बच्चों को मिलने का अधिकार होगा।

(घ) बच्चों के शारीरिक विकास की निगरानी के लिए चिकित्सा अधिकारी द्वारा नियमित रूप से उनकी जांच की जाएगी और समय पर टीकाकरण भी किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे के टीकाकरण चार्ट को अभिलेखों में रखा जाएगा। यदि आवश्यक हो तो अतिरिक्त कपड़े, आहार और चिकित्सा उपचार प्रदान किया जाएगा।

(ङ) किसी महिला कैदी के बीमार पड़ने की स्थिति में उसके बच्चों की देखभाल के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की जाएगी।

(च) 4 से 6 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को मां की सहमति प्राप्त करने के बाद जेल के बाहर किसी शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश दिया जाएगा और उचित बजट शीर्ष पर प्रभारित सरकारी व्यय पर उचित व्यवस्था और हस्तांतरण किया जाएगा।

43. यूपी जेल मैनुअल, 2022 के नियम 339 (एफ) को बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 और अनुच्छेद 21-ए के अनुरूप पढ़ा जाना चाहिए। यहां तक कि माता-पिता भी जेल में रह रहे अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित नहीं कर सकते। उक्त बच्चों को स्कूल में प्रवेश देने के लिए माता-पिता की सहमति से इनकार करना संविधान के अनुच्छेद 21-ए और आरटीई अधिनियम का उल्लंघन होगा। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21-ए और आरटीई अधिनियम के अनुच्छेद 21-ए और इस फैसले में दिए गए निर्देशों के आलोक में जेल में रहने वाले प्रत्येक बच्चे को अनिवार्य रूप से स्कूल में प्रवेश दिया जाएगा। बच्चे के माता-पिता को सूचित किया जाएगा कि अनुच्छेद 21-ए और आरटीई अधिनियम द्वारा निहित शिक्षा का अधिकार और इस फैसले में दिए गए निर्देश अनुल्लंघनीय हैं।

छठा (डी)। मॉडल जेल मैनुअल, 2016

44. मॉडल जेल मैनुअल, 2016 में जेल जीवन की कठिन परिस्थितियों में भी बच्चों की सुरक्षा और समग्र विकास के लिए विभिन्न प्रावधान शामिल हैं:

26.36 - समाज कल्याण विभाग के एक घर में सुरक्षात्मक हिरासत में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार अपनी माताओं से मिलने की अनुमति दी जाएगी। समाज कल्याण विभाग के निदेशक यह सुनिश्चित करेंगे कि ऐसे बच्चों को कारागार अधीक्षक द्वारा इस उद्देश्य के लिए निर्धारित तिथियों पर जेल लाया जाए।

उच्चतम न्यायालय द्वारा महिला कैदियों के बच्चों के लिए जारी दिशा-निर्देश (आरडी थॉमस) उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1946)

> एक जेल में महिला कैदियों के साथ-साथ उनके बच्चों के लिए प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल के लिए पर्याप्त सुविधाएं होनी चाहिए।

> महिला कैदियों की स्त्री रोग संबंधी जांच जिला शासकीय अस्पताल में की जाएगी। चिकित्सा सलाह के अनुसार कैदी को प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर उचित देखभाल प्रदान की जाएगी

> जहां तक संभव हो और बशर्ते उसके पास उपयुक्त विकल्प हो, अस्थायी रिहाई/पैरोल (या नाबालिग और आकस्मिक अपराधी के मामले में निलंबित सजा) की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि गर्भवती कैदी जेल के बाहर उसकी सुपुर्दगी कर सके। केवल उच्च सुरक्षा जोखिम या समकक्ष गंभीर विवरण के मामलों का गठन करने वाले असाधारण मामलों को इस सुविधा से वंचित किया जा सकता है,

> जेलों में गर्भवती महिलाओं को जेल की सुविधा के बाहर (कुछ चरम मामलों को छोड़कर) जन्म देने में सक्षम होना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि नवजात शिशु की उचित देखभाल की जाए।

> यह तथ्य कि बच्चे का जन्म जेल में हुआ है, जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र में दर्ज नहीं किया जाएगा। केवल इलाके के पते का उल्लेख किया जाएगा

> जेलों के भीतर, बच्चों को भोजन, आश्रय, चिकित्सा सहायता, आवश्यकता पड़ने पर शिक्षा और मनोरंजक स्थान तक पहुंच प्राप्त करने में सक्षम होना चाहिए।

> बच्चों के शारीरिक विकास की निगरानी के लिए महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा नियमित रूप से बच्चों की जांच की जाएगी और समय पर टीकाकरण भी किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे के बारे में टीकाकरण चार्ट अभिलेखों में रखा जाएगा। चिकित्सा अधिकारी की सिफारिश पर अतिरिक्त कपड़े, आहार आदि भी प्रदान किए जा सकते हैं।

> महिलाएं अपने बच्चों को अपने साथ तब तक रख सकती हैं जब तक कि बच्चे छह साल की उम्र तक न पहुंच जाएं। फिर उन्हें समाज कल्याण विभाग द्वारा बनाए गए कल्याणकारी संस्थानों को सौंप दिया जाना चाहिए, अधिमानतः उसी शहर या कस्बे के भीतर।

> बच्चा ऐसी संस्था में तब तक रह सकता है जब तक कि मां को रिहा नहीं कर दिया जाता या बच्चा आजीविका कमाने में सक्षम नहीं हो जाता।

> समाज कल्याण विभाग के एक घर में सुरक्षात्मक हिरासत में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार अपनी मां से मिलने की अनुमति दी जाएगी। निदेशक, समाज कल्याण विभाग, यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बच्चों को इस उद्देश्य के लिए कारागार अधीक्षक द्वारा निर्धारित तिथि पर जेल में लाया जाए।

> राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण समय-समय पर जेलों का निरीक्षण करने के लिए आवश्यक उपाय करेंगे ताकि यह निगरानी की जा सके कि बच्चों और माताओं के संबंध में निर्देशों का अक्षरशः अनुपालन किया जा रहा है।

महिला कैदियों के बच्चों का कल्याण

26.37 कारागार प्रशासन को जेलों में बंद कैदियों के बच्चों का समग्र विकास सुनिश्चित करना चाहिए। जहां तक संभव हो, जेल प्रशासन बच्चों की परवरिश के लिए एक उपयुक्त वातावरण बनाने का प्रयास करेगा जो जेल के बाहर के बच्चे के जितना संभव हो उतना करीब हो। बोर्ड ऑफ विजिटर्स नियमित अंतराल पर इन सुविधाओं का निरीक्षण करेगा।

45. मॉडल जेल मैनुअल, 2016 के अन्य प्रावधान बच्चों की शिक्षा और आहार से संबंधित हैं:

पढ़ाई

"26.38 जेल में रहने वाली महिला कैदियों के बच्चों को उचित शिक्षा और मनोरंजन के अवसर दिए जाएंगे। महिलाओं के लिए एक जेल से जुड़ी एक अच्छी तरह से सुसज्जित क्रेच और एक नर्सरी स्कूल होगा जहां महिला कैदियों के बच्चों की देखभाल की जाएगी, जबकि माताओं जेल में काम करती हैं। तीन वर्ष से कम आयु के बच्चों को शिशु गृह में प्रवेश की अनुमति दी जाएगी और नर्सरी स्कूल में उनकी देखभाल की जाएगी। इन सुविधाओं को वार्डों और अन्य महिला जेल कर्मचारियों के बच्चों के लिए भी बढ़ाया जा सकता है।

26.39 क्रेच और नर्सरी स्कूल जेल प्रशासन द्वारा चलाया जाएगा, अधिमानतः जेल के बाहर गैर सरकारी संगठनों या राज्य कल्याण सेवाओं की सहायता से। यदि जेल प्रशासन क्रेच चलाना मुश्किल समझता है, तो

बच्चों को उचित सुरक्षा के तहत निजी तौर पर संचालित क्रेच में भेजने की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रक्रिया में शामिल परिवहन शुल्क और क्रेच शुल्क जेल प्रशासन द्वारा वहन किया जाएगा।

26.40 जेल में बच्चों को स्थानीय जलवायु आवश्यकताओं के अनुरूप पर्याप्त कपड़े प्रदान किए जाएंगे। इसके लिए राज्य/संघ राज्य क्षेत्र की सरकारें उचित पैमाने निर्धारित करेंगी। आवश्यकतानुसार डायपर और अन्य वस्तुएं उन महिला कैदियों को प्रदान की जानी चाहिए जो अपने शिशु बच्चों की देखभाल कर रही हैं।

26.41 नियमित आवश्यकता के अलावा, बच्चों के साथ महिला कैदियों को 150 ग्राम साबुन/डिटर्जेंट के दो केक प्रदान किए जाएंगे।

आहार/भोजन:

26.42 बच्चों के लिए आहार के पैमाने का निर्धारण चिकित्सा मानदंडों और जलवायु परिस्थितियों के अनुसार बढ़ते बच्चों की कैलोरी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा। प्रत्येक कैदी को अपने बच्चे को खिलाने के लिए उपयुक्त आकार और सामग्री के अलग-अलग बर्तन भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

26.43 यदि बच्चों के साथ एक महिला कैदी बीमार पड़ जाती है, तो जेल कर्मचारियों द्वारा उसकी देखभाल में आने वाले किसी भी बच्चे की देखभाल के लिए वैकल्पिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

स्वास्थ्य देखभाल

26.44 महिला कैदियों के बच्चों को पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान की जाएंगी (सामुदायिक स्वास्थ्य सेवाओं के सहयोग से), बच्चों की नियमित रूप से एक महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा जांच की जाएगी ताकि उनके शारीरिक विकास की निगरानी की जा सके, जिन्हें उचित समय पर पोलियो और छोटे पीईएस सहित विभिन्न रोगों के लिए भी टीका लगाया जाएगा। चिकित्सा अधिकारी की लिखित सिफारिशों पर ऐसे बच्चों को अतिरिक्त कपड़े और आहार भी प्रदान किए जा सकते हैं।

VI (ई)। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987

46. विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 नागरिकों के विभिन्न पात्र वर्गों को कानूनी सेवाओं और कानूनी सहायता का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रस्तुत विवाद के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक प्रावधान यहां निकाले गए हैं:

2(ग) कानूनी सेवा" में किसी भी मामले के संचालन में किसी भी सेवा का प्रतिपादन या किसी भी अदालत या अन्य प्राधिकरण या न्यायाधिकरण के समक्ष अन्य कानूनी कार्यवाही और किसी भी कानूनी मामले पर सलाह देना शामिल है;

12-कानूनी सेवाएं देने के लिए मानदंड:-

(ग) एक महिला या एक बच्चा;

13. कानूनी सेवाओं का अधिकार।

(1) जो व्यक्ति धारा 12 में विनिर्दिष्ट सभी या किन्हीं मानदंडों को पूरा करते हैं, वे विधिक सेवाएं प्राप्त करने के हकदार होंगे बशर्ते कि संबंधित प्राधिकारी इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसे व्यक्ति के पास अभियोजन या बचाव करने के लिए प्रथम दृष्टया मामला है।

(2) किसी व्यक्ति द्वारा अपनी आय के संबंध में किए गए शपथ-पत्र को इस अधिनियम के अधीन विधिक सेवाओं की पात्रता के लिए पात्र बनाने के लिए पर्याप्त माना जा सकेगा, जब तक कि संबंधित प्राधिकारी के पास ऐसे शपथ-पत्र पर अविश्वास करने का कारण न हो।

47. सचिव, संबंधित जिलों के जिला विधिक सेवा प्राधिकरण (डी.एल.एस.ए.) को उक्त श्रेणी के बच्चों के माता-पिता को कानूनी सलाह या परामर्श के माध्यम से आवश्यक कानूनी सहायता प्रदान करनी होगी ताकि उन्हें बच्चों के अधिकारों और अधिकारों से अवगत कराया जा सके। संबंधित जिलों के डी.एल.एस.ए. के सचिव भी वैधानिक अधिकारियों को उक्त बच्चों के अधिकारों को साकार करने के लिए उनके दायित्वों के बारे में सचेत करेंगे, जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है।

VI (एफ)। संवैधानिक कानून प्रवचन : निर्णयज विधि

48. बच्चों के अधिकारों को शीला बरसे बनाम चिल्ड्रन एंड सोसाइटी में संवैधानिक कानून प्रवचन में शामिल किया गया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"5. बच्चे भविष्य के युग के नागरिक हैं। बच्चों की उचित परवरिश और उन्हें अच्छे नागरिक बनने के लिए उचित प्रशिक्षण देना देश के भविष्य पर निर्भर करता है। हाल के वर्षों में, इस स्थिति को अच्छी तरह से महसूस किया गया है। 1959 में, बच्चे के सभी अधिकारों की घोषणा को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा और नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय वाचा, 1966 के अनुच्छेद 24 में अपनाया गया था। बच्चे के महत्व को उचित रूप से पहचाना गया है। घोषणाओं का अनुसमर्थन करने के बाद इन अंतर्राष्ट्रीय चार्टरों के एक पक्ष के रूप में भारत सरकार के साथ-साथ राज्य तंत्र का भी दायित्व है कि वह इसे उचित तरीके से कार्यान्वित करे।

49. इसी तरह, सर्वोच्च न्यायालय ने लक्ष्मीकांत पांडे बनाम भारत संघ में संवैधानिक प्रावधानों की पृष्ठभूमि में बच्चों के अधिकारों की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च मूल्य की राष्ट्रीय संपत्ति के रूप में बच्चों के महत्व को रेखांकित किया, और राज्य द्वारा बच्चों को दुर्यवहार से बचाने और सम्मान के साथ विकास के लिए वातावरण प्रदान करने के लिए परिस्थितियां बनाने की आवश्यकता को रेखांकित किया:

"6. यह स्पष्ट है कि एक सभ्य समाज में बाल कल्याण के महत्व पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि पूरे समुदाय का कल्याण, इसकी वृद्धि और विकास, उसके बच्चों के स्वास्थ्य और कल्याण पर निर्भर करता है। बच्चे एक "सर्वोच्च महत्वपूर्ण राष्ट्रीय संपत्ति" हैं और राष्ट्र की भविष्य की भलाई इस बात पर निर्भर करती है कि उसके बच्चे कैसे बढ़ते और विकसित होते हैं। महान कवि मिल्टन ने इसे बोधगम्य रूप से रखा जब उन्होंने कहा: "बच्चा आदमी को सुबह के रूप में दिखाता है" और समाज कल्याण पर अध्ययन दल ने उसी प्रभाव के लिए बहुत कुछ कहा जब यह देखा गया कि "राष्ट्र का शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य काफी हद तक उस तरीके से निर्धारित होता है जिस तरह से इसे प्रारंभिक अवस्था में आकार दिया जाता है।" बच्चा एक आत्मा है जिसके पास एक प्राणी, एक प्रकृति और अपनी खुद की क्षमता है, जिसे उन्हें खोजने में मदद की जानी चाहिए, उनकी परिपक्वता में विकसित होने के लिए, शारीरिक और महत्वपूर्ण ऊर्जा की परिपूर्णता और इसके भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक अस्तित्व की अत्यधिक सांस, गहराई और ऊंचाई; अन्यथा राष्ट्र का स्वस्थ विकास नहीं हो सकता है। अब जाहिर है कि बच्चों को उनकी कम उम्र और काया, मानसिक अपरिपक्वता और खुद की देखभाल करने में असमर्थता के कारण विशेष सुरक्षा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि दुनिया के हर हिस्से में यह अहसास बढ़ रहा है कि बच्चों को प्यार और स्नेह के माहौल में और माता-पिता की कोमल देखभाल और ध्यान में लाया जाना चाहिए ताकि वे पूर्ण भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्थिरता और परिपक्वता प्राप्त कर सकें और आत्मविश्वास और आत्म-सम्मान और जीवन के प्रति संतुलित दृष्टिकोण प्राप्त कर सकें और अपनी भूमिका की पूरी मूल्यांकन और बोध के साथ जीवन के बारे में एक संतुलित दृष्टिकोण प्राप्त कर सकें राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में खेलें, जिसके बिना राष्ट्र का विकास नहीं हो सकता है और वास्तविक समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है क्योंकि तब समाज का एक बड़ा हिस्सा विकास प्रक्रिया से बाहर रह जाएगा। भारत में यह चेतना संविधान में अधिनियमित प्रावधानों में परिलक्षित होती है। अनुच्छेद 15 का खंड (3) राज्य को अन्य बातों के साथ-साथ बच्चों के लिए विशेष उपबंध करने में सक्षम बनाता है और अनुच्छेद 24 में यह प्रावधान है कि चौदह वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य खतरनाक रोजगार में नहीं लगाया जाएगा। अनुच्छेद 39 के खंड (ई) और (च) में प्रावधान है कि राज्य अपनी नीति को अन्य बातों के साथ-साथ यह सुनिश्चित करने की दिशा में निर्देशित करेगा कि बच्चों की कम उम्र का दुरुपयोग न हो, कि नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण उनकी आयु और शक्ति के अनुकूल व्यवसायों में प्रवेश करने के लिए मजबूर न किया जाए और बच्चों को स्वस्थ तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थितियों में विकसित होने की सुविधा दी जाए और यह कि बचपन और युवाओं को शोषण और शोषण के खिलाफ संरक्षित किया जाए नैतिक और भौतिक परित्याग। ये संवैधानिक प्रावधान देश में बच्चों के हितों और कल्याण की रक्षा और सुरक्षा के लिए संविधान निर्माताओं की बड़ी चिंता को दर्शाते हैं। भारत सरकार ने भी इन संवैधानिक उपबंधों के अनुसरण में बच्चों के कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय नीति तैयार की है। यह नीति एक लक्ष्य-उन्मुख प्रस्तावना परिचय के साथ शुरू होती है।

(महत्व सन्निविष्ट)

उन्होंने कहा, 'देश के बच्चे एक अत्यंत महत्वपूर्ण संपत्ति हैं। उनका पालन-पोषण और आग्रह हमारी जिम्मेदारी है। बाल कार्यक्रम को मानव संसाधनों के विकास के लिए हमारी राष्ट्रीय योजनाओं में एक प्रमुख भूमिका मिलनी

चाहिए, ताकि हमारे बच्चे बड़े होकर मजबूत नागरिक, शारीरिक रूप से फिट, मानसिक रूप से सतर्क और नैतिक रूप से स्वस्थ बन सकें, जो समाज के लिए आवश्यक कौशल और प्रेरणाओं से संपन्न हों। विकास की अवधि के दौरान सभी बच्चों के लिए विकास के समान अवसर हमारा उद्देश्य होना चाहिए, क्योंकि यह असमानता को कम करने और सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के हमारे बड़े उद्देश्य को पूरा करेगा।

राष्ट्रीय नीति में उन उपायों को निर्धारित किया गया है जिन्हें भारत सरकार प्रस्तावना में निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अपनाने का प्रस्ताव करती है और उनमें उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से बच्चों की रक्षा करने और पारिवारिक संबंधों को मजबूत करने के लिए तैयार किए गए उपाय शामिल हैं ताकि सामान्य पारिवारिक पड़ोस और सामुदायिक वातावरण में बच्चों के विकास की पूरी संभावनाओं का उपयोग किया जा सके। राष्ट्रीय नीति में कार्यक्रम निर्माण को भी प्राथमिकता दी गई है और इसमें अनाथ और निराश्रित बच्चों के रख-रखाव और प्रशिक्षण को काफी उच्च दायर की दी गई है। राष्ट्रीय बाल बोर्ड के गठन के लिए राष्ट्रीय नीति में भी प्रावधान किया गया है और इस प्रावधान के अनुसरण में, भारत सरकार ने राष्ट्रीय बाल बोर्ड का गठन किया है जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगे। राष्ट्रीय बाल बोर्ड का यह कार्य है कि वह बच्चों की जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रयास करने वाली सेवाओं की बहुलता की योजना और समीक्षा और उचित समन्वय पर ध्यान केंद्रित करे और विभिन्न स्तरों पर सभी आवश्यक सेवाओं की निरंतर योजना, समीक्षा और समन्वय सुनिश्चित करे। राष्ट्रीय नीति में बच्चों के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन और सामाजिक कल्याण सेवाओं के क्षेत्र में स्वैच्छिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका पर भी जोर दिया गया है और यह घोषणा की गई है कि ऐसे स्वैच्छिक संगठनों को प्रोत्साहित और सुदृढ़ करना राज्य का प्रयास होगा।

7. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बच्चों के कल्याण के लिए समान रूप से बड़ी चिंता रही है, जिसकी परिणति 20 नवंबर, 1959 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अपनाई गई बाल अधिकारों की घोषणा में हुई है। अपनी प्रस्तावना में घोषणा में कहा गया है कि "बच्चे को, उसकी शारीरिक और मानसिक अपरिपक्वता के कारण, जन्म से पहले और बाद में उचित कानूनी सुरक्षा सहित विशेष सुरक्षा उपायों और देखभाल की आवश्यकता होती है", और यह कि "मानव जाति बच्चे के लिए सबसे अच्छा देना चाहती है" और कई सिद्धांत तैयार करने के लिए आगे बढ़ती है जिनमें से निम्नलिखित हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए महत्वपूर्ण हैं:

"सिद्धांत 2.- बच्चे को विशेष संरक्षण प्राप्त होगा और उसे कानून द्वारा और अन्य तरीकों से अवसर और सुविधाएं प्रदान की जाएंगी, ताकि वह शारीरिक, मानसिक, नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ और सामान्य तरीके से और स्वतंत्रता और गरिमा की स्थितियों में विकसित हो सके। इस उद्देश्य के लिए कानूनों के अधिनियमन में बच्चे के सर्वोत्तम हितों को सर्वोपरि माना जाएगा।

सिद्धांत 6.- बच्चे को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण और सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए प्यार और समझ की आवश्यकता होती है। वह, जहां भी संभव हो, अपने माता-पिता की देखभाल और जिम्मेदारी के तहत, और किसी भी मामले में स्नेह और नैतिक और भौतिक सुरक्षा के माहौल में बड़ा होगा; कोमल उम्र का बच्चा, असाधारण

परिस्थितियों को छोड़कर, अपनी मां से अलग नहीं किया जाएगा। समाज और सार्वजनिक अधिकारियों का कर्तव्य होगा कि वे बिना परिवार के बच्चों और समर्थन के पर्याप्त साधनों के बिना उन बच्चों की विशेष देखभाल करें। बड़े परिवारों के बच्चों के भरण-पोषण के लिए राज्य और अन्य सहायता का भुगतान वांछनीय है।

सिद्धांत 9.— बच्चे को सभी प्रकार की उपेक्षा, क्रूरता और शोषण से बचाया जाएगा। वह किसी भी रूप में यातायात का विषय नहीं होगा।

सिद्धांत 10.— बच्चे को उन प्रथाओं से संरक्षित किया जाएगा जो जातीय, धार्मिक और किसी भी अन्य प्रकार के भेदभाव को बढ़ावा दे सकती हैं। उनका पालन-पोषण समझ, सहिष्णुता, लोगों के बीच मित्रता, शांति और सार्वभौमिक भाईचारे की भावना से और पूरी चेतना में किया जाएगा कि उनकी ऊर्जा और प्रतिभा उनके साथी लोगों की सेवा के लिए समर्पित होनी चाहिए।

50. आर. डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने कैदी माता-पिता के साथ रहने वाले बच्चों की दुर्दशा पर विचार करते हुए निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"45. ऊपर उल्लिखित विभिन्न रिपोर्टों, विभिन्न राज्य सरकारों, केंद्र शासित प्रदेशों, भारत संघ के हलफनामों और प्रस्तुतियों के आलोक में, हम निम्नलिखित दिशानिर्देश जारी करते हैं:

1. एक बच्चे को उसकी मां के साथ जेल में रहने के दौरान विचाराधीन कैदी/दोषी के रूप में नहीं माना जाएगा। ऐसा बच्चा अधिकार के रूप में भोजन, आश्रय, चिकित्सा देखभाल, कपड़े, शिक्षा और मनोरंजक सुविधाओं का हकदार है।

3. जेल में प्रसव:

(क) जहां तक संभव हो और बशर्ते उसके पास उपयुक्त विकल्प हो, किसी गर्भवती कैदी को जेल के बाहर प्रसव कराने में सक्षम बनाने के लिए अस्थायी रिहाई/पैरोल (या नाबालिग और नैमित्तिक अपराधी के मामले में निलंबित सजा) की व्यवस्था की जानी चाहिए। केवल उच्च सुरक्षा जोखिम या समकक्ष गंभीर विवरण के मामलों का गठन करने वाले असाधारण मामलों को ही इस सुविधा से वंचित किया जा सकता है।

(बी) जेल में जन्म, जब होते हैं, स्थानीय जन्म पंजीकरण कार्यालय में पंजीकृत किए जाएंगे। लेकिन यह तथ्य कि बच्चे का जन्म जेल में हुआ है, जारी किए गए जन्म प्रमाण पत्र में दर्ज नहीं किया जाएगा। केवल इलाके के पते का उल्लेख किया जाएगा।

(ग) जहां तक परिस्थितियां अनुमति देती हैं, जेल में पैदा हुए बच्चों के नामकरण संस्कार की सभी सुविधाओं का प्रदर्श किया जाएगा।

4. महिला कैदी और उनके बच्चे:

(क) महिला कैदियों को अपने बच्चों को छह वर्ष की आयु प्राप्त करने तक अपने साथ जेल में रखने की अनुमति होगी।

(ख) किसी भी महिला कैदी को छह वर्ष की आयु पूरी कर चुके बच्चे को रखने की अनुमति नहीं दी जाएगी। छह वर्ष की आयु तक पहुंचने पर, बच्चे को महिला कैदी की इच्छा के अनुसार एक उपयुक्त सरोगेट को सौंप दिया जाएगा या समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित एक उपयुक्त संस्थान में भेजा जाएगा। जहां तक संभव हो, बच्चे को उस शहर या शहर के बाहर किसी संस्थान में स्थानांतरित नहीं किया जाएगा जहां जेल स्थित है ताकि शारीरिक दूरी के कारण मां और बच्चे दोनों पर अनुचित कठिनाइयों को कम किया जा सके।

(ग) ऐसे बच्चों को तब तक सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखा जाएगा जब तक कि उनकी मां को रिहा नहीं कर दिया जाता है या बच्चा अपनी आजीविका कमाने के लिए ऐसी उम्र प्राप्त नहीं कर लेता है।

(घ) समाज कल्याण विभाग के गृह में सुरक्षात्मक अभिरक्षा में रखे गए बच्चों को सप्ताह में कम से कम एक बार अपनी मां से मिलने की अनुमति दी जाएगी। निदेशक, समाज कल्याण विभाग, यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसे बच्चों को इस उद्देश्य के लिए कारागार अधीक्षक द्वारा निर्धारित तिथि पर जेल में लाया जाए।

(ङ) जब किसी महिला कैदी की मृत्यु हो जाती है और वह अपने पीछे एक बच्चा छोड़ जाती है, तो अधीक्षक संबंधित जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा और वह बच्चे की उचित देखभाल की व्यवस्था करेगा। यदि संबंधित रिश्तेदार बच्चे का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं हैं, तो जिला मजिस्ट्रेट या तो बच्चे को राज्य समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित एक अनुमोदित संस्था/घर में रखेगा या बच्चे को देखभाल और रखरखाव के लिए एक जिम्मेदार व्यक्ति को सौंप देगा।

5. भोजन, कपड़े, चिकित्सा देखभाल और आश्रय:

(क) जेल में बंद बच्चों को स्थानीय जलवायु आवश्यकता के अनुरूप पर्याप्त कपड़े उपलब्ध कराए जाएंगे जिसके लिए राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकार पैमाना निर्धारित करेगी।

(ख) राज्य/संघ राज्य क्षेत्र सरकारें चिकित्सा मानदंडों के अनुसार बढ़ते बच्चों की कैलोरी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बच्चों के लिए आहार पैमाने निर्धारित करेंगी।

(ग) सभी जेलों में नियमित आधार पर रहने वाले बच्चों की पोषण संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामग्री के साथ अलग-अलग भोजन उपलब्ध कराने के लिए एक स्थायी व्यवस्था विकसित किए जाने की आवश्यकता है।

(घ) प्रत्येक मां कैदी को अपने बच्चे को खिलाने के लिए उपयोग करने के लिए उपयुक्त आकार और सामग्री के अलग-अलग बर्तन भी उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

(ङ) बच्चों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इस पानी की समय-समय पर जांच की जानी चाहिए।

(च) बच्चों के शारीरिक विकास की निगरानी करने के लिए महिला चिकित्सा अधिकारी द्वारा बच्चों की नियमित रूप से जांच की जाएगी और उन्हें समय पर टीकाकरण भी किया जाएगा। प्रत्येक बच्चे के बारे में टीकाकरण चार्ट अभिलेखों में रखा जाएगा। चिकित्सा अधिकारी की सिफारिश पर अतिरिक्त कपड़े, आहार आदि भी प्रदान किए जा सकते हैं।

(छ) किसी महिला कैदी के बीमार पड़ने की स्थिति में, उसकी देखरेख में आने वाले किसी भी बच्चे की देखभाल के लिए जेल कर्मचारियों द्वारा वैकल्पिक व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ज) मां और बच्चे को प्रदान की जाने वाली सोने की सुविधाएं पर्याप्त, स्वच्छ और स्वच्छ होनी चाहिए।

(i) कैदियों के बच्चों को मिलने का अधिकार होगा।

(ज) कारागार अधीक्षक को विशेष मामलों में और जहां ऐसी परिस्थितियां हों कि महिला कैदियों के बच्चों को न्यायालय के आदेश के बिना जेल में प्रवेश दिया जाए, बशर्ते कि ऐसे बच्चे 6 वर्ष से कम आयु के हों।

6. महिला कैदियों के बच्चों के लिए शिक्षा और मनोरंजन:

(क) जेलों में रहने वाली महिला कैदियों के बच्चों को उचित शिक्षा और मनोरंजन के अवसर दिए जाएंगे और जब उनकी माताएं जेल में काम कर रही हों, तो बच्चों को मैट्रन/महिला वार्डर के प्रभार में क्रेच में रखा जाएगा। यह सुविधा वार्डरों के बच्चों और अन्य महिला जेल कर्मचारियों के लिए भी बढ़ाई जाएगी।

(ख) महिलाओं के लिए जेल से जुड़ी एक क्रेच और एक नर्सरी होगी जहां महिला कैदियों के बच्चों की देखभाल की जाएगी। तीन साल से कम उम्र के बच्चों को क्रेच में जाने की अनुमति दी जाएगी और तीन से छह साल

के बीच के बच्चों की देखभाल नर्सरी में की जाएगी। जेल अधिकारी अधिमानतः उक्त क्रेच और नर्सरी को जेल परिसर के बाहर चलाएंगे।

7. कई राज्यों में, छोटे बच्चे उप-जेलों में रह रहे हैं जो छोटे बच्चों को रखने के लिए बिल्कुल भी सुसज्जित नहीं हैं। बच्चों के साथ महिला कैदियों को ऐसी उप-जेलों में नहीं रखा जाना चाहिए, जब तक कि उचित सुविधाएं सुनिश्चित नहीं की जा सकती हैं जो उचित जैविक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास के लिए वहां अनुकूल वातावरण बनाती हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

8. हिंसक अपराधों सहित सभी प्रकार के अपराधों से संबंधित महिला दोषियों, विचाराधीन कैदियों, अपराधियों के बीच भीड़भाड़ वाले बैरकों में बच्चों का रहना निश्चित रूप से उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए हानिकारक है। इसलिए, बच्चे की प्राथमिकता के आधार पर ऐसे वातावरण से अलग होने के लायक हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

51. बॉम्बे उच्च न्यायालय ने जन अदालत, सेंटर ऑफ़ पैरा-लीगल सर्विसेज एंड लीगल एड ए सोसाइटी बनाम महाराष्ट्र राज्य में सचिव, गृह विकास विभाग के माध्यम से आरडी उपाध्याय (उपरोक्त) का हवाला दिया और महाराष्ट्र में कैदियों के संबंध में निम्नलिखित निर्देश जारी किए:

"38..(ज) जहां तक जेल में अपनी संबंधित माताओं के साथ रहने वाले बच्चों का संबंध है, उनके लाभ के लिए आवश्यक व्यवस्था शीर्ष न्यायालय के निर्देशों के अनुसार और जैसा कि निर्णय के प्रस्तर-23 में आज से छह महीने की अवधि के भीतर किया जाएगा;

(i) राज्य सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए एक योजना तैयार करेगी कि महिला कैदी अपने नाबालिग बच्चों (जो उनके साथ नहीं रह रही हैं) से नियमित अंतरालों पर मिल सकें। ऐसी योजना तैयार करना आवश्यक होगा क्योंकि बच्चों की कस्टडी रखने वाले व्यक्ति या संस्थान उन्हें अपनी संबंधित माताओं से मिलने के लिए प्रोत्साहित नहीं कर सकते हैं। यदि आवश्यक हो तो महाराष्ट्र कारागार (कैदियों को सुविधाएं) नियम, 1962 में संशोधन का प्रस्ताव किया जाए।

52. कर्नाटक उच्च न्यायालय ने बाबुल खान बनाम कर्नाटक राज्य में बच्चों के अधिकारों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं। हालांकि टिप्पणियां विदेशी नागरिकों के बच्चों के संबंध में की गई थीं, वे इस मामले पर भी लागू होती हैं:

"96. यदि बच्चा किसी विदेशी नागरिक का था और जहां माता-पिता या माता-पिता में से कोई एक विशेष रूप से मां जेल में है, तो कानून के बदले में आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए कि, बच्चे को हमेशा बच्चे के

अधिकारों की संयुक्त राष्ट्र की घोषणा में निर्धारित सभी अधिकारों का आनंद लेना चाहिए, चाहे वह जेल के बाहर हो या जेल के अंदर बिना किसी भेदभाव या भेदभाव के, रंग, भाषा, जन्म या अन्य स्थिति से राजनीतिक या अन्य राष्ट्रीय या सामाजिक की उत्पत्ति। इसके अलावा, बच्चे को विशेष सुरक्षा मिलेगी और उसे कानून और अन्य माध्यमों से अवसर और सुविधाएं दी जाएंगी ताकि वह गरिमा के साथ स्वस्थ और सामान्य तरीके से शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से विकसित हो सके। बच्चा शिक्षा प्राप्त करने का भी हकदार है जो कम से कम प्रारंभिक चरणों में मुफ्त और अनिवार्य होगी, भले ही बच्चा अपनी मां के साथ जेल या हिरासत केंद्र में हो। संबंधित राज्य विशेष रूप से डिटेंशन सेंटर में कानून बनाते समय, बच्चे के अधिकार का सम्मान करेंगे, जो वास्तव में माता-पिता से एक या दोनों से अलग हैं और राज्य को ऐसे बच्चे के हितों की रक्षा के लिए व्यवस्था करनी चाहिए।

अनुच्छेद 21 और बच्चे

53. इस न्यायालय ने **सुपूर्णानंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2018 (11) ए.डी.जे. 550** में भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत "जीवन" के अर्थ के दायरे और संवैधानिक कानून की जांच करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया:

"32. जीवन के उद्देश्य की जांच पारंपरिक रूप से दार्शनिकों का प्रांत रही है। संविधान निर्माताओं ने "जीवन" शब्द को संविधान के दायरे में लाया। संवैधानिक कानून ने जीवन के अर्थ को अदालतों के अधिकार क्षेत्र में रखा। "जीवन" अदालतों की चिंता का विषय है। जीवन के अर्थ की खोज अदालतों का काम है। वास्तव में, जीवन के अर्थ की खोज संविधान के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों को साकार करने के लिए केंद्रीय है।

33. जीवन के अर्थ में अदालतों की जांच कानून और तर्क द्वारा निर्देशित थी और तर्क और मिसाल द्वारा नियंत्रित थी, लेकिन संविधान के जनादेश और अदालत के विवेक के अलावा किसी भी अधिकार के लिए नहीं झुकती थी। अंततः, जीवन का अर्थ जीवन द्वारा ही दिया गया था। जीवन के सभी पहलुओं और इसकी वास्तविकताओं ने अदालतों को छुआ। यह अदालतों के लिए था कि वे जीवन के सभी पहलुओं को छूएं और इसकी वास्तविकता को महसूस करें। जीवन उन लोगों के लिए अपना सही अर्थ प्रकट करता है जिनके विचार महान हैं और कर्म धार्मिक हैं और जो निस्वार्थ रूप से जीते हैं।

34. भारत की अदालतें पहले ही जान गई थीं कि जीवन के महत्व को समझना न्याय की सुरक्षा प्रदान करने की कुंजी है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन को उसकी व्यापकता और गहराई में अपनाया और एक संकीर्ण व्याख्या से परहेज किया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून ने एक नागरिक की प्रतिष्ठा को व्यापक रूप से लाया।

35. एक निर्णायक क्षण आया जब माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जीवन को केवल भौतिक अस्तित्व की बेड़ियों से मुक्त किया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अर्थ की जांच करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्प 2018 (11) ए.डी.जे. 550** के मामले में जीवन को अर्थ में जोड़ा।

"जैसा कि हमने याचिकाकर्ताओं के मामले को सारांशित करते हुए कहा है, उनके तर्क का मुख्य मुद्दा यह है कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार शामिल है और चूंकि, यदि उन्हें झुग्गी और फुटपाथ के आवासों से बेदखल कर दिया जाता है तो वे अपनी आजीविका से वंचित हो जाएंगे, इसलिए उन्हें बेदखल करना उनके जीवन से वंचित करने के समान है और इसलिए यह असंवैधानिक है। तर्क के प्रयोजनों के लिए, हम इस आधार की तथ्यात्मक शुद्धता को मानेंगे कि यदि याचिकाकर्ताओं को उनके आवासों से बेदखल कर दिया जाता है, तो वे अपनी आजीविका से वंचित हो जाएंगे। इस धारणा के आधार पर, हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि क्या जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार भी शामिल है। हम उस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर देखते हैं, अर्थात्, यह करता है। अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार का व्यापक और दूरगामी प्रभाव है। इसका मतलब केवल यह नहीं है कि जीवन को बुझाया या छीना नहीं जा सकता है, उदाहरण के लिए, कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा, मौत की सजा को लागू करने और निष्पादित करने से। यह जीवन के अधिकार का एक पहलू है। उस अधिकार का एक समान रूप से महत्वपूर्ण पहलू आजीविका का अधिकार है क्योंकि कोई भी व्यक्ति जीवन यापन के साधनों के बिना नहीं रह सकता है, यानी आजीविका के साधन। यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के संवैधानिक अधिकार के हिस्से के रूप में नहीं माना जाता है, तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित करने का सबसे आसान तरीका यह होगा कि उसे उसकी आजीविका के साधनों से वंचित कर दिया जाए। इस तरह की कमी न केवल जीवन को इसकी प्रभावी सामग्री और सार्थकता से वंचित कर देगी, बल्कि यह जीवन को जीना असंभव बना देगी। और फिर भी, इस तरह के अभाव को कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं होना चाहिए, अगर आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता है। वह, जो अकेले जीना संभव बनाता है, जो जीवन को रहने योग्य बनाता है, उसे छोड़ दें, उसे जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को उसकी आजीविका के अधिकार से वंचित कर दो, और तुम उसे उसके जीवन से वंचित कर दोगे। वास्तव में, यह बड़े शहरों में ग्रामीण आबादी के बड़े पैमाने पर प्रवास की व्याख्या करता है। वे पलायन करते हैं क्योंकि उनके पास गांवों में आजीविका का कोई साधन नहीं है। गांव में अपने चूल्हों और घरों को छोड़ने के लिए प्रेरित करने वाली प्रेरक शक्ति अस्तित्व के लिए संघर्ष है, यानी जीवन के लिए संघर्ष। जीवन और आजीविका के साधनों के बीच सांठगांठ का प्रमाण इतना अभेद्य है। उन्हें जीने के लिए खाना पड़ता है: केवल कुछ मुट्ठी भर लोग ही खाने के लिए जीने की विलासिता का खर्च उठा सकते हैं। वे ऐसा कर सकते हैं, अर्थात् खा सकते हैं, यदि उनके पास आजीविका के साधन हों। यही वह संदर्भ है जिसमें **इगलस ने बक्सी [347 यूएस 442, 472: 98 एल एड 829 (1954)]** में कहा था कि काम करने का अधिकार मनुष्य की सबसे कीमती स्वतंत्रता है। यह सबसे कीमती स्वतंत्रता है क्योंकि, यह एक आदमी को जीने के लिए बनाए रखता है और सक्षम बनाता है और जीवन का अधिकार एक अनमोल स्वतंत्रता है। "जीवन", जैसा कि फील्ड

द्वारा देखा गया है मुन बनाम इलिनोइस [(1877) 94 यूएस 113] का अर्थ केवल पशु अस्तित्व से कहीं अधिक है और जीवन के अभाव के खिलाफ निषेध उन सभी सीमाओं और संकायों तक फैला हुआ है जिनके द्वारा जीवन का आनंद लिया जाता है। इस टिप्पणी को इस न्यायालय द्वारा **खरक सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए.आई.आर. 1963 एस.सी. 1295: (1964) 1 एस.सी.आर 332: (1963) 2 सीआरआई एनजे 329]** के मामले में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था।

54. अनुच्छेद 21 को लगातार विस्तारित सीमाओं के प्रविधि पर स्थापित किया गया था और जीवन का दायरा उत्तरोत्तर बढ़ाया गया था।

55. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में बच्चों के जीवन के अर्थ को सूक्ष्म रूप से समझा जाना चाहिए। बच्चों से संबंधित विभिन्न संवैधानिक उपबंधों, संवैधानिक न्यायालयों की धारकों और अंतर्राष्ट्रीय दस्तावेजों, जिनमें भारत एक पक्षकार है, का ध्यान रखा जाना चाहिए।

56. भारत के संविधान का अनुच्छेद 39 जैसा कि पहले लक्ष्मीकांत पांडे (उपरोक्त) में देखा गया था, बच्चों के संबंध में सरकार की विभिन्न नीतियों का आधार बन गया है। वास्तव में, भारत के संविधान का अनुच्छेद 39 (ई) और (एफ) अब भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में अपरिवर्तनीय रूप से शामिल है और बच्चों के लिए जीवन के अर्थ को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 39 (ई) और (एफ) में न केवल राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांत शामिल हैं, बल्कि बच्चों के लाभ के लिए राज्य की कार्रवाई के अनिवार्य सिद्धांतों को शामिल किया गया है।

57. भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 बच्चों के लिए एक अनुकूल वातावरण और समर्थन प्रणालियों पर विचार करता है जो एक अच्छी तरह से विकसित व्यक्तित्व के विकास को बढ़ावा देते हैं, अच्छे स्वास्थ्य और कल्याण के अलावा अनुकरणीय चरित्र लक्षणों के विकास के लिए अनुकूल हैं। बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताएं और बौद्धिक उन्नति स्पष्ट रूप से संविधान के अनुच्छेद 21 के दायरे में आती हैं। जेल की दीवारें बच्चों के लिए अनुच्छेद 21 के प्रवाह को बाधित नहीं कर सकती हैं। पुनरावृत्ति की कीमत पर यह कहा गया है कि राज्य को एक ऐसा वातावरण बनाना होगा और सहायता प्रणालियों का निर्माण करना होगा जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 21-क के तहत बच्चों को उनके अधिकारों तक पहुंच प्रदान करे।

58. भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 से प्रवाहित सीखने का माहौल और सहायता प्रणाली को उनके विकास में परिस्थितियों के प्रति उम्र के अनुकूल और संवेदनशील होना चाहिए और बच्चों के लिए उनके आवेदन में सूक्ष्म होना चाहिए। उपर्युक्त वातावरण और सहायता प्रणालियां जेलों में कैदियों के साथ रहने वाले कैदियों के बच्चों के लिए अपरिवर्तनीय हकदारी हैं। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के सुरक्षात्मक कवच में जेलों में नकारात्मक प्रभावों से बच्चों की उक्त श्रेणी को सुरक्षित रखने और उनके समग्र विकास और बच्चों के संतुलित विकास की भी परिकल्पना की गई है।

59. अनुच्छेद 21 के तहत एक बच्चे के जीवन को आकस्मिक घटनाओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिकूल परिस्थितियों से परिभाषित नहीं किया जाएगा, लेकिन उनके जीवन का अधिकार संवैधानिक कानून में प्रतिपादित भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 21-ए के चमकदार जनादेश द्वारा निर्धारित किया जाएगा।

सातवीं (ए)। बाल संरक्षण प्रणाली: हितधारकों के कर्तव्य: निर्देश

60. प्रासंगिक वैधानिक प्रावधान सक्रिय हो जाते हैं और संबंधित वैधानिक और राज्य अधिकारियों को तुरंत कार्रवाई में शामिल किया जाता है, जिस क्षण एक बच्चा अपने 31 माता-पिता की गिरफ्तारी के बाद डिफॉल्ट रूप से जेल में बंद हो जाता है।

61. प्रत्येक बच्चा अद्वितीय है। बच्चे भीड़ में इकाई नहीं हैं। संकट में हर बच्चा अजीबोगरीब प्रतिकूलताओं का शिकार होता है। उक्त श्रेणी के बच्चों पर जेल के माहौल का हानिकारक प्रभाव बाहरीताएं हैं (ऐसी परिस्थितियां जो उनके कारण नहीं होती हैं और जिन पर उनका कोई नियंत्रण नहीं होता है)। प्रकृति बच्चों को विशेष उपहार और क्षमताएं प्रदान करती है जो प्रत्येक बच्चे के लिए विशिष्ट होती हैं। प्रभाव जो एक बच्चे के मनोविज्ञान को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं, उन्हें प्रत्येक मामले के तथ्यों में संबोधित किया जाना चाहिए। एक बच्चे के पास जो क्षमताएं होती हैं, उन्हें बच्चे से बच्चे के आधार पर उनके पूर्ण कद तक पोषित किया जाना चाहिए। इस प्रकृति की व्यक्तिगत देखभाल बाल अधिकार न्यायशास्त्र का सार है जैसा कि विधायिकाओं और अदालतों द्वारा समान रूप से विकसित किया गया है। उपरोक्त उद्देश्य को प्रत्येक बच्चे के लिए एक व्यक्तिगत देखभाल योजना तैयार करके प्राप्त किया जा सकता है जो अपने माता-पिता की कैद के बाद जेल में बंद है।

62. जे.जे. अधिनियम और अन्य कानूनी उपकरणों के तहत विभिन्न प्राधिकरण बनाए गए हैं जो अपने माता-पिता की कैद के परिणामस्वरूप जेलों में रहते हैं। पुलिस, बाल कल्याण समिति, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण, चिकित्सा प्राधिकरण, शिक्षा प्राधिकरण, जिला प्रशासन को संवैधानिक कानून धारकों और सांविधिक अधिनियमों के आधार पर बच्चों को हकदारी और सहायता प्रणाली प्रदान करने का आदेश दिया गया है। जेल मैनुअल और संवैधानिक अदालतों के फैसलों के तहत जेल अधिकारियों पर भी इयूटी लगाई जाती है। उक्त प्राधिकारी बच्चों के लाभ के लिए संवैधानिक और वैधानिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक-दूसरे के साथ सहयोग करने के लिए उत्तरदायी हैं।

63. बच्चों के उपरोक्त वर्ग के संबंध में अधिकारियों के कर्तव्य और उनके द्वारा निष्पादित किए जाने वाले संबंधित निर्देश निम्नलिखित प्रस्तर में निर्धारित किए गए हैं:

VII A (I)। राज्य सरकार

64. प्रमुख सचिव, महिला एवं बाल विकास, उत्तर प्रदेश सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि राज्य निम्नलिखित निर्देशों का पालन करे:

(I) जेलों में कैदियों के साथ रहने वाले कैदियों के बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, कल्याण और समग्र विकास के लिए सहायक बुनियादी ढांचे के साथ एक संरचित कार्यक्रम/योजना तैयार करना और जेल में रहने के परिणामस्वरूप होने वाले नकारात्मक प्रभावों के लिए उनकी रक्षा करना।

II. उपरोक्त कार्यक्रम राज्य सरकार के विभिन्न विभागों जैसे शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग, अन्य संबंधित विभागों और विशेषज्ञ संस्थानों के परामर्श और समन्वय से बनाया जाएगा।

III. उपरोक्त कार्यक्रम बच्चों के उक्त वर्ग के जीवन से संबंधित सभी पहलुओं को पूरा करेगा। उक्त कार्यक्रम में शामिल की जाने वाली गतिविधियों और सहायता प्रणालियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं:

क) बच्चों का स्वास्थ्य और पोषण;

ख) सूरज की रोशनी और ताजी हवा के लिए बच्चों के प्रदर्शपोजर;

ग. प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में पूर्वस्कूली / किंडरगार्टन स्कूलों और प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश सहित शैक्षिक आवश्यकताएं। स्कूल जेल परिसर में स्थित नहीं होंगे;

घ) रचनात्मक गतिविधियाँ, बाहरी गतिविधियाँ और खेल के मैदानों तक पहुँच। बच्चों के लिए जेलों में अलग-अलग स्थानों का अस्तित्व;

च) बच्चों के भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक विकास के लिए कार्यक्रम;

छ) स्कूलों में अपने सहपाठियों के साथ उक्त बच्चों की बातचीत और गतिविधियों को अधिकतम करना;

फ) नकारात्मक प्रभावों को बाहर करें और अन्य कैदियों के साथ संपर्क को रोकें। जिन क्षेत्रों में बच्चे रहते हैं, उन क्षेत्रों तक अन्य कैदियों द्वारा नहीं पहुंचा जाना चाहिए;

य) इस श्रेणी के बच्चों के उपयुक्त शिक्षाशास्त्र का विकास;

र) शाम की गतिविधियों के लिए सीसीआई के साथ अनुलग्नक;

ल) संरक्षक शिक्षकों की नियुक्ति।

उपर्युक्त कार्यकलाप प्रकृति में उदाहरणात्मक हैं, न कि उक्त कार्यक्रम के तत्वों की विस्तृत सूची। यह कार्यक्रम इस निर्णय में चर्चा की गई संवैधानिक कानून धारणाओं और प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों के अनुरूप भी होगा।

IV. यह राज्य सरकार के लिए खुला है कि जब भी आवश्यक हो, गतिविधियों और सहायता प्रणालियों की सूची को बढ़ा किया जाए। विधि मंत्रालयों/विभागों, कारागार, शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य तथा राज्य के किसी भी अन्य विभाग, जैसा कि अपेक्षित हो, सहित अन्य मंत्रालय और प्राधिकरण महिला एवं बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के साथ पूर्ण सहयोग करेंगे।

(v) राज्य सरकार बच्चों के लिए उपर्युक्त कार्यक्रम के विकास के लिए निमहांस, बंगलौर और अन्य विशेषज्ञ संस्थानों और विश्वविद्यालयों के साथ भी परामर्श कर सकती है।

VI. जेल मैनुअल के प्रासंगिक प्रावधानों को लागू करना।

VII. व्यक्तिगत बाल देखभाल योजनाओं के विकास का समर्थन करना और उनके कार्यान्वयन को सुविधाजनक बनाना।

VIII. राज्य और जिला स्तर पर निदेशों के कार्यान्वयन की नियमित निगरानी और विभिन्न स्तरों पर जवाबदेही की एक प्रणाली का निर्माण।

VII A (II)। जिला प्रशासन

65. संबंधित जिलों का जिला प्रशासन निम्नलिखित निर्देशों का पालन करेगा:

I. स्थानीय प्रशासन के संबंधित प्राधिकरण इस निर्णय में दिए गए निर्देशों के अनुपालन में राज्य सरकार द्वारा तैयार किए गए कार्यक्रम को लागू करेंगे।

II. प्रत्येक मामले के तथ्यों में प्रीस्कूल/किंडरगार्टन/प्राथमिक विद्यालय में बच्चों का प्रवेश सुनिश्चित करना।

III. डी.पी.ओ. द्वारा व्यक्तिगत बाल देखभाल योजनाओं के विकास और निष्पादन में सहायता करना।

VIIA (III) जेल विभाग

66. प्रधान सचिव, जेल विभाग, महानिदेशक (कारागार), साथ ही जिला जेलों के जेल अधिकारी निम्नलिखित निर्देशों का पालन करेंगे:

I. संबंधित जेल अधिकारी अपने माता-पिता के कारावास के परिणामस्वरूप जेल में बंद बच्चे के बारे में सी.डब्ल्यू.सी. को सूचित करेंगे। जेल अधिकारी जेल में रह रहे बच्चे को सी.डब्ल्यू.सी. तक पहुंच भी प्रदान करेंगे। बच्चे को सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष पेश किया जाएगा।

II. बच्चे अपने माता-पिता के साथ अलग-अलग बैरकों में रहेंगे, जिन्हें प्रभावी रूप से अन्य कैदियों से अलग किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाएगा कि बच्चों का अन्य कैदियों से कोई संपर्क न हो।

III. जेल अधिकारी स्थानीय प्रशासन के साथ समन्वय करके प्रत्येक मामले के तथ्यों में बच्चों को प्रीस्कूल/किंडरगार्टन/प्लेस्कूल/प्राथमिक विद्यालय में प्रवेश सुनिश्चित करेंगे। उक्त स्कूल जेल परिसर में स्थित नहीं होंगे।

IV. जेल अधिकारी उक्त वर्ग के बच्चों को जेल परिसर के बाहर अपने आयु वर्ग के अन्य बच्चों के साथ बाहरी गतिविधियों और रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेने के लिए खेल के मैदानों और अन्य सहायता प्रणालियों तक पहुंच प्रदान करेंगे।

(V. शिशुगृहों का रखरखाव उस जेल परिसर में किया जाएगा जहां उपरोक्त वर्गों के बच्चे रह रहे हैं।

VI. जेल अधिकारी उन बच्चों को गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा देखभाल और उचित पोषण प्रदान करना सुनिश्चित करेंगे जो जेल में बंद हैं।

VII. जेल प्राधिकरण राज्य सरकार की नीति को लागू करेंगे जिसे पहले दिए गए निर्देशों के अनुसरण में विकसित किया जाएगा।

VIII. व्यक्तिगत बाल देखभाल कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का समर्थन करना।

IX. जेल मैनुअल/मॉडल जेल मैनुअल में बच्चों से संबंधित प्रावधानों को लागू करना।

VII A (IV) पुलिस प्राधिकरण

67. संबंधित जिलों के पुलिस अधिकारियों को निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करना होगा:

I. स्थानीय पुलिस अधिकारियों को माता-पिता की गिरफ्तारी के बाद जेल में बंद बच्चे के बारे में सी.डब्ल्यू.सी. और डी.पी.ओ. को तुरंत सूचित करना चाहिए।

II. सी.डब्ल्यू.सी. के समक्ष बच्चे को पेश करने के बारे में जमानत आवेदन पर सुनवाई करने वाली अदालत को सूचित करें।

VII A (V) बाल कल्याण समिति

68. संबंधित जिलों के सी.डब्ल्यू.सी. को निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करना होगा:

(1) जेलों का दौरा करना और अपने माता-पिता के साथ जेलों में रहने वाले बच्चों की स्थिति की जांच करना।

(2) सी.डब्ल्यू.सी. बच्चे की स्थिति के संबंध में तुरंत एक रिपोर्ट तैयार करेगा और निम्नलिखित पैरामीटरों सहित विभिन्न प्रासंगिक पहलुओं के संबंध में निष्कर्ष भी देगा:

- A. स्वास्थ्य,
- B. शिक्षा सुविधाएं
- C. समग्र विकास,
- D. अन्य कैदियों से इन्सुलेशन
- E. इस निर्णय में दिए गए निर्देशों का अनुपालन
- F. इस निर्णय के अनुसरण में सरकार की योजना का निष्पादन।
- G. जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी द्वारा बनाई जाने वाली व्यक्तिगत बाल देखभाल योजना का कार्यान्वयन।

(3) सी.डब्ल्यू.सी. बच्चे के माता-पिता की जमानत याचिका की सुनवाई के समय अदालत को उपरोक्त रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

(4) सी.डब्ल्यू.सी. उक्त रिपोर्ट संबंधित राज्य प्राधिकरणों और जिला प्रशासन के प्राधिकारियों को भी प्रस्तुत करेगा।

(5) यह सुनिश्चित करने के लिए सक्षम प्राधिकारियों के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत करें कि जेलों में अपने माता-पिता (विचाराधीन/दोषियों) के साथ रह रहे 6 वर्ष से अधिक आयु के बच्चों को पर्यवेक्षण गृहों में भेजा जाए।

(6) सी.डब्ल्यू.सी. 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के प्रत्येक मामले की जांच करेगा।

VIIA (VI) जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी

69. संबंधित जिलों के डी.पी.ओ. निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करेंगे:

(i) विशेषज्ञों के परामर्श के बाद जेल में अपने माता-पिता के साथ रहने वाले जेल में प्रत्येक बच्चे के समग्र विकास के लिए व्यक्तिगत परिचर्या योजना तैयार करना।

(ii) व्यक्तिगत देखभाल योजना में निम्नलिखित सहित विभिन्न पैरामीटर शामिल होंगे:

- A. स्वास्थ्य
- B. पोषण योजना

- C. सूरज की रोशनी और ताजी हवा के संपर्क में आना
 - D. शिक्षा
 - E. खेल, पाठ्येतर और रचनात्मक गतिविधियाँ
 - F. समग्र रूप से अच्छी तरह से गोल विकास
 - G. जेल परिसर के बाहर बच्चों का उनके स्कूल के साथियों और उनकी उम्र के अन्य बच्चों के साथ अधिकतम संपर्क।
 - H. स्कूल में संरक्षक शिक्षक की नियुक्ति
- ये गतिविधियाँ केवल उदाहरण हैं और संपूर्ण नहीं हैं।

(iii) व्यक्तिगत देखभाल योजना जेलों में बच्चे को नकारात्मक प्रभावों से बचाएगी या बचाएगी, और अन्य कैदियों के साथ बच्चे के संपर्क को रोकेगी।

(iv) स्थानीय स्तर पर सरकारी अधिकारियों के साथ समन्वय में योजना को लागू करना।

VII.B प्रत्येक बच्चे के लिए व्यक्तिगत देखभाल योजनाएं तैयार करने के लिए राज्य सरकार के हितधारकों/संबंधित विभागों का प्रशिक्षण:

70. हितधारकों का निरंतर पर्यवेक्षण और नियमित प्रशिक्षण उन बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन को रोकने की कुंजी है जो अपने माता-पिता के साथ जेलों में बंद हैं, और बच्चों के उक्त वर्ग के अधिकारों को साकार करने के लिए अपरिहार्य हैं जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है।

71. राज्य सरकार के संबंधित विभाग निम्नलिखित हितधारकों के लिए नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम अवधारित करेंगे ताकि वे अपने कर्तव्यों के प्रति संवेदनशील हो सकें और इस निर्णय में दिए गए निर्देशों को निष्पादित करने के लिए उनकी क्षमताओं का निर्माण कर सकें:

1. पुलिस
2. सी.डब्ल्यू.सी.
3. जेल अधिकारी
4. जिला परीवीक्षाधीन अधिकारी - विशेष रूप से डी.पी.ओ. को बाल देखभाल योजना तैयार करने के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी
5. चिकित्सा अधिकारी

VII (सी) राज्य सरकार की प्रतिक्रिया और विभिन्न विभागों के बीच तालमेल प्राप्त करना:

72. उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ सरकार के प्रमुख सचिव (महिला एवं बाल विकास) की ओर से दायर हलफनामे से पता चलता है कि राज्य के विभिन्न विभागों के बीच उचित सहयोग और समन्वय प्राप्त नहीं किया गया है। विभिन्न राज्य विभागों के बीच समन्वय और सहयोग की कमी कानून के कार्यान्वयन में बाधा डाल रही है और जेलों में बच्चों के अधिकारों की प्राप्ति में देरी कर रही है। यह स्थिति जारी नहीं रह सकती है और इसे पूरी तरह से और तत्परता से संबोधित किया जाना चाहिए।

73. शासन का अनुभव दर्शाता है कि कभी-कभी विभाग पृथक रूप से कार्य करते हैं, जिससे नीतिगत उद्देश्यों की प्राप्ति में बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। विभागों के बीच समन्वय की कमी के परिणामों ने उच्चतम न्यायालय का भी ध्यान आकर्षित किया है।

74. अंतर-विभागीय सामंजस्य और अंतर-विभागीय सम्मेलन की आवश्यकता के मुद्दों से निपटने के दौरान **तेल और प्राकृतिक गैस आयोग और अन्य बनाम कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क** में सर्वोच्च न्यायालय ने एक अंतर-विभागीय समिति की स्थापना का निर्देश दिया:

3. हम निर्देश देते हैं कि भारत सरकार मंत्रालय और भारत सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बीच विवादों की निगरानी करने के लिए उद्योग मंत्रालय, सार्वजनिक उद्यम ब्यूरो और कानून मंत्रालय के प्रतिनिधियों की एक समिति का गठन करेगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी मुकदमा न्यायालय या अधिकरण में तब तक न आए जब तक कि समिति द्वारा मामले की पहले जांच न की जाए और मुकदमेबाजी के लिए उसकी मंजूरी न दी जाए। सरकार किसी विशिष्ट मामले में संबंधित मंत्रालय के एक प्रतिनिधि को और समिति में वित्त मंत्रालय के एक प्रतिनिधि को शामिल कर सकती है। केवल वरिष्ठ अधिकारियों को नामित किया जाना चाहिए ताकि समिति हैसियत, नियंत्रण और अनुशासन के साथ कार्य कर सके।

4. यह प्रत्येक न्यायालय और प्रत्येक न्यायाधिकरण का दायित्व होगा जहां इस तरह के विवाद को इसके बाद उठाया जाता है, यदि इस तरह की दलील नहीं दी गई है और मंजूरी के अभाव में, कार्यवाही आगे नहीं बढ़ाई जाएगी।

75. इसके बाद तेल और प्राकृतिक गैस आयोग बनाम कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क को निम्नानुसार माना गया:

3. इस उच्चाधिकार प्राप्त समिति के गठन का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि, जहां तक संभव हो, एक मंत्रालय और भारत सरकार के एक मंत्रालय और भारत सरकार के एक सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम के बीच और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के बीच विवादों को उच्चाधिकार प्राप्त समिति का सहारा लेकर हल किया जाए और समय लेने वाली और महंगी मुकदमेबाजी से बचा जाए।

76. सरकार के कुशल कामकाज के लिए अंतर-विभागीय सहयोग और समन्वय की आवश्यकता पर भी एलिजाबेथ जैकब बनाम जिला कलेक्टर, इडुक्की और अन्य में बल दिया गया था:

"19. यह मामला, हालांकि बहुत सीमित तरीके से, सरकारी विभागों के बीच सहयोग और समन्वय की कमी को दर्शाता है। सभी विभागों को जनता के हित में और जनता की भलाई के लिए काम करना चाहिए। केवल इसलिए कि कोई विशेष विभाग या प्राधिकरण किसी विशेष कानून के तहत कार्य करता है, इसका मतलब यह नहीं है कि उन्हें अन्य कानूनों के प्रावधानों की अनदेखी करनी चाहिए या कर सकते हैं। सरकार के सुचारू और सफल कामकाज के लिए अंतर-विभागीय सहयोग और समन्वय महत्वपूर्ण है। लेकिन दुर्भाग्य से अंतर-विभागीय प्रतिद्वंद्विता फल-फूल रही है और अन्य विभागों के कामकाज और अन्य कानूनों के प्रवर्तन के प्रति एक पारस्परिक गैर-परवाह रवैया है। राजस्व विभाग और वन विभाग, राजस्व विभाग और खान और खनिज विभाग, वन विभाग और खान और खनिज विभाग के बीच असहयोग बहुत अच्छी तरह से जाना जाता है। जब तक विभिन्न विभागों के बीच समन्वय, सहयोग और समझ में सुधार के लिए तत्काल और गंभीर कदम नहीं उठाए जाते हैं, अपराधी बच निकलेंगे, उल्लंघन करने वाले भाग जाएंगे, राष्ट्रीय संसाधनों को ठगा जाएगा, और जनहित को नुकसान होगा, जैसा भी हो।

77. सोसाइटी फॉर एनलाइटनमेंट एंड वॉलंटरी एक्शन और अन्य बनाम यूनियन ऑफ इंडिया में उच्चतम न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"3. सेवाओं का अभिसरण और निरंतरता

3.1. सभी राज्यों/केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्य सचिव एक उपयुक्त प्राधिकरण नामित करेंगे जो कमजोर और जोखिम वाले समुदायों के लिए एक सामंजस्यपूर्ण समर्थन प्रणाली बनाने के लिए विभिन्न सरकारी विभागों और एजेंसियों में सेवाओं का अभिसरण सुनिश्चित करेगा। यह भी शामिल है:

3.1.1. बाल विवाह की बहुआयामी प्रकृति को संबोधित करने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण और कानून प्रवर्तन क्षेत्रों के बीच प्रयासों और संसाधनों के समन्वय के लिए नियमित अंतर-विभागीय बैठकें; और

3.1.2. समुदाय-आधारित संसाधन केंद्रों की स्थापना करना जो बाल विवाह के जोखिम वाले परिवारों को शिक्षा, कानूनी अधिकारों और सामाजिक सेवाओं से संबंधित जानकारी और सहायता प्रदान करते हैं।

78. बच्चों के अधिकारों को साकार करने के लिए विभिन्न सरकारी विभागों के बीच नीति और कार्रवाई में तालमेल एक अनिवार्य आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के प्रमुख सचिव (महिला एवं बाल विकास) द्वारा दायर हलफनामे और सोसाइटी फॉर एनलाइटनमेंट एंड वॉलंटरी एक्शन (उपरोक्त), तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (उपरोक्त), एलिजाबेथ जैकब (उपरोक्त) में दिए गए निर्णयों का अवलोकन करने के बाद इस

न्यायालय की निश्चित राय है कि राज्य सरकार के विभिन्न विभागों अर्थात् बाल और महिला कल्याण, स्वास्थ्य, पुलिस, जेल, बेसिक शिक्षा केवल मुख्य सचिव को उक्त विभागों और किसी अन्य संबंधित विभागों के प्रमुखों की बैठक बुलाने और बाल अधिकारों के कार्यान्वयन के लिए एक नीति तैयार करने का निर्देश देकर ही प्राप्त की जा सकती है, जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है।

79. तदनुसार, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार को निम्नलिखित निर्देशों का निष्पादन करने का निर्देश दिया जाता है:

क) महिला एवं बाल विकास, कानून, जेल, शिक्षा, स्वास्थ्य, डी.जी.पी. सहित विभिन्न मंत्रालयों के विभिन्न प्रमुख सचिवों और अन्य जिम्मेदार अधिकारियों की बैठक बुलाना। उचित समझे जाने पर अन्य मंत्रालयों और प्राधिकरणों को भी बुलाया जा सकता है। विभिन्न विभागों की समिति के पास उपरोक्त वर्ग के बच्चों के कल्याण, शिक्षा, समग्र विकास और अधिकारों की प्राप्ति के लिए योजना और बुनियादी ढांचे की समय पर तैयारी सुनिश्चित करने के लिए उचित समन्वय होगा, जैसा कि इस निर्णय में चर्चा की गई है। महिला एवं बाल विकास विभाग इस कार्य को पूरा करने के लिए नोडल मंत्रालय होगा।

ख) इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर प्रक्रिया पूरी की जाएगी।

80. श्री अशोक मेहता, अतिरिक्त महाधिवक्ता इस निर्णय की प्रतियां संबंधित विभागों के प्रमुखों (जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है) को सौंपेंगे और उन्हें उपरोक्त निर्देशों के अनुपालन पर सलाह देंगे।

VIII. कानून का कार्यान्वयन और न्यायालयों की भूमिका: जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। और राजेन्द्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य।

81. बच्चों के अधिकारों पर संवैधानिक निगरानी स्थायी है, और अदालतें बच्चों की स्थायी अभिभावक हैं। एक पुराने लेखक ने बच्चों के प्रति कानून के उपकरणों की भूमिका और कर्तव्यों के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

"कानून उनके व्यक्तियों की रक्षा करता है, उनके अधिकारों और संपत्ति को संरक्षित करता है, उनके लच्छे को माफ करता है और उनकी दलीलों में उनकी सहायता करता है, न्यायाधीश उनके परामर्शदाता हैं, जूरी उनके सेवक हैं और कानून उनका संरक्षक है।

82. भारत के संविधान में निहित बाल अधिकार न्यायशास्त्र, वर्तमान विवाद पर लागू अंतर्राष्ट्रीय उपकरण, कानून और न्यायिक मिसालें इन पहले सिद्धांतों पर अभिसरण करती हैं:

(1) दुर्व्यवहार और शोषण के प्रति बच्चों की भेद्यता की पहचान, बच्चों की अपनी परिस्थितियों का विरोध करने या उन पर उठने में असमर्थता, और दुर्व्यवहार या अस्वास्थ्यकर प्रभावों से खुद का बचाव करने में बच्चों की अक्षमता।

(2) बच्चों को अस्वास्थ्यकर प्रभावों और शोषण से बचाने के लिए एक सुरक्षात्मक वातावरण और सहायता प्रणाली प्रदान करने और उनके सर्वांगीण विकास और समग्र शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए राज्य का कर्तव्य।

(3) बच्चों के अधिकारों को महसूस करने के लिए अदालतों के दायित्वों की पुष्टि।

83. जेलों में उनके साथ रहने वाले कैदियों के बच्चों के अधिकारों का पता कई कानूनों और कानूनी उपकरणों से लगाया जा सकता है। विविध कानून और कई एजेंसियां अलग-अलग विधायी उद्देश्यों को प्रकट नहीं करती हैं। इस न्यायालय को इसी तरह की स्थिति का सामना करना पड़ा, जिसमें जुनैद बनाम यूपी राज्य में एक सामान्य विधायी इरादे को साकार करने के लिए कानूनों को मिश्रित किया गया, जो इस प्रकार हैं:

"58. फिर न्यायालय का कार्य क्या है? न्यायालय का कार्य विभिन्न कानूनों को एक एकीकृत कानूनी ढांचे में एकीकृत करके व्यापक और अंतर्निहित विधायी इरादे को प्राप्त करना है। इसके लिए वैधानिक निकायों के वर्गीकरण को एक ही कानूनी छतरी के नीचे स्थापित करने, उद्देश्यों में तालमेल स्थापित करने और उक्त अधिकारियों की कार्यवाही में तालमेल सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

84. **द न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्री यामिन और अन्य** में इस न्यायालय ने कानूनों को मिश्रित करके कई अधिनियमों में व्याप्त विधायी उद्देश्य को महसूस किया:

"48. एम.वी. अधिनियम और ई.सी. अधिनियम अलग-अलग कानून हैं जो अलग-अलग क्षेत्रों को आच्छादित करते हैं और विभिन्न न्यायाधिकरणों में कार्यवाही की परिकल्पना करते हैं। हालांकि, कानूनों की विविधता आवश्यक रूप से अलग-अलग विधायी उद्देश्यों को दर्शाती नहीं है और मंचों की बहुलता कानूनी अधिकारों से इनकार करने का कारण नहीं बन सकती है। पिछले प्रस्तर में किए गए कानूनों की तुलनात्मक जांच भी दो अधिनियमों के संचालन के अतिव्यापी क्षेत्रों को प्रकट करती है। उद्देश्य की व्यापक अनुरूपता और संचालन के सामान्य क्षेत्रों में प्रमाणित दो कानूनों की वस्तुओं की अंतर्निहित समानता को अधिनियमों की एकीकृत व्याख्या द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। एक कानून और उसके तहत प्राधिकरणों के प्रावधानों को दूसरे अधिनियम के अनुरूप लागू किया जा सकता है ताकि बाद के विधायी इरादे को साकार किया जा सके।

49. सांविधिक निर्माण का एकीकृत दृष्टिकोण यह सुनिश्चित करेगा कि दावेदारों को अधिनियमों के तहत उनके कानूनी अधिकारों से केवल इसलिए वंचित नहीं किया जाता है क्योंकि एक मंच को दूसरे अधिनियम के तहत कार्यवाही के लिए वरीयता में चुना जाता है। एकीकृत व्याख्या में विधियों का समग्र पठन और समान न्यायिक

अधिकारियों का समेकित अनुप्रयोग शामिल होगा। कानूनों को उनके अतिव्यापी और संचालन के सुसंगत क्षेत्रों की सीमा तक एक विस्तारित विधायी योजना के हिस्से के रूप में पढ़ा जाएगा।

50. अब सावधानी/सतर्कता: वैधानिक व्याख्या की एकीकृत पद्धति को लागू करने से पहले कुछ पूर्वापेक्षाओं को स्थापित करना होगा और इसे लागू करते समय विभिन्न सीमाओं का पालन करना होगा। सबसे पहले, यह एक तथ्य के लिए स्थापित किया जाना चाहिए कि दावेदारों को संबंधित कानून के तहत दोनों न्यायाधिकरणों में से किसी एक से समान रूप से संपर्क करने का अधिकार था। दूसरे, दावेदारों के कानूनी अधिकारों की पुष्टि किसी मामले के तथ्यों में की जानी चाहिए। तीसरा, जांच की यह पंक्ति केवल कानून के सामान्य और अतिव्यापी क्षेत्रों में लागू की जाएगी। अंत में, निर्माण की यह विधि उन प्रावधानों तक विस्तारित नहीं होगी जो एक विपरीत इरादे या क्षेत्रों का खुलासा करते हैं जो संबंधित अधिनियमों के तहत विशिष्ट प्रावधानों द्वारा आच्छादित किए जाते हैं।

51. न्यायालय का प्रयास अन्य पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह के बिना दावेदारों को लाभान्वित करके दोनों अधिनियमों के वैधानिक इरादे को साकार करने का होना चाहिए। न्यायालय किसी भी अधिनियम की वैधानिक योजना के विपरीत किसी भी स्पष्ट प्रावधान या कार्य से अलग नहीं हो सकता है।

85. कैदियों की जमानत आवेदनों पर विचार करने वाली अदालतों/मजिस्ट्रेटों पर जिम्मेदारी डाली जाती है कि वे अपने बच्चों के अधिकारों को बनाए रखें जो जेलों में रहते हैं।

86. बच्चों के उक्त वर्ग के अधिकारों और हकदारियों को जमानत के चरण में और मुकदमे के दौरान केवल बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.), चिकित्सा अधिकारियों, पुलिस अधिकारियों और संबंधित जिला अधिकारियों, जेल अधिकारियों जैसे संबंधित वैधानिक प्राधिकरणों को जमानत आवेदनों की सुनवाई करने वाली अदालतों (मजिस्ट्रेटों और विचारण अदालतों सहित) के अधिकार क्षेत्र के दायरे में लाकर महसूस किया जा सकता है। न्यायालयों को उक्त प्राधिकारियों को उक्त वर्ग के बच्चों के प्रति उनके कर्तव्यों के प्रति सचेत करना होगा। उक्त प्राधिकारी अपने माता-पिता की जमानत कार्यवाही के दौरान पूर्ववर्ती चर्चा में प्रतिपादित पूर्वोक्त बच्चों के अधिकारों को लागू करने के प्रयोजनों के लिए न्यायालयों (मजिस्ट्रेटों और विचारण न्यायालयों सहित) के प्रति जवाबदेह रहेंगे। अदालतों को यह सुनिश्चित करना होगा कि अधिकारी अपने वैधानिक कर्तव्यों का निर्वहन करें और बच्चों के लिए कानून के लाभकारी प्रावधानों को लागू किया जाए।

87. जमानत की सुनवाई के दौरान, क्रमशः उक्त अधिकारियों अर्थात् पुलिस और सी.डब्ल्यू.सी. को अदालत को इस बात से अवगत कराना होगा कि इस फैसले में निर्धारित अभियुक्त के बच्चों के अधिकारों को किस तरह से लागू किया गया है। न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे उक्त रिपोर्टों की जांच करें, उक्त सक्षम प्राधिकारियों से सुसंगत पूछताछ करें और जेल में रह रहे कैदियों के बच्चों के अधिकारों के कार्यान्वयन के संबंध में अपनी

संतुष्टि दर्ज करें। न्यायालय इस निर्णय में बताए गए बच्चों के उक्त वर्ग के अधिकारों को लागू करने के लिए अधिकारियों को उचित निर्देश जारी कर सकता है।

88. कथा को विधि निर्णयों द्वारा बिंदु में मजबूत किया जा सकता है। **जुनैद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** में यह अवधारित किया गया था:

"42. हालांकि, उक्त निर्णय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के लिए पूरी तरह से पूर्वोदाहरण मूल्य से वंचित नहीं हैं। आवेदन को सूक्ष्म होना चाहिए। यह कहा जाना चाहिए कि दिल्ली उच्च न्यायालय और बॉम्बे उच्च न्यायालय के उक्त निर्णय कानूनी बहस को समृद्ध करते हैं, और बाल अधिकारों की चिंताओं को अदालत की अंतरात्मा तक बढ़ाते हैं। इन निर्णयों ने कानून की प्रक्रिया को संवेदनशील बनाया है और अदालतों की जिम्मेदारियों को स्वीकार करके और जमानत याचिकाओं में सी.डब्ल्यू.सी., कानूनी सेवा प्राधिकरणों और पुलिस अधिकारियों को अदालतों के प्रति जवाबदेह बनाकर बाल पीड़ितों की दुर्दशा को सुधारा है। कानून के इन पहचानने योग्य सिद्धांतों को रीना झा (उपरोक्त), मिस जी (उपरोक्त), अर्जुन किशनराव मालगे (उपरोक्त) से स्पष्ट रूप से आसृत किया जा सकता है।

89. इसी तरह इस न्यायालय ने **राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में बाल पीड़ितों के साथ व्यवहार करते समय कानूनी कार्यवाही के दौरान बाल अधिकारों की प्राप्ति के रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करने के लिए निम्नलिखित टिप्पणियां कीं:

9. पीड़ितों के अधिकारों को बनाए रखने के लिए पॉक्सो अधिनियम के तहत विभिन्न प्राधिकरण बनाए गए हैं। पुलिस, बाल कल्याण समिति, जिला विधिक सेवा प्राधिकरणों, चिकित्सा प्राधिकरणों, जिला प्रशासन जैसे उक्त प्राधिकरणों को पॉक्सो अधिनियम के तहत पीड़ितों जैसे सहायक व्यक्तियों, चिकित्सा विशेषज्ञों, कानूनी सहायता, सरकार की लाभकारी योजनाओं आदि को हकदारी प्रदान करने का आदेश दिया गया है। पॉक्सो अपराधों में जमानत आवेदनों पर विचार करने वाले न्यायालयों/मजिस्ट्रेटों पर जिम्मेदारी डाली जाती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पीड़ितों को हकदारी प्रदान की जाए और उक्त अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारों को लागू किया जाए। उक्त जिम्मेदारियों के निष्ठापूर्वक निष्पादन से कानूनी कार्यवाही में बाल पीड़ितों के सामने आने वाले नुकसान में सुधार होगा।

10. पॉक्सो अधिनियम के तहत पीड़ितों के अधिकारों और हकदारियों को जमानत के चरण में और मुकदमे के दौरान ही बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.), चिकित्सा अधिकारियों और पुलिस अधिकारियों जैसे संबंधित वैधानिक प्राधिकरणों को विद्वान मजिस्ट्रेटों/विचारण अदालतों के दायरे में लाकर ही महसूस किया जा सकता है। उक्त प्राधिकारी जमानत सहित विभिन्न कानूनी कार्यवाहियों के दौरान उपरोक्त पीड़ितों के अधिकारों को कार्यान्वित करने के प्रयोजनों के लिए विद्वान मजिस्ट्रेटों/विचारण न्यायालयों के प्रति जवाबदेह रहेंगे। उक्त अधिकारियों को निचली अदालत को इस बात से अवगत कराना होगा कि किस तरह से पॉक्सो अधिनियम के

तहत पीड़ितों के अधिकारों को लागू किया गया है। विचारण न्यायालयों का यह दायित्व है कि वे उक्त रिपोर्टों पर विचार करें, उक्त सक्षम प्राधिकारियों से संगत पूछताछ करें और पॉक्सो अधिनियम के अंतर्गत पीड़ितों को उनके हकदारियों और सहायता प्रणालियों तक पहुंच के संबंध में अपनी संतुष्टि दर्ज करें।

13. उपरोक्त मापदंडों के अनुपालन को दर्शाने वाली रिपोर्ट और कानून के अनुसार बाल पीड़ितों को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं और सहायता प्रणालियों के विवरण को दर्शाने वाली रिपोर्ट जमानत आवेदनों की सुनवाई के समय क्रमशः बाल कल्याण समिति (सी.डब्ल्यू.सी.) और पुलिस द्वारा अदालत के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। निचली अदालतें जमानत याचिकाओं की सुनवाई के समय उपरोक्त रिपोर्टों की जांच करेंगी और यदि आवश्यक हो तो उचित निर्देश जारी करेंगी।

IX. जमानत आवेदन में आदेश

ए. जमानत के गुण और मुकदमे में तेजी लाने के निर्देश

90. यह पहली जमानत याचिका है।

91. इस जमानत आवेदन के माध्यम से आवेदक ने धारा 363, 302, 201 भ०द०वि० के तहत थाना - मोदी नगर, जिला गाजियाबाद में केस अपराध संख्या-0590 वर्ष 2023 में जमानत पर रिहा किए जाने की प्रार्थना की है। आवेदक 16.10.2023 से जेल में है।

92. आवेदक की जमानत याचिका को विचारण न्यायालय ने 14.05.2024 को खारिज कर दिया था।

93. आवेदक की पहचान मुख्य अपराधी के रूप में की गई है जिसने अपने नाबालिग सौतेले बच्चे की हत्या कर दी और उसके शरीर को घर में स्थित एक टैंक में फेंक दिया। आवेदक की ओर इशारा करते हुए शव बरामद किया गया। आवेदक का अपराध करने का मकसद था। अपराध गंभीर है। संभावना है कि आवेदक ने अपराध किया था। इस स्तर पर, जमानत के लिए कोई मामला नहीं बनता है।

94. मामले के गुण-दोष में जाने के बिना, जमानत आवेदन **खारिज** किया जाता है।

95. आवेदक के अधिवक्ता का तर्क है कि परीक्षण घोंघे की गति से आगे बढ़ रहा है और प्रारंभिक निष्कर्ष का कोई संकेत नहीं दिखाता है। अभियोजन पक्ष आवेदक की कैद को लम्बा खींचने के लिए जानबूझकर मुकदमे के संचालन में देरी कर रहा है। मुकदमे में देरी के कई अन्य पहलुओं पर भी प्रकाश डाला गया है, जिसमें धारा 309 द०प्र०स० के जनादेश को ईमानदारी से लागू करने में विचारण न्यायालय की विफलता भी शामिल है। अन्य बाधाएं जो उत्तर प्रदेश राज्य में विचारण में देरी का कारण बनती हैं, जैसे कि पुलिस द्वारा समन को तुरंत तामील करने में विफलता और गवाहों को पेश करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए गए

बलपूर्वक उपायों को निष्पादित करने में विफलता को भी न्यायालय के ध्यान में लाया गया है। अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ अच्छी तरह से स्थापित हैं और उन्हें संबोधित किया जा सकता है।

96. अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय को मुकदमे में तेजी लाने का निर्देश देकर न्याय के हित की पूर्ति की जाएगी।

97. हालांकि दंड प्रक्रिया संहिता में मुकदमे को समाप्त करने के लिए कोई विशिष्ट समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है, फिर भी धारा 309 द०प्र०स० का विधायी इरादा स्पष्ट है। प्रावधान की योजना स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि विधायी इरादा एक त्वरित समय सीमा में परीक्षण को समाप्त करना है। इस मामले के तथ्यों में, विचारण न्यायालय मुकदमे को शीघ्रता से समाप्त करने के लिए सभी प्रयास करेगा। अधिमानतः विचारण न्यायालय इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तारीख से एक वर्ष के लिए मुकदमे को समाप्त करने के लिए एक उचित समय सीमा निर्धारित करेगा।

98. विचारण न्यायालय को आरोपी व्यक्तियों के अधिकारों के प्रति भी सचेत रहना होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए कानून के दायित्व के तहत है कि गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कानून के अनुसार सभी त्वरित, आवश्यक और बलपूर्वक उपाय अपनाए जाएं। अधिवक्ताओं या पक्षकारों को जो कार्यवाही में देरी करते हैं या बाधित करते हैं, उन्हें न केवल ऐसा करने से हतोत्साहित किया जाना चाहिए, बल्कि उचित मामलों में ऐसे पक्षों/अधिवक्ताओं पर अनुकरणीय लागत भी लगाई जानी चाहिए।

99. सभी गवाहों और अधिवक्ताओं को मुकदमे की कार्यवाही में सहयोग करने का निर्देश दिया जाता है।

100. विचारण न्यायालय धारा 62 द०प्र०स० के अनुसार नियमित प्रक्रिया द्वारा और धारा 69 द०प्र०स० के तहत प्रदान किए गए पंजीकृत डाक द्वारा भी मुकदमे में तेजी लाने के लिए समन जारी करेगा।

101. विचारण न्यायालय कानून के अनुसार सभी गवाहों के खिलाफ सभी सख्त जबरदस्ती के उपाय तुरंत करेगा जो मुकदमे की कार्यवाही में उपस्थित होने में विफल रहते हैं। अधिवक्ताओं या पक्षकारों को जो कार्यवाही में देरी करते हैं या बाधित करते हैं, उन्हें न केवल ऐसा करने से हतोत्साहित किया जाना चाहिए, बल्कि उचित मामलों में ऐसे पक्षों/अधिवक्ताओं पर अनुकरणीय लागत भी लगाई जानी चाहिए।

102. पुलिस प्राधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि गवाहों की उपस्थिति को तुरंत निष्पादित करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा किए गए कानून के अनुसार वारंट या कोई जबरदस्ती उपाय किए जाएं।

103. पुलिस उपायुक्त, गाजियाबाद विचारण न्यायालय द्वारा लिए गए वारंट/समन की तामील की स्थिति के संबंध में निर्धारित तारीख पर विचारण न्यायालय के समक्ष एक हलफनामा दायर करेंगे।

104. वैधानिक जनादेश के बावजूद मुकदमे में गवाहों की उपस्थिति को मजबूर करने के लिए समन जारी करने या जबरदस्ती के उपायों को निष्पादित करने में पुलिस अधिकारियों की विफलता के कारण मुकदमे में देरी गंभीर चिंता का विषय है। **भंवर सिंह @ करमवीर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और जितेंद्र बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए उक्त मुद्दा उठा था। भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने पुलिस अधिकारियों को उनके वैधानिक कर्तव्य के संबंध में कुछ निर्देश जारी किए थे कि वे गवाहों की उपस्थिति को मजबूर करने के लिए तुरंत समन जारी करें और दंडात्मक प्रक्रियाओं को निष्पादित करें।

105. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार के साथ-साथ प्रमुख सचिव (गृह), उत्तर प्रदेश सरकार ने **भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त)** में निर्णयों के अनुपालन में प्रासंगिक आदेश लिए थे और उक्त निर्णयों को लागू करने के लिए संबंधित जिलों के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को नोडल अधिकारी के रूप में नामित किया था।

106. अधिवक्ताओं के साथ-साथ विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय द्वारा **नूर आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में जारी निर्देशों का पालन करें। यदि मुकदमे के दौरान कोई हड़ताल होती है, तो विचारण न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि वह मुकदमे में देरी को रोकने के लिए नूर आलम (उपरोक्त) में जारी निर्देशों का पूर्ण अनुपालन सुनिश्चित करे।

107. यदि पुलिस अधिकारी भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा जारी निर्देशों का पालन करने में विफल रहे हैं और गवाहों की उपस्थिति के लिए मजबूर करने के लिए समन की तामील और बलपूर्वक उपायों के निष्पादन के संबंध में पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार और गृह सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के उक्त निर्देशों को लागू नहीं करते हैं, विचारण न्यायालय संबंधित वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक को इस संबंध में हलफनामा दायर करने का निर्देश देगा।

108. विचारण न्यायालय इस बात की जांच करने के लिए बाध्य होगा कि भंवर सिंह @ करमवीर (उपरोक्त) और जितेंद्र (उपरोक्त) में इस न्यायालय के निर्णयों के साथ-साथ पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश सरकार और गृह सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के निर्देशों को लागू किया गया है या नहीं और कानून के अनुसार उचित कार्रवाई की जाएगी।

109. विचारण न्यायालय भी इस तरह के शपथ पत्र की प्राप्ति के बाद कानून में उचित उपाय करेगा जिसमें संबंधित अधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से बुलाना शामिल हो सकता है।

110. यह भी निर्देश दिया जाता है कि यदि कोई अभियुक्त व्यक्ति, जिसे जमानत पर रिहा किया गया है, मुकदमे में सहयोग नहीं करता है या टालमटोल की रणनीति अपनाता है, तो विचारण न्यायालय इस आशय का निष्कर्ष दर्ज करेगा और इस न्यायालय का सहारा लिए बिना जमानत रद्द कर देगा।

111. विचारण न्यायाधीश मुकदमे की प्रगति और इस आदेश का पालन करने के लिए उठाए गए कदमों पर एक पाक्षिक रिपोर्ट विद्वान जिला न्यायाधीश को प्रस्तुत करेगा।

112. इस आदेश की एक प्रति निबंधक (अनुपालन) द्वारा विद्वान जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद के साथ-साथ पुलिस उपायुक्त, गाजियाबाद के माध्यम से विचारण न्यायाधीश को भी सूचित की जाएगी।

IX (B)। चाइल्ड केयर प्लान बनाने और आवेदक के नाबालिग बच्चे के अधिकारों का एहसास करने के निर्देश:

113. जिला मजिस्ट्रेट, जेल अधीक्षक, जिला झांसी के सी.डब्ल्यू.सी. को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए जाते हैं कि इस निर्णय में दिए गए निर्देशों के अनुसार उचित कदम उठाकर आवेदक के नाबालिग बच्चे के अधिकारों और हकदारियों का एहसास किया जाए। विशेष रूप से यह सुनिश्चित किया जाएगा कि बच्चे को जेल परिसर के बाहर स्थित स्कूल में प्रवेश दिया जाए। बच्चे का अन्य कैदियों (उसकी मां को छोड़कर) और जेल में रहने वाले समान स्थिति वाले बच्चों के माता-पिता के साथ कोई संपर्क नहीं होना चाहिए।

114. सुश्री ऋचा उपाध्याय, अतिरिक्त जिला न्यायाधीश/सचिव, डी.एल.एस.ए., गौतम बुद्ध नगर इस निर्णय के आलोक में जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी, झांसी के समन्वय से आवेदक के पुत्र के लिए एक व्यक्तिगत बाल देखभाल योजना तैयार करेंगी। विभिन्न अधिकारियों और विशेषज्ञों के साथ उचित परामर्श के बाद इस आदेश की एक प्रति प्राप्त होने की तारीख से दो महीने के भीतर बाल देखभाल योजना तैयार की जाएगी।

115. राज्य सरकार इस कार्य को पूरा करने के लिए सुश्री ऋचा उपाध्याय, एच.जे.एस/सचिव, डी.एल.एस.ए., गौतम बुद्ध नगर और जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी, झांसी को आवश्यक सहायता प्रदान करेगी। उक्त व्यक्तिगत बाल देखभाल योजना की प्रति जेल अधिकारियों, सी.डब्ल्यू.सी. और बी.एस.ए को प्रदान की जाएगी। जिला मजिस्ट्रेट, झांसी यह भी सुनिश्चित करेंगे कि उपरोक्त बाल देखभाल योजना को स्थानीय प्रशासन के संबंधित अधिकारियों द्वारा विधिवत लागू किया जाए।

116. सी.डब्ल्यू.सी., झांसी उपरोक्त योजना के कार्यान्वयन के संबंध में एक नियमित रिपोर्ट तैयार करेगा और संबंधित अधिकारियों को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

X. अनुपालन के लिए प्रतियों का संचलन

117. अतिरिक्त महाधिवक्ता निम्नलिखित प्राधिकारियों को आवश्यक अनुपालन के लिए इस निर्णय की प्रति की सेवा सुनिश्चित करने के लिए:

- i. प्रधान सचिव, महिला एवं बाल विकास, उत्तर प्रदेश सरकार।
- ii. प्रधान सचिव, कानून/कानूनी संस्मरणकर्ता, उत्तर प्रदेश सरकार।
- iii. पुलिस महानिदेशक, यूपी सरकार
- iv. प्रधान सचिव, (जेल), यूपी सरकार
- v. प्रधान सचिव (बेसिक शिक्षा), यूपी सरकार
- vi. प्रधान सचिव, स्वास्थ्य और चिकित्सा शिक्षा, UP सरकार
- vii. सभी जिलों में सी.डब्ल्यू.सी. के सदस्य
- viii. सभी जिला जेलों के जिला जेल अधीक्षक
- ix. सभी जिलों के पुलिस प्रमुख
- x. सभी जिलों के जिला परिवीक्षाधीन अधिकारी
- xi. निदेशक, जेटीआरआई, लखनऊ
- xii. जिला मजिस्ट्रेट, झांसी

118. महानिबंधक यह सुनिश्चित करें कि इस आदेश की एक प्रति सुश्री ऋचा उपाध्याय, अपर जिला न्यायाधीश/सचिव, डी.एल.एस.ए., गौतम बुद्ध नगर को प्रदान की जाए।

119. इस आदेश की एक हिन्दी में अनुवादित प्रति आवेदक को दी जाएगी।

(2025) 1 ILRA 53

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-29850 वर्ष 2020

श्रीधर प्रसाद

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420, 467, 468 और 120-बी - सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000 - धारा 66 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 362 (अब धारा 403, बीएनएसएस 2023) - जमानत - आदेश में संशोधन के लिए आवेदन - पोषणीयता - उच्च न्यायालय ने दिनांक 12.10.2020 के आदेश द्वारा आवेदक को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि हेतु समान राशि के दो जमानतदारों (एक उसके परिवार के सदस्यों का होना चाहिए) के साथ 1 लाख रुपये के निजी मुचलके पर जमानत पर रिहा कर दिया। (पैरा 2)

आवेदक ने तर्क दिया कि वह लंबे समय से जेल में बंद है और जमानत की व्यवस्था करने में असमर्थ है और मौद्रिक दायित्वों के बिना व्यक्तिगत बांड दाखिल करने पर रिहा किया जा सकता है। (पैरा-4)

अभिनिर्धारित, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक हालांकि पहले जमानत पर रिहा किया गया था, वह अपने परिवार के सदस्य की एक जमानत प्रदान करने की शर्त को पूरा न करने के कारण 15.07.2019 से हिरासत में है, शर्त में संशोधन के लिए प्रार्थना स्वीकार की गई - इस प्रकार, उक्त आवेदन को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने आक्षेपित आदेश में उल्लिखित शर्त को हटा दिया। (पैरा 15, 17)

पुनरीक्षण आवेदन की अनुमति है। (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य, 2017(15) एससीसी 67 में रिपोर्ट किया गया
2. हुसैनारा खातून और अन्य बनाम गृह, सचिव, बिहार राज्य, 1980 (1) एस.सी.सी. 81
3. आर. डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1996 (3) एस.सी.सी. 422
4. गिरीश गांधी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, रिट याचिका संख्या-149 वर्ष 2024, आदेश दिनांक 12.10.2020, (प्रस्तर-22, 23)
5. नारायण प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2019(14) एससीसी 726 में रिपोर्ट किया गया
6. संजीव कपूर बनाम चंदना कपूर और अन्य, 2020(13) 172 में रिपोर्ट की गई
7. 2023 लाइव्लॉ (एस.सी.) 945, (प्रस्तर-4, 5) में रिपोर्ट किया गया रामाधार साहू बनाम मध्य प्रदेश राज्य

(माननीय न्यायमूर्ति श्री आशुतोष श्रीवास्तव द्वारा उद्धोषित)

संदर्भ में: आपराधिक प्रकीर्ण पुनरीक्षण आवेदन

1. यह आवेदन आपराधिक विविध आवेदन संख्या 29850/2020 में पारित दिनांक 12.10.2020 के आदेश में संशोधन की मांग करता है, जिसमें परिवार के एक सदस्य को जमानतदार के रूप में रखने की शर्त को हटाने और आवेदक को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार समान राशि के किन्हीं दो जमानतदारों के साथ एक व्यक्तिगत बांड प्रस्तुत करने पर रिहा करने का निर्देश देने या मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए आवेदक के हित में कोई अन्य और आगे का आदेश पारित करने का अनुरोध किया गया है।

2. यह तर्क दिया गया है कि आवेदक ने थाना कोतवाली सिटी, जिला बिजनौर में धारा 420, 467, 468, 120-बी आईपीसी और सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66 के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 0816/2017 में नियमित जमानत के लिए उपर्युक्त आपराधिक विविध जमानत याचिका दायर की थी। इस न्यायालय ने दिनांक 12.10.2020 के आदेश द्वारा आवेदक को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि हेतु एक लाख रुपये के निजी मुचलके और समान राशि के दो जमानतदार (एक उसके परिवार के सदस्य का होना चाहिए) प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा करने की कृपा की।

3. यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक इस तथ्य के कारण जमानत प्राप्त नहीं कर पाया है कि वह इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.10.2020 के आदेश द्वारा जमानत प्रदान करते समय दिए गए निर्देशानुसार अपनी सुरक्षा के लिए परिवार के किसी सदस्य की व्यवस्था नहीं कर पाया है और 15.07.2019 से जेल में बंद है। उसके पिता का निधन हो चुका है और उसके परिवार में उसकी माँ और पत्नी, जो गृहिणी हैं, और दो बेटियाँ हैं, जिनमें से एक विशाखापत्तनम में कार्यरत है और दूसरी मुंबई में पढ़ाई कर रही है।

4. अधिवक्ता ने 2017 (15) एस.सी.सी. 67 में रिपोर्ट किए गए राकेश कुमार पॉल बनाम असम राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का हवाला देते हुए इस बात की पुष्टि किया है कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के मामलों में हमेशा औपचारिक या तकनीकी होना उचित नहीं होता है और आवेदक को जमानत आदेश का लाभ उठाने में सक्षम बनाने के लिए जमानत आदेश को प्रार्थना के अनुसार संशोधित किया जा सकता है। 1980 (1) एससीसी 81 (हुसैनारा खातून एवं अन्य बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य) और 1996 (3) एससीसी 422 (आर. डी. उपाध्याय बनाम आंध्र प्रदेश राज्य) पर भी भरोसा किया गया है। यह तर्क दिया गया है कि लंबे समय से जेल में बंद और जमानतदारों की व्यवस्था करने में असमर्थ अभियुक्तों को बिना किसी मौद्रिक दायित्व के व्यक्तिगत बांड दाखिल करने पर रिहा किया जा सकता है।

5. आवेदक के अधिवक्ता ने गिरीश गांधी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (रिट याचिका संख्या-149 वर्ष 2024) के मामले में शीर्ष न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर-22 की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसे यहां नीचे उद्धृत किया गया है कि दिनांक 12.10.2020 के आदेश को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाए।

"22. चाहे किसी व्यक्ति को ऋण लेन-देन के लिए गारंटर के रूप में खड़ा करना हो या किसी आपराधिक कार्यवाही में जमानत के रूप में, किसी व्यक्ति के लिए विकल्प बहुत सीमित होते हैं। यह अक्सर कोई करीबी

रिश्तेदार या पुराना दोस्त ही होता है। आपराधिक कार्यवाही में, दायरा और भी संकुचित हो सकता है क्योंकि सामान्य प्रवृत्ति अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए रिश्तेदारों और दोस्तों को आपराधिक कार्यवाही के बारे में नहीं बताने की होती है। ये हमारे देश में जीवन की कठोर वास्तविकताएँ हैं और एक न्यायालय के रूप में हम इनसे आँखें नहीं मूंद सकते। हालाँकि, समाधान कानून के दायरे में ही खोजना होगा।

23. प्राचीन काल से ही यह सिद्धांत रहा है कि अत्यधिक ज़मानत, ज़मानत नहीं है। ज़मानत देना और उसके बाद अत्यधिक और कठिन शर्तें लगाना, बाएँ हाथ से उस चीज़ को छीन लेना है जो दाएँ हाथ से दी गई है। अत्यधिक क्या है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ता को कई ज़मानतदार ढूँढ़ने में वास्तविक कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। ज़मानत पर रिहा हुए अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए ज़मानतदार आवश्यक हैं। साथ ही, जहाँ अदालत के सामने ऐसी स्थिति आती है जहाँ ज़मानत पर रिहा अभियुक्त, आदेशानुसार, कई मामलों में ज़मानतदार नहीं ढूँढ़ पाता, वहाँ ज़मानतदारों को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत उनके मौलिक अधिकारों के साथ संतुलित करने की भी आवश्यकता है। ऐसा आदेश जो अनुच्छेद 21 के तहत व्यक्ति के मौलिक अधिकार की रक्षा करे और साथ ही उपस्थिति की गारंटी भी दे, उचित और आनुपातिक होगा। ऐसा आदेश कैसा होना चाहिए, यह भी प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

6. एजीए द्वारा पुनरीक्षण आवेदन का पुरजोर विरोध किया गया है, यह प्रस्तुत करते हुए कि जमानत आदेश में संशोधन की मांग करने वाला आवेदन द०प्र०स० की धारा 362 द्वारा लगाए गए प्रतिबंध से प्रभावित है और इसलिए यह बनाए रखने योग्य नहीं है और उपाय कहीं और है।

7. मैंने आवेदक के विद्वान अधिवक्ता, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना है और संबंधित अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर गहन विचार किया है।

8. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 द०प्र०स० के अध्याय XXVII में निहित है, जो निम्नानुसार है: -

"362. न्यायालय निर्णय में परिवर्तन नहीं करेगा।

इस संहिता या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई भी न्यायालय, जब वह किसी मामले के निपटारे के लिए अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर देता है, तो लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें कोई परिवर्तन या समीक्षा नहीं करेगा।"

9. बीएनएसएस 2023 के अध्याय XXIV में निहित समतुल्य धारा 403 निम्नानुसार पढ़ें:-

"403. न्यायालय निर्णय में परिवर्तन नहीं करेगा।

इस संहिता या किसी अन्य वर्तमान कानून द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, कोई भी न्यायालय, जब वह किसी मामले के निपटारे के लिए अपने निर्णय या अंतिम आदेश पर हस्ताक्षर कर देता है, तो लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा उसमें कोई परिवर्तन या समीक्षा नहीं करेगा।"

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 362 (धारा 403 बीएनएसएस) द्वारा आपराधिक न्यायालय पर लगाया गया प्रतिबंध एक उद्देश्य और लक्ष्य के साथ है। आपराधिक न्याय प्रणाली आपराधिक न्यायालयों को लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि को ठीक करने के अलावा, मामले के निपटारे वाले निर्णय या अंतिम आदेश को बदलने या समीक्षा करने का अधिकार नहीं देती है। आपराधिक न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय या मामले के निपटारे वाले अंतिम आदेश पारित करने के बाद, न्यायालय पदेन कार्य करने योग्य हो जाता है और किसी भी गलती या स्पष्ट चूक को केवल कानून के अनुसार उपयुक्त मंच द्वारा ही ठीक किया जा सकता है।

11. द०प्र०स० की धारा 362/धारा 403 बीएनएसएस, 2023 में निहित अभिव्यक्ति "इस संहिता या तत्समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा अन्यथा प्रदान की गई है" में निम्नलिखित दो शर्तों में छूट दी गई है"-

(i) दंड प्रक्रिया संहिता/बीएनएसएस, 2023 द्वारा अन्यथा प्रदान किए गए प्रावधान को छोड़कर। (ii) तत्समय लागू कोई अन्य कानून।

12. धारा 362 सीआरपीसी, जिसमें धारा 403 बीएनएसएस समतुल्य है, की व्याख्या न्यायालयों द्वारा की गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने **नारायण प्रसाद बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2019(14) एससीसी 726** में रिपोर्ट किए गए मामले में यह माना है कि धारा 362 सीआरपीसी के तहत निषेध पूर्ण है; निर्णय पर हस्ताक्षर होने के बाद भी उच्च न्यायालय को धारा 482 सीआरपीसी के तहत अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए उसे बदलने/समीक्षा करने का कोई अधिकार या अधिकार क्षेत्र नहीं है। निर्णय में आगे कहा गया है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत अंतर्निहित शक्ति का उद्देश्य न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग से बचना और न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करना था। ऐसी शक्ति का प्रयोग ऐसा कुछ करने के लिए नहीं किया जा सकता जो संहिता के तहत स्पष्ट रूप से वर्जित है।

13. **संजीव कपूर बनाम चंदना कपूर और अन्य, 2020 (13) 172** के मामले में विभिन्न निर्णयों का विश्लेषण करने के बाद, हालांकि, यह माना गया कि धारा 362 सीआरपीसी में निहित प्रतिबंध को धारा 125 सीआरपीसी के तहत कार्यवाही में स्पष्ट रूप से शिथिल कर दिया गया था और धारा 125 सीआरपीसी के तहत पत्नी द्वारा शुरू की गई भरण-पोषण की कार्यवाही, जिसे अंततः धारा 125 पर समझौते की शर्तों के साथ निपटाया गया था, पति द्वारा शर्तों का पालन न करने पर पत्नी द्वारा वापस बुलाने की मांग करने वाले आवेदन पर पति और पत्नी को सही ढंग से बहाल किया गया था।

14. हाल ही में, शीर्ष न्यायालय ने 2023 लाइव्लॉ (एस.सी.) 945 में रिपोर्ट किए गए रामाधार साहू बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में कहा कि धारा 362 जो किसी निर्णय या अंतिम आदेश में संशोधन को प्रतिबंधित करती है, जमानत से इनकार करने के आदेश में लागू नहीं होगी।

सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर-यहां उद्धृत किए गए हैं: -

"4. आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय की राय यह है कि यदि उच्च न्यायालय ने समन्वय पीठ के पहले के आदेश में निर्दिष्ट शर्तों के अनुपालन के बिना अपीलकर्ता को जमानत दे दी है, तो यह आदेश में संशोधन का गठन करेगा और संहिता की धारा 362 किसी निर्णय या अंतिम आदेश के इस तरह के संशोधन को प्रतिबंधित करती है।

5. हालाँकि, जमानत से इनकार करने का आदेश स्वाभाविक रूप से एक मध्यवर्ती आदेश की कुछ विशेषताएँ रखता है, क्योंकि जिस संदर्भ में जमानत याचिका खारिज की जाती है, उसमें कुछ बदलाव या परिवर्तन हिरासत में लिए गए अभियुक्त को कुछ बदली हुई परिस्थितियों में जमानत के लिए नया आवेदन दायर करने का अधिकार प्रदान करता है। इस प्रकार, जमानत की प्रार्थना को अस्वीकार करने का आदेश न्यायालय को परिस्थितियों में किसी भी परिवर्तन की स्थिति में ऐसी याचिका पर नए सिरे से विचार करने से वंचित नहीं करता है। यदि उस कारक के आधार पर ऐसे बदलाव का मामला बनता है, तो जमानत की शर्तों में भी बदलाव किया जा सकता है। संहिता की धारा 362 में परिकल्पित निषेध ऐसे मामलों में लागू नहीं होगा। इसलिए, हमें नहीं लगता कि जिस तर्क के आधार पर अपीलकर्ता की जमानत याचिका को खारिज करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया गया था, उसे बरकरार रखा जा सकता है। आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है और मामला उच्च न्यायालय को वापस भेज दिया जाता है। उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता की जमानत याचिका इस आदेश में की गई हमारी टिप्पणियों के आलोक में उच्च न्यायालय द्वारा नए सिरे से जांच के लिए पुनर्जीवित की जाएगी।

15. उपरोक्त के मद्देनजर, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आवेदक को दिनांक 12.10.2020 के आदेश द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था, लेकिन वह अपने परिवार के सदस्य की जमानत देने की शर्त पूरी न करने के कारण हिरासत में है, मैं न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए शर्त में संशोधन के लिए प्रार्थना को स्वीकार करने के लिए इच्छुक हूँ।

16. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, संशोधन आवेदन की अनुमति है।

17. तदनुसार, दिनांक 12.10.2020 के आदेश की चौथी और 5वीं पंक्ति में इस हद तक संशोधन किया गया है कि "जमानतदार में से एक उसके परिवार के सदस्य का होना चाहिए" के रूप में उल्लिखित शर्त को एतद्वारा हटाया जाता है।

(2025) 1 ILRA 57

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या - 35494 वर्ष 2024

ओम प्रकाश कुशवाहा

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता: हिमांशु मिश्रा, कमलेश कुमार द्विवेदी, सुवंसित कुमार जैसवाल

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, विजय कुमार मिश्रा

क. आपराधिक कानून - भारतीय न्याय संहिता - धारा 64, 74 और 351 - साक्ष्य अधिनियम, 1875 - धारा 65बी - बलात्कार - सीसीटीवी फुटेज में आवेदक और पीड़िता की एक होटल में एक साथ मौजूदगी और व्हाट्सएप चैटिंग से यह साबित होता है कि आवेदक पीड़िता के भाई के खिलाफ दर्ज मामला वापस लेने का फायदा उठा रहा था और इसका इस्तेमाल उसने उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने के लिए किया। - एफआईआर संस्करण और बीएनएसएस की धारा 180 और 183 के तहत पीड़िता के बयान में कोई असंगति नहीं है। - प्रभाव - मेडिकल जांच रिपोर्ट से यह माना गया कि विरोध करने पर आवेदक ने पीड़िता की पिटाई की थी। मामले के उक्त तथ्यात्मक पहलुओं की पुष्टि होटल के सीसीटीवी फुटेज - व्हाट्सएप चैटिंग से होती है, जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65बी के तहत पीड़िता के प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित है। पीड़िता के उपरोक्त आरोप प्रथम दृष्टया पुष्ट होते हैं - आवेदक का कथित कृत्य पीड़िता के सर्वोच्च सम्मान पर गंभीर आघात है और उसके आत्मसम्मान और गरिमा को ठेस पहुँचाता है। यह पीड़िता को अपमानित और अपमानित करता है। उच्च न्यायालय को पीड़िता के बयान पर अविश्वास करने का कोई ठोस आधार नहीं मिला। (पैरा 6 और 8)

जमानत आवेदन खारिज (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह द्वारा दिया गया)

1. इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक ओम प्रकाश कुशवाहा, जो कि मुकदमा अपराध संख्या 402/2024, धारा 64, 74, 351 बीएनएस, थाना सिकंदरा, जिला आगरा में शामिल है, विचारण के दौरान जमानत की मांग करता है।

2. आवेदक के अधिवक्ता श्री केके द्विवेदी, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता श्री दीपक मिश्रा और प्रथम सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री विजय कुमार मिश्रा को सुना।

3. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, संक्षेप में, पीड़िता ने आवेदक के खिलाफ धारा 64, 74 और 351 बीएनएस के तहत कथित अपराध के लिए 19.07.2024 को प्राथमिकी दर्ज कराई गई, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ आरोप लगाया गया था कि आवेदक की उस पर बुरी नजर थी, लेकिन वह हमेशा उसे शुरू से ही भाई कहकर संबोधित करती थी। आरोपी की छोटी बेटी रितिका और उसका छोटा भाई अमन बचपन से दोस्त थे। जिसके चलते आवेदक उसके छोटे भाई को झूठे मामले में जेल भेजने में कामयाब रहा, जो नाबालिग है। उसके छोटे भाई की जमानत याचिका को उच्च न्यायालय ने 18 सितंबर 2023 को खारिज कर दिया, जिसका फायदा उठाते हुए 19 सितंबर 2023 को ओम प्रकाश कुशवाहा ने उसे फोन किया और उससे मिलने के लिए कहा। जब उसने उससे मिलने से इनकार कर दिया, तो आवेदक ने उसे धमकी दी कि अगर वह उससे मिलने नहीं आई, तो वह उसके बड़े भाई सलमान और देवर को भी झूठे मामले में फंसा देगा। डर के मारे वह सुभाष पार्क में आवेदक से मिलने गई, जहां आवेदक ने उसका हाथ पकड़कर कहा कि वह उसे बहुत पसंद करता है। अगर वह उससे शादी करती है, तो वह उसके लिए एक अलग फ्लैट खरीदेगा और उसके बाद ही वह उसके छोटे भाई के खिलाफ मामला वापस लेगा। जब उसने शादी करने से मना कर दिया तो आवेदक ने कहा कि अगर वह उससे शादी नहीं कर सकती तो उसके साथ शारीरिक संबंध बनाएं और वह केस वापस ले लेगा। ऐसे में आवेदक उसे हर रोज इस तरह से फोन करता था और उसे अलग-अलग जगहों पर मिलने के लिए बुलाता था। कई बार आवेदक उसे अपने भाई का केस वापस लेने का लालच देकर कार में मिलने के लिए बुलाता था और उसे अपनी पैंट (जींस) के अंदर हाथ डालने के लिए कहता था और जब वह उसके घर जाती थी तो वह उससे नग्न तस्वीरें मांगता था और व्हाट्सएप पर वीडियो कॉल करता था और उसे अपने कपड़े उतारने के लिए कहता था। हर बार वह एक ही बात कहता था कि अगर वह उसे खुश कर देगी तो वह उसके भाई का केस वापस ले लेगा। प्राथमिकी का आरोप है कि पीड़िता बहुत रोती है लेकिन आवेदक हर बार उसकी लाचारी का फायदा उठाता था। आवेदक ने कार में बैठे उसका अश्लील वीडियो बनाया और उन्हें वायरल करने की धमकी दी और उससे शारीरिक संबंध बनाने के लिए कहा। 18.07.2024 को, आवेदक ने उसे मिलने के लिए बुलाया और उसे गुरुद्वारे के सामने होटल सिकंदरा पिंड बलूची के कमरा संख्या-206 में ले गया, जहां उसने एक कागज पर लिखकर और हस्ताक्षर करके उसे होटल में विश्वास में ले लिया कि वह उसके भाई का मामला वापस ले लेगा और उसके साथ शारीरिक संबंध बनाएगा। उसने उसके साथ शारीरिक संभोग भी किया और अपना लिंग उसके मुंह में डाल दिया। उसका भाई सलमान और मां अफसाना मौके पर आए और होटल से 112 पर पुलिस को सूचना दी, जिस पर पुलिस

पीड़िता और आवेदक को सिकंदरा थाना-गेट ले आई। आवेदक की पत्नी और भाई उसे थाने के गेट से ही ले गए।

4. आवेदक के अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आवेदक को पीड़िता और उसके परिवार के सदस्यों के साथ दुश्मनी के कारण इस मामले में झूठा फंसाया गया है क्योंकि 02.06.2022 को उसने पीड़िता के भाई अमन खान के खिलाफ अपनी बेटी के अपहरण के लिए भ०द०वि० की धारा 363 और 366 के तहत थाना-जगदीशपुरा, आगरा में केस अपराध संख्या-0322 वर्ष 2022 में प्राथमिकी दर्ज की थी। इस बात पर जोर दिया गया है कि पीड़िता खुद आवेदक को उसके परिवार के सदस्यों को पूर्व सूचना देकर होटल ले गई थी। वरना परिवार के सदस्यों के होटल पहुंचने का कोई मौका नहीं था। इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि वास्तव में पीड़िता आवेदक पर अपने छोटे भाई के खिलाफ अपना मामला वापस लेने के लिए दबाव बढ़ा रही थी। विवेचनाधिकारी ने न तो निष्पक्ष विवेचना की है और न ही आवेदक के खिलाफ कोई ठोस सबूत एकत्र किया है। ऐसी कोई घटना नहीं हुई जैसा कि पीड़िता ने प्राथमिकी में आरोप लगाया है। पीड़िता को कभी भी उसके साथ शारीरिक संबंध रखने के लिए ब्लैकमेल या आतंकित नहीं किया गया था। आवेदक के कब्जे से कोई अश्लील तस्वीर या वीडियो या कोई इलेक्ट्रिक उपकरण बरामद नहीं किया गया था। आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है, इसलिए उसे जमानत पर रिहा किया जा सकता है।

5. इसके विपरीत, राज्य के लिए एजीए के साथ-साथ सूचनाकर्ता के अधिवक्ता ने आवेदक की जमानत के लिए प्रार्थना का जोरदार विरोध किया, जिसमें प्राथमिकी में उल्लिखित अभियोजन मामले को दोहराते हुए तर्क दिया गया कि आवेदक ने लगातार पीड़िता को फोन किया और समझौते के लिए दबाव डाला, यह शर्त रखते हुए कि इसके बदले में, उसे उसके साथ शारीरिक संबंध बनाना होगा। पीड़िता की 19.07.2024 को शाम लगभग 06:15 बजे चिकित्सकीय जांच की गई और उसके शरीर पर कई नरम पपड़ीदार घर्षण और लाल रंग के घाव के रूप में चार बाहरी चोटें पाई गईं। इसकी अवधि लगभग एक दिन पुरानी थी, जो अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि करती है। आरोपी-आवेदक (ओम प्रकाश कुशवाहा) को पीड़िता के साथ होटल में पकड़ा गया। आवेदक ने पीड़िता के भाई के खिलाफ दर्ज कराए गए मामले को वापस लेने के बहाने पीड़ित को बुलाया था। विवेचना के दौरान विवेचनाधिकारी ने होटल पिंड बलूची के सीसीटीवी फुटेज को इकट्ठा किया, जिसमें आवेदक और पीड़िता को होटल के रिसेप्शन पर एक साथ देखा गया और करीब 12:22 बजे होटल के कमरे संख्या-206 में गया और दोपहर 12:43 बजे तक वहीं रहा। यह भी बताया गया है कि पीड़िता और आरोपी-आवेदक के बीच व्हाट्सएप चैटिंग की सामग्री से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि आवेदक पीड़िता के भाई के खिलाफ उसके द्वारा दर्ज मामले को वापस लेने का फायदा उठा रहा था और उसके साथ शारीरिक संबंध बनाता था। आवेदक एक कुख्यात व्यक्ति है, इसलिए जमानत देने के मामले में, जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने और गवाहों और सबूतों के साथ छेड़छाड़ करने की पूरी संभावना है, इसलिए, आवेदक की जमानत याचिका खारिज की जा सकती है।

6. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने और मामले की पूरी तरह से जांच करने के बाद, मुझे लगता है कि आरोपी आवेदक के खिलाफ पीड़िता का मुख्य आरोप यह है कि आवेदक ने पीड़िता के भाई के खिलाफ अपना मामला

वापस लेने और समझौता करने के लिए यह शर्त रखी कि इसके बदले में उसे उसके साथ शारीरिक संबंध बनाना होगा। इस मामले के तथ्य बहुत दुर्लभ हैं। आवेदक द्वारा पीड़िता के भाई के खिलाफ दर्ज आपराधिक मामले से समझौता करने और वापस लेने का आश्वासन देने की आड़ में आरोपी द्वारा अपनी वासना को पूरा करने के लिए अपनाई गई कार्यप्रणाली अमानवीय और जघन्य कृत्य का एक उदाहरण है, जो एक महिला की निजता और शुद्धता के अधिकार पर गैरकानूनी घुसपैठ है। अभियोक्ता/पीड़िता ने प्राथमिकी में घटना का विशद विवरण देते हुए आवेदक के खिलाफ बलात्कार आदि के गंभीर आरोप लगाए हैं और बीएनएस की धारा 180 और 183 के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों में भी यही बात दोहराई गई है। जहां तक आवेदक द्वारा उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार/बलपूर्वक शारीरिक संबंध बनाने के आरोप का संबंध है, पीड़िता के आरोप में कोई विसंगति नहीं है। पीड़िता के बयान से, मुझे यह भी पता चलता है कि उसने अन्य बातों के साथ-साथ कहा है कि आवेदक ने अंततः 18.07.2024 को उसे होटल पिंड बलूची में मिलने के लिए बुलाया था। फिर उसने अपनी बहन तनीषा को बताया, जिसने उसे लाइव लोकेशन भेजने के लिए कहा और अपनी मां और भाई को सूचित किया, तभी उसकी मां और भाई वहां आए और पुलिस को 112 पर सूचना दी। होटल में अभियोक्ता/पीड़िता के साथ आवेदक की उपस्थिति को आवेदक की जमानत याचिका में आवेदक की ओर से स्वीकार किया गया है। मेडिकल जांच रिपोर्ट से पता चलता है कि विरोध करने पर आवेदक ने पीड़िता की पिटाई की। मामले के उक्त तथ्यात्मक पहलुओं की पुष्टि होटल के सीसीटीवी फुटेज, पीड़ित की 19.07.2024 की मेडिकल जांच रिपोर्ट और अभिलेखों पर मौजूद अन्य सामग्रियों से होती है। इतना ही नहीं, आवेदक-ओम प्रकाश कुशवाहा और पीड़िता के बीच व्हाट्सएप चैटिंग से, जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 65 बी के तहत पीड़ित के प्रमाण पत्र द्वारा समर्थित है, पीड़िता के उपरोक्त आरोपों की प्रथम दृष्टया पुष्टि होती है। उक्त व्हाट्सएप चैटिंग केस डायरी का एक हिस्सा है और इसे पीड़िता द्वारा अपने जवाबी हलफनामे के माध्यम से अभिलेखों पर दर्ज किया गया है, लेकिन पीड़िता की छवि को धूमिल करने से बचाने के लिए, यह न्यायालय उक्त अनुचित व्हाट्सएप चैटिंग की सामग्री का उल्लेख नहीं कर रहा है। आवेदक का कथित कृत्य पीड़िता के सर्वोच्च सम्मान के लिए गंभीर आघात है और उसके आत्मसम्मान और गरिमा को ठेस पहुंचाता है। यह पीड़िता को नीचा दिखाता है और अपमानित करता है, यह एक दर्दनाक अनुभव को पीछे छोड़ जाता है, एक बलात्कारी न केवल शारीरिक चोटों का कारण बनता है, बल्कि अधिक अमिट रूप से एक महिला की सबसे पोषित संपत्ति यानी गरिमा, सम्मान, प्रतिष्ठा और कम से कम उसकी शुद्धता पर एक धब्बा छोड़ देता है।

7. इस न्यायालय का यह भी विचार है कि आवेदक का पीड़िता की पारिवारिक चुनौतियों का लाभ उठाने और व्यक्तिगत लाभ के लिए उसका शोषण करने का कथित आचरण एक गंभीर अपराध है। आरोपी द्वारा गुप्त उद्देश्यों और उसकी वासना को प्राप्त करने के लिए एक कमजोर व्यक्ति की परिस्थितियों का शोषण एक ऐसा कार्य है जो संविधान में निहित न्याय और गरिमा के साथ जीने के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। पीड़िता के बयान में एक स्पष्ट तस्वीर को रेखांकित किया गया है कि आरोपी-आवेदक ने पीड़िता की कमजोर स्थिति का दुरुपयोग करते हुए उसे उसके साथ शारीरिक संबंध बनाने के अनिच्छुक कृत्यों में प्रवेश करने के लिए मजबूर किया, जो विवेचना के दौरान एकत्र किए गए सबूतों से स्पष्ट है।

8. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, इस स्तर पर, मुझे पीड़िता के बयान पर अविश्वास करने और आवेदक के झूठे निहितार्थ को मानने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

9. मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही ऊपर उल्लेख किए गए पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों को ध्यान में रखते हुए, आवेदक को सौंपी गई भूमिका, अपराध की गंभीरता, सजा की गंभीरता और जिस तरह से अपराध किया गया है, साथ ही साथ पीड़िता की सुरक्षा और गरिमा के लिए खतरा, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता।

10. तदनुसार, जमानत आवेदन खारिज कर दिया जाता है।

11. यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रस्तुत आदेश में निहित अवलोकन जमानत के मुद्दे तक ही सीमित है और मुकदमे की योग्यता को प्रभावित नहीं करेगा।

(2025) 1 ILRA 61

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-39835 वर्ष 2024

सूरज कुमार @ विश्वप्रताप सिंह

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

... प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

अखिलेश कुमार द्विवेदी

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता:

आर.ए. राम, श्याम चंद्र, शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय न्याय संहिता, 2023 - धारा 63, 65(2), 351(2) और 332(सी) - बलात्कार - यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 - धारा 3/4, 2(1)डी, 29 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा 180, 183 - जमानत - एफ.आई.आर के अनुसार, सूचनाकर्ता सुबह उठा, अपनी बेटी को

बिस्तर पर नहीं पाया - देखा कि एक और कमरा अंदर से बंद है और जब खिड़की से झाँका, उसने देखा कि आवेदक उसकी बेटी का मुँह दबाकर उसके साथ बलात्कार कर रहा है - जब सूचनाकर्ता चिल्लाया और अपनी पत्नी को बुलाया, तो आवेदक ने दरवाजा खोलकर उसे धक्का देकर भाग गया। (प्रस्तर-3)

आवेदक ने प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी 17 घंटे की देरी के बाद दर्ज की गई थी, बिना किसी बोधगम्य स्पष्टीकरण के, सूचनाकर्ता ने अपने बयान में अभियोजन पक्ष के मामले को दोहराया, लेकिन पीड़ित के मामले में विरोधाभास हैं। (प्रस्तर-4)

अभिनिर्धारित, पीड़िता के बयान के अवलोकन से, यह स्पष्ट था कि आवेदक उसे जबरन दूसरे कमरे में ले गया था, कमरे में बंद कर दिया था और उसके साथ दुर्व्यवहार किया था। (प्रस्तर-10)

पीड़िता की चिकित्सा जांच रिपोर्ट के अनुसार, किसी भी बल प्रयोग का कोई संकेत नहीं था, यह गलत था क्योंकि पूरक मेडिको-लीगल परीक्षा रिपोर्ट में है, एफएसएल रिपोर्ट की उपलब्धता पर अंतिम राय सुरक्षित रखी गई थी, यौन हिंसा से इनकार नहीं किया जा सकता है। - आवेदक को गलत तरीके से फंसाने और नाबालिग पीड़िता के अविश्वास को मानने के लिए अभिलेखों पर कोई सामग्री नहीं है। इस प्रकार आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई आधार नहीं है। (प्रस्तर-15, 18)

जमानत अर्जी खारिज (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. राम स्वरूप बनाम राजस्थान राज्य, 2004 विधि वाद (एस.सी.) 293
2. भारत के लिए अटॉर्नी जनरल बनाम सतीश और अन्य, (2021) 4 एस.सी.सी. 712
3. पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य, (1996) 2 एस.सी.सी. 384
4. मध्य प्रदेश राज्य बनाम महेंद्र उर्फ गोलू, (2022) 12 एस.सी.सी. 442
5. आंध्र प्रदेश राज्य बनाम बोडेम सुंदर राव, 1995 (6) एस.सी.सी. 230

(माननीय न्यायमूर्ति श्री संजय कुमार सिंह द्वारा दिया गया)

1-इस जमानत आवेदन के माध्यम से, आवेदक-सूरज कुमार उर्फ विश्वप्रताप सिंह, जो मुकदमा अपराध संख्या-188 वर्ष 2024 में शामिल है, बी.एन.एस. की धारा 65(2), 351(2), 332 (सी) और धारा 3/4 पॉक्सो अधिनियम, थाना- कैट, जिला प्रयागराज के तहत सुनवाई के लंबित रहने के दौरान जमानत की मांग करता है।

2-आवेदक के अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार द्विवेदी, राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता श्री दीपक मिश्रा, सूचनाकर्ता/शिकायतकर्ता की ओर से पेश हुए अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

3- वर्तमान जमानत आवेदन का आधार यह तथ्य है कि सूचक, जो पीड़िता का पिता है, ने 05.09.2024 को लगभग 23:20 बजे एक घटना के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई, जो उसी दिन लगभग 05:30 बजे धारा 65(2), 351(2) बी.एन.एस. और धारा 9/10 पोक्सो अधिनियम के तहत आवेदक के खिलाफ कथित अपराध के लिए हुई थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आरोप लगाया गया था कि सुबह, जब वह उठा, तो उसने अपनी बेटी को बिस्तर पर नहीं पाया। हालांकि, उसने देखा कि एक और कमरा अंदर से बंद था और जब उसने खिड़की से झांका, तो उसने देखा कि आवेदक अपनी बेटी का मुंह दबाकर उसके साथ बलात्कार कर रहा था। प्राथमिकी ने आगे आरोप लगाया कि जब सूचनाकर्ता ने चिल्लाकर अपनी पत्नी को फोन किया, तो आवेदक ने दरवाजा खोलकर उसे धक्का देकर भाग गया। इसके बाद सूचनाकर्ता ने महिला हेल्पलाइन संख्या-1090 की सहायता ली।

4-आवेदक के अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार यह है कि इस मामले में, प्रथम सूचना रिपोर्ट बिना किसी बोधगम्य स्पष्टीकरण के वर्ष 17 घंटे की देरी के बाद दर्ज की गई थी। इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि हालांकि सूचनाकर्ता ने धारा 180 बीएनएसएस के तहत अपने बयान में अभियोजन पक्ष के मामले को दोहराया है, जैसा कि प्राथमिकी में उल्लेख किया गया है, लेकिन धारा 180 और 183 बीएनएसएस के तहत दर्ज पीड़िता के बयानों में विरोधाभास है। इस संबंध में, यह आगे बताया जाता है कि प्राथमिकी में सूचनाकर्ता ने कहा है कि आवेदक उसकी बेटी के साथ बलात्कार कर रहा था, जबकि पीड़िता ने धारा 180 बीएनएसएस के तहत अपने बयान में कहा है कि आवेदक ने उसे जबरन निर्वस्त्र करने के बाद, उसके साथ छेड़छाड़ और दुष्कर्म करना शुरू कर दिया। पीड़िता ने धारा 183 बीएनएसएस के तहत अपने बयान में कहा है कि आवेदक ने उसे चीरहरण करने के बाद उसे अनुचित तरीके से छूना शुरू कर दिया और जब उसके पिता आए, तो आवेदक उसके पिता को धमकी देते हुए घटना स्थल से भाग गया। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर, यह तर्क देते हुए बहुत जोर दिया गया है कि पीड़िता ने अपने बयानों में विशेष रूप से यह नहीं कहा है कि उसकी योनि में लिंग का कोई प्रवेश था, इसलिए कोई यौन संबंध नहीं था, इसलिए, आवेदक के खिलाफ बलात्कार का कोई अपराध नहीं बनता है। केस डायरी में विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज की गई मेडिकल जांच रिपोर्ट का हवाला देते हुए, यह तर्क दिया गया है कि मेडिकल रिपोर्ट में किसी भी बल का कोई संकेत नहीं पाया गया था, इसलिए, अभियोजन पक्ष के मामले की पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से नहीं होती है। जमानत आवेदन के पैराग्राफ संख्या-16 और 17 का हवाला देते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक को 06.09.2024 को गिरफ्तार किया गया था, जबकि सही तथ्य यह है कि 05.09.2024 को सुबह लगभग 05:00 बजे, पहले सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों ने उसे जबरन घर के अंदर खींच लिया और उसके बाद, उन्होंने पुलिस को बुलाया और प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया। आवेदक के अधिवक्ता ने अपने तर्क के समर्थन में **राम स्वरूप बनाम राजस्थान राज्य, 2004 लॉ सूट (एससी) 293** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया। अंत में, आवेदक के अधिवक्ता

द्वारा यह प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदक के न्यायिक प्रक्रिया से भागने या अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोई संभावना नहीं है। आवेदक का कोई आपराधिक रिकॉर्ड नहीं है। आवेदक जो कानून का छात्र है, 06.09.2024 से जेल में बंद है, इसलिए वह जमानत पर रिहा होने का हकदार है।

5 - दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता के साथ-साथ शिकायतकर्ता की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता ने आवेदक के अधिवक्ता की दलीलों का जोरदार विरोध करते हुए तर्क दिया कि 05.09.2024 की घटना के दिन पीड़िता की आयु लगभग 11 वर्ष, 7 महीने और 27 दिन थी, इसलिए पॉक्सो अधिनियम की धारा 2(1)डी के अनुसार, वह एक छोटी बच्ची है। पीड़िता के पिता अपने ही घर में हुई घटना के चशमदीद गवाह हैं। यह तर्क देते हुए बहुत जोर दिया गया है कि पीड़िता ने धारा 180 और 183 बीएनएसएस के तहत अपने बयानों में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है और घटना का विशद विवरण देते हुए आवेदक के खिलाफ अपनी गरिमा को भंग करने का विशिष्ट आरोप लगाया है। यह भी तर्क दिया जाता है कि आवेदक का कार्य और आचरण, जैसा कि प्राथमिकी में उल्लिखित है और पीड़िता के बयान, स्पष्ट रूप से बलात्कार की परिभाषा के पूर्ववलोकन के अंतर्गत आते हैं। अपर शासकीय अधिवक्ता **भारत के अटॉर्नी जनरल बनाम सतीश और अन्य (2021) 4 एस.सी.सी. 712** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए, प्रस्तुत करते हैं कि बलात्कार के अपराध का गठन करने के लिए, लिंग के प्रवेश की आवश्यकता नहीं है। यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि पॉक्सो अधिनियम की धारा 29 के मद्देनजर, न्यायालय यह मानेगा कि अभियुक्त ने अपराध किया है जब तक कि अपराधी द्वारा इसके विपरीत साबित न हो जाए। अपराध की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, आवेदक की जमानत याचिका खारिज की जा सकती है।

6-आगे बढ़ने से पहले, भारतीय न्याय संहिता (बी.एन.एस.) की धारा 63 को उद्धृत करना उचित होगा।

बीएनएस की धारा 63

कहा जाता है कि एक आदमी "बलात्कार" करता है यदि वह करता है---

(ए) किसी भी सीमा तक अपने लिंग को किसी महिला की योनि, मुंह, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रवेश कराता है या उसे अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

(ख) किसी भी सीमा तक किसी वस्तु या शरीर के किसी भाग को, जो लिंग नहीं है, किसी महिला की योनि, मूत्रमार्ग या गुदा में प्रविष्ट कराता है या उसे अपने साथ या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

(ग) किसी महिला के शरीर के किसी भी हिस्से से छेड़छाड़ करता है ताकि योनि, मूत्रमार्ग, गुदा या शरीर के किसी भी हिस्से में प्रवेश हो सके या उसे अपने या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है; या

(घ) किसी महिला की योनि, गुदा, मूत्रमार्ग पर अपना मुंह लगाता है या उसे निम्नलिखित सात विवरणों में से किसी के तहत आने वाली परिस्थितियों में उसके या किसी अन्य व्यक्ति के साथ ऐसा करने के लिए मजबूर करता है:

(i) उसकी इच्छा के विरुद्ध;

(ii) उसकी सहमति के बिना;

(iii) उसकी सहमति से, जब उसकी सहमति उसे या किसी ऐसे व्यक्ति को जिसमें वह रुचि रखती है, मृत्यु या चोट के डर से प्राप्त की गई हो;

(iv) उसकी सहमति से, जब पुरुष जानता है कि वह उसका पति नहीं है और उसकी सहमति इसलिए दी गई है क्योंकि वह मानती है कि वह कोई दूसरा पुरुष है जिसके साथ वह विधिपूर्वक विवाहित है या होने का विश्वास करती है;

(v) उसकी सहमति से, जब ऐसी सहमति देते समय, मानसिक विकृति या नशे के कारण या उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से या किसी अन्य के माध्यम से किसी मादक या अस्वास्थ्यकर पदार्थ के प्रशासन के कारण, वह उस चीज की प्रकृति और परिणामों को समझने में असमर्थ है जिसके लिए वह सहमति देती है;

(vi) उसकी सहमति से या उसके बिना, जब वह अठारह वर्ष से कम आयु की हो;

(vii) जब वह सहमति संप्रेषित करने में असमर्थ हो।

7-अब वर्तमान मामले पर आते हैं, जहां तक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने में देरी के संबंध में आवेदक के अधिवक्ता के पहले तर्क का संबंध है, उसी पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **पंजाब राज्य बनाम गुरमीत सिंह और अन्य, (1996) 2 एस.सी.सी. 384** के मामले में चर्चा की गई है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ इस प्रकार है: -

"हमारी राय में प्राथमिकी दर्ज करने में भी कोई देरी नहीं हुई और अगर कुछ देरी हुई तो इसे न केवल अभियोजन पक्ष द्वारा ठीक से समझाया गया है, बल्कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में भी यह स्वाभाविक है। अदालतें इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकती हैं कि यौन अपराधों में प्राथमिकी दर्ज करने में देरी कई कारणों से हो सकती है, विशेष रूप से उसके परिवार के सदस्यों के अभियोक्ता की पुलिस के पास जाने और घटना के बारे में शिकायत करने की अनिच्छा जो अभियोक्ता की प्रतिष्ठा और उसके परिवार के सम्मान से संबंधित है। यौन अपराध की शिकायत भी आमतौर पर शांत रहने के बाद ही दर्ज की जाती है।

8-जहां तक आवेदक के अधिवक्ता का दूसरा तर्क है कि बीएनएसएस की धारा 180 और 183 के तहत पीड़िता के बयान में विरोधाभास हैं, इसलिए अभियोजन पक्ष का मामला अविश्वास करने योग्य है, इसे गलत माना जाता है, क्योंकि पीड़िता ने बीएनएसएस की धारा 180 और 183 के तहत अपने बयानों में, विशेष रूप से कहा गया है कि आवेदक ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था और उसके पिता को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी भी दी थी।

9-बेहतर मूल्यांकन के लिए, धारा 180 और 183 बीएनएसएस के तहत पीड़ित के बयान नीचे दिए गए हैं: -

बीएनएसएस की धारा 180 के तहत पीड़िता का बयान

"मैं गौरव पब्लिक स्कूल में पढ़ती हूँ क्लास 4 में पढ़ रही हूँ 3 वर्ष पूर्व मैं स्कूल आते जाते समय सूरज नाम का लड़का मेरा पीछा करता था यह बात मैंने अपनी मम्मी पापा को बताया तो मेरे पापा मुझे स्कूल छोड़ने व लेने जाते थे दि० 05/09/24 की सुबह 5 बजे मैं वशरूम गयी थी वापस आयी तो सूरज मेरे घर में घुस आया और मुंह दबाकर कर पटक दिया और मेरे कपडे उतार दिये और जोर जबरदस्ती कर अश्लील हरकत करते हुए मेरे साथ गलत काम करने लगा और धमकी दिया कि इस बात को अगर किसी से बताया तो जान से मार दूंगा मैं काफी डरी हुई थी मैं काफी देर तक वशरूम से नहीं आयी तो मेरे पापा मुझे इधरउधर ढूँढने लगे तो दूसरा रूम बंद था। मेरे पिता जी ने खिड़की से देखा तो सूरज मेरे साथ मुंह दबाकर गलत काम कर रहा था मेरे पापा ने दरवाजा जोरजोर से खटखटाया तो सूरज धमकी देते हुए बोल कि अगर ये बात पुलिस या किसी को बताया तो जान से मार दूंगा मैंने दौड़कर दरवाजा खोल दिया और सूरज धमकी देते हुए मुझे धक्का देकर वहा से भाग गया मेरे पापा ने पुलिस को फोन किया हम लोग बहुत डरे हुए थे। "

बीएनएसएस की धारा 183 के तहत पीड़िता का बयान

"दिनांक 05.09.2024 को मैं सुबह 5.30 बजे वाशरूम गयी थी फिर जब वापस अपने कमरे मे जाने लगी तो पीछे से सूरज आया मेरे घर का दरवाजा खुला था सूरज ने मुझे पकड़ लिया बेड पर पटक दिया । मेरे कपडे उतारे और मुझे छुने लग तभी मेरे पापा अचानक से आ गये तो उसने पापा को जान से मारने की धमकी दी और भाग गया।"

10-धारा 180 और 183 बीएनएसएस के तहत पीड़िता के बयानों के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि आवेदक उसे जबरन दूसरे कमरे में ले गया था, कमरे में कुंडी लगा दिया था और उसके साथ दुर्व्यवहार किया था।

11-इस न्यायालय का विचार है कि पीड़िता ने धारा 180 और 183 बीएनएसएस के तहत दर्ज किए गए अपने उपरोक्त बयानों में जो कहा उसका अर्थ एक ही है। यहां तक कि ईमानदार और सच्चे गवाहों का बयान भी कुछ विवरणों में भिन्न हो सकता है क्योंकि अवलोकन, प्रतिधारण और पुनरुत्पादन की शक्ति व्यक्तियों के साथ भिन्न होती है। यह सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपनी स्थानीय भाषा में अपने शब्दों और भावनाओं को व्यक्त करने का एक अलग तरीका होता है। पीड़िता द्वारा किया गया खुलासा स्पष्ट रूप से आम बोलचाल में यौन कृत्य को दर्शाता है। यह अच्छी तरह से तय है कि छोटी-मोटी विसंगतियां जो अभियोजन पक्ष के मूल संस्करण को हिलाती नहीं हैं, उन्हें खारिज नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए आवेदक के अधिवक्ता का तर्क कि भौतिक विरोधाभास हैं और मामले के तथ्यों के तहत, बलात्कार का कोई अपराध नहीं बनता है, इस स्तर पर स्वीकार किए जाने के लिए उत्तरदायी नहीं है।

12-आवेदक के अधिवक्ता का तीसरा तर्क कि चूंकि पीड़िता ने अपने बयानों में विशेष रूप से यह नहीं कहा है कि उसकी योनि में लिंग का कोई प्रवेश था, इस प्रकार, आवेदक के खिलाफ बलात्कार का कोई अपराध नहीं बनता है, इस न्यायालय का विचार है कि उक्त मुद्दे पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम महेंद्र उर्फ गोल् (2022) 12 एस.सी.सी. 442 के मामले में पहले ही चर्चा की जा चुकी है जहां सर्वोच्च न्यायालय ने बलात्कार करने के लिए 'तैयारी' और 'प्रयास' के बीच अंतर निर्धारित किया है और अपराध के कमीशन के तीन चरणों की व्याख्या की है, जो इस प्रकार हैं: -

"यह आपराधिक न्यायशास्त्र का स्थापित प्रस्ताव है कि हर अपराध में, पहला, मेन्स रिया (करने का इरादा), दूसरा, इसे करने की तैयारी और तीसरा, प्रतिबद्ध करने का प्रयास होता है। यदि तीसरा चरण, अर्थात् 'प्रयास' सफल होता है, तो अपराध पूरा हो जाता है। यदि प्रयास विफल हो जाता है, तो अपराध पूरा नहीं होता है, लेकिन कानून अभी भी उक्त कार्य का प्रयास करने के लिए व्यक्ति को दंडित करता है। 'यदि प्रयास विफल हो जाता है, तो अपराध पूरा नहीं होता, लेकिन कानून फिर भी उक्त कृत्य का प्रयास करने वाले व्यक्ति को दंडित करता है। 'प्रयास' दंडनीय है क्योंकि अपराध के असफल होने से भी पहले मनःस्थिति, नैतिक अपराधबोध होता है, और सामाजिक मूल्यों पर इसका विनाशकारी प्रभाव वास्तविक कृत्य से कम नहीं होता।

13-इस मामले में, आवेदक के खिलाफ आरोप कि उसने पीड़िता के साथ गलत काम किया था, इसे करने के प्रयास से परे चरण के अंतर्गत आता है, जैसे, आवेदक धारा 63 बीएनएस के तहत दंडनीय अपराध का दोषी है। यहां तक कि, तर्क के लिए, यह माना जाता है कि कोई प्रवेश नहीं था, फिर भी आवेदक धारा 65 (2) बीएनएस के तहत दंडित होने के लिए उत्तरदायी है क्योंकि पीड़ित की आयु 12 वर्ष से कम है। अभियुक्त का उक्त कार्य बीएनएस की धारा 63 के तहत प्रदान की गई बलात्कार की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

14-माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आंध्र प्रदेश राज्य बनाम बोडेम सुंदर राव, 1995 (6) एससीसी 230 में महिलाओं के खिलाफ यौन अपराध के मामलों से निपटने के दौरान न्यायालयों को निम्नलिखित शब्दों में चेतावनी दी है:

'यौन हिंसा एक अमानवीय कृत्य होने के अलावा एक महिला की निजता और पवित्रता के अधिकार में गैरकानूनी घुसपैठ है। यह उनके सर्वोच्च सम्मान के लिए एक गंभीर झटका है और उनके आत्मसम्मान और गरिमा को ठेस पहुंचाता है। यह पीड़िता को नीचा दिखाता है और अपमानित करता है और जहां पीड़िता एक असहाय मासूम बच्ची होती है, वहां यह एक दर्दनाक अनुभव छोड़ जाता है। इसलिए, न्यायालयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे महिलाओं के प्रति यौन अपराध के मामलों को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ देखें। ऐसे मामलों से सख्ती से और गंभीरता से निपटने की जरूरत है।

15- आवेदक के अधिवक्ता का अंतिम तर्क कि पीड़ित की चिकित्सा जांच रिपोर्ट के अनुसार, किसी भी बल का कोई संकेत नहीं था, यह गलत है क्योंकि पीड़ित की पूरक चिकित्सा-कानूनी परीक्षा रिपोर्ट में है, एफएसएल

रिपोर्ट की उपलब्धता पर अंतिम राय लंबित है और यौन हिंसा से इनकार नहीं किया जा सकता है। आज की तारीख में, मुझे आवेदक के झूठे निहितार्थ को मानने और नाबालिग पीड़िता के बयानों पर अविश्वास करने के लिए अभिलेखों पर कोई सामग्री नहीं मिली है, जो बलात्कार के मामलों में आरोपी की जमानत याचिका पर विचार करने के लिए प्राथमिक है।

16- आवेदक के अधिवक्ता द्वारा भरोसा किए गए **राम स्वरूप (उपरोक्त)** में, अ०सा०-एस 8 और 9 द्वारा वर्णित हमले की प्रकृति मेडिकल रिपोर्ट के साथ असंगत थी। इसके अलावा, बयान के दौरान अ०सा०-8 द्वारा दिया गया संस्करण प्राथमिकी में उल्लिखित संस्करण से काफी अलग था। जबकि इस मामले में पीड़िता और सूचनाकर्ता का बयान बरकरार रहता है। इसलिए, उक्त मामला इस मामले के तथ्यों पर अलग है, इसलिए यह आवेदक के लिए सहायक नहीं है। इस न्यायालय का यह भी विचार है कि प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों पर निर्भर करता है और एक मामले और दूसरे मामले के बीच घनिष्ठ समानता पर्याप्त नहीं है क्योंकि एक भी महत्वपूर्ण विवरण पूरे पहलू को बदल सकता है। परिस्थितिजन्य लचीलेपन के आलोक में, एक अतिरिक्त या भिन्न तथ्य दो मामलों में निष्कर्ष के बीच एक शब्द का अंतर पैदा कर सकता है।

17-न्यायालय को अभियोक्ता के साक्ष्य की मूल्यांकन करते समय देश में, विशेष रूप से ग्रामीण भारत में प्रचलित मूल्यों को ध्यान में रखना चाहिए। लड़की के लिए यौन उत्पीड़न का शिकार होने की झूठी कहानी के साथ आना असामान्य होगा ताकि एक निर्दोष व्यक्ति को फंसाया जा सके। हमारे देश में, यौन आक्रामकता की शिकार एक नाबालिग लड़की किसी को झूठा फंसाने के बजाय चुपचाप पीड़ित होना पसंद करेगी। बलात्कार पीड़िता का कोई भी बयान उसके लिए बेहद अपमानजनक अनुभव होता है और जब तक वह यौन अपराध का शिकार नहीं होती है, तब तक वह असली अपराधी के अलावा किसी को दोषी नहीं ठहराएगी।

18-मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही पक्षों की ओर से प्रस्तुत तर्कों, अपराध की गंभीरता, आवेदक को सौंपी गई भूमिका और सजा की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, मुझे आवेदक को जमानत पर रिहा करने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है।

19-तदनुसार, जमानत आवेदन **खारिज** कर दिया जाता है।

20-यह स्पष्ट किया जाता है कि ऊपर की गई टिप्पणियां इस जमानत आवेदन के निर्धारण की सीमा तक सीमित हैं और किसी भी तरह से मामले के गुण-दोष पर अभिव्यक्ति के रूप में नहीं मानी जाएंगी।

21-विचारण न्यायालय पक्षों द्वारा पेश किए जाने वाले साक्ष्य के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होगा।

(2025) 1 ILRA 66

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति कृष्ण पहल

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-41474 वर्ष 2024

सर्वजीत सिंह

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिपक्षी

आवेदक के लिए अधिवक्ता:

मयंक मोहन दत्त मिश्रा, सुधांशु पांडेय

प्रतिपक्षी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 और 307- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 439-जमानत - दूसरी जमानत याचिका - लंबी कैद - मुकदमे में देरी - भारत के संविधान का अनुच्छेद 21 - 7 साल और 9 महीने से अधिक समय से आरोपी हिरासत में - उच्चतम न्यायालय के समक्ष द०प्र०स० की धारा 319 के तहत समन आदेश को चुनौती देने के लंबित होने के कारण मुकदमा रुका रहा - केवल 16 में से 3 अभियोजन गवाहों की जांच की गई - निकट में विचारण के समापन की कोई संभावना नहीं भविष्य - मुकदमे में प्रगति के बिना लंबे समय तक हिरासत में रखना अनुच्छेद 21 के तहत त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन है - जमानत को सजा के रूप में नहीं रोका जाना चाहिए - जमानत दी गई। (प्रस्तर-15, 16, और 17)

अभिनिर्धारित:

यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है। आवेदक के न्याय से भागने या न्याय के प्रविधि को बाधित करने या अपराधों को दोहराने या गवाहों को डराने आदि के रूप में अन्य परेशानी पैदा करने का कोई भौतिक विवरण या परिस्थितियां विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा नहीं दिखाई गई हैं। (प्रस्तर-15)

यह बेहद अफसोस की बात है कि आवेदक लगभग सात साल और नौ महीने से जेल में बंद है, 25.10.2019 से मुकदमा स्थिर है। इस तरह की लंबे समय तक कैद रहना, मुकदमे में प्रगति की पूर्ण कमी के साथ, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत त्वरित सुनवाई के आवेदक के मौलिक अधिकार का गंभीर उल्लंघन है। इन परिस्थितियों में आवेदक को हिरासत में रखना, जब निकट भविष्य में मुकदमे के समाप्त होने की कोई वास्तविक संभावना नहीं है, अन्यायपूर्ण और अनुचित दोनों हैं। न्याय की मांग है कि आवेदक की निरंतर हिरासत पर पुनर्विचार किया जाए, और बिना किसी देरी के उचित राहत दी जाए। (प्रस्तर-16)

पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, प्रस्तुत मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क्योंकि तीन आरोपी व्यक्ति अभी भी फरार हैं, निकट भविष्य में मुकदमे के निष्कर्ष की कोई संभावना नहीं है और तथ्य यह है कि सोलह गवाहों की जांच की जानी है, जिनमें से तीन की जांच की जा चुकी है; इसके अलावा, द०प्र०स० की धारा 319 के तहत अतिरिक्त अभियुक्तों को तलब करने के मामले में, पहले से ही जांच किए गए गवाहों की स्थिति को फिर से दर्ज किया जाना है और मुकदमा लगभग नए सिरे से आगे बढ़ेगा और मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक ने जमानत के लिए मामला बनाया है। जमानत आवेदन की अनुमति दी गई। (प्रस्तर-17)

जमानत आवेदन की अनुमति दी गई। (ई-14)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. जावेद गुलाम नबी शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2024 आईएनएससी 645
2. गुडिकांति नरसिम्हलु बनाम लोक अभियोजक, (1978) 1 एस.सी.सी. 240
3. गुरबखश सिंह सिब्बिया बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एस.सी.सी. 565 ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, (2014) 2 एस.सी.सी. 1
4. हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य, (1980) 1 एस.सी.सी. 81
5. भारत संघ बनाम के.ए. नजीब, (2021) 3 एस.सी.सी. 713
6. मोहम्मद मुस्लिम बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र), 2023 आईएनएससी. 311
7. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई, (2022) 10 एस.सी.सी. 51
8. इंद्राणी प्रतिम मुखर्जी बनाम सीबीआई, 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 695
9. वी. सैथिल बालाजी बनाम उप निदेशक, ईडी, 2024 आईएनएससी. 739
10. शेख जावेद इकबाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 लाइव लॉ (एस.सी.) 486
11. पार्थ चटर्जी बनाम ईडी, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 3729

(माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल द्वारा दिया गया)

1. सूची को संशोधित किया गया है।

2. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा दायर जवाबी हलफनामे को अभिलेखों पर लिया जाता है।

3. आवेदक के अधिवक्ता श्री मयंक मोहन दत्त मिश्रा और श्री सुधांशु पांडेय के साथ-साथ राज्य के लिए विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री सुनील कुमार को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

4. आवेदक सत्र न्यायाधीश/ई.सी. एक्ट, गोरखपुर की न्यायालय में लंबित सत्र परीक्षण संख्या 480/2017 (राज्य बनाम सर्वजीत सिंह) में जमानत चाहता है, जो मुकदमा अपराध संख्या 156/2017, धारा 302, 307 आई.पी.सी., थाना- झंगहा, जिला-गोरखपुर के तहत विचारण के लंबित रहने के दौरान उत्पन्न हुआ है।

5. आवेदक की ओर से यह दूसरी जमानत याचिका है। इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-33241 वर्ष 2020 में पारित दिनांक 3.12.2020 के आदेश के माध्यम से पहली जमानत याचिका को खारिज कर दिया था।

6. आवेदक के अधिवक्ता ने कहा है कि मुकदमा आगे नहीं बढ़ रहा है और रुका हुआ है। निकट भविष्य में विचारण के समापन की कोई संभावना नहीं है। आवेदक 23.5.2017 से यानी सात साल और नौ महीने से अधिक की अवधि के लिए जेल में है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित आवेदक के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होता है क्योंकि उसे बिना किसी गलती के काफी समय के लिए जेल में रखा गया है। आवेदक परीक्षण में सहयोग करने के लिए तैयार है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

7. इसके विपरीत, जमानत आवेदन का इस आधार पर विरोध किया गया है कि आवेदक मुख्य आरोपी व्यक्ति है क्योंकि यह वह था जिसने मृतक व्यक्ति पर गोली चलाई थी जिससे उसकी मृत्यु हो गई थी।

8. इस न्यायालय ने संबंधित विचारण न्यायालय से मुकदमे की स्थिति मांगी थी और अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (ईसी अधिनियम), गोरखपुर की दिनांक 10.12.2024 की रिपोर्ट अभिलेखों पर है। उक्त रिपोर्ट के अवलोकन से निम्नानुसार पता चलता है:

(i) इस मामले में अंतिम रिपोर्ट (चार्जशीट) 16.8.2017 को दायर की गई थी और 25.1.2018 को आरोप तय करने के बाद, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य दर्ज किए गए थे।

(ii) तथ्य के तीन गवाहों, पीडब्लू-1 राम बिलास यादव (मुखबिर), पीडब्लू-2 फरचीना देवी (घायल) और पीडब्लू-3 कमलेश, की न्यायालय में क्रमशः 5.2.2018, 5.6.2018 और 6.12.2018 को जांच की गई, और उसके बाद

अभियोजन पक्ष ने अन्य आरोपियों को बुलाने के लिए सीआरपीसी की धारा 319 के तहत एक आवेदन दिया, जिन्हें विवेचना के दौरान पुलिस ने दोषमुक्त कर दिया था, जिसे विचारण न्यायालय ने 23.7.2019 के आदेश के तहत अनुमति दे दी और अन्य पांच आरोपियों, अर्थात् सूर्य नाथ सिंह, पिकल सिंह, वरुधन सिंह, अर्जुन सिंह और मीना सिंह को आईपीसी की धारा 147, 148, 149, 302, 307, 323, 504, 506 के तहत तलब किया।

(iii) उपरोक्त आरोपी व्यक्तियों ने एसएलपी संख्या-9360 वर्ष 2019 दाखिल करके सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उक्त समन आदेश को चुनौती दी। उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 25.10.2019 के अपने आदेश के तहत अवर न्यायालय की कार्यवाही पर रोक लगाने का आदेश दिया है।

(iv) विचारण न्यायालय ने दिनांक 8.12.2023 के अपने आदेश के तहत द०प्र०स० की धारा 319 के तहत तलब किए गए उक्त पांच आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया, इस प्रकार, विचारण न्यायालय के उक्त आदेश को भी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष रखा गया था और उस पर फिर से रोक लगा दी गई थी।

(v) सर्वोच्च न्यायालय ने दिनांक 21.2.2024 के अपने आदेश के माध्यम से उक्त एसएलपी का निस्तारण किया, इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने फिर से दिनांक 21.3.2024 के आदेश के माध्यम से उक्त 05 आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए। इस बीच, न्यायालय को सूचित किया गया कि आरोपी व्यक्तियों में से एक, अर्थात् अर्जुन सिंह की मृत्यु हो गई है, इसलिए उसकी मृत्यु रिपोर्ट सत्यापन के लिए भेजी गई थी।

(vi) समन किए गए पांच अभियुक्तों में से एक, सूर्य नाथ सिंह ने 13.9.2024 को अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उनकी जमानत याचिका 18.9.2024 को निपटा दी गई, लेकिन इस न्यायालय द्वारा दिनांक 12.11.2024 के आदेश द्वारा उनकी जमानत याचिका को स्वीकार कर लिया गया।

निष्कर्ष:

9. **जावेद गुलाम नबी शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य**¹ मामले में आरोपी की जमानत की अनुमति देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"7. पक्षों की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों पर मौजूद सामग्री को देखने के बाद, हम निम्नलिखित पहलुओं को ध्यान में रखते हुए अपीलकर्ता के पक्ष में अपने विवेक का प्रयोग करने के इच्छुक हैं:

(i) अपीलकर्ता पिछले चार वर्षों से विचाराधीन कैदी के रूप में जेल में है;

(ii) आज की तारीख तक, विचारण न्यायालय आरोप तय करने के लिए भी कार्यवाही नहीं कर पाया है; और

(iii) जैसा कि राज्य और एनआईए की ओर से पेश अधिवक्ता ने बताया है, अभियोजन पक्ष कम से कम अस्सी गवाहों से पूछताछ करने का इरादा रखता है।

8. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें आश्चर्य है कि मुकदमा अंततः कब तक समाप्त होगा। अपराध चाहे कितना भी गंभीर क्यों न हो, अभियुक्त को भारत के संविधान के तहत शीघ्र सुनवाई का अधिकार है।

9. समय के साथ, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय कानून के एक बहुत अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत को भूल गए हैं कि जमानत को सजा के रूप में नहीं रोका जाना चाहिए।

10. उपरोक्त संदर्भ में, हम विचारण न्यायालयों और उच्च न्यायालयों को याद दिला सकते हैं कि इस न्यायालय ने गुडिकांति नरसिम्हलु और अन्य बनाम लोक अभियोजक, उच्च न्यायालय, 2 में क्या देखा था। हम उद्धृत करते हैं:

"जिसे अक्सर भुला दिया जाता है, और इसलिए याद दिलाया जाता है, वह किसी व्यक्ति को सुनवाई या अपील के निपटान तक न्यायिक हिरासत में रखने का उद्देश्य है। **लॉर्ड रसेल, सीजे, ने कहा [आर वी. रोज, (1898) 18 कॉक्स]:**

"मैंने देखा कि इस मामले में कैदी के लिए जमानत देने से इनकार कर दिया गया था। यह देश के मजिस्ट्रेट पर बहुत दृढ़ता से प्रभावित नहीं किया जा सकता है कि जमानत को सजा के रूप में नहीं रोका जाना चाहिए, बल्कि यह कि जमानत की आवश्यकताएं केवल मुकदमे में कैदी की उपस्थिति को सुरक्षित करने के लिए हैं।

11. **गुरबखश सिंह सिब्बा बनाम पंजाब राज्य, 3** में इस न्यायालय द्वारा इसी सिद्धांत को दोहराया गया है कि जमानत का उद्देश्य मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है, कि इस प्रश्न के समाधान में लागू किया जाने वाला उचित परीक्षण है कि जमानत दी जानी चाहिए या अस्वीकार कर दी जानी चाहिए, क्या यह संभव है कि पक्ष उसका मुकदमा चलाने के लिए प्रकट होगा और यह निर्विवाद है कि सजा के रूप में जमानत नहीं रोकी जानी चाहिए।

12. बहुत पहले, **हुसैनारा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य 4** में, इस न्यायालय ने घोषणा की थी कि आपराधिक आरोपों का सामना करने वाले अपराधियों के त्वरित विचारण का अधिकार "इस न्यायालय द्वारा व्याख्या किए गए अनुच्छेद 21 के व्यापक व्यापक दायरे और सामग्री में निहित है"। यह टिप्पणी करते हुए कि अनुच्छेद 21 के तहत एक वैध प्रक्रिया वह है जिसमें एक प्रक्रिया शामिल है जो "उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत" है, यह माना गया था कि:

"अब स्पष्ट रूप से किसी व्यक्ति को स्वतंत्रता से वंचित करने के लिए कानून द्वारा निर्धारित प्रक्रिया "उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत" नहीं हो सकती है जब तक कि वह प्रक्रिया ऐसे व्यक्ति के अपराध के निर्धारण के लिए त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है। कोई भी प्रक्रिया जो यथोचित त्वरित सुनवाई सुनिश्चित नहीं करती है, उसे "उचित, निष्पक्ष या न्यायसंगत" नहीं माना जा सकता है और यह अनुच्छेद 21 का उल्लंघन होगा। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि त्वरित सुनवाई, और त्वरित सुनवाई से हमारा मतलब यथोचित त्वरित सुनवाई है, अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का एक अभिन्न और अनिवार्य हिस्सा है। हालांकि, जो सवाल उठता है वह यह है कि यदि किसी अपराध के आरोपी व्यक्ति को त्वरित सुनवाई से वंचित कर दिया जाता है और अनुच्छेद 21 के तहत उसके मौलिक अधिकार का उल्लंघन करते हुए लंबे समय से लंबित सुनवाई के परिणामस्वरूप कारावास से उसकी स्वतंत्रता से वंचित करने की मांग की जाती है तो इसका क्या परिणाम होगा।

13. उपरोक्त टिप्पणियां कई निर्णयों में बार-बार प्रतिध्वनित हुई हैं, जैसे कि **कादरा पहाड़िया और अन्य बनाम बिहार राज्य 5 और अब्दुल रहमान अंतुले बनाम आर.एस. नायक**। बाद में न्यायालय ने त्वरित सुनवाई के अधिकार पर फिर से जोर दिया, और आगे कहा कि लंबे समय तक मुकदमे का सामना कर रहे अभियुक्त के पास कोई विकल्प नहीं है:

"राज्य या शिकायतकर्ता उस पर मुकदमा चलाता है। इस प्रकार, यह राज्य या शिकायतकर्ता का दायित्व है, जैसा भी मामला हो, उचित तत्परता के साथ मामले को आगे बढ़ाए। विशेष रूप से, इस देश में, जहां अभियुक्त का बड़ा हिस्सा समाज के गरीब और कमजोर वर्गों से आता है, जो कानून के तरीकों से वाकिफ नहीं हैं, जहां उन्हें अक्सर सक्षम कानूनी सलाह नहीं मिलती है, उक्त नियम को लागू करना पूरी तरह से अनुचित है। बेशक, किसी दिए गए मामले में, यदि कोई आरोपी त्वरित सुनवाई की मांग करता है और फिर भी उसे सुनवाई नहीं दी जाती है, तो यह उसके पक्ष में एक प्रासंगिक कारक हो सकता है। लेकिन हम किसी आरोपी को इस आधार पर त्वरित सुनवाई के अपने अधिकार के उल्लंघन की शिकायत करने से वंचित नहीं कर सकते कि उसने त्वरित सुनवाई की मांग नहीं की या जोर नहीं दिया।

14. **मोहम्मद मुस्लिम @ हुसैन बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र)** 7 में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की:

"21. विदा लेने से पहले, यह विचार करना ज़रूरी होगा कि जमानत देने के लिए कड़ी शर्तें लगाने वाले कानून जनहित में ज़रूरी हो सकते हैं; फिर भी, अगर मुकदमे समय पर पूरे नहीं होते, तो व्यक्ति पर होने वाला अन्याय अथाह होता है। जेलें भीड़भाड़ वाली हैं और अक्सर वहाँ रहने की स्थिति दयनीय होती है। केंद्रीय गृह मंत्रालय द्वारा संसद में दिए गए जवाब के अनुसार, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने दर्ज किया है कि 31 दिसंबर 2021 तक देश की जेलों की कुल क्षमता 4,25,069 लाख के मुकाबले 5,54,034 से ज्यादा कैदी बंद थे। इनमें से 1,22,852 दोषी थे; बाकी 4,27,165 विचाराधीन कैदी थे।

22. अन्यायपूर्ण कारावास का खतरा यह है कि कैदियों को "कारावासीकरण" का खतरा होता है, जिसे केरल उच्च न्यायालय ने 1993 क्रि एलजे 3242 में दर्ज एक दोषी कैदी बनाम राज्य मामले में "एक क्रांतिकारी परिवर्तन" के रूप में वर्णित किया है, जिसके तहत कैदी:

"अपनी पहचान खो देता है। वह एक संख्या से जाना जाता है। वह व्यक्तिगत संपत्ति खो देता है। उनका कोई व्यक्तिगत संबंध नहीं है। मनोवैज्ञानिक समस्याएं स्वतंत्रता, स्थिति, संपत्ति, गरिमा के नुकसान के परिणामस्वरूप व्यक्तिगत जीवन की किसी भी स्वायत्तता का परिणाम होती हैं। जेल की कैदी संस्कृति भयानक हो जाती है। कैदी सामान्य मानकों से शत्रुतापूर्ण हो जाता है। आत्म-धारणा बदल जाती है।

23. कैदी के अपराध की ओर मुड़ने का एक और खतरा है, "चूंकि अपराध न केवल बोधगम्य हो जाता है, बल्कि अपराध जितना अधिक पेशेवर होता है, अपराधी को अधिक सम्मान दिया जाता है" (1940 में प्रकाशित डोनाल्ड क्लेमर की 'द प्रिज़न कम्युनिटी' भी देखें)। कैद के और भी हानिकारक प्रभाव होते हैं जहां आरोपी सबसे कमजोर आर्थिक स्तर से संबंधित होता है: आजीविका का तत्काल नुकसान, और कई मामलों में, परिवारों के बिखरने के साथ-साथ पारिवारिक बंधनों का नुकसान और समाज से अलगाव। इसलिए, न्यायालयों को इन पहलुओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए (क्योंकि बरी होने की स्थिति में, आरोपी को नुकसान अपूरणीय है), और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मुकदमे - विशेष रूप से उन मामलों में, जहां विशेष कानून कड़े प्रावधान लागू करते हैं, उठाए जाएं और तेजी से संपन्न हों।

15. राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम, 2008 (जिसे आगे "2008 अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 19 के तहत परिकल्पित कानून की आवश्यकता यह अनिवार्य करती है कि किसी विशेष न्यायालय द्वारा अधिनियम के तहत किसी भी अपराध का मुकदमा सभी कार्य दिवसों में दिन-प्रतिदिन के आधार पर चलाया जाएगा और किसी भी अन्य मामले के मुकदमे पर इसे प्राथमिकता दी जाएगी और विशेष न्यायालयों को ऐसे अपराध के लिए केंद्र सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श से नामित किया जाएगा, जैसा कि 2008 अधिनियम की धारा 11 के तहत परिकल्पित है।

16. भारत संघ बनाम के.ए. नजीब8 मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ को लंबी कैद और साथ ही यू.ए.पी अधिनियम की धारा 43-डी(5) के प्रभाव पर विचार करने का अवसर मिला और उसने निम्नलिखित टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 722, पैरा 17)

"17. इस प्रकार हमारे लिए यह स्पष्ट है कि यूएपीए की धारा 43-डी (5) जैसे वैधानिक प्रतिबंधों की उपस्थिति संविधान के भाग III के उल्लंघन के आधार पर जमानत देने की संवैधानिक न्यायालयों की क्षमता को बाहर नहीं करती है। वास्तव में, एक कानून के तहत प्रतिबंधों के साथ-साथ संवैधानिक क्षेत्राधिकार के तहत प्रयोग की जाने वाली शक्तियों दोनों को अच्छी तरह से सामंजस्यपूर्ण बनाया जा सकता है। जबकि कार्यवाही शुरू होने पर, न्यायालयों से अपेक्षा की जाती है कि वे जमानत देने के खिलाफ विधायी नीति का मूल्यांकन करें, लेकिन

ऐसे प्रावधानों की कठोरता कम हो जाएगी जहां उचित समय के भीतर मुकदमे के पूरा होने की कोई संभावना नहीं है और पहले से ही कैद की अवधि निर्धारित सजा के एक बड़े हिस्से से अधिक हो गई है। ऐसा दृष्टिकोण यूएपीए की धारा 43 डी(5) जैसे प्रावधानों को जमानत से इनकार करने या त्वरित सुनवाई के संवैधानिक अधिकार के व्यापक उल्लंघन के लिए एकमात्र मानदंड के रूप में इस्तेमाल किए जाने की संभावना से सुरक्षा प्रदान करेगा।

17. हाल के फैसले, **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो 9** में लंबे समय तक कैद और अत्यधिक देरी ने न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया, जिसने धारा 37 एनडीपीएस अधिनियम सहित कई अधिनियमों के संबंध में जमानत के प्रति सही दृष्टिकोण पर विचार किया। न्यायालय ने राय व्यक्त की कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 436ए ((जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि यदि निर्धारित अवधि के भीतर मुकदमा पूरा नहीं होता है तो अभियुक्त को जमानत पर रिहा कर दिया जाए) लागू होगा:

'हम अलग-अलग कानूनों से निपटना नहीं चाहते क्योंकि प्रत्येक विशेष अधिनियम के पीछे एक उद्देश्य होता है और उसके बाद सख्ती लागू की जाती है। विलंब को नियंत्रित करने वाला सामान्य सिद्धांत इन श्रेणियों पर भी लागू होगा। यह स्पष्ट करने के लिए, संहिता की धारा 436-ए में निहित प्रावधान किसी विशिष्ट प्रावधान के अभाव में विशेष अधिनियमों पर भी लागू होगा। उदाहरण के लिए, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 37 के तहत प्रदान की गई कठोरता ऐसे मामले में आई नहीं आएगी क्योंकि हम किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता से निपट रहे हैं। हमें लगता है कि जितनी अधिक कठोरता होगी, निर्णय उतनी ही जल्दी होना चाहिए। आखिरकार, इस प्रकार के मामलों में गवाहों की संख्या बहुत कम होगी और मुकदमे को लम्बा करने का कोई औचित्य नहीं हो सकता है। शायद प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए इस न्यायालय के निर्देशों का पालन करने और संहिता की धारा 309 का कड़ाई से अनुपालन करने की आवश्यकता है।

18. अपराधी पैदा नहीं होते, बल्कि बनाए जाते हैं। हर किसी में अच्छी मानवीय क्षमता होती है, इसलिए किसी भी अपराधी को कभी भी सुधार से परे न समझें। अपराधियों, किशोर और वयस्कों से निपटने के दौरान इस मानवतावादी मूल सिद्धांत को अक्सर याद किया जाता है। वास्तव में, हर संत का एक अतीत होता है और हर पापी का एक भविष्य होता है। जब कोई अपराध किया जाता है, तो अपराधी को अपराध करने के लिए कई कारक जिम्मेदार होते हैं। वे कारक सामाजिक और आर्थिक हो सकते हैं, मूल्य क्षरण या माता-पिता की उपेक्षा का परिणाम हो सकते हैं; परिस्थितियों के तनाव के कारण हो सकते हैं, या गरीबी या अन्य अभावों के विपरीत संपन्नता के माहौल में प्रलोभनों की अभिव्यक्ति के कारण हो सकते हैं।

19. यदि संबंधित न्यायालय सहित राज्य या किसी अभियोजन एजेंसी के पास संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित त्वरित विचारण के लिए अभियुक्त के मौलिक अधिकार को प्रदान करने या उसकी रक्षा करने का कोई साधन नहीं है, तो राज्य या किसी अन्य अभियोजन एजेंसी को इस आधार पर जमानत के लिए याचिका

का विरोध नहीं करना चाहिए कि किया गया अपराध गंभीर है। संविधान का अनुच्छेद 21 अपराध की प्रकृति के बावजूद लागू होता है।

20. हम यह जोड़ने में जल्दबाजी कर सकते हैं कि याचिकाकर्ता अभी भी एक आरोपी हैं; कोई अपराधी नहीं। अपराधिक न्यायशास्त्र की व्यापक धारणा कि एक आरोपी को तब तक निर्दोष माना जाता है जब तक कि दोषी साबित नहीं हो जाता, उसे हल्के में दरकिनार नहीं किया जा सकता है, चाहे दंडात्मक कानून कितना भी कठोर क्यों न हो।

10. उच्चतम न्यायालय ने **इन्द्राणी प्रतिम मुखर्जी बनाम सीबीआई**¹⁰ मामले में आरोपी को उसकी लंबी अवधि अर्थात् साढ़े 6 वर्ष के कारावास तथा निकट भविष्य में मुकदमे के समापन की कोई संभावना न होने के आधार पर जमानत भी दे दी है।

11. **वी. सैथिल बालाजी बनाम उप निदेशक, प्रवर्तन निदेशालय**¹¹ के धन शोधन मामले में, अभियुक्त 15 महीने से अधिक समय से कारावास में था इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने घोषित किया

"मुकदमे के समापन में अत्यधिक देरी और जमानत देने की उच्च सीमा एक साथ नहीं चल सकती"।

12. **शेख जावेद इकबाल उर्फ अशफाक अंसारी उर्फ जावेद अंसारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹² के एक महत्वपूर्ण फैसले में, जिसमें गैरकानूनी गतिविधियाँ (रोकथाम) अधिनियम, 1967 (यूपीए) के तहत आरोपों का सामना कर रहे एक विचाराधीन कैदी को जमानत दी गई थी, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि एक संवैधानिक न्यायालय वैधानिक प्रतिबंधों के बावजूद जमानत दे सकती है यदि उसे लगता है कि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत त्वरित सुनवाई के अधिकार का उल्लंघन हुआ है।

13. **पार्थ चटर्जी बनाम प्रवर्तन निदेशालय**¹³ मामले में पश्चिम बंगाल के पूर्व मंत्री को जमानत देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को दोहराया कि "किसी संदिग्ध को अनिश्चित काल तक हिरासत में नहीं रखा जा सकता और विचाराधीन कैदी को दंडात्मक नज़रबंदी नहीं माना जाना चाहिए।"

पीठ ने कहा, "फिर भी, न्यायालय यह सुनिश्चित करेगा कि संपन्न या प्रभावशाली आरोपी चल रही जांच में बाधा न डालें, साक्ष्यों के साथ छेड़छाड़ न करें, या गवाहों को प्रभावित न करें, अर्थात् ऐसी कोई कार्रवाई न करें जो निष्पक्ष सुनवाई के मूल सिद्धांत को कमजोर करे।"

14. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ऐसी कोई असाधारण परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं कर सके, जिनके आधार पर आवेदक को जमानत देने से इनकार किया जा सके।

15. विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य अभियुक्त की मुकदमे में उपस्थिति सुनिश्चित करना है। विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा कोई भी ऐसा भौतिक विवरण या परिस्थितियाँ प्रस्तुत नहीं की गई हैं जिनसे यह पता चलता हो कि आवेदक न्याय से भाग रहा है, न्याय प्रक्रिया को बाधित कर रहा है, या अपराध दोहराकर या गवाहों को डरा-धमकाकर अन्य समस्याएँ पैदा कर रहा है।

16. यह अत्यंत खेदजनक है कि आवेदक लगभग सात वर्ष और नौ महीने से जेल में सड़ रहा है, और 25.10.2019 से मुकदमा ठप पड़ा हुआ है। इतनी लंबी कैद और मुकदमे में पूर्ण प्रगति का अभाव, आवेदक के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्रदत्त त्वरित सुनवाई के मौलिक अधिकार का गंभीर उल्लंघन है। इन परिस्थितियों में, जब निकट भविष्य में मुकदमे के समाप्त होने की कोई वास्तविक संभावना नहीं है, आवेदक को हिरासत में रखना अन्यायपूर्ण और अनुचित दोनों हैं। न्याय की मांग है कि आवेदक की निरंतर हिरासत पर पुनर्विचार किया जाए और अविलंब उचित राहत प्रदान की जाए।

17. पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, प्रस्तुत मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए क्योंकि तीन आरोपी व्यक्ति अभी भी फरार हैं, निकट भविष्य में मुकदमे के समापन की कोई संभावना नहीं है और यह तथ्य कि सोलह गवाहों से पूछताछ की जानी है, जिनमें से तीन की जांच की जा चुकी है; इसके अलावा, द०प्र०स० की धारा 319 के तहत अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करने के मामले में, पहले से ही जांच किए गए गवाहों के बयान फिर से दर्ज किए जाने हैं और मुकदमा लगभग नए सिरे से आगे बढ़ेगा और साथ ही सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त फैसलों के आलोक में भी, और मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक ने जमानत के लिए मामला बनाया है। जमानत आवेदन की **अनुमति है।**

18. उपरोक्त मामले में शामिल आवेदक- **सर्वजीत सिंह** को निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और समान राशि में दो-दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए।

(i) आवेदक साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ii) आवेदक (1) मामले को खोलने, (2) आरोप तय करने और (3) धारा 313 द०प्र०स० / 351 बीएनएसएस के तहत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तिथियों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को जमानत की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के रूप में माना जाएगा और कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी।

19. उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। बांड स्वीकार करने से पहले आवेदक और जमानतदारों की पहचान, स्थिति और निवास प्रमाण को संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए।

20. यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक को जमानत देने में की गई टिप्पणियों से गवाहों की गवाही के आधार पर अपनी स्वतंत्र राय बनाने में विचारण न्यायाधीश को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं किया जाएगा।

(2025) 1 ILRA 74

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.01.2025

समक्ष

**माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा
माननीय न्यायमूर्ति मो. फैज आलम खान
आपराधिक अपील संख्या-351 वर्ष 2005
सम्बद्ध**

**आपराधिक अपील संख्या-532 वर्ष 2005
और**

आपराधिक अपील संख्या-402 वर्ष 2005

अन्नू खटिक और अन्य	... अपीलकर्ता
बनाम	
उत्तर प्रदेश राज्य	... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: सी.एल यादव, ए.ए जैदी, बिपिन कुमार राय, मो. शाहनवाज खान, नागेंद्र कुमार द्विवेदी, पी.के मिश्रा, आर.के द्विवेदी, एस.के श्रीवास्तव, सागर सिंह, शत्रुघ्न यादव, श्री राम मौर्य

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

A. आपराधिक कानून - हत्या - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 8 - मकसद - गवाहों के प्रत्यक्ष साक्ष्य के आधार पर मामलों में, ऐसे चश्मदीद गवाहों की गुणवत्ता और संभावित मूल्य के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए। जहां प्रत्यक्ष साक्ष्य विश्वसनीयता के योग्य है और उस पर विश्वास किया जा सकता है, मकसद का सवाल कमोबेश अकादमिक हो जाता है। घटना के चश्मदीद गवाहों के आधार पर मामलों में मकसद/आशय की कोई प्रमुख भूमिका नहीं है। यह केवल उन मामलों में महत्व

रखता है जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर करते हैं। किसी अपराध को करने के लिए मकसद के सबूत का अभाव ही किसी अभियुक्त की बेगुनाही का अनुमान लगाने का आधार नहीं हो सकता है यदि उसकी संलिप्तता अन्यथा स्थापित हो जाती है। अभियोजन पक्ष उन तथ्यों को साबित करने के लिए बाध्य नहीं है जिन्हें या तो साबित करना असंभव है या अभियुक्त के दिमाग में बंद हैं कि उन्होंने अपराध क्यों किया। इस मामले में मृतक के परिवार और आरोपी के बीच जमीन को लेकर दुश्मनी चल रही थी। आरोपी ने उक्त भूमि तक सूचनाकर्ता की पहुंच में बाधा डाली थी, और उसी के संबंध में कई बार विवाद हो चुके थे। (प्रस्तर-28, 29)

B. आपराधिक कानून - संबंधित गवाहों की विश्वसनीयता - प्राकृतिक गवाह - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 3, 118 और 134 - केवल इसलिए कि गवाह पीड़ित के करीबी रिश्तेदार हैं, उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। किसी एक पक्ष के साथ संबंध एक ऐसा कारक नहीं है जो गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करता है। एक रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को छिपाकर एक निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप नहीं लगाएगा। यदि अभियोजन पक्ष के गवाह, जो घटना को देखने का दावा करते हैं, प्राकृतिक गवाह हैं और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति स्वाभाविक है और उन पर संदेह नहीं किया जा सकता है, तो मृतक या सूचनाकर्ता के साथ उनके संबंध का अधिक महत्व नहीं है। हालांकि, न्यायालय को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए सबूतों का विश्लेषण करना होगा कि क्या यह ठोस और विश्वसनीय है। (प्रस्तर-39)

C. आपराधिक कानून - हत्या - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - स्वतंत्र गवाह - यदि अभियोजन पक्ष द्वारा एक स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया है, तो वह अभियोजन पक्ष के अन्य गवाहों के साक्ष्य को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, जो न्यायालय की राय में, घटना के स्वाभाविक गवाह प्रतीत होते हैं। (प्रस्तर-43)

D. आपराधिक कानून - हत्या - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - गवाहों की विश्वसनीयता विरोधाभास, अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य में अलंकरण - न्यायालय को उस व्यवस्था और परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए जिसमें अपराध किया गया है, साक्ष्य की गुणवत्ता, गवाहों की प्रकृति और स्वभाव, व्यक्तिगत गवाह की समझ और धारणा और परीक्षा का स्तर और प्रकृति के सामान्य प्रविधि में उस कार्य के बारे में संभाव्यता की स्थिति के बारे में जो भी शिकायत की जा सकती थी। अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्यों से सच्चाई का पता लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए। साथ ही, यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि किसी भी अभियोजन पक्ष का प्रकरण प्रत्येक दृष्टि से पूर्णतः निर्दोष या अभेद्य नहीं हो सकता। अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता और सत्यता के संदर्भ में, निष्पक्ष न्यायिक जांच की प्रक्रिया द्वारा अभियोजन पक्ष के मामले के बारे में कुल संदेह की हवा से ग्रस्त हुए बिना निष्पक्ष न्यायिक जांच की प्रक्रिया द्वारा अदालतों पर दायित्व निहित है। अभियोजन पक्ष के मामले में जिन विरोधाभासों, कमजोरियों की ओर इशारा किया जा सकता है, उनका मूल्यांकन किसी तथ्य के अस्तित्व की संभावनाओं के मापदंड के साथ किया जाना चाहिए या नहीं। जब तक, दुर्बलता और विरोधाभास ऐसी प्रकृति के न हों जो सबूतों के आधार को कमजोर कर दें और अभियोजन

पक्ष के मामले के मूल में कलंकित न हों, तब तक इस तरह के विरोधाभासों और कमजोरियों पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। गवाह के साक्ष्य की विश्वसनीयता का न्याय करने के लिए, किसी को उसके साक्ष्य को देखना होगा, और यदि गवाहों के चश्मदीद खाते में कोई विसंगति पाई जाती है जो गवाह के कहते के मूल को प्रभावित नहीं करती है, तो गवाह को क्रेडिट योग्य नहीं माना जा सकता है। उसी समय, पुष्टि के नियम की मांग करते हुए, गणितीय बारीकियों की उम्मीद नहीं की जा सकती है। गवाहों के विवरण को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और एक बार जब यह धारणा बन जाती है कि खाते में सच्चाई की रमक है, तो पूरे सबूतों को त्यागना एक विश्वसनीय और ईमानदार गवाह के साथ अन्याय करने के समान होगा। यहां तक कि ईमानदार और सच्चे गवाह भी कुछ विवरणों में भिन्न हो सकते हैं, जो अभियोजन पक्ष के मामले के मुख्य कारण से संबंधित नहीं हो सकते हैं, और इसलिए उनके साक्ष्य का मूल्यांकन की जानी चाहिए, जो गवाह द्वारा अवलोकन, प्रतिधारण और पुनरुत्पादन की शक्ति को ध्यान में रखते हुए मानव मानक द्वारा आंका जाना चाहिए। (प्रस्तर-46)

ई. आपराधिक कानून - हत्या - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 157 - जहां प्राथमिकी को बिना किसी देरी के दर्ज किया जाता है और इसके आधार पर जांच शुरू हो जाती है, मजिस्ट्रेट को इसकी प्रति भेजने में देरी अपने आप में इस निष्कर्ष को सही नहीं ठहरा सकती है कि जांच दागी थी। प्राथमिकी की प्रामाणिकता पर संदेह करने के लिए धारा 157 द०प्र०स० के तहत देरी न केवल कोई देरी है, बल्कि केवल असाधारण और अस्पष्टीकृत देरी है। देरी जिसे ठीक से समझाया गया है, अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं कहा जा सकता है। इस मामले में उस समय घायल हुए मृतक को पहले थाने ले जाया गया और उसके बाद जिला अस्पताल, फैजाबाद ले जाया गया। उसके बाद ही अ०सा०-1 ने फिर से थाना जाकर प्राथमिकी दर्ज कराई। इसे समय से पहले या देरी से दर्ज नहीं किया जा सकता है। अभियोजन पक्ष ने प्राथमिकी को ठीक से और दस्तावेजों के साथ दर्ज करने में हुई थोड़ी देरी के बारे में बताया है। न्यायालय ने माना कि अभियोजन पक्ष के मामले पर केवल इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है। (प्रस्तर-32, 33, 34)

एफ. आपराधिक कानून - हत्या - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 34 और 149 - रचनात्मक आपराधिकता - सामान्य इरादा /आशय और सामान्य उद्देश्य। धारा 34 और 149 भ०द०वि० दोनों रचनात्मक आपराधिकता की अवधारणा से संबंधित हैं, अर्थात्, दूसरों के कृत्यों के लिए एक व्यक्ति का प्रतिनिधिक दायित्व है। हालांकि, धारा 34 भ०द०वि० के तहत सामान्य इरादे/आशय और धारा 149 भ०द०वि० के तहत सामान्य उद्देश्य के बीच एक स्पष्ट अंतर मौजूद है। सामान्य इरादे/आशय के लिए एक पूर्व-व्यवस्थित योजना और ठोस कार्रवाई की आवश्यकता होती है, जो मन की पूर्व नियोजित के साक्ष्य द्वारा समर्थित होती है। इसके विपरीत, धारा 149 के तहत सामान्य उद्देश्य के लिए पूर्व धारित कार्यक्रम या पूर्व नियोजन की आवश्यकता नहीं है। जबकि धारा 34 के लिए अपराध में सक्रिय भागीदारी की आवश्यकता होती है, विशेष रूप से जहां शारीरिक हिंसा शामिल होती है, धारा 149 केवल एक गैरकानूनी सभा में सदस्यता के आधार पर एक सामान्य उद्देश्य को साझा करती है, यहां तक कि सक्रिय भागीदारी के बिना भी। अभियोजन पक्ष द्वारा विश्वसनीय साक्ष्य के साथ सामान्य इरादे/आशय का अस्तित्व स्थापित किया जाना चाहिए। विशेष रूप से, धारा 34 केवल सामान्य इरादे/आशय से

आकर्षित नहीं होती है जब तक कि उस इरादे को आगे बढ़ाने के लिए कोई कार्य नहीं किया जाता है। ऐसे मामलों में जहां पांच से कम अभियुक्तों को बरी होने के कारण धारा 149 के तहत दोषी ठहराया जाता है, अदालत तथ्यों के आधार पर इसके बजाय धारा 34 लागू कर सकती है। हालाँकि, धारा 34 के लिए धारा 149 के प्रतिस्थापन से अभियुक्त पर तब तक प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए जब तक कि सामान्य उद्देश्य में आवश्यक रूप से एक सामान्य इरादा/आशय शामिल न हो। प्रस्तुत मामले में सबूतों ने स्थापित किया कि तीनों अपीलकर्ता एक साथ पहुंचे, मृतक पर उसके घर के अंदर हमला किया, उसे बाहर खींचा और मंदिर के सामने फिर से हमला किया और फिर एक साथ भाग गए। उनके समन्वित कार्यों ने एक पूर्व-डिज़ाइन की गई योजना और साझा सामान्य इरादे/आशय का प्रदर्शन किया। इसलिए, उन्हें भ०द०वि० की धारा 149 के स्थान पर धारा 34 भ०द०वि० के तहत सही दोषी ठहराया गया था। (प्रस्तर-64)

खारिज कर दिया। (ई-5)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. मरुदनाल ऑगस्टी बनाम केरल राज्य; 1980 एस.सी.सी. (क्रिल०) 985
2. ईश्वर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2423
3. लक्ष्मी सिंह और अन्य आदि बनाम बिहार राज्य ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2263
4. अर्जुन मारिक बनाम बिहार राज्य मनु/एस.सी./1037/1994:1994 पूरक(2) एस.सी.सी.372
5. सुखराम बनाम माह का राज्य। मनु/एस.सी./3346/2007: (2007)7 एस.सी.सी. 502
6. सुनील क्लिफोर्ड डेनियल (डॉ.) बनाम पुन राज्य मनु/एस.सी./0740/2012: (2012)8 स्केल 670
7. पुलिस निरीक्षक द्वारा पन्नायर बनाम तमिलनाडु राज्य/1462/2009: (2009)9 एस.सी.सी. 152
8. मोलू और अन्य बनाम हरियाणा मनु/एस.सी./0143/1976: ए.आई.आर. 1976 उच्चतम न्यायालय 2499
9. प्रफुल्ल सुधाकर परब बनाम महाराष्ट्र राज्य, मनु/एस.सी./0689/2016:ए.आई.आर. 2016 उच्चतम न्यायालय 3107
10. ईश्वर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0120/1976:ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2423
11. अनिल राय बनाम बिहार राज्य, मनु/एस.सी./1586/2001
12. सुच्या सिंह और अन्य बनाम पुन राज्य, मनु/एस.सी./0527/2003
13. धरणीधर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एमएनयू/एस.सी./0480/2010
14. गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी और अन्य (04.09.2013 -एस.सी.): मनु/एस.सी./ 0897/2013
15. भागलू लोध और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0700/2011 में रिपोर्ट
16. भारवाड़ा भोगीनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य। ए.आई.आर. 1983, 753, एमएनयू/एस.सी./0090/1983 में दी गई सूचना के अनुसार

17. महेंद्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य की रिपोर्ट मनु/एस.सी./0257/2019

18. बलजिंदर सिंह और अन्य बनाम पुणे राज्य, मनु/एस.सी./1063/2024

19. मधुसूदन एवं अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य, आपराधिक अपील संख्या-1509 वर्ष 2010 दिनांक 05.05.2024

(माननीय न्यायमूर्ति मो. फैज आलम खान द्वारा उद्घोषित)

1. अपीलकर्ता के लिए श्री राजेश कुमार द्विवेदी, अधिवक्ता एमिकस क्यूरी की दलीलें सुनी गईं, जो अपीलकर्ता चुन्नी लाल एवं राज कुमार यादव की ओर से उपस्थित हुए, जिन्हें क्रिमिनल अपील संख्या 351 सन् 2005 एवं क्रिमिनल अपील संख्या 532 सन् 2005 में दण्ड माफी (रिमिशन) प्रदान किए जाने के उपरान्त कारागार से रिहा किया जा चुका है। श्री चन्द्र शेखर पाण्डेय की दलीलें अपीलकर्ता संजय यादव की ओर से क्रिमिनल अपील संख्या 402 सन् 2005 में सुनी गईं, श्री बिपिन कुमार राय की दलीलें अपीलकर्ता अन्नू खटिक की ओर से तथा श्री ए.ए. जैदी की दलीलें अपीलकर्ता मुन्ना खटिक की ओर से क्रिमिनल अपील संख्या 351 सन् 2005 में सुनी गईं, और राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री प्रभात अधौलिया को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. इन सभी अपीलों को दोषी अपीलकर्ताओं द्वारा एक ही आक्षेपित निर्णय और आदेश के खिलाफ दायर की दी गई है और इस प्रकार सुविधा के लिए इन तीनों अपीलों को इस संयुक्त निर्णय द्वारा निपटाया जा रहा है।

3. इन आपराधिक अपीलों को इन आपराधिक अपीलों को अपीलकर्ताओं अन्नू खटिक, मुन्ना खटिक तथा चुन्नी लाल द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या 351 सन् 2005 में, अपीलकर्ता राज कुमार यादव द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या 532 सन् 2005 में तथा अपीलकर्ता संजय यादव द्वारा क्रिमिनल अपील संख्या 402 सन् 2005 में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 374(2) के अन्तर्गत विशेष न्यायाधीश (अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम), फैजाबाद द्वारा दिनांक 18.02.2005 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके अन्तर्गत अपीलकर्ताओं को धारा 147 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत प्रत्येक को एक वर्ष का कठोर कारावास, धारा 452 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत प्रत्येक को तीन वर्ष का कठोर कारावास एवं ₹1000/- अर्थदण्ड तथा धारा 302 सहपठित धारा 149 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आजीवन कारावास एवं ₹500/- अर्थदण्ड से दण्डित किया गया है। अपीलकर्ता संख्या 3 चुन्नी लाल को अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम की धारा 3(1)(X) के अन्तर्गत दो वर्ष का कठोर कारावास एवं ₹1000/- अर्थदण्ड तथा अर्थदण्ड न अदा करने की स्थिति में एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास से दण्डित किया गया है। साथ ही अपीलकर्ता संख्या 1 एवं 2 को धारा 3(1)(X) अनुसूचित जाति/जनजाति अधिनियम के आरोप से तथा सभी अपीलकर्ताओं को धारा 504 एवं 506 भारतीय दण्ड संहिता के आरोपों से दोषमुक्त (बरी) किया गया है। उक्त निर्णय सत्र परीक्षण संख्या 400 सन् 1996 में पारित किया गया था, जो प्रकरण अपराध संख्या 1747

सन् 1991 से सम्बन्धित है, जिसमें अपराध की धाराएँ धारा 147, 452, 506/149, 504/149, 302/149 भारतीय दण्ड संहिता एवं धारा 3(1)(X) अनुसूचित जाति/जनजाति अधिनियम, थाना कोतवाली नगर, जनपद फैजाबाद से सम्बन्धित थीं।

4. प्रस्तुत अपीलों के निपटान के लिए आवश्यक संक्षिप्त तथ्य इस संदर्भ में हैं कि सूचनाकर्ता निर्मला ने 25.11.1991 को 22.30 बजे थाना-कोतवाली नगर, फैजाबाद में एक लिखित आवेदन दायर करके एक लिखित आवेदन दायर किया जिसमें आरोप लगाया गया था कि वह मोहल्ला खुर्दाबाद की निवासी है और 25.11.1991 को शाम लगभग 6.00 बजे आरोपी व्यक्ति राज कुमार यादव, चुन्नीलाल कहार, संजय, मुन्ना, अन्नू और अन्य उसके घर आए और अपने बेटे राजू को बुलाया और जब उसने जवाब दिया कि वह थोड़ी देर में आ रहा है, तो आरोपी राज कुमार उसके घर में घुस गया, उसके बेटे को गंदी गालियां दी और उसके द्वारा किए गए शोर गुल पर उसका बेटा पुट्टी लाल और मोहल्ले के कई अन्य लोग पहुंचे और उसी समय आरोपी लोगों ने उसके बेटे को घर के बाहर खींच लिया और मारपीट शुरू कर दी उसे मारने के इरादे से उसके सिर पर लाठी और हॉकी से प्रहार किए और यह सोचकर कि वह मर गया है, वे सभी भाग गए। उनके बेटे का सिर कई जगह से टूट गया था, वह बेहोश हो गया था। अंत में यह भी कहा गया है कि उसने अपने बेटे को अस्पताल में भर्ती कराया था।

5. उपरोक्त लिखित सूचना के आधार पर अपराध संख्या-1747 वर्ष 1991 में धारा 147, 452, 323, 308, 504, 506 भ०द०वि० और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1) (x) के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई और विवेचना उप निरीक्षक श्री संतोष कुमार यादव को सौंपी गई।

6. घायल राजू को जिला अस्पताल फैजाबाद ले जाया गया और डॉ. के.एन. कौशल द्वारा उसके शरीर पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं: -

"(i) खोपड़ी के बाईं ओर 2 सेमी x 5 सेमी x मांसपेशियों की गहरी 4 सेमी बाईं आंख भौंह से खून बहने के कारण घाव होता है।

(ii) बाईं ओर 4 सेमी x 5 सेमी की हड्डी गहरी, चोट संख्या-1 से 1 सेमी ऊपर, रक्तस्राव मौजूद है।

(iii) दाहिनी आंख भौंह के ऊपर खोपड़ी के दाईं ओर 7 सेमी x 5 सेमी x गहरी हड्डी का घाव।

(iv) क्षत-विक्षत घाव 1.5 सेमी x 0.5 सेमी माथे के दाईं ओर गहरी मांसपेशी 3.5 सेमी ऊपर भौंह से ऊपर।

(v) चोट संख्या-2 से 2 सेमी ऊपर सिर के दाईं ओर 2 सेमी गहरी चोट वाला घाव 2.5 सेमी x 0.5 सेमी हड्डी।

(vi) दाहिनी आंख से खून बहने से ऊपर सिर के दाईं ओर 3.5 x 1.0 सेमी x हड्डी गहरी घाव मौजूद है।

(vii) नाक से 3 सेमी ऊपर माथे के बीच में 2x1 सेमी की सूजन।

(viii) नाक के पुल पर घर्षण 1.5 सेमी x 1 सेमी।

ये सभी चोटें ताजा थीं और निगरानी में रखी गई थीं, खोपड़ी के एक्स-रे की सलाह दी गई थी और डॉक्टर की राय में ये चोटें कठोर और कुंद वस्तु के कारण हुई थीं। घायल होश में पाया गया और उसकी चोटों से खून बह रहा था।

7. इलाज के दौरान मृतक की मृत्यु हो गई और उप निरीक्षक संतोष कुमार यादव थाना में मौजूद नहीं थे, इसलिए पुलिस उपनिरीक्षक इंद्र प्रकाश सिंह ने घटनास्थल पर आगे बढ़कर मृतक की पंचनामा और शव परीक्षण के उद्देश्य से आवश्यक कागजात भी तैयार किए और मृतक के शव को शव परीक्षण के उद्देश्य से अग्रेषित किया।

8. डॉ. संतोष कुमार सिंह द्वारा दिनांक 27.11.1991 को शाम 4.15 बजे मृतक के शव का शव परीक्षण किया गया और मृतक के शव पर निम्नलिखित चोटें पाई गई:-

- (i) सिले हुए घाव 2 सेमी लंबा 1 सिले हुए सिर के बाईं ओर, बाईं आंख के ऊपर 4 सेमी ऊपर।
- (ii) सिले हुए घाव 7 सेमी लंबे 4 टांके खोपड़ी के दाईं ओर मौजूद हैं, दाएं से 6 सेमी भौंह से ऊपर।
- (iii) सिले हुए घाव 4 सेमी लंबे 2 टांके सिर के बाईं ओर मौजूद हैं, चोट संख्या-1 से 1 सेमी ऊपर।
- (iv) सिले हुए घाव 10 सेमी लंबे 5 टांके माथे के दाईं ओर 4 सेमी ऊपर मौजूद हैं।
- (v) सिले हुए घाव 2.5 सेमी लंबा 1 स्टिच खोपड़ी के दाईं ओर मौजूद हैं, सीसीएम चोट संख्या-3 के ऊपर।
- (vi) सिले हुए घाव 3.5 सेमी लंबे 2 टांके खोपड़ी के दाईं ओर मौजूद हैं।
- (viii) नाक के मध्य पर 2 सेमी x 1 सेमी संलयन।
- viii) नाक की दुल्हन पर घर्षण 1.5 सेमी x 0.1 सेमी।
- (ix) दाहिनी आंख का काला मलिनिकरण।

9. आंतरिक जांच में पार्श्विका, खोपड़ी की पश्चकपाल और ललाट की हड्डियां फ्रैक्चर पाई गईं। खोपड़ी में झिल्लियों को क्षत-विक्षत पाया गया था और खोपड़ी में 3 औंस का थक्का जमने वाला रक्त भी पाया गया था और उदर गुहा में 4 औंस तरल पाया गया था और डॉक्टर की राय के अनुसार मृतक की मृत्यु 'मृत्यु पूर्व' चोटों के कारण सदमे के कारण हुई थी।

10. मामले के दूसरे विवेचनाधिकारी उप-निरीक्षक पन्नालाल ने घटनास्थल की नक्शा नज़री तैयार की और गवाहों के बयान भी दर्ज किए और उसके बाद मामले की विवेचना उप निरीक्षक संतोष कुमार यादव को स्थानांतरित कर दी गई, जिन्होंने विभिन्न गवाहों के बयान भी दर्ज किए और गवाहों के बयान दर्ज करने के लिए एक आवेदन भी दायर किया, अर्थात्, निर्मला, पुट्टी लाल और तारा को धारा 164 द०प्र०स० के तहत और पर्याप्त सामग्री/सबूत मिलने के बाद, उन्होंने मुन्ना खटिक को छोड़कर सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 147, 149, 452, 504, 506, 302 भ०द०वि० और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)(x) के तहत आरोप

पत्र अग्रेषित किया। विवेचनाधिकारी ने मुन्ना खटिक के खिलाफ इसी दंडात्मक धारा के तहत अलग से आरोप पत्र दाखिल की है।

11. विचारण न्यायालय ने आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 147, 452, 506/149, 504/149, 302/149 भ०द०वि० और एस.सी./एस.टी. अधिनियम की धारा 3(1)(x) के तहत आरोप तय किए। सभी आरोपियों ने आरोपों से इनकार किया और मुकदमे का दावा किया।

12. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया अ०सा०-1 निर्मला, अ०सा०-2- पुट्टी लाल, अ०सा०-3- सब इंस्पेक्टर संतोष कुमार यादव, अ०सा०-4- इनरा प्रकाश सिंह, अ०सा०-5- डॉ. के कौशल, अ०सा०-6- डॉ. संतोष कुमार सिंह को परीक्षित करवाया।

13. **अ०सा०-1- निर्मला** प्रस्तुत मामले की सूचनाकर्ता है। उसने विचारण न्यायालय के समक्ष यह बयान दिया कि घटना वाले दिन और समय पर अभियुक्तगण अन्नू खटीक एवं मुन्ना खटीक के घर पर दावत का आयोजन था क्योंकि उनके घर पर नई दुल्हन आई थी, और अभियुक्तगण राज कुमार सिंह तथा चुन्नी लाल उक्त समारोह में भाग लेने के लिए उनके घर आए थे, और लगभग 6-7 बजे जब वह अपने घर पर थी तो आरोपी व्यक्ति पहुंचे और उनके बेटे के बारे में पूछा राजू और जब उसने बताया कि राजू घर के अंदर है, तो वे घर में घुस गए और राजू को घर से बाहर खींचकर मंदिर की ओर ले गए और उसके साथ बेरहमी से मारपीट की और यह सोचकर कि उसकी मौत हो गई है, वे उसे वहीं छोड़ दिए। उन्होंने यह भी कहा कि मृतक पर राज कुमार और संजय ने 'लाठी' से हमला किया, जबकि चुन्नी लाल के पास 'हाँकी' थी और मुन्ना और अन्नू के पास 'बोतलें' थीं और उन्होंने मृतक पर उसी के साथ हमला किया। उसने यह भी कहा कि घायल/मृतक को थाना ले गई थी और यह भी कि पुलिस कर्मियों ने उसे घायलों को अस्पताल ले जाने की सलाह दी थी और वह अपने बेटे को अस्पताल में भर्ती कराने के बाद वापस थाना आई और लिखित आवेदन दिया था जिसके आधार पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी।

14. **अ०सा०-2- पुट्टी लाल** खुद को अपराध का चश्मदीद गवाह होने का दावा कर रहा है और उसने कहा है कि संबंधित दिन लगभग 6.00 बजे जब वह अपने घर पर था तो आरोपी व्यक्ति राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय पहुंचे और राजू के बारे में पूछा और जब उसकी मां ने सूचित किया कि वह घर में है, आरोपी व्यक्तियों राज कुमार और चुन्नी लाल ने 'लाठी' और संजय यादव ने 'हाँकी' के साथ राजू के साथ मारपीट की और उसे उसके घर से बाहर खींच लिया और राजू, अन्नू और मुन्ना और कई अन्य लोगों द्वारा शोर-शराबे पर इकट्ठा हुए और उन्हें देखने के बाद आरोपी व्यक्ति भाग गए। उन्होंने यह भी कहा कि घायल राजू के सिर पर कई चोटें आई हैं और उसे कोतवाली ले जाया गया जहां से उन्हें घायलों को अस्पताल ले जाने और उसके बाद रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश दिया गया।

15. अ०सा०-3 उपनिरीक्षक संतोष कुमार यादव दूसरे विवेचनाधिकारी हैं जिन्होंने संबंधित दंडात्मक धाराओं के तहत आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया है और उन्होंने कई गवाहों के बयान दर्ज किए हैं और आरोपी व्यक्तियों, संजय यादव, चुन्नी लाल, अन्नू खटिक और राजकुमार यादव के खिलाफ और मुन्ना खटिक के खिलाफ अलग से आरोप पत्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने चिक प्राथमिकी के साथ-साथ रोज़नामचा की प्रति को भी यह कहकर साबित किया है कि यह कांस्टेबल राम लखन द्वारा लिखी गई थी और वह अपने हाथ की लिखावट से वाकिफ हैं क्योंकि वे एक थाना में एक साथ तैनात हैं।

16. अ०सा०-4 इंद्र प्रकाश सिंह ने मृतक की पंचनामा और शव परीक्षण के लिए आवश्यक कागजात तैयार करने का उल्लेख किया है।

17. अ०सा०-5 डॉ. के. एन. कौशल ने 25.11.1991 को रात 8.35 बजे घायल राजू की चोटों की जांच की थी और इस मामले में उचित स्थान पर उसकी चोट का विवरण दिया गया है।

18. अ०सा०-6 डॉ. संतोष कुमार सिंह ने मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार करने और प्रदर्श क-6 के रूप में ही साबित करने के लिए कहा है और उसके द्वारा नोट की गई चोटों के साथ-साथ उसके द्वारा की गई आंतरिक जांच को शव परीक्षण रिपोर्ट में दर्ज किया गया है, जिसका उल्लेख इस फैसले में एक उपयुक्त स्थान पर किया गया है। उन्होंने यह भी कहा है कि मृतक की मृत्यु, उनकी राय में, मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप 'सदमे' के कारण हुई थी।

19. उपर्युक्त मौखिक साक्ष्यों के अलावा अभियोजन पक्ष ने विभिन्न दस्तावेजी साक्ष्यों पर भी भरोसा किया है जैसे लिखित जानकारी, चिक प्राथमिकी, रोज़नामचा कयामी, नक्शा नज़री, मृतक राजू की चोट की रिपोर्ट, जो उस समय जीवित था, शव परीक्षण रिपोर्ट, शव को शव परीक्षण भेजने के उद्देश्य से तैयार किए गए आवश्यक कागजात, पंचनामा और आरोप पत्र इत्यादि दाखिल किए।

20. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद, धारा 313 द०प्र०स० के तहत आरोपी व्यक्तियों का बयान दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सभी सबूतों से इनकार किया और आगे कहा कि मृतक बुरे चरित्र का व्यक्ति था और एक पुलिस सूचनाकर्ता भी था और उसे अज्ञात व्यक्तियों द्वारा रात के अंधेरे में मौत के घाट उतार दिया गया था और दुश्मनी के आधार पर एक झूठा मामला दर्ज किया गया है। आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ मामला दर्ज किया गया है।

21. विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों की मूल्यांकन करने के बाद अभियोजन पक्ष के मामले को आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ उचित संदेह से परे साबित पाया और उन सभी को धारा 147 भ०द०वि० और 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया और तदनुसार सजा सुनाई। हालांकि, सभी आरोपियों को धारा 504, 506 भ०द०वि० के तहत उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया गया था।

22. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ताओं ने विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों की मूल्यांकन करने में स्पष्ट अवैधता की है और केवल अनुमानों और अटकलों के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया है। यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्राथमिकी संदिग्ध है क्योंकि अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल दोनों ने कहा है कि वे पहले थाना गए थे और वहां से उन्हें घायलों को अस्पताल ले जाने का निर्देश दिया गया था और घायलों को अस्पताल में भर्ती कराने के बाद अ०सा०-1/निर्मला प्राथमिकी दर्ज करने के उद्देश्य से थाना वापस आ गईं, जबकि इस संबंध में कोई रोजनामचा प्रविष्टि नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसी प्राथमिकी को प्रक्षेपित किया गया है क्योंकि उस प्राथमिकी में एक अलग स्याही के साथ लिखा गया है कि घायल को अस्पताल में भर्ती कराया गया है।

यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि मृतक को उसके घर से मंदिर तक घसीटा गया था, जिसके सामने उसे मौत के घाट उतार दिया गया था, लेकिन विवेचनाधिकारी को कोई खींचने का निशान नहीं मिला और यहां तक कि विवेचनाधिकारी को मौके पर कोई खून भी नहीं मिला।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष के समक्ष यह स्वीकार किया जाता है कि घायल जीवित था और अस्पताल में भर्ती होने के बाद इलाज के दौरान उसकी मृत्यु हो गई थी, हालांकि, उसकी मृत्यु की घोषणा दर्ज करने का कोई प्रयास नहीं किया गया है, इसलिए सच्चाई सामने आ सकती है।

इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि प्राथमिकी दर्ज करने में भारी देरी हुई है और इसे समझाया नहीं गया है और प्राथमिकी की एक प्रति भी मजिस्ट्रेट को नहीं भेजी गई थी, जैसा कि धारा 157 द०प्र०स० के तहत आवश्यक है और किसी विशेष आरोपी व्यक्ति को हमले में इस्तेमाल करने के लिए कोई विशिष्ट हथियार नहीं सौंपा गया है।

23. दोषी संजय यादव की ओर से पेश अधिवक्ता श्री चंद्रशेखर पांडे ने दृढ़ता से प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष की कहानी में असंभवता इस तथ्य से स्पष्ट होगी कि हालांकि मृतक के पिता जीवित हैं और गांव में भी मौजूद थे, लेकिन उन्हें पूरी तरह से घटनास्थल से बाहर रखा गया था क्योंकि वह न तो घायलों को अस्पताल ले गए थे और न ही वह अपनी पत्नी के साथ गए थे। अर्थात्, अ०सा०-1/निर्मला को थाना या अस्पताल में भेजा गया और यह अपने आप में अभियोजन पक्ष के मामले की झूठ के बारे में बहुत कुछ बताता है क्योंकि जब वह पूछताछ के समय उपस्थित था तो वह अस्पताल या थाना क्यों नहीं गया।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि प्राथमिकी दर्ज करने के बाद भी विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपना बयान दर्ज करने के उद्देश्य से घायल व्यक्ति से मुलाकात नहीं की है। यह भी रेखांकित किया जाता है कि यह एक स्वीकृत तथ्य प्रतीत होता है कि घटना के दिन मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक के घर में एक समारोह था क्योंकि अन्नू खटिक की दुल्हन उनके घर आई थी और अन्य तीन आरोपी व्यक्ति, अर्थात्

राज कुमार यादव, चुन्नी लाल यादव और संजय कुमार यादव रात्रिभोज / मिलन समारोह में अतिथि के रूप में आए थे और, इसलिए, उनके पास बिना किसी कारण के 'मारपीट' में भाग लेने का कोई अवसर उपलब्ध नहीं था और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य से यह स्पष्ट नहीं है कि आरोपी व्यक्ति उस दिन मृतक पर हमला क्यों करेंगे जब मुन्ना खटिक के घर पर दावत का आयोजन किया जाता है और गांव के कई लोग इसमें भाग ले रहे थे।

यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि आरोपी व्यक्तियों अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक को अपने हाथों में बोटलें ले जाते हुए दिखाया गया था और उसी के साथ मृतक पर हमला भी किया गया था, हालांकि, मृतक के व्यक्ति पर कोई चोट नहीं पाई गई है जो इन बोटलों से संबंधित हो सकती है।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा तथ्य के केवल दो गवाह प्रस्तुत किए गए हैं, जबकि इन दोनों गवाहों की गवाही अत्यधिक संदिग्ध, विरोधाभासी है और विश्वसनीय नहीं है और विचारण न्यायालय ने इन झूठे गवाहों की गवाही पर भरोसा करके अवैधता की है।

यह जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि अ०सा०-1/निर्मला देवी और अ०सा०-2/पुट्टी लाल मां और पुत्र हैं और इस प्रकार, कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया है और इस तथ्य के अलावा कि उनकी गवाही विश्वसनीय नहीं है और पर्याप्त विरोधाभास हैं, उन्हें भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि वे संबंधित गवाह हैं।

24. श्री राजेश कुमार द्विवेदी, अपीलकर्ताओं- राज कुमार यादव और चुन्नी लाल के न्यायमित्र ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित निम्नलिखित मामलों पर भरोसा किया है;

1- 1980 एस.सी.सी. (क्रिल०) 985 (मरुदनाल ऑगस्टी बनाम केरल राज्य)

2- ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2423 (ईश्वर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)

3- ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2263 (लक्ष्मी सिंह और अन्य आदि बनाम बिहार राज्य)।

25. दूसरी ओर अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि अ०सा०-1/निर्मला देवी और अ०सा०-2/पुट्टी लाल घटना के स्वाभाविक गवाह हैं, उन्होंने घटना को देखा है और घटना का विस्तृत विवरण दिया है और आरोपी अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक अ०सा०-1/निर्मला के जेठानी के पुत्र हैं और राजकुमार वह व्यक्ति है जिसे जेठानी लाली द्वारा विवादित भूमि दी गई है और यह एक स्वीकृत तथ्य है कि कृषि भूमि के एक टुकड़े पर दावे और प्रतिदावे के कारण पक्षकारों के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध थे और यह भी कि अभियोजन पक्ष के गवाहों ने घटना का सच्चा विवरण दिया है और मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, विचारण न्यायालय द्वारा कोई अवैधता नहीं की गई है।

26. पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा की गई प्रस्तुतियों के आलोक में अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि जहां तक उद्देश्य की अपर्याप्तता के संबंध में अपीलकर्ता के अधिवक्ता की प्रस्तुति का संबंध है, अ०सा०-1/निर्मला देवी ने अपने बयान में कहा है कि उनके पति राम औतार और आरोपी मुन्ना खटिक के पिता सगे भाई थे और उन्होंने अपनी संपत्ति को विभाजित किया है और लंबे समय से अलग रह रहे थे। उसने आगे कहा कि उसके घर के पास कुछ जमीन पड़ी हुई थी, जिसमें उसका और आरोपी मुन्ना खटिक का बराबर हिस्सा था और घटना से कुछ दिन पहले मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक की मां लल्ली ने उसे उस जमीन की ओर नहीं जाने के लिए कहा था और उसी जमीन को लेकर उनकी दुश्मनी थी। उसने यह भी कहा कि उसकी जेठानी लल्ली ने यह जमीन आरोपी राजकुमार यादव को दी थी। इस गवाह के बयान से यह भी स्पष्ट है कि आरोपी व्यक्ति संजय और चुन्नी लाल राज कुमार के मित्र हैं जबकि चुन्नी लाल गोंडा का निवासी है लेकिन वह अपने मामा राम औतार 'कहार' के घर में रहने आया था और जब लल्ली देवी ने विवादित जमीन राजकुमार को दी थी तो इन पांचों व्यक्तियों ने उस जमीन पर सूचनाकर्ता के प्रवेश में बाधा डालना शुरू कर दिया और उसके संबंध में कई बार विवाद हो चुका है।

27. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि पक्षकार भूमि के उपरोक्त टुकड़े के आधार पर एक-दूसरे के प्रति शत्रुतापूर्ण थे, जिसमें अ०सा०-1/निर्मला देवी और मुन्ना खटिक का बराबर हिस्सा था और उक्त भूमि मुन्ना की मां अर्थात् लल्ली देवी (सूचनाकर्ता निर्मला की जेठानी) ने आरोपी राज कुमार यादव को दी थी। आरोपियों ने धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयानों में इस तथ्य से इनकार किया है कि उनकी सूचनाकर्ता पक्ष के साथ दुश्मनी थी। हालांकि, उन्होंने यह कहने के अलावा कि मृतक बुरे चरित्र का व्यक्ति था और पुलिस का मुखबिर भी था और किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा उसकी मौत के घाट उतार दिया गया था, उन्होंने यह भी कहा है कि उन्हें इस मामले में रंजिश (दुश्मनी) के आधार पर फंसाया गया है। इस प्रकार, आरोपी व्यक्तियों/दोषी अपीलकर्ताओं द्वारा शत्रुता के तत्व को भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार, निचली अदालत के समक्ष यह साबित हुआ कि सूचनाकर्ता निर्मला और आरोपी व्यक्ति मुन्ना खटिक और उसके परिवार के बीच शत्रुतापूर्ण संबंध थे और इस दुश्मनी का आधार निर्मला और लल्ली के संयुक्त स्वामित्व वाली जमीन का एक टुकड़ा था, जो मुन्ना की मां अर्थात् लल्ली देवी ने आरोपी राज कुमार को दिया था।

28. अर्जुन मारिक बनाम बिहार राज्य में मनु/एस.सी./1037/1994: 1994 पूरक (2) एस.सी.सी. 372 में उच्चतम न्यायालय ने अवधारित किया है कि:

"... किसी अपराध को करने के लिए मकसद के सबूत का अभाव किसी अभियुक्त की बेगुनाही का अनुमान लगाने का आधार नहीं हो सकता है यदि अभियुक्त की संलिप्तता अन्यथा स्थापित हो जाती है। लेकिन यह याद रखना होगा कि जिन घटनाओं में केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य उपलब्ध होता है, उस घटना में मकसद महत्व रखता है यदि अभिलेखों पर मौजूद सबूतों से यह स्थापित हो जाता है कि अभियुक्त का एक मजबूत मकसद था और अभियुक्त के स्पष्टीकरण के साथ-साथ अपराध और स्थापित परिस्थितियों को करने का अवसर भी था। यदि किसी और के अपराध के अपराधी होने की उचित संभावना को बाहर करें, तो सबूतों की श्रृंखला

को यह दिखाने के लिए माना जा सकता है कि सभी मानवीय संभावना के भीतर अपराध अभियुक्त द्वारा किया गया होना चाहिए।

यह काफी अच्छी तरह से तय है कि घटना के चश्मदीद गवाह के आधार पर मामलों में मकसद/आशय की कोई प्रमुख भूमिका नहीं है, लेकिन यह उन मामलों में महत्व रखता है जो परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर निर्भर करते हैं। सुखराम बनाम सुखराम के मामलों में महाराष्ट्र राज्य एमएएनयू/ एस.सी./3346/2007:(2007)7 एस.सी.सी. 502, सुनील क्लिफोर्ड डैनियल (डॉ.) बनाम महाराष्ट्र राज्य एमयूएनयू/एस.सी./3346/2007(2007)7 एस.सी.सी. 502, सुनील क्लिफोर्ड डैनियल (डॉ.) बनाम पंजाब राज्य मनु/एस.सी./0740/2012(2012)8 स्केल 670, पन्नायर बनाम पंजाब राज्य मनु/एस.सी./0740/2012(2012)8 स्केल 670, पन्नायर बनाम पुलिस निरीक्षक द्वारा तमिलनाडु राज्य/ 1462/2009: (2009)9 एस.सी.सी. 152], में इस सिद्धांत पर प्रकाश डाला गया है।

29. मोलू और अन्य बनाम हरियाणा राज्य मनु/एस.सी./0143/1976:ए.आई.आर.1976 उच्चतम न्यायालय 2499 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने निम्नानुसार राय व्यक्त की: -

"11. अंत में सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए कारणों का पालन करते हुए अपीलकर्ताओं द्वारा यह तर्क दिया गया कि अभियुक्त के लिए दो व्यक्तियों की हत्या करने और दूसरों को चोट पहुंचाने का कोई पर्याप्त मकसद नहीं था। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जहां हमले के संबंध में प्रत्यक्ष साक्ष्य विश्वसनीयता के योग्य हैं और इस पर विश्वास किया जा सकता है, मकसद/आशय का सवाल कमोबेश अकादमिक हो जाता है। कभी-कभी मकसद स्पष्ट होता है और साबित किया जा सकता है। हालाँकि, मकसद रहस्य में डूबा हुआ है और इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। यदि, हालाँकि, चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य श्रेय योग्य हैं और न्यायालय द्वारा उन पर विश्वास किया जाता है, जिसने उन पर निहित निर्भरता रखी है, तो यह सवाल पूरी तरह से अप्रासंगिक हो जाता है कि क्या कोई मकसद है या नहीं। इसलिए, इन कारणों से, हम उच्च न्यायालय से सहमत हैं कि अभियोजन पक्ष उचित संदेह से परे अपीलकर्ताओं के खिलाफ मामले को साबित करने में सक्षम रहा है।

प्रफुल्ल सुधाकर परब बनाम महाराष्ट्र राज्य, मनु/एस.सी./0689/2016: ए.आई.आर. 2016 उच्चतम न्यायालय 3107 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार कहा: -

"16. एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) द्वारा उठाई गई दलीलों में से एक यह है कि अभियोजन पक्ष किसी भी मकसद को साबित करने में विफल रहा। यह तर्क दिया जाता है कि गार्डरूम से चाबियों के गुच्छा की बरामदगी सहित जो सबूत सामने आए थे, वे इस उद्देश्य से थे कि वह कार्यालय में नकदी की चोरी करना चाहता था, लेकिन अभियोजन पक्ष द्वारा यह साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं दिया गया था कि वेतन कार्यालय में कितनी नकदी थी। अपराध करने का मकसद कुछ ऐसा है जो अभियुक्त के दिमाग में छिपा होता है और इस न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि अभियोजन पक्ष के लिए यह साबित करना एक असंभव कार्य है कि हत्यारे को किसी विशेष व्यक्ति को मारने के लिए वास्तव में किसने प्रेरित किया है। रविंदर कुमार और अन्य

बनाम पंजाब राज्य, मनु/एस.सी./0536/2001:2001(7) एस.सी.सी.690: (ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 3570) में इस न्यायालय ने प्रस्तर-18 में निम्नलिखित निर्धारित किया है:

"18 अभियोजन पक्ष के लिए आम तौर पर यह साबित करना एक असंभव कार्य है कि हत्यारों को किसी विशेष व्यक्ति को मारने के लिए वास्तव में क्या प्रेरित किया गया होगा। कई मामलों में अभियोजन पक्ष जो कुछ भी इंगित कर सकता है, वह संभावित मानसिक तत्व है जो हत्या का कारण हो सकता है। इस संबंध में हम **हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम जीत सिंह {मनु/एस.सी./0165/1999: 1999 (4) एस.सी.सी. 370: (ए.आई.आर. 1999 एस.सी. 1293)}** में इस न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख करना उपयोगी समझते हैं:

‘इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह याद रखना एक ठोस सिद्धांत है कि हर आपराधिक कृत्य एक मकसद/आशय से किया गया था, लेकिन इसका परिणाम यह नहीं है कि कोई आपराधिक अपराध नहीं किया गया होता यदि अभियोजन पक्ष इसे करने के आरोपी के सटीक मकसद को साबित करने में विफल रहा होता। जब अभियोजन पक्ष पीड़ित के प्रति अभियुक्त के लिए कुछ गुस्से की संभावना दिखाने में सफल रहा, तो इस तरह के गुस्से को अभिलेखों पर रखने में असमर्थता जिस तरह से अपराधी के दिमाग में इस हद तक बढ़ जाती कि उसे अपराध करने के लिए प्रेरित किया जा सके, इसे अभियोजन पक्ष की घातक कमजोरी के रूप में नहीं माना जा सकता है। अभियोजन पक्ष के लिए उस व्यक्ति के प्रति अपराधी के मानसिक स्वभाव के पूर्ण आयाम को उजागर करना लगभग असंभव है जिसे उसने अपमानित किया था।

उपर्युक्त कानून को ध्यान में रखते हुए हमारी सुविचारित राय है कि अभियोजन पक्ष उन तथ्यों को साबित करने के लिए बाध्य नहीं है जो या तो अभियोजन पक्ष के लिए साबित करना असंभव हैं या जो आरोपी व्यक्तियों के दिमाग में बंद हैं, कि उन्हें अपराध करने के लिए किसने प्रेरित किया। इसलिए, जो मामले गवाहों के प्रत्यक्ष साक्ष्य पर आधारित हैं, उन्हें ऐसे चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य की गुणवत्ता और संभावित मूल्य के आधार पर तय किया जाना चाहिए।

30. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के फैसले को इस आधार पर भी खारिज कर दिया है कि प्राथमिकी दर्ज करने में अत्यधिक देरी हो रही है और इस स्कोर पर भी कि प्राथमिकी एंटे टाइम पर है क्योंकि प्राथमिकी की प्रति 'इलाका मजिस्ट्रेट' को नहीं भेजी गई है, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के तहत प्रदान किया गया है।

इस संबंध में, न्यायमित्र श्री राजेश कुमार द्विवेदी ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **मनु/एस.सी./0120/1976: ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2423 (इश्वर सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)** में निर्धारित कानून पर भरोसा किया है।

31. सबसे पहले, यह उजागर किया जाना चाहिए कि एमिकस द्वारा भरोसा किए गए कानून में, प्राथमिकी की प्रति 'इलाका मजिस्ट्रेट' को भेजने में असाधारण देरी बरी होने के फैसले को दर्ज करने और अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने का एकमात्र आधार नहीं था क्योंकि कई अन्य कारक भी थे जिन्होंने अभियोजन पक्ष के मामले को अत्यधिक असंभव बना दिया है।

32. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अनिल राय बनाम बिहार राज्य, मनु/एस.सी./1586/2001** में अवधारित किया है:

"30. यह प्रावधान मजिस्ट्रेट को ऐसे संज्ञेय अपराध की विवेचना के बारे में सूचित रखने के लिए डिज़ाइन किया गया है ताकि विवेचना को नियंत्रित करने में सक्षम हो सके और यदि आवश्यक हो, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 159 के तहत उचित निर्देश दे सके। लेकिन जहां प्राथमिकी को वास्तव में बिना देरी के दर्ज किया गया है और प्राथमिकी के आधार पर विवेचना शुरू की गई है, वहां मजिस्ट्रेट को रिपोर्ट की प्रति भेजने में देरी अपने आप में इस निष्कर्ष को सही नहीं ठहरा सकती है कि विवेचना दागी थी और अभियोजन पक्ष द्वारा असमर्थित थी; (**पाला सिंह और अन्य बनाम एफ.आई.आर. पंजाब राज्य मनु/एस.सी./0199/1972 : ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 2679**) मजिस्ट्रेट को प्राथमिकी की प्रति भेजने में असाधारण देरी यह संदेह करने के लिए एक वैध आधार प्रदान करने के लिए एक परिस्थिति हो सकती है कि पहली सूचना रिपोर्ट बताए गए दिन की तुलना में बहुत बाद में दर्ज की गई थी, जिससे अभियोजन पक्ष को घटना का एक विकृत संस्करण स्थापित करके सुधार और अलंकरण शुरू करने के लिए पर्याप्त समय मिल सके। प्राथमिकी की प्रामाणिकता पर संदेह करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 157 के तहत विचार किया गया विलंब हर देरी नहीं है, बल्कि केवल असाधारण और अस्पष्टीकृत देरी है। हालांकि, अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह के अभाव में पुलिस द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करने की चूक मुकदमे को दूषित नहीं करती है। **सरवन सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य मनु/एस.सी./0169/1976: ए.आई.आर. 1976 एस.सी. 2304** में इस न्यायालय ने माना कि प्रथम सूचना रिपोर्ट भेजने में देरी अपने आप में एक ऐसी परिस्थिति नहीं है जो अभियोजन पक्ष के मामले को पूरी तरह से खारिज कर सकती है, खासकर जब तथ्यों पर यह पाया जाता है कि अभियोजन पक्ष ने प्राथमिकी के प्रेषण में देरी के लिए एक बहुत ही ठोस और उचित स्पष्टीकरण दिया था।

33. अभिलेखों के अवलोकन से पता चलेगा कि प्रस्तुत मामले की प्राथमिकी 25.11.1991 को 22:30 बजे यानी रात 10:30 बजे दर्ज की गई है, जो लगभग 6:00 बजे हुई एक घटना से संबंधित है। अभियोजन पक्ष का यह मामला है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा घटना के घटित होने के बाद, घायल को अ०सा०-1/निर्मला द्वारा एक लिखित आवेदन के साथ थाना ले जाया गया था, हालांकि, पुलिस कर्मियों द्वारा उसे निर्देश दिया गया था कि वह पहले अपने बेटे के इलाज की व्यवस्था करे क्योंकि वह अच्छी स्थिति में नहीं था और इसी आधार पर सूचनाकर्ता मृतक को तुरंत थाना ले गया था। अस्पताल में भर्ती होने के बाद वह वापस थाना आई और प्राथमिकी दर्ज कराई। इस संबंध में, वह समय जब घायल की जांच जिला अस्पताल फैजाबाद/अयोध्या में डॉक्टर के कौशल द्वारा की गई थी, क्योंकि घायल राजू के व्यक्ति पर लगी चोटों की जांच डॉ. के एन कौशल द्वारा 25.11.1991

को रात 8:35 बजे जिला अस्पताल फैजाबाद में की गई थी। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि रात 8:35 बजे से पहले घायल/मृतक को अस्पताल में भर्ती कराया गया होगा। इस तथ्य की सत्यता कि पुलिस कर्मियों द्वारा सूचनाकर्ता को पहले अस्पताल जाने का निर्देश दिया गया था, प्राथमिकी के अवलोकन से भी स्पष्ट होता है, जिसमें यह तथ्य कि उसने घायल को अस्पताल में भर्ती कराया था, एक अलग स्याही और कलम में लिखा गया है।

चिक प्राथमिकी के अवलोकन से यह भी पता चलेगा कि सूचनाकर्ता द्वारा लिखित रूप में दी गई जानकारी का सार थाना की रोज़नामचा में दर्ज किया गया है, जो अभिलेखों पर भी उपलब्ध है और अभियोजन पक्ष द्वारा भी साबित किया गया है। इस प्रकार, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मृतक, जो उस समय घायल हो गया था, को पहले थाना ले जाया गया था और उसके बाद उसे जिला अस्पताल फैजाबाद में भर्ती कराया गया था और उसके बाद अ०सा०-1/निर्मला फिर से थाना आया था और प्राथमिकी दर्ज की थी, इसे या तो एंटे टाइम या देरी से दर्ज नहीं किया जा सकता है।

34. यह याद किया जाना चाहिए कि प्राथमिकी दर्ज करने में हर देरी घातक नहीं है। देरी, जिसे अभियोजन पक्ष द्वारा ठीक से समझाया नहीं गया है, को केवल अभियोजन पक्ष के लिए घातक माना जा सकता है और हमारी सुविचारित राय में, अभियोजन पक्ष ने इस मामले में प्राथमिकी को दर्ज करने में हुई थोड़ी देरी को ठीक से और दस्तावेज़ीकरण के साथ समझाया है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के मामले पर केवल इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

जहां तक यह तथ्य है कि प्रस्तुत मामले की प्राथमिकी की प्रति मजिस्ट्रेट को देरी से भेजी गई है, यह भी चश्मदीद गवाहों की अन्यथा सच्ची गवाही पर संदेह करने का आधार नहीं हो सकता है। अभिलेखों के अवलोकन से यह भी पता चलेगा कि पुलिस के सक्रिय ऑफिसर के चिक प्राथमिकी पर दिनांक 29.11.1991 को चिक प्राथमिकी को मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करने का समर्थन किया गया है, जो दर्शाता है कि प्राथमिकी की प्रति सीओ द्वारा मजिस्ट्रेट को कुछ देरी से भेजी गई है। लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि प्राथमिकी को जल्दी से दर्ज किया गया था, घायल को अस्पताल में भर्ती कराया गया था और रात 8:30 बजे उसकी चोटों की जांच की गई थी, हमें लगता है कि यह देरी अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं है।

34. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह भी रेखांकित किया गया है कि अ०सा०-1/निर्मला मृतक राजू की मां है, जबकि अ०सा०-2/पुट्टी लाल मृतक का भाई है और इसलिए, उनके साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि अभियोजन पक्ष द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष स्वतंत्र सार्वजनिक गवाह प्रस्तुत नहीं किए गए हैं।

35. जहां तक अपीलकर्ता के अधिवक्ता की इस दलील का संबंध है कि इन दो गवाहों, अर्थात् अ०सा०-1/निर्मला देवी और अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य पर केवल इस आधार पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि वे मां

और पुत्र हैं और मृतक से संबंधित हैं, हमें इसमें कोई सार नहीं मिलता है। इन गवाहों के साक्ष्य को अकेले इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है कि वे मृतक से संबंधित हैं या एक-दूसरे से संबंधित हैं।

36. सुच्या सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, मनु/एस.सी./0527/2003 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"15. दलीप सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य मनु/एस.सी./0031/1953:[1954]1 एस.सी. 145 निम्नानुसार निर्धारित किया गया है: -

"एक गवाह को आम तौर पर स्वतंत्र माना जाता है जब तक कि वह उन स्रोतों से उत्पन्न नहीं होता है जिनके दागी होने की संभावना होती है और इसका आमतौर पर मतलब होता है कि जब तक गवाह के पास कारण नहीं है, जैसे कि आरोपी के खिलाफ दुश्मनी, उसे झूठा फंसाने की इच्छा है, आमतौर पर एक करीबी रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को स्क्रीन करने और एक निर्दोष व्यक्ति को झूठा फंसाने के लिए अंतिम होगा। यह सच है, जब भावनाएं ऊंची होती हैं और दुश्मनी का व्यक्तिगत कारण होता है, तो एक निर्दोष व्यक्ति को घसीटने की प्रवृत्ति होती है, जिसके खिलाफ एक गवाह को दोषियों के साथ द्वेष होता है, लेकिन इस तरह की आलोचना के लिए नींव रखी जानी चाहिए और रिश्ते का तथ्य नींव होने से दूर अक्सर सच्चाई की एक निश्चित गारंटी होती है। हालाँकि, हम किसी व्यापक सामान्यीकरण का प्रयास नहीं कर रहे हैं। प्रत्येक मामले को उसके अपने तथ्यों के आधार पर आंका जाना चाहिए। हमारी टिप्पणियाँ केवल उस चीज़ का मुकाबला करने के लिए की जाती हैं जो अक्सर हमारे सामने मामलों में विवेक के एक सामान्य नियम को सामने रखा जाता है। ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं है। प्रत्येक मामला अपने स्वयं के तथ्यों तक सीमित होना चाहिए और नियंत्रित होना चाहिए।

16. उपर्युक्त निर्णय का अनुसरण गुली चंद और अन्य बनाम राजस्थान राज्य मनु/एस.सी./0107/1973 1974 क्रिलजे-331 जिसमें वडिवेलु थेवर बनाम राजस्थान राज्य मनु/एस.सी./0107/1973 1974 क्रिलजे-331 के मामले में मामला दर्ज किया गया है। और मद्रास राज्य मनु/एस.सी./0039/1957:1957 क्रिलजे-1000 पर भी भरोसा किया गया था जिसमें ये अवधारित किया गया है।

17. हम यह भी देख सकते हैं कि गवाह एक करीबी रिश्तेदार है और परिणामस्वरूप एक पक्षपातपूर्ण गवाह है। भरोसा नहीं किया जाना चाहिए, कोई सार नहीं है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा दलीप सिंह के मामले (उपरोक्त) में ही खारिज कर दिया गया था, जिसमें बार के सदस्यों के मन में प्रचलित धारणा पर आश्चर्य व्यक्त किया गया था कि रिश्तेदार स्वतंत्र गवाह नहीं थे। विवियन बोस के माध्यम से बोलते हुए यह देखा गया:

"हम उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की इस बात से सहमत नहीं हैं कि दो चश्मदीद गवाहों की गवाही की पुष्टि की जरूरत है। यह इस तरह के अवलोकन की नींव इस तथ्य पर आधारित है कि गवाह महिलाएं हैं और सात

पुरुषों का भाग्य उनकी गवाही पर टिका हुआ है, हम ऐसे किसी नियम के बारे में नहीं जानते हैं। यदि यह इस कारण पर आधारित है कि वे मृतक से निकटता से संबंधित हैं, तो हम सहमत होने में असमर्थ हैं। यह कई अपराधिक मामलों में एक समान भ्रम है और एक जिसे इस न्यायालय की एक अन्य पीठ ने खारिज करने का प्रयास किया है - रामेश्वर बनाम राजस्थान राज्य मनु/एस.सी./0036/1951:1952क्रिल 547; में हालांकि, हम पाते हैं कि दुर्भाग्य से यह अदालतों के फैसलों में नहीं, किसी भी दर पर अधिवक्ता की दलीलों में अभी भी बना हुआ है।

37. धरणीधर और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, एमएएनयू/एस.सी./0480/2010 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"8. वास्तव में, अपीलकर्ताओं की ओर से उठाए गए तर्कों पर एक साथ चर्चा की जा सकती है क्योंकि वे कुछ हद तक सामान्य प्रस्तुतियों पर आधारित हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अंसा०-1 और अंसा०-2, दोनों मृतक से संबंधित हैं। हमारे सामने जो तर्क उठाया गया है वह यह है कि वे दोनों हितबद्ध गवाह हैं और उन्होंने न्यायालय के समक्ष सही तथ्य नहीं बताए हैं और इस प्रकार, उनके बयानों पर पूरी तरह से विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। हम इस तर्क में कोई दम नहीं पा रहे हैं। यह अभिलेखों में आया है कि प्यारे लाल एक ऐसे मामले की जांच कर रहा था जिसमें आरोपी व्यक्तियों के परिवार के सदस्य हत्या में शामिल थे। जाहिर तौर पर परिवारों के बीच कुछ गुस्सा और दारार थी। अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, वे बहादुर सिंह के साथ-साथ प्यारे लाल को मारने के लिए तैयार होकर आए थे क्योंकि उनके पास बंदूकें, गोला आदि थे। मृतकों पर आरोपियों ने अपने भाइयों की मौजूदगी में हमला किया, जो गोली चलने के डर और जिस तरह से घटना हुई, उसके कारण हस्तक्षेप नहीं कर सके और उन्हें बचा नहीं सके। अभियोजन पक्ष के लिए अंसा०-1 और अंसा०-2 को मुख्य चरमदीद गवाह के रूप में पेश करना स्वाभाविक था क्योंकि उन्होंने वास्तव में घटना देखी थी और विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा भी उन पर विश्वास किया गया है। हमारे सामने भी, कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया है और वास्तव में, अभिलेखों से ऐसा कुछ भी नहीं दिखता है जो यह दिखाता हो कि ये दोनों गवाह घटनास्थल पर मौजूद नहीं थे। ऐसा कोई कठोर नियम नहीं है कि परिवार के सदस्य कभी भी घटना के सच्चे गवाह नहीं हो सकते हैं और वे हमेशा अदालत के सामने झूठी गवाही देंगे। यह हमेशा किसी दिए गए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। **जयाबालन बनाम यूटी ऑफ पांडिचेरी मनु/एस.सी./1801/2009: (2010)1 एस.सी.सी. 199** के मामले में, इस न्यायालय के पास यह विचार करने का अवसर था कि क्या हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है। न्यायालय ने यह विचार लिया कि हितबद्ध गवाह के साक्ष्य से निपटने के दौरान एक पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण लागू नहीं किया जा सकता है। इस तरह के सबूतों को केवल इसलिए नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है या तिरस्कृत नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह पीड़ित से निकटता से संबंधित व्यक्ति से आता है। न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

"23. हमारा विचार है कि ऐसे मामलों में जहां अदालत को हितबद्ध गवाहों के साक्ष्य से निपटने के लिए कहा जाता है, ऐसे गवाहों के साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय न्यायालय का दृष्टिकोण पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए।

अदालत को हितबद्ध गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों की मूल्यांकन करने और स्वीकार करने में सतर्क रहना चाहिए, लेकिन अदालत को ऐसे सबूतों पर संदेह नहीं करना चाहिए। न्यायालय का प्राथमिक प्रयास निरंतरता की तलाश करना होना चाहिए। एक गवाह के सबूत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है या केवल इसलिए तिरस्कृत नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह एक ऐसे व्यक्ति के मुंह से आता है जो पीड़ित से निकटता से संबंधित है।

"इसी तरह का दृष्टिकोण इस न्यायालय द्वारा **राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./ 1829/2009: ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 917** में लिया गया था, जहां न्यायालय ने कानून के आदेश में कहा था कि मृतक का एक करीबी रिश्तेदार अपने आप में एक हितबद्ध गवाह नहीं बनता है। एक हितबद्ध गवाह वह है जो प्रतिशोध या दुश्मनी के कारण या विवादों के कारण किसी व्यक्ति की सजा को सुरक्षित करने में रुचि रखता है और केवल उसी इरादे से न्यायालय के समक्ष गवाही देता है न कि न्याय के कारण को आगे बढ़ाने के लिए। एक हितबद्ध गवाह के साक्ष्य का मूल्यांकन से संबंधित कानून अच्छी तरह से तय है, जिसके अनुसार, एक हितबद्ध गवाह के बयान को पानी में नहीं डाला जा सकता है, लेकिन इसे स्वीकार करने से पहले सावधानीपूर्वक जांच की जानी चाहिए। उपरोक्त निर्णयों के आलोक में, यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के समर्थन में न्यायालय द्वारा कथित हितबद्ध गवाहों के बयानों पर सुरक्षित रूप से भरोसा किया जा सकता है। लेकिन यह सावधानी से किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि आपराधिक न्याय के प्रशासन को उन व्यक्तियों द्वारा कमजोर नहीं किया जाता है, जो मृतक से निकटता से संबंधित हैं। जब उनके बयानों में अन्य गवाहों, विशेषज्ञ साक्ष्य और मामले की परिस्थितियां स्पष्ट रूप से अभियुक्त के अपराध की ओर इशारा करते हुए साक्ष्य की श्रृंखला के पूरा होने को दर्शाती हैं, तो हमें कोई कारण नहीं दिखता है कि न्यायालय द्वारा तथाकथित 'हितबद्ध गवाहों' के बयान पर भरोसा क्यों नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत मामले में, परिस्थितियां ऐसी हैं कि हम विचारण न्यायालय के साथ-साथ उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तथ्य के समवर्ती निष्कर्षों में कोई त्रुटि नहीं पा सकते हैं कि ये दोनों गवाह संबंधित स्थानों पर मौजूद थे और उन्होंने वास्तव में घटना देखी थी। बंदूक की गोली के साथ-साथ कुल्हाड़ी और गोले के कारण होने वाली चोटों के बारे में उनके बयानों को चिकित्सा साक्ष्यों के साथ-साथ जांच अधिकारियों के बयानों द्वारा विधिवत समर्थन दिया जाता है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं की ओर से उठाया गया तर्क खारिज किया जा सकता है।

38. गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी और अन्य (04.09.2013-एस.सी.) मनु/एस.सी./0897/ 2013 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया: -

"11. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि किसी दिए गए मामले में दोषी/अभियुक्त के संबंध में किसी भी निष्कर्ष पर टिके होने से पहले निकट से संबंधित गवाहों के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच और मूल्यांकन की जानी चाहिए। इस प्रकार, सबूतों पर केवल इस आधार पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि गवाह एक-दूसरे से या मृतक से संबंधित हैं। यदि साक्ष्य में सच्चाई का एक रमक है, ठोस, विश्वसनीय और भरोसेमंद है, तो इस पर भरोसा किया जा सकता है, और निश्चित रूप से इस पर भरोसा किया जाना चाहिए। (संदर्भ: **भागलू**

लोथ और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0700/2011: ए.आई.आर. 2011 एस.सी. 2292; और धारी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0848/2012: ए.आई.आर. 2013 एस.सी. 308)

12. राजस्थान राज्य बनाम श्रीमती कल्कि और अन्य एमएनयू/एस.सी./0254/1981: ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1390 में इस न्यायालय ने कहा:

"5ए- जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने दो आधारों पर अंसा०-1 के साक्ष्य पर भरोसा करने से इनकार कर दिया है: (1) वह एक "अत्यधिक रुचि" वाली गवाह थी क्योंकि वह "मृतक की पत्नी है"..... क्योंकि, मामले की परिस्थितियों में, वह एकमात्र और सबसे स्वाभाविक गवाह थी; घटना के समय मृतक के साथ झोपड़ी में मौजूद वह एकमात्र व्यक्ति थी, और घटना को देखने वाली एकमात्र व्यक्ति थी। सच है कि वह मृतक की पत्नी है; लेकिन उसे हितबद्ध गवाह नहीं कहा जा सकता। वह मृतक से संबंधित है। 'संबंधित' 'हितबद्ध' के बराबर नहीं है। एक गवाह को केवल तभी 'हितबद्ध' कहा जा सकता है जब वह मुकदमेबाजी के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है; एक सिविल मामले में डिक्री में, या एक आरोपी व्यक्ति को दंडित करते हुए देखने में। एक गवाह जो एक स्वाभाविक गवाह है और किसी मामले की परिस्थितियों में एकमात्र संभावित चरमदीय गवाह है, उसे 'हितबद्ध' नहीं कहा जा सकता है। इस मामले में अंसा०-1 को वास्तविक अपराधी की रक्षा करने और प्रतिवादियों को गलत तरीके से फंसाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। (महत्व सन्निविष्ट) (यह भी देखें: चकली मैडिलेटी और अन्य बनाम एपी मनु/एस.सी./0609/2010: ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 3473)।

13. सच्चे लाल तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0865/2004: ए.आई.आर. 2004 एस.सी. 5039 में इस न्यायालय ने मामले से निपटते समय कहा:

"7.... गवाहों को पूर्व नोटिस के साथ हत्याएं नहीं की जाती हैं। यदि किसी आवासीय घर में हत्या की जाती है, तो घर के निवासी प्राकृतिक गवाह होते हैं। अगर किसी गली में हत्या की जाती है तो केवल राहगीर ही गवाह होंगे। उनके सबूतों को इस आधार पर दरकिनार नहीं किया जा सकता है या संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है कि वे केवल 'संयोग के गवाह' हैं। अभिव्यक्ति 'मौका गवाह' उन देशों से उधार ली गई है जहां हर आदमी के घर को उसका महल माना जाता है और हर किसी के पास कहीं और या किसी अन्य व्यक्ति के महल में उसकी उपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण होना चाहिए। यह एक ऐसे देश में एक अभिव्यक्ति है जहां लोग कम औपचारिक और अधिक आकस्मिक हैं, किसी भी दर पर उनकी उपस्थिति की व्याख्या करते हुए।

14. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि प्राकृतिक गवाहों को हितबद्ध गवाहों के रूप में लेबल नहीं किया जा सकता है। हितबद्ध गवाह वे हैं जो मुकदमेबाजी/मामले से कुछ लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। यदि परिस्थितियों से पता चलता है कि एक गवाह घटनास्थल पर मौजूद था और उसने अपराध देखा था, तो उसके बयान को केवल पीड़ित/मृतक से निकटता से संबंधित होने के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

39. भागलू लोध और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में एमएनयू/एस.सी./0700/2011 में रिपोर्ट किया गया था, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"14. घनिष्ठ संबंध के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है बशर्ते वह भरोसेमंद हो। किसी दिए गए मामले में अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले इस तरह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच और मूल्यांकन की जानी चाहिए। लेकिन जहां सत्र न्यायालय ने सबूतों की उचित रूप से मूल्यांकन की और उनका सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया और उच्च न्यायालय ने उसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उक्त साक्ष्य की उचित रूप से फिर से मूल्यांकन की, उच्च न्यायालय के लिए इसके विपरीत दृष्टिकोण लेना मुश्किल है, जब तक कि ऐसे गवाहों पर अविश्वास करने के कारण न हों। इस प्रकार, साक्ष्य पर केवल इस आधार पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि गवाह एक-दूसरे से या मृतक से परस्पर संबंधित हैं। (संदर्भ: एम.सी. अली और अन्य बनाम केरल राज्य मनु/एस.सी./0247/2010: ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 1639; मायलादिम्मल सुरेंद्रन और अन्य बनाम केरल राज्य मनु/एस.सी./ 0670/2010: ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 3281; श्याम वी. मध्य प्रदेश राज्य एमयू/एस.सी./ 7112/2007: (2009) 16 एस.सी.सी. 531; पृथ्वी बनाम हरियाणा राज्य मनु/एस.सी./ 0532/2010: (2010) 8 एस.सी.सी. 536; सुरेंद्र पाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य एमएनयू/एस.सी./0713/2010: (2010)9 एस.सी.सी. 399; और हिमांशु @ चिटू बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) मनु/एस.सी./06/2011: (2011)2 एस.सी.सी.36)

यहां ऊपर दिए गए कानून को ध्यान में रखते हुए, निकट से संबंधित गवाहों के साक्ष्य को स्वीकार करते हुए निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए सबूतों में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है। इसलिए यह तय हो गया है कि केवल इसलिए कि गवाह पीड़ित के करीबी रिश्तेदार हैं, उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। पक्षों में से एक के साथ संबंध एक कारक नहीं है जो गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करता है, इसके अलावा, एक रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को नहीं छिपाएगा और एक निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाएगा। हालांकि, ऐसे मामले में अदालत को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और यह पता लगाने के लिए सबूतों का विश्लेषण करना होगा कि क्या यह ठोस और विश्वसनीय सबूत है।

40. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त कानूनी स्थिति स्पष्ट शब्दों में प्रकट करेगी कि मृतक या सूचनाकर्ता के साथ गवाहों का संबंध उनके साक्ष्य को अस्वीकार करने का एकमात्र आधार नहीं हो सकता है यदि अभियोजन पक्ष के गवाह, जो खुद को घटना देखने का दावा कर रहे हैं, प्राकृतिक गवाह हैं और घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति स्वाभाविक है और इस पर संदेह नहीं किया जा सकता है। मृतक या सूचनाकर्ता के साथ उनके संबंध का बहुत महत्व नहीं हो सकता है यदि उनके साक्ष्य अन्यथा सच्चे और विश्वसनीय हैं। हालांकि, इन गवाहों की गवाही को थोड़ी सावधानी के साथ सराहने की आवश्यकता है।

41. यह याद किया जाता है कि, अ०सा०-1/निर्मला द्वारा दर्ज प्राथमिकी में, उसने कहा है कि 'मोहल्ला' के कई निवासी थे जो घटनास्थल पर इकट्ठे हुए थे और विचारण न्यायालय के समक्ष अपनी परीक्षा के दौरान उसने

एक नज़र अली के नाम का भी उल्लेख किया है, हालांकि, नज़र अली को गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया था।

42. अप्पाभाई और अन्य बनाम गुजरात राज्य, मनु/एस.सी./0028/1988 में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी: -

"अनुभव हमें याद दिलाता है कि सभ्य लोग आम तौर पर असंवेदनशील होते हैं जब उनकी उपस्थिति में भी कोई अपराध किया जाता है। वे पीड़ित और जिम्मेदारी दोनों से जान छुड़ा लेते हैं। वे खुद को अदालत से तब तक दूर रखते हैं जब तक कि यह अपरिहार्य न हो। वे सोचते हैं कि दीवानी विवाद जैसा अपराध दो व्यक्तियों या पक्षों के बीच है और उन्हें खुद को शामिल नहीं करना चाहिए। आम जनता की इस तरह की उदासीनता वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन यह हर जगह है चाहे वह गांव की जिंदगी हो, कस्बों में हो या शहरों में। इस बाधा को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है जिसके साथ जांच एजेंसी को अपने कर्तव्यों का निर्वहन करना पड़ता है। इसलिए, अदालत को स्वतंत्र गवाह की कमी के कारण अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने के बजाय अभियोजन पक्ष के संस्करण के व्यापक स्पेक्ट्रम पर विचार करना चाहिए और फिर अभियुक्त द्वारा सुझाई गई संभावना को ध्यान में रखते हुए सच्चाई की खोज करनी चाहिए।"

43. यह न्यायालय भी इस तथ्य से अपनी आँखें नहीं हटा सका कि समाज में क्या हो रहा है। हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं जहां कोई भी खुद को दूसरों के मामले में शामिल नहीं करना चाहता है और जब मामला किसी आपराधिक मामले के संबंध में होता है, तो जिन लोगों ने इस घटना को देखा है, वे विभिन्न कारणों से गवाह बनने से कतराते हैं। वे स्वयं को न्यायालय और पुलिस प्रक्रिया की कठिनाइयों से दूर रखना चाहते हैं और साथ ही वे निकट भविष्य में अपने लिए कोई परेशानी पैदा नहीं करना चाहते हैं और इसलिए, अभियोजन पक्ष उन अभियोजन गवाहों पर भरोसा करने के लिए बाध्य है जो न्यायालय के समक्ष गवाही देने का साहस रखते हैं। इस पृष्ठभूमि में, यदि अभियोजन पक्ष द्वारा एक स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया है, तो वह अभियोजन पक्ष के दो गवाहों के साक्ष्य को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, जो इस न्यायालय की सुविचारित राय में, उस समय को ध्यान में रखते हुए घटना के स्वाभाविक गवाह प्रतीत होते हैं जिस पर घटना घटित हुई थी।

44. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने कथित विरोधाभासों, अलंकरणों पर भी बहुत जोर दिया है, जो उनके अनुसार तथ्य के दो गवाहों यानी अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य में उभरे हैं ताकि यह दिखाया जा सके कि ये गवाह भरोसेमंद नहीं हैं और इसलिए, विचारण न्यायालय ने दोषसिद्धि के फैसले को दर्ज करने में अवैधता की है।

45. जिस तरह से अभियोजन पक्ष के चशमदीद गवाहों के साक्ष्य, जो खुद को घटना देखने का दावा कर रहे हैं, की मूल्यांकन की जानी चाहिए, अब कोई और नहीं है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों के कैंटेना द्वारा संतुष्ट किया गया है;

46. उठाए गए तर्कों के संदर्भ में अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्यों की मूल्यांकन करते हुए, न्यायालय को उचित परिश्रम करने की आवश्यकता है, हालांकि इस तरह के अभ्यास का मानक विवेकपूर्ण व्यक्ति द्वारा किए गए अभ्यास का होगा। न्यायालय को उन परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए जिनमें अपराध किया गया है, साक्ष्य की गुणवत्ता, गवाहों की प्रकृति और स्वभाव, व्यक्तिगत गवाह की समझ और धारणा और परीक्षा की शक्ति और शिकायत किए गए कार्य के बारे में सामान्य प्रकृति में संभाव्यता के स्तर को ध्यान में रखना चाहिए, जैसा कि गवाहों द्वारा देखा जा सकता है। अभिलेखों पर मौजूद सबूतों से सच्चाई का पता लगाने का प्रयास किया जाना चाहिए। साथ ही, यह नहीं भूलना चाहिए कि सभी मामलों में कच्चा लोहा पूर्णता के साथ अभियोजन पक्ष का मामला नहीं हो सकता है और इसका कारण यह है कि मानव जीवन के सामान्य प्रविधि में उस डिग्री तक पूर्णता एक यूटोपियन विचार है। हालांकि, फिर भी, अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता और सत्यता के संदर्भ में, अभियोजन पक्ष के मामले की विश्वसनीयता और सत्यता के संदर्भ में, निष्पक्ष न्यायिक जांच की प्रक्रिया द्वारा अभियोजन पक्ष के मामले के बारे में कुल संदेह की हवा से ग्रस्त हुए बिना निष्पक्ष न्यायिक जांच की प्रक्रिया द्वारा अदालतों पर दायित्व होता है। जिस बात पर जोर दिया जाना चाहिए वह मामले की परिस्थितियों से निकलने वाला सरल प्रमाण है और सच्चाई की एक रमक है। अभियोजन पक्ष के मामले में जिन विरोधाभासों, कमजोरियों की ओर इशारा किया जा सकता है, उनका मूल्यांकन किसी तथ्य के अस्तित्व की संभावनाओं के मापदंड के साथ किया जाना चाहिए या नहीं। जब तक, दुर्बलता और विरोधाभास ऐसी प्रकृति के न हों जो सबूतों के आधार को कमजोर कर दें और अभियोजन पक्ष के मामले के मूल में कलंकित न हों, तब तक इस तरह के विरोधाभासों और कमजोरियों पर अधिक जोर नहीं दिया जा सकता है। गवाह के साक्ष्य की विश्वसनीयता का न्याय करने के लिए, किसी को उसके साक्ष्य को देखना होगा, और यदि गवाहों के चशमदीद खाते में कोई विसंगति पाई जाती है जो गवाह के कहने की जड़ को प्रभावित नहीं करती है, तो गवाह को क्रेडिट योग्य नहीं माना जा सकता है। उसी समय, पुष्टि के नियम की मांग करते हुए, गणितीय बारीकियों की उम्मीद नहीं की जा सकती है। गवाहों के विवरण को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और एक बार जब यह धारणा बन जाती है कि खाते में सच्चाई की रमक है, तो पूरे सबूतों को त्यागना एक विश्वसनीय और ईमानदार गवाह के साथ अन्याय करने के समान होगा। यहां तक कि ईमानदार और सच्चे गवाह भी कुछ विवरणों में भिन्न हो सकते हैं, जो अभियोजन पक्ष के मामले के मुख्य कारण से संबंधित नहीं हो सकते हैं, और इसलिए उनके साक्ष्य का मूल्यांकन की जानी चाहिए, जो गवाह द्वारा अवलोकन, प्रतिधारण और पुनरुत्पादन की शक्ति को ध्यान में रखते हुए मानव मानक द्वारा आंका जाना चाहिए। मामले की उपस्थित परिस्थितियों और संभावनाओं का आकलन मानव आचरण और प्रकृति के सामान्य प्रविधि में होने वाले साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

47. गंगाभवानी बनाम रायपति वेंकट रेड्डी और अन्य में एमएनयू/एस.सी./0897/2013 में रिपोर्ट किया गया था, जो निम्नानुसार है: -

"उत्तर प्रदेश राज्य बनाम नरेश मनु/एस.सी./0228/2011: (2011)4 एस.सी.सी. 324 में, इस न्यायालय ने अपने पहले के फैसलों की एक बड़ी संख्या पर विचार करने के बाद: सभी आपराधिक मामलों में, अवलोकन की सामान्य त्रुटियों के कारण गवाहों के बयानों में सामान्य विसंगतियां होना तय है, अर्थात्, समय बीतने के कारण या घटना के समय सदमे और आतंक जैसे मानसिक स्वभाव के कारण स्मृति की त्रुटियां। जहां चूक एक विरोधाभास है, गवाह और अन्य गवाहों की सत्यता के बारे में गंभीर संदेह पैदा करना भी अदालत में गवाही देते समय महत्वपूर्ण सुधार करता है, ऐसे साक्ष्य पर भरोसा करना सुरक्षित नहीं हो सकता है। हालांकि, मामूली विरोधाभासों, विसंगतियों, अलंकरण या मामूली मामलों में सुधार जो अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं, को एक आधार नहीं बनाया जाना चाहिए जिस पर साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज किया जा सकता है। अदालत को गवाह की विश्वसनीयता के बारे में अपनी राय बनानी होगी और यह निष्कर्ष दर्ज करना होगा कि क्या उसका बयान आत्मविश्वास को प्रेरित करता है।

अतिशयोक्ति अपने आप में साक्ष्य को भंगुर नहीं बनाती है। लेकिन यह अभियोजन पक्ष के संस्करण की विश्वसनीयता का परीक्षण करने के कारकों में से एक हो सकता है, जब पूरे सबूत को विश्वसनीयता की कसौटी पर परीक्षण करने के लिए एक क्रसिबल में रखा जाता है।

इसलिए, एक गवाह के बयानों में केवल मामूली भिन्नता को सुधार के रूप में नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह गवाह द्वारा पहले दिए गए बयान का प्रदर्श हो सकता है। वे चूक जो भौतिक विवरणों में विरोधाभास के बराबर हैं यानी मामले की जड़ तक जाती हैं/अभियोजन पक्ष के मामले के मुकदमे या मूल को भौतिक रूप से प्रभावित करती हैं, गवाह की गवाही को बदनाम करने के लिए उत्तरदायी बनाती हैं।

इसी तरह के विचार को इस न्यायालय द्वारा तहसीलदार सिंह और एक अन्य बनाम एक अन्य मामले में दोहराया गया है। उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0053/1959: ए.आई.आर.1959 एस.सी. 1012; पुधु राजा और एक अन्य बनाम राज्य, पुलिस निरीक्षक द्वारा प्रतिनिधि मनु/एस.सी./ 0761/ 2012: जीटे 2012(9) एस.सी. 252; और लाल बहादुर बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) मनु/एस.सी./0333/2013: (2013)4 एस.सी.सी. 557)।

10. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि यदि गवाहों के बयानों में मामूली विरोधाभास हैं, तो उन्हें नजरअंदाज किया जाना तय है क्योंकि इसे सुधार के रूप में नहीं कहा जा सकता है और ऐसा होने की संभावना है क्योंकि अदालत में बयान अत्यधिक देरी के बाद दर्ज किया जाता है। यदि विरोधाभास इतने महत्वपूर्ण हैं कि वही मामले की जड़ तक जाते हैं, अभियोजन पक्ष के मामले के मुकदमे या मूल को भौतिक रूप से प्रभावित करते हैं, तो

अदालत को गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में अपनी राय बनानी होगी और यह पता लगाना होगा कि क्या उनके बयान विश्वास को प्रेरित करते हैं।

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ए.आई.आर. 1983, 753, एमएनयू/एस.सी./0090/1983 में रिपोर्ट किए गए भरवाड़ा भोगिनभाई हिरजीभाई बनाम गुजरात राज्य के मामले में बहुत पहले माना था कि:

"सर्वोच्च न्यायालय ने मामूली विसंगतियों के संदर्भ में साक्ष्य के पुनः मूल्यांकन या पुनः मूल्यांकन में प्रवेश किए बिना साक्ष्य का मूल्यांकन के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों का अवलोकन किया और उनका निपटारा किया:

(1) कुल मिलाकर एक गवाह से एक फोटोग्राफिक स्मृति रखने और किसी घटना के विवरण को याद करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। ऐसा नहीं है कि एक वीडियो टेप मानसिक स्क्रीन पर फिर से चलाया जाता है।

(2) आमतौर पर ऐसा होता है कि एक गवाह घटनाओं से आगे निकल जाता है। गवाह उस घटना का अनुमान नहीं लगा सकता था जिसमें अक्सर आश्चर्य का तत्व होता है। इसलिए मानसिक संकायों से विवरणों को अवशोषित करने के लिए अभ्यस्त होने की उम्मीद नहीं की जा सकती है।

(3) अवलोकन की शक्तियाँ एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होती हैं। जो कोई नोटिस कर सकता है, दूसरा नहीं देख सकता है। एक वस्तु या आंदोलन एक व्यक्ति के दिमाग पर अपनी छवि बना सकता है, जबकि यह दूसरे की ओर से किसी का ध्यान नहीं जा सकता है।

(4) कुल मिलाकर लोग किसी बातचीत को सही ढंग से याद नहीं कर सकते हैं और उनके द्वारा उपयोग किए गए या उनके द्वारा सुने गए शब्दों को पुनः प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। वे केवल बातचीत के मुख्य उद्देश्य को याद कर सकते हैं। एक गवाह से मानव टेप अभिलेखित होने की उम्मीद करना अवास्तविक है।

(5) किसी घटना के सटीक समय या किसी घटना की समय अवधि के संबंध में, आमतौर पर, लोग पूछताछ के समय पल के संकेत पर अनुमान लगाकर अपना अनुमान लगाते हैं। और कोई भी लोगों से ऐसे मामलों में बहुत सटीक या विश्वसनीय अनुमान लगाने की उम्मीद नहीं कर सकता है। फिर, यह व्यक्तियों की समय-भावना पर निर्भर करता है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होता है।

(6) आमतौर पर एक गवाह से यह उम्मीद नहीं की जा सकती है कि वह तेजी से उत्तराधिकार में या कम समय अवधि में होने वाली घटनाओं के अनुक्रम को सही ढंग से याद करे। एक गवाह भ्रमित होने के लिए उत्तरदायी है, या बाद में पूछताछ करने पर मिश्रित हो जाता है।

(7) एक गवाह, हालांकि पूरी तरह से सच्चा है, अदालत के माहौल और अधिवक्ता द्वारा की गई भेदी जिरह से अभिभूत होने के लिए उत्तरदायी है और घबराहट से तथ्यों को मिलाता है, घटनाओं के अनुक्रम के बारे में भ्रमित हो जाता है, या पल भर में कल्पना से विवरण भर देता है। गवाह का अवचेतन मन कभी-कभी मूर्ख दिखने या अविश्वास किए जाने के डर के कारण ऐसा होता है, हालांकि गवाह उसके द्वारा देखी गई घटना का एक सच्चा और ईमानदार विवरण दे रहा है - शायद यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक रक्षा तंत्र है जो पल भर में सक्रिय होता है।

49. इस प्रकार यह कानून में अच्छी तरह से स्थापित है कि मामूली विसंगतियों को अनुचित जोर नहीं दिया जाना चाहिए और साक्ष्य को विश्वसनीयता के दृष्टिकोण से माना जाना चाहिए। परीक्षण यह है कि क्या वही अदालत के मन में विश्वास पैदा करता है। यदि सबूत अविश्वसनीय हैं और विवेक की कसौटी पर खरे नहीं उतरे हैं, तो यह अभियोजन पक्ष के संस्करण में संध लगा सकता है। यदि कोई चूक या विसंगति मामले की जड़ तक जाती है और विसंगतियों को जन्म देती है, तो बचाव पक्ष ऐसी विसंगतियों का लाभ उठा सकता है। यह बताने के लिए कोई विशेष जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक चूक एक भौतिक चूक की जगह नहीं ले सकती है और इसलिए, मामूली विरोधाभास, विसंगतियां या महत्वहीन अलंकरण अभियोजन पक्ष के मामले के मूल को प्रभावित नहीं करते हैं और अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को अस्वीकार करने के लिए एक आधार के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। चूक से गवाह की सत्यता या साख के बारे में गंभीर संदेह पैदा होना चाहिए। यह केवल गंभीर विरोधाभास और चूक हैं जो अभियोजन पक्ष के मामले को भौतिक रूप से प्रभावित करते हैं, लेकिन हर विरोधाभास या चूक को नहीं।

50. **महेंद्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट मनु/एस.सी./0257/2019:** रिपोर्ट के प्रस्तर-38 में निम्नानुसार है: -

"38. यह तर्क कि पूरा मामला झूठ पर आधारित है और इस प्रकार अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि के लिए विश्वसनीय नहीं है, तर्कसंगत नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कहावत " फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस" का भारत में कोई आवेदन नहीं है, केवल इस कारण से कि गवाह के बयान का कुछ हिस्सा विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। गंगाधर बेहरा के मामले में इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण ऐसा है, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

15. इसी आशय का निर्णय **पंजाब राज्य बनाम जागीर सिंह मनु/एस.सी./0193/1973: (1974) 3 एस.सी.सी. 277 और लेहना बनाम हरियाणा राज्य, एमएनयू/एस.सी./0075/2002: (2002) 3 एस.सी.सी. 76.** अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा पूरे अभियोजन मामले को खारिज करने की वांछनीयता के बारे में तर्क देने के लिए कुछ गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों को स्वीकार न करने पर जोर दिया गया था। संक्षेप में प्रार्थना "यूनो में फाल्स, ओम्निबस में फाल्सस" (एक चीज में झूठा, हर चीज में झूठा) के सिद्धांत को लागू करना है। यह दलील स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है। यहां तक कि अगर साक्ष्य का एक बड़ा हिस्सा कमी पाया जाता है, तो यदि अवशेष

किसी अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त है, तो कई अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों को बरी किए जाने के बावजूद, उसकी दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है। अनाज को भूसी से अलग करना अदालत का कर्तव्य है। जहां भूसी को अनाज से अलग किया जा सकता है, अदालत के लिए यह खुला होगा कि वह किसी अभियुक्त को दोषी ठहरा सके, इस तथ्य के बावजूद कि अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के अपराध को साबित करने के लिए सबूतों की कमी पाई गई है। किसी विशेष भौतिक गवाह या विशेष सामग्री का झूठ इसे शुरू से अंत तक बर्बाद नहीं करेगा। "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस" की कहावत का भारत में कोई उपयोग नहीं है और गवाहों को झूठा नहीं बताया जा सकता है। कहावत "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस" को सामान्य स्वीकृति नहीं मिली है और न ही यह कहावत कानून के शासन की स्थिति पर कब्जा करने के लिए आई है। यह केवल सावधानी का नियम है। इसका मतलब यह है कि ऐसे मामलों में गवाही की अवहेलना की जा सकती है, न कि इसकी अवहेलना की जानी चाहिए। सिद्धांत में केवल साक्ष्य के वजन का प्रश्न शामिल है जिसे एक अदालत परिस्थितियों के एक निश्चित सेट में लागू कर सकती है, लेकिन यह वह नहीं है जिसे "साक्ष्य का अनिवार्य नियम" कहा जा सकता है। (देखें **निसार अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0032/1957: ए.आई.आर. 1957 एस.सी. 366**) केवल इसलिए कि कुछ अभियुक्त व्यक्तियों को बरी कर दिया गया है, हालांकि उन सभी के खिलाफ सबूत, जहां तक प्रत्यक्ष गवाही की बात है, एक आवश्यक परिणाम के रूप में नहीं ले जाता है कि जिन लोगों को दोषी ठहराया गया है उन्हें भी बरी किया जाना चाहिए। यह हमेशा एक अदालत के लिए खुला है कि उन अभियुक्तों को अलग किया जाए जिन्हें दोषसिद्ध लोगों से बरी कर दिया गया था। (देखें **गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य मनु/एस.सी./0122/1955: ए.आई.आर. 1956 एस.सी. 460**)। यह सिद्धांत विशेष रूप से भारत में खतरनाक है क्योंकि यदि गवाही के एक पूरे समूह को खारिज कर दिया जाता है, क्योंकि एक गवाह स्पष्ट रूप से किसी पहलू में असत्य बोल रहा था, तो यह डर माना जा सकता है कि आपराधिक न्याय का प्रशासन एक मृत पड़ाव पर आ जाएगा। गवाह किसी कहानी को कढ़ाई देने में मदद नहीं कर सकते, हालांकि, मुख्य रूप से सच है। इसलिए, प्रत्येक मामले में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि साक्ष्य किस हद तक स्वीकृति के योग्य है, और केवल इसलिए कि कुछ मामलों में अदालत गवाह की गवाही पर भरोसा करने के लिए इसे अपर्याप्त मानती है, यह आवश्यक रूप से कानून के मामले के रूप में पालन नहीं करता है कि इसकी सभी तरह से अवहेलना की जानी चाहिए। सबूतों को सावधानी से छानना होगा। उपरोक्त कहावत इस कारण से एक ठोस नियम नहीं है कि शायद ही कोई ऐसा गवाह मिलता है जिसके साक्ष्य में असत्य का एक दाना या किसी भी दर पर अतिशयोक्ति, कढ़ाई या अलंकरण नहीं होता है। (संदर्भ: **सोहराब बनाम मध्य प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0254/1972: (1972)3 एस.सी.सी. 751 और उगर अहीर बनाम बिहार राज्य मनु/एस.सी./0333/1964: ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 277**)। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, फेलिसिटस रूपक के संदर्भ में, अनाज को भूसी से, सत्य को झूठ से अलग करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जहां सत्य को झूठ से अलग करना संभव नहीं है, क्योंकि अनाज और भूसी को अटूट रूप से मिलाया जाता है, और अलगाव की प्रक्रिया में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आवश्यक विवरणों को पूरी तरह से संदर्भ और जिस पृष्ठभूमि के खिलाफ वे बनाए गए हैं, से अलग करके एक बिल्कुल नए मामले का पुनर्निर्माण करना पड़ता है, एकमात्र उपलब्ध रास्ता सबूतों को पूरी तरह से त्यागना है। (देखें **ज़िंगली एरियल बनाम म.प्र. राज्य**

मनु/एस.सी./0093/1952: ए.आई.आर. 1954 एस.सी.15 और बालाका सिंह बनाम पंजाब राज्य एमएनयू/एस.सी./0087/1975: (1975)4 एस.सी.सी. 511।..... "

39 . इसलिए, गवाहों की पूरी गवाही को केवल इसलिए खारिज नहीं किया जा सकता है, क्योंकि कुछ पहलुओं में, बयान के हिस्से पर विश्वास नहीं किया गया है।

इस प्रकार, उपरोक्त दो अभियोजन गवाहों, अर्थात् अ०सा०-1/सूचनाकर्ता निर्मला देवी और चश्मदीद गवाह अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य की उपरोक्त कानूनी प्रस्तावों की पृष्ठभूमि में मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

51. पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह याद किया जाना चाहिए कि अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि, 25.11.1991 को लगभग 6:00 बजे, अपीलकर्ता राज कुमार यादव, चुन्नी लाल 'कहार', संजय यादव, मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक सूचनाकर्ता के घर पहुंचे थे और मृतक राजू को बुलाया था और जब सूचनाकर्ता ने कहा कि वह आ रहा है, तो अपीलकर्ता राज कुमार यादव ने उसके घर में प्रवेश किया और उसके साथ मारपीट की और उसके बाद मृतक को उसके घर से बाहर खींच लिया गया और पास में स्थित एक मंदिर के सामने ले जाया गया और वहां आगे मारपीट की गई। जिसके परिणामस्वरूप, उसके सिर पर कई चोटें आईं। प्राथमिकी में यह भी कहा गया है कि अपीलकर्ताओं ने मृतक के सिर पर 'लाठी और हॉकी' से हमला किया था।

अ०सा०-1/निर्मला ने विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज अपने साक्ष्य में कहा है कि उसका मुन्ना खटिक के साथ जमीन के एक टुकड़े से संबंधित विवाद है और मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक की मां लल्ली देवी ने उसे उक्त भूमि की ओर न जाने की चेतावनी दी थी और वह जमीन अपीलकर्ता राज कुमार को भी दी थी। उन्होंने यह भी कहा है कि अपीलकर्ता संजय और चुन्नी लाल राज कुमार के दोस्त हैं। इस प्रकार, दोनों परिवारों के बीच दुश्मनी, जो एक-दूसरे से संबंधित भी हैं, स्पष्ट है और यह जमीन के एक टुकड़े से संबंधित था जो संयुक्त रूप से उनके स्वामित्व में था और मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक की मां ने अपीलकर्ता राज कुमार को वह जमीन दी थी। इस गवाह यानी निर्मला ने आगे कहा है कि प्रासंगिक समय पर सभी पांच आरोपी व्यक्ति उसके घर आए थे और राजू (मृतक) के बारे में पूछताछ की थी और यह भी कि राज कुमार और संजय के हाथों में लाठी थी, जबकि अपीलकर्ता चुन्नी लाल के पास 'हॉकी' थी और मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक बोतलों से लैस थे और वे सभी उसके घर में घुस गए और राजू को उसके घर से बाहर खींच लिया, जबकि उस पर हमला किया और उसे घसीटते हुए मंदिर ले गया। उसने जिरह के दौरान यह भी स्वीकार किया है कि उस दिन अन्नू खटिक और मन्नू खटिक के घर दावत थी क्योंकि उस दिन अन्नू खटिक की दुल्हन उनके घर आई थी और उस दावत में राजकुमार यादव, चुन्नी लाल और संजय को भी आमंत्रित किया गया था। हालांकि, इस तथ्य पर उसका खंडन किया गया था कि उसने प्राथमिकी में यह नहीं कहा है कि सभी आरोपी व्यक्ति उसके घर में घुस गए थे, जिसके संबंध में उसने जवाब दिया कि, वह इसके लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दे सकती है। उसने यह भी कहा कि घर के साथ-साथ मंदिर के सामने उस स्थान पर भी खून के धब्बे थे जहां उसके बेटे पर हमला किया गया था। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए अपने बयान का भी खंडन किया गया था कि उसने उस

स्थान के बारे में नहीं बताया है जहां से उसने घटना देखी है, जो उसके अनुसार मंदिर के सामने हुई थी। उसने जिरह के दौरान स्वीकार किया कि, पहले उसके बेटे के साथ घर में मारपीट की गई थी और उसके बाद घर में उसके साथ मारपीट करने के बाद उसे मंदिर में घसीटा गया था और उसके घर से मंदिर की यह दूरी लगभग 20 कदम है।

52. घटना का विस्तृत विवरण देते हुए, उसने कहा था कि अपीलकर्ता संजय के पास एक 'हाँकी' थी और उसने उसे घर में और साथ ही मंदिर के सामने राजू पर हमला करते हुए देखा था और अपीलकर्ता चुन्नी लाल के पास 'हाँकी' थी, लेकिन अपनी जिरह में, उसने चुन्नी लाल को हमले की भूमिका नहीं सौंपी है क्योंकि उसने कहा है कि चुन्नी लाल के पास हाँकी थी। उसने आगे कहा कि अपीलकर्ता अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक के हाथ में बोतलें थीं और उन्होंने बोतलों से उसके बेटे पर हमला किया था। हालांकि, उन्होंने स्पष्ट किया कि बोतलों का गिलास टूटा नहीं था और मृतक के शरीर पर कहीं भी नहीं डाला गया था क्योंकि बोतलें टूटी नहीं थीं। उसने अपीलकर्ता राज कुमार को 'लाठी' से हमला करने की भूमिका सौंपी। उन्होंने आगे कहा कि ये सभी व्यक्ति अत्यधिक नशे में थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक ने सभी को निमंत्रण दिया था लेकिन उन्हें आमंत्रित नहीं किया गया था। इस प्रकार, इस गवाह ने घटना का विस्तृत विवरण दिया है और राजकुमार को 'लाठी' और 'हाँकी' के साथ मारपीट की भूमिका सौंपी है, जबकि अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक को 'बोतलों' से हमला करने की भूमिका सौंपी है।

53. हम इस मामले के इस पहलू पर चर्चा करेंगे यानी मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक को सौंपी गई भूमिका ने बाद में इस फैसले में मृतक के सिर पर बोतलों से हमला किया था। अब जहां तक अपीलकर्ता राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय का सवाल है, उन्हें इस गवाह द्वारा 'लाठी और हाँकी' के साथ मारपीट की भूमिका सौंपी गई है।

अ०सा०-2/पुट्टी लाल, जो सूचनाकर्ता अ०सा०-11/निर्मला का बेटा है और मृतक का भाई है, जिसके साक्ष्य घटना के 09 साल बाद विचारण न्यायालय के समक्ष दर्ज किए गए थे, ने कहा है कि उस समय राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय उनके घर पहुंचे थे और मृतक राजू के बारे में पूछा था और उसके बाद उन्होंने (राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय) उसके घर में घुस गए और राजकुमार और चुन्नी लाल 'लाठी' ले जा रहे थे, जबकि संजय 'हाँकी' कर रहे थे और उन्होंने घर के अंदर उसके भाई के साथ मारपीट शुरू कर दी और उसे उसके घर से बाहर खींच लिया और शोर गुल पर अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक और कई अन्य लोग इकट्ठा हो गए। उन्होंने यह भी कहा कि उनके भाई के सिर पर कई चोटें आई हैं और उनके भाई को पहले कोतवाली ले जाया गया और उसके बाद अस्पताल ले जाया गया जहां उनकी मौत हो गई। उनसे लंबी जिरह की गई। अपनी जिरह में, उन्होंने कहा कि अपीलकर्ताओं ने पहले घर के अंदर उनके भाई पर हमला किया और उसके बाद उन्हें घर से बाहर खींच लिया गया और मंदिर के सामने उनके साथ मारपीट की गई और उन्होंने कहा कि जब अपीलकर्ता (राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय) मृतक के साथ उसके घर में मारपीट कर रहे थे तो उन्होंने शोर मचा दिया था। उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि जब अपीलकर्ता राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय ने उनके घर में प्रवेश

किया था और उनके भाई राजू पर हमला किया था, तो घर के अंदर बिजली का बल्ब जलाया गया था और उन्होंने उन्हें मृतक के साथ मारपीट करते हुए देखा था। उन्होंने घटना का प्रदर्श से ब्यौरा दिया है। आरोपी व्यक्तियों के पास मौजूद हथियार से संबंधित उनकी गवाही में केवल मामूली विरोधाभास दिखाई देते हैं, लेकिन 09 वर्षों की लंबी अवधि को ध्यान में रखते हुए, जो घटना होने के बाद से बीत चुकी है और उनके साक्ष्य की रिकॉर्डिंग को ध्यान में रखते हुए, हमारी सुविचारित राय में, यह नगण्य प्रतीत होता है। गौरतलब है कि जिरह के दौरान इस गवाह ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि घटना के दिन अन्नू खटिक की दुल्हन उनके घर आई थी और वहां दावत का आयोजन किया गया था और वे (अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक) अपने रिश्तेदारों की देखभाल में व्यस्त थे और उन्होंने न तो उसके घर में प्रवेश किया है और न ही मृतक राजू के साथ मारपीट की है। उन्होंने यह भी कहा कि उन्हें याद नहीं है कि अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक का उल्लेख उन्होंने मजिस्ट्रेट के सामने किया था या विवेचनाधिकारी के सामने।

इस प्रकार, अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य से स्पष्ट शब्दों में पता चलेगा कि जहां तक अपीलकर्ताओं राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय की संलिप्तता का संबंध है, उनके साक्ष्य भरोसेमंद और विश्वसनीय हैं, जबकि उन्होंने अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक को दोषमुक्त कर दिया है और कहा है कि उन्होंने मृतक पर हमला नहीं किया है और न ही वे उसके घर में प्रवेश किए हैं।

54. हम इस गवाह द्वारा दिए गए सबूतों से भी सहमत हैं और हम उसे अ०सा०-1/निर्मला की तुलना में अधिक विश्वसनीय पाते हैं, जिसने हमारी राय में, अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक का नाम लिया होगा, क्योंकि वह जमीन के एक टुकड़े के संबंध में उनसे दुश्मनी कर रही थी, जिसे अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक की मां ने माना था अर्थात्, लल्ली देवी ने अपीलकर्ता राज कुमार को दिया था।

55. एक और तथ्य जो हमें उस समय मृतक के घर के अंदर या मंदिर के पास अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक की उपस्थिति पर संदेह करने के लिए प्रेरित कर रहा है और 'मारपीट' में भाग लेने के लिए प्रेरित कर रहा है, वह यह है कि, यह अभियोजन पक्ष का एक स्वीकृत मामला प्रतीत होता है कि जिस दिन घटना कथित तौर पर हुई थी, उस दिन अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक द्वारा एक दावत आयोजित की गई थी उनके घर पर अन्नू खटिक की दुल्हन उनके घर आई थी और रिश्तेदारों को बुलाया गया था और ये दोनों व्यक्ति उनकी देखभाल में व्यस्त थे। यदि इस स्थिति को संभावना की निहाई पर परखा जाता है, तो एक व्यक्ति के लिए यह अत्यधिक असंभव है जिसके घर में दावत चल रही है और रिश्तेदार आ रहे हैं और भोजन कर रहे हैं कि वह दूसरे के घर जाएगा और किसी भी घटना का कारण बनेगा और 'मारपीट' में लिप्त होगा और हमारे दिमाग में अ०सा०-2/पुट्टी लाल ने अ०सा०-1/निर्मला की तुलना में घटना का अधिक विश्वसनीय विवरण दिया है। इस प्रकार, हमारे पास अ०सा०-2/पुट्टी लाल की गवाही पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। यह फिर से याद किया जाता है कि 'यूनो में फाल्सस और ओम्निबस में फाल्सस' का सिद्धांत भारत में लागू नहीं होता है और न्यायालय का कर्तव्य गवाहों के साक्ष्य से सच्चाई निकालना है। इस प्रकार, अ०सा०-1/निर्मला के साक्ष्य पर विचार करने के बाद, हमारी सुविचारित राय है कि अपीलकर्ता राज कुमार, संजय यादव और चुन्नी लाल के

संबंध में उसका साक्ष्य विश्वसनीय है। इसलिए, अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य को समग्र रूप से ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि उनके साक्ष्य विश्वसनीय हैं, भरोसेमंद और जहां तक केवल अपीलकर्ता राज कुमार, चुन्नी लाल और संजय द्वारा अपराध करने का संबंध है, उसे स्वीकार किया जा सकता है।

56. कई अन्य छोटे बिंदु हैं जिन्हें पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा उजागर किया गया है जैसे 'लाठी' और 'हॉकी', जिनके बारे में कहा जाता है कि घटना में आरोपी व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल किया गया था, बरामद नहीं किया गया है या अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल के कपड़ों पर कोई खून नहीं पाया गया है। ये सभी तर्क, जो पक्षकारों के अधिवक्ताओं द्वारा पेश किए गए हैं, हमारी सुविचारित राय में, इनमें कोई बल नहीं है। यदि विवेचनाधिकारी ने सही परिप्रेक्ष्य में जांच नहीं की है, तो यह अभियोजन पक्ष के मामले को ध्वस्त करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है और इसी तरह यदि विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत मृतक का बयान दर्ज करने के लिए अस्पताल में तत्परता से आगे नहीं बढ़ाया है, जिसे 'मृत्युपूर्व घोषणा' के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है, इसे दो चश्मदीद गवाहों के अन्यथा विश्वसनीय सबूतों को खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है, जो हमारी राय में विश्वसनीय, भरोसेमंद हैं और उनके साक्ष्य के चारों ओर विश्वास की रमक है। यह भी याद किया जाना चाहिए कि अपराध पूर्व सूचना के साथ नहीं किए जाते हैं और अभियोजन पक्ष को आरोपी व्यक्तियों द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक परिकल्पना का उत्तर देने/व्याख्या करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है और यह पर्याप्त होगा कि वे इस मामले को उचित संदेह से परे साबित करने में सफल रहे हैं।

57. अन्य तर्क, जो आगे बढ़ाया गया है, चिकित्सा साक्ष्य और घटना के मौखिक खाते में कथित विरोधाभासों के संबंध में है।

58. हमने अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों का अवलोकन किया है और पाया है कि, हमला 'लाठी' और हॉकी के साथ किया गया था। अ०सा०-5/डॉ. के.एन. कौशल, जिन्होंने पहली बार मृतक की जांच की है, ने मृतक के सिर और चेहरे के चारों ओर 06 घाव देखे हैं, साथ ही उसके माथे पर एक चोट और गर्दन पर एक खरोंच है। उन्होंने कहा कि ये सभी चोटें ताजा थीं और घायलों के दिल की धड़कन लगभग 110 प्रति मिनट थी, वह होश में थे और उनका रक्तचाप 110/70 मिमी था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि ये सभी चोटें 25-11-1991 को लगभग 6:00 बजे हो सकती हैं और लाठी-लाठियों और हॉकी के कारण हो सकती हैं। तथ्य यह है कि अस्पताल में मृतक/घायलों के उपचार के दौरान इन चोटों को टांका लगाया गया था और शव परीक्षण रिपोर्ट में इन चोटों को 'सिले हुए घावों' के रूप में पाया गया है, अभियोजन पक्ष के मामले के संबंध में किसी भी संदेह को दूर करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है।

अ०सा०-6/डॉ. संतोष कुमार, जिन्होंने मृतक के शरीर का शव परीक्षण किया है, ने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतक की मृत्यु 27.11.1991 को 2:50 बजे जिला अस्पताल फैजाबाद में हुई थी। उन्होंने यह भी देखा है कि

उनके सिर और चेहरे के चारों ओर 06 टांके लगे घाव हैं, इसके अलावा नाक पर एक खरोंच और दाहिनी आंख का काला पड़ जाना और आंतरिक जांच में, मृतक की पार्श्विका, पश्चकपाल और ललाट की हड्डियां फ्रैक्चर पाई गईं और झिल्लियां क्षत-विक्षत हो गईं और उनके अनुसार मृतक की मृत्यु शव परीक्षण से पहले की चोटों के कारण 'सदमे' के कारण हुई है। चोटों को सिलने के बाद, उन्होंने कहा कि वह यह बताने की स्थिति में नहीं हैं कि ये चोटें किस हथियार से हो सकती हैं।

59. जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं कि अ०सा०-5/डॉ. के.एन. कौशल, जिन्होंने जीवनकाल में मृतक की जांच की थी, ने विशेष रूप से कहा है कि ये चोटें 'लाठी' और 'हाँकी' के कारण हो सकती हैं और ताजा थीं और उन्होंने घावों की प्रकृति को भी देखा है जैसे कि घाव चोट और घर्षण के रूप में, घटना के चश्मदीद साक्ष्य के साथ चिकित्सा साक्ष्य का कोई विरोधाभास नहीं प्रतीत होता है और वास्तव में इस मामले में चिकित्सा साक्ष्य ने चश्मदीद संस्करण का समर्थन किया है।

इस संबंध में, अपीलकर्ता- संजय यादव के अधिवक्ता श्री चंद्रशेखर पांडे द्वारा पेश किया गया तर्क कि जख्मों को टांका नहीं लगाया जा सकता है, ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें कोई बल नहीं है, जहां तक सर्जरी का संबंध है, चिकित्सा विज्ञान अब तक बहुत आगे बढ़ गया है और हम इस तर्क पर ज्यादा समय नहीं देना चाहते हैं, जैसा कि हमारी राय में है, एक घायल के घाव को एक कुशल सर्जन द्वारा बहुत अच्छी तरह से सिल दिया जा सकता है।

60. एक और तर्क जो अपीलकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा पेश किया गया है, वह यह है कि मृतक के पिता, अर्थात्, राम औतार इस मामले में पूरी तरह से तस्वीर से बाहर हैं, जबकि गवाहों ने स्वीकार किया है कि वह घर में मौजूद था। उसने मृतक को बचाने का प्रयास नहीं किया और न ही कोतवाली या अस्पताल गया था और इससे पता चलता है कि अभियोजन पक्ष द्वारा घटना का सही विवरण नहीं दिया जा रहा है। सबसे पहले हम अभियोजन पक्ष के मामले पर संदेह करने के लिए इस तर्क को स्वीकार नहीं कर सकते हैं, इसके अलावा जब बचाव पक्ष ने मृतक के पिता को अपने गवाह के रूप में बुलाने का कोई प्रयास नहीं किया है, इसके अलावा, राम औतार ने कभी भी अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल के अनुसार घटना को देखने का दावा नहीं किया है, परिवार में केवल उन्होंने घटना को देखा है और अ०सा०-1/निर्मला के साक्ष्य में यह आया है कि उसकी बहू ने भी घटना के बारे में पूछा था और उसने उसे बताया है कि वास्तव में क्या हुआ था और इस प्रकार, एकमात्र परिस्थिति यह है कि मृतक के पिता थाना या अस्पताल नहीं गए थे, वह ऐसी परिस्थिति नहीं हो सकती है जिसके आधार पर अभियोजन पक्ष का अन्यथा विश्वसनीय साक्ष्य हो चश्मदीद गवाह पर संदेह हो सकता है।

61. सभी तथ्यों, परिस्थितियों और अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए, हमारे सुविचारित विचार में, अभियोजन पक्ष के दो चश्मदीद गवाह अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल द्वारा यह निश्चित रूप से साबित किया गया है कि 25.09.1991 को लगभग 6:00 बजे अपीलकर्ता राज कुमार यादव, चुन्नी लाल

कहार और संजय मृतक राजू के घर में घुस गए थे और उस पर 'लाठी' और हॉकी से हमला किया था और उसे बाहर भी खींच लिया था उनके घर के बारे में उनके द्वारा एक मंदिर के सामने उनके द्वारा आगे हमला किया गया और इस घटना को अभियोजन पक्ष के दो गवाहों, अर्थात् अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल ने देखा। इन गवाहों से लंबी जिरह की गई है और लंबी जिरह के बाद भी अ०सा०-1/निर्मला देवी के साक्ष्य पर केवल दो अपीलकर्ताओं, अर्थात् मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक की संलिप्तता के संबंध में संदेह किया जा सकता है, जिन कारणों से हम पहले ही दर्ज कर चुके हैं और अ०सा०-2/पुट्टी लाल द्वारा स्पष्ट शब्दों में भी स्वीकार किए गए हैं। घटना के मौखिक विवरण की तुलना में चिकित्सा साक्ष्य का कोई विरोधाभास नहीं है, जैसा कि अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल द्वारा वर्णित है। अ०सा०-1/निर्मला देवी के साक्ष्य को खारिज करने के लिए एक तर्क दिया जा सकता है, क्योंकि उसने सह-दोषियों अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक को भी यह कहकर शामिल किया है कि वे भी हमले में शामिल थे। यह याद किया जाना चाहिए कि अ०सा०-1/निर्मला के मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक के साथ कोई सौहार्दपूर्ण संबंध नहीं हैं, जो उनकी जेठानी लल्ली देवी के बेटे हैं और यदि इस संदर्भ में अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य का अवलोकन किया जाता है, तो यह सामने आएगा कि तीन अपीलकर्ताओं, अर्थात् राज कुमार यादव, चुन्नी लाल कहार और संजय यादव ने पहले मृतक के घर में प्रवेश किया था और उसे बाहर खींच लिया था उनके घर और उसी समय उनके द्वारा शोर गुल किया गया था, और उनके द्वारा किए गए शोर गुल को सुनकर, अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक और कई अन्य व्यक्ति एकत्र हुए थे। इसलिए, अ०सा०-1/निर्मला द्वारा यह संदेह किया जा सकता है, विशेष रूप से जब अपराध स्थल पर एक भीड़ इकट्ठी हुई थी कि इन दोनों व्यक्तियों ने भी 'मारपीट' में भाग लिया है, जबकि अ०सा०-2/पुट्टी लाल ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट किया है कि इन दो अपीलकर्ताओं, अर्थात् अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक ने न तो उसके घर में प्रवेश किया था और न ही मृतक पर हमला किया था। हमारे पास प्राकृतिक गवाह अ०सा०-1/निर्मला और अ०सा०-2/पुट्टी लाल द्वारा दी गई घटना के विश्वसनीय और भरोसेमंद विवरण पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है। गवाह कभी-कभी जानबूझकर या कभी-कभी भ्रम में रहते हुए झूठे बयान देते हैं, हालांकि, यदि किसी गवाह ने अपने साक्ष्य में कुछ असत्य तथ्य कहे हैं, तो उसके पूरे साक्ष्य को इस स्कोर पर खारिज नहीं किया जा सकता है, क्योंकि न्यायालय का कर्तव्य झूठ को सत्य से अलग करने के लिए उनके साक्ष्य का मूल्यांकन करना है और यदि झूठ को सत्य से अलग किया जा सकता है, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह उस सत्य को स्वीकार करे जो इतना अलग हो गया है, लेकिन यदि सत्य और झूठ इतने आपस में मिश्रित हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता है, तो न्यायालय के लिए ऐसी गवाही को त्यागना सुरक्षित होगा। हमारी सुविचारित राय में, अ०सा०-1/निर्मला देवी की गवाही में हालांकि कुछ मात्रा में झूठ है, जहां तक घटना में मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक की संलिप्तता का संबंध है, लेकिन यह उसके साक्ष्य को पूरी तरह से खारिज करने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है, और यदि अ०सा०-1/निर्मला के साक्ष्य को अ०सा०-2/पुट्टी लाल के साक्ष्य के साथ पढ़ा जाता है, तो यह सामने आएगा कि अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक के पास थे शोर गुल सुनने के बाद अपराध स्थल पर पहुंचे और उन्होंने 'मारपीट' में भाग नहीं लिया और न ही मृतक के घर में प्रवेश किया। हमें ऐसी कोई चोट भी नहीं मिली है जो मृतक के व्यक्ति पर बोटलों के कारण हो सकती है और यह विश्वास करना कठिन होगा कि बोटलों से हमला किए जाने के बावजूद, वे बरकरार रहेंगे और मृतक के शरीर पर तेज कटे हुए प्रकृति की कोई चोट नहीं पहुंचाएंगे। इस प्रकार, अपीलकर्ता अन्नू खटिक

और मुन्ना खटिक की संलिप्तता अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों से साबित नहीं होती है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने, हमारी सुविचारित राय में, उन्हें दोषी ठहराने में अवैधता की है और वे, हमारी सुविचारित राय में, उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी होने के हकदार हैं।

62. विचारण न्यायालय ने धारा 149 भ०द०वि० की सहायता से अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराया है। चूंकि हमने पाया है कि अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक ने 'मारपीट' में भाग नहीं लिया है, अब केवल तीन अपीलकर्ता बचे हैं और इस प्रकार, उनके खिलाफ धारा 149 भ०द०वि० लागू नहीं की जा सकती है।

63. **बलजिंदर सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य, एमएनयू/एस.सी./1063/2024** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार राय दी है: -

"22. इस संबंध में, हम चितरमाल बनाम चितरमाल में इस न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर-14 का उल्लेख कर सकते हैं। राजस्थान राज्य मनु/एस.सी./0008/2003: एस.सी.:5: (2003)2 एस.सी.सी. 266 में इस तरह के निर्णय का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

14. यह फैसलों के एक कैटिना द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है कि धारा 34 के साथ-साथ धारा 149 रचनात्मक आपराधिकता के लिए दायित्व से संबंधित है यानी दूसरों के कृत्यों के लिए किसी व्यक्ति की प्रतिनिधिक देयता। दोनों धाराएं उन व्यक्तियों के संयोजन से संबंधित हैं जो किसी अपराध में हिस्सेदार के रूप में दंडनीय हो जाते हैं। इस प्रकार, उनमें एक निश्चित समानता है और कुछ हद तक ओवरलैप हो सकती है। लेकिन सामान्य इरादे/आशय और सामान्य उद्देश्य के बीच एक स्पष्ट अंतर किया जाता है कि सामान्य इरादा /आशय एक्शन कॉन्सर्ट को दर्शाता है और आवश्यक रूप से एक पूर्व-व्यवस्थित योजना के अस्तित्व को दर्शाता है, जिसका अर्थ है कि मन की पूर्व नियोजित हो, जबकि सामान्य उद्देश्य के लिए जरूरी नहीं कि मन की पूर्व नियोजित या पूर्व-कार्यक्रम के प्रमाण की आवश्यकता हो। हालांकि दोनों धाराओं के बीच काफी अंतर है, वे कुछ हद तक ओवरलैप भी होते हैं और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या धारा 149 के तहत आरोप धारा 34 द्वारा आच्छादित किए गए आधार को ओवरलैप करता है। इस प्रकार, यदि पांच या उससे अधिक संख्या वाले कई व्यक्ति कोई कार्य करते हैं और ऐसा करने का इरादा रखते हैं, तो धारा 34 और धारा 149 दोनों लागू हो सकते हैं। यदि सामान्य उद्देश्य में आवश्यक रूप से एक सामान्य इरादा /आशय शामिल नहीं है, तो धारा 149 के लिए धारा 34 के प्रतिस्थापन के परिणामस्वरूप अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह हो सकता है और इसलिए, इसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। लेकिन अगर इसमें एक सामान्य इरादा /आशय शामिल है, तो धारा 149 के लिए धारा 34 के प्रतिस्थापन को एक औपचारिक मामला माना जाना चाहिए। इस तरह का सहारा लिया जा सकता है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। इसलिए, धारा 149 की गैर-प्रयोज्यता भारतीय दंड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 34 के तहत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में कोई बाधा नहीं है, यदि सबूत उन सभी के सामान्य इरादे/आशय को आगे बढ़ाने के लिए अपराध करने का खुलासा करते हैं। [देखें बरेंद्र कुमार घोष बनाम राजा सम्राट मनु/PR/0064/1924 : ए.आई.आर. 1925,

मन्नम वेंकटदरी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, मनु/एस.सी./0137/1971 (1971)3 एस.सी.सी. 254, नेथला पोथुराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, मनु/एस.सी./0479/1991: एस.सी.:226: (1992)1 एस.सी.सी.49, राम टहल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, मनु/एस.सी./0171/1971:1971: आईएनएस. सी.:318: (1972)1 एस.सी.सी.136]"

64. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या-1509 वर्ष 2010 मधुसूदन और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य में 5 मई, 2024 को दिया गया निर्णय निम्नानुसार दिया; -

"15. धारा 34 और धारा 149 भ०द०वि० के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। धारा 34 भ०द०वि० में सक्रिय भागीदारी और मन की पूर्व नियोजित की आवश्यकता होती है जबकि धारा 149 भ०द०वि० केवल एक गैरकानूनी सभा की सदस्यता द्वारा दायित्व प्रदान करती है और धारा 34 भ०द०वि० की तुलना में व्यापक दायरा है। **वीरेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2010) 8 एस.सी.सी. 407** में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार मतभेदों को नोट किया:

"46(i) धारा 34 अपने आप में कोई विशिष्ट अपराध नहीं बनाती है, जबकि धारा 149 ऐसा करती है;

(ii) धारा 34 के तहत कुछ सक्रिय भागीदारी, विशेष रूप से शारीरिक हिंसा से जुड़े अपराध में, आवश्यक है, लेकिन धारा 149 में इसकी आवश्यकता नहीं है और दायित्व केवल एक सामान्य उद्देश्य के साथ गैर-कानूनी सभा की सदस्यता के कारण उत्पन्न होता है और अपराध की तैयारी और कमीशन में कोई सक्रिय भागीदारी नहीं हो सकती है;

(iii) धारा 34 सामान्य इरादे/आशय की बात करती है, लेकिन धारा 149 सामान्य उद्देश्य पर विचार करती है जो निस्संदेह अपने दायरे और इरादे की तुलना में व्यापक है; और

(iv) धारा 34 उन व्यक्तियों की न्यूनतम संख्या-निर्धारित नहीं करती है जिन्हें सामान्य इरादे/आशय को साझा करना चाहिए, जबकि धारा 149 के लिए आवश्यक है कि कम से कम पांच व्यक्ति ऐसे होने चाहिए जिनके पास समान उद्देश्य होना चाहिए।

16. **चित्रमाल बनाम राजस्थान राज्य, (2003)2 एस.सी.सी. 266** में इस न्यायालय ने धारा 34 भ०द०वि० और 149 भ०द०वि० के बीच अंतर और समानता की जांच की और उन परिस्थितियों की भी जांच की जब दोनों धाराएं एक साथ लागू होती हैं। न्यायालय ने इस मुद्दे पर पहले के निर्णयों का विश्लेषण किया और निम्नलिखित प्रासंगिक टिप्पणियां कीं: -

"14. यह फैसलों के एक कैटिना द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है कि धारा 34 के साथ-साथ धारा 149 रचनात्मक आपराधिकता के लिए दायित्व से संबंधित है यानी दूसरों के कृत्यों के लिए किसी व्यक्ति की

प्रतिनिधिक देयता। दोनों धाराएं उन व्यक्तियों के संयोजन से संबंधित हैं जो किसी अपराध में हिस्सेदार के रूप में दंडनीय हो जाते हैं। इस प्रकार उनमें एक निश्चित समानता है और कुछ हद तक ओवरलैप हो सकती है। लेकिन सामान्य इरादे/आशय और सामान्य उद्देश्य के बीच एक स्पष्ट अंतर किया जाता है कि सामान्य इरादा/आशय की कार्रवाई को दर्शाता है और आवश्यक रूप से एक पूर्व-व्यवस्थित योजना के अस्तित्व को दर्शाता है जिसका अर्थ है कि मन की पूर्व नियोजित हो, जबकि सामान्य उद्देश्य के लिए आवश्यक रूप से मन की पूर्व नियोजित या पूर्व-संयोजन के प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। हालांकि दोनों धाराओं के बीच काफी अंतर है, वे कुछ हद तक ओवरलैप भी होते हैं और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या धारा 149 भ०द०वि० के तहत आरोप धारा 34 द्वारा आच्छादित किए गए आधार को ओवरलैप करता है। इस प्रकार, यदि पांच या उससे अधिक संख्या वाले कई व्यक्ति कोई कार्य करते हैं और ऐसा करने का इरादा रखते हैं, तो धारा 34 और धारा 149 भ०द०वि० दोनों लागू हो सकते हैं। यदि सामान्य उद्देश्य में आवश्यक रूप से एक सामान्य इरादा /आशय शामिल नहीं है, तो धारा 149 भ०द०वि० के लिए धारा 34 भ०द०वि० के प्रतिस्थापन के परिणामस्वरूप अभियुक्त के प्रति पूर्वाग्रह हो सकता है और इसलिए, इसकी अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। लेकिन अगर इसमें एक सामान्य इरादा /आशय शामिल है, तो धारा 149 भ०द०वि० के लिए धारा 34 भ०द०वि० के प्रतिस्थापन को एक औपचारिक मामला माना जाना चाहिए। इस तरह का सहारा लिया जा सकता है या नहीं, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्भर होना चाहिए। इसलिए, धारा 149 भ०द०वि० की गैर-प्रयोज्यता अपीलकर्ताओं को धारा 302 सपठित धारा 34 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराने में कोई बाधा नहीं है, यदि सबूत उन सभी के सामान्य इरादे/आशय को आगे बढ़ाने के लिए अपराध करने का खुलासा करते हैं। (देखें **बरेंद्र कुमार घोष बनाम किंग एम्परर [ए.आई.आर. 1925 पीसी 1: 26 क्रिल० एलजे 431]**, **मन्नम वेंकटदरी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(1971)3 एस.सी.सी. 254: 1971 एस.सी.सी. (क्रिल०) 479 : ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 1467]**, **नेथाला पोथुराजू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य [(1992)1 एस.सी.सी. 49: 1992 एस.सी.सी. (क्रिल०) 20: ए.आई.आर.1991 एस.सी.सी. 2214]** **राम टहल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1972)1 एस.सी.सी.1 36:1972 एस.सी.सी. (क्रिल०) 80: ए.आई.आर. 1972 एस.सी. 254]**)"

18. **रोहतास बनाम हरियाणा राज्य, (2021) 19 एस.सी.सी. 465** में हाल ही में तीन न्यायाधीशों की पीठ के फैसले का संदर्भ भी इस मुद्दे पर हमारी सहायता करेगा। यह नोट किया गया कि बरी होने के कारण धारा 149 के तहत दोषसिद्धि के लिए आवश्यक पांच आरोपियों की कमी हो सकती है। ऐसी स्थिति में, न्यायालय के पास आरोप को बदलने और धारा 34 भ०द०वि० की सहायता लेने की छूट है। न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं: -

"17. हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि अदालतें आरोप को बदल नहीं सकती हैं और धारा 34 भ०द०वि० (यदि सामान्य इरादा /आशय है) की सहायता नहीं ले सकती हैं, या वे यह आकलन नहीं कर सकती हैं कि कोई आरोपी स्वतंत्र रूप से किसी विशेष अपराध के अवयवों को संतुष्ट करता है या नहीं। धारा 211 से 224 द०प्र०स० जो आपराधिक मुकदमों में आरोप तय करने से संबंधित है, अदालतों को आरोपों को बदलने और सुधारने के लिए महत्वपूर्ण लचीलापन देती है। परिवर्तन पर निर्णय लेते समय

एकमात्र नियंत्रित उद्देश्य यह है कि क्या नया आरोप आरोपी के लिए पूर्वाग्रह पैदा करेगा, जैसे कि क्या उसे आश्चर्य से लिया जाना था या यदि देर से परिवर्तन उसकी रक्षा रणनीति को प्रभावित करेगा। [नल्लापारेडुडी श्रीधर रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2020) 12 एस.सी.सी. 467: (2020)4 एस.सी.सी. (क्रिल०)162, प्रस्तर-16-21] इस प्रकार अध्याय XVII द०प्र०स० का जोर बचाव पक्ष को एक पूर्ण और उचित अवसर देने के लिए है, लेकिन साथ ही यह सुनिश्चित करना है कि न्याय केवल तकनीकता से पराजित न हो। इसी तरह, धारा 386 द०प्र०स० अपीलीय अदालत को भी उन आरोपों में संशोधन करने के लिए इतनी व्यापक शक्तियां प्रदान करती है जो पहले गलती से तय किए गए हो सकते थे। इसके अलावा, अनुचित, या आरोप तय न करना अपने आप में धारा 464 द०प्र०स० के तहत बरी होने का आधार नहीं है। यह आवश्यक रूप से दिखाया जाना चाहिए कि न्याय की विफलता का कारण बना है, जिस स्थिति में पुनः परीक्षण का आदेश दिया जा सकता है। [कांतिलाल चंदूलाल मेहता बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1969)3 एस.सी.सी. 166: 1970 एस.सी.सी. (क्रिल०) 19]"

19. हालांकि यह सच है कि न्यायालयों के लिए आरोपों को बदलने की अनुमति है, यह केवल मामले में साक्ष्य के सावधानीपूर्वक विश्लेषण द्वारा किया जा सकता है। धारा 34 भ०द०वि की सहायता से किसी भी आरोपी को फंसाने से पहले "सामान्य इरादे/आशय" के अवयवों की पहचान करना सबसे आवश्यक है। किसी दिए गए मामले में सामान्य इरादे/आशय का अस्तित्व आवश्यक रूप से अभियोजन पक्ष द्वारा प्रासंगिक साक्ष्य के साथ स्थापित किया जाना चाहिए। न्यायालय की यह भी जिम्मेदारी है कि वह धारा 34 भ०द०वि की सहायता से किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने से पहले सबूतों का विश्लेषण और आकलन करे। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस तरह के सामान्य इरादे/आशय को आगे बढ़ाने के लिए कार्रवाई किए बिना केवल एक सामान्य इरादा /आशय धारा 34 भ०द०वि को आकर्षित नहीं कर सकता है।

अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि तीन अपीलकर्ता, राजकुमार यादव, चुन्नी लाल कहार और संजय यादव एक साथ मृतक के घर में आए थे और घर के अंदर उसके साथ मारपीट की थी और उसे अपने घर से बाहर खींचने के बाद मंदिर के अंदर उसके साथ मारपीट की थी और वे भी एक साथ भाग गए और इस प्रकार, वे एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसरण में अपराध करने के लिए एक "सामान्य इरादा /आशय" साझा कर रहे थे, जिसका अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि वे एक साथ आए और अपराध स्थल से एक साथ चले गए और उन सभी ने मृतक पर किए गए हमले में भाग लिया। इस प्रकार हमारी सुविचारित राय में अभिलेखों पर पर्याप्त सबूत उपलब्ध हैं जो बताते हैं कि हमला पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार हमला किया गया था और वे मृतक की मौत का कारण बनने के लिए साझा इरादे साझा कर रहे थे और वे सभी धारा 149 भ०द०वि के स्थान पर धारा 34 भ०द०वि की मदद से दोषी ठहराए जाने के हकदार थे।

65. यहां पहले दिए गए कारणों को ध्यान में रखते हुए, हम अपीलकर्ता अन्नू खटिक और मुन्ना खटिक द्वारा दायर अपीलों की अनुमति देते हैं। विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को इस हद तक रद्द किया जाता

हैं और उन्हें उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी किया जाता है और विचारण न्यायालय के दिनांक 18.02.2005 के निर्णय और आदेश को इस सीमा तक रद्द/अपास्त किया जाता है।

66. जहां तक अपीलकर्ताओं- राज कुमार यादव, चुन्नी लाल और संजय यादव द्वारा दायर अपीलों का संबंध है, हमें इसमें कोई बल नहीं मिलता है और इसे एतद्वारा खारिज किया जाता है और इस संबंध में विचारण न्यायालय के फैसले और आदेश की पुष्टि की जाती है।

67. हालांकि, सह-आरोपी मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक को बरी किए जाने के संबंध में, अपीलकर्ता राज कुमार यादव, चुन्नी लाल कहार और संजय यादव को अब धारा 34 भ०द०वि० सपठित धारा 302 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया गया है।

68. उपरोक्त अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि और अन्य अपराधों के संबंध में विचारण न्यायालय द्वारा पारित सजा वही रहेगी जो विचारण न्यायालय द्वारा पारित की गई है।

69. अपीलकर्ता मुन्ना खटिक और अन्नू खटिक जमानत पर हैं। उन्हें कहीं भी आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि वे किसी अन्य आपराधिक मामले में बांछित न हों, हालांकि वे आज से 30 दिनों के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष 25,000/- रुपये के दो जमानतियों के साथ अपने व्यक्तिगत बांड दाखिल करेंगे, जैसा कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437-ए (अब बीएनएसएस की धारा 481) के तहत प्रदान किया गया है।

70. अपीलकर्ता- राज कुमार यादव और संजय यादव को राज्य सरकार द्वारा माफी देने के बाद रिहा कर दिया गया दिखाया गया है और इसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 08.08.2022 और 07.11.2023 के अपने आदेश में भी दर्ज किया गया है। उन्हें आत्मसमर्पण करने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि उन्हें पहले ही छूट पर रिहा कर दिया गया है।

71. जहां तक अपीलकर्ता चुन्नी लाल कहार का संबंध है, वह जमानत पर प्रतीत होता है। वह निचली अदालत द्वारा सुनाई गई सजा काटने के लिए आज से 15 दिन के भीतर निचली अदालत में आत्मसमर्पण करेंगे।

72. श्री राजेश कुमार द्विवेदी, जिन्होंने अपीलकर्ताओं- राज कुमार यादव और चुन्नी लाल का एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) के रूप में प्रतिनिधित्व किया है, को मानदेय के रूप में 11,000/- रुपये मिलेंगे, जिसका भुगतान उत्तर प्रदेश राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा आज से 60 दिनों के भीतर किया जाएगा।

73. इस आदेश की एक प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेखों के साथ-साथ सदस्य सचिव उत्तर प्रदेश राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण को अनुपालन के लिए भेजी जाए।

(2025) 1 ILRA 104

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 28.11.2024

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा
माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिजवी
आपराधिक अपील संख्या-651 वर्ष 1983

सम्बद्ध

आपराधिक अपील संख्या-652 वर्ष 1983

जगदीश सिंह और अन्य

... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: केशव सहाय, अपुल मिश्रा, दिलीप कुमार, राजरशी गुप्ता, सत्येन्द्र नारायण सिंह, उपेन्द्र विक्रम सिंह

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: डी.जी.ए.

आपराधिक अपील - चश्मदीद गवाह - चश्मदीद गवाह मौके पर बिल्कुल भी नहीं थे- चश्मदीद गवाहों ने डकैतों को नहीं पहचाना और केवल कुछ ज्ञात शत्रुतापूर्ण व्यक्तियों को फंसाने के लिए, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई - प्राथमिकी भी समय से पहले थी-अभियोजन पक्ष का मामला विश्वास को प्रेरित नहीं करता है - केवल ज्ञात व्यक्तियों को फंसाने के लिए कहानी तैयार की गई थी, जिन्हें आक्षेपित निर्णय रद्द कर दिया गया था।

अपील की अनुमति है। (ई-9)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. इकबाल और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 6 एस.सी.सी. 623 में रिपोर्ट किया गया
2. लक्ष्मण प्रसाद बनाम बिहार राज्य ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1388 में रिपोर्ट
3. प्रेम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 में रिपोर्ट की गई (6) ए.डी.जे. 529 (डीबी)
4. सृष्टि नारायण बनाम बिंदेश्वर झा और अन्य, 2009 (6) एस.सी.सी. 457

(माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा द्वारा दिया गया)

&

माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिजवी)

1. जब एक घटना जो कथित तौर पर 12/13.01.1977 की रात में हुई थी, तो उसी दिन 13 जनवरी 1977 को सुबह लगभग 4:30 बजे एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट के अनुसार, जो जंग बहादुर सिंह के पुत्र हरिहर सिंह द्वारा वर्ष 12/13 जनवरी 1977 की रात को दर्ज कराई गई थी, जब वह स्वयं भोजन आदि करके घर के वरंडे में देव नाथ सिंह और रामग्या सिंह के नाम से अपने बेटे हृदय नारायण सिंह और अन्य बुजुर्ग रिश्तेदारों के साथ सो गया था, फिर रात को लगभग 1:30 बजे जगदीश सिंह, अमरदेव सिंह, दुर्दशा सिंह, जय शंकर @ डोंधा सिंह, देव नारायण @ भुखड सिंह, मुंडा @ राज नारायण सिंह, श्री राम सिंह, सियाराम सिंह, रामा सिंह, सागर सिंह, विजेंद्र सहित 7 से 8 अन्य डकैतों ने परिसर में प्रवेश किया, जिसमें बैठका और क्वार्टर थे जहां महिलाएं सो रही थीं। जब प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों के अनुसार डकैत अंदर घुसे, तो पहले सूचनाकर्ता के कुते भौंकने लगे, जिससे पहला सूचनाकर्ता और उसका बेटा जाग गया। जब पहले सूचनाकर्ता और उसके बेटे ने शोर-शराबा करना शुरू कर दिया, तो डकैतों में से एक ने पहले सूचनाकर्ता के बेटे का पीछा किया और उसे लाठी से मारा, जिससे बेटे की दाहिनी कलाई घायल हो गई थी। पहले सूचनाकर्ता के परिसर में घुसने वाले डकैतों में से डकैत देव नारायण सिंह, जगदीश सिंह, राज नारायण सिंह, श्रीराम सिंह और 2 या 3 अन्य डकैत उस कमरे में घुस गए जहां दो बुजुर्ग रामजा सिंह और देवनाथ सिंह सो रहे थे और लॉकर की चाबी मांगी। अन्य डकैतों ने उस जगह के बाहर पहरा दिया जहां दोनों बुजुर्ग सो रहे थे। वे पूरे समय कह रहे थे कि अगर बुजुर्ग व्यक्ति चाबी नहीं दे रहे हैं तो उन्हें गोली मार दी जाए। इसके बाद डकैतों ने रामजा सिंह और देवनाथ सिंह पर गोली चला दी और वे मारे गए। इसके बाद डकैत उन घरों की ओर चले गए जहां घर की महिलाएं सो रही थीं। उन्होंने दरवाजा तोड़कर परिसर में प्रवेश किया और कीमती सामान लूटना शुरू कर दिया। लॉकर (तिजोरी) को आंगन में बाहर लाया गया, जिसे डकैतों ने विभिन्न उपकरणों के साथ खोलने की कोशिश की जो उनके पास उपलब्ध थे। वे कुदाल, फरसा और छेनी थे। प्राथमिकी में कहा गया था कि ग्रामीणों को डराने के लिए रुक-रुक कर डकैत हवा में फायरिंग भी कर रहे थे। प्राथमिकी में यह भी कहा गया है कि जब लूटपाट की जा रही थी तो डकैत कह रहे थे कि उन्होंने दीनानाथ सिंह की हत्या का बदला लिया है। पहले सूचनाकर्ता और घर की विभिन्न महिलाओं द्वारा उठाए गए शोर-शराबे के कारण, पहले सूचनाकर्ता जान्मे सिंह (अ०सा०-3) के चचेरे भाई और पहले सूचनाकर्ता गोवर्धन @ राधे श्याम के भतीजे के साथ गांव के प्रधान श्याम यादव और राम सूरत सिंह मौके पर आए। उन्होंने देखा कि डकैत लूटपाट कर घर में घुस रहे हैं। उन्होंने डकैतों को मशालों की रोशनी में और जलती हुई "पुआल" से निकलने वाली रोशनी में पहचान लिया था। घर की महिलाओं ने लालटेन और उनके पास मौजूद विभिन्न मशालों की रोशनी में भी डकैतों को पहचान लिया था। यह कहा गया था कि पहले सूचनाकर्ता की पत्नी को भी डकैतों में से एक ने घायल कर दिया था। गांव के प्रधान परमानंद सिंह और राम नंद सिंह ने अपनी-अपनी बंदूकों से गोलियां चलाई और उसके बाद डकैत चले गए। पहले सूचनाकर्ता और अन्य ग्रामीणों ने डकैतों का पीछा किया, लेकिन हर समय डकैतों ने पलट दिया और उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की चेतावनी दी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि

जगदीश सिंह और अन्य के साथ पुरानी दुश्मनी थी और यही कारण था कि उन्होंने दो बुजुर्गों नामत रामजा और देव नाथ की हत्या की थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में चोरी हुई गुम हुई वस्तुओं का भी उल्लेख किया गया था। इसके बाद जांच शुरू हुई और मौके पर मिलने वाली ऐसी मशालों और लालटेनों को हिरासत में ले लिया गया और हिरासत में ली गई चीजों की बरामदगी के फ़र्द तैयार किए गए और उन्हें प्रदर्श क-3 के रूप में गिना गया। डकैतों द्वारा तोड़े गए लॉकर और ताले को भी पुलिस की हिरासत में ले लिया गया और उनका फ़र्द बरामदगी तैयार किया गया और उन्हें प्रदर्श क-4 के रूप में क्रमांकित किया गया। डकैतों द्वारा छोड़े गए ऐसे सामान भी पुलिस द्वारा बरामद किए गए थे और जिनके फ़र्द को तैयार किया गया था और प्रदर्श क-11 और 12 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। पुलिस ने कुछ लाठियां और जूते भी बरामद किए थे और उनके संबंध में फ़र्द बरामदगी प्रदर्श क-36 के रूप में तैयार किया गया था। दागी गई गोलियों के खाली कारतूस और पैड आदि भी बरामद किए गए और जिसके संबंध में फ़र्द तैयार किया गया था और प्रदर्श क-37 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। देव नाथ सिंह के जिन कपड़ों पर खून लगा था, उन्हें भी हिरासत में ले लिया गया और उनका फ़र्द तैयार किया गया और प्रदर्श क-34 के रूप में प्रदर्शित किया गया। रामाजा के कपड़ों को भी इसी तरह हिरासत में लिया गया और उनके संबंध में फ़र्द तैयार किया गया और प्रदर्श क-35 के रूप में प्रदर्शित किया गया।

2. इसके बाद, अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, 13.1.1977 को एक पंचायतनामा तैयार किया गया जो सुबह 6:35 बजे शुरू हुआ और सुबह 7:05 बजे समाप्त हुआ। इसके बाद, दोनों शवों को शव परीक्षण के लिए भेजा गया और 14.01.1977 को सुबह 11:00 बजे शवों का शव परीक्षण किया गया। पुलिस ने अपनी विवेचना पूरी करने के बाद अपनी रिपोर्ट सौंप दी और मजिस्ट्रेट ने मामले का संज्ञान लिया।

3. विचारण न्यायाधीश, अर्थात्, श्री एन.एस. शमशेरी, 6 वें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, वाराणसी ने 23.09.1978 को विभिन्न आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप तय किए। जगत् और राम धनी के मामले में धारा 396 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे। श्रीमती सहदेया और कलावती के मामले में धारा 412 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे; जगदीश सिंह, अमरदेव सिंह, दुर्बासा सिंह, जय शंकर @ धोंधा, देव नारायण @ झक्कड़, मुंडा @ राज नारायण, श्री राम सिंह, सिया राम, रामा सिंह, सागर सिंह, बिजेंद्र सिंह, लक्ष्मी नोनिया, दुलारे सिंह, कमला सिंह, लल्लन @ लल्ला सिंह और कट्टल @ कटवारू महल के खिलाफ धारा 396 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए गए थे। इसके बाद जब आरोपी ने आरोपों से इनकार किया तो सुनवाई शुरू हुई।

4. अभियोजन पक्ष की ओर से अभियोजन पक्ष के 25 गवाहों से पूछताछ की गई। जब मुकदमा समाप्त हुआ और 11.3.1983 को फैसला सुनाया गया, जिसमें जगदीश सिंह, अमरदेव सिंह, दुर्बासा सिंह, जय शंकर सिंह @ धोंधा, देव नारायण @ झक्कड़, राज नारायण सिंह @ मुंडा, सिया राम सिंह, श्री राम सिंह, सागर सिंह, बृजेंद्र सिंह @ बिजेंद्र सिंह, रामा सिंह और कट्टल उर्फ कटवारू को धारा 396 भ०द०वि० के तहत किए गए

अपराधों के लिए आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्होंने इस न्यायालय में आपराधिक अपील संख्या-651 और 562 वर्ष 1983 को आपराधिक अपील को दायर की दी।

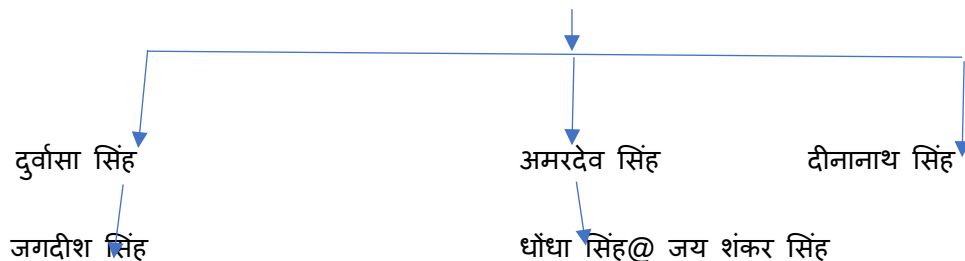
5. जगदीश सिंह, दुर्बासा सिंह, देव नारायण सिंह, राज नारायण सिंह, श्री राम सिंह और कट्टल @ कटवारू ने आपराधिक अपील संख्या-651 वर्ष 1983 दायर की; जबकि अमर देव, जय शंकर सिंह, सागर सिंह और बृजेंद्र सिंह ने आपराधिक अपील संख्या-652 वर्ष 1983 दायर की। अन्य आरोपियों को आरोपों से बरी कर दिया गया था, जैसा कि उनके खिलाफ लगाया गया था।

6. आपराधिक अपील संख्या-651 वर्ष 1983 में अपील के लंबित रहने के दौरान, जगदीश सिंह, दुर्बासा सिंह, देव नारायण सिंह और राज नारायण सिंह और कट्टल की मृत्यु हो गई और इसलिए, उनके खिलाफ आपराधिक अपील समाप्त हो गई है। अपीलकर्ताओं, श्री राम सिंह, सिया राम और राम सिंह के लिए, अपील पर श्री अपुल मिश्रा और श्री राजर्षि गुप्ता ने बहस की।

7. आपराधिक अपील संख्या-652 वर्ष 1983 में, अपीलकर्ता अमर देव सिंह और सागर सिंह की अपील के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई और उनके खिलाफ अपील पहले ही समाप्त/निष्फल घोषित हो चुकी है। अपीलकर्ता संख्या-2 और 4 जय शंकर सिंह और बिजेंद्र सिंह के लिए, अपील पर श्री अपुल मिश्रा और श्री राजर्षि गुप्ता ने बहस की।

8. मुकदमे के दौरान, अ०सा०-1, हरिहर सिंह, गवाह के कठघरे में पेश हुए और आरोपी व्यक्तियों के बीच मौजूद संबंधों के बारे में बहुत जोरदार और ग्राफिक रूप से वर्णन किया। अपीलकर्ताओं दुर्बासा सिंह, अमर सिंह, जगदीश सिंह और जयशंकर सिंह के संबंध में उन्होंने अपने बयान के माध्यम से बताया कि कैसे वे एक विश्वनाथ के वंशज थे। न्यायालय के समक्ष दिए गए बयान के अनुसार, निम्नलिखित वंशावली सामने आई: -

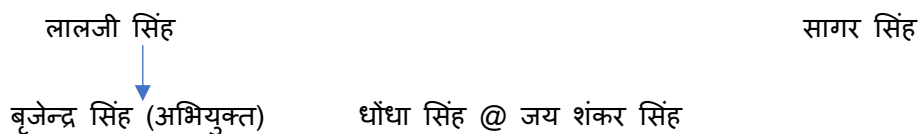
विश्वनाथ सिंह



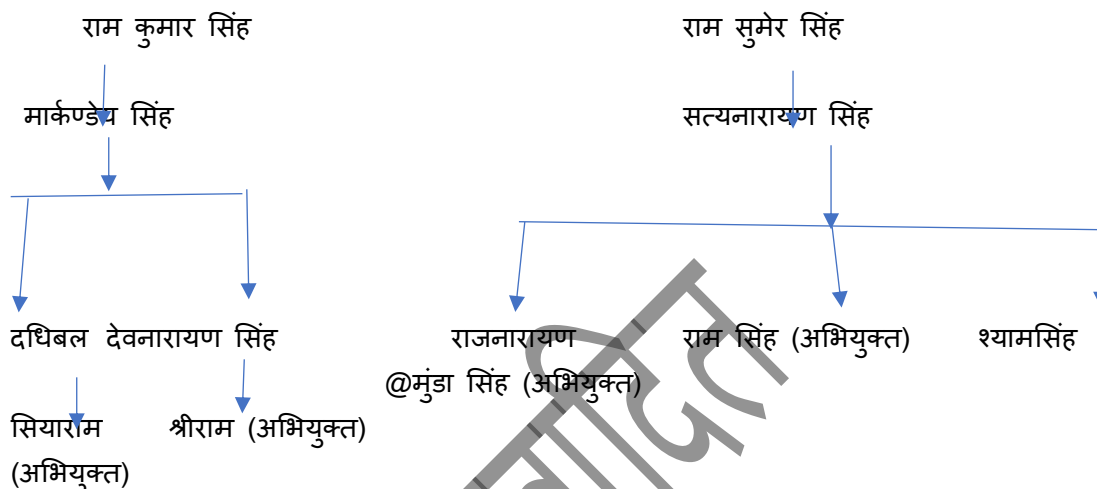
9. अभियुक्त बृजेन्द्र सिंह के संबंध में, पी.डब्ल्यू.-1 के कथनानुसार निम्न वंशावली प्राप्त हुई:

रंजीत सिंह

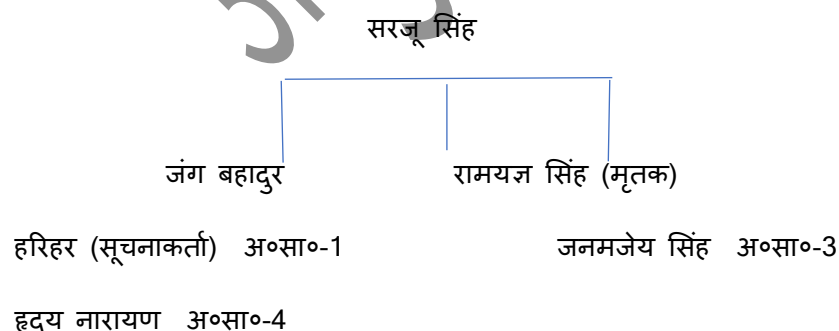




10. अभियुक्त देवनारायण सिंह, सियाराम सिंह, श्रीराम, राजनारायण, राम सिंह तथा श्याम सिंह के संबंध में, पी.डब्ल्यू.-1 के कथनानुसार निम्न तृतीय वंशावली प्राप्त हुई:



11. शिकायतकर्ताओं की ओर से भी एक वंशावली जैसा कि नीचे दिखाया गया है जो अ०सा०-1 द्वारा दिए गए बयानों से उभरा है:



12. अ०सा०-1 ने वास्तव में, आरोपी व्यक्तियों के बीच संबंधों को बताने के बाद कहा है कि सभी आरोपी एक-दूसरे को जानते थे और उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि अ०सा०-1 तीनों परिवारों के लिए शत्रुतापूर्ण था। उन्होंने कई शब्दों में सूचनाकर्ता पक्ष और आरोपी के बीच हुई दुश्मनी का भी वर्णन किया है। उनकी गणना यहां निम्नानुसार की जा रही है: -

1. 9.5.1973 को एक घटना हुई जिसमें आरोपी दुर्बाशा के भाई दीना नाथ की हत्या कर दी गई थी। सूचनाकर्ता हरिहर सिंह आरोपी था और आरोपी देव नारायण अभियोजन पक्ष का गवाह था।
2. आरोपी जगदीश के आवेदन पर वर्तमान घटना से पहले, सूचनाकर्ता हरिहर सिंह का लाइसेंस रद्द कर दिया गया था (कृपया प्रदर्श क-8 और क-9 देखें)।
3. हत्या के मामले के लंबित रहने के दौरान पक्षों के बीच धारा 107/116 के तहत कार्यवाही शुरू की गई थी।
4. वर्ष 1972 में धारा 133 द०प्र०स० के तहत कार्यवाही शुरू की गई जिसमें एक तरफ हरिहर सिंह, आरोपी दीना नाथ, आरोपी दुर्बाशा, आरोपी अमर देव और आरोपी जगदीश सिंह को दूसरी तरफ रखा गया था।
5. मुंसिफ हवाली वाराणसी (हरिहर सिंह बनाम दुर्बाशा) की अदालत में एक दीवानी वाद संख्या-405/1975 दायर किया गया था और एक मार्ग से संबंधित मुकदमा और घटना के समय सिविल मुकदमा लंबित था।
6. रामनंदन अभियोजन साक्षी श्याम बिहारी के पिता थे।
7. वर्ष 1951 में अभियोजन साक्षी श्याम बिहारी के पिता रामनंदन पर एक शंकर की मौत के लिए धारा 302 भ०द०वि० के तहत मुकदमा चलाया गया था, जिसमें आरोपी सागर के पिता लालजी और बृजेंद्र रामनंदन सिंह के खिलाफ अभियोजन पक्ष के गवाह थे।
13. न्यायालय के समक्ष दिए गए बयान में अ०सा०-1 ने कहा था कि रामजा के हाथ पीछे से बंधे थे और उसके बाद उन्हें गोली मार दी गई थी और इसी तरह देव नाथ सिंह को भी गोली मार दी गई थी। उन्होंने एक बार फिर दोहराया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामजद व्यक्तियों ने कहा था कि उन्होंने दीना नाथ सिंह की हत्या का बदला लिया था (दीना नाथ सिंह दुर्वासा सिंह और अमर देव सिंह के सगे भाई थे, जैसा कि ऊपर दी गई वंशावली से स्पष्ट है)।
14. उन्होंने कहा है कि अमर देव एक ऐसे घर में रह रहे थे जो पहले सूचनाकर्ता के घर से 20 कदम की दूरी पर था। श्याम बिहारी करीब 200 लट्ठे दूर रह रहे थे। अमर देव के घर के पूर्व में हरिहर सिंह (अ०सा०-1) का नया घर स्थित था। उन्होंने आगे कहा है कि उनके खलिहान से लगभग 150 लट्ठे की दूरी पर श्याम बिहारी का घर (अ०सा०-2) स्थित था। उन्होंने कहा है कि वह अपने ही दुश्मनों के घरों से घिरे हुए थे। उन्होंने अपने साक्ष्य में आगे कहा है कि नामित अभियुक्त व्यक्तियों के सभी घर अ०सा०-1 के घर से सटे हुए थे। उन्होंने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि जब फायरिंग की जा रही थी, तो वह लगभग 20 सीढ़ियों की दूरी पर खड़े थे। उन्होंने यह भी कहा है कि किसी भी आरोपी ने अपना चेहरा धाता से नहीं ढका था। उन्होंने कहा है कि कोई

भी आरोपी अपना चेहरा छिपाने की कोशिश नहीं कर रहा था। उन्होंने कहा है कि उन्होंने इस संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट में कुछ भी उल्लेख नहीं किया था कि देव नारायण सिंह के हाथ उनके पीछे बंधे हुए थे।

15. 5.7.1980 को अ०सा०-1 द्वारा दिए गए बयान के प्रस्तर-34 में, उन्होंने अपनी जिरह में कहा था, अदालत द्वारा पूछे जा रहे एक नुकीले सवाल पर कि क्या आरोपी व्यक्तियों के चेहरे कवर किए गए थे। उन्होंने कहा था कि वास्तव में वे अपना चेहरा नहीं छिपा रहे थे। उन्होंने प्रस्तर-35 में कहा है कि जब डकैती और गोलीबारी आदि हो रही थी तो उन्होंने जगदीश सिंह, देव नारायण सिंह और श्री राम सिंह को उनके नाम से बुलाया था और फिर भी आरोपी व्यक्तियों ने उन पर गोली नहीं चलाई थी।

16. यह पूछे जाने पर कि क्या उन्होंने उन डकैतों का विवरण दिया था, जिनके नाम का उन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लेख नहीं किया था, अ०सा०-1 ने कहा था कि उन्होंने उन व्यक्तियों का कोई विवरण नहीं दिया था जिनका उन्होंने नाम नहीं लिया था।

17. अ०सा०-2, श्याम बिहारी, अ०सा०-1 के पड़ोस में रहते थे। अ०सा०-1 ने अदालत के समक्ष अपनी गवाही में एक कारण बताया था कि श्याम बिहारी और आरोपी के बीच दुश्मनी क्यों थी। उन्होंने कहा था कि 1951 में अ०सा०-2 के पिता रामनंदन पर शंकर की मौत का कारण बनने के लिए धारा 302 भ०द०वि० के तहत मुकदमा चलाया गया था और उस मामले में आरोपी के पिता लालजी और बिजेन्द्र सिंह रामनंदन सिंह और श्याम बिहारी के पिता के खिलाफ अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में अदालत में आए थे। इस संदर्भ में, अ०सा०-2 का कथन प्रासंगिक हो जाता है। उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि वह सभी आरोपियों को पहले से जानते थे और वे सभी उनके गांव के थे। उन्होंने यह भी कहा है कि वह ऐसे आरोपियों की पहचान करने के लिए जेल में टेस्ट आइडेंटिफिकेशन परेड के लिए गए थे, जिनके नाम का उल्लेख नहीं किया गया था। उन्होंने एक स्पष्ट प्रश्न पर पूछा कि उन्होंने उन अभियुक्तों के विवरण के बारे में उल्लेख क्यों नहीं किया, जिनका उल्लेख धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान में नहीं किया गया था, उन्होंने जवाब दिया था कि उन्हें नहीं पता कि उन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत उनके विवरण के बारे में उल्लेख क्यों नहीं किया था। उन्होंने अपनी जिरह के प्रस्तर-17 में, यह पूछे जाने पर कि उन्होंने उन व्यक्तियों के नामों के बारे में उल्लेख क्यों नहीं किया, जिनके नाम धारा 161 द०प्र०स० के तहत अपने बयान में प्रथम सूचना रिपोर्ट में पहले से ही थे, उन्होंने जवाब दिया था कि उनका बयान 13.1.1977 को सुबह 8:00 बजे लिया गया था, लेकिन उस समय तक उन्हें उन डकैतों के नाम नहीं पता थे जिन्होंने पिछली रात डकैती की थी। उन्होंने इस तथ्य को भी दोहराया था कि किसी भी डकैत ने अपना चेहरा नहीं ढका था।

18. अ०सा०-3, जन्मेजय सिंह, अ०सा०-1 का चचेरा भाई है। उन्होंने आरोपी देव नारायण सिंह के साथ अपनी दुश्मनी का भी उल्लेख किया है और उन्होंने कहा है कि आरोपी देव नारायण सिंह ने हत्या के एक मामले में उनके खिलाफ सबूत दिए थे। उन्होंने यह भी दोहराया था कि डकैतों ने भी अपना चेहरा नहीं ढका था। उन्होंने यह भी कहा था कि आरोपी देव नारायण सिंह के हाथों में बंदूक थी और जगदीश के हाथों में लाठी थी। मुंडा

सिंह @ राज नारायण सिंह एक बलम ले जा रहे थे। राम सिंह के हाथ में लाठी भी थी। उन्होंने कहा है कि डकैतों ने उस जगह की ओर भी गोलीबारी की थी जहां वह खड़ा था।

19. अ०सा०-4, हृदय नारायण सिंह पुत्र हरिहर सिंह, अ०सा०-1, अपनी गवाही देते हुए, अपने पिता द्वारा कही गई बातों को भी दोहराता है और जिस तरह से डकैतों ने उनकी कलाई पर हमला किया था, उसका वर्णन किया है। न्यायालय में अपने बयान में उन्होंने आरोपी व्यक्तियों के नामों का भी उल्लेख किया था। उसने अपनी जिरह में स्वीकार किया कि घटना होने से पहले आरोपी और उसके बीच एक निश्चित दुश्मनी थी और उसके और उसके पिता द्वारा दिए गए बयान के कारण एक अन्य मामले में आरोपी पांच साल से जेल में था। उन्होंने इस तथ्य को भी दोहराया था कि किसी भी आरोपी व्यक्ति ने अपना चेहरा नहीं बांधा था।

20. चूंकि अ०सा०-1, 2, 3 और अ०सा०-4 तथ्यों के गवाह थे, इसलिए उनके बयानों पर प्रदर्श से गौर किया गया है। अ०सा०-24 के बयान, जो विवेचनाधिकारी थे, इस मामले के निर्णय के लिए भी प्रासंगिक हैं और इसलिए उनके बयान के प्रासंगिक हिस्से को यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"चिक एफ०आई०आर० इक्ज क-20 पर सी०ओ० के हस्ताक्षर हैं और यह 20-1-77 के हैं। मैं कारण नहीं बता सकता कि सी०ओ० के दस्तखत 20-1-77 के क्यों हुये। यह गलत है यह देर से भेजा गया था इसलिये देर से दस्तखत हुये।"

21. पेपर बुक के पृष्ठ-230 पर, प्रस्तर-24 में, उन्होंने कहा था कि चिक प्राथमिकी, प्रदर्श क-20 में सर्कल अधिकारी के हस्ताक्षर थे, जो दिनांक 20.1.1977 थे। हालांकि, उन्होंने कहा है कि उन्हें नहीं पता कि धारा 157 द०प्र०स० के अनुपालन के संबंध में 20.1.977 को चिक प्राथमिकी पर सर्कल अधिकारी के हस्ताक्षर क्यों किए गए थे। विवेचनाधिकारी ने कहा था कि उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि विशेष रिपोर्ट कब भेजी गई थी। इस तथ्य के संबंध में कि क्या शव को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था या नहीं, क्या चिक रिपोर्ट कागजात के साथ थी, उन्होंने कहा था कि शव परीक्षण के साथ प्रथम सूचना रिपोर्ट भेजने के लिए कोई कानून/नियम नहीं था। हालांकि, उन्होंने कहा था कि परंपरागत रूप से प्रथम सूचना रिपोर्ट शव परीक्षण के साथ भेजी जाती थी और उसके बाद, स्पष्ट रूप से कहा गया था कि प्रदर्श क-16 और क-15 यानी दो शवों के शव परीक्षण के लिए भेजे गए पत्रों के साथ कोई प्राथमिकी नहीं भेजी गई थी। पेपर बुक के पृष्ठ 32 पर, उन्होंने उल्लेख किया था कि उन्होंने उस राख के संबंध में फ़र्द तैयार नहीं किया था जो उन्हें घटनास्थल पर मिली थी, जो इस तथ्य के कारण होनी चाहिए थी कि घास का ढेर (पुवाल) जला दिया गया था। उन्होंने कहा है कि उन्होंने निश्चित रूप से नक्शा नज़री में वह जगह नहीं दिखाई थी जहां राख मिलनी थी। उन्होंने कहा है कि 13.1.1977 को तैयार किए गए कागजात प्रदर्श क-13 और क-14 पर कहीं भी यह तथ्य नहीं लिखा गया था कि यह "राज्य बनाम जगदीश और अन्य" मामले से संबंधित है।

22. इसके बाद, आरोपी व्यक्तियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए। धारा 313 द०प्र०स० के तहत बयानों में, आरोपी व्यक्तियों ने अपराध करने से इनकार किया था।

23. जब अपीलों पर बहस की गई, तो अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया था कि अभियोजन पक्ष द्वारा सामने लाया गया मामला एक अत्यधिक असंभव मामला था। इस तर्क को प्रमाणित करने के लिए, अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ कीं:

I. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि जब कोई डकैती होती है और विशेष रूप से जब डकैतों को सूचनाकर्ता के पक्ष से पता होता है तो निश्चित रूप से वे अपनी पहचान छिपाने की कोशिश करते थे और इस मामले में वह प्रस्तुत करता है कि किसी भी आरोपी ने अपना चेहरा नहीं ढका था।

II. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे कहा कि, वास्तव में, अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-4, सभी ने कहा है कि उन्होंने आरोपी व्यक्तियों को नाम से बुलाया था। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि डकैतों को नाम से बुलाना आत्मघाती होगा और इस संबंध में दिए गए बयान से पता चलता है कि अभियोजन पक्ष के गवाह वास्तव में वहां नहीं थे और वे केवल उस स्थान पर अपनी उपस्थिति दिखाने की कोशिश कर रहे थे।

III. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि आरोपी व्यक्तियों और पहले सूचनाकर्ता के पक्ष के लोगों के बीच दुश्मनी थी। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि, वास्तव में, यदि डकैती का एक साधारण मामला हुआ होता तो सूचनाकर्ता को यह पता नहीं चलता कि आरोपी कौन था। हालांकि, उन्होंने कहा कि प्राथमिकी दर्ज की गई थी और आरोपियों ने उन लोगों के नाम बताए थे जो पहले सूचनाकर्ता और उनके रिश्तेदारों के घरों के पास अपने गांव के आसपास रह रहे थे और उसके बाद उन्होंने उनसे बदला लेने की कोशिश की थी। इस संबंध में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने **इकबाल और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2015) 6 एस.सी.सी. 623** में रिपोर्ट किए गए मामले में सर्वोच्च न्यायालय के एक फैसले पर भरोसा किया, चूंकि अधिवक्ता ने फैसले के प्रस्तर-10, 16 और 17 को पढ़ा, इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

10. डकैती के मामलों में आमतौर पर, अपराध आपराधिक पृष्ठभूमि वाले अज्ञात व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। बहुत कम मामलों में ही आरोपी डकैतों को पीड़ित के बारे में पता चलता है। अ०सा०-1 पाटिया सिंह और अ०सा०-2 जय सिंह ने कहा है कि उन्होंने इस घटना को साढ़े तीन गज की दूरी से देखा था। अ०सा०-3 बेगराज ने यह भी कहा कि उन्होंने इस घटना को कमजोर टॉर्च की रोशनी में पांच-छह गज की दूरी से देखा था। गवाहों के अनुसार, घटना के समय उनके घरों में बिजली नहीं थी। उन्होंने दावा किया कि वे अपनी टॉर्च की रोशनी से आरोपियों को देख सकते हैं। निचली अदालतों में, आरोपी व्यक्तियों की ओर से, यह तर्क दिया गया था कि घटना की रात अमावस्या की रात थी। उस वर्ष के उस महीने के कैलेंडर के अवलोकन पर, यह देखा जाता है कि वर्ष 21-9-1979/22-9-1979 की बीच की रात एक काली रात थी अर्थात् "अमावस्या की रात"।

16. यह ध्यान रखना उचित है कि प्रस्तुत मामले में अपीलकर्ताओं या अन्य गैर-अपील करने वाले अभियुक्त व्यक्तियों से डकैती का विषय वस्तुओं की कोई बरामदगी नहीं की गई थी। अपनी शिकायत में, अ०सा०-1 ने

पचास महंगी वस्तुओं की सूची दी, जैसे सोने के आभूषण, चांदी के सामान, साड़ियां और कपड़े और नकदी भी। फ़र्द बरामगदी के अनुसार, जो बरामद किया गया था वह एक मिट्टी के बर्तन में सिर्फ तीन किलोग्राम घी था। अपने बयान में, अ०सा०-8 नेपाल सिंह (विवेचनाधिकारी) ने कहा है कि कृपा के कहने पर, उसने एक "चप्टागु" और एक "पोशाक" बरामद की थी। हालांकि, फ़र्द बरामगदी में सिर्फ तीन किलो घी का जिक्र है जो आरोपी कृपा के खुलासे के बयान पर बरामद होने की बात कही जा रही है। अपीलकर्ताओं के साथ-साथ गैर-अपील करने वाले अभियुक्त व्यक्तियों से, चोरी की गई वस्तुओं की पूरी सूची में से एक भी मूल्यवान वस्तु बरामद नहीं की गई थी। यह काफी अविश्वसनीय है कि थोड़े समय के भीतर यानी 21-9-1979 (घटना की तारीख) से 9-10-1979 (गिरफ्तारी की तारीख) तक, आरोपी ने सभी मूल्यवान वस्तुओं को परिवर्तित या बेच दिया होगा। यहां तक कि अगर हम स्वीकार करते हैं कि उन्होंने ऐसा किया था, तो अभियोजन पक्ष को इस बात के सबूत पेश करने चाहिए थे कि कैसे और किस तरीके से डकैती की विषय-वस्तु वाली वस्तुओं का निपटान किया गया या परिवर्तित किया गया। हत्या और डकैती एक ही लेन-देन का हिस्सा थे। खुलासा बयान के परिणामस्वरूप, केवल तीन किलोग्राम घी बरामद किया गया था।

17. अभियुक्त व्यक्तियों के अपराध को घर लाने के लिए, अभियोजन पक्ष का यह कर्तव्य है कि वह यह साबित करे कि चोरी की गई संपत्ति आरोपी व्यक्तियों के कब्जे में थी या आरोपी को पता था कि संपत्ति चोरी की संपत्ति थी या आरोपी व्यक्तियों ने चोरी की संपत्ति को परिवर्तित कर दिया था। अपीलकर्ताओं और अन्य गैर-अपील अभियुक्त व्यक्तियों को अपराध से जोड़ने के लिए ऐसी कोई बरामदगी नहीं की गई थी।

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने लक्ष्मण प्रसाद बनाम बिहार राज्य ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1388 पर भरोसा किया। चूंकि अधिवक्ता ने विशेष रूप से फैसले के प्रस्तर-3 पर भरोसा किया है, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

3. अपीलकर्ता के खिलाफ केंद्रीय साक्ष्य में अ०सा०-1 और 2 की गवाही शामिल थी जो शिकायतकर्ता अ०सा०-4 बैजनाथ प्रसाद के नौकर थे। सबूतों से ऐसा प्रतीत होता है कि बैजनाथ प्रसाद इलाके का एक अमीर व्यापारी था और आरोपी-अपीलकर्ता लक्ष्मण प्रसाद उसका पड़ोसी था, जिसके पास दो मंजिला घर था। निचली दोनों अदालतों ने अभियोजन पक्ष के इस मामले को स्वीकार कर लिया है कि बैजनाथ प्रसाद के घर में डकैती हुई थी, जिसके दौरान नकदी और अन्य सामान चोरी हो गया था। प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निचली अदालतों के इस निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी है। हमें इस बात का भी संतोष है कि बैजनाथ प्रसाद के घर में डकैती हुई है। एकमात्र प्रश्न जो विचार के लिए आता है वह यह है कि अपीलकर्ता ने अपराध में भाग लिया या नहीं। अ०सा०-1, 2 और 4 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है कि अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से डकैती में भाग लिया था और वास्तव में डकैतों का नेता था। उनके साक्ष्यों को देखने के बाद, हम पाते हैं कि उनके साक्ष्य में कुछ मात्रा में निरंतरता है, लेकिन केवल अनुरूपता या निरंतरता सत्य की एकमात्र परीक्षा नहीं है। कभी-कभी झूठ को भी सत्य का एक चतुर रूप दिया जाता है, जिससे सत्य गायब हो जाता है और झूठ सतह पर आ जाता है। यह उन मामलों में से एक प्रतीत होता है। जहां तक अपीलकर्ता की भागीदारी का

संबंध है, अभियोजन पक्ष के मामले में कई अंतर्निहित असमानताएं हैं। सबसे पहले, यह स्वीकार किया गया कि अपीलकर्ता इस अर्थ में एक सम्मानित व्यक्ति था कि उसके पास पर्याप्त साधन थे और वह एक प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉक्टर था और शिकायतकर्ता का पड़ोसी भी था। इस मामले के दृष्टिकोण में, यह विश्वास करना मुश्किल है कि वह अपने ही पड़ोसी के घर में डकैती करेगा और वह भी शाम के शुरुआती घंटों में, ताकि वह किसी भी क्षण पकड़ा जा सके और दंड संहिता, 1860 की धारा 395 के तहत दोषसिद्धि का जोखिम उठा सके। दूसरे, शिकायतकर्ता अ०सा०-4 के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि डकैतों ने निस्संदेह अपनी पहचान छिपाई थी, लेकिन उन्होंने ऐसा इस तरह से किया कि उनके चेहरे दिखाई दिए। वास्तव में, यदि अपीलकर्ता ने डकैती में भाग लिया होता और अपनी पहचान छिपाने की सावधानी बरती होती, तो वह यह देखता कि उसका चेहरा पूरी तरह से ढका हुआ था ताकि शिकायतकर्ता या गवाहों द्वारा पहचान असंभव हो जाए। अगर वह एक दुस्साहसी होता, तो उसने अपनी पहचान बिल्कुल भी नहीं छिपाई। तीसरा, प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, उसी शाम पुलिस अगली सुबह अपीलकर्ता के घर गई और उसे वहां पाया। यदि अपीलकर्ता ने वास्तव में डकैती में भाग लिया होता, तो वह कम से कम खुद को दुर्लभ बना लेता। आरोपी के घर की भी तलाशी ली गई और कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिला। अंत में, एक महत्वपूर्ण परिस्थिति थी कि शिकायतकर्ता बैजनाथ प्रसाद और अपीलकर्ता के बीच विवाद को देखते हुए, अपीलकर्ता को दुश्मनी के कारण गलत तरीके से फंसाए जाने की स्पष्ट संभावना थी। शिकायतकर्ता स्वयं स्वीकार करता है कि अपीलकर्ता के घर के चारों ओर एक चारदीवारी है और एक सड़क है जो उसके घर के पूर्व में चलती है और शिकायतकर्ता की मिल घर के पश्चिम में स्थित है। ब०सा०-2 के सबूत हैं कि आरोपी लक्ष्मण प्रसाद के घर के पास एक मार्ग के संबंध में डकैती की घटना से दो या तीन साल पहले बैजनाथ प्रसाद और आरोपी लक्ष्मण प्रसाद के बीच कुछ विवाद हुआ था, जिसके माध्यम से वह अपनी मिल में जाता था। ब०सा०-2 के साक्ष्य शिकायतकर्ता ने स्वयं स्वीकार की गई बातों का समर्थन करते हैं। शिकायतकर्ता को जो सबसे गंभीर उकसावे का एहसास हुआ होगा, वह यह था कि लक्ष्मण प्रसाद ने बैजनाथ प्रसाद के भतीजे किशोरी लाल से अपने घर के पास जमीन का एक टुकड़ा खरीदा था। यह प्रदर्श ख-2 और ब०सा०-4 के साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया है। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि शिकायतकर्ता के भतीजे द्वारा अपीलकर्ता के पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख इस घटना से केवल एक महीने पहले निष्पादित किया गया था। इसलिए यह अपीलकर्ता के झूठे फंसाने के लिए एक तत्काल मकसद प्रस्तुत करता है। एक और महत्वपूर्ण परिस्थिति जिसे निचली अदालतों द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया है, वह यह है कि अ०सा०-4 ने पेपर-बुक के पृष्ठ 44 पर अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि घटना के तुरंत बाद, मस्जिद के पास कई लोग इकट्ठे हुए, जिनमें से उन्होंने सूबा राउत और मोती राउत को पहचाना, लेकिन वे कभी भी उनकी मदद के लिए नहीं आए। गवाह का यह भी कहना है कि जब वह पश्चिम से आया तो उसने गणेश राउत, अच्छेलाल, मथुरा राम और रामेश्वर सहित कुछ ही दूरी पर 40 से 50 लोगों को देखा। जाहिर है, अगर डकैती की घटना शाम के शुरुआती घंटों में हुई थी, तो निकट पड़ोसी इकट्ठे हुए होंगे और फिर भी शिकायतकर्ता के इस कथन का समर्थन करने के लिए इनमें से किसी भी पड़ोसी की जांच नहीं की गई है कि अपीलकर्ता ने घटना में भाग लिया था। हमें ऐसा लगता है कि इन व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता का समर्थन करने का विकल्प नहीं चुना इसका कारण यह था कि शायद अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया था और इसलिए जो व्यक्ति इकट्ठे हुए थे, उन्हें शिकायतकर्ता का समर्थन करने का विचार पसंद नहीं आया होगा यदि वह अपीलकर्ता को डकैती

में झूठा फंसाने की हद तक चला गया था। ये आंतरिक परिस्थितियाँ अभियोजन पक्ष के मामले के खिलाफ बहुत कुछ बोलती हैं और डकैती में अपीलकर्ता की मिलीभगत के बारे में हमारे मन में काफी संदेह पैदा करती हैं। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि जबकि गवाह झूठ बोल सकते हैं, परिस्थितियाँ नहीं हैं।

फिर भी अपीलकर्ताओं के लिए आगे के अधिवक्ता ने **प्रेम और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2022 (6) ए.डी.जे. 529 (डीबी)** पर भरोसा किया, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने फैसले के प्रस्तर-25 और 26 को पढ़ा है, इसलिए उन्हें यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"25. इससे पहले कि हम प्रस्तुतियों का विश्लेषण करने के लिए आगे बढ़ें, कुछ इसी तरह की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय को नोटिस करना उपयोगी होगा, जहां आरोपी ने कथित तौर पर अपने पड़ोसी के घर पर डकैती के कमीशन में भाग लिया था और डकैती के तथ्य को विधिवत साबित किया गया था और प्रत्यक्षदर्शी, जाहिरा तौर पर, अभी तक अपने बयान में सुसंगत और सुसंगत थे, झूठे निहितार्थ की संभावना को बहुत अधिक पाए जाने पर, शीर्ष अदालत ने दोषी आरोपी की अपील को स्वीकार कर लिया और उसे आरोप से बरी कर दिया, यह पता लगाने पर कि अभियोजन पक्ष के मामले की आंतरिक परिस्थितियों ने डकैती में अपीलकर्ता की संलिप्तता के संबंध में काफी संदेह पैदा किया है। उस मामले में सर्वोच्च न्यायालय की प्रासंगिक टिप्पणियाँ अर्थात् **लक्ष्मण प्रसाद बनाम बिहार राज्य: 1981 (पूरक) एस.सी.सी. 22**, निर्णय के प्रस्तर-3 में निहित हैं, जो नीचे निकाले गए हैं:

"3. अपीलकर्ता के खिलाफ केंद्रीय साक्ष्य में अ०सा०-1 और 2 की गवाही शामिल थी जो शिकायतकर्ता अ०सा०-4 बैजनाथ प्रसाद के नौकर थे। सबूतों से ऐसा प्रतीत होता है कि बैजनाथ प्रसाद इलाके का एक अमीर व्यापारी था और आरोपी-अपीलकर्ता लक्ष्मण प्रसाद उसका पड़ोसी था, जिसके पास दो मंजिला घर था। निचली दोनों अदालतों ने अभियोजन पक्ष के इस मामले को स्वीकार कर लिया है कि बैजनाथ प्रसाद के घर में डकैती हुई थी, जिसके दौरान नकदी और अन्य सामान चोरी हो गया था। प्रस्तुत मामले में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निचली अदालतों के इस निष्कर्ष को चुनौती नहीं दी है। हमें इस बात का भी संतोष है कि बैजनाथ प्रसाद के घर में डकैती हुई है। एकमात्र प्रश्न जो विचार के लिए आता है वह यह है कि अपीलकर्ता ने अपराध में भाग लिया या नहीं। अ०सा०-1, 2 और 4 ने अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन किया है कि अपीलकर्ता ने स्पष्ट रूप से डकैती में भाग लिया था और वास्तव में डकैतों का नेता था। उनके साक्ष्यों को देखने के बाद, हम पाते हैं कि उनके साक्ष्य में कुछ मात्रा में निरंतरता है, लेकिन केवल अनुरूपता या निरंतरता सत्य की एकमात्र परीक्षा नहीं है। कभी-कभी झूठ को भी सत्य का एक चतुर रूप दिया जाता है, जिससे सत्य गायब हो जाता है और झूठ सतह पर आ जाता है। यह इन्हीं मामलों में से एक प्रतीत होता है। जहां तक अपीलकर्ता की भागीदारी का संबंध है, अभियोजन पक्ष के मामले में कई अंतर्निहित असमानताएं हैं। सबसे पहले, यह माना जाता है कि अपीलकर्ता इस अर्थ में एक सम्मानित व्यक्ति था कि उसके पास पर्याप्त साधन थे और वह एक प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉक्टर था और शिकायतकर्ता का पड़ोसी भी था। इस मामले के मद्देनजर, यह विश्वास करना मुश्किल है कि वह अपने ही पड़ोसी के घर में डकैती करेगा और वह भी शाम के शुरुआती घंटों में, ताकि वह किसी भी क्षण पकड़ा जा सके और भारतीय दंड संहिता की धारा 395 के तहत दोषसिद्धि का जोखिम उठा सके। दूसरे,

शिकायतकर्ता अ०सा०-4 के साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि डकैतों ने निस्संदेह अपनी पहचान छिपाई थी, लेकिन उन्होंने ऐसा इस तरह से किया कि उनके चेहरे दिखाई दिए। वास्तव में, यदि अपीलकर्ता ने डकैती में भाग लिया होता और अपनी पहचान छिपाने की सावधानी बरती होती, तो वह यह देखता कि उसका चेहरा पूरी तरह से ढका हुआ था ताकि शिकायतकर्ता या गवाहों द्वारा पहचान करना असंभव हो जाए। अगर वह एक दुस्साहसी होता, तो उसने अपनी पहचान बिल्कुल भी नहीं छिपाई। तीसरा, प्राथमिकी दर्ज होने के बाद, उसी शाम पुलिस अगली सुबह अपीलकर्ता के घर गई और उसे वहां पाया। यदि अपीलकर्ता ने वास्तव में डकैती में भाग लिया होता, तो वह कम से कम खुद को दुर्लभ बना लेता। आरोपी के घर की भी तलाशी ली गई और कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिला। अंत में, एक महत्वपूर्ण परिस्थिति थी कि शिकायतकर्ता बैजनाथ प्रसाद और अपीलकर्ता के बीच विवाद को देखते हुए, अपीलकर्ता को दुश्मनी के कारण गलत तरीके से फंसाए जाने की स्पष्ट संभावना थी। शिकायतकर्ता स्वयं स्वीकार करता है कि अपीलकर्ता के घर के चारों ओर एक चारदीवारी है और एक सड़क है जो उसके घर के पूर्व में चलती है और शिकायतकर्ता की मिल घर के पश्चिम में स्थित है। ब०सा०-2 के सबूत हैं कि आरोपी लक्ष्मण प्रसाद के घर के पास एक मार्ग के संबंध में डकैती की घटना से दो या तीन साल पहले बैजनाथ प्रसाद और आरोपी लक्ष्मण प्रसाद के बीच कुछ विवाद हुआ था, जिसके माध्यम से वह अपनी मिल में जाता था। ब०सा०-2 के साक्ष्य शिकायतकर्ता ने स्वयं स्वीकार की गई बातों का समर्थन करते हैं। शिकायतकर्ता को जो सबसे गंभीर उकसावे का पहसासा हुआ होगा, वह यह था कि लक्ष्मण प्रसाद ने बैजनाथ प्रसाद के भतीजे किशोरी लाल से अपने घर के पास जमीन का एक टुकड़ा खरीदा था। यह प्रदर्श ख और ब०सा०-4 के साक्ष्य द्वारा सिद्ध किया गया है। उच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि अपीलकर्ता के पक्ष में शिकायतकर्ता के भतीजे द्वारा निष्पादित बिक्री-विलेख इस घटना से केवल एक महीने पहले निष्पादित किया गया था। इसलिए यह अपीलकर्ता के झूठे फंसाने के लिए एक तत्काल मकसद प्रस्तुत करता है। एक और महत्वपूर्ण परिस्थिति जिसे निचली अदालतों द्वारा नजरअंदाज कर दिया गया है, वह यह है कि अ०सा०-4 ने पेपर-बुक के पृष्ठ 44 पर अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि घटना के तुरंत बाद, मस्जिद के पास कई लोग इकट्ठे हुए, जिनमें से उन्होंने सूबा राउत और मोती राउत को पहचाना, लेकिन वे कभी भी उनकी मदद के लिए नहीं आए। गवाह का यह भी कहना है कि जब वह पश्चिम से आया तो उसने गणेश राउत, अच्छेलाल, मथुरा राम और रामेश्वर सहित कुछ ही दूरी पर 40 से 50 लोगों को देखा। जाहिर है, अगर शाम के शुरुआती घंटों में डकैती की घटना हुई थी, तो निकट पड़ोसी इकट्ठे हुए होंगे और फिर भी शिकायतकर्ता के इस कथन का समर्थन करने के लिए इनमें से किसी भी पड़ोसी की जांच नहीं की गई है कि अपीलकर्ता ने घटना में भाग लिया है। हमें ऐसा लगता है कि इन व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता का समर्थन करने का विकल्प नहीं चुना इसका कारण यह था कि शायद अपीलकर्ता को झूठा फंसाया गया था और इसलिए जो व्यक्ति इकट्ठे हुए थे, उन्हें शिकायतकर्ता का समर्थन करने का विचार पसंद नहीं आया होगा यदि वह अपीलकर्ता को डकैती में झूठा फंसाने की हद तक चला गया था। ये आंतरिक परिस्थितियाँ अभियोजन पक्ष के मामले के खिलाफ बहुत कुछ बोलती हैं और डकैती में अपीलकर्ता की मिलीभगत के बारे में हमारे मन में काफी संदेह पैदा करती हैं। यह अच्छी तरह से तय है कि गवाह झूठ बोल सकते हैं, लेकिन परिस्थितियाँ नहीं बोलती हैं। (महत्व सन्निविष्ट)

26. ऊपर दी गई सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों से, जो स्पष्ट हो जाता है वह यह है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही में केवल निरंतरता या अनुरूपता सत्य की एकमात्र परीक्षा नहीं है क्योंकि झूठ को भी सत्य का एक चतुर रूप दिया जा सकता है, ताकि सत्य गायब हो जाए और झूठ सतह पर आ जाए। इसलिए, अदालत को जो देखना और आकलन करना है, वह यह है कि क्या आसपास की परिस्थितियों के साथ अभियोजन पक्ष के साक्ष्य में इसके बारे में सच्चाई का एक रमक है या एक मजबूत संदेह और मुकदमे में आरोपी के झूठे फंसने की उच्च संभावना पैदा होती है। इसे ध्यान में रखते हुए, जब हम अभियोजन पक्ष के साक्ष्य का आकलन करने की कवायद शुरू करते हैं, तो हम पाते हैं कि, इसमें कोई संदेह नहीं है, अभिलेखों पर, अभियोजन पक्ष का मामला एक त्वरित प्रथम सूचना रिपोर्ट पर स्थापित किया गया है और एक घायल व्यक्ति की गवाही द्वारा समर्थित है, लेकिन दिलचस्प बात यह है कि कोई भी उस दुर्भाग्यपूर्ण रात को गांव में डकैती के तथ्य पर विवाद नहीं करता है। विवादित बात यह है कि आरोपी-अपीलकर्ता डकैतों के गिराव का हिस्सा हैं। जब हम इस प्रकाश में सबूतों को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष के साक्ष्य पूरी तरह से चुप हैं कि अभियुक्त-अपीलकर्ताओं ने डकैती के समय क्या किया था। एक गवाह (यानी अ०सा०-1) के बयान को छोड़कर कि भगवान सिंह के पास बंदूक थी और उसने गोली चलाई, किसी भी आरोपी अपीलकर्ता की भूमिका के बारे में कोई खुलासा नहीं है, सिवाय इसके कि उन पर ध्यान दिया गया था। वास्तव में, अ०सा०-1 जिसने प्राथमिकी में इस बारे में गवाही दी, जो उसके द्वारा दर्ज की गई थी और जिसके साथ उसका सामना किया गया था, ने ऐसा कोई खुलासा नहीं किया। यहां तक कि भगवान सिंह द्वारा कथित तौर पर गोली चलाई गई थी, यह खुलासा नहीं किया गया है कि इसे किसके संकेत पर निशाना बनाया गया था और इससे किसे क्या चोट आई थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि दो व्यक्तियों की चोटों के लिए जांच की गई थी, एक अ०सा०-4 है और दूसरा चंपा देवी है। चंपा देवी से गवाह के रूप में पूछताछ नहीं की गई है और अ०सा०-4 को चोटों के घाव हुए हैं, जिसके लेखक का खुलासा उनके द्वारा नहीं किया गया है। दिलचस्प बात यह है कि एकमात्र गवाह (यानी अ०सा०-3) जिसके साथ अभियुक्त-अपीलकर्ताओं की कोई दुश्मनी नहीं थी और जिसका घर भी लूट लिया गया था, वह डकैती में भाग लेने वाले डकैतों की संख्या के संबंध में या उनकी पहचान के संबंध में अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन नहीं करता है। इसके अलावा, हम पाते हैं कि किसी भी अभियुक्त-अपीलकर्ता से उनके खिलाफ आरोप को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए किसी भी आपतिजनक सामग्री की कोई बरामदगी नहीं हुई है। अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही से एक और महत्वपूर्ण विशेषता जो हम नोटिस करते हैं वह यह है कि गांव के विभिन्न घरों को लूट लिया गया था और डकैतों के चले जाने के बाद, ग्रामीण एक ही स्थान पर जमा हो गए थे। इससे पता चलता है कि स्वतंत्र गवाह भी थे जो डकैती से प्रभावित थे, लेकिन अभियोजन पक्ष ने जानबूझकर उनसे पूछताछ नहीं करने का फैसला किया। जब हम यह सब देखते हैं, तो इस तथ्य के साथ कि आरोपी-अपीलकर्ता उसी गांव के निवासी हैं जहां अभी तक डकैती की गई थी, उन्होंने अपना चेहरा नहीं ढंकने का फैसला किया और उनके पास से कुछ भी आपतिजनक नहीं बरामद किया गया है, साथ ही यह भी कि सभी आरोपी एक ही परिवार या एक ही गांव के नहीं हैं। इससे हमें यह महसूस होता है कि गांव में डकैती को उन अभियुक्तों को झूठा फंसाने के अवसर के रूप में लिया गया है, जिनके साथ सूचनाकर्ता और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साथ अ०सा०-3 को छोड़कर, जिन्हें शत्रुतापूर्ण घोषित किया गया था, की गहरी दुश्मनी थी।

IV. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे कहा कि, वास्तव में, प्रथम सूचना रिपोर्ट एक पूर्व-समयबद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट थी। वे प्रस्तुत करते हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट, शुरू करने के लिए, धारा 396 भ०द०वि० के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट के रूप में दर्ज की गई थी। उन्होंने कहा कि जब, हालांकि, आरोपी व्यक्तियों के नाम ज्ञात थे और पहला सूचनाकर्ता उन्हें हत्या के अपराध के लिए फंसाना चाहता था, तब भी निश्चित रूप से धारा 302 भ०द०वि०/34 के तहत भी प्राथमिकी दर्ज की गई थी। अधिवक्ता ने अ०सा०-24 के बयानों पर भरोसा करते हुए कहा था कि प्रथम सूचना रिपोर्ट शव परीक्षण रिपोर्ट के साथ नहीं थी। उन्होंने कहा कि विभिन्न गवाहों की गवाही से यह स्पष्ट हो गया कि चूंकि चिक प्राथमिकी तैयार नहीं की गई थी और जब शवों को शव परीक्षण के लिए भेजा गया था तो वह पंचायतनामा के साथ नहीं थी, इससे स्पष्ट रूप से पता चलता है कि हालांकि मामले का अपराध संख्या आवंटित किया गया था, लेकिन बहुत लंबे समय से कोई प्राथमिकी नहीं थी।

V. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे कहा कि जब अभियोजन पक्ष के गवाहों ने इतने शब्दों में कहा था कि आरोपी व्यक्ति पहले सूचनाकर्ता और अन्य अभियोजन पक्ष के गवाहों से परिचित थे और उनके अनुसार आरोपी किसी परिचित के घर में डकैती करने आए थे, तो यह स्वाभाविक था कि उन्हें अपना चेहरा ढंकना चाहिए था। प्रस्तुत मामले में, वह प्रस्तुत करता है कि जब चेहरों को ढका नहीं गया था तो एकमात्र तार्किक निष्कर्ष यह होगा कि वास्तव में वे घटनास्थल पर नहीं गए थे और केवल इसलिए कि सूचनाकर्ता आरोपी व्यक्तियों के साथ दुश्मनी थी, अज्ञात व्यक्तियों द्वारा घटना की तारीख को डकैती का एक साधारण मामला होने के बाद उन्हें मामले में फंसाया गया था।

VI. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया गया था कि रामजा सिंह के हाथ उनके पीछे बंधे थे और उसके बाद उन्हें गोली मार दी गई थी। हालांकि, पंचायतनामा के समय शव को देखने के बाद, जिसमें शवों को बांधा गया था, उसने अदालत में यह कहकर अपने मामले को सुधारने की कोशिश की थी कि मृतक रामजा सिंह के हाथ उसके पीछे बंधे हुए थे।

VII. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे कहा कि अगर दुश्मनी रखने वाले व्यक्ति घटनास्थल पर आ गए होते और डकैती भी की होती तो वे न केवल रामजा और देव नाथ सिंह पर गोली मारते बल्कि उन सभी युवा लोगों को मार देते जो अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार बहुत अधिक मौजूद थे और अपने सभी दुश्मनों को एक ही बार में खत्म कर देते। इस मामले में, वह प्रस्तुत करता है कि सिर्फ इसलिए कि रामजा और देवनाथ ने डकैती का विरोध किया था, अज्ञात डकैतों ने रामजा के हाथ बांध दिए थे और उसके बाद जब वह डकैती का विरोध कर रहे थे, तो उन्हें गोली मार दी गई और उनकी हत्या कर दी गई। अधिवक्ता का कहना है कि यहां तक कि देवनाथ को भी उसी तरह से खत्म कर दिया गया था।

VIII. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का कहना है कि किसी भी नामित आरोपी व्यक्ति के कब्जे से लूटी गई किसी भी वस्तु की कोई बरामदगी नहीं हुई थी।

IX. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि 8 आरोपी व्यक्तियों, जिनका नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं था और उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिए गए थे, शुरू में, उन पर भी उन्हीं अपराधों के लिए आरोप लगाए गए थे, जिनके लिए नामित अभियुक्तों पर आरोप लगाए गए थे, लेकिन निचली अदालत उस तर्क को लागू करने में विफल रही जिसके लिए दोषी ठहराए गए व्यक्तियों के मामलों में बरी किया गया था।

24. इसके बाद अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यदि पूरे मामले को देखा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अभियोजन पक्ष एक सबसे अप्राकृतिक मामला लेकर आया था। जब घटना हो रही थी तो चश्मदीद गवाहों को आरोपी के नाम नहीं लेने पड़ते और वह भी तब जब दोनों पक्षों के बीच गहरी दुश्मनी थी। अपीलकर्ताओं के इस अधिवक्ता ने कहा कि यह अप्राकृतिक था क्योंकि जब नाम पुकारे गए थे, तो आरोपी ने निश्चित रूप से उस स्थान पर निशाना साधा होगा जहां से नाम पुकारे जा रहे थे और उस व्यक्ति को गोली मारने की कोशिश की होगी जो नाम पुकार रहा था। इस संबंध में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने **राम लखन सिंह और अन्य 1977(3) एस.सी.सी. 268** के फैसले पर भरोसा किया और प्रस्तर-27 पर भरोसा किया। चूंकि अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने फैसले के प्रस्तर-27 पर भरोसा किया था, इसलिए इसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: -

"27. सत्र न्यायाधीश ने अभियोजन पक्ष के मामले को गलत तरीके से स्वीकार कर लिया कि "हमलावर पूरे परिवार को नष्ट करने आए थे" और "प्रस्तुत मामले में जाते हमलावरों का मुख्य इरादा शिव बहादुर सिंह और उसके परिवार के अन्य सदस्यों की हत्या करना था"। यह समझना मुश्किल है कि यह अकेले कैसे हो सकता है जब हम पाते हैं कि उदयरज सिंह और राम नरेश सिंह, जो छत से चिल्ला रहे थे और घुसपैठियों पर एक टॉर्च केंद्रित कर रहे थे, जिन्होंने उनकी ओर गोली भी चलाई थी, उन्हें बच दिया गया। यदि सत्र न्यायाधीश हमले के उद्देश्य के बारे में सही हैं, तो यह केवल उदयरज सिंह और राम नरेश सिंह की अनुपस्थिति के अनुरूप होगा, जिस मामले में राम नरेश सिंह के सबूत गंभीर संदेह के लिए खुले होंगे। यहां तक कि उदयरज सिंह से भी अभियोजन पक्ष ने गवाह के तौर पर पूछताछ नहीं की है, हालांकि सत्र न्यायाधीश ने अपने फैसले में कहा है कि उदयरज सिंह ने उनसे (इकट्ठा हुए लोगों) को बताया था कि रामेश्वर सिंह और अन्य लोगों ने उनके पिता और बेटे की हत्या की थी। उदयरज सिंह की अनुपस्थिति में यह बयान निश्चित रूप से अस्वीकार्य है, लेकिन यह केवल यह दिखाने के लिए इंगित किया गया है कि उस स्तर पर, नामित अपराधी "रामेश्वर सिंह और अन्य" थे, न कि सभी आरोपी और उनके साक्ष्य को रोकना जानबूझकर किया गया था। यदि व्यक्तियों की हत्या मुख्य उद्देश्य है, तो यह समझना मुश्किल है कि आरोपी शीतला बख्श सिंह और एक अन्य अज्ञात व्यक्ति के लिए यह क्यों आवश्यक था कि राम जस सिंह भाग रहा था और उसे मारने के लिए उस पर गोली चलाने के उद्देश्य से उसे वापस आंगन में ले आए। भाग रहे समय उसकी हत्या की जा सकती थी। गवाहों ने कहा है कि राम जस सिंह को आंगन में लाया गया था, इसका कारण शायद राम नरेश सिंह और अन्य लोगों को हत्या देखने में सक्षम बनाना था। अदालतों ने इस पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया है।

25. यह साबित करने के लिए कि यदि प्रथम सूचक पक्ष के शत्रुगण घटनास्थल पर आए होते, तो वे पूरे परिवार का सफाया करने का प्रयास करते, इस तर्क को सिद्ध करने हेतु, अधिवक्ता महोदय ने उपर्युक्त निर्णय के अनुच्छेद संख्या 33 पर भरोसा किया है, जिसे नीचे पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

"33. फिर से अगर अभियुक्त का उद्देश्य हत्या करना और पूरे परिवार का सफाया करना था, जैसा कि सत्र न्यायाधीश द्वारा पाया गया है, तो कोई कारण नहीं है कि उन्होंने उदयरज सिंह और राम नरेश सिंह को छत पर देखने के बावजूद उन्हें बिना खरोंच के छोड़ दिया होगा, इस तथ्य के बावजूद कि राम नरेश सिंह ने कहा था कि आरोपी ने उनकी ओर गोली चलाई थी।

26. अभी भी अपनी बात को मजबूत करने के लिए कि कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति उस तरीके से आचरण नहीं करेगा जैसा कि मामले में अभियोजन पक्ष द्वारा रिपोर्ट किया गया है, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने 2009 में रिपोर्ट किए गए उच्चतम न्यायालय के एक फैसले (6) एस.सी.सी. 457: सृष्टि नारायण बनाम बिंदेश्वर झा और अन्य पर भरोसा किया और उन्होंने विशेष रूप से फैसले के प्रस्तर-13 से 20 पर भरोसा किया, जिसे यहां निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है: ..

"13. विवेचनाधिकारी का सबूत कि उसने दरवाजे का एक तख्ता टूटा हुआ और फर्श पर गिरा हुआ पाया, जो अ०सा०-1 के साक्ष्य के खिलाफ भी है, जिसने स्पष्ट रूप से कहा है कि अपीलकर्ताओं ने उसके कमरे के दरवाजे के तख्ते में टेंगरी द्वारा छेद किया था और उस छेद में हाथ डालकर बनाया था, दरवाजे की कुंडी खोली। यह अभियोजन पक्ष के मामले का भी समर्थन नहीं करता है कि जिस तरह से उसके कमरे का दरवाजा खोला गया था। विवेचनाधिकारी (अ०सा०-12) ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उन्होंने 7-7-1981 को अ०सा०-1 और 2 के बयान दर्ज किए क्योंकि 6-7-1981 को जब वह उनसे मिले, तो वे अपने बयान देने की स्थिति में नहीं थे क्योंकि वे रोने में लगे हुए थे।

14. अ०सा०-2 ने स्वीकार किया है कि पुलिस डकैती के अगले दिन आई थी, लेकिन उस दिन, उसका बयान दर्ज नहीं किया गया था क्योंकि वह उस दिन रो रही थी और अगले दिन उसका बयान और उसकी सास का बयान दर्ज किया गया था। इसने अ०सा०-1 और 2 के साक्ष्य को स्वीकार करने के लिए एक बहुत मजबूत संदेह भी पैदा कर दिया है कि वे घटना के चश्मदीद गवाह हैं। जब अ०सा०-1 घटना के तुरंत बाद अपने बेटे को घटना का विवरण देने की स्थिति में था, जो कि सूचनाकर्ता है, तो घटना के अगले दिन जब पुलिस उसके घर आई थी तो उसके बयान न देने का कोई कारण नहीं था। अ०सा०-1 और 2, जिन्हें घटना के चश्मदीद गवाह कहा जाता है, ने अपने साक्ष्य में कहा है कि उन पर भी डकैतों द्वारा हमला किया गया था और उन्हें चोटें आई थीं, लेकिन अभिलेखों पर ऐसा कुछ भी नहीं है कि अन्य घायल व्यक्तियों की तरह, उनकी भी किसी डॉक्टर द्वारा जांच की गई थी।

15. विवेचनाधिकारी (अ०सा०-12) यह नहीं कहता है कि अगले दिन सुबह जब वह घटनास्थल का दौरा करता था, तो उसे अ०सा०-1 और 2 पर कोई चोट मिली। हालांकि उन्होंने कहा है कि उन्होंने चोट का प्रमाण पत्र तैयार किया है लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया है कि उनके द्वारा इस तरह के प्रमाण पत्र किसके लिए तैयार किए गए थे। उन्होंने अपनी जिरह में कहा है कि जब तक वह घटनास्थल पर पहुंचे, तब तक घायल गोपाल नारायण झा (अ०सा०-4) और नरेश नारायण झा (अ०सा०-6) को पहले ही अस्पताल भेजा जा चुका था और अस्पताल जाने के बाद उन्होंने उनके व्यक्तियों पर चोट देखी। उनके द्वारा तैयार किए गए चोट प्रमाण पत्र इन दो घायल व्यक्तियों के लिए हो सकते हैं और उनके द्वारा तैयार किए जाने वाले चोट प्रमाण पत्र के बारे में कोई निश्चित राय उनके द्वारा घायलों के नाम के अभाव में या इन चोट प्रमाणपत्रों को अभिलेखों पर लाने के अभाव में नहीं दिया जा सकता है।

16. आमोद देवी (अ०सा०-1) ने कहा है कि बाद में एक बहुरन देवी ने उसे 320 रुपये की राशि यह कहते हुए दी कि उसे एक नदी के किनारे फेंका गया पैसा मिला और अगले दिन, एक राम मास्टर ने सूचित किया कि कटाई क्षेत्र में कुछ बक्से पड़े थे जो बुधन साहनी और अन्य द्वारा लाए गए थे। ऊपर नामित व्यक्तियों में से किसी की भी जांच नहीं की गई।

17. अभियोजन पक्ष के गवाहों ने दावा किया है कि उन्होंने लालटेन की रोशनी में अपीलकर्ताओं की पहचान की थी, लेकिन विवेचनाधिकारी को जांच के दौरान कोई लालटेन या लालटेन जलाने का संकेत नहीं मिला जो आमतौर पर आसपास के क्षेत्रों में दिखाई देता है। आरोपी भरत लाल झा की पहचान अ०सा०-1 और 2 द्वारा, आरोपी बिनोद झा की पहचान अ०सा०-2 द्वारा और आरोपी उमेश झा की पहचान अ०सा०-6 द्वारा नहीं की गई थी। इसके अलावा, अ०सा०-4 और 6 ने अशोक झा, सोमेंद्र झा और राम बल्लभ झा के नाम जोड़े हैं जो आरोपियों में शामिल नहीं हैं।

18. चिकित्सा साक्ष्य यह दर्शाता है कि मृतक की मृत्यु हत्या थी और विवेचनाधिकारी के साक्ष्य जिसने घटनास्थल पर खून के धब्बे और घटनास्थल पर रखे लकड़ी के बक्से पर हिंसा के कुछ निशान पाए थे, सूचनाकर्ता के घर में डकैती के तथ्य का सुझाव दे सकते हैं, लेकिन जहां तक डकैती के तरीके और उस डकैती में अभियुक्त की भागीदारी का संबंध है, यह काफी संदिग्ध प्रतीत होता है। अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य यह हैं कि आरोपियों के अलावा उनके साथ कुछ अन्य डकैत भी थे, जिनकी पहचान नहीं हो सकी है। इस मामले में लंबे समय से चली आ रही दुश्मनी के कारण अपीलकर्ताओं को गलत तरीके से फंसाने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

19. इस मामले में, अभियुक्त विजय झा और बिनोद झा से क्रमशः 31-3-1987 और 20-4-1987 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत पूछताछ की गई, जब अदालत द्वारा उनकी आयु क्रमशः लगभग उन्नीस वर्ष और बाईस वर्ष आंकी गई थी। कहा जाता है कि यह घटना 5-7-1981 और 6-7-1981 के बीच रात में हुई थी। इसका मतलब है कि घटना के समय आरोपी विजय झा की उम्र लगभग तेरह साल, तीन महीने और

अपीलकर्ता बिनोद झा की उम्र लगभग सोलह साल दो महीने थी। दोनों सहोदर भाई हैं और आरोपी बिदेश्वर झा उनका दूसरा भाई है। यह बहुत अस्वाभाविक लगता है कि आरोपी अपने पड़ोस में डकैती करने जाते थे और अपने साथ विजय झा और बिनोद झा जैसे नाबालिग और युवा लड़कों को ले जाते थे, जब वे संख्या में पर्याप्त होते थे और कुछ अन्य व्यक्तियों के साथ भी होते थे।

20. इसके अलावा, अभियुक्त भाई लाल झा की आयु 31-3-1987 को अदालत द्वारा अनुमानित की गई थी, जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत उसकी जांच अस्सी वर्ष के रूप में की गई थी। बचाव पक्ष ने एक मतदाता सूची (प्रदर्श-ए) को अभिलेखों पर लाया है जिसमें दिखाया गया है कि वर्ष 1983 में प्राप्त इस मतदाता सूची में सह-आरोपी दाहौर झा (मृत होने के बाद) की आयु बहतर वर्ष दर्ज की गई है, क्योंकि दाहौर झा अब मर चुके हैं, इसलिए यह दस्तावेज अब किसी के मामले में मदद नहीं करता है, लेकिन तत्कालीन आरोपी भाई लाल झा, माना जाता है कि घटना के समय उनकी आयु लगभग चौहतर वर्ष थी। इसलिए, हम पाते हैं कि अभियुक्तों में लगभग चौहतर वर्ष का एक बूढ़ा व्यक्ति और साथ ही लगभग तेरह वर्ष का एक लड़का शामिल था और, जैसा कि ऊपर कहा गया है, आरोपी सूचनाकर्ता के पड़ोसी थे, जिसके साथ सूचनाकर्ता के परिवार का लंबे समय से विवाद था।

27. अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिन्हा ने अपील का विरोध किया और प्रस्तुत किया कि जब चश्मदीद गवाहों की संख्या कितनी भी थी तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि आरोपी व्यक्तियों और पहले सूचनाकर्ता के बीच दुश्मनी थी और इसलिए, आरोपी को मामले में फंसाया गया था। वह प्रस्तुत करता है कि दुश्मनी ही अपराध करने का कारण नहीं हो सकती थी। अपर शासकीय अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि घायल गवाहों और चश्मदीद गवाहों के सबूतों को लापरवाही से दरकिनार नहीं किया जा सकता है।

28. अपीलकर्ता श्री अपुल मिश्रा और श्री राजर्षि गुप्ता और अपर शासकीय अधिवक्ता श्री अमित सिन्हा के अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि निश्चित रूप से जब अभियोजन पक्ष द्वारा मामला लिया गया था कि आरोपी व्यक्ति बिना किसी धाता (आवरण) के उस स्थान पर पहुंच गए थे, खासकर जब वे पहले सूचनाकर्ता के पक्ष से परिचित थे तो अभियोजन पक्ष का मामला कमजोर और अविश्वसनीय हो जाता है। साथ ही, हमारा मानना है कि अभियोजन पक्ष की ओर से चश्मदीद गवाह, वास्तव में, एक सोची-समझी कहानी के साथ आ रहे थे और वे वास्तव में मौके पर बिल्कुल भी नहीं थे। अगर वे वहां होते तो उन्हें कम से कम पता होता कि रामजा के मारे जाने से पहले उनके हाथ उनके पीछे बंधे हुए थे। हमारा यह भी विचार है कि यदि चश्मदीद गवाह वहां थे तो भी उन्होंने निश्चित रूप से डकैतों को नहीं पहचाना था और केवल कुछ ज्ञात शत्रुतापूर्ण व्यक्तियों को फंसाने के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। हमारा यह भी मानना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट भी समय से पहले की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में इस बात का कोई जिक्र नहीं था कि उनकी हत्या से पहले रामजा के हाथ बंधे हुए थे। इसके अलावा, अ०सा०-2 ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा था कि धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज बयान के तहत, उसने किसी भी आरोपी के नाम का उल्लेख नहीं किया था, लेकिन हम प्रथम सूचना रिपोर्ट से पाते हैं कि नामों का उल्लेख प्रथम सूचना रिपोर्ट में किया गया था और यदि अ०सा०-2 जो अ०सा०-1 के इतने करीब था, उसे प्रथम सूचना रिपोर्ट में उल्लिखित नामों के बारे में पता था तो वह

निश्चित रूप से धारा 161 द०प्र०स० के तहत दिए गए बयान में आरोपी व्यक्तियों के नामों का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा, हम यह निष्कर्ष निकाल रहे हैं कि प्रथम सूचना रिपोर्ट समय से पहले थी क्योंकि पंचायतनामा के साथ शव परीक्षण के लिए भेजे गए दस्तावेजों में चिक प्रथमिकी नहीं थी, जिसका अर्थ है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट कुछ समय बीत जाने के बाद पूर्व-दिनांकित थी और सूचनाकर्ता पक्ष ने उन सभी अभियुक्तों को फंसाने का मन बना लिया था जिन्हें वे फंसाना चाहते थे। हमारा विचार है कि अ०सा०-1, अ०सा०-2, अ०सा०-3 और अ०सा०-4 के बयान, जैसा कि उनके द्वारा न्यायालय के समक्ष कहा गया था, अवास्तविक थे। उन्होंने कहा था कि उन्होंने छतों से आरोपियों के नाम पुकारे थे। मामले में वे इस तथ्य से अवगत थे कि उनके दुश्मन आ गए थे, उनके पास बंदूकें और आग्नेयास्त्रों वाले ज्ञात दुश्मनों के नाम पुकारने के बजाय, खुद को छिपाने की कोशिश की होगी और उन्हें उन आग्नेयास्त्रों के प्रति संवेदनशील नहीं बनाया होगा जो वे ले जा रहे थे।

29. इस मामले में, हम निश्चित रूप से पाते हैं कि सभी आरोपी व्यक्ति पड़ोसी थे जो अभियोजन पक्ष के विरोधी थे और इसलिए, उन्हें मामले में फंसाया गया था। इस प्रकार, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि, वास्तव में, अभियोजन पक्ष का मामला विश्वास को प्रेरित नहीं करता है और वास्तव में, अभियोजन पक्ष केवल उन ज्ञात व्यक्तियों को फंसाने के लिए एक गद्दी हुई कहानी लेकर आया था जो उसके प्रति शत्रुतापूर्ण थे।

30. ऊपर उल्लिखित सभी कारणों से, हमारा विचार है कि दिनांक 11.03.1983 को वाराणसी के चतुर्थ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश द्वारा सत्र वाद संख्या 111 वर्ष 1978 (राज्य बनाम जगदीश सिंह एवं अन्य) तथा सत्र वाद संख्या 357 वर्ष 1979 (राज्य बनाम रामधनी तिवारी @ धनी एवं अन्य) में पारित निर्णय एवं आदेश विधि की दृष्टि में टिकाऊ नहीं हैं, अतः उक्त निर्णय एवं आदेश को निरस्त किया जाता है। तदनुसार, दोनों अपीलें स्वीकृत की जाती हैं। अपीलकर्ता पहले से ही जमानत पर हैं, अतः उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। उनके जमानत बंधपत्र रद्द किए जाते हैं तथा जामिनान को उन्मोचित किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 120

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 25.11.2024

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिजवी

आपराधिक अपील संख्या-659 वर्ष 1984

इकबाल सिंह और अन्य

... अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: पंडित मोहन चंद्र, ओम प्रकाश राय

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: डी.जी.ए.

आपराधिक कानून - आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा - 313 - भारतीय दंड संहिता, 186 - धारा - 147, 148, 149, 302 और 307- अपील - दोषसिद्धि और सजा के खिलाफ - प्राथमिकी - हत्या का अपराध - विवेचना - पीएमआर - साइट प्लांट - चार्ज-शीट - दलील दी गई कि उन्हें दुश्मनी के कारण झूठा फंसाया गया था - दोषसिद्धि और सजा - न्यायालय ने पाया कि - (i) अपील के लंबित रहने के दौरान 8 अभियुक्तों में से 6 की मृत्यु हो गई थी, इसलिए उनके खिलाफ अपील खत्म हो गई थी, (ii) अ०सा०-1 जो एक घायल गवाह था, मौके पर नहीं था, (iii) घायल और आरोपी व्यक्तियों के बीच दुश्मनी थी, (iv) अ०सा०-1 ने पहले सूचनाकर्ता को स्वयं घटना के बारे में सूचित नहीं किया था, (v) अ०सा०-1 एक ऐसा गवाह था जिस पर आरोपी को दोषी ठहराने के उद्देश्य से पूरी तरह से भरोसा नहीं किया जा सकता था, (vi) जीवित दोनों अपीलकर्ता लाठियां ले जा रहे थे, इस तरह से सशस्त्र नहीं थे जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि वे मृतक को मारने के लिए पहले से इरादे के साथ चला गया था - न्यायालय ने यह मानने के लिए इच्छुक था कि, आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि एक चश्मदीद गवाह की गवाही पर आधारित नहीं हो सकती थी जो विश्वसनीय नहीं था - इसलिए, अपील सफल होती है और अनुमति दी जाती है - दोषसिद्धि और सजा को रद्द कर दिया जाता है - तदनुसार निर्देश जारी किया जाता है। (प्रस्तर- 11, 13, 14, 15)

आपराधिक अपील की अनुमति है। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची:

1. मणिराम और अन्य बनाम यूपी राज्य (1994 पूरक (2) एस.सी.सी. 289),
2. सोलंकी चिमनभाई उकाभाई बनाम गुजरात राज्य। (ए.आई.आर. 1983 एस.सी. 484),
3. कृष्णोगवाड़ा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य। (ए.आई.आर. 2017 एस.सी. 1657)।

(माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा द्वारा दिया गया)

एवं

माननीय न्यायमूर्ति श्री सैयद कमर हसन रिजवी)

1. यह आपराधिक अपील विशेष न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा 3.1984 को सत्र परीक्षण संख्या 23/1982 में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध पेश की गई है।

2. 2 दिसंबर, 1981 को सुबह लगभग 10:00 बजे हुई एक घटना पर, उसी तारीख को दोपहर 1:30 बजे एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा गया था कि लगभग 6 से 7 साल पहले, एक आरोपी इकबाल सिंह के पिता तेजपाल सिंह की हत्या कर दी गई थी, जिसमें जगवीर सिंह और पहले सूचनाकर्ता को आरोपी बनाया गया था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि जिस तारीख से यह घटना हुई थी, उससे लगभग 3 से 4 साल पहले भी अमर सिंह आदि द्वारा एक विक्रम सिंह की हत्या कर दी गई थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि ये अभियुक्त व्यक्ति जमानत पर बाहर थे और घायलों और मृतक ने तेजपाल और विक्रम सिंह की हत्या के मुकदमें में आरोपियों के खिलाफ बयान दिए थे, इसलिए आरोपियों की उनसे दुश्मनी थी और इसलिए, घटना की तारीख को, जब प्रथम सूचनाकर्ता के भाई, राम सरन और प्रथम सूचनाकर्ता के भतीजे, जगवीर सिंह, शाहियाबाद से अपने गांव लौटते समय आरोपियों को एक सुनसान जगह पर मिले, तो आरोपियों ने राम सरन और जगवीर सिंह पर जान से मारने के इरादे से हमला कर दिया। प्रथम सूचना रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि अमर सिंह, इकबाल सिंह के हाथ में तबाल थे जबकि ओमकार सिंह, रुकाम सिंह के हाथों में कुदाल/फवाड़ा था। मदन, संसार और प्रकाश सिंह के पुत्र खजान, ईश्वर पुत्र हरिकेश, कृष्णपाल पुत्र कर्ण सिंह के हाथों में लाठियां थीं। वे सभी इकबाल के ट्यूबवेल पर मिले थे और अमर सिंह के कहने पर उन्होंने दोनों यानी मृतक और घायलों का पीछा किया था। प्राथमिकी में कहा गया है कि अमर सिंह ने अन्य लोगों को मृतकों और घायलों को दूर करने के लिए कहा था। यह कहा गया है कि मृतकों और घायलों को यह महसूस होने पर कि उन पर हमला किया जा रहा है, उन्होंने अपनी जान बचाने की कोशिश की और उत्तरी दिशा में कृषि खेतों की ओर भाग गए। आगे कहा गया है कि इसके बाद अमर सिंह ने जगवीर सिंह के सिर पर वार किया था, जबकि अन्य लोगों ने अपने हाथों में कुदाल और तबल लेकर राम सरन पर हमला करना शुरू कर दिया था। फिर भी उन्होंने कहा था कि जब उन्होंने हो-हल्ला मचा दिया तो गवाह नवाब सिंह, पीतम सिंह, बिजेंद्र सिंह, गणेशी, कमलवीर और हरफूल सिंह आदि मृतकों और घायलों को बचाने के लिए मौके पर पहुंच गए। यह भी कहा गया है कि कुदाल और तबल से लगी चोट के कारण राम सरन की मौके पर ही मौत हो गई थी जबकि जगवीर सिंह गंभीर रूप से घायल हो गए थे। इसके बाद यह कहा गया है कि नवाब सिंह शिव चरण के खेत में भाग गया था, जो भैंसों द्वारा खींची जाने वाली बगगी की व्यवस्था करने के बाद, मौके पर पहुंचा और घायलों को थाना ले गया और उसके बाद उसके कहने पर ओमपाल सिंह ने प्राथमिकी लिख दी थी।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर विवेचना शुरू हुई। पुलिस ने मृतक राम सरन के सामान को हिरासत में ले लिया था और उसका एक मेमो तैयार किया था जिसे प्रदर्श-क-11 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। मृतक की खून से सनी बेडशीट और टोपी को भी पुलिस की हिरासत में रखा गया था और एक फ़र्द बरामगदी तैयार किया गया था जिसे प्रदर्श क-9 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। घटना के समय मौके से खून से सनी मिट्टी और सामान्य मिट्टी भी ली गई थी और इसका मेमो तैयार किया गया था और प्रदर्श-क-10 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। घायल की जांच डॉ. एस.के. दास द्वारा की गई और चोट की रिपोर्ट को प्रदर्श क-1 के रूप में प्रदर्शित किया गया।

4. राम सरन की मृत्यु होने पर, डॉ. केके करोली ने शव परीक्षण किया और इसकी रिपोर्ट को प्रदर्श क-2 के रूप में प्रदर्शित किया गया। शव परीक्षण करने और शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार करने से पहले पंचायतनामा भी तैयार किया गया था जिसे प्रदर्श क-4 के रूप में प्रदर्शित किया गया था।

5. विवेचना पूरी होने पर, पुलिस ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसका विद्वान प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा संज्ञान में लिया गया था, आठ आरोपियों, अर्थात् इकबाल सिंह, ओंकार सिंह, रकम सिंह, मदन सिंह, संसार सिंह, प्रकाश सिंह, ईश्वर सिंह और कृष्ण पाल पर भ०द०वि० की धारा 147 सपठित धारा 148 और भ०द०वि० की धारा 149 सपठित धारा 302 के तहत भी आरोप लगाया गया था। जगवीर सिंह घायल होने के बाद से 8 आरोपियों के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 307 के साथ धारा 149 के तहत भी आरोप तय किए गए थे। इसके बाद मुकदमा शुरू हुआ और अभियोजन पक्ष के आठ गवाहों से पूछताछ की गई और उनसे जिरह की गई। आरोपियों ने द०प्र०स० की धारा 313 के तहत अपने बयान दर्ज कराए थे। इसके बाद, जब गाजियाबाद के विशेष न्यायाधीश ने आठ अभियुक्तों को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों का दोषी ठहराया, तो प्रस्तुत आपराधिक अपील दायर की गई।

6. अपील के लंबित रहने के दौरान, 8 अभियुक्तों में से 6 की मृत्यु हो गई थी और आपराधिक अपील, इसलिए, अपीलकर्ता संख्या-1 इकबाल सिंह, अपीलकर्ता संख्या-2 ओंकार सिंह उर्फ रिक्कू, अपीलकर्ता संख्या-3 रकम सिंह, अपीलकर्ता संख्या-4 मदन सिंह, अपीलकर्ता संख्या-6 प्रकाश और अपीलकर्ता संख्या-7 ईश्वर ने प्रतिवाद जताई थी।

7. अपीलकर्ता संख्या-5 संसार सिंह और अपीलकर्ता संख्या-8 कृष्ण पाल का प्रतिनिधित्व किसी भी अधिवक्ता ने नहीं किया था और इसलिए, न्यायालय ने उनकी ओर से श्री सौरव सचान को न्याय मित्र के रूप में नियुक्त किया था।

8. न्याय मित्र ने अनिवार्य रूप से तर्क दिया है कि यदि अ०सा०-1, अ०सा०-4, अ०सा०-5, अ०सा०-6 और अ०सा०-7 के बयानों का अवलोकन किया जाता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने लगातार कहा है कि जब मृतक और घायल इकबाल के ट्यूबवेल तक पहुंचे थे तो 9 अभियुक्त व्यक्तियों ने उनका पीछा किया और वे, अपनी जान बचाने के लिए, उत्तर की ओर पड़े कृषि खेतों में प्रवेश किया, जहां उन पर तबल, कुदाल और लाठियों द्वारा हमला किया गया था और उसके बाद, मृतक राम सरन की चोटों के कारण मृत्यु हो गई थी। हालांकि, जगवीर बच गए थे।

9. न्याय मित्र ने अपने तर्कों को प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत किया है कि वास्तव में, अ०सा०-1 जो एक घायल गवाह था, मौके पर नहीं था और उसने केवल अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाया था।

10. निम्नलिखित तर्क दिये गये:-

I. न्याय मित्र ने प्रस्तुत किया है कि यदि मृतक राम सरन की शव परीक्षण रिपोर्ट देखी जाती है तो यह स्पष्ट होगा कि चिकित्सा साक्ष्य मौखिक साक्ष्य के बिल्कुल विपरीत थे जो मामले की सुनवाई के दौरान दर्ज किए गए थे। एमिकस क्यूरी (न्याय मित्र) ने कहा है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में और उसके बाद अ०सा०-1 के बयान में, घायल गवाह और अ०सा०-4, अ०सा०-5, अ०सा०-6 और अ०सा०-7 के बयानों में, जो चश्मदीद गवाह थे, यह मामला सामने लाया गया था कि मृतक राम सरन पर एक तबल ने हमला किया था। हालांकि, उन्होंने कहा कि शव परीक्षण रिपोर्ट में कहा गया है कि मृतक की गर्दन पर चोट थी, जिसे शव परीक्षण में 'कुचला हुआ जख्म' बताया गया था। उन्होंने कहा कि "कुचला हुआ जख्म" का मतलब कुचली हुई चोट होगी। यह संभव नहीं होगा यदि मृतक पर धारदार हथियार से हमला किया जाए। उनका कहना है कि भले ही कुदाल/तबल के नुकीले हिस्से का उपयोग नहीं किया गया हो और वास्तव में सादे हिस्से का उपयोग किया गया हो, तब भी कुचली हुई चोट संभव नहीं थी। इसलिए, उन्होंने कहा कि चिकित्सा साक्ष्य जिसमें कहा गया था कि चोट कुचल प्रकार की थी, चश्मदीद गवाह की गवाही से मेल नहीं खाती थी, जो एक घायल गवाह था, जिसने कहा था कि, वास्तव में, मृतक पर कुदाल/तबल (नुकीले धारदार हथियार) से हमला किया गया था।

II. न्याय मित्र का कहना है कि घायल गवाह निश्चित रूप से इस हद तक घायल नहीं हुआ था कि वह बोल नहीं सकता था। उन्होंने न्यायालय का ध्यान पेपर बुक के पृष्ठ 20 की ओर आकर्षित किया था, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि नवाब ने शिव चरण को पूरी घटना बताई थी। नवाब को कैसे पता चला कि घटना स्थल पर पहुंचने के दौरान पहले क्या हुआ था। अ०सा०-1 के अनुसार, घायल गवाह नवाब के लिए घटना का विवरण होना संभव नहीं था क्योंकि वह घायल गवाह द्वारा शोर-शराबे के बाद ही घटना स्थल पर पहुंचा था। इसलिए, वह कहता है कि वास्तव में अ०सा०-1 घटना के समय मौके पर नहीं था। यह संभावना थी कि मृतक की मृत्यु एक दुर्घटना में हुई थी और घायलों को कहीं और चोटें आई थीं और केवल इसलिए कि घायलों और अभियुक्त व्यक्तियों के बीच दुश्मनी थी, सामूहिक रूप से, उन्हें मामले में फंसाया गया था।

III. अपीलकर्ताओं के लिए न्याय मित्र आगे कहते हैं कि अ०सा०-1 की गवाही आगे अविश्वसनीय हो जाती है क्योंकि यदि गवाही को नक्शा नज़री के साथ पढ़ा जाता है तो यह स्पष्ट हो जाता है कि अ०सा०-1 सभी प्रकार के झूठ कह रहा था। उन्होंने कहा था कि वहां से कुछ नाहर गुजर रहा था, लेकिन साइट प्लान में कोई नाहर नहीं था। उन्होंने आगे कहा कि घटनास्थल पर इकट्ठे हुए चश्मदीद गवाह आसपास के क्षेत्र में रह रहे थे, लेकिन साइट प्लान की ओर इशारा करते हुए अधिवक्ता ने तर्क दिया था कि घटना स्थल के आसपास की सारी जमीन वीरेंद्र की थी और वीरेंद्र तस्वीर में कहीं नहीं था। उन्होंने कहा कि भले ही उन्हें प्रथम सूचना रिपोर्ट में चश्मदीद गवाह के रूप में नामित किया गया था, लेकिन उन्हें न्यायालय में पेश नहीं किया गया था।

IV. अपीलकर्ताओं के लिए न्याय मित्र आगे कहता है कि यदि अ०सा०-1 की चोटों और डॉ. एस.के. दास, अ०सा०-2 के बयान का अवलोकन किया जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि चोटें ऐसी थीं कि अ०सा०-1 पहले सूचनाकर्ता शिव चरण सिंह को घटना के बारे में नहीं बता सकता था।

V. इसके अलावा, अपीलकर्ताओं के न्याय मित्र ने तर्क दिया है कि अ०सा०-1 की गवाही से यह स्पष्ट था कि शिव चरण सिंह एक ट्रैक्टर का मालिक था, लेकिन घायलों को थाना ले जाया गया और उसके बाद एक गाड़ी द्वारा अस्पताल ले जाया गया, जिसे एक भैंस ने खींचा था।

VI. जीवित अपीलकर्ता यानी संसार सिंह और कृष्णपाल सिंह कथित तौर पर केवल लाठीचार्ज कर रहे थे। प्रथम सूचना रिपोर्ट में या घायल गवाहों और चश्मदीदों की विभिन्न गवाहों में कहीं भी यह आरोप नहीं लगाया गया है कि सभी आरोपी व्यक्तियों ने पूर्व नियोजित तरीके से मृतक को खत्म करने का निर्णय लिया था/संकल्प लिया था। उनकी गवाही के अवलोकन से, अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह केवल स्पष्ट हो जाता है कि पल भर में अमर सिंह ने अन्य लोगों को मृतक को खत्म करने के लिए प्रोत्साहित किया था। उन्होंने कहा कि अगर आरोपी इकबाल सिंह और अमर सिंह तबल ले जा सकते हैं तो गांव में अन्य आरोपियों के लिए भी तबल ले जाना मुश्किल नहीं था। अगर उनका वास्तव में मृतक को मारने का कोई इरादा होता तो वे अपने हाथों में केवल लाठियां लेकर घटना स्थल पर नहीं जाते। इसलिए, वह प्रस्तुत करता है कि अपीलकर्ता संख्या-5 और 8 जो लाठी ले जा रहे थे, उनकी उस घटना में कोई भूमिका नहीं थी जो हुई थी। उन्होंने कहा कि मृतक के शरीर पर लाठी-डंडों के निशान भी नहीं थे।

11. इसलिए, न्याय मित्र का कहना है कि चश्मदीद गवाह का विवरण बिल्कुल अविश्वसनीय था और इसलिए, मामला संदिग्ध हो जाता है और इसलिए आरोपी व्यक्तियों की दोषसिद्धि एक चश्मदीद गवाह की गवाही पर आधारित नहीं हो सकती है जो विश्वसनीय नहीं था। उन्होंने मणिराम एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1994 सप(2) एससीसी 289 में रिपोर्ट किया गया), सोलंकी चिमनभाई उकाभाई बनाम गुजरात प्रदेश राज्य (एआईआर 1983 एससी 484 में रिपोर्ट किया गया) और कृष्णगोड़ा एवं अन्य बनाम कर्नाटक प्रदेश राज्य (एआईआर 2017 एससी 1657 में रिपोर्ट किया गया) में सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों पर भरोसा किया।

12. हालांकि, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री चंद्र भूषण धर दुबे ने जोरदार तर्क दिया है कि एक घायल गवाह के चश्मदीद गवाह के बयान को हल्के में नहीं लिया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा है कि अंसा०-4, अंसा०-5, अंसा०-6 और अंसा०-7 के चश्मदीद गवाह के बयान ने अंसा०-1 के चश्मदीद गवाह के बयान की पुष्टि की थी, जो एक घायल चश्मदीद गवाह था और इसलिए, अंसा०-1, अंसा०-4, अंसा०-5, अंसा०-6 और अंसा०-7 की गवाही को हल्के ढंग से नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

13. न्याय मित्र श्री सौरभ सचान और श्री चंद्र भूषण धर दुबे, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुनने के बाद, हमारा विचार है कि घायल गवाह अंसा०-1 की गवाही इस तथ्य के कारण काफी संदिग्ध हो जाती है कि वह उस स्थान का सही विवरण नहीं दे पाया था जहां घटना हुई थी। यदि अंसा०-1 की गवाही देखी जाती है, तो वह निश्चित रूप से घटना के स्थान को मानचित्र से जोड़ने में सक्षम नहीं था जैसा कि नक्शा नज़री में दिया गया था जिसे पेपर बुक में प्रदर्श - क-8 के रूप में प्रदर्शित किया गया था। हमारा यह भी विचार है कि अंसा०-1 जो एक घायल गवाह था, ने स्वयं घटना के बारे में पहले सूचनाकर्ता शिव चरण सिंह को सूचित नहीं किया था। हम अंसा०-2 के बयान और अंसा०-2 के बयान को देखने के बाद पाते हैं कि चोटें इतनी गंभीर थीं कि वह जोर से बात नहीं कर सकते थे और पहले सूचनाकर्ता शिव चरण सिंह को घटना के बारे में नहीं बता सकते थे। इस मामले में, हम पाते हैं कि, वास्तव में, एक अन्य कथित चश्मदीद गवाह नवाब सिंह ने कहा था कि उन्होंने शिव चरण सिंह को पूरी घटना के बारे में बताया था और शिव चरण सिंह के आदेश पर, ओम पाल

सिंह ने प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी थी और इस प्रकार, हमारा विचार है कि अ०सा०-1 एक ऐसा गवाह था जिस पर आरोपी व्यक्तियों को दोषी ठहराने के उद्देश्य से पूरी तरह से भरोसा नहीं किया जा सकता था। हम आगे पाते हैं कि अपीलकर्ता संख्या-5 और 8 जो लाठी ले जा रहे थे, इस तरह से सशस्त्र नहीं थे जिससे यह स्पष्ट हो जाए कि वे मृतक को खत्म करने के लिए पूर्व-नियोजित दिमाग से गए थे।

14. इस प्रकार उन सभी कारणों के लिए जो हमने बताए हैं, आपराधिक अपील की **अनुमति दी** जाती है। विशेष न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित दिनांक 1.3.1984 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाता है। चूंकि अपीलकर्ता संख्या-1 इकबाल सिंह, अपीलकर्ता संख्या-2 आँकार सिंह उर्फ रिक्कू, अपीलकर्ता संख्या-3 रकम सिंह, अपीलकर्ता संख्या-4 मदन सिंह, अपीलकर्ता संख्या-6 प्रकाश और अपीलकर्ता संख्या-7 ईश्वर के खिलाफ अपील पहले ही समाप्त हो चुकी है, इसलिए हम अपने निर्णय और आदेश को अपीलकर्ता संख्या-5 संसार सिंह और अपीलकर्ता संख्या-8 कृष्ण पाल तक सीमित रखते हैं, जिन्हें उन सभी आरोपों से बरी किया जा रहा है जिनके तहत उन पर मुकदमा चलाया गया था।

15. अपीलकर्ता संख्या-5 संसार सिंह और अपीलकर्ता संख्या-8 कृष्ण पाल को उनके खिलाफ लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया जाता है। अपीलकर्ता पहले से ही जमानत पर हैं और उन्हें आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। जमानत और जमानत बांड से छुट्टी दे दी जाती है।

16. न्याय मित्र श्री सौरभ सचान द्वारा की गई कड़ी मेहनत के लिए, हम उनकी फीस को 25,000/- रुपये के रूप में निर्धारित करते हैं, जो उन्हें कानूनी सेवा प्राधिकरण द्वारा तुरंत देय होगा। भुगतान इस न्यायालय के महानिबंधक की देखरेख में किया जाए।

(2025) 1 ILRA 125

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्र

आपराधिक अपील संख्या-2696 वर्ष 1981

और

आपराधिक अपील संख्या - 660 वर्ष 1984

देवेंद्र कुमार @ झुन्ना और अन्य

... .. अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... .. प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: एसएस तिवारी, अजय कुमार पांडे, केके श्रीवास्तव, रोशन खान, सतीश त्रिवेदी

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: डीजीए, मयंक भूषण

क. आपराधिक कानून - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 - धारा 2 (के), 2 (आई), 7-ए, 20 और 49 - किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियम, 2007 - नियम 12 और 98-लागू वर्ष 2000 अधिनियम पूर्वव्यापी प्रभाव से - सभी व्यक्ति जो 1-4-2001 से पहले भी अपराध करने की तारीख को अठारह वर्ष से कम आयु के थे, उन्हें किशोर माना जाएगा। यदि किशोर होने की दलील का दावा करने वाला अभियुक्त अपराध करने की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का था, तो वह किशोर के रूप में माने जाने का हकदार है और उसे 2000 के अधिनियम के अनुसार लाभ दिया जाएगा, इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त किशोर न्याय अधिनियम के तहत अपराध की तारीख को किशोर होने के लाभ का हकदार नहीं था। 1986 में इस अपराध को लागू करने के बाद अधिनियम पारित किया गया था। इस मामले में कानून के टकराव में किशोर को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के तहत निपटाया जाता है, इस तथ्य के बावजूद कि घटना वर्ष 1976 में हुई थी और मामले के विचारण के दौरान किशोर न्याय अधिनियम, 1986 अधिनियमित किया गया था और शुरू किया गया था।

(प्रस्तर-83, 84)

ख. आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 147, 148, 149 और 302 - सामान्य वस्तु - गैरकानूनी सभा - प्राकृतिक गवाह - प्रत्यक्षदर्शी की विश्वसनीयता - मामूली विसंगतियां - प्रस्तुत मामले में दिन में लगभग 12:00 बजे, मृतक, जो सूचनाकर्ता का भाई था, अपनी दुकान से भोजन लेने के लिए अपने घर जा रहा था। सूचनाकर्ता के गांव के रहने वाले भाले (बरछाई), तब्बल, लाठियों से लैस आरोपियों ने मृतक को रास्ता दिखाया और अपने हथियारों से उस पर हमला कर दिया। मृतक ने शोर मचाया, सूचनाकर्ता और मृतक की पत्नी मौके पर पहुंचे। आरोपियों ने सूचनाकर्ता और मृतक की पत्नी को भी पीटा। इस बीच, आरोपियों को चुनौती दी जिसके बाद वे पूर्व की ओर भाग गए। मृतक की मौके पर ही मौत हो गई। मकसद यह था कि मृतक हत्या के मामले में गवाह था और उसने एक आरोपी के खिलाफ गवाही दी थी।

अवधारित: यह उचित संदेह से परे साबित हो गया था कि जीवित अभियुक्त ने घटना की तारीख और समय पर सह-अभियुक्त के साथ मिलकर गैरकानूनी सभा का गठन किया था और सभा की आम प्रतिवाद के अभियोजन में उन्होंने मृतक को मारने के इरादे से अपने संबंधित हथियारों से मिलकर बेरहमी से हमला किया और उसके व्यक्ति को घातक चोटें पहुंचाईं। जो मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त था और घटना में लगी चोटों के कारण उसकी तुरंत मृत्यु हो गई। केवल इस तथ्य के कारण कि मृतक के व्यक्ति पर कोई छिद्रित पंचर नहीं पाया गया था, उन अभियुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे बरछाई से लैस थे। इसके अलावा केवल इस तथ्य के कारण कि सूचनाकर्ता जिसके साथ

अभियुक्त व्यक्तियों की गहरी दुश्मनी थी, उसे साधारण चोटें देकर घटना में बखशा गया था और खतरनाक हथियारों से हमला नहीं किया गया था, उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसने अपने साक्ष्य में कहा था कि उसे और उसकी भाभी को गवाहों द्वारा बचाया गया था। अ०सा०-5 जगदीश नारायण ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि घटना घर के सामने हुई थी और उसने घटना देखी थी। प्राथमिकी में ही यह तथ्य कहा गया है कि जगदीश नारायण का घर घटनास्थल के सामने है और इस कारण से मौके पर उनकी उपस्थिति स्वाभाविक है क्योंकि उन्हें घटनास्थल का गवाह माना जाता है और केवल कुछ आरोपियों के साथ पूर्व दुश्मनी के कारण उनके साक्ष्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता है। चिकित्सा साक्ष्य से, घटना का तरीका, और मृतक और घायल गवाहों के व्यक्ति पर पाई गई चोटें साबित होती हैं, और तथ्य/प्रत्यक्षदर्शियों के गवाहों की शपथ गवाही चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि पाती है। अपील खारिज (प्रस्तर-77, 78, 79, 81, 90)

खारिज कर दिया। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा दिया गया)

1. अपराध अपील संख्या 2696 सन् 1981 दिनांक 19.11.1981 को माननीय सप्तम अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश (गैर-महानगरीय क्षेत्र), कानपुर नगर द्वारा सत्र वाद संख्या 75 सन् 1977 एवं सत्र वाद संख्या 304 सन् 1977 में पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, तथा अपराध अपील संख्या 660 सन् 1984 सत्र वाद संख्या 75 सन् 1977 में दिनांक 18.01.1984 को पारित निर्णय एवं आदेश से उद्भूत है। दोनों सत्र वादों में समस्त नौ अपीलार्थियों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 147, 148, 302/149, 325/149 तथा 323/149 के अंतर्गत दोषसिद्ध किया गया है, जो थाना-डैरापुर, जनपद कानपुर से संबंधित है।

2. एस.टी. नं-75 वर्ष 1977 में अपीलकर्ता देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, जिया लाल उर्फ दादू, अवधेश और श्रीमती राम पियारी और एस.टी. नं.304/1977 में आरोपी राम प्रताप, भुनेश्वर, भानु प्रताप उर्फ ललुना, शिव दास और कृष्ण कुमार उर्फ चुट्टन को धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें धारा 325/149 द०प्र०स० के तहत भी दोषी पाया गया, जिसके लिए उन्हें एक साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई थी। उन्हें धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत छह महीने के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी। आरोपी देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, शिव दास, कृष्ण कुमार चुट्टन को धारा 147 भ०द०वि० के तहत एक साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई और आरोपी राम प्रताप, अवधेश, भुनेश, दादू और ललौना को धारा 148 भ०द०वि० के तहत एक साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई।

3. आरोपी श्रीमती राम पियारी को धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए आजीवन कारावास, धारा 325/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए एक वर्ष का साधारण कारावास, धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए छह महीने का कारावास और धारा 147 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए एक साल का साधारण कारावास की सजा सुनाई गई थी। सभी सजाओं को एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया था।

4. आपराधिक अपील संख्या-660 वर्ष 1984 एस.टी. संख्या - 75ए वर्ष 1977 में विद्वान चतुर्थ अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कानपुर देहात द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.01.1984 के खिलाफ उद्भूत हुई, जिसके तहत अपीलकर्ता राजमुन को धारा 148, 302/149, 325/149 और 323/149 भ०द०वि० के तहत आरोप का दोषी ठहराया गया था। आरोपी राजमुन को धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत आरोप में आजीवन कारावास, धारा 148 भ०द०वि० के तहत एक साल के सश्रम कारावास, भ०द०वि० की धारा 325/149 के तहत आरोप के लिए एक साल का सश्रम कारावास और धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए छह महीने के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई है।

5. दोनों आपराधिक अपीलें एक ही अपराध के लिए अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि से उत्पन्न हुई हैं, जो केस अपराध संख्या-118 वर्ष 1976, धारा 147, 148, 302/149, 323/149 और 325/149 भ०द०वि०, थाना-डेरापुर, कानपुर के तहत, से उद्भूत है। चूंकि दोनों आपराधिक अपीलें एक ही घटना और अपराध से उत्पन्न हुई हैं और सभी अपीलकर्ताओं को मुकदमे के दौरान सह-आरोपी के रूप में फंसाया गया है, इसलिए दोनों अपीलों को एक साथ जोड़ दिया गया है और एक संयुक्त निर्णय द्वारा तय किया जा रहा है। अपीलकर्ताओं को उनकी संबंधित आपराधिक अपीलों में इस अदालत के निर्देश पर इन आपराधिक अपीलों के आदेश से जमानत पर रिहा किया गया था।

6. अपीलकर्ताओं की ओर से श्री अजय कुमार पांडे, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता श्री राहुल अस्थाना, अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

7. अभियोजन पक्ष के मामले से सामने आए मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 29.06.1976 को दिन में लगभग 12:00 बजे, जब मृतक शिव नारायण, जो सूचनाकर्ता लालाराम का भाई था, अपनी दुकान से भोजन लेने के लिए उसके घर जा रहा था, तो आरोपी व्यक्ति अर्थात् अवधेश, राम प्रताप, भुनेश्वर भाले (बरछाई), दादू, ललौना, राजमुन (तब्बल), शिव दास, झुन्ना, चुट्टन और श्रीमती राम पियारी के हाथों में लाठियां ले जा रहे थे, सभी सूचनाकर्ता के गांव के रहने वाले लोगों ने मृतक को रास्ता बना दिया और अपने-अपने हथियारों से उस पर हमला करना शुरू कर दिया। मृतक ने शोर मचाया, सूचनाकर्ता और मृतक की पत्नी श्रीमती विमला मृतक को बचाने के लिए मौके पर पहुंचे। आरोपियों ने सूचनाकर्ता और मृतक की पत्नी श्रीमती विमला को भी पीटा। इस बीच, गवाह जगदीश नारायण, राम चंदर, नन्हे, अशर्फी लाल, महादेव ने आरोपियों को चुनौती दी, जिसके बाद वे पूर्व की ओर भाग गए। मृतक की मौके पर ही मौत हो गई। सूचनाकर्ता लाला राम और श्रीमती विमला को भी चोटें आई थीं। प्राथमिकी में सूचनाकर्ता द्वारा बताए गए अपराध का मकसद यह है कि वह गांव के राम गोपाल की हत्या के मामले में गवाह था, जिसने पहले हत्या के मामले में आरोपी राम प्रताप और अन्य के खिलाफ गवाही दी थी। राम प्रताप और अन्य को सत्र अदालत ने दोषी ठहराया था और उन्हें 20 साल कैद की सजा सुनाई थी। अपील में उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा दोषियों को जमानत पर रिहा कर दिया गया था, इस कारण से आरोपी व्यक्ति सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ द्वेष रख रहे थे।

8. लिखित रिपोर्ट प्रदर्श क-3 लाला राम अ०सा०-2 द्वारा थाना-डैरापुर में दर्ज की गई थी, जो गांव चिलौली से छह मील दूर है, जहां दोपहर 2:15 बजे हत्या की गई थी। इसके आधार पर चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-22 को हेड मोहर्रिर राम राज सिंह, अ०सा०-9 द्वारा तैयार किया गया था। उन्होंने 29.06.1976 की दोपहर 02:15 बजे रिपोर्ट संख्या-18 में रोज़नामचा में भी प्रविष्टि की, जिसकी प्रति प्रदर्श क-23 है। लाला राम के शरीर पर पाए गए चोटों को भी रोज़नामचा में नोट किया गया था। मामले की विवेचना उप निरीक्षक श्री राम सिंह, अ०सा०-8 को सौंपी गई थी। वह तुरंत घटनास्थल के लिए रवाना हो गया। उन्होंने मृतक के शव पर जांच रिपोर्ट प्रदर्श क-5 तैयार की। शिवनारायण के शव पर पाए गए खून से सनी धोती प्रदर्श 2, प्रदर्श 3, बनियान प्रदर्श क-4 को कस्टडी में लिया और एक सीलबंद लिफाफे में रखा और फर्द प्रदर्श क-11 तैयार किया गया। उन्होंने फर्द प्रदर्श क-12 के तहत शव के पास मिले खून से सनी लाठी-5 और बरछी प्रदर्श-6 के ब्लेड को भी कब्जे में लिया। लाठी को तीन टुकड़ों में काटा गया और दोनों वस्तुओं को सीलबंद लिफाफे के नीचे रखा गया। इसके बाद विवेचनाधिकारी ने आरोपी राम प्रताप, भुनेश आदि के घरों की तलाशी ली लेकिन आरोपी नहीं मिले। खोज प्रदर्श क-13 से क-17 के फर्द तैयार किए गए थे। इसके बाद, विवेचनाधिकारी ने मृत शरीर का एक आरेख प्रदर्श क-18, शव परीक्षण परीक्षा प्रदर्श क-19 और क-20 के लिए रिपोर्ट और चालान लैश प्रदर्श क-21 तैयार किया। शव को कपड़े की चादर में सील कर दिया गया था और शव परीक्षण के लिए मुख्यालय ले जाने के लिए कांस्टेबल श्री सुबहान अली और रामपाल को सौंप दिया गया था। उप निरीक्षक श्री माता प्रसाद अ०सा०-7, जो शव भेजे जाने के बाद वहां पहुंचे थे और उन्होंने विवेचना अपने हाथ में ली। उन्होंने उप निरीक्षक श्री राम सिंह की उपस्थिति में घटनास्थल से खून से सनी मिट्टी प्रदर्श 7 और सादा मिट्टी प्रदर्श 8 भी एकत्र किया था और इस संबंध में फर्द प्रदर्श क-8 तैयार किया गया था। उप निरीक्षक श्रीराम सिंह सीलबंद बंडल लेकर थाने लौट आए। उप निरीक्षक श्री माता प्रसाद ने गवाहों के बयान दर्ज किए और नक्शा नज़री प्रदर्श क-7 तैयार किया। उन्होंने घायल श्रीमती विमला देवी और लाला राम को मेडिकल जांच के लिए प्रदर्श क-1/1 और क-2/1 के साथ भेजा।

9. हेड मोहर्रिर श्री राम राज सिंह अ०सा०-9 ने 29.6.1976 को 10:15 बजे रिपोर्ट संख्या-34 पर रोज़नामचा में प्रविष्टि की थी, जब उपनिरीक्षक श्री राम सिंह पाँच सीलबंद गठरियों के साथ थाना वापस लौटे। सामान्य डायरी की प्रति प्रदर्श क-24 है। ये गठरियाँ 22.07.1976 को रोज़नामचा में रिपोर्ट संख्या 11 के अनुसार (जिसकी प्रति प्रदर्श क-25 है) आरक्षी श्री कोमल सिंह के माध्यम से मुख्य चिकित्साधिकारी के कार्यालय को रासायनिक परीक्षक, आगरा को अग्रेषित करने हेतु प्रेषित की गई। श्री कोमल सिंह द्वारा दाखिल शपथपत्र प्रदर्श क-28 के अनुसार, उन्होंने दिनांक 22.07.1976 को इन गठरियों को यथावत सील सहित वापस लाया। मुख्य चिकित्सा अधिकारी, कानपुर के कार्यालय के लिपिक श्री विक्रम सिंह ने इस आशय का हलफनामा प्रदर्श क-27 दायर किया है कि उन्हें ये पांच बंडल प्राप्त हुए थे और उसी दिन उन्हें केमिकल परिक्षक आगरा को भेज दिया था। केमिकल परिक्षक आगरा, प्रदर्श क-29 की रिपोर्ट के अनुसार, खून से सनी मिट्टी, कमीज, धोती, बनियाँ, बरछी के ब्लेड और लाठी के टुकड़े खून से सने पाए गए। रक्त विश्लेषक (सीरोलॉजिस्ट) की रिपोर्ट प्रदर्श क-30 के अनुसार, रक्तरंजित मिट्टी तथा बनियान पर मानव रक्त समूह "O" पाया गया, जबकि बर्छी एवं लाठी पर पाया गया रक्त विघटित स्थिति में था।

10. घायल श्रीमती विमला देवी की जांच डॉ. सुरेन्द्र सिंह (अ०सा०-1) ने 29.6.1976 रात 8 बजे की जब उन्होंने निम्नलिखित चोटें पाई और चोट की रिपोर्ट प्रदर्श क-1 तैयार की।

1. संलयन 8 सेमी x 2 सेमी पीठ पर, दाएं स्कैपुला क्षेत्र के नीचे दिशा में तिरछा।
2. दाहिनी कोहनी के जोड़ के ठीक नीचे दाहिने हाथ पर 7 सेमी x 2 सेमी संलयन।
3. दाहिने हाथ पर 6 सेमी x 2 सेमी पार्श्व पहलू पर दाहिने कलाई के जोड़ से लगभग 4 सेमी ऊपर।
4. 9 सेमी x 5 सेमी के क्षेत्र में तीन चोट, दाहिने अग्र भुजा पर औसत दर्जे के पहलू पर कलाई के जोड़ से लगभग 8 सेमी ऊपर।

5. दाहिनी जांघ पर दाहिने घुटने के जोड़ से लगभग 8 सेमी ऊपर 6 सेमी x 2 सेमी संलयन।

चोटें संख्या-1, 2, 3 और 5 साधारण पाई गईं और चोट संख्या-4 को निगरानी में रखा गया था, जिसके लिए एक्स-रे की सलाह दी गई थी। डॉक्टर की राय में चोटें लगभग आधे दिन पुरानी थीं और लाठी जैसे कुंद हथियार के कारण हो सकती थीं।

11. डॉ. आर. प्रकाश अ०सा०-3, रेडियोलॉजिस्ट ने 29.6.76 को श्रीमती विमला देवी के दाहिने अग्रभाग का एक्स रे लिया था और उन्होंने पाया कि निचला दाहिना हाथ की 1/3 त्रिज्या खंडित है, जिसके लिए उन्होंने अपनी रिपोर्ट जारी की थी।

12. डॉ. सुरेंद्र सिंह अ०सा०-1 ने भी रात 8.30 बजे लाला राम की जांच की थी और चोट रिपोर्ट प्रदर्श क-2 जारी की थी, उस पर निम्नलिखित चोटें पाई गईं:

1. संकुचन 6 सेमी x 2 सेमी दाएं स्कैपुलर क्षेत्र के नीचे पीठ के दाईं ओर तिरछा दिशा में तिरछा है।
2. संलयन 8 सेमी X 1 1/2 सेमी दाहिने ऊपरी हाथ पर पार्श्व पहलू पर कंधे के जोड़ से लगभग 7 सेमी नीचे।
3. दाहिनी जांघ पर 6 सेमी X 1 1/2 सेमी पार्श्व पहलू पर घुटने के जोड़ से लगभग 10 सेमी ऊपर।

13. ये चोटें भी उनकी राय के अनुसार लगभग आधे दिन पुरानी थीं और 29.6.76 को दोपहर 12.00 बजे हुई होंगी। चोटें सरल थीं और कुंद वस्तु के कारण होती थीं।

14. मृतक के शव को कांस्टेबल श्री सुबहान अली और कांस्टेबल राम पाल सिंह के माध्यम से 29.6.1976 को विधिवत सील करके मुर्दाघर भेजा गया था, जिसके लिए कांस्टेबल श्री सुबहान अली ने अपना हलफनामा प्रदर्श क-26 दाखिल किया है। उन्होंने शव परीक्षण के समय चिकित्सा अधिकारी के समक्ष शव की पहचान भी की थी।

15. डॉ. बी.के. जैन अ०सा०-6 ने 30.6.1976 को शाम 4.30 बजे मृतक शिवनारायण के शव का शव परीक्षण किया था। उन्होंने पाया कि मृतक की उम्र करीब 40 साल थी। मौत करीब एक दिन पहले हुई थी। रिगोर-मोर्टिस खत्म हो चुका था और अपघटन अभी-अभी शुरू हुआ था। उन्होंने शव पर निम्नलिखित मृत्यु पूर्व परीक्षण चोटें पाई;

- (i) कटा हुआ घाव 6.5 सेमी x 4 सेमी x 4 सेमी, मस्तिष्क गुहा सिर के सामने और मध्य पर 6 सेमी नाक के पुल से 6 सेमी ऊपर, ललाट की हड्डी नीट के नीचे कटी हुई। घाव से मस्तिष्क पदार्थ निकलना।
- (ii) कटा हुआ घाव 3 सेमी x 1.5 सेमी x सिर के दाहिनी ओर के सामने के नीचे कटी हुई हड्डी दाहिनी भौं से 4 सेमी ऊपर।
- (iii) कटा हुआ घाव 2 सेमी x 1 सेमी x दाईं ओर की मांसपेशी गहरी है जो ठीक बाहरी से दाहिनी आंख की भौंह पर है।
- (iv) दाहिने कान से 11 सेमी ऊपर दाहिनी ओर के सिर के नीचे 3 सेमी x 1.5 सेमी x कटी हुई हड्डी।
- (v) दाहिने कान से 4 सेमी ऊपर दाहिनी ओर के सिर के नीचे 4 सेमी कटी हुई हड्डी का घाव 4 सेमी x कटा हुआ घाव।
- (vi) कटा हुआ घाव 4 सेमी x 2 सेमी x दाहिनी ओर के सिर के नीचे कटी हुई हड्डी 3 सेमी चोट के पीछे (v)
- (vii) कटा हुआ घाव 10 सेमी x 6.5 सेमी x पश्चकपाल हड्डी सिर के पीछे तिरछी 3 1/2 सेमी दाहिने कान के पीछे कटी हुई।
- (viii) बाएं कंधे के पीछे और बाएं हाथ की बाहरी ओर 13 सेमी x 6 सेमी का संलयन।
- (ix) बायीं कोहनी के पीछे 6 सेमी x 4.5 सेमी का संलयन।
- (x) बीच में बाएं पैर के सामने की ओर 2 सेमी x 1 सेमी x मांसपेशी गहरी कटा हुआ घाव।
- (xi) दाहिनी कोहनी के पीछे 9 सेमी x 6 सेमी का संयोजन।
- (xii) संलयन 19 सेमी x 4 सेमी बाईं ओर पीछे तिरछा
- (xiii) दाएं स्कैपुलर क्षेत्र पर और पीछे के तिरछे के मध्य में 21 सेमी x 5 सेमी संलयन।
- (xiv) बाएं नितंब पर 12 सेमी x 6 सेमी संलयन।

16. आंतरिक जांच में, चिकित्सा अधिकारी ने पाया था कि ललाट, अस्थायी और दाएं पार्श्विका और पश्चकपाल हड्डियों को चोट संख्या-1 से 7 के तहत काटा गया था। दिमाग कट गया था और बाहर निकला था। पेट खाली था। छोटी आंतों में थोड़ा पचा हुआ भोजन है और बड़ी आंतों में मल पदार्थ है। डॉक्टर की राय में, मृत्यु का कारण मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप सदमा और रक्तस्राव था। डॉ. जैन ने शव परीक्षण रिपोर्ट प्रदर्श क-6 तैयार कर उसे साबित किया।

17. विवेचना पूरी करने के बाद, सब इंसपेक्टर श्री माता प्रसाद अंसा-7 ने 28.8.1976 को आरोपी जिया लाल उर्फ दादू, राजमुन, अवधेश, देवेन्द्र और श्रीमती राम पियारी के खिलाफ आरोप पत्र प्रदर्श क-9 प्रस्तुत किया। वे अपने दिनांक 26.03.1977 के आदेश के तहत मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कानपुर देहात द्वारा सत्र न्यायालय में अपने विचारण को प्रतिबद्ध थे। पुलिस धारा 81 दं०प्र०सं० के तहत उद्घोषणा जारी करने के बावजूद अन्य आरोपियों को गिरफ्तार नहीं कर सकी और कुर्की के वारंट जारी करने के साथ-साथ 5.9.1976 को राम प्रताप, भुनेश, ललौना उर्फ भानु प्रकाश और शिव दास की चल संपत्तियों की कुर्की के बाद और परिणामस्वरूप, आरोपी राम प्रताप के खिलाफ, और भुनेश, भानु प्रकाश उर्फ ललौना, कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन, भगोड़े के रूप में, आरोप

पत्र प्रदर्श क-10 प्रस्तुत किया गया। वे मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 28.10.1977 के अपने आदेश के तहत सत्र न्यायालय में विचारण के लिए प्रतिबद्ध थे।

18. दोनों सत्र मामलों को समेकित किया गया और सत्र विचारण संख्या-75/1977 को प्रमुख मामला बनाया गया। राजमुन को छोड़कर अन्य सभी अभियुक्तों पर भारतीय दण्ड संहिता की धारा 147, 148, 302/149, 325/149 तथा 323/149 के अंतर्गत अभियोग लगाया गया, जिसके प्रति उन्होंने दोष स्वीकार नहीं किया। विचारण के दौरान अभियुक्त राजमुन जमानत पर रहते हुए अनुपस्थित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप उसका मुकदमा आदेश दिनांक 22.07.1980 के अनुसार सत्र वाद संख्या 75 सन् 1977 से पृथक कर दिया गया और उसका पृथक वाद सत्र वाद संख्या 75-A सन् 1977 के रूप में पंजीकृत किया गया। शेष अभियुक्तों का विचारण भारतीय दण्ड संहिता की धारा 147, 325/149, 302/149, 323/149 तथा 148 के अधीन अभियोगों के लिए किया गया।

19. अपने मामले के समर्थन में, अभियोजन पक्ष ने कुल नौ गवाहों से पूछताछ की है। इनमें से, डॉ. सुरेंद्र सिंह अंसा०-1, डॉ. आर. प्रकाश, रेडियोलॉजिस्ट, अंसा०-3 और डॉ.बी.के. जैन अंसा०-6 चिकित्सा अधिकारी हैं और अभियोजन पक्ष के मामले को बताते हुए उनके साक्ष्य पहले ही उपर संदर्भित किए जा चुके हैं। उप-निरीक्षक श्री माता प्रसाद अंसा०-7 और उप-निरीक्षक श्री राम सिंह अंसा०-8 विवेचनाधिकारी हैं और अंसा०-9 प्रमुख मोहरिर श्री राम राज सिंह एक औपचारिक गवाह हैं, जिन्होंने चिक प्रार्थमिकी तैयार किया था और रोजनामचा अंसा०-2 में प्रविष्टियां की थीं: मृतक के भाई, अंसा०-4 श्रीमती विमला देवी मृतक की पत्नी और अंसा०-5 जगदीश प्रसाद चश्मदीद गवाह हैं। आरोपियों ने अपने बचाव में पांच गवाहों से भी पूछताछ की, जिसमें आरोपी राम प्रताप भी शामिल था, जिनसे उनके अनुरोध पर पूछताछ की गई है।

20. अब हम अभियोजन पक्ष द्वारा जांच किए गए चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य का उल्लेख कर सकते हैं।

21. अभियोजन पक्ष के मामले का समर्थन करते हुए, मृतक के भाई शिव नारायण के भाई श्री लाला राम अंसा०-2 ने गवाही दी है कि उनके गांव के राम गोपाल की हत्या कर दी गई थी और आरोपी राम प्रताप, भुनेश, अवधेश, दादू, राजमुन और अन्य पर उस हत्या के लिए मुकदमा चलाया गया था, जिसके लिए उन्होंने सबूत दिए थे और इन आरोपियों को दोषी ठहराया गया था और सत्र न्यायालय द्वारा 20 साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी। अपने भाई की हत्या के समय, इन अभियुक्तों को उनकी अपील के लंबित रहने के दौरान माननीय उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर रिहा कर दिया गया था। उन्होंने उसके और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ दुश्मनी बरतनी।

22. गवाह ने आगे गवाही दी कि लगभग एक साल आठ महीने पहले, लगभग 12 बजे, उसका भाई शिव नारायण अपनी दुकान से लौट रहा था। वह भी उसका पीछा कर रहा था। जब उसका भाई रास्ते में जगदीश नारायण के घर के सामने पहुंचा तो आरोपी राम प्रताप, भुनेश, अवधेश बरछी (भाला) लेकर और आरोपी दादू,

राजमुन ललौना तबबल लिए हुए और आरोपी शिव दास, झुन्ना, छुट्टन और श्रीमती राम पियारी लाठियां लेकर वहां आए। वह ध्यान नहीं दे सका कि वे किस तरफ से आए थे। आरोपी ने अपने भाई पर बरछी, तबबल और लाठी-डंडों से हमला करना शुरू कर दिया। उसके भाई ने शोर मचाया। गवाह उसे बचाने के लिए दौड़ते आए। उनके भाई श्रीमती विमला देवी की पत्नी भी वहां आई। जगदीश नारायण, नन्हे, अशर्फी लाल, महादेव, राम चंदर भी आए थे। आरोपियों ने गवाह और श्रीमती विमला देवी पर लाठीचार्ज से हमला किया। गवाह के हस्तक्षेप पर आरोपी पूर्व की ओर भाग गया। हादसे में उसके भाई की मौके पर ही मौत हो गई। श्रीमती विमला को भी चोटें आई थीं। गवाह ने आगे गवाही दी कि उसने रिपोर्ट प्रदर्श क-3 तैयार की थी और वह थाना-डेरापुर गया था, जहां इसे दर्ज किया गया था। उन्होंने शर्ट धोती और बनियन प्रदर्श की पहचान की। घटना के समय मृतक द्वारा पहने गए कपड़ों के रूप में प्रदर्श-1 से 3 तक की पहचान की। उन्होंने आगे बयान दिया कि घटना के समय, खून जमीन पर गिर गया था जहां उनका भाई गंभीर रूप से घायल होने के बाद गिर गया था। उन्होंने आगे बयान दिया कि शव के पास बरछी की एक लाठी और ब्लेड पाए गए, जो खून से सने हुए थे। गवाह ने यह भी कहा कि आरोपी ललौना आरोपी राम प्रताप का सगा भाई था और शू दास आरोपी राम प्रताप का चचेरा भाई था। झुन्ना और छुट्टन का संबंध भी रामप्रताप से था। अन्य सभी आरोपी राम प्रताप की पक्ष से ताल्लुक रखते हैं और उनके समर्थक थे। श्रीमती राम पियारी आरोपी दादू की मां थीं।

23. अपनी जिरह में, गवाह ने कहा है कि जगदीश नारायण, जो इस मामले में अभियोजन पक्ष का गवाह था, आरोपी राम प्रताप आदि के खिलाफ पहले की हत्या के मुकदमे का सूचनाकर्ता था और उक्त हत्या के मुकदमे का मृतक राम गोपाल जगदीश नारायण का भाई था। आरोपी राम प्रताप गांव का प्रधान था, लेकिन उसे नहीं पता था कि वह लाडपुर पैड के एक स्कूल में प्रिंसिपल है या नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि उनके भाई की हत्या से पहले भी आरोपियों ने उन्हें घेरने की कोशिश की थी। उन्होंने कानपुर के पुलिस अधीक्षक को सूचना भेजने का भी दावा किया, लेकिन मामले को आगे नहीं बढ़ाया गया। उन्होंने स्वीकार किया कि श्री कालिका ने उनके, उनके भाई भ०द०वि० 307 रज्जन और गवाह जगदीश नारायण के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई थी, जिन्होंने दावा किया था कि यह एक झूठी शिकायत थी और उन्हें खारिज कर दिया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि हिर्दय नारायण के खिलाफ भ०द०वि० की धारा 324 के तहत एक मामले में वह गवाह के रूप में पेश हुए थे और आरोपी को सजा सुनाई गई थी।

24. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि उनकी दुकान सड़क के किनारे घटनास्थल से लगभग एक फर्लांग दूर थी। गांव की ओर आने पर कुछ हिस्सों में दोनों तरफ कृषि क्षेत्र पड़े हुए थे, खलियान हैं। हालांकि, दुकान आबादी में थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि दुकान से उनके घर तक जाने वाले रास्ते में कोई झाड़ियाँ थीं। गवाहों ने आगे बयान दिया कि उसका भाई जगदीश नारायण के भाई रामगोपाल की हत्या में चश्मदीद गवाह नहीं था, बल्कि उसका भाई मामले में पैरवी करता था। उन्होंने आगे कहा कि उनका भाई सबूत देने और सच बताने के लिए उन पर दबाव डालता था। उन्होंने स्वीकार किया कि प्राथमिकी में उनके द्वारा इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया गया था, लेकिन उन्होंने दावा किया कि उन्होंने इसके बारे में विवेचनाधिकारी को बताया था। हालांकि, द०प्र०स० की धारा 161 के तहत उनके बयान में इसके बारे में कोई उल्लेख नहीं मिला। गवाह पुलिस

अधीक्षक को आरोपियों द्वारा घेराव करने के प्रयासों के संबंध में आवेदन करने की तारीख या महीना नहीं दे सका और न ही उन घटनाओं के गवाहों के नाम बता सका। उन्होंने स्वीकार किया कि प्राथमिकी में उनके द्वारा इसके बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया था। उन्हें याद नहीं था कि उन्होंने इसके बारे में विवेचनाधिकारी को बताया था या नहीं, लेकिन उन्होंने उन्हें आवेदन की प्रति नहीं दी। उन्होंने यह भी गवाही दी कि उनका और उनके भाई का गांव चिलौली में केवल एक ही घर था और वे संयुक्त रूप से रहते हैं। घटना के समय जमीन उनके पिता के नाम पर थी। हालांकि उनके पिता की मृत्यु 3-4 साल पहले हो गई थी, लेकिन समेकन के दौरान ही उनके भाई की हत्या के बाद उनके चक अलग हो गए थे। उसने यह भी स्वीकार किया कि उसने रूरा में एक अलग घर बनाया था और मृतक ने बब्बू शुक्ला से अपने नाम पर जमीन खरीदी थी, लेकिन उसने इस बात से इनकार किया कि वह और उसका भाई इस मामले की घटना से पहले से ही अलग रह रहे थे। उसने स्वीकार किया कि उसके पास रूरा में भी राशन कार्ड था, जबकि उसके भाई के पास गांव चिलौली में राशन कार्ड था। उनके पास पान और सिगरेट आदि की एक छोटी सी दुकान थी। उसने स्वीकार किया कि उस पर और उसके भाई पर श्यो दत्त बाजापी द्वारा मुकदमा चलाया गया था। यह एक झूठा मामला था और उन्हें बरी कर दिया गया था। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने रिपोर्ट लिखने से पहले बरछाई की लाठी और ब्लेड पर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन जब वह रिपोर्ट लिखने के बाद अपने घर से बाहर आए तो उन्होंने इसे देखा। उन्होंने रिपोर्ट दाखिल करने से पहले इसे इसमें जोड़ना जरूरी नहीं समझा। उन्होंने दावा किया कि उनकी पीठ और कमर पर चोटें आई हैं। हालांकि अस्पताल थाना- से केवल 40 मीटर की दूरी पर था, फिर भी रिपोर्ट दर्ज होने के तुरंत बाद उन्हें मेडिकल जांच के लिए नहीं भेजा गया था। वह विवेचनाधिकारी के साथ आए और शाम को उनकी चिकित्सकीय जांच की गई।

25. अ०सा०-1 ने आगे कहा कि घटना के समय, जगदीश बाबा घटनास्थल से 12-14 कदम की दूरी पर थे। उसने और नन्हे ने भी एक ही दूरी पर थे, ने आरोपी को मृतक को पीटने से परहेज करने के लिए कहा था। आरोपियों ने जगदीश पर हमला करने की कोशिश नहीं की थी। मार्पीट केवल आधे मिनट के लिए हुआ। तब्बल लगभग 4 अंगुल चौड़ा था और कुल्हाड़ी (कुल्हारी) के आकार का था। सभी तब्बल एक ही आकार के थे। सभी आरोपियों ने चारों तरफ से हमला किया था। वह बलम 4-5 अंगुलियों के आकार का था। श्रीमती विमला देवी इस घटना के बाद रो पड़ी थीं, लेकिन उन्होंने अपने पति का सिर अपनी गोद में नहीं लिया था, न ही उन्होंने शव को गले लगाया था। श्रीमती विमला देवी या गवाह के कपड़े मृतक के खून से सने नहीं थे। गवाही देने के कारण दुश्मनी के अलावा, आरोपी ने अन्य कारणों से भी उनके खिलाफ दुश्मनी बरती। राम प्रताप ने भ०द०वि० की धारा 379 के तहत मामला भी दर्ज कराया था, जिसमें उन्हें बरी कर दिया गया था। चुल्लौली में उनके तीन घर थे। एक घर बेच दिया गया था। उनके पास आरोपी दादू के घर से सटा हुआ एक घर है, और तीसरे घर में उसकी दुकान थी। रामगोपाल की हत्या के समय उसके माता-पिता फाटकवाला के घर में रहते थे और उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं होने के कारण वह उनके साथ उस घर में रहता था। लेकिन आमतौर पर वह आरोपी दादू के घर से सटे घर में रहता था। आरोपी दादू की ओर से अपनी जिरह में गवाह ने स्वीकार किया है कि दादू के घर में केवल दो सदस्य थे, अर्थात् आरोपी दादू और उसकी मां श्रीमती राम पियारी। दादू की उनसे कोई दुश्मनी नहीं थी, सिवाय इसके कि उन्होंने रामगोपाल की हत्या के मामले में उनके खिलाफ गवाही दी। उन्होंने इस बात

से इनकार किया कि दादू और उनके भाई को सजा दिलाने के उद्देश्य से फंसाया गया था और हो सकता है कि गवाह ने उनके घरों पर कब्जा कर लिया हो।

26. अ०सा०-4 विमला देवी, जो मृतक श्यो नारायण की पत्नी है। उसने अपने साक्ष्य में कहा कि यह घटना चार साल और चार महीने पहले हुई थी, लगभग दोपहर में, वह अपने घर में मौजूद थी और वह अपने बच्चे को लगभग ढाई साल की नींद दिलाने की कोशिश कर रही थी। जब उसने अपने पति शिव नारायण की चीखें सुनीं, जो रो रहा था कि उसे मारा जा रहा है, तो वह घर से बाहर निकल गई। उसने आरोपियों के चिल्लाने की आवाज भी सुनी। गवाह और अन्य जब दादू के घर के दरवाजे पर पहुंचे तो साक्ष्य के समय अदालत में मौजूद आरोपी श्रीमती राम पियारी और झुन्ना ने उन्हें पीटना शुरू कर दिया। उसने देखा कि आरोपी दादू उर्फ जिया लाल, ललौना, शिव दास, भुनेश, अवधेश, राम प्रताप, छुट्टन, झुन्ना और श्रीमती राम पियारी राजमोन के साथ उसके पति पर हमला कर रहे थे। ललौना, दादू और राजमोन के पास तबल थे, जबकि भुनेश, अवधेश और राम प्रताप के पास बरछाईं थे। उसने यह भी बयान दिया कि उसके बहनोई लाला राम पश्चिमी ओर से आए थे। आरोपी शिव दास और छुट्टन ने लाला राम पर हमला किया था। जगदीश नारायण के दरवाजे के सामने उनके पति पर हमला किया गया और जगदीश नारायण और नन्हें जगदीश के घर के सामने मौजूद थे। 4-5 अन्य आरोपी भी आए थे जो उसके गांव के नहीं थे। जब आरोपी पूर्व की ओर भागे तो उन सभी ने शोर मचा दिया था। उसका पति मौके पर ही गिर गया था और उसकी मौके पर ही मौत हो गई थी। उसके हाथ में, उसके ऊपरी पैर पर, उसकी पीठ पर और कुछ अन्य स्थानों पर चोटें आई थीं, जो श्रीमती राम पियारी और झुन्ना के कारण लगी थीं। उसके बहनोई लाला राम डेरापुर थाने में रिपोर्ट दर्ज कराने गए थे। थाना- से उसके साथ थी, उसके देवर ने रिपोर्ट लिखी थी और उसे थाना- ले गया था। सब इंस्पेक्टर ने शव की जांच की और शव को मौके से बाहर पहुंचाया। इसके बाद एक अन्य सब इंस्पेक्टर वहां पहुंचा जिसने गवाह और उसके देवर के बयान दर्ज किए। अस्पताल में उसकी मेडिको लीगल जांच की गई और उसके दाहिने हाथ पर एक अस्थायी मुद्रा खींची गई, रात के 09:00 बजे थे, इसलिए उसे एक पुलिस कर्मी के साथ उसके घर वापस भेज दिया गया। पुलिस उसे अगले दिन सुबह रूसला अस्पताल ले गई; लेकिन बिजली कट जाने के कारण उसके हाथ का एक्स रे नहीं हो सका। इसके बाद वह उस स्थान पर गई जहां शव परीक्षण किया जा रहा था। उसे उसके देवर (जेठ) ने एक व्यक्ति के साथ शास्त्री नगर में उसके मायके भेज दिया था। उसके बाद किसी तारीख को उसके हाथ का एक्स रे किया गया। आरोपी ने अपने पति के साथ दुश्मनी बरती थी क्योंकि वह अपने बड़े भाई रामगोपाल की हत्या का गवाह था।

27. गवाह ने अपनी जिरह में कहा कि उसकी जानकारी में अभियुक्त की कोई अन्य शत्रुता नहीं थी, सिवाय इसके कि उसके पति के भाई ने राम गोपाल की हत्या के मामले में आरोपी राम प्रताप आदि के खिलाफ साक्ष्य दिया था। उसने यह भी कहा कि उसका पति अपनी खेती की देखभाल करता था और उसने सड़क के किनारे एक दुकान स्थापित की थी। उनके पति और लाला राम एक ही घर में संयुक्त रूप से रहते हैं और संयुक्त रूप से जमीन पर खेती करते हैं। सड़क के किनारे की दुकान भी दोनों भाइयों की थी। उसके सास-ससुर फाटकवाला

हाउस में रह रहे थे, लेकिन घटनास्थल के पास स्थित उनके घर में ही खाना पकाया गया था। कभी-कभी उसका पति भी दुकान पर सो जाता था।

28. अ०सा०-4 ने आगे कहा कि जगदीश के घर के सामने उसे और लाला राम को नहीं पीटा गया था। उसे याद नहीं आ रहा था कि उसने जगदीश नारायण के घर के सामने उनकी पिटाई के बारे में विवेचनाधिकारी को बताया था या नहीं, हालांकि विवेचनाधिकारी के सामने उसका बयान यह है कि गवाह लाला राम और वह खुद जगदीश नारायण के घर के सामने पीटा गया था। जब लाला राम मृतक को बचाने के लिए आए, तो पश्चिम की ओर से चार-पांच लोग आए और लाला राम चार-पांच कदम पीछे चले गए। वह फिर से आगे बढ़ा, इसके बाद आरोपी भाग गया। जब लाला राम पीछे मुड़े तो उनका मुख पश्चिम की ओर था और वे बाने और छोटे के घर तक चले गए थे जो एक दूसरे से सटे हुए थे।

29. अ०सा०-4 ने आगे कहा कि बरछी नुकीली नहीं थी, बल्कि सपाट (चप्ती) थी और 4-5 अंगुल लंबी और चौड़ाई में एक या दो अंगुल थी। तबबल 4-5 फाइंडर चौड़ा और 2-3 फाइंडर गहरा था। घटनास्थल पर पहुंचने के बाद आधे मिनट तक मारपीट हुआ। उसने अपने पति के मृत शरीर को गले नहीं लगाया था, बल्कि उसके पास बैठकर रो रही थी। उसके कपड़े उसके खून से सने नहीं थे।

30. उसने आगे कहा कि उसका पति सुबह 07:30 बजे लाला राम के साथ प्रकृति की पुकार का जवाब देने के बाद दुकान पर गया था। दुकान मिट्टी से भरी जा रही थी। उसने खुद ही कहा था कि उसका पति बिना कुछ खाए दुकान पर चला गया था। उसने अपनी 10 और 8 साल की बेटियों को दुकान पर यह बताने के लिए भेजा था कि सुबह 11:30 बजे खाना तैयार हो गया है। लाला राम की पत्नी उन दिनों अपने मायके चली गई थीं। दुकान के किनारे से आ रहे लाला राम को शिवदास और छुटन ने पीटा था। उसे याद नहीं था कि उसने विवेचनाधिकारी को यह बताया था या नहीं, लेकिन द०प्र०स० की धारा 161 के तहत उसके बयान में यह नहीं दिखाई देता है कि लाला राम को शिव दास और छुटन ने पीटा था।

31. गवाह ने बचाव पक्ष के सुझाव से इनकार किया कि उसके पति पर उस समय हमला किया गया था जब वह प्रकृति की पुकार का जवाब देने जा रहा था या अंधेरे में खुद को आराम करने के बाद लौट रहा था। उसने बचाव पक्ष के इस सुझाव से भी इनकार किया कि उसने अपने देवर द्वारा पढ़ाए जाने पर झूठी गवाही दी। उसने स्पष्ट किया कि वह खुद इस घटना को देखती है। वह 5 बच्चों की धन्य है और वह झूठ नहीं बोल सकती, उसके बच्चे उसके सामने हैं। श्रीमती राम पियारी उस समय स्वस्थ थीं, लेकिन अब वह बूढ़ी हो गई हैं। उसने इस सुझाव से भी इनकार किया कि उसने अपनी चोटों को गलत तरीके से बनवाया। घटना के दिनों में तेज धूप थी। गवाह और उसके देवर और पति के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण थे। लाठी और पोला अपने पति के शव के पास लेटे हुए थे जो उत्तर की ओर पड़ा था। वह पुलिया की एक जगह पर लेटा हुआ था, उसके पैर पूर्व की ओर थे और सिर पश्चिम की ओर था।

32. अंतिम चश्मदीद गवाह अ०सा०-5 जगदीश नारायण ने गवाही दी थी कि वह अपने घर के सामने बैठा था। नन्हे तिवारी उनके साथ बैठे थे। उन्होंने गवाही दी कि लगभग दोपहर में, मृतक पश्चिम से आ रहा था और अपने घर की ओर बढ़ रहा था और गवाह के घर के सामने पहुंच गया था, जब आरोपी व्यक्ति राजमुन के साथ आरोपी दादू के घर से बाहर आए और मृतक पर अपनी बांहों से हमला किया। गवाह ने आरोपी व्यक्तियों को वही हथियार जिम्मेदार ठहराए जो अन्य चश्मदीद गवाहों के बयानों में दिखाए गए हैं। अ०सा०-2 लाला राम और अ०सा०-4 -विमला देवी।

33. गवाह के अनुसार जब मृतक ने शोर मचाया तो उसकी पत्नी श्रीमती विमला देवी घर से बाहर निकली जब वह आरोपी दादू के घर के पास पहुंची तो श्रीमती राम पियारी ने उस पर हमला कर दिया। मृतक के पीछे लाला राम आ रहे थे। उसने आरोपी को चुनौती दी, जिसके बाद छोटे के दरवाजे के पास शिवदास और छुट्टन ने उस पर हमला कर दिया। महादेव, अशर्फी, रामचंद्र भी पश्चिम की ओर से आए थे। इन लोगों के साथ-साथ गवाह नन्हे ने भी आरोपी व्यक्तियों को हत्या से बचने के लिए कहा। शिवनारायण उर्फ रज्जन ने उसे छोड़ने की गुहार लगाई, जिसके बाद आरोपी लोग पूर्व की ओर भाग गए। हादसे में शिवनारायण की मौके पर ही मौत हो गई थी। उन्होंने यह भी कहा था कि नन्हे, महादेव, अशर्फी और राम चंद्र ने आरोपियों के साथ सांठगांठ की है और उनका इरादा है कि आरोपियों को बरी कर दिया जाए। सूचनाकर्ता लाला राम पुलिस के साथ लगभग 03:30 बजे वापस आया, गवाह ने जांच रिपोर्ट पर अपने हस्ताक्षर को स्वीकार किया, जिसे प्रदर्श क-5 के रूप में चिह्नित किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि सब इंस्पेक्टर ने पूछताछ के बाद घटनास्थल का दौरा किया, जिसने उनके बयान दर्ज किए। जिरह में गवाह ने कहा है कि वह अपने भाई रामगोपाल की हत्या में चश्मदीद गवाह और सूचनाकर्ता था। राज नारायण उस मामले में चश्मदीद गवाह नहीं है और मौजूदा मामले में गवाह नन्हे राज नारायण के सगे भाई हैं। राम स्वरूप राम गोपाल की हत्या के मामले में गवाह था, उसने अपने भाई रामगोपाल की हत्या के मामले में चश्मदीद गवाह का बयान दिया था। वह इस मामले में सूचनाकर्ता था कि राम प्रताप, भुनेश, अवधेश, जिया लाल उर्फ दादू, राजमोन, रामेश्वर और जगन्नाथ (सभी सात लोगों में) के खिलाफ उसके भाई की हत्या का मुकदमा चलाया गया था। पांच को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और दो को दो साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। उन्होंने स्वीकार किया कि उनके और उनके भाई रामगोपाल पर चुन्नू को चोट पहुंचाने के लिए मुकदमा चलाया गया था, जिसमें राम प्रताप के पिता प्रेम नारायण ने सबूत दिए थे और उन्हें छह महीने के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी। गवाहों ने स्वीकार किया कि यह मुकदमा 20 साल पहले दादू के पिता मुन्नी लाल और गवाह के चचेरे भाई हर प्रसाद के बीच स्थित घर को लेकर हुआ था, जिसमें हर प्रसाद हार गया था। गवाह ने इस बात से इनकार किया कि वह दादू के घर को हड़पना चाहता था और कहा कि उसके परिवार में गवाह के अलावा कोई नहीं था।

34. उन्होंने आगे कहा कि वह अपने घर की डेहरी में बैठे थे और नन्हे घटना से लगभग एक घंटे पहले से चबूतरे पर 4-5 कदम की दूरी पर बैठे थे। रास्ते में कई लोग गुजर रहे थे। उन्होंने दावा किया कि हत्या से 1 और 1/2 या 2 घंटे पहले, आरोपी अलग-अलग तरीके से दादू के घर में गए थे और अपने हथियार ले गए थे। उन्होंने आरोपियों से पूछा था कि वे हथियार लेकर क्यों जा रहे हैं। उसे कुछ भी गलत होने का संदेह नहीं था।

उन्होंने आगे कहा कि हालांकि वह आरोपी से डर गए थे, लेकिन उन्होंने किसी अन्य ग्रामीण या नन्हे को आरोपी के जमावड़े के बारे में नहीं बताया था। उसने शिवनारायण को 10-15 कदम की दूरी पर आते देखा था लेकिन उसने उसे फोन करके चेतावनी नहीं दी। वह अपनी डेहरी में ही यही सोचता रहा कि अगर उसे कोई खतरा है तो वह घर के अंदर चला जाएगा। जब आरोपी ने शिवनारायण पर हमला करना शुरू कर दिया, तो उसने केवल आरोपी को ऐसा करने से बचने के लिए कहा और अपनी जान बचाने का कोई अन्य प्रयास नहीं किया। श्रीमती विमला देवी को दादू के दरवाजे के सामने पति से 7-8 कदम की दूरी पर पीटा गया। बरछी का ब्लेड करीब 4 अंगुल लंबा और 3 अंगुल चौड़ा था। तबबल पांच अंगुलियों का था, कुल्हाड़ी की तरह गोलाकार था।

35. उन्होंने आगे गवाही दी कि मृतक एक महाजन था जबकि गवाह एक ब्राह्मण है। मृतक के पास कुछ जमीन थी और वह खुद इसकी खेती करता था। मृतक के पास रात में फसल की निगरानी के लिए आम का पेड़ नहीं था। उनके खेत गांव के दो या तीन किनारों पर स्थित थे, कुछ 6 से 8 फर्लांग दूर।

36. गवाह ने यह भी कहा कि लाला राम के भाई चुन्नी की बचपन में ही मृत्यु हो गई थी और एक सावित्री ने चकबंदी अधिकारियों के समक्ष प्रतिवाद दर्ज कराई थी, जिसे खारिज कर दिया गया था, उन्होंने कहा कि रामगोपाल की हत्या के बाद से ही आरोपी राम प्रताप परेशानी पैदा कर रहा था। उन्होंने स्वीकार किया कि वह लाला राम द्वारा निष्पादित फाटक वाला हाउस के संबंध में बिक्री बिलेख के गवाह थे, और उन्होंने द०प्र०स० की धारा 145 के तहत कार्यवाही में सबूत दिए थे, जिसमें आरोपी राम प्रताप को विपरीत पक्षों के रूप में पेश किया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने चुनाव में आरोपी राम प्रताप का विरोध किया था।

37. अ०सा०-6 डॉ. बी.के. जैन ने कहा है कि चोटें संख्या-2, 4, 5, 6 और 7 एक भारी धारदार काटने वाले हथियार के कारण हो सकती हैं जिसमें एक तबबल शामिल है और चोट संख्या-3 और 10 एक तेज धार वाले हथियार के कारण हो सकती हैं जिसकी तेज धार लगभग 2 सेमी थी। ऐसे उपकरणों में बल्लम और बरछी शामिल हैं। उनकी राय में, चोट संख्या-8, 9 और 14 लाठी जैसे कुंद हथियार के कारण हो सकती हैं। इन चोटों से तत्काल मृत्यु संभव थी और चोटें 29.06.1976 को दोपहर लगभग 12:00 बजे हो सकती थीं।

38. डॉ. बी.के. जैन अ०सा०-6 ने अपनी जिरह में कहा है कि उनके द्वारा दी गई मृत्यु का समय, कठोरता-मोर्टिस और डी-कंपोजिशन के आधार पर। उन्होंने कहा कि कठोरता-मोर्टिस के गुजरने के बाद 18 से 36 घंटे के बीच ऊपरी अंगों में कठोरता-मोर्टिस बीत जाती है। उन्होंने इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए समय का अनुमान लगाया है कि यह जून का महीना था और कानपुर की जलवायु को ध्यान में रखते हुए। उन्होंने रिपोर्ट में यह नहीं बताया था कि शरीर के किस हिस्से में अपघटन शुरू हुआ था। उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें कोई पंचर या मर्मज घाव नहीं मिला था और बरछी और बल्लम भेदी के हथियार थे। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मौत 36 घंटे पहले हुई होगी। चोटें संख्या-1, 2, 4, 5, 6 और 7 का कारण बना था। उन्होंने मोदी की इस टिप्पणी से सहमति जताई कि घाव का आकार और आकार आम तौर पर चोटों को ठीक करने में

इस्तेमाल किए जाने वाले हथियार से मेल खाता है। उन्होंने यह भी कहा कि चोटें संख्या-11, 12, 13 और 14 और 8 शरीर के पिछले हिस्से में थीं और खुरदरी और कठोर सतह पर गिरने के कारण हो सकती हैं।

39. सब-इंस्पेक्टर श्री माता प्रसाद अ०सा०-7 ने कहा है कि उन्होंने नक्शा नज़री या केस डायरी में उस स्थान को नहीं दिखाया है जहां से गवाहों ने घटना देखी थी। उन्होंने उन स्थानों को भी अलग से नहीं दिखाया था जहां लाला राम और श्रीमती विमला देवी पर हमला किया गया था। उन्होंने स्वीकार किया कि आरोपी राम प्रताप के चाचा श्री राजेश्वर प्रसाद दीक्षित द्वारा दिनांक 02.07.1976 को दायर एक आवेदन उन्हें जांच के लिए भेजा गया था और राम आधार और शीतल प्रसाद द्वारा हलफनामा भी दायर किया गया था। जांच के दौरान उसे पता चला कि आरोपी शिव दास चीनी का डीलर था और उसके द्वारा आपूर्ति निरीक्षक का बयान भी दर्ज किया गया था। गवाह ने अपनी जिरह के दौरान अदालत द्वारा अपनी परीक्षा में यह भी साबित किया कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा द०प्र०स० की धारा 82 के तहत आरोपी राम प्रताप, भुनेश और ललौना के खिलाफ 09.07.1976 को जारी की गई उद्घोषणा में प्रदर्श सी-1/1 से सी-1/3 तक अंकित है। उन्होंने यह भी गवाही दी कि उन्होंने 05.09.1981 को फर्द प्रदर्श सी-2 के तहत इन अभियुक्तों की संपत्ति की कुर्की की थी। आरोपी राम प्रताप, भुनेश, ललौना शिव दास और प्रदर्श 3 से 7 के खिलाफ वारंट जारी किए गए और उसके द्वारा की गई रिपोर्ट भी उसके द्वारा साबित हो चुकी है। उन्होंने आरोपी शिव दास की संपत्ति की कुर्की के फर्द को भी साबित कर दिया है, जिसे प्रदर्श सी-10 चिह्नित किया गया है और उनकी अनुपालन रिपोर्ट सी-9/1 और सी-9/2 को भी गवाह द्वारा साबित किया गया है। आरोपी छुट्टन की संपत्ति भी फर्द सी-11 के तहत 05.09.1976 को कुर्क की गई थी। आरोपी के अधिवक्ता द्वारा अपनी जिरह में, उन्होंने कहा कि उन्होंने कुर्क की गई संपत्ति की बिक्री की कोई रिपोर्ट नहीं बनाई थी। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि आरोपियों के घरों की तलाशी नहीं ली गई या आरोपी राम प्रताप फरार नहीं हैं।

40. अपनी आगे की जिरह में, गवाह ने कहा है कि लाला राम ने उसे यह नहीं बताया था कि मृतक शिव नारायण राम गोपाल की हत्या के मामले में पैरवी करता था, या वह लाला राम से सबूत देने के लिए कहता था। लाला राम ने उसे यह भी नहीं बताया था कि उसने इस हत्या से पहले पुलिस अधीक्षक को कोई आवेदन दिया था। लाला राम ने अपने बयान में यह भी नहीं कहा था कि आरोपियों ने लाठी-लाठी, बरछी का ब्लेड मौके पर ही छोड़ दिया था। उसने उसे यह भी नहीं बताया था कि मृतक आगे चल रहा था, जबकि वह उसका पीछा कर रहा था। श्रीमती विमला देवी ने उन्हें बताया था कि जगदीश नारायण के घर के सामने उन पर और लाला राम पर भी हमला किया गया था। उसने उसे नहीं बताया था कि श्रीमती रमा पियारी और छुन्ना ने उसे पीटा था, न ही उसने उसे बताया था कि लाला राम को चुट्टन और शिव दास ने पीटा था। श्रीमती विमला देवी ने भी उनके सामने यह नहीं कहा था कि आरोपी ने कहा था कि मृतक को मौत की सजा दी जानी चाहिए अन्यथा वह भी रामगोपाल की तरह बयान देगा।

41. अभियोजन पक्ष ने अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, कानपुर द्वारा पारित निर्णय की प्रमाणित प्रति भी दायर की है। श्री एम. वहाजुद्दीन ने 21.12.1972 को आरोपी राम प्रताप, भुनेश, जिया लाल, अवधेश और राजमुन सहित

तीन अन्य लोगों को भारतीय दंड संहिता की धारा 302/149 के तहत दोषी ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई, इसके अलावा राम गोपाल की हत्या के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 147/148 के तहत सजा सुनाई।

42. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के निष्कर्ष पर आरोपी व्यक्तियों की द०प्र०स० की धारा 313 के तहत जांच की गई, जिसमें उन्होंने स्वीकार किया कि आरोपी राम प्रताप, अवधेश, भुनेश और दादू (साथ ही राजमुन जिनके मामले को एस.टी. संख्या-76/76 से अलग कर दिया गया था) पर राम गोपाल की हत्या करने के लिए मुकदमा चलाया गया था और सत्र न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी। लेकिन उन्होंने दावा किया कि अपील में उनकी सजा घटाकर छह साल कर दी गई थी। आरोपियों ने यह भी स्वीकार किया कि मृतक के भाई लाला राम ने उस मामले में सबूत दिए थे, लेकिन उन्होंने इस बात से इनकार किया कि मृतक ने उस मामले में पैरवी की थी। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि आरोपी राम प्रताप, अवधेश, भुनेश और ललौना सगे भाई हैं और शिव दास उनका चचेरा भाई है। श्रीमती राम पियारी ने बताया कि अभियुक्त छुट्टन और झुन्ना राम प्रताप आदि से संबंधित थे। उसने दावा किया कि उसका और उसके बेटे दादू का अन्य आरोपियों से कोई संबंध नहीं है। उन्होंने इस बात से इनकार किया कि राम गोपाल की हत्या के बाद से उनकी दुश्मनी कम हो गई थी। उन्होंने स्वीकार किया कि 29.06.1976 को जिन अभियुक्तों को राम गोपाल की हत्या के लिए सजा सुनाई गई थी, वे उनकी अपील लंबित रहने तक जमानत पर थे। उन्होंने 29.06.1976 को दोपहर के समय जगदीश नारायण के घर के सामने शिवनारायण की हत्या करने या मृतक को बचाने की कोशिश करते समय श्रीमती विमला देवी या लाला राम को चोट पहुंचाने से इनकार किया।

43. आरोपी अवधेश, राम प्रताप और भुनेश सगे भाई हैं। सूचनाकर्ता लाला राम ने शिवनारायण उर्फ रज्जन की हत्या के संबंध में थाने में झूठी रिपोर्ट दर्ज कराई थी। यह मामला उनके नाना के परिवार से दुश्मनी के कारण शुरू किया गया था। राम गोपाल की हत्या के मामले में दोषी ठहराए जाने के बाद वह जमानत पर था। उन्हें फॉरेंसिक साइंस लेबोरेटरी (एफएसएल) की रिपोर्ट के नतीजों की जानकारी नहीं है। गवाहों ने उनके खिलाफ झूठी गवाही दी है। अभियुक्त ने बचाव में कोई सबूत पेश नहीं किया, इनकार के अपने बचाव में।

44. अभियुक्त झुन्ना उर्फ देवेंद्र कुमार ने द०प्र०स० की धारा 113 के तहत अपने बयान में दावा किया कि वह और उसके पिता झुन्ना उर्फ कृष्ण कुमार मोटरसाइकिल पर सवार होकर औरैरी गांव गए थे, क्योंकि उसकी चचेरी बहन की मृत्यु हो गई थी और वे इस घटना के एक दिन बाद लौट आए थे। आरोपी कृष्ण कुमार उर्फ छुट्टन ने झुन्ना उर्फ देवेंद्र कुमार के बयान का समर्थन किया है।

45. अभियुक्त भानु प्रकाश उर्फ ललौना ने कहा है कि उसका भाई राम प्रताप ग्राम प्रधान था, वह निर्दोष था। पुलिस अंतिम रिपोर्ट दर्ज करना चाहती थी, लेकिन सूचनाकर्ता राजा राम ने उसे अपने हाथ में ले लिया। इसलिए, उन्होंने 28.02.1977 को आत्मसमर्पण कर दिया था। उन्होंने दावा किया कि पुलिस ने उनकी संपत्ति की कुर्की को फर्जी तरीके से दिखाया था।

46. अभियुक्त शिव दास ने दावा किया है कि वह चीनी में एक खुदरा विक्रेता था और घटना की तारीख को डेरापुर गया था, और वह घटना के समय गांव में मौजूद नहीं था। उन्होंने 28.02.1977 को आत्मसमर्पण कर दिया जब पुलिस ने राजा राम के साथ मिलीभगत की। आरोपी दादू ने कहा कि वह एक गरीब आदमी था और जगदीश के साथ दुश्मनी के कारण उसे गलत तरीके से फंसाया गया था, जिसके साथ उसके पिता का मुकदमा था। भुनेश ने बताया कि वह राम प्रताप के भाई हैं जो गांव के प्रधान थे और गांव में एक पक्ष-गुट था। उस दिन उसने दावा किया कि वह सुबह 06:30 बजे चकबंदी अदालत के समक्ष मामले में पैरवी करने के लिए झाऊ लाल के दामाद बुद्धि के साथ गया था और पूरे दिन वहीं रहा और शाम को लौट आया।

47. आरोपी राम प्रताप ने दावा किया था कि उसे झूठा फंसाया गया था। वह लाडपुर पंथ के एक निजी स्कूल के प्रधानाचार्य थे और स्कूल भवन की रिपोर्ट के संबंध में, वह 27.06.1976 से 30.06.1976 के बीच हर दिन सुबह 07:30 बजे वहां जाते थे और शाम 06:00 बजे वापस आते थे, वह घटना की तारीख और समय पर स्कूल में मौजूद थे।

48. अभियुक्त अवधेश ने यह भी कहा है कि उसे शत्रुता के कारण फंसाया गया था।

49. आरोपी व्यक्तियों ने अपने बचाव में पांच गवाहों को पेश किया और कुछ दस्तावेज भी दायर किए। आरोपी राम प्रताप ने द०प्र०स० की धारा 315 के तहत एक आवेदन दायर करने के बाद खुद को भी जांच की है। आरोपी राम प्रताप ने गवाही दी थी कि वह एम.ए.बी.एड. और जनता विद्यालय, लाडपुर पंथ के प्रधानाचार्य। सूचनाकर्ता लाला राम के साथ-साथ चश्मदीद गवाह जगदीश नारायण से भी उनकी पुरानी दुश्मनी थी। उसने इस बात से इनकार किया कि वह उन लोगों में शामिल था, जिन्होंने श्यो नशरेन उर्फ रज्जन की हत्या की थी। उन्होंने यह भी कहा कि यह कहना गलत है कि जगदीश नारायण के घर के सामने दोपहर 12:00 बजे शिवनारायण की हत्या कर दी गई। उन्होंने आगे बताया कि 29.06.1976 से 28.10.1977 के बीच वह गांव में ही रह रहे थे और गांव चिलौली के लाडपुर पंथ के स्कूल में बच्चों को पढ़ा रहे थे और ग्राम प्रधान का काम देख रहे थे। वह मई 1972 से आज तक चिलौली गांव के ग्राम प्रधान बने हुए हैं। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने स्कूल भवन की मरम्मत के संबंध में कैशफर्द आदि की प्रतियां विवेचनाधिकारी को सौंप दीं।

50. उन्होंने जिरह में कहा कि राम गोपाल की हत्या के मामले में उन्हें भी दोषी ठहराया गया था और आरोपी राम गोपाल, अवधेश, रमेश, दादू और राजमुन के साथ आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई थी, लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा अपील में सजा को घटाकर छह साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई गई थी। श्यो नारायण की हत्या के समय, वे माननीय उच्च न्यायालय के समक्ष अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि लाला राम ने रामगोपाल की हत्या के मामले में सबूत दिए थे और जगदीश नारायण उस मामले में सूचनाकर्ता थे। हालांकि, उन्होंने इस बात से इनकार किया कि शिवनारायण ने पहले की हत्या के मुकदमे में पैरवी की थी। जिस स्कूल के वह प्रिंसिपल थे, वह 14 किलोमीटर दूर था और जून के

महीने में इसे बंद कर दिया गया था। वह वहां मरम्मत कार्य के सिलसिले में जाता था, जहां फूस बांग्ला (फूस बांग्ला) का पालन किया जा रहा था। उनकी उपस्थिति किसी भी रजिस्टर में अंकित नहीं थी।

51. बहाना की दलील के समर्थन में, आरोपी राम प्रताप ने डीडब्ल्यू 3 शीतल प्रसाद से पूछताछ की थी, जिसने दावा किया था कि वह गांव लालुआपुर में जनता विद्यालय का प्रबंधक था। स्कूल की इमारत की मरम्मत की जा रही थी और मरम्मत का काम राम प्रताप की देखरेख की जा रही थी, जो उस समय स्कूल के हेडमास्टर थे। मरम्मत कार्य 27.06.1976 को शुरू हुआ। उन्होंने यह भी गवाही दी कि प्रदर्श खा-1 दिनांक 22.07.1976 को था। मरम्मत का हिसाब राम प्रताप ने रखा था और स्कूल उनके आवासीय घर में स्थित था।

52. डीडब्ल्यू-2 सिद्ध नाथ, जिसने गवाही दी कि वह ग्राम औरंडी, थाना-सिकंदरा, जिला कानपुर देहात का प्रधान थाना। उन्होंने आगे गवाही दी कि इस मामले के आरोपी छुट्टन और झुन्ना 27 जून से 30 जून 1976 के बीच सुबह से शाम तक उनके गांव आए थे। इस मामले में छुट्टन और झुन्ने को झूठा फंसाया गया है।

53. डीडब्ल्यू-4 राजेशधर द्विवेदी, एक आपूर्ति निरीक्षक, जिन्होंने गवाही दी थी कि आरोपी शिव शंकर घटना की तारीख और समय पर मौके पर मौजूद नहीं थे। शिव दास गांव चिलौली में चीनी और अनाज का खुदरा विक्रेता था और 29.06.1976 को वह शिव लाल के स्टॉक के सत्यापन के लिए गांव चिलौली गया था और रजिस्टर पर एक पृष्ठांकन किया था, जिसे प्रदर्श क-9 के रूप में चिह्नित किया गया था। उन्होंने उस पर प्रदर्श खा-2 के रूप में अपना समर्थन भी साबित कर दिया है। वह सत्यापन के बाद सुबह 08:30 बजे घटनास्थल पर पहुंचे। शिवदास उनके साथ डेरापुर गए थे। वह डेरापुर में सुबह 11:00 बजे बस से उतरा और फिर उस तारीख को वे अलग हो गए। शिवदास समय-समय पर शाम 04:00 बजे तक दिन भर उनसे संपर्क करते रहे।

54. डीडब्ल्यू-1 रामेश्वर ने गवाही दी थी कि जब वह सुबह लगभग 4:30 - 5:00 बजे उठा तो उसने अपने दरवाजे के सामने बहुत शोर मचाया और रोने की आवाज सुनी। वह रात को घर के आंगन में सोया, उसने बाहर आकर देखा कि जगदीश और लाला राम श्यो नारायण @ रज्जन बिछा रहे थे। रज्जन का घर उनके घर के पूर्व की ओर स्थित है। वह मौके पर पहुंचा तो देखा कि रज्जन की मौत हो चुकी है। शोर-शराबा सुनकर रज्जन की पत्नी और कई ग्रामीण वहां पहुंच गए। उसने लाला राम से घटना के बारे में पूछताछ की और कहा कि उसने कुछ बोलने की कोशिश की लेकिन जगदीश उसे ले गया। 2-3 घंटे बाद पहुंची पुलिस और उसने जो कुछ भी देखा था, उसे पुलिस को बताया। वह उस दिन सुबह 05:00 बजे के आसपास उठे। सब इंस्पेक्टर ने उससे पूछताछ की थी, लेकिन वह निश्चित नहीं है कि उसने अपना बयान दर्ज किया था या नहीं। शव को देखने पर ऐसा लगा कि करीब एक घंटे पहले उसकी मौत हो गई। वर्ष 1971 में गांव में रामगोपाल की हत्या कर दी गई थी और उस मामले में गवाह को भी दोषी ठहराया गया था और सजा सुनाई गई थी।

55. सातवें अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, (गैर-महानगरीय क्षेत्र) कानपुर नगर ने अभियोजन और बचाव पक्ष के अधिवक्ता की प्रस्तुतियों पर विचार करने के बाद और अभिलेखों पर दर्ज सबूतों की मूल्यांकन के बाद आरोपी

देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, जिया लाल उर्फ दादू, अवधेश, श्रीमती राम पियारी के खिलाफ एस.टी. नं.75 वर्ष 1977 में गिल्ट का फैसला दर्ज किया और राम प्रताप के खिलाफ एस.टी. भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 302/149, 323/149 और 325/149 के तहत आरोपों के लिए भुनेश्वर, भानु प्रकाश उर्फ ललुना, शिव दास और कृष्ण कुमार उर्फ चुट्टन को सजा सुनाई गई है। सभी सजाओं को एक साथ चलाने का निर्देश दिया गया था।

56. अभियुक्त राजमुन दिनांक 22.07.1980 के आदेश द्वारा एस.टी. संख्या-75/1977 में कार्यवाही के दौरान फरार हो गया था। आरोपी राजमुन को बाद में पकड़ लिया गया और उस पर एस.टी. संख्या-75ए वर्ष 1977 में अलग से मुकदमा चलाया गया। उन पर 01.07.1983 को विचारण न्यायाधीश द्वारा धारा 148 भ०द०वि०, 302/149, 323/149, 323/149 के तहत आरोप लगाए गए और आरोपों को पढ़ा गया और उन्हें हिंदी में समझाया गया, जिन्होंने खुद को दोषी नहीं बताया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

57. अपने मामले के समर्थन में, अभियोजन पक्ष ने मामले के सूचनाकर्ता लाला राम, मृतक की पत्नी अ०सा०-2 श्रीमती विमला देवी, अ०सा०-3 जगदीश नारायण से गवाह के रूप में पूछताछ की। अ०सा०-1, अ०सा०-2 और अ०सा०-3 के बयान दर्ज करने के बाद, आरोपी श्री केजी प्रधान के अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष द्वारा भरोसा किए गए दस्तावेजों के सबूत को खारिज कर दिया, जिन्हें अभिलेखों पर रखा गया था। उन्होंने कहा कि मृतक श्यो नारायण की मौत का तथ्य स्वीकार कर लिया गया है। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मृतक के शव का शव परीक्षण किया गया था। उन्होंने अभिलेखों पर मौजूद किसी भी दस्तावेज की वास्तविकता पर कोई विरोध या विवाद नहीं किया। उन्होंने स्वीकार किया कि बिना किसी प्रतिवाद के सभी दस्तावेजों की वास्तविकता है और किसी भी औपचारिक गवाह से जिरह करना पसंद नहीं करते हैं।

58. इस समय राज्य के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अभियोजन पक्ष का मामला साबित हो गया है क्योंकि किसी भी औपचारिक गवाह से पूछताछ की कोई आवश्यकता या आवश्यकता नहीं थी। अभियुक्त के अधिवक्ता ने अभियोजन पक्ष की प्रार्थना का विरोध नहीं किया था और तदनुसार अभियोजन पक्ष के साक्ष्य को बंद कर दिया गया था।

59. विचारण न्यायाधीश ने अभियोजन और बचाव पक्ष की दलीलों को सुनने और अभिलेखों पर मौजूद सबूतों की मूल्यांकन करने के बाद, धारा 302/149 भ०द०वि०, 323/149, 325/149 और 148 के तहत आरोप के लिए एस.टी. संख्या-75ए वर्ष 1977 में आरोपी अपीलकर्ता राजमुन की दोषसिद्धि का फैसला दर्ज किया और धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए आजीवन कारावास, धारा 148 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए एक साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। भ०द०वि० की धारा 325/149 के तहत आरोप के लिए एक साल का सश्रम कारावास और धारा 323/149 भ०द०वि० के तहत आरोप के लिए छह महीने का सश्रम कारावास।

60. अभियुक्त राजमुन ने द०प्र०स० की धारा 313 के तहत अपने बयान में कहा कि उसे राम गोपाल की हत्या के मुकदमे में सह-अभियुक्त व्यक्तियों के साथ दोषी ठहराया गया था और उसे 20 साल के कठोर कारावास की

सजा सुनाई गई थी, लेकिन उच्च न्यायालय द्वारा सजा को छह साल के कारावास में बदल दिया गया था। मृतक श्यो नारायण पहले की हत्या के मुकदमे का जोड़ा नहीं था।

61. यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत आपराधिक अपील अपीलकर्ता संख्या-2 जिया लाल उर्फ दादू, अपीलकर्ता संख्या-4 श्रीमती राम पियारी, अपीलकर्ता संख्या-5 राम प्रताप, अपीलकर्ता संख्या-6 भुनेश, अपीलकर्ता संख्या-7 भानु प्रकाश उर्फ ललुना और अपीलकर्ता संख्या-8 शिव दास की आपराधिक अपील संख्या-2696 वर्ष 1981 के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी, इसलिए इस न्यायालय के आदेशों द्वारा उनके खिलाफ अपील को खारिज कर दिया गया था।

62. यह अपील केवल अपीलकर्ता संख्या-1 देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, अपीलकर्ता संख्या-4 अवधेश और अपीलकर्ता संख्या-9 कृष्ण कुमार उर्फ चुट्टन के संबंध में आपराधिक अपील संख्या-2696 वर्ष 1981 में और आपराधिक अपील संख्या-660 वर्ष 1984 में एकमात्र अपीलकर्ता राजमुन के संबंध में जीवित है।

63. इस प्रकार संक्षेप में, दस दोषियों/अपीलकर्ताओं में से छह अपीलकर्ताओं की उनकी संबंधित अपीलों के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई है और चार अपीलकर्ता जीवित हैं।

64. अपीलकर्ता अवधेश और देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना ने किशोर होने की दलील दी। इस न्यायालय ने दिनांक 14.07.2023 के आदेश के माध्यम से कहा कि अभियुक्त-अपीलकर्ता संख्या-1 (देवेंद्र कुमार @ झुन्ना पुत्र किशन कुमार) और आरोपी-अपीलकर्ता संख्या-3 (अवधेश चंद्र पुत्र प्रेम नारायण) की किशोरता का निर्धारण किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015 के तहत सक्षम न्यायालय/प्राधिकरण द्वारा आज से एक महीने के भीतर किया जाए। जिला न्यायाधीश, कानपुर देहात और पुलिस अधीक्षक, कानपुर देहात इस आदेश के सूचित होने के एक सप्ताह के भीतर किशोर न्याय बोर्ड को सभी संबंधित कागजात की प्रतियां उपलब्ध कराएं। रजिस्ट्रार जनरल यह सुनिश्चित करेगा कि इस आदेश की एक प्रति अनुपालन के लिए चार दिनों के भीतर जिला न्यायाधीश, कानपुर देहात को भेजी जाए।

65. न्यायालय के दिनांक 14.07.2023 के आदेश के अनुपालन में किशोर न्याय बोर्ड, रमाबाई नगर, कानपुर देहात ने दिनांक 25.08.2023 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें कहा गया है कि घटना के समय अपीलकर्ता संख्या-3 अवधेश किशोर था। इसी तरह दिनांक 25.09.2023 के संचार के माध्यम से प्रधान न्यायाधीश, किशोर न्याय बोर्ड, कानपुर देहात ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है, जिसमें उन्होंने कहा है कि दिनांक 29.06.1976 की घटना के समय अपीलकर्ता संख्या-1 देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना किशोर था। इन तथ्यों के सेट पर, यह स्पष्ट है कि आपराधिक अपील संख्या-2696 वर्ष 1981 में चार जीवित अपीलकर्ता संख्या-1 देवेंद्र कुमार झुन्ना और अपीलकर्ता संख्या-3 अवधेश को घटना के समय किशोर माना जाता है।

66. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि प्राथमिकी संस्करण के अनुसार यह सूचनाकर्ता लाला राम है, जिसके साथ आरोपी व्यक्तियों को द्वेष था और दुश्मनी थी, क्योंकि उसने अ०सा०-5 जगदीश नारायण के भाई राम गोपाल की हत्या के मुकदमे में प्रस्तुत मामले में कुछ आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ गवाही दी थी।

67. अ०सा०-3 लाला राम ने मामले में चश्मदीद गवाह की भूमिका निभाई है और यदि वह मृतक शिव नारायण की हत्या के समय मौके पर मौजूद था, तो आरोपी अपीलकर्ताओं के लिए उसे बखशने का कोई अवसर नहीं था। अ०सा०-3 लाला राम के व्यक्ति पर पाई गई चोटें प्रकृति में साधारण हैं और इन्हें निर्मित किया जा सकता है। तथाकथित चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य में यह तथ्य सामने आया है कि तीन व्यक्तियों ने बरछी (अतिरिक्त) द्वारा मृतक पर हमला किया था, जो एक नुकीला हथियार है, लेकिन मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट में कोई पंचर घाव नहीं पाया गया था। शव परीक्षण रिपोर्ट में मौत का अनुमानित समय दिखाया गया है, जिससे पता चलता है कि घटना तारीख को तड़के हुई थी।

68. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विचारण कोर्ट ने बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्य पर विचार नहीं किया है और सरसरी तौर पर उनके सबूतों को दरकिनार कर दिया है, जबकि यह स्थापित कानून है कि बचाव पक्ष के गवाहों के साक्ष्य अभियोजन पक्ष के गवाहों के समान सम्मान के पात्र हैं।

69. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि PW5 जगदीश नारायण एक अत्यधिक रुचि रखने वाला गवाह है। वह राम गोपाल की हत्या के मुकदमे के साथ-साथ श्यो नारायण उर्फ रज्जन की हत्या के मुकदमे में गवाह रहा है। वह राम गोपाल का सगा भाई है, जो पहले हत्या के मुकदमे में मृत था और प्रस्तुत अपील में कुछ अपीलकर्ता पहले की हत्या के मुकदमे में आरोपी और दोषी थे। हालांकि बाद में हाईकोर्ट ने उनकी सजा को कम कर दिया था। इसलिए, अ०सा०-5 के पास अपने भाई की हत्या के कारण उनके साथ मजबूत दुश्मनी के कारण, श्यो नारायण की हत्या के मुकदमे में प्रस्तुत अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने की मांग करने का हर कारण है। कुछ अभियुक्त व्यक्तियों ने घटना के समय कहीं और अपनी उपस्थिति के ठोस सबूत पेश किए हैं, लेकिन सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करते समय निचली अदालत द्वारा इसकी अनदेखी की गई है। अ०सा०-4 श्रीमती विमला देवी, जो मृतक की पत्नी है, का आचरण बेहद अप्राकृतिक है क्योंकि अ०सा०-1 और अ०सा०-4 दोनों ने स्वीकार किया है कि उसने मृतक को गले लगाने या छूने की कोशिश नहीं की, भले ही आरोपी व्यक्तियों द्वारा बेरहमी से हमला किए जाने के बाद उसे मौके पर छोड़ दिया गया हो, क्योंकि उसने उसे मृत माना था। मृतक के कपड़ों पर खून का कोई धब्बा नहीं मिला।

70. डीडब्ल्यू-5 मृतक राम प्रताप ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना घटना की तारीख को तड़के हुई थी और गलत तरीके से दोपहर 12:00 बजे हुई थी। उन्होंने कहा है कि उन्होंने मृत श्यो नारायण को मृत पड़ा देखा था, जब वह सुबह लगभग 05:00 बजे शोर मचाने के बाद मौके पर पहुंचे और उन्हें गवाहों ने बताया कि उन्हें लगभग एक घंटे पहले मार दिया गया था। उनके और सूचनाकर्ता लाला राम और गवाह जगदीश नारायण के बीच पुरानी दुश्मनी है। गांव की पक्षबंदी के चलते उसे इस मामले में झूठा फंसाया गया है। वह

29.06.1997 से 28.10.1977 तक ग्राम प्रधान रहे हैं। तथ्य के गवाहों अर्थात् लाला राम, श्रीमती विमला देवी और जगदीश नारायण की जिरह में बयानों का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करने पर, उन्होंने दावा किया है कि उन्होंने घटना देखी थी, अत्यधिक संदिग्ध हो जाती है। वास्तव में, मृतक की 29.06.1976 को दिन के तड़के अंधेरे में हत्या कर दी गई थी और किसी भी प्रत्यक्षदर्शी ने इस घटना को नहीं देखा था, और बाद में पुलिस के साथ उचित विचार-विमर्श के बाद आरोपी व्यक्तियों को पिछली दुश्मनी के कारण प्राथमिकी में नामित किया गया था। सूचनाकर्ता पक्ष का आरोपी व्यक्तियों को झूठा फंसाने का मजबूत मकसद था और इसी कारण से मृतक राम गोपाल के भाई अ०सा०-5 जगदीश नारायण को प्रस्तुत मामले में चश्मदीद गवाह के रूप में पेश किया गया है। यह तुच्छ कानून है कि पक्षपातपूर्ण गवाहों के साक्ष्य को सावधानीपूर्वक और करीबी जांच की आवश्यकता है। कोई भी गवाह स्वतंत्र नहीं है। अभियोजन पक्ष के बयान के अनुसार, घटना के समय कई लोग उपस्थित हुए थे, लेकिन अभियोजन पक्ष के मामले के समर्थन में कोई स्वतंत्र गवाह पेश नहीं किया गया है। मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट के लेखक अ०सा०-6 डॉ. बी.के. जैन द्वारा पेश किया गया चिकित्सा साक्ष्य प्रत्यक्षदर्शी के बयान के अनुरूप नहीं है और चश्मदीद गवाह के खाते के साथ चिकित्सा असंगति के मामले में संदेह का लाभ अपीलकर्ताओं को दिया जा सकता है।

71. इसके विपरीत, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि यह एक दिन के उजाले में हत्या का मामला है और मृतक के सगे भाई द्वारा घटना के दो घंटे बाद प्राथमिकी दर्ज की गई है। चिक प्राथमिकी के अनुसार घटनास्थल से थाना- की दूरी 6 मील है। इसलिए, प्राथमिकी पूरी तत्परता के साथ दर्ज की गई है जो अभियोजन पक्ष के संस्करण की प्रामाणिकता को मजबूत करती है। आरोपी व्यक्तियों का अपराध करने का मजबूत मकसद है। अ०सा०-2 और 4, जो मृतक के भाई और पत्नी हैं, जब उन्होंने मृतक को बचाने की कोशिश की तो आरोपी व्यक्तियों द्वारा किए गए हमले के कारण खुद को चोटें आई थीं। इसलिए, चोटों को डॉक्टर के साक्ष्य से साबित किया जाता है जिसने मेडिको कानूनी परीक्षा अवधारित की थी, इसलिए, मौके पर उनकी उपस्थिति पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। मृतक को 14 बाहरी चोटें आई थीं और मृतक की आंतरिक जांच में भी गंभीर चोटें पाई गई थीं, जो इस तथ्य की पुष्टि करती है कि मृतक पर घातक हमला करने में कई व्यक्ति शामिल थे। विवेचनाधिकारी को मौके पर खून से सने ब्लेड और बरछी मिले।

72. उन्होंने आगे तर्क दिया कि चश्मदीद गवाहों की जिरह में भी ऐसा कोई तथ्य सामने नहीं आया जो अभियोजन पक्ष के मामले की प्रामाणिकता पर उचित संदेह पैदा करेगा। विचारण न्यायाधीश ने आरोपी अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि दर्ज की है और उन्हें कानून के अनुसार सजा सुनाई है। आक्षेपित निर्णय अभिलेखों पर साक्ष्य की उचित मूल्यांकन पर आधारित हैं। अपीलकर्ताओं की ओर से उठाए गए तर्क में आक्षेपित निर्णयों में कोई महत्वपूर्ण कमजोरी नहीं दिखाई जा सकती है। आक्षेपित निर्णयों में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इस माननीय न्यायमूर्ति श्री न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की जानी चाहिए।

73. हमने पक्षों की ओर से पेश होने वाले दुबले अधिवक्ता द्वारा किए गए प्रस्तुतियों के आलोक में अभिलेखों पर मौजूद सबूतों की फिर से मूल्यांकन की है।

74. प्रस्तुत मामले में, घटना की तारीख और समय 29.06.1976 को दिन में 12:00 बजे बताया गया है और उसी दिन दोपहर 02:15 बजे थाना-डेरापुर, कानपुर में सूचनाकर्ता लाला राम के कहने पर प्राथमिकी दर्ज की गई थी। चिक प्राथमिकी प्रदर्श क-22 में लिखित रिपोर्ट के आधार पर, थाना- और घटनास्थल के बीच की दूरी छह मील के रूप में दिखाई गई है। सूचनाकर्ता मृतक का सगा भाई है और अन्य चश्मदीद गवाह विमला देवी घायल और मृतक शिव नारायण, जगदीश, नानाहे, अशर्फी लाल और राम चंद की पत्नी के साथ चश्मदीद गवाह भी हैं। इस घटना में विमला देवी को भी साधारण और गंभीर चोटें आईं, जिनकी परीक्षण के दौरान अंसा०-4 के रूप में जांच की गई है। मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि घटना के दो घंटे बाद प्राथमिकी दर्ज की गई थी, यह माना जा सकता है कि मामले में प्राथमिकी बिना किसी अनुचित देरी के अत्यंत तत्परता के साथ दर्ज की गई है, जिससे प्राथमिकी में विश्वसनीयता बढ़ जाती है और यह अभियोजन पक्ष के संस्करण में विचार या कड़ाई के बाद किसी भी अलंकरण को खारिज करता है। अभिलेखों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि प्राथमिकी समयबद्ध है। सूचनाकर्ता लाला राम और शिव नारायण की पत्नी विमला देवी की भी जांच सरकारी डॉक्टर, अंसा०-1 डॉ. सुरेंद्र सिंह द्वारा 29.06.1976 को रात 08:00 बजे से 08:30 बजे थाना-डेरापुर में की गई थी, उनकी मेडिको लीगल परीक्षा पुलिस मामले के रूप में अवधारित की गई थी और उनकी चोट रिपोर्ट की प्रामाणिकता के बारे में कोई संदेह नहीं उठाया जा सकता है, जिससे पता चलता है कि श्रीमती विमला देवी को उनकी मेडिको लीगल परीक्षा के समय उनके व्यक्ति पर पांच चोटें आई हैं। जिसमें से एक चोट गंभीर पाई गई जो उसकी कलाई के जोड़ पर थी। सूचनाकर्ता लाला राम को भी तीन चोटें आईं, जो उनकी मेडिको लीगल जांच रिपोर्ट में साधारण पाई गईं। घायल गवाह के साक्ष्य को अन्य गवाहों के साक्ष्य की तुलना में उच्च स्थान पर रखा जाता है, क्योंकि घटना के स्थान पर घायल गवाह के व्यक्ति अन्य गवाहों की तुलना में अधिक संभावित प्रतीत होते हैं। अभियोजन पक्ष के बयान में प्रत्येक अभियुक्त को विशिष्ट हथियार सौंपा गया है और यह तथ्य तथ्यों के गवाहों के साक्ष्य में साबित हुआ है।

75. प्राथमिकी संस्करण और तथ्यों के गवाहों के साक्ष्य के अनुसार अंसा०-1 सुरेंद्र सिंह, अंसा०-2 लाला राम, अंसा०-4 विमला देवी और अंसा०-5 जगदीश नारायण, यह तथ्य साबित होता है कि घटना के समय आरोपी देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, शिव दास, कृष्ण कुमार उर्फ चुट्टन और राम पियारी लाठी, राम प्रताप, अवधेश और भुनेश बरछाई (एक नुकीले धारदार हथियार) से लैस थे। दादू, ललौना और राजमुन तब्बल (एक भारी धारदार हथियार) से लैस थे, जिन्होंने जगदीश नारायण अंसा०-5 के घर के सामने गांव में सार्वजनिक रास्ते पर मृतक शिव नारायण उर्फ रज्जन पर हमला किया। आरोपी व्यक्तियों को अपराध करने के लिए प्रेरित किया गया था, क्योंकि 29.06.1976 की इस घटना से पहले गांव के एक राम गोपाल की हत्या कर दी गई थी जिसमें आरोपी राम प्रताप और अन्य भी आरोपी थे और सूचनाकर्ता लाला राम ने राम प्रताप और अन्य के खिलाफ उस हत्या के मामले में गवाही दी थी, जिसमें राम प्रताप और अन्य को दोषी ठहराया गया था और बीस साल की कैद की सजा सुनाई गई थी। इसके बाद उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया गया। यह तथ्य प्राथमिकी में ही कहा गया है कि आरोपी व्यक्ति राम प्रताप और अन्य लोग बुरी दुश्मनी के कारण सूचनाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के साथ हाथ मिलाते थे। घटना के समय मृतक अपने घर पर भोजन करने जा रहा था, तभी आरोपी

हमलावरों ने उसे रोक लिया और आरोपी व्यक्तियों द्वारा गंभीर रूप से घायल होने के कारण उसकी मौत पर ही मौत हो गई।

76. मृतक शिव नारायण की शव परीक्षण रिपोर्ट में ऐसा प्रतीत होता है कि उसके व्यक्ति पर चौदह चोटें आई हैं, जिनमें से सिर और चेहरे के विभिन्न हिस्सों पर आठ कटे हुए घाव पाए गए हैं। मृतक के सिर पर छह कटे हुए घाव और बाएं पैर के पते पर एक कटा हुआ घाव है, अन्य चोटें खरोंच और चोट हैं। आंतरिक जांच में, ललाट, दाएं टेम्पोरल और राइट पैरिटल और ओसीसीपिटल हड्डियों में कटौती पाई गई, डॉक्टर ने यह भी कहा है कि मौत का कारण शव परीक्षण से पहले की चोटों के कारण सदमा और रक्तस्राव था। इस प्रकार, चिकित्सा साक्ष्य साबित करते हैं कि मृतक शिव नारायण की चोटें मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं और सभी आरोपी व्यक्तियों को मारने के इरादे से तारीख और घटना पर अपने-अपने हथियारों से लैस थे।

77. अ०सा०-6 डॉ. वी.के. जैन ने अपने साक्ष्य से मृतक शिव नारायण की शव परीक्षण रिपोर्ट को प्रदर्शक-6 के रूप में साबित किया था। उन्होंने अपने साक्ष्य में कहा है कि उन्होंने 30.06.1976 को शाम 04:40 बजे मृतक शिवनारायण का शव परीक्षण किया था, जिसके शरीर पर चौदह चोटें आई थीं, उसका पेट खाली था, छोटी आंत में अर्ध-पचा हुआ भोजन पाया गया था और बड़ी आंत में मल पदार्थ मौजूद था। उन्होंने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि मृतक के व्यक्ति पर मिला चोट संख्या-1, 2, 3, 4, 5, 6 और 7 किसी भारी धारदार हथियार के कारण हुई थी, जिसमें तबल भी शामिल है। चोट संख्या-3 और 10 किसी तेज धार वाले हथियार के कारण भी हो सकती है, जिसकी चौड़ाई लगभग 2 सेमी है जिसमें बल्लम और बरछाई को भी शामिल किया जा सकता है। चोट संख्या-8, 9, 11 और 14 लाठी के कारण हो सकती है। क्षय के व्यक्ति पर पाई गई चोटें प्रकृति के सामान्य प्रविधि में मृत्यु का कारण बनने के लिए पर्याप्त थीं। मृतक के व्यक्तियों पर पाए गए इस तरह के चोटों से तत्काल मृत्यु की संभावना थी। जिरह में उन्होंने कहा कि तबल भारी धारदार हथियार है और उन्हें तबल द्वारा कोई पंचर या मर्मज्ञ घाव नहीं मिला है, बरछाई और बल्लम भेदने वाले हथियार हैं। चोट संख्या-1, 2, 3, 13, 14 और 8 कठोर सतह पर गिरने के कारण हो सकती है। इसलिए, चिकित्सा साक्ष्य से भी घटना का तरीका और तरीका, और मृतक और घायल गवाहों लाला राम और विमला देवी के व्यक्ति पर पाई गई चोटें साबित होती हैं और तथ्य/चश्मदीद गवाहों के गवाहों की शपथ गवाही इस मामले में चिकित्सा साक्ष्य से पुष्टि करती है। डॉक्टर ने अपने साक्ष्य में कहा है कि मृतक के व्यक्ति पर पाई गई चोटें ज्यादातर तबल जैसे किसी भारी धारदार हथियार के कारण हुई थीं और कुछ चोटें बरछाई/बल्लम जैसे हथियार से लगी होंगी। आरोपी व्यक्तियों की ओर से जिरह में अ०सा०-4 विमला देवी के इस बयान पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि तीन आरोपी व्यक्तियों अवधेश, प्रेम नारायण और मुनेश द्वारा ली गई बरछाई सपाट थी और इंगित नहीं की गई थी, इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार अपीलकर्ता के अधिवक्ता की दलीलों के आधार पर, यह नहीं माना जा सकता है कि केवल इस तथ्य के कारण कि मृतक के व्यक्ति पर कोई पंचर नहीं पाया गया था, आरोपी व्यक्तियों की उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे बरछाई से लैस थे, या दूसरे शब्दों में केवल उस आधार पर घटनास्थल पर उनकी उपस्थिति से इनकार किया जाएगा।

78. अ०सा०-5 जगदीश नारायण ने अपने साक्ष्य में गवाही दी है कि घटना घर के सामने हुई थी और उसने घटना देखी थी। प्राथमिकी में ही यह तथ्य कहा गया है कि जगदीश नारायण का घर घटनास्थल के सामने है और इस कारण से मौके पर उनकी उपस्थिति स्वाभाविक है क्योंकि उन्हें घटनास्थल का गवाह माना जाता है और केवल कुछ आरोपियों के साथ पूर्व दुश्मनी के कारण उनके साक्ष्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता है।

79. विचारण कोर्ट ने बचाव पक्ष के साक्ष्य को सही ढंग से खारिज कर दिया है जो इस बिंदु पर पेश किए गए हैं कि घटना दिन के तड़के अंधेरे में हुई थी और किसी भी गवाह ने घटना को नहीं देखा था और आरोपी व्यक्तियों को पक्षबंदी के कारण प्राथमिकी में नामित किया गया है और इस घटना से कुछ साल पहले हुई राम गोपाल की हत्या के कारण पहले एक दुश्मनी थी। सूचनाकर्ता लाला राम ने अपने साक्ष्य में कहा है कि आरोपी व्यक्ति उसे और उसके परिवार के सदस्यों को मारने की योजना बना रहे थे, क्योंकि उसने राम गोपाल की हत्या के मामले में उनके खिलाफ गवाही दी थी। आरोपी व्यक्ति एक साथ रिश्तेदार हैं और वे ग्राम प्रधान राम प्रताप से जुड़े हैं। मृतक को अपनी दुकान से दोपहर में भोजन लेने के लिए घर जा रहा बताया गया था और गवाह उसके पीछे था। वह यह नहीं देख सका कि आरोपी व्यक्ति किस दिशा से आए हैं, उन्होंने अपने अपने हथियारों से उसके भाई पर हमला किया और उसकी चीख सुनकर वह उसकी ओर दौड़ा, इसी बीच मृतक विमला देवी की पत्नी और गवाह भी वहां पहुंच गए थे। आरोपियों ने उन पर और विमला देवी पर लाठियों से हमला किया और गवाहों के हस्तक्षेप पर वे पूर्व की ओर भाग गए। केवल इस तथ्य के कारण कि सूचनाकर्ता जिसके साथ आरोपी व्यक्तियों की गहरी दुश्मनी थी, उसे साधारण चोटें देकर घटना में बखशा गया था और खतरनाक हथियारों से हमला नहीं किया गया था, उसकी उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसने अपने साक्ष्य में कहा था कि उसे और उसकी भाभी विमला देवी को गवाहों द्वारा बचाया गया था। अ०सा०-4 विमला देवी और अ०सा०-5 जगदीश नारायण ने भी घटना के चश्मदीद गवाह का विवरण दिया है और अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन किया है। अ०सा०-5 जगदीश नारायण से चश्मदीद गवाह के रूप में पूछताछ की गई है और उनके साक्ष्य में यह तथ्य भी सामने आया है कि वर्तमान मुकदमे में कुछ आरोपी व्यक्तियों को उनके भाई राम गोपाल की हत्या के मामले में अदालत द्वारा दोषी ठहराया गया था और सजा सुनाई गई थी। इस गवाह को बचाव पक्ष में सुझाव दिया गया है कि उसने ग्राम प्रधान चुनाव में आरोपी राम प्रताप का विरोध किया था और इसी कारण से वह चुनाव में चुने जाने के बाद उसके विरोध में था।

80. जहां तक मकसद का संबंध है, मकसद विशेष रूप से सूचनाकर्ता अ०सा०-1 लाला राम के खिलाफ आरोपी व्यक्तियों को जिम्मेदार ठहराया जाता है, जो मृतक का असली भाई है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **चंदन बनाम द स्टेट (दिल्ली एडमिन) 2024 लाइव लॉ (SC) 288** में हाल ही में दिए गए फैसले सहित फैसलों के एक कैटलॉग में माना कि जब प्रत्यक्ष सबूत अपराध को स्थापित करते हैं तो अभियुक्त की ओर से मकसद की कमी या अनुपस्थिति परिणामी होती है।

81. मुकदमे के दौरान पेश किए गए सबूतों की पुनः मूल्यांकन करने और अपील के तहत निर्णय का सावधानीपूर्वक अवलोकन करने पर, हमारी सुविचारित राय है कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को साबित करने

में सफल रहा है, जहां जीवित अभियुक्त देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना, कृष्ण कुमार उर्फ चुटन, राजमुन और अवधेश के खिलाफ उचित संदेह है। यह तथ्य उचित संदेह से परे साबित होता है कि जीवित अभियुक्त ने घटना की तारीख और समय पर सह-अभियुक्त के साथ मिलकर और सभा की सामान्य प्रतिवाद के अभियोजन में गैरकानूनी सभा का गठन किया था। उन्होंने मृतक को मारने के इरादे से अपने-अपने हथियारों से बेरहमी से हमला किया और उसके व्यक्ति को घातक चोटें पहुंचाईं, जो मौत का कारण बनने के लिए पर्याप्त थी और घटना में लगी चोटों के कारण उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। यह तथ्य भी संदेह से परे साबित होता है कि सामान्य वस्तु के अभियोजन में जीवित अभियुक्तों और सह-अभियुक्तों ने सूचनाकर्ता लाला राम और मृतक श्रीमती विमला देवी की पत्नी श्रीमती विमला देवी पर हमला किया और उन्हें साधारण और गंभीर चोटें पहुंचाईं। इसलिए, धारा 302/149 भ०द०वि०, 325/149 और 323/149, 147 भ०द०वि० के तहत आरोप जीवित अभियुक्तों के खिलाफ साबित हुए हैं और आरोपी अवधेश के खिलाफ धारा 148 के तहत आरोप भी साबित हुए हैं। इसलिए, हमें विचारण कोर्ट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई कानूनी या तथ्यात्मक त्रुटि नहीं मिलती है, जिसके तहत जीवित अभियुक्तों और सह-अभियुक्त व्यक्तियों को उपरोक्त आरोपों के लिए दोषी ठहराया गया था। अभियोजन पक्ष ने उचित संदेह से परे अपीलकर्ताओं के खिलाफ लगाए गए आरोपों को सफलतापूर्वक साबित कर दिया है।

82. किशोर न्याय बोर्ड, कानपुर देहात द्वारा की गई जांच में अभियुक्त/अपीलकर्ता देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश को घटना की तारीख को नाबालिग पाया गया और किशोर न्याय बोर्ड की रिपोर्ट के आधार पर उन्हें घटना की तारीख को किशोर माना जाता है।

83. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सत्य देव उर्फ भूरे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ए.आई.आर. 2020 (एस.सी.) 4526 में उच्च न्यायालय के समक्ष पहली अपील के चरण में एक अभियुक्त द्वारा किए गए किशोरावस्था के दावे पर विचार किया, जहां घटना 11.12.1981 को हुई थी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के विभिन्न प्रावधानों पर विचार किया और प्रस्तर-15 में अवधारित सांविधिक प्रावधानों पर विचारशील विचार करने के बाद कि इस प्रकार, किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) नियमों के नियम 12 और 98 सपठित अधिनियम वर्ष 2000 की धारा 2 (के), 2 (एल), 7-ए, 20 और 49 के संयुक्त पठन से प्रकट होता है। (ख) यदि किशोर होने की याचिका का दावा करने वाला अभियुक्त अपराध करने की तारीख को 18 वर्ष से कम आयु का था, तो वह किशोर के रूप में माने जाने का हकदार है और उसे 2000 के अधिनियम के अनुसार लाभ दिया जाएगा। इस तथ्य के बावजूद कि अभियुक्त अपराध की तारीख को किशोर होने के लाभ का हकदार नहीं था, किशोर न्याय अधिनियम, 1986 के तहत अधिनियम इस अपराध को अंजाम देने के बाद पारित किया गया था।

84. तदनुसार, प्रस्तुत मामले में कानून के टकराव में किशोर देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश को किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 के प्रावधानों के तहत निपटाया जाएगा, इस तथ्य

के बावजूद कि घटना वर्ष 1976 में हुई थी और किशोर न्याय अधिनियम के मामले के मुकदमे के दौरान, 1986 को अधिनियमित और शुरू किया गया था।

85. परिणामस्वरूप विचारण कोर्ट द्वारा दर्ज किए गए उपरोक्त आरोप के लिए जीवित अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि की पुष्टि की जाती है, इसलिए किशोर अभियुक्त देवेंद्र @ झुन्ना और अवधेश को दी गई सजा को रद्द कर दिया जाता है। अपीलकर्ता कृष्ण कुमार @ चुट्टन और राजमुन को दी गई सजा की पुष्टि की जाती है।

86. हालांकि, उपरोक्त कारणों के आधार पर आरोपी देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश को संबंधित किशोर न्याय बोर्ड द्वारा घटना की तारीख को कानून के टकराव में किशोर के रूप में रखा गया था, उक्त आरोपों के लिए उनकी दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है, लेकिन उनकी सजा को रद्द कर दिया जाता है।

87. उपरोक्त निर्णय के आलोक में अपीलकर्ता देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 15 के तहत निपटाए जाने के लिए उत्तरदायी हैं, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

15. किशोर के संबंध में पारित किया जा सकता है आदेश

(1) जहां एक बोर्ड इस जांच से संतुष्ट हो जाता है कि एक किशोर ने अपराध किया है, तो, तत्समय लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद, बोर्ड, यदि वह उचित समझे,

(क) माता-पिता या अभिभावक और किशोर के विरुद्ध उचित जांच और परामर्श के बाद सलाह या चेतावनी के बाद किशोर को घर जाने की अनुमति देना;

(ख) किशोर को समूह परामर्श और इसी तरह की गतिविधियों में भाग लेने के लिए निदेश देना;

(ग) किशोर को सामुदायिक सेवा करने का आदेश देना;

(घ) किशोर या किशोर के माता-पिता को जुर्माना भरने का आदेश देना, यदि उसकी आयु चौदह वर्ष से अधिक है और वह धन कमाता है;

(ङ) किशोर को अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करने और किसी माता-पिता, अभिभावक या अन्य योग्य व्यक्ति की देखरेख में ऐसे माता-पिता, अभिभावक या अन्य योग्य व्यक्ति पर, जो तीन वर्ष से अनधिक की किसी अवधि के लिए किशोर के अच्छे आचरण और कल्याण के लिए, जैसा कि बोर्ड की अपेक्षा करे, किसी भी बांड को निष्पादित करने के लिए निदेश देगा;

(च) किशोर को अच्छे आचरण की परीक्षा पर रिहा करने और किशोर के अच्छे व्यवहार और कल्याण के लिए किसी भी उपयुक्त संस्था की देखरेख में तीन वर्ष से अनधिक अवधि के लिए रखने का निदेश देगा;

(छ) किशोर को तीन साल की अवधि के लिए एक विशेष घर में भेजे जाने का निर्देश देते हुए एक आदेश दें: [अधिनियम 33 वर्ष 2006, धारा 12 द्वारा खंड (जी) के लिए प्रतिस्थापित (22-8-2006 से)]

परन्तु यदि बोर्ड इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि अपराध की प्रकृति और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, ऐसा करना समीचीन है, तो ठहरने की अवधि को ऐसी अवधि तक कम कर सकता है जो वह उचित समझे।

(2)बोर्ड किसी परिवीक्षा अधिकारी या किसी मान्यता प्राप्त स्वैच्छिक संगठन के माध्यम से या किसी अन्य माध्यम से किशोर पर सामाजिक जांच रिपोर्ट प्राप्त करेगा और आदेश पारित करने से पहले ऐसी रिपोर्ट के निष्कर्षों को ध्यान में रखेगा।

(3)जहां उपधारा (1) के खंड (घ), खंड (ई) या खंड (एफ) के तहत एक आदेश दिया जाता है, बोर्ड कर सकता है, यदि यह राय है कि किशोर और जनता के हित में, ऐसा करना समीचीन है, इसके अलावा एक आदेश दे सकता है कि कानून के साथ संघर्ष में किशोर ऐसी अवधि के दौरान आदेश में नामित परिवीक्षा अधिकारी की देखरेख में रहेगा, तीन वर्ष से अधिक नहीं जैसा कि उसमें निर्दिष्ट किया जा सकता है, और इस तरह के पर्यवेक्षण आदेश में ऐसी शर्तें लगा सकता है जो कानून के साथ संघर्ष में किशोर के उचित पर्यवेक्षण के लिए आवश्यक समझती हैं: बशर्ते कि यदि बाद में किसी भी समय परिवीक्षा अधिकारी से रिपोर्ट प्राप्त करने पर बोर्ड को प्रतीत होता है या अन्यथा, कि कानून के साथ संघर्ष में किशोर पर्यवेक्षण की अवधि के दौरान अच्छा व्यवहार नहीं किया गया है या वह जिस फिट संस्था की देखरेख में किशोर को रखा गया था, वह अब किशोर के अच्छे व्यवहार और कल्याण को सुनिश्चित करने में सक्षम या इच्छुक नहीं है, वह इस तरह की जांच करने के बाद, जैसा कि वह उचित समझे, कानून के साथ संघर्ष करने वाले किशोर को एक विशेष घर में भेजने का आदेश दे सकता है।

(4)बोर्ड उपधारा (3) के तहत पर्यवेक्षण आदेश देते समय, किशोर और माता-पिता, अभिभावक या अन्य योग्य व्यक्ति या फिट संस्था, जैसा भी मामला हो सकता है, को आदेश के नियम और शर्तों के बारे में बताएगा और किशोर को पर्यवेक्षण आदेश की एक प्रति तुरंत प्रस्तुत करेगा, माता-पिता, अभिभावक या अन्य योग्य व्यक्ति या फिट संस्थान, जैसा भी मामला हो, जमानतदार, यदि कोई हो, और परिवीक्षा अधिकारी।

इसके प्रतिस्थापन से पहले, खंड (छ) निम्नानुसार पढ़ा जाता है: - (छ) किशोर को एक विशेष गृह में भेजने का निर्देश देते हुए एक आदेश देता है, - (i) किशोर के मामले में, सत्रह वर्ष से अधिक लेकिन अठारह वर्ष से कम आयु के दो वर्ष से कम की अवधि के लिए; (ii) किसी अन्य किशोर के मामले में उस अवधि के लिए जब तक वह किशोर नहीं रह जाता है: परन्तु यदि बोर्ड इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि अपराध की प्रकृति और मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अभिलिखित किए जाने वाले कारणों के लिए, ऐसा करना समीचीन है, तो ठहरने की अवधि को ऐसी अवधि तक कम कर सकता है जो वह ठीक समझे।

88. चूंकि अपीलकर्ता देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश ने कई दशक पहले वयस्कता की आयु प्राप्त कर ली है, इसलिए उन्हें विशेष और किशोर गृह में रखने के लिए कानून का कोई उद्देश्य पूरा नहीं किया जाएगा।

89. इसके अलावा अपीलकर्ता देवेंद्र कुमार उर्फ झुन्ना और अवधेश को संबंधित न्यायालय के समक्ष 50,000/- रुपये का जुर्माना जमा करने का निर्देश दिया जाता है, जो मृतक शिव नारायण की पत्नी विमला देवी-अ०सा०-

4 को मुआवजे के रूप में देय होगा और उसकी मृत्यु के मामले में, उक्त राशि का भुगतान विचारण कोर्ट की संतुष्टि के लिए उसके कानूनी उत्तराधिकारियों को किया जाएगा।

90. अपीलकर्ताओं देवेन्द्र कुमार @ झुन्ना और अवधेश के संबंध में अपील की आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है, क्योंकि विचारण कोर्ट द्वारा उन्हें दी गई सजा को रद्द कर दिया जाता है और उन्हें किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 की धारा 15 के तहत निपटाया गया है। दोषी कृष्ण कुमार @ चुट्टन और राजमुन के संबंध में अपील खारिज की जाती है।

91. चूंकि अभियुक्त कृष्ण कुमार उर्फ चुट्टन और राजमुन के संबंध में नीचे की अदालत द्वारा पारित दोषसिद्धि और सजा इस निर्णय द्वारा प्रस्तुत अपील में पुष्टि की जाती है और उन्हें अपील के लंबित रहने के दौरान जमानत पर बढ़ा दिया गया है, इसलिए उन्हें दो सप्ताह के भीतर आक्षेपित निर्णय में नीचे की अदालत द्वारा दी गई सजा को पूरा करने के लिए विचारण कोर्ट के समक्ष आत्मसमर्पण करने का निर्देश दिया जाता है और उनके गैर-उपस्थित होने की स्थिति में विचारण कोर्ट उनकी गिरफ्तारी सुनिश्चित करेगा उनके विरुद्ध उचित प्रक्रिया जारी करके और उनकी उपस्थिति पर उन्हें निचली अदालत द्वारा दी गई और इस न्यायालय द्वारा पुष्टि की गई सजा को पूरा करने के लिए जेल हिरासत में भेज दिया जाएगा।

92. इस निर्णय की एक प्रति आवश्यक अनुपालन के लिए न्यायालय के नीचे/सत्र न्यायाधीश को भेजी जाए, जैसा भी मामला हो।

93. यह न्यायालय श्री अजय कुमार पांडे, एमिक्स क्यूरी द्वारा की गई बहुमूल्य सहायता और कड़ी मेहनत की मूल्यांकन करता है, हम उनकी फीस को 25,000/- रुपये के रूप में निर्धारित करते हैं, जिसका भुगतान उन्हें उच्च न्यायालय विधिक सेवा प्राधिकरण, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा। उच्च न्यायालय के विद्वान रजिस्ट्रार जनरल भुगतान की निगरानी करेंगे।

(2025) 1 ILRA 149

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 1237 सन 2024

शमीमा एवं अन्य

... पुनरीक्षणवादी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपरीत पक्ष

पुनरीक्षणवादी के अधिवक्ता:

कालीचरण यादव

विपक्षी पक्षों के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

क. दंड विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 227 - उन्मोचन - कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग - एक ही मामले के सह-अभियुक्त अपराध संख्या को बरी कर दिया गया है - प्रभाव - अन्य सह-अभियुक्तों का उन्मोचन आवेदन अस्वीकार कर दिया गया - वैधता को चुनौती दी गई - यह माना गया कि एक बार जब समान आरोपों के लिए और समान गवाहों की गवाही पर आधारित समान साक्ष्य के आधार पर, एक ही मामले के सह-अभियुक्त अपराध संख्या को आरोपों से बरी कर दिया गया है, तो यदि अन्य सह-अभियुक्तों को रिकॉर्ड पर कोई नया साक्ष्य मौजूद न होने पर निचली अदालत द्वारा मुकदमा चलाने की अनुमति दी जाती है, तो केवल एक ही निष्कर्ष होगा अर्थात् आरोपों से उनका बरी होना, इस प्रकार दूसरे मुकदमे को आगे बढ़ाने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। (अनुच्छेद 22)

आपराधिक पुनरीक्षण की अनुमति दी गई। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला द्वारा दिया गया)

1. श्री काली चरण यादव, पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री प्रतीश उपाध्याय का पक्ष सुना गया।
2. वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण, विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम), बस्ती द्वारा विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039/2016 (राज्य बनाम मोहित एवं अन्य) में दिनांक 03.02.2024 को पारित आदेश से उत्पन्न हुआ है, जिसके द्वारा, धारा 227 सीआरपीसी के तहत पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा दाखिल दोषमुक्ति हेतु आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया था।
3. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि एक प्राथमिकी धारा 363, 366 भारतीय दंड संहिता और पोक्सो अधिनियम की धारा 7/8 के तहत थाना परसरामपुर, जिला बस्ती में दर्ज की गई थी, जिसे मुकदमा अपराध संख्या 554/2015 के रूप में दर्ज किया गया था। प्राथमिकी में, हामिद अली की पत्नी, अर्थात्, सफिया उर्फ शफीकुन निशा, मोहिद, ग्यासुद्दीन, शरीफुद्दीन उर्फ बब्बू, इरशाद, मेहसर, समीमा, तौदीन, बौहर और गैसीली को नामजद किया गया था और आरोप लगाया गया था कि उन्होंने रजिया खातून को बहला-फुसलाकर अपहरण कर लिया। कथित पीड़िता, रजिया खातून और अन्य ने एक आपराधिक विविध मामला दर्ज कराया। रिट याचिका संख्या 19293/2015 (रजिया खातून एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य), जिसमें रजिया खातून ने

दावा किया था कि वह बालिग है और मुख्य अभियुक्त ताऊदीन के साथ रह रही है। इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने 10.08.2015 को एक आदेश पारित किया, जिसमें यह प्रावधान किया गया कि अभियुक्तों/याचिकाकर्ताओं को धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत पुलिस रिपोर्ट प्रस्तुत होने तक गिरफ्तार नहीं किया जाएगा। पुलिस ने धारा 173(2) सीआरपीसी के तहत आरोप पत्र दायर किया और मुख्य अभियुक्त ताऊदीन, गयासुद्दीन और सफिया उर्फ शफीकुन निशा को गिरफ्तार किया।

4. पुलिस ने मुख्य आरोपी ताऊदीन के खिलाफ धारा 363, 366, 376, 120-बी, 506 आईपीसी और धारा 3/4 पोक्सो एक्ट के तहत आरोप पत्र दायर किया और वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं सहित अन्य आरोपियों के खिलाफ धारा 363, 366, 120-बी, 506 आईपीसी और धारा 16/7 पोक्सो एक्ट के तहत आरोप पत्र दायर किया।

5. वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं ने अपने खिलाफ उपरोक्त आरोप पत्र दायर करने के बाद, धारा 482 सीआरपीसी के तहत एक याचिका दायर की, जिसमें सीआरएल. विविध शामिल है। आवेदन संख्या 22868/2016 (शमीमा एवं अन्य बनाम राज्य एवं अन्य) और इस न्यायालय ने 01.08.2016 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसमें यह प्रावधान किया गया कि अपराध मामला संख्या 554/2015 में आवेदकों के विरुद्ध कोई भी बलपूर्वक कदम नहीं उठाया जाएगा।

6. चूंकि तौदीन, गयासुद्दीन और सफिया उर्फ शफीकुन निशा पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे, इसलिए उक्त अभियुक्तों के संबंध में सत्र परीक्षण पृथक कर दिया गया और उसे विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम तौदीन और दो अन्य) के रूप में क्रमांकित किया गया। और मामला अपराध संख्या 554/2015 के अन्य अभियुक्तों के संबंध में, विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039/2016 (राज्य बनाम मोहिद और अन्य) के रूप में क्रमांकित किया गया। इस स्तर पर यह ध्यान देने योग्य है कि पुलिस द्वारा एकत्रित साक्ष्य और जिन गवाहों पर भरोसा किया गया है, वे उपरोक्त दोनों आपराधिक मुकदमों में समान हैं।

7. विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ताऊदीन एवं दो अन्य) समाप्त हो चुका है और विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पॉक्सो अधिनियम), बस्ती द्वारा पारित दिनांक 22.08.2023 के निर्णय एवं आदेश के अनुसार, प्रकरण अपराध संख्या 554/2015 के मुख्य अभियुक्त ताऊदीन और अन्य दो सह-अभियुक्त, जो वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं के समान ही हैं, को उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया गया है।

8. ट्रायल कोर्ट ने अपने दिनांक 22.08.2023 के फैसले और आदेश में कथित पीड़िता, उसकी माँ और अन्य गवाहों की गवाही पर विचार किया था और पाया था कि किसी भी गवाह ने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं किया है और इस आधार पर, मुख्य आरोपी और अन्य दो आरोपियों (जो पुनरीक्षणकर्ताओं के समान ही थे) को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया था।

9. पूर्वोक्त मुकदमे के समापन के बाद, पुनरीक्षणकर्ताओं ने दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश के तहत, धारा 482 सीआरपीसी के तहत दायर अपनी याचिका पर जोर दिया, जो इस न्यायालय के समक्ष लंबित थी। और इस न्यायालय ने दिनांक 07.11.2023 के आदेश द्वारा आपराधिक विविध आवेदन संख्या 22868/2016 का निपटारा कर दिया, जिसके तहत आवेदकों को निचली अदालत के समक्ष आरोपमुक्ति के लिए एक उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था, इस निर्देश के साथ कि निचली अदालत उक्त आवेदन पर दो महीने के भीतर निर्णय ले। पूर्वोक्त आदेश दिनांक 07.11.2023 के अनुसरण में, पुनरीक्षणकर्ताओं ने धारा 227 सीआरपीसी के तहत आरोपमुक्ति के लिए आवेदन दायर किया। जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि जिन समान साक्ष्यों के आधार पर उन पर मुकदमा चलाया जाना है, उनके आधार पर मुख्य अभियुक्त तौदीन और अन्य दो सह-अभियुक्तों (जो पुनरीक्षणकर्ताओं के समान ही हैं) का मुकदमा पहले ही 22.08.2023 के निर्णय और आदेश द्वारा समाप्त हो चुका है जिसमें अभियुक्तों को बरी कर दिया गया है, इसलिए अब कोई कारण नहीं है कि निचली अदालत पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ मुकदमा आगे बढ़ाए और इस प्रकार वे अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से मुक्त किए जाने के पात्र हैं। पुनरीक्षणकर्ताओं ने अपने आरोपमुक्ति आवेदन में स्पष्ट रूप से कहा कि वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध समान आरोपों पर आरोप-पत्र दायर किया गया है, समान साक्ष्यों पर भरोसा किया गया है और उन्हीं गवाहों को पेश करने की मांग की गई है जिन्हें मुख्य अभियुक्त और दो अन्य अभियुक्तों के मुकदमे में पेश किया गया था, अर्थात् विशेष परीक्षण संख्या 1000066/2015, इसलिए एक बार जब मुख्य अभियुक्त और अन्य दो सह-अभियुक्तों को दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश द्वारा आरोपों से मुक्त कर दिया गया है, तो पुनरीक्षणकर्ता भी अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त किए जाने के पात्र हैं।

10. विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम), बस्ती ने पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा धारा 227 सीआरपीसी के तहत दायर आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि मामले पर रिहाई के लिए विचार करते समय, निचली अदालत केवल पुलिस द्वारा एकत्रित साक्ष्य और अदालत के समक्ष दायर आरोप-पत्र पर ही विचार कर सकती है। निचली अदालत ने आगे यह भी कहा था कि चूंकि पुलिस ने साक्ष्यों के आधार पर पुनरीक्षणकर्ताओं के खिलाफ मुकदमा अपराध संख्या 554/2015 में धारा 363, 366, 120-बी, 506 आईपीसी के तहत और पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम की धारा 16/7 के तहत आरोप-पत्र दायर किया था, इसलिए पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा रिहाई के लिए दायर आवेदन अस्वीकार किए जाने योग्य है।

11. पुनरीक्षणवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जब यह रिकॉर्ड में स्वीकार कर लिया गया है कि केस अपराध संख्या 554/2015 के मुख्य अभियुक्त तौदीन और दो अन्य सह-अभियुक्तों ग्यासुददीन और सफिया उर्फ शफीकुन निशा (जो पुनरीक्षणकर्ताओं के समान हैं) पर पहले ही मुकदमा चलाया जा चुका है और उन्हें समान आरोपों और समान साक्ष्यों के आधार पर बरी कर दिया गया है, तो ट्रायल कोर्ट के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं (अन्य सह-अभियुक्तों) द्वारा दोषमुक्ति के लिए दायर आवेदन को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा। पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से

उपस्थित विद्वान वकील ने आगे तर्क दिया कि कथित पीड़िता पहले ही मुख्य अभियुक्त यानी तौदीन से विवाह कर चुकी थी और विवाह के बाहर, उनका एक बेटा है, जिसकी आयु आज लगभग सात वर्ष है, इसलिए मामला अपराध संख्या 554/2015 के अन्य सह-अभियुक्तों को दोषमुक्त न करने का कोई उचित कारण नहीं है।

12. यह जोरदार ढंग से तर्क दिया गया है कि विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 में पारित दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश को यद्यपि निचली अदालत ने दिनांक 03.02.2024 के आक्षेपित आदेश में संदर्भित किया है, परंतु उस पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है। यह भी तर्क दिया गया है कि चूँकि इस तथ्य से कोई इनकार नहीं किया जा सकता कि पुनरीक्षणवादी के विरुद्ध आरोप और साक्ष्य समान हैं और आरोप-पत्र में नामित गवाह भी एक ही हैं, जिसके आधार पर मुख्य अभियुक्त और समान आरोपों का सामना कर रहे अन्य सह-अभियुक्तों को बरी कर दिया गया है, इसलिए निचली अदालत के लिए कोई भी उचित कारण नहीं हो सकता कि वह पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा दायर बरी करने के आवेदन पर निर्णय लेते समय विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 में पारित दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश पर विचार न करे।

13. पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अंततः तर्क दिया है कि यह पुनरीक्षण स्वीकार किया जाना चाहिए और विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039/2016 (राज्य बनाम मोहिद एवं अन्य) की कार्यवाही रद्द की जानी चाहिए, अन्यथा यदि उन्हीं आरोपों के लिए, उन्हीं साक्ष्यों और उन्हीं गवाहों की गवाही के आधार पर, पुनरीक्षणकर्ताओं के विरुद्ध मुकदमा चलाने की अनुमति दी जाती है, तो यह न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा क्योंकि अंततः पुनरीक्षणकर्ता अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से मुक्त होने के लिए बाध्य हैं।

14. विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने राज्य की ओर से बहस करते हुए इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं किया है कि विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 मामला अपराध संख्या 554/2015 के मुख्य अभियुक्तों अर्थात् तौदीन और दो अन्य सह-अभियुक्तों अर्थात् ग्यासुद्दीन और सफिया उर्फ शफीकुन निशा (जो वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं के समान हैं) के संबंध में, निचली अदालत ने दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश द्वारा निर्णय दिया था, जिसमें अभियोजन पक्ष द्वारा जिन आरोपों, साक्ष्यों और गवाहों पर भरोसा किया गया था, वे विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039/2016 के समान हैं और उन अभियुक्तों को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया है।

15. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. ने तर्क दिया है कि धारा 227 के तहत दायर आरोप-पत्र और पुलिस द्वारा एकत्रित साक्ष्यों पर ही विचार किया जा सकता है और इसलिए, निचली अदालत ने विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 में पारित दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश के प्रभाव पर विचार न करते हुए (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम तौदीन और दो अन्य) मुक्ति के आवेदन पर निर्णय लेते समय, पूर्णतः वैध तरीके से कार्य किया था। यह भी तर्क दिया गया है कि विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039/2016 में पारित दिनांक 03.02.2024 के आक्षेपित आदेश में न तो कोई अवैधता है और न ही कोई दोष है।

16. मैंने पुनरीक्षणकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है। मैंने विशेष सत्र परीक्षण सं. 2800039/2016 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 03.02.2024 और विशेष सत्र परीक्षण सं. 1000066/2015 में पारित दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश की विषय-वस्तु का भी अवलोकन किया है।

17. यह न्यायालय इस तथ्य पर स्पष्ट रूप से ध्यान देता है कि राज्य ने इस बात पर कोई विवाद नहीं किया है कि एक तौदीन (मुख्य अभियुक्त) और दो अन्य सह-अभियुक्तों, अर्थात् ग्यासुद्दीन और सफिया उर्फ शफीकुन निशा (जो वर्तमान पुनरीक्षणकर्ताओं के समान हैं) पर पहले ही समान आरोपों के लिए, समान साक्ष्यों के आधार पर और केस से संबंधित समान गवाहों की गवाही के आधार पर मुकदमा चलाया जा चुका है। अपराध संख्या 554/2015 और मुकदमा विशेष सत्र न्यायालय में दिनांक 22.08.2023 को पारित निर्णय और आदेश द्वारा समाप्त हो चुका है। मुकदमा संख्या 1000066/2015 जिसके द्वारा अभियुक्तों को आरोप से मुक्त कर दिया गया है।

18. अब यह न्यायालय धारा 227, 228 और 229 सीआरपीसी के प्रावधानों पर विचार करने जा रहा है। जो निम्नानुसार उद्धृत हैं:

"227. उन्मोचन-यदि मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, और इस संबंध में अभियुक्त और अभियोजन पक्ष की दलीलों को सुनने के बाद, न्यायाधीश का विचार है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को उन्मोचित कर देगा और ऐसा करने के अपने कारण दर्ज करेगा।

228. आरोप विरचित करना- (1) यदि पूर्वोक्त विचार और सुनवाई के बाद, न्यायाधीश की राय में यह मानने का आधार है कि अभियुक्त ने ऐसा अपराध किया है जो

(क) सत्र न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय नहीं है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध आरोप विरचित कर सकता है और आदेश द्वारा, मामले को विचारण के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, [या किसी अन्य प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट] को स्थानांतरित कर सकता है और अभियुक्त को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, या, यथास्थिति, प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष, ऐसी तिथि को, जिसे वह उचित समझे, उपस्थित होने का निर्देश दे सकता है, और उसके बाद मजिस्ट्रेट अपराध का विचारण पुलिस रिपोर्ट पर स्थापित वारंट-मामलों के विचारण की प्रक्रिया के अनुसार करेगा;

(ख) यदि यह न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध लिखित रूप में आरोप विरचित करेगा।

(2) जहाँ न्यायाधीश उप-धारा (1) के खंड (ख) के अधीन कोई आरोप विरचित करता है, आरोप अभियुक्त को पढ़कर सुनाया और समझाया जाएगा, और अभियुक्त से पूछा जाएगा कि क्या वह आरोपित अपराध के लिए दोषी होने की दलील देता है या विचारण का दावा करता है।

229. दोषी होने की दलील पर दोषसिद्धि - यदि अभियुक्त दोषी होने की दलील देता है, तो न्यायाधीश दलील को अभिलिखित करेगा और अपने विवेकानुसार, उसे उसके आधार पर दोषी ठहरा सकता है।

19. इस न्यायालय का मानना है कि धारा 227 सीआरपीसी में यह प्रावधान है कि यदि, मामले के अभिलेख और उसके साथ प्रस्तुत दस्तावेजों पर विचार करने और अभियुक्त और इस संबंध में अभियोजन पक्ष के तर्कों को सुनने के बाद, न्यायाधीश का मानना है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, तो वह अभियुक्त को दोषमुक्त कर देगा और ऐसा करने के उसके कारणों को दर्ज करेगा।

20. इस न्यायालय का विचार है कि यदि एक ही मामले (अपराध संख्या) के लिए दो अलग-अलग मुकदमे चलाए जाते हैं और पहले मुकदमे में समान आरोपों, समान साक्ष्यों और समान गवाहों की गवाही के आधार पर, कुछ अभियुक्तों को पहले मुकदमे में पारित निर्णय द्वारा आरोपों से बरी कर दिया गया है, तो पहले मुकदमे में पारित निर्णय द्वारा दूसरे मुकदमे पर विचार करते समय, विचारण न्यायालय समान आरोपों, समान साक्ष्यों और समान गवाहों की गवाही के आधार पर अन्य अभियुक्तों के लिए यह नहीं कह सकता कि पहले मुकदमे में दिया गया निर्णय अन्य संबंध दूसरे मुकदमे के अभिलेख का हिस्सा नहीं होगा।

21. इस न्यायालय का दृढ़ मत है कि धारा 227 के अंतर्गत पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा दोषमुक्ति हेतु दायर आवेदन पर विचार करते समय, विचारण न्यायालय को विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066/2015 में पारित दिनांक 22.08.2023 के निर्णय और आदेश को मामले के अभिलेख के भाग के रूप में अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिए था, क्योंकि उक्त निर्णय उसी अपराध संख्या के मामले में समान आरोपों के लिए, समान साक्ष्यों के आधार पर और समान गवाहों की गवाही के आधार पर दिया गया था।

22. इस न्यायालय का यह भी मत है कि एक बार जब समान आरोपों के लिए और समान गवाहों की गवाही पर आधारित समान साक्ष्यों के आधार पर, एक ही मामले के सह-अभियुक्तों को आरोपों से बरी कर दिया गया है, तो यदि अन्य सह-अभियुक्तों को बिना किसी नए साक्ष्य के, निचली अदालत द्वारा मुकदमा चलाने की अनुमति दी जाती है, तो रिकॉर्ड पर कोई नया साक्ष्य नहीं होने पर, एक और केवल एक ही निष्कर्ष होगा, अर्थात् उन्हें आरोपों से बरी करना, ऐसे में दूसरे मुकदमे को आगे बढ़ाने की अनुमति देना अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा।

23. एक बार जब राज्य द्वारा यह स्वीकार कर लिया गया कि विशेष सत्र परीक्षण संख्या 1000066 सन 2015 में अभियुक्तों के विरुद्ध लगाए गए आरोप एक जैसे हैं और जिन साक्ष्यों पर भरोसा किया गया है और

गवाह भी विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039 सन 2016 में अभियुक्तों और जिन साक्ष्यों और गवाहों पर भरोसा किया गया है, उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों के समान हैं, तो निचली अदालत के लिए पुनरीक्षणकर्ताओं द्वारा उन्हें दोषमुक्त करने के लिए दायर आवेदन को अस्वीकार करने और मुकदमे को आगे बढ़ाने का कोई कारण नहीं था।

24. उपरोक्त कारणों के मददेनजर, यह पुनरीक्षण स्वीकार किया जाता है। विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039 सन 2016 में विद्वान अपर सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश (पी.ओ.सी.एस.ओ. अधिनियम) बस्ती द्वारा पारित दिनांक 03.02.2024 का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। वर्तमान पुनरीक्षणकर्ता, जो विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039 सन 2016 में अभियुक्त हैं, को एतद्वारा दोषमुक्त किया जाता है और विशेष सत्र परीक्षण संख्या 2800039 सन 2016 की संपूर्ण कार्यवाही एतद्वारा निरस्त की जाती है।

(2025) 1 ILRA 154

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र,

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 5217/2023

अब्बास व अन्य

पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य

विपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता के वकील:- शुभम श्रीवास्तव, सुनील कुमार श्रीवास्तव

विपक्षी के वकील:- शासकीय अधिवक्ता, शिवम तिवारी

आपराधिक कानून-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161, 164, 173, 190(1)(बी), 200, 202 और 397-अंतिम रिपोर्ट - विरोध याचिका - अस्वीकृति - मजिस्ट्रेट की शक्तियां - अभियोजन पक्ष के विरोधाभासी बयान - धारा 161 सीआरपीसी के तहत बयान जिसमें आरोपी को फंसाया गया और बाद में दोषमुक्त किया गया धारा 164 सीआरपीसी के तहत बयान - पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम रिपोर्ट जिसमें निष्कर्ष निकाला गया कि कोई अपराध नहीं बनता है - मजिस्ट्रेट ने अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली और विरोध याचिका खारिज कर दी - निर्णय दिया गया, मजिस्ट्रेट पुलिस के निष्कर्षों से बाध्य नहीं है और रिकॉर्ड पर सामग्री का स्वतंत्र रूप से आकलन कर सकता है - धारा 164 सीआरपीसी के तहत बयान, प्रकृति में न्यायिक होने के कारण, धारा 161 सीआरपीसी

के तहत बयान से अधिक सत्यापन मूल्य रखता है। – वापस लिए गए संस्करण पर आधारित विरोध याचिका को सही रूप से खारिज किया गया। – मजिस्ट्रेट के आदेश में कोई अवैधता या विकृति नहीं थी। – पुनरीक्षण खारिज किया गया। (पैरा 14, 15, 17 से 20)

निर्णय:

पाखंडू (सुप्रा) में इस माननीय न्यायालय के उपरोक्त आदेश के आलोक में, निस्संदेह मजिस्ट्रेट को उक्त निर्णय में उल्लिखित सभी चार उपायों को अपनाने की स्वतंत्रता है, जिसमें पुलिस द्वारा एफआईआर की जांच के बाद एक क्लोजर रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती है, जिसमें कहा गया हो कि कथित अपराध में अभियुक्त की संलिप्तता नहीं पाई गई है या कोई कथित अपराध नहीं किया गया है। (पैरा 14)

वर्तमान मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने जांच के समापन के बाद पुलिस द्वारा दायर क्लोजर रिपोर्ट पर भरोसा करने के बाद, पाखंडू (सुप्रा) में वर्णित प्रथम प्रक्रिया को अपनाया और जिन आरोपियों के नाम जांच के दौरान सामने आए हैं, उनके पक्ष में पुलिस द्वारा प्रस्तुत क्लोजर रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया, जिसमें अभियोजन पक्ष के बयान पर भरोसा किया गया, जो कि सीआरपीसी की धारा 164 के तहत है और अभियोजन पक्ष के पिता और चाचा (फूफा) के हलफनामों पर भी भरोसा किया गया, जिसे जांच का हिस्सा बनाया गया था। (पैरा 15)

मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियोजन पक्ष/पीड़िता द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के तहत दिया गया बयान उच्च स्थान पर है और जांच के दौरान दर्ज किए गए ऐसे बयान को जांच अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए उसके बयान की तुलना में अधिक पवित्रता प्राप्त है। (अनुच्छेद 18)

पूर्वोक्त चर्चा के साथ, इस न्यायालय को विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं दिखती है, जिसके तहत मामले में जांच के बाद पुलिस द्वारा अभियुक्तों के पक्ष में धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज अभियोजन पक्ष के बयान और पीड़िता के पिता और चाचा द्वारा दायर हलफनामों पर भरोसा करते हुए दायर की गई अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा दायर विरोध याचिका खारिज कर दी गई है। (अनुच्छेद 19)

पुनरीक्षण आवेदन खारिज। (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. पाखंडू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2001 क्रि एलजे 3560
2. एच.एस. बैस बनाम राज्य, (1980) 4 एससीसी 631
3. इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य, (1989) 2 एससीसी 132

4. राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2012 (78) एसीसी 111

(माननीय न्यायमूर्ति राम मनोहर नारायण मिश्र द्वारा दिया गया)

1. विविध आवेदन संख्या 02/2022 अब्बास बनाम तौशीफ पर विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट तृतीय सहारनपुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 04.08.2023 के विरुद्ध त्वरित आपराधिक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत मुकदमा अपराध संख्या 17/2021 में जांच के बाद पुलिस द्वारा प्रस्तुत अंतिम (समापन) रिपोर्ट के खिलाफ पुनरीक्षणकर्ता द्वारा धारा 366 और 376 आईपीसी के तहत दायर विरोध याचिका को खारिज कर दिया गया है और अंतिम रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई है।

2. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री एसके श्रीवास्तव, प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री शिवम तिवारी और राज्य-प्रतिवादी के विद्वान एजीए को सुना गया और रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

3. मामले का तथ्यात्मक सार संक्षेप में यह है कि सूचक अब्बास ने दिनांक 14.01.2021 को थाना गागलहेड़ी, जिला सहारनपुर में धारा 363 आईपीसी के तहत तौशीफ नामक व्यक्ति के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि दिनांक 09.01.2021 को उसकी लगभग 14 वर्षीय नाबालिग बेटी को अभियुक्त तौशीफ पुत्र हाजी जुल्फान बहला-फुसलाकर भगा ले गया है, उसकी बेटी कक्षा 9वीं की छात्रा है। वह तीन दिनों से अपनी बेटी की तलाश कर रहा था और अब उसे पता चला कि तौशीफ उसकी नाबालिग बेटी को बहला-फुसलाकर अगवा कर ले गया है। सूचक तौशीफ के पिता हाजी जुल्फान के घर आया, जहाँ उसके पिता और परिवार के सदस्यों ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया और धमकी दी कि उसकी बेटी उसे नहीं सौंपी जाएगी। सियाराम इंटरमीडिएट कॉलेज, गागलहेड़ी, सहारनपुर द्वारा जारी पीड़िता के कक्षा 9वीं के स्थानांतरण प्रमाण पत्र में उसकी जन्मतिथि 30.06.2006 दर्ज है और तदनुसार घटना की तारीख को उसकी उम्र साढ़े चौदह वर्ष थी और नाबालिग, पीड़िता को पुलिस ने 15.01.2021 को सुबह 10:30 बजे बरामद किया। जीडी रिपोर्ट संख्या 17 दिनांक 10.10.2021 समय 10:30 बजे, थाना गागलहेड़ी सहारनपुर के अनुसार, उसकी बरामदगी के समय, गुप्त सूचना पर वह राणा स्टील तिराहे पर एक लड़के के साथ पाई गई थी। हालाँकि, उसका साथी पकड़ा नहीं जा सका और वह पुलिस टीम को देखकर मौके से भाग गया। पीड़िता का बयान उसी दिन धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया था, जिसमें उसने कहा था कि वह सियाराम इंटरमीडिएट कॉलेज में कक्षा 9वीं में पढ़ती है। वसीम और तौशीफ ने उसे बुलाया और दुकान के पास ले गए, उन्होंने उसे कुछ नशीला पदार्थ सुंघा दिया, जिससे वह बेहोश हो गई और जब उसे होश आया, तो उसने उसे देहरादून में एक कमरे में पाया जहाँ फरमान, दानिश, वसीम, तौशीफ और उनकी बहन तस्मिनी उससे कमरे में मिले। फरमान, वसीम, तौशीफ और दानिश ने उसके साथ बलात्कार किया और जब उसने उनसे अपने परिवार के सदस्यों से फोन करने का अनुरोध किया, तो उन्होंने उसे जान से मारने की धमकी दी। वे उसे सिकंदरपुर ले गए और कुबान के घर पर रुके, फिर वहाँ

से संसारपुर ले गए जहाँ उसे चार दिन तक रखा गया। उसने पुलिस से अपने परिवार वालों को सूचित करने का अनुरोध किया ताकि वे उससे थाने में मिल सकें। वह अपनी चिकित्सीय जाँच के लिए महिला चिकित्सक डॉ. दीपिका के सामने उपस्थित हुई, लेकिन उसने अपनी जाँच कराने से इनकार कर दिया और कहा कि उस पर कोई दबाव नहीं है। सूचक अब्बास ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपने पहले बयान में अपने एफआईआर संस्करण को दोहराया, लेकिन धारा 161 सीआरपीसी के तहत पीड़िता के बयान दर्ज करने के बाद उसने धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता के बयान के आलोक में अपने बहनोई अब्दुल रहमान के साथ एसएसपी मेरठ के समक्ष हलफनामा दायर किया।

4. पीड़िता का बयान मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया गया था, जिसकी प्रतिलिपि केस डायरी पर्चा संख्या 7 दिनांक 01.02.2021 में दी गई है, जिसमें उसने धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपने बयान से पलटते हुए कहा कि 09.01.2021 को 12:00 बजे वह बस में यात्रा करके अकेले ही मेरठ के पास परागपुर गाँव में अपनी बुआ (बुआ) गुलशन के घर गई थी। उसके साथ कोई गलत काम नहीं हुआ, वह वहाँ तीन दिन रही, उसके पिता ने रंजिश के कारण ग्राम प्रधान फरमान और रमेश के खिलाफ झूठा मुकदमा दर्ज कराया। पीड़िता के चाचा (फूफा) मुखबिर अब्बास और अब्दुल रहमान ने एक हलफनामा दायर किया था जो 21.01.2021 को एसएसपी सहारनपुर को संबोधित है और इसे सर्कल अधिकारी के माध्यम से आवश्यक कार्रवाई के लिए संबंधित एसएचओ को भेज दिया गया था। इस हलफनामे में उन्होंने धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज पीड़िता के बयान का समर्थन किया, जिसमें उसने धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज पीड़िता के बयान के आधार पर नामित आरोपियों के साथ-साथ जाँच के दौरान सामने आए अन्य आरोपियों को क्लीन चिट दे दी है।

5. पुलिस ने धारा 164 सीआरपीसी के तहत पीड़िता के बयान और अब्बास और अब्दुल रहमान के हलफनामों पर भरोसा किया, पीड़िता के पिता और फूफा ने आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें पाया गया कि पीड़िता के लापता होने में उनकी मिलीभगत स्थापित नहीं हुई थी, और वह अपने माता-पिता द्वारा डांटे जाने से परेशान होकर खुद ही अपना घर छोड़कर चली गई थी और अकेले अपनी बुआ के घर चली गई थी और अपनी इच्छा से अपने घर वापस आ गई थी।

6. हालांकि, घटनाक्रम के अनुसार, पीड़िता ने खुद ही मजिस्ट्रेट की अदालत में पुलिस द्वारा आरोपी व्यक्तियों तौशीफ, वसीम, फरमान, दानिश और तस्लीम के पक्ष में पेश की गई अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ एक विरोध याचिका दायर की, जिसमें उसने जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान को स्वीकार किया और उस पर भरोसा किया और मजिस्ट्रेट द्वारा सीआरपीसी की धारा 164 के तहत दर्ज किए गए अपने बयान से अलग हो गई। उसने कहा कि उसके पिता ने घटना के पंद्रह दिन बाद आरोपी व्यक्तियों के साथ मामले में सुलह कर ली थी, कुछ प्रलोभन या दबाव के मद्देनजर उन्होंने मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में गवाही देने के लिए उस पर दबाव डाला और इसी कारण से उसने मजिस्ट्रेट के समक्ष आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में धारा 164 सीआरपीसी के तहत अपना बयान दिया था। उसने अपने पिता

के निर्देश पर खुद की मेडिकल जांच कराने से भी इनकार कर दिया जिस आधार पर पुलिस ने आरोपियों के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट दाखिल की है, वह स्वतंत्र बयान नहीं है। वास्तव में, सीआरपीसी की धारा 161 के तहत उसका बयान एक वास्तविक और सच्चा बयान है और उसी के आधार पर पुलिस को आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल करना चाहिए था। अब आरोपी उसे धमका रहे हैं और उसे आशंका है कि उसके साथ कोई अप्रत्याशित घटना घटी होगी। विरोध याचिका में उसने 02.12.2021 की अंतिम रिपोर्ट को रद्द करने और सीआरपीसी की धारा 190 (1)(बी) के तहत संज्ञान लेने के बाद, आईपीसी की धारा 366 और 376-डी और पॉक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत आरोपियों को तलब करने की प्रार्थना की है।

7. विद्वान मजिस्ट्रेट ने अपने आदेश में पीड़िता द्वारा दायर विरोध याचिका को खारिज कर दिया और मामले की जांच के बाद पुलिस द्वारा दायर अंतिम रिपोर्ट को इस आधार पर स्वीकार कर लिया कि पीड़िता ने मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए धारा 164 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में आरोपियों को दोषमुक्त कर दिया है। उसने मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 164 सीआरपीसी के तहत दिए गए अपने बयान में जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपने बयान का खंडन किया है। उसके पिता ने भी एक हलफनामा दाखिल करके धारा 164 सीआरपीसी के तहत उसके रुख का समर्थन किया है, जो केस डायरी का हिस्सा है। मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए पीड़िता के बयान की सत्यता के खिलाफ कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

8. दिनांक 04.08.2023 के आक्षेपित आदेश से व्यथित होकर सूचक ने वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया है। सूचक और पीड़िता ने संयुक्त रूप से वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया है, जिसमें प्रार्थना की गई है कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाए और मामले को विरोध याचिका पर नए सिरे से निर्णय करने के लिए विद्वान मजिस्ट्रेट को वापस भेज दिया जाए और प्रतिवादी संख्या 2 को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाया जाए।

9. पुनरीक्षणकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज पीड़िता के बयान पर गलत भरोसा किया है और धारा 161 सीआरपीसी के तहत उसके बयान को नजरअंदाज कर दिया है, जिसमें उसने अपने लापता होने की तारीख से लेकर उसके बरामद होने की तारीख तक उसके साथ हुई घटनाओं के पूरे क्रम का विवरण दिया है। उन्होंने यह भी कहा कि विद्वान ट्रायल कोर्ट ने गलत निष्कर्ष दिया है कि अंतिम रिपोर्ट को खारिज करने के बाद आरोपियों को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने का कोई प्रथम दृष्टया मामला नहीं बनता है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने पीड़िता द्वारा दायर विरोध याचिका के संबंध में कथनों पर विचार नहीं किया है। आरोपी वसीम और तौशीफ ने पीड़िता को गुमराह किया और उसे 09.01.2021 को अपनी दुकान के पास बुलाया; उन्होंने उसे कुछ नशीला पदार्थ सुंघाया और उसके बाद उन्होंने उसके साथ बलात्कार किया, और उन्होंने उसके पिता को धमकी दी कि वे उस पर मजिस्ट्रेट के सामने उनके पक्ष में बयान देने के लिए दबाव डालें और उसकी मेडिको लीगल जांच से भी इनकार करें। उन्होंने आगे कहा कि घटना के समय पीड़िता की उम्र साढ़े चौदह साल थी और वह घटना के समय नाबालिग थी और

इसलिए आरोपियों द्वारा उसके साथ बलात्कार किए जाने के मद्देनजर आईपीसी की धाराओं 363, 366, 376 के साथ-साथ पोक्सो अधिनियम की धारा 3/4 के तहत भी मामला बनता है। विद्वान मजिस्ट्रेट ने पीड़िता का बयान ठीक से दर्ज नहीं किया।

10. प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान वकील ने दलील दी कि अभियोजन पक्ष के बयान में कोई एकरूपता नहीं है, पीड़िता के पिता ने केवल धारा 366 आईपीसी के तहत आरोपी तौशीफ को नामजद करते हुए एफआईआर दर्ज कराई थी, पीड़िता ने धारा 161 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में आरोपी तौशीफ की बहन सहित अन्य आरोपियों को शामिल किया था, हालांकि उसने धारा 164 सीआरपीसी के तहत अपने बयान में किसी भी आरोपी को शामिल नहीं किया है और कहा है कि उसे उसके माता-पिता ने डांटा था और इसी वजह से वह नाराज होकर घटना की तारीख को अपना घर छोड़कर बस से अपनी बुआ के घर गई और वहां तीन दिन रुकने के बाद खुद ही अपने घर आ गई। यहां तक कि पीड़िता के पिता और फूफा ने भी जांच के दौरान अपना हलफनामा दाखिल करके धारा 164 सीआरपीसी के तहत उसके रुख का समर्थन किया है, जिसे केस डायरी में शामिल किया गया है। हालांकि, पुलिस द्वारा मामले में क्लोजर रिपोर्ट दाखिल करने के बाद पीड़िता ने अपना रुख बदल दिया और प्रस्तावित आरोपियों के खिलाफ संज्ञान लेने और कथित अपराध के लिए उन्हें आरोपी के रूप में बुलाने की प्रार्थना के साथ एक विरोध याचिका दायर की और जब अदालत ने विरोध याचिका खारिज कर दी और क्लोजर रिपोर्ट स्वीकार कर ली, तो उसके पिता और पीड़िता ने जांच अधिकारी के समक्ष पीड़िता द्वारा दिए गए सीआरपीसी की धारा 161 के तहत बयान पर भरोसा करते हुए वर्तमान आपराधिक पुनरीक्षण दायर किया था। विद्वान ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं है। पीड़िता ने हर स्तर पर अपना रुख बदला है और इसलिए, उसके कथन पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। उसने डॉक्टर द्वारा प्रस्तावित मेडिकोलीगल जांच कराने से भी इनकार कर दिया।

11. इस उच्च न्यायालय को **पखंडू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** में 13.09.2001 को दिए गए निर्णय में **मोहब्बत अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले में **1985 के उत्तर प्रदेश क्रिमिनल ऑर्डर आर 264** में दिए गए पूर्व के निर्णय पर विचार करने के लिए बुलाया गया था। मामले के संक्षिप्त तथ्य यह थे कि श्रीमती विमला देवी द्वारा प्रस्तुत आवेदन पर, मजिस्ट्रेट ने सीआरपीसी की **धारा 156(3)** के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए पुलिस को मामला दर्ज करने और जांच करने का निर्देश दिया था। परिणामस्वरूप, **आईपीसी की धाराओं 467/468/419/420/364 और 392** के तहत एक प्राथमिकी दर्ज की गई और जांच की गई। जांच पूरी होने पर, पुलिस ने संबंधित मजिस्ट्रेट की अदालत में एक अंतिम रिपोर्ट भेज दी। व्यथित महसूस करते हुए, शिकायतकर्ता श्रीमती विमला देवी ने अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार करने के खिलाफ 'विरोध याचिका' के रूप में आपत्तियां दायर कीं। उक्त याचिका के साथ, उन्होंने अपना हलफनामा और गवाहों राम चरण और माता प्रसाद के हलफनामे भी दायर किए। यह भी प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट, रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आवेदकों के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार थे और उन्होंने उनके खिलाफ **दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204** के तहत प्रक्रिया जारी की। इसके बाद, आवेदकों की ओर से मजिस्ट्रेट के समक्ष 7-7-1997 के समन आदेश को वापस लेने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया गया। हालांकि, इस आवेदन को

विद्वान मजिस्ट्रेट ने 21-10-1999 के आदेश द्वारा यह कहते हुए खारिज कर दिया कि आवेदकों को समन आदेश पारित करने से पहले सुनवाई का कोई अधिकार नहीं था और चूंकि धारा 190(1)(बी) के तहत संज्ञान लिया जा चुका है। सीआरपीसी की धारा 190(1)(बी) के तहत समन का आदेश पुनरीक्षण के योग्य था। आवेदकों ने तब सत्र न्यायाधीश के समक्ष उक्त आदेश दिनांक 29-10-1999 के खिलाफ पुनरीक्षण याचिका दायर की। विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भी दिनांक 15-5-2000 के आक्षेपित आदेश द्वारा पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी है। अब आवेदकों ने 7-7-1997 के समन आदेश को रद्द करने हेतु धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय में आवेदन किया है।

12. जब इस न्यायालय द्वारा दिनांक 25-5-2001 को इस आवेदन को स्वीकार किया गया, तो आवेदकों की ओर से यह तर्क दिया गया कि उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 364 के अंतर्गत भी सम्मन किया गया है, जिस अपराध का विचारण केवल सत्र न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है, तथापि आदेश जारी करने से पूर्व विद्वान मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 202(2) के प्रावधान के अनुसार सभी गवाहों के बयान दर्ज नहीं किए। इस न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:-

6. दंड प्रक्रिया संहिता का अध्याय XTV कार्यवाही आरंभ करने के लिए आवश्यक शर्तों से संबंधित है। इस मामले के प्रयोजन के लिए, हम केवल धारा 190(1) से संबंधित हैं, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

“190. मजिस्ट्रेट द्वारा अपराधों का संज्ञान:- (1) इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त कोई भी द्वितीय श्रेणी मजिस्ट्रेट किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है—

(क) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं;

(ख) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर;

(ग) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर, या स्वयं के ज्ञान पर कि ऐसा अपराध किया गया है।”

7. अपराधों का संज्ञान लेने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा अपराधों का संज्ञान लेने के चार और तरीके हैं। अपराध का संज्ञान लेने के लिए बुलाए गए न्यायालय को अपने समक्ष रखे गए तथ्यों पर विचार करना चाहिए, चाहे वह पुलिस रिपोर्ट हो या शिकायत हो या किसी अन्य तरीके से न्यायालय को इसके बारे में पता चला हो और सत्र न्यायालय के मामले में मजिस्ट्रेट द्वारा मामले की प्रतिबद्धता पर। [देखें ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक, (1984) 2 एससीसी 500: (एआईआर 1984 एससी 718)]

8. जब किसी मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 156(3) के अंतर्गत कोई शिकायत या आवेदन प्राप्त होता है, जो अन्यथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 2 के खंड (घ) के अंतर्गत शिकायत के समान है, तो उसके

पास दो विकल्प उपलब्ध हैं। वह मामले के तथ्यों पर विचार करके धारा 190(1)(क) के अंतर्गत संज्ञान ले सकता है। ऐसी स्थिति में, उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और 202 में दिए गए तरीके से आगे बढ़ना होगा। धारा 200 के अनुसार, उसे शिकायतकर्ता और उपस्थित गवाहों, यदि कोई हों, से पूछताछ करनी होगी। यदि मजिस्ट्रेट को लगता है कि कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार हैं तो वह धारा 204 के तहत प्रक्रिया जारी कर सकता है। हालांकि, अगर मजिस्ट्रेट संतुष्ट नहीं है तो वह या तो धारा 203, सीआरपीसी के तहत शिकायत को खारिज कर सकता है या प्रक्रिया जारी करने को स्थगित कर सकता है और धारा 202 का सहारा ले सकता है जो यह प्रावधान करता है कि वह मामले की खुद जांच कर सकता है या पुलिस अधिकारी या ऐसे अन्य व्यक्ति द्वारा जांच करने का निर्देश दे सकता है जिसे वह यह तय करने के उद्देश्य से ठीक समझे कि आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार हैं या नहीं। लेकिन अगर अपराध का विचारण विशेष रूप से सेशन कोर्ट द्वारा किया जा सकता है तो मजिस्ट्रेट जांच के लिए निर्देश नहीं दे सकता है। केवल तभी जब मजिस्ट्रेट खुद जांच करने का फैसला करता है तो धारा 202 की उपधारा (2) का प्रावधान, जिसे हम नीचे उद्धृत करते हैं, लागू होगा:

“बशर्ते कि यदि मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत हो कि जिस अपराध की शिकायत की गई है उसका विचारण केवल सत्र न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता है, तो वह शिकायतकर्ता को अपने सभी गवाहों को पेश करने और उनसे शपथ पर पूछताछ करने के लिए कहेगा।”

9. मजिस्ट्रेट के लिए एक अन्य विकल्प यह है कि संज्ञान लेने के बजाय, वह धारा 156(3), सीआरपीसी के तहत शिकायत/आवेदन को पुलिस जांच के लिए भेज सकता है। यदि यह विकल्प अपनाया जाता है, तो पुलिस को धारा 157 के बाद निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार मामले की जांच करनी होगी। यदि जांच के बाद पुलिस इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि अभियुक्त को मुकदमे के लिए भेजने का औचित्य सिद्ध करने के लिए पर्याप्त सबूत या संदेह का कोई उचित आधार नहीं है और कार्यवाही समाप्त करने के लिए अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की है, तो मजिस्ट्रेट के लिए निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध हैं और वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार उनमें से किसी एक को अपना सकता है:

- (I) वह पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर, रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही समाप्त कर सकता है। लेकिन ऐसा करने से पहले, वह शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर देगा;
- (II) वह धारा 190(1)(ख) के अंतर्गत संज्ञान ले सकता है और जांच एजेंसी के निष्कर्षों से बाध्य हुए बिना सीधे अभियुक्त को आदेशिका जारी कर सकता है, जहां वह संतुष्ट है कि पुलिस द्वारा खोजे गए या उजागर किए गए तथ्यों के आधार पर, आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं;
- (III) यदि वह संतुष्ट है कि जांच औपचारिक रूप से की गई थी, तो वह आगे जांच का आदेश दे सकता है; या
- (IV) वह आदेशिका जारी किए बिना या कार्यवाही बंद किए बिना मूल शिकायत या विरोध याचिका पर धारा 190(1)(क) के अंतर्गत संज्ञान लेने का निर्णय ले सकता है और उसे शिकायत मानकर धारा 200 और 202,

सीआरपीसी के अंतर्गत कार्रवाई कर सकता है और उसके बाद निर्णय ले सकता है कि शिकायत को खारिज किया जाए या आदेशिका जारी की जाए।

10. सर्वोच्च न्यायालय ने **अभिनंदन झा बनाम दिनेश मिश्रा**, एआईआर 1968 एससी 117 में यह माना कि अंतिम रिपोर्ट प्राप्त होने पर पुलिस को आरोप पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश देना मजिस्ट्रेट के अधिकार क्षेत्र में नहीं था, लेकिन पुलिस रिपोर्ट से सहमत या असहमत होना उनके लिए स्वतंत्र है। यदि वह सहमत हैं कि प्रक्रिया जारी करने का कोई मामला नहीं बना है, तो वह रिपोर्ट को स्वीकार कर सकते हैं और कार्यवाही बंद कर सकते हैं। वह इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि आगे की जांच आवश्यक है, ऐसी स्थिति में वह इस आशय का आदेश पारित कर सकते हैं। यदि अंततः मजिस्ट्रेट की राय है कि पुलिस रिपोर्ट में दिए गए तथ्य एक अपराध का गठन करते हैं, तो वह पुलिस रिपोर्ट में व्यक्त विपरीत राय के बावजूद, अपराध का संज्ञान ले सकते हैं। इसमें यह देखा गया कि उस स्थिति में मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190(1)(सी) के तहत संज्ञान ले सकते हैं। **धारा 190(1)(सी)** का संदर्भ **धारा 190(1)(बी)** के लिए एक गलती थी और इसे **एच.एस. बैस बनाम राज्य**, (1980) 4 एससीसी 631: एआईआर 1980 एससी 1883 के बाद के निर्णय में इंगित किया गया है।

11. **एच.एस. बैस**, ((1980) 4 एससीसी 631: एआईआर 1980 एससी 1883) (सुप्रा) में सुप्रीम कोर्ट ने माना था कि मजिस्ट्रेट **धारा 173(2)**, **सीआरपीसी** के तहत मजिस्ट्रेट को सौंपी गई पुलिस रिपोर्ट में व्यक्त गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में पुलिस की राय को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। मजिस्ट्रेट गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में पुलिस के निष्कर्षों को नज़रअंदाज़ करना और अपराध का संज्ञान लेना पसंद कर सकता है। यदि वह ऐसा करता है, तो यह पुलिस रिपोर्ट द्वारा बताए गए गवाहों के बयानों के आधार पर होगा। वह पुलिस रिपोर्ट द्वारा बताए गए तथ्यों पर संज्ञान ले रहा होगा, हालांकि पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्षों पर नहीं। उस मामले में यह टिप्पणी की गई थी: "यदि कोई शिकायतकर्ता अपनी शिकायत में प्रासंगिक तथ्य प्रस्तुत करता है और आरोप लगाता है कि अभियुक्त **भारतीय दंड संहिता की धारा 307** के अंतर्गत अपराध का दोषी है, तो मजिस्ट्रेट शिकायतकर्ता के निष्कर्ष से बाध्य नहीं है। वह यह सोच सकता है कि तथ्य केवल **भारतीय दंड संहिता की धारा 324** के अंतर्गत अपराध का खुलासा करते हैं और वह **धारा 307 के बजाय धारा 324** के अंतर्गत अपराध का संज्ञान ले सकता है। इसी प्रकार, यदि पुलिस रिपोर्ट में उल्लेख है कि उनके द्वारा पूछताछ किए गए आधा दर्जन व्यक्ति एक हत्या के चश्मदीद गवाह होने का दावा करते हैं, लेकिन विभिन्न कारणों से गवाहों पर विश्वास नहीं किया जा सकता, तो मजिस्ट्रेट गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में पुलिस की राय को स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। वह गवाहों की विश्वसनीयता के बारे में पुलिस के निष्कर्षों को नज़रअंदाज़ करके अपराध का संज्ञान लेना पसंद कर सकता है। यदि वह संज्ञान लेता है, तो वह पुलिस रिपोर्ट में बताए गए गवाहों के बयान के आधार पर होगा। वह पुलिस रिपोर्ट में बताए गए तथ्यों के आधार पर संज्ञान लेगा, न कि पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर।"

12. **इंडिया कैरेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम कर्नाटक राज्य**, (1989) 2 एससीसी 132: एआईआर 1989 एससी 885 (890) में एक अन्य निर्णय में, यह निम्नानुसार माना गया था: इसलिए, अब स्थिति यह है कि धारा

173(2) के तहत पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर एक मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(बी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का हकदार है, भले ही पुलिस रिपोर्ट इस आशय की हो कि आरोपी के खिलाफ कोई मामला नहीं बनता है। मजिस्ट्रेट जांच के दौरान पुलिस द्वारा परीक्षित गवाहों के बयानों को ध्यान में रख सकता है और शिकायत किए गए अपराध का संज्ञान ले सकता है और आरोपी को प्रक्रिया जारी करने का आदेश दे सकता है। धारा 190(1)(बी) यह निर्धारित नहीं करती है कि एक मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान तभी ले सकता है जब जांच अधिकारी यह राय दे कि जांच में आरोपी के खिलाफ मामला बन गया है। मजिस्ट्रेट, जाँच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की अनदेखी कर सकता है और जाँच से उभरे तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकता है और यदि वह उचित समझे तो धारा 190(1)(ख) के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए मामले का संज्ञान ले सकता है और अभियुक्त को आदेशिका जारी करने का निर्देश दे सकता है। ऐसी स्थिति में मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(क) के तहत मामले का संज्ञान लेने के लिए संहिता की धारा 200 और 202 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने के लिए बाध्य नहीं है, हालाँकि वह धारा 200 या धारा 202 के तहत भी कार्य कर सकता है। इसलिए, उच्च न्यायालय का यह मानना गलत था कि द्वितीय अतिरिक्त मुख्य मेट्रोपालिटन मजिस्ट्रेट को दूसरे प्रतिवादी के खिलाफ मामला दर्ज करने और उसे समन जारी करने का आदेश देने का अधिकार नहीं है।

13. तुलाराम बनाम किशोर सिंह, (1977) 4 एससीसी 459: एआईआर 1977 एससी 2401 के मामले में, यह माना गया था कि यदि पुलिस ने जांच करने के बाद रिपोर्ट भेजी कि अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाया गया था, तो मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्ष को नजरअंदाज कर सकता है और जांच के दौरान एकत्र सामग्री के आधार पर धारा 190 (1) (बी) के तहत मामले का संज्ञान ले सकता है और प्रक्रिया जारी कर सकता है या वैकल्पिक रूप से वह मूल शिकायत का संज्ञान ले सकता है और शिकायतकर्ता और उसके गवाहों की जांच कर सकता है और उसके बाद अभियुक्त को प्रक्रिया जारी कर सकता है, यदि वह इस राय का हो कि मामले को आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

14. उपर्युक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि जहाँ मजिस्ट्रेट को अंतिम रिपोर्ट प्राप्त होती है, वहाँ उसके लिए निम्नलिखित चार विकल्प उपलब्ध हैं और वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार उनमें से किसी एक को अपना सकता है:-

- (I) वह पुलिस द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होकर, रिपोर्ट को स्वीकार कर सकता है और कार्यवाही समाप्त कर सकता है। लेकिन ऐसा करने से पहले, वह शिकायतकर्ता को सुनवाई का अवसर देगा; या
- (II) वह धारा 190(1)(ख) के अंतर्गत संज्ञान ले सकता है और जाँच एजेंसी के निष्कर्षों से बाध्य हुए बिना अभियुक्त को सीधे आदेशिका जारी कर सकता है, जहाँ वह संतुष्ट हो कि पुलिस द्वारा खोजे गए या उजागर किए गए तथ्यों के आधार पर, आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त आधार है; या
- (III) यदि वह संतुष्ट हो कि जाँच औपचारिक रूप से की गई थी, तो वह आगे की जाँच का आदेश दे सकता है, या
- (IV) वह आदेशिका जारी किए बिना या कार्यवाही बंद किए बिना मूल शिकायत या विरोध याचिका पर धारा 190(1)(ए) के तहत संज्ञान लेने का निर्णय ले सकता है और उसे शिकायत मान सकता है तथा दंड प्रक्रिया

संहिता की धारा 200 और 202 के तहत कार्रवाई करने के लिए आगे बढ़ सकता है और उसके बाद निर्णय ले सकता है कि शिकायत को खारिज किया जाना चाहिए या आदेशिका जारी की जानी चाहिए।

14. पखंडू (सुप्रा) में माननीय न्यायालय के उपरोक्त कथन के आलोक में, निस्संदेह मजिस्ट्रेट को पुलिस द्वारा एफआईआर की जांच के बाद क्लोजर रिपोर्ट पेश करने पर उक्त निर्णय में उल्लिखित सभी चार तरीकों को अपनाने की स्वतंत्रता है, ताकि कथित अपराध में अभियुक्त की संलिप्तता न पाई जाए या कोई कथित अपराध न किया गया हो।

15. वर्तमान मामले में, विद्वान मजिस्ट्रेट ने जांच के समापन के बाद पुलिस द्वारा दायर क्लोजर रिपोर्ट पर भरोसा करने के बाद, पखंडू (सुप्रा) में बताए अनुसार पहला तरीका अपनाया और पुलिस द्वारा उन आरोपियों के पक्ष में प्रस्तुत क्लोजर रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया, जिनका नाम जांच के दौरान सामने आया है, जिसमें सीआरपीसी की धारा 164 के तहत अभियोजन पक्ष के बयान और जांच के दौरान अभियोजन पक्ष के पिता और चाचा (फूफा) के हलफनामों पर भरोसा किया गया, जिसे जांच का हिस्सा बनाया गया था।

16. इस मामले में, अभियोक्ता ने यद्यपि नामजद अभियुक्त तौशीफ और तीन अन्य अभियुक्तों को दोषी ठहराया, जिनका नाम जाँच के दौरान सामने आया था, जो जाँच अधिकारी द्वारा धारा 161 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए उसके बयान में था। जांच के प्रारंभिक चरण में जब उसे पुलिस ने बरामद किया था, लेकिन उसने जाँच के दौरान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए अपने बयान में सभी अभियुक्तों को दोषमुक्त कर दिया और कहा कि वह अपने माता-पिता द्वारा डाँटे जाने पर घर से चली गई थी और अपनी बुआ (पिता की बहन) के घर गई थी जहाँ वह तीन दिनों तक रही और बाद में वह उसके घर वापस आ गया। अभियोक्ता के पिता और उसके फूफा अब्दुल रहमान ने जाँच के दौरान एक हलफनामा दायर करके इस कथन का समर्थन किया। अब्दुल रहमान ने अपने हलफनामे में कहा कि पीड़िता अकेले उसके घर गई थी और अपने लापता होने की अवधि के दौरान तीन दिनों तक वहाँ रही। हालांकि, जब पुलिस द्वारा क्लोजर रिपोर्ट दाखिल की गई, तो अभियोजन पक्ष की ओर से, जो घटना के समय नाबालिग थी, अदालत के समक्ष एक विरोध याचिका दायर की गई, जिसमें उसने पुलिस द्वारा दर्ज किए गए सीआरपीसी की धारा 161 के तहत अपने बयान पर भरोसा किया और कहा कि सीआरपीसी की धारा 164 के तहत उसका बयान बाहरी दबाव के कारण दिया गया था।

17. संहिता की धारा 164 जाँच एजेंसी को किसी भी व्यक्ति को उसके इकबालिया बयान और बयान दर्ज कराने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष भेजने की शक्ति भी देती है। **राजू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य: 2012 (78) एसीसी 111** के मामले में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने पैराग्राफ 9 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:

"9. हमारा मानना है कि अभियुक्त या पीड़ित या गवाह का बयान जो कि धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज किया जाना है, वह किसी मामले की जांच के दौरान दर्ज किया गया बयान हो सकता है लेकिन वह धारा 161

सीआरपीसी के तहत दर्ज किए गए गवाहों के बयान से काफी अलग है। इसका कारण यह है कि सीआरपीसी की धारा 164 के तहत एक पूर्ण प्रावधान है जो न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे बयान को दर्ज करने को अधिकृत करता है। ऐसे बयान दर्ज करने की प्रथा और प्रक्रिया यह है कि पुलिस को मजिस्ट्रेट के प्रमुख, जो वर्तमान में मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट हैं, के समक्ष एक आवेदन दायर करना होता है, जिसमें ऐसे व्यक्ति का बयान दर्ज करने का अनुरोध किया जाता है। ऐसा आवेदन प्राप्त होने पर, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट संबंधित अभिलेख अपने समक्ष मंगवाते हैं और उसके बाद ऐसे आवेदन की प्राप्ति के प्रमाण स्वरूप एक आदेश पारित करते हैं और उसी पर आगे एक आदेश पारित करते हैं और उसके बाद उसी आदेश द्वारा बयान दर्ज करने के लिए एक मजिस्ट्रेट की प्रतिनियुक्ति का निर्देश देते हैं। वह स्वयं भी बयान दर्ज कर सकता है। यदि किसी अन्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को धारा 164 सीआरपीसी के तहत बयान दर्ज करने के लिए प्रतिनियुक्त किया जाता है, तो न्यायिक रिकॉर्ड के साथ गवाह को प्रतिनियुक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेज दिया जाता है, जो इस उद्देश्य के लिए रिकॉर्ड की प्राप्ति दर्ज करता है और बयान दर्ज करने के लिए आगे बढ़ता है और जैसे ही यह दर्ज हो जाता है, वह फिर से उसी रिकॉर्ड के ऑर्डर शीट में ऐसे बयान की रिकॉर्डिंग दर्ज करता है और धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज बयान के साथ रिकॉर्ड को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को भेज देता है। इस प्रकार, पूरी प्रक्रिया न्यायिक प्रकृति की प्रतीत होती है। इतना ही नहीं, यह आगे इंगित करता है कि उपरोक्त संबंध में निकाले गए आदेश और दर्ज किए गए बयान भी एक न्यायाधीश द्वारा आधिकारिक और न्यायिक कार्यों के निर्वहन में उनके द्वारा किए गए न्यायिक कृत्यों के रिकॉर्ड हैं। बयानों को दर्ज करना देश के कानून द्वारा अनिवार्य है और धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज बयान के रूप में रिकॉर्ड एक लोक सेवक द्वारा अपने आधिकारिक और न्यायिक कार्यों का निर्वहन करने के कार्य का रिकॉर्ड है। इसके अलावा, धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज बयान को कभी भी न्यायिक रिकॉर्ड से बाहर नहीं निकाला जाता है और न ही इसे जांच अधिकारी या किसी अन्य पुलिस अधिकारी को सौंपा जाता है। बयान की प्रति को केस डायरी के संबंधित भाग में कॉपी करने की अनुमति है। इस प्रकार, धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज बयान उस विशेष मामले के न्यायिक रिकॉर्ड का हिस्सा बन जाता है और इस तरह, यह मामले का हिस्सा है। यही कारण है कि हमने बताया है कि जांच के दौरान गवाह या किसी अन्य हितबद्ध व्यक्ति का बयान होने के बावजूद, धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज बयान को सख्त तौर पर जांच के दौरान महज एक बयान नहीं कहा जा सकता है जिसे केस डायरी का हिस्सा माना जा सके। इसे कभी भी धारा 161 सीआरपीसी के तहत बयान के बराबर नहीं रखा जा सकता है और इसलिए इसे कभी भी केस डायरी का हिस्सा नहीं कहा जा सकता है।"

18. मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियोजन पक्ष/पीड़िता द्वारा धारा 164 सीआरपीसी के तहत दिया गया बयान उच्च स्तर पर है और जांच के दौरान दर्ज किए गए ऐसे बयान को जांच अधिकारी द्वारा संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए उसके बयान की तुलना में पवित्रता प्राप्त है।

19. उपर्युक्त चर्चा के साथ, यह न्यायालय विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं पाता है, जिसके तहत मामले में जांच के बाद पुलिस द्वारा आरोपी व्यक्तियों के पक्ष में धारा 164 सीआरपीसी के तहत दर्ज अभियोजन पक्ष के बयान और साथ ही पीड़िता के पिता और चाचा

द्वारा दायर हलफनामों पर भरोसा करते हुए दायर अंतिम रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया गया है और अभियोजन पक्ष द्वारा दायर विरोध याचिका को खारिज कर दिया गया है।

20. निम्न विद्वान न्यायालय ने यह अवलोकन किया है कि जब उसे मेडिको लीगल जांच के लिए पेश किया गया था। उसने मेडिको लीगल जांच कराने से इनकार कर दिया। वह विभिन्न चरणों में अपना रुख बदलती रही है। ऐसी कोई धारणा नहीं बनाई जा सकती है कि अदालत के समक्ष मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज अभियोजन पक्ष का बयान झूठ या बाहरी दबाव से ग्रस्त है।

21. आक्षेपित आदेश कानून की सीमाओं के भीतर है और इसमें कोई अवैधता, अनियमितता या विकृति नहीं पाई गई है। पुनरीक्षण में कोई दम नहीं है और इसे खारिज किया जाना चाहिए।

22. तथापि, यह ध्यान देने योग्य है कि अंतिम रिपोर्ट स्वीकार किए जाने और वास्तविक शिकायतकर्ता या अभियोजन पक्ष द्वारा दायर विरोध याचिका खारिज होने के बाद भी, यदि वे उचित समझें तो सक्षम न्यायालय के समक्ष दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 15 के अंतर्गत आपराधिक शिकायत दर्ज कराने के लिए स्वतंत्र हैं और यदि ऐसी शिकायत निम्न न्यायालय के समक्ष की जाती है, तो उस पर कानून के अनुसार कार्रवाई की जाएगी, क्योंकि केवल इस तथ्य के आधार पर आपराधिक शिकायत दर्ज कराने पर कानून के तहत कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है कि विद्वान मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध पुनरीक्षण इस न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया है।

23. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ पुनरीक्षण खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 164

अपील क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 30.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार,

द्वितीय अपील संख्या 23/2025

गिरजा शंकर एवं 3 अन्य

अपीलकर्ता

बनाम

राम सजीवन एवं 10 अन्य

प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील:- वेद प्रकाश शुक्ला, तरुण कुमार पांडे

प्रतिवादियों के वकील:

अ. सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 96 - आदेश XX नियम 6 और 7 - आदेश XLI - नियम 1 - प्रथम अपील - पोषणीयता - केवल निर्णय दाखिल किया गया, डिक्री दाखिल नहीं की जा सकी - अपील दाखिल करना और उसकी सुनवाई - अनुमति - निर्णय दिया गया कि अपील, निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय की प्रति के साथ दाखिल की जा सकती है और आदेश 41 नियम 1(1) सीपीसी के मददेनजर, निर्णय को आदेश 41 के नियम 1 के तहत अपील दाखिल करने के लिए डिक्री माना जाएगा, लेकिन जैसे ही डिक्री जारी की जाती है, निर्णय निष्पादन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए डिक्री के रूप में प्रभावी नहीं रहेगा। (अनुच्छेद 11)

द्वितीय अपील खारिज। (ई-1)

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार, द्वारा दिया गया)

1. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री तरुण कुमार पाण्डेय को सुना गया।
2. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों की आलोचना करते हुए यह तर्क दिया कि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर स्थायी निषेधाज्ञा के वाद में, प्रतिवादियों को अपीलकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए एक अंतरिम निषेधाज्ञा आदेश पारित किया गया था। हालाँकि, वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादियों द्वारा विवादित संपत्ति का एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था, इसलिए, संशोधन के रूप में उसे वाद में चुनौती दी गई, लेकिन न तो उसके संबंध में कोई मुद्दा तैयार किया गया और न ही निष्कर्ष दर्ज किया गया। व्यथित होकर, अपील दायर की गई। उन्होंने आगे कहा कि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित डिक्री अपीलीय न्यायालय के समक्ष नहीं थी, जबकि सिविल प्रक्रिया संहिता (जिसे आगे सीपीसी कहा जाएगा) की धारा 96 के तहत डिक्री के खिलाफ अपील दायर की जा सकती है, इसलिए, इसकी अनुपस्थिति में अपील का फैसला नहीं किया जा सकता था, लेकिन इस पर विचार किए बिना और अपीलकर्ताओं द्वारा अपील में उठाए गए आधारों के बिना, अपील को खारिज कर दिया गया है और ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है, इसलिए यह कानून की नजर में टिकने योग्य नहीं है।
3. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार करने के पश्चात्, मैंने इस अपील के अभिलेखों में प्रस्तुत सामग्री तथा निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णयों और आदेशों का अवलोकन किया है।
4. अपीलकर्ताओं द्वारा स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया गया था, जिसमें 30.04.1988 को अंतरिम निषेधाज्ञा प्रदान की गई थी, जिससे प्रतिवादियों को अपीलकर्ताओं के शांतिपूर्ण कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोका

गया था। अतः यह स्पष्ट है कि विवादित भूमि की बिक्री या अन्यथा, या विवादित संपत्ति की यथास्थिति बनाए रखने के संबंध में कोई रोक नहीं थी। वाद के लंबित रहने के दौरान प्रतिवादियों द्वारा विवादित भूमि बेच दी गई थी, इसलिए, संशोधन के माध्यम से विक्रय विलेख को कुछ आधारों पर चुनौती दी गई थी। निचली अदालत ने शुरू में सात मुद्दे तय किए और बाद में तीन अतिरिक्त मुद्दे तय किए, जिनमें से मुद्दा संख्या 8 था "क्या सूची 'बी' में दर्शाया गया विवादित विक्रय विलेख शिकायत के पैराग्राफ 4 के उप-पैराग्राफ के आधार पर रद्द करने योग्य है?" निचली अदालत ने दलीलों, सामग्री और रिकॉर्ड पर मौजूद साक्ष्यों पर विचार करने के बाद मुद्दा संख्या 1, यानी "क्या वादी विवादित भूमि के मालिक हैं और उस पर उनका कब्जा है" और बिक्री विलेख को रद्द करने के संबंध में उपरोक्त मुद्दा संख्या 8 पर फैसला सुनाया, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया कि अपीलकर्ता विवादित भूमि के मालिक और उस पर उनका कब्जा नहीं है और सभी राजस्व अधिकार अभिलेखों में प्रतिवादी राम सुमन पांडे का नाम अन्य सह-काशतकारों के साथ दर्ज है, जिन्हें अपीलकर्ताओं ने अपनी शिकायत में प्रतिवादी के रूप में पक्षकार नहीं बनाया है।

5. निचली अदालत ने मुकदमे में उठाए गए आधारों पर बिक्री विलेख को रद्द करने के मुद्दे पर आगे विचार करते हुए पाया कि विचाराधीन बिक्री विलेख कानून के अनुसार निष्पादित किया गया है और इसे मुकदमे में उठाए गए आधारों पर रद्द नहीं किया जा सकता। इसलिए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि बिक्री विलेख को रद्द करने के संबंध में न तो कोई मुद्दा तैयार किया गया था और न ही कोई निष्कर्ष दर्ज किया गया था, गलत है और मान्य नहीं है। व्यथित होकर, अपीलकर्ताओं ने निचली अपीलीय अदालत में अपील दायर की।

6. निचली अपीलीय अदालत ने, "क्या अपीलकर्ता विवादित भूमि के संबंध में वादपत्र में वर्णित तथ्यों के आधार पर दावा की गई राहत के हकदार हैं" और "क्या निचली अदालत द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप किया जा सकता है" जैसे दो बिंदुओं पर निर्णय लेने के बाद, दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद पाया कि अपीलकर्ता विवादित भूमि गाटा संख्या 565गा पर अपना कब्जा और स्वामित्व साबित करने में विफल रहे हैं और निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री कानून के अनुसार पारित की गई है, जिसमें हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है और मुकदमे में निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए अपील को खारिज कर दिया। इस अदालत को निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं लगती है।

7. यह आधार उठाया गया है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय अपील पर निर्णय नहीं कर सकता था, क्योंकि निचली अदालत द्वारा पारित 'डिक्री' तैयार नहीं की गई थी और उसके समक्ष इस आधार पर नहीं थी कि अपील केवल धारा 96 सीपीसी के तहत डिक्री के खिलाफ दायर की जा सकती है, जो मूल डिक्री से अपील का प्रावधान करती है, इसलिए, जब तक डिक्री तैयार नहीं की गई थी और अपीलीय अदालत के समक्ष नहीं थी, अपील पर निर्णय नहीं किया जा सकता था।

8. यह डिक्री सीपीसी के आदेश 20 नियम 6 और 7 के अंतर्गत तैयार की गई है। नियम 6 और 7 में डिक्री की विषय-वस्तु आदि और डिक्री की तिथि का विवरण दिया गया है, जो नीचे उद्धृत है:-

"6. डिक्री की अंतर्वस्तु-(1) डिक्री निर्णय के अनुरूप होगी; इसमें वाद की संख्या, [पक्षकारों के नाम और विवरण, उनके पंजीकृत पते] और दावे के विवरण अंतर्विष्ट होंगे, और वाद में दी गई राहत या अन्य निर्धारण को स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया जाएगा।

(2) डिक्री में वाद में उपगत लागतों की राशि का भी उल्लेख होगा, और यह भी बताया जाएगा कि ऐसी लागतें किसके द्वारा या किस संपत्ति से और किस अनुपात में चुकाई जानी हैं।

(3) न्यायालय यह निर्देश दे सकता है कि एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को देय लागतों को किसी भी राशि से समायोजित किया जाएगा, जो पूर्व पक्ष द्वारा उत्तरार्द्ध को देय मानी गई हो या पाई गई हो।

[6ए. डिक्री की तैयारी-(1) यह सुनिश्चित करने का हर संभव प्रयास किया जाएगा कि डिक्री यथासंभव शीघ्रता से और किसी भी स्थिति में, निर्णय सुनाए जाने की तिथि से पंद्रह दिनों के भीतर तैयार की जाए।

(2) डिक्री की प्रति दाखिल किए बिना डिक्री के विरुद्ध अपील की जा सकती है और ऐसी स्थिति में न्यायालय द्वारा पक्षकार को उपलब्ध कराई गई प्रति आदेश XLI के नियम 1 के प्रयोजनों के लिए डिक्री मानी जाएगी। परंतु जैसे ही डिक्री तैयार हो जाती है, निर्णय निष्पादन या किसी अन्य प्रयोजन के लिए डिक्री के रूप में प्रभावी नहीं रह जाएगा।]

6-बी. निर्णयों की प्रतियां कब उपलब्ध कराई जाएंगी-जहां निर्णय सुनाया जाता है, वहां निर्णय की प्रतियां पक्षकारों को निर्णय सुनाए जाने के तुरंत बाद उपलब्ध कराई जाएंगी ताकि वे उच्च न्यायालय द्वारा बनाए गए नियम में निर्दिष्ट शुल्कों के भुगतान पर अपील कर सकें।]

7. डिक्री की तारीख-डिक्री पर वह दिन अंकित होगा जिस दिन निर्णय सुनाया गया था, और जब न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट हो जाए कि डिक्री निर्णय के अनुसार तैयार की गई है, तो वह डिक्री पर हस्ताक्षर करेगा।"

8. नियम 6 में प्रावधान है कि डिक्री निर्णय के अनुरूप होगी और इसमें वाद संख्या, पक्षकारों का विवरण, उनके पंजीकृत पते, दावे और दी गई राहत का विवरण या वाद का अन्य निर्धारण शामिल होगा, जिसमें वाद में हुई लागत की राशि और किस अनुपात में ऐसी लागत का भुगतान किया जाना है आदि शामिल होंगे। **नियम 6-ए** डिक्री तैयार करने का प्रावधान करता है। **नियम 6-ए (2)** में प्रावधान है कि डिक्री की प्रति दाखिल किए बिना डिक्री के खिलाफ अपील की जा सकती है और ऐसे मामले में न्यायालय द्वारा पक्षकार को उपलब्ध कराई गई प्रति को आदेश 41 के नियम 1 के प्रयोजनों के लिए डिक्री माना जाएगा। लेकिन जैसे ही डिक्री तैयार हो जाती

है, निर्णय निष्पादन के प्रयोजनों या किसी अन्य उद्देश्य के लिए डिक्री के रूप में प्रभावी नहीं रहेगा। नियम 6-बी में प्रावधान है कि अपील करने के लिए निर्णय की प्रतियां निर्णय की घोषणा के तुरंत बाद उपलब्ध करा दी जाएंगी। नियम 7 में यह प्रावधान है कि डिक्री पर उसी दिन की तारीख अंकित होगी जिस दिन निर्णय सुनाया गया था, और जब न्यायाधीश इस बात से संतुष्ट हो जाए कि डिक्री निर्णय के अनुसार तैयार की गई है, तो वह डिक्री पर हस्ताक्षर करेगा।

9. सीपीसी के नियम 1 के आदेश 41 में अपील का प्रारूप, जापन के साथ क्या संलग्न करना है और जापन की विषय-वस्तु का प्रावधान है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा नियम 1 में संशोधन करके नियम 1 के उपनियम (1) के परंतुक और नियम 1 के उपनियम (2) के परंतुक के बाद स्पष्टीकरण जोड़ा गया है। इस प्रकार, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा संशोधित आदेश 41 के नियम 1 का अंश नीचे दिया गया है:-

"1. अपील का प्रारूप जापन के साथ क्या संलग्न करें—(1) प्रत्येक

अपील अपीलकर्ता या उसके वकील द्वारा हस्ताक्षरित जापन के रूप में प्रस्तुत की जाएगी और न्यायालय या उसके द्वारा इस संबंध में नियुक्त अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। जापन के साथ 1 [निर्णय] की एक प्रति संलग्न होगी।

[परन्तु जहां दो या अधिकवादों पर एक साथ विचारण किया गया हो और उनके लिए एक सामान्य निर्णय दिया गया हो और उस निर्णय द्वारा आच्छादित किसी डिक्री के विरुद्ध दो या अधिक अपीलें दायर की गई हों, चाहे वे एक ही अपीलकर्ता द्वारा की गई हों या विभिन्न अपीलकर्ताओं द्वारा, वहां अपील न्यायालय निर्णय की एक से अधिक प्रतियां दाखिल करने से छूट दे सकता है।]

(2) **जापन की विषय-वस्तु** - जापन में, अपील की गई डिक्री के विरुद्ध आपत्ति के आधारों को, बिना किसी तर्क या विवरण के, संक्षेप में और अलग-अलग शीर्षकों के अंतर्गत उल्लिखित किया जाएगा; और ऐसे आधारों को क्रमानुसार क्रमांकित किया जाएगा। 1

[(3) जहां अपील धन के भुगतान के लिए किसी डिक्री के विरुद्ध है, वहां अपीलकर्ता, अपील न्यायालय द्वारा अनुज्ञात समय के भीतर, अपील में विवादित राशि जमा करेगा या उसके संबंध में ऐसी प्रतिभूति देगा, जैसी न्यायालय उचित समझे।]"

इलाहाबाद। (1) नियम 1 के उप-नियम (1) में, परंतुक के पश्चात् निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाएगा, अर्थात्:

"स्पष्टीकरण:- उपरोक्त नियम 1 के उप-नियम (1) में निर्दिष्ट डिक्री की प्रति में नियम 6-ए के उप-नियम (2) के खंड (बी) में आदेश XX में यथा उपबंधित मानित डिक्री सम्मिलित होगी" (सूचना संख्या 345-VII-d-134, दिनांक 8-8.1994, 22.10.1994 से प्रभावी)

(2) नियम 1 के उप-नियम (2) में निम्नलिखित परंतुक जोड़ा जाएगा:

"परन्तु न्यायालय, पर्याप्त कारणों से, अपील की गई डिक्री की प्रति के बिना अपील जापन स्वीकार कर सकता है, यदि अपीलार्थी का अधिवक्ता यह प्रमाणित कर दे कि प्रति के लिए आवेदन किया गया है और अभी तक जारी नहीं की गई है, बशर्ते कि प्रति न्यायालय द्वारा प्रदत्त समय के भीतर बाद में दाखिल कर दी जाए।" (13-12-1969)। [टिप्पणी:- यह संशोधन उत्तर प्रदेश राजपत्र में प्रकाशन की तिथि से प्रभावी होगा।]"

10. आदेश 41 के उपरोक्त नियम 1 में यह प्रावधान है कि जापन के साथ निर्णय की एक प्रति संलग्न होगी। उच्च न्यायालय संशोधन, इलाहाबाद द्वारा नियम 1 के उपनियम (1) में जोड़ा गया स्पष्टीकरण यह प्रावधान करता है कि नियम 1 के उपनियम (1) में निर्दिष्ट डिक्री की प्रति में नियम 6-ए के उपनियम (2) के खंड (बी) में आदेश 20 के प्रावधान के अनुसार डीमंड डिक्री शामिल होगी। उच्च न्यायालय संशोधन, इलाहाबाद द्वारा आदेश 41 के नियम 1 के उपनियम (2) में जोड़ा गया प्रावधान यह प्रावधान करता है कि न्यायालय, पर्याप्त कारणों से, अपील की गई डिक्री की प्रति के बिना अपील के जापन को स्वीकार कर सकता है यदि अपीलकर्ता के वकील यह प्रमाणित करते हैं कि प्रति के लिए आवेदन किया गया है और अभी तक जारी नहीं की गई है, बशर्ते कि प्रति न्यायालय द्वारा दिए गए समय के भीतर बाद में दाखिल कर दी जाए।

11. उपरोक्त के मद्देनजर, अपील ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित फैसले की एक प्रति के साथ दायर की जा सकती है और सीपीसी के आदेश 41 नियम 1(1) के मद्देनजर, फैसले को अपील दायर करने के लिए आदेश 41 के नियम 1 के प्रयोजन के लिए डिक्री माना जाएगा, लेकिन जैसे ही डिक्री तैयार हो जाती है, फैसले का निष्पादन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए डिक्री के रूप में प्रभाव समाप्त हो जाएगा। सीपीसी के आदेश 41 के उप-नियम (2) में जोड़े गए प्रावधान के अनुसार, जो जापन की सामग्री के संबंध में है, अदालत पर्याप्त कारणों से, अपील की गई डिक्री की एक प्रति के बिना अपील के जापन को स्वीकार कर सकती है यदि अपीलकर्ता के वकील प्रमाणित करते हैं कि प्रति के लिए आवेदन किया गया है और अभी तक जारी नहीं हुई है, जो जारी होने पर बाद में दायर की गई प्रति के अधीन होगा। इसलिए, यदि डिक्री जारी नहीं की गई है तो निर्णय की प्रति के साथ अपील दायर की जा सकती है और अपील के प्रयोजनों के लिए इसे डिक्री ही माना जाएगा, जब तक कि डिक्री जारी नहीं की जाती है, क्योंकि इसमें केवल संबंधित न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की विषय-वस्तु ही शामिल होती है। हालाँकि, एक बार डिक्री तैयार हो जाने के बाद, निष्पादन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए डिक्री का प्रभाव समाप्त हो जाता है। इसलिए, डिक्री तैयार होने के बाद भी, यह नहीं कहा जा सकता कि यदि इसे दायर नहीं किया जाता है, तो अपीलीय न्यायालय के पास अपील का निर्णय करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। अन्यथा भी, यह स्वीकार किया जाता है कि अपील के लंबित रहने के दौरान डिक्री तैयार नहीं की गई थी और यदि डिक्री बाद में तैयार की जाती है, तो भी यह अपील या मामले के गुण-दोष को प्रभावित नहीं कर

सकती क्योंकि निष्पादन या किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका डिक्री के समान प्रभाव होगा। अन्यथा भी, अपीलकर्ता, जिन्होंने निचली अपीलीय अदालत के समक्ष अपील दायर की थी, डिक्री दायर न करने की अपनी ढिलाई या गलती का लाभ नहीं उठा सकते। इस प्रकार, इस तकनीकी आधार पर, निचली अदालत द्वारा पारित डिक्री को उलटा, संशोधित या मामले को वापस नहीं भेजा जा सकता क्योंकि यह सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 के मद्देनजर मामले के गुण-दोष को प्रभावित नहीं करता है।

12. अपीलार्थी को डिक्री का उपर्युक्त तकनीकी आधार उपलब्ध न होने का एक और कारण यह है कि यदि ऐसा आधार अपनाने की अनुमति दी जाती है तो अपीलार्थी निर्णय की प्रति संलग्न करते हुए अपील दायर कर सकते हैं और निर्णय की प्रति प्राप्त होने के तुरंत बाद निचली अदालत का रिकॉर्ड मंगवा सकते हैं, जो अपील दायर करने के लिए निर्णय सुनाए जाने के तुरंत बाद जारी किया जाना है ताकि डिक्री तैयार न की जा सके और प्रतिकूल निर्णय की स्थिति में, इस संबंध में आधार स्थापित किया जा सके। इस प्रकार यह आधार गलत है और मान्य नहीं है।

13. उपरोक्त के मद्देनजर, यह न्यायालय निचली अदालतों द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं पाता है। इस अपील में कोई महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न नहीं उठता है। द्वितीय अपील गलत और निराधार आधार पर दायर की गई है।

14. तदनुसार, द्वितीय अपील **खारिज** की जाती है।

(2025) 1 ILRA 169

अपील क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार,

द्वितीय अपील संख्या 151/2016

सूर्य कुमार त्रिपाठी मृतक एवं अन्य

बनाम

राम पाल

...अपीलार्थी

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील:- माधव चतुर्वेदी

प्रतिवादी के वकील: मयंक पांडे, अशोक शुक्ला, ब्रिजेश कुमार, निर्मल सिंह यादव, प्रिंस कुमार, राज कुमार सिंह, राज कुमार यादव, शैलेन्द्र कुमार सिंह, श्याम किशोर

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - यूपी जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 229-बी और 331- द्वितीय अपील - निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णयों और डिक््री के खिलाफ, - इस आधार पर कि अधिनियम, 1950 की धारा 331 द्वारा वाद को रोक दिया गया था - वादी-प्रतिवादी ने आरोप लगाया कि जाली अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर - एक बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था - एफआईआर - वाद - बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए - प्रतिवादी-अपीलकर्ता ने आपत्ति की कि अधिनियम, 1950 की धारा 331 द्वारा वाद को रोक दिया गया था, क्योंकि प्रतिवादी-प्रतिवादियों का नाम राजस्व रिकॉर्ड में दर्ज किया गया था - वाद को अनुमति दी गई और डिक््री की गई - सिविल अपील - अनुमति दी गई और डिक््री की गई - द्वितीय अपील - अदालत ने पाया कि, - वादी-प्रतिवादी ने धोखाधड़ी के आधार पर बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए वाद दायर किया, इस धोखाधड़ी वाले दस्तावेज़ के आधार पर बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था - कथित अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के निष्पादन को भी वादी-प्रतिवादी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है - माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बेचने के लिए अपंजीकृत समझौते के आधार पर या धोखाधड़ी पाए गए अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर अचल संपत्तियों के संबंध में कोई अधिकार, शीर्षक या हित हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि मुकदमा पोषणीय नहीं था - माना गया, विवादित भूमि के भूमिधर के रूप में वादी-प्रतिवादी धोखाधड़ी और गलत बयानी के आधार पर सिविल कोर्ट के समक्ष बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर कर सकते हैं क्योंकि राजस्व न्यायालय के पास बिक्री विलेख को रद्द करने की ऐसी राहत देने का अधिकार नहीं है और ऐसी परिस्थितियों में शीर्षक की घोषणा की आवश्यकता नहीं है - इसलिए, आरोपित निर्णयों और डिक््री में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है

विशेष अपील खारिज। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रजनी टंडन बनाम दुलाल रंजन घोष दस्तीदार एवं अन्य; (2009) 14 एससीसी 782,
2. श्री राम एवं अन्य बनाम प्रथम एडीजे एवं अन्य; (2001) 3 एससीसी 24,
3. कमला प्रसाद एवं अन्य बनाम किशनकांत पाठक एवं अन्य; (2007) 4 एससीसी 213,
4. नरेंद्र कुमार मित्तल एवं अन्य बनाम नूपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य; 2019 लीगल ईगल (एससी) 797/2019 (7) जेटी 553,
5. कुंदन सिंह बनाम अपर जिला न्यायाधीश, बिजनौर एवं अन्य; 2008 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2050,
6. शकील अहमद बनाम सैयद अखलाक हुसैन; 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1526,
7. छंगा व अन्य बनाम प्रथम एडीजे, जौनपुर; 1998 लीगल ईगल (एएलडी) 541/1998 (3) एडब्ल्यूसी 2094,

8. राम पदारथ बनाम द्वितीय एडीजे; 1989 आरडी 21 (ऑल) (एफबी)।

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार, द्वारा दिया गया)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुदीप सेठ, जिनकी सहायता अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री माधव चतुर्वेदी ने की और प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक शुक्ला को सुना गया ।

2. सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 की धारा 100 के तहत यह द्वितीय अपील अभिलेखों को मंगाने के अनुरोध के साथ दायर की गई है और इसके अवलोकन के बाद, यह तत्काल द्वितीय अपील स्वीकार की जाए और इसके अलावा अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, कोर्ट संख्या 17, लखनऊ द्वारा नियमित सिविल अपील संख्या 310/2003 में पारित दिनांक 27.01.2016 के निर्णय और डिक्री और छठे अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), कोर्ट संख्या 38, लखनऊ द्वारा नियमित वाद संख्या 156/1995 में पारित दिनांक 12.11.2003 के निर्णय और डिक्री को रद्द करने या कोई अन्य उपयुक्त डिक्री पारित करने की कृपा करें जिसे यह माननीय न्यायालय न्याय के हित में उचित और उचित समझे।

3. प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वादी-प्रतिवादी द्वारा दायर वाद उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे 1950 का अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 331 द्वारा वर्जित था, क्योंकि प्रतिवादी-प्रतिवादियों का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज था, इसलिए, उनके अधिकारों की घोषणा हेतु प्रार्थना के साथ वाद केवल राजस्व न्यायालय में ही दायर किया जा सकता था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि वादी-प्रतिवादी का विवादित भूमि पर कोई कब्जा नहीं था, इसलिए, सिविल न्यायालय द्वारा भी कोई राहत नहीं दी जा सकती थी।

4. उपरोक्त के आधार पर, प्रतिवादी अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि निचली अदालतों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री कानून की नजर में मान्य नहीं हैं और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए। उन्होंने रजनी टंडन बनाम दुलाल रंजन घोष दस्तीदार और अन्य; (2009) 14 एससीसी 782, श्री राम और अन्य बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और अन्य; (2001) 3 एससीसी 24, कमला प्रसाद और अन्य बनाम किशन कांत पाठक और अन्य; (2007) 4 एससीसी 213, नरेंद्र कुमार मित्तल और अन्य बनाम नूपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड और अन्य; 2019 लीगल ईगल (एससी) 797/2019 (7) जेटी 553 और कुंदन सिंह बनाम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, बिजनौर और अन्य; 2008 एससीसी ऑनलाइन ऑल 2050 पर भरोसा किया।

5. इसके विपरीत, प्रतिवादी के विद्वान वकील ने दलील दी कि वाद केवल बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए दायर किया गया था और निषेधाज्ञा के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई थी, इसलिए, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील की दलील कि कब्जे का तर्क दिया जाना आवश्यक था, गलत है और मान्य नहीं है क्योंकि यह मुद्दे में नहीं था। उन्होंने आगे दलील दी कि बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए सिविल कोर्ट में मुकदमा सही ढंग से दायर किया गया था क्योंकि शीर्षक की कोई घोषणा आवश्यक नहीं थी क्योंकि बेशक वादी-प्रतिवादी

विवादित भूमि के भूमिधर थे और इसलिए मुकदमा धोखाधड़ी के आधार पर दायर किया गया था। उन्होंने आगे दलील दी कि पावर ऑफ अटॉर्नी एक शून्य दस्तावेज था क्योंकि इसे वादी-प्रतिवादी द्वारा निष्पादित नहीं किया गया था और बिक्री विलेख को उक्त शून्य दस्तावेज के आधार पर निष्पादित किया गया था, इसलिए, बिक्री विलेख को इसकी सत्यता पर विचार करके रद्द किया जाना आवश्यक था।

6. वादी-प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने उपरोक्त आधार पर तर्क दिया कि निचली अदालतों ने कानून के अनुसार निर्णय और आदेश पारित किए हैं, जिसमें इस अदालत द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। अपील गलत और निराधार आधार पर दायर की गई है। इस अपील में कोई भी महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्न नहीं उठता है, इसलिए इसे स्वीकार करने की भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार अपील खारिज किए जाने योग्य है। उन्होंने शकील अहमद बनाम सैयद अखलाक हुसैन; 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1526, नरेंद्र कुमार मित्तल एवं अन्य बनाम नूपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य; 2019 लीगल ईगल (एससी) 797/2019 (7) जेटी 553 और छंगा एवं अन्य बनाम प्रथम अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, जौनपुर; 1998 लीगल ईगल (एलडी) 541/1998 (3) एडब्ल्यूसी 2094 पर भरोसा किया।

7. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

8. वादी-प्रतिवादी ने इस आधार पर बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर किया कि वादी-प्रतिवादी की ओर से प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में जाली पावर ऑफ अटॉर्नी दिनांक 30.03.1992 तैयार करके प्रतिवादी संख्या 2 से 6 के पक्ष में 23.05.1992 को बिक्री विलेख निष्पादित किया गया है। इसके बारे में पता चलने पर प्रतिवादियों के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। वादी-प्रतिवादी को कोई बिक्री प्रतिफल नहीं दिया गया है। यह भी आरोप लगाया गया था कि प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं के पक्ष में वादी-प्रतिवादी द्वारा दिनांक 11.10.1991 का कोई बिक्री समझौता निष्पादित नहीं किया गया था और न ही प्रतिवादी संख्या 1 बिक्री विलेख निष्पादित करने के लिए अधिकृत था। प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं ने लिखित बयान दाखिल करके मुकदमे का विरोध किया और आरोप लगाया कि बिक्री का समझौता वादी-प्रतिवादी द्वारा 11.10.1991 को निष्पादित किया गया था। इसके बाद उन्होंने प्रतिवादी संख्या 1 के पक्ष में विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु मुख्तारनामा निष्पादित किया। उक्त मुख्तारनामा के आधार पर विक्रय विलेख निष्पादित किया गया, जिसका विक्रय प्रतिफल वादी प्रतिवादी को अदा किया गया। प्रतिवादी संख्या 2 से 6 तक के नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज हैं। विक्रय प्रतिफल प्राप्त होने के बाद वादी-प्रतिवादी ने प्रतिवादियों को ब्लैकमेल करने के लिए नोटिस दिया और वाद दायर किया, जो 1950 के अधिनियम की धारा 331 के अंतर्गत वर्जित है। पक्षकारों की दलीलों के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा पाँच मुद्दे तय किए गए। तत्पश्चात, पक्षकारों द्वारा मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए गए। दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए, वाद को दिनांक 12.11.2003 के निर्णय एवं आदेश द्वारा डिक्री किया गया और दिनांक 23.05.1992 का विक्रय विलेख रद्द कर दिया गया। इससे व्यथित होकर, प्रतिवादी अपीलकर्ताओं द्वारा सिविल अपील संख्या 310/2003 दायर की

गई, जिसे दिनांक 27.01.2016 के निर्णय एवं डिक्री द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि की गई। अतः यह द्वितीय अपील दायर की गई है।

9. 1950 के अधिनियम की धारा 331, अधिनियम के अंतर्गत वादों आदि के संज्ञान का प्रावधान करती है। 1950 के अधिनियम की धारा 331 के अनुसार, अधिनियम द्वारा या उसके अंतर्गत प्रदान की गई व्यवस्था के अलावा, अनुसूची II के स्तंभ 4 में उल्लिखित न्यायालय के अलावा कोई अन्य न्यायालय, स्तंभ 3 में उल्लिखित किसी ऐसे वाद, आवेदन या कार्यवाही का संज्ञान नहीं लेगा जिसके संबंध में ऐसे किसी वाद या आवेदन के माध्यम से कोई राहत प्राप्त की जा सकती हो। अधिनियम 1950 की अनुसूची II के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि स्तंभ 3 के अंतर्गत ऐसी कोई कार्यवाही नहीं दर्शाई गई है जिसके आधार पर विक्रय विलेख को रद्द किया जा सके। हालाँकि, यह तर्क दिया गया कि चूँकि अधिकारों की घोषणा आवश्यक थी, इसलिए वाद 1950 के अधिनियम की धारा 229-बी के तहत संस्थित किया जाना चाहिए था। धारा 229-बी किसी जोत या उसके किसी भाग का असामी होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा घोषणात्मक वाद दायर करने का प्रावधान करती है। ये प्रावधान भूमिधर होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा दायर वाद पर भी यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे। धारा 229-बी के तहत राज्य के विरुद्ध अधिकारों की घोषणा के लिए वाद दायर किया जा सकता है। हालाँकि, ऐसे अधिकारों का दावा करने वाले अन्य व्यक्ति, यदि कोई हो, को भी पक्षकार बनाया जाना आवश्यक है।

10. निचली अदालत ने, 1950 के अधिनियम की धारा 331 के निषेध के मुद्दे पर विचार करते हुए, प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं द्वारा भरोसा किए गए **राम पदारथ बनाम द्वितीय एडीजे 1989 आरडी 21 (सभी) (एफबी)** के मामले में इस न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद, यह माना है कि चूँकि निर्विवाद रूप से वादी-प्रतिवादी विवादित भूमि का भूमिधर था और वह विवादित विक्रय विलेख के माध्यम से विवादित भूमि की बिक्री से इनकार कर रहा है और वह अपने हितों की रक्षा के लिए विक्रय विलेख को रद्द करवाना चाहता है, इसलिए, वह सिविल न्यायालय के समक्ष वाद दायर कर सकता था क्योंकि यदि विचाराधीन विक्रय विलेख मौजूद होता तो यह वादी-प्रतिवादी के हितों और अधिकारों के प्रतिकूल हो सकता था। विद्वान निचली अपीलीय अदालत ने निचली अदालत द्वारा दर्ज निष्कर्षों को बरकरार रखा है।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **श्री राम एवं अन्य बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश एवं अन्य (सुप्रा)** के मामले में, **राम पदारथ बनाम द्वितीय एडीजे 1989 आरडी 21 (सभी) (एफबी)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद यह माना है कि जहाँ प्रथम दृष्टया स्वामित्व और कब्जा रखने वाला एक दर्ज काश्तकार धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर प्राप्त बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए सिविल न्यायालय में वाद दायर करता है, उसे राजस्व न्यायालय में घोषणा के लिए वाद दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है, इसका कारण यह है कि ऐसे मामले में, प्रथम दृष्टया, दर्ज काश्तकार का स्वामित्व संदिग्ध नहीं है। संबंधित अनुच्छेद 4 और 7 नीचे उद्धृत हैं:-

“4. वर्तमान मामले में हम पाते हैं कि विक्रेता श्रीमती विद्यावती देवी ने स्वीकार किया है कि उन्होंने 12-7-1984 को अपीलकर्ताओं के पक्ष में एक पंजीकृत विक्रय विलेख निष्पादित किया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि उन्होंने उक्त भूमि का कब्जा अपीलकर्ताओं को सौंप दिया है और अपीलकर्ता उक्त भूमि के भूखंड पर काबिज हैं। यह भी अभिलेख में है कि अपीलकर्ताओं के नाम राजस्व अभिलेख में खातेदार के रूप में दर्ज करने का आदेश दिया गया है। उपरोक्त तथ्य दर्शाते हैं कि अपीलकर्ता 12-7-1984 के विक्रय विलेख के अनुसरण में विवादित भूखंड के कब्जे वाले दर्ज खातेदार हैं। अब विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या एक दर्ज खातेदार, जिसके पक्ष में प्रथम दृष्टया स्वामित्व है और जो कब्जे में है, को राजस्व न्यायालय में वाद दायर करना आवश्यक है या सिविल न्यायालय को किसी शून्य दस्तावेज को रद्द करने की राहत मांगने वाले वाद पर विचार करने और निर्णय देने का अधिकार है। राम पदारथ बनाम द्वितीय एडीजे [1989 आरडी 21 (एएलएल) (एफबी)] इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने मामले के इस पहलू पर विचार किया और इस प्रकार निर्णय दिया:

हमारा विचार है कि इंद्र देव बनाम राम प्यारी [(1982) 8 ALR 517] मामले में सही ढंग से निर्णय दिया गया है और उक्त निर्णय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, जबकि खंडपीठ का मामला, अयोध्या प्रसाद (डॉ.) बनाम गंगोत्री प्रसाद [1981 AWC 469] चकबंदी प्राधिकारियों के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है, लेकिन जहाँ तक यह माना गया है कि शून्य दस्तावेज के संबंध में वाद राजस्व न्यायालय में चलेगा, यह एक अच्छा कानून नहीं है। शून्य दस्तावेज को रद्द करने का वाद या कार्रवाई आम तौर पर दीवानी न्यायालय में चलेगी और किसी पक्ष को कानून के तहत इस राहत को प्राप्त करने के उसके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता, सिवाय इसके कि अधिकार या स्थिति की घोषणा और एक खातेदार की अनिवार्य रूप से आवश्यकता हो, ऐसी स्थिति में रद्द करने के लिए राहत अनावश्यक और निरर्थक होगी। एक दर्ज खातेदार, जिसके पक्ष में प्रथम दृष्टया स्वामित्व है, को उस शून्य दस्तावेज को रद्द करने के लिए राहत मांगने के संबंध में राजस्व न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के लिए शायद ही निर्देशित किया जा सकता है जिसके कारण उसे न्यायालय का दरवाजा खटखटाना पड़ा और ऐसे मामले में वह सहायक राहत का भी दावा कर सकता है, भले ही वह राजस्व न्यायालय द्वारा प्रदान की जा सकती हो।

7. उपर्युक्त निर्णयों के विश्लेषण के आधार पर, हमारी राय है कि जहां एक दर्ज खातेदार, जिसके पास प्रथम दृष्टया स्वामित्व है और जो कब्जे में है, धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर प्राप्त बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए सिविल न्यायालय में मुकदमा दायर करता है, उसे राजस्व न्यायालय में घोषणा के लिए मुकदमा दायर करने का निर्देश नहीं दिया जा सकता है, इसका कारण यह है कि ऐसे मामले में, प्रथम दृष्टया, दर्ज खातेदार का स्वामित्व संदिग्ध नहीं है। उसे भूमि पर अपने स्वामित्व की घोषणा की आवश्यकता नहीं है। स्थिति अलग होगी जहां एक व्यक्ति जो दर्ज खातेदार नहीं है, धोखाधड़ी या प्रतिरूपण के आधार पर सिविल न्यायालय में मुकदमा दायर करके बिक्री विलेख को रद्द करने की मांग करता है। वहां अनिवार्य रूप से वादी को अपने स्वामित्व की घोषणा की आवश्यकता होती है और इसलिए, उसे राजस्व न्यायालय का दरवाजा खटखटाने का निर्देश दिया जा सकता है, क्योंकि बिक्री विलेख शून्य होने के कारण उसे घोषणा और कब्जे के लिए राहत देने के लिए अनदेखा किया जाना चाहिए।

12. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कमला प्रसाद एवं अन्य बनाम किशन कांत पाठक एवं अन्य (सुप्रा)** के मामले में एक मुकदमे के संबंध में इस मुद्दे पर विचार किया जिसमें वादी का मामला यह था कि वादी के अलावा प्रतिवादी 10 से 12 का भी कृषि भूमि पर अधिकार था और दलीलों और साक्ष्यों और **श्री राम बनाम प्रथम एडीजे (सुप्रा)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले और इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि दाखिल-खारिज की कार्यवाही में वादी स्वयं दाखिल-खारिज न्यायालय के समक्ष गवाह के रूप में उपस्थित हुआ और उसने बिक्री विलेख के निष्पादन, बिक्री प्रतिफल की प्राप्ति और विक्रेताओं को उनके द्वारा खरीदी गई संपत्तियों पर कब्जा देने के तथ्य को स्वीकार किया, जिसके आधार पर प्रतिवादी प्रतिवादियों का नाम अधिकारों के रिकॉर्ड में दाखिल-खारिज कर दिया गया था और वादी का नाम हटा दिया गया था। उक्त तथ्यों और परिस्थितियों में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि निचली अदालतें इस निष्कर्ष पर पहुँचने में पूरी तरह सही थीं कि इस तरह के मुकदमे की सुनवाई केवल राजस्व न्यायालय द्वारा ही की जा सकती है और सिविल न्यायालय का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और ऐसी परिस्थितियों में अधिकारों की घोषणा भी आवश्यक है। **कुंदन सिंह बनाम अपर जिला न्यायाधीश, बिजनौर व अन्य (सुप्रा)** मामले में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने भी **कमला प्रसाद व अन्य बनाम किशनकांत पाठक व अन्य और श्री राम व अन्य बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश व अन्य (सुप्रा)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए इसी तरह का विचार व्यक्त किया था।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **नरेंद्र कुमार मित्तल एवं अन्य बनाम नूपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य (सुप्रा)** के मामले में, उपरोक्त निर्णयों और **राम पदारथ बनाम द्वितीय एडीजे, सुल्तानपुर एवं अन्य (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय पर विचार करने के बाद अपील को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि 1950 के अधिनियम की धारा 331 किसी पक्षकार को किसी दस्तावेज़ को रद्द कराने के लिए सक्षम न्यायालय में जाने से वंचित नहीं करती है, खासकर जब प्रथम दृष्टया दर्ज भूमिधर धारक का स्वामित्व संदिग्ध न हो और राजस्व न्यायालय के पास धोखाधड़ी और गलत बयानी के आधार पर किसी दस्तावेज़ को रद्द करने से राहत देने का क्षेत्राधिकार नहीं है। संबंधित पैराग्राफ 7 नीचे उद्धृत है:-

7. इस मामले में, वादी ने दलील दी है कि उसने विवादित संपत्ति पांच बिक्री विलेखों के तहत प्रथम प्रतिवादी से 17.10.1998 की तारीख से खरीदी थी। धोखाधड़ी और गलत बयानी के आधार पर 15.06.2006 की बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर किया गया था। वादी ने एक किरायेदार के रूप में अपने अधिकार और शीर्षक या अपने शीर्षक या स्थिति की घोषणा के संबंध में कोई राहत नहीं मांगी थी। जैसा कि ऊपर कहा गया है, दायर मुकदमे में मांगी गई एकमात्र राहत 15.06.2006 की कथित बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए थी। हमारा विचार है कि अधिनियम की धारा 331 किसी पक्ष को दस्तावेज़ को रद्द करने के लिए सक्षम न्यायालय का दरवाजा खटखटाने के अधिकार से वंचित नहीं करती है, खासकर जब, प्रथम दृष्टया, दर्ज किरायेदार धारक का शीर्षक संदिग्ध नहीं है। राजस्व न्यायालय के पास धोखाधड़ी और गलत बयानी के आधार पर विलेख को रद्द करने की राहत देने का क्षेत्राधिकार नहीं है।

14. उपरोक्त के मद्देनजर, यदि कोई व्यक्ति, जिसके पास प्रथम दृष्टया स्वामित्व है और उसके स्वामित्व पर कोई संदेह नहीं है, बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है, तो वह धोखाधड़ी और गलत बयानी के आधार पर सिविल न्यायालय के समक्ष बिक्री विलेख को रद्द करने के लिए मुकदमा दायर कर सकता है, क्योंकि राजस्व न्यायालय के पास इन आधारों पर बिक्री विलेख को रद्द करने से राहत देने का अधिकार क्षेत्र नहीं है और ऐसी परिस्थितियों में स्वामित्व की घोषणा की आवश्यकता नहीं है।

15. वर्तमान मामले में, विवादित भूमि के भूमिधर के रूप में वादी-प्रतिवादी का स्वामित्व या उसके स्वामित्व पर कोई संदेह प्रतिवादी-अपीलकर्ताओं द्वारा नहीं उठाया जा सका और यह इसलिए भी नहीं उठाया जा सकता था क्योंकि कथित जाली बिक्री विलेख उसकी ओर से निष्पादित किया गया था। इस प्रकार, 1950 के अधिनियम की धारा 331 के निषेध की दलील पर निचली अदालतों द्वारा सही ढंग से विचार किया गया और निर्णय दिया गया कि यह धारा 331 द्वारा निषिद्ध नहीं है। इस अदालत को निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं लगती।

16. इस न्यायालय ने, **छंगा एवं अन्य बनाम प्रथम अपर जिला न्यायाधीश, जौनपुर (सुप्रा)** के मामले में, यह अभिनिर्धारित किया है कि 1950 के अधिनियम की धारा 331 से यह स्पष्ट है कि अनुसूची II के स्तंभ 3 में स्तंभ 4 में उल्लिखित प्राधिकारी के समक्ष प्राप्त होने वाली अनुतोषों पर सिविल न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता। प्रासंगिक अनुच्छेद 7 नीचे उद्धृत है:-

7. इस प्रकार, यह धारा स्पष्ट रूप से स्पष्ट करती है कि वे वाद हेतुक जिनके संबंध में कोई कार्यवाही या वाद उक्त अधिनियम के अंतर्गत प्रदत्त अनुतोष द्वारा निर्दिष्ट किया जा सकता है, उनका संज्ञान सिविल न्यायालय द्वारा नहीं लिया जा सकता। यह आगे यह भी स्पष्ट करता है कि वे अनुतोष जो अनुसूची II के कॉलम 3 में कॉलम 4 में उल्लिखित प्राधिकारी के समक्ष प्राप्त किए जा सकते हैं, सिविल न्यायालय द्वारा ग्रहण नहीं किए जा सकते।

17. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी को चुनौती न देना, जिसके आधार पर प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 से 6 के पक्ष में बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था, यह मानने का आधार हो सकता था कि मुकदमा स्वीकार्य नहीं है। कथित अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के निष्पादन को वादी-प्रतिवादी द्वारा अस्वीकार कर दिया गया है और निचली अदालतों द्वारा इसे जाली पाया गया है, जिसके आधार पर प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा प्रतिवादी संख्या 2 से 6 के पक्ष में पंजीकृत बिक्री विलेख निष्पादित किया गया है, जबकि उक्त अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर कोई भी अधिकार या शक्ति हस्तांतरित या प्रदान नहीं की जा सकती थी।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रजनी टंडन बनाम दुलाल रंजन घोष दस्तीदार एवं अन्य (सुप्रा)** मामले में यह माना है कि ऐसे मामलों में जहाँ दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति दस्तावेज़ को पंजीकरण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर सकता और दस्तावेज़ प्रस्तुत करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को मुख्तारनामा दे देता है, धारा 33 के प्रावधान लागू होते हैं और केवल ऐसे मामलों में ही उक्त मुख्तारनामा को अधिनियम की धारा 33(1)(क) के तहत निर्धारित तरीके से निष्पादित और प्रमाणित किया जाना आवश्यक है। हालाँकि, यह

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 225

मामला अपीलकर्ताओं के लिए कोई सहायक नहीं है क्योंकि वादी-प्रतिवादी का मामला अधिनियम की धारा 33(1)(क) के अंतर्गत नहीं आता है। विक्रय विलेख को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि विक्रय विलेख को धोखाधड़ीपूर्ण अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर निष्पादित किया गया है, जिसे प्रतिवादी-प्रतिवादी द्वारा निष्पादित नहीं किया गया है और यह सिद्ध भी हो चुका है। **शकील अहमद बनाम सैयद अखलाक हुसैन (सुप्रा)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के नवीनतम निर्णय के आलोक में, जिसमें पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर कब्जे और मध्यावधि लाभ के लिए वाद दायर किया गया था और मध्यावधि लाभ सहित कब्जे की डिक्री प्रदान की गई थी। चुनौती दिए जाने पर उच्च न्यायालय ने निष्कर्षों की पुष्टि की। हालाँकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी अपंजीकृत विक्रय समझौते या अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर अचल संपत्तियों के संबंध में कोई अधिकार, स्वामित्व या हित हस्तांतरित नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार, भले ही विलेख पर हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति उसे प्रस्तुत कर सकता था, फिर भी वह अपंजीकृत पावर ऑफ अटॉर्नी के आधार पर अचल संपत्तियों के संबंध में स्वामित्व हस्तांतरित नहीं कर सकता था, जिसे धोखाधड़ीपूर्ण पाया गया है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वाद विचारणीय नहीं था और इसे चुनौती न देने से विवादित निर्णय और डिक्री को अमान्य नहीं किया जाएगा क्योंकि उठाए गए आधारों के मद्देनजर इस पर विचार किया गया है। इसमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है।

19. उपर्युक्त के मद्देनजर, निचली अदालतों ने कानून के अनुसार विवादित निर्णय और आदेश पारित किए हैं, जिससे इस अदालत को किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इस अपील में कोई ठोस कानूनी प्रश्न नहीं उठता। यह अपील निराधार और गलत आधार पर दायर की गई है।

20. तदनुसार, द्वितीय अपील स्वीकार किए जाने के चरण में **खारिज** की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 175

अपीलीय क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेन्द्र

आदेश से पहली अपील संख्या-1780 वर्ष 2024

अन्य सम्बद्ध मामले

आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ... अपीलार्थी

बनाम

श्रीमती आरती देवी और अन्य

... प्रतिपक्षीगण

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: राहुल सहाय

प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता: अभिनव त्रिवेदी, आदर्श कुमार, श्रीश श्रीवास्तव

क. दीवानी कानून - मोटर वाहन अधिनियम, 1988-धारा 147, 149 और 150(मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 2019 द्वारा संशोधित) - मुआवजे की बरामदगी के लिए बीमाकर्ता का अधिकार- "भुगतान करें और वसूल करें" सिद्धांत-धारा 149(4) के परंतुक की चूक - बीमाकर्ता की देयता पर प्रभाव-धारित-बीमाकर्ता पहले दुर्घटना पीड़ितों को मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है और नीतिगत शर्तों का उल्लंघन होने पर वाहन मालिक से राशि वसूल सकता है - मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 2019 "भुगतान करें और पुनर्प्राप्त करें" के सिद्धांत को समाप्त नहीं करता है। (प्रस्तर-1 से 39)

बी. धारा 147(6) के तहत बीमाकर्ता का वैधानिक दायित्व - धारा 147(6) की उपस्थिति जो अनिवार्य करती है कि बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करते हैं, वाहन मालिक से प्रतिपूर्ति मांगने से पहले पीड़ितों को मुआवजा देने के लिए बीमाकर्ता के कर्तव्य को पुष्ट करता है। संशोधन बीमाकर्ता को उसकी प्रारंभिक देयता से मुक्त नहीं करता है। (प्रस्तर-18)

सी. क्षतिपूर्ति दायित्व अप्रभावित-धारा 149 को धारा 150 से बदलने से तीसरे पक्ष के जोखिमों की क्षतिपूर्ति करने के लिए बीमाकर्ता के दायित्व में कोई बदलाव नहीं होता है। परंतुक की चूक "भुगतान करें और बरामदगी" के सुस्थापित सिद्धांत को नकारती नहीं है जो दुर्घटना पीड़ितों के अधिकारों की रक्षा करना जारी रखता है। (प्रस्तर-21)

अपील खारिज कर दी गई। (ई-6)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. एन.आई.सी.एल. बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य (2004) जेटी 1 एस.सी. 109
2. सतीदेवी बनाम प्रसन्ना (2010) 5 एस.सी.सी. 622
3. यू.ओ.आई. बनाम देवकी नंदन अग्रवाल (1991) ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू 2754
4. मैसर्स यूनिक ब्यूटाइल ट्यूब इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूपी फाइनेंशियल कॉर्प और अन्य (2003) ए.आई.आर. एस.सी. 2103
5. न्यू इंडिया असिस्टर। कं, शिमला बनाम कमला और अन्य (2001) 4 एस.सी.सी. 342
6. एस. अय्यपन बनाम यूआईआई कंपनी लिमिटेड और अन्य (2013) 7 एस.सी.सी. 62
7. आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुरेश और अन्य (2024) 2 ए.डी.जे. 576

(माननीय न्यायमूर्ति श्री क्षितिज शैलेंद्र द्वारा उद्घोषित)

मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 2019 (32 वर्ष 2019) का मालिक से

मुआवजा वसूलने के बीमाकर्ता के अधिकार पर प्रभाव

1. अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के अधिवक्ता श्री आदित्य सिंह परिहार, श्री एस.डी. ओझा, और श्री श्रीश श्रीवास्तव, दावेदार-प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता और श्री अभिनव त्रिवेदी के साथ-साथ वाहन मालिक और चालक के अधिवक्ता श्री आदर्श कुमार को सभी संबंधित अपीलों में सुना और अवलोकन किया।

2. इन सभी अपीलों में तथ्य और कानून के सामान्य प्रश्न शामिल हैं और इसलिए, एक संयुक्त निर्णय द्वारा तय किया जा रहा है। सुविधा के लिए, आदेश संख्या-1780 वर्ष 2024 से पहली अपील को प्रमुख वाद के रूप में माना जाएगा।

3. बीमा कंपनी के कहने पर प्रस्तुत अपील दिनांक 01.06.2024 के फैसले को चुनौती देती है, जिसके तहत पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा न्यायाधिकरण, कानपुर देहात ने एम.ए.सी. संख्या-186 वर्ष 2022 (श्रीमती आरती देवी और अन्य बनाम प्रबंधक आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य) को आंशिक रूप से उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक और चालक के खिलाफ मुआवजे के रूप में 20,11,800/- रुपये की राशि देने की अनुमति दी है, इस अवलोकन के साथ कि वाहन का बीमा किया जा रहा है। अपीलकर्ता-कंपनी, अपीलकर्ता को मालिक और चालक से मुआवजे की राशि वसूलने का अधिकार होगा। मुआवजे का भुगतान करने के लिए प्रारंभिक दायित्व अपीलकर्ता-बीमा कंपनी पर डाल दिया गया है।

4. प्रस्तुत अपील को जन्म देने वाले संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि 29.05.2022 को एक सड़क दुर्घटना घटित हुई, जिसमें प्रदीप कुमार नामक व्यक्ति, जो ईको कार संख्या यू.पी. 90 यू-9831 में बैठा हुआ था, घायल हो गया और घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गई। उक्त दुर्घटना बस संख्या यू.पी. 77 टी-5052 के कारण हुई, जो अपीलकर्ता-बीमा कंपनी के साथ बीमित थी। मृतक के कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा मुआवजे का दावा करते हुए एक दावा याचिका दायर की गई थी। न्यायाधिकरण ने बस चालक और कार चालक की लापरवाही से गाड़ी चलाने के संबंध में मुद्दों को तैयार करने के बाद और ये कि क्या दुर्घटना की तारीख को ड्राइवरों के पास वैध चालक अनुज्ञप्ति था, बीमा का तथ्य और किस पक्ष द्वारा और किस हद तक मुआवजे का भुगतान करने की देयता थी, ने आक्षेपित निर्णय और आदेश द्वारा दावा याचिका का फैसला किया।

5. जब अपील प्रथम तिथि पर विचारार्थ प्रस्तुत हुई, तब इस न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों को, जिसमें मोटरयान अधिनियम, 1988 (जिसे आगे "अधिनियम, 1988" कहा जाएगा) की धारा 149 की उपधारा (4) के उपबंध को मोटरयान (संशोधन) अधिनियम, 2019 (अधिनियम संख्या 32 वर्ष 2019) द्वारा विलोपित किए जाने के आलोक में उठाई गई विधिक आपत्ति भी सम्मिलित थी, अभिलेखित किया तथा

27.09.2024 को अपील स्वीकार करते हुए अश्रुत पक्षकारों को नोटिस जारी किए। पक्षों का प्रतिनिधित्व किये जाने के बाद, न्यायालय ने दिनांक 08.11.2024 के एक आदेश द्वारा न्यायाधिकरण के अभिलेखों को तलब किया। 09.01.2025 को अपील पर प्रदर्श से सुनवाई की गई और फैसला सुरक्षित रख लिया गया।

कानूनी मुद्दा जो कि शामिल है:

6. इन अपीलों में दिया जाने वाला निर्णय, मोटरयान (संशोधन) अधिनियम, 2019 (अधिनियम संख्या 32 सन् 2019) के आलोक में एक अत्यंत महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न को उद्भूत करता है, जिसका निर्णय भारत में अब तक नहीं हुआ है, जैसा कि न्यायालय को सूचित किया गया। अधिसूचना दिनांक 25.02.2022 द्वारा, जिसे संशोधन अधिनियम, 2019 की धारा 1(2) के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए जारी किया गया, विभिन्न धाराएँ, जिनमें संशोधन अधिनियम की धारा 51 भी सम्मिलित है, दिनांक 01.04.2022 से प्रभावी की गई। यही धारा 51 अधिनियम, 1988 के अध्याय-11 को प्रतिस्थापित कर नए अध्याय-11 से प्रतिस्थापित करती है, जो वर्तमान प्रकरण के लिए प्रासंगिक है। जब इसे अधिनियम की धारा 166(3) के साथ पढ़ा जाता है, जिसके अंतर्गत दुर्घटना की तिथि से छह माह की अवधि के भीतर दावा याचिका प्रस्तुत करने की सीमा निर्धारित की गई है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि नए प्रतिस्थापित अध्याय-11 के प्रावधान उन मामलों पर लागू होंगे जो 01.04.2022 के बाद घटित दुर्घटनाओं से उत्पन्न हुए हैं। विवाद का प्रश्न यह है कि क्या अधिनियम, 1988 की धारा 149 की उपधारा (4) से संलग्न उपबंध (proviso) को विलोपित कर, संशोधन अधिनियम, 2019 की धारा 150 द्वारा उसके प्रतिस्थापन के पश्चात, बीमाकर्ता की यह देयता कि वह मुआवजा राशि का भुगतान करे तथा तत्पश्चात वाहन स्वामी से उसकी वसूली करने का अधिकार, समाप्त हो गया है और 01.04.2022 के बाद घटित दुर्घटनाओं के संबंध में अब वह अधिकार विद्यमान नहीं है?

बीमाकर्ता की ओर से तर्क

7. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया है कि चूंकि दुर्घटना संशोधन अधिनियम के लागू होने के बाद हुई थी, इसलिए न्यायाधिकरण अपीलकर्ता को बरामदगी के अधिकार के साथ दावेदारों को मुआवजे का भुगतान करने का निर्देश जारी करना उचित नहीं था। अपनी प्रस्तुतियों को प्रदर्श से बताते हुए, यह आग्रह किया जाता है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 149 की उप-धारा (4) से जुड़े प्रावधान से उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक से मुआवजा वसूलने का बीमा कंपनी का अधिकार है, हालांकि, उक्त प्रावधान को अधिनियम वर्ष 2019 द्वारा हटा दिया गया है और इसलिए, नीति के उल्लंघन के मामले में, यह केवल मालिक है जिसके खिलाफ सीधे पंचाट दिया जा सकता है और बीमाकर्ता मालिक को क्षतिपूर्ति करने के लिए किसी भी दायित्व से मुक्त होने के लिए उत्तरदायी है। आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि कानून में उपयोग की जाने वाली भाषा स्पष्ट और सरल होने के कारण, ऐसा कुछ भी नहीं पढ़ा जा सकता है जो कानून में शामिल नहीं है और इसलिए, पहले के निर्णयों में दावेदारों को पहले मुआवजे का भुगतान करने और फिर मालिक से उसे वसूलने का अधिकार है, इसका कोई आवेदन नहीं होगा जैसा कि अब तक किसी भी प्राधिकरण में नहीं है। अधिनियम वर्ष 2019 द्वारा किए गए संशोधनों के प्रभाव की जांच की गई है। अधिनियम वर्ष 1988 के पूरे अध्याय XI को नए अध्याय XI द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है और अधिनियम वर्ष 1988 की धारा 149 के स्थान पर, धारा

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 229

150 को प्रतिस्थापित किया गया है, जिसमें कोई उप-धारा (4) के साथ पहले संलग्न कोई प्रावधान/परन्तुक शामिल नहीं है जो बीमाकर्ता को पॉलिसी के उल्लंघन के मामले में राशि की बरामदगी करने का अधिकार देता है। अधिनियम वर्ष 2019 के अधिनियमन के पीछे के उद्देश्यों और कारणों के कथन पर भरोसा करते हुए, यह आग्रह किया जाता है कि विभिन्न हितधारकों की शिकायतों और सुझावों के रूप में कई अभ्यावेदनों और सिफारिशों पर विचार करने के बाद, विधायिका ने अपने विवेक से, सड़क दुर्घटनाओं को कम करने और यातायात नियमों और विनियमों की अवहेलना करने और सड़क सुरक्षा और परिवहन प्रणाली में सुधार के लिए संशोधन अधिनियम को अस्तित्व में लाया है। ऐसे मामलों की बाढ़ आ गई है जहां या तो फर्जी दावे किए जाते हैं या दावेदार प्रतिवादजनक वाहन के मालिकों के साथ सांठगांठ करते हैं और इस तरह से आगे बढ़ते हैं ताकि अंततः, हालांकि बीमा पॉलिसी का उल्लंघन पाया जाता है, बीमा कंपनी के खिलाफ पहली बार में मुआवजे का भुगतान करने की देयता लागू की जाती है, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि मालिक की भूमिका तस्वीर में आ जाएगी जब उसके खिलाफ बरामदगी जारी की जाएगी, तब तक दावेदारों के पास होगा मुआवजा दिया जाएगा और एक ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जहां वर्षों तक, मालिक दायित्व से मुक्त रहेंगे।

8. अपनी प्रस्तुतियों को प्रदर्श से बताते हुए, श्री परिहार द्वारा निम्नानुसार आग्रह किया गया है: -

(ए) धारा 149(4) और संशोधित प्रावधान धारा 150(4) दर्शाती है कि असंशोधित धारा 149(2) बीमा कंपनी को दो बचाव प्रदान करती है:

- i. अधिनियम की धारा 149(2)(a) का उल्लेख किया गया नीति के उल्लंघन का मामला और
- ii. अधिनियम की धारा 149(2)(b) के अनुसार नीति शून्य है।

(बी) असंशोधित प्रावधान में यह निर्धारित किया गया है कि धारा 149(2)(बी) द्वारा प्रदान की गई स्थिति को छोड़कर, बीमाकर्ता दायित्व से बचने की स्थिति में नहीं होगा क्योंकि उसे उपरोक्त प्रावधान के तहत मालिक के खिलाफ अधिकार मिला है। इसलिए, धारा 149(2)(ए) के तहत प्रदान की गई पॉलिसी के उल्लंघन की स्थिति में, बीमा कंपनी को उत्तरदायी ठहराया जाएगा और वह धारा 149(4) के परंतुक के आलोक में इसकी बरामदगी कर सकती है।

(ग) संशोधित धारा 150(2) बीमा कंपनी को तीन बचाव प्रदान करती है:

- i. अधिनियम की धारा 150(2)(a) के तहत उल्लिखित नीति के उल्लंघन का मामला,
- ii. अधिनियम की धारा 150(2)(b) के अनुसार नीति शून्य है, और
- iii. प्रीमियम की प्राप्ति न होना।

(घ) संशोधित प्रावधान, अर्थात् धारा 150(4) में प्रावधान है कि धारा 150(2) द्वारा प्रदान की गई स्थितियों को छोड़कर, बीमाकर्ता दायित्व से बचने की स्थिति में नहीं होगा। इसका अर्थ यह है कि यदि मामला अधिनियम की धारा 150(2) में परिलक्षित किसी भी बचाव के अंतर्गत आता है, तो बीमाकर्ता दायित्व से बच सकता है।

(ड) पहले के सभी पूर्वोदाहरण अपना पूर्ववर्ती मूल्य खो देते हैं क्योंकि वे पहले के असंशोधित उपबंध से संबंधित हैं और इसलिए नए संशोधित उपबंध और इसके निहितार्थ पर विचार नहीं करते हैं। यदि दावेदारों के तर्कों को स्वीकार कर लिया जाए कि संशोधन अधिनियम द्वारा उपबंध के विलोपन के पश्चात भी बीमा कंपनी मुआवजा राशि के भुगतान के लिए उत्तरदायी रहेगी, तो उसे प्रतिवाद के आधार उठाने की अनुमति देना एक निरर्थक प्रावधान सिद्ध होगा और किसी भी स्थिति में बीमा कंपनी का प्रतिरक्षा प्रस्तुत किया जाना ग्राह्य नहीं होगा।

(च) भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के अंतर्गत दी गई शक्ति अनन्य रूप से उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है और किसी मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए केवल उच्चतम न्यायालय द्वारा ही इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए भारत के संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्ति का उपयोग करने वाले माननीय सर्वोच्च न्यायालय के सभी निर्णयों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

(छ) बीमा कंपनी के मालिक से बरामदगी के अधिकार के संबंध में प्रमुख निर्णय, अर्थात्, **नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य, जेटी 2004(1) एस.सी.109**, तब सुनाया गया था जब धारा 149 की उप-धारा (4) का परंतुक कानून की किताब में मौजूद था और सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष मामला परंतुक के संबंध में धारा 149 की व्याख्या से उत्पन्न हुआ था और एक बार संशोधन के बाद परंतुक को जगह नहीं मिलती है, उच्चतम न्यायालय या इस न्यायालय द्वारा निर्धारित किसी भी कानून को उन मामलों के संबंध में नहीं पढ़ा जाएगा जहां संशोधन अधिनियम के लागू होने के बाद दुर्घटना हुई थी।

(ज) स्टेयर डिसीसिस का सिद्धांत न्यायालयों को समान तथ्यों और कानून से जुड़े मामलों का समाधान करते समय उच्चतर न्यायालयों के पूर्व निर्णयों का पालन करने का निदेश देता है। प्रतिपक्षियों के तर्क और उनके द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों को घूरने के निर्णय के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो यह सुझाव देते हैं कि बीमाकर्ता दायित्व से बच नहीं सकते हैं और यह कि 'पे एंड रिकवर' अभी भी वहीं है जहां देयता विवादित है, कोई आधार नहीं है क्योंकि वे अधिनियम, 1988 के अब हटाए गए प्रावधानों पर आधारित हैं।

(झ) अधिनियम में संशोधन प्रकृति में संभावित हैं और इसलिए, स्वर्ण सिंह के मामले का जनादेश उन सभी मामलों के लिए आधार होगा जिनमें दुर्घटना की घटना संशोधन के लागू होने से पहले की है, यानी 1.4.2022, लेकिन इससे अन्यथा नहीं।

(ञ) यह एक तुच्छ कानून है कि व्याख्या/निर्माण का प्राथमिक नियम यह है कि विधायिका की मंशा विधायिका द्वारा स्वयं प्रयोग किए जाने वाले शब्दों में पाई जानी चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सतीदेवी बनाम प्रसन्ना, (2010)5 एस.सी.सी. 622** के मामले में माना है कि यदि प्रयुक्त शब्द केवल एक निर्माण में सक्षम हैं तो यह अदालतों के लिए इस आधार पर किसी अन्य काल्पनिक निर्माण को अपनाने के लिए खुला नहीं होगा कि इस तरह का काल्पनिक निर्माण अधिनियम के कथित उद्देश्य और नीति के साथ अधिक सुसंगत है। कानून

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 231

के भौतिक प्रावधानों में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या उनके सादे व्याकरणिक अर्थ में की जानी चाहिए और यह केवल तभी होता है जब ऐसे शब्द दो निर्माणों में सक्षम होते हैं कि अधिनियम की नीति या उद्देश्य को प्रभावी करने का प्रश्न वैध रूप से उठ सकता है।

(ट) भारत संघ बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, 1991 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू 2754 के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था दी है कि न्यायालय विधान को पुनः लिख नहीं सकता है या उसे पुनः तैयार नहीं कर सकता है। एक अदालत किसी कानून में शब्दों को जोड़ नहीं सकती है या उन शब्दों को नहीं पढ़ सकती है जो इसमें नहीं हैं। यहां तक कि अगर कानून में कोई दोष या चूक है, तो अदालत दोष को ठीक नहीं कर सकती है या चूक की आपूर्ति नहीं कर सकती है।

(ठ) सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में *कॉसस ओमिसस कहावत* को बरकरार रखा है, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इस तरह की चूक को न्यायिक व्याख्या द्वारा संबोधित नहीं किया जा सकता है। *मैसर्स यूनिफाइड ट्यूब इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूपी फाइनेंशियल कॉरपोरेशन और अन्य*, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2103 में, यह माना गया था कि विधायिका की चूक (यदि कोई हो) को न्यायिक व्याख्या द्वारा नहीं भरा जा सकता है। यदि कोई कानून किसी विशेष स्थिति को छोड़ देता है, तो अदालत उस चूक को दूर करने के लिए शब्द नहीं डाल सकती है। ऐसी परिस्थिति में, किसी प्रावधान को पढ़ना जब विधायिका ने अपने विवेक से किसी उपबंध या उसके हिस्से को विशेष रूप से छोड़ दिया है, हटा दिया है या निरस्त कर दिया है, तो यह कानून के प्रति हिंसा करने के समान होगा और ऐसा कानून की स्पष्ट भाषा के साथ नहीं किया जाना चाहिए।

(ड) यहां तक कि जो कानून लाभकारी हैं, उन्हें वैधानिक भाषा की बाधाओं का पालन करना चाहिए, विधायी इरादे और शाब्दिक व्याख्या के बीच संतुलन सुनिश्चित करना चाहिए: सिद्धांत कि *"कानून वही है जो पाठ कहता है"* अदालत के फैसलों को रेखांकित करता है। जबकि लाभकारी कानून एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, यह विधायिका द्वारा तैयार किए गए कानूनों की स्पष्ट और विशिष्ट भाषा को ओवरराइड नहीं कर सकता है। अदालत विधायिका द्वारा स्थापित ढांचे से आगे नहीं जा सकती है।

9. अपनी प्रस्तुतियों के समर्थन में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्राधिकारियों पर भरोसा किया है:

(1) न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी, शिमला बनाम कमला और अन्य, 2001(4) एस.सी.सी. 342

(2) नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य, जेटी 2004 (1) एस.सी. 109

(3) एस. अय्यपन बनाम यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और दूसरा, 2013(7) एस.सी.सी. 62

(4) मैसर्स यूनिफाइड ट्यूब इंडस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम और अन्य, ए.आई.आर. 2003 एस.सी. 2103 (5) सतीदेवी बनाम प्रसन्ना और अन्य, 2010

(5) एस.सी.सी. 622

(6) भारत संघ बनाम देवकी नंदन अग्रवाल, 1991 ए.आई.आर. एस.सी.डब्ल्यू 2754

(7) आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुरेश और 2 अन्य, 2024 (2) ए.डी.जे. 576

दावेदारों और मालिक की ओर से तर्क

10. इसके विपरीत, दावेदारों-प्रतिपक्षियों के साथ-साथ उल्लंघन करने वाले वाहन के मालिक और चालक के अधिवक्ता निम्नानुसार प्रस्तुत करते हैं: -

(क) अधिनियम वर्ष 2019 द्वारा शामिल किए गए संशोधनों से बीमाकर्ता के पहले मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व को समाप्त नहीं किया जाएगा और नई प्रतिस्थापित धारा 150 के आधार पर धारा 149 की उप-धारा (4) के परंतुक को हटाने के बावजूद, बीमाकर्ता को मुआवजे का भुगतान करना होगा और मालिक से भुगतान किया गया मुआवजा वसूलने का अधिकार अभी भी बरकरार रहेगा।

(ख) अधिनियम वर्ष 1988 की धारा 147 के अनुसार बीमा पॉलिसी जारी करने और देयता को सीमित करने की आवश्यकताओं को विभिन्न उप-धाराओं के आलोक में पढ़ा जाना चाहिए, विशेष रूप से उप-धारा (1)(क), (ख) और (5) और धारा 149 में पिछली उप-धारा (4) और धारा 150 की नई प्रतिस्थापित उप-धारा (4) के साथ उक्त प्रावधान का एक संयुक्त पठन यह प्रकट करेगा कि जहां तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, जहां तक कि धारा 149 में पिछली उप-धारा (4) और धारा 150 की नई प्रतिस्थापित उप-धारा (4) के साथ बीमा कंपनी द्वारा वाहन का संबंध है।

(ग) आज की स्थिति के अनुसार, उच्चतम न्यायालय ने कतिपय निर्णय पारित किए हैं जिनके द्वारा बीमा कंपनी को बरामदगी का अधिकार दिया गया है और इस तथ्य पर विचार करते हुए कि यह अधिनियम लाभकारी उद्देश्य वाला एक लाभकारी विधान है, बीमा कंपनी का यह तर्क कि अधिनिर्णय मालिक के विरुद्ध किया जाना है और बीमा कंपनी को मालिक को क्षतिपूर्ति करने से पूरी तरह मुक्त किया जाना है, को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

(घ) मृतक या स्वयं घायल होने के दावेदार वाहन के मालिक से राशि वसूलने की स्थिति में नहीं होंगे और इसलिए, अधिनियम के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, बीमा कंपनी द्वारा दावेदारों को तत्काल मुआवजे का भुगतान किया जाना होगा।

(ङ) यदि बीमा कंपनी बीमा पॉलिसी जारी करती रहती है और वैध चालक अनुज्ञप्ति या परमिट या ऐसे अन्य घटकों के अस्तित्व जैसी आवश्यकताओं की जांच किए बिना इसका नवीकरण करती है, यदि अधिकरण के समक्ष कार्यवाही के दौरान नीति का उल्लंघन प्रकाश में आता है, तो कंपनी दोषी है, तो वह मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व से स्वयं को मुक्त नहीं कर सकती है और फिर मालिक से बरामदगी नहीं कर सकती है।

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 233

(च) धारा 149 को प्रतिस्थापित धारा 150 द्वारा प्रतिस्थापित किए जाने के बावजूद, संशोधन से पहले अधिनियम वर्ष 1988 की धारा 147(5) के तहत प्रदान किए गए जोखिम की क्षतिपूर्ति करने के लिए बीमा कंपनी की देयता को दूर नहीं किया गया है, बल्कि उक्त उप-धारा को अब संशोधन के बाद अधिनियम की उप-धारा (6) के रूप में पुनः पेश किया गया है और इसलिए, दावेदारों को पहले राशि का भुगतान करने के लिए बीमा कंपनी की देयता समाप्त नहीं होती है।

(छ) बीमा पॉलिसी बीमाकर्ता और मालिक के बीच एक संविदा है और तीसरे पक्ष के संविदा के लिए विदेशी होने के कारण, पॉलिसी के उल्लंघन के मामले में, दावेदार पीड़ित नहीं हो सकते हैं और लाभकारी कानून और इसके पीछे के उद्देश्य में जोखिम की क्षतिपूर्ति का प्रावधान शामिल है, यदि धारा 150 की उप-धारा (4) में परंतुक को शामिल न करने की व्याख्या की जाती है ताकि बीमा कंपनी को पहले दावेदारों को राशि का भुगतान करने के लिए दोषमुक्त किया जा सके।

11. उनके प्रस्तुतियों के समर्थन में, निम्नलिखित निर्णय विधियों पर भरोसा किया गया है: -

(1) प्रवीणभाई एस. खंभयाता बनाम यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य 2015 (11) एस.सी.सी. 417

(2) नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सेंट्रो देवी और अन्य, 1997 (9) उच्चतम 458

(3) अमृत पॉल सिंह और अन्य बनाम टाटा ए.आई.जी. जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2018 (7) एस.सी.सी. 558

(4) नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य, 2004 (3) एस.सी.सी. 297

(5) एस अय्यपन बनाम मैसर्स यूनाइटेड इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2013 (7) एस.सी.सी. 62

(6) शिवावा और अन्य बनाम शाखा प्रबंधक, नेशनल इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और दूसरा, 2018 (5) एस.सी.सी. 762

(7) बालू कृष्ण चव्हाण बनाम रिलायंस जनरल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड। और अन्य, 2023 एसीजे 1546

(8) पप्पू और अन्य बनाम विनोद कुमार लांबा और अन्य, 2018 (3) एस.सी.सी. 208

(9) धोंडुबाई बनाम हनमंटप्पा बंडाप्पा गंडीगुडे (मृतक के बाद से) अपने एलआर और अन्य के माध्यम से, 2023 एसीजे 1979

(10) ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड इलाहाबाद बनाम श्रीमती चंद्रा देवी और अन्य, 2010 (5) आंगनवाड़ी केंद्र 4607

(11) ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सुनीता राठी और अन्य, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 257

(12) वी रवि बनाम मैसर्स न्यू इंडिया इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड। 1998 एसीजे 598 (13) उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम कुलसुम और अन्य, 2011 (8) एस.सी.सी. 142।

(14) मनुआरा खातून एवं अन्य बनाम राजेश कुमार सिंह एवं अन्य, 2017 (4) एस.सी.सी. 796.

(15) शमन्ना और अन्य बनाम द डिवीजनल मैनेजर, द ओरिएंटल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2018 (9) एस.सी.सी. 650।

(16) **ऋषि पाल सिंह बनाम न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 2022(3) ए.सी.सी. 556**

प्रतिद्वंद्वी तर्क वितर्क का विश्लेषण

12. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद, यह न्यायालय वर्ष 2019 में किए गए संशोधनों से पहले और बाद में अधिनियम वर्ष 1988 के कुछ प्रासंगिक प्रावधानों से निपटने के लिए आगे बढ़ता है।

मोटर वाहन अधिनियम, 1988

"147. नीतियों की आवश्यकताएं और दायित्व की सीमाएं।

(1) इस अध्याय की आवश्यकताओं का पालन करने के लिए, बीमा की एक पॉलिसी एक पॉलिसी होनी चाहिए जो-

(ए) एक ऐसे व्यक्ति द्वारा जारी किया जाता है जो एक अधिकृत बीमाकर्ता है; और

(ख) उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट सीमा तक पॉलिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों का बीमा करता है-

(i) किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट के संबंध में उसके द्वारा किए जा सकने वाले किसी भी दायित्व के खिलाफ, जिसमें माल का मालिक या वाहन में ले जाया गया उसका अधिकृत प्रतिनिधि या सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न होने वाले किसी तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति को नुकसान शामिल है;

(ii) सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उसके कारण सार्वजनिक सेवा वाहन के किसी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ बशर्ते कि पॉलिसी की आवश्यकता नहीं होगी-

(i) पॉलिसी द्वारा बीमित व्यक्ति के कर्मचारी की मृत्यु के संबंध में या कर्मकार प्रतिकर अधिनियम के तहत उत्पन्न होने वाली देयता के अलावा अपने रोजगार के दौरान उत्पन्न होने वाली शारीरिक चोट के संबंध में दायित्व को आच्छादित करने के लिए, 1923 (8 वर्ष 1923), ऐसे किसी भी कर्मचारी की मृत्यु, या शारीरिक चोट के संबंध में-

(ए) वाहन चलाने में लगे हुए, या

(ख) यदि यह एक सार्वजनिक सेवा वाहन है जो वाहन के कंडक्टर के रूप में या वाहन पर टिकटों की जांच में लगा हुआ है, या

(ग) यदि यह एक मालवाहक गाड़ी है, जिसे वाहन में ले जाया जा रहा है, या

(ii) किसी भी संविदात्मक दायित्व को आच्छादित करने के लिए।

स्पष्टीकरण- शंकाओं को दूर करने के लिए, एतद्वारा यह घोषित किया जाता है कि किसी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति को क्षति किसी सार्वजनिक स्थान पर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न हुई है, इस बात के बावजूद कि वह व्यक्ति जो मृत या घायल है या जो संपत्ति

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 235

क्षतिग्रस्त है, सार्वजनिक स्थान पर सार्वजनिक स्थान पर नहीं थी। दुर्घटना का समय, यदि दुर्घटना का कारण बनने वाला कार्य या चूक किसी सार्वजनिक स्थान पर हुई हो।

(2) उपधारा (1) के परंतुक के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) में निर्दिष्ट बीमा की पालिसी, किसी दुर्घटना के संबंध में किए गए किसी भी दायित्व को निम्नलिखित सीमाओं तक आच्छादित करेगी, अर्थात्: -

(ए) खंड (बी) में प्रदान किए गए के रूप में छोड़कर, देयता की राशि को छोड़कर;

(ख) किसी तीसरे पक्ष की किसी संपत्ति को नुकसान के संबंध में, छह हजार रुपये की सीमा:

बशर्ते कि इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पहले किसी सीमित देयता के साथ जारी की गई और लागू बीमा की कोई भी पॉलिसी, इस तरह के प्रारंभ के बाद चार महीने की अवधि के लिए या ऐसी पॉलिसी की समाप्ति की तारीख तक, जो भी पहले हो, प्रभावी रहेगी।

(3) इस अध्याय के प्रयोजनों के लिए एक पॉलिसी का कोई प्रभाव नहीं होगा जब तक कि बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति के पक्ष में जारी नहीं किया जाता है जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावी की जाती है, निर्धारित प्रपत्र में बीमा का प्रमाण पत्र और किसी भी शर्त के निर्धारित विवरण जिसमें पॉलिसी जारी की जाती है और किसी अन्य निर्धारित मामलों का विवरण शामिल होता है; और अलग-अलग मामलों में अलग-अलग रूप, विवरण और मामले निर्धारित किए जा सकते हैं।

(4) जहां इस अध्याय या उसके तहत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के तहत बीमाकर्ता द्वारा जारी किए गए आच्छादित नोट का निर्धारित समय के भीतर बीमा की नीति का पालन नहीं किया जाता है, वहां बीमाकर्ता आच्छादित नोट की वैधता की अवधि की समाप्ति के सात दिनों के भीतर, पंजीकरण प्राधिकारी को इस तथ्य को सूचित करेगा जिसके अभिलेखों में वह वाहन जिससे आच्छादित नोट संबंधित है पंजीकृत किया गया है या ऐसे से अन्य प्राधिकरण जैसा कि राज्य सरकार निर्धारित करे।

(5) तत्समय प्रवृत्त किसी भी कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी, इस धारा के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला बीमाकर्ता किसी दायित्व के संबंध में पॉलिसी में विनिर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों की क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा, जिसे पॉलिसी उस व्यक्ति या व्यक्तियों के उन वर्गों के मामले में आच्छादित करने का इरादा रखती है।

.....

"149. तीसरे पक्ष के जोखिमों के संबंध में बीमित व्यक्तियों के खिलाफ निर्णयों और पंचाटों को पूरा करने के लिए बीमाकर्ताओं का कर्तव्य।

(1) यदि, धारा 147 की उपधारा (3) के तहत बीमा का प्रमाण पत्र उस व्यक्ति के पक्ष में जारी किया गया है, जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावी की गई है, तो धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत पॉलिसी द्वारा आच्छादित किए जाने के लिए आवश्यक किसी भी ऐसी देयता के संबंध में निर्णय या पंचाट (पॉलिसी की शर्तों द्वारा आच्छादित किया गया देयता होने के नाते) या धारा 163 ए के प्रावधानों के तहत प्राप्त किया जाता है पॉलिसी द्वारा बीमित कोई भी व्यक्ति, इस बात के बावजूद कि बीमाकर्ता पॉलिसी से बचने या रद्द करने का हकदार हो सकता है या इससे बच सकता है या रद्द कर सकता है, बीमाकर्ता, इस धारा के प्रावधानों के अधीन, डिब्री के लाभ के हकदार व्यक्ति को उसके तहत देय बीमा राशि से अधिक नहीं होने का भुगतान करेगा, जैसे कि वह दायित्व के संबंध में निर्णय देनदार था, साथ ही लागतों के संबंध में देय किसी भी राशि और निर्णयों पर ब्याज से संबंधित किसी भी अधिनियम के आधार पर उस राशि पर ब्याज के संबंध में देय कोई भी राशि।

(2) किसी भी निर्णय या पंचाट के संबंध में उप-धारा (1) के तहत एक बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि देय नहीं होगी, जब तक कि कार्यवाही के शुरू होने से पहले, जिसमें निर्णय या पंचाट दिया जाता है, बीमाकर्ता को न्यायालय के माध्यम से नोटिस दिया गया था या, जैसा भी मामला हो, कार्यवाही लाने के दावा न्यायाधिकरण, या इस तरह के निर्णय या पंचाट के संबंध में जब तक कि अपील लंबित होने तक निष्पादन पर रोक लगा दी जाती है; और एक बीमाकर्ता जिसे ऐसी किसी भी कार्यवाही को लाने की सूचना दी गई है, वह उस पर एक पक्ष बनाए जाने और निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर कार्रवाई का बचाव करने का हकदार होगा, अर्थात् -

(क) निम्नलिखित शर्तों में से एक होने के कारण नीति की एक विनिदष्ट शर्त का उल्लंघन हुआ है, अर्थात् -

(i) वाहन के उपयोग को छोड़कर एक शर्त-

(ए) किराए या इनाम के लिए, जहां वाहन बीमा के अनुबंध की तारीख पर है, एक वाहन किराए या इनाम के लिए चलने के परमिट द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है, या

(बी) संगठित रेसिंग और गति परीक्षण के लिए, या

(सी) उस उद्देश्य के लिए जिसके तहत वाहन का उपयोग किया जाता है, जहां वाहन एक परिवहन वाहन है, या

(डी) साइड-कार को जोड़े बिना जहां वाहन एक मोटर साइकिल है; नहीं तो

(iii) किसी नामित व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसे विधिवत अनुज्ञप्ति प्राप्त नहीं है, या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसे निरर्हता की अवधि के दौरान चालक अनुज्ञप्ति रखने या प्राप्त करने के लिए अयोग्य घोषित किया गया है, द्वारा वाहन चलाने को छोड़कर शर्त; नहीं तो

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 237

(iii) युद्ध, गृहयुद्ध, दंगे या नागरिक उपद्रव की स्थितियों के कारण होने वाली चोट के लिए दायित्व को छोड़कर एक शर्त; नहीं तो

(ख) यह नीति इस आधार पर शून्य है कि यह किसी भौतिक तथ्य का प्रकटीकरण न करने या तथ्य के प्रतिनिधित्व द्वारा प्राप्त की गई थी जो किसी विशेष मामले में गलत था।

(3)

(4) जहां धारा 147 की उपधारा (3) के तहत उस व्यक्ति को बीमा का प्रमाण पत्र जारी किया गया है जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावी की गई है, तो उपधारा (2) के खंड (बी) के अलावा किसी भी अन्य शर्तों के संदर्भ में बीमित व्यक्तियों के बीमा को प्रतिबंधित करने के लिए पॉलिसी का इतना हिस्सा होगा, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत एक पॉलिसी द्वारा आच्छादित किए जाने के लिए आवश्यक ऐसी देनदारियों के संबंध में, कोई प्रभाव नहीं होगा:

बशर्ते कि बीमाकर्ता द्वारा किसी भी व्यक्ति के किसी भी दायित्व के निर्वहन में या उसके लिए भुगतान की गई कोई भी राशि, जो केवल इस उप-धारा के आधार पर पॉलिसी द्वारा आच्छादित की गई है, बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति से बरामदगी योग्य होगी।

मोटर वाहन अधिनियम, 1988 [मोटर द्वारा संशोधित
वाहन (संशोधन) अधिनियम, 2019]

"150. तीसरे पक्ष के जोखिमों के संबंध में बीमित व्यक्तियों के खिलाफ निर्णयों और पंचाटों को पूरा करने के लिए बीमाकर्ताओं का कर्तव्य।

(1) यदि, धारा 147 की उपधारा (3) के तहत बीमा का प्रमाण पत्र उस व्यक्ति के पक्ष में जारी किया गया है, जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावी की गई है, तो धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत पॉलिसी द्वारा आच्छादित किए जाने के लिए आवश्यक किसी भी ऐसे दायित्व के संबंध में निर्णय या पंचाट (पॉलिसी की शर्तों द्वारा आच्छादित किया गया देयता होने के नाते) या धारा 164 के प्रावधानों के तहत प्राप्त किया जाता है पॉलिसी द्वारा बीमित कोई भी व्यक्ति, इस बात के बावजूद कि बीमाकर्ता पॉलिसी से बचने या रद्द करने का हकदार हो सकता है या इससे बच सकता है या रद्द कर सकता है, बीमाकर्ता, इस धारा के प्रावधानों के अधीन, पंचाट के लाभ के हकदार व्यक्ति को उसके तहत देय बीमा राशि से अधिक नहीं होने का भुगतान करेगा, जैसे कि वह व्यक्ति डिक्री धारक था, दायित्व के संबंध में, लागत के संबंध में देय किसी भी राशि के साथ और निर्णयों पर ब्याज से संबंधित किसी भी अधिनियम के आधार पर उस राशि पर ब्याज के संबंध में देय कोई भी राशि।

(2) किसी भी निर्णय या पंचाट के संबंध में उप-धारा (1) के तहत एक बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि देय नहीं होगी, जब तक कि कार्यवाही के शुरू होने से पहले, जिसमें निर्णय या पंचाट दिया जाता है, बीमाकर्ता को अदालत के माध्यम से नोटिस था या, जैसा भी मामला हो, कार्यवाही लाने के दावा न्यायाधिकरण, या इस तरह के निर्णय या पंचाट के संबंध में जब तक कि अपील लंबित होने तक इसका निष्पादन रोक दिया जाता है; और एक बीमाकर्ता जिसे ऐसी किसी भी कार्यवाही को लाने की सूचना दी गई है, वह उसका पक्षकार बनने का हकदार होगा, और निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर कार्रवाई का बचाव करने का हकदार होगा, अर्थात् -

(क) निम्नलिखित शर्तों में से एक होने के कारण नीति की एक विनिदष्ट शर्त का उल्लंघन हुआ है, अर्थात् -

(i) वाहन के उपयोग को छोड़कर एक शर्त-

(ए) किराए या इनाम के लिए, जहां वाहन बीमा के अनुबंध की तारीख पर एक वाहन है जो किराए या इनाम के लिए चलने के परमिट द्वारा आच्छादित नहीं किया गया है; नहीं तो

(बी) संगठित रेसिंग और गति परीक्षण के लिए; नहीं तो

(सी) उस उद्देश्य के लिए जिसके तहत वाहन का उपयोग किया जाता है, जहां वाहन एक परिवहन वाहन है; नहीं तो

(डी) साइड-कार को जोड़े बिना जहां वाहन दो-पहिया वाहन है; नहीं तो

(ii) धारा 185 में यथा निर्धारित किसी नामित व्यक्ति या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसे विधिवत अनुज्ञप्ति प्राप्त नहीं है या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा वाहन चलाने को छोड़कर जिसे धारा 185 में यथा निर्धारित शराब या नशीली दवाओं के प्रभाव में अयोग्यता या वाहन चलाने की अवधि के दौरान चालक अनुज्ञप्ति रखने या प्राप्त करने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया है; नहीं तो

(iii) युद्ध, गृहयुद्ध, दंगे या नागरिक उपद्रव की स्थितियों के कारण होने वाली चोट के लिए दायित्व को छोड़कर एक शर्त; नहीं तो

(ख) यह नीति इस आधार पर शून्य है कि यह किसी भौतिक तथ्य का खुलासा न करने या किसी ऐसे तथ्य के प्रतिनिधित्व से प्राप्त की गई थी जो किसी भौतिक विशेष में गलत थी; नहीं तो

(ग) बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64 वीबी के अंतर्गत यथा अपेक्षित प्रीमियम प्राप्त न होना है।

(3)

(4) जहां धारा 147 की उपधारा (3) के तहत उस व्यक्ति को बीमा का प्रमाण पत्र जारी किया गया है, जिसके द्वारा पॉलिसी प्रभावी की गई है, तो उप-धारा (2) में उन शर्तों के अलावा किसी भी शर्त के संदर्भ में, ऐसी देनदारियों के संबंध में, जो धारा की उपधारा (1) के खंड (बी) के तहत पॉलिसी द्वारा आच्छादित किए जाने के लिए आवश्यक हैं, के संबंध में 147, कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अनिवार्य बीमा पर कुछ निर्णयज विधियाँ:

13. उच्चतम न्यायालय ने **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम सैंट्रो देवी और अन्य, (2009) 1 एस.सी.सी. 558** में कहा कि अनिवार्य बीमा के प्रावधान एक सामाजिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए तैयार किए गए हैं। यह एक तरह से सामाजिक न्याय के सिद्धांत का हिस्सा है। जब बीमा का प्रमाण पत्र जारी किया जाता है, तो कानून में, बीमा कंपनी मालिक को प्रतिपूर्ति करने के लिए बाध्य होती है। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि बीमा के अनुबंध को एक वैध अनुबंध के गठन की वैधानिक आवश्यकताओं को पूरा करना चाहिए, लेकिन तीसरे पक्ष के जोखिम के मामले में, प्रश्न को एक अलग कोण से विचार किया जाना चाहिए। यह भी माना गया कि अधिनियम की धारा 146 सार्वजनिक स्थान पर वाहन का उपयोग करते समय मृत्यु या शारीरिक चोट या संपत्ति को नुकसान के संबंध में तीसरे पक्ष को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती है। इसके लिए वाहनों या मालिकों के लिए वाहन का बीमा अनिवार्य कर दिया गया है। यह आगे प्रतिबिंबित करेगा कि अनिवार्य बीमा स्पष्ट रूप से तीसरे पक्ष के लाभ के लिए है। उच्चतम न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम कुलसुम और अन्य, संत्रो देवी (उपरोक्त) 2011(8) एस.सी.सी. 142** में निर्णय दिया था।

14. **जी. गोविंदन बनाम न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य, 1999(3) एस.सी.सी.754** में, उच्चतम न्यायालय, तीसरे पक्ष के जोखिमों के लिए बीमा को नियंत्रित करने वाले कानून की अनिवार्य आवश्यकता से निपटते हुए, प्रस्तर संख्या-12, 13 और 15 में निम्नानुसार देखा गया है: -

"12. पुराने अधिनियम के अध्याय VIII के शीर्षक में "तीसरे पक्ष के जोखिमों के खिलाफ मोटर वाहनों का बीमा" के रूप में लिखा गया है। अध्याय VIII के प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि विधानमंडल ने तीसरे पक्ष (पीड़ितों) के जोखिमों के खिलाफ मोटर वाहनों के बीमा को अनिवार्य बना दिया है। इस न्यायालय ने **न्यू एशियाटिक इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम पेसुमल धनमल असवानी और अन्य, ए.आई.आर. (1964) एस.सी. 1736** में तीसरे पक्ष के खिलाफ बीमा की अनिवार्य प्रकृति को नोटिस करने के बाद देखा कि एक बार जब कंपनी ने पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा किए गए तीसरे पक्ष के प्रति दायित्व ले लिया था, तो अधिनियम के प्रावधानों के तहत या उसके आधार पर किसी भी राशि की बरामदगी करने का तीसरे पक्ष का अधिकार पॉलिसी में किसी भी शर्त से प्रभावित नहीं होता है।

13. हमारी राय में कि पुराने अधिनियम के तहत और नए अधिनियम के तहत विधायिका तीसरे पक्ष (पीड़ित) के हितों की रक्षा करने के लिए उत्सुक थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पुराने अधिनियम के प्रावधानों में जो निहित था, वह अब स्पष्ट हो गया है, संभवतः विभिन्न उच्च न्यायालयों के बीच इस पहलू पर परस्पर विरोधी निर्णयों को देखते हुए।

15. उपर्युक्त उल्लेखित पूर्णपीठ के दो परस्पर विरोधी निर्णयों में से, हम आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा कोंडैया बनाम यासीन फातिमा एआईआर 1986 AP 62) के प्रकरण में प्रतिपादित विधि-सिद्धांत को अनुमोदन योग्य मानते हैं, क्योंकि यह विधायिका के उस उद्देश्य को आगे बढ़ाता है जिसका लक्ष्य तृतीय पक्ष के हितों की रक्षा करना है। हम यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि यहाँ “तृतीय पक्ष” में वह हस्तांतरित व्यक्ति सम्मिलित नहीं होगा, जिसका हस्तांतरणकर्ता बीमा पॉलिसी के हस्तांतरण की विधिक प्रक्रिया का पालन नहीं करता है। अर्थात्, विधियों की व्याख्या के सुप्रतिष्ठित सिद्धांत के अनुरूप हम यह अभिमत व्यक्त करते हैं कि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा कोंडैया प्रकरण में लिया गया दृष्टिकोण, कर्नाटक उच्च न्यायालय (नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम मल्लिकार्जुन, एआईआर 1990 कान्त 166) तथा दिल्ली उच्च न्यायालय (आनंद स्वरूप शर्मा बनाम पी.पी. खुराना, 1989 एसीजे 577 (Del) (FB)) द्वारा लिए गए विपरीत दृष्टिकोणों की अपेक्षा अधिक उचित और ग्राह्य है, भले ही यह माना जाए कि संबंधित धाराओं की व्याख्या के दो संभावित दृष्टिकोण हो सकते हैं, क्योंकि आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय का दृष्टिकोण विधायिका के तृतीय पक्ष (पीड़ित) के हितों की रक्षा करने के उद्देश्य को प्रोत्साहित करता है। अतः, कर्नाटक एवं दिल्ली उच्च न्यायालयों द्वारा आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय से भिन्न प्रतिपादित दृष्टिकोण को हम उचित नहीं मानते।

‘भुगतान एवं वसूली’ पर प्रमुख निर्णयज विधियाँ:

15. कमला (उपरोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम वर्ष 1988 के तत्कालीन मौजूदा अध्याय XI पर विचार किया और निम्नानुसार निर्णय दिया: -

"21. उप-धारा (4) के परंतुक के साथ-साथ उप-धारा (5) में नियोजित भाषा को पढ़ने से यह संकेत मिलता है कि उनका उद्देश्य एक बीमाकर्ता के हितों की रक्षा करना है, जिसके पास अन्यथा बीमित व्यक्ति को किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए कोई दायित्व नहीं है, लेकिन अधिनियम के अध्याय XI में निहित प्रावधानों के लिए। इसका मतलब है, बीमाकर्ता को केवल इस तथ्य के आधार पर तीसरे पक्ष को भुगतान करना होगा कि वाहन के संबंध में बीमा की पॉलिसी जारी की गई है, लेकिन बीमाकर्ता बीमाधारक से ऐसी किसी भी राशि को पुनर्प्राप्त करने का हकदार है यदि बीमाकर्ता अन्यथा पॉलिसी द्वारा इंगित बीमा के अनुबंध की शर्तों के आधार पर बीमाधारक को ऐसी राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं था।

22. पुनरुक्ति, उपर्युक्त प्रावधानों का प्रभाव यह है कि जब किसी वाहन के संबंध में वैध बीमा पॉलिसी जारी की गई हो, जिसका प्रमाण बीमा प्रमाणपत्र से होता है, तब तृतीय पक्ष को भुगतान करने का दायित्व बीमाकर्ता पर होता है – चाहे पॉलिसी की शर्तों का कोई उल्लंघन या अतिक्रमण हुआ हो अथवा नहीं। किन्तु, बीमाकर्ता

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 241

द्वारा तृतीय पक्ष को इस प्रकार किया गया भुगतान बीमित व्यक्ति से वसूल किया जा सकता है, यदि पॉलिसी की शर्तों के अनुसार बीमाकर्ता पर ऐसी राशि का भुगतान करने की कोई वैधानिक या संविदात्मक देयता नहीं थी।”

16. निर्विवाद रूप से, **कमला** (उपरोक्त), **स्वर्ण सिंह** (उपरोक्त) और उस लाइन पर उद्धृत अन्य निर्णयों में सर्वोच्च न्यायालय असंशोधित प्रावधानों से निपट रहा था, जो उस समय तक प्रकाश में नहीं आए थे क्योंकि संशोधन अधिनियम 2019 में अधिनियमित किया गया था। स्वर्ण सिंह (उपरोक्त) का पहला प्रस्तर इस प्रकार है: -

“मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की उप-धारा (4) और (5) में संलग्न परंतुक के साथ धारा 149(2)(ए)(ii) की व्याख्या मोटर वाहन दावा न्यायाधिकरण के विभिन्न पंचाटों और उच्च न्यायालयों के निर्णयों पर हमला करने वाली नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (इसके बाद बीमाकर्ता के रूप में संदर्भित) द्वारा दायर विशेष अनुमति याचिकाओं के इस बैच में शामिल है।

निष्कर्षों के सारांश के रूप में स्वर्ण सिंह (उपरोक्त) का प्रासंगिक अनुपात निम्नानुसार है: -

“108. इन याचिकाओं में उठाए गए विभिन्न मुद्दों के लिए हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है:

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 के अध्याय XI में तीसरे पक्ष के जोखिमों के विरुद्ध वाहनों का अनिवार्य बीमा प्रदान करना मोटर वाहनों के उपयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं के पीड़ितों को मुआवजा देकर राहत प्रदान करने के लिए एक सामाजिक कल्याण कानून है। सभी वाहनों के अनिवार्य बीमा कवरेज के प्रावधान इस सर्वोपरि उद्देश्य के साथ हैं और अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या इस तरह से की जानी चाहिए कि उक्त उद्देश्य को प्रभावी किया जा सके।

(ii)

(iii) पॉलिसी की शर्त का उल्लंघन उदाहरण के लिए, चालक की अयोग्यता या चालक का अमान्य चालक अनुज्ञप्ति, जैसा कि धारा 149 की उप-धारा (2)(ए)(ii) में निहित है, बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए बीमाधारक द्वारा किया गया साबित किया जाना चाहिए। केवल अनुपस्थिति, फर्जी या अमान्य चालक अनुज्ञप्ति या प्रासंगिक समय पर ड्राइविंग के लिए चालक की अयोग्यता, बीमाकर्ता या तीसरे पक्ष के खिलाफ बीमाकर्ता के लिए उपलब्ध बचाव नहीं है। बीमाधारक के प्रति अपनी देयता से बचने के लिए, बीमाकर्ता को यह साबित करना होगा कि बीमित व्यक्ति लापरवाही का दोषी था और विधिवत अनुज्ञप्ति प्राप्त ड्राइवर द्वारा वाहनों के उपयोग के संबंध में पॉलिसी की शर्त को पूरा करने के मामले में उचित देखभाल करने में विफल रहा था या जो प्रासंगिक समय पर गाड़ी चलाने के लिए अयोग्य नहीं था।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपनी देयता से बचने की दृष्टि से न केवल उक्त कार्यवाहियों में उठाए गए उपलब्ध बचाव (प्रतिरक्षाओं) को स्थापित करना चाहिए बल्कि वाहन के मालिक की ओर से उल्लंघनों को भी स्थापित करना चाहिए; सबूत का बोझ उन पर होगा।

(v)

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति की ओर से चालक द्वारा वैध अनुज्ञप्ति रखने या संगत अवधि के दौरान गाड़ी चलाने की उसकी योग्यता के संबंध में पॉलिसी की शर्त के संबंध में उल्लंघन साबित करने में सक्षम है, बीमाकर्ता को बीमित व्यक्ति के प्रति अपनी देयता से बचने की अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि चालक अनुज्ञप्ति की शर्त पर उक्त उल्लंघन इतने मौलिक न हों कि कारण में दुर्घटना का योगदान हो। नीतिगत शर्तों की व्याख्या करने में न्यायाधिकरण अधिनियम की धारा 149(2) के तहत बीमित व्यक्ति को उपलब्ध बचाव की अनुमति देने के लिए "मुख्य उद्देश्य के नियम" और "मौलिक उल्लंघन" की अवधारणा को लागू करेंगे।

(vii)

(viii)

(ix)

(x) जहां अधिनियम के तहत दावे के निर्णय पर न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि बीमाकर्ता ने उप-धारा (7) सपठित धारा 149 (2) के प्रावधानों के अनुसार अपने बचाव को संतोषजनक ढंग से साबित कर दिया है, जैसा कि ऊपर इस न्यायालय द्वारा व्याख्या की गई है, ट्रिब्यूनल यह निर्देश दे सकता है कि बीमाकर्ता बीमित व्यक्ति द्वारा मुआवजे और अन्य राशियों के लिए प्रतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी है, जिसे वह तीसरे पक्ष को भुगतान करने के लिए मजबूर किया गया है न्यायाधिकरण के पंचाट के तहत। न्यायाधिकरण द्वारा दावे का ऐसा निर्धारण लागू करने योग्य होगा और बीमित व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय धन की बरामदगी उसी तरह से किया जाएगा जो न्यायाधिकरण द्वारा कलेक्टर को जारी किए गए प्रमाण पत्र पर उसी तरह से किया जाएगा जो अधिनियम की धारा 174 के तहत भू-राजस्व के बकाया के रूप में है। भू-राजस्व के बकाया के रूप में बरामदगी के लिए प्रमाण पत्र केवल तभी जारी किया जाएगा, जब अधिनियम की धारा 168 की उप-धारा (3) द्वारा आवश्यक बीमित व्यक्ति न्यायाधिकरण द्वारा पंचाट की घोषणा की तारीख से तीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में दी गई राशि जमा करने में विफल रहता है।

(xi)

17. न्यायालय, ऊपर उल्लिखित न्यायिक उदाहरणों के आलोक में, अब अधिनियम के उद्देश्य, प्रासंगिक प्रावधानों की भावना, संशोधन से पहले और बाद में दोनों से निपटने और इसमें शामिल मुख्य प्रश्न का उत्तर देने के लिए आगे बढ़ता है।

18. अधिनियम की धारा 147, संशोधन के बाद, एक या दूसरी उप-धारा की पुनर्गणना को छोड़कर अपरिवर्तित रहती है। इसके अनुसार, बीमा की एक पॉलिसी उप-धारा (2) में निर्दिष्ट सीमा तक पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों को किसी भी दायित्व के खिलाफ बीमा करती है, जो माल के मालिक या मोटर वाहन में

ले जाने वाले उसके अधिकृत प्रतिनिधि सहित किसी भी व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक चोट या किसी तीसरे पक्ष की किसी भी संपत्ति को नुकसान के संबंध में उसके द्वारा वहन की जा सकती है। सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन का उपयोग; सार्वजनिक स्थान पर मोटर वाहन के उपयोग के कारण या उससे उत्पन्न होने वाले मालवाहक वाहन के अनावश्यक यात्रियों को छोड़कर, परिवहन वाहन के किसी भी यात्री की मृत्यु या शारीरिक चोट के खिलाफ। इसलिए, यह स्पष्ट है कि बीमा पॉलिसी शारीरिक चोट की मृत्यु या उसके मामले में तीसरे पक्ष के जोखिमों को आच्छादित करती है।

19. धारा 149 की उप-धारा (2), संशोधन से पहले, उन आधारों पर विचार करती है जिन पर एक बीमा कंपनी मुआवजे का भुगतान करने के लिए अपने दायित्व का बचाव कर सकती है और एक आधार यह है कि पॉलिसी की निर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन हुआ है। शर्तों को भी विशेष रूप से गिना गया है। प्रश्न यह है कि क्या पॉलिसी के उल्लंघन के मामले में, बीमा कंपनी मुआवजे का भुगतान करने या पहली बार में मालिक को क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगी और क्या बरामदगी का अधिकार अभी भी बीमाकर्ता के पास उपलब्ध है।

20. यह स्पष्ट है कि जब धारा 149 की उपधारा (2) के खंड (बी) में उल्लिखित शर्तों के अलावा अन्य शर्तें मौजूद हैं, तो नीति का कोई प्रभाव नहीं होगा। ऐसी स्थिति में, हालांकि पॉलिसी द्वारा आच्छादित की गई देयता के निर्वहन के लिए बीमाकर्ता द्वारा शुरू में राशि देय है, यह बीमाकर्ता द्वारा उस व्यक्ति से वसूल किया जाएगा, जो वास्तव में मुआवजे का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी है, यानी उल्लंघन करने वाले वाहन का मालिक। प्रतिस्थापित धारा 150 में बरामदगी का अधिकार देने वाला ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। वास्तव में परंतुक को हटा दिया गया है और धारा 150 की उप-धारा (2) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि बीमा कंपनी उसमें उल्लिखित किसी भी आधार पर कार्रवाई का बचाव कर सकती है जिसमें पॉलिसी की एक निर्दिष्ट शर्त का उल्लंघन शामिल है, जिसमें उल्लंघन की शर्तों को भी निर्दिष्ट किया गया है।

21. जब संशोधन अधिनियम वर्ष 2019 द्वारा धारा 150 की उप-धारा (4) द्वारा प्रतिस्थापित संशोधन से पहले धारा 149 की उप-धारा (4) में प्रयुक्त भाषा की सावधानीपूर्वक जांच की जाती है, तो "शब्द, ऐसी देनदारियों के संबंध में जो धारा 147 की उप-धारा (1) के खंड (बी) के तहत एक नीति द्वारा आच्छादित किए जाने के लिए आवश्यक हैं, "कोई प्रभाव नहीं होगा" का अर्थ केवल यह होगा कि धारा 149 या धारा 150 की उप-धारा (4) द्वारा आच्छादित की गई परिस्थितियों में, बीमाकर्ता बीमा पॉलिसी से बहने वाली देयता से बचने के लिए अपने अधिकारों के भीतर होगा। इसका अर्थ है कि बीमाकर्ता दावेदारों को मुआवजे का भुगतान करने के दायित्व वहन करने से मुक्त हो जाएगा। इसका मतलब यह नहीं है कि बीमाकर्ता को मालिक के जोखिम की क्षतिपूर्ति करने के दायित्व से भी मुक्त कर दिया जाएगा। इस तरह की क्षतिपूर्ति अभी भी जीवित रहेगी और बीमाकर्ता को पहले क्षतिपूर्ति के माध्यम से मुआवजे का भुगतान करना होगा और फिर, उसे मालिक से अंतिम देयता के रूप में भुगतान की गई राशि को मालिक से वसूलने का अधिकार होगा, न कि बीमाकर्ता द्वारा। ऐसी स्थिति में, बीमाकर्ता को कोई वित्तीय नुकसान नहीं होगा क्योंकि इसकी भरपाई मालिक से बरामदगी के माध्यम से की जाएगी। उपरोक्त प्रावधान स्पष्ट रूप से बीमाकर्ता को रक्षा देने के लिए हैं और उन्हें केवल उस सीमा तक पढ़ा

जाना चाहिए और इस तरह की व्याख्या नहीं की जानी चाहिए कि क्षतिपूर्ति करने का दायित्व धुल गया है। इसलिए यह इस प्रकार है कि भले ही उप-धारा (4) का प्रावधान संशोधन से पहले नहीं होता, क्षतिपूर्ति अवधारणा अभी भी जीवित और सक्रिय रही होगी और इसलिए, संशोधन अधिनियम वर्ष 2019 द्वारा परंतुक को छोड़ने से कोई फायदा नहीं होगा।

22. इसलिए, जब श्री परिहार आग्रह करते हैं कि यदि, हर मामले में, मुआवजे का भुगतान करने का दायित्व बीमा कंपनी द्वारा वहन किया जाना है, तो संशोधन से पहले अधिनियम की उप-धारा (2) के तहत या संशोधन के बाद अधिनियम की उप-धारा (2) के तहत बचाव के लिए आधार प्रदान करने का कोई प्रभाव नहीं होगा, तो इस न्यायालय को प्रस्तुत करने में कोई बल नहीं मिलता है। इसका कारण यह है कि उक्त प्रावधानों के तहत बचाव के आधार प्रदान करने को पढ़ा जाएगा ताकि बीमा कंपनी को इसके खिलाफ पंचाट पारित करने से बचने का अवसर दिया जा सके, अर्थात्, इसे पंचाट वहन करने के लिए उत्तरदायी ठहराया। बीमा कंपनी के खिलाफ एक पंचाट प्राप्त करने की उक्त देयता उस स्थिति से अलग है जहां पंचाट मालिक के खिलाफ है और बीमाकर्ता को दावेदारों को मुआवजे का भुगतान करने और फिर मालिक से उसी की बरामदगी करने के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है। बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64(वी) बी के तहत आवश्यक प्रीमियम की प्राप्ति न होने को अब धारा 150(2) में जोड़ा गया है। यह दर्शाता है कि ऐसे मामले में भी जहां बीमा कंपनी द्वारा प्रीमियम प्राप्त नहीं किया जाता है, वह चुनौती का आधार उठा सकती है ताकि इसके खिलाफ पंचाट पारित होने से बचा जा सके और उस स्थिति में भी, मालिक के खिलाफ पंचाट निकाला जाएगा। जब संशोधन के बाद प्रीमियम का भुगतान या गैर-भुगतान महत्वपूर्ण होता है और इसे बचाव का आधार बनाया जाता है, तो न्यायालय का मानना है कि पॉलिसी के तहत एक तीसरे पक्ष के जोखिम को आच्छादित किया जाता है जो एक अनुबंध है और अनुबंध के संबंध में बीमाकर्ता द्वारा तीसरे पक्ष के जोखिम के लिए प्रीमियम प्राप्त किया जाता है। इसलिए, पॉलिसी तीसरे पक्ष के जोखिम को आच्छादित करने के लिए बनी रहती है, जब तक कि प्रीमियम प्राप्त नहीं होता है और उसका भुगतान न करने से बीमा कंपनी को उसके खिलाफ पारित किए जा रहे पंचाट के दायित्व से मुक्त कर दिया जाएगा।

भुगतान एवं वसूली की अवधारणा

23. बेहतर ढंग से समझने के लिए कि क्या संशोधन के बाद 'भुगतान करें और पुनर्प्राप्त करें' पहलू अभी भी बचा है, धारा 149(4) से जुड़े प्रावधान में उपयोग किए जाने वाले शब्दों "बीमाकर्ता द्वारा किसी भी व्यक्ति के किसी भी दायित्व के निर्वहन के लिए या उसके निर्वहन के लिए भुगतान की गई कोई भी राशि" को बहुत सावधानी से पढ़ने और समझने की आवश्यकता है। उपयोग किए गए शब्द "बीमाकर्ता द्वारा भुगतान" हैं और "बीमाकर्ता द्वारा देय" नहीं हैं। अधिनियम की योजना के अनुसार "भुगतान" और "देय" के बीच अंतर है। बीमाकर्ता द्वारा राशि तब देय हो जाएगी जब उसके खिलाफ पंचाट पारित किया जाता है, जिससे वह इस तरह की देयता में किसी भी बदलाव के बिना आने वाले सभी समय के लिए अपने कंधों पर पंचाट वहन करने के लिए उत्तरदायी होता है। पहले मौजूद परन्तुक बीमाकर्ता को मालिक से उस राशि की बरामदगी करने का अधिकार देता है जिसका भुगतान उसके द्वारा किया गया है और उसके द्वारा देय नहीं है।

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 245

24. अधिनियम की धारा 168 के तहत अवार्ड दिया जाता है। धारा 168 की उपधारा (3) निम्नानुसार पढ़ती है:

-

"168 - दावा न्यायाधिकरण का पंचाट-

(3) जब इस धारा के तहत एक पंचाट किया जाता है, व्यक्ति जो इस तरह के पंचाट के संदर्भ में किसी भी राशि का भुगतान करने के लिए आवश्यक है, दावा न्यायाधिकरण द्वारा पंचाट की घोषणा की तारीख के तीस दिनों के भीतर, इस तरह के तरीके से प्रदान की गई पूरी राशि जमा कर सकते हैं दावा न्यायाधिकरण निर्देशित कर सकते हैं।

धारा 168 की उप-धारा (3) में उल्लिखित शब्द "एक व्यक्ति जिसे इस तरह के पंचाट के संदर्भ में किसी भी राशि का भुगतान करने की आवश्यकता है" का अर्थ न केवल एक व्यक्ति है जिसे अंततः पंचाट को संतुष्ट करना है, बल्कि इसमें एक व्यक्ति भी शामिल है, जिसे पंचाट के संदर्भ में किसी भी राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया गया है। उक्त व्यक्ति बीमाकर्ता भी हो सकता है और यही कारण है कि जब भी बीमाकर्ता को अवार्ड के संदर्भ में किसी भी राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है और उसे बरामदगी का अधिकार भी दिया जाता है, तो बीमाकर्ता को तीस दिनों के भीतर ट्रिब्यूनल के समक्ष राशि जमा करनी होती है। ऐसी स्थिति में, इसका मतलब यह नहीं है कि यदि बीमाकर्ता राशि जमा करता है, तो उसकी बरामदगी का अधिकार समाप्त हो जाता है, बल्कि ऐसा अधिकार विशेष रूप से बीमाकर्ता को पंचाट के तहत ही प्रदान किया जाता है। उक्त प्रावधान का अर्थ यह नहीं है कि आने वाले समय के लिए पंचाट वहन करना बीमा कंपनी का दायित्व है, लेकिन इसका मतलब केवल यह है कि उसे केवल संक्रमणकालीन अवधि के लिए राशि का भुगतान करना होगा और अध्याय हमेशा के लिए बंद नहीं है क्योंकि बरामदगी का अधिकार बहुत अधिक है। पंचाट को समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए न कि टुकड़ों में पढ़ा जाना चाहिए।

25. न्यायालय इस पहलू की अनदेखी नहीं कर सकता है कि संशोधन से पहले अधिनियम की धारा 147(5) को संशोधन के बाद अधिनियम की धारा 147(6) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है, लेकिन धारा 150 के लिए संदर्भित कोई योग्य शब्द नहीं हैं। धारा 147 की उप-धारा (6) निम्नानुसार है: -

"(6) तत्समय लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के होते हुए, इस धारा के तहत बीमा की पॉलिसी जारी करने वाला बीमाकर्ता किसी भी दायित्व के संबंध में पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्गों की क्षतिपूर्ति करने के लिए उत्तरदायी होगा, जिसे पॉलिसी उस व्यक्ति या व्यक्तियों के उन वर्गों के मामले में आच्छादित करने का इरादा रखती है।

उप-धारा को फिर से सूचीबद्ध करने से, जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह इस प्रकार है कि एक बार धारा 147 की उप-धारा (6) के अनुसार, संशोधन के बाद भी, पॉलिसी में निर्दिष्ट व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करने का दायित्व संविधि पुस्तक में मौजूद रहता है और यह किसी भी अन्य कानून की प्रयोज्यता को बाहर करता है,

अधिनियम वर्ष 2019 द्वारा शामिल किए गए संशोधनों के बाद भी बीमाकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति गायब नहीं होती है। धारा 150 में उल्लिखित शर्तों के अनुसार दावेदारों को भुगतान की गई राशि की बरामदगी का अधिकार अभी भी बीमाकर्ता को उपलब्ध होगा क्योंकि क्षतिपूर्ति विधायिका द्वारा नहीं छीनी गई है और न ही इसे धारा 147 या कहीं और शब्दों को जोड़कर समझाया गया है।

26. इस न्यायालय ने यह भी पाया कि चूंकि बीमा का अनुबंध बीमाकर्ता और मालिक के बीच है और दावेदारों से कोई संबंध नहीं है जो वास्तव में दुर्घटना के शिकार हैं, धारा 149 (संशोधन से पहले) और धारा 150 (संशोधन के बाद) में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा यह दिखाएगी कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता शर्तों के उल्लंघन के कारण पॉलिसी से बचने या रद्द करने का हकदार हो सकता है, यह पंचाट के लाभ के हकदार व्यक्ति को भुगतान करेगा। इसलिए, चाहे बीमा कंपनी बीमा पॉलिसी को रद्द करती है या रद्द नहीं करती है, इसका दावेदारों से कोई लेना-देना नहीं है और वे बीमाकर्ता से राशि प्राप्त करने के हकदार हैं। इसका मतलब यह है कि दावेदारों का पहली बार में बीमाकर्ता से मुआवजा प्राप्त करने का अधिकार बीमाकर्ता और मालिक के बीच अनुबंध से उत्पन्न होने वाले पारस्परिक अधिकारों और देनदारियों से अप्रभावित है।

27. अधिनियम वर्ष 1988 (संशोधन से पहले) की धारा 149 (संशोधन से पहले) में धारा 150 (संशोधन के बाद) में उपयोग किए जाने वाले शब्द "उप-धारा (1) के तहत बीमाकर्ता द्वारा देय नहीं होगा" का अर्थ यह होगा कि यदि धारा 149 या धारा 150 की उप-धारा (2) में निर्धारित रक्षा के आधार, जैसा भी मामला हो, मौजूद है, तो बीमाकर्ता द्वारा कोई राशि देय नहीं होगी। **इसका मतलब यह नहीं है कि बीमाकर्ता द्वारा राशि का भुगतान नहीं किया जाएगा यदि पंचाट में बीमाकर्ता को भुगतान करने और पुनर्प्राप्त करने का निर्देश है।** अधिनियम की धारा 147 के तहत जारी बीमा पॉलिसी के अस्तित्व और अस्तित्व के मामले में बीमाकर्ता द्वारा किए गए वास्तविक भुगतान से राशि का भुगतान करने की देयता को अलग किया जाना चाहिए। "देयता" शब्द को तत्काल भुगतान करके बीमाकर्ता द्वारा क्षतिपूर्ति की अवधारणा से अलग योगदान दिया गया हो। **"आने वाले सभी समय के लिए पंचाट को वहन करने के लिए अंतिम दायित्व"** के रूप में समझा जाना चाहिए।

28. जब भी न्यायाधिकरण द्वारा एक दावा याचिका का फैसला किया जाता है, तो ट्रिब्यूनल द्वारा धारा 168(3) के तहत राशि जमा करने के लिए तीस दिन का समय दिया जाता है, जिसमें विफल रहने पर अधिनियम की धारा 174 के संदर्भ में बरामदगी की कार्यवाही शुरू की जाएगी। धारा 174 को तैयार संदर्भ के लिए उद्धृत किया गया है:-

"174. भू-राजस्व के बकाया के रूप में बीमाकर्ता से धन की बरामदगी-जहां किसी पंचाट के अधीन किसी व्यक्ति से कोई राशि देय है, वहां दावा न्यायाधिकरण, राशि के हकदार व्यक्ति द्वारा उसके पास किए गए आवेदन पर, कलेक्टर को राशि के लिए एक प्रमाण पत्र जारी कर सकेगा और कलेक्टर उसी रीति से उसी राशि की बरामदगी करने के लिए आगे बढ़ेगा जैसे भू-राजस्व का बकाया है।

1.इला आई.सी.आई.सी.आई. लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती आरती देवी और अन्य 247

निश्चित रूप से, उत्तर प्रदेश में भू-राजस्व के बकाया के रूप में बरामदगी **उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952** के अध्याय X के अनुसार सुनिश्चित की जाएगी। अब मान लीजिए कि न्यायाधिकरण क्षतिपूर्ति के लिए पंचाट के संदर्भ में बीमाकर्ता द्वारा राशि जमा न करने के कारण बरामदगी प्रमाण पत्र जारी करता है और यदि, अधिनियम की धारा 173 के तहत अपील दायर करने के लिए सीमा की अवधि के दौरान, बीमाकर्ता उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है जहां एक या दूसरे आधार पर, एक अंतरिम आदेश पारित किया जाता है, बीमाकर्ता, लगभग सभी मामलों में, कुछ अपवादों को छोड़कर, वित्तीय शर्तों को इस तरह से रखा जाता है कि दावेदारों को अपील के लंबित रहने के दौरान भी कुछ वित्तीय राहत मिलती है। यह सिविल प्रक्रिया संहिता (जैसा कि उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है) के आदेश XLI के नियम 5 के उप-नियम (5) के तहत निहित विधायी अधिदेश के अनुसार किया जाता है, जो निम्नानुसार पढ़ता है: -

"(5) पूर्वगामी उप-नियमों में निहित किसी बात के होते हुए भी, जहां अपील धन के भुगतान के लिए डिफ्री के विरुद्ध है, अपीलीय न्यायालय डिफ्री के निष्पादन पर रोक लगाने का आदेश नहीं देगा, जब तक कि अपीलकर्ता ऐसे समय के भीतर नहीं करेगा जैसा कि अपीलीय न्यायालय अनुमति दे सकता है, अपील में विवादित राशि जमा करेगा या उसके संबंध में ऐसी सुरक्षा प्रदान करेगा जैसा कि अपीलीय न्यायालय उचित समझे।"

29. इसलिए, जब अधिनियम वर्ष 1988 के प्रावधानों को सीपीसी के साथ पढ़ा जाता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि जैसे ही कोई पंचाट पारित किया जाता है, दावेदार मुआवजे की राशि प्राप्त करने के हकदार हो जाते हैं और बीमाकर्ता द्वारा दायर अपील के लंबित रहने के दौरान भी उन्हें वित्तीय राहत मिलती है।

30. इस मोड़ पर, यह न्यायालय संशोधन अधिनियम, 2019 को पेश करने के पीछे उद्देश्यों और कारणों के कथन का संदर्भ देना भी उचित समझता है। इसके प्रासंगिक खंड नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

उद्देश्यों और कारणों का विवरण:

'मोटर वाहन अधिनियम, 1988 (अधिनियम) को मोटर वाहनों से संबंधित कानूनों को समेकित और संशोधित करने के उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था। यह **अधिनियम एमके कुन्हिमोहम्ड बनाम पीए अहमदकुट्टी (1987)4 एस.सी.सी. 284** में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए सुझावों को प्रभावी बनाने के लिए अधिनियमित किया गया था।

2. सड़क परिवहन, यात्री और माल ढुलाई और मोटर वाहन प्रबंधन में उभरते तकनीकी उन्नयन के अनुकूल बनाने के लिए अधिनियम में कई बार संशोधन किया गया था। तेजी से बढ़ते मोटरीकरण के साथ, भारत सड़क यातायात चोटों और मौतों के बढ़ते बोझ का सामना कर रहा है। परिवार को होने वाले भावनात्मक और सामाजिक आघात की मात्रा निर्धारित नहीं की जा सकती है, जो अपने कमाने वाले को खो देता है। भारत ने ब्रासीलिया घोषणा पर हस्ताक्षर किए हैं और वर्ष 2020 तक सड़क दुर्घटना में होने वाली मौतों की संख्या को 50 प्रतिशत

तक कम करने के लिए प्रतिबद्ध है। सड़क परिवहन क्षेत्र भी देश की अर्थव्यवस्था में एक प्रमुख भूमिका निभाता है।

3. मंत्रालय में सड़क दुर्घटनाओं में वृद्धि, चालक अनुज्ञप्ति जारी करने में देरी, यातायात नियमों और विनियमों की अवहेलना आदि के मामलों का हवाला देते हुए विभिन्न हितधारकों से शिकायतों और सुझावों के रूप में कई अभ्यावेदन और सिफारिशें प्राप्त हुई हैं। इसलिए, सड़क सुरक्षा और परिवहन प्रणाली में सुधार करने के लिए, परिवहन क्षेत्र में सुरक्षा और दक्षता के मुद्दों को हल करने के लिए मोटर वाहन अधिनियम, 1988 में कुछ संशोधन किए जाने की आवश्यकता है।

4. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, उक्त अधिनियम के कुछ प्रावधानों में संशोधन करना आवश्यक हो गया है। प्रस्तावित मोटर वाहन (संशोधन) विधेयक, 2019 सड़क सुरक्षा, नागरिक सुविधा, सार्वजनिक परिवहन को मजबूत करने, स्वचालन और कम्प्यूटरीकरण से संबंधित मुद्दों को हल करने का प्रयास करता है।

5. मोटर वाहन (संशोधन) विधेयक, 2019 में, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित का प्रावधान है, अर्थात्:

- (ए) ऑनलाइन लर्निंग अनुज्ञप्ति प्रदान करने की सुविधा के लिए;

(ख) दुर्घटना पीड़ितों और उनके परिवारों को शीघ्र सहायता प्रदान करने के लिए बीमा के मौजूदा प्रावधानों को सरलीकृत प्रावधानों से प्रतिस्थापित करना;

(ग) चालक अनुज्ञप्ति के नवीकरण की समय-सीमा को समाप्ति तिथि से पहले और बाद में एक माह से बढ़ाकर एक वर्ष करना;

(घ) परिवहन अनुज्ञप्ति के नवीकरण की अवधि को तीन वर्ष से बढ़ाकर पांच वर्ष करना;

(ङ) लाइसेंसिंग प्राधिकारी को निशक्त व्यक्तियों को भी अनुज्ञप्ति प्रदान करने में सक्षम बनाना;

(च) परमिट से संबंधित अधिनियम के किसी भी उपबंध में छूट देकर राज्यों को सार्वजनिक परिवहन, ग्रामीण परिवहन और अंतिम छोर तक कनेक्टिविटी को बढ़ावा देने में सक्षम बनाना;

(छ) अधिनियम के उपबंधों के उल्लंघन के लिए जुर्माने और जुर्माने में वृद्धि करना; और

(ज) मुसीबत में मदद करने वालों की सुरक्षा के लिए प्रावधान करना।

6. खंडों पर टिप्पणियों में विधेयक में निहित विभिन्न प्रावधानों की प्रदर्श से व्याख्या की गई है।

7. विधेयक उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

.....

"खंड 51 अधिनियम के अध्याय XI के स्थान पर एक नए अध्याय XI के साथ एक प्रस्ताव करता है। इस अध्याय का उद्देश्य मोटर वाहनों के लिए तीसरे पक्ष के बीमा को सरल बनाना है। यह केंद्र सरकार को अधिकार देता है कि ऐसी पॉलिसी के लिए बीमाकर्ता का न्यूनतम प्रीमियम और संबंधित देयता निर्धारित करें। इसमें

बिना गलती के दायित्व के आधार पर मुआवजा, दुर्घटना पीड़ितों के गोल्डन ऑवर के दौरान इलाज की योजना और दुर्घटना पीड़ितों को मृत्यु के मामले में मुआवजे को बढ़ाकर पांच लाख रुपये और गंभीर चोट लगने पर ढाई लाख रुपये करने का प्रावधान है। यह दावेदारों को दी जाने वाली अंतरिम राहत के लिए एक योजना भी प्रदान करता है।

31. खंड 5(बी) और खंड 51 सपठित खंड 2 का एक सादे अवलोकन दर्शाता है कि विधायिका का इरादा पिछले मौजूदा प्रावधानों द्वारा सुनिश्चित मुआवजे के संबंध में संरक्षण और राहत को वापस लेने का कभी नहीं था। बल्कि, यह विधेयक दुर्घटना पीड़ितों और उनके परिवारों को शीघ्र सहायता सुनिश्चित करने की दिशा में अधिक प्रयास करता है। दुर्घटना पीड़ितों और उनके परिवारों को शीघ्र सहायता प्रदान करने के लिए बीमा के मौजूदा प्रावधानों को सरलीकृत प्रावधानों के साथ बदलने के उद्देश्य से विधेयक लाया गया था। उद्देश्यों और कारणों के कथन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, पंचाट घोषित होते ही मुआवजे का भुगतान करने के लिए बीमाकर्ता की देयता को वापस लेने का अनुमान लगा सकता है, यहां तक कि पॉलिसी के उल्लंघन की घटना या बीमाकर्ता के लिए उपलब्ध रक्षा के समान आधार के अन्य अस्तित्व के मामले में भी। इसलिए, अधिनियम वर्ष 1988 में संशोधन लाने के पीछे का उद्देश्य स्पष्ट रूप से दुर्घटना पीड़ितों और उनके आश्रितों को तत्काल वित्तीय सहायता प्रदान करना था और न कि ऐसी स्थिति पैदा करना था जहां उनके पक्ष में निर्णय घोषित होने के बाद भी उन्हें दर-दर भटकने के लिए मजबूर किया जाए।

कानून की उद्देश्यपूर्ण व्याख्या

32. वैधानिक व्याख्या का न्यायशास्त्र शाब्दिक व्याख्या से उद्देश्यपूर्ण व्याख्या की ओर बढ़ गया है, जो एक कानून के उद्देश्य और लक्ष्य को आगे बढ़ाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णयों के कैटिना में उद्देश्यपूर्ण व्याख्या के साथ शाब्दिक व्याख्या के मुद्दे को निपटाया है। सर्वोच्च न्यायालय ने मध्य भारत कताई और बुनाई विनिर्माण कॉम्प बनाम नगरपालिका समिति, वर्धा, ए.आई.आर. 1958 एस.सी. 341 में माना है कि यह निर्माण का एक मान्यता प्राप्त सिद्धांत है कि सामान्य शब्द और वाक्यांश चाहे वे अपने शाब्दिक अर्थों में कितने भी व्यापक और व्यापक हों, आमतौर पर अधिनियम के वास्तविक उद्देश्यों तक सीमित होने के रूप में माना जाना चाहिए।

33. गिरधारी लाल एंड संस बनाम बलबीर नाथ माथुर में; 1986 (2) एस.सी.सी. 237, में यह माना गया था कि एक कानून की व्याख्या करने में एक न्यायालय का प्राथमिक और सबसे महत्वपूर्ण कार्य विधायिका के इरादे का पता लगाना है, वास्तविक या आरोपित। इरादे का पता लगाने के बाद, न्यायालय को कानून की व्याख्या करने का प्रयास करना चाहिए ताकि अधिनियमन के उद्देश्य और लक्ष्य को बढ़ावा दिया जा सके और आगे बढ़ाया जा सके। इस प्रयोजन के लिए, जहां आवश्यक हो, न्यायालय इस नियम से भी हट सकता है कि सादे शब्दों की व्याख्या उनके सादे अर्थ के अनुसार की जानी चाहिए। भाषा की सरलता के प्रति नम्र और मूक समर्पण की आवश्यकता नहीं है। पेटेंट अन्याय, विसंगति या बेतुकेपन से बचने के लिए या किसी कानून के अमान्य होने से बचने के लिए, अदालत को निर्माण के तथाकथित सुनहरे नियम से अलग होने में अच्छी तरह से उचित

ठहराया जाएगा ताकि यदि आवश्यक हो तो लिखित शब्द को पूरक करके अधिनियमन के उद्देश्य और लक्ष्य को प्रभावी बनाया जा सके। विधायी इरादे का पता लगाना वैधानिक निर्माण का एक बुनियादी नियम है और निर्माण के एक नियम को दायर की दी जानी चाहिए जो एक कानून के उद्देश्य और लक्ष्य को आगे बढ़ाता है और हालांकि एक निर्माण, सरल भाषा के अनुसार, आमतौर पर अपनाया जाना चाहिए, इस तरह के निर्माण को नहीं अपनाया जाना चाहिए जहां यह विसंगतियों, अन्याय या बेतुकेपन की ओर जाता है। (संदर्भ: के.पी. वर्गीज बनाम आईटीओ, (1981) 4 एस.सी.सी. 173, स्टेट बैंक ऑफ त्रावणकोर बनाम मोहम्मद एम. खान, (1981) 4 एस.सी.सी. 82, सोम प्रकाश रेखी बनाम भारत संघ (1981) 1 एस.सी.सी. 449, रावुला सुब्बा राव बनाम सी.आई.टी., ए.आई.आर. 1956 एस.सी. 604, गोविंदलाल वी कृषि उपज बाजार समिति, (1975) 2 एस.सी.सी. 482 और बाबाजी कोंडाजी बनाम नासिक मर्चेन्ट्स को-ऑप बैंक लिमिटेड (1984) 2 एस.सी.सी. 50 देखें।

34. उत्कल कान्ट्रैक्टर & जोइनरी प्रा० लि० बनाम उड़ीसा राज्य; 1987(3) एस.सी.सी. 279" में यह प्रतिपादित किया गया है कि किसी विधि को सबसे अच्छे रूप में तब समझा जा सकता है जब उसके निर्माण का कारण ज्ञात हो। किसी विधि के पीछे का कारण ही उसके व्याख्या के लिए सबसे सुरक्षित मार्गदर्शक होता है। किसी अधिनियम के शब्द उस अधिनियम के उद्देश्य अथवा कारण से अपना अर्थ ग्रहण करते हैं। विधि की व्याख्या के लिए बाह्य एवं आंतरिक साधन उपलब्ध होते हैं। बाह्य साधन में सम्मिलित हैं जब विधेयक संसद में प्रस्तुत किया जाता है, तब उसका वस्तु एवं कारण विवरण उस विधेयक से पूर्व गठित समितियों की रिपोर्टें, तथा संसदीय समितियों की रिपोर्टें। समय-समय पर संसद की बहसों का भी सीमित रूप में संदर्भ लिया जा सकता है। आंतरिक साधन में अधिनियम की प्रस्तावना, उसकी योजना तथा विनियम सम्मिलित हैं। जब अधिनियम के निर्माण का कारण ज्ञात हो जाए और उस उद्देश्य के अनुरूप व्याख्या का दिशा-निर्देश प्राप्त हो जाए, तो व्याख्याता को उसी दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। किसी अधिनियम की कोई भी धारा अथवा शब्द पृथक रूप से नहीं पढ़ा जा सकता। प्रत्येक धारा और प्रत्येक शब्द को संपूर्ण अधिनियम की पृष्ठभूमि और योजना के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिए। अधिनियम की संरचना और रूपरेखा अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि संसद अनावश्यक रूप से अपने शब्दों का प्रयोग नहीं करती। जैसे संसद से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह निरर्थक अभिव्यक्तियाँ प्रयोग करे, वैसे ही यह भी अपेक्षित नहीं कि वह अनावश्यक रूप से अपने विचार व्यक्त करे। जिस प्रकार संसद कोई शब्द बिना अर्थ के प्रयोग नहीं करती, उसी प्रकार वह बिना आवश्यकता के विधान भी नहीं बनाती। संसद से यह नहीं माना जा सकता कि वह केवल विधान करने के लिए ही विधान करती है या निरर्थक विधान करती है। [देखें- ईरा (डॉ. मंजुला क्रिपेडॉर्फ के माध्यम से) बनाम राज्य (दिल्ली का एन.सी.टी.) और अन्य 2017(15) एस.सी.सी.-133]

35. भारतीय रिज़र्व बैंक बनाम पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड और अन्य (1987)1 एस.सी.सी. 424 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि व्याख्या पाठ और संदर्भ पर निर्भर होनी चाहिए। वे व्याख्या के आधार हैं। कोई अच्छी तरह से कह सकता है कि यदि पाठ बनावट है, तो संदर्भ वह है जो रंग देता है। दोनों में से किसी को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। दोनों महत्वपूर्ण हैं। वह व्याख्या सबसे अच्छी है जो पाठ्य व्याख्या को प्रासंगिक बनाती है। एक कानून की सबसे अच्छी व्याख्या तब की जाती है जब हम जानते

हैं कि इसे क्यों अधिनियमित किया गया था। इस ज्ञान के साथ, कानून को पहले समग्र रूप से पढ़ा जाना चाहिए और फिर खंड दर खंड, वाक्यांश दर वाक्यांश और शब्द दर शब्द पढ़ा जाना चाहिए। यदि किसी कानून को उसके अधिनियमन के संदर्भ में, कानून निर्माता के चश्मे से देखा जाता है, तो इस तरह के संदर्भ द्वारा प्रदान की जाती है, तो इसकी योजना, अनुभाग, खंड, वाक्यांश और शब्द रंग ले सकते हैं और उस समय से भिन्न दिखाई दे सकते हैं जब कानून को संदर्भ द्वारा प्रदान किए गए चश्मे के बिना देखा जाता है। इन चश्मे के साथ हमें अधिनियम को समग्र रूप से देखना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि प्रत्येक खंड, प्रत्येक खंड, प्रत्येक वाक्यांश और प्रत्येक शब्द का अर्थ क्या है और यह कहने के लिए डिज़ाइन किया गया है कि यह पूरे अधिनियम की योजना में फिट हो सकता है। किसी कानून के किसी भी हिस्से और कानून के किसी भी शब्द को अलग-थलग नहीं समझा जा सकता है। संविधियों का अर्थ लगाया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक शब्द का एक स्थान हो और सब कुछ अपनी जगह पर हो।

36. एस. गोपाल रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1996) 4 एस.सी.सी. 596, प्रकाश कुमार उर्फ प्रकाश भुट्टो बनाम गुजरात राज्य, (2005)2 एस.सी.सी. 409, अनवर हसन खान बनाम मो. शफी और अन्य (2001)8 एस.सी.सी.540, भारत संघ और अन्य बनाम वेडेम वास्को डी गामा के फिलिप टियागो डी गामा, (1990)1 एस.सी.सी.277, भारतीय रिजर्व बैंक बनाम पीयरलेस जनरल फाइनेंस एंड इन्वेस्टमेंट कंपनी लिमिटेड, (1987)1 एस.सी.सी.424: (ए.आई.आर. 1987 एस.सी. 1023) और एनके जैन बनाम सीके शाह (1991)2 एस.सी.सी. 495: (ए.आई.आर. 1991 एस.सी.1289) इत्यादि में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है।

37. उपर्युक्त समस्त विचार-विमर्श से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 का उद्देश्य, चाहे संशोधन से पूर्व हो या उसके उपरांत, विशेष रूप से उसके अध्याय ग्यारह के अंतर्गत, दुर्घटनाओं के पीड़ितों को क्षतिपूर्ति प्रदान करना है, बशर्ते कि कोई वैध बीमा पॉलिसी विद्यमान हो। की गई व्याख्या के आलोक में यह कहना कि प्रावधान के लोप से बीमाकर्ता अपनी प्रारंभिक प्रतिपूर्ति की देयता से मुक्त हो जाएगा, अत्यधिक असंगत और अनुचित निष्कर्ष होगा, क्योंकि इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जहाँ बीमा पॉलिसी के होते हुए भी बीमाकर्ता दायरे से बाहर हो जाएगा और दावा-कर्ता को क्षतिपूर्ति राशि प्राप्त करने के लिए पुनः निष्पादन कार्यवाही के माध्यम से, किसी न किसी प्रकार से, वाहन-मालिक की तलाश करनी पड़ेगी। ऐसी परिस्थिति में दावा-कर्ताओं को और अधिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ेगा और यह भी अनिश्चित रहेगा कि उनके पक्ष में धनादेश अथवा निर्णय होने के बावजूद क्या वे कभी प्रत्यक्ष रूप से मालिक से वसूली कार्यवाही द्वारा क्षतिपूर्ति की राशि प्राप्त कर सकेंगे। अतः, विधायिका का अभिप्राय स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि ऐसा कोई निष्कर्ष निकालने का औचित्य नहीं है जो बीमाकर्ता को दायित्व से मुक्त करे। अधिनियम की व्याख्या अथवा कोसस ओमिसस के सिद्धांत से बीमाकर्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को कोई समर्थन प्राप्त नहीं होता। फलस्वरूप, बीमाकर्ता की ओर से प्रस्तुत की गई दलील अस्वीकृत की जाती है।

38. इसलिए, न्यायालय का मानना है कि मोटर वाहन अधिनियम, 1988 की धारा 149 की उप-धारा (4) से जुड़े परंतुक की चूक मोटर वाहन (संशोधन) अधिनियम, 2019 (32 वर्ष 2019) की धारा 150 द्वारा प्रतिस्थापित करने के बाद, न तो दावेदारों को भुगतान करने के लिए बीमाकर्ता की देयता को दूर करती है और न ही मालिक से उक्त राशि वसूलने का अधिकार है। इस आशय का कानून संशोधन अधिनियम, 2019 से अप्रभावित रहेगा और इसलिए, बीमाकर्ता 01.04.2022 के बाद होने वाली दुर्घटनाओं के संबंध में मालिक के जोखिम की क्षतिपूर्ति करना जारी रखेगा और "भुगतान एवं वसूली" सिद्धांत अभी भी तीसरे पक्ष के हितों की रक्षा करने वाले कानून के सामाजिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने वाले क्षेत्र को नियंत्रित करना जारी रखेगा। नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम स्वर्ण सिंह और अन्य, जेटी 2004(1) एस.सी.109 में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के सिद्धांत ने परंतुक की चूक के बावजूद अपना महत्व और बाध्यकारी प्रभाव नहीं खोया है। तदनुसार अवधारित किया गया।

39. नतीजतन, सभी अपीलें विफल होती हैं और **खारिज** की जाती हैं।

(2025) 1 ILRA 196

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 27.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री राजीव गुप्ता

माननीय न्यायमूर्ति मो. अजहर हुसैन इदरीसी

शासकीय अपील संख्या-1178 वर्ष 2024

उत्तर प्रदेश राज्य

... अपीलार्थी

बनाम

कल्लन और अन्य

... उत्तरदाताओं

अपीलकर्ता के अधिवक्ता: ए.के. सैंड, मो. दानिश, सैफ अली खान

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता: - - -

आपराधिक कानून - बरी करना - के खिलाफ अपील - हस्तक्षेप की गुंजाइश - भ०द०वि० की धारा 302/34 और 506 के तहत हत्या के लिए सत्र सुनवाई - विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष के गवाहों पर विश्वास नहीं करने और मकसद को खारिज करने के बाद सभी आरोपियों को बरी कर दिया - अवधारित, अपीलीय अदालत को बरी करने में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक कि विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण विकृत, अवैध या

सबूतों से असमर्थित न हो - अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही विरोधाभासी पाई गई; मुख्य चश्मदीद मुकर गए - मकसद/आशय दूरस्थ और अनुमानतः दिखाई दिया - सबूतों द्वारा समर्थित बोधगम्य दृष्टिकोण के आधार पर विचारण न्यायालय का बरी होना - कोई हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (प्रस्तर-21 से 24, 27, 28 और 29)

अवधारित:

उक्त गवाह की गवाही को देखते हुए, हम पाते हैं कि वह मृतक की पत्नी होने के नाते, सबसे स्वाभाविक गवाह थी, जिसकी रात के तड़के उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है और उसने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी-प्रतिपक्षी वास्तविक हमलावर नहीं थे और कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने वास्तव में उसके पति की हत्या कर दी थी। जिन्होंने अपनी पहचान छुपा रखी थी और उनकी पहचान नहीं हो सकी। उसने आगे स्पष्ट रूप से कहा कि उसके द्वारा दी गई पहले की गवाही अ०सा०-1- इकबाल और अ०सा०-9 सलमान (प्रस्तर-21) के डर और दबाव में थी।

इस प्रकार, हमारी राय में, उक्त गवाह को पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह नहीं कहा जा सकता है, लेकिन एक असंगत गवाह है, इस प्रकार उसकी गवाही के आधार पर, उक्त आरोपी-प्रतिपक्षियों को बरी करने के फैसले को पलटकर दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। यहां तक कि जब हम अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही को देखते हैं, जो मृतक के सगे भाई और मृतक के पहले सूचनाकर्ता और भाभी हैं, तो हम पाते हैं कि उनकी गवाही में भौतिक विरोधाभास हैं जैसा कि विचारण न्यायालय ने नोट किया है और इसलिए, उन्हें भी विश्वसनीय गवाह नहीं कहा जा सकता है जैसा कि विचारण न्यायालय ने कहा है। उक्त अपराध करने के लिए सुझाया गया मकसद भी विश्वास को बिल्कुल भी प्रेरित नहीं करता है। यहां तक कि अगर सलमान के कृत्य और आचरण से व्यथित होकर, जिसने उसकी बेटी को जबरन बहकाया और उसकी इच्छा के खिलाफ उससे शादी कर ली, तो वह सलमान की मौत का कारण बन सकता था और उसके पास मृतक के भाई गुलफाम की मौत का कोई कारण नहीं है, जो परिस्थिति अभियोजन की कहानी के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करती है और, इसलिए, अपीलकर्ता, हमारी राय में, संदेह के लाभ के हकदार हैं। (प्रस्तर-22)

मल्लप्पा (उपरोक्त) के फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त दिशानिर्देशों के साथ साक्ष्यों के उपरोक्त विश्लेषण और मूल्यांकन का आकलन करते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि विचारण न्यायालय ने कानूनी रूप से बोधगम्य दृष्टिकोण अपनाया है, जो अभियुक्त के पक्ष में है और इस प्रकार यह धारा 378 (3) द०प्र०स० (प्रस्तर-24) के तहत शक्तियों का प्रयोग करने में इस अदालत द्वारा किसी भी हस्तक्षेप के योग्य नहीं है

कानून के उपरोक्त स्थापित प्रस्ताव के आलोक में, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पहले सूचनाकर्ता द्वारा दायर धारा 372 द०प्र०स० के तहत आपराधिक अपील को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 5.4.2024 के निर्णय और आदेश के माध्यम से पहले ही खारिज कर दिया गया है, जिसे आगे उच्च न्यायालय

के समक्ष चुनौती नहीं दी गई है और यह अंतिम हो गया है और आक्षेपित निर्णय से गुजर रहा है। हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय ने अभियुक्त प्रतिपक्षियों के खिलाफ बरी होने के निष्कर्ष को दर्ज करने के लिए ठोस कारण दिए थे और आरोपी प्रतिपक्षियों को बरी करना अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों की चर्चा से उत्पन्न होने वाला बोधगम्य और न्यायसंगत दृष्टिकोण है और किसी भी दुर्बलता या विकृति से ग्रस्त नहीं है। इसलिए, हमारी राय है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश न्यायसंगत, उचित और कानूनी हैं और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। (प्रस्तर-29)

पुनरीक्षण आवेदन खारिज कर दिया गया। (ई-14)

उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों की सूची:

1. मल्लप्पा बनाम कर्ण राज्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 130
2. राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2023) 6 एस.सी.सी. 115
3. एचडी सुंदर बनाम कर्ण राज्य, (2023) 8 एस.सी.सी. 544

(माननीय न्यायमूर्ति मो. अजहर हुसैन इदरीसी)

1. श्री जितेंद्र कुमार जायसवाल, अपीलकर्ता/राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री मो. आरोपी प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता दानिश को सुना गया और अवर न्यायालय के अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. वर्तमान सरकारी अपील तथा अपील प्रस्तुत करने की अनुमति हेतु आवेदन राज्य बनाम कल्लन एवं अन्य के प्रकरण में राज्य सरकार, उत्तर प्रदेश द्वारा उस विवादित निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.03.2024, जो अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या-9, मुरादाबाद द्वारा सत्र परीक्षण संख्या 952 सन् 2018 (राज्य बनाम कल्लन एवं अन्य), जो अपराध संख्या 39 सन् 2018, धारा 302 सहपठित धारा 34 भ०द०वि० तथा धारा 506 भ०द०वि०, थाना हज़रतनगर गढ़ी, जनपद मुरादाबाद से संबंधित है, में पारित किया गया था, के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा सभी अभियुक्त-प्रतिवादीगण कल्लन, हनीफ, शाहिद एवं वहीद को धारा 302/34 एवं 506 भ०द०वि० के अंतर्गत आरोपों से अभियोजन से मुक्त (बरी) किया गया है।

3. अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, लिखित रिपोर्ट के आधार पर 12.6.2018 को वजीर के इकबाल बेटे के कहने पर एक प्राथमिकी दर्ज की गई है, जिसमें कहा गया है कि वह सोनकपुर, थाना-हज़रतनगर गढ़ी, मुरादाबाद का स्थायी निवासी है। 12.6.2018 की रात को वह अपने बच्चों के साथ अपने घर की छत पर सो रहा था। उसका छोटा भाई गुलफाम भी अपनी पत्नी और बच्चों के साथ पास की छत पर सो रहा था और रात करीब 1.30 बजे आरोपी प्रतिपक्षी कल्लन, हनीफ, शाहिद और वहीद ने समान इरादे से उसके भाई गुलफाम की छत पर पहुंचकर उसकी गर्दन काट दी, जिससे उसकी मौत हो गई।

4. आगे यह आरोप लगाया गया है कि उक्त हत्या करते समय, वे कह रहे थे कि आपके भाई ने उसकी बेटी को जबरन उठा ले गया था और उक्त घटना उसी का परिणाम है। गुलफाम की चीख-पुकार सुनने के बाद उसने हमलावरों को टॉर्च की रोशनी में जंगल की ओर भागते देखा था।

5. उक्त लिखित रिपोर्ट के आधार पर थाना हजरतनगर गद्दी में दिनांक 12.6.2018 को प्रातः 4.14 बजे धारा 302, 506 भ०द०वि० के तहत केस अपराध संख्या-13 वर्ष 2018 के तहत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। अ०सा०-6 हेड कांस्टेबल परवेज अली द्वारा उक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के बाद, मामले की विवेचना अ०सा०-13 उप निरीक्षक नीरज कुमार शर्मा को सौंपी गई थी, जो घटनास्थल पर पहुंचे और नक्शा नज़री तैयार किया और संबंधित गवाहों के बयान दर्ज किए और टॉर्च अपने कब्जे में ले ली और इसका फर्द फ़र्द बरामगद्दी तैयार किया। इसके बाद, अ०सा०-10 एसएसआई जितेंद्र कुमार बालियान ने मृतक के व्यक्ति की जांच की और पंचनामा और अन्य दस्तावेज, जैसे फोटो-लाश, चालान-लाश, पत्र सी.एम.ओ., प्रतिसार निरीक्षक को पत्र इत्यादि तैयार किया और घटनास्थल से खून आलूदा मिट्टी और सादी मिट्टी को भी अपने कब्जे में ले लिया और इसे एक कंटेनर में रखा और फ़र्द बरामगद्दी तैयार किया और उसके बाद शव को एक कपड़े में सील कर दिया और अ०सा०-8 कांस्टेबल मनोज कुमार को शव परीक्षण के लिए मुर्दाघर ले जाने के लिए भेज दिया।

6. अ०सा०-7 डॉ. शशि कुमार द्वारा 12.6.2018 को मृतक के व्यक्ति का शव परीक्षण किया गया, जिन्होंने मृतक के व्यक्ति पर पाई गई चोटों को नोट किया था और शव परीक्षण रिपोर्ट तैयार की थी, जिसमें मौत का कारण सदमे और रक्तस्राव के परिणामस्वरूप शव परीक्षण से पहले की चोट माना गया है।

7. इसके बाद, विवेचनाधिकारी ने संबंधित गवाहों के बयान दर्ज करने और संबंधित सामग्री एकत्र करने के बाद, विवेचना पूरी की और सभी चार आरोपियों-प्रतिपक्षियों के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

8. उक्त आरोप पत्र के आधार पर, विद्वान मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया था, हालांकि, चूंकि मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था, इसलिए इसे मुकदमे के लिए सत्र न्यायालय में प्रतिबद्ध किया गया था, जहां इसे सत्र परीक्षण संख्या-952 वर्ष 2018 (राज्य बनाम कल्लन और अन्य) के रूप में पंजीकृत किया गया था। इसके बाद 13.3.2019 को विचारण न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० सपठित धारा 34 और 506 भ०द०वि० के तहत आरोपी-प्रतिपक्षियों के खिलाफ आरोप विरचित किए, जिसे पढ़ा गया और उन्हें समझाया गया, जिन्होंने आरोपों को खारिज कर दिया, दोषी नहीं होने का अनुरोध किया और मुकदमा चलाने का दावा किया।

9. अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त-प्रतिपक्षियों के खिलाफ अपराध साबित करने के लिए, अ०सा०-1 इकबाल, प्रथम सूचनाकर्ता, अ०सा०-2 श्रीमती अस्मा, इकबाल की पत्नी, चशमदीद गवाह, अ०सा०-3 मृतक की पत्नी श्रीमती शबनम, अ०सा०-4 जेन आलम टॉर्च और बालों की बरामदगी के गवाह, अ०सा०-5 इरफान पंचनामा के गवाह और अपराध हथियार की बरामदगी के गवाह, अ०सा०-6 हेड कांस्टेबल परवेज अली, जिन्होंने प्रथम सूचना रिपोर्ट

और चिक प्राथमिकी के साथ अपनी संबंधित रोज़नामचा, अंसा०-7 डॉ. शशि कुमार, चिकित्सा अधिकारी को तैयार किया था, जिन्होंने शव परीक्षण किया और चोटों का उल्लेख किया, अंसा०-8 कांस्टेबल मनोज कुमार, जिन्होंने शव को शव परीक्षण के लिए मुर्दाघर में ले जाया था, अंसा०-9 मृतक के एक और भाई अंसा०-9 सलमान, अंसा०-10 एस.एस.आई. जितेंद्र बालियान, जिन्होंने मृतक की जांच की थी और फ़र्द बरामदगी तैयार किया था, अंसा०-11 श्रीमती सन्नो सलमान की पत्नी कल्लन की बेटी-प्रतिपक्षी संख्या-1, अंसा०-12 तस्लीम पंचनामा के गवाह और अंसा०-13 उप निरीक्षक नीरज कुमार शर्मा विवेचनाधिकारी को परीक्षित करवाया।

10. अभियोजन पक्ष के गवाहों की गवाही दर्ज करने के बाद, आरोपी प्रतिपक्षियों के बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किए गए, जिसमें उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी से इनकार किया है और कहा है कि उन्हें गांव की दुश्मनी के कारण प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है और वास्तव में वे घटना के समय मौजूद नहीं थे और घटना किसी अज्ञात व्यक्ति के कारण हुई है। बचाव पक्ष के गवाह के तौर पर जकीर पुत्र नसरुद्दीन, नन्हू पुत्र इस्माइल, अकबर पुत्र रोशन, जुल्फिकार अली पुत्र अनीस और जुम्मा पुत्र यामीन को गवाह के तौर पर पेश किया गया।

11. गवाहों की पूरी गवाही दर्ज करने और आरोपी-प्रतिपक्षियों को सुनने के बाद, निचली अदालत ने 13.3.2024 के फैसले और आदेश के माध्यम से आरोपी-प्रतिपक्षियों को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया।

12. उक्त आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होने के कारण, वर्तमान शासकीय अपील को राज्य द्वारा अपील की अनुमति देने के लिए एक आवेदन के साथ अभियुक्त-प्रतिपक्षियों के पक्ष में दर्ज किए गए बरी होने के निष्कर्ष को उलटने और उन्हें आरोपित अपराध के लिए दोषी ठहराने के लिए दायर की दी गई है।

13. राज्य/अपीलकर्ता के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेखों पर मौजूद सबूतों और सामग्री का मूल्यांकन नहीं किया है और आरोपी-प्रतिपक्षियों के पक्ष में बरी करने के निष्कर्ष को अवैध रूप से दर्ज किया है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश अनुमानों और अटकलों पर आधारित है और इसलिए, प्रस्तुत शासकीय अपील की अनुमति देकर रद्द किए जाने के लिए उत्तरदायी है।

14. तदन्यथा, अभियुक्त-प्रतिपक्षियों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विचारण न्यायालय ने सही परिप्रेक्ष्य में अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्य और सामग्री की मूल्यांकन की है और मुकदमे के दौरान पेश की गई गवाही के आलोक में आरोपी-प्रतिपक्षियों के पक्ष में बरी होने के निष्कर्ष को दर्ज किया है और इस उचित निष्कर्ष पर पहुंचा है कि उन्होंने यह उचित निष्कर्ष निकाला है कि अभियुक्त-प्रतिवादीगण के विरुद्ध आरोपित अपराध का कोई गठन नहीं होता है, अपितु उन्हें इस प्रकरण में झूठा फंसाया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि विवादित निर्णय एवं आदेश दिनांक 13.03.2024, जो परीक्षण न्यायालय द्वारा पारित किया गया था, के विरुद्ध

प्रथम सूचक इकबाल द्वारा धारा 372 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आपराधिक अपील संख्या 169 सन् 2024 प्रस्तुत की गई थी। उक्त अपील का विचार इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा किया गया, तथा इस न्यायालय ने दिनांक 05.04.2024 के अपने सुसंगत एवं विस्तृत निर्णय एवं आदेश द्वारा उक्त अपील को अस्वीकार (खारिज) कर दिया।

15. उक्त आपराधिक अपील संख्या 169 सन् 2024, जो धारा 372 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दायर की गई थी, के निरसन संबंधी आदेश दिनांक 05.04.2024 के विरुद्ध किसी उच्च न्यायालय/उच्चतर न्यायालय के समक्ष कोई अपील प्रस्तुत नहीं की गई है, तथा उक्त आदेश अब अंतिम हो गया है। अतः वर्तमान शासकीय अपील भी निरस्त किए जाने योग्य (खारिज किए जाने योग्य) है।

16. पक्षों के अधिवक्ता द्वारा की गई प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार करने और मामले के तथ्यों और उसमें दी गई गवाही को दोहराने के बाद, हम पाते हैं कि विचाराधीन घटना 12.6.2018 को रात लगभग 1.30 बजे हुई थी, जब कहा जाता है कि आरोपी-प्रतिपक्षियों ने सलमान के भाई गुलफाम पर हमला किया था। अभियोजन पक्ष के मामले के अनुसार, आरोपी प्रतिपक्षी संख्या-1 कल्लन की बेटी सन्नो को मृतक गुलफाम के सलमान भाई ने जबरन ले लिया, जिसने उससे शादी की थी और उसके साथ शांति से रह रहा था। उक्त विवाह अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-1 कल्लन की इच्छा के विरुद्ध था और इस प्रकार, उसने प्रस्तुत अपराध किया।

17. जब हम वर्तमान घटना के मकसद से गुजरते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं, तो हम पाते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा सुझाए गए मकसद की पृष्ठभूमि में, अभियुक्त-प्रतिपक्षी संख्या-1 कल्लन सलमान के कृत्य और आचरण से व्यथित था, जिसने जबरन उसकी बेटी को भगा ले गया था और चार साल पहले उससे शादी कर ली थी और उसके साथ शांति से रह रहा था। हालांकि, चार साल बाद भी आरोपी प्रतिपक्षी संख्या-1 कल्लन ने सलमान के भाई गुलफाम की हत्या करने के लिए अन्य आरोपियों के साथ हाथ मिलाने का कोई कारण नहीं था।

18. विचारण न्यायालय ने मकसद के उक्त तथ्य पर स्पष्ट रूप से चर्चा की है और माना है कि परिस्थिति की पृष्ठभूमि में, उक्त मकसद दूर की कौड़ी और विश्वास करना मुश्किल प्रतीत होता है। मुकदमे के दौरान, सलमान और कल्लन की बेटी श्रीमती सन्नो की भी अंसा०-9 और अंसा०-11 के रूप में जांच की गई है। सलमान और उन्होंने अपनी गवाही में कहा कि सन्नो के साथ शादी के बाद, वह अपनी पत्नी के साथ दिल्ली में रह रहा है और आरोपी-प्रतिपक्षी संख्या-1 कल्लन ने घटना के बाद कभी उनसे संपर्क नहीं किया और न ही उन्हें कोई धमकी दी और पिछले चार साल घटना मुक्त थे और इस अवधि के दौरान कोई अप्रिय घटना नहीं हुई थी। हालांकि, उपरोक्त उद्देश्य के लिए कल्लन और उसके साथियों द्वारा अचानक गुलफाम की हत्या, अभियोजन पक्ष के मामले की सत्यता और प्रामाणिकता के बारे में एक बड़ा प्रश्न चिह्न और गंभीर संदेह पैदा करता है, वह भी रात के अंधेरे में जब सभी सो रहे थे।

19. इसके अलावा, जब हम मृतक गुलफाम की पत्नी अ०सा०-3 शबनम की गवाही के माध्यम से जाते हैं, जो खुद को एक चश्मदीद गवाह होने का दावा करती है, तो हम पाते हैं कि हालांकि उनकी परीक्षा में उन्होंने अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन किया है, लेकिन अपनी जिरह में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना अंधेरी रात में हुई है, जहां प्रकाश का कोई स्रोत नहीं था और न ही टॉर्च और न ही कोई बिजली का बल्ब, वह छत पर मौजूद थी, जहां मृतक सो रहा था, लेकिन नीचे आ गया था। उसने आगे स्पष्ट रूप से कहा है कि गांव का कोई अन्य व्यक्ति या उसके परिवार के किसी भी सदस्य और न ही इकबाल ने घटना को देखा था, वह घटनास्थल पर मौजूद भी नहीं था और यह वह थी, जो सबसे पहले घटनास्थल पर पहुंची थी और शोर मचाया था।

20. उसने आगे स्पष्ट रूप से कहा है कि अभियुक्त-प्रतिपक्षी कल्लन, हनीफ, शाहिद और वहीद हालांकि वर्तमान घटना में शामिल हैं और उनके गांव से संबंधित हैं, जिससे वह अच्छी तरह से परिचित हैं, लेकिन उन्हें घटना के समय नहीं देखा गया था। उसने आगे कहा है कि उसके पति को हमलावरों द्वारा मार डाला गया था, जिन्होंने अपनी पहचान छिपाई थी और वह उसकी पहचान नहीं कर सकी। उन्होंने आगे कहा है कि हमलावर, जिन्होंने वास्तव में घटना को अंजाम दिया था और भाग रहे थे, उनकी शारीरिक संरचना आरोपी के समान नहीं थी। उसने पुलिस को कोई बयान देने से इनकार किया और न ही पुलिस ने उससे पूछताछ की। उसने आगे गवाही दी कि इकबाल एक अलग घर में रहता था और उसके द्वारा दिया गया पहला बयान इकबाल और सलमान के डर और दबाव में दिया गया था, जिन्होंने उसे अपनी इच्छा के अनुसार गवाही देने से इनकार करने पर उसे जान से मारने की धमकी दी थी। उसने घटना के समय अ०सा०-2 अस्मा की उपस्थिति से भी इनकार किया, इस प्रकार, अभियोजन पक्ष द्वारा उसे पक्षदोही घोषित कर दिया गया था और लोक अभियोजक द्वारा जिरह की गई थी।

21. उक्त गवाह की गवाही के माध्यम से जाने के दौरान, हम पाते हैं कि वह मृतक की पत्नी होने के नाते, सबसे स्वाभाविक गवाह थी, जिसकी रात के घंटों में उपस्थिति पर संदेह नहीं किया जा सकता है और उसने अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि आरोपी-प्रतिपक्षी वास्तविक हमलावर नहीं थे और कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने वास्तव में उसके पति की हत्या कर दी थी, जिन्होंने अपनी पहचान छुपा रखी थी और उनकी पहचान नहीं हो सकी। उसने आगे स्पष्ट रूप से कहा कि उसके द्वारा दी गई पहले की गवाही अ०सा०-1 इकबाल और अ०सा०-9 सलमान के डर और दबाव में थी।

22. इस प्रकार, उक्त गवाह, हमारी राय में, पूरी तरह से विश्वसनीय गवाह नहीं कहा जा सकता है, लेकिन एक असंगत गवाह है, इस प्रकार उसकी गवाही पर भरोसा करते हुए, उक्त अभियुक्त-प्रतिपक्षियों को बरी करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। यहां तक कि जब हम अ०सा०-1 और अ०सा०-2 की गवाही को देखते हैं, जो मृतक के सगे भाई और मृतक के पहले सूचनाकर्ता और भाभी हैं, तो हम पाते हैं कि उनकी गवाही में भौतिक विरोधाभास हैं जैसा कि विचारण न्यायालय ने नोट किया है और इसलिए, उन्हें भी विश्वसनीय गवाह नहीं कहा जा सकता है जैसा कि विचारण न्यायालय ने कहा है। उक्त अपराध करने के लिए सुझाया गया

मकसद भी विश्वास को बिल्कुल भी प्रेरित नहीं करता है। यहां तक कि अगर सलमान के कृत्य और आचरण से व्यथित होकर, जिसने उसकी बेटी को जबरन बहकाया और उसकी इच्छा के खिलाफ उससे शादी कर ली, तो वह सलमान की मौत का कारण बन सकता था और उसके पास मृतक के भाई गुलफाम की मौत का कोई कारण नहीं है, जो परिस्थिति अभियोजन की कहानी के बारे में एक गंभीर संदेह पैदा करती है और इसलिए, अपीलकर्ता, हमारी राय में, संदेह के लाभ के हकदार हैं।

23. अब शासकीय अपील में बरी होने के मामले को वापस लेने के दायरे में आते हुए, बरी होने के खिलाफ अपील में साक्ष्य की मूल्यांकन के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के सिद्धांतों पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा। हाल ही में **मल्लप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, 2024 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 130** में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

37. हमारा आपराधिक न्यायशास्त्र अनिवार्य रूप से इस वादे पर आधारित है कि किसी भी निर्दोष को दोषी के रूप में दोषी नहीं ठहराया जाएगा। आपराधिक कानून के सभी सुरक्षा उपायों और न्यायशास्त्रीय मूल्यों का उद्देश्य न्याय की किसी भी विफलता को रोकना है। बरी होने की अपील का निर्णय लेते समय जो सिद्धांत चलन में आते हैं, उन्हें संक्षेप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है:

- (i) साक्ष्य की मूल्यांकन एक आपराधिक मुकदमे का मुख्य तत्व है और इस तरह की मूल्यांकन व्यापक होनी चाहिए - जिसमें सभी साक्ष्य, मौखिक या दस्तावेजी शामिल हैं;
- (ii) साक्ष्य की आंशिक या चयनात्मक प्रशंसा के परिणामस्वरूप न्याय का गर्भपात हो सकता है और यह अपने आप में चुनौती का आधार है;
- (iii) यदि न्यायालय साक्ष्य की मूल्यांकन के बाद पाता है कि दो विचार संभव हैं, तो अभियुक्त के पक्ष में एक का आमतौर पर पालन किया जाएगा;
- (iv) यदि विचारण न्यायालय का दृष्टिकोण कानूनी रूप से बोधगम्य दृष्टिकोण है, तो केवल एक विपरीत दृष्टिकोण की संभावना बरी होने के उलट को उचित नहीं ठहराएगी;
- (v) यदि अपीलीय न्यायालय साक्ष्य की पुनः मूल्यांकन पर अपील में बरी होने को उलटने के लिए इच्छुक है, तो उसे विशेष रूप से बरी करने के लिए विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए सभी कारणों को संबोधित करना चाहिए और सभी तथ्यों को आच्छादित करना चाहिए;
- (vi) बरी होने से दोषसिद्धि तक उलटने के मामले में, अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय के निर्णय में कानून या तथ्य की अवैधता, विकृति या त्रुटि का प्रदर्शन करना चाहिए।

24. मल्लप्पा (उपरोक्त) के फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए पूर्वोक्त दिशानिर्देशों के साथ साक्ष्य के उपरोक्त विश्लेषण और मूल्यांकन का आकलन करते हुए, हमारी सुविचारित राय है कि विचारण न्यायालय ने कानूनी रूप से बोधगम्य दृष्टिकोण अपनाया है, जो अभियुक्त के पक्ष में है और इस प्रकार यह

धारा 378(3) द०प्र०स० के तहत शक्तियों का प्रयोग करने में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप का हकदार नहीं है।

25. इसके अलावा इस न्यायालय ने **राजेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य और अन्य** के मामले में पहले के विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के बाद क्षेत्र को आच्छादित करने वाली कानूनी स्थिति को समाहित किया और निम्नानुसार अवधारित किया: -

"29. निर्णयों के एक कैटेना का उल्लेख करने के बाद, इस न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील से निपटने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के बारे में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांतों को समाप्त कर दिया: (चंद्रप्पा मामला [चंद्रप्पा बनाम कर्नाटक राज्य, (2007) 4 एस.सी.सी. 415]

"42. उपरोक्त निर्णयों से, हमारे विचार में, बरी करने के आदेश के खिलाफ अपील से निपटने के दौरान अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के संबंध में निम्नलिखित सामान्य सिद्धांत उभरते हैं:

(1) एक अपीलीय न्यायालय के पास उन साक्ष्यों की समीक्षा, पुनर्मूल्यांकन और पुनर्विचार करने की पूरी शक्ति है जिन पर बरी करने का आदेश स्थापित किया गया है।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 ऐसी शक्ति के प्रयोग पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं रखती है और अपीलीय न्यायालय तथ्य और विधि दोनों के प्रश्नों पर अपने स्वयं के निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले साक्ष्य पर कोई सीमा, प्रतिबंध या शर्त नहीं रखती है।

(3) विभिन्न अभिव्यक्तियां, जैसे, "पर्याप्त और सम्मोहक कारण", "अच्छे और पर्याप्त आधार", "बहुत मजबूत परिस्थितियां", "विकृत निष्कर्ष", "स्पष्ट गलतियाँ", आदि का उद्देश्य बरी होने के खिलाफ अपील में अपीलीय न्यायालय की व्यापक शक्तियों को कम करना नहीं है। इस तरह की वाक्यांशावली "भाषा के उत्कर्ष" की प्रकृति में अधिक हैं, जो सबूतों की समीक्षा करने और अपने निष्कर्ष पर आने के लिए अदालत की शक्ति को कम करने की तुलना में बरी करने में हस्तक्षेप करने के लिए अपीलीय अदालत की अनिच्छा पर जोर देती हैं।

(4) तथापि, अपीलीय न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि बरी होने की स्थिति में अभियुक्त के पक्ष में दोहरी धारणा है। सबसे पहले, आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के तहत उसके लिए निर्दोषता की धारणा उपलब्ध है कि प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक कि वह कानून की एक सक्षम अदालत द्वारा दोषी साबित नहीं हो जाता। दूसरे, अभियुक्त ने अपनी बरी कर लेने के बाद, उसकी बेगुनाही की धारणा को विचारण न्यायालय द्वारा और मजबूत, पुनः पुष्टि और मजबूत किया जाता है।

(5) यदि अभिलेखों पर साक्ष्य के आधार पर दो उचित निष्कर्ष संभव हैं, तो अपीलीय न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज बरी करने के निष्कर्ष को बाधित नहीं करना चाहिए।

26. इसके अलावा, एच.डी. सुंदरा और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य के मामले में इस न्यायालय ने द०प्र०स० की धारा 378 के तहत बरी होने के खिलाफ अपील से निपटने के दौरान अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत किया: -

"8.1. अभियुक्त को बरी किया जाना निर्दोषता की धारणा को और मजबूत करता है;

8.2. अपीलीय न्यायालय, बरी होने के खिलाफ अपील की सुनवाई करते हुए, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करने का हकदार है;

8.3. अपीलीय न्यायालय, साक्ष्य की फिर से मूल्यांकन करने के बाद, बरी होने के खिलाफ अपील का निर्णय लेते समय, इस बात पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या विचारण न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है जिसे अभिलेखों पर साक्ष्य के आधार पर लिया जा सकता था;

8.4. यदि लिया गया दृष्टिकोण एक संभावित दृष्टिकोण है, तो अपीलीय न्यायालय इस आधार पर बरी होने के आदेश को पलट नहीं सकता है कि एक अन्य दृष्टिकोण भी संभव था; और

8.5. अपीलीय न्यायालय बरी करने के आदेश में केवल तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्य के आधार पर दर्ज किया जा सकने वाला एकमात्र निष्कर्ष यह था कि अभियुक्त का अपराध उचित संदेह से परे साबित हुआ था और कोई अन्य निष्कर्ष संभव नहीं था।

27. इस प्रकार, यह संदेह से परे है कि अभियुक्त के पक्ष में विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज बरी करने के फैसले को पलटने के लिए एक अपीलीय न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के दायरे का प्रयोग निम्नलिखित सिद्धांतों के दायरे के भीतर किया जाना चाहिए: -

ए) कि बरी करने का निर्णय पेटेंट विकृति से ग्रस्त है;

बी) यह अभिलेखों पर भौतिक साक्ष्य पर विचार करने के लिए गलत पढ़ने/चूक पर आधारित है;

सी) यह कि कोई भी दो स्वीकार्य विचार संभव नहीं हैं और केवल अभियुक्त के अपराध के अनुरूप दृष्टिकोण ही अभिलेखों पर उपलब्ध साक्ष्यों से संभव है।

28. अपीलीय न्यायालय को, बरी करने के फैसले में हस्तक्षेप करने के लिए, उपरोक्त कारकों पर प्रासंगिक निष्कर्षों को दर्ज करना होगा यदि वह विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए बरी होने के फैसले को उलटने के लिए इच्छुक है।

29. उपर्युक्त स्थापित विधि-सिद्धांत के परिप्रेक्ष्य में, विशेष रूप से इस तथ्य के आलोक में कि धारा 372 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रथम सूचना कर्ता द्वारा दायर आपराधिक अपील इस न्यायालय की समन्वय पीठ

द्वारा दिनांक 5.4.2024 के निर्णय एवं आदेश से पहले ही अस्वीकृत की जा चुकी है, जिसे उच्चतर न्यायालय के समक्ष आगे चुनौती नहीं दी गई है और जो अंतिम रूप से निर्णित हो चुकी है, तथा विवादित निर्णय का अवलोकन करने पर, यह प्रतीत होता है कि परीक्षण न्यायालय ने अभियुक्त-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध अभियोजन को दोषसिद्ध न करने (अभियुक्तों के दोषमुक्ति) का निष्कर्ष दर्ज करते समय ठोस एवं विश्वासयोग्य कारण दिए हैं। अभियुक्त-प्रत्यर्थियों का दोषमुक्त किया जाना अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों के परीक्षण से उत्पन्न एक संभाव्य एवं न्यायसंगत दृष्टिकोण है, जो किसी प्रकार की त्रुटि या विकृति से ग्रस्त नहीं है। इसलिए, हमारी राय है कि विचारण न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश न्यायसंगत, उचित और कानूनी है और इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

30. तदनुसार, अपील करने के लिए अनुमति देने की प्रार्थना को **अस्वीकार** किया जाता है। तदनुसार शासकीय अपील भी **खारिज** की जाती है।

31. इस निर्णय और आदेश की एक प्रमाणित प्रति विचारण न्यायालय के अभिलेखों के साथ जानकारी और आवश्यक अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को अग्रेषित की जाए।

(2025) 1 ILRA 203

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लावनिया

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या 363 वर्ष 2025

कलावती देवी उर्फ कलावती

...आवेदिका

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी गण

आवेदक के अधिवक्ता:

शरद पाठक, गौरव शुक्ला

विपक्षी गण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

(क) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति, धारा 239 - आरोपमुक्ति, भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 420 - धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत दर्ज मामले में धारा 239 सीआर.पी.सी. के तहत आरोपमुक्ति की मांग हेतु आवेदन - केवल शपथ पत्र को प्रमाणित करने का कार्य धोखाधड़ी का अपराध नहीं माना जा सकता, जब तक कि बेईमानी का इरादा स्थापित न हो जाए। (पैरा - 17, 18)

(ख) आपराधिक विधि - प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत - कारणों को दर्ज करना अनिवार्य है - कारण ही प्रत्येक निष्कर्ष की धड़कन होते हैं - न केवल प्रशासनिक बल्कि न्यायिक आदेश भी उसमें दर्ज कारणों द्वारा समर्थित होने चाहिए - कारणों को दर्ज न करना, स्वीकार्य साक्ष्यों पर विचार न करना या अस्वीकार्य साक्ष्यों पर विचार करना आदेश को अस्थिर बना देता है - कारण बताने में विफलता न्याय के हनन के समान है - यदि निर्णय 'स्फिंक्स के रहस्यमयी चेहरे' की तरह कुछ स्पष्ट नहीं करता, तो इसकी चुप्पी अदालतों के लिए अपने अपीलीय कार्य को करने या निर्णय की वैधता को परखने हेतु न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करना लगभग असंभव बना देती है। (पैरा - 20, 29, 32, 33)

धारा 239 सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन - आरोपमुक्ति की मांग - आधार - कोई धोखाधड़ी का इरादा नहीं - मजिस्ट्रेट ने आरोपमुक्ति आवेदन खारिज किया - यह माना कि आरोप तय करने के लिए प्रथम दृष्टया साक्ष्य मौजूद हैं - आपराधिक पुनरीक्षण - खारिज कर दिया गया - मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण अदालत मामले के तथ्यों और विधि पर ठीक से विचार करने में विफल रहे - आवेदक उत्तरदायी क्यों नहीं हैं, इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कोई कारण नहीं बताए - अदालतों ने धारा 420 भारतीय दंड संहिता (धोखाधड़ी) के आवश्यक तत्वों और सर्वोच्च न्यायालय के प्रासंगिक निर्णयों की अनदेखी की - अतः यह आवेदन। (पैरा - 2 से 18)

अभिनिर्धारित:- मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण अदालत के आक्षेपित आदेशों को रद्द किया जाता है। मामले को वापस मजिस्ट्रेट के पास भेजा जाता है ताकि आवेदक के आरोपमुक्ति के अनुरोध पर पुनर्विचार किया जा सके। (पैरा - 34, 35)

धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आवेदन स्वीकार किया गया। (E-7)

उद्धृत किए गए मामलों की सूची:

1. अनिल कुमार बोस बनाम बिहार राज्य, (1974) 4 एससीसी 616
2. मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य, (2009) 8 एससीसी 751
3. समीर सहाय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 14 एससीसी 233
4. आर.के. विजयसारथी बनाम सुधा सीताराम, (2019) 16 एससीसी 739
5. दीपक गाबा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2023) 3 एससीसी 423

6. विपिन साहनी बनाम सी.बी.आई., 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 511
7. रमनदीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन All 7500
8. जीत विनायक अरोलकर बनाम गोवा राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 31
9. ब्रौन बनाम अमलगामेटेड इंजीनियरिंग यूनियन, 1971(1) AIIER 1148
10. अलेक्जेंडर मशीनरी (डडली) लिमिटेड बनाम क्रैबट्रीज, 1974(4) IRC 120 (NIRC)
11. भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर, (1973) 2 एससीसी 836
12. उमा चरण बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 1915 S.N.
13. एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, एआईआर 1990 एससी 1984
14. राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2003) 11 एससीसी 519
15. ओडिशा राज्य बनाम धनीराम लुहार, (2004) 5 एससीसी 568
16. मैकडरमोट इंटरनेशनल इंक. बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड एवं अन्य, (2006) 11 एससीसी 181
17. राजस्थान राज्य बनाम राजेंद्र प्रसाद जैन, (2008) 15 एसएससी 711
18. क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम मसूद अहमद खान एवं अन्य, (2010) 9 एससीसी 496
19. सी.सी.आई. बनाम सेल (S.A.I.L.) एवं अन्य, JT 2010 (10) एससी 26
20. सचिव एवं क्यूरेटर, विक्टोरिया मेमोरियल बनाम हावड़ा गणतांत्रिक नागरिक समिति एवं अन्य, JT 2010(2) एससी 566
21. चंदना इम्पेक्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीमा शुल्क आयुक्त, नई दिल्ली, 2011(269) E.L.T. 433 (एससी)

(माननीय न्यायमूर्ति सौरभ लावनिया द्वारा पारित)

1. आवेदिका के विद्वान अधिवक्ता श्री शरद पाठक और श्री गौरव शुक्ला, तथा राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री आलोक कुमार तिवारी को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान आवेदन निम्नलिखित मुख्य राहत (राहतों) की मांग के साथ दायर किया गया है:-

1. अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बाराबंकी (न्यायालय संख्या 5) द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 94/2023 में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 23.11.2024, जो इस याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में संलग्न है;

II. अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, बाराबंकी (कक्ष संख्या 25) द्वारा मुकदमा अपराध संख्या 186/2020, अंतर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 420, थाना दरियाबाद, जिला बाराबंकी में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 15.03.2023, जो इस याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में संलग्न है। धारा 239 द.प्र.स. के तहत याचिकाकर्ता द्वारा दायर आरोपमुक्ति आवेदन स्वीकार किया जाए और याचिकाकर्ता को मुकदमा अपराध संख्या 186/2020, धारा 420 भारतीय दंड संहिता, थाना दरियाबाद, जिला बाराबंकी की कार्यवाही से मुक्त (उन्मोचित) किया जाए।

3. मुकदमा अपराध संख्या 186/2020, धारा 420 भारतीय दंड संहिता, थाना दरियाबाद, जिला बाराबंकी से उत्पन्न सीएनआर संख्या यूपीबीबी 040149722021 (राज्य बनाम कलावती और अन्य) के रूप में पंजीकृत मामले में, अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कक्ष संख्या 4, बाराबंकी (संक्षेप में मजिस्ट्रेट) ने दिनांक 15.03.2023 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से धारा 239 सीआर.पी.सी. के तहत आवेदक द्वारा प्रस्तुत आरोपमुक्ति आवेदन को खारिज कर दिया। दिनांक 15.03.2023 का आदेश नीचे उद्धृत किया गया है:-

"पत्रावली पेश हुई। पुकार करायी गयी।

विद्वान सहायक अभियोजन अधिकारी व अभियुक्ता के विद्वान अधिवक्ता उपस्थित है।

पत्रावली वास्ते निस्तारण प्रार्थना-पत्र अन्तर्गत धारा-239 दं०प्र०सं० हेतु नियत है।

अभियुक्ता कलावती की ओर से इस आशय का प्रार्थनापत्र दिया गया है कि उपरोक्त मुकदमा वादिनी व 6 अन्य लोगों के विरुद्ध वादी ने अन्तर्गत धारा 409 भा०दं०सं० का दर्ज कराया था जिसमें विवेचक ने अन्य पांच नामजद अभियुक्तों के नाम निकालते हुए वादिनी व अन्य गैर नामजद अभियुक्त चन्द्र प्रकाश विश्वकर्मा के विरुद्ध आरोप पत्र धारा 409 भा०दं०सं० को निकालते हुए धारा 420 भा०दं०सं० प्रस्तुत किया। उक्त मामले में प्रार्थिनी के विरुद्ध यह आरोप लगाये गये हैं कि प्रार्थिनी के ग्राम प्रधान रहते हुए अन्य सह अभियुक्त चन्द्र प्रकाश विश्वकर्मा के नाम प्रधानमंत्री आवास योजना के अन्तर्गत आवंटित करा दिया गया जब कि लाभार्थी चन्द्र प्रकाश विश्वकर्मा के पास किसी अन्य गांव में पक्का मकान है जो प्रधानमंत्री आवास योजना हेतु पात्र नहीं था। जानकारी होने पर संबंधित अधिकारियों द्वारा जांच करने पर लाभार्थी को अपात्र पाये जाने पर उसको भुगतान की गयी प्रधानमंत्री योजना की समस्त धनराशि सरकार के खाते में फिर से वापस कर ली गयी। प्रार्थिनी केवल ग्राम प्रधान थी। प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत सारी लिखा पढ़ी व जांच कार्यवाही तथा अभिलेखों के रख रखाव आदि की सम्पूर्ण जिम्मेदारी ग्राम विकास अधिकारी, सहायक विकास अधिकारी आदि अधिकारियों की होती है। प्रार्थिनी द्वारा उक्त मामले में केवल लाभार्थी का शपथ पत्र प्रमाणित कर देने के अलावा अन्य कोई भूमिका नहीं है। प्रार्थिनी द्वारा बहैसियत ग्राम प्रधान लाभार्थी का प्रमाण पत्र प्रमाणित कर देने से प्रार्थिनी के विरुद्ध अपराध नहीं बनता है। उक्त मामले में प्रार्थिनी की प्रतिष्ठा धूमिल करने के लिए प्रार्थिनी के विरुद्ध विवेचक से मिलकर गलत आरोप पत्र दाखिल कराया गया है जब कि प्रार्थिनी के विरुद्ध धारा 420 भा०दं०सं० का कोई अपराध नहीं बनता है। क्योंकि प्रार्थिनी ने किसी के साथ कोई धोखा धड़ी नहीं की है।

विद्वान सहायक अभियोजन अधिकारी के द्वारा प्रार्थना पत्र का विरोध करते हुए कथन किया गया है कि थाना दरियाबाद के मु०अ०सं० 186/2020 धारा 420 भा०दं०सं० के अन्तर्गत कलावती के विरुद्ध आरोप पत्र मा० न्यायालय में प्रेषित किया जा चुका है। दिनांक 16-7-2021 को मा० न्यायालय द्वारा कलावती के विरुद्ध प्रसंज्ञान लिया जा चुका है। अभियुक्ता के विरुद्ध अपराध के प्रपत्ति साक्ष्य पत्रावली पर मौजूद है।

सुना एवं पत्रावली का अवलोकन किया। अवलोकन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रकरण में संज्ञान लिया जा चुका है एवं संज्ञान लिये जाने के बाद कोई अतिरिक्त साक्ष्य पत्रावली पर आया नहीं है। अभियुक्त द्वारा अपने डिस्चार्ज प्रार्थनापत्र माध्यम से जो भी कथन किया या है यह मेरिट का विषय है, जिसे चार्ज के स्तर पर नहीं देखा जा सकता है। चार्ज के स्तर पर सिर्फ अभियोजन दस्तावेज (Prosecution paper) को देखने हैं, जिससे प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्ता के विरुद्ध बनता प्रतीत हो रहा है जिसके कारण संज्ञान लिया गया है। चार्ज बनाने के लिए प्रथम दृष्टया साक्ष्य पत्रावली पर मौजूद है। इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि व्यवस्थाओं का अवलोकन करना समीचीन होगा।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा भारत पारिक बनाम सी०बी०आई 2008 सी०आर०एल० जे० 3540, एस० सी० रुकमणि नखेकर बनाम विजय सतरदेकर ए०आई० आर 02009 एस०सी० 1013 एवं माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद द्वारा सचिन सक्सेना उर्फ लकी बनाम स्टेट आफ उ०प्र० 2008 (62) ए०सी०सी० 454 में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विचारण न्यायालय आरोप के समय केवल पुलिस रिपोर्ट एवं दस्तावेजों का अवलोकन करेंगी। अभियुक्त का एकमात्र अधिकार उसको सुने जाने का है।

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तमिलनाडू राज्य बनाम एन० सुरेश राजन 2014 (84) ए०सी०सी० 656 में अभिनिर्धारित किया गया है कि आरोप विरचन/आरोपमुक्ति के समय वह अवधारणा की जानी चाहिये कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत तथ्य सत्य है।

उपरोक्त तथ्यों एवं परिस्थितियों व माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि व्यवस्थाओं के दृष्टिगत प्रार्थनी/अभियुक्ता का प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 239 द०प्र०सं० निरस्त किये जाने योग्य है।

आदेश

अभियुक्ता कलावती के द्वारा प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 239 द०प्र०सं० निरस्त किया जाता है। पत्रावली आरोप विरचन हेतु दिनांक 15/4/23 को पेश हो।"

4. मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.03.2023 से व्यथित होकर, आवेदक ने सीएनआर संख्या UPBB010046682023 के रूप में पंजीकृत पुनरीक्षण याचिका दायर की।

5. अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, बाराबंकी (संक्षेप में 'पुनरीक्षण न्यायालय') ने आक्षेपित आदेश दिनांक 23.11.2024 के माध्यम से पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया और मजिस्ट्रेट के आदेश दिनांक 15.03.2023 की पुष्टि की। दिनांक 23.11.2024 के आदेश का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:-

"6- उभय पक्ष को सुनने तथा मूल एवं निगरानी पत्रावली का सम्यक परिशीलन करने से स्पष्ट होता है कि वादी मुकदमा बलदेव सिंह द्वारा निगरानीकर्ती कलावती एवं पांच अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध थाना दरियाबाद, जिला बाराबंकी पर प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 186/2020 अन्तर्गत धारा 409 भा०दं०सं० दर्ज करायी गयी, जिसमें विवेचना के पश्चात विवेचक द्वारा निगरानीकर्ती कलावती पत्नी रामदेव वर्मा एवं चन्द्रप्रकाश विश्वकर्मा के विरुद्ध आरोप पत्र दिनांकित 01.03.2021 अन्तर्गत धारा 420 भा०दं०सं० न्यायालय में प्रस्तुत किया गया। उपरोक्त आरोप पत्र पर विद्वान अवर न्यायालय द्वारा दिनांक 16.07.2021 को प्रसंज्ञान लिया गया तत्पश्चात अभियुक्ता कलावती की ओर से प्रार्थना पत्र अन्तर्गत धारा 239 दं०प्र०सं० न्यायालय के समक्ष इस आशय का प्रस्तुत किया गया कि उपरोक्त मुकदमा अभियुक्ता व अन्य लोगों के विरुद्ध वादी द्वारा अन्तर्गत धारा 409 भा०दं०सं० दर्ज कराया गया था, जिसमें विवेचक ने अन्य पांच नामजद अभियुक्तों का नाम निकालते हुए अभियुक्ता कलावती व अन्य गैर नामजद अभियुक्त चन्द्र प्रकाश विश्वकर्मा के विरुद्ध आरोप पत्र अन्तर्गत धारा 420 भा०दं०सं० प्रस्तुत किया गया। उक्त मामले में प्रार्थिनी के विरुद्ध यह आरोप लगाया गया है कि उसने ग्राम प्रधान रहते हुए सहअभियुक्त चन्द्र प्रकाश विश्वकर्मा के नाम प्रधानमंत्री आवास योजना के अन्तर्गत गलत तौर पर आवास आवंटित करा दिया। जबकि लाभार्थी चन्द्रप्रकाश विश्वकर्मा के पास किसी अन्य गांव में पक्का मकान है तथा वह प्रधानमंत्री आवास योजना हेतु पात्र व्यक्ति नहीं था, इस तथ्य की जानकारी होने पर संबंधित अधिकारियों द्वारा जांच करने पर लाभार्थी को अपात्र पाये जाने पर उसको भुगतान की गयी प्रधानमंत्री आवास योजना की समस्त धनराशि सरकार के खाते में फिर से वापस कर ली गयी। प्रार्थिनी केवल ग्राम प्रधान थी, प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत सारी लिखा पढ़ी, जांच, कार्यवाही तथा अभिलेखों के रख-रखाव की सम्पूर्ण जिम्मेदारी ग्राम विकास अधिकारी, सहायक विकास अधिकारी आदि की होती है, प्रार्थिनी की भूमिका उपरोक्त मामले में मात्र लाभार्थी का शपथ पत्र प्रमाणित कर देने की है, अतः प्रार्थिनी के विरुद्ध धारा 420 भा०दं०सं० के अन्तर्गत कोई अपराध नहीं बनता है। उक्त मामले में मात्र प्रार्थिनी की प्रतिष्ठा धूमिल करने के लिए वादी ने विवेचक से मिलकर गलत आरोप पत्र दाखिल कराया है। प्रार्थिनी ने किसी के साथ कोई धोखाधड़ी नहीं की है। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा उभय पक्ष को सुनने के पश्चात इस आधार पर अभियुक्ता का आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र आदेश दिनांकित 15.03.2023 के द्वारा निरस्त कर दिया कि प्रकरण में संज्ञान लिया जा चुका है तथा संज्ञान लिये जाने के बाद कोई अतिरिक्त साक्ष्य पत्रावली पर नहीं आया है। अभियुक्त द्वारा अपने आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र में जो भी कथन किया गया है, वह मेरिट का विषय है, जिसे चार्ज के स्तर पर नहीं देखा जा सकता चार्ज के स्तर पर सिर्फ अभियोजन दस्तावेज देखा जाना है, जिनसे प्रथम दृष्टया मामला अभियुक्ता के विरुद्ध बनता प्रतीत हो रहा है। चार्ज बनाने के लिए प्रथम दृष्टया साक्ष्य पत्रावली पर मौजूद हैं। विद्वान अवर न्यायालय द्वारा अपने आदेश में माननीय उच्चतम न्यायालय की विधि व्यवस्था भारत पारिख बनाम सी०बी०आई० 2008 सी०आर० एल० जे० 3540 सुप्रीम कोर्ट एवं माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद की विधि व्यवस्था सचिन सक्सेना उर्फ लकी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2008 (62) ए०सी०सी० 454 का उल्लेख

किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विचारण न्यायालय आरोप के समय केवल पुलिस रिपोर्ट एवं दस्तावेजों का अवलोकन करेगी, अभियुक्त का एकमात्र अधिकार उसको सुने जाने का है। अवर न्यायालय के उपरोक्त आदेश से क्षुब्ध होकर यह आपराधिक निगरानी, निगरानीकर्ता कलावती द्वारा प्रस्तुत की गयी है।

7- निगरानी में निगरानीकर्ता द्वारा मुख्य रूप से यह आधार लिया गया है कि विद्वान अवर न्यायालय द्वारा इस तथ्य पर विचार नहीं किया गया है कि निगरानीकर्ता द्वारा बतौर प्रधान लाभार्थी चन्द्रप्रकाश द्वारा लिये गए इस आशय का शपथ पत्र कि उसके पास कोई पक्का मकान नहीं है, को लाभार्थी पर विश्वास करके केवल प्रमाणित किया गया था। निगरानीकर्ता के गांव में लाभार्थी का कोई मकान नहीं था तथा अन्य गांव में उसका आवास होने की जानकारी निगरानीकर्ता को नहीं थी, इसलिए लाभार्थी के शपथ पत्र को प्रमाणित करते हुए अग्रसारित किया गया था। निगरानीकर्ता ने केवल लाभार्थी के शपथ पत्र पर लगे उसके फोटो व हस्ताक्षर को प्रमाणित किया था। प्रधानमंत्री आवास योजना के अन्तर्गत सारी लिखा-पढ़ी आदि ग्राम विकास अधिकारी व सहायक विकास अधिकारी की होती है, ग्राम प्रधान की कोई भूमिका नहीं होती है। उपरोक्त प्रकरण में सम्पूर्ण धनराशि लाभार्थी द्वारा सरकारी खजाने में वापस कर दी गयी है, इस प्रकार निगरानीकर्ता द्वारा धारा 420 भा०दं० सं० के अन्तर्गत कोई अपराध कारित नहीं किया गया है तथा अवर न्यायालय द्वारा विधि विरुद्ध तरीके से निगरानीकर्ता का आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र निरस्त किया गया है। अपने तर्कों के समर्थन में निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की ओर से माननीय उच्चतम न्यायालय की विधि व्यवस्था दीपक गाबा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2023 ए०आई०आर० सुप्रीम कोर्ट 2028 प्रस्तुत की गयी है, जिसमें माननीय न्यायालय द्वारा यह धारित किया गया है कि धारा 415 भा०दं०सं० के अन्तर्गत धोखा धड़ी का अपराध बनने के लिए किसी व्यक्ति को प्रेरित किया जाना चाहिए, चाहे छल पूर्वक या बेईमानी से ताकि वह किसी व्यक्ति को कोई व्यक्ति को सम्पत्ति परिदत्त करे या उस व्यक्ति को सम्पत्ति अपने पास रखने के लिए सहमति दे। इसी प्रकार एक अन्य विधि व्यवस्था मरियम फसीहउद्दीन एवं अन्य बनाम राज्य एवं अन्य 2024 ए०आई०आर० सुप्रीम कोर्ट 801 प्रस्तुत किया गया है, जिसमें माननीय न्यायालय द्वारा यह धारित किया गया है कि धारा 420 भा०दं० सं० के प्रावधानों को आकृष्ट करने के क्रम में अभियोजन को न केवल यह साबित करना होगा कि अभियुक्त ने किसी व्यक्ति के साथ छल किया बल्कि यह भी साबित करना होगा कि ऐसा करके उसने बेईमानी पूर्वक किसी व्यक्ति को ऐसे प्रेरित किया कि वह ऐसे छल के कारण सम्पत्ति का परिदान कर दे। विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया कि निगरानीकर्ता द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया गया है, अतः उसके द्वारा धारा 420 भा०दं०सं० का अपराध कारित किया जाना नहीं पाया जाता है।

8- निगरानीकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों के प्रकाश में आलोच्य आदेश दिनांकित-15.03.2023 एवं मूल पत्रावली का परिशीलन करने से यह स्पष्ट होता है कि अभियुक्ता का नाम प्रथम सूचना रिपोर्ट में दर्शित है। विवेचक द्वारा विवेचना के दौरान समस्त अभिलेखों का परिशीलन करने एवं अन्य गवाहों के बयान लेने के पश्चात सी०डी० पर्चा नम्बर-18 में आरोपी सलिक राम वर्मा ग्राम विकास अधिकारी का बयान लिया गया है, जिसमें उसने कहा कि मुझे विभाग की तरफ से परिनिंदा प्रविष्टि का दण्ड दिया जा है, चूंकि ग्राम

प्रधान का हस्ताक्षर शपथ पत्र पर होने के कारण हमने पात्र समझ लिया था, क्योंकि यह कार्य हमारे तथा ग्राम प्रधान के द्वारा होता है। इसी प्रकार आरोपी कलावती देवी द्वारा अपने बयान में कहा गया कि चन्द्रप्रकाश द्वारा पूरे यकीन के साथ मुझे बताया गया तथा इस बात का शपथ पत्र दिया गया कि मेरे पास कोई पक्का मकान नहीं है, इसलिए इनकी बात पर विश्वास करके हस्ताक्षर बना दिया था। चन्द्र प्रकाश ने मुझे धोखे में रखकर हस्ताक्षर बनवाया। लाभार्थी/अभियुक्त चन्द्र प्रकाश द्वारा अपने बयान में कहा गया है कि मैंने ग्राम प्रधान के कहने पर आवास न होने का शपथ पत्र दे दिया था, साहब मुझसे गलती हो गयी। उपरोक्त विवेचना के पश्चात विवेचक द्वारा धारा 409 भा०दं०सं० के स्थान पर विवेचना धारा 420 भा०दं०सं० के अन्तर्गत की गयी तथा बाद विवेचना अन्तर्गत धारा 420 भा०दं०सं० अभियुक्ता कलावती एवं चन्द्र प्रकाश के विरुद्ध आरोप पत्र प्रेषित किया गया। माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि व्यवस्था मध्य प्रदेश राज्य बनाम एस०बी० जौहरी एवं अन्य ए० आई०आर० 2000 सुप्रीम कोर्ट 665 में यह अवधारित किया गया है कि "यह सुस्थापित विधि है कि आरोप विरचन के स्तर पर न्यायालय यह देखेगी कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही किये जाने का पर्याप्त आधार है। न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह साक्ष्यों की समीक्षा करे और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रस्तुत किये गए साक्ष्य अभियुक्त की दोषसिद्धि के लिए पर्याप्त है अथवा नहीं, यदि न्यायालय संतुष्ट है कि अग्रिम कार्यवाही किये जाने हेतु प्रथम दृष्टया मामला बन रहा है, तब आरोप विरचित किया जायेगा।" अतः विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पुनरीक्षणकर्त्ता के विरुद्ध अग्रिम कार्यवाही किये जाने का प्रथम दृष्टया पर्याप्त आधार पाते हुए आरोपमुक्ति प्रार्थना पत्र निरस्त किया गया है, इस स्तर पर यह नहीं कहा जा सकता कि पुनरीक्षणकर्त्ता के विरुद्ध आरोप विरचित किये जाने हेतु प्रथम दृष्टया साक्ष्य पत्रावली पर उपलब्ध नहीं है।

9- अतः उपरोक्त विवेचना के पश्चात न्यायालय की राय में विद्वान अवर न्यायालय द्वारा पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्यों का सही मूल्यांकन करते हुए आलोच्य आदेश पारित किया गया है, जिसमें किसी प्रकार के हस्तक्षेप की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। तदनुसार यह आपराधिक निगरानी सं० 94/2023 निरस्त किये जाने योग्य है तथा आलोच्य आदेश दिनांकित 15.03.2023 पुष्ट किये जाने योग्य है।

आदेश

आपराधिक पुनरीक्षण संख्या-94/2023, कलावती बनाम राज्य निरस्त की जाती है। आलोच्य आदेश दिनांकित 15.03.2023 पुष्ट किया जाता है। इस आदेश की एक प्रति मूल पत्रावली के साथ अवर न्यायालय को अविलम्ब प्रेषित हो। पक्षकार अवर न्यायालय के समक्ष दिनांक-10.12.2024 को अग्रिम कार्यवाही हेतु उपस्थित हों।"

6. आक्षेपित आदेशों को चुनौती देते हुए यह कहा गया है कि आवेदक के विरुद्ध अभियोजन का मामला संक्षेप में इस प्रकार है कि आवेदक ने, ग्राम जेठौती कुर्मियान, जिला बाराबंकी की ग्राम प्रधान होने के नाते, ग्राम-जेठौती कुर्मियान, थाना-दरियाबाद, जिला-बाराबंकी के मजरा रानेपुर निवासी एक व्यक्ति चंद्र प्रकाश विश्वकर्मा के शपथ पत्र की अंतर्वस्तु को सत्यापित किया था, जो उसने 'प्रधानमंत्री आवास योजना' नामक योजना का लाभ प्राप्त करने के लिए दाखिल किया था, जिसमें उसने दर्शाया था कि गाँव में उसके पास कोई 'पक्का मकान'

(ईंटों का घर) नहीं है, जो कि वास्तव में सही था क्योंकि जाँच/अन्वेषण में यह पाया गया कि चंद्र प्रकाश विश्वकर्मा का घर ग्राम मथुरा नगर में स्थित है और मामले के इन तथ्यों को देखते हुए आवेदक को दोषमुक्त (डिस्चार्ज) कर दिया जाना चाहिए था, क्योंकि आवेदक के विरुद्ध धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत कोई अपराध नहीं बनता है, लेकिन, स्थापित विधि के आलोक में मामले के तथ्यों पर विचार करने के बाद और बिना कोई कारण दर्ज किए, मजिस्ट्रेट और पुनरीक्षण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित कर दिए, इसलिए ये आदेश इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने योग्य हैं।

7. अपनी दलीलों के समर्थन में आगे बताए गए निर्णयों पर भरोसा जताया गया है।

8. अनिल कुमार बोस बनाम बिहार राज्य, (1974) 4 एससीसी 616 के मामले में पारित निर्णय के संदर्भित पैराग्राफ इस प्रकार हैं:-

"11. उन्हें दोषी ठहराने के प्रयोजन के लिए, प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को उनके हिस्से में 'मैंस रिया' को संदेह से परे स्थापित करना चाहिए। इसलिए, हम प्रत्येक अपीलकर्ता के मामले पर उस दृष्टिकोण से विचार करेंगे। लेखाकार, रघुनाथ प्रसाद के संबंध में, इस अपीलकर्ता के दोष के निष्कर्ष के लिए उच्च न्यायालय द्वारा जिस साक्ष्य पर भरोसा किया गया है, वह संभवतः प्रदर्श 1 है जो लेखाकार का 'ड्यूटी चार्ट' है। इस चार्ट की पहली मद है—'खातों का एकमात्र प्रभारी होना और लेखा अनुभाग के कुशल संचालन के लिए अपने अधीन काम करने वाले सभी कर्मचारियों पर सामान्य पर्यवेक्षण करना'। इस चार्ट की तीसरी मद है—'बिल बुक को पूरा करना और उप-अधीक्षक द्वारा इसकी जाँच करवाना और हस्ताक्षर करवाना'। मुझे यह उल्लेख करना चाहिए कि इन विवादित बिलों के मामले में लेखाकार द्वारा इस कर्तव्य का पालन नहीं किया गया है। उसके कर्तव्य की पाँचवीं मद है—'संबंधित सहायक द्वारा प्रतिदिन तैयार किए गए सभी वेतन बिलों को अधीक्षक के समक्ष प्रस्तुत करना'। अधीक्षक, पीडब्लू 9 डॉ. सफदर अली खान ने कथन किया है कि लेखाकार 'एक्विटेंस रोल' (पावती पत्र) को व्यवस्थित रखने के लिए जिम्मेदार है। पैरा 21 में कहा गया है कि लेखाकार को बिल की जाँच करनी चाहिए और फिर उच्च अधिकारियों के हस्ताक्षर के लिए रखना चाहिए। बेशक, साक्ष्य में यह बात आई है कि अधीक्षक ने कार्यालय को निर्देश दिया था कि वे सभी बिलों को उनके हस्ताक्षर के लिए कार्यालय में उनकी मेज पर रखें और जब वह उन बिलों पर हस्ताक्षर करें, तो वहां कोई लिपिक खड़ा नहीं होना चाहिए। यह निर्देश स्पष्ट रूप से लेखाकार के 'ड्यूटी चार्ट' की मद संख्या 5 के विरुद्ध है। मुझे नहीं पता कि उन्होंने प्रक्रिया में यह नवीन परिवर्तन किस उद्देश्य से किया था। लेकिन यह प्रक्रिया लेखाकार को वेतन बिलों और अन्य बिलों को अधीक्षक के पास भेजने से पहले उनकी जाँच करने के उसके कर्तव्य से मुक्त नहीं करेगी...."

यह नोट करना और भी दिलचस्प है कि विवादित वेतन बिलों पर अधीक्षक के हस्ताक्षर के नीचे लेखाकार के आद्याक्षर या हस्ताक्षर नहीं हैं... जैसा कि साक्ष्य से पता चलता है, लेखाकार ने इन जाली बिलों पर जानबूझकर हस्ताक्षर नहीं किए ताकि वह स्वयं को जिम्मेदारी से मुक्त रख सके... स्वाभाविक रूप से, इस लेखाकार का कार्य वेतन बिल तैयार करवाना, उनकी जाँच करना और फिर उन्हें अधीक्षक के हस्ताक्षर के लिए उनके समक्ष

प्रस्तुत करना था ताकि हस्ताक्षर प्राप्त होने के बाद बिलों को भुगतान हेतु ट्रेजरी (कोषागार) भेजा जा सके। 12. उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर, अधिक से अधिक यह माना जा सकता है कि यह लेखाकार की ओर से अपने कर्तव्यों का पालन करने में या इयूटी चार्ट में निर्धारित प्रक्रिया के नियमों का उचित तरीके से पालन करने में विफलता थी और इसलिए, यह उसकी ओर से एक प्रशासनिक चूक हो सकती है, जिसके बारे में हमें इस मामले में कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, किसी अतिरिक्त साक्ष्य के बिना, हम नहीं मानते कि इस अपीलकर्ता पर उस 'दोषी इरादे' का आरोप लगाना सही होगा, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत धोखाधड़ी के अपराध के आवश्यक तत्वों में से एक है। इसके अलावा, उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं है और वास्तव में उसके पास ऐसा मानने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि 'लेखाकार ने जानबूझकर इन जाली बिलों पर हस्ताक्षर नहीं किए ताकि वह स्वयं को जिम्मेदारी से मुक्त कर सके'। अधीक्षक का साक्ष्य, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, उस निष्कर्ष के विपरीत जाता है।

12. उपरोक्त साक्ष्यों के आधार पर, अधिक से अधिक यह माना जा सकता है कि यह लेखाकार की ओर से अपने कर्तव्यों का पालन करने में या इयूटी चार्ट में निर्धारित प्रक्रिया के नियमों का उचित तरीके से पालन करने में विफलता थी और इसलिए, यह उसकी ओर से एक प्रशासनिक चूक हो सकती है, जिसके बारे में हमें इस मामले में कोई राय व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, किसी अतिरिक्त साक्ष्य के बिना, हम नहीं मानते कि इस अपीलकर्ता पर उस 'दोषी इरादे' का आरोप लगाना सही होगा, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत धोखाधड़ी के अपराध के आवश्यक तत्वों में से एक है। इसके अलावा, उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष सही नहीं है और वास्तव में उसके पास ऐसा मानने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि 'लेखाकार ने जानबूझकर इन जाली बिलों पर हस्ताक्षर नहीं किए ताकि वह स्वयं को जिम्मेदारी से मुक्त कर सके'। अधीक्षक का साक्ष्य, जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, उस निष्कर्ष के विपरीत जाता है।

13. जहाँ तक दूसरे अपीलकर्ता, कैशियर अनिल कुमार बोस का प्रश्न है, हम यह पढ़ सकते हैं कि उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्ष के लिए किस पर भरोसा किया है:"

"जहाँ तक कैशियर (खजांची) के मामले का प्रश्न है, मैं पाता हूँ कि उसका इयूटी चार्ट प्रदर्श 1/1 है। उसका प्राथमिक कर्तव्य 'नकद की दैनिक प्राप्ति और संवितरण' है। इस इयूटी चार्ट में एक नोट दर्शाता है—'उपरोक्त कर्तव्यों के निष्पादन के लिए पूरी तरह उत्तरदायी होना...'। उप-अधीक्षक (पीडब्लू 6) ने अपने बयान के पैरा 8 में कहा है कि यह कैशियर का कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करे कि भुगतान सही व्यक्ति को किया गया है। बेशक, इयूटी चार्ट में इसे स्पष्ट शब्दों में इस तरह नहीं लिखा गया है। लेकिन चूंकि उसका कर्तव्य पैसा वितरित करना था, इसलिए यह संवितरण 'सद्भावना' पूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए था, अर्थात्, प्राप्तकर्ता के बारे में उचित पूछताछ के बाद, यदि वह व्यक्ति कैशियर के लिए अज्ञात है। पीडब्लू 5 के मामले में, एक भुगतान मार्च महीने के लिए 5 अप्रैल को किया गया था और उसी नाम के व्यक्ति को अगला भुगतान 10 अप्रैल को किया गया, यानी केवल पाँच दिनों के बाद। यदि कैशियर के सद्भावनापूर्ण कार्य के पक्ष को स्वीकार किया जाना है, तो उसे इस बात को पकड़ लेना चाहिए था।

उनकी ओर से दी गई दलील यह है कि उनके लिए सभी 'हाउसमेन' को जानना संभव नहीं था। ऐसा हो सकता है, लेकिन उन्हें इस बात की आड़ लेने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उन्होंने यह सुनिश्चित किए बिना पैसा दे दिया कि वास्तविक प्राप्तकर्ता कौन था। यह भी अभ्यास था कि भुगतान उप-अधीक्षक की उपस्थिति में किया जाए और फिर मोहर, यानी रबर स्टैम्प के नीचे उनके आद्याक्षर लिए जाएं। इन विवादित मामलों में उप-अधीक्षक के ऐसे कोई हस्ताक्षर प्राप्त नहीं किए गए थे, और इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं है कि ऐसा क्यों नहीं किया गया। उप-अधीक्षक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि इन विवादित प्रविष्टियों पर उनके हस्ताक्षर नहीं लिए गए थे और भुगतान से संबंधित कोई रबर स्टैम्प नहीं लगाया गया था... इसलिए, मेरी राय में, कैशियर भी अपने विरुद्ध लगे आरोप से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकता। यह उसका कर्तव्य था कि वह यह देखता कि भुगतान सही व्यक्ति को किया गया है। साक्ष्य में यह स्पष्ट नहीं है कि ये भुगतान उक्त अस्पताल के उप-अधीक्षक की उपस्थिति में किए गए थे। गवाहों ने केवल सामान्य अभ्यास के बारे में बात की है।

14. उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित शब्दों में एक महत्वपूर्ण टिप्पणी की:

"मैं यह टिप्पणी करने के लिए विवश हूँ कि अधीक्षक और उप-अधीक्षक दोनों ने ही अपने कर्तव्यों में लापरवाही दिखाई है और ये चीज़ें उस छूट के कारण हुईं जो उन्होंने इन कर्मचारियों को दे रखी थी। यदि अधीक्षक इस बात को देखने में सतर्क रहते कि क्या वेतन बिलों पर लेखाकार के हस्ताक्षर हैं, तो उन्हें निश्चित रूप से पता चल जाता कि विवादित वेतन बिलों पर लेखाकार के हस्ताक्षर नहीं थे, और इससे वेतन बिलों की शुद्धता के बारे में उनका संदेह जाग जाना चाहिए था।"

15. उच्च न्यायालय के निष्कर्ष के आधार पर भी, ड्यूटी चार्ट में ऐसा कुछ भी नहीं था कि कैशियर का यह कर्तव्य था कि वह यह सुनिश्चित करे कि भुगतान सही व्यक्ति को किया गया है। इसके अतिरिक्त, ऐसा कोई साक्ष्य भी नहीं है कि ये तीनों डॉक्टर कैशियर के परिचित थे। दूसरी ओर, उच्च न्यायालय ने उनकी ओर से दी गई इस दलील को भी पूरी तरह से खारिज नहीं किया है कि उनके लिए सभी 'हाउसमेन' को जानना संभव नहीं था। उच्च न्यायालय केवल इस आधार पर उनके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष पर पहुँचा है कि उन्होंने पैसा वितरित करने से पहले 'वास्तविक प्राप्तकर्ता कौन था, इसकी ठीक से पुष्टि' नहीं की थी। उच्च न्यायालय के समक्ष मौजूद सामग्री और अधीक्षक एवं उप-अधीक्षक के विरुद्ध की गई महत्वपूर्ण टिप्पणी, कैशियर को भी 'उचित संदेह का लाभ' देने का आधार बनाती है। उच्च न्यायालय ने उनके विरुद्ध जिस साक्ष्य पर भरोसा किया है, उसके आधार पर यह मानना संभव नहीं है कि इस अभियुक्त के विरुद्ध आवश्यक 'मैंस रिया' (आपराधिक मनोस्थिति) स्थापित की गई है। जैसा कि लेखाकार के मामले में कहा गया था, यह अधिक से अधिक निर्णय की त्रुटि या कर्तव्य के पालन में चूक का मामला हो सकता है, जिसे अपने आप में, धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप स्थापित करने के लिए 'बेईमानीपूर्ण इरादे' के बराबर नहीं माना जा सकता। परिणामस्वरूप, अपीलें स्वीकार की जाती हैं। इन दो अपीलकर्ताओं के संबंध में उच्च न्यायालय का निर्णय रद्द किया जाता है। यहाँ मौजूद दोनों अपीलकर्ताओं को आरोपों से बरी किया जाता है और उन्हें उनके जमानत बांड से मुक्त किया जाएगा।

9. मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य, (2009) 8 एससीसी 751 के मामले में पारित निर्णय के संदर्भित पैराग्राफ इस प्रकार हैं:-

"18. आइए अब हम जांच करें कि क्या धोखाधड़ी के अपराध के तत्व बनते हैं। 'धोखाधड़ी' के अपराध के आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं:

- (i) किसी व्यक्ति को धोखा देना, चाहे वह झूठा या भ्रामक बयान देकर हो, या बेईमानी से तथ्यों को छिपाकर हो, या किसी अन्य कार्य या चूक के माध्यम से हो;
- (ii) उस व्यक्ति को कपटपूर्वक या बेईमानी से प्रेरित करना कि वह या तो कोई संपत्ति सुपुर्द कर दे या किसी व्यक्ति द्वारा उस संपत्ति को रखे जाने की सहमति दे दे, अथवा धोखे में आए उस व्यक्ति को जानबूझकर ऐसा कुछ करने या न करने के लिए प्रेरित करना जिसे वह तब नहीं करता या नहीं छोड़ता यदि उसे धोखा न दिया गया होता; और
- (iii) ऐसे कार्य या चूक से उस व्यक्ति को शरीर, मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति का नुकसान पहुँचाना या नुकसान होने की संभावना होना।"

19. धारा 420 के तहत अपराध गठित करने के लिए, न केवल धोखाधड़ी होनी चाहिए, बल्कि ऐसी धोखाधड़ी के परिणामस्वरूप, अभियुक्त को धोखा खाए हुए व्यक्ति को बेईमानी से निम्नलिखित के लिए प्रेरित करना चाहिए:

- (i) किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सुपुर्द करने के लिए, या
- (ii) किसी मूल्यवान प्रतिभूति को पूरी तरह या आंशिक रूप से बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए (या किसी भी ऐसी चीज़ को जिसे हस्ताक्षरित या मुहरबंद किया गया हो और जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सके)।"

20. जब किसी संपत्ति पर स्वामित्व का दावा करते हुए विक्रय विलेख निष्पादित किया जाता है, तो उस विलेख के तहत खरीदार के लिए यह आरोप लगाना संभव हो सकता है कि विक्रेता ने स्वामित्व का झूठा प्रतिनिधित्व करके उसे ठगा है और उसे बिक्री की राशि देने के लिए कपटपूर्वक प्रेरित किया है। लेकिन इस मामले में, शिकायत खरीदार द्वारा नहीं की गई है। इसके विपरीत, खरीदार को ही सह-अभियुक्त बनाया गया है।

21. शिकायतकर्ता का यह मामला नहीं है कि किसी भी अभियुक्त ने झूठा या भ्रामक प्रतिनिधित्व करके या किसी अन्य कार्य या चूक के माध्यम से उसे धोखा देने की कोशिश की, न ही उसका यह मामला है कि उन्होंने उसे कोई संपत्ति सुपुर्द करने या किसी व्यक्ति द्वारा उसे रखे जाने की सहमति देने के लिए, अथवा उसे जानबूझकर ऐसा कुछ करने या न करने के लिए, जिसे वह धोखा न मिलने की स्थिति में नहीं करता, कोई कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण प्रलोभन दिया। न ही शिकायतकर्ता ने यह आरोप लगाया कि प्रथम अपीलकर्ता ने

विक्रय विलेख निष्पादित करते समय शिकायतकर्ता होने का ढोंग किया था। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि प्रथम अभियुक्त ने द्वितीय अभियुक्त के पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करने के कार्य से, या द्वितीय अभियुक्त ने खरीदार होने के कारण, या तीसरे, चौथे और पांचवें अभियुक्तों ने विक्रय विलेख के संबंध में गवाह, लेखक और स्टाम्प विक्रेता होने के कारण, शिकायतकर्ता को किसी भी तरह से धोखा दिया है।

22. "चूंकि धारा 415 में वर्णित धोखाधड़ी के आवश्यक तत्व नहीं पाए गए हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि संहिता की धारा 417, 418, 419 या 420 के तहत दंडनीय कोई अपराध हुआ था।"

10. **समीर सहाय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2018) 14 एससीसी 233** के मामले में पारित निर्णय के संदर्भित पैराग्राफ इस प्रकार हैं:-

"8. राज्य के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह दलील दी कि प्रथम सूचना रिपोर्ट के साथ-साथ धारा 161 सीआर.पी.सी. के तहत शिकायतकर्ता द्वारा दिए गए बयान में भी यह आरोप लगाया गया था कि शिकायतकर्ता को पैसा जमा करने के लिए झूठा आश्वासन दिया गया था। उन्होंने तर्क दिया कि यह आवश्यक नहीं है कि अभियुक्त 'अनेजा कंसल्टेंसी' का कर्मचारी ही हो। यहाँ मेजर पी.सी. सहाय (सेवानिवृत्त) और उनके पुत्र (अपीलकर्ता) द्वारा दिए गए झूठे आश्वासन के कारण शिकायतकर्ता को आर्थिक हानि हुई थी।

9. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया है और रिकॉर्ड का अवलोकन किया है।

10. प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अपीलकर्ता और उनके पिता के विरुद्ध दर्ज कराई गई प्रथम सूचना रिपोर्ट की प्रति पेपर बुक के अनुलग्नक पी-6 पर उपलब्ध है। प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दर्ज कराई गई संपूर्ण प्रथम सूचना रिपोर्ट को यहाँ उद्धृत करना उपयोगी होगा (जैसा कि अंग्रेजी में अनुवादित किया गया है):"

‘सेवा में,

थाना प्रभारी, कोतवाली फतेहपुर, जनपद, फतेहपुर

श्रीमान्,

यह निवेदन है कि आवेदक कर्नल आर.के. सिंह (सेवानिवृत्त), निवासी मोहल्ला नासिरपुर लाल बहादुर शास्त्री मार्ग, शहर फतेहपुर, थाना कोतवाली फतेहपुर, जनपद फतेहपुर के निवासी हैं। शहर फतेहपुर के मोहल्ला सिविल लाइंस में आई.टी.आई. रोड पर आवेदक (आरोपी) का 'अनेजा गुप कंसल्टेंसी' के नाम से एक कार्यालय खोला गया था। उनके लोग आवेदक के पास आए और उन्हें समझाया तथा आश्वासन दिया कि यदि मैं या कोई भी व्यक्ति उनकी कंपनी में पैसा जमा करेगा, तो उनकी कंपनी तीन साल बाद दोगुनी राशि वापस करेगी, लेकिन आवेदक ने उन पर भरोसा नहीं किया।

(3) लेकिन जून 1997 के महीने में, सेवानिवृत्त मेजर पी.सी. सहाय, निवासी लावरोल हाउस, 145 सिविल लाइंस, फतेहपुर, जो सेना के कर्मी होने और उसी मोहल्ले के निवासी होने के नाते आवेदक के परिचित थे, उन्होंने आवेदक से संपर्क किया और उन्हें आश्वासन दिया कि वह उक्त कंपनी के क्षेत्रीय प्रबंधक हैं और आवेदक जो भी राशि जमा करेगा, वह अपने हस्ताक्षर के साथ उसकी रसीद देंगे। यह भी आश्वासन दिया गया कि आवेदक का पैसा डूबेगा नहीं और इसकी पूरी जिम्मेदारी उनकी होगी। उनके साथ उनका बेटा समीर सहाय, वकील, जो पहले से ही आवेदक से परिचित था, वह भी अपने पिता के साथ आया था। मेजर पी.सी. सहाय ने उपरोक्त आश्वासन दिया, और आवेदक तथा उनकी पत्नी श्रीमती उमा देवी ने इस संबंध में मेजर पी.सी. सहाय के पास एक लाख रुपये जमा किए और उन्होंने आवेदक को उसकी रसीद दी, जिसकी फोटोकॉपी आवेदक संलग्न कर रहा है। इस प्रकार मेजर पी.सी. सहाय (सेवानिवृत्त) ने मुझसे और मेरी पत्नी से कुल 86,000 रुपये जमा करवाए।

(4) लेकिन कुछ दिनों के बाद यह ज्ञात हुआ कि उक्त कंपनी अपना कार्यालय बंद करके जमाकर्ताओं के लाखों रुपये लेकर भाग गई है। मैंने स्वयं जाकर देखा तो कार्यालय बंद मिला।

(5) मैंने मेजर पी.सी. सहाय (सेवानिवृत्त) और उनके पुत्र समीर सहाय से मुलाकात की, तो उन्होंने अपनी जिम्मेदारी से इनकार कर दिया और कहा कि घाटे के कारण कंपनी बंद हो गई है।

(6) इस प्रकार कंपनी 'अनेजा ग्रुप' के मालिक, क्षेत्रीय प्रबंधक मेजर पी.सी. सहाय (सेवानिवृत्त) और उनके पुत्र समीर सहाय ने जमाकर्ताओं को झूठा आश्वासन देकर जालसाजी की है, उन्हें उनकी जमा राशि का नुकसान पहुंचाया है, अवैध रूप से लाभ कमाया है और षडयंत्र तथा जालसाजी का अपराध किया है।

(7) अतः प्रार्थना है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कर उपरोक्त व्यक्तियों के विरुद्ध उचित कानूनी कार्रवाई की जाए। यह भी संज्ञान में आया है कि कंपनी के कार्यालय में लगभग एक लाख रुपये का सामान रखा है, जिसे दुकान (कार्यालय) के मालिक ने अपने कब्जे में ले लिया है। इस संबंध में फ्लाइट लेफ्टिनेंट नागेंद्र विक्रम, सीनियर ब्रांच मैनेजर अनेजा ग्रुप द्वारा दी गई संपत्ति और सामान की सूची संलग्न है। इसे कुर्क किया जाए ताकि जमाकर्ताओं का कुछ पैसा वापस मिल सके।

(8) रसीदों और जमा राशि का विवरण।"

11. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने के बाद, प्रतिवादी संख्या 2 और उनकी पत्नी ने जिला उपभोक्ता फोरम, फतेहपुर के समक्ष 'अनेजा कंसल्टेंसी' के प्रोपराइटर और 'अनेजा फाइनेंशियल सर्विसेज लिमिटेड' एवं 'अनेजा ग्रुप ऑफ कंपनीज' के अध्यक्ष व प्रबंध निदेशक इंद्रजीत अनेजा के विरुद्ध याचिका संख्या 318/1998 भी दायर की थी। जिला उपभोक्ता फोरम के समक्ष दायर इस शिकायत में न तो अपीलकर्ता और न ही उनके पिता को पक्षकार बनाया गया था और शिकायत में अपीलकर्ता तथा उनके पिता के विरुद्ध कोई आरोप नहीं लगाया गया

था। यह नोट करना भी प्रासंगिक है कि प्रतिवादी संख्या 2 और उनकी पत्नी द्वारा दायर उक्त शिकायत को अंततः 27-12-2006 को जिला उपभोक्ता फोरम द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। जिला उपभोक्ता फोरम ने आदेश की प्रति प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर दावा की गई राशि का भुगतान करने का निर्देश दिया था।

12. यह नोट करना भी प्रासंगिक है कि अपीलकर्ता ने भी अपनी पत्नी, पुत्र, पिता और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ एक शिकायत (संख्या 111/1999) दर्ज कराई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि आवेदकों ने कंपनी में 3,49,415 रुपये की राशि जमा की थी जिसे वापस नहीं किया गया है। जिला उपभोक्ता फोरम ने दिनांक 16-8-2001 के आदेश द्वारा अपीलकर्ता द्वारा दायर शिकायत को स्वीकार कर लिया और 9% वार्षिक ब्याज के साथ भुगतान करने का निर्देश दिया।

13. पुलिस के समक्ष धारा 161 सीआर.पी.सी. के तहत दिए गए बयान में, प्रतिवादी संख्या 2 और उनकी पत्नी दोनों ने उन्हीं आरोपों को दोहराया है जो प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए थे। धारा 161 सीआर.पी.सी. के तहत रिकॉर्ड पर लाए गए बयान में, प्रतिवादी संख्या 2 और उनकी पत्नी ने आरोप लगाया था कि सेवानिवृत्त मेजर पी.सी. सहाय, जो प्रतिवादी संख्या 2 के परिचित थे, उन्होंने प्रतिवादी संख्या 2 से संपर्क किया और उन्हें आश्वासन दिया कि यदि कंपनी के साथ कोई भी राशि जमा की जाती है, तो वह इसकी पूरी जिम्मेदारी लेंगे। इसमें आगे कहा गया कि अपीलकर्ता अपने पिता सेवानिवृत्त मेजर पी.सी. सहाय के साथ आया था, जो प्रतिवादी संख्या 2 के परिचित थे।

14. अपीलकर्ता द्वारा इस आधार पर आरोप-मुक्ति की मांग करते हुए आवेदन दायर किया गया था कि धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप तय करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता द्वारा दायर आरोप-मुक्ति के आवेदन को खारिज करते हुए यह टिप्पणी की कि सेवानिवृत्त मेजर पी.सी. सहाय और अपीलकर्ता दोनों के आश्वासन पर, शिकायतकर्ता और उनकी पत्नी ने 86,000 रुपये जमा किए थे। विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने आवेदन को खारिज करने के लिए निम्नलिखित कारण बताए हैं:

"प्रथम सूचना रिपोर्ट में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि मृतक पी.सी. सहाय और उनके पुत्र समीर सहाय के आश्वासन के बाद कंपनी में पैसा निवेश किया गया था। साथ ही यह भी उल्लेख किया गया है कि अभियुक्त समीर सहाय कंपनी से कमीशन प्राप्त कर रहा था। विधि के अनुसार फाइल में मौजूद सभी साक्ष्यों के अवलोकन के बाद, अभियुक्त समीर सहाय के विरुद्ध आरोप तय करने के पर्याप्त प्रमाण मौजूद हैं।"

15. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश को चुनौती दी गई थी। उच्च न्यायालय ने एक संक्षिप्त आदेश के माध्यम से यह टिप्पणी करते हुए पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया कि याचिकाकर्ता के वकील किसी ऐसी स्पष्ट त्रुटि या अवैधता को इंगित करने में विफल रहे जिसके कारण हस्तक्षेप की आवश्यकता हो।

16. इससे पहले कि हम पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों का परीक्षण करने के लिए आगे बढ़ें, धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप स्थापित करने के लिए आवश्यक तत्वों पर गौर करना आवश्यक है। धारा 415 भारतीय दंड संहिता 'धोखाधड़ी' को परिभाषित करती है, जो इस प्रकार है:

"415. धोखाधड़ी—जो कोई भी किसी व्यक्ति को धोखा देकर, कपटपूर्वक या बेईमानी से उस व्यक्ति को, जिसे धोखा दिया गया है, किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सुपुर्द करने के लिए, या किसी व्यक्ति द्वारा किसी संपत्ति को अपने पास रखे रहने की सहमति देने के लिए प्रेरित करता है, अथवा जानबूझकर उस व्यक्ति को जिसे धोखा दिया गया है, ऐसा कुछ करने या न करने के लिए प्रेरित करता है जिसे वह तब नहीं करता या नहीं छोड़ता यदि उसे उस प्रकार से धोखा न दिया गया होता, और जिस कार्य या चूक से उस व्यक्ति को शरीर, मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति का नुकसान होता है या नुकसान होने की संभावना होती है, तो यह कहा जाता है कि उसने 'धोखाधड़ी' की है।"

17. धारा 420 भारतीय दंड संहिता धोखाधड़ी और संपत्ति की सुपुर्दगी के लिए बेईमानी से प्रेरित करने के संबंध में है, जो इस प्रकार है:

"420. धोखाधड़ी करना और संपत्ति देने के लिए बेईमानी से प्रेरित करना—जो कोई भी धोखाधड़ी करता है और उसके द्वारा धोखा खाए हुए व्यक्ति को बेईमानी से इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सुपुर्द कर दे, या किसी मूल्यवान प्रतिभूति को, या किसी ऐसी चीज़ को जो हस्ताक्षरित या मुहरबंद है और जिसे मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किया जा सकता है, पूरी तरह या उसके किसी हिस्से को बनाए, बदले या नष्ट करे, तो उसे किसी भी प्रकार के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक हो सकती है, दंडित किया जाएगा और वह जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।"

18. धारा 415 भारतीय दंड संहिता के अनुसार, प्रलोभन कपटपूर्ण और बेईमानी भरा होना चाहिए, जो प्रलोभन के समय अभियुक्त के इरादे पर निर्भर करता है। इस न्यायालय को हृदय रंजन प्रसाद वर्मा बनाम बिहार राज्य [(2000) 4 एससीसी 168 : 2000 एससीसी (आपराधिक) 786] के मामले में धारा 415 और 420 भारतीय दंड संहिता पर विचार करने का अवसर मिला था। इस न्यायालय ने धारा 415 और 420 भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों को संज्ञान में लेने के बाद पैराग्राफ 14 और 15 में निम्नलिखित बातें कही थीं: (एससीसी पीपी 176-77)

"14. इस धारा के पठन से यह स्पष्ट होता है कि परिभाषा में दो अलग-अलग श्रेणियों के कार्यों को निर्धारित किया गया है जिन्हें करने के लिए धोखा खाए हुए व्यक्ति को प्रेरित किया जा सकता है। प्रथम श्रेणी में, उसे किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सुपुर्द करने के लिए कपटपूर्वक या बेईमानी से प्रेरित किया जा सकता है। धारा में निर्धारित कार्यों की दूसरी श्रेणी वह है जिसमें धोखा खाया हुआ व्यक्ति ऐसा कुछ करता है या करने से चूक जाता है जिसे वह तब नहीं करता या नहीं छोड़ता यदि उसे उस प्रकार से धोखा न दिया गया होता। मामलों

की पहली श्रेणी में, प्रेरित करना कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण होना चाहिए। कार्यों की दूसरी श्रेणी में, प्रेरित करना जानबूझकर होना चाहिए, लेकिन कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण होना अनिवार्य नहीं है।"

15. इस प्रश्न का निर्धारण करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि अनुबंध के केवल उल्लंघन और धोखाधड़ी के अपराध के बीच का अंतर बहुत सूक्ष्म है। यह प्रलोभन के समय अभियुक्त के इरादे पर निर्भर करता है जिसका अनुमान उसके बाद के आचरण से लगाया जा सकता है, लेकिन बाद का आचरण ही एकमात्र परीक्षण नहीं है। अनुबंध का केवल उल्लंघन धोखाधड़ी के लिए आपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता, जब तक कि लेन-देन के प्रारंभ में ही कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण इरादा न दिखाया गया हो, अर्थात् वह समय जब अपराध किया गया कहा जाता है। इसलिए इरादा ही इस अपराध का सार है। किसी व्यक्ति को धोखाधड़ी का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि वादा करते समय उसका इरादा कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण था। बाद में वादा पूरा करने में उसकी केवल विफलता से, शुरुआत में ही, अर्थात् जब उसने वादा किया था, ऐसे अपराधी इरादे का अनुमान नहीं लगाया जा सकता है।

XXXXXXXXXX

22. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता के आरोप-मुक्ति के आवेदन को खारिज करते समय किसी भी ऐसे आरोप या साक्ष्य का उल्लेख तक नहीं किया है, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि वर्तमान मामले के तथ्यों में भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के आवश्यक तत्व मौजूद थे।

23. अतः, हमारा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान मामले में भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के आवश्यक तत्व नहीं पाए गए थे, जिससे अपीलकर्ता के विरुद्ध में भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत कोई आरोप तय किया जा सके।

24. परिणामस्वरूप, अपील स्वीकार की जाती है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के दिनांक 28-2-2007 के आदेश और उच्च न्यायालय के दिनांक 21-10-2016 के निर्णय (समीर सहाय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2016 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 2373) को अपास्त किया जाता है। अपीलकर्ता को वाद संख्या 545/2002 में भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत आरोपों से मुक्त किया जाता है।"

11. आर.के. विजयसारथी बनाम सुधा सीताराम, (2019) 16 एससीसी 739 के मामले में पारित निर्णय के संदर्भित अनुच्छेद निम्नलिखित हैं:-

8. इस न्यायालय के समक्ष प्राथमिक प्रश्न यह है कि क्या उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की याचिका को खारिज करके त्रुटि की है। वर्तमान विवाद के मूल में यह प्रश्न है कि क्या शिकायत में किए गए कथन दंड संहिता के तहत अपराध गठित करने के लिए आवश्यक तत्वों को प्रकट करते हैं।

9. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 उच्च न्यायालय की उस अंतर्निहित शक्ति को सुरक्षित रखती है, जो न्याय के उद्देश्यों को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक आदेश पारित करने हेतु दी गई है। इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन बनाम एनईपीसी (इंडिया) लिमिटेड [(2006) 6 एससीसी 736 : (2006) 3 एससीसी (आपराधिक) 188] के मामले में, इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत क्षेत्राधिकार के प्रयोग पर पिछले निर्णयों की समीक्षा की और निम्नलिखित रूप में मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किए: (एससीसी पृष्ठ 748, पैरा 12)

"12.***

(i) एक शिकायत को तब रद्द किया जा सकता है जब शिकायत में लगाए गए आरोपों को, भले ही उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी समग्रता में स्वीकार कर लिया जाए, वे प्रथम दृष्टया कोई अपराध गठित नहीं करते हों या आरोपी के विरुद्ध कथित मामला नहीं बनाते हों। इस उद्देश्य के लिए, शिकायत की संपूर्णता में जांच की जानी चाहिए, लेकिन आरोपों के गुणों (मेरिट) की जांच किए बिना। शिकायत को रद्द करने की प्रार्थना पर विचार करते समय न तो विस्तृत जांच, न ही सामग्री का सूक्ष्म विश्लेषण और न ही शिकायत में आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता का मूल्यांकन आवश्यक है।

(ii) एक शिकायत को तब भी रद्द किया जा सकता है जब वह न्यायालय की प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग हो, जैसे कि जब यह पाया जाए कि आपराधिक कार्यवाही दुर्भावना/द्वेष के साथ प्रतिशोध लेने या हानि पहुंचाने के लिए शुरू की गई है, या जहाँ आरोप बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव (अविश्वसनीय) हों।

(iii) हालाँकि, रद्द करने की शक्ति का उपयोग किसी वैध अभियोजन को दबाने या बाधित करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। इस शक्ति का प्रयोग विरल रूप से और अत्यधिक सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

(iv) शिकायत में कथित अपराध के कानूनी तत्वों को शब्दशः (ज्यों का त्यों) दोहराने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि शिकायत में आवश्यक तथ्यात्मक आधार तैयार कर दिया गया है, तो केवल इस आधार पर कि कुछ तत्वों का विस्तार से उल्लेख नहीं किया गया है, कार्यवाही को रद्द नहीं किया जाना चाहिए। शिकायत को रद्द करना केवल तभी उचित है जब शिकायत उन बुनियादी तथ्यों से भी इतनी वंचित हो, जो अपराध सिद्ध करने के लिए नितांत आवश्यक हों।

10. उच्च न्यायालय से यह अपेक्षा की जाती है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय यह जांच करे कि क्या शिकायत में किए गए कथन दंड संहिता के तहत कथित अपराध के लिए आवश्यक तत्वों को गठित करते हैं। यदि प्रथम दृष्टया देखने पर ये कथन अपराध के लिए आवश्यक तत्वों को पूरा नहीं करते हैं, तो धारा 482 के तहत आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जा सकता है। एक आपराधिक कार्यवाही को तब रद्द किया जा सकता है जब शिकायत में लगाए गए आरोप दंड संहिता के तहत किसी अपराध के होने का खुलासा नहीं करते हों। शिकायत की जांच समग्र रूप से की जानी चाहिए, आरोपों के गुणों (मेरिट) का मूल्यांकन किए बिना। यद्यपि विधि यह मांग नहीं करता है कि शिकायत में अपराध के कानूनी तत्वों को शब्दशः दोहराया जाए, फिर भी शिकायत में दंड संहिता के तहत अपराध बनाने के लिए आवश्यक बुनियादी तथ्य होने चाहिए।

11. प्रथम प्रतिवादी ने शिकायत में यह आरोप लगाया है कि अपीलकर्ताओं ने दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 405, 406, 415 और 420 के तहत अपराध किए हैं। अतः यह जांचना आवश्यक होगा कि उपरोक्त अपराधों के तत्व क्या हैं और क्या शिकायत में लगाए गए आरोप, प्रथम दृष्टया देखने पर, दंड संहिता के तहत उन अपराधों को आकर्षित करते हैं।

12. दंड संहिता की धारा 405 इस प्रकार है:

“405. आपराधिक न्यासभंग— जो कोई किसी भी प्रकार से संपत्ति, या संपत्ति पर कोई प्रभुत्व सौंपे जाने पर, उस संपत्ति का बेईमानी से दुरुपयोग करता है या उसे अपने स्वयं के उपयोग में परिवर्तित कर लेता है, या बेईमानी से उस संपत्ति का उपयोग या निपटान उस कानूनी निर्देश के उल्लंघन में करता है जो उस न्यास (ट्रस्ट) के निर्वहन के तरीके को निर्धारित करता है, या किसी भी कानूनी अनुबंध, चाहे वह व्यक्त हो या निहित, जो उसने उस न्यास के निर्वहन के संबंध में किया है, का उल्लंघन करता है, या स्वेच्छा से किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने देता है, वह 'अपराधिक न्यासभंग' का अपराध करता है।”

13. धारा 405 के सावधानीपूर्वक पठन से पता चलता है कि आपराधिक न्यासभंग के तत्व निम्नलिखित हैं:

13.1. एक व्यक्ति को संपत्ति सौंपी जानी चाहिए, या संपत्ति पर प्रभुत्व सौंपा जाना चाहिए;

13.2. उस व्यक्ति को बेईमानी से उस संपत्ति का दुरुपयोग करना चाहिए या उसे अपने स्वयं के उपयोग में परिवर्तित करना चाहिए, या बेईमानी से उस संपत्ति का उपयोग या निपटान करना चाहिए या स्वेच्छा से किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने देना चाहिए; और

13.3. ऐसा दुरुपयोग, परिवर्तन, उपयोग या निपटान किसी भी कानूनी निर्देश के उल्लंघन में होना चाहिए जो उस न्यास (ट्रस्ट) के निर्वहन के तरीके को निर्धारित करता है, या किसी भी कानूनी अनुबंध के उल्लंघन में होना चाहिए जो उस व्यक्ति ने उस न्यास के निर्वहन के संबंध में किया हो।

14. 'सौंपना' इस अपराध का एक अनिवार्य तत्व है। वह व्यक्ति जो सौंपी गई बाध्यता की शर्तों के विपरीत, उसे सौंपी गई संपत्ति का बेईमानी से दुरुपयोग करता है, वह आपराधिक न्यासभंग के लिए उत्तरदायी है और उसे दंड संहिता की धारा 406 के तहत दंडित किया जाता है।

[406. आपराधिक न्यासभंग के लिए दंड— जो कोई आपराधिक न्यासभंग करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।]

15. दंड संहिता की धारा 415 इस प्रकार है:

“415. छल (Cheating)— जो कोई किसी व्यक्ति को धोखा देकर, उस व्यक्ति को जिसे धोखा दिया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करता है कि वह किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंप दे, या यह सहमति दे कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को अपने पास रखे, या साशय उस व्यक्ति को जिसे धोखा दिया गया है, कुछ

ऐसा करने या करने से लोप (ओमिट) करने के लिए उत्प्रेरित करता है जिसे वह नहीं करता या करने से लोप नहीं करता यदि उसे इस प्रकार धोखा न दिया गया होता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति के संबंध में क्षति या हानि पहुँचती है या पहुँचने की संभावना है, वह 'छल' करता है, ऐसा कहा जाता है।”

16. छल के अपराध को गठित करने के लिए आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं:

16.1. किसी व्यक्ति को धोखा देकर उसे कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित किया जाना चाहिए;

16.1.1. जिस व्यक्ति को उत्प्रेरित किया गया है, उसे साशय (जानबूझकर) किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए या यह सहमति देने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को अपने पास रखे; अथवा

16.1.2. जिस व्यक्ति को उत्प्रेरित किया गया है, उसे साशय कुछ ऐसा करने या करने से लोप (ओमिट) करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए जिसे वह नहीं करता या करने से लोप नहीं करता यदि उसे इस प्रकार धोखा न दिया गया होता; और

16.2. ऊपर दिए गए बिंदु 16.1.2 के अंतर्गत आने वाले मामलों में, वह कार्य या लोप ऐसा होना चाहिए जिससे उस उत्प्रेरित व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति के संबंध में क्षति या हानि पहुँची हो या पहुँचने की संभावना हो।

17. कपटपूर्ण या बेईमानी से किया गया उत्प्रेरण इस अपराध का एक अनिवार्य तत्व है। वह व्यक्ति जो बेईमानी से किसी अन्य व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए उत्प्रेरित करता है, वह छल के अपराध के लिए उत्तरदायी है।

18. दंड संहिता की धारा 420 इस प्रकार है:

“420. छल करना और संपत्ति परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करना— जो कोई छल करेगा और तद्द्वारा उस व्यक्ति को जिसे धोखा दिया गया है, बेईमानी से उत्प्रेरित करेगा कि वह किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति परिदत्त कर दे, या किसी मूल्यवान प्रतिभूति को, या किसी ऐसी चीज़ को जो हस्ताक्षरित या मुद्रांकित है और जो मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित किए जाने योग्य है, रचित करे, परिवर्तित करे या नष्ट करे, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से दंडित किया जाएगा जिसे सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, और वह जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।”

19. धारा 420 के तहत अपराध गठित करने के लिए आवश्यक तत्व निम्नलिखित हैं:

19.1. एक व्यक्ति को धारा 415 के तहत छल का अपराध करना चाहिए; और

19.2. जिस व्यक्ति के साथ छल किया गया है, उसे बेईमानी से निम्नलिखित के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए:

(क) किसी व्यक्ति को संपत्ति सौंपने (परिदत्त करने) के लिए; अथवा

(ख) किसी मूल्यवान प्रतिभूति (वैल्यूएबल सिक्योरिटी) को बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए, या किसी ऐसी चीज़ को बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए जो हस्ताक्षरित या मुद्रांकित (सील्ड) है और जो मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित होने योग्य है।

अनुच्छेद 20 और 21 का हिंदी अनुवाद निम्नलिखित है:

20. धारा 420 के तहत किसी कार्य को अपराध मानने के लिए 'छल' एक अनिवार्य तत्व है।

21. अपने अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या शिकायत में किए गए कथन प्रथम दृष्टया उस अपराध के लिए आवश्यक तत्वों को गठित करते हैं। प्रथम प्रतिवादी द्वारा दायर शिकायत का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया गया है:

"अभियुक्त व्यक्ति के बेटे श्री राजीव विजयसारथी रत्नम ने अपने सभी पैसे अलग-अलग खातों में स्थानांतरित करना शुरू कर दिया और अमेरिका में अपने कुछ पैसों को बेंगलोर, भारत में अपने माता-पिता के खातों में भी स्थानांतरित कर दिया। उसने अपनी पत्नी, यानी शिकायतकर्ता की बेटी से भी यह अनुरोध किया कि वह कुछ धनराशि बेंगलोर में शिकायतकर्ता के खाते में भी भेजना चाहता है... कि राजीव विजयसारथी रत्नम ने अपने कुछ पैसे अभियुक्त 1 और 2 तथा शिकायतकर्ता के खाते में स्थानांतरित कर दिए...

यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि दुर्घटना 5-2-2010 को हुई थी और पैसा 17-2-2010 को स्थानांतरित किया गया था; यह स्थानांतरण श्री राजीव विजयसारथी रत्नम के कहने पर असुरक्षा की भावना के कारण किया गया था; शिकायतकर्ता द्वारा इस पैसे की मांग नहीं की गई थी और न ही उसे इसकी आवश्यकता थी।"

शिकायतकर्ता की बेटी सुश्री सविता सीताराम ने शिकायतकर्ता को वह धनराशि स्वीकार करने के लिए राजी किया जो अभियुक्त व्यक्ति के बेटे श्री राजीव विजयसारथी रत्नम के लाभ के लिए थी, और उसे उसके लिए न्यास (ट्रस्ट) के रूप में रखने के लिए कहा। तदनुसार, अभियुक्त के बेटे ने 17-2-2010 को शिकायतकर्ता के खाते में 20,00,000 रुपये (केवल बीस लाख रुपये) स्थानांतरित कर दिए... यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि अभियुक्त व्यक्ति के बेटे श्री राजीव विजयसारथी रत्नम ने शिकायतकर्ता और उसके पति पर दबाव डाला कि वे उक्त धनराशि ब्याज सहित अभियुक्त व्यक्तियों को नकद (कैश) के रूप में भुगतान कर दें... श्री राजीव विजयसारथी रत्नम ने उपरोक्त धनराशि यानी 20,00,000 रुपये की वापसी की मांग की।

... उक्त धनराशि का भुगतान अभियुक्त व्यक्ति के बेटे श्री राजीव विजयसारथी रत्नम के निर्देशानुसार नकद में कर दिया गया था, (इसके बावजूद) उन्होंने एक झूठा और तुच्छ मुकदमा दायर किया है..."

(बल दिया गया)

22. दंड संहिता की धारा 405 के तहत किसी कार्य को अपराध गठित करने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि अभियुक्त को कोई संपत्ति सौंपी गई हो या संपत्ति पर उसका प्रभुत्व हो। प्रथम प्रतिवादी ने यह स्पष्ट किया है कि विवादित राशि अपीलकर्ताओं के पुत्र द्वारा अपनी स्वेच्छा से उसे हस्तांतरित की गई थी। शिकायत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह राशि अपीलकर्ताओं के पुत्र के लाभ के लिए हस्तांतरित की गई थी और

प्रथम प्रतिवादी को वह राशि उसके लिए "न्यास" (ट्रस्ट) के रूप में रखनी थी। शिकायत में यह आरोप लगाया गया है कि अपीलकर्ताओं के पुत्र के "निर्देशानुसार" ही वह पैसा अपीलकर्ताओं को हस्तांतरित किया गया था। शिकायत को प्रथम दृष्टया देखने पर यह स्पष्ट है कि अपीलकर्ताओं को किसी भी संपत्ति का कोई 'न्यास' नहीं किया गया था।

23. दंड संहिता की धारा 415 के तहत किसी कार्य को अपराध गठित करने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि अभियुक्त द्वारा बेईमानी से उत्प्रेरण किया गया हो। प्रथम प्रतिवादी ने यह स्वीकार किया है कि विवादित राशि अपीलकर्ताओं के पुत्र द्वारा 17-2-2010 को उसके बैंक खाते में हस्तांतरित की गई थी। उसने आरोप लगाया है कि उसने अपीलकर्ताओं के पुत्र की संपत्ति को उसी के कहने पर हस्तांतरित किया था। अपीलकर्ताओं की ओर से ऐसे किसी भी कार्य का आरोप नहीं लगाया गया है जिससे प्रथम प्रतिवादी द्वारा अपीलकर्ताओं को किसी संपत्ति की सुपुर्दगी के लिए प्रेरित करने के इरादे का पता चलता हो। इस प्रकार, शिकायत को प्रथम दृष्टया देखने पर ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह संकेत दे कि अपीलकर्ताओं ने प्रथम प्रतिवादी को बेईमानी से उन्हें कोई संपत्ति सौंपने के लिए उत्प्रेरित किया था। दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध के लिए 'छल' एक अनिवार्य तत्व है। छल के अपराध को गठित करने के लिए आवश्यक तत्व शिकायत को देखने पर स्पष्ट नहीं होते हैं और परिणामस्वरूप, धारा 420 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है।

24. बिनोद कुमार बनाम बिहार राज्य [(2014) 10 एससीसी 663 : (2015) 1 एससीसी (आपराधिक) 203] के मामले में एक संविदा कर्मचारी (कॉन्ट्रैक्ट वर्कर) की कुछ राशियाँ देय और भुगतान योग्य थीं। जब अनुबंध की समाप्ति के कारण देय राशि का भुगतान नहीं किया गया, तो कर्मचारी ने अपीलकर्ता के विरुद्ध आपराधिक विश्वासघात का आपराधिक मामला दर्ज कराया। उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपीलकर्ताओं की रद्द करने की याचिका खारिज कर दी गई थी [बिनोद कुमार बनाम बिहार राज्य, 2011 एससीसीऑनलाइन पैट 595]। इस न्यायालय की दो-न्यायाधीशों की पीठ ने अपराध के तत्वों की जांच की और यह देखा कि क्या शिकायत प्रथम दृष्टया किसी अपराध के किए जाने का खुलासा करती है। इस न्यायालय ने आपराधिक कार्यवाही को यह कहते हुए रद्द कर दिया: (एससीसी पृष्ठ 671-72, पैरा 14 और 18-19)

"14. इस चरण पर, हमारा सरोकार केवल इस प्रश्न से है कि क्या शिकायत में किए गए कथनों को वैसा ही स्वीकार करने पर वे आपराधिक अपराध के तत्वों को पूरा करते हैं या नहीं। ...

18. "वर्तमान मामले में, शिकायत में लगाए गए आरोपों को प्रथम दृष्टया देखने पर, हम पाते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 405 के तत्वों को आकर्षित करने वाला कोई भी आरोप नहीं लगाया गया है। इसी तरह, अपीलकर्ताओं द्वारा स्वयं के लिए गलत लाभ प्राप्त करने या शिकायतकर्ता को गलत हानि पहुँचाने के उद्देश्य से धन को अपने पास रखने के संबंध में 'छल' या 'बेईमानीपूर्ण इरादे' का कोई आरोप नहीं है। इन कोरे आरोपों

के अलावा कि अपीलकर्ताओं ने दूसरे प्रतिवादी को भुगतान नहीं किया और अपीलकर्ताओं ने उन राशियों का उपयोग स्वयं के लिए या किसी अन्य कार्य के लिए किया, संपत्ति के दुरुपयोग में बेईमानीपूर्ण इरादे के संबंध में लेशमात्र भी आरोप नहीं है। ..."

19. "भले ही शिकायत में लगाए गए सभी आरोपों को उनके अंकित मूल्य पर सत्य मान लिया जाए, हमारी राय में, बेईमानी से दुरुपयोग और छल के बुनियादी आवश्यक तत्व अनुपस्थित हैं। आपराधिक कार्यवाही अन्य कानूनी उपचारों के लिए कोई 'शॉर्टकट' नहीं है। चूंकि आपराधिक विश्वासघात या उत्प्रेरण के बेईमानीपूर्ण इरादे का कोई मामला नहीं बनता है और भारतीय दंड संहिता की धारा 405/420 के आवश्यक तत्व नदारद हैं, इसलिए धारा 406/120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत अपीलकर्ताओं का अभियोजन रद्द किए जाने योग्य है।

Xxxxxxxxxx

30. उपरोक्त कारणों से, अपील स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय के निर्णय [आर.के. विजयसारथी बनाम सुधा सीताराम, 2016 एससीसी ऑनलाइन कर्नाटका 8478] को निरस्त किया जाता है और प्रथम प्रतिवादी द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध शुरू की गई पीसीआर 2116/2016 से उत्पन्न आपराधिक कार्यवाही को रद्द किया जाता है। हालांकि, हम स्पष्ट करते हैं कि अपीलकर्ताओं के पुत्र द्वारा धन की वसूली के लिए दायर लंबित दीवानी मुकदमे के गुणों पर कोई राय व्यक्त नहीं की गई है। लंबित मुकदमे का निपटारा विधि के अनुसार किया जाएगा।

12. दीपक गाबा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2023) 3 एससीसी 423 के मामले के संदर्भित अनुच्छेद निम्नलिखित हैं:

11. प्रतिवादी संख्या 2/शिकायतकर्ता द्वारा दायर निजी शिकायत में भारतीय दंड संहिता की धारा 405, 420, 471 और 120-बी का सहारा लिया गया था। हालांकि, 19-7-2018 के आदेश द्वारा, समन केवल धारा 406 के तहत जारी करने का निर्देश दिया गया था, न कि धारा 420, 471 या 120-बी के तहत। हमने समन जारी करने वाले आदेश के कार्यकारी और तर्कपूर्ण भाग को उद्धृत किया है, जो शिकायत में किए गए दावों को संक्षेप में दर्ज करता है, जिसमें यह माना गया है कि प्रतिवादी संख्या 2/शिकायतकर्ता ने यह दिखाया था कि "जे.आई.पी.एल. द्वारा 6,37,252.16 रुपये की एक फर्जी मांग उठाई गई थी, जो मांग शुभंकर पी. तोमर और साक्षी तिलक चंद द्वारा दिए गए बयानों के अनुसार देय नहीं है"। आदेश में कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 2/शिकायतकर्ता ने दस्तावेज 1 से 34 के अनुसार "एक" ईमेल की फोटोकॉपी दाखिल की थी, लेकिन उस ईमेल के विवरण और उसकी सामग्री का उल्लेख या स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है।

Xxxxxxxx

18. भारतीय दंड संहिता की धारा 420, अर्थात् छल करना और संपत्ति परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करना, को लागू करने के लिए धारा 415 के तत्वों का संतुष्ट होना अनिवार्य है। धारा 415 के तहत छल के

अपराध को गठित करने के लिए, किसी व्यक्ति को या तो कपटपूर्वक या बेईमानी से, किसी अन्य व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए, या किसी व्यक्ति को संपत्ति अपने पास रखने की अनुमति देने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए। इस धारा में वर्णित कार्यों की दूसरी श्रेणी वह है जिसमें साशय (जानबूझकर) ऐसा कुछ करने या करने से लोप (ओमिट) करने के लिए उत्प्रेरित किया गया हो, जिसे वह व्यक्ति नहीं करता या करने से लोप नहीं करता यदि उसे इस प्रकार धोखा न दिया गया होता। अतः, धारा 415 की अपरिहार्य शर्त "कपट", "बेईमानी" या "साशय उत्प्रेरण" है, और इन तत्वों की अनुपस्थिति छल के अपराध के आधार को ही समाप्त कर देगी। [इरिडियम इंडिया टेलीकॉम लिमिटेड बनाम मोटोरोला इंक, (2011) 1 एससीसी 74 : (2010) 3 एससीसी (आपराधिक) 1201]

19. इसकी रूपरेखा (कंट्रर्स) की व्याख्या करते हुए, इस न्यायालय ने मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य [मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य (2009) 8 एससीसी 751 : (2009) 3 एससीसी (आपराधिक) 929, इस न्यायालय ने, इस मामले में, यह चेतावनी दी थी कि कानूनी सिद्धांत (रेश्यो) का गलत अर्थ नहीं निकाला जाना चाहिए, उस स्पष्टीकरण को दर्ज करने के लिए, जो वर्तमान मामले में, हमारी राय में, प्रतिवादी संख्या 2 शिकायतकर्ता के लिए किसी काम का और मददगार नहीं है। हम सम्मानपूर्वक उस स्पष्टीकरण के साथ-साथ भारतीय दंड संहिता की धारा 415, 464 आदि की व्याख्या करने वाले कानूनी सिद्धांत से सहमत हैं। मैं यह अवलोकन किया कि छल के अपराध के लिए, न केवल छल होना चाहिए, बल्कि उस छल के परिणामस्वरूप, अभियुक्त को धोखा खाए हुए व्यक्ति को बेईमानी से किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए; या किसी मूल्यवान प्रतिभूति को, या किसी ऐसी चीज को जो हस्ताक्षरित या मुद्रांकित है और जो मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित होने योग्य है, पूर्णतः या आंशिक रूप से बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करना चाहिए।

20. "वर्तमान मामले में, धारा 415 के साथ पठित धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध गठित करने वाले तत्व अनुपस्थित हैं। समन-पूर्व साक्ष्य धारा 415 भारतीय दंड संहिता के आवश्यक तत्वों को प्रकट और स्थापित नहीं करते हैं। ऐसा कोई कथन नहीं है, कानूनी साक्ष्य तो दूर की बात है, जो यह प्रस्तुत करे कि जे.आई.पी.एल. बेईमानी, धोखाधड़ी, या संपत्ति सौंपने के लिए साशय उत्प्रेरण में संलिप्त था। प्रतिवादी संख्या 2 शिकायतकर्ता का यह मामला नहीं है कि जे.आई.पी.एल. ने उन्हें धोखा देने की कोशिश की थी, चाहे वह झूठा या भ्रामक प्रतिनिधित्व करके हो, या किसी अन्य कार्य या लोप (ओमिशन) द्वारा; और न ही उनका यह मामला है कि जे.आई.पी.एल. ने संपत्ति सौंपने के लिए कोई कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण उत्प्रेरण दिया था। इस प्रकार, यह देखते हुए कि धारा 415 भारतीय दंड संहिता के तत्व संतुष्ट नहीं होते हैं, धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध नहीं बनता है।"

13. विपिन साहनी बनाम सी.बी.आई., 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 511 के मामले में दिए गए निर्णय के संदर्भित पैराग्राफ नीचे दिए गए हैं:-

9. इससे पहले कि हम मामले के गुणों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ें, हम पहले प्रासंगिक कानूनी प्रावधानों पर ध्यान दे सकते हैं। भारतीय दंड संहिता की धारा 415 'छल' को परिभाषित करती है और यह इस प्रकार है:-

'415. छल.- जो कोई किसी व्यक्ति को प्रवंचना (धोखा) देकर, उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से यह उत्प्रेरित करेगा कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त (सुपुर्द) कर दे, या यह सहमति दे कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को रखे रखे, या साशय उस व्यक्ति को, जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित करेगा, जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता, तो न करता या करने से लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कारित होती है या कारित होनी संभाव्य है, वह "छल" करता है, यह कहा जाता है।'

स्पष्टीकरण- तथ्यों का बेईमानीपूर्ण छिपाव इस धारा के अर्थ के अंतर्गत 'प्रवंचना' (धोखा) है।' भारतीय दंड संहिता की धारा 420, वह प्रावधान जिससे हम वर्तमान में संबंधित हैं, इस प्रकार है:-

'420. छल करना और संपत्ति परिदत्त करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित करना- जो कोई छल करेगा और तद्वारा उस व्यक्ति को, जिसे प्रवंचित किया गया है, बेईमानी से यह उत्प्रेरित करेगा कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त कर दे, या किसी मूल्यवान् प्रतिभूति को, या किसी ऐसी चीज़ को जो हस्ताक्षरित या मुद्रांकित है, और जो मूल्यवान् प्रतिभूति में परिवर्तित होने योग्य है, पूर्णतः या आंशिक रूप से रचे, परिवर्तित करे या नष्ट करे, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।'

धारा 120ए तथा 120बी इस प्रकार है:-

'120ए. आपराधिक षड्यंत्र की परिभाषा.- जब दो या अधिक व्यक्ति-

(1) कोई अवैध कार्य, या

(2) कोई ऐसा कार्य, जो अवैध नहीं है, अवैध साधनों द्वारा, करने या करवाने के लिए सहमत होते हैं, तब ऐसी सहमति आपराधिक षड्यंत्र कहलाती है:

परंतु किसी अपराध को करने की सहमति के सिवाय, कोई सहमति आपराधिक षड्यंत्र तब तक नहीं मानी जाएगी, जब तक कि उस सहमति के अनुसरण में उस सहमति के एक या अधिक पक्षों द्वारा उसके अलावा कोई कार्य न किया गया हो।'

'120बी. आपराधिक षड्यंत्र का दंड.-

(1) जो कोई मृत्यु, [आजीवन कारावास] या दो वर्ष या उससे अधिक की अवधि के कठिन कारावास से दंडनीय अपराध करने के आपराधिक षड्यंत्र का पक्षकार होगा, यदि ऐसे षड्यंत्र के दंड के लिए इस संहिता में कोई

स्पष्ट प्रावधान नहीं किया गया है, तो वह उसी प्रकार दंडित किया जाएगा मानो उसने ऐसे अपराध के लिए उकसाया हो।

(2) जो कोई पूर्वोक्त रूप से दंडनीय अपराध करने के आपराधिक षड्यंत्र से भिन्न किसी अन्य आपराधिक षड्यंत्र का पक्षकार होगा, वह दोनों में से किसी भी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि छह महीने से अधिक नहीं होगी, या जुर्माने से, या दोनों से दंडित किया जाएगा।'

10. "जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध बनाने के लिए अनिवार्य शर्त अपीलकर्ताओं की ओर से किया गया ऐसा कार्य है जिससे 'छल किया गया हो और तद्वारा उस प्रकार प्रवंचित व्यक्ति, अर्थात् ए.आई.सी.टी.ई., को कोई संपत्ति सौंपने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित किया गया हो'। इसलिए, सोसाइटी की ओर से और उसके लिए आवेदन करते समय, अपीलकर्ताओं को या तो महत्वपूर्ण जानकारी छिपानी चाहिए थी या गलत जानकारी प्रस्तुत करनी चाहिए थी ताकि ए.आई.सी.टी.ई. को ऐसे बेईमानीपूर्ण साधनों द्वारा अपने शैक्षणिक संस्थानों के लिए अनुमोदन प्रदान करने हेतु उत्प्रेरित किया जा सके। इसके अतिरिक्त, जैसा कि आरोप पत्र के अनुसार, ए.आई.सी.टी.ई. के किसी भी अधिकारी को इस अपराध में संलिप्त नहीं किया गया है, धारा 120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत कथित 'आपराधिक षड्यंत्र' का उत्तरदायित्व भी केवल अपीलकर्ताओं पर ही माना जाएगा।"

XXXXXXXXXX

19. राम जस बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1970) 2 एससीसी 740 में, छल का अपराध गठित करने के लिए आवश्यक तत्वों को संक्षेप में इस प्रकार संकलित किया गया था:—

(i) किसी व्यक्ति को धोखा देकर उसे कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित किया जाना चाहिए;

(ii) (क) उस प्रकार प्रवंचित (धोखा खाए हुए) व्यक्ति को किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए, या किसी भी व्यक्ति द्वारा किसी संपत्ति को अपने पास रखे रहने हेतु सहमति देने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए; या

(ख) उस प्रकार प्रवंचित व्यक्ति को साशय (जानबूझकर) ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए, जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता, तो न करता या करने से लोप न करता; और

(iii) (ii) (ख) के अंतर्गत आने वाले मामलों में, वह कार्य या लोप ऐसा होना चाहिए जिससे उस उत्प्रेरित व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कारित होती है या कारित होनी संभाव्य है।'

20. वी.पी. श्रीवास्तव बनाम इंडियन एक्सप्लोसिव्स लिमिटेड (2010) 10 एससीसी 361 में, इस न्यायालय ने यह अवलोकन किया कि छल का अपराध गठित करने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि प्रतिनिधित्व या वादा करते समय अभियुक्त का इरादा कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण था और अनुबंध में प्रवेश करते समय ऐसा

दोषपूर्ण इरादा होना चाहिए। तथ्यों के आधार पर, यह पाया गया कि जिस पक्ष के साथ छल किए जाने का आरोप लगाया गया था, वह अनुबंध करने का निर्णय लेते समय स्थिति से पूरी तरह अवगत था और वहां कोई बेईमानीपूर्ण उत्प्रेरण नहीं था।

21. वर्तमान मामले में, इस तथ्य का खुलासा किया गया था कि संबंधित भूमि बैंक ऋण सुरक्षित करने के लिए गिरवी रखी गई थी, लेकिन इसके बावजूद, ए.आई.सी.टी.ई. ने 'बिजनेस स्कूल ऑफ दिल्ली' के लिए अनुमोदन प्रदान किया और उसने कभी यह शिकायत नहीं की कि वह उस संबंध में किसी गलत सूचना के प्रभाव में था। इस प्रकार, छल का अपराध बनाने के लिए आवश्यक अनिवार्य शर्त का अभाव है। दूसरे और तीसरे आवेदन और पहले आवेदन के एक हिस्से को भरने में अपीलकर्ताओं की ओर से की गई मात्र लापरवाही को, स्वीकृत तथ्यात्मक स्थिति के आधार पर, जानबूझकर की गई प्रवचना (धोखाधड़ी) से प्रेरित नहीं माना जा सकता, जिससे कि आपराधिक आरोप लगाए जा सकें।

22. इसके अलावा, इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने अपने कॉलेजों के लिए अनुमोदन प्राप्त करने हेतु ए.आई.सी.टी.ई. को जानबूझकर झूठी जानकारी देने के लिए सचेत रूप से सहमति व्यक्त की थी या षड्यंत्र रचा था। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, अपीलकर्ता संख्या 1 ने पहला आवेदन दायर किया था, जिसमें बैंक ऋण और लीज पर ली गई भूमि पर गिरवी (मॉर्गेज) के प्रासंगिक विवरणों का खुलासा किया गया था, लेकिन वह अपने द्वारा दायर तीसरे आवेदन में ऐसा करने में विफल रहा। अपीलकर्ता संख्या 2 ने उसी गैर-प्रकटीकरण के साथ दूसरा आवेदन दायर किया, लेकिन इस बात का कोई सबूत नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने उस संबंध में स्वेच्छा से और एक-दूसरे की मिलीभगत से धोखाधड़ी का सहारा लिया था। इसलिए, धारा 120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत आरोप भी न्यायिक जांच के समक्ष टिकने योग्य नहीं है।

Xxxxx

26. "उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हमारी यह राय है कि विद्वान मैजिस्ट्रेट धारा 239 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करने और केस संख्या 456/2012 के संबंध में अपीलकर्ताओं को आपराधिक कार्यवाही से उन्मोचित करने में पूरी तरह से न्यायसंगत थे। उच्च न्यायालय ने काफी तकनीकी दृष्टिकोण अपनाया और व्यावहारिक रूप से यह निष्कर्ष निकाल लिया कि अपीलकर्ता जानबूझकर प्रासंगिक जानकारी छिपाने के दोषी थे ताकि कपटपूर्ण साधनों से अनुमोदन प्राप्त किए जा सकें। उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष स्वीकृत तथ्यों द्वारा समर्थित नहीं है, जो यह दर्शाते हैं कि पहला आवेदन करते समय शुरुआत में ही गिरवी का खुलासा कर दिया गया था और इसलिए, यह अनुमान लगाने की कोई संभावना नहीं है कि अपीलकर्ताओं ने अनुमोदन प्राप्त करने के लिए दमन (तथ्यों को छिपाने) का अवैध कार्य करने हेतु धारा 120-ए भारतीय दंड संहिता के तहत षड्यंत्र रचा था। इसके अतिरिक्त, ए.आई.सी.टी.ई. ने स्वयं कभी यह दावा नहीं किया कि उसे ऐसे अनुमोदन प्रदान करने के लिए बेईमानी से उत्प्रेरित किया गया था और वह अनिवार्य कड़ी पूरी तरह से गायब है, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध छल का ऐसा कोई भी आपराधिक आरोप टिकाया जा सके। अतः, इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 सीआर.पी.सी. के तहत आवेदन संख्या 11426/2021 में पारित आक्षेपित आदेश

दिनांक 20.01.2023 को रद्द किया जाता है और विद्वान विशेष न्यायिक मैजिस्ट्रेट, सी.बी.आई. कोर्ट, गाजियाबाद द्वारा वाद संख्या 456/2012 में पारित आरोपमुक्ति के आदेश को बहाल किया जाता है। परिणामस्वरूप, अपीलकर्ता केस अपराध संख्या 219/2011 (ई) 0016 में धारा 420 और 120-बी भारतीय दंड संहिता के तहत आरोपित अपराध से आरोपमुक्त माने जाएंगे।"

14. रमनदीप सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 7500 के मामले के संदर्भित अनुच्छेद निम्नलिखित है:

22. "अपने तर्कों के समर्थन में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा किया है:

(i) सर्वोच्च न्यायालय ने इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य (2007) 12 एससीसी 1 : (2008) 1 एससीसी (आपराधिक) 259 में, भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत 'छल' के तत्वों का विस्तार से वर्णन किया है। उक्त निर्णय के अनुच्छेद 40 से 42 इस प्रकार हैं: (एस.सी.सी. पृष्ठ 15, पैरा 40-42)

"40. सर्वप्रथम, हम भारतीय दंड संहिता की धारा 420 पर विचार करेंगे। छल को भारतीय दंड संहिता की धारा 415 में परिभाषित किया गया है और यह भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत दंडनीय है। धारा 415 नीचे दी गई है:

'415. छल.- जो कोई किसी व्यक्ति को प्रवंचना (धोखा) देकर, उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से यह उत्प्रेरित करेगा कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त (सुपुर्द) कर दे, या यह सहमति दे कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को रखे रखे, या साशय उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित करेगा, जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता, तो न करता या करने से लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कारित होती है या कारित होनी संभाव्य है, वह 'छल' करता है, यह कहा जाता है।"

स्पष्टीकरण।- तथ्यों का बेईमानीपूर्ण छिपाव इस धारा के अर्थ के अंतर्गत 'प्रवंचना' (धोखा) है।"

41. इस प्रकार भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के लिए आवश्यक है—

1. किसी व्यक्ति के साथ प्रवंचना (धोखा)।
2. (क) उस व्यक्ति को कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित करना—

(i) किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए; या

(ii) यह सहमति देने के लिए कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को अपने पास रखे रखे; या

(ख) उस व्यक्ति को साशय (जानबूझकर) ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित करना जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता, तो न करता या करने से लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कारित होती है या कारित होनी संभाव्य है।

42. उपरोक्त धारा को पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि परिभाषा में कार्यों की दो अलग-अलग श्रेणियाँ हैं जिन्हें करने के लिए प्रवंचित व्यक्ति को उत्प्रेरित किया जा सकता है। कार्यों की पहली श्रेणी में उसे कपटपूर्वक या बेईमानी से किसी व्यक्ति को संपत्ति सौंपने के लिए उत्प्रेरित किया जा सकता है। कार्यों की दूसरी श्रेणी वह है जिसमें ऐसा कुछ करना या करने से लोप करना शामिल है जिसे प्रवंचित व्यक्ति तब नहीं करता या करने से लोप नहीं करता यदि उसे उस प्रकार धोखा न दिया गया होता। मामलों की पहली श्रेणी में, उत्प्रेरण कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण होना चाहिए। कार्यों की दूसरी श्रेणी में, उत्प्रेरण साशय होना चाहिए, लेकिन इसका कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण होना आवश्यक नहीं है। इसलिए, 'इरादा' ही इस अपराध का सार है। किसी व्यक्ति को छल का दोषी ठहराने के लिए यह दिखाना आवश्यक है कि वादा करते समय उसका इरादा कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण था। बाद में वादे को निभाने में उसकी मात्र विफलता से, कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि उसका शुरु से ही वादे को तोड़ने का दोषपूर्ण इरादा था।"

Xxxxxxx

27. "इसके अलावा, जैसा कि इंदर मोहन गोस्वामी मामले (2007) 12 एससीसी 1 :(2008) 1 एससीसी (आपराधिक) 259 में निर्धारित किया गया है, छल का अपराध गठित करने के लिए, धोखाधड़ी करने का इरादा लेनदेन की शुरुआत से ही मौजूद होना चाहिए। वर्तमान मामले में, मैसर्स एस.के. एसोसिएट्स ने वर्ष 2003 में संपत्ति खरीदी थी, और लगभग 18 वर्षों के बाद, 2021/2022 में इसे बेचा। जब उसने संपत्ति खरीदी थी, तब तत्कालीन पट्टाधारकों के उत्तराधिकारियों/कानूनी वारिसों के नाम राजस्व रिकॉर्ड में विधिवत दर्ज थे; मैसर्स एस.के. एसोसिएट्स के पास यह संदेह करने का कोई कारण नहीं था कि वह ऐसी भूमि खरीद रहा है जिसमें उसके विक्रेताओं का स्वामित्व नहीं था। मैसर्स एस.के. एसोसिएट्स द्वारा 2021/2022 में बिक्री लेनदेन करने के बाद ही पहली बार उस पर बरेली विकास प्राधिकरण की भूमि हस्तांतरित करने का आरोप लगाया गया था।"

Xxxxxxxx

95. सर्वोच्च न्यायालय ने आर.के. विजयसारथी बनाम सुधा सीताराम (2019) 16 एससीसी 739 :(2020) 2 एससीसी (आपराधिक) 454: 2019 INएससी 216 में भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के तहत अपराध गठित करने वाले तत्वों को निम्नानुसार निकाला है: (एस.सी.सी. पृष्ठ 745-746, पैरा 16-17 और 19-20)

"16. छल का अपराध गठित करने के लिए आवश्यक तत्व निम्नानुसार हैं:

16.1. किसी व्यक्ति को धोखा देकर उसे कपटपूर्वक या बेईमानी से उत्प्रेरित किया जाना चाहिए:

16.1.1. इस प्रकार उत्प्रेरित व्यक्ति को साशय (जानबूझकर) किसी भी व्यक्ति को कोई संपत्ति सौंपने के लिए या किसी व्यक्ति द्वारा किसी संपत्ति को अपने पास रखे रहने हेतु सहमति देने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए। अथवा

16.1.2. इस प्रकार उत्प्रेरित व्यक्ति को साशय ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित किया जाना चाहिए जिसे वह तब नहीं करता या करने से लोप नहीं करता यदि उसे उस प्रकार धोखा न दिया गया होता। और

16.2. ऊपर दिए गए 16.1.2. के अंतर्गत आने वाले मामलों में, वह कार्य या लोप ऐसा होना चाहिए जिससे उत्प्रेरित व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कारित हुई हो या कारित होनी संभाव्य हो।”

15. जीत विनायक अरोलकर बनाम गोवा राज्य, 2025 एससीसी ऑनलाइन एससी 31 के मामले में दिए गए निर्णय के संदर्भित अनुच्छेद निम्नलिखित है:-

3. "16 अक्टूबर 2018 को, चौथे प्रतिवादी ने गोवा के दीवानी न्यायालय में बारह अलग-अलग दीवानी वाद दायर किए, जिसमें विषयगत संपत्ति के संबंध में अपने स्वामित्व की घोषणा की मांग की गई थी। चौथे प्रतिवादी द्वारा दायर किए गए वादों में यह तर्क दिया गया था कि विषयगत संपत्ति एक सामान्य और अविभाजित संपत्ति है जिसमें चौथे प्रतिवादी का अविभाजित हिस्सा है, जो उसे अपने पिता से विरासत में मिला है। अपीलकर्ता ने 1 सितंबर 2020 को वाद में एक लिखित बयान दायर किया और दावा किया कि संपत्ति मूल रूप से सकाराम सदाशिव नाटेकर के स्वामित्व में थी। 23 अक्टूबर 2020 को, चौथे प्रतिवादी ने अपने अधिकृत मुख्तार (कॉन्स्टिट्यूटेड अटॉर्नी) के माध्यम से पुलिस अधीक्षक, उत्तरी गोवा जिला के पास एक शिकायत दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता ने दोनों सह-मालिकों के सभी कानूनी वारिसों की सहमति के बिना विषयगत संपत्ति का एक हिस्सा बेच दिया था। उक्त शिकायत के आधार पर पुलिस द्वारा आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। सत्र न्यायालय द्वारा 10 फरवरी 2021 के आदेश के माध्यम से अपीलकर्ता को विवादित एफ.आई.आर. के संबंध में अग्रिम जमानत दी गई थी। 23 अक्टूबर 2021 को, अपीलकर्ता ने एफ.आई.आर. को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका दायर की। 1 मार्च 2023 के आक्षेपित निर्णय द्वारा, उच्च न्यायालय ने याचिका को खारिज कर दिया।”

दलील:-

4. "अपीलकर्ता की ओर से पेश विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि अपीलकर्ता विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर के अधिकृत मुख्तार (कॉन्स्टिट्यूटेड अटॉर्नी) हैं, जो आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट के विषय रहे विक्रय विलेखों के तहत विक्रेता हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि चौथे प्रतिवादी ने अपनी शिकायत में विक्रय विलेखों के तहत विषयगत संपत्ति के संबंध में विक्रेताओं के सह-स्वामित्व को स्वीकार किया था। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चौथे प्रतिवादी द्वारा दीवानी वाद संस्थित करने की तिथि के दो साल से अधिक समय बाद शिकायत दर्ज कराई गई थी। विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस बात पर प्रकाश डाला कि वर्ष 1928 और 1929

में निष्पादित दस्तावेजों के आधार पर सकाराम सदाशिव नाटेकर विषयगत संपत्ति के मालिक कैसे बने। उन्होंने प्रस्तुत किया कि विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर, सकाराम सदाशिव नाटेकर के कानूनी प्रतिनिधि हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया कि गोवा राज्य में लागू 'संपत्तियों के समागम' की व्यवस्था के दृष्टिगत, दोनों ने विषयगत संपत्ति में आधे हिस्से का दावा किया था। उन्होंने बताया कि 10 मई 2013 को अपीलकर्ता ने विषयगत संपत्ति के संबंध में किसी भी इच्छुक पक्ष से आपतियां आमंत्रित करते हुए एक सार्वजनिक नोटिस प्रकाशित किया था।"

Xxxxxxx

दलीलों पर विचार

8. हमने उन विक्रय विलेखों में से एक का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया है, जो आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट का विषय है। सभी विक्रय विलेख समान हैं। अपीलकर्ता ने विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर के अधिकृत मुख्तार (कॉन्स्ट्रक्ट्यूटेड अटॉर्नी) के रूप में और एक पुष्टिकर्ता पक्ष के रूप में भी विक्रय विलेख पर हस्ताक्षर किए थे। विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर द्वारा अपीलकर्ता के पक्ष में निष्पादित उक्त मुख्तारनामा (पावर ऑफ अटॉर्नी) में यह विवरण अंकित है कि निष्पादक, अर्थात् विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर, विषयगत संपत्ति के सह-स्वामी हैं। उन विक्रय विलेखों, जो आक्षेपित एफ.आई.आर. के विषय हैं, का कानूनी प्रभाव यह है कि विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर के स्वामित्व अधिकारों को खरीदारों को हस्तांतरित कर दिया गया था।

9. यह ध्यान देना उचित है कि चौथे प्रतिवादी द्वारा अक्टूबर 2018 में दीवानी वाद दायर किए गए थे। उन वादों में, वह विषयगत संपत्ति में सह-स्वामी या अविभाजित हिस्से वाले व्यक्ति होने का दावा करता है। उक्त वादों के संस्थित होने के दो साल बाद, चौथे प्रतिवादी के अधिकृत मुख्तार ने 23 अक्टूबर 2020 को पुलिस अधीक्षक के पास एक शिकायत दर्ज कराई। शिकायत में, उसने कहा कि विषयगत संपत्ति मूल रूप से चौथे प्रतिवादी के पूर्वज और सदाशिव नाटेकर के स्वामित्व में थी। शिकायत के अनुच्छेद 5 में, चौथे प्रतिवादी के अधिकृत मुख्तार ने इस प्रकार कहा:

"5. धोखाधड़ी, जालसाजी और भूमि कब्जाने का यह दुर्भावनापूर्ण प्रयास व्यवस्थित और मनमाने ढंग से एक श्री जीत विनायक अरोलकर द्वारा किया गया है, जो सदाशिव सकाराम नाटेकर के कानूनी वारिसों के पावर ऑफ अटॉर्नी धारक होने का दावा करते हैं। उक्त सदाशिव नाटेकर, वैकुंठ रावलू खलप के साथ उक्त संपत्ति के सह-स्वामी थे। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उक्त संपत्ति को उक्त संपत्ति के दोनों सह-स्वामियों के सभी कानूनी वारिसों की स्पष्ट सहमति के बिना किसी भी तरह से मनमाने ढंग से नहीं बेचा जा सकता है।"

(जोर दिया गया)

यह ध्यान देना उचित है कि चौथे प्रतिवादी के अधिकृत मुख्तार (कॉन्स्ट्रक्ट्यूटेड अटॉर्नी) ने शिकायत में इस बात का उल्लेख नहीं किया कि शिकायत दर्ज करने से दो साल पहले, चौथे प्रतिवादी द्वारा घोषणात्मक वाद दायर किए गए थे, जो लंबित थे। दिलचस्प बात यह है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने के दो साल बाद, 13 अक्टूबर 2022 को, चौथे प्रतिवादी ने पुलिस के पास एक पूरक शिकायत दर्ज कराई, जिसमें आरोप लगाया गया कि उन विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर ने भी अपराध किया था।"

10. "इस प्रकार, संक्षेप में, चौथे प्रतिवादी की शिकायत यह है कि विक्रय विलेखों के तहत विक्रेताओं का विषयगत संपत्ति में केवल एक अविभाजित हिस्सा था, और वे विक्रय विलेखों के माध्यम से पूरी विषयगत संपत्ति नहीं बेच सकते थे। अपीलकर्ता का तर्क यह है कि जो बेचा गया है वह विद्या नाटेकर और संजय नाटेकर का अधिकार, स्वत्व और हित है। इस प्रकार, पक्षों के बीच का विवाद मुख्य रूप से एक दीवानी विवाद है।"

11. धारा 415, जो 'छल' को परिभाषित करती है, इस प्रकार है:

415. छल— जो कोई किसी व्यक्ति को प्रवंचना (धोखा) देकर, उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, कपटपूर्वक या बेईमानी से यह उत्प्रेरित करेगा कि वह कोई संपत्ति किसी व्यक्ति को परिदत्त (सुपुर्द) कर दे, या यह सहमति दे कि कोई व्यक्ति किसी संपत्ति को रखे रखे, या साशय उस व्यक्ति को जिसे इस प्रकार प्रवंचित किया गया है, ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए उत्प्रेरित करेगा, जिसे वह यदि उसे इस प्रकार प्रवंचित न किया गया होता, तो न करता या करने से लोप न करता, और जिस कार्य या लोप से उस व्यक्ति को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कारित होती है या कारित होनी संभाव्य है, वह "छल" करता है, यह कहा जाता है।

स्पष्टीकरण।— तथ्यों का बेईमानीपूर्ण छिपाव इस धारा के अर्थ के अंतर्गत प्रवंचना (धोखा) है।'

12. "यह ध्यान देना उचित है कि विक्रय विलेखों के तहत खरीदारों ने इन विक्रय विलेखों के बारे में कोई शिकायत नहीं की है। मोहम्मद इब्राहिम बनाम बिहार राज्य के मामले में, अनुच्छेद 20 से 23 में, इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया था:

"20. जब किसी संपत्ति पर स्वामित्व का दावा करते हुए उसे हस्तांतरित करने के लिए विक्रय विलेख निष्पादित किया जाता है, तो ऐसे विक्रय विलेख के तहत खरीदार के लिए यह आरोप लगाना संभव हो सकता है कि विक्रेता ने स्वामित्व का गलत प्रतिनिधित्व करके उसके साथ छल किया है और उसे बिक्री की राशि (प्रतिफल) देने के लिए कपटपूर्वक उत्प्रेरित किया है। लेकिन इस मामले में शिकायत खरीदार द्वारा नहीं की गई है। इसके विपरीत, खरीदार को ही सह-अभियुक्त बना दिया गया है।

21. शिकायतकर्ता का यह मामला नहीं है कि किसी भी अभियुक्त ने उसे गलत या भ्रामक प्रतिनिधित्व देकर या किसी अन्य कार्य या लोप द्वारा धोखा देने की कोशिश की, और न ही उसका यह मामला है कि उन्होंने उसे कोई संपत्ति सौंपने के लिए या किसी व्यक्ति द्वारा उसे अपने पास रखे रहने हेतु सहमति देने के लिए, या उसे साशय ऐसा कुछ करने या करने से लोप करने के लिए जिसे वह तब नहीं करता या करने से लोप नहीं करता यदि उसे उस प्रकार धोखा न दिया गया होता, कोई कपटपूर्ण या बेईमानीपूर्ण उत्प्रेरण दिया। न ही शिकायतकर्ता ने यह आरोप लगाया कि पहले अपीलकर्ता ने विक्रय विलेख निष्पादित करते समय शिकायतकर्ता होने का ढोंग किया। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि पहले अभियुक्त ने दूसरे अभियुक्त के पक्ष में विक्रय

विलेख निष्पादित करने के कार्य द्वारा, या दूसरे अभियुक्त ने खरीदार होने के कारण, या तीसरे, चौथे और पांचवें अभियुक्त ने विक्रय विलेखों के संबंध में गवाह, लेखक और स्टॉप विक्रेता होने के कारण, शिकायतकर्ता को किसी भी तरह से धोखा दिया है।

22. चूंकि धारा 415 में वर्णित छल के तत्व नहीं पाए जाते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि संहिता की धारा 417, 418, 419 या 420 के तहत दंडनीय कोई अपराध हुआ था।

एक स्पष्टीकरण

23. जब हम यह कहते हैं कि किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऐसी संपत्ति को अपनी बताकर विक्रय विलेख निष्पादित करना जो उसकी नहीं है, 'झूठा दस्तावेज बनाना' नहीं है और इसलिए 'जालसाजी' नहीं है, तो हमें यह नहीं समझा जाना चाहिए कि हम यह मान रहे हैं कि ऐसा कार्य कभी भी आपराधिक अपराध नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति यह जानते हुए कि संपत्ति उसकी नहीं है, उसे बेचता है और तद्वारा उस व्यक्ति को धोखा देता है जिसने संपत्ति खरीदी है, तो धोखा खाया हुआ व्यक्ति, अर्थात् खरीदार, यह शिकायत कर सकता है कि विक्रेता ने छल का कपटपूर्ण कार्य किया है। लेकिन एक तीसरा पक्ष जो उस विलेख (डीड) के तहत खरीदार नहीं है, ऐसी शिकायत करने में सक्षम नहीं हो सकता है।"

(जोर दिया गया)

12.1 "इस मामले में, यह समझना असंभव है कि अपीलकर्ता ने चौथे प्रतिवादी को कैसे धोखा दिया और अपीलकर्ता द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित करने के कार्य से चौथे प्रतिवादी को शरीर, मन, ख्याति या संपत्ति की क्षति या अपहानि कैसे हुई या होनी संभाव्य थी। अपीलकर्ता ने चौथे प्रतिवादी की ओर से विक्रय विलेख निष्पादित करने का दिखावा नहीं किया है। उसने चौथे प्रतिवादी के अधिकारों को हस्तांतरित करने का दावा भी नहीं किया है। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि अपीलकर्ता ने विषयगत संपत्ति को हस्तांतरित करने या सौंपने के लिए चौथे प्रतिवादी को धोखा दिया।"

13. "यदि शिकायत को सही मान लिया जाए, तो भी अपीलकर्ता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 415 के तहत छल का अपराध नहीं बनता है। इसके अलावा, चौथे प्रतिवादी द्वारा दीवानी वाद संस्थित करने की तारीख से दो साल के अंतराल के बाद पहली बार शिकायत दर्ज की गई थी। शिकायत में, उसने इस तथ्य को छिपाया कि दीवानी वाद पहले से ही दायर किए गए थे जिनमें अस्थायी निषेधाज्ञा के लिए आवेदन किए गए थे। जब स्वामित्व को लेकर विवाद था, तो वाद दायर करने की तारीख के दो साल बाद चौथे प्रतिवादी द्वारा आपराधिक विधि को गतिमान करने का कार्य विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।"

14. "उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है। 1 मार्च 2023 के आक्षेपित निर्णय और आदेश को अपास्त किया जाता है, और एफ.आई.आर. संख्या 177/2020 (जो शुरू में परेनेम पुलिस स्टेशन, गोवा में दर्ज की गई थी और अब आर्थिक अपराध शाखा की विशेष जांच टीम को स्थानांतरित कर दी गई है) तथा उसके

आधार पर होने वाली कार्यवाही को केवल अपीलकर्ता के विरुद्ध एतद्वारा रद्द और अपास्त किया जाता है। तदनुसार, अपील उपरोक्त शर्तों पर स्वीकार की जाती है। हम यह स्पष्ट करते हैं कि हमने पक्षों के बीच लंबित दीवानी विवाद के गुणावगुणों पर कोई निर्णय नहीं दिया है।"

16. उपरोक्त पर विचार किया गया और रिकॉर्ड का सावधानीपूर्वक अवलोकन किया गया।"

17. "केस डायरी सहित रिकॉर्ड पर उपलब्ध दस्तावेजों से, यह न्यायालय पाता है कि आवेदक के विरुद्ध आरोप, संक्षेप में, इस आशय के हैं कि ग्राम प्रधान होने के नाते आवेदक ने सह-अभियुक्त चंद्र प्रकाश विश्वकर्मा के हलफनामे की सामग्री को सत्यापित किया था, जिसका इरादा 'प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना' नामक योजना का लाभ प्राप्त करना था, जो उसे प्रदान किया गया था और बाद में उसने उसे वापस कर दिया। इस संबंध में केस डायरी के प्रासंगिक भाग यहाँ उद्धृत किए गए हैं:-

"बयान लाभार्थी व प्रकाश मे आये अभियुक्त..... चन्द्रप्रकाश पुत्र श्री रामदास नि० ग्राम रानेपुर मजरे जैठौती कुर्मियान थाना दरियाबाद बाराबंकी, उम्र करीब 52 वर्ष ने पूछने पर बताया कि साहब गांव में मेरा एक कच्चा मकान है, जिसमे हम लोग रहते थे, तथा मेरे खेत मे ट्यूबवेल है तथा मैंने 1994 मे मथुरानगर में एक प्लाट लेकर बनवाया है, 2011 की सर्वे मे मेरे कच्चा मकान को देखकर मुझे आवास आवंटित हुआ था, मैं ग्राम प्रधान के कहने पर आवास न होने का शपथ पत्र दे दिया था, साहब मुझसे गलती हो गई, मुझे क्षमा कर दिया जाये मैंने प्राप्त किया हुआ रूपया 120000/वापस कर दिया है। साहब यही मेरा बयान है।

Xxxxxxxxxx

जिसके सम्बन्ध में आवेदक द्वारा तथ्यों को छिपाते हुए लाभ प्राप्त करने के लिये पक्का मकान न होने का शपथ पत्र दिया है तथा ग्राम प्रधान श्रीमती कलावती द्वारा शपथ पत्र पर चन्द्रप्रकाश को लाभ देने हेतु झूठी गवाही दी गयी जिस पर ग्राम प्रधान के हस्ताक्षर बने हुए हैं।

Xxxxxxxxxx

नामित आरोपी कलावती देवी पत्नी रामदेव निवासी ग्राम जैठौती कुर्मियान थाना दरियाबाद जनपद बाराबंकी तथा प्रकाश में आये अभियुक्त चन्द्र प्रकाश विश्वकर्मा पुत्र रामदास निवासी ग्राम रानेपुर मजरे जैठौती कुर्मियान थाना दरियाबाद जनपद बाराबंकी द्वारा अपने पक्के मकान व ट्यूबवेल पर बना दो मंजिला पक्के मकान को छिपाते हुए फर्जी तरीके से शपथ पत्र प्रस्तुत किया गया है जिसे ग्राम प्रधान द्वारा प्रमाणित किये जाने के कारण धारा 420 भादवि बाखूबी साबित है। अतः अभियुक्त गण 1. कलावती पत्नी रामदेव वर्मा निवासी ग्राम जैठौती कुर्मियान थाना दरियाबाद जनपद बाराबंकी 2. चन्द्रप्रकाश विश्वकर्मा पुत्र रामदास निवासी ग्राम रानेपुर मजरे जैठौती कुर्मियान थाना दरियाबाद जनपद बाराबंकी के विरुद्ध अपराध धारा 420 भा०द०वि० का जुर्म बाखूबी साबित होता है।"

18. उपरोक्त को संज्ञान में लेते हुए और साथ ही भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध के लिए आवश्यक अनिवार्य तत्वों और इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ऊपर बताए गए विभिन्न निर्णयों में की गई टिप्पणियों, तथा आक्षेपित आदेशों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय पाता है कि न तो मैजिस्ट्रेट और न ही पुनरीक्षण न्यायालय ने मामले के उपरोक्त तथ्यों को उनकी वास्तविक भावना में संज्ञान में लिया है; और इसके अतिरिक्त, इन न्यायालयों ने इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कि आवेदक आरोपमुक्ति का पात्र नहीं है, मामले के तथ्यों और इस विषय पर विधि पर विचार करने के बाद कारण दर्ज नहीं किए हैं, जबकि विधि का यह स्थापित सिद्धांत है कि 'कारण' किसी भी आदेश की धड़कन होते हैं और उन्हें दर्ज किया जाना आवश्यक है।

19. कारणों का दर्ज किया जाना आवश्यक है। यह सुविदित है कि 'निष्कर्ष' और 'कारण' दो अलग-अलग चीजें हैं और कारणों से किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुँचने में अधिकारियों की मानसिक कसरत स्पष्ट होनी चाहिए।"

20. "कारण, व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों को दर्ज करने पर जोर इसलिए दिया जाता है क्योंकि यदि निर्णय 'स्फिंक्स के रहस्यमय चेहरे' की तरह (मौन या अस्पष्ट) होता है, तो इसकी यह चुप्पी अदालतों के लिए अपने अपील्य कार्य को करने या निर्णय की वैधता का न्याय करने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने को व्यावहारिक रूप से असंभव बना सकती है। 'कारण जानने का अधिकार' एक सुदृढ़ न्यायिक प्रणाली का एक अपरिहार्य हिस्सा है; कारण कम से कम इतने पर्याप्त होने चाहिए जो न्यायालय के समक्ष मामले में 'मस्तिष्क के प्रयोग' का संकेत दे सकें। एक अन्य तर्क यह भी है कि प्रभावित पक्ष यह जान सके कि निर्णय उसके विरुद्ध क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक यह है कि किए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट किया जाए। दूसरे शब्दों में, इसे एक 'सकारण/तर्कयुक्त आदेश' होना चाहिए। 'स्फिंक्स का रहस्यमय चेहरा' सामान्यतः न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत होता है।

21. **ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनियन (1971) 1 AIER 1148** में यह निर्धारित किया गया था कि कारणों को बताया जाना अच्छे प्रशासन के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है।

22. **अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रेबट्रीज़ (1974) 4 IRC 120 (NIRC)** में यह अवलोकन किया गया था कि "कारण बताने में विफलता न्याय के इनकार के समान है। कारण, निर्णय लेने वाले के मस्तिष्क, विचाराधीन विवाद और उस पर पहुँचे गए निर्णय या निष्कर्ष के बीच की जीवंत कड़ियाँ होते हैं।

23. **भारत संघ बनाम मोहन लाल कपूर (1973) 2 एससीसी 836** में, इस प्रकार कहा गया:

"कारण उन सामग्रियों, जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित होते हैं, और वास्तविक निष्कर्षों के बीच की कड़ियाँ हैं। वे यह प्रकट करते हैं कि निर्णय के लिए विषय-वस्तु पर मस्तिष्क का प्रयोग कैसे किया गया है, चाहे वह

निर्णय विशुद्ध रूप से प्रशासनिक हो या अर्ध-न्यायिक। उन्हें विचाराधीन तथ्यों और प्राप्त निष्कर्षों के बीच एक तर्कसंगत संबंध को प्रकट करना चाहिए।"

24. उमा चरण बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य, एआईआर 1981 एससी 1915 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:

"कारण उन सामग्रियों, जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित होते हैं, और वास्तविक निष्कर्षों के बीच की कड़ियाँ हैं। वे यह प्रकट करते हैं कि निर्णय के लिए विषय-वस्तु पर मस्तिष्क का प्रयोग कैसे किया गया है, चाहे वह निर्णय विशुद्ध रूप से प्रशासनिक हो या अर्ध-न्यायिक। उन्हें विचाराधीन तथ्यों और प्राप्त निष्कर्षों के बीच एक तर्कसंगत संबंध प्रकट करना चाहिए। केवल इसी तरीके से दर्ज की गई रायों या निर्णयों को स्पष्ट रूप से न्यायसंगत और उचित दिखाया जा सकता है।"

25. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ, एआईआर 1990 एससी 1984 के मामले में स्पष्ट किया है कि प्रशासनिक आदेशों में तथ्यों और दर्ज किए गए निष्कर्षों के बीच 'कारण' आवश्यक कड़ियाँ होते हैं, जो किसी पक्ष पर प्रतिकूल नागरिक परिणाम डालते हैं। कारणों के अभाव में ऐसे आदेश को बने रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती।"

26. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2003) 11 एससीसी 519 के मामले में यह निर्धारित किया है कि कारण प्रत्येक निष्कर्ष की धड़कन होते हैं और उनके बिना, निष्कर्ष निर्जीव हो जाता है।"

27. सर्वोच्च न्यायालय ने ओडिशा राज्य बनाम धनीराम लुहार (2004) 5 एससीसी 568 के मामले में एक आपराधिक अपील पर विचार करते हुए इस बात पर जोर दिया कि निर्णय के समर्थन में कारण देना एक मुख्य सिद्धांत था और उच्च न्यायालय को मामले का निस्तारण करते समय अपने कारण दर्ज करने चाहिए। न्यायालय ने इस प्रकार निर्धारित किया:

"8. यहाँ तक कि प्रशासनिक आदेशों के संबंध में भी लॉर्ड डेनिंग, एम.आर. ने ब्रीन बनाम अमलगमेटेड इंजीनियरिंग यूनिन (1971) 2 QB 175 में यह अवलोकन किया: 'कारणों को बताया जाना अच्छे प्रशासन के मूलभूत सिद्धांतों में से एक है।' अलेक्जेंडर मशीनरी (डुडले) लिमिटेड बनाम क्रैबट्री में यह देखा गया: 'कारण देने में विफलता न्याय के इनकार के समान है।' कारण, निर्णय लेने वाले के मस्तिष्क, विचाराधीन विवाद और उस पर पहुँचे गए निर्णय या निष्कर्ष के बीच की जीवंत कड़ियाँ (Live links) होते हैं।' कारण, व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों को दर्ज करने पर जोर इसलिए दिया जाता है क्योंकि यदि निर्णय 'स्फिंक्स के रहस्यमय चेहरे' की तरह होता है, तो वह अपनी चुप्पी से अदालतों के लिए अपने अपीलीय कार्य को करने या निर्णय की वैधता का न्याय करने में न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने को

व्यावहारिक रूप से असंभव बना सकता है। 'कारण जानने का अधिकार' एक सुदृढ़ न्यायिक प्रणाली का एक अपरिहार्य हिस्सा है; कारण कम से कम इतने पर्याप्त होने चाहिए जो न्यायालय के समक्ष मामले में मस्तिष्क के प्रयोग का संकेत दे सकें। एक अन्य तर्क यह भी है कि प्रभावित पक्ष यह जान सके कि निर्णय उसके विरुद्ध क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक यह है कि किए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट रूप से बताया जाए; दूसरे शब्दों में, इसे एक सकारण/आख्यापक आदेश' होना चाहिए। 'स्फिंक्स का रहस्यमय चेहरा' सामान्यतः न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रदर्शन के साथ असंगत होता है।"

28. मैकडमॉट इंटरनेशनल इंक बनाम बर्न स्टैंडर्ड कंपनी लिमिटेड एवं अन्य (2006) 11 एससीसी 181 में सर्वोच्च न्यायालय ने 'बाछावत की लॉ ऑफ आर्बिट्रेशन एंड कॉन्सिलिएशन' (चौथा संस्करण, पृष्ठ 855-56) का संदर्भ देते हुए अनुच्छेद 56 में कहा:

"कारण उन सामग्रियों, जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित होते हैं, और वास्तविक निष्कर्षों के बीच की कड़ियाँ हैं..."

29. राजस्थान राज्य बनाम राजेंद्र प्रसाद जैन, (2008) 15 एससीसी 711 में कहा गया कि 'कारण प्रत्येक निष्कर्ष की धड़कन है, और इसके बिना यह निर्जीव हो जाता है।'

30. सर्वोच्च न्यायालय ने क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम मसूद अहमद खान एवं अन्य (2010)

9 एससीसी 496 में 'मोहन लाल कपूर' (उपरोक्त) के निर्णय का संदर्भ देते हुए अनुच्छेद 23 और 47 में कहा: "ऐसे कारणों से यह प्रकट होना चाहिए कि निर्णय के लिए विषय-वस्तु पर मस्तिष्क का प्रयोग कैसे किया गया था, भले ही वह निर्णय विशुद्ध रूप से प्रशासनिक हो या अर्ध-न्यायिक। इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि ऐसे संदर्भ में 'कारणों' का अर्थ उन सामग्रियों, जिन पर विचार किया गया है, और उन निष्कर्षों, जिन पर पहुँचा गया है, के बीच की कड़ी होगी। कारणों को दोनों के बीच एक तर्कसंगत संबंध प्रकट करना चाहिए।"

Xxxxxxxxxxxxx

47. उपरोक्त चर्चा का सार प्रस्तुत करते हुए, यह न्यायालय यह निर्धारित करता है:

(क) भारत में न्यायिक प्रवृत्ति हमेशा से कारण दर्ज करने की रही है, यहाँ तक कि प्रशासनिक निर्णयों में भी, यदि ऐसे निर्णय किसी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

(ख) एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारण अवश्य दर्ज करने चाहिए।

(ग) कारणों को दर्ज करने पर जोर न्याय के उस व्यापक सिद्धांत की सेवा के लिए है कि न्याय न केवल होना चाहिए, बल्कि होता हुआ दिखना भी चाहिए।

(घ) कारणों का दर्ज किया जाना न्यायिक, अर्ध-न्यायिक या प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध अंकुश के रूप में भी कार्य करता है।

(ङ) कारण इस बात का आश्वासन देते हैं कि निर्णय लेने वाले ने प्रासंगिक आधारों पर और बाहरी (अप्रासंगिक) विचारों को दरकिनार करते हुए अपने विवेक का प्रयोग किया है।

(च) निर्णय लेने की प्रक्रिया में कारण अब उतने ही अपरिहार्य घटक बन गए हैं जितना कि न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहाँ तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना।

(छ) कारण उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं।

(ज) विधि के शासन और संवैधानिक शासन के प्रति प्रतिबद्ध सभी देशों में वर्तमान न्यायिक रुझान प्रासंगिक तथ्यों पर आधारित तर्कसंगत निर्णयों के पक्ष में है। यह वस्तुतः न्यायिक निर्णय लेने की जीवनधारा है जो इस सिद्धांत को उचित ठहराती है कि 'तर्क ही न्याय की आत्मा है'।

(झ) न्यायिक या अर्ध-न्यायिक राय इन दिनों उन्हें देने वाले न्यायाधीशों और अधिकारियों के अनुसार अलग-अलग हो सकती है। ये सभी निर्णय एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करते हैं, जो कारण के माध्यम से यह प्रदर्शित करना है कि प्रासंगिक कारकों पर वस्तुनिष्ठ रूप से विचार किया गया है। न्याय वितरण प्रणाली में वादियों के विश्वास को बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

(ञ) कारण पर जोर देना न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता, दोनों के लिए एक आवश्यकता है।

(ट) यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है, तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति 'पूर्व-निर्णय के सिद्धांत' या 'क्रमिक विकास के सिद्धांत' के प्रति वफादार है या नहीं।

(ठ) निर्णयों के समर्थन में कारण तर्कसंगत, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। कारणों का ढोंग करना या 'रबर-स्टैंप' की तरह कारण देना एक वैध निर्णय लेने की प्रक्रिया के समान नहीं माना जा सकता।

(ड) इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने के लिए पारदर्शिता एक अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णय लेने वालों को गलतियों के प्रति कम संवेदनशील बनाती है, बल्कि उन्हें व्यापक जांच के दायरे में भी लाती है। (देखें - ज्यूडिशियल कैंडोर के बचाव में डेविड शैपिरो ((1987) 100 हार्वर्ड लॉ रिव्यू 731-37))

(ढ) चूंकि कारण दर्ज करने की आवश्यकता निर्णय लेने में 'निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत' से उत्पन्न होती है, इसलिए उक्त आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक है और इसे स्ट्रासबर्ग न्यायशास्त्र का हिस्सा माना गया था। देखें रुइज़ टोरिजा बनाम स्पेन ((1994) 19 EHRR 553) EHRR, पृष्ठ 562 अनुच्छेद 29 और आन्या बनाम ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय [2001 EWCA Civ 405 (CA)], जिसमें न्यायालय ने 'मानवाधिकारों के यूरोपीय कन्वेंशन' के अनुच्छेद 6 का संदर्भ दिया, जो यह अपेक्षा करता है कि न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और तर्कसंगत कारण दिए जाने चाहिए।

(ण) सभी समान विधि क्षेत्राधिकारों में, निर्णय भविष्य के लिए मिसाल स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, विधि के विकास के लिए, निर्णय के कारण बताने की आवश्यकता अनिवार्य है और यह वस्तुतः 'उचित प्रक्रिया' का एक हिस्सा है।"

31. सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग बनाम स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, JT 2010 (10) एससी 26 के मामले में भी, पैरा 68 में गुरदयाल सिंह फिजी (उपरोक्त) के मामले का संदर्भ देते हुए कहा:

'कारण उन सामग्रियों, जिन पर कुछ निष्कर्ष आधारित होते हैं, और वास्तविक निष्कर्षों के बीच की कड़ियाँ हैं। सभी न्यायालयों द्वारा अपनाई गई पद्धति और न्यायाधीशों द्वारा निर्मित विधि के आधार पर, तर्कसंगत निर्णय की अवधारणा विधि के बुनियादी शासन का एक अपरिहार्य हिस्सा बन गई है और वास्तव में, यह प्रक्रियात्मक विधि की एक अनिवार्य आवश्यकता है। विचारों की स्पष्टता दृष्टि की स्पष्टता की ओर ले जाती है और इसलिए, उचित तर्क ही एक न्यायसंगत और निष्पक्ष निर्णय की नींव है।'

32. यह अच्छी तरह से स्थापित है कि बिना वैध कारणों के किसी भी आदेश को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। कारण बताना प्राकृतिक न्याय का नियम है। इस नियम पर प्रकाश डालते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विक्टोरिया मेमोरियल के सचिव एवं क्यूरेटर बनाम हावड़ा गणतान्त्रिक नागरिक समिति एवं अन्य, JT 2010(2) एससी 566 के पैरा 31 से 33 में इस प्रकार निर्धारित किया है:

'31. यह एक स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि न केवल प्रशासनिक बल्कि न्यायिक आदेश भी उसमें दर्ज कारणों द्वारा समर्थित होने चाहिए। इस प्रकार, किसी मुद्दे का निर्णय करते समय, न्यायालय अपने निष्कर्ष के लिए कारण देने हेतु बाध्य है। मामले का निस्तारण करते समय कारण दर्ज करना न्यायालय का कर्तव्य और दायित्व है। किसी न्यायिक मंच द्वारा आदेश और न्यायिक शक्ति के प्रयोग की पहचान उसके द्वारा स्वयं के कारणों को प्रकट करना है। न्याय-वितरण प्रणाली के सुदृढ़ प्रशासन के मूलभूत सिद्धांतों में से एक के रूप में कारण बताने पर हमेशा जोर दिया गया है, ताकि यह ज्ञात हो सके कि न्यायालय के समक्ष मुद्दे पर उचित और विधिवत मस्तिष्क का प्रयोग किया गया था और यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की एक आवश्यक शर्त भी है। किसी निर्णय के लिए कारण बताना, न्यायालयों के समक्ष किसी मामले के न्यायिक और विवेकपूर्ण निस्तारण का एक अनिवार्य गुण है, जो किए गए कार्य के तरीके और गुणवत्ता को जानने का एकमात्र संकेत है, और साथ ही इस तथ्य का भी कि संबंधित न्यायालय ने वास्तव में अपने मस्तिष्क का प्रयोग किया था।' [उड़ीसा राज्य बनाम धनीराम लुहार (जे.टी.) 2004(2) एससी 172 और राजस्थान राज्य बनाम सोहन लाल एवं अन्य संयुक्त 2004 (5) एससीसी 338:2004 (5) एससीसी 573 देखें।]

32. "कारण प्रत्येक निष्कर्ष की धड़कन है। यह एक आदेश में स्पष्टता लाता है और इसके बिना आदेश निर्जीव हो जाता है। कारण, व्यक्तिपरकता को वस्तुनिष्ठता से प्रतिस्थापित करते हैं। कारणों की अनुपस्थिति आदेश को असमर्थनीय/अस्थिर बना देती है, विशेष रूप से तब जब आदेश उच्च मंच के समक्ष आगे की चुनौती के अधीन हो।" [देखें: राज किशोर झा बनाम बिहार राज्य एवं अन्य एआईआर 2003 एससी 4664; विष्णु देव शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2008) 3 एससीसी 172; स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम सेल्स टैक्स ऑफिसर राउरकेला प्रथम सर्किल और अन्य (2008) 9 एससीसी 407; उत्तरांचल राज्य बनाम

सुनील कुमार सिंह नेगी एआईआर 2008 एससी 2026; यू.पी.एस.आर.टी.सी. बनाम जगदीश प्रसाद गुप्ता एआईआर 2009 एससी 2328; राम फल बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2009) 3 एससीसी 258; मोहम्मद यूसुफ बनाम फैज मोहम्मद और अन्य (2009) 3 एससीसी 513; और हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम सदा राम और अन्य (2009) 4 एससीसी 422]।

33. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि कारणों को दर्ज करना प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत है और प्रत्येक न्यायिक आदेश लिखित रूप में दर्ज कारणों द्वारा समर्थित होना चाहिए। यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में पारदर्शिता और निष्पक्षता सुनिश्चित करता है। जो व्यक्ति प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है, वह यह जान सकता है कि उसका आवेदन क्यों खारिज कर दिया गया है।"

33. कारणों को दर्ज न करना, स्वीकार्य साक्ष्यों पर विचार न करना या अस्वीकार्य साक्ष्यों पर विचार करना, आदेश को अस्थिर बना देता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चंदना इम्पेक्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम सीमा शुल्क आयुक्त, नई दिल्ली, 2011(269) E.L.T. 433 (S.C.) के मामले में इस प्रकार निर्धारित किया:

'8. इस बात पर बल देने की आवश्यकता है कि प्रत्येक वादी, जो राहत के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है, अपनी प्रार्थना की स्वीकृति या अस्वीकृति का कारण जानने का हकदार है, विशेष रूप से तब जब मुकदमे के किसी भी पक्ष के पास आगे की अपील का अधिकार हो। जब तक वादी को उन कारणों से अवगत नहीं कराया जाता, जिन्होंने न्यायालय को उसे मांगी गई राहत देने से मना करने के लिए प्रभावित किया, तब तक अपील का उपचार सार्थक नहीं होगा। यह वही तर्क है, जिसका उच्च मंचों पर परीक्षण किया जा सकता है। ओडिशा राज्य बनाम धनीराम लुहार के मामले में, इस न्यायालय ने यह दोहराते हुए कि "कारण प्रत्येक निष्कर्ष की धड़कन है और इसके बिना यह निजी हो जाता है", इस प्रकार अवलोकन किया:

"8. कारण जानने का अधिकार एक सुदृढ़ न्यायिक प्रणाली का एक अपरिहार्य हिस्सा है; कारण कम से कम इतने पर्याप्त होने चाहिए जो न्यायालय के समक्ष मामले में मस्तिष्क के प्रयोग का संकेत दे सकें। एक अन्य तर्क यह भी है कि प्रभावित पक्ष यह जान सके कि निर्णय उसके विरुद्ध क्यों गया है। प्राकृतिक न्याय की महत्वपूर्ण आवश्यकताओं में से एक यह है कि किए गए आदेश के कारणों को स्पष्ट रूप से बताया जाए;....."

34. इस निर्णय के क्रमशः अनुच्छेद 17 और 18 में बताए गए तथ्यों और कारणों पर विचार करते हुए, तथा भारतीय दंड संहिता की धारा 420 से संबंधित विधि और आदेश में 'कारण दर्ज करने' के मुद्दे पर स्थापित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का विचार है कि वर्तमान आवेदन स्वीकार किए जाने योग्य है। तदनुसार, इसे स्वीकार किया जाता है। मैजिस्ट्रेट द्वारा पारित आदेश दिनांक 15.03.2023 और पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.11.2024 को एतद्वारा अपास्त किया जाता है।"

35. मामले को वापस मैजिस्ट्रेट के पास भेजा जाता है, जो आवेदिका के आरोपमुक्ति के आवेदन पर नए सिरे से विचार करेंगे और उस पर निर्णय लेंगे।

(2025) 1 ILRA 231

मूल अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.01.2025

माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला,

के समक्ष

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन पत्र संख्या 743/2025

भरतेंदु प्रताप सिंह

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...विपक्षीगण

आवेदक की ओर से अधिवक्ता: श्री शिवेन्द्र एस. सिंह राठौर, श्री कृष्ण कुमार सिंह

विपक्षीगण की ओर से अधिवक्ता: जी.ए.

आपराधिक विधि - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएँ 195(1) (ख) एवं 340 - मिथ्या साक्ष्य के लिए कार्यवाही आरम्भ करने का दायरा एवं सीमा - सामान्य नियम (आपराधिक), 1977 के अंतर्गत प्रश्नावली में कथित असत्य कथन के लिए वरिष्ठ सरकारी अधिकारियों के अभियोजन हेतु आवेदन - निर्णय यह हुआ कि केवल यह कहना कि दस्तावेज असत्य था और अनुशासनात्मक/सतर्कता प्राधिकारी के समक्ष प्रयोग किया जा सकता है, पर्याप्त नहीं है - न्यायिक कार्यवाही में उसके वास्तविक प्रस्तुतिकरण या प्रयोग का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं - *इकबाल सिंह मारवाह* तथा *जेम्स कुंजवाल* के सिद्धांतों की पुनः पुष्टि की गई - धारा 340 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्यवाही अपवादस्वरूप एवं केवल ऐसे जानबूझकर किए गए असत्य कथन पर आधारित होनी चाहिए जो न्याय के प्रशासन को प्रभावित करता हो - आवेदन निरस्त किया गया। (अनुच्छेद 7, 10, 11, 12 एवं 13)

निर्णय:

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में यहाँ उल्लेखनीय है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 यह उपबंधित करती है कि मैजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है (क) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो उस अपराध का गठन करते हैं, (ख) ऐसे तथ्यों की पुलिस प्रतिवेदन प्राप्त होने पर, तथा (ग) किसी व्यक्ति (जो पुलिस

अधिकारी न हो) से ऐसी सूचना प्राप्त होने पर या अपनी स्वयं की जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 इस सामान्य उपबन्ध का एक अपवाद स्वरूप है तथा न्यायालय की संज्ञान ग्रहण करने की शक्ति पर उन विशिष्ट प्रकार के अपराधों के संबंध में प्रतिबंध लगाती है जिनका वर्णन उसमें किया गया है। (अनुच्छेद 10)

यह दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 में प्रयुक्त भाषा से स्पष्ट है कि न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख) में उल्लिखित अपराध के किए जाने के संबंध में शिकायत करने के लिए बाध्य नहीं है, क्योंकि उक्त धारा में यह शर्त निहित है कि "जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में या किसी न्यायालय की कार्यवाही के संबंध में किए जाने का आरोप हो।" इसके अतिरिक्त, धारा 195(1)(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता दो पृथक श्रेणियों के अपराधों से संबंधित है, जिनका वर्णन क्रमशः खंड (ख)(i) और (ख)(ii) में किया गया है। खंड (ख)(i) भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय ग्यारह से संबंधित है, जिसका शीर्षक 'मिथ्या साक्ष्य और लोक न्याय के विरुद्ध अपराध' है। इस खंड में वर्णित अपराध न्यायिक कार्यवाही में या न्यायालय के समक्ष अथवा ऐसे लोक सेवक के समक्ष, जो विधि द्वारा ऐसे घोषणा पत्र को स्वीकार करने हेतु बाध्य या अधिकृत है, मिथ्या साक्ष्य देने, या गढ़ने, या मिथ्या घोषणा करने से संबंधित हैं और साथ ही कुछ अन्य अपराधों से भी संबंधित हैं जिनका न्यायालय में कार्यवाही के साथ सीधा सह-संबंध है (धारा 205 और 211 भारतीय दंड संहिता)। धारा 195 दण्ड प्रक्रिया संहिता की इन दोनों प्रावधानों या खंडों की रूपरेखा यह है कि अपराध ऐसा होना चाहिए जो लोक सेवक के वैध कर्तव्यों के निर्वहन या कार्यप्रणाली को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करे, अथवा न्यायालय की कार्यवाही से प्रत्यक्ष संबंध रखता हो। इसके अतिरिक्त, खंड (ख)(ii) में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "जब ऐसा अपराध किसी दस्तावेज के संबंध में किया जाने का आरोप हो जो किसी न्यायालय की कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया हो या साक्ष्य के रूप में दिया गया हो" का सामान्यतः अर्थ यह होना चाहिए कि ऐसा अपराध उस दस्तावेज के वास्तव में न्यायालय में प्रस्तुत या साक्ष्य के रूप में दिए जाने के पश्चात् किया गया हो। अतः, उपधारा (ख)(ii) ऐसी स्थिति की परिकल्पना करती है जिसमें वहाँ उल्लिखित अपराध किसी दस्तावेज के संबंध में किए जाते हैं, उस दस्तावेज के किसी न्यायालय की कार्यवाही में प्रस्तुत या साक्ष्य के रूप में दिए जाने के पश्चात्। (अनुच्छेद 11)

हालांकि, यह यहाँ उल्लेखनीय है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख)(i) इन शब्दों द्वारा शर्तित है – "जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में या उसकी कार्यवाही के संबंध में किए जाने का अभिकथित है", जो यह इंगित करता है कि ऐसी प्रक्रिया तभी अपनाई जाएगी जब भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 193 से 196, 199, 200, 205 से 211 तथा 228 में वर्णित अपराध (क) किसी न्यायालय की कार्यवाही में, या (ख) न्यायालय की उक्त कार्यवाही के संबंध में, किए गए हों। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय को यह संतुष्ट करने में असफल रहे हैं कि कथित प्रश्नावली पूछना इनमें से किसी भी धारा के अधीन अपराध कैसे बनता है, तथा उक्त प्रश्नावली का उपयोग माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट (सीजेएम) के समक्ष कार्यवाही में या माननीय

सीजेएम, लखनऊ, के समक्ष उक्त कार्यवाही के संबंध में कैसे किया गया है। यद्यपि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का मुख्य तर्क यह है कि ये प्रश्नावली विधिक महत्व रखती हैं तथा किसी भी न्यायालय या प्राधिकरण के समक्ष साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त की जा सकती हैं, तथापि माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ तथा माननीय सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित आदेशों से यह स्पष्ट है कि अभिलेख पर ऐसा कोई एक भी दस्तावेज नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो सके कि ये प्रश्नावलियाँ कब और किस प्रकार से किसी न्यायालय या किसी प्राधिकरण के समक्ष प्रस्तुत की गईं, जिससे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के दण्डात्मक उपबंधों को प्रवर्तित किया जा सके। (अनुच्छेद 12)

निःसंदेह, शिकायत दाखिल किए जाने से पूर्व न्यायालय प्रारम्भिक जांच कर सकता है और यह प्रतिपादन कर सकता है कि न्याय के हित में यह आवश्यक है कि धारा 195(1)(b) दंड प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित किसी अपराध की जांच की जाए। तथापि, यह अवस्था तभी उत्पन्न होती है जब न्यायालय यह पाता है कि शिकायत का स्वरूप न्यूनतम सीमा को पूरा करता है, जिसका मूल्यांकन न्यायालय सामान्यतः इस आधार पर करेगा कि ऐसे मिथ्या या जाली दस्तावेज से प्रभावित व्यक्ति को हुई क्षति की मात्रा के बजाय उस अपराध के न्याय प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभाव अथवा परिणाम को ध्यान में रखा जाए। यह संभव है कि ऐसा मिथ्या दस्तावेज या कूटरचना किसी व्यक्ति को गंभीर अथवा पर्याप्त क्षति पहुँचाए, जैसे कि उसे किसी मूल्यवान संपत्ति या प्रतिष्ठा से वंचित कर दे, परन्तु ऐसा दस्तावेज न्यायालय में प्रस्तुत या साक्ष्य के रूप में दिया गया मात्र एक दस्तावेज हो सकता है, जहाँ वृहद साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हों, और ऐसे एक साक्ष्य का न्याय के समग्र प्रशासन पर प्रभाव न्यूनतम हो सकता है।

ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय यह नहीं मान सकता कि न्याय के हित में शिकायत दर्ज किया जाना उपयुक्त है। यह समझना आवश्यक है कि अपराध ऐसा होना चाहिए जो न्यायालय के विधिक कार्यों के निर्वहन या उसके विधिसम्मत दायित्वों के संपादन को सीधे प्रभावित करे अथवा न्यायालय की कार्यवाही से उसका प्रत्यक्ष संबंध हो। यह न्यायालय यह समझने में असमर्थ है कि कथित प्रश्नावली में वर्णित असत्यता किस प्रकार न्यायालय के कार्य निष्पादन, न्यायिक दायित्वों के निर्वहन, या न्याय प्रशासन को प्रभावित कर सकती है, अथवा किस प्रकार विपक्षी पक्ष ने न्यायालय से लाभकारी आदेश प्राप्त करने हेतु मिथ्या शपथ ग्रहण की हो। इसके अतिरिक्त, ऐसा कोई मामला नहीं बनता है कि यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के प्रावधानों के तहत परिकल्पित न्याय के हित में कैसे समीचीन होगा। (पैरा 13)

आवेदन निरस्त किया जाता है। (ई -14)

उल्लिखित वादों की सूची :

1. इकबाल सिंह मरवाह बनाम मीनाक्षी मरवाह, (2005) 4 एस.सी.सी. 370

2. जेम्स कुंजवाल बनाम उत्तराखण्ड राज्य, (2024) 8 एस.सी.आर. 332
3. पृथीश बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2002) 1 एस.सी.सी. 253
4. गॉदरेज एंड बॉयस मैनुफैक्चरिंग कम्पनी बनाम भारत संघ, 1992 सी.आर एल. जे. 3752 (बॉम्बे)
5. एम. एस. जग्गी बनाम पंजीयक, उड़ीसा उच्च न्यायालय, 1983 सी.आर एल. जे. 1527

(माननीय न्यायमूर्ति ओम प्रकाश शुक्ला द्वारा प्रदत्त)

1.श्री शिवेन्द्र एस. सिंह राठौर, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता तथा राज्य-प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना एवं अभिलेख पर प्रस्तुत अंतर्वस्तु का अवलोकन किया गया।

2.यह वर्तमान आवेदन इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 341 के अंतर्गत दायर आपराधिक अपील संख्या 66/2023 (भरतेंदु प्रताप सिंह बनाम राजीव कृष्ण एवं 2 अन्य) में माननीय अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा दिनांक 03.10.2024 को पारित अंतिम निर्णय/आदेश तथा आवेदक द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के अंतर्गत दायर आपराधिक विविध वाद संख्या 1041/2023 (भरतेंदु प्रताप सिंह बनाम राजीव कृष्ण एवं 2 अन्य) में माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा दिनांक 16.03.2023 को पारित आदेश को निरस्त किया जाए।

3.आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 ने सामान्य नियम (दण्डात्मक), 1977 के अधीन तथ्य की उद्घोषणा हेतु प्रश्नावली तैयार की, जो मिथ्या थी, तथा वे इस तथ्य से अवगत थे कि उक्त प्रश्नावलियाँ उस तिथि को, जब उन्हें संबंधित न्यायालय की मोहर एवं हस्ताक्षर के अंतर्गत प्राप्त किया गया, असत्य थीं। उनके अनुसार, माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 191 एवं धारा 192 के अधीन अपराध के ग्राह्य दस्तावेजी साक्ष्य के प्रतिकूल मत बनाकर एक गंभीर अनियमितता की है, जो कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 196 एवं 199 के अधीन अपराध की नींव रखती है। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, अपराध की गंभीरता ऐसी है कि प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 ने व्यक्तिगत लाभ की अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु एक विधिक साधन का दुरुपयोग करने के लिए नई कार्यप्रणाली का आविष्कार कर लिया है, जो स्पष्ट रूप से इतना तीव्र हो गया है कि प्रतिवादीगण, जो वाद में सम्मिलित हैं और वरिष्ठ सरकारी सेवक हैं, असत्य का आश्रय लेने में कोई संकोच नहीं किया।

4.आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया कि ऐसा कृत्य न केवल एक निर्दिष्ट अपराध है, बल्कि न्यायालय पर गंभीर धोखाधड़ी की गई है और माननीय विचारण न्यायालय, दस्तावेजी साक्ष्य होने के

बावजूद, न केवल आगे कोई कार्यवाही न करने में गंभीर अनियमितता की है, बल्कि अपने अधिकार क्षेत्र के अनुचित प्रयोग में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 2(छ) के तहत प्रारंभिक जांच का संचालन भी नहीं किया। उन्होंने आगे यह प्रस्तुत किया कि प्रतिवादीगण ने ऐसा अपराध प्रश्नावलियों का दुरुपयोग करने की मंशा और योजना के साथ किया, जो विधि के अंतर्गत/सार्वजनिक सेवकों विशेषकर उनके सक्षम अनुशासनिक/सतर्कता प्राधिकारियों के समक्ष कार्यवाही में प्रयुक्त होने के लिए था, और इस प्रकार प्रश्नावलियाँ साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य थीं, जबकि वे पूर्णतः असत्य थीं। तर्कपूर्ण बहस पूर्ण होने के उपरान्त प्रस्तुत लिखित दलीलों में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित निर्णयों पर भी निर्भरता व्यक्त की है: (i) **गोदरेज एंड बॉयस मैनुफैक्चरिंग कंपनी बनाम भारत संघ, 1992 सी.आर.एल.जे. 3752 (बॉम्बे)**, (ii) **एम.एस. जग्गी बनाम रजिस्ट्रार, उड़ीसा उच्च न्यायालय एवं अन्य, 1983 सी.आर.एल.जे. 1527, और (iii) प्रितिश बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, 2002(1) एस.सी.सी. 253।**

5. इसके विपरीत, राज्य-प्रति पक्ष संख्या 1 की ओर से विद्वान ए.जी.ए ने याचिका का जोरदार विरोध किया और यह प्रस्तुत किया कि मामले के तथ्य धारा 340 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन की ग्राह्यता के लिए आवश्यक न्यूनतम सीमा को प्रवर्तित नहीं करते और माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट तथा माननीय सत्र न्यायालय दोनों ने वैध एवं सुसंगत तर्क देते हुए आवेदक के आवेदन एवं अपील को उचित रूप से खारिज कर दिया है। विद्वान ए.जी.ए. ने यह कहा कि आक्षेपित आदेशों में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और वर्तमान आवेदन को अस्वीकार किया जा सकता है। विद्वान ए.जी.ए. ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के संवैधानिक पीठ के निर्णय **इकबाल सिंह मरवाह बनाम मीनाक्षी मरवाह (2005) 4 एस.सी.सी. 370** पर भी निर्भरता व्यक्त की।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों और अभिलेख के अवलोकन के परिप्रेक्ष्य में, इस न्यायालय द्वारा वर्तमान आवेदन का निर्णय करने के मार्ग पर अग्रसर होने से पूर्व यह उल्लेख किया जा सकता है कि आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने अपने लिखित प्रस्तुतिकरण में यह प्रस्तुत कर, **इकबाल सिंह मरवाह (उपरोक्त)** मामले के संवैधानिक पीठ के निर्णय को भेद करने का प्रयास किया कि यह केवल धारा 195(1)(ब)(ii) के लिए लागू है, जो कि भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 463, 471, 475 या 476 के अंतर्गत अपराधों के लिए है, जबकि वर्तमान मामला कथित रूप से भारतीय दण्ड संहिता की धारा 193, 196, 199 और 200 के अंतर्गत अपराधों से संबंधित है, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ब)(i) के अंतर्गत सम्मिलित हैं।

7. हाल ही में, माननीय उच्चतम न्यायालय की एक वृहद पीठ ने, **जेम्स कुंजवाल बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य, (2024) 8 एस.सी.आर. 332** के मामले में, प्रासंगिक संदर्भों में विभिन्न पूर्व निर्णयों का अध्ययन करने के उपरांत, न्यायालयों के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के अधीन शपथभंग की कार्रवाई प्रारम्भ करने हेतु निम्नलिखित शब्दों में मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित किया:

“16. उपर्युक्त न्यायिक उद्घोषणाओं के अवलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि-

- (i) न्यायालय को प्रथम दृष्टया यह मत बनाना चाहिए कि उस व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए पर्याप्त और उचित आधार विद्यमान हैं, जिसने कथित रूप से मिथ्या कथन किया है;
- (ii) ऐसी कार्यवाही तभी प्रारम्भ की जानी चाहिए जब यह करना 'अपचारी को दंडित करने के लिए न्याय के हित में समीचीन' हो, मात्र इसलिए नहीं कि कथनों में अशुद्धि के कारण, जो निर्दोष या अप्रासंगिक हो सकती हैं;
- (iii) "सार के किसी मामले पर जानबूझकर मिथ्याचार" होना चाहिए;
- (iv) न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि आरोप के लिए उचित आधार है, जो स्पष्ट साक्ष्य पर आधारित हो, मात्र संदेह पर नहीं;
- (v) ऐसी कार्यवाही केवल असाधारण परिस्थितियों में प्रारम्भ की जानी चाहिए, जैसे कि जब कोई पक्ष न्यायालय से लाभकारी आदेश प्राप्त करने के लिए शपथभंग करता है।”

8. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को ध्यान में रखते हुए तथा आवेदक के विद्वान अधिवक्ता एवं राज्य के विद्वान ए.जी.ए. द्वारा प्रस्तुत तर्कों तथा अभिलेख पर उपलब्ध दस्तावेजों पर विचार करने के उपरांत, यह न्यायालय यह पाता है कि वर्तमान वाद की पृष्ठभूमि सीमित परिधि में निहित है। वर्तमान वाद के अभिलेखों से यह विदित होता है कि आवेदक ने पूर्व में माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ के समक्ष परिवाद वाद संख्या 135/2016 दायर किया था, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अंतर्गत दिनांक 02.12.2016 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। उक्त आदेश को आवेदक द्वारा माननीय सत्र न्यायालय के समक्ष आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 105/2017 के माध्यम से चुनौती दी गई, जो दिनांक 25.06.2019 को स्वीकृत की गई तथा माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ का दिनांक 02.12.2016 का आदेश निरस्त कर दिया गया, प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 की उपस्थिति में, क्योंकि वे उक्त पुनरीक्षण याचिका में भी पक्षकार थे।

9. यह आवेदक का कथन है कि प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 ने माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के सामान्य नियम (आपराधिक) 1977 के नियम 141 के तहत दिनांक 01.04.2022 को तीन प्रश्नावली प्राप्त कीं, जिनमें प्रमुख प्रश्न यह था कि “क्या उपर्युक्त परिवाद वाद संख्या 135/2016 दिनांक 02.12.2016 को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 के अंतर्गत खारिज कर दिया गया था”, उनके अनुसार, यह प्राप्त नहीं की जानी चाहिए थी, क्योंकि उक्त दिनांक को प्रतिवादीगण संख्या 2 एवं 3 भलीभांति इस तथ्य से अवगत थे कि परिवाद वाद संख्या 135/2016 माननीय सत्र न्यायालय के आदेश द्वारा पुनः बहाल किया जा चुका था और इस प्रकार, उनके अनुसार, प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 का उक्त आचरण विधि न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाही के संबंध में एक अपराध करने के समान है, और इसलिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 सहपठित धारा 195(1)(b) के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 2 एवं 3 के विरुद्ध जांच प्रारंभ किया जाना अपेक्षित था।

10. उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में यह उल्लेखनीय है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 यह उपबंध करती है कि कोई मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान ले सकता है—(क) ऐसे तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो उक्त अपराध का गठन करते हैं, (ख) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर, तथा (ग) किसी पुलिस अधिकारी के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचना पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 इस सामान्य प्रावधान का एक अपवाद है और उसमें उल्लिखित कुछ प्रकार के अपराधों के संबंध में न्यायालय की संज्ञान लेने की शक्ति पर एक अवरोध उत्पन्न करती है। न्यायालय द्वारा शिकायत दायर करने की जो प्रक्रिया धारा 195(1) दण्ड प्रक्रिया संहिता में परिकल्पित की गई है, वह धारा 340 दण्ड प्रक्रिया संहिता में निर्दिष्ट है, जो इस प्रकार है—**“340. धारा 195 में वर्णित मामलों में प्रक्रिया-**

(1) जब किसी न्यायालय की, उससे इस निमित्त किए गए आवेदन पर या अन्यथा, यह राय है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि धारा 195 की उपधारा (1) के खंड (ख) में निर्दिष्ट किसी अपराध की, जो उसे, यथास्थिति, उस न्यायालय की कार्यवाही में या उसके संबंध में अथवा उस न्यायालय की कार्यवाही में पेश की गई या साक्ष्य में दी गई दस्तावेज के बारे में किया हुआ प्रतीत होता है, जांच की जानी चाहिए तब ऐसा न्यायालय ऐसी प्रारंभिक जांच के पश्चात् यदि कोई हो, जैसी वह आवश्यक समझे,-

(क) उस भाव का निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है ;

(ख) उसका लिखित परिवाद कर सकता है ;

(ग) उसे अधिकारिता रखने वाले प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को भेज सकता है ;

(घ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियुक्त के हाजिर होने के लिए पर्याप्त प्रतिभूति ले सकता है अथवा यदि अभिकथित अपराध अजमानतीय है और न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है तो, अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास अभिरक्षा में भेज सकता है ; और

(ङ) ऐसे मजिस्ट्रेट के समक्ष हाजिर होने और साक्ष्य देने के लिए किसी व्यक्ति को आबद्ध कर सकता है ।

(2) किसी अपराध के बारे में न्यायालय को उपधारा (1) द्वारा प्रदत्त शक्ति का प्रयोग, ऐसे मामले में जिसमें उस न्यायालय ने उपधारा (1) के अधीन उस अपराध के बारे में न तो परिवाद किया है और न ऐसे परिवाद के किए जाने के लिए आवेदन को नामंजूर किया है, उस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है जिसके ऐसा पूर्वकथित न्यायालय धारा 195 की उपधारा (4) के अर्थ में अधीनस्थ है ।

(3) इस धारा के अधीन किए गए परिवाद पर हस्ताक्षर,-

(क) जहां परिवाद करने वाला न्यायालय उच्च न्यायालय है वहां उस न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा किए जाएंगे, जिसे वह न्यायालय नियुक्त करे ;

[(ख) किसी अन्य मामले में, न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा या न्यायालय के ऐसे अधिकारी द्वारा, जिसे न्यायालय इस निमित्त लिखित में प्राधिकृत करे, किए जाएंगे।]

(4) इस धारा में "न्यायालय" का वही अर्थ है जो धारा 195 में है।"

11. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 में प्रयुक्त भाषा से यह स्पष्ट है कि न्यायालय धारा 195(1)(ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता में उल्लिखित अपराधों के संबंध में शिकायत करने के लिए बाध्य नहीं है, क्योंकि उक्त धारा "जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में या उसकी किसी कार्यवाही के संबंध में किए जाने का अभिकथित है" शब्दों द्वारा शर्तबद्ध है। इसके अतिरिक्त, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख) अपराधों की दो अलग-अलग श्रेणियों से संबंधित है, जिनका वर्णन क्रमशः खंड (ख)(i) और (ख)(ii) में किया गया है। खंड (ख)(i) भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय 11 में वर्णित अपराधों से संबंधित है, जिसका 'मिथ्या साक्ष्य और लोक न्याय के विरुद्ध अपराध' है। इस खंड में उल्लिखित अपराधों का संबंध किसी न्यायिक कार्यवाही या न्यायालय के समक्ष अथवा ऐसे लोक सेवक के समक्ष मिथ्या साक्ष्य देने या गढ़ने या मिथ्या घोषणा पत्र देने से है, जो विधि द्वारा ऐसी घोषणा प्राप्त करने के लिए बाध्य या अधिकृत है, तथा कुछ अन्य अपराधों से भी है जिनका न्यायालय में चल रही कार्यवाही से प्रत्यक्ष संबंध है (धारा 205 और 211 भारतीय दण्ड संहिता)। दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195 के इन दोनों प्रावधानों या खंडों की योजना यह है कि अपराध ऐसा होना चाहिए जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव किसी लोक सेवक के वैध कर्तव्यों के निर्वहन पर पड़ता हो या जिसका न्यायालय में चल रही कार्यवाही से प्रत्यक्ष संबंध हो। इसके अतिरिक्त, खंड (ख)(ii) में प्रयुक्त वाक्यांश "जब ऐसा अपराध किसी ऐसे अभिलेख के संबंध में किया गया हो जो न्यायालय में किसी कार्यवाही में प्रस्तुत किया गया हो या साक्ष्य के रूप में दिया गया हो" का सामान्य अर्थ यह होना चाहिए कि ऐसा अपराध उस समय किया गया हो जब वह अभिलेख वास्तव में न्यायालय में प्रस्तुत किया जा चुका हो या साक्ष्य के रूप में दिया जा चुका हो। अतः, खंड (ख)(ii) ऐसी स्थिति की परिकल्पना करती है जिसमें उसमें उल्लिखित अपराध किसी अभिलेख के संबंध में किसी न्यायालय की कार्यवाही में प्रस्तुत किए जाने या साक्ष्य के रूप में दिए जाने के उपरांत किए गए हों (देखें: **इकबाल सिंह मरवाह बनाम मीनाक्षी मरवाह**, (2005) 4 एस.सी.सी. 370)।

12. हालाँकि, यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1) (ख)(i) शब्दों द्वारा शर्तित है "जब ऐसा अपराध किसी न्यायालय में या उसकी कार्यवाही के संबंध में किए जाने का अभिकथित है," जो यह इंगित करता है कि ऐसी कार्यवाही केवल तभी अपनाई जाएगी जब भारतीय दण्ड संहिता की धाराएँ 193 से 196, 199, 200, 205 से 211 तथा 228 में वर्णित अपराध (क) न्यायालय की किसी कार्यवाही में, या (ख) न्यायालय की उक्त कार्यवाही के संबंध में किए गए हों। आवेदक के विद्वान अधिवक्ता इस न्यायालय को यह संतुष्ट करने में असफल रहे हैं कि कथित प्रश्नावली का पूछना कि इन धाराओं में से किसी के अधीन अपराध कैसे बनता है और यह भी कि उक्त प्रश्नावली का उपयोग किस प्रकार से माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट,

लखनऊ के समक्ष कार्यवाही में या माननीय सीजेएम लखनऊ के समक्ष उक्त कार्यवाही के संबंध में किया गया। यद्यपि, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का केन्द्रीय तर्क यह है कि ये प्रश्नावलियाँ विधिक महत्व रखती हैं और किसी भी न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त की जा सकती हैं, तथापि, माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ तथा माननीय सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा पारित आदेश से यह स्पष्ट है कि अभिलेख पर ऐसा कोई एक भी दस्तावेज़ नहीं है जिससे यह प्रदर्शित हो सके कि ये प्रश्नावलियाँ कब और किस प्रकार किसी न्यायालय या किसी प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत की गईं, जिससे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के दण्डात्मक प्रावधानों को प्रवर्तित किया जा सके।

13. निःसंदेह, शिकायत दायर किए जाने से पूर्व न्यायालय एक प्रारम्भिक जांच कर सकता है और इस प्रभाव का एक निष्कर्ष अभिलिखित कर सकता है कि न्याय के हित में यह समीचीन है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 195(1)(ख) में उल्लिखित किसी भी अपराध के संबंध में जांच की जाए। तथापि, उक्त अवस्था केवल तभी उत्पन्न होगी जब न्यायालय यह पाए कि शिकायत का स्वरूप न्यूनतम सीमा को पूर्ण करता है, जिसे सामान्यतः न्यायालय इस प्रकार परखेगा कि वह उस व्यक्ति को मिथ्या या कूटरचित दस्तावेज़ से हुई क्षति की परिमाण का नहीं, बल्कि ऐसे अपराध के आचरण का न्याय के प्रशासन पर पड़ने वाले प्रभाव या परिणाम का विचार करेगा। यह सम्भव है कि ऐसा मिथ्या दस्तावेज़ या कूटरचना किसी व्यक्ति को अत्यन्त गंभीर या पर्याप्त क्षति पहुँचा सकती हो, इस अर्थ में कि वह उसे किसी अत्यन्त मूल्यवान संपत्ति, स्थिति या इसी प्रकार की किसी वस्तु से वंचित कर दे, परन्तु ऐसा दस्तावेज़ न्यायालय में प्रस्तुत या साक्ष्य के रूप में दिया गया केवल एक साक्ष्य का अंश मात्र हो सकता है, जहाँ वृहद साक्ष्य प्रस्तुत किए गए हों और ऐसे साक्ष्य के उस अंश का न्याय के प्रशासन की व्यापक अवधारणा पर प्रभाव न्यूनतम हो। ऐसी परिस्थितियों में, न्यायालय यह नहीं मान सकता कि न्याय के हित में शिकायत करना समीचीन है। यह समझना आवश्यक है कि अपराध ऐसा होना चाहिए जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव न्यायालय के वैध कर्तव्यों के पालन या उसके कार्य संपादन पर पड़े या जिसका न्यायालय में चल रही कार्यवाही से प्रत्यक्ष संबंध हो। यह न्यायालय यह समझने में असमर्थ है कि उक्त प्रश्नावली की कथित असत्यता किस प्रकार न्यायालय के कार्य निष्पादन या न्याय के प्रशासन को प्रभावित कर सकती है या दूसरे पक्ष ने न्यायालय से लाभकारी आदेश प्राप्त करने हेतु स्वयं शपथभंग किया हो। इसके अतिरिक्त, ऐसा कोई मामला स्थापित नहीं किया गया है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 340 के प्रावधानों के अनुसार यह न्याय के हित में समीचीन कैसे है।

14. उपरोक्त सभी कारणों के लिए, यह न्यायालय माननीय अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, लखनऊ द्वारा आपराधिक अपील संख्या 66/2023 (भरतेंदु प्रताप सिंह बनाम राजीव कृष्ण एवं 2 अन्य) में दिनांक 03.10.2024 को पारित आदेश तथा माननीय मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, लखनऊ द्वारा आपराधिक विविध वाद संख्या 1041/2023 (भरतेंदु प्रताप सिंह बनाम राजीव कृष्ण एवं 2 अन्य) में दिनांक 16.03.2023 को पारित आदेश

में कोई अशक्तता नहीं है। दोनों विचारण न्यायालयों ने आवेदक द्वारा प्रस्तुत सभी दलीलों तथा उद्धृत निर्णयों पर विचार किया और वर्तमान मामले के तथ्यों का समुचित मूल्यांकन करते हुए धारा 340 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन को उचित रूप से अस्वीकार कर दिया।

15. उपर्युक्त के अनुक्रम में, यह आवेदन निराधार है और एतद्वारा इसे **खारिज** किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 238

मूल अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन पत्र संख्या 885/2013

संजय गौर, अधिवक्ता एवं अन्य

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

आवेदकों के अधिवक्ता: आर.एन.एस. चौहान, बाझुल कमर सिद्दीकी, सुशील कुमार सिंह, सुशील पांडे

प्रतिवादियों के अधिवक्ता: सरकारी अधिवक्ता, मुन्नी लाल यादव, प्रदीप कुमार त्रिपाठी

(ए) आपराधिक विधि - सिविल विवादों में आपराधिक कार्यवाही का निरस्तीकरण - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 482 - अंतर्निहित शक्ति - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धाराएँ 419, 420, 467, 468, 471 - जब विवाद मूलतः दीवानी प्रकृति का हो, तो आपराधिक कार्यवाही को जारी रहने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, विशेष रूप से तब, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी) दर्ज करने में एक अस्पष्टीकृत विलंब हो तथा आरोपों में कोई ठोस आधार न हो। (अनुच्छेद - 9, 12)

परिवादी के मध्य विवाद भूमि के स्वामित्व के हस्तांतरण के इर्द-गिर्द केंद्रित है - परिवादी का आरोप है कि अभियुक्तों ने जालसाजी कर हस्ताक्षर की कूटरचना करते हुए एक विक्रय विलेख निष्पादित किया - उसी संपत्ति के संबंध में एक दीवानी वाद पहले से लंबित था - प्रारम्भ में एक एकपक्षीय डिक्री पारित की गई, परंतु तत्पश्चात निरस्त कर दी गई - परिवादी ने दीवानी उपाय अपनाने के स्थान पर आपराधिक वाद दायर किया, जिसके परिणामस्वरूप आरोपपत्र दाखिल किया गया। (अनुच्छेद - 7, 8)

निर्णय:- पक्षकारों के मध्य विवाद पूर्णतः दीवानी स्वरूप का था। परिवादी द्वारा अभिकथित कोई भी अपराध नहीं बनता था। धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के लिए यह एक उपयुक्त मामला था, क्योंकि आपराधिक कार्यवाही का निरंतरन विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र था। (अनुच्छेद - 9, 12)

धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन स्वीकृत किया गया। (ई-7)

उद्धृत वादों की सूची :

1. परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य, आपराधिक अपील संख्या 2069 वर्ष 2012
2. हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम चौ. भजन लाल एवं अन्य, 1991(1) आर.सी.आर. (आपराधिक) 383 : 1992 सप्ली. (1) एस.सी.सी. 335

(माननीय न्यायमूर्ति मनोज बजाज द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत इस आवेदन के माध्यम से इस न्यायालय का अभिगमन किया है, धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रेषित आक्षेपित आरोपपत्र दिनांक 24.03.2012, तथा दिनांक 30.07.2012 को माननीय अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-1, सीतापुर द्वारा पारित संज्ञान आदेश, एवं आपराधिक वाद संख्या 2618 वर्ष 2011, शीर्षक राज्य बनाम अनीस खान एवं अन्य, जो वाद अपराध संख्या 156 वर्ष 2011, धाराएं 419, 420, 467, 468, 471 भारतीय दण्ड संहिता, थाना लहरपुर, जनपद सीतापुर से उत्पन्न हुआ है, की समस्त कार्यवाहियों को रद्द किया जा सके।

2. संक्षेप में, इस प्रार्थना पत्र के प्रस्तुत किए जाने की परिस्थितियाँ यह हैं कि प्रतिवादी संख्या 2 अधिवक्ता राकेश कुमार गुप्ता द्वारा दिए गए लिखित शिकायत के आधार पर उपर्युक्त वाद अपराध पंजीकृत किया गया, जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि गाटा संख्या 592, समाविष्ट 0.809 हेक्टेयर भूमि, जो सावित्री देवी पुत्री अवध बक्श सिंह के स्वामित्व में थी, परिवादी द्वारा जमुना प्रसाद पुत्र पुतू लाल के माध्यम से क्रय की गई थी। उक्त विक्रय विलेख में, जमुना प्रसाद ने अपनी पुत्रवधू जानवती तथा अपने मित्र अनीस खान के नाम अंकित करा दिए, अतः उक्त विक्रय विलेख के संशोधन हेतु घोषणा की डिक्री पाने के लिए सिविल वाद संख्या 132 सन् 2004, शीर्षक राकेश कुमार बनाम सावित्री देवी एवं अन्य दाखिल किया गया। परिवादी-विपक्षी संख्या 2 के पक्ष में वाद डिक्री किया गया और जमुना प्रसाद, जानवती तथा अनीस खान के नाम हटाए जाने का आदेश पारित किया गया। तत्पश्चात संजय गौर पुत्र पुतू लाल (आवेदक संख्या 1) ने अपने संबंधियों अर्थात् जानवती पत्नी जय प्रकाश तथा अनीस खान पुत्र हसन खान के साथ

मिलीभगत कर परिवारी की धारित भूमि के तीन-चौथाई अंश पर अधिकार करने की साजिश रची, जिन्होंने परिवारी के हस्ताक्षर की कूटरचना कर दस्तावेज तैयार कराए और अपने पक्ष में विक्रय विलेख निष्पादित करा लिया। आरोपों के अनुसार, विक्रय विलेख के साक्षियों ने भी अपराध के संपादन में सहायता प्रदान की। इन सामान्य आरोपों के आधार पर, भारतीय दंड संहिता की धारा 419, 420, 467, 468, 471 के अंतर्गत अभियोज्य अपराधों के कथित संपादन के संबंध में थाना लहरपुर, जनपद सीतापुर में उपर्युक्त प्रथम सूचना रिपोर्ट पंजीकृत की गई।

3.प्रकरण पंजीकृत होने के पश्चात् विवेचना संपन्न की गई और दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत आक्षेपित अंतिम रिपोर्ट के माध्यम से आवेदकों के विरुद्ध आरोपपत्र दाखिल किया गया। अतः, यह आवेदन प्रस्तुत किया गया।

4.आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि प्रथम सूचना रिपोर्ट में सम्मिलित आरोप स्वयं यह दर्शाते हैं कि परिवारी -प्रतिवारी संख्या 2 ने पहले ही सिविल वाद संख्या 132/2004 दायर किया था, और अभियोजन का मामला दस्तावेजी अंतर्वस्तु पर आधारित है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि विवाद, यदि कोई है, तो पूर्णतः दीवानी प्रकृति का है, परन्तु विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने के लिए परिवारी ने आवेदकों को आक्षेपित आपराधिक प्रकरण में मिथ्या रूप से फँसाया है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि परिवारी ने विक्रय विलेख दिनांक 11.03.1996 के माध्यम से वादग्रस्त संपत्ति में अधिकार, स्वामित्व एवं लाभ प्राप्त किया और इसके अनुसार विक्रेता सावित्री देवी ने उक्त संपत्ति में अपने समस्त अधिकार चार क्रेताओं अर्थात् राकेश कुमार गुप्ता, जमुना प्रसाद, जानवती एवं अनीस खान के पक्ष में हस्तांतरित कर दिए, तथा विक्रय विलेख एक पंजीकृत दस्तावेज है, जिसमें सभी पक्षों सहित साक्षियों के हस्ताक्षर हैं, अतः क्रेताओं की संख्या पर कोई संदेह नहीं किया जा सकता।

5.आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया कि परिवारी -प्रतिवारी संख्या 2 द्वारा अन्य तीन क्रेताओं के नामों के संशोधन एवं विलोपन हेतु घोषणा की डिक्री प्राप्त करने के लिए प्रारंभ में दायर वाद का निर्णय अभियोगी के पक्ष में एकपक्षीय डिक्री दिनांक 16.10.2006 के माध्यम से किया गया था, परन्तु उक्त डिक्री को बाद में दिनांक 26.10.2007 को इस कारण से निरस्त कर दिया गया कि आदेश IX नियम 13, दीवानी प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आक्रांत सह- हिस्सेदार द्वारा दायर आवेदन स्वीकार कर लिया गया था। विद्वान अधिवक्ता का कथन है कि उक्त वाद अब भी विचारण हेतु लंबित है, जिसमें आवेदक संख्या 1 को भी दिनांक 20.07.2007 के विक्रय विलेख के आधार पर पक्षकार के रूप में सम्मिलित किया गया है, जिसे उसके तीन विक्रेताओं द्वारा निष्पादित किया गया था, जो परिवारी -प्रतिवारी संख्या 2 के सह- हिस्सेदार बन गए। इस पृष्ठभूमि में यह स्पष्ट है कि दिनांक 04.06.2011 को प्राथमिकी का पंजीकरण केवल विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, जिससे दीवानी विवाद को आपराधिक प्रकरण में परिवर्तित किया गया है। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, आवेदक संख्या 2 से 4 दिनांक 20.07.2007 के विक्रय विलेख के साक्षी हैं, जबकि आवेदक संख्या 5 को केवल इस आधार पर पक्षकार बनाया गया है कि वह आवेदक संख्या

1, जो अधिवक्ता हैं, का लिपिक है। अतः वह यह प्रार्थना करते हैं कि आक्षेपित आरोपपत्र तथा आक्षेपित संज्ञान आदेश को निरस्त किया जाए।

6. प्रार्थना का विरोध परिवादी -प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता द्वारा किया गया है, जिन्होंने प्रति शपथपत्र (काउंटर एफिडेविट) का उल्लेख करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि केवल इस आधार पर कि पक्षकारों के मध्य एक दीवानी वाद लंबित है, यह नहीं कहा जा सकता कि आपराधिक कार्यवाही आगे नहीं बढ़ सकती, विशेष रूप से तब, जब प्रथम दृष्टया प्राथमिकी में कूटरचना तथा छल के अपराधों के घटित होने का संकेत मिलता है। विद्वान अधिवक्ता ने यह निवेदन किया कि दिनांक 16.10.2006 का एकपक्षीय डिक्री परिवादी -प्रतिवादी संख्या 2 को पूर्ण स्वामित्व प्रदान करती है, क्योंकि दिनांक 11.3.1996 के विक्रय विलेख में वर्णित अन्य तीन क्रेताओं के नाम हटाने का निर्देश दिया गया था, इसलिए विपक्षी संख्या 2 के तीन अभिकथित सह-क्रेताओं द्वारा निष्पादित दिनांक 20.07.2007 का विक्रय विलेख बाद के क्रेता-आवेदक संख्या 1 के पक्ष में वैध स्वत्व अंतरित नहीं करेगा। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आवेदक संख्या 1 के विक्रेताओं के पक्ष में कथित स्वत्व समाप्त हो चुका था, तथा उनके द्वारा दिनांक 20.7.2007 को निष्पादित किया गया विक्रय विलेख प्रत्यक्षतः छल का परिणाम है, जो परिवादी को सदोष हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया था। अतः यह ऐसा मामला नहीं है, जहाँ प्रकरण की परिस्थितियाँ एवं तथ्यों से आरोपित अपराध की संरचना स्थापित न होती हो। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी निवेदन किया कि विवेचना अधिकारी द्वारा की गई विवेचना से प्रथम दृष्टया अभियुक्तों की संलिप्तता स्पष्ट होती है, जिन्हें उचित रूप से विचारण हेतु प्रेषित किया गया है, अतः इस न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर हस्तक्षेप किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह प्रार्थना करते हैं कि आवेदन खारिज किया जाए।

7. विद्वान ए.जी.ए.ने भी समान आधारों पर प्रार्थना का विरोध करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि दिनांक 20.7.2007 को निष्पादित विक्रय विलेख आवेदक संख्या 1 के विक्रेताओं द्वारा विधिसम्मत रूप से निष्पादित नहीं किया जा सकता था, अतः आरोपित अपराध स्थापित होते हैं तथा अभिप्रेरक साक्ष्यों के आधार पर अभियोजन पत्र दायर किया गया है, जिसमें लाभार्थी संजय गौड़ एवं अन्य अभियुक्तों की संलिप्तता परिलक्षित होती है। विद्वान ए.जी.ए.ने आगे यह निवेदन किया कि अभियोजन पक्ष को अभियुक्तों के विरुद्ध दायित्व सिद्ध करने हेतु अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, तथा वैकल्पिक रूप से अभियुक्तगण दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत अंतिम प्रतिवेदन के विचारण के चरण में न्यायालय के समक्ष अपना दावा प्रस्तुत कर सकते हैं। वह प्रार्थना करते हैं कि आवेदन खारिज किया जाए।

8. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलों को सुनने तथा उनके अभिवेदन पर विचार करने के उपरान्त, इस न्यायालय का यह मत है कि पक्षकारों के मध्य विवाद गाटा संख्या 592, समाविष्ट 0.809 हेक्टेयर भूमि के स्वत्व के हस्तांतरण के इर्द-गिर्द केंद्रित है, जो मूल रूप से सावित्री देवी के स्वामित्व में थी और उसने दिनांक 11.03.1996 को एक विक्रय विलेख निष्पादित कर उक्त भूमि का व्ययन किया, जिसके माध्यम से उक्त संपत्ति

अभियुक्त राकेश कुमार गुप्ता एवं अन्य तीन व्यक्तियों अर्थात् जमुना प्रसाद, ज्ञानवती एवं अनीस खान के पक्ष में विक्रय की गई थी। उक्त अभिलेख को अभियुक्तगण द्वारा पुनर्स्थापन प्रार्थना पत्र के अनुलग्नक संख्या-2 के रूप में अभिलेखित किया गया है, तथा उसके अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि उसमें किसी प्रकार का कोई अधिलेखन नहीं है, और न ही ऐसा कुछ परिलक्षित होता है जिससे यह संकेत मिले कि अन्य तीन क्रेताओं के नाम परिवादी के साथ पश्चात में जोड़े गए हों। यह विक्रय विलेख एक पंजीकृत अभिलेख है, जो पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित एवं अंगूठा चिह्नित है, किन्तु अभिलेख पर ऐसा कुछ नहीं है जो यह प्रदर्शित करे कि परिवादी ने उक्त अभिलेख के निष्पादन के चरण पर कभी कोई आपत्ति उठाई हो, जिसने दिनांक 23.2.2004 को एक दीवानी वाद दायर करने का विकल्प चुना।

9. निःसंदेह, एकपक्षीय डिक्री दिनांक 16.10.2006 को परिवादी-विपक्षी संख्या 2 के पक्ष में पारित की गई थी और आवेदक संख्या 1 के विक्रेताओं द्वारा द्वितीय विक्रय विलेख दिनांक 20.7.2007, उक्त डिक्री के उपरांत निष्पादित किया गया था, परंतु उक्त एकपक्षीय डिक्री अधिक समय तक प्रभावी नहीं रही और दिनांक 26.10.2007 को निरस्त कर दी गई। इस मामले का विपरीत रूप से परीक्षण करते हुए, और यदि, तर्क के हित में यह मान भी लिया जाए कि आवेदक संख्या 1 के विक्रेताओं के पास आवेदक संख्या 1 को हस्तांतरित करने हेतु कोई स्वत्व नहीं था, तब भी यह नहीं कहा जा सकता कि आवेदक संख्या 1 ने कोई सदोष लाभ प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त, आवेदक संख्या 1 के वे विक्रेता, जिन्होंने दिनांक 20.7.2007 को विक्रय विलेख निष्पादित किया था, इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि परिवादी के साथ दिनांक 11.3.1996 के विक्रय विलेख के माध्यम से अर्जित की गई विषय भूमि का स्वत्व उनके पास विद्यमान नहीं था।

10. सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि उपर्युक्त पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करती है कि पक्षकारों के अधिकारों का निर्धारण दीवानी न्यायालय द्वारा किया जाएगा और पक्षकारों ने एक-दूसरे के विरुद्ध अपने-अपने दावे पहले ही प्रस्तुत कर दिए हैं, अतः इस पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखते हुए, इस न्यायालय को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि पक्षकारों के मध्य विवाद पूर्णतः दीवानी स्वरूप का है, तथा परिवादी द्वारा लगाए गए आरोपानुसार कोई अपराध सिद्ध नहीं होता। इसके अतिरिक्त, आपराधिक वाद दर्ज कराने में हुई दीर्घ विलंब के संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है, जो कि पश्चविचार प्रतीत होता है तथा विधि की प्रक्रिया के दुरुपयोग के समान है।

11. इस चरण पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय **परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखण्ड राज्य एवं अन्य**, आपराधिक अपील संख्या 2069 सन् 2012 पर आश्रय लिया जा सकता है, जिसमें दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के संदर्भ में समान प्रश्न का परीक्षण करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिकथन किए हैं :-

“7. संहिता की धारा 482 के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय माननीय उच्च न्यायालय को सावधान रहना चाहिए। यह शक्ति अत्यंत संयमपूर्वक तथा केवल इस उद्देश्य से प्रयोग की जानी चाहिए कि

किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोका जा सके या न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित की जा सके। किसी परिवाद में आपराधिक अपराध का प्रकटीकरण होता है या नहीं, यह उसमें वर्णित तथ्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है। आपराधिक अपराध के आवश्यक अवयव विद्यमान हैं या नहीं, इसका निर्णय माननीय उच्च न्यायालय को करना है। एक परिवाद जो सिविल संचयवहार को प्रकट करता हो, उसमें आपराधिक स्वरूप भी हो सकता है, किन्तु माननीय उच्च न्यायालय को यह देखना होगा कि क्या मूलतः दीवानी स्वरूप के विवाद को आपराधिक अपराध का आवरण प्रदान किया गया है। ऐसी स्थिति में, यदि कोई दीवानी उपचार उपलब्ध है और वस्तुतः अपनाया गया है, जैसा कि वर्तमान प्रकरण में हुआ है, तो न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने हेतु माननीय उच्च न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने में संकोच नहीं करना चाहिए।”

12. इसके अतिरिक्त, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **राज्य हरियाणा बनाम चौधरी भजन लाल एवं अन्य, 1991 (1) आर.सी.आर. (आपराधिक) 383 : 1992 सप्ली. (1) सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 335** में, दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग हेतु सिद्धांतों एवं दिशानिर्देशों का प्रतिपादन किया था। निर्णय का प्रासंगिक अंश निम्नलिखित रूप में पुनरुत्पादित किया जा रहा है :-

“ निम्नलिखित प्रकार के प्रकरण उदाहरण स्वरूप बताए जा सकते हैं, जिनमें किसी न्यायालय की कार्यवाही के दुरुपयोग को रोकने अथवा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने हेतु माननीय उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत प्रदत्त असाधारण शक्तियों या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, यद्यपि यह संभव नहीं है कि ऐसे प्रकरणों की विविध श्रेणियों की कोई सुस्पष्ट, निश्चित, सुव्यवस्थित एवं कठोर दिशा-निर्देश या अनम्य सूत्रबद्ध सूची प्रदान की जा सके, जिनमें इस प्रकार की शक्तियों का प्रयोग किया जाना चाहिए :-

1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में लगाए गए आरोप, यदि उन्हें उनके प्रत्यक्ष अर्थ में स्वीकार भी कर लिया जाए और पूर्ण रूप से मान भी लिया जाए, तो भी वे प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते या अभियुक्त के विरुद्ध कोई वाद प्रस्तुत नहीं करते।

2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए आरोप तथा उसके साथ संलग्न अन्य अंतर्वस्तु, यदि कोई हो, धारा 156(1) संहिता के अंतर्गत पुलिस अधिकारियों द्वारा अन्वेषण को उचित ठहराने हेतु कोई संज्ञेय अपराध प्रकट नहीं करती, सिवाय इसके कि मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 155(2) संहिता के अंतर्गत कोई आदेश पारित किया गया हो।

3) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए निर्विवादित आरोप तथा उनके समर्थन में संकलित साक्ष्य किसी भी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते और अभियुक्त के विरुद्ध कोई मामला प्रस्तुत नहीं करते।

4)जहाँ, प्रथम सूचना रिपोर्ट में किए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते, बल्कि केवल असंज्ञेय अपराध का ही गठन करते हैं, वहाँ धारा 155(2) संहिता के अंतर्गत परिकल्पित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी पुलिस अधिकारी द्वारा अन्वेषण की अनुमति नहीं है।

5)जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए आरोप इतने निरर्थक और स्वभावतः असंभव प्रतीत होते हैं कि जिनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति यह न्यायोचित निष्कर्ष नहीं निकाल सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने हेतु पर्याप्त आधार है।

6)जहाँ संहिता के किसी भी उपबंध में या संबंधित अधिनियम (जिसके अंतर्गत आपराधिक कार्यवाही प्रारंभ की गई है) के किसी उपबंध में स्पष्ट विधिक निषेध निहित है, जो कार्यवाही के प्रारंभ या उसके निरंतर संचालन पर प्रतिबंध लगाता है, और/या जहाँ संहिता अथवा संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत के निवारण हेतु प्रभावी उपाय का विशेष प्रावधान किया गया है।

7) जहाँ कोई आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावना से प्रेरित हो और/या जहाँ वह कार्यवाही किसी गुप्त उद्देश्य से, अभियुक्त से प्रतिशोध लेने या व्यक्तिगत वैर-भाव के कारण दुर्भावनापूर्वक प्रारंभ की गई हो।

हम यह सावधानीपूर्ण टिप्पणी भी करते हैं कि किसी आपराधिक कार्यवाही को निरस्त करने की शक्ति का प्रयोग अत्यंत संयमपूर्वक और सावधानी के साथ किया जाना चाहिए, और वह भी केवल दुर्लभतम परिस्थितियों में; यह कि न्यायालय इस बात के लिए अधिकृत नहीं होगा कि वह प्रथम सूचना रिपोर्ट या परिवाद में किए गए आरोपों की विश्वसनीयता या प्रामाणिकता के विषय में कोई जांच प्रारंभ करे। असाधारण अथवा अंतर्निहित शक्तियाँ न्यायालय को अपने मनोवांछित या मनमाने ढंग से कार्य करने का मनमाना अधिकार प्रदान नहीं करती।”

13.अतः, वाद के तथ्यों एवं परिस्थितियों में, यह न्यायालय यह पाता है कि वर्तमान वाद अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग हेतु, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत प्रदत्त हैं, उपयुक्त प्रकरण है, क्योंकि आपराधिक कार्यवाही की निरंतरता विधि की प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र है।

14.परिणामस्वरूप, वर्तमान प्रार्थना-पत्र सफल होता है तथा दिनांक 24.3.2012 की आरोपपत्र, दिनांक 30.7.2012 का संज्ञान / तलब आदेश, जो अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम, सीतापुर द्वारा आपराधिक वाद संख्या 2618 सन् 2011, शीर्षक राज्य बनाम अनीस खान एवं अन्य, जो अपराध संख्या 156 सन् 2011, अंतर्गत धाराएँ 419, 420, 467, 468, 471 भारतीय दण्ड संहिता, थाना लहरपुर, जनपद सीतापुर से उत्पन्न हुआ है, में पारित किया गया था, तथा उससे उत्पन्न समस्त कार्यवाही, निरस्त की जाती है।

15.आवेदन स्वीकार किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 243

मूल अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 1251/2019

दिलीप सिंह

....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

....विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता: राम प्रसाद यादव, शेष नारायण मिश्रा

विपक्षीगण के अधिवक्ता: जी.ऐ.

आपराधिक विधि - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 321 - लोक अभियोजक द्वारा आपराधिक वाद वापस लेने हेतु दायर आवेदन - शासनादेश के आधार पर बिना किसी कारण या अपने मत का उल्लेख किए बिना - न्यायालय को अभियोजन वापसी की अनुमति नहीं देनी चाहिए - आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है। प्रार्थना-पत्र निरस्त किया गया।

आवेदन खारिज किया गया। (ई-9)

उद्धृत वादों की सूची :

- 1.अब्दुल वहाब के. बनाम केरल राज्य एवं अन्य, (2018) 18 एस.सी.सी. 448
- 2.केरल राज्य बनाम के. अजीत एवं अन्य, (2021) 17 एस.सी.सी. 318
- 3.अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2021) 20 एस.सी.सी. 599

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1.आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राम प्रसाद यादव तथा प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज शुक्ला एवं राज्य के ओर से विद्वान ऐ.जी.ऐ श्री पंकज श्रीवास्तव को सुना तथा अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

2.माननीय अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, न्यायालय कक्ष संख्या-1, बस्ती द्वारा वाद संख्या 1119 सन् 2017 (राज्य बनाम दिलीप सिंह), भारतीय दण्ड संहिता की धारा 384, 352, 504, 506 के अंतर्गत, वाद अपराध संख्या 419 सन् 2007, थाना- पैकोलिया, जनपद- बस्ती से उत्पन्न, में पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 04.09.2017 को निरस्त करने हेतु दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन दाखिल किया गया है, साथ ही दिनांक 31.08.2018 को पारित आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 122 सन् 2017 (दिलीप सिंह बनाम राज्य उत्तर प्रदेश एवं अन्य) के आदेश को निरस्त करने तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अंतर्गत आवेदन को स्वीकृत किए जाने की प्रार्थना की गई है।

3.आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अंतर्गत राज्य के आवेदन को अस्वीकार करते समय, अधोस्थ न्यायालय ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया कि अंतर्वस्तु के आधार पर उसके विरुद्ध कोई मामला नहीं बनता है, और इस तथ्य को पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा भी अनदेखा कर दिया गया, तथा दोनों आक्षेपित आदेश पूर्णतः त्रुटिपूर्ण हैं।

4.प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के तहत आवेदन दाखिल करते समय, राज्य ने अभियोजन वापस लेने का कारण उल्लेख नहीं किया है। चूँकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के तहत अभियोजन केवल लोक हित में ही वापस लिया जा सकता है, और इस मामले में कोई लोकहित सम्मिलित नहीं है। इसलिए, अधोस्थ न्यायालय द्वारा लोक अभियोजक दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अंतर्गत आवेदन को उचित रूप से अस्वीकार किया गया और आवेदक का पुनरीक्षण भी उचित रूप से अस्वीकार कर दी गई थी। आगे यह प्रस्तुत किया गया है कि विचारण उन्नत चरण पर है और अभियुक्त-आवेदक का कथन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के तहत अभिलिखित किया जा चुका है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक इतिहासशीटर (हिस्ट्री शीटर) है, जिसके विरुद्ध 32 मामले लंबित हैं; इसलिए, राज्य ने दुर्भावनापूर्ण कारणों से, सरकारी आदेश दिनांक 06.05.2013 के माध्यम से अभियोजन वापस लेने के लिए एक आवेदन प्रस्तुत किया था। अतः, अधोस्थ न्यायालय ने वापसी के आवेदन को उचित रूप से अस्वीकार कर दिया है।

5.विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता(ऐ.जी.ऐ) ने भी प्रतिवादी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का समर्थन किया।

6. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध अंतर्वस्तु का अवलोकन करने पर प्रतीत होता है कि विपक्षी पक्ष संख्या 2 द्वारा आवेदक के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 384, 506 के अन्तर्गत प्राथमिकी (प्रथम सूचना रिपोर्ट) दर्ज कराई गई थी तथा तत्पश्चात विवेचना उपरान्त पुलिस ने आवेदक के विरुद्ध धारा 384, 352, 504, 506 भारतीय दण्ड संहिता के अन्तर्गत आरोपपत्र प्रस्तुत किया था और विचारण की लंबितावस्था के दौरान राज्य द्वारा आवेदक के विरुद्ध अभियोजन वापस लेने हेतु न्यायालय से अनुमति प्राप्त करने के लिए दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अन्तर्गत एक आवेदन प्रस्तुत किया गया था, यह कहते हुए कि राज्य ने दिनांक 06.05.2013 के शासनादेश के माध्यम से आवेदक के विरुद्ध अभियोजन वापस लेने का निर्णय लिया है। उक्त आवेदन में लोक अभियोजक द्वारा अभियोजन वापसी के लिए कोई कारण अथवा जनहित नहीं दर्शाया गया, जबकि लोक अभियोजक का यह कर्तव्य है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा *अब्दुल वहाब के बनाम केरल राज्य एवं अन्य* (2018) 18 एस.सी.सी. 448 के वाद में प्रतिपादित किया गया है। *अब्दुल वहाब (उपर्युक्त)* के अनुच्छेद संख्या 15 को निम्नवत उद्धृत किया जा रहा है:-

“15. उपर्युक्त प्राधिकरणों से यह पूर्णतः स्पष्ट है कि लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक, जैसा भी मामला हो, का वैधानिक योजना के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है और उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में कार्य करे। उसे अपने स्वयं के मन से विचार करना होता है और यह विचार करना होता है कि यदि ऐसी अनुमति प्रदान की जाती है तो अभियोजन वापसी का समाज पर क्या प्रभाव पड़ेगा।”

7. राज्य को दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अन्तर्गत अभियोजन वापस लेने का अधिकार दो अवस्थाओं में प्राप्त है, एक, आरोप विरचित होने से पूर्व और दूसरा आरोप विरचित होने के उपरांत।

8. दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 को निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया गया है:-

“किसी मामले का भारसाधक कोई लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक निर्णय सुनाए जाने के पूर्व किसी समय किसी व्यक्ति के अभियोजन को या तो साधारणतः या उन अपराधों में से किसी एक या अधिक के बारे में, जिनके लिए उस व्यक्ति का विचारण किया जा रहा है, न्यायालय की सम्मति से वापस ले सकता है और ऐसे वापस लिए जाने पर-

(क) यदि वह आरोप विरचित किए जाने के पहले किया जाता है तो अभियुक्त ऐसे अपराध या अपराधों के बारे में उन्मोचित कर दिया जाएगा ;

(ख) यदि वह आरोप विरचित किए जाने के पश्चात् या जब इस संहिता द्वारा कोई आरोप अपेक्षित नहीं है, तब किया जाता है तो वह ऐसे अपराध या अपराधों के बारे में दोषमुक्त कर दिया जाएगा :
परन्तु जहां-

- (i) ऐसा अपराध किसी ऐसी बात से संबंधित किसी विधि के विरुद्ध है जिस पर संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, अथवा
- (ii) ऐसे अपराध का अन्वेषण दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन अधिनियम, 1946 (1946 का 25) के अधीन दिल्ली विशेष पुलिस स्थापन द्वारा किया गया है, अथवा
- (iii) ऐसे अपराध में केन्द्रीय सरकार की किसी सम्पत्ति का दुर्विनियोग, नाश या नुकसान अन्तर्गस्त है, अथवा
- (iv) ऐसा अपराध केन्द्रीय सरकार की सेवा में किसी व्यक्ति द्वारा किया गया है, जब वह अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहा है या कार्य करना तात्पर्यित है, और मामले का भारसाधक अभियोजक केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त नहीं किया गया है, तो वह जब तक केन्द्रीय सरकार द्वारा उसे ऐसा करने की अनुज्ञा नहीं दी जाती है, अभियोजन को वापस लेने के लिए न्यायालय से उसकी सम्मति के लिए निवेदन नहीं करेगा तथा न्यायालय अपनी सम्मति देने के पूर्व, अभियोजक को यह निदेश देगा कि वह अभियोजन को वापस लेने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा दी गई अनुज्ञा उसके समक्ष पेश करे।”

9.माननीय उच्चतम न्यायालय ने केरल राज्य बनाम के. अजित एवं अन्य, 2021 (17) एस.सी.सी. 318 के वाद में धारा 321 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अभियोजन वापसी के लिए अनुच्छेद संख्या 25 में दिशा-निर्देश निर्धारित किए हैं और यह अभिलक्षित किया है कि अभियोजन वापसी की अनुमति सार्वजनिक न्याय के उद्देश्य से दी जा सकती है। अभियोजन द्वारा प्रस्तुत किया गया आवेदन सद्भावना में तथा लोकनीति एवं न्याय के हित में होना चाहिए, न कि विधिक प्रक्रिया को विफल या अवरुद्ध करने के उद्देश्य से, तथा उस निर्णय में यह भी अभिलक्षित किया गया है कि लोक अभियोजक को स्वयं यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियोजन वापसी केवल साक्ष्य की संभावना के आधार पर नहीं, बल्कि सार्वजनिक न्याय के उद्देश्य से हो।

10.अनुच्छेद संख्या 25 को निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया जा रहा है:-

“25. इस न्यायालय के निर्णयों से जो सिद्धांत धारा 321 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अभियोजन वापसी के संबंध में उद्भूत होते हैं, उन्हें अब निम्नलिखित रूप में प्रतिपादित किया जा सकता है:

25.1. धारा 321 अभियोजन से वापसी के निर्णय का अधिकार लोक अभियोजक को प्रदान करती है, परन्तु अभियोजन की वापसी के लिए न्यायालय की सहमति आवश्यक होती है।

25.2. लोक अभियोजक अभियोजन से वापसी केवल साक्ष्य की अपर्याप्तता के आधार पर ही नहीं, बल्कि सार्वजनिक न्याय के व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी कर सकता है।

25.3. लोक अभियोजक को अभियोजन से वापसी हेतु न्यायालय की सहमति प्राप्त करने से पूर्व स्वतंत्र मत बनाना आवश्यक है।

25.4. यद्यपि केवल यह तथ्य कि पहल सरकार की ओर से की गई है, अभियोजन वापसी के आवेदन को अमान्य नहीं करता, तथापि न्यायालय को यह सुनिश्चित करने हेतु प्रयत्न करना चाहिए कि अभियोजन वापसी के कारणों को जाना जा सके, जिससे यह सुनिश्चित हो कि लोक अभियोजक यह संतुष्ट था कि अभियोजन वापसी उचित और प्रासंगिक कारणों से आवश्यक है।

25.5. यह निर्णय करते समय कि अभियोजन वापसी के लिए सहमति प्रदान की जाए या नहीं, न्यायालय एक न्यायिक कार्य करता है, किन्तु इसे स्वभावतः पर्यवेक्षणात्मक माना गया है। सहमति प्रदान करने से पूर्व न्यायालय को यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि—

- (क) लोक अभियोजक के कार्य का अनुचित रूप से प्रयोग नहीं किया गया है अथवा यह न्याय की सामान्य प्रक्रिया में अवैध कारणों या उद्देश्यों से हस्तक्षेप करने का प्रयास नहीं है;
- (ख) आवेदन सद्भावना में, लोकनीति तथा न्याय के हित में किया गया है और यह विधि की प्रक्रिया को विफल या अवरुद्ध करने के उद्देश्य से नहीं है;
- (ग) आवेदन में ऐसी कोई अनुचितता या अवैधता नहीं है जिससे यदि सहमति दी जाए तो प्रत्यक्ष अन्याय उत्पन्न हो;
- (घ) सहमति प्रदान किया जाना न्याय के प्रशासन के हित में सहायक हो; तथा
- (ङ) अनुमति ऐसे गुप्त उद्देश्य से नहीं मांगी गई है जो विधि के समर्थन से असंबद्ध हो, जिसे बनाए रखना लोक अभियोजक का कर्तव्य है।

25.6. यह निर्धारित करते समय कि अभियोजन की वापसी न्याय के प्रशासन के हित में सहायक है या नहीं, न्यायालय अपराध के स्वरूप और गंभीरता तथा उसके सार्वजनिक जीवन पर प्रभाव की सूक्ष्म जांच करने के लिए उचित रूप से अधिकृत होगा, विशेषतः उन मामलों में जहाँ लोक निधियों और सार्वजनिक विश्वास के निर्वहन से संबंधित मामले निहित हो।

25.7. ऐसी स्थिति में जहाँ दोनों, विचारण न्यायाधीश और पुनरीक्षण न्यायालय, सहमति प्रदान करने या अस्वीकार करने में एकमत हों, इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए ऐसे समवर्ती निष्कर्षों को परिवर्तित करने से पूर्व सावधानी बरती जाएगी। न्यायालय इस अधिकार क्षेत्र के प्रयोग से सम्बद्ध स्थापित सिद्धांतों के अनुरूप तभी हस्तक्षेप कर सकता है जब विचारण

न्यायाधीश या माननीय उच्च न्यायालय द्वारा सहमति प्रदान करने या अस्वीकार करने के निर्णय में उचित सिद्धांतों का अनुप्रयोग करने में विफलता हुई हो।”

11.हाल ही के निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ एवं अन्य, 2021 (20) एस.सी.सी. 599** के वाद में पुनः केरल राज्य बनाम के. अजित (उपर्युक्त) के निर्णय पर आश्रय लिया है तथा वर्तमान एवं पूर्व सांसद/विधायक के विरुद्ध लंबित वादों की वापसी के संबंध में और दिशा-निर्देश निर्धारित किए हैं। अश्विनी कुमार उपाध्याय (उपर्युक्त) के अनुच्छेद संख्या 8 एवं 9 को निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया जा रहा है:-

8. इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के आलोक में, हम यह उपयुक्त समझते हैं कि पदस्थ अथवा पूर्व सांसद/विधायक के विरुद्ध कोई भी अभियोजन बिना उच्च न्यायालय की अनुमति के वापस नहीं लिया जाएगा, जो कि हमारे आदेश दिनांक 16-9-2020 [अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ, (2021) 20 एस.सी.सी. 613] के अनुपालन में पंजीकृत स्वतः संज्ञान रिट याचिकाओं में लंबित हैं। माननीय उच्च न्यायालयों से यह अनुरोध किया जाता है कि वे 16-9-2020 [अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ, (2021) 20 एस.सी.सी. 613] से अब तक लंबित अथवा निस्तारित अभियोजन वापसी के मामलों की इस न्यायालय द्वारा निर्धारित दिशा-निर्देशों के आलोक में समीक्षा करें।

9. इस न्यायालय ने आदेश दिनांक 16-9-2020 [अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ, (2021) 20 एस.सी.सी. 613] द्वारा विद्वान न्यायमित्र (एमिकस क्यूरी) की प्रस्तुतियों को निम्नलिखित रूप में अभिलिखित किया था : (अश्विनी कुमार उपाध्याय वाद, [अश्विनी कुमार उपाध्याय बनाम भारत संघ, (2021) 20 एस.सी.सी. 613], एस.सी.सी. अनुच्छेद 10)।”

10.(ग) उच्च न्यायालय ऐसे सभी मामलों के लिए एक न्यायिक अधिकारी नामित करेंगे, जो इन मामलों का विचारण प्राथमिकता के आधार पर करेंगे। उक्त न्यायिक अधिकारी को कार्यभार, सांसदों/विधायकों के विरुद्ध लंबित आपराधिक मामलों की संख्या एवं प्रकृति के अनुसार अन्य कार्य भी आवंटित किए जा सकते हैं। इस प्रकार नामित न्यायिक अधिकारी का कार्यकाल न्यूनतम दो वर्ष की अवधि तक निरंतर रहेगा।”

12.उपरोक्त निर्णय के आलोक में वादों की वापसी के संबंध में विधिक स्थिति स्पष्ट है कि केवल सरकार द्वारा सरकारी आदेश जारी कर देने मात्र से वाद वापस नहीं लिया जा सकता तथा लोक अभियोजक को भी अपने आवेदन, जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 321 के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया हो, में यह उल्लेख करते हुए अपने विवेक का प्रयोग करना आवश्यक है कि वह इस बात से संतुष्ट है कि आवेदन सद्भावना में तथा लोकनीति एवं न्याय के हित में किया गया है। अतः यदि लोक अभियोजक द्वारा सरकारी आदेश के आधार पर

बिना किसी कारण या अपने मत का उल्लेख किए आपराधिक वाद वापस लेने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया जाए, तो न्यायालय को अभियोजन वापसी की अनुमति नहीं देनी चाहिए, क्योंकि ऐसा करना विधि की दृष्टि में अनुमन्य नहीं है।

13.वर्तमान प्रकरण पर लौटते हुए, अभिलेखों के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्तमान आवेदक, जो कि आक्षेपित कार्यवाही में अभियुक्त है, एक इतिहासशीटर (हिस्ट्री शीटर) है जिसके विरुद्ध 32 वाद लंबित हैं तथा लोक अभियोजक द्वारा धारा 321 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दायर आवेदन में अभियोजन वापस लेने का कोई कारण निर्दिष्ट नहीं किया गया। यदि इस प्रकार के व्यक्ति के विरुद्ध बिना कारण प्रस्तुत आवेदन के आधार पर अभियोजन वापस लेने की अनुमति दी जाती है, तो यह निस्संदेह लोकहित के विरुद्ध तथा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन के भी विरुद्ध होगा।

14.अतः, इस न्यायालय को आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता प्रतीत नहीं होती। अतः, वर्तमान आवेदन **खारिज** किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 247

मूल अधिकारिता

अपराधिक पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 22.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल,
धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या 14626/2019

कृष्णावती देवी एवं अन्य

.....आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादीगण

आवेदकों की ओर से अधिवक्ता : ओम प्रकाश शुक्ला

प्रतिवादीगण की ओर से अधिवक्ता : जी.ए.

(क) अपराधिक विधि - घरेलू हिंसा - अभियोग का निरस्तीकरण - घरेलू संबंध - साझा गृह - घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम,, 2005 - धारा 2(थ), 2(च), 2(ध), 3 एवं 12

पति के वे संबंधी जो परिवादी के साथ साझा गृह में निवास नहीं करते हैं, वे घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) के अंतर्गत "प्रतिवादी" की परिभाषा में नहीं आते- प्रतिवादी ऐसा व्यक्ति होगा जो पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में है अथवा रहा हो- निम्न न्यायालयों को गैर-निवासी परिवार के सदस्यों को सूचना जारी करने से पहले परिवादों की सूक्ष्म जाँच करनी चाहिए ताकि कानूनी प्रावधानों का दुरुपयोग न हो।(अनुच्छेद 12, 13, 14)

आवेदक संख्या 7 (पति) एवं विपक्षी संख्या 2 (पत्नी) के मध्य एक वैवाहिक विवाद था - पत्नी द्वारा घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत एक वाद प्रस्तुत किया गया, जिसमें पति, उसकी माता (आवेदक संख्या 1) एवं अन्य संबंधियों (आवेदक संख्या 2 से 6 तक) को आरोपित किया गया - संबंधियों (आवेदक संख्या 2 से 6 तक) का कथन था कि वे अलग रहते थे और उन्हें झूठा फँसाया गया है। (अनुच्छेद - 2 से 4)

निर्णीत:- न्यायालय ने यह पाया कि आवेदक संख्या 2 से 6 तक साझा घर में नहीं थे, अतः वे धारा 2(थ) के अंतर्गत "प्रतिवादी" की परिभाषा में नहीं आते। शिकायत में उनके विरुद्ध कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाए गए थे। आवेदक संख्या 2 से 6 के विरुद्ध कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण माना गया अतः उसे निरस्त किया गया। सास (आवेदक संख्या 1) साझा घर में निवास करती थी और उस पर परिवादी को दहेज के लिए प्रताड़ित करने का आरोप था। इसलिए, उसके विरुद्ध कार्यवाहियों को रद्द नहीं किया जा सकता है। विचारण न्यायालय को आवेदक संख्या 1 और 7 के विरुद्ध 60 दिनों के भीतर कार्यवाही आगे बढ़ाने का निर्देश दिया गया। (अनुच्छेद - 16 से 20)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत आवेदन आंशिक रूप से स्वीकार किया गया। (ई-7)

उद्धृत वादों की सूची:

हीरल पी. हरसोरा एवं अन्य बनाम कुसुम नरोत्तमदास हरसोरा एवं अन्य, (2016) 10 एस.सी.सी. 165

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल, द्वारा प्रदत्त)

1.आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री ओम प्रकाश शुक्ल तथा राज्य के विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता श्री पंकज श्रीवास्तव को सुना, किन्तु सूचना की तामील होने के उपरांत भी विपक्षी संख्या 2 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ।

2.दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत वर्तमान आवेदन इस प्रार्थना के साथ प्रस्तुत किया गया है कि वाद संख्या 59 सन् 2016 (स्मिता श्रीवास्तव बनाम राजीव कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य) में संपूर्ण कार्यवाही/अभियोग, जो कि घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (जिसे आगे "घरेलू हिंसा

अधिनियम" कहा गया है) की धारा 12 के अंतर्गत अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोनभद्र के न्यायालय में लंबित है, को निरस्त किया जाए।

3.वर्तमान विवाद को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि आवेदक संख्या 7, विपक्षी पक्ष संख्या 2 का पति है और उनके मध्य वैवाहिक कलह इस कार्यवाही सहित उनके मध्य अन्य कार्यवाहियों में भी परिणत है।

4.विद्वान अधिवक्ता द्वारा आवेदकों की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि आवेदक संख्या 1, विपक्षी पक्ष संख्या 2 की सास हैं, जबकि आवेदक संख्या 2, 3, 4 एवं 5, आवेदक संख्या 7 की विवाहित बहनें हैं तथा आवेदक संख्या 6, आवेदक संख्या 3 के पति हैं। आवेदक संख्या 2, 3, 4, 5 एवं 6 अपने-अपने परिवार सहित भिन्न-भिन्न स्थानों पर पृथक निवास कर रहे हैं, जो उनके पतों से स्पष्ट है। अतः वे विपक्षी पक्ष संख्या 2 के साथ किसी घरेलू संबंध में नहीं हैं। इसलिए, आवेदक संख्या 2 से 6 तक 'घरेलू हिंसा अधिनियम' की धारा 2(थ) के अनुसार प्रतिवादी की परिभाषा में नहीं आते हैं और उन्हें आक्षेपित कार्यवाही में असत्य रूप से संलिप्त किया गया है। अतः आक्षेपित कार्यवाही न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग मात्र है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 16.04.2019 के आदेश द्वारा आवेदक संख्या 7 के संदर्भ में वर्तमान आवेदन अस्वीकृत किया जा चुका है, किन्तु विपक्षी पक्ष संख्या 2 की सास, अर्थात् आवेदक संख्या 1 के विरुद्ध लंबित कार्यवाही भी त्रुटिपूर्ण है। अतः यह प्रस्तुत किया गया कि आक्षेपित कार्यवाही पूर्णतः दुर्भावनापूर्ण है और और रद्द किए जाने योग्य है।

5.इसके विपरीत, विद्वान अपर सरकारी अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया है कि आवेदक संख्या 1, जो विपक्षी पक्ष संख्या 2 की सास हैं, प्रासंगिक अवधि में विपक्षी पक्ष संख्या 2 के साथ घरेलू नातेदारी में रही हैं। अतः आवेदक संख्या 1, घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) के अनुसार प्रतिवादी की परिभाषा में आती हैं।

6.पक्षकारों की दलीलें सुनने तथा अभिलेख का अवलोकन करने के उपरान्त यह प्रतीत होता है कि आवेदक संख्या 7 और विपक्षी पक्ष संख्या 2 का विवाह दिनांक 02.06.2011 को सम्पन्न हुआ था। तत्पश्चात उनके मध्य वैवाहिक कलह उत्पन्न होने पर उन्होंने परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध वाद दायर किए, जिनमें वर्तमान आक्षेपित कार्यवाही भी सम्मिलित है।

7.अभिलेख के अवलोकन से यह प्रतीत होता है कि आवेदक संख्या 2 से 6 तक, आवेदक संख्या 7 के संबंधी हैं और वे पृथक निवास कर रहे हैं। अतः घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) के अनुसार, उन्हें प्रतिवादी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे विपक्षी पक्ष संख्या 2 के साथ साझा गृह में निवास नहीं कर रहे थे।

8.घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

(थ) "प्रत्यर्थी" से कोई वयस्क पुरुष अभिप्रेत है जो व्यथित व्यक्ति की घरेलू नातेदारी में है या रहा है और जिसके विरुद्ध व्यथित व्यक्ति ने, इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष चाहा है;

9.घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही तब प्रारम्भ की जा सकती है जब धारा 3 में उल्लिखित घरेलू हिंसा, उस प्रतिवादी द्वारा की जाती है जो पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू नातेदारी में रह रहा हो। “घरेलू नातेदारी” शब्द की परिभाषा घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(च) में दी गई है, जिसका पुनरुत्पादन निम्नलिखित रूप में किया जा रहा है:-

(च) “घरेलू नातेदारी” से ऐसे दो व्यक्तियों के बीच नातेदारी अभिप्रेत है, जो साझी गृहस्थी में एक साथ रहते हैं या किसी समय एक साथ रह चुके हैं, जब वे, समरक्तता, विवाह द्वारा या विवाह, दत्तक ग्रहण की प्रकृति की किसी नातेदारी द्वारा संबंधित हैं या एक अविभक्त कुटुंब के रूप में एक साथ रहने वाले कुटुम्ब के सदस्य हैं;

10.घरेलू नातेदारी की उपर्युक्त परिभाषा यह दर्शाती है कि यह तब उपधारित होगा जब दो व्यक्ति एक दूसरे से रक्त संबंध, विवाह, या विवाह की प्रकृति के संबंध, दत्तक ग्रहण के माध्यम से संबंधित हों, या एक साझा घर में एक साथ रहने वाले संयुक्त परिवार के सदस्य हों। साझा घर की परिभाषा घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(ध) के तहत प्रदान की गई है, जिसे निम्नानुसार पुनरुत्पादित किया जा रहा है:-

(ध) “साझी गृहस्थी” से ऐसी गृहस्थी अभिप्रेत है, जहां व्यथित व्यक्ति रहता है या किसी घरेलू नातेदारी में या तो अकेले या प्रत्यर्थी के साथ किसी प्रकम पर रह चुका है, और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है जो चाहे उस व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी के संयुक्त: स्वामित्व या किरायेदारी में है, या उनमें से किसी के स्वामित्व या किरायेदारी में है, जिसके संबंध में या तो व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों संयुक्त रूप से या अकेले, कोई अधिकार, हक, हित या साम्या रखते हैं और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है जो ऐसे अविभक्त कुटुंब का अंग हो सकती है जिसका प्रत्यर्थी, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति का उस गृहस्थी में कोई अधिकार, हक या हित है, एक सदस्य है;

11.साझा गृहस्थी की उपरोक्त परिभाषा से स्पष्ट है कि यह ऐसा घर है जहाँ पीड़ित व्यक्ति निवास करता है या किसी भी चरण में प्रतिवादी के साथ घरेलू संबंध में निवास कर चुका है।

12.घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) में प्रतिवादी की परिभाषा से यह भी स्पष्ट है कि प्रतिवादी वह व्यक्ति होगा जो पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में है या रहा हो।

13.उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 3 के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को उत्तरदायी ठहराने के लिए निम्नलिखित शर्तें पूर्ण होनी आवश्यक हैं:

“प्रतिवादी का पीड़ित व्यक्ति के साथ उस प्रकार का सम्बन्ध होना चाहिए जैसा कि धारा 2(च) में उल्लेखित है और वह पीड़ित व्यक्ति के साथ साझा गृह में रहता हो या रह चुका हो तथा फिर साझा गृहस्थी उसी प्रकार करता हो जैसा कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 3 में उल्लिखित है।”

14. इस न्यायालय के समक्ष कई ऐसे मामले आए हैं जहाँ केवल पति या घरेलू सम्बन्ध में रहने वाले व्यक्ति प्रताड़ित करने हेतु, पीड़ित पक्ष अन्य पक्ष के ऐसे संबंधियों को आरोपित कर देता था जो साझा गृहस्थी में न तो निवास कर रहे हैं और न ही कभी निवास कर चुके हैं तथा वे अलग-अलग स्थानों पर निवास कर रहे हैं। अतः, घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत सूचना जारी करते समय निचली अदालतों को यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत दायर आवेदन तथा अन्य उपलब्ध अभिलेखों का अवलोकन किया गया हो जिसमें यदि उपलब्ध हो तो संरक्षण अधिकारी की रिपोर्ट को भी सम्मिलित किया गया हो। आगे यह प्रतिपादित किया जाता है कि संबंधित अदालतों को घरेलू हिंसा अधिनियम के अन्तर्गत प्रतिवादी के रूप में शामिल किए गए व्यक्तियों को सूचना जारी करने से पूर्व इस निर्णय के अनुच्छेद संख्या 13 में उल्लिखित शर्तों की पूर्ति के बारे में संतुष्ट होना चाहिए।

15. यह विषय माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष **हीरल पी. हरसोरा एवं अन्य बनाम कुसुम नरोत्तमदास हरसोरा एवं अन्य, (2016) 10 एस.सी.सी. 165** के वाद में भी विचारार्थ आया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 2(थ) में वर्णित “प्रतिवादी” की परिभाषा पर विचार करते हुए यह घोषित किया कि धारा 2(थ) में उल्लिखित “वयस्क पुरुष” शब्द तथा धारा 2(थ) की परन्तुक को विलोपित माना जाएगा तथा यह अभिलक्षित किया कि घरेलू हिंसा के परिप्रेक्ष्य में “प्रतिवादी” वह कोई भी व्यक्ति हो सकता है जो पीड़ित व्यक्ति के साथ घरेलू संबंध में हो। **हीरल पी. हरसोरा (उपर्युक्त)** के अनुच्छेद संख्या 20, 21 एवं 50 निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया जा रहे हैं:

20. यह ध्यान देने योग्य है कि धारा 2(च) में निहित “घरेलू संबंध” की परिभाषा अत्यंत व्यापक है। यह उन व्यक्तियों के मध्य संबंध है जो साझा गृहस्थी में साथ रहते हैं या रह चुके हैं तथा जो चार प्रकार के किसी एक संबंध से परस्पर संबंधित हैं - रक्त, विवाह अथवा विवाह सदृश संबंध, दत्तक ग्रहण, या संयुक्त परिवार के सदस्य। इन परिभाषाओं का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि घरेलू संबंधों में दोनों लिंगों के व्यक्ति सम्मिलित हैं और इसमें रक्त संबंध या वैवाहिक संबंध वाले व्यक्ति आते हैं। परिणामस्वरूप, ऐसे घरेलू संबंधों में स्त्री एवं पुरुष दोनों प्रकार के ससुराल पक्ष के सदस्य सम्मिलित होते हैं, इसके अतिरिक्त वे पुरुष एवं स्त्री सदस्य भी जो रक्त संबंध द्वारा परिवार से संबंधित हैं। इसी प्रकार, साझा गृहस्थी में वह आवास भी सम्मिलित है जो उस संयुक्त परिवार का है, जिसका प्रतिवादी एक सदस्य है। जैसा कि सुश्री अरोड़ा द्वारा सही रूप से इंगित किया गया है, वर्ष 2005 के अधिनियम के 26-10-2006 को प्रवर्तन में आने से पूर्व ही हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 में संशोधन कर धारा 6 में 9-9-2005 से प्रभावी संशोधन किया गया, जिसके द्वारा स्त्रियों को संयुक्त हिंदू परिवार की सहदायिकी बनाकर ऐसे संयुक्त परिवार की संपत्ति में जन्मसिद्ध अधिकार प्रदान किया गया। इस स्थिति में, जब संयुक्त हिंदू परिवार का सदस्य अब एक स्त्री सहदायिकी को भी सम्मिलित

करेगा, तब धारा 2(थ) में निहित सीमित परिभाषा का पुनः परीक्षण आवश्यक हो जाता है, क्योंकि अधिनियम की धारा 2(ध) में “साझा गृहस्थी” की परिभाषा उस आवास को भी सम्मिलित करती है जो उस संयुक्त परिवार का हो, जिसका प्रतिवादी एक सदस्य है। अतः वर्ष 2006 के उपरांत, यदि हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम में किए गए संशोधन को ध्यान में रखा जाए, तो पीड़ित व्यक्ति उदाहरणार्थ अपनी बहन को भी प्रतिवादी बना सकती है। किन्तु ऐसा प्रावधान वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 2(थ) के अंतर्गत नहीं है, क्योंकि धारा 2(थ) का मुख्य भाग अब भी “वयस्क पुरुष व्यक्ति” शब्द का प्रयोग करता है, जबकि धारा 2(ध) ऐसी स्त्री सहदायिकी को प्रतिवादी के रूप में सम्मिलित करती है, जो संयुक्त परिवार की सदस्य है। यह एक स्पष्ट असंगति है, जिसका निराकरण इस निर्णय में किया जाना आवश्यक है।

21. जब अधिनियम की धारा 3 में “घरेलू हिंसा” की परिभाषा दी गई है, तो यह स्पष्ट है कि ऐसी हिंसा लिंग-तटस्थ है। यह भी स्पष्ट है कि शारीरिक उत्पीड़न, वाचिक उत्पीड़न, मानसिक उत्पीड़न तथा आर्थिक उत्पीड़न सभी स्त्रियों द्वारा अन्य स्त्रियों के विरुद्ध की जा सकती हैं। यहाँ तक कि यौन उत्पीड़न भी, किसी विशेष तथ्यात्मक परिस्थिति में, एक स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री के प्रति किया जा सकता है। अतः धारा 3, अधिनियम के सामान्य उद्देश्य के अनुरूप, स्त्री के विरुद्ध किसी भी प्रकार की घरेलू हिंसा को निषिद्ध करने का प्रयत्न करती है और यह लिंग-तटस्थ है। जब अधिनियम में प्रदत्त उपायों पर विचार किया जाता है, तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है। धारा 17(2) यह स्पष्ट करती है कि पीड़ित व्यक्ति को “प्रतिवादी” द्वारा साझा गृहस्थी या उसके किसी भाग से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिवाय बेदखल या अपवर्जित नहीं किया जा सकता है। यदि “प्रतिवादी” शब्द का अर्थ केवल “वयस्क पुरुष व्यक्ति” के रूप में किया जाए, तो यह स्पष्ट है कि वे स्त्रियाँ, जो पीड़ित व्यक्ति को बेदखल या अपवर्जित करती हैं, उसकी परिधि से बाहर रहेंगी, और यदि ऐसा होता है, तो अधिनियम के उद्देश्य को बहुत सरलता से विफल किया जा सकता है, क्योंकि वयस्क पुरुष व्यक्ति स्वयं अग्रभाग में न होकर स्त्रियों को आगे कर सकता है, जो पीड़ित व्यक्ति को साझा गृहस्थी से बेदखल या अपवर्जित कर दें। यह पुनः एक महत्वपूर्ण संकेतक है कि अधिनियम के उद्देश्य की पूर्ति “वयस्क पुरुष व्यक्ति” को “प्रतिवादी” पढ़ने से नहीं हो सकती।

50. अतः, हम बंबई उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त करते हैं और यह घोषित करते हैं कि वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 2(थ) में उल्लिखित “वयस्क पुरुष” शब्द विलोपित माने जाएंगे, क्योंकि ये शब्द भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुरूप नहीं हैं। फलस्वरूप, धारा 2(थ) का परन्तुक, जो निष्प्रभावी हो गया है, वह भी विलोपित माना जाएगा। हम केवल इतना जोड़ना चाहेंगे कि आक्षेपित निर्णय में अंततः अनुच्छेद 27 में यह कहा गया है कि वर्ष 2010 की दो शिकायतें, जिनमें तीन स्त्री प्रतिवादियों को अंतिम रूप से मुक्त किया गया था, उन्हें पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया, जबकि रिट याचिका संख्या 300 वर्ष 2013 में इस संबंध में कोई प्रार्थना नहीं की गई थी। जब इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट कराया गया, तब सुश्री मीनाक्षी अरोड़ा ने निष्पक्ष रूप से यह निवेदन किया कि वह उन शिकायतों का अनुसरण नहीं करेंगी तथा वह केवल इस न्यायालय से वर्ष 2005 के अधिनियम की धारा 2(थ) की संवैधानिक वैधता पर घोषणा प्राप्त करने से संतुष्ट होंगी। अतः, हम विद्वान अधिवक्ता के उक्त कथन को अभिलेखित करते हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि

अक्टूबर 2010 की उक्त शिकायतों में अब कुछ भी शेष नहीं है। इस अतिरिक्त टिप्पणी के साथ, यह अपील निस्तारित की जाती है।

16.वर्तमान वाद पर पुनः विचार करते हुए, घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत दायर आक्षेपित आवेदन के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि आवेदक संख्या 2 से 6 के विरुद्ध यह कोई विशिष्ट आरोप नहीं लगाया गया है कि वे विपक्षी संख्या 2 के साथ साझा गृहस्थी में निवास कर रहे हैं। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उनका विपक्षी संख्या 2 के साथ कोई घरेलू संबंध है।

17.वाद संख्या 1594 सन् 2015 के अंतर्गत धारा 200 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत विपक्षी पक्ष संख्या 2 का बयान, जो आवेदकों द्वारा दिनांक 01.11.2022 को प्रस्तुत अनुपूरक शपथपत्र के पृष्ठ 16 में संलग्न है, के अवलोकन से स्पष्ट है कि घरेलू हिंसा का आरोप केवल आवेदक संख्या 1 और 7 के विरुद्ध लगाया गया था और यह भी उल्लेख नहीं किया गया कि आवेदक संख्या 2 से 6 उसके साथ साझा गृह में निवास कर रहे हैं। अतः आवेदक संख्या 2 से 6 के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण है और इसे निरस्त किया जाना उचित है।

18.किन्तु, यह तथ्य ध्यान में रखते हुए कि आवेदक संख्या 1, जो विपक्षी संख्या 2 की सास हैं, साझा गृहस्थी में निवासरत हैं, अतः वह "प्रतिवादी" की परिभाषा के अंतर्गत आती हैं, तथा यह भी आरोप है कि विपक्षी संख्या 2 को दहेज की मांग को लेकर प्रताड़ित किया गया तथा आवेदक संख्या 1 द्वारा उसे साझा गृहस्थी से निष्कासित करने की धमकी दी गई, इस कारण से आवेदक संख्या 1 के पक्ष में कार्यवाही निरस्तीकरण का कोई औचित्य नहीं बनता। चूँकि वर्तमान आवेदन पूर्व में ही आवेदक संख्या 7 के पक्ष से अस्वीकृत किया जा चुका है, अतः वर्तमान आवेदन आवेदक संख्या 1 के पक्ष से भी अस्वीकृत किया जाता है।

19.उपरोक्त टिप्पणियों के दृष्टिगत, वाद संख्या 59 वर्ष 2016 (स्मृति श्रीवास्तव बनाम राजीव कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य) में घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत आवेदक संख्या 2 से 6 के विरुद्ध आक्षेपित कार्यवाही/शिकायत को एतद्वारा प्रकार निरस्त किया जाता है।

20.अधोस्थ न्यायालय आवेदक संख्या 1 एवं 7 के विरुद्ध कार्यवाही करने तथा वाद संख्या 59 वर्ष 2016 (स्मृता श्रीवास्तव बनाम राजीव कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य) का निर्णय यथाशीघ्र, इस आदेश की प्रति प्राप्ति की तिथि से 60 दिनों के भीतर, लेने के लिए स्वतंत्र है।

21.उपरोक्त निर्देशों के साथ, वर्तमान आवेदन आंशिक रूप से स्वीकृत किया जाता है।

22.रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देशित किया जाता है कि वह इस आदेश की प्रति संबंधित न्यायालय को प्रेषित करें।

(2025) 1 ILRA 252

मूल अधिकारिता आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

धारा 482 के अधीन आवेदन संख्या 21759/2024

राम अवतार अग्रवाल

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी पक्षकार

आवेदक के लिए अधिवक्ता: राहुल चौधरी

विपक्षी पक्षकारों के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि -- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 200, 205, 302, 256 और 482 - भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023 - धारा -- 228, 279 और 339 - परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 - धारा 138 और 139: - आवेदन -- अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन लंबित संपूर्ण कार्यवाही को चुनौती देते हुए - चेक अनादरण का अपराध -- विपक्षी संख्या 2 के पिता ने आवेदक के विरुद्ध परिवाद दायर किया -- यह आरोप लगाते हुए कि आवेदक की कंपनी द्वारा निर्मित फ्लैट की बुकिंग राशि के भुगतान को वापस करने के लिए, परिवादी के पक्ष में 3 लाख रुपये का एक चेक जारी किया गया, जो कंपनी का निदेशक था -- बैंक में प्रस्तुत करने पर वही 'खाता बंद' के समर्थन के साथ वापस आया -- विचारण न्यायालय ने आवेदक को समन जारी किया - विचारण की लंबितता के दौरान परिवादी की मृत्यु हो गई - विपक्षी संख्या 2, मृत परिवादी का पुत्र, एक आवेदन प्रस्तुत किया, कानूनी उत्तराधिकारी होने के नाते कार्यवाही जारी रखने की अनुमति के लिए - - विचारण न्यायालय ने आवेदन स्वीकार कर लिया -- यही इस आवेदन में चुनौती के अधीन है, इस आधार पर कि परिवाद की ओर से परिवाद को आगे बढ़ाने की अनुमति देना पूर्णतः अवैध है क्योंकि पुत्र को व्यक्तिगत जानकारी नहीं है, इसलिए उसे आक्षेपित कार्यवाही को आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती -- न्यायालय ने पाया कि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के संयुक्त पाठ के साथ-साथ चर्चित कानूनी स्थिति से यह स्पष्ट है कि परिवादी की मृत्यु पर, उसके कानूनी उत्तराधिकारी को अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाही को व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता के माध्यम से या मुख्तारनामा धारक के माध्यम से जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है -- अभिनिर्धारित, मृत परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी के प्रतिस्थापन या पक्षकार बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है -- अतः, संबंधित न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 के अधीन परिवाद को खारिज करना आवश्यक नहीं है -- न्यायालय को

सामान्यतः परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी को विचारण को आगे बढ़ाने की अनुमति देनी चाहिए -- तदनुसार, आवेदन खारिज किया जाता है -- तथापि, निर्देश जारी किए गए, विचारण का प्रतिवाद करने और आवेदक के पास उपलब्ध सभी आधारों को निचली अदालत के समक्ष उठाने के लिए, जहां कार्यवाही 2018 से लंबित है। (पैरा -- 16, 17, 21) याचिका खारिज। (E-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

- ए.सी. नारायणन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य - (2014) 11 SCC 790),
2. शशिबाला अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य -- [2024 SCC OnLine All 1216],
3. किशोर शंकर सिगनापुरकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य -- [2024 SCC OnLine All 5279],
4. अश्विन नानुभाई व्यास बनाम महाराष्ट्र राज्य -- [1966 SCC OnLine SC 253],
5. जिमी जहांगीर मदन बनाम बॉली कारियाप्पा हिंडले (मृत) कानूनी उत्तराधिकारियों द्वारा - [2004 (12) SCC 509],
6. कुशल कुमार तालुकदार बनाम चंद्र प्रसाद गोयनका - [2004 SCC OnLine Gauhati 130],
7. मैसर्स श्री साई मौर्य एस्टेट्स एंड प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व सरकारी अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद एवं अन्य -- [2018 SCC OnLine HYD 43],
8. डी. विनोद शिवप्पा बनाम नंदा बेलिअप्पा (2006) 6 SCC 456 में रिपोर्ट किया गया,
9. लाफार्ज एग्रीगेट्स एंड कंक्रीट इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सुकर्ष आजाद एवं अन्य - 2014 (13) SCC 779,
10. विजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - धारा 482 के अधीन आवेदन संख्या 17464/2024 में -- दिनांक 23.05.2024 को निर्णीत।

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा उद्धोषित)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल चौधरी और राज्य के लिए विद्वान शासकीय अधिवक्ता श्री उदय भान को सुना गया।
2. वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 का आवेदन अतिरिक्त न्यायालय संख्या 3, आगरा के विद्वान पीठासीन अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 11.09.2018 के आदेश को रद्द करने के साथ-साथ परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (जिसे इसके बाद 'अधिनियम, 1881' कहा जाएगा) की धारा 138 के अधीन परिवाद प्रकरण संख्या 874/2018 (विनोद कुमार अग्रवाल बनाम राम अवतार अग्रवाल एवं अन्य) की संपूर्ण कार्यवाही, थाना

छाता, जिला-आगरा, अतिरिक्त न्यायालय संख्या 3, आगरा में लंबित, को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।

3. वर्तमान मामले को जन्म देने वाले तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या 2 के पिता, विनोद कुमार अग्रवाल ने आवेदक के विरुद्ध अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन एक परिवाद दायर किया था जिसमें यह आरोप लगाया गया था कि आवेदक द्वारा निर्मित फ्लैट की बुकिंग राशि के भुगतान को वापस करने के लिए, विनोद कुमार अग्रवाल के पक्ष में दिनांक 10.05.2018 का 3 लाख रुपये का एक चेक, जो विपक्षी संख्या 2 के पिता थे, आवेदक द्वारा कंपनी-अनुपम ओमेरियन इन्फ्रास्ट्रक्चर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की ओर से दिया गया था और दिनांक 10.05.2018 को बैंक के समक्ष उसे प्रस्तुत करने पर, बैंक द्वारा दिनांक 11.05.2018 को 'खाता बंद' के समर्थन के साथ वही वापस कर दिया गया। तत्पश्चात, आवेदक को दिनांक 17.05.2018 को पंजीकृत डाक के माध्यम से मांग नोटिस भेजा गया था लेकिन दिनांक 26.05.2018 को उक्त मांग नोटिस प्राप्त करने के बावजूद, आवेदक द्वारा चेक की राशि का भुगतान नहीं किया गया। इसलिए, आक्षेपित परिवाद दायर किया गया। श्री विनोद कुमार अग्रवाल ने शपथपत्र के माध्यम से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के अधीन अपना कथन भी दायर किया। तत्पश्चात, निचली अदालत ने दिनांक 11.09.2018 के आदेश द्वारा ओमेरियन इन्फ्रास्ट्रक्चर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड के निदेशक के रूप में आवेदक को समन जारी किया। तत्पश्चात, विचारण की लंबितता के दौरान, परिवादी, श्री विनोद कुमार अग्रवाल की दिनांक 06.11.2021 को मृत्यु हो गई। परिवादी, श्री विनोद कुमार अग्रवाल की मृत्यु के पश्चात, विपक्षी संख्या 2 ने उनके पुत्र होने के नाते दिनांक 22.08.2023 का एक आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें परिवादी, विनोद कुमार अग्रवाल का कानूनी उत्तराधिकारी होने के नाते आक्षेपित कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति मांगी गई, जिसे निचली अदालत द्वारा दिनांक 08.11.2023 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया और यही वर्तमान मामले में चुनौती के अधीन है।

4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री राहुल चौधरी ने आक्षेपित कार्यवाही को चुनौती देने के लिए निम्नलिखित तर्क उठाए:

(i) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का प्रथम तर्क यह है कि, स्वीकार्य रूप से, विवादित चेक कंपनी-अनुपम ओमेरियन इन्फ्रास्ट्रक्चर इंडिया प्राइवेट लिमिटेड की ओर से जारी किया गया था और न्यायालय ने कंपनी को स्वयं समन जारी करने के बजाय कंपनी के निदेशक को समन जारी किया।

(ii) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का द्वितीय तर्क यह है कि समन आदेश जारी करने के पश्चात, परिवादी की दिनांक 06.11.2021 को मृत्यु हो गई, तत्पश्चात, उनके पुत्र ने दिनांक 22.08.2023 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जिसे निचली अदालत द्वारा दिनांक 08.11.2023 को त्रुटिवश स्वीकार कर लिया गया, उन्हें परिवादी की ओर से परिवाद को आगे बढ़ाने की अनुमति दी गई, जो पूर्णतः अवैध है क्योंकि परिवादी के पुत्र

को व्यक्तिगत जानकारी नहीं है, इसलिए उसे आक्षेपित कार्यवाही को आगे बढ़ाने के साथ-साथ उसमें साक्ष्य देने की अनुमति नहीं दी जा सकती। अपने तर्क के समर्थन में, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने **ए.सी. नारायणन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य के मामले में आपराधिक अपील संख्या 73/2007** में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है जो **(2014) 11 एससीसी 790** में प्रतिवेदित है।

(iii) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तृतीय तर्क यह है कि विवादित चेक दिनांक 08.02.2016 को खो गया था जिसके संबंध में उसी दिनांक को पुलिस शिकायत भी दी गई थी। तत्पश्चात, समाचार पत्र में दिनांक 10.02.2016 को और फिर दिनांक 14.11.2016 को समाचार भी प्रकाशित हुआ। इसलिए, विवादित चेक किसी दायित्व के निर्वहन में जारी नहीं किया गया था और वही एक खोया हुआ चेक था।

(iv) आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का चतुर्थ तर्क यह है कि नोटिस आवेदक को गलत पते पर भेजा गया था।

5. *इसके विपरीत*, विद्वान शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि यह एक स्थापित कानून है कि एक बार चेक खाता बंद होने के आधार पर वापस आ जाता है तो निचली अदालत समन जारी करने के अधिकार क्षेत्र के भीतर थी और अभियुक्त बंद खाते को न्यायोचित ठहराने के लिए विचारण के दौरान सभी प्रतिरक्षाएं उठा सकता है।

6. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता के साथ-साथ विद्वान शासकीय अधिवक्ता को सुनने के पश्चात, परिवाद से यह स्पष्ट है कि परिवादी ने आवेदक की परियोजना में 18 लाख रुपये निवेश किए थे जो बिल्डर है, लेकिन परियोजना पूर्ण नहीं हो सकी, तब आवेदक द्वारा परिवादी को दिनांक 10.05.2018 का 3 लाख रुपये का उत्तर दिनांकित चेक जारी किया गया। यह विवाद में नहीं है कि विवादित चेक पर वर्तमान आवेदक द्वारा विवादित कंपनी की ओर से हस्ताक्षर किए गए थे। जब चेक बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तो वही दिनांक 11.05.2018 को 'खाता बंद' के समर्थन के साथ वापस आ गया और दिनांक 26.05.2018 को नोटिस की तामील के बावजूद, आवेदक द्वारा चेक की राशि का भुगतान नहीं किया गया इसलिए आक्षेपित परिवाद दायर किया गया।

7. जहां तक आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क है कि समन आदेश स्वयं ही दोषपूर्ण है क्योंकि कंपनी को समन नहीं किया गया था, बल्कि आवेदक को व्यक्तिगत क्षमता में समन किया गया था, गलत है क्योंकि समन आदेश में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि आवेदक को विवादित कंपनी के निदेशक के रूप में समन किया जा रहा है, और वह विवादित चेक पर हस्ताक्षरकर्ता भी था। इस न्यायालय ने, **शशिबाला अग्रवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में 2024 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 1216** में प्रतिवेदित, जिस पर इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने भी **किशोर शंकर सिगनापुरकर बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के मामले में 2024 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 5279** में प्रतिवेदित, में भरोसा किया, ने अभिनिर्धारित किया है

कि यदि समन कंपनी के हस्ताक्षरकर्ता निदेशक को एक विशेष कंपनी के निदेशक के रूप में उसकी स्थिति का स्पष्ट उल्लेख करते हुए भेजा जाता है, तो यह कंपनी पर पर्याप्त तामील होगी। इसलिए, यह तर्क कि कंपनी पर नोटिस की तामील नहीं की गई थी, भ्रामक है और अतः खारिज किए जाने योग्य है।

8. जहां तक दूसरे तर्क का संबंध है कि परिवादी की मृत्यु के पश्चात पुत्र को परिवाद को आगे बढ़ाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, अभिलेख के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रारंभ में परिवादी, विनोद कुमार अग्रवाल द्वारा परिवाद दायर किया गया था। उन्होंने स्वयं न्यायालय के समक्ष एक साक्षी के रूप में साक्ष्य दिया और तत्पश्चात, आवेदक को समन किया गया, और विचारण की लंबितता के दौरान, परिवादी की मृत्यु हो गई। इसलिए, उनके पुत्र ने, जो यहां विपक्षी संख्या 2 है, परिवाद को आगे बढ़ाने के लिए एक आवेदन दायर किया।

9. यद्यपि, यह सही है कि दंड प्रक्रिया संहिता या अधिनियम, 1881 के अधीन परिवादी की मृत्यु के पश्चात उसके कानूनी उत्तराधिकारियों को पक्षकार बनाने या प्रतिस्थापित करने का कोई प्रावधान नहीं है, प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या, परिवादी की मृत्यु के पश्चात, उसके कानूनी उत्तराधिकारी परिवाद को आगे बढ़ा सकते हैं। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 279 परिवादी की मृत्यु के प्रश्न से संबंधित है। संदर्भ के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 के साथ-साथ भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 279 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"256 दंड प्रक्रिया संहिता - परिवादी की अनुपस्थिति या मृत्यु।-(1) यदि परिवाद पर समन जारी किया गया है, और अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत दिन पर, या उसके पश्चात किसी भी दिन जिस पर सुनवाई स्थगित की जा सकती है, परिवादी उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट, यहां पूर्व में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, अभियुक्त को दोषमुक्त करेगा, जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित करना उचित न समझे:

परंतु जहां परिवादी का प्रतिनिधित्व किसी अधिवक्ता द्वारा या अभियोजन का संचालन करने वाले अधिकारी द्वारा किया जाता है या जहां मजिस्ट्रेट की राय में परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है, मजिस्ट्रेट उसकी उपस्थिति से छूट दे सकता है और मामले को आगे बढ़ा सकता है।

(2) उप-धारा (1) के प्रावधान, जहां तक हो सके, उन मामलों पर भी लागू होंगे जहां परिवादी की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है।

"धारा 279 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता - परिवादी की अनुपस्थिति या मृत्यु। (1) यदि परिवाद पर समन जारी किया गया है, और अभियुक्त की उपस्थिति के लिए नियत दिन पर, या उसके पश्चात किसी भी दिन जिस पर सुनवाई स्थगित की जा सकती है, परिवादी उपस्थित नहीं होता है, तो मजिस्ट्रेट, परिवादी को उपस्थित

होने के लिए तीस दिन का समय देने के पश्चात, यहां पूर्व में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, अभियुक्त को दोषमुक्त करेगा, जब तक कि किसी कारण से वह मामले की सुनवाई को किसी अन्य दिन के लिए स्थगित करना उचित न समझे: परंतु जहां परिवादी का प्रतिनिधित्व किसी अधिवक्ता द्वारा या अभियोजन का संचालन करने वाले अधिकारी द्वारा किया जाता है या जहां मजिस्ट्रेट की राय में परिवादी की व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक नहीं है, मजिस्ट्रेट उसकी उपस्थिति से छूट दे सकता है और मामले को आगे बढ़ा सकता है। (2) उप-धारा (1) के प्रावधान, जहां तक हो सके, उन मामलों पर भी लागू होंगे जहां परिवादी की अनुपस्थिति उसकी मृत्यु के कारण है।"

10. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 (संगत धारा 279 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) से यह स्पष्ट है कि यदि परिवादी अपनी मृत्यु या किसी अन्य कारण से न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकता है, तो मजिस्ट्रेट वही को खारिज कर सकता है और अभियुक्त को दोषमुक्त कर सकता है। लेकिन यह मजिस्ट्रेट के विवेक में भी निहित है कि वह परिवाद को खारिज करने के बजाय उचित कारण से सुनवाई के लिए मामले को किसी अन्य तारीख के लिए स्थगित कर दे। यद्यपि, इस धारा में परिवादी को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की अनुमति देने के लिए कोई समय निर्धारित नहीं है लेकिन भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 279 अभियोजन के अभाव में वही को खारिज करने से पहले, परिवादी को उपस्थित होने के लिए 30 दिन का समय देने का प्रावधान करती है। परिवादी विभिन्न कारणों से संबंधित न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकता है जिसमें उसकी मृत्यु भी शामिल है, इसलिए इस उद्देश्य के लिए, भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता की धारा 279 ने 30 दिन का समय प्रदान किया है ताकि अधिवक्ता या परिवादी का कोई कानूनी उत्तराधिकारी न्यायालय को अनुपस्थिति के कारण से अवगत करा सके। यद्यपि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 205 (संगत धारा 228 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) भी उचित मामलों में कार्यवाही के किसी भी चरण पर मजिस्ट्रेट को अभियुक्त की व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट देने का विवेक देती है लेकिन यह प्रावधान उन मामलों में लागू नहीं होगा जहां परिवादी की मृत्यु हो गई है। लेकिन जैसे ही परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी को परिवादी की मृत्यु के पश्चात कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाती है तब मजिस्ट्रेट कानूनी उत्तराधिकारियों को व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट प्रदान कर सकता है ताकि कानूनी उत्तराधिकारी द्वारा अधिवक्ता या मुख्तारनामा धारक के माध्यम से कार्यवाही जारी रखी जा सके। लेकिन यदि परिवादी की मृत्यु के पश्चात, उसके कानूनी उत्तराधिकारी को कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जाती है तो, मृत परिवादी के मुख्तारनामा या उसके अधिवक्ता को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 205 (संगत धारा 228 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के अधीन कार्यवाही जारी रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, क्योंकि परिवादी की मृत्यु के पश्चात, उसके अधिवक्ता या मुख्तारनामा धारक के साथ उसकी व्यवस्था भी समाप्त हो जाती है।

11. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 (संगत धारा 339 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) भी मजिस्ट्रेट को परिवाद के स्थान पर किसी भी व्यक्ति को अभियोजन जारी रखने की अनुमति देने का विवेक देती है। इसलिए, परिवादी की मृत्यु के पश्चात, मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 (संगत धारा 279 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के अधीन वही को खारिज करने के बजाय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 (संगत धारा 339 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के अधीन उसके कानूनी उत्तराधिकारी को परिवाद को आगे बढ़ाने की अनुमति दे सकता है। यदि मृत परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 (संगत धारा 339 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के अधीन कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाती है तो मजिस्ट्रेट को यह भी विवेक प्रदान किया जाता है कि वह मृत परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी को व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता द्वारा या उसके मुख्तारनामा धारक के माध्यम से परिवाद की कार्यवाही को आगे बढ़ाने की अनुमति दे सकता है। संदर्भ के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 (संगत धारा 339 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"धारा 302 दंड प्रक्रिया संहिता - अभियोजन संचालित करने की अनुमति। (1) कोई भी मजिस्ट्रेट जो किसी मामले में जांच या विचारण कर रहा है, अभियोजन को निरीक्षक के पद से नीचे के किसी पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संचालित करने की अनुमति दे सकता है; लेकिन महाधिवक्ता या शासकीय अधिवक्ता या लोक अभियोजक या सहायक लोक अभियोजक के अलावा कोई भी व्यक्ति, ऐसी अनुमति के बिना ऐसा करने का हकदार नहीं होगा; परंतु किसी भी पुलिस अधिकारी को अभियोजन संचालित करने की अनुमति नहीं दी जाएगी यदि उसने उस अपराध की जांच में भाग लिया है जिसके संबंध में अभियुक्त पर अभियोजन चलाया जा रहा है।"

(2) अभियोजन का संचालन करने वाला कोई भी व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से या किसी अधिवक्ता द्वारा ऐसा कर सकता है।"

12. उच्चतम न्यायालय ने 1966 एससीसी ऑनलाइन एससी 253 में प्रतिवेदित, अश्विन नानुभाई व्यास बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता केवल किसी अभियुक्त या अपीलकर्ता की मृत्यु के प्रभाव के बारे में प्रावधान करती है लेकिन परिवादी की मृत्यु के लिए स्पष्ट रूप से प्रावधान नहीं करती है और आगे अभिनिर्धारित किया कि मजिस्ट्रेट उस समय लागू दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 495 (दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 302 के संगत) के अधीन किसी भी व्यक्ति को अभियोजन जारी रखने की अनुमति दे सकता है। अश्विन नानुभाई व्यास (उपर्युक्त) के पैराग्राफ संख्या 3 और 9 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"3. दंड प्रक्रिया संहिता केवल किसी अभियुक्त या अपीलकर्ता की मृत्यु के लिए प्रावधान करती है लेकिन परिवादी की मृत्यु के लिए स्पष्ट रूप से प्रावधान नहीं करती है। संहिता जांच और विचारण के उपशमन के लिए भी प्रावधान नहीं करती है यद्यपि यह धाराओं 411-ए(2) और 417 के अधीन अपीलों में अभियुक्त की मृत्यु पर और जुर्माने की सजा की अपील को छोड़कर सभी अपीलों में अपीलकर्ता की मृत्यु पर अपीलों के उपशमन के लिए प्रावधान करती है। इसलिए, परिवाद पर शुरू किए गए मामले में परिवादी की मृत्यु पर क्या होता है, यह संहिता के प्रावधानों से सामान्यतः अनुमानित किया जाना है।

9. अपने तर्क के समर्थन में श्री केसवानी ने उच्च न्यायालयों के कुछ मामलों का उल्लेख किया है जिनमें परिवादी की मृत्यु पर अभियोजन को उपशमित माना गया। उनमें से मुख्य हैं ईश्वरदास बनाम सम्राट [7 क्रिजे 290], रामानंद बनाम क्राउन [40 आईसी 1008] और लभू बनाम क्राउन [52 आईसी 797]। इनमें से पहला मामला मानहानि का अभियोजन था और दूसरा भारतीय दंड संहिता की धारा 323 के अधीन एक अपराध का विचारण था। तीसरे ने दूसरे का अनुसरण किया। यहां उल्लिखित पहले दो मामलों को लाहौर उच्च न्यायालय द्वारा हजारा सिंह बनाम क्राउन [आईएलआर 2 एलएच 27] में खारिज कर दिया गया था जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि ऐसे मामले आवश्यक रूप से उपशमित नहीं होते हैं। श्री केसवानी ने कई अन्य मामलों पर भी भरोसा किया जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 417(3) और 476-बी के अधीन उत्पन्न हुए थे जिनमें अपीलों को उपशमित माना गया था। हमें इन मामलों का उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे विभिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुए थे और निश्चित रूप से संहिता के अध्याय XVIII के अधीन प्रतिबद्धता की दृष्टि से जांच नहीं थे। श्री हाथी, जो महाराष्ट्र राज्य की ओर से उपस्थित हुए, ने हमारा ध्यान कई बाद के मामलों की ओर आकर्षित किया जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है (श्री केसवानी द्वारा भरोसा किए गए मामलों से असहमति व्यक्त करते हुए) कि एक आपराधिक परिवाद परिवादी की मृत्यु पर आवश्यक रूप से उपशमित नहीं होता है, उन मामलों में भी जहां व्यथित व्यक्ति द्वारा परिवाद करना संहिता द्वारा पूर्व शर्त बनाया गया है। हमें उन मामलों का विश्लेषण करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि, हमारी राय में, जब तक संहिता स्वयं यह नहीं कहती कि क्या होना है, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 495 के अधीन किसी अन्य अभियोजन एजेंसी को प्रतिस्थापित करने की न्यायालय की शक्ति (ऐसे प्रतिबंधों के अधीन जो पाए जा सकते हैं) हमेशा उपलब्ध है। तथापि, निम्नलिखित का संदर्भ दिया जा सकता है: सम्राट बनाम नूरमोहम्मद [8 क्रिएलजे क्रिएलजे 190], सम्राट बनाम मौज दीन [एआईआर 1924 एलएच 72: 4 एलएच 7], यू टिन माउंग बनाम किंग [एआईआर 1941 रंग 202], मोहम्मद आजम बनाम सम्राट [एआईआर 1926 बॉम 178] और इन रे रामासामियर [ए आई आर 16 क्रिजे 713]। किसी भी पक्ष के लिए उद्धृत किए गए मामलों में से कोई भी सीधे तौर पर प्रतिबद्धता कार्यवाही में धारा 198 के प्रथम भाग के अधीन उत्पन्न नहीं हुआ। बाद का दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अभियोजन को जारी रखने की अनुमति देने के पक्ष में है सिवाय उन मामलों के जहां संहिता स्वयं कहती है कि परिवादी की अनुपस्थिति पर अभियुक्त को या तो दोषमुक्त किया जाना चाहिए या मुक्त

किया जाना चाहिए। वर्तमान उन मामलों में से एक नहीं है और हमारे निर्णय में प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट ने माता को अभियोजन जारी रखने की अनुमति देकर जांच के साथ आगे बढ़ने में सही किया, और धारा 495 के अधीन माता स्वयं या किसी अधिवक्ता के माध्यम से अभियोजन जारी रख सकती है। हम कोई कारण नहीं देखते कि हम प्रक्रियात्मक कानून में एक रिक्तता खोजने के लिए चतुर क्यों होना चाहिए जिसके द्वारा ऐसे महत्वपूर्ण मामलों का विचारण परिवादी की मृत्यु से व्यर्थ हो जाएगा जबकि धारा 198 को केवल बाधा को हटाने की आवश्यकता है। अपील विफल होती है और इसे खारिज कर दिया जाएगा।"

13. उच्चतम न्यायालय ने 2004 (12) एससीसी 509 में प्रतिवेदित जिमी जहांगीर मदन बनाम बॉली कारियाप्पा हिंडले (मृत) विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा के मामले में फिर से परिवादी की मृत्यु के पश्चात अभियोजन जारी रखने के मुद्दे पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन, मजिस्ट्रेट मृत परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारियों सहित किसी भी व्यक्ति को स्वयं या अधिवक्ता या मुख्तारनामा के माध्यम से अभियोजन जारी रखने की अनुमति दे सकता है। जिमी जहांगीर मदन (उपर्युक्त) के पैराग्राफ संख्या 9 और 10 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"9. संहिता की धाराओं 205 और 302 की भाषा समान है। संहिता की धारा 302 के अधीन, एक पक्षकार स्वयं अभियोजन जारी रखने के लिए आवेदन कर सकता है या वही किसी अधिवक्ता द्वारा किया जा सकता है। जैसा कि संहिता की धारा 2(q) के अधीन प्रदान किया गया है, अभियोजन जारी रखने की प्रार्थना या तो एक विधिक रूप से योग्य व्यक्ति द्वारा की जा सकती है, जो अधिवक्ता अधिनियम के अधीन न्यायालय में अभ्यास करने के लिए प्राधिकृत है; या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा जिसमें स्पष्ट रूप से एक मुख्तारनामा धारक शामिल होगा जिस स्थिति में ऐसी अनुमति उस न्यायालय द्वारा दी जा सकती है जहां अभियोजन लंबित है केवल तभी जब यह उस व्यक्ति द्वारा मांगी गई हो जो अभियोजन जारी रखने का हकदार है न कि मुख्तारनामा धारक द्वारा। संहिता की धारा 205 के अधीन, एक अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होना आवश्यक है लेकिन उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति से छूट दी जा सकती है और उसे किसी अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जा सकती है। इसी प्रकार, संहिता की धारा 302 के अधीन, जो व्यक्ति अभियोजन जारी रखने का हकदार है, उसे स्वयं आवेदन करना आवश्यक है लेकिन उपर्युक्त दोनों प्रावधानों के अधीन, व्यक्तिगत रूप से कदम उठाने के बजाय, एक पक्षकार किसी अधिवक्ता के माध्यम से प्रतिनिधित्व किया जा सकता है। मुख्तारनामा धारक संहिता के दोनों प्रावधानों के अधीन संबंधित पक्षकार का प्रतिनिधित्व कर सकता है, यदि ऐसे प्रतिनिधित्व के लिए अनुमति संबंधित व्यक्ति द्वारा न्यायालय से मांगी जाती है और उसके द्वारा दी जाती है। लेकिन जहां संबंधित व्यक्ति द्वारा ऐसी कोई अनुमति नहीं मांगी जाती है, अर्थात्, संहिता की धारा 205 के मामले में --- एक अभियुक्त और संहिता की धारा 302 के मामले में --- एक पक्षकार जिसे अभियोजन

जारी रखने का अधिकार है, मुख्तारनामा धारक को कार्यवाही में संबंधित व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है।

10. वर्तमान मामले में, न तो परिवादी के उत्तराधिकारियों ने अभियोजन जारी रखने के लिए संहिता की धारा 302 के अधीन याचिका दायर की और न ही उनके द्वारा सक्षम न्यायालय से कोई अनुमति मांगी गई कि उन्हें अपने मुख्तारनामा धारकों के माध्यम से अभियोजन जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए, बल्कि प्रार्थना मुख्तारनामा धारकों द्वारा की गई थी, जो कानून के अधीन अनुमय नहीं है। यह स्थिति होने के कारण, हमारी राय है कि विचारण न्यायालय संहिता की धारा 302 के अधीन याचिकाओं को स्वीकार करने में न्यायोचित नहीं था और उच्च न्यायालय ने उक्त आदेश की पुष्टि करने में त्रुटि की है जो रद्द किए जाने योग्य है और संहिता की धारा 302 के अधीन याचिकाएं खारिज किए जाने योग्य हैं, उत्तराधिकारियों को या तो संबंधित न्यायालय के समक्ष स्वयं अभियोजन जारी रखने के लिए आवेदन करने या न्यायालय से उन्हें मुख्तारनामा धारकों को उनकी ओर से अभियोजन जारी रखने के लिए प्राधिकृत करने की अनुमति देने के लिए आवेदन करने की अनुमति प्रदान करें।"

14. उपर्युक्त मुद्दा गौहाटी उच्च न्यायालय के समक्ष भी कुशल कुमार तालुकदार बनाम चंद्र प्रसाद गोयनका के मामले में जो 2004 एससीसी ऑनलाइन गौहाटी 130 में प्रतिवेदित है, में विचार के लिए आया जिसमें गौहाटी उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन मृत परिवादी के प्रतिस्थापन का कोई प्रावधान नहीं है लेकिन मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन मृत परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी सहित किसी भी व्यक्ति को अनुमति दे सकता है। कुशल कुमार तालुकदार (उपर्युक्त) के पैराग्राफ संख्या 53 और 54 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"53. वर्तमान मामले से निपटते समय, यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन मृत परिवादी के प्रतिस्थापन के लिए कोई प्रावधान नहीं है, लेकिन एक मजिस्ट्रेट के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन किसी को भी अभियोजन संचालित करने की अनुमति देने की शक्ति है। अतः, जब यहां विपक्षी, मृत परिवादी के पुत्र के रूप में, परिवाद के साथ कार्यवाही जारी रखने के लिए आगे आया, तो न्यायालय की ओर से, मृत परिवादी के पुत्र को परिवादी का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति देने में कोई बाधा नहीं थी। यद्यपि मजिस्ट्रेट ने यहां अभियुक्त-विपक्षी को मृत परिवादी के स्थान पर प्रतिस्थापित किया है, आक्षेपित आदेश का प्रभाव यह है कि वहां विपक्षी को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अनुसार मृत परिवादी का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी गई है। [अश्विन नानू भाई (उपर्युक्त) भी देखें]।

54. उपर्युक्त चर्चा से जो ठोस रूप से दिखता है वह यह है कि वर्तमान मामले में, अभियुक्त-याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध की सामग्री को साबित करने के लिए, परिवादी की उपस्थिति आवश्यक नहीं

थी। ऐसी स्थिति में, जब परिवादी का पुत्र, अर्थात् यहां विपक्षी अभियोजन संचालित करने के लिए आगे आया, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के साथ पढ़ने के प्रकाश में, कानून के अधीन कोई बाधा नहीं थी कि यहां विपक्षी को, मृत परिवादी के पुत्र के रूप में, परिवादी का प्रतिनिधित्व करने और उसे मामले में अपनी पसंद के अधिवक्ता को नियुक्त करने की अनुमति दी जाए। इस प्रकार, निचली अदालत की ओर से, उपर्युक्त परिवाद प्रकरण की कार्यवाही को जारी रखने की अनुमति देने में कोई कानूनी बाधा नहीं थी। इस प्रकार पहुंचे गए निष्कर्षों के लिए, मैं वर्तमान पुनरीक्षण में कोई योग्यता नहीं पाता हूं और पुनरीक्षण सफल नहीं हो सकता।"

15. मृत परिवादी के पुत्र द्वारा अभियोजन को अनुमति देने का मुद्दा हैदराबाद उच्च न्यायालय के समक्ष भी मैसर्स श्री साई मौर्य एस्टेट्स एंड प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा प्रतिनिधित्व सरकारी अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद एवं अन्य के मामले में जो कि 2018 एससीसी ऑनलाइन हैदराबाद 43 में प्रतिवेदित किया गया, मैं विचार के लिए आया जिसमें हैदराबाद उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि परिवादी (चेक के आदाता) की मृत्यु के पश्चात, उसके पुत्र को चेक का यथाविधि धारक माना जाता है जो अधिनियम, 1881 के अधीन परिवाद का विषय है। इसलिए, पिता की मृत्यु के पश्चात, उसका पुत्र अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन परिवाद दायर कर सकता है। मैसर्स श्री साई मौर्य एस्टेट्स (उपर्युक्त) के पैराग्राफ संख्या 31 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"31. उपर्युक्त प्रावधान से यह स्पष्ट है कि द्वितीय प्रत्यर्थी अपने पिता की मृत्यु के पश्चात आदाता होते हुए चेक धारण करता है और एक कानूनी उत्तराधिकारी के रूप में वह अपने स्वयं के नाम में वही को धारण करने का हकदार है और धारा 53 के दृष्टिकोण से वह यथाविधि धारक है और पूर्ण निर्वहन प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार, अधिनियम की धारा 53 के अधीन, आदाता या यथाविधि धारक का कानूनी प्रतिनिधि/उत्तराधिकारी अधिनियम की धारा 138 के अधीन एक परिवाद बनाए रख सकता है।"

16. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 (संगत धारा 279 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 (संगत धारा 339 भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता) के संयुक्त पाठ के साथ-साथ उपर चर्चित कानूनी स्थिति से, यह स्पष्ट है कि परिवादी की मृत्यु के पश्चात, उसके कानूनी उत्तराधिकारी को व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता के माध्यम से या मुख्तारनामा धारक के माध्यम से अधिनियम, 1881 की धारा 138 के अधीन कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जा सकती है, यद्यपि, मृत परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी के प्रतिस्थापन या पक्षकार बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए, संबंधित न्यायालय के लिए यह हमेशा आवश्यक नहीं है कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 256 के अधीन परिवाद को खारिज करे। यदि परिवादी किसी कारण से उपस्थित होने में विफल रहता है, तो वह सुनवाई को स्थगित कर सकता है और यदि परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी द्वारा इस आधार पर परिवाद कार्यवाही को आगे बढ़ाने के लिए आवेदन

दायर किया जाता है कि परिवादी की मृत्यु हो गई है, तो न्यायालय को सामान्यतः परिवादी के कानूनी उत्तराधिकारी को वही को आगे बढ़ाने की अनुमति देनी चाहिए।

17. इसलिए आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि निचली अदालत ने परिवादी की मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र को परिवाद कार्यवाही को आगे बढ़ाने की अनुमति त्रुटिवश दी है, भी भ्रामक है।

18. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तीसरा तर्क कि विवादित चेक एक लापता चेक था जिसके संबंध में आवेदक ने पुलिस शिकायत भी दर्ज की थी, भी भ्रामक है और अभिलेख पर कुछ भी नहीं है जो यह दर्शाता हो कि विवादित चेक के भुगतान को रोकने के लिए बैंक को कोई आवेदन दिया गया था यदि वही खो गया था। अन्यथा भी, यह आधार प्रतिरक्षा होने के नाते आवेदक को विचारण के दौरान उपलब्ध होगा।

19. जहां तक चौथे तर्क का संबंध है कि मांग नोटिस गलत पते पर भेजा गया था, वह भी आवेदक द्वारा विचारण के दौरान अपनी प्रतिरक्षा के रूप में उठाया जा सकता है क्योंकि उच्चतम न्यायालय ने **डी. विनोद शिवप्पा बनाम नंदा बेलिअप्पा** के मामले में जो कि **(2006) 6 एससीसी 456** में प्रतिवेदित किया गया, में अभिनिर्धारित किया है कि नोटिस की तामील का मुद्दा अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है और विचारण के दौरान परीक्षण किया जा सकता है।

20. यह उल्लेख करना भी उचित है कि विवादित चेक '**खाता बंद**' के समर्थन के साथ वापस आया था। उच्चतम न्यायालय ने **2014 (13) एससीसी 779** में प्रतिवेदित **लाफार्ज एग्रीगेट्स एंड कंक्रीट इंडिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम सुकर्ष आजाद एवं अन्य** के मामले के साथ-साथ **विजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के मामले में धारा 482 के अधीन आवेदन संख्या **17464/2024** में दिनांक **23.05.2024** के आदेश द्वारा, अभिनिर्धारित किया है कि भले ही चेक '**खाता बंद**' के समर्थन के साथ वापस आता है, तब भी कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वैध कारण से खाते को बंद करने की प्रतिरक्षा विचारण के दौरान उठाई जा सकती है।

21. अभिलेख के अवलोकन से यह भी प्रतीत होता है कि आक्षेपित कार्यवाही 2018 से लंबित है और आवेदक निचली अदालत के समक्ष विचारण का प्रतिवाद करने और अपने पास उपलब्ध सभी आधारों को उठाने के लिए उपस्थित नहीं हुआ है।

22. उपर्युक्त के दृष्टिकोण में, यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं पाता है।

23. तदनुसार, वर्तमान आवेदन **निरस्त** किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 260

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 30740/2024

प्रेमांशु

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता:

पी.के. सिंह

विपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता 1973 - धारा 311 - आवेदक द्वारा पी.डब्ल्यू.-3 के परीक्षण हेतु द.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत आवेदन अस्वीकृत - आक्षेपित - अभियुक्त अपने अधिकार के अंतर्गत साक्षी को पुनः परीक्षण के लिए वापस नहीं बुला सकता - अंतराल को भरने के लिए असाधारण प्रावधान का उपयोग बाद में नहीं किया जा सकता - आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है।

आवेदन निरस्त किया गया। (ई-9)

उद्धृत वादों की सूची:

1. नताशा सिंह बनाम सी.बी.आई., (2013) 5 एससीसी 741 में प्रतिवेदित
2. राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, (2013)14 एससीसी 461
3. मन्नान एस.के. एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, एआईआर 2014 एससी 2950
4. वी.एन. पाटिल बनाम के. निरंजन कुमार एवं अन्य, (2021) 3 एससीसी 661 में प्रतिवेदित
5. विजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (8) एससीसी 136
6. मन्नान शेख एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, 2014 (13) एससीसी 59

7. रतनलाल बनाम प्रहलाद जाट एवं अन्य, 2017 (9) एससीसी 340
8. स्वप्न कुमार चटर्जी बनाम सीबीआई, 2019 (14) एससीसी 328
9. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम शिव कुमार यादव (2016) 2 एससीसी 402
10. मंजू देवी बनाम राजस्थान राज्य, (2019) 6 एससीसी 203 में प्रतिवेदित

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पी.के. सिंह के ब्रीफ होल्डर श्री राजीव सिंह, अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री रिजवान अहमद को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।
2. वर्तमान आवेदन दिनांक 16.06.2023 के उस आदेश के विरुद्ध दायर किया गया है, जिसके तहत आवेदक द्वारा पी.डब्लू.-3 के परीक्षण हेतु प्रस्तुत धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।
3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश न्यायिक विवेक का प्रयोग किए बिना पारित किया गया है। पी.डब्लू.-3 के परीक्षण के दौरान, आवेदक के अधिवक्ता द्वारा कुछ प्रासंगिक प्रश्न, जो मामले के उचित न्यायनिर्णयन के लिए महत्वपूर्ण थे, नहीं पूछे जा सके, इसलिए न्यायालय के लिए पी.डब्लू.-3 के परीक्षण की अनुमति देने वाले आवेदन को स्वीकार करना उचित होता। आक्षेपित आदेश अवैध और मनमाने ढंग से पारित किया गया है, इसलिए यह अपास्त किया जा सकता है।
4. दूसरी ओर, राज्य के विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क दिया कि दिनांक 16.06.2023 के आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है क्योंकि विस्तृत चर्चा और न्यायिक विवेक के प्रयोग के बाद, आक्षेपित आदेश पारित किया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि पी.डब्लू.-3 से जिरह के लिए अनुरोध करने वाला वर्तमान आवेदन 27.04.2023 को, वह भी गवाहों के साथ-साथ अभियुक्तों के बयान भारतीय दंड संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज होने के उपरांत दिया गया है और प्रकरण सुनवाई के लिए नियत किया गया है। अभिलेखों से, संबंधित न्यायालय ने पाया कि धारा 313 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत बयान दर्ज करने हेतु 15.04.2022 की तिथि नियत की गई थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अभियुक्त प्रेमांशु और श्रीमती मिथलेश के बयान दर्ज किए गए और उनसे जिरह की गई। अभियुक्त पक्ष के तीन व्यक्तियों को भी परीक्षित किया गया। अभियुक्तगण की ओर से उक्त गवाहों से जिरह दिनांक 23.04.2022 से 27.08.2022 तक हुआ। अभियुक्तगण ने कहा कि वे अपना मामला साबित करने के लिए कोई अन्य साक्षी पेश नहीं करना चाहते हैं, इसलिए मामला सुनवाई हेतु नियत किया गया। 22.12.2022 को अभियुक्तगण की ओर से पी.डब्लू.-4 को तलब करने हेतु आवेदन दिया गया, जिसे स्वीकार कर लिया गया और पी.डब्लू.-4 से दिनांक 16.01.2023 को पुनः परीक्षित किया गया।

5. उन्होंने आगे तर्क दिया कि अभियोजन पक्ष की ओर से नौ साक्षीगण पेश किए गए हैं, जिनका परीक्षण और जिरह अभियुक्तगण की ओर से कई अधिवक्तागण, अर्थात् ओम नारायण द्विवेदी, अशोक कुमार त्रिवेदी, दिनेश कुमार पाल, अनिल कुमार सचान और सिद्धार्थ वर्मा द्वारा किया गया है। वाद के अभिलेख में श्री रामबहाल विद्यार्थी का वकालतनामा भी पाया गया। नवनियुक्त अधिवक्ता श्री रामबहाल विद्यार्थी ने 27.04.2023 को पी.डब्ल्यू.-3 को तलब करने के लिए एक आवेदन दिया क्योंकि उससे परीक्षण के समय कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं पूछे जा सके थे। न्यायालय ने पाया कि पी.डब्ल्यू.-3 रामभवन का मुख्य परीक्षण 31.05.2018 को हुआ था और उसी तिथि को उससे जिरह की गई थी। जिरह 04.07.2018 को जारी रही और उक्त तिथि को पूरी हुई। जिरह लगभग तीन पृष्ठों की है। मृतक को परेशान करने, तिलक के रूप में दिए गए धन और उपहारों और उत्पीड़न से संबंधित अन्य सभी प्रश्न भी पी.डब्ल्यू.-3 से पूछे गए थे। पूर्वोक्त से, यह स्पष्ट है कि आवेदक अधिवक्ता बदलकर वाद को लटकाने की कोशिश कर रहा है। पहले भी पी.डब्ल्यू.-4 को तलब करने के लिए एक आवेदन दिया गया था, जिसे अनुमति दी गई थी और उसका पुनः परीक्षण किया गया है।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है तथा वर्तमान आवेदन के अभिलेखों का अवलोकन किया है।

7. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों की सत्यता का आकलन करने से पूर्व, धारा 311 द.प्र.सं. का संदर्भ लेना समीचीन होगा, जो इस प्रकार है:-

"311. महत्वपूर्ण साक्षी को तलब करने या उपस्थित व्यक्ति का परीक्षण करने की शक्ति:-. कोई भी न्यायालय, इस संहिता के अधीन किसी भी जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में, किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में तलब कर सकता है, या उपस्थित किसी भी व्यक्ति की, यद्यपि उसे साक्षी के रूप में तलब नहीं किया गया है, परीक्षण कर सकता है, या किसी ऐसे व्यक्ति को वापस बुला सकता है और पुनः परीक्षण कर सकता है, जिसका पहले ही परीक्षण हो चुका है; और न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को तलब करके उसका परीक्षण करेगा यह उसे दोबारा बुलाकर पुनः परीक्षण करेगा, यदि उसका साक्ष्य वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।"

8. पूर्वोक्त प्रावधान की गहन जांच से स्पष्ट है कि न्यायालय को किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में तलब करने या किसी साक्षी को वापस बुलाकर पुनः परीक्षण करने की व्यापक शक्ति प्राप्त है, बशर्ते कि वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए ऐसा करना अनिवार्य रूप से आवश्यक हो। इसके अलावा, शक्ति का ऐसा प्रयोग संहिता के तहत जांच, विचारण या कार्यवाही के किसी भी चरण में हो सकता है, जिसका अर्थ है कि आवेदक विचारण के समापन से पूर्व किसी भी समय आवेदन दायर कर सकता है। धारा 311 का मूल उद्देश्य न केवल अभियुक्त और अभियोजन पक्ष के दृष्टिकोण से, बल्कि व्यवस्थित समाज के दृष्टिकोण से भी साक्ष्य अभिलेख पर लाना है।

9. प्रावधान का दायरा और उद्देश्य न्यायालय को सत्य का निर्धारण करने और सभी प्रासंगिक तथ्यों की खोज करने और ऐसे तथ्यों का उचित प्रमाण प्राप्त करने के बाद वाद के न्यायोचित निर्णय पर पहुंचने के लिए न्यायोचित निर्णय देने में सक्षम बनाना है। शक्ति का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए, न कि स्वेच्छाचारी या मनमाने ढंग से, क्योंकि ऐसी शक्ति का कोई भी अनुचित या स्वेच्छाचारी प्रयोग अवांछनीय परिणामों को जन्म दे सकता है। द.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत किसी आवेदन को केवल अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के मामले में किसी कमी को पूरा करने के लिए, या अभियुक्त के लिए अहितकर, या अभियुक्त के बचाव पक्ष को गंभीर नुकसान पहुंचाने के लिए, या प्रतिपक्षी को अनुचित लाभ पहुंचाने के लिए अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसके अलावा, अतिरिक्त साक्ष्य को पुनर्विचार के बहाने या किसी भी पक्ष के विरुद्ध वाद की प्रकृति बदलने के लिए स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। ऐसी शक्ति का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए, बशर्ते कि साक्षी द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला साक्ष्य संबंधित मुद्दे से संबंधित हो, हालाँकि, दूसरे पक्ष को खंडन का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। इसलिए, न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग केवल न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, ठोस और वैध कारणों से ही करना चाहिए, और इसका प्रयोग अत्यंत सावधानी और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। 'किसी भी न्यायालय', 'किसी भी स्तर पर', या 'या किसी भी जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही', 'किसी भी व्यक्ति' और 'किसी भी ऐसे व्यक्ति' जैसे शब्दों का प्रयोग स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि इस धारा के प्रावधानों को यथासंभव व्यापक रूप से व्यक्त किया गया है, और ये न्यायालय के विवेक को किसी भी तरह से सीमित नहीं करते हैं। इस प्रकार, यदि प्राप्त किया जाने वाला नया साक्ष्य वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक है, तो इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है। इसलिए निर्णायक कारक यह होना चाहिए कि क्या उक्त साक्षी को तलब करने/वापस बुलाना वास्तव में वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक है।

10. निष्पक्ष विचारण आपराधिक प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य है, और यह सुनिश्चित करना न्यायालय का कर्तव्य है कि इस निष्पक्षता को किसी भी तरह से बाधित या खतरा न हो। निष्पक्ष विचारण में अभियुक्त, पीड़ित और समाज का हित निहित है, और इसलिए, निष्पक्ष विचारण में संबंधित व्यक्ति को निष्पक्ष और उचित अवसर प्रदान करना शामिल है, और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए क्योंकि यह एक संवैधानिक अधिकार और साथ ही मानवाधिकार है। इस प्रकार, किसी भी परिस्थिति में किसी व्यक्ति के निष्पक्ष विचारण के अधिकार को खतरे में नहीं डाला जा सकता। बचाव पक्ष के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करना एक मूल्यवान अधिकार है। ऐसे अधिकार का हनन निष्पक्ष विचारण के हनन के समान होगा। इसलिए, यह आवश्यक है कि न्याय सुनिश्चित करने के लिए बनाए गए प्रक्रिया के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन किया जाए, और न्यायालय को यह सुनिश्चित करने में तत्पर रहना चाहिए कि उनका कोई उल्लंघन न हो।

11. विधि के उपरोक्त प्रावधान की गहन जांच से यह भी पता चलता है कि धारा 311 के दो भाग हैं; पहला भाग पक्षकारों को किसी भी स्तर पर साक्षी के पुनः परीक्षण के लिए उपयुक्त आवेदन प्रस्तुत करने का अधिकार सुरक्षित रखता है; लेकिन निश्चित रूप से दूसरा भाग अनिवार्य है, जो न्यायालय पर किसी भी स्तर पर साक्षी का पुनः परीक्षण करने, उसे वापस बुलाने या तलब करने का कर्तव्य डालता है, यदि उसका साक्ष्य वाद के

न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि निश्चित रूप से विधि के उपरोक्त प्रावधान का अंतर्निहित उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि किसी भी पक्ष द्वारा मूल्यवान साक्ष्य प्रस्तुत करने में हुई गलती या दोनों ओर से परीक्षित साक्षीगण के बयानों में अस्पष्टता रहने के कारण किसी भी प्रकार का न्याय का हनन न हो।

12. इस पृष्ठभूमि में, संहिता की धारा 311 की व्याख्या पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कुछ निर्णयों का संदर्भ देना उपयोगी होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने उन मूल सिद्धांतों पर प्रकाश डाला है, जिन्हें संहिता की धारा 311 के अंतर्गत आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।

13. *नताशा सिंह बनाम सी.बी.आई., (2013) 5 एससीसी 741* में प्रतिवेदित वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का उल्लेख करने के बाद यह टिप्पणी की है कि इसलिए, धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए ही किया जाना चाहिए और ऐसी शक्ति का प्रयोग बहुत सावधानी और विवेक के साथ किया जाना चाहिए।

14. धारा 311 द.प्र.सं. के दायरे पर *राजा राम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2013) 14 एससीसी 461* में प्रतिवेदित वाद में विचार किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत किसी भी व्यक्ति या साक्षी को तलब करने या पहले से ही परीक्षित किसी व्यक्ति का परीक्षण करने की शक्ति का प्रयोग किसी भी स्तर पर किया जा सकता है, बशर्ते वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए ऐसा करना आवश्यक हो। निर्णय के निम्नलिखित प्रस्तरों पर ध्यान देना प्रासंगिक हो सकता है:-

"14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 311 का सुस्पष्ट वाचन यह दर्शाता है कि न्यायालयों को किसी साक्षी को तलब करने या पहले से परीक्षित किसी साक्षी को वापस बुलाने या पुनःपरीक्षण करने के संबंध में व्यापक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। प्रावधान के वाचन से पता चलता है कि "कोई भी" पद का प्रयोग "न्यायालय", "जांच", "विचारण", "अन्य कार्यवाही", "साक्षी के रूप में व्यक्ति", "उपस्थित व्यक्ति, यद्यपि उसे साक्षी के रूप में नहीं बुलाया गया है", और "पहले से परीक्षित व्यक्ति" के पूर्व-अंश के रूप में किया गया है। उपर्युक्त विभिन्न पदों के पूर्व-अंश के रूप में उक्त पद "कोई भी" का प्रयोग करके, अंततः यह कहा गया है कि न्यायालय द्वारा केवल ऐसे साक्ष्य के संबंध में ही संतुष्ट होना अपेक्षित था, जो न्यायालय को वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता हो। साक्ष्य अधिनियम की धारा 138, न्यायालय में साक्षी के परीक्षण का आदेश निर्धारित करती है। पुनःपरीक्षण के लिए वांछित साक्षी को बुलाने के लिए पुनःपरीक्षण का आदेश भी निर्धारित किया गया है। इसलिए, धारा 311 द.प्र.सं. और धारा 138 साक्ष्य अधिनियम को पढ़ने पर, जहां तक आपराधिक विचारण का प्रश्न है, धारा 138 के अंतर्गत किसी व्यक्ति की इच्छा पर पुनःपरीक्षण का आदेश आवश्यक रूप से धारा 311 द.प्र.सं. में निहित निर्देशों के अनुरूप होगा। इसलिए, यह अनिवार्य है कि धारा 311 द.प्र.सं. का आह्वान और किसी विशेष वाद में इसका आवेदन न्यायालय द्वारा केवल उक्त प्रावधान के उद्देश्य और तात्पर्य को ध्यान में रखते हुए, आदेश दिया जा सकता है, अर्थात्, वाद का न्यायोचित निर्णय प्राप्त करने के लिए जैसा

कि हमने पहले उल्लेख किया है। उक्त प्रावधान के अंतर्गत निहित शक्ति किसी भी न्यायालय को संहिता के तहत शुरू की गई किसी भी जांच या विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में बुलाने या उपस्थित किसी भी व्यक्ति को परीक्षित करने के लिए, भले ही उसे साक्षी के रूप में न बुलाया गया हो या पहले से ही परीक्षित किसी व्यक्ति को वापस बुलाने या पुनः परीक्षण करने के लिए उपलब्ध कराई जाती है। जहां तक पहले से ही परीक्षित किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और पुनः परीक्षण करने का सवाल है, न्यायालय को आवश्यक रूप से विचार करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति को वापस बुलाना और पुनः परीक्षण करना, न्यायालय के दृष्टिकोण से वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। इसलिए, सर्वोपरि आवश्यकता न्यायसंगत निर्णय है और उस प्रयोजन के लिए किसी व्यक्ति को वापस बुलाने और पुनः परीक्षण करने की अनिवार्यता का पता लगाना होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो, जबकि न्यायालय को इतनी व्यापक शक्ति प्रदान की गई है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग न्यायिक रूप से और अत्यंत सावधानी एवं सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए।"

15. इस संदर्भ में, मैं **मन्नान एस.के. एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, एआईआर 2014 एससी 2950** में प्रतिवेदित वाद, मैं सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का भी संदर्भ देना चाहता हूं, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"10. प्रत्येक न्यायालय का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। संहिता की धारा 311 संहिता के ऐसे अनेक प्रावधानों में से एक है, जो विधि द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सत्य का पता लगाने के न्यायालय के प्रयासों को सशक्त बनाती है। इसका व्यापक अर्थ है। यह संहिता के अंतर्गत किसी भी जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में न्यायालय को किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में तलब करने या उपस्थित किसी भी व्यक्ति को परीक्षित करने का अधिकार देता है, भले ही उसे साक्षी के रूप में तलब न किया गया हो, या पहले से ही परीक्षित साक्षी को वापस बुलाकर पुनः परीक्षण करने का अधिकार देता है। धारा के दूसरे भाग में 'करेगा' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें कहा गया है कि न्यायालय ऐसे किसी भी व्यक्ति को तलब करके उसका परीक्षण करेगा, उसे वापस बुलाएगा या पुनः परीक्षित करेगा, यदि उसका साक्ष्य उसे वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक' शब्द प्रमुख शब्द हैं। न्यायालय को यह राय बनानी होगी कि वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए साक्षी को वापस बुलाना या पुनः परीक्षित करना आवश्यक है। चूँकि शक्ति व्यापक है, इसलिए इसका प्रयोग सावधानी से किया जाना चाहिए। यह सर्वविदित है कि शक्ति जितनी व्यापक होगी, उसका प्रयोग करने वाले न्यायालयों की जिम्मेदारी भी उतनी ही अधिक होगी। इस शक्ति का प्रयोग अनियंत्रित और मनमाना नहीं हो सकता, बल्कि इसका उद्देश्य केवल वाद का न्यायसंगत निर्णय प्राप्त करना होना चाहिए। इससे अभियुक्त के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए। इससे अभियोजन पक्ष को कमी पूरी करने का अवसर नहीं मिलना चाहिए। किसी साक्षी को वापस बुलाना कमी पूरी करने के लिए है या किसी वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए, यह प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सभी वादों में यह तर्क दिया जा सकता है कि अभियोजन पक्ष कमी पूरी करने का प्रयास कर

रहा है क्योंकि सीमा रेखा बहुत पतली है। न्यायालय को सभी परिस्थितियों पर विचार करना होगा और निर्णय लेना होगा कि क्या पुनः बुलाने की प्रार्थना वास्तविक है।"

16. इसके अतिरिक्त, **वी.एन. पाटिल बनाम के. निरंजन कुमार एवं अन्य (2021) 3 एससीसी 661** में प्रतिवेदित वाद में, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि प्रत्येक न्यायालय का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। धारा 311 द.प्र.सं. ऐसे कई प्रावधानों में से एक है जो विधि द्वारा स्वीकृत प्रक्रिया द्वारा सत्य का पता लगाने के न्यायालय के प्रयासों को सशक्त बनाती है। साथ ही, धारा 311 द.प्र.सं. के तहत निहित विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए मजबूत और वैध कारणों से विवेकपूर्ण ढंग से और सावधानी एवं विवेक के साथ किया जाना चाहिए।

17. धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों को इस न्यायालय द्वारा **विजय कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 2011 (8) एससीसी 136** में प्रतिवेदित, में अच्छी तरह से स्थापित किया गया है:-

"17. यद्यपि धारा 311 न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान करती है और इसे यथासंभव व्यापक शब्दों में व्यक्त किया गया है, फिर भी उक्त धारा के अंतर्गत विवेकाधिकार का प्रयोग केवल न्याय के उद्देश्यों के लिए ही किया जा सकता है। विवेकाधिकार का प्रयोग संहिता के प्रावधानों और दंड विधि के सिद्धांतों के अनुरूप किया जाना चाहिए। धारा 311 के अंतर्गत प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायालय द्वारा बताए गए कारणों से न्यायिक रूप से, न कि मनमाने ढंग से या स्वेच्छाचारिता से किया जाना चाहिए। विद्वान विशेष न्यायाधीश को श्रीमती रुचि सक्सेना से न्यायालय साक्षी के रूप में परीक्षित करने का निर्देश देने से पहले, उच्च न्यायालय ने विद्वान विशेष न्यायाधीश द्वारा बताए गए उन कारणों का परीक्षण नहीं किया कि उनसे न्यायालय साक्षी के रूप में परीक्षण करना क्यों आवश्यक नहीं है और बिना कोई कारण बताए आक्षेपित निर्देश दे दिया।"

18. इस सिद्धांत को **मन्नान शेख एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, 2014 (13) एससीसी 59** में प्रतिवेदित और उसके बाद **रतनलाल बनाम प्रहलाद जाट एवं अन्य, 2017 (9) एससीसी 340** और **स्वप्न कुमार चटर्जी बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो, 2019 (14) एससीसी 328** के वाद में दोहराया गया है। **स्वप्न कुमार चटर्जी (पूर्वोक्त)** के प्रासंगिक प्रस्तर इस प्रकार हैं:-

"10. इस धारा का पहला भाग, जो अनुमेय है, आपराधिक न्यायालय को पूर्णतया विवेकाधीन अधिकार प्रदान करता है और संहिता के अधीन जांच, विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में उसे तीन तरीकों में से एक में कार्य करने के लिए सक्षम बनाता है, अर्थात्: (i) किसी व्यक्ति को साक्षी के रूप में तलब करना; या (ii) उपस्थित किसी व्यक्ति का परीक्षण करना, यद्यपि उसे साक्षी के रूप में तलब नहीं किया गया हो; या (iii) पहले से परीक्षित किए जा चुके किसी व्यक्ति को वापस बुलाना और उसका पुनः परीक्षण करना। दूसरा भाग, जो अनिवार्य है, न्यायालय पर (i) किसी ऐसे व्यक्ति को तलब करना और उसका परीक्षण करना या (ii) वापस

बुलाना और उसका पुनः परीक्षण करने का दायित्व डालता है, यदि उसका साक्ष्य वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

11. यह सर्वविदित है कि धारा 311 के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्वारा केवल न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही किया जाना चाहिए। इस शक्ति का प्रयोग केवल मजबूत और वैध कारणों से ही किया जाना चाहिए और इसका प्रयोग अत्यंत सावधानी और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। इस धारा के अंतर्गत न्यायालय को न्याय के हित में आवश्यक होने पर पुनः परीक्षण या आगे के परीक्षण के लिए साक्षीगण को वापस बुलाने का भी अधिकार है, लेकिन इसका प्रयोग प्रत्येक वाद के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए। यदि न्यायालय का यह विचार है कि आवेदन विधि प्रक्रिया के दुरुपयोग के रूप में दायर किया गया है, तो इस प्रावधान के अंतर्गत इस शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा।"

19. राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) बनाम शिव कुमार यादव (2016) 2 एससीसी 402 के वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि धारा 311 के अंतर्गत साक्षी को वापस बुलाने का कार्य वास्तविक और प्रामाणिक होना चाहिए। दूसरी बात, धारा 311 के अंतर्गत साक्षी को वापस बुलाने के आवेदन को स्वाभाविक रूप से स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए और न्यायालय को दिए गए विवेक का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से, मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए।

20. सर्वोच्च न्यायालय ने मंजू देवी बनाम राजस्थान राज्य (2019) 6 एससीसी 203 में प्रतिवेदित वाद में, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"10. इस बात पर जोर देने की कोई आवश्यकता नहीं है कि धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत विवेकाधीन शक्तियों का अनिवार्य रूप से यह सुनिश्चित करने का इरादा है कि अभिलेख को सही रखने और साक्ष्य के संबंध में किसी भी अस्पष्टता को दूर करने के लिए न्यायालय द्वारा हर आवश्यक और उचित उपाय किया जाए और यह भी सुनिश्चित किया जाए कि किसी को कोई पूर्वाग्रह न हो। धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्निहित सिद्धांत और इसके अंतर्गत न्यायालय की शक्तियों के आयाम को इस न्यायालय ने कई निर्णयों में समझाया है [देखें मोहनलाल शामजी सोनी बनाम भारत संघ, 1991 सप्प (1) एससीसी 271: 1991 एससीसी (क्रि) 595; ज़ाहिरा हबीबुल्ला एच. शेख बनाम गुजरात राज्य, (2004) 4 एससीसी 158: 2004 एससीसी (क्रि) 999 ; मीना ललिता बरुवा बनाम उड़ीसा राज्य, (2013) 16 एससीसी 173:(2014) 6 एससीसी (सीआरआई) 218; राजाराम प्रसाद यादव बनाम बिहार राज्य, (2013) 14 एससीसी 461: (2014) 4 एससीसी (क्रि) 256 और नताशा सिंह बनाम सीबीआई, (2013) 5 एससीसी 741: (2013) 4 एससीसी (क्रि) 828]। नताशा सिंह बनाम सीबीआई [नताशा सिंह बनाम सीबीआई, (2013) 5 एससीसी 741: (2013) 4 एससीसी (क्रि) 828] में, यद्यपि साक्षीगण के परीक्षण के लिए आवेदन अभियुक्त द्वारा दायर किया गया था, लेकिन धारा 311 के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग से संबंधित सिद्धांतों पर, इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नानुसार अवलोकन किया:

"8. द.प्र.सं. की धारा 311 न्यायालय को किसी महत्वपूर्ण साक्षी को तलब करने, या द.प्र.सं. के अंतर्गत "किसी भी जाँच", या "विचारण", या "किसी अन्य कार्यवाही" के "किसी भी चरण" में उपस्थित किसी व्यक्ति को परीक्षित करने, या किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में तलब करने, या किसी भी व्यक्ति को, जिसका पहले ही परीक्षण हो चुका है, वापस बुलाकर दोबारा परीक्षण करने का अधिकार देती है, यदि उसका साक्ष्य न्यायालय को वाद के न्यायोचित निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है। निस्संदेह, द.प्र.सं. ने इस संबंध में न्यायालय को व्यापक विवेकाधिकार प्रदान किया है, लेकिन इस विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से, न कि मनमाने ढंग से किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में न्यायालय की शक्तियाँ बहुत व्यापक हैं, और इसी के प्रयोग में, वह विचारण या अन्य कार्यवाही के किसी भी चरण में किसी भी व्यक्ति को साक्षी के रूप में तलब कर सकता है। न्यायालय स्वप्रेरणा से भी ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सक्षम है, भले ही दोनों पक्षों में से किसी ने भी ऐसा कोई आवेदन दायर न किया हो। हालाँकि, न्यायालय को स्वयं यह संतुष्टि अवश्य प्राप्त करनी चाहिए कि वाद में न्यायसंगत निर्णय पर पहुँचने के लिए ऐसे साक्षी का परीक्षण करना या उसे आगे परीक्षण के लिए वापस बुलाना वास्तव में आवश्यक था।

15. इस प्रावधान का दायरा और उद्देश्य न्यायालय को सत्य का निर्धारण करने और सभी प्रासंगिक तथ्यों का पता लगाने तथा ऐसे तथ्यों का उचित प्रमाण प्राप्त करने के बाद, वाद में न्यायसंगत निर्णय पर पहुँचने के लिए न्यायसंगत निर्णय देने में सक्षम बनाना है। शक्ति का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए, न कि स्वेच्छाचारिता या मनमाने ढंग से, क्योंकि ऐसी शक्ति का कोई भी अनुचित या स्वेच्छाचारितापूर्ण प्रयोग अवांछनीय परिणामों को जन्म दे सकता है। द.प्र.सं. की धारा 311 के अंतर्गत किसी आवेदन को केवल अभियोजन पक्ष या बचाव पक्ष के मामले में किसी कमी को पूरा करने के लिए, या अभियुक्त के अहित में, या अभियुक्त के बचाव पक्ष को गंभीर नुकसान पहुँचाने के लिए, या प्रतिपक्षी को अनुचित लाभ पहुँचाने के लिए अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। इसके सिवाय, अतिरिक्त साक्ष्य को पुनः विचारण के बहाने के रूप में, या किसी भी पक्ष के विरुद्ध वाद की प्रकृति को बदलने के लिए स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। ऐसी शक्ति का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए, बशर्ते कि साक्षी द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला साक्ष्य संबंधित मुद्दे से संबंधित हो। हालाँकि, दूसरे पक्ष को खंडन का अवसर अवश्य दिया जाना चाहिए। इसलिए, न्यायालय द्वारा धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग केवल न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए, ठोस और वैध कारणों से ही किया जाना चाहिए, और इसका प्रयोग अत्यंत सावधानी और विवेक के साथ किया जाना चाहिए। "किसी भी न्यायालय", "किसी भी स्तर पर", या "या किसी जाँच, विचारण या अन्य कार्यवाही", "किसी भी व्यक्ति" और "किसी भी ऐसे व्यक्ति" जैसे शब्दों का प्रयोग ही स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि इस धारा के प्रावधानों को यथासंभव व्यापक रूप से व्यक्त किया गया है, और ये न्यायालय के विवेक को किसी भी तरह से सीमित नहीं करते हैं। इसलिए, यदि प्राप्त किया जाने वाला नया साक्ष्य वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक है, तो इससे बचने का कोई रास्ता नहीं है। इसलिए निर्णायक कारक यह होना चाहिए कि क्या उक्त साक्षी को तलब करना/वापस बुलाना वास्तव में वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक है।"

21. विधि की उपरोक्त व्याख्या स्पष्ट रूप से सुझाती है कि निष्पक्ष सुनवाई आपराधिक न्यायशास्त्र का मुख्य उद्देश्य है और यह सुनिश्चित करना न्यायालय का कर्तव्य है कि ऐसी निष्पक्षता किसी भी तरह से बाधित या खतरे में न पड़े। उपरोक्त निर्णयों में आगे कहा गया है कि निष्पक्ष सुनवाई में अभियुक्त, पीड़ित और समाज के हित शामिल होते हैं और इसलिए, संबंधित व्यक्तियों को निष्पक्ष और उचित अवसर प्रदान करना एक संवैधानिक लक्ष्य होने के साथ-साथ एक मानवाधिकार भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने उपरोक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि बचाव पक्ष के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करना एक मूल्यवान अधिकार है और ऐसे अधिकार से इनकार करना निष्पक्ष विचारण से इनकार करने के समान होगा।

22. सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 311 के अंतर्गत आवेदनों पर विचार करते समय न्यायालयों द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले कुछ सिद्धांतों को अलग करते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 311 के अंतर्गत व्यापक विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग यह सुनिश्चित करना चाहिए कि तथ्यों की अपूर्ण, अनिर्णायक और काल्पनिक प्रस्तुति पर निर्णय नहीं दिया जाना चाहिए। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा है कि यदि किसी साक्षी का साक्ष्य वाद के न्यायसंगत निर्णय के लिए आवश्यक प्रतीत होता है, तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह ऐसे किसी भी व्यक्ति को तलब करके उसका परीक्षण करे या उसे वापस बुलाकर पुनः परीक्षित करे, क्योंकि धारा 311 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने का उद्देश्य ही सत्य का पता लगाना और न्यायसंगत निर्णय देना है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उपर्युक्त निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय को यह ध्यान में रखना चाहिए कि विचारण में किसी भी पक्ष को त्रुटियाँ सुधारने से नहीं रोका जा सकता है और यदि किसी असावधानी के कारण उचित साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किए गए या प्रासंगिक सामग्री अभिलेख पर नहीं लाई गई, तो न्यायालय को ऐसी त्रुटियों को सुधारने की अनुमति देने में उदारता दिखानी चाहिए।

23. वर्तमान आवेदन के अभिलेखों और आवेदक द्वारा धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत दायर आवेदन के साथ-साथ आक्षेपित आदेश के परीक्षण करने से, यह न्यायालय पाता है कि परीक्षण के दौरान, पी.डब्ल्यू.-3 की जिरह के लिए अनुरोध करने वाला वर्तमान आवेदन 27.04.2023 को दिया गया है, वह भी साक्षीगण के साथ-साथ धारा 313 भा.द.सं. के अंतर्गत अभियुक्तगण के बयान दर्ज करने के बाद और मामला सुनवाई के लिए नियत किया गया है। अभिलेखों से, संबंधित न्यायालय ने पाया कि धारा 313 भा.द.सं. के अंतर्गत बयान दर्ज करने के लिए 15.04.2022 की तिथि नियत की गई थी। अभियुक्त प्रेमांशु और श्रीमती मिथलेश के बयान दर्ज किए गए और उनसे जिरह की गई। अभियुक्त पक्ष के तीन व्यक्तियों को भी परीक्षित किया गया। अभियुक्त पक्ष का उक्त साक्षीगण से जिरह 23.04.2022 से 27.08.2022 की अवधि तक हुआ। अभियुक्तों ने संबंधित न्यायालय के समक्ष कहा है कि वे अपना प्रकरण साबित करने के लिए कोई अन्य साक्षी पेश नहीं करना चाहते हैं, इसलिए मामले की सुनवाई नियत की गई। 22.12.2022 को अभियुक्तों की ओर से पी.डब्ल्यू.-4 को तलब करने के लिए एक आवेदन दिया गया था, जिसे अनुमति दी गई थी और पी.डब्ल्यू.-4 को 16.01.2023 को फिर से परीक्षित किया गया था। अभियोजन पक्ष की ओर से नौ साक्षीगण पेश किए गए हैं, जिनका परीक्षण व जिरह किया है। वाद के अभिलेख में श्री रामबहाल विद्यार्थी का वकालतनामा भी पाया गया। नवनियुक्त अधिवक्ता

श्री रामबहाल विद्यार्थी ने 27.04.2023 को पी.डब्ल्यू.-3 को तलब करने के लिए एक आवेदन दिया क्योंकि जिस समय उनको परीक्षित किया गया था, उस समय उनसे कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न नहीं पूछे जा सके थे। न्यायालय ने पाया कि पी.डब्ल्यू.-3 रामभवन की मुख्य परीक्षा 31.05.2018 को हुई थी, जिरह 04.07.2018 को जारी रही और उक्त तिथि को पूरी हुई। आवेदक द्वारा धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन से यह स्पष्ट है कि यह आवेदन केवल वाद के विचारण में देरी के लिए दायर किया गया है।

24. विचारण की निष्पक्षता को न केवल पीड़ित के दृष्टिकोण से, बल्कि अभियुक्त और समाज के दृष्टिकोण से भी देखा जाना चाहिए। ऐसी शक्ति का प्रयोग कब किया जा सकता है, इसकी सटीक स्थिति निर्धारित करना संभव नहीं है। विधायिका ने अपनी विवेकाधिकार से इस शक्ति को अपरिभाषित छोड़ दिया है। इस प्रकार, धारा 311 द.प्र.सं. के अंतर्गत शक्ति के दायरे पर प्रत्येक वाद में विचार किया जाना चाहिए।

25. अभियुक्त अपने अधिकार के तहत साक्षी को पुनः परीक्षित करने के लिए वापस नहीं बुला सकता और इस कमी को पूरा करने के लिए असाधारण प्रावधान का इस्तेमाल बाद में नहीं किया जा सकता।

26. अभिलेख पर प्रस्तुत सामग्री पर विचार करते हुए और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति के प्रयोग हेतु निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय का मत है कि वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर आवेदक के धारा 311 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन को खारिज करते समय विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज की गई टिप्पणियां और निष्कर्ष पूरी तरह से मान्य हैं। विचारण न्यायालय ने आवेदक के आवेदन को खारिज करके आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं की है। ऐसा प्रतीत होता है कि न्यायालय की प्रक्रिया का कोई दुरुपयोग भी नहीं हुआ है। इस न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं है कि यदि उक्त साक्षी को पुनः परीक्षण या आगे के परीक्षण के लिए वापस नहीं बुलाया जाता है, तो विचारण पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

27. उपरोक्त के मद्देनजर, आवेदक के आवेदन में कोई गुण-दोष नहीं है, खारिज किए जाने योग्य है। परिणामस्वरूप, आवेदन **खारिज** किया जाता है।

28. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह इस आदेश को संबंधित न्यायालय को संप्रेषित करे ताकि वाद को विधि के अनुसार आगे बढ़ाया जा सके।

29. न्यायालय, सुश्री श्रेया शुक्ला, रिसर्च एसोसिएट द्वारा की गई कड़ी मेहनत की सराहना करता है, जिन्होंने इस मामले में विस्तृत जानकारी पर ध्यान आकर्षित किया है और यह बात इस मामले में विधिक सहायता प्रदान करने के उनके कार्य में भी दिखाई देता है।

(2025) 1 ILRA 269

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 03.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 40201/2024

जितेन्द्र व अन्य

...आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

आवेदकगण के अधिवक्ता:

आदित्य प्रसाद मिश्रा

विपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - अध्याय XX - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 198 (1) - भा.द.सं. के अध्याय-XX के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए धारा 198 (1) द.प्र.सं. के तहत कोई संज्ञान नहीं, सिवाय अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के - जिसके बाद मजिस्ट्रेट धारा 200 द.प्र.सं. के अंतर्गत प्रक्रिया का पालन आगे करेगा -लेकिन इसमें पुलिस रिपोर्ट, यानी द.प्र.सं. की धारा 173(2) के अंतर्गत रिपोर्ट शामिल नहीं है-द.प्र.सं. की धारा 2(डी) के स्पष्टीकरण में, किसी पुलिस अधिकारी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट, जिसमें असंज्ञेय अपराध का खुलासा होता है, शिकायत मानी जाएगी, लेकिन यह स्पष्टीकरण भा.द.सं. के अध्याय XX के अंतर्गत लागू नहीं होता-वर्तमान वाद में कोई शिकायत नहीं है-इसलिए आरोप-पत्र स्वयं पोषणीय नहीं है-संज्ञान आदेश दोषपूर्ण है-अपेक्षित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया-आक्षेपित आदेश अस्वीकृत।

आवेदन स्वीकृत। (ई-9)

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती मंजू रानी चौहान द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदकों ने धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत वर्तमान आवेदन प्रस्तुत किया है, जिसमें दिनांक 10.04.2024 के आरोप पत्र, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, मथुरा द्वारा पारित दिनांक 19.07.2024 के संज्ञान आदेश एवं मुकदमा

अपराध संख्या 402 वर्ष 2023 अंतर्गत धारा 494 और 120-बी भा.द.सं., पुलिस स्टेशन जैत, जिला मथुरा से उत्पन्न आपराधिक वाद संख्या 63822 वर्ष 2024 की कार्यवाही को चुनौती दिया गया है।

2. वाद के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा 30.09.2023 को 10 नामजद व्यक्तियों के विरुद्ध, जिनमें आवेदक भी शामिल हैं, धारा 494 और 120-बी भा.द.सं. के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई गई थी, जिसमें अभिकथित किया गया कि आवेदक संख्या 1 का विवाह विपक्षी संख्या 2 के साथ 10.11.2016 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुआ था। बाद में, विपक्षी संख्या 2 से तलाक लिए बिना, आवेदक संख्या 1 ने 27.12.2022 को जिला बल्लभगढ़, हरियाणा में श्रीमती अंजू के साथ फिर से अपना दूसरा विवाह कर लिया। आवेदक संख्या 6, आवेदक संख्या 1 द्वारा अंजू के साथ किए गए उपरोक्त दूसरे विवाह में मध्यस्थ था। विवेचना के बाद, 10.04.2024 को आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और संबंधित न्यायालय ने 19.07.2024 के आदेश द्वारा संज्ञान लिया, इसलिए वर्तमान याचिका है।

3. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 198 के अनिवार्य प्रावधानों की अनदेखी की है, जो न्यायालय को भारतीय दंड संहिता (विवाह से संबंधित अपराध) के अध्याय-XX के तहत दंडनीय अपराध का संज्ञान लेने से, सिवाय अपराध से पीड़ित किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के, रोकता है। उन्होंने आगे कहा कि विवेचना शुरू करने से पहले, विपक्षी संख्या 2 और न ही विवेचना अधिकारी द्वारा धारा 155(2) द.प्र.सं. के अंतर्गत कोई अनुमति प्राप्त नहीं की गई थी, इसलिए पूरी कार्यवाही शून्य और अवैध है। अपने तर्कों के समर्थन में, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने **सूरज लाल जायसवाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (92006 55 एलएल क्रिसी 513 : 2006 4 एलएल एलजे 605)** के वाद में इस न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है।

4. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि यदि विचाराधीन अपराध गैर-संज्ञेय है, तो धारा 154 द.प्र.सं. के अंतर्गत एफआईआर दर्ज करना वर्जित है। गैर-संज्ञेय अपराध के संदर्भ में, संबंधित थाने पर केवल धारा 151 द.प्र.सं. के अंतर्गत एनसीआर दर्ज की जा सकती है, और गैर-संज्ञेय अपराधों की विवेचना करने के लिए सक्षम मजिस्ट्रेट की अनुमति अनिवार्य है, जिसके लिए एनसीआर दर्ज की जाती है।

5. **केशव लाल ठाकुर बनाम बिहार राज्य** (1996 0 सुप्रीम (एससी) 1694 : (1996) 11 एससीसी 557 : 1996 सपलीमेंटरी 7 एससीआर 578)के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करते हुए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि पुलिस धारा 155(2) द.प्र.सं. के अंतर्गत एक सक्षम मजिस्ट्रेट के आदेश के अनुसरण में एक गैर-संज्ञेय अपराध की विवेचना करने का हकदार है। वर्तमान वाद में, ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है, इसलिए, संज्ञान आदेश विधि की दृष्टि में गलत है।

6. उपरोक्त आधार पर बल देते हुए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि संज्ञान आदेश और आवेदकों के विरुद्ध शुरू की गई वाद की कार्यवाही को रद्द किया जाए।

7. दूसरी ओर, विद्वान ए.जी.ए. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क के अनुसार विधिक स्थिति पर विवाद नहीं कर सके। हालाँकि, उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि संबंधित न्यायालय द्वारा दिनांक 19.07.2024 के आदेश में विधिक स्थिति पर विस्तृत चर्चा की गई है, जिसके द्वारा आवेदकों को तलब किया गया है, इसलिए संबंधित न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया उसी प्रकार होनी चाहिए थी जैसी किसी परिवाद में अपनाई जाती है।

8. मैंने आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता श्री ए.पी. मिश्रा और राज्य के विद्वान ब्रीफ होल्डर श्री मयंक अवस्थी को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

9. संज्ञान आदेश और चुनौती दिए गए वाद की कार्यवाही पर आपत्ति जताते हुए, आवेदकों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा दो प्रकार से तर्क प्रस्तुत किए गए हैं: प्रथम, आरोप पत्र पोषणीय नहीं है और धारा 198(1) द.प्र.सं. के मददेनजर मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया जा सकता है। द्वितीय, असंज्ञेय अपराधों के लिए एनसीआर दर्ज किया जा सकती है, जिसमें विवेचना शुरू करने से पूर्व धारा 155(2) द.प्र.सं. के अंतर्गत अनुमति लेना अनिवार्य है।

10. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विस्तृत चर्चा करने से पहले, धारा 2(डी) और धारा 198(1) द.प्र.सं. के प्रावधानों को समझना उचित होगा जो इस प्रकार हैं:

2. परिभाषाएँ:

(घ) "शिकायत" का अर्थ है, इस संहिता के अंतर्गत कार्रवाई करने के उद्देश्य से, किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष मौखिक या लिखित रूप से किया गया कोई अभिकथन कि किसी ज्ञात या अज्ञात व्यक्ति ने कोई अपराध किया है, किन्तु इसमें पुलिस रिपोर्ट शामिल नहीं है।

198. विवाह के विरुद्ध अपराधों के लिए अभियोजन।---(1). कोई भी न्यायालय भारतीय दंड संहिता (45/1860) के अध्याय 20 के अंतर्गत दंडनीय किसी अपराध का संज्ञान उस अपराध से व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के अलावा नहीं लेगा:
बशर्ते कि—

(क) जहाँ ऐसा व्यक्ति अठारह वर्ष से कम आयु का है, या मूर्ख या पागल है, या बीमारी या अशक्तता के कारण शिकायत करने में असमर्थ है, या ऐसी महिला है, जिसे स्थानीय रीति-रिवाजों और तरीकों के अनुसार सार्वजनिक रूप से उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं किया जाना चाहिए, वहाँ कोई अन्य व्यक्ति न्यायालय की अनुमति से उसकी ओर से शिकायत कर सकता है;

(ख) जहां ऐसा व्यक्ति पति है और वह संघ के किसी सशस्त्र बल में ऐसी परिस्थितियों में सेवा कर रहा है, जो उसके कमांडिंग ऑफिसर द्वारा प्रमाणित हैं कि वे उसे व्यक्तिगत रूप से शिकायत करने के लिए अनुपस्थिति की छुट्टी प्राप्त करने से रोकते हैं, वहां उप-धारा (4) के प्रावधानों के अनुसार पति द्वारा अधिकृत कोई अन्य व्यक्ति उसकी ओर से शिकायत कर सकता है;

(ग) जहां भारतीय दंड संहिता (45/1860) की धारा 494 या 495) [धारा 494 के स्थान पर अधिनियम 45, 1978 की धारा 17(क) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया (18-12-1978 से प्रभावी)] के तहत दंडनीय अपराध से व्यथित व्यक्ति पत्नी है, वहां उसकी ओर से उसके पिता, माता, भाई, बहन, पुत्र या पुत्री या उसके पिता या माता के भाई या बहन द्वारा (या न्यायालय की अनुमति से, रक्त, विवाह या दत्तक ग्रहण द्वारा उससे संबंधित किसी अन्य व्यक्ति द्वारा)[संशोधित: अधिनियम 45, 1978 के द्वारा, धारा 17(ii), (प्रभावी तिथि: 18-12-1978)] शिकायत की जा सकती है।"

11. धारा 2(घ) और 198(1) दंड प्रक्रिया संहिता के उपर्युक्त प्रावधानों को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 198(1) के अनुसार, भारतीय दंड संहिता के अध्याय-XX के अंतर्गत दंडनीय किसी अपराध के लिए मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान, सिवाय उस अपराध से व्यथित किसी व्यक्ति द्वारा की गई शिकायत के, नहीं लिया जा सकता। अतः, व्यथित व्यक्ति द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत कार्रवाई करने के उद्देश्य से मौखिक अभिकथन करके या लिखित आवेदन प्रस्तुत करके मजिस्ट्रेट को शिकायत की जानी चाहिए कि किसी ज्ञात या अज्ञात व्यक्ति ने अपराध किया है। इसके बाद, मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 और उसके बाद निर्धारित प्रक्रिया का पालन करेगा, लेकिन इसमें पुलिस रिपोर्ट, अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के अंतर्गत रिपोर्ट शामिल नहीं है।

13. जैसा भी हो, द.प्र.सं. की धारा 2(डी) के स्पष्टीकरण में, एक पुलिस अधिकारी द्वारा की गई रिपोर्ट जो एक असंज्ञेय अपराध का खुलासा करती है, उसे शिकायत माना जाएगा लेकिन यह स्पष्टीकरण भा.द.सं. के अध्याय XX के अंतर्गत लागू नहीं होता है, इस प्रकार, वर्तमान वाद में कोई शिकायत नहीं था, इसलिए आरोपपत्र स्वयं में पोषणीय नहीं है और इसलिए, इस तरह के आरोपपत्र के आधार पर संज्ञान आदेश निष्प्रभावी है।

14. संज्ञान आदेश के अवलोकन पर, यह न्यायालय पाता है कि यद्यपि संबंधित न्यायालय ने नोट किया है कि एक परिवाद दायर किया जाना चाहिए था, इस प्रकार, उपरोक्त को एक परिवाद के रूप में मानते हुए उन्हें धारा 200 द.प्र.सं. के अंतर्गत निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना चाहिए था।

15. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों और विधि के विधिक प्रस्ताव पर विचार करने के पश्चात्, यह न्यायालय यह पाता है कि आवेदकों को समन जारी करते समय संबंधित न्यायालय ने इसे एक परिवाद के रूप में माना है, किन्तु शिकायतकर्ता को द.प्र.सं. की धारा 200 के अंतर्गत बयान दर्ज कराने के लिए बुलाने हेतु अपेक्षित प्रक्रिया का पालन नहीं किया है और परिवाद के अंतर्गत अपेक्षित अन्य प्रक्रिया का

पालन नहीं किया है। अतः, दिनांक 19.07.2024 का आक्षेपित आदेश इस सीमा तक निरस्त किया जाता है कि इस वाद को एक परिवाद के रूप में माना जाएगा और विपक्षी संख्या 2 को नोटिस जारी करने के पश्चात् संबंधित न्यायालय एक परिवाद में अपेक्षित विधि के अनुसार कार्यवाही करेगा।

16. यदि पक्षकार इस आदेश से व्यथित महसूस करते हैं, तो वे इस न्यायालय के समक्ष *रिक्त* आवेदन प्रस्तुत करने के लिए स्वतंत्र हैं।

17. तदनुसार, आवेदन आंशिक रूप से स्वीकार किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 272

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरूण कुमार सिंह देशवाल

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 43911/2019

फराहीम कुरैशी

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता:

आमिर खान

विपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 295-ए-आवेदक ने सोशल मीडिया पर कुछ पोस्ट की - एफआईआर - केवल वे शब्द - जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से बोले या लिखे गए - किसी भी वर्ग के नागरिक की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के लिए - भा.द.सं. की धारा 295-ए के अंतर्गत अपराध के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है - यदि इसका उद्देश्य किसी विशेष राजनीतिक दल या समूह का अपमान करना है, जो किसी भी धर्म या उसके विश्वास से अभिन्न रूप से जुड़ा नहीं है, तो भा.द.सं. की धारा 295-ए के तत्व आकर्षित नहीं होंगे - पूरी कार्यवाही रद्द की गई।

आवेदन निस्तारित किया गया। (ई-9)

उद्धृत वादों की सूची:

1. अमीश देवगन बनाम भारत संघ, (2021) 1 एससीसी 1
2. रामजी लाल मोदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1957 एससी 620
3. महेंद्र सिंह धोनी बनाम येरागुंटला श्यामसुंदर और अन्य, (2017) 7 एससीसी 760

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से दायर समझौता शपथपत्र को अभिलेख पर लिया गया।
2. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री आमिर खान, विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री हेमन्त शर्मा के ब्रीफ होल्डर श्री सौरभ कुमार और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता श्री पंकज सक्सेना को सुना गया।
3. वर्तमान 482 द.प्र.सं. आवेदन, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, खुर्जा, बुलंदशहर के न्यायालय में लंबित धारा 295-ए भा.द.सं. के अंतर्गत आपराधिक वाद संख्या 620/2019, थाना- खुर्जा नगर, जिला- बुलंदशहर में दिनांक 18.02.2019 को जारी आरोप पत्र की संपूर्ण कार्यवाही और विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, खुर्जा, बुलंदशहर द्वारा दिनांक 05.07.2019 को पारित संज्ञान आदेश को रद्द करने के लिए दायर किया गया है।
4. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि आवेदक ने सोशल मीडिया पर कुछ पोस्ट किया था, जो संबंधित एफआईआर का आधार हैं। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि यदि एफआईआर के संपूर्ण अभिकथन और आवेदक द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट को भी सत्य मान लिया जाए, तब भी भा.द.सं. की धारा 295-ए के अंतर्गत अपराध नहीं बनता है, क्योंकि भा.द.सं. की धारा 295-ए के अंतर्गत मूल आधार धार्मिक भावनाओं को आहत करने का जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादा है, लेकिन आवेदक की पोस्ट में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिससे पता चले कि यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी धर्म से संबंधित है या किसी धार्मिक भावनाओं को आहत करने का इरादा रखता है। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि अब आवेदक और विपक्षी संख्या 2 ने भी अपने विवाद को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया है और उनके बीच दिनांक 20.11.2024 को एक लिखित समझौता भी हो गया है, जिसमें विपक्षी संख्या 2 ने स्पष्ट रूप से कहा है कि वह आक्षेपित कार्यवाही को आगे नहीं बढ़ाना चाहता है।

5. इसके विपरीत, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि यह एक राज्य मामला है, जो आम जनता से संबंधित है और केवल इसलिए कि विपक्षी संख्या 2 प्रथम सूचनाकर्ता था, आवेदक और प्रथम सूचनाकर्ता के बीच समझौते के आधार पर आक्षेपित कार्यवाही को रद्द नहीं किया जा सकता है।

6. पक्षों के प्रस्तुतीकरण और अभिलेख के अवलोकन पर विचार करने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि आवेदक ने सोशल मीडिया पर एक संदेश पोस्ट किया है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:-

पुलवामा अटैक, कहीं 2019 की तैयारी तो नहीं, मुझे तो ऐसा ही लगता है, ये राजनीति बड़ी कुत्ती चीज़ है। आप लोग क्या सोचते हो।

7. यह संदेश ही एफआईआर दर्ज करने और उसके बाद आक्षेपित आरोप पत्र दाखिल करने का आधार था, क्योंकि विपक्षी संख्या 2 के बयान के अलावा कोई अन्य सामग्री नहीं था और साथ ही उपरोक्त संदेश आरोप पत्र दाखिल करने का आधार था।

8. भा.द.सं. की धारा 295-ए के अंतर्गत दायित्व को आकर्षित करने के लिए, मूल शर्त यह है कि आशय नागरिकों के किसी भी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने का होना चाहिए, शब्दों के द्वारा, चाहे बोले गए या लिखे गए, या संकेतों द्वारा या दृश्य चित्रण द्वारा या अन्यथा, नागरिकों के वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान या अपमान करने का प्रयास किया जाना चाहिए। धारा 295-ए भा.द.सं. निम्नलिखित रूप में उद्धृत किया जा रहा है:-

"295ए. जो कोई, भारत के नागरिकों के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से, मौखिक या लिखित शब्दों द्वारा, या संकेतों या दृश्य रूपों द्वारा या अन्यथा, उस वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करता है या अपमान करने का प्रयास करता है, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से, जिसे तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, या जुर्माना, या दोनों से दंडित किया जाएगा।"

9. भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए की परिभाषा के अवलोकन से, यह स्पष्ट है कि इस धारा के अंतर्गत दायित्व को आकर्षित करने के लिए, नागरिक के किसी भी वर्ग की धार्मिक भावना या धार्मिक विश्वास को ठेस पहुँचाने का इरादा होना चाहिए। यदि मौखिक या लिखित शब्दों या किसी अन्य तरीके से यह प्रतीत होता है कि यह धार्मिक भावना को आहत करने के लिए नहीं था, बल्कि किसी अन्य उद्देश्य से था, जैसे किसी राजनीतिक दल या किसी विशेष समूह पर हमला करना, जो किसी भी तरह से किसी विशेष धर्म से संबद्ध नहीं है, तो इस धारा के अंतर्गत अपराध आकर्षित नहीं होगा। भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए से यह भी स्पष्ट है कि धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने का इरादा जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण होना चाहिए। इसलिए, यदि कोई व्यक्ति अनजाने में या लापरवाही से या धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के किसी जानबूझकर या दुर्भावनापूर्ण इरादे के बिना किसी धर्म का अपमान करता है, तो वह भी भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए के अंतर्गत उत्तरदायी नहीं होगा।

10. भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए के संभाव्य को सर्वोच्च न्यायालय में **रामजी लाल मोदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1957 एससी 620** के वाद में चुनौती दी गई थी, जिसकी सुनवाई संविधान पीठ द्वारा की गई थी और मामले की सुनवाई के बाद, सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ ने भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए की वैधता को बरकरार रखा और कहा कि यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के अंतर्गत गारंटीकृत मौलिक अधिकार को प्रभावित नहीं करती है। **रामजी लाल मोदी (पूर्वोक्त)** के प्रस्तर संख्या 8 और 9 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

"8. यह इंगित किया गया कि धारा 295-ए को दंड संहिता के अध्याय XV में शामिल किया गया है, जो धर्म से संबंधित अपराधों से संबंधित है, न कि अध्याय VIII में जो सार्वजनिक शांति के विरुद्ध अपराधों से संबंधित है और इस परिस्थिति से यह तर्क देने का प्रयास किया जाता है कि धर्म से संबंधित अपराधों का सार्वजनिक व्यवस्था या शांति बनाए रखने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है और परिणामस्वरूप, धर्म से संबंधित अपराध बनाने वाला और भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार पर प्रतिबंध लगाने वाला विधि अनुच्छेद 19 के खंड (2) के संरक्षण का दावा नहीं कर सकता है। संविधान के अनुच्छेद 25 और 26 का संदर्भ, जो धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी देते हैं, यह दर्शाएगा कि यह तर्क पूरी तरह से अस्थिर है। उन अनुच्छेदों द्वारा सुनिश्चित धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार स्पष्ट रूप से सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन है। इसलिए, यह प्रतिपादित नहीं किया जा सकता कि धार्मिक स्वतंत्रता का लोक व्यवस्था बनाए रखने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, या यह कि धर्म से संबंधित अपराध बनाने वाले किसी भी विधि को किसी भी परिस्थिति में लोक व्यवस्था के हित में अधिनियमित नहीं कहा जा सकता। इन दोनों अनुच्छेदों में यह प्रावधान है कि लोक व्यवस्था के हित में इनके द्वारा गारंटीकृत अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।

9. विद्वान अधिवक्ता ने फिर अपना तर्क बदल दिया और अपनी आपत्ति को थोड़े अलग तरीके से प्रस्तुत किया। विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि भारत के नागरिकों के एक वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान कुछ मामलों में सार्वजनिक अशांति का कारण बन सकता है, लेकिन कई मामलों में ऐसा नहीं भी हो सकता है, इसलिए, ऐसा विधि जो केवल धर्म के अपमान को अपराध बनाकर नागरिकों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाता है, दोनों प्रकार के अपमानों को आच्छादित करेगा, यानी वे जो सार्वजनिक अशांति का कारण बन सकते हैं और वे भी जो नहीं बन सकते। जहाँ तक यह विधि प्रथम श्रेणी को आच्छादित करता है, उसे अनुच्छेद 19 के खंड (2) के अर्थ में लोक व्यवस्था के हित में अधिनियमित कहा जा सकता है, लेकिन जहाँ तक यह शेष श्रेणी को आच्छादित करता है, वह उस खंड के अंतर्गत नहीं आएगा। इस तर्क का निष्कर्ष यह है कि जब तक संविधान द्वारा अनुमोदित नहीं किए गए उद्देश्यों के लिए विधि के लागू होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता, तब तक पूरे विधि को असंवैधानिक और शून्य माना जाना चाहिए। आक्षेपित धारा में प्रयुक्त भाषा को देखते हुए, हम इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं। सबसे पहले, अनुच्छेद 19 का खंड (2) "लोक व्यवस्था के हित में" वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग पर उचित प्रतिबंध लगाने वाले विधि का संरक्षण करता है, जो "लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए" से कहीं अधिक व्यापक है। इसलिए, यदि कुछ गतिविधियों से लोक व्यवस्था फैलने की प्रवृत्ति होती है, तो ऐसी गतिविधियों को

अपराध के रूप में दंडित करने वाले विधि को "लोक व्यवस्था के हित में" उचित प्रतिबंध लगाने वाला विधि ही माना जाएगा, हालाँकि कुछ मामलों में वे गतिविधियाँ वास्तव में लोक व्यवस्था के उल्लंघन का कारण नहीं बन सकती हैं। इसके अतिरिक्त, धारा 295-ए नागरिकों के किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करने या उनका अपमान करने के प्रयास करने वाले प्रत्येक व किसी भी कार्य को दंडित नहीं करती है, बल्कि यह केवल नागरिकों के किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करने वाले या उनका अपमान करने के विभिन्न प्रकार के प्रयासों वाले कार्यों को दंडित करती है, जो उस वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से किए जाते हैं। अनजाने में या लापरवाही से या उस वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के किसी जानबूझकर या दुर्भावनापूर्ण इरादे के बिना किए गए धर्म का अपमान इस धारा के दायरे में नहीं आता है। यह धर्म के अपमान के केवल गंभीर रूप को दंडित करता है, जब यह उस वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से किया जाता है। अपमान के इस गंभीर रूप की गणना की गई प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित करना है और यह धारा, जो इस तरह की गतिविधियों को दंडित करती है, अनुच्छेद 19 के खंड (2) के संरक्षण में है क्योंकि यह अनुच्छेद 19(1)(ए) द्वारा गारंटीकृत भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग पर उचित प्रतिबंध लगाता है। आक्षेपित धारा द्वारा बनाए गए अपराध के अवयवों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, इस विधि को संविधान द्वारा अनुमोदित नहीं किए गए उद्देश्यों के लिए लागू किए जाने की कोई संभावना नहीं हो सकती है। दूसरे शब्दों में, इस धारा में प्रयुक्त भाषा इतनी व्यापक नहीं है कि वह अनुच्छेद 19(1)(ए) द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार को प्रभावित करने वाली संवैधानिक रूप से स्वीकार्य विधायी कार्रवाई की सीमाओं के भीतर और बाहर प्रतिबंधों को आच्छादित कर सके और परिणामस्वरूप, पृथक्करण का प्रश्न ही नहीं उठता और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, वे इस वाद पर लागू नहीं होते हैं।"

11. सर्वोच्च न्यायालय ने **महेंद्र सिंह धोनी बनाम येरागुटला श्यामसुंदर एवं अन्य, (2017) 7 एससीसी 760** के वाद में भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए पर फिर से विचार किया। उस वाद में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए हर चीज को दंडित करने का प्रावधान नहीं करती है और प्रत्येक कार्य धर्म या धार्मिक विश्वास का अपमान होगा या अपमान करने का प्रयास होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए केवल धर्म या धार्मिक विश्वास का अपमान करने या अपमान करने के प्रयासों के उन कृत्यों को दंडित करती है, जो जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण रूप से नागरिकों के एक वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के इरादे से किए गए हों। **महेंद्र सिंह धोनी (पूर्वोक्त)** के प्रस्तर संख्या 6 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

6. उपर्युक्त अंशों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि धारा 295-ए में दंडनीय सभी कार्यों का उल्लेख नहीं है और कोई भी कार्य नागरिकों के किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करने या अपमान करने का प्रयास करने के समान होगा। यह केवल उन अपमानजनक कृत्यों या नागरिकों के किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करने के प्रयासों के प्रकारों को दंडित करता है, जो उस वर्ग के नागरिकों की धार्मिक

भावनाओं को ठेस पहुँचाने के जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से किए जाते हैं। अनजाने में या लापरवाही से या उस वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के किसी जानबूझकर या दुर्भावनापूर्ण इरादे के बिना किए गए धर्म के अपमान इस धारा के अंतर्गत नहीं आते हैं। संविधान पीठ ने आगे स्पष्ट किया है कि उक्त प्रावधान केवल धर्म के अपमान के गंभीर रूप को दंडित करता है, जब यह उस वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से किया जाता है। अपमान के उक्त उग्र रूप की सुनियोजित प्रवृत्ति और दंड को आमंत्रित करने के लिए सार्वजनिक व्यवस्था को बाधित करने पर भी बल दिया गया है।

12. उपरोक्त विधिक स्थिति को सर्वोच्च न्यायालय ने **अमीश देवगन बनाम भारत संघ, (2021) 1 एससीसी 1** के वाद में फिर से दोहराया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि धारा 295-ए भा.द.सं. का प्रथम भाग विशेष रूप से किसी भी वर्ग के नागरिकों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए निर्माता की ओर से जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे को संदर्भित करता है और अंतिम भाग नुकसान-आधारित तत्व, अर्थात् उस वर्ग के धर्मों या धार्मिक विश्वास का अपमान या अपमान करने का प्रयास को संदर्भित करता है। **अमीश देवगन (पूर्वोक्त)** के प्रस्तर संख्या 100 को निम्नानुसार उद्धृत किया जा रहा है:

100. दो प्रावधानों की व्याख्या पहले कई मामलों में की जा चुकी है, जिनमें रामजी लाल मोदी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर 1957 एससी 620, केदार नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1962 एससी 955, बिलाल अहमद कालू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1997) 7 एससीसी 431 शामिल हैं। यह कहना सही होगा कि दंड संहिता की धारा 295-ए सभी तीन तत्वों को समाहित करती है, अर्थात् यह सामग्री-आधारित तत्व को संदर्भित करती है जब यह बोले गए या लिखे गए शब्दों या संकेतों या दृश्य प्रतिनिधित्व या अन्यथा को संदर्भित करती है। हालांकि, यह अकेले सामग्री के आधार पर किसी व्यक्ति को अपराध का दोषी नहीं बनाता है। पहला भाग भारत के नागरिकों के किसी भी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के निर्माता की ओर से जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे को संदर्भित करता है। धारा 295-ए का अंतिम भाग हानि-आधारित तत्व, अर्थात् उस वर्ग के धर्मों या धार्मिक विश्वासों का अपमान या अपमान करने का प्रयास, को संदर्भित करता है। इसी प्रकार, धारा 505 की उप-धारा (2) किसी व्यक्ति द्वारा अफवाह या चिंताजनक समाचार वाले किसी बयान या रिपोर्ट को प्रकाशित या प्रसारित करने को संदर्भित करती है। इसके बाद, यह उस व्यक्ति के इरादे को संदर्भित करता है जो पैदा करना या बढ़ावा देना होना चाहिए और फिर हानि-आधारित तत्व, अर्थात् धर्म, मूलवंश, जन्मस्थान, निवास, भाषा, जाति आदि के आधार पर विभिन्न धर्मों, नस्लीय भाषा, धार्मिक समूहों या जातियों या समुदायों आदि के बीच शत्रुता, घृणा या दुर्भावना की भावना पैदा करना या बढ़ावा देना संभावित है।

13. उपरोक्त विश्लेषण और विधिक स्थिति से यह स्पष्ट है कि केवल वे शब्द, जो किसी भी वर्ग के नागरिक की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण इरादे से बोले या लिखे गए हों, उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए के अंतर्गत अपराध की श्रेणी में रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह भी देखा गया है कि केवल इसलिए कि सोशल मीडिया पर कोई विशेष शब्द या पोस्ट किसी विशेष राजनीतिक दल या समूह का अपमान करने का इरादा रखता है, जो किसी भी धर्म या उसकी आस्था से अभिन्न रूप से

जुड़ा नहीं है, उस पर भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए लागू नहीं होगी क्योंकि यह किसी भी तरह से किसी वर्ग के नागरिक की धार्मिक भावना या आस्था को प्रभावित या अपमानित नहीं करता है।

14. आवेदक द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए के अंतर्गत कोई अपराध नहीं बनता है और अभिलेख में ऐसा कोई तथ्य नहीं है कि इस पोस्ट के अतिरिक्त, आवेदक द्वारा सोशल मीडिया पर कोई अन्य पोस्ट की गई है, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 295-ए के अंतर्गत अपराध के तत्वों को आकर्षित कर सके। अतः, आक्षेपित कार्यवाही रद्द किए जाने योग्य है।

15. यह न्यायालय यह भी मानता है कि विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता की यह आपति भी सही है कि यदि समाज के विरुद्ध अपराध से संबंधित किसी व्यक्ति विशेष द्वारा कोई एफ.आई.आर. दर्ज कराई गई है, तो अभियुक्त और प्रथम सूचनाकर्ता के बीच समझौते के आधार पर, ऐसे मामलों में कार्यवाही निरस्त नहीं की जा सकती, जो व्यापक रूप से जनता के विरुद्ध हैं।

16. उपरोक्त के मददेनजर, विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, खुर्जा, बुलंदशहर के न्यायालय में लंबित आपराधिक वाद संख्या 620/2019 अंतर्गत धारा 295-ए भा.द.सं., थाना- खुर्जा नगर, जिला- बुलंदशहर में दिनांक 18.02.2019 को आरोप पत्र की संपूर्ण कार्यवाही और साथ ही विद्वान अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, खुर्जा, बुलंदशहर द्वारा पारित दिनांक 05.07.2019 के संज्ञान आदेश को एतद्वारा रद्द किया जाता है।

17. तदनुसार इस आवेदन का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 277

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजीव सिंह

आवेदन अंतर्गत धारा 483 संख्या - 453/2024

कृष्ण चंद्र सिंह उर्फ मुन्ना सिंह

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...आवेदक

...विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता:

पंकज कुमार वर्मा, करम चंद यादव

विपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 145 और 482:- धारा 482 के अंतर्गत आवेदन - विचारण न्यायालय को निर्देश देने के लिए - कि वह इस न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर लंबित आपराधिक पुनरीक्षण पर निर्णय दे - न्यायालय का मानना है कि, आवेदन के लंबित रहने के दौरान, संबंधित आपराधिक पुनरीक्षण पर पहले ही निर्णय हो चुका है, फलस्वरूप वर्तमान आवेदन निष्फल हो जाता है और तदनुसार निरस्त किया जाता है - न्यायालय का मानना है कि, *इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, सोनू अग्निहोत्री बनाम चंद्रशेखर एवं अन्य तथा अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य* के वादों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्देश दिया था कि विचारण न्यायपालिका में न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात को बढ़ाकर 50 प्रति दस लाख करने के लिए पाँच वर्षों के भीतर प्रयास किया जाना चाहिए - हालाँकि, मुख्य सचिव और प्रमुख सचिव विधि, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा दायर व्यक्तिगत शपथपत्रों के अवलोकन से - वर्ष 2024 तक 25 प्रति दस लाख का अनुपात प्राप्त नहीं किया गया है - अभिनिर्धारित,- इस मुद्दे का हमारी न्यायिक प्रणाली पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है और इसलिए 9149 न्यायालयों के गठन का निर्देश व्यापक जनहित से संबंधित है। रजिस्ट्री को भी निर्देश दिया जाता है कि वह इस आवेदन को एक अलग वाद के रूप में, जनहित याचिका के रूप में पंजीकृत करे और उचित निर्देश के लिए माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत करे। (प्रस्तर 10, 11, 12, 14)

आवेदन जनहित याचिका के रूप में लंबित है। (ई-11)

उद्धृत वादों की सूची:

1. उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम नीरज चौबे एवं अन्य - 2010 (10) एससीसी 320,
2. सोनू अग्निहोत्री बनाम चंद्रशेखर एवं अन्य - 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3382,
3. अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य - 2002 (4) एससीसी 247,
4. इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य -आपराधिक अपील संख्या 254-262/2012 में - प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362-2370/2019

(माननीय न्यायमूर्ति राजीव सिंह द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता राव नरेन्द्र सिंह द्वारा सहायता प्राप्त विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन इस प्रार्थना के साथ दायर किया गया है कि प्रतिवादी संख्या 2, प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, बहराइच को आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 132/2010 (रामेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम जय राज सिंह एवं अन्य) को इस न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर निर्णीत करने का निर्देश दिया जाए।

3. जहां तक वर्तमान आवेदन में की गई प्रार्थना का संबंध है, यह सूचित किया गया है कि आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 132/2010 (पूर्वोक्त) को अवर न्यायालय द्वारा दिनांक 23.07.2024 के आदेश द्वारा पहले ही निर्णीत किया जा चुका है, इसलिए आवेदन निष्फल हो गया है और तदनुसार खारिज किया जाता है।

4. हालाँकि, वर्तमान मामले की उत्पत्ति को देखते हुए, इस न्यायालय ने 08.07.2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

“आवेदक के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज कुमार वर्मा और विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री विनोद कुमार साही, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा बुलाया गया था, को उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान एजीए श्री एस.पी. तिवारी द्वारा सहायता प्रदान करते हुए सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया। इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक, जो वर्तमान में लगभग 51 वर्ष का है, ने निम्नलिखित मुख्य अनुतोष के लिए प्रार्थना की है:-

“विपक्षी संख्या 2 (प्रथम अपर सत्र न्यायाधीश, जिला बहराइच) को निर्देश दिया जाए कि वे आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 132/2010 (रामेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम जय राज सिंह एवं अन्य) जो 2010 से विपक्षी संख्या 2 के समक्ष लंबित है, को न्याय के हित में माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित समय के भीतर निर्णीत करें। 1.”

अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि धारा 145 द.प्र.सं. के अंतर्गत शुरू की गई कार्यवाही, जो वाद संख्या 37/57/106 है, में आवेदक के पक्ष में 16.03.2010 को परगना अधिकारी, कैसरगंज, तहसील- कैसरगंज, जिला बहराइच द्वारा एक आदेश पारित किया गया था और 16.03.2010 के आदेश से व्यथित होकर, विपक्षी संख्या 3 से 8 ने एक पुनरीक्षण अर्थात् आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 132/2010 (रामेन्द्र सिंह एवं अन्य बनाम जय राज सिंह एवं अन्य) दायर किया, जिसका आज तक निस्तारण नहीं हुआ है।

उपर्युक्त से, यह स्पष्ट है कि 14 वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन पुनरीक्षण आज तक निर्णीत नहीं हुआ है। मुख्य अनुतोष के लिए वर्तमान आवेदन पर बल देते हुए, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि (2002) 4 एससीसी 247 में प्रतिवेदित अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के वाद में पारित निर्णय के प्रस्तर 24 और 25 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों के अनुसार, जो नीचे उद्धृत हैं, न्यायाधीश विचारण न्यायालय में उपलब्ध नहीं हैं और इस कारण से, विचारण न्यायालय पर अत्यधिक बोझ है और इस मामले के इस दृष्टिकोण में, विचारण न्यायालय उचित समय के भीतर प्रकरणों को शीघ्रता से निर्णीत करने में असमर्थ हैं। वर्तमान वाद में, पुनरीक्षण, जो संक्षिप्त कार्यवाही से संबंधित है, 14 साल बीत जाने के बाद भी निर्णीत नहीं किया गया है। इस प्रकार, मांगी गई मुख्य प्रार्थना को कृपया स्वीकार किया जाए।

24. श्री एफ.एस. नरीमन ने न्याय प्रदान करने के संबंध में एक और महत्वपूर्ण पहलू, अर्थात् लंबितवादों का विशाल समूह की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। 120वें विधि आयोग की रिपोर्ट में भी इसका एक कारण देश की जनसंख्या की तुलना में न्यायाधीशों की अपर्याप्त संख्या बताया गया है। श्री प्रणब मुखर्जी की अध्यक्षता वाली संसद की स्थायी समिति ने भी फरवरी 2002 में संसद को प्रस्तुत अपनी 85वीं रिपोर्ट में न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि की सिफारिश की है। उक्त समिति ने विभिन्न देशों में न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात का उल्लेख किया है और भारत में प्रति 10 लाख व्यक्तियों पर 10.5 न्यायाधीशों के न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात पर प्रतिकूल टिप्पणी की है। रिपोर्ट में, प्रथम दृष्टया, 120वें विधि आयोग की रिपोर्ट की सिफारिश के अनुसार, न्यायाधीशों की संख्या को प्रति 10 लाख व्यक्तियों पर 50 न्यायाधीशों तक बढ़ाने की स्वीकृति की सिफारिश की गई है।

25. एक स्वतंत्र एवं कुशल न्यायिक प्रणाली हमारे संविधान की मूल संरचनाओं में से एक है। यदि पर्याप्त संख्या में न्यायाधीशों की नियुक्ति नहीं की जाती, तो लोगों को न्याय नहीं मिल पाएगा, जिससे मूल संरचना कमजोर हो जाएगी। यह सर्वविदित है कि विलंबित न्याय, न्याय से वंचित करने के समान है। न्यायाधीशों की अपर्याप्त संख्या पर बार-बार प्रतिकूल टिप्पणी की गई है। न केवल विधि आयोग और संसद की स्थायी समिति ने इस संबंध में टिप्पणियाँ की हैं, बल्कि न्यायपालिका के प्रमुख, अर्थात् भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को भी इस संबंध में टिप्पणियाँ करने के एक से अधिक अवसर मिले हैं। इन परिस्थितियों में, हम महसूस करते हैं कि यह सुनिश्चित करना हमारा संवैधानिक दायित्व है कि लंबितवादों की संख्या कम की जाए और वादों के निस्तारण में वृद्धि के प्रयास किए जाएँ। न्यायिक अधिकारियों की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए आवश्यक कदमों के अलावा, हमारा यह मत है कि अब समय आ गया है कि संविधान के एक स्तंभ, अर्थात् न्यायिक प्रणाली की रक्षा की जाए, और इसके लिए सबसे पहले न्यायाधीशों की संख्या को मौजूदा अनुपात 10.5 या प्रति 10 लाख लोगों पर 13 से बढ़ाकर 50 न्यायाधीश प्रति 10 लाख लोगों पर करने का निर्देश दिया जाए। हम इस तथ्य से अवगत हैं कि इन रिक्तियों को रातोंरात नहीं भरा जा सकता। अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए न केवल पदों का सृजन करना होगा, बल्कि अतिरिक्त न्यायालय कक्षों, भवनों, कर्मचारियों आदि के रूप में आवश्यक बुनियादी ढांचा भी उपलब्ध कराना होगा। हम इस तथ्य से भी अवगत हैं कि स्वीकृत पदों में से आज की तिथि में बड़ी संख्या में रिक्तियाँ भरी जानी बाकी हैं। इसलिए, हम सबसे पहले निर्देश देते हैं कि सभी राज्यों में अधीनस्थ न्यायालयों में सभी स्तरों पर मौजूदा रिक्तियों को, यदि संभव हो तो 31-3-2003 तक भरा जाना चाहिए। न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाकर प्रति 10 लाख लोगों पर 50 न्यायाधीश करने का कार्य प्रभावी किया जाना चाहिए तथा इसे केन्द्रीय विधि मंत्रालय द्वारा निर्धारित एवं निर्देशित चरणबद्ध तरीके से पदों को भरने के साथ क्रियान्वित किया जाना चाहिए, लेकिन यह प्रक्रिया आज से पांच वर्ष की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए तथा बढ़ी हुई रिक्तियों एवं पदों को भरा जाना चाहिए। संभवतः प्रति वर्ष 10 लाख लोगों पर 10 न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाना उन तरीकों में से एक हो सकता है जिन्हें अपनाया जा सकता है, जिससे पहला चरण पाँच वर्षों के भीतर पूरा हो सके और यदि आवश्यक हो तो आगे और वृद्धि की जा सके।

उपर्युक्त पर, विशेष रूप से धारा 145 द.प्र.सं. के अंतर्गत कार्यवाही में पारित आदेश को चुनौती देने वाले पुनरीक्षण के लंबित रहने की अवधि और साथ ही उपर्युक्त वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों पर, यह न्यायालय, न्यायालय के संबंधित अधिकारियों को यह निर्देश देना उचित समझता है कि वे इस न्यायालय को अवगत कराएँ कि अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ (पूर्वोक्त) के वाद में पारित निर्णय में दर्शाए गए अनुपात का अनुपालन करने के लिए क्या कदम उठाए गए हैं।

तदनुसार, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार और प्रमुख सचिव, विधि/विधिक स्मरण, उत्तर प्रदेश सरकार को उपरोक्त पर दो सप्ताह के भीतर व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया जाता है।

इस वाद को 25.07.2024 को शीर्ष दस वादों में नए के रूप में सूचीबद्ध/प्रस्तुत करें।”

5. उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में, श्री विनोद सिंह रावत, प्रमुख सचिव विधि, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ द्वारा दिनांक 20.08.2024 को, श्री मनोज कुमार सिंह, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ द्वारा दिनांक 07.09.2024 को तथा श्री दीपक कुमार, अपर मुख्य सचिव, वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ द्वारा दिनांक 19.10.2024 को व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल किए गए हैं।

6. श्री विनोद सिंह रावत द्वारा दायर दिनांक 20.08.2024 के शपथपत्र में, यह स्वीकार किया गया है कि जनसंख्या के आधार पर न्यायाधीशों की संख्या के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** (आपराधिक अपील संख्या 254-262/2012 में प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362-2370/2019) के वाद में, यह देखा है कि राष्ट्रीय न्यायालय प्रबंधन प्रणाली समिति के अध्यक्ष की रिपोर्ट से पता चलता है कि जिला न्यायपालिका में न्यायालयों की न्यायाधीश संख्या का आकलन प्रत्येक न्यायालय के मुकदमों के भार के निस्तारण के लिए आवश्यक न्यायिक घंटों की कुल संख्या निर्धारित करने के लिए एक वैज्ञानिक पद्धति से करना होगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी देखा कि चूंकि केंद्र सरकार मोटे तौर पर इस दृष्टिकोण से सहमत है, इसलिए जिला न्यायपालिका में आवश्यक न्यायाधीश संख्या निर्धारित करने के उद्देश्य से इसका उपयोग करने की अनुमति दी गई थी।

उक्त शपथपत्र में यह भी स्वीकार किया गया है कि उच्च न्यायालय द्वारा आवश्यकताओं, प्रासंगिक विधियों और समय-समय पर जारी माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के आधार पर न्यायालयों के निर्माण का प्रस्ताव पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है। शपथपत्र का प्रस्तर 6, जिसमें **इम्तियाज अहमद** (पूर्वोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों को उद्धृत किया गया है, नीचे पुनः प्रस्तुत है:

6. यह भी सम्मानपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है कि अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायाधीशों/न्यायालयों की संख्या के संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक ए संख्या 254-262/2012 "**इम्तियाज अहमद बनाम**

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362-2370/2019 में दिनांक 02-01-2017 को एक आदेश पारित किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

एनसीएमएससी ने सुझाव दिया है कि बैकलॉग का निस्तारण न्यायाधीशों की संख्या निर्धारित करने का एकमात्र या केंद्रीय आधार नहीं है। कई अन्य महत्वपूर्ण मापदंडों में शामिल हैं (i) वाद निस्तारण की दर: संस्था के प्रतिशत के रूप में निस्तारित गए वादों की संख्या; (ii) समय पर निस्तारण दर एक स्थापित समय सीमा के भीतर हल किए गए वादों का प्रतिशत; (iii) पूर्व-परीक्षण हिरासत अवधि जिसमें एक विचाराधीन व्यक्ति आपराधिक वाद की सुनवाई लंबित रहने तक हिरासत में रहता है; और (iv) सुनवाई की तिथि यानी तय कार्यक्रम के अनुसार महत्वपूर्ण मामलों के प्रसंस्करण प्रावधानों का अनुपात की निश्चितता।

यूनिट प्रणाली पर आधारित सुझाया गया दृष्टिकोण इस प्रकार है:

"आवश्यक न्यायाधीश संख्या का आकलन करने के लिए यूनिट प्रणाली का प्रयोग

(1) नए वादों के वार्षिक "प्रवाह" ("ब्रेक ईवन") के निस्तारण के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की संख्या प्रत्येक न्यायालय को सभी प्रकार के वादों के लिए पिछले पाँच वर्षों में अपनी औसत वार्षिक दाखिल संख्या की गणना इकाइयों में करनी चाहिए।

उपरोक्त वार्षिक दाखिल इकाइयों को एक न्यायाधीश द्वारा बहुत अच्छे प्रदर्शन के लिए निस्तारित किये जाने के लिए आवश्यक वार्षिक इकाइयों की संख्या से विभाजित करें।

इससे प्रत्येक न्यायालय के लिए "ब्रेक ईवन" सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की संख्या प्राप्त होगी, अर्थात्, निस्तारण उस न्यायालय में हर वर्ष दायर किए गए नए वादों की संख्या के बराबर होगा। (ii) लंबित वादों के निस्तारण के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की संख्या।

सबसे पहले, प्रत्येक न्यायालय को अपने लंबित मामलों की गणना इकाइयों में करनी चाहिए, अर्थात् निस्तारण के लिए उसके द्वारा निर्धारित अधिकतम समय मानक (जैसे, तीन वर्ष) से अधिक समय से लंबित सभी श्रेणियों के वादों की संख्या।

दूसरा, एक उपयुक्त समयावधि निर्धारित की जा सकती है जिसके भीतर इस "बैकलॉग" को निस्तारित किया जाना चाहिए (उदाहरण के लिए, 5 वर्ष)।

तीसरा, कुल बैकलॉग को इकाइयों में उन वर्षों की संख्या से विभाजित करें जिनके भीतर इसे निस्तारित किया जाना है (उदाहरण के लिए, 5 वर्ष)। इससे "बैकलॉग" के आवश्यक वार्षिक निस्तारण की राशि प्राप्त होगी।

चौथा, बैकलॉग के आवश्यक वार्षिक निस्तारण को प्रत्येक न्यायाधीश द्वारा निस्तारित किये जाने वाले आवश्यक वार्षिक इकाइयों की संख्या से विभाजित करें (बहुत अच्छे प्रदर्शन के लिए आवश्यक इकाइयाँ)।

इससे निर्धारित समय सीमा के भीतर "बैकलॉग" के निपटान के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की संख्या प्राप्त होती है।

इस प्रकार निर्धारित न्यायाधीशों की संख्या की वार्षिक निगरानी की जानी चाहिए।

iii. "ब्रेक ईवन" प्राप्त करने के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की कुल संख्या + "बैकलॉग के निस्तारण"

"ब्रेक ईवन" के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की संख्या को बैकलॉग के निस्तारण के लिए आवश्यक न्यायाधीशों की संख्या में जोड़ें, जैसा कि ऊपर निर्धारित किया गया है।

iv. नए न्यायालयों के निर्माण के लिए उत्प्रेरक।"

7. उक्त शपथपत्र के प्रस्तर 7 में यह भी उल्लेख किया गया है कि **इम्तियाज अहमद** (पूर्वोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अनुसरण में, उच्च न्यायालय ने पत्र संख्या 9553/मुख्य-बी/प्रशासन (ए-3) दिनांक 11.08.2021 के माध्यम से कुल 9149 न्यायालयों के सृजन का प्रस्ताव पहले ही दे दिया है और उसी के परिणामस्वरूप, वित्त विभाग ने चरणबद्ध तरीके से 9149 न्यायालयों के सृजन की सलाह दी है।

तत्पश्चात, 22.04.2024 को मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार की अध्यक्षता में एक बैठक आयोजित की गई, जिसमें प्रथम चरण में न्यायालयों के सृजन का निर्णय लिया गया। शपथपत्र के प्रस्तर 7 से 10 नीचे पुनः प्रस्तुत हैं:

"7. कि जिला न्यायालय में न्यायाधीशों/न्यायालयों की संख्या के निर्धारण एवं सृजन के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय के अनुसरण में, माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने पत्र संख्या 9553/मुख्य-बी/प्रशासन (ए-3) दिनांक 11-08-2021 द्वारा कुल 9149 न्यायालयों के सृजन का प्रस्ताव रखा है। माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के 9149 न्यायालयों के सृजन के संबंध में उपरोक्त प्रस्ताव के परिणामस्वरूप, प्रस्ताव को सहमति के लिए वित्त विभाग को भेजा गया था, जिसके अनुसरण में वित्त विभाग ने उपरोक्त 9149 न्यायालयों को चरणबद्ध तरीके से बनाने की सलाह दी है।

वित्त विभाग की उपरोक्त सलाह के परामर्श से माननीय उच्च न्यायालय इलाहाबाद से अनुरोध किया गया था कि वह यह निर्धारित करे कि उक्त न्यायालयों का सृजन कितने चरणों में किया जाएगा, जिसके अनुसरण में माननीय न्यायालय ने शासन के स्तर पर इसका निर्धारण करने की कृपा की है। तत्पश्चात् वित्त विभाग के परामर्श एवं माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा दिए गए प्रस्ताव के अनुसरण में 9149 न्यायालयों के सृजन के चरणों का निर्धारण करने हेतु मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश शासन की अध्यक्षता में दिनांक 22-04-2024 को एक बैठक आयोजित की गई। सादर निवेदन है कि उक्त बैठक में प्रथम चरण में न्यायालयों के सृजन हेतु निम्नानुसार निर्णय/राय दी गई:-

(i) उच्चतर न्यायिक सेवा संवर्ग के स्वीकृत न्यायालयों/पदों को दोगुना किया जाएगा। वर्तमान में उच्चतर न्यायिक सेवा संवर्ग में 1690 न्यायालय/पद स्वीकृत हैं, अतः 1690 अतिरिक्त न्यायालय/पद सृजित किए जाएंगे।

(ii) सिविल जज (वरिष्ठ श्रेणी) के वर्तमान स्वीकृत 805 न्यायालयों/पदों के कुल 50% अतिरिक्त पदों का सृजन किया जाएगा, जिससे 402 अतिरिक्त न्यायालय/पद सृजित होंगे।

(iii) सिविल जज (कनिष्ठ श्रेणी) के वर्तमान स्वीकृत 1203 न्यायालयों/पदों में से कुल 50% अतिरिक्त पदों का सृजन किया जाएगा, जिससे 601 अतिरिक्त न्यायालय/पद सृजित होंगे।

यह भी निर्णय लिया गया कि प्रथम चरण के पश्चात्, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362/2370/2019, आपराधिक ए संख्या-254-262/2012 "इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में पारित आदेशों/निर्देशों के अनुपालन में, 9149 न्यायालयों में से शेष न्यायालयों के सृजन के संबंध में निर्णय लिया जाएगा।

मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार की अध्यक्षता में दिनांक 22-04-2024 को आयोजित बैठक के कार्यवृत्त की एक सत्य प्रति माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ

इस शपथपत्र के **अनुलग्नक संख्या-1** के रूप में संलग्न है।

8. सादर निवेदन है कि शपथकर्ता की अध्यक्षता में आयोजित बैठक एवं लिए गए निर्णय के अनुसरण में उपरोक्त न्यायालयों/पदों के सृजन हेतु प्रस्ताव वित्त विभाग की सहमति हेतु वित्त विभाग को प्रेषित किया गया था, जिसके अनुसरण में वित्त विभाग द्वारा निम्नलिखित जांच/प्रश्न किए गए हैं:-

(i) राज्य के विभिन्न न्यायालयों में लंबितवादों का विवरण।

(ii) विभिन्न न्यायालयों में 4-5 वर्ष पूर्व दर्ज किए गए नएवादों का विवरण।

(iii) लंबितवादों को चरणबद्ध तरीके से प्राथमिकता के आधार पर निस्तारण की कार्ययोजना।

(iv) प्रत्येक न्यायालय के सृजन पर पदों का विवरण।

(v) माननीय न्यायालयों की स्थापना, वाहन एवं अन्य अनुदान, कार्यालय एवं आवासीय भवनों पर व्यय का विवरण।

(vi) वादों की संख्या की गणना का आधार।

(vii) एनसीएमएस रिपोर्ट को पत्रावली पर उपलब्ध कराकर राष्ट्रीय औसत के आधार पर राज्य में लंबितवादों की स्थिति।

(viii) एओआर के पत्र से संबंधित जानकारी।

9- यह कि वित्त विभाग द्वारा उपर्युक्त प्रस्तर 5 के 8 बिन्दुओं के अतिरिक्त पूर्व में मांगी गई सूचना सहित कुल 14 बिन्दुओं पर सूचना/संबंधित अभिलेख उपलब्ध कराते हुए स्पष्ट प्रस्ताव भेजने का अनुरोध किया गया है:-

1. एचजेएस, सिविल जज (सीनियर डिवीजन), सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के वर्तमान स्वीकृत पदों के संबंध में विवरण प्रस्तुत नहीं किया गया है तथा विभिन्न श्रेणियों के कितने पद स्वीकृत हैं, इसका भी विवरण नहीं दिया गया है।

2. राज्य सरकार द्वारा पदों के सृजन हेतु क्या मानक निर्धारित किए गए हैं तथा प्रत्येक जिले में विभिन्न श्रेणियों के न्यायालयों में लंबितवादों का विवरण टिप्पणियों में नहीं दिया गया है।

3. प्रस्तावित न्यायालयों एवं उनकी श्रेणियों के अनुसार सृजित किए जाने वाले आवश्यक पदों तथा उसके अनुपात में अपेक्षित वित्तीय व्यय का विवरण प्रशासकीय विभाग द्वारा नहीं दिया गया है।

4. उल्लेखनीय है कि अधीनस्थ न्यायालयों के गठन के फलस्वरूप आधारभूत संरचना सुविधाओं की समुचित व्यवस्था की आवश्यकता है। अतः आधारभूत संरचना सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अनुमानित व्यय भार का आकलन नहीं किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इसके लिए कितना वित्तीय भार उत्पन्न होगा।

5. न्यायाधीश-वाद अनुपात का विवरण उपलब्ध कराने हेतु प्रशासनिक विभाग से अनुरोध किया गया है।

6. प्रशासनिक विभाग से अन्य राज्यों में विद्यमान उदाहरण उपलब्ध कराने का अनुरोध किया जाएगा।

सन्दर्भित निवेदन है कि उपरोक्त बिन्दु संख्या 1 से 5 के संबंध में सूचना माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा पत्र संख्या 4066/मुख्य-बी/प्रशासन (ए-3), दिनांक 04-04-2022 द्वारा उपलब्ध करा दी गई है तथा बिन्दु संख्या 6 के संबंध में राज्य स्तर से ही सूचना प्राप्त करने का अनुरोध किया गया है।

10- यह सादर निवेदन है कि उपरोक्त प्रस्तर संख्या 5 में उल्लिखित बिन्दु संख्या (I-VII) के सम्बन्ध में सूचना उपलब्ध कराने हेतु माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद से शासन के पत्र संख्या 570/सात-न्याय-2-2023-रिट 09/2020 दिनांक 11-07-2024 द्वारा अनुरोध किया गया है तथा प्रस्तर संख्या 6 में उल्लिखित बिन्दु संख्या 6 के सम्बन्ध में सूचना प्राप्त करने हेतु अन्य राज्यों से पत्र संख्या 600/सात-न्याय-2-2024-रिट 09/2020 दिनांक 11-07-2024 द्वारा अपेक्षित सूचना उपलब्ध कराने का अनुरोध किया गया है।

8. श्री मनोज कुमार सिंह, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ ने अपने दिनांक 09.09.2024 के शपथपत्र में यह भी स्वीकार किया कि 9149 न्यायालयों के सृजन के संबंध में उच्च न्यायालय के अनुरोध पर विचार किया गया है और 22.04.2024 को हुई बैठक में यह निर्णय लिया गया है कि प्रथम चरण में 2693 पदों का सृजन किया जाएगा।

उक्त शपथपत्र दिनांक 09.09.2024 के प्रस्तर 1 से 8 इस प्रकार हैं:

"1. यह कि शपथकर्ता वर्तमान में मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार के पद पर तैनात है और शपथकर्ता माननीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 08-07-2024 और 25.07.2024 के अनुपालन में प्रस्तुत व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल कर रहा है।

2. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक ए संख्या 254-262/2012 "इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362-2370/2019 में दिनांक 02-01-2017 को जिलों में अतिरिक्त न्यायालयों के सृजन हेतु आदेश पारित किया है।

3. उपरोक्त वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुझाए गए फार्मूले के आधार पर, माननीय उच्च न्यायालय ने अपने पत्र संख्या 9553/मुख्य-बी/प्रशासन (ए-3) दिनांक 11.08.2021 के माध्यम से 9,149 न्यायालयों के सृजन का प्रस्ताव भेजा है। यह राष्ट्रीय न्यायालय प्रबंधन समिति (एनसीएमएस) द्वारा सुझाए गए मानदंडों पर आधारित है। एनसीएमएस की सिफारिश को माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक ए संख्या 254-262/2012 "इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में स्वीकार कर लिया है।

4. 9149 न्यायालयों के सृजन के संबंध में माननीय उच्च न्यायालय के उपरोक्त प्रस्ताव के अनुसरण में, सरकार द्वारा दिनांक 21.07.2023 के पत्र द्वारा माननीय उच्च न्यायालय से अनुरोध किया गया था कि इन अतिरिक्त न्यायालयों के सृजन के चरणों की संख्या के संबंध में मार्गदर्शन प्रदान किया जाए। सरकार के उपरोक्त अनुरोध के अनुसरण में, माननीय उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल ने दिनांक 18.09.2023 के पत्र द्वारा प्रस्ताव दिया है कि सरकार को इन 9149 न्यायालयों के चरणबद्ध सृजन पर निर्णय लेना चाहिए।

5. जिला न्यायालयों में लंबित वादों की जानकारी के बारे में सरकार द्वारा दिनांक 24.07.2024 को माननीय उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को एक अनुरोध पत्र भेजा गया था। उपरोक्त पत्र का उत्तर 13.08.2024 को प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत जानकारी से पता चलता है कि लगभग 1.11 करोड़ मामले लंबित हैं और एक वर्ष (अप्रैल 2022 से मार्च 2023) में लगभग 1.04 लाख वादों का निस्तारण किया गया।

6. माननीय उच्च न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 25.07.2024 में कहा है कि "... उत्तर प्रदेश राज्य की वर्तमान जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए बेहतर शपथपत्र दाखिल करना आवश्यक है।" राज्य की वर्तमान

जनसंख्या लगभग 24 करोड़ है। 10 लाख जनसंख्या पर 50 न्यायाधीशों के न्यायाधीश-जनसंख्या अनुपात के मानक के अनुसार 12000 न्यायालयों के सृजन की आवश्यकता है।

7. मौजूदा जिला स्तरीय न्यायालयों की संख्या लगभग 3500 है, इसलिए उपरोक्त न्यायाधीश-जनसंख्या सूत्र के अनुसार 8500 का अंतर है। लंबितवादों की विशाल संख्या और एक वर्ष में निस्तारित किये जाने वाले वादों की संख्या, जैसा कि ऊपर प्रस्तर-5 में दिया गया है, केवल न्यायालयों की संख्या बढ़ाकर नियंत्रित नहीं की जा सकती। अन्य प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने और प्रत्येक जिला स्तरीय न्यायालय द्वारा अधिक संख्या में निस्तारण सुनिश्चित करने की निश्चित आवश्यकता है।

8. चरणों की संख्या तय करने के लिए मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश शासन की अध्यक्षता में दिनांक 22-04-2024 को एक बैठक आयोजित की गई। सादर निवेदन है कि प्रथम चरण में 2693 न्यायालयों/पदों के सृजन का निर्णय लिया गया है। जिनका विवरण इस प्रकार है:

(i) उच्चतर न्यायिक सेवा संवर्ग के स्वीकृत न्यायालयों/पदों की संख्या दोगुनी की जाएगी। वर्तमान में उच्चतर न्यायिक सेवा संवर्ग में 1690 न्यायालय/पद स्वीकृत हैं, अतः 1690 अतिरिक्त न्यायालय/पद सृजित किए जाने हैं।

(ii) सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के वर्तमान स्वीकृत 805 न्यायालयों/पदों में से कुल 50% अतिरिक्त पदों का सृजन किया जाएगा, जिससे 402 अतिरिक्त न्यायालय/पद हो जाएंगे।

(iii) सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के वर्तमान स्वीकृत 1203 न्यायालयों/पदों में से कुल 50% अतिरिक्त पदों का सृजन किया जाएगा, जिससे 601 अतिरिक्त न्यायालय/पद हो जाएंगे।

यह भी निर्णय लिया गया कि प्रथम चरण के पश्चात, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362/2370/2019, आपराधिक ए संख्या 254-262/2012 "इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में पारित आदेशों/निर्देशों के अनुपालन में 9149 न्यायालयों में से शेष न्यायालयों के सृजन के संबंध में निर्णय लिया जाएगा।

माननीय न्यायालय के अवलोकनार्थ, दिनांक 22-04-2024 को शपथकर्ता की अध्यक्षता में आयोजित बैठक के कार्यवृत्त की सत्य प्रति इस शपथपत्र के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है।"

9. इसी तरह के तथ्यों का उल्लेख करते हुए, श्री दीपक कुमार, अपर मुख्य सचिव, वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ ने अपने शपथपत्र दिनांक 19.10.2024 में कहा कि राज्य सरकार **इम्तियाज अहमद** (पूर्वोक्त) वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 9149 न्यायालयों को क्रियाशील बनाने के निर्देशों

का अनुपालन सुनिश्चित कर रही है। शपथपत्र में यह भी स्वीकार किया गया है कि मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार की अध्यक्षता में दिनांक 15.10.2024 को आयोजित बैठक में पहले ही बिंदुओं पर विचार किया जा चुका है।

उक्त शपथपत्र के प्रस्तर 4 से 12 इस प्रकार हैं:

"4- यह सादर प्रस्तुत है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रकीर्ण आवेदन संख्या 23522370/2019 में आपराधिक ए संख्या 254-262/2012 "इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में पारित दिनांक 17-07-2021 के आदेश के अनुपालन में, राज्य में विभिन्न चरणों में कुल 9149 न्यायालयों का गठन किया जाना है।

5- यह कि सतत विकास लक्ष्य 2030 के लक्ष्य संख्या 16 के संदर्भ में, प्रति लाख जनसंख्या पर न्यायालयों और न्यायाधीशों की संख्या बढ़ाने के लिए एकमुश्त योजना भी बनाई गई है।

6- माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश दिनांक 02-01-2017 के अनुसार अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायाधीशों की संख्या न्यायालयों में लंबितवादों की संख्या के अनुसार निर्धारित की जानी है।

7- वर्तमान में उत्तर प्रदेश राज्य में 3698 स्वीकृत न्यायालय हैं। सतत विकास लक्ष्य संख्या 16 के अंतर्गत प्रति लाख जनसंख्या पर 4.25 न्यायालय होने चाहिए। वर्तमान में उत्तर प्रदेश राज्य में प्रति लाख जनसंख्या पर 1.59 न्यायालय सृजित हैं, जबकि राष्ट्रीय औसत 1.85 न्यायालय प्रति लाख जनसंख्या है, अतः उत्तर प्रदेश राज्य में प्रति लाख जनसंख्या पर न्यायालयों की संख्या राष्ट्रीय औसत से काफी कम है।

8- यह कि सतत विकास लक्ष्य, 2030 के लक्ष्य संख्या 16 के संदर्भ में उत्तर प्रदेश सरकार, न्याय भाग-2 (अधीनस्थ न्यायालय) द्वारा प्रति एक लाख जनसंख्या पर न्यायालयों एवं पोस्टों की संख्या में वृद्धि किये जाने के उद्देश्य से मुख्य सचिव की अध्यक्षता में दिनांक 22-04-2024 को एक बैठक आयोजित की गयी।

9- यह कि प्रदेश में 9149 न्यायालयों के गठन के सम्बन्ध में आपराधिक वाद संख्या 254.262/2012, "इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य" में प्रकीर्ण आवेदन संख्या 2362.2370/2019 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों/निर्देशों के अनुपालन में मुख्य सचिव की अध्यक्षता में दिनांक 22-04-2024 को बैठक आयोजित की गई, जिसमें कुल प्रस्तावित 9149 न्यायालयों के सापेक्ष प्रथम चरण में 2693 न्यायालयों की स्थापना का निर्णय लिया गया, जो निम्नानुसार है:-

(i) वर्तमान में एचजेएस संवर्ग में स्वीकृत न्यायालयों/पदों की संख्या दोगुनी की जाए। वर्तमान में एचजेएस संवर्ग में 1690 न्यायालय/पद स्वीकृत हैं तथा 1690 अतिरिक्त न्यायालय/पद सृजित किए जाएं।

(ii) वर्तमान स्वीकृत सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के 805 न्यायालयों/पदों का 50% अर्थात् 402 और न्यायालय/पद सृजित किए जाएं।

(iii) वर्तमान स्वीकृत सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के 1203 न्यायालयों/पदों का 50% अर्थात 601 और न्यायालय/पद सृजित किए जाएं।

10- राज्य के 75 जिलों में एचजेएस संवर्ग के 2443 न्यायालय, सिविल जज (सीनियर डिवीजन) के 3966 न्यायालय, सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के 2740 न्यायालय इस प्रकार कुल 9149 न्यायालयों के गठन की प्रक्रिया में सृजित, भरे एवं रिक्त पदों की वर्तमान स्थिति एक तालिका में दर्शाई गई है, जो इस प्रकार है:-

क्रमांक	संवर्ग	स्वीकृत पद	कार्यरत पद	रिक्त पद	प्रस्तावित पद माननीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश इम्तियाज अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, दिनांक 17.07.2021 के अनुपालन में, एनसीएमएससी के लिए		कुल प्रस्तावित स्वीकृत पद 8=3+6(ख)
1	2	3	4	5	6(ए)	6(बी)	
1	उच्च न्यायिक सेवा	1690	1268	422	1152	2443	4133
2	सिविल जज (वरिष्ठ श्रेणी)	805	575	230	4473	3966	4771
3	सिविल जज (कनिष्ठ श्रेणी)	1203	889	314	2348	2740	3943
4		3698	2732	966	8009	9149	12487

नोट:

कुल 3698 स्वीकृत न्यायालयों में से, गोंडा में 02 न्यायालय (सिविल जज, एस.डी. और सिविल जज, जे.डी. के संवर्ग में एक-एक) और मुरादाबाद में 02 न्यायालय (सिविल जज, एस.डी. और सिविल जज, जे.डी. के संवर्ग में एक-एक) को स्थगित रखा गया है।

212 अस्थायी फास्ट ट्रैक न्यायालय अर्थात् एच.जे.एस. संवर्ग में 72, सिविल जज की संख्या 72 है। इन न्यायालयों का कार्यकाल 29.02.2024 तक बढ़ा दिया गया है।”

11- यह कि मुख्य सचिव की अध्यक्षता में दिनांक 15-10-2024 को आहूत बैठक में उपस्थित विभागों के साथ सम्यक विचार-विमर्श के पश्चात् निम्नलिखित मत निश्चित किया गया है:-

(i) माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गठित एन.सी.एम.एस.सी. की रिपोर्ट के आधार पर, माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा परिगणित 9149 विभिन्न श्रेणियों के न्यायालयों तथा तदनुसार पदों की संख्या को ध्यान में रखते हुए, प्रथम वर्ष में 900 न्यायालय/पद (मुख्य सचिव स्तर पर दिनांक 22.04.2024 को आहूत बैठक में उल्लिखित विधि विभाग के प्रस्ताव के अनुसार, एच.जे.एस. $75 \times 3 = 225$, सिविल जज सीनियर डिवीजन $75 \times 5 = 375$, सिविल जज जूनियर डिवीजन $75 \times 4 = 300$ अर्थात् कुल 900) स्थापित होंगे।

(ii) इसी प्रकार, दूसरे वर्ष में पुनः विभिन्न श्रेणियों के 900 न्यायालय एवं तदनुरूपी पद स्थापित किए जाएँगे तथा आगामी 7 वर्षों में प्रत्येक वर्ष विभिन्न श्रेणियों के न्यायालय एवं तदनुरूपी पद स्थापित किए जाएँगे। उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार, अंतिम दसवें वर्ष में विभिन्न श्रेणियों के 1049 न्यायालय एवं तदनुरूपी पद स्थापित किए जाएँगे, जिससे कुल 9149 न्यायालयों/पदों का लक्ष्य प्राप्त होगा और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "इम्तियाज हुसैन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य" में पारित दिनांक 02-01-2017 के निर्णय का अनुपालन सुनिश्चित होगा।

(iii) यह भी अपेक्षित था कि विधि विभाग वर्तमान में विद्यमान कुल 966 रिक्तियों (एच.जे.एस. के 422, सिविल जज सीनियर डिवीजन (सी.जे.एस.डी) के 230 और सी.जे.डी. के 314) को भरने के प्रयास करेगा।

(iv) इसके अतिरिक्त, विधि विभाग, प्रथमतः, प्रत्येक स्तर के न्यायालय जैसे कि एच.जे.एस., सी.जे.एस.डी. और सी.जे.डी. के एक कार्यालय की स्थापना से संबंधित आवर्ती (रखरखाव कार्य) और अनावर्ती (निर्माण कार्य) द्वारा वहन किए जाने वाले अनुमानित व्यय के बारे में, तथा द्वितीयतः, पदों के सृजन हेतु मानक शासनादेशों में की गई व्यवस्था के आलोक में प्रत्येक स्तर के न्यायालय से संबंधित सहायक कर्मचारियों के वेतन आदि से संबंधित आवर्ती व्यय के बारे में भी सूचित करेगा। विधि विभाग द्वारा अनुमानित आवर्ती और अनावर्ती व्यय के अनुमान के बारे में सूचित करना आवश्यक है ताकि वित्त विभाग, प्रत्येक न्यायालय और कार्यालय कर्मचारियों की 900 विभिन्न श्रेणियों में पदों की स्थापना से संबंधित अनुमानित व्यय के संबंध में, प्रत्येक वर्ष, विधि विभाग के लिए बजट अनुमानों में, समय पर और आवश्यकतानुसार, उचित बजट प्रावधान कर सके।

(v) यह भी अपेक्षित है कि एन.सी.एम.एस.सी. की अंतिम रिपोर्ट प्राप्त होने पर, विधि विभाग, यथासमय और आवश्यकतानुसार मामले पर पुनर्विचार करेगा।

12- यह कि मुख्य सचिव की अध्यक्षता में दिनांक 22-04-2024 को आयोजित बैठक में सम्यक विचार-विमर्श के पश्चात् प्रथम चरण में प्रस्तावित कुल 9149 न्यायालयों के सापेक्ष 2693 न्यायालयों के सृजन के सम्बन्ध में ली गयी राय के अनुक्रम में दिनांक 15-10-2024 को प्रथम वर्षों में विभिन्न श्रेणी के 900 न्यायालय एवं

तदनुसार पद, इसी प्रकार पूर्वोक्त द्वितीय वर्ष में पुनः 900 न्यायालय एवं तदनुसार पद तथा आगामी 07 वर्षों में प्रत्येक वर्ष 900 विभिन्न श्रेणी के न्यायालय एवं तदनुसार पद, अन्तिम दशम वर्ष में विभिन्न श्रेणी के 1049 न्यायालय एवं तदनुसार पद स्थापित करते हुए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा "इम्तियाज हुसैन बनाम राज्य सरकार" में पारित निर्णय दिनांक 02-01-2017 का अनुपालन सुनिश्चित करते हुए कुल 9149 न्यायालयों/पदों का लक्ष्य प्राप्त किया जायेगा।'

10. **सोनू अग्निहोत्री बनाम चंद्रशेखर एवं अन्य, 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 3382** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 22.11.2024 को पारित हालिया निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा है कि **अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ एवं अन्य बनाम भारत संघ (यूओआई) एवं अन्य, (2002) 4 एससीसी 247** के वाद में, यह निर्देश दिया गया था कि विचारण न्यायपालिका में न्यायाधीश-से-जनसंख्या अनुपात को प्रति मिलियन 50 तक बढ़ाने के लिए पांच वर्षों के भीतर प्रयास किया जाना चाहिए। हालाँकि, वर्ष 2024 तक 25 प्रति मिलियन का अनुपात हासिल नहीं किया गया है।

11. यह न्यायालय यह भी देखता है कि इस न्यायालय के समक्ष, वर्तमान याचिका की तरह, वादों के शीघ्र निस्तारण, मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित आपराधिक वादों का विचारण, सत्र वादों का विचारण के साथ-साथ पारिवारिक विवाद से संबंधित वादों सहित अन्य मामलों के लिए कई याचिकाएँ दायर की जा रही हैं।

श्री विनोद सिंह रावत, प्रमुख सचिव विधि, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ, श्री मनोज कुमार सिंह, मुख्य सचिव, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ और साथ ही श्री दीपक कुमार, अपर मुख्य सचिव, वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, सिविल सचिवालय, लखनऊ द्वारा दायर शपथपत्रों से यह स्पष्ट है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **अखिल भारतीय न्यायाधीश संघ एवं अन्य (पूर्वोक्त)** के वाद में 21.03.2002 को पारित निर्देश, जिसका संज्ञान माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **सोनू अग्निहोत्री (पूर्वोक्त)** के वाद में लिया था, का आज तक अनुपालन नहीं किया गया है।

12. बार के विद्वान सदस्यों ने संयुक्त रूप से कहा कि इस मुद्दे का हमारी न्यायिक प्रणाली पर व्यापक प्रभाव पड़ रहा है और इसलिए, अनुरोध किया गया कि 9149 न्यायालयों के संचालन को सुनिश्चित करने के लिए इस मुद्दे को जनहित याचिका के रूप में निपटारा किया जाए।

13. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही यह निर्धारित कर दिया है कि यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जिसमें जनहित का मुद्दा शामिल हो, तो उसे जनहित याचिका मामलों से निपटने वाली पीठ को भेजा जा सकता है। **उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम नीरज चौबे एवं अन्य, (2010) 10 एससीसी 320** वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 10 का संदर्भ लिया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

“10. यदि कोई आवेदन दायर किया जाता है और पीठ इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि इसमें जनहित से संबंधित कुछ मुद्दे शामिल हैं, तो पीठ इसे जनहित याचिका के रूप में स्वीकार नहीं कर सकती है,

लेकिन न्यायालय के पास इसे जनहित याचिका में परिवर्तित करने और रजिस्ट्री को इसे उस पीठ के समक्ष प्रस्तुत करने का विकल्प है, जिसके पास नियमावली, दिशानिर्देशों या मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा निर्धारित रोस्टर के अनुसार जनहित याचिका पर विचार करने का क्षेत्राधिकार हो, लेकिन पीठ स्वयं को जनहित याचिका में परिवर्तित नहीं कर सकती है और मामले को स्वयं आगे नहीं बढ़ा सकती है।”

14. उपरोक्त तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर, इस न्यायालय का मानना है कि 9149 न्यायालयों के सृजन से संबंधित मुद्दा व्यापक रूप से जनता के हित से संबंधित है और इसलिए, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह जनहित याचिका को एक अलग वाद के रूप में पंजीकृत करे और उचित निर्देश के लिए इसे माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष प्रस्तुत करे।

(2025) 1 ILRA 288

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 30.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट ए संख्या 17904/2020

अन्य संबंधित वाद

ओम प्रकाश एवं अन्य

...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

संजय कुमार श्रीवास्तव, अक्षत कुमार, जितेंद्र सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, पुनीत सिंह, ऋषभ कपूर

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश जलापूर्ति एवं सीवरेज अधिनियम, 1975 - धारा 8 एवं 89 - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - वेतन, पारिवारिक पेंशन - पूर्वव्यापी नियमितीकरण - याचिकाकर्ताओं को निगम में प्रारंभ में दैनिक वेतन के आधार पर नियुक्त किया गया था - दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश द्वारा उन्हें तत्काल प्रभाव से नियमित किया गया - बाद में, निगम ने दिनांक 26.04.2011 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ताओं को शासनादेश के प्रभाव से नियमित किया - निगम ने अपनी इच्छा से वेतन निर्धारण के प्रयोजनार्थ यह संकेत

दिया कि याचिकाकर्ता अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के पाँच वर्ष की निरंतर सेवा के बाद अर्थात् 01.04.1991 से 01.04.1995 तक अपनी सेवा की गणना के हकदार होंगे, 11.04.2011 तक उपरोक्त अवधि के लिए कोई बकाया देय नहीं होगा - निगम का आदेश शासनादेश के विपरीत था, दिनांक 12.02.2020 के पत्र सहित विभिन्न पत्र लिखकर स्पष्टीकरण मांगा गया। (प्रस्तर 23, 25)

राज्य सरकार ने दिनांक 18.08.2020 के आक्षेपित आदेश द्वारा 01.04.1991 से 01.04.1995 तक किए गए सभी नियमितीकरणों को गलत और रद्द घोषित किया, कोई भी भुगतान / वेतन निर्धारण, वेतन वृद्धि, वेतन का समयमान आदि गलत हैं और 26.04.2011 से नियमितीकरण द्वारा संशोधित वेतन निर्धारण, अधिक भुगतान की गई राशि की वसूली के निर्देश, दोषी अधिकारियों के विरुद्ध विभागीय कार्रवाई और याचिकाकर्तागण 01.04.2005 से नई पेंशन योजना के लिए हकदार - निगम ने वेतन निर्धारण से संबंधित लाभ वापस ले लिए। (प्रस्तर 26, 27)

अभिनिर्धारित, जब सरकार ने तत्काल प्रभाव से नियमितीकरण करने का निर्णय लिया, तो निगम उक्त निर्देशों से बाध्य था और आदेश से आगे कार्यवाही नहीं कर सका और पूर्वव्यापी प्रभाव से कोई लाभ प्रदान नहीं किया - याचिकाकर्ताओं को लाभ का दावा करने का कोई निहित अधिकार प्राप्त नहीं हुआ, राज्य सरकार और निगम द्वारा कोई त्रुटि नहीं हुई। (प्रस्तर 34)

शासनादेश को चुनौती न देकर, याचिकाकर्ताओं ने स्वयं नियमितीकरण को भावी प्रभाव से माना, न कि पूर्वव्यापी प्रभाव से - इस प्रकार, प्रत्यर्थीगण उन याचिकाकर्ताओं से पेंशन, निर्धारण या ग्रेच्युटी के कारण अतिरिक्त राशि की वसूली पर रोक लगा रहे हैं, जो आक्षेपित आदेश जारी होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो गए थे। (प्रस्तर 41, 45, 47)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. पंजाब राज्य बनाम रफीक मसीह (वाईट वाशर), (2015) 4 एससीसी 334, (प्रस्तर 12)
2. एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन व अन्य, मनु/एससी/0036/1980, (प्रस्तर 17)
3. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान, मनु/एससी /0533/2000
4. केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद बनाम बिकर्तन दास व अन्य, (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 996, (प्रस्तर 51)

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री संजय कुमार श्रीवास्तव, श्री जितेंद्र सिंह और सुश्री सविता जैन, राज्य प्रत्यर्थागण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री ऋषभ कपूर, श्री समीर ओम के ब्रीफ होल्डर श्री माधव ओम और जल निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित सिंह को सुना गया।

2. प्रत्यर्था पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं का तर्क है कि उपरोक्त सभी रिट याचिकाओं में शामिल मुद्दा एक ही है। अतः न्यायालय सभी रिट याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई कर एक समान आदेश द्वारा निर्णीत करेगा। सुविधा के लिए, रिट - ए संख्या - 17904/2020 के तथ्यों पर विचार किया जा रहा है।

3. निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों के लिए प्रार्थना करते हुए वर्तमान रिट याचिका (रिट-ए संख्या - 17904/2020) दायर की गई है:-

- (I) विपक्षी संख्या 1 और 2 द्वारा पारित दिनांक 18.08.2020 के आक्षेपित आदेशों को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में निहित हैं।
- (II) विपक्षी संख्या 4 द्वारा पारित दिनांक 20.08.2020 के आक्षेपित आदेशों को रद्द करने हेतु उत्प्रेषण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में निहित हैं।
- (III) विपक्षीगण संख्या 1, 2 और 4 द्वारा पारित दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आक्षेपित आदेश, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1, 2 और 4 में दिए गए हैं, को प्रभावी न करने के लिए विपक्षीगण को परमादेश की प्रकृति में आदेश, रिट या निर्देश जारी करें।
- (IV) यह कि विपक्षीगण को परमादेश की प्रकृति में आदेश/निर्देश जारी करे कि वे याचिकाकर्ता संख्या 1 से 227 तथा 2870 को आक्षेपित आदेशों की उपेक्षा करते हुए प्रत्येक माह नियमित रूप से वेतन एवं अन्य सेवा लाभों का भुगतान करते रहें तथा भविष्य में देय सेवानिवृत्ति उपरांत देयकों एवं पेंशन का भी भुगतान यथासमय करते रहें।
- (V) यह कि विपक्षीगण को परमादेश की प्रकृति में आदेश/निर्देश जारी करे कि वे याचिकाकर्ता संख्या 2272 से 2869 को आक्षेपित आदेशों की उपेक्षा करते हुए, पेंशन/पारिवारिक पेंशन तथा अन्य सभी सेवानिवृत्ति उपरांत देयकों का भुगतान यथासमय करते रहें।"

4. प्रत्यर्था पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं के अनुसार, वर्तमान रिट याचिका और अन्य संबंधित रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:-

- (ए) वे याचिकाकर्ता जो दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आक्षेपित आदेशों के पारित होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं और अपनी सेवानिवृत्ति देय राशि प्राप्त कर चुके हैं और पेंशन प्राप्त कर रहे हैं।
- (बी) वे याचिकाकर्ता जो वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो चुके हैं और
- (सी) वे याचिकाकर्ता जो सेवा में हैं।

5. अनावश्यक विवरण से परे, वाद के तथ्य यह हैं कि सभी याचिकाकर्ताओं को शुरू में उत्तर प्रदेश जल निगम (संक्षेप में "निगम") में दैनिक मजदूरी के आधार पर / मस्टर रोल / वर्क चार्ज के आधार पर नियुक्त किया गया था और वे उसी क्षमता में काम कर रहे थे जब शासनादेश दिनांक 12.04.2011 के अनुसरण में, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 15 में है, जिसमें याचिकाकर्ताओं जैसे व्यक्तियों की सेवाओं को तत्काल प्रभाव से नियमित करने का निर्देश दिया गया था, निगम द्वारा जारी दिनांक 26.04.2011 के आदेश के द्वारा नियमित किया गया था, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 16 में है। दिनांक 26.04.2011 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं का वेतन उनकी नियुक्ति के बाद पाँच वर्ष की निरंतर सेवा पूर्ण होने पर निर्धारित किया गया था, जैसा कि दिनांक 26.04.2011 के आदेश के प्रस्तर 6 में निर्दिष्ट है, लेकिन उन्हें उक्त निर्धारण के कारण 11.04.2011 तक कोई बकाया नहीं दिया गया।

6. प्रत्यर्थी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि रिट याचिकाएँ दायर करने के समय, निगम एक इकाई थी, लेकिन उसके बाद, इसे उत्तर प्रदेश जल निगम शहरी और उत्तर प्रदेश जल निगम ग्रामीण में विभाजित कर दिया गया। हालाँकि, प्रत्यर्थी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह कहा गया है कि उक्त विभाजन से आक्षेपित आदेशों में कोई अंतर नहीं आएगा।

7. उक्त आदेशों के बाद और दिनांक 18.08.2020 एवं 20.08.2020 के आक्षेपित आदेशों के पारित होने से पूर्व, विभिन्न याचिकाकर्ता सेवानिवृत्त हुए और उन्हें ग्रेच्युटी एवं अन्य सेवानिवृत्ति देय राशि प्राप्त हुई तथा वे पूर्वव्यापी प्रभाव से पारित उक्त नियमितीकरण आदेशों के आधार पर पेंशन प्राप्त कर रहे हैं।

8. यह तर्क दिया गया है कि दिनांक 26.04.2011 के आदेश के बाद, दिनांक 12.02.2020 का एक पत्र, जिसकी प्रतिलिपि रिट याचिका के अनुलग्नक 17 में है, निगम द्वारा राज्य सरकार को भेजा गया था, जिसमें स्पष्टीकरण मांगा गया था कि क्या उन व्यक्तियों को, जिन्हें पिछली तिथि से नियमित किया गया है, क्या उन्हें पूर्वव्यापी प्रभाव से या नियमितीकरण की तिथि 12.04.2011 मानकर नियमितीकरण के आधार पर सेवा लाभ/सेवानिवृत्ति लाभ दिए जाने चाहिए। इस संबंध में निगम द्वारा राज्य सरकार को पूर्व में भी कई पत्र भेजे गए थे।

9. इसके बाद राज्य सरकार ने दिनांक 18.08.2020 को आक्षेपित आदेश जारी किया, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 1 में है, जिसमें निर्देश दिया गया है कि (क) 04.1991/01.04.1992/ 01.04.1993/01.04.1994/01.04.1995 से प्रभावी नियमितीकरण आदेश त्रुटिपूर्ण हैं और इन्हें रद्द किया जाना चाहिए। (ख) दिनांक 01.04.1991/01.04.1992/ 01.04.1993/ 01.04.1994/01.04.1995 से दिनांक 26.04.2011 तक जो लाभ दिए गए हैं, अर्थात् वार्षिक वेतन वृद्धि, समयमान वेतनमान, ए.सी.पी. आदि त्रुटिपूर्ण रूप से प्रदान किए गए हैं तथा नियमितीकरण की तिथि 26.04.2011 मानकर इसमें सुधार किया जाना चाहिए तथा अधिक भुगतान की गई राशि की वसूली की जानी चाहिए तथा दोषी अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई की जानी चाहिए। (ग) चूंकि नियमितीकरण तत्काल प्रभाव से किया जाना था, अर्थात् दिनांक 26.04.2011 के

आदेश के अनुसार तथा दिनांक 01.04.2005 से नई पेंशन योजना लागू हो जाने के कारण, कोई भी व्यक्ति पुरानी पेंशन योजना के लाभ का हकदार नहीं होगा।

10. इसके अनुसरण में, निगम द्वारा दिनांक 20.08.2020 को पारित परिणामी आदेश, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 2 में है, पारित किया गया, जिसमें दिनांक 18.08.2020 के आदेश को दोहराया गया और 26.04.2011 से पहले नियमितीकरण के कारण याचिकाकर्ताओं को प्राप्त सेवा लाभों को वापस ले लिया गया, याचिकाकर्ताओं को 26.04.2011 से नियमित माना गया और ऐसे नियमित व्यक्ति को नई पेंशन योजना के अंतर्गत माना गया।

11. दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 को पारित आदेशों से व्यथित होकर, वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

12. दिनांक 18.08.2020 के आदेश को चुनौती देने की मांग करने वाले याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए आधार यह हैं कि चूंकि निगम द्वारा जारी दिनांक 26.04.2011 के आदेश के अनुसार पूर्वव्यापी नियमितीकरण के कारण याचिकाकर्ताओं को निहित अधिकार प्राप्त हुए हैं और परिणामस्वरूप सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना रद्द कर दिया गया था, उक्त आदेश नैसर्गिक न्याय के नियमों का घोर उल्लंघन है और इस प्रकार, केवल इसी आधार पर इसे रद्द किया जाना चाहिए।

13. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा लिया गया एक अन्य आधार यह है कि याचिकाकर्ताओं को दिनांक 26.04.2011 के आदेश के कारण पहले ही उच्च वेतन और अन्य परिचर लाभ प्राप्त हो चुके हैं और वे चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी हैं, इसलिए पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर)-(2015) 4 एससीसी 334 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए, उनसे उक्त मौद्रिक लाभ वसूल नहीं किए जा सकते हैं।

14. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा लिया गया एक अन्य आधार यह है कि चूंकि बड़ी संख्या में याचिकाकर्ता दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आदेश पारित होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके थे और परिणामस्वरूप पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ भी प्राप्त कर चुके थे, इसलिए उन्हें आदेश के माध्यम से पूर्वव्यापी रूप से वापस नहीं लिया जा सकता है।

15. प्रत्यर्थी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषभ कपूर, श्री समीर ओम और श्री अंकित सिंह ने प्रतिउत्तर देते हुए तर्क दिया कि सभी याचिकाकर्ता निगम में दैनिक वेतन/मस्टर रोल/कार्य प्रभार के आधार पर कार्यरत थे। राज्य सरकार द्वारा याचिकाकर्ताओं जैसे व्यक्तियों को तत्काल प्रभाव से नियमित करने के लिए दिनांक 12.04.2011 को एक आदेश जारी किया गया था। उक्त शासनादेश के माध्यम से, पद भी सृजित किए गए थे जिन पर पात्र व्यक्तियों को नियमित किया जाना था।

16. इसके अनुसरण में, निगम ने दिनांक 26.04.2011 को एक आदेश पारित किया जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश के जारी होने से नियमित कर दिया गया। केवल उनके वेतन निर्धारण के उद्देश्य से, यह प्रावधान किया गया था कि वे उन व्यक्तियों के समान लाभ के हकदार होंगे जिन्हें उनकी नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद पूर्व में नियमित किया गया था, लेकिन 11.04.2011 तक की उक्त अवधि के लिए कोई बकाया देय नहीं होगा। इस प्रकार, दिनांक 26.04.2011 के आदेश के माध्यम से, याचिकाकर्ताओं का वेतन निर्धारण भी किया गया।

17. यह तर्क दिया गया है कि जब वेतन और अन्य लाभों के पूर्वव्यापी निर्धारण की गलती का पता चला, तो राज्य सरकार ने 18.08.2020 को शासनादेश जारी किया, जिसके द्वारा निगम द्वारा की गई गलती को इंगित किया गया और उसे 01.04.1991, 01.04.1992, 01.04.1993, 01.04.1994 और 01.04.1995 को किए गए नियमितीकरण को रद्द करने का निर्देश दिया गया; वार्षिक वेतन वृद्धि, वेतन का समयमान आदि का लाभ वसूलने के लिए, जो कि पूर्वव्यापी प्रभाव से नियमितीकरण के आधार पर गलती से प्रदान किया गया था और व्यक्तियों का नियमितीकरण केवल 26.04.2011 से माना जाना चाहिए और परिणामस्वरूप, उक्त व्यक्ति केवल नई पेंशन योजना के लाभ के लिए हकदार होंगे। उसी के आधार पर, निगम ने दिनांक 20.08.2020 को आक्षेपित आदेश भी जारी किया।

18. श्री कपूर का तर्क यह है कि जब शासनादेश दिनांक 12.04.2011 में ही यह दर्शाया गया था कि नियमितीकरण तत्काल प्रभाव से किया जाना है और उसके अनुसरण में, निगम ने दिनांक 26.04.2011 को आदेश जारी किया जिसमें स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया गया था कि याचिकाकर्ताओं का नियमितीकरण शासनादेश दिनांक 12.04.2011 के जारी होने की तिथि से किया जा रहा है, फलस्वरूप, वेतन निर्धारण आदि का कोई भी लाभ जो याचिकाकर्ताओं को गलती से पूर्वव्यापी प्रभाव से दिया गया है, विधि की दृष्टि में स्पष्ट रूप से अनुचित है।

19. आगे तर्क यह है कि याचिकाकर्ताओं ने न तो 12.04.2011 के शासनादेश को चुनौती दी है, जिसमें याचिकाकर्ताओं की सेवाओं को तत्काल प्रभाव से नियमित करने का निर्देश दिया गया था, साथ ही निगम द्वारा पारित 26.04.2011 के आदेश को भी चुनौती नहीं दी है, जिसमें 12.04.2011 से उनकी सेवाओं को नियमित किया गया है और इस प्रकार उक्त आदेशों को स्वीकार करते हुए, उन्हें आक्षेपित आदेशों को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

20. श्री कपूर का दूसरा तर्क यह है कि उत्तर प्रदेश जलापूर्ति एवं सीवरज अधिनियम, 1975 (जिसे आगे "अधिनियम, 1975" कहा जाएगा) की धारा 89 को धारा 8 के साथ पठित मानते हुए, निगम नीतिगत प्रश्नों पर राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों द्वारा निर्देशित होता है और इसके अलावा याचिकाकर्ताओं की नियुक्ति भी, जैसा कि वर्तमान वाद में किया गया है, अधिनियम, 1975 की धारा 8 द्वारा शासित होगी, जो स्पष्ट रूप

से यह प्रावधान करती है कि कर्मचारियों की नियुक्ति राज्य सरकार के अनुमोदन से नियमों और शर्तों को निर्धारित करने वाले सामान्य या विशेष आदेश के अनुसार की जानी है।

21. श्री कपूर ने यह भी तर्क दिया कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि शासनादेश में केवल 12.04.2011 से याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण का निर्देश दिया गया था, परिणामस्वरूप, निगम द्वारा 12.04.2011 के शासनादेश की गलत व्याख्या के कारण और निगम द्वारा जारी 26.04.2011 के आदेश के प्रस्तर 6 में उल्लिखित गलत व्याख्या के कारण याचिकाकर्ताओं को जो भी लाभ दिया गया है, उससे याचिकाकर्ताओं को कोई अधिकार नहीं मिलेगा, क्योंकि यह गलत है और अधिनियम, 1975 के प्रावधानों के विरुद्ध है।

22. प्रतिद्वंदी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

23. प्रतिद्वंदी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए तर्कों और अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ताओं को शुरू में निगम में दैनिक वेतन/मस्टर रोल/कार्य प्रभार के आधार पर नियुक्त किया गया था और वे उसी पद पर कार्य करते रहे। दिनांक 12.04.2011 का शासनादेश जारी कर याचिकाकर्ताओं जैसे व्यक्तियों की सेवाओं को तत्काल प्रभाव से नियमित करने का निर्देश दिया गया था। नियमितीकरण के उद्देश्य से, विभिन्न पदों का सृजन भी किया गया था। इसके अनुसरण में, निगम ने दिनांक 26.04.2011 का आदेश पारित कर याचिकाकर्ताओं को उक्त शासनादेश जारी होने की तिथि अर्थात् 12.04.2011 से सेवा में नियमित कर दिया। तथापि, दिनांक 26.04.2011 के आदेश के प्रस्तर 6 में, दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश में ऐसा प्रावधान न होने के बावजूद, निगम ने अपनी इच्छा से यह दर्शाया कि केवल वेतन निर्धारण के प्रयोजनार्थ, याचिकाकर्ता अपनी प्रारंभिक नियुक्ति के पांच वर्ष की निरंतर सेवा के बाद अपनी सेवा की गणना के हकदार होंगे, अर्थात् 01.04.1991, 01.04.1992, 01.04.1993, 01.04.1994 एवं 01.04.1995 से। यह भी प्रावधान किया गया कि याचिकाकर्ताओं का वेतन निर्धारण किया जाएगा, लेकिन 11.04.2011 तक की उक्त अवधि के लिए उन्हें कोई बकाया देय नहीं होगा।

24. इसके अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं का वेतन निर्धारण किया गया।

25. जब निगम द्वारा यह पाया गया कि उसने एक ऐसा आदेश पारित किया है जो दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश के विपरीत है, जिसमें केवल याचिकाकर्ताओं को उक्त शासनादेश जारी होने की तिथि से तत्काल प्रभाव से नियमित करने का निर्देश दिया गया था, तो निगम ने 12.02.2020 के एक पत्र सहित विभिन्न पत्र भेजकर स्पष्टीकरण मांगा कि क्या याचिकाकर्ताओं को उनके नियमितीकरण को पूर्वव्यापी प्रभाव से मानकर जो लाभ दिए गए हैं, उन्हें वैध कहा जा सकता है या याचिकाकर्ता अपने नियमितीकरण की तारीख अर्थात् 12.04.2011 से लाभ के हकदार होंगे।

26. इसके परिणामस्वरूप राज्य सरकार द्वारा दिनांक 18.08.2020 को शासनादेश/आक्षेपित आदेश पारित किया गया है जिसमें निर्देश दिया गया है कि 01.04.1991, 01.04.1992, 01.04.1993, 01.04.1994 और 01.04.1995 से किए गए सभी नियमितीकरण गलत हैं और उन्हें रद्द किया जाना चाहिए; कोई भी भुगतान/वेतन निर्धारण, वेतन वृद्धि, समयमान वेतनमान आदि जो कि 1991 से 1995 की उपरोक्त तिथियों से दिया गया है, त्रुटिपूर्ण है और उक्त वेतन निर्धारण को 26.04.2011 से नियमित किए गए व्यक्तियों के रूप में मानकर संशोधित किया जाना चाहिए और व्यक्तियों को भुगतान की गई अतिरिक्त राशि की वसूली की जानी चाहिए और दोषी अधिकारियों के विरुद्ध उचित विभागीय कार्रवाई की जानी चाहिए और चूंकि याचिकाकर्ताओं को 26.04.2011 के आदेश द्वारा नियमित किया गया है, इसलिए वे केवल नई पेंशन योजना के लिए पात्र होंगे जो 01.04.2005 से लागू हुई है।

27. इसके अनुसरण में, निगम ने दिनांक 20.08.2020 को उक्त आदेश को दोहराते हुए और वेतन निर्धारण आदि से संबंधित याचिकाकर्ताओं को दिए गए लाभों को वापस लेते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया और इसलिए याचिकाएँ हैं।

28. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आदेशों को चुनौती देने के लिए विभिन्न आधार लिए गए हैं, जिनमें यह आधार भी शामिल है कि आदेश पारित होने से पहले याचिकाकर्ताओं को प्राप्त निहित अधिकार वापस नहीं लिए जा सकते; आदेश पारित करने से पहले याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया और रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर) (पूर्वोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ताओं से उनके द्वारा प्राप्त अतिरिक्त राशि की कोई वसूली नहीं की जा सकती क्योंकि वे सभी चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी हैं।

29. उपरोक्त आधार हालांकि अभिलेख के सामने आकर्षक हैं, लेकिन स्पष्ट रूप से गलत पाए गए हैं।

30. कारण यह है कि राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक 12.04.2011 के आदेश का अवलोकन स्वयं इंगित करता है कि याचिकाकर्ताओं को तत्काल प्रभाव से नियमित किया जाना था। निगम ने अपनी इच्छा से और दिनांक 12.04.2011 के आदेश की गलत व्याख्या करते हुए याचिकाकर्ताओं को पूर्वव्यापी प्रभाव से नियमित कर दिया और उन्हें वेतन निर्धारण भी प्रदान किया, जो अधिनियम, 1975 की धारा 8 और 89 के प्रावधानों को देखते हुए वैध रूप से नहीं किया जा सकता था, जो इस प्रकार हैं:-

"8. कर्मचारियों की नियुक्ति।

(1) उप-धारा (2) के प्रावधान के अधीन रहते हुए, निगम ऐसे कर्मचारियों को नियुक्त कर सकता है जिन्हें वह आवश्यक समझे, ऐसे नियमों और शर्तों पर जो वह अपने कार्यों के कुशल निष्पादन के लिए उपयुक्त समझे: बशर्त कि ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति, जिन्हें राज्य सरकार, सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट करे, उनके नियमों और शर्तों के अनुसार की जाएगी, जो राज्य सरकार के अनुमोदन से निर्धारित की जाएंगी।

2) निगम, राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से, केंद्र सरकार या राज्य सरकार के किसी कर्मचारी को निगम के कर्मचारी के रूप में ऐसे नियमों और शर्तों पर नियुक्त कर सकता है, जो वह उचित समझे।

89. नीतिगत प्रश्नों पर निगम को निर्देश।

(1) अपने कार्यों के निर्वहन में, निगम नीतिगत प्रश्नों पर ऐसे निर्देशों द्वारा निर्देशित होगा जो उसे राज्य सरकार द्वारा दिए जाएं।

(2) यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई मामला ऐसा मामला है या नहीं जिसके संबंध में राज्य सरकार उप-धारा (1) के तहत निर्देश जारी कर सकती है, तो राज्य सरकार का निर्णय अंतिम होगा।

31. अधिनियम, 1975 की धारा 8 के अवलोकन से पता चलता है कि निगम ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकता है जिन्हें वह आवश्यक समझे। अधिनियम, 1975 की धारा 8 की उपधारा (1) के प्रावधान में यह प्रावधान है कि ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति, जिन्हें राज्य सरकार, सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्दिष्ट करे, राज्य सरकार के अनुमोदन से निर्धारित शर्तों और नियमों पर की जाएगी।

32. इसी प्रकार, अधिनियम, 1975 की धारा 89 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि अपने कार्यों के निर्वहन में, निगम नीतिगत प्रश्नों पर राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों द्वारा निर्देशित होगा।

33. जब अधिनियम, 1975 की धारा 8 और 89 को पढ़ा जाता है, तो वे स्पष्ट रूप से प्रावधान करते हैं कि कर्मचारियों की नियुक्तियाँ और नियम और शर्तें राज्य सरकार के अनुमोदन से निर्धारित की जाएँगी और अपने कार्यों के निर्वहन में, निगम नीतिगत प्रश्नों पर राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों द्वारा निर्देशित होगा।

34. जब राज्य सरकार ने निगम में कार्यरत कर्मचारियों को नियमित करने का सचेत निर्णय लिया और उनका नियमितीकरण दिनांक 12.04.2011 के आदेश द्वारा तत्काल प्रभाव से किया गया, तो निगम राज्य सरकार द्वारा जारी निर्देशों से बंधा हुआ था और उक्त आदेश से आगे नहीं बढ़ सकता था, अर्थात् याचिकाकर्ताओं जैसे कर्मचारियों को दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश की तिथि से नियमित करने के अलावा और वेतन निर्धारण आदि के लाभों सहित पूर्वव्यापी प्रभाव से कोई लाभ प्रदान नहीं कर सकता था। इस प्रकार, यदि निगम ने अपनी इच्छा से याचिकाकर्ताओं को कुछ लाभ दिए जो त्रुटिपूर्ण थे और दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश से परे थे, परिणामस्वरूप, अधिनियम, 1975 के प्रावधानों और दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ताओं को इसका लाभ लेने का कोई निहित अधिकार नहीं मिला और इस प्रकार राज्य सरकार और निगम द्वारा लाभ वापस लेने के आदेश पारित करते समय कोई त्रुटि नहीं हुई है, क्योंकि याचिकाकर्ताओं को उनके नियमितीकरण को पूर्वव्यापी रूप से मानकर त्रुटिपूर्ण रूप से लाभ दिया गया था।

35. जहां तक इस आधार का संबंध है कि आदेश पारित करने से पूर्व याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था, यह विधि का स्थापित प्रस्ताव है कि नैसर्गिक न्याय एक खाली औपचारिकता नहीं है और यदि केवल एक ही दृष्टिकोण संभव है, तो सुनवाई का अवसर देने की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

36. न्यायालय ने स्वयं इस बात पर विचार किया है कि क्या इस मामले में कोई अन्य दृष्टिकोण अपनाया जाना संभव था और यदि याचिकाकर्ताओं को कोई अवसर दिया गया होता, तो क्या कोई भिन्न दृष्टिकोण संभव हो सकता था?

37. अधिनियम, 1975 के प्रावधानों और दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश पर विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि निगम ने पूर्वव्यापी नियमितीकरण का आदेश पारित करने में गलती की है और परिणामस्वरूप कोई अन्य दृष्टिकोण न होने के कारण, यदि याचिकाकर्ताओं को सुनवाई का अवसर दिया गया होता, तो भी उसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आदेशों के अलावा कोई अन्य आदेश नहीं होता।

38. इस संबंध में, न्यायालय एस.एल. कपूर बनाम जगमोहन एवं अन्य-मनु/एससी/0036/1980 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ ले सकता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"17. इस प्रश्न से जुड़ा यह प्रश्न है कि क्या नैसर्गिक न्याय का पालन न करने का कोई महत्व है, यदि नैसर्गिक न्याय के पालन से कोई फर्क नहीं पड़ता, तो स्वीकृत या निर्विवाद तथ्य स्वयं ही स्पष्ट हो जाते हैं। जहाँ स्वीकृत या निर्विवाद तथ्यों के आधार पर केवल एक ही निष्कर्ष संभव है और विधि के तहत केवल एक ही दंड अनुमेय है, वहाँ न्यायालय नैसर्गिक न्याय के पालन हेतु बाध्य करने हेतु रिट जारी नहीं कर सकता, इसलिए नहीं कि वह नैसर्गिक न्याय के पालन न करने का अनुमोदन करता है, बल्कि इसलिए कि न्यायालय निरर्थक रिट जारी नहीं करते। लेकिन यह अन्य स्थितियों में लागू करने के लिए एक हानिकारक सिद्धांत होगा जहाँ निष्कर्ष विवादास्पद हों, चाहे थोड़े ही क्यों न हों, और दंड विवेकाधीन हों।"

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

39. उक्त निर्णय पर बाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय बनाम मंसूर अली खान-मनु/एससी/0533/2000 के वाद में भी विचार किया है।

40. जहाँ तक इस आधार का संबंध है कि याचिकाकर्ताओं ने पूर्वव्यापी प्रभाव से किए गए अपने नियमितीकरण के आधार पर पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति देय राशि प्राप्त करने का निहित अधिकार प्राप्त कर लिया था, उक्त आधार भी न्यायालय को रोक नहीं सकता क्योंकि विधि के विरुद्ध कोई निहित अधिकार नहीं हो सकता। चूँकि शासनादेश में ही तत्काल प्रभाव से लाभ प्रदान करने का प्रावधान था और निगम ने पूर्वव्यापी प्रभाव से लाभ प्रदान करने में गलती की थी, तो वह याचिकाकर्ताओं को उनके गलत पूर्वव्यापी नियमितीकरण के कारण किसी

भी लाभ का दावा करने का कोई निहित अधिकार नहीं दे सकता। इस प्रकार, उक्त आधार भी खारिज किया जाता है।

41. मामले का एक प्रासंगिक पहलू यह है कि याचिकाकर्ताओं ने 12.04.2011 के शासनादेश को स्वीकार कर लिया है जिसमें तत्काल प्रभाव से नियमितीकरण का प्रावधान था। उक्त आदेश को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है, जिसका अर्थ यह है कि याचिकाकर्ता स्वयं इस विचार के हैं कि दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश के अनुसार नियमितीकरण केवल भावी प्रभाव से ही दिया जा सकता था, न कि भूतलक्षी प्रभाव से, जैसा कि निगम द्वारा गलत तरीके से किया गया है। दिनांक 12.04.2011 के शासनादेश को चुनौती न देने का उक्त कार्य, विशेष रूप से अधिनियम, 1975 की धारा 8 और 89 को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ताओं के साथ-साथ निगम को भी बाध्य करेगा।

42. मामले के गुण-दोष पर विचार करने के बाद, अब न्यायालय यह देखना चाहता है कि क्या इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित कर्मचारियों के तीन समूहों को कोई लाभ दिया जा सकता है, अर्थात् (ए) याचिकाकर्ता जो दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आदेश पारित होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं और अपनी सेवानिवृत्ति देय राशि प्राप्त कर चुके हैं और पेंशन प्राप्त कर रहे हैं (बी) याचिकाकर्ता जो वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवा से सेवानिवृत्त हो गए हैं और (सी) याचिकाकर्ता जो सेवा में हैं।

43. श्रेणी (ए) के कर्मचारियों के संबंध में, अर्थात् याचिकाकर्ता जो दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आदेश पारित होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं और अपनी सेवानिवृत्ति देय राशि प्राप्त कर चुके हैं और पेंशन प्राप्त कर रहे हैं, क्योंकि उक्त याचिकाकर्ताओं ने आदेश पारित होने से पूर्व ही पेंशन, ग्रेच्युटी और अन्य लाभ प्राप्त कर लिए हैं, इसलिए यह न्यायालय भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए पाता है कि यह अनुचित होगा कि उन्हें पहले से दिए गए लाभ वापस ले लिए जाएं।

44. इस संबंध में, **केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद एवं अन्य बनाम बिकर्तन दास एवं अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 996** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना समीचीन होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

51. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग का दूसरा प्रमुख सिद्धांत यह है कि किसी वाद में, यदि रिट याचिका में चुनौती दी गई कोई कार्रवाई या आदेश अवैध और अमान्य पाया जाता है, तो **उच्च न्यायालय अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय करने की दृष्टि से उसे रद्द करने से इनकार कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 226 एक असाधारण उपाय प्रदान करता है, जो अनिवार्य रूप से विवेकाधीन है, हालाँकि यह विधिक क्षति पर आधारित है। रिट न्यायालय, इस लचीली शक्ति का प्रयोग करते हुए, जनहित और समता के अनुरूप आदेश पारित करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र**

है। विधिक नियमों को वाद की वास्तविक स्थिति से अलग करके लागू नहीं किया जा सकता। विधि को लागू करते समय, इसमें समता का समावेश होना चाहिए और यदि समतापूर्ण स्थिति विधिक नियमों को सही करने के बाद भी उसे तार्किक निष्कर्ष तक न ले जाने की माँग करती है, तो उच्च न्यायालय अपने कर्तव्य का पालन करने में विफल होगा यदि वह समतापूर्ण विचार पर ध्यान नहीं देता और अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अंतिम आदेश नहीं देता। कोई भी अन्य दृष्टिकोण उच्च न्यायालय को एक सामान्य अपील न्यायालय बना देगा, जो वह नहीं है।"

45. परिणामस्वरूप, भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, न्यायालय प्रत्यर्थीगण को श्रेणी (ए) के ऐसे याचिकाकर्ताओं, अर्थात् जो दिनांक 18.04.2020 और 20.04.2020 के आदेश जारी होने से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके हैं, को दी गई पेंशन, ग्रेजुटी या अन्य लाभों की वसूली करने से रोकता है। इसका अर्थ यह है कि उक्त याचिकाकर्ता अपनी सेवानिवृत्ति के समय प्राप्त पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति लाभ, सभी परिणामी लाभों सहित, प्राप्त करते रहेंगे। यह निर्देश केवल ऊपर बताए गए श्रेणी (ए) के कर्मचारियों पर ही लागू होगा।

46. जहाँ तक श्रेणी (बी) और (सी) के कर्मचारियों का संबंध है, अर्थात् (बी) वे याचिकाकर्ता जो इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गए हैं और (सी) वे याचिकाकर्ता जो सेवा में हैं, रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर) (पूर्वोक्त) के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि का सिद्धांत लागू होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"12. कठिनाई की सभी स्थितियों की कल्पना करना संभव नहीं है, जो वसूली के मुद्दे पर कर्मचारियों को नियंत्रित करेंगी, जहाँ नियोक्ता द्वारा गलती से उनकी पात्रता से अधिक भुगतान किया गया हो। जैसा भी हो, ऊपर उल्लिखित निर्णयों के आधार पर, हम एक त्वरित संदर्भ के रूप में, निम्नलिखित कुछ स्थितियों का सारांश प्रस्तुत कर सकते हैं, जिनमें नियोक्ताओं द्वारा वसूली विधि अनुमेय होगी:

- (i) तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी सेवा (या समूह 'सी' और समूह 'डी' सेवा) से संबंधित कर्मचारियों से वसूली।
- (ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों, या उन कर्मचारियों से, जो वसूली के आदेश के एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं, वसूली।
- (iii) कर्मचारियों से वसूली, जब वसूली का आदेश जारी होने से पहले, पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए अतिरिक्त भुगतान किया गया हो।
- (iv) उन मामलों में वसूली जहाँ किसी कर्मचारी से अनुचित रूप से उच्च पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने की अपेक्षा की गई हो, और उसे तदनुसार भुगतान किया गया हो, जबकि उसे उचित रूप से निम्न पद पर कार्य करने की अपेक्षा की जानी चाहिए थी।
- (v) किसी अन्य मामले में, जहाँ न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि कर्मचारी से वसूली की जाती है, तो वह इस सीमा तक अन्यायपूर्ण, कठोर या मनमानी होगी, जो नियोक्ता के वसूली के अधिकार के न्यायसंगत संतुलन से कहीं अधिक होगा।"

47. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी सेवा या समूह ग एवं घ सेवा के कर्मचारियों से वसूली विधि की दृष्टि में स्पष्ट रूप से अनुज्ञेय नहीं है। इस प्रकार, श्रेणी (बी) और (सी) के याचिकाकर्ताओं को दिए गए निर्धारण के कारण अतिरिक्त राशि की वसूली नहीं की जाएगी।

48. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकार की जाती है। दिनांक 18.08.2020 और 20.08.2020 के आक्षेपित आदेश, जिनकी प्रतियाँ क्रमशः रिट याचिका के अनुलग्नक 1 और 2 में हैं, जहाँ तक वे श्रेणी (बी) और (सी) के याचिकाकर्ताओं से अतिरिक्त राशि की वसूली का निर्देश देते हैं, निरस्त किए जाते हैं।

49. परिणाम अनुगामी होंगे।

44. न्यायालय इस न्यायालय के रिसर्च एसोसिएट श्री मोहम्मद आजम सिद्दीकी की सहायता को दर्ज करता है।

(2025) 1 ILRA 298

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 29.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट ए संख्या 23739/2021

साथ में

रिट ए संख्या 22141/2021

आनंद कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

गौस बेग

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, नमित शर्मा, शैलेंद्र सिंह चौहान

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग नियमावली, 2016 --- याचिकाकर्ता की नियुक्ति नगर निगम में वर्ष 1998 में संविदा के आधार पर हुई थी। अनियमित/संविदा/अस्थायी आधार पर कार्यरत कर्मचारियों की सेवाएं समाप्त करने के लिए दिनांक 23.07.2012 का शासनादेश जारी किया गया था --- इस बीच, नियमितीकरण हेतु नियमावली, 2016 जारी की गई थी और याचिकाकर्ता को नियमितीकरण के लिए पात्र पाए जाने पर, दिनांक 23.06.2021 के आदेश द्वारा नियमित किया गया था --- जो व्यक्ति नियमावली के प्रख्यापन की तिथि अर्थात् 12.09.2016 के बाद भी कार्यरत हैं, ऐसे संविदा कर्मचारियों को नियमावली, 2016 के आधार पर उनकी सेवा के नियमितीकरण पर विचार करने का अधिकार प्राप्त हुआ। यह स्वीकार किया गया कि याचिकाकर्ता नियमावली के प्रख्यापन की तिथि अर्थात् 12.09.2016 को सेवा में बना हुआ था और इस प्रकार उसे दिनांक 23.06.2021 के आदेश द्वारा सही ढंग से नियमित किया गया था। - चूंकि याचिकाकर्ता पहले ही नियमित हो चुका था, इसलिए दिनांक 28.07.2021 का कोई शासनादेश जारी करने का कोई कारण नहीं था, जिसमें यह दर्शाया गया हो कि नियमितीकरण विशेष अपील के निर्णय के अधीन है, जहाँ तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है और इस मामले में नगर निगम द्वारा दिनांक 26.08.2021 का परिणामी आक्षेपित आदेश जारी किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता के नियमितीकरण आदेश को रद्द किया गया था। - जहां तक इस आधार का प्रश्न है कि अब कोई पद रिक्त नहीं है, जिस पर याचिकाकर्ता, जैसा कि प्रत्यर्थागण ने आग्रह किया है, कार्य करना जारी रख सके, तो उक्त आधार स्पष्ट रूप से गलत पाया गया है क्योंकि याचिकाकर्ता के दिनांक 23.06.2021 के नियमितीकरण आदेश से ही संकेत मिलता है कि याचिकाकर्ता को 5200-20200 रुपये के वेतनमान में लाइटर/पोर्टर के रिक्त पद पर नियमित किया गया है और इस प्रकार यदि इस समयावधि में कोई पद रिक्त नहीं है, तो इससे याचिकाकर्ता का मामला प्रभावित नहीं होगा।---आक्षेपित आदेश रद्द किया गया---**याचिका स्वीकृत। (प्रस्तर 33 और 37) (ई-15)**

उद्धृत वादों की सूची:

1. रिट याचिका संख्या 6755 (एस/एस) वर्ष 2012, विनय कुमार शुक्ला एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
2. रिट याचिका संख्या 4334 (एस/एस) वर्ष 2012, नीरज बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
3. विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 96 वर्ष 2018, उमेश चंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
4. रिट याचिका संख्या 18342 (एस/एस) वर्ष 2020, अजय बाजपेयी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
5. रिट याचिका संख्या 2983 (एस/एस) वर्ष 2020, इरफान अफ्फास एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य..
6. विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 284/2021, शिव कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य
7. विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 18904/2023, नगर आयुक्त लखनऊ नगर निगम लखनऊ उत्तर प्रदेश एवं अन्य बनाम उमेश चंद्र यादव एवं अन्य

8. केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद एवं अन्य बनाम बिकर्तन दास एवं अन्य- (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 996

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री गौस बेग, प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री नमित शर्मा और प्रत्यर्थी संख्या 3, 4 और 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र सिंह चौहान को सुना गया।

2. प्रत्यर्थी पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं का तर्क है कि दोनों रिट याचिकाओं में शामिल मुद्दा एक ही है। अतः, न्यायालय दोनों रिट याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई और एक समान आदेश द्वारा निर्णय दिया जा रहा है। सुविधा के लिए, रिट-ए संख्या - 23739/2021 के तथ्यों पर विचार किया जा रहा है।

3. यह एक विशिष्ट वाद है और निर्णय में इसकी विशिष्टताओं का उल्लेख किया गया है।

4. निम्नलिखित मुख्य अनुतोषों की प्रार्थना करते हुए यह याचिका दायर की गई है:-

"i. विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित कार्यालय जापन संख्या 358/मु0वि0/विविध दिनांक 26.8.2021 और विपक्षी संख्या 1 द्वारा जारी आक्षेपित पत्र/आदेश दिनांक 28.7.2021, जैसा कि रिट याचिका के क्रमशः अनुलग्नक संख्या 1 और 2 में निहित है, को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

ii. विपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित मौखिक समाप्ति आदेश दिनांक 1.9.2021 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

iii. विपक्षीगणों को आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वे याचिकाकर्ता को नगर निगम, लखनऊ के स्ट्रीट लाइट विभाग में लाइटर/पोर्टर (चतुर्थ श्रेणी पद) के पद पर काम करने और कर्तव्यों का निर्वहन करने की अनुमति दें और उसे नियमितीकरण आदेश दिनांक 23.6.2021 (रिट याचिका का अनुलग्नक संख्या 13) के अनुसरण में नियमित वेतन का भुगतान करें।"

5. अनावश्यक विवरणों से परे, वाद के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में 01.09.1998 को नगर निगम, लखनऊ में संविदा के आधार पर नियुक्त किया गया था और वह काफी लंबे समय तक इस पद पर कार्यरत रहा। उत्तर प्रदेश सरकार के प्रमुख सचिव द्वारा दिनांक 23.07.2012 को एक शासनादेश जारी किया गया था और सभी जिलाधिकारियों, सभी नगर आयुक्तों आदि को अनियमित तरीके से या संविदा/अस्थायी आधार पर लगे कर्मचारियों की सेवाएं समाप्त करने के लिए संबोधित किया गया था।

6. उक्त शासनादेश को याचिकाकर्ता ने कई अन्य लोगों के साथ विभिन्न रिट याचिकाएं दायर करके चुनौती दी थी। याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका रिट याचिका संख्या 6755 (एस/एस) वर्ष 2012 के संबंध में: विनय कुमार शुक्ला एवं 32 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य है।

7. सभी रिट याचिकाओं को दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश के माध्यम से निर्णीत किये गए, जिनमें प्रमुख रिट याचिका संख्या 4334 (एस/एस) वर्ष 2012, नीरज बाबू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, था, जिसके द्वारा रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया। दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश की प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 में है। हालाँकि, रिट याचिका खारिज होने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्पण के अधीन काम करना और कर्तव्यों का निर्वहन करना जारी रखा।

8. कुछ व्यक्तियों ने उक्त निर्णय से व्यथित होकर विभिन्न विशेष अपीलें दायर कीं। विशेष अपीलों में से एक विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 96/2018, उमेश चंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य था। इस न्यायालय की खंडपीठ ने दिनांक 14.03.2018 के आदेश द्वारा, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 11 में है, यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया, जैसा कि रिट न्यायालय के निर्णय की तिथि को विद्यमान था, उसे बनाए रखा जाना जारी रखा जाए।

9. संयोग से, याचिकाकर्ता ने उस समय दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने वाली कोई विशेष अपील दायर नहीं की थी।

10. इसके बाद, वर्ष 2020 में याचिकाकर्ता ने रिट याचिका संख्या 18342 (एस/एस) वर्ष 2020 अजय बाजपेयी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य दायर किया, जिसमें याचिकाकर्ता, याचिकाकर्ता संख्या 4 था, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 1 अर्थात् राज्य को लखनऊ के स्ट्रीट लाइट विभाग में कार्यरत याचिकाकर्ताओं की सेवाओं के नियमितीकरण के लिए अतिरिक्त पदों के सृजन हेतु निर्णय लेने का निर्देश देने का अनुरोध किया गया था, जिसमें समूह-ग और समूह-घ पदों पर सरकारी विभागों में दैनिक वेतन या कार्यभारित या संविदा पर कार्यरत व्यक्तियों का उत्तर प्रदेश नियमितीकरण (उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के दायरे से बाहर) नियमावली, 2016 (जिसे आगे "नियमावली, 2016" कहा जाएगा) के प्रावधानों पर विचार किया गया था।

11. रिट याचिका का निस्तारण दिनांक 22.10.2020 के आदेश द्वारा किया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 12 में है, जिसमें नगर आयुक्त, नगर निगम, लखनऊ को निर्देश दिया गया कि वे रिट याचिका संख्या 2983 (एस/एस) 2020 इरफान अफ्फास और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 04.02.2020 के निर्णय और आदेश को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ताओं के अभ्यावेदन पर निर्णय लें।

12. इसके अनुसरण में, प्रत्यर्थी - नगर निगम, लखनऊ ने दिनांक 23.06.2021 को एक आदेश पारित किया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 13 में है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की सेवा को 23.06.2021 से वेतनमान ₹5200-20200/- और ग्रेड वेतन ₹2400/- में लाइटर/पोर्टर के रिक्त पद पर नियमित किया गया।

13. इस बीच, राज्य सरकार ने दिनांक 28.07.2021 को आक्षेपित आदेश जारी किया, जिसमें नगर निगम को पहले से जारी नियमितीकरण आदेशों को संशोधित करने का निर्देश दिया गया, यह इंगित करते हुए कि उक्त नियमितीकरण विशेष अपील में पारित अंतिम आदेश के अधीन होगा।

14. आश्चर्यजनक रूप से, 23.06.2021 को नियमितीकरण के बावजूद, याचिकाकर्ता ने 17.08.2021 को **शिव कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के संबंध में विशेष अपील (दोषपूर्ण) संख्या 284/2021** दायर किया, जिसमें याचिकाकर्ता अपीलकर्ता संख्या 3 था। हालाँकि, उक्त अपील को 19.08.2021 के आदेश के द्वारा बदली हुई परिस्थितियों के मद्देनजर वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 16 में है।

15. मामला शायद शांत हो गया होता, लेकिन प्रत्यर्थीगण ने, दिनांक 21.08.2021 के आदेश के द्वारा, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 15 में है, राज्य सरकार द्वारा जारी एक आदेश पर विचार करते हुए, याचिकाकर्ता को वर्ष 2018 के रिट न्यायालय के आदेश के विरुद्ध दायर की जाने वाली विशेष अपील से संबंधित कागजात या दस्तावेज प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

16. इसके बाद, दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने वाली विशेष अपीलों के समूह पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्णय दिया गया, जिसके अंतर्गत **विशेष अपील संख्या 96/2018, उमेश चंद्र यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, दिनांक 23.09.2022** के निर्णय और आदेश द्वारा निर्णीत प्रमुख है।

17. यद्यपि इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा अपीलकर्ताओं के संबंध में विभिन्न निर्देश जारी किए गए थे, फिर भी निर्णय के प्रस्तर 15 के अवलोकन से यह संकेत मिलता है कि इस न्यायालय की खंडपीठ का यह विचार था कि जो व्यक्ति 12.09.2016 अर्थात् नियमावली, 2016 के प्रभावी होने की तिथि के बाद भी कार्यरत थे, ऐसे संविदा कर्मचारियों के अधिकार नियमावली, 2016 में निहित प्रावधानों के आधार पर उनकी सेवाओं के नियमितीकरण पर विचार किए जाने के लिए स्पष्ट हो गए थे, जिनसे उन्हें वंचित नहीं किया जा सकता था।

18. संयोगवश, दिनांक 23.09.2022 के निर्णय और आदेश की पुष्टि, **विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 18904/2023 नगर आयुक्त लखनऊ नगर निगम लखनऊ उ.प्र. एवं अन्य बनाम उमेश चंद्र यादव एवं अन्य** को दिनांक 05.07.2023 के आदेश द्वारा खारिज करने के साथ की गई है, जैसा कि अनुपूरक शपथपत्र (आई.ए. संख्या 5/2024) के साथ संलग्न आदेश में दर्शाया गया है।

19. इसके बाद, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 26.08.2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 में है, याचिकाकर्ता के दिनांक 23.06.2021 के नियमितीकरण आदेश को इस आधार पर रद्द कर दिया है कि विभिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा दायर विशेष अपील में याचिकाकर्ता का नाम शामिल नहीं है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर विशेष अपील को दिनांक 19.08.2021 को वापस ले लिया गया मानते हुए खारिज कर दिया गया है।

20. इसके बाद, प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 01.09.2021 से याचिकाकर्ता की सेवाओं को मौखिक रूप से समाप्त भी कर दिया है।

21. हालाँकि, वर्तमान याचिका में पारित दिनांक 08.10.2021 के अंतरिम आदेश द्वारा, इस न्यायालय ने यह प्रावधान किया है कि नगर निगम में चतुर्थ श्रेणी में याचिकाकर्ता की सेवाओं को समाप्त नहीं किया जाएगा, यह अंतरिम आदेश अभी भी जारी है और याचिकाकर्ता चतुर्थ श्रेणी के पद पर कार्य करना जारी रखे हुए है।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि जब रिट न्यायालय के दिनांक 02.02.2018 के आदेश के बावजूद, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई थी और याचिकाकर्ता की सेवाएं 23.06.2021 को पहले ही नियमित कर दी गई थीं, परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता के लिए 02.02.2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने का कोई अवसर नहीं था। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने अपने विवेक से दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश के खिलाफ विशेष अपील दायर की, जिसे इस तथ्य पर विचार करते हुए वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया कि वह पहले से ही नियमित था और इसके बाद याचिकाकर्ता के पास दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने का कोई कारण नहीं था।

23. वैसे भी, दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश से व्यथित विभिन्न व्यक्तियों द्वारा दायर विशेष अपील को स्वीकृति दे दी गई है। यद्यपि उक्त विशेष अपीलों के अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के संबंध में निर्देश जारी किए गए थे, तथापि एक सामान्य निर्देश भी जारी किया गया था और **उमेश चंद्र यादव (पूर्वोक्त)** में 23.09.2022 को पारित निर्णय के प्रस्तर 15 के अनुसार, सेवा में बने रहने वाले व्यक्तियों के नियमितीकरण पर नियमावली, 2016 के अनुसार विचार किया जाना अपेक्षित था और वास्तव में, प्रत्यर्थीगण द्वारा इस पर विचार किया गया था और याचिकाकर्ता की सेवाओं को दिनांक 23.06.2021 के आदेश द्वारा नियमित किया गया था और परिणामस्वरूप, जिस आधार पर प्रत्यर्थी ने अब दिनांक 28.07.2021 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाओं के नियमितीकरण को रद्द किया है, उसे केवल इन्हीं आधारों पर अपास्त किया जाना चाहिए, विशेष रूप से तब जब याचिकाकर्ता वर्ष 1998 से सेवा में है।

24. उपरोक्त आधारों पर, यह तर्क दिया जाता है कि दिनांक 26.08.2021 का आक्षेपित परिणामी आदेश भी अपास्त किए जाने योग्य है।

25. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी/निगम के विद्वान अधिवक्ताओं श्री नमित शर्मा और श्री शैलेन्द्र सिंह चौहान ने तर्क दिया कि मामले का तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता ने अन्य लोगों के साथ मिलकर 23.07.2012 के शासनादेश को चुनौती दी थी, जिसमें अनियमित तरीके से या अनुबंध/अस्थायी आधार पर लगे कर्मचारियों की सेवाएं समाप्त करने का निर्देश दिया गया था, जिसे 02.02.2018 को रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा उक्त निर्णय और आदेश दिनांक 02.02.2018 के खिलाफ दायर विशेष अपील को 09.08.2021 को वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया। इस प्रकार, 23.07.2012 के शासनादेश की वैधता को बरकरार रखा गया, जहां तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है और याचिकाकर्ता को 23.07.2012 के शासनादेश पर विचार करते हुए सेवा से बर्खास्त कर दिया गया, जिस तथ्य पर प्रत्यर्थीगण ने 23.06.2021 को नियमितीकरण आदेश पारित करते समय ध्यान नहीं दिया। चूंकि अन्य व्यक्ति 02.02.2018 के आदेश से व्यथित थे, इसलिए उन्होंने विशेष अपील दायर की और इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यथास्थिति का आदेश दिया गया था, परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को विशेष अपील से संबंधित दस्तावेज भी प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी, जो उसके द्वारा दायर की जा सकती थी। हालांकि याचिकाकर्ता ने पहले ही एक विशेष अपील दायर कर दी थी और उसे 19.08.2021 के आदेश के तहत वापस लेते हुए खारिज कर दिया गया था, जिसका अर्थ है कि 02.02.2018 का निर्णय और आदेश, जहां तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है, अंतिम हो गया था और परिणामस्वरूप एक बार याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियमित करके प्रत्यर्थीगण द्वारा एक त्रुटि की गई थी, परिणामस्वरूप 26.08.2021 के आदेश को पारित करके उनके द्वारा कोई त्रुटि नहीं की गई है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की सेवाओं का नियमितीकरण आदेश रद्द कर दिया गया था। साथ ही, दिनांक 28.07.2021 के आदेश में कोई त्रुटि नहीं है, जिसके द्वारा राज्य सरकार ने विशेष अपील के परिणाम के अधीन याचिकाकर्ता को नियमित करने का निर्देश दिया था और चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा दायर विशेष अपील पहले ही खारिज हो चुकी है, इसलिए याचिकाकर्ता की सेवाओं को नियमित करने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

26. यह भी तर्क दिया गया है कि अब कोई पद रिक्त नहीं है जिस पर याचिकाकर्ता कार्य जारी रख सके।

27. प्रतिद्वंदी पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

28. प्रत्यर्थी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्कों और अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को प्रारंभ में वर्ष 1998 में नगर निगम में संविदा के आधार पर नियुक्त किया गया था। अनियमित तरीके/संविदा/अस्थायी आधार पर लगे कर्मचारियों की सेवाएं समाप्त करने के लिए दिनांक 23.07.2012 का शासनादेश जारी किया गया था। उक्त शासनादेश को चुनौती देने वाली याचिकाकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका को कई अन्य याचिकाओं के साथ दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। हालांकि, उक्त शासनादेश जारी होने और रिट याचिका खारिज होने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने काम करना जारी रखा। इस बीच, नियमितीकरण के लिए नियमावली, 2016 जारी किए गए थे और याचिकाकर्ता को नियमितीकरण के लिए योग्य पाए जाने पर दिनांक 23.06.2021 के आदेश द्वारा नियमित कर दिया गया था। मामला यहीं समाप्त हो जाता, लेकिन याचिकाकर्ता ने अपनी बुद्धिमत्ता से 02.02.2018 के

निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए एक विशेष अपील दायर करने का विकल्प चुना। इसके बाद याचिकाकर्ता ने बदली हुई परिस्थितियों को देखते हुए उक्त विशेष अपील वापस ले ली, यह मानते हुए कि रिट याचिका को खारिज करने के साथ 23.07.2012 के शासनादेश को बरकरार रखे जाने के बावजूद, वह पहले से ही सेवा में नियमित था। प्रत्यर्थीगण ने राज्य सरकार द्वारा जारी एक पूर्व आदेश पर विचार करते हुए दिनांक 21.08.2021 के आदेश के माध्यम से याचिकाकर्ता को वर्ष 2018 के रिट न्यायालय के आदेश के विरुद्ध दायर की गई विशेष अपील से संबंधित कागजात और दस्तावेज प्रस्तुत करने का निर्देश दिया।

29. उक्त आदेश राज्य सरकार द्वारा दिनांक 28.07.2021 को जारी आदेश पर विचार करते हुए जारी किया गया था, जिसमें व्यक्तियों के नियमितीकरण आदेश में यह इंगित करना आवश्यक था कि वह विशेष अपील के अधीन है। चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा दायर विशेष अपील उसके नियमितीकरण के कारण पहले ही वापस ले ली गई थी, इसलिए प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 26.08.2021 को याचिकाकर्ता के दिनांक 23.06.2021 के नियमितीकरण आदेश को इस आधार पर रद्द करते हुए आक्षेपित आदेश पारित किया कि विभिन्न अन्य व्यक्तियों द्वारा दायर विशेष अपील में याचिकाकर्ता का नाम नहीं है और याचिकाकर्ता द्वारा दायर विशेष अपील को दिनांक 19.08.2021 को वापस ले लिया गया, मानते हुए खारिज कर दिया गया है।

30. न्यायालय ने जिन विशिष्ट तथ्यों पर विचार किया है, वे यह हैं कि याचिकाकर्ता वर्ष 1998 से ही कार्यरत है और उसके द्वारा दिनांक 23.07.2012 के शासनादेश, जिसके अनुसार उसकी सेवाएं समाप्त की जानी थीं, को चुनौती देने वाली रिट याचिका खारिज होने के बावजूद, प्रत्यर्थीगण द्वारा स्वयं उसे बिना किसी छिपाव या गलत बयानी के नियमित कर दिया गया। दिनांक 02.02.2018 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने वाले अन्य व्यक्तियों द्वारा दायर की गई विशेष अपीलों का निपटारा दिनांक 23.09.2022 के निर्णय और आदेश द्वारा कुछ निर्देशों के साथ किया गया है, जो विशेष अपीलों के समूह में पारित किए गए हैं, जिनमें **उमेश चंद्र यादव (पूर्वोक्त)** की अपील प्रमुख है, जिसमें कई निर्देश दिए गए हैं। यदि याचिकाकर्ता ने सेवा में नियमित होने के कारण विशेष अपील वापस नहीं ली होती, तो वह दिनांक 23.09.2022 के निर्णय और आदेश द्वारा विशेष अपील में पारित आदेश का लाभ पाने का भी हकदार होता। हालाँकि, उपरोक्त तथ्यों के बावजूद, सेवाओं को इस आधार पर समाप्त कर दिया गया है कि उनके द्वारा दायर विशेष अपील को इस बात पर विचार किए बिना वापस ले लिया गया है कि विशेष अपील को वापस लेने का कारण यह था कि याचिकाकर्ता को विशेष अपील दायर करने से पहले ही सेवा में नियमित कर दिया गया था, नियमितीकरण आदेश दिनांक 23.06.2021 का था, विशेष अपील 17.08.2021 को दायर की गई थी और 19.08.2021 को वापस ले ली गई थी।

31. इस न्यायालय की खंडपीठ ने **उमेश चंद्र यादव (पूर्वोक्त)** के वाद में दिनांक 23.09.2022 के निर्णय और आदेश द्वारा निम्नलिखित निर्देश जारी किए थे:-

"26. वाद के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए और अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के नियमितीकरण नियमावली, 2016 के तहत नियमितीकरण के लिए विचार किए जाने के अधिकार को ध्यान में

रखते हुए, जिसे दिनांक 12.09.2016 की अधिसूचना के माध्यम से लागू किया गया है और दिनांक 03.01.2017 के शासनादेश के माध्यम से शहरी स्थानीय निकायों पर लागू माना गया है, हम निम्नलिखित निर्देशों के साथ इन विशेष अपीलों का निस्तारण करते हैं:-

(i) सभी अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के वादों पर नियमितीकरण नियमावली, 2016 में निहित प्रावधानों के अनुसार उनकी सेवाओं के नियमितीकरण के लिए विचार किया जाएगा।

(ii) तदनुसार, नियुक्ति प्राधिकारी, संबंधित प्राधिकारी के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह के भीतर, उन अभ्यर्थियों की पात्रता सूची तैयार करेगा, जो नियमितीकरण नियमावली, 2016 के अनुसार अपनी सेवाओं के नियमितीकरण हेतु विचार किए जाने के पात्र पाए जाएँ।

(iii) नियुक्ति प्राधिकारी, नियमितीकरण नियमावली, 2016 में निहित प्रावधानों के अनुसार एक चयन समिति का गठन करेगा और नियमितीकरण नियमावली, 2016 के अनुसार तैयार की जाने वाली पात्रता सूची को चयन समिति को भेजेगा, जो पात्र अभ्यर्थियों की उपयुक्तता का निर्धारण करेगी और उनकी सेवाओं के नियमितीकरण हेतु निर्णय लेगी। जैसा कि ऊपर (ii) में उल्लेख किया गया है, यह कार्य संबंधित प्राधिकारी को इस आदेश की सूचना दिए जाने की तिथि से तीन माह के भीतर पूरा किया जाएगा।

(iv) यदि संबंधित शहरी स्थानीय निकायों में, जहाँ अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता कार्यरत थे/हैं, इस प्रक्रिया के पूरा होने पर भी रिक्त पदों के अभाव में कुछ पात्र संविदा कर्मचारियों के नियमितीकरण पर विचार किया जाना शेष रह जाता है, तो संबंधित स्थानीय निकाय, नियमितीकरण नियमावली, 2016 के नियम 5 में संलग्न परंतुक में निहित प्रावधानों के अनुसार, अतिरिक्त पदों के सृजन हेतु राज्य सरकार से अनुमोदन प्राप्त करेगा।

(v) ऐसी आवश्यकता होने पर, अतिरिक्त पदों के सृजन हेतु राज्य सरकार से अनुमोदन प्राप्त करने का प्रस्ताव संबंधित स्थानीय निकाय द्वारा उपलब्ध रिक्त पदों के विरुद्ध संविदा कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण की प्रक्रिया पूरी होने के बाद यथाशीघ्र राज्य सरकार को प्रस्तुत किया जाएगा।

(vi) जब संबंधित शहरी स्थानीय निकायों से अतिरिक्त पदों के सृजन हेतु अनुमोदन हेतु ऐसा कोई प्रस्ताव राज्य सरकार को प्राप्त होता है, तो राज्य सरकार, प्रस्ताव प्राप्ति की तिथि से आठ सप्ताह के भीतर, नियमितीकरण नियमावली, 2016 के नियम 5 में संलग्न परंतुक के अनुसार उस पर निर्णय लेगी।

(vii) राज्य सरकार द्वारा अतिरिक्त पदों के सृजन हेतु अनुमोदन प्रदान किए जाने के पश्चात, शेष संविदा कर्मचारियों, जिन्हें रिक्त पदों की उपलब्धता के अभाव में नियमित नहीं किया जा सका था, की सेवाओं को नियमित करने की प्रक्रिया शुरू की जाएगी और उसके बाद अगले तीन माह के भीतर पूरी की जाएगी।

(viii) हम यह भी निर्देश देते हैं कि विशेष अपीलों के इस समूह में सभी अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के मामलों पर नियमितीकरण नियमावली, 2016 के अनुसार उनकी सेवाओं के नियमितीकरण हेतु नए सिरे से विचार किया जाएगा, भले ही ऐसी कोई प्रक्रिया पहले की गई हो।

(viii) वे अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता जो आज की स्थिति में कार्यरत हैं, तब तक कार्य करते रहेंगे जब तक कि नियमितीकरण नियमावली, 2016 के अंतर्गत उनके नियमितीकरण के मामलों पर इस आदेश के अनुसार विचार और निर्णय नहीं हो जाता। तथापि, यदि कोई संविदा कर्मचारी अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के लिए पात्र और उपयुक्त नहीं पाया जाता है, तो उसकी सेवाएँ नियमितीकरण नियमावली, 2016 में निहित प्रावधानों के अनुसार समाप्त कर दी जाएँगी।

32. तथापि, उपरोक्त निर्देश याचिकाकर्ता पर लागू नहीं हो सकते क्योंकि उसे पहले ही सेवा में नियमित किया जा चुका है। फलस्वरूप, उपरोक्त विशेष अपील में दिनांक 23.09.2022 के निर्णय और आदेश के प्रस्तर 15 में की गई टिप्पणियाँ याचिकाकर्ता पर लागू होंगी, जिन्हें सुविधा के लिए नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"15..... तदनुसार, जहां तक विशेष अपीलों के इस समूह में अपीलकर्ताओं-याचिकाकर्ताओं के मामले में नियमितीकरण नियमावली, 2016 की प्रयोज्यता का संबंध है, दिनांक 10.04.2017 के अपने निर्णय में खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणियों के मद्देनजर, ये नियम उन संविदा कर्मचारियों पर लागू नहीं हो सकते हैं जिनकी सेवाएं नियमितीकरण नियमावली, 2016 के लागू होने की तिथि से पहले समाप्त कर दी गई थीं, अर्थात् 12.09.2016 से पहले, तथापि जो लोग उक्त तिथि के बाद भी अर्थात् 12.09.2016 के बाद भी कार्यरत हैं, ऐसे संविदा कर्मचारियों को नियमितीकरण नियमावली, 2016 में निहित प्रावधानों के आधार पर उनकी सेवाओं के नियमितीकरण के लिए विचार किए जाने के अधिकारों से, हमारी सुविचारित राय में, वंचित नहीं किया जा सकता है।"

(न्यायालय द्वारा बल दिया गया)

33. उपरोक्त टिप्पणियों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि खण्ड पीठ का मानना था कि जो व्यक्ति नियमावली के लागू होने की तिथि यानी 12.09.2016 के बाद भी कार्यरत हैं, ऐसे संविदा कर्मचारियों को नियमावली, 2016 के आधार पर उनकी सेवा के नियमितीकरण के लिए विचार करने का अधिकार है। बेशक, याचिकाकर्ता नियमावली के लागू होने की तारीख यानी 12.09.2016 को सेवा में जारी था और इस प्रकार उसे 23.06.2021 के आदेश के तहत सही ढंग से नियमित किया गया था। इस प्रकार, जब याचिकाकर्ता पहले ही नियमित हो चुका था, तो दिनांक 28.07.2021 का शासनादेश जारी करने का कोई कारण नहीं था, जिसमें यह दर्शाया गया हो कि नियमितीकरण विशेष अपील के निर्णय के अधीन है, जहां तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है और उस मामले के लिए नगर निगम द्वारा याचिकाकर्ता के नियमितीकरण आदेश को रद्द करने के लिए दिनांक 26.08.2021 का परिणामी आक्षेपित आदेश जारी किया जाना था।

44. इस संबंध में, **केंद्रीय आयुर्वेदिक विज्ञान अनुसंधान परिषद एवं अन्य बनाम बिकर्तन दास एवं अन्य (2023) एससीसी ऑनलाइन एससी 996** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना समीचीन होगा, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:-

"51. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग का दूसरा प्रमुख सिद्धांत यह है कि किसी मामले में, यदि रिट याचिका में चुनौती दी गई कोई कार्रवाई या आदेश अवैध और अमान्य पाया जाता है, तो **उच्च न्यायालय अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, पक्षकारों के बीच पर्याप्त न्याय करने की दृष्टि से उसे रद्द करने से इनकार कर सकता है। संविधान का अनुच्छेद 226 एक असाधारण उपाय प्रदान करता है, जो अनिवार्य रूप से विवेकाधीन है, हालाँकि यह विधिक क्षति पर आधारित है। रिट न्यायालय, इस लचीली शक्ति का प्रयोग करते हुए, जनहित और समता के आधार पर ऐसे आदेश पारित करने के लिए पूरी तरह स्वतंत्र है। विधिक नियमावली को मामले की वास्तविक स्थिति से अलग करके लागू नहीं किया जा सकता।** विधि को लागू करते समय, इसमें समता का समावेश होना चाहिए और यदि समतापूर्ण स्थिति विधिक नियमावली को सही करने के बाद भी उसे तार्किक निष्कर्ष तक न ले जाने की माँग करती है, तो उच्च न्यायालय अपने कर्तव्य का पालन करने में विफल होगा यदि वह समतापूर्ण विचार पर ध्यान नहीं देता और अपने असाधारण क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए अंतिम आदेश नहीं देता। कोई भी अन्य दृष्टिकोण उच्च न्यायालय को एक सामान्य अपीलीय न्यायालय बना देगा, जो वह नहीं है।"

35. परिणामस्वरूप, वाद के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के साथ-साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए और उपरोक्त चर्चा के मददेनजर, यह स्पष्ट है कि दिनांक 28.07.2021 का शासनादेश, जहाँ तक यह याचिकाकर्ता से संबंधित है, दिनांक 26.08.2021 के आदेश के साथ रद्द किए जाने योग्य है।

36. जहाँ तक प्रत्यर्थीगण द्वारा यह आधार लिया गया है कि याचिकाकर्ता का नियमितीकरण आदेश अनियमित था, इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **उमेश चंद्र यादव (पूर्वोक्त)** के वाद में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, जैसा कि ऊपर पुनः प्रस्तुत किया गया है, न्यायालय को इस पर विचार करने से नहीं रोका जा सकता है, जिसके अनुसार याचिकाकर्ता ने नियमावली, 2016 के मददेनजर नियमित होने का अधिकार प्राप्त कर लिया है।

37. जहाँ तक इस आधार का संबंध है कि अब कोई पद रिक्त नहीं है, जिस पर याचिकाकर्ता प्रत्यर्थीगण द्वारा दिए गए आग्रह के अनुसार कार्य जारी रख सके, उक्त आधार स्पष्ट रूप से गलत पाया जाता है, क्योंकि याचिकाकर्ता के दिनांक 23.06.2021 के नियमितीकरण आदेश में ही यह दर्शाया गया है कि याचिकाकर्ता को 5200-20200 रुपये के वेतनमान में लाइटर/पोर्टर के रिक्त पद पर नियमित किया गया है और इस प्रकार यदि इस समयावधि में कोई पद रिक्त नहीं है, तो यह याचिकाकर्ता के प्रकरण को प्रभावित नहीं करेगा।

38. परिणामस्वरूप, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। दिनांक 26.08.2021 के आक्षेपित आदेशों, जिनकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 1 में है और दिनांक 28.07.2021 का आदेश, जिसकी एक प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक 2 में है, जहाँ तक वे याचिकाकर्ता से संबंधित हैं, क्रमशः रद्द किए जाते हैं।

39. परिणाम अनुगामी होंगे।

40. इस स्तर पर, प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि याचिकाकर्ता के बाद **उमेश चंद्र यादव (पूर्वोक्त)** के वाद में इस न्यायालय की खंडपीठ के आदेश के अनुसरण में नियमित किए गए, अन्य व्यक्तियों की तुलना में याचिकाकर्ता की वरिष्ठता निर्धारित करने में कुछ कठिनाई हो सकती है। जैसा कि ऊपर पहले ही बताया जा चुका है, यह आदेश वाद के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया है और इसे मिसाल नहीं माना जाएगा।

(2025) 1 ILRA 306

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट सी संख्या 32144/2021

मेसर्स अन्नपूर्णा कंस्ट्रक्शन कंपनी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थागण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

श्री गिरीश चंद्र

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

श्री मुकुल त्रिपाठी, एस.सी., श्री विवेक सरन

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-याचिकाकर्ता, एक पंजीकृत ठेकेदार, ने शहरी गरीब योजना के लिए बुनियादी सेवाओं के तहत निष्पादित संविदात्मक कार्य के लिए भुगतान जारी करने के लिए परमादेश के रिट की प्रार्थना की है - निर्माण कार्य निर्धारित अवधि के भीतर पूरा हो गया था, और मकान

आवंटियों को सौंप दिए गए थे, हालांकि, याचिकाकर्ता ने अभिकथित किया कि कई अभ्यावेदनों के बावजूद 96000/- रुपये की प्रतिभूति जमा राशि के साथ कुल 15,81,540/- रुपये का भुगतान नहीं किया गया है- अभिनिर्धारित किया गया कि, अनुबंध के अंतर्गत किए गए या देय भुगतान के बारे में तथ्य के विवादित प्रश्नों को संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत न्यायनिर्णित नहीं किया जा सकता है- सर्वोच्च न्यायालय के उदाहरणों पर भरोसा करते हुए, (केरल एसईबी बनाम कुरियन, उड़ीसा एगो इंडस्ट्रीज कॉर्प लिमिटेड बनाम भारती इंडस्ट्रीज) न्यायालय ने दोहराया कि बिना किसी वैधानिक तत्व के संविदात्मक विवादों को रिट क्षेत्राधिकार के बजाय उचित सिविल या मध्यस्थता कार्यवाही के माध्यम से हल किया जाना चाहिए। (प्रस्तर 1 से 13) (ई-6)

उद्धृत वादों की सूची:

1. केर. एसईबी बनाम कुरियन ई. कलाथिल (2000) 6 एससीसी 293
2. ओरि. एगो इंडस. कॉर्प. लिमिटेड बनाम भारती इंडस. (2005) 12 एससीसी 725
3. मेसर्स बायोटेक सिस्टम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य (2020) 11 एडीजे 488 डीबी
4. भारत संघ बनाम पुना हिंडा (2021) 10 एससीसी 690

(माननीय न्यायमूर्ति शंखर बी. सराफ द्वारा प्रदत्त)

1. वर्तमान याचिका भारत के संविधान की धारा 226 के अंतर्गत दायर की गई है, जिसमें राज्य प्रत्यर्थी को प्रत्यर्थी संख्या 4/परियोजना प्रबंधक, मलिन बस्ती शहरी विकास प्राधिकरण द्वारा राज्य सरकार की ओर से अनुबंध के अंतर्गत दिए गए कार्य आदेशों के संबंध में याचिकाकर्ता द्वारा किए गए संविदात्मक कार्य के लिए भुगतान जारी करने का निर्देश देने के लिए परमादेश रिट जारी करने की प्रार्थना की गई है।

2. वाद का तथ्यात्मक सार नीचे दिया गया है:

क. याचिकाकर्ता लोक निर्माण विभाग, कानपुर का एक पंजीकृत ठेकेदार है, जिसे “शहरी गरीबों हेतु मूलभूत सेवाएँ योजना” के अंतर्गत किशनपुर, कानपुर नगर में आवास निर्माण कार्य प्रदान किया गया था, उक्त योजना केंद्र सरकार द्वारा शहरी गरीबों के झुग्गी विकास कार्यक्रम के तहत प्रारंभ की गई “जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन” के अंतर्गत एक सुधारात्मक उपाय के रूप में कार्यान्वित किया गया था। इस योजना के लिए वित्त अनुदान स्वरूप, केंद्र सरकार द्वारा 30% और राज्य सरकार द्वारा 70% भागीदारी थी।

ख. दिनांक 3 फरवरी, 2014 और 4 मार्च, 2014 के कार्य आदेशों के द्वारा, याचिकाकर्ता को प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा किशनपुर, कानपुर नगर में उक्त योजना के अंतर्गत आवासों के निर्माण का कार्य सौंपा गया था।

ग. याचिकाकर्ता ने परियोजना प्रबंधक (प्रत्यर्थी संख्या 4) की देखरेख में निर्धारित अवधि के भीतर निर्माण कार्य पूरा किया। प्रत्यर्थी संख्या 3 और परियोजना प्रबंधक द्वारा मौके पर जाकर कार्य का सत्यापन किया गया।

घ. संतुष्टि होने पर, 18 जून, 2014 से 17 जून, 2015 के बीच कई चरणों में आवास आवंटियों को सौंप दिए गए, उचित दस्तावेजों का रखरखाव किया गया और प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को प्रस्तुत किए गए।

ङ. 17 जून, 2014 को 15,81,540/- रुपये के बिल प्रस्तुत किए गए, जिनकी संबंधित प्राधिकारियों द्वारा विधिवत जाँच की गई और पारित किए गए। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता का दावा है कि 96,000/- रुपये की प्रतिभूति राशि अभी तक जारी नहीं की गई है।

च. याचिकाकर्ता को बिना किसी औपचारिक कार्य आदेश के अतिरिक्त कार्य (सीवर लाइन, खिड़की फिटिंग और ईंट फर्श) पूरा करने का भी निर्देश दिया गया था। इस कार्य के पूर्ण होने और सत्यापन के बावजूद, न तो कार्य आदेश जारी किया गया और न ही बिलों पर कार्रवाई की गई।

छ. 27 दिसंबर, 2019 को पूर्णता प्रमाण पत्र जारी किया गया।

ज. याचिकाकर्ता द्वारा 16 अक्टूबर, 2015 से कई बार आवेदन किया गया, लेकिन भुगतान लंबित है। 4 मार्च, 2020 के पत्र के माध्यम से, इकाई प्रभारी ने सूचित किया कि राज्य स्तरीय अधिकारियों के अनुसार पुराने भुगतानों पर कार्रवाई नहीं की जा सकती।

याचिकाकर्ता का तर्क

3. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री गिरीश चंद्र ने निम्नलिखित दलीलें दीं:

- i. याचिकाकर्ता ने वर्ष 2014 में संपूर्ण कार्य पूरा कर लिया था और निरीक्षण के बाद, बिल विधिवत प्रस्तुत किए गए थे, साथ ही कार्य की गुणवत्ता अनुबंध में उल्लिखित नियमों और शर्तों के मानदंडों और मानकों के अनुरूप पाई गई थी, लेकिन प्राधिकारी ने निष्पादित कार्य के लिए कोई भुगतान नहीं किया था।
- ii. कार्य आदेश के विरुद्ध प्रस्तुत बिल अतिरिक्त परियोजना प्रबंधक/उप अभियंता द्वारा विधिवत अनुमोदित किए गए थे, जो सक्षम प्राधिकारी हैं, इसलिए, उनका भुगतान किया जाना चाहिए।
- iii. कार्य आदेश की शर्तों और नियमों के खंड 15 के अंतर्गत प्रक्रिया के अनुसार, अनुबंध से उत्पन्न किसी भी विवाद का निर्णय केवल इकाई के प्रभारी अधिकारी द्वारा किया जाएगा और निर्णय अंतिम होगा, लेकिन प्राधिकारी ने न तो याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर निर्णय लिया और न ही राशि का भुगतान किया।
- iv. राज्य प्राधिकरण किए गए कार्य के लिए भुगतान से इनकार नहीं कर सकता है और वित्तीय बाधा प्रत्यर्थी प्राधिकरण की ओर से एक वैध बचाव नहीं है।

प्रत्यर्थीगण का तर्क

4. प्रत्यर्थागण की ओर से उपस्थित अधिवक्ता श्री विवेक सरन और श्री मुकुल त्रिपाठी ने निम्नलिखित दलीलें पेश कीं:

- i. मकानों के निर्माण के लिए कथित कार्य आदेश के निष्पादन के क्रम में, याचिकाकर्ता द्वारा 15,81,540/- रुपये का बिल जारी किया गया था और याचिकाकर्ता को भुगतान पहले ही किया जा चुका था। चूँकि उक्त बिल प्रत्यर्थागण के समक्ष पुनः प्रस्तुत किया गया था, इसलिए तत्कालीन अभियंता ने इसे पहले ही भुगतान हो जाने के आधार पर अस्वीकार कर दिया। जहाँ तक प्रतिभूति राशि के भुगतान का संबंध है, किए गए कार्य के स्थल निरीक्षण के दौरान पाई गई कमियों के कारण इसका भुगतान नहीं किया गया था।
- ii. याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत बिल सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित नहीं थे और उप-अभियंता, जिन्होंने कथित रूप से उक्त बिलों पर हस्ताक्षर किए थे, उस दौरान निलंबित थे, इसलिए, उन्हें सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित बिल नहीं माना जाएगा। इसलिए, उक्त बिलों को स्वीकृत होने का दावा नहीं किया जा सकता। याचिकाकर्ता द्वारा की गई शिकायत पर उप-अभियंता को नोटिस भी जारी किया गया था।
- iii. उत्तर प्रदेश राजकीय निर्माण निगम लिमिटेड द्वारा जारी याचिकाकर्ता के अन्य बिल, रेजिडेंट इंजीनियर द्वारा सत्यापन के अधीन थे, जो नहीं किया गया है। इसलिए, बिलों का भुगतान नहीं किया गया है।

विश्लेषण और निष्कर्ष

5. पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों के अवलोकन के बाद, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि कार्य के निष्पादन हेतु किए गए भुगतान के संबंध में तथ्यात्मक विवाद है।

6. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने तर्क दिया कि कार्य का भुगतान और प्रतिभूति राशि आज तक नहीं दी गई है और यदि भुगतान किया गया है, तो प्रत्यर्था को भुगतान का तरीका बताना चाहिए।

7. इसके विपरीत, प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता ने तर्क दिया कि निष्पादित कार्य का भुगतान याचिकाकर्ता को पहले ही किया जा चुका है, लेकिन निष्पादित कार्य में कुछ कमियाँ पाए जाने के कारण प्रतिभूति राशि रोक ली गई है।

8. **केरल एसईबी बनाम कुरियन ई. कलाथिल (2000) 6 एससीसी 293** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि संविदात्मक मामलों में विवादों के समाधान के लिए रिट न्यायालय उचित मंच नहीं है। संबंधित प्रस्तर नीचे दिया गया है:

“10. हम पाते हैं कि श्री रावल के पहले तर्क में गुण-दोष है। विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका की स्वीकार्यता पर सही ही सवाल उठाया है। किसी अनुबंध के किसी खंड की व्याख्या और कार्यान्वयन रिट याचिका का विषय नहीं हो सकता। अनुबंध में वास्तविक भुगतान की परिकल्पना की गई है या नहीं, यह अनुबंध की व्याख्या का प्रश्न है। यदि किसी अनुबंध की किसी शर्त का उल्लंघन होता है, तो आमतौर पर अनुच्छेद 226 के अंतर्गत

रिट याचिका ही उपचार नहीं है। हम उच्च न्यायालय की इस टिप्पणी से भी सहमत नहीं हैं कि ठेकेदार एक वैधानिक अनुबंध के प्रवर्तन की मांग कर रहा था। कोई अनुबंध केवल इसलिए वैधानिक नहीं हो जाता क्योंकि वह किसी सार्वजनिक उपयोगिता के निर्माण के लिए है और उसे एक वैधानिक निकाय द्वारा प्रदान किया गया है। हम उच्च न्यायालय की इस टिप्पणी से भी सहमत नहीं हैं कि चूँकि अनुबंध द्वारा अनुबंध करने वाले पक्षों पर लगाए गए दायित्व अनुबंध अधिनियम के दायरे में आते हैं, इसलिए यह अनुबंध वैधानिक नहीं हो जाता। स्पष्ट रूप से, उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचने में त्रुटि कर गया कि विचाराधीन अनुबंध वैधानिक प्रकृति का था।”

9. उड़ीसा एगो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम भारती इंडस्ट्रीज (2005) 12 एससीसी 725 में प्रतिवेदित वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका की पोषणीयता के संबंध में विशेष रूप से संविदात्मक मामलों में शामिल तथ्यों के विवादित प्रश्नों पर विचार किया था। प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

“7. उच्च न्यायालय के निर्णय का मात्र अवलोकन करने से पता चलता है कि इसमें स्पष्ट रूप से विवेक का प्रयोग नहीं किया गया था। एक ओर, उच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि विवादित प्रश्नों पर रिट याचिका में विचार नहीं किया जा सकता। यह भी देखा गया कि विवाद का सार अनुबंध का उल्लंघन था। उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद, उच्च न्यायालय को रिट याचिका खारिज कर देनी चाहिए थी। आश्चर्यजनक रूप से, उच्च न्यायालय ने केवल रिट याचिकाकर्ता के दावे और एक अत्यंत विचित्र तर्क के आधार पर मामले की जाँच की कि यद्यपि अपीलकर्ता निगम ने दावा किया था कि उठाई गई वस्तुओं का मूल्य लगभग 14.90 लाख रुपये था, फिर भी कोई विवरण विशेष रूप से नहीं दिया गया था। उच्च न्यायालय के समक्ष दायर प्रति-शपथपत्र से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि रिट याचिकाकर्ता के दावे का खंडन करने वाले प्रासंगिक विवरण दिए गए थे। रिट याचिकाकर्ता द्वारा उठाई गई वस्तुओं का मूल्य एक विवादित तथ्यात्मक प्रश्न है। जहाँ तथ्य का एक जटिल प्रश्न शामिल है और मामले में तथ्यात्मक पहलुओं पर गहन प्रमाण की आवश्यकता है, वहाँ उच्च न्यायालय को रिट याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए। संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय को क्षेत्राधिकार का प्रयोग करना चाहिए या नहीं, यह काफी हद तक विवाद की प्रकृति पर निर्भर करेगा और यदि तथ्यात्मक विवाद में जाए बिना विवाद का समाधान नहीं हो सकता, तो उच्च न्यायालय को रिट याचिका पर विचार नहीं करना चाहिए। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, रिट याचिका मुख्यतः अनुबंध के उल्लंघन के आरोप पर आधारित थी। यह प्रश्न कि क्या रिट याचिका में विरोधी पक्ष की कार्रवाई संविदात्मक दायित्व के उल्लंघन के बराबर थी, अंततः तथ्यों पर निर्भर करता है और इसके लिए भौतिक साक्ष्य की जाँच की आवश्यकता होगी और ऐसे वाद में रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

9. वर्तमान वाद में उच्च न्यायालय ने स्वयं यह टिप्पणी की है कि तथ्य के विवादित प्रश्न शामिल थे और फिर भी उसने ऐसे निर्देश दिए मानो वह किसी वाद में धन संबंधी दावे का न्यायनिर्णयन कर रहा हो। यह तरीका स्पष्ट रूप से अमान्य है।”

10. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने **मेसर्स बायो टेक सिस्टम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2020)**

11 एडीजे 488डीबी में प्रतिवेदित के वाद में संविदात्मक मामलों में दायित्व का प्रयोग करने हेतु रिट न्यायालय की सीमित शक्ति पर बल दिया है। प्रासंगिक प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

"39. उपर्युक्त निर्णयों से निकाले जा सकने वाले सामान्य सिद्धांत यह हैं कि ऐसे वाद में जहाँ राज्य और पीड़ित व्यक्ति के बीच किया गया अनुबंध गैर-वैधानिक प्रकृति का है और संबंध विशुद्ध रूप से पक्षों के बीच अनुबंध के अनुसार संचालित होता है, ऐसी स्थितियों में संविदात्मक दायित्व निजी विधि के मामले हैं और विशुद्ध रूप से अनुबंध से उत्पन्न होने वाले नागरिक दायित्व को लागू करने के लिए रिट लागू नहीं होगी। ऐसे मामलों में उचित उपाय यह होगा कि किसी सिविल न्यायालय में क्षतिपूर्ति, निषेधाज्ञा या विशिष्ट निष्पादन या ऐसी उपयुक्त राहत का दावा करने के लिए सिविल वाद दायर किया जाए। किसी भी वैधानिक स्वरूप के अभाव में विशुद्ध संविदात्मक दायित्व रिट के माध्यम से लागू नहीं हो पाएगा।

40. संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उपाय एक असाधारण उपाय होने के कारण, इसका उपयोग पक्षकारों के निजी अधिकारों की घोषणा के उद्देश्य से नहीं किया जाना है। संविदात्मक अधिकारों और दायित्वों के प्रवर्तन के मामले में, पीड़ित पक्ष के लिए सिविल वाद दायर करने का सामान्य उपाय उपलब्ध होने के कारण, यह न्यायालय ऐसे संविदात्मक दायित्वों को लागू करने के लिए अपने विशेषाधिकार प्राप्त रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता है।"

11. सर्वोच्च न्यायालय ने **भारत संघ बनाम पुना हिंद (2021) 10 एससीसी 690** में प्रतिवेदित के एक हालिया वाद में अभिनिर्धारित किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार व्यापक है, लेकिन निजी विधि के क्षेत्र में विशुद्ध संविदात्मक मामले, जिनमें कोई वैधानिक आभा नहीं है, उन पर पक्षकारों द्वारा सहमत मंच द्वारा बेहतर ढंग से निर्णय लिया जाता है। तथ्यों के विवादित प्रश्न पर रिट याचिका के माध्यम से विवाद नहीं उठाया जा सकता। संबंधित प्रस्तर नीचे दिए गए हैं:

"24. इसलिए, तथ्य के विवादित प्रश्नों पर रिट याचिका के माध्यम से विवाद नहीं उठाया जा सकता। यद्यपि उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार व्यापक है, लेकिन निजी विधि के क्षेत्र में विशुद्ध संविदात्मक मामलों में, जिनमें कोई वैधानिक पहलू नहीं होता, पक्षकारों द्वारा सहमत फोरम द्वारा निर्णय लेना बेहतर होता है। राशि देय है या नहीं और/या कितनी राशि देय है, इस बारे में विवाद तथ्यों के विवादित प्रश्न हैं। अपीलकर्ताओं की ओर से यह अनुमान लगाने की कोई स्वीकृति नहीं है कि राशि निश्चित है। इसलिए, सक्षम प्राधिकारी द्वारा संयुक्त सर्वेक्षण रिपोर्ट की स्वीकृति के अभाव में, रिट याचिकाकर्ता को केवल इसलिए कोई अधिकार प्राप्त नहीं होगा क्योंकि समय बीतने के बाद माप नहीं लिया जा सकता। हो सकता है कि पुनः सर्वेक्षण न हो सके, लेकिन समय-समय पर किए गए कार्यों की माप पुस्तिकाएँ रिट याचिकाकर्ता को देय राशि का आकलन करने के लिए एक उचित आधार बनेंगी, लेकिन ऐसी प्रक्रिया केवल सहमत फोरम अर्थात् मध्यस्थता द्वारा ही की जा सकती है, न कि रिट न्यायालय द्वारा, क्योंकि उसके पास सड़कों के माप या निर्माण के संबंध में विशेषज्ञता नहीं है।

25. मामले के अवलोकन से पता चलता है कि अपीलकर्ताओं के कुछ अधिकारियों की ठेकेदार के साथ मिलीभगत से इनकार नहीं किया जा सकता। ऐसी मिलीभगत ही उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका का आधार प्रतीत होती है।

12. वर्तमान तथ्यात्मक सार में, याचिकाकर्ता ऐसा कोई दस्तावेज़ अभिलेख पर नहीं ला पाया है जिसमें प्रत्यर्थी प्राधिकारियों ने यह स्वीकार किया हो कि उन पर कोई विशेष राशि बकाया है। इसके विपरीत, प्रत्यर्थीगण ने अपने प्रति-शपथपत्र में याचिकाकर्ता के दावे का खंडन किया है। यह ध्यान रखना होगा कि जब तथ्य के विवादित प्रश्न मौजूद हों, तो रिट क्षेत्राधिकार व्यवहार्य मंच नहीं है, क्योंकि ऐसे विवादों का निर्णय केवल शपथपत्रों के आदान-प्रदान से नहीं किया जा सकता। जैसा कि ऊपर उद्धृत निर्णयों में स्पष्ट रूप से कहा गया है, संविदात्मक विवादों के क्षेत्रों में, पक्षों को सिविल न्यायालयों का रुख करना होगा या मध्यस्थता (यदि प्रावधान हो) का सहारा लेना होगा। रिट न्यायालय केवल असाधारण परिस्थितियों में, जब प्रत्यर्थीगण द्वारा बकाया भुगतान स्वीकार कर लिया जाता है, हस्ताक्षेप करेगा और परमादेश रिट पारित करेगा, अन्य किसी प्रकरण में नहीं करेगा।

13. तदनुसार, रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2025) 1 ILRA 311

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा

माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी

रिट सी संख्या 33495/2024

विकास कुमार एवं अन्य

...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता:

श्री महेंद्र सिंह, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

क. पद्धति एवं प्रक्रिया - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - रिट - पोषणीयता - ब्लॉक प्रमुख, जिनके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया गया था, को प्रत्यर्थी संख्या 4 के रूप में पक्षकार बनाया गया था, लेकिन उन्हें नाम से पक्षकार नहीं बनाया जा सका। - प्रभाव - अभिनिर्धारित किया गया कि किसी व्यक्ति को पक्षकार बनाने का उद्देश्य केवल उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए नोटिस भेजना है। प्रत्यर्थी संख्या 4 पहले ही उपस्थित हो चुकी है और उसके अधिवक्ता की बात सुनी जा चुकी है। - किसी भी स्थिति में, अनुचित पक्षकार बनाना एक सुधार योग्य दोष है और किसी रिट याचिका के लिए कभी भी घातक नहीं हो सकता। (प्रस्तर 22)

ख. स्थानीय निकाय विधि - उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत एवं जिला पंचायत अधिनियम, 1961 - धारा 15 (2) - अविश्वास प्रस्ताव - जिला पंचायत राज अधिकारी को इसकी सूचना पर निर्णय लेने की क्षमता - जिलाधिकारी द्वारा अपने कर्तव्य का पालन करने में विफलता - प्रभाव - अभिनिर्धारित किया गया कि जब धारा 15 के प्रावधानों के अंतर्गत जिलाधिकारी को बैठक बुलाने और अन्य कदम उठाने का अधिकार है, तो यह जिलाधिकारी ही है, जो नोटिस की वैधता के बारे में अपनी प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने और उस पर उचित आदेश पारित करने के लिए जिम्मेदार है - जिला पंचायत राज अधिकारी की कोई भूमिका नहीं है और उसके पास अविश्वास प्रस्ताव की सूचना को अस्वीकार करने या स्वीकार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है - या तो जिलाधिकारी अधिनियम के अंतर्गत अपने कर्तव्यों को नहीं समझता है या उसने जानबूझकर अवैधता को होने दिया है। किसी को भी विधि द्वारा उस पर लगाए गए गंभीर दायित्व से विचलित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती - उच्च न्यायालय ने 50,000/- रुपये का जुर्माना लगाया। (प्रस्तर 33, 35 और 37)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-1)

उद्धृत वादों की सूची:

1. श्रीमती शीला देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2015 (2) एडीजे 325
2. नियाजुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2020 (3) एडीजे 398
3. रिट सी संख्या 11485/2024; नरेंद्र कुमार गुप्ता एवं 04 अन्य 10.7.2024 को निर्णीत
4. कविता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; एआईआर 2018 एससी 4143
5. आरती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; 2017 (7) एडीजे 30 (डीबी)

(माननीय न्यायमूर्ति अंजनी कुमार मिश्रा
एवं माननीय न्यायमूर्ति जयंत बनर्जी द्वारा प्रदत्त)

1. रिट याचिका, जैसा कि शुरू में तैयार की गई थी, जिला पंचायत राज अधिकारी, जिला-कुशीनगर द्वारा पारित 21.08.2024 के आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण रिट की प्रार्थना की गई थी, जो एक जांच रिपोर्ट पर

आधारित है। इसके बाद, एक संशोधन द्वारा, जिला मजिस्ट्रेट/जिलाधिकारी, कुशीनगर द्वारा 12.11.2024 को पारित आदेश को भी चुनौती दी गई है। यह आदेश वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित किया गया है।

2. याचिका दो याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर की गई है जो वर्ष 2021 में हुए चुनाव में निर्वाचित होने के बाद ब्लॉक दुदही, जिला-कुशीनगर के निर्वाचित सदस्य होने का दावा करते हैं। प्रत्यर्थी संख्या 4 ब्लॉक प्रमुख, ब्लॉक दुदही के रूप में निर्वाचित हुए थे। खंड विकास परिषद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 139 बताई गई है। इनमें से 101 सदस्यों ने निर्धारित प्रारूप में नोटरी शपथ पत्र के साथ 12.08.2024 को अविश्वास प्रस्ताव पेश किया है। अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस जिलाधिकारी के समक्ष पेश किया गया, जैसा कि उत्तर प्रदेश क्षेत्र पंचायत और जिला पंचायत अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) के अंतर्गत प्रावधान है।

3. जब जिलाधिकारी द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया, तो एक याचिका रिट-सी संख्या 29128/2024 इस न्यायालय में दायर की गई, जिस पर 03.09.2024 को विद्वान स्थायी अधिवक्ता को निर्देश प्राप्त करने हेतु निर्देशित किया गया। जब मामले को 4.9.2024 को पेश किया गया, तो प्राप्त निर्देशों के आधार पर विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा एक बयान दिया गया कि अविश्वास प्रस्ताव का नोटिस 21.8.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। अतः उक्त रिट याचिका को निष्फल मानते हुए खारिज कर दिया गया।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ व्यक्तियों द्वारा यह कहते हुए शपथपत्र प्राप्त होने पर कि अविश्वास प्रस्ताव पर उनके हस्ताक्षर जाली थे, जिलाधिकारी द्वारा अभिकथन की जाँच के लिए एक समिति गठित की गई थी।

5. रिट याचिका में प्रारंभ में आक्षेपित 21.08.2024 का आदेश, इस समिति की रिपोर्ट के परिणामस्वरूप पारित एक आदेश था, जिसने अविश्वास प्रस्ताव को इस आधार पर खारिज कर दिया था कि यह पोषणीय नहीं है क्योंकि यह संबंधित नियमावली के अनुरूप नहीं था।

6. याचिका दायर होने पर, 04.10.2024 को, पक्षों के संबंधित अधिवक्तागण के तर्कों को ध्यान में रखते हुए एक विस्तृत आदेश पारित किया गया और जिलाधिकारी को अपना व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने का निर्देश दिया गया।

7. अगली तिथि को जिलाधिकारी का व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल किया गया।

8. तत्पश्चात, जब मामला 13.11.2024 को पेश हुआ, तो विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा जिलाधिकारी द्वारा पारित 12.11.2024 का आदेश प्रस्तुत किया गया। इसी आदेश को रिट याचिका में संशोधन के माध्यम से चुनौती दी गई है।

9. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने तर्क प्रस्तुत किया है कि जिला पंचायत राज अधिकारी का 21.08.2024 का आदेश, जो जिलाधिकारी द्वारा गठित समिति की रिपोर्ट पर आधारित है, अविश्वास प्रस्ताव को इस आधार पर खारिज करता है कि उस पर कई हस्ताक्षर जाली बताए गए थे। जांच समिति ने 17.08.2024 की अपनी रिपोर्ट में पाया कि 48 सदस्यों के शपथपत्र थे, जिनमें कहा गया था कि उन्हें अविश्वास प्रस्ताव पर धोखाधड़ी से और उनके जाली हस्ताक्षर करके हस्ताक्षरकर्ता के रूप में दिखाया गया था। परिणामस्वरूप और चूंकि परिषद के आधे से भी कम सदस्यों के हस्ताक्षर वास्तविक पाए गए, इसलिए कारण बताओ नोटिस खारिज कर दिया गया।

10. यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, जिलाधिकारी ने दिनांक 12.11.2024 का आदेश पारित किया है, जो जांच रिपोर्ट और जिला पंचायत राज अधिकारी के आदेश के समान ही है।

11. उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में, श्री शशि नंदन ने कहा है कि जिला पंचायत राज अधिकारी को दिनांक 21.8.2024 का आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। अधिनियम, 1961 के अंतर्गत, केवल धारा 15 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने वाला जिलाधिकारी ही ऐसा आदेश पारित कर सकता है।

12. जहां तक जिलाधिकारी द्वारा पारित आदेश का संबंध है, उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि धारा 15 की उप-धारा 3(i) के अंतर्गत एक समय-सीमा प्रदान की गई है। इस प्रावधान के अंतर्गत, जिलाधिकारी को अविश्वास के नोटिस पर विचार करने के लिए एक बैठक बुलानी होगी, जो धारा 15 की उप-धारा (2) के अंतर्गत नोटिस दिए जाने की तिथि से 30 दिनों के बाद नहीं होनी चाहिए।

13. अधिनियम, 1961 की धारा 15(3)(ii) में यह भी प्रावधान है कि अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बैठक बुलाने से पूर्व निर्वाचित सदस्यों को कम से कम 15 दिन पहले सूचना दी जानी चाहिए।

14. इसके बाद यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि धारा 15 के अंतर्गत जिलाधिकारी को केवल यह जाँच करना है कि अविश्वास प्रस्ताव पर क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्यों ने हस्ताक्षर किए हैं या नहीं। इसके लिए किसी अतिरिक्त जाँच की आवश्यकता नहीं है या विधि द्वारा अनिवार्य नहीं है। इसलिए, अविश्वास प्रस्ताव की जाँच हेतु समिति गठित करने का जिलाधिकारी का निर्देश बिना किसी विधिक स्वीकृति के था। जब कुल निर्वाचित सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्यों ने अविश्वास प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर कर दिए, तो जिलाधिकारी के पास अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बैठक बुलाना ही एकमात्र विकल्प था। इसलिए, जिलाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से उठाए गए मुद्दे पर सदन में निर्णय लिया जाना आवश्यक है और जिलाधिकारी द्वारा गठित किसी जाँच समिति द्वारा अविश्वास प्रस्ताव की वैधता पर विचार करके उसे खारिज नहीं किया जा सकता।

15. उन्होंने *श्रीमती शीला देवी एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2015 (2) एडीजे 325 और नियाजुद्दीन एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2020 (3) एडीजे 398* के वादों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

16. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने आक्षेपित आदेश का समर्थन करते हुए कहा है कि अविश्वास प्रस्ताव लाने के लिए वैध नोटिस पर कम से कम आधे निर्वाचित सदस्यों के हस्ताक्षर होने चाहिए। जिलाधिकारी को 48 सदस्यों से शिकायत प्राप्त हुई, जिन पर अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने का अभिकथन था, जिसमें कहा गया था कि उन्होंने उस पर अपने हस्ताक्षर नहीं किए थे। इसलिए, जिलाधिकारी द्वारा मामले के इस पहलू का परीक्षण करने के लिए एक समिति गठित की गई और ऐसा करने में जिलाधिकारी ने कोई अवैधता नहीं किया है।

17. अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने *नरेंद्र कुमार गुप्ता और 04 अन्य* (रिट सी संख्या 11485/ 2024, निर्णीत 10.7.2024) के वाद में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उद्धृत निर्णय में, *श्रीमती शीला देवी* वाद में पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की गई है:-

"उपर्युक्त निर्णय से, यह स्पष्ट रूप से उभरता है कि जिला मजिस्ट्रेट को कम से कम प्रथम दृष्टया संतुष्ट होना होगा कि अविश्वास प्रस्ताव अधिनियम की धारा 15(2) की आवश्यकताओं के अनुसार एक वैध नोटिस है।"

18. अतः, यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि इस प्रथम दृष्टया संतुष्टि को प्राप्त करने के लिए और चूँकि अविश्वास प्रस्ताव पर जाली हस्ताक्षरों की शिकायतें थीं, जाँच समिति का विधिवत गठन किया गया था। अतः, इसमें कोई त्रुटि नहीं है।

19. प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित श्री संजीव सिंह ने तर्क प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 को नाम से पक्षकार बनाया जाना चाहिए, जो नहीं किया गया है। चूँकि जिस ब्लॉक प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव दिया गया था, वह एक आवश्यक पक्षकार है और चूँकि उसे उचित रूप से पक्षकार नहीं बनाया गया है, इसलिए रिट याचिका अनिवार्य रूप से विफल होनी चाहिए।

20. उन्होंने *कविता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (एआईआर 2018 एससी 4143)* में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 23 और साथ ही *नरेंद्र कुमार गुप्ता* (पूर्वोक्त) के कुछ प्रस्तरों पर भी भरोसा किया है।

21. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है। रिट याचिका में निर्धारण हेतु निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं:-

- (i) क्या रिट याचिका विफल होने योग्य है क्योंकि प्रत्यर्थी संख्या 4, ब्लॉक प्रमुख, जिसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव दिया गया है, का नाम पक्षकार नहीं बनाया गया है?
- (ii) क्या जिलाधिकारी अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षरों की कथित जालसाजी के प्रश्न की जाँच के लिए तथ्यान्वेषी जाँच का आदेश देने के लिए सक्षम थे?
- (iii) क्या जिला पंचायत राज अधिकारी को 21.08.2024 का आदेश पारित करने का कोई क्षेत्राधिकार था?
- (iv) क्या जिलाधिकारी द्वारा पारित दिनांक 12.11.2024 का आदेश वैध है?
- (v) यदि कोई हो, तो याचिकाकर्ता किस अनुतोष का हकदार है?

22. पहले प्रश्न के संबंध में, प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उक्त प्रत्यर्थी को नाम से पक्षकार नहीं बनाया गया है, इसलिए याचिका निरस्त मानी जानी चाहिए। हमारी सुविचारित राय में, यह दलील अस्वीकार किए जाने योग्य है। किसी व्यक्ति को पक्षकार बनाने का उद्देश्य केवल उस व्यक्ति को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के लिए नोटिस भेजना है। प्रत्यर्थी संख्या 4 पहले ही उपस्थित हो चुकी है और उसके अधिवक्ता की बात सुनी जा चुकी है। इसलिए, यदि उसे नाम से पक्षकार नहीं बनाया गया है, फिर भी उसे सुनवाई का अवसर दिया गया है, तो दलील में सार नहीं है। किसी भी स्थिति में, अनुचित पक्षकार बनाना एक सुधार योग्य दोष है और किसी रिट याचिका के लिए कभी भी घातक नहीं हो सकता। **पहले प्रश्न का उत्तर तदनुसार दिया गया है।**

23. दूसरे प्रश्न का उत्तर, कि क्या जिलाधिकारी तीन व्यक्तियों की समिति द्वारा तथ्यान्वेषी जांच का आदेश देने के लिए सक्षम थे, **कविता** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के प्रस्तर 6 में मिलता है, जिसमें **श्रीमती शीला देवी** के वाद में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ का हवाला देते हुए निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था:-

“6. जैसा कि पूर्वोक्त है, चूंकि उक्त नोटिस पर पहले ही कार्यवाई किया जा चुका है और अपीलकर्ता के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव बहुमत से पारित हो चुका है, इसलिए अपीलकर्ता द्वारा दिए गए आधारों की आगे कोई जांच आवश्यक नहीं है। जैसा भी हो, अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत प्रथम आधार को भी उच्च न्यायालय ने श्रीमती शीला देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, मनु/यूपी/0129/2015 : एआईआर 2015 में उसी उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के बाद उचित रूप से नकार दिया है। यह निर्णय **मथुरा प्रसाद तिवारी बनाम सहायक जिला पंचायत अधिकारी, फैजाबाद 1966 एएलजे 612** में उसी उच्च न्यायालय की एक अन्य पूर्ण पीठ के निर्णय की उक्ति को प्रतिपादित करता है। आक्षेपित निर्णय में, खंडपीठ ने शीला देवी (पूर्वोक्त) में पूर्ण पीठ के निर्णय के प्रस्तर 23 को पुनः उद्धृत किया है, जो इस प्रकार है:

“23. इन कारणों से, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जहाँ धारा 15 की उप-धारा (2) के अंतर्गत जिलाधिकारी को कोई नोटिस दिया जाता है, जिलाधिकारी के पास यह निर्धारित करने का विवेकाधिकार है कि क्या वह नोटिस उप-धारा (2) के अंतर्गत वैध नोटिस की आवश्यक आवश्यकताओं को पूरा करता है। हालाँकि, धारा 15

की उप-धारा (3) में निर्धारित समय-सीमा के अनुसार, नोटिस दिए जाने की तिथि से तीस दिन के भीतर बैठक बुलाना और क्षेत्र पंचायत के सभी निर्वाचित सदस्यों को कम से कम पंद्रह दिन का नोटिस जारी करना, जिलाधिकारी के लिए नोटिस के साथ संलग्न हस्ताक्षरों की वैधता की विस्तृत साक्ष्य-जांच शुरू करना संभव नहीं है। जहाँ हस्ताक्षरों की वैधता के संबंध में कोई निष्कर्ष केवल एक पूर्ण परीक्षण में साक्ष्य-सुनवाई के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर की गई जाँच में ही निकाला जा सकता है, ऐसी जाँच धारा 15 के दायरे से बाहर होगी। जिलाधिकारी नोटिस प्राप्त होने पर और जब वह क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की बैठक में विचार के लिए नोटिस भेजता है, तब वह न्यायालय की शक्तियों का प्रयोग नहीं करता है। इसलिए, जिलाधिकारी के लिए जालसाजी, धोखाधड़ी और जबरदस्ती जैसे गंभीर रूप से विवादित प्रश्नों पर तथ्यों का समाधान करना या निष्कर्ष निकालना खुला नहीं होगा। हालांकि, मथुरा प्रसाद तिवारी के वाद में पूर्ण पीठ द्वारा निर्धारित विधि के अनुरूप, यह जिलाधिकारी के लिए खुला है कि वह उप-धारा (3) के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार की प्रकृति और दायरे को ध्यान में रखते हुए यह निर्धारित करे कि धारा 15 की उप-धारा (2) के अंतर्गत वैध नोटिस की आवश्यकताएं पूरी हुई हैं या नहीं। 1961 के अधिनियम की धारा 15 की उप-धारा (2) के तहत जिलाधिकारी के समक्ष कार्यवाही एक संक्षिप्त कार्यवाही की प्रकृति की अधिक होती है। धारा 15 के प्रयोजन के लिए जिलाधिकारी के पास न्यायिक कार्यवाही के परीक्षण में प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने वाले न्यायालय के आडंबर नहीं हैं। किसी मामले में जिलाधिकारी ने अपने क्षेत्राधिकार की सीमाओं का उल्लंघन किया है या नहीं, यह एक ऐसा मामला है जिसे संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत चुनौती देकर संबोधित किया जा सकता है। हम स्पष्ट करते हैं कि हमने उन परिस्थितियों की विस्तृत गणना या सूची प्रदान नहीं की है जिनमें जिलाधिकारी प्रत्येक मामले में उप-धारा (2) के तहत दिए गए नोटिस की वैधता निर्धारित कर सके और यह पहली बार में जिलाधिकारी के लिए और न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति के प्रयोग में न्यायालय के लिए है, यदि इसे पेश किया जाता है, तो यह निर्धारित करने के लिए कि जिलाधिकारी की शक्ति की सीमाओं का विधिवत पालन किया गया है।"

24. यहां यह उल्लेख करना उचित है कि **श्रीमती शीला देवी** के वाद में, इस न्यायालय की पूर्ण पीठ ने **उत्तमा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 2014 (4) एडीजे 3** में इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणियों का उल्लेख किया और उन्हें अनुमोदित किया। पूर्ण पीठ ने निम्नानुसार टिप्पणी की है: -

"19. उस वाद में, क्षेत्र पंचायत के 82 निर्वाचित सदस्यों में से, उनकास सदस्यों के हस्ताक्षरों सहित अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया था। छत्तीस सदस्य जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित हुए और उनके हस्ताक्षरों/अंगूठे के निशानों का सत्यापन किया गया। उन्नीस व्यक्तियों ने प्रस्ताव के समर्थन में शपथपत्र दायर किए थे, लेकिन बाद में प्रत्यर्थी संख्या 5 ने उन्हीं व्यक्तियों के शपथपत्र दायर किए, जिनमें उनके पहले के हस्ताक्षरों का खंडन किया गया था। तदनुसार, उन सदस्यों को जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होने के लिए नोटिस जारी किया गया, जिनमें से सात उपस्थित हुए और अविश्वास प्रस्ताव के समर्थन में दायर अपने शपथपत्रों का समर्थन किया। जिला मजिस्ट्रेट ने अभिनिर्धारित किया कि चूंकि शेष दस सदस्य, जिन्होंने अविश्वास प्रस्ताव के समर्थन में अपने शपथपत्र दायर किए थे, उपस्थित नहीं हुए और दो सदस्यों को नोटिस

तामील नहीं किया जा सका, इसलिए प्रस्ताव को निर्वाचित प्रतिनिधियों के आवश्यक आधे सदस्यों का समर्थन प्राप्त नहीं था। यह मानते हुए कि यह क्षेत्राधिकार का अनुचित प्रयोग था, खंडपीठ ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"हस्ताक्षरों के जाली होने या सदस्यों के न होने के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। याचिकाकर्ता की ओर से उठाया गया तर्क सही प्रतीत होता है। अधिनियम, 1961 और निर्धारित नियमों के तहत, प्रस्ताव के समर्थन में जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष सदस्यों की वास्तविक उपस्थिति की कोई आवश्यकता नहीं है। केवल यह आवश्यक है कि प्रस्ताव पर आधे से अधिक सदस्यों के हस्ताक्षर हों, और यदि प्रस्ताव के समर्थन में अभिलेखों में शपथपत्र हों और यदि ब्लॉक प्रमुख द्वारा इसके विपरीत शपथपत्र प्रस्तुत किए गए हों, तो जिला मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों से स्वयं को संतुष्ट करे कि प्रथम दृष्टया प्रस्ताव पर सदस्यों के हस्ताक्षर हैं या नहीं। उसे सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करने और इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए साक्ष्य की आवश्यकताओं पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि प्रस्ताव पर हस्ताक्षर वास्तविक हैं या नहीं।"

यहाँ भी, खंडपीठ ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि जिला मजिस्ट्रेट को सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करने और इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए साक्ष्य के मामलों की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है कि क्या प्रस्ताव पर हस्ताक्षर वास्तविक हैं।

(बल दिया गया)

25. अधिनियम, 1961 की धारा 15 के कुछ प्रावधानों का उल्लेख करना समीचीन होगा, जो इस प्रकार हैं:-

"15 प्रमुख में अविश्वास प्रस्ताव -

(1) प्रमुख या किसी क्षेत्र पंचायत के किसी भी सदस्य में अविश्वास व्यक्त करने वाला प्रस्ताव निम्नलिखित उप-धाराओं में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार प्रस्तुत किया जा सकता है और उस पर कार्यवाही की जा सकती है।

(2) प्रस्ताव प्रस्तुत करने के आशय की एक लिखित सूचना, निर्धारित प्रारूप में, जिस पर क्षेत्र पंचायत के कुल निर्वाचित सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्यों द्वारा हस्ताक्षर किए गए हों, प्रस्तावित प्रस्ताव की एक प्रति के साथ, सूचना पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों में से किसी एक द्वारा, क्षेत्र पंचायत पर क्षेत्राधिकार रखने वाले जिलाधिकारी को व्यक्तिगत रूप से दी जाएगी।

(3) इसके बाद जिलाधिकारी:-

(i) क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में प्रस्ताव पर विचार करने के लिए उसके द्वारा नियत तिथि को क्षेत्र पंचायत की बैठक बुलाएगा, जो उपधारा (2) के अधीन उसे सूचना दिए जाने की तिथि से तीस दिन के बाद की नहीं होगी; और

(ii) क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्य को ऐसी बैठक की सूचना, विहित रीति से, कम से कम पन्द्रह दिन पहले देगा।

स्पष्टीकरण - इस उपधारा में निर्दिष्ट तीस दिन की अवधि की गणना करते समय, वह अवधि जिसके दौरान इस धारा के अधीन किए गए प्रस्ताव के विरुद्ध दायर याचिका पर सक्षम न्यायालय द्वारा जारी किया गया स्थगन आदेश, यदि कोई हो, प्रभावी रहता है, तथा सदस्यों को बैठक की नई सूचना जारी करने में अपेक्षित अतिरिक्त समय को इसमें शामिल नहीं किया जाएगा।

26. जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, धारा 15 के प्रावधानों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि जिलाधिकारी पर प्रावधानों का अक्षरशः अनुपालन करने का भारी दायित्व है। अधिनियम, 1961 की धारा 2 की उपधारा (5) के अंतर्गत, 'जिलाधिकारी' शब्द में अपर जिलाधिकारी भी शामिल है, जिसे जिलाधिकारी ने लिखित आदेश द्वारा अधिनियम, 1961 के अंतर्गत अपना कोई भी कार्य प्रत्यायोजित किया हो। विधायिका ने अपनी विवेकाधिकार से जिलाधिकारी द्वारा प्रत्यायोजन की शक्ति को केवल अपर जिलाधिकारी तक ही सीमित रखा है। अर्थात्, जिलाधिकारी के अलावा, केवल अपर जिलाधिकारी ही है जिसे अधिनियम के अंतर्गत जिलाधिकारी के किसी भी कार्य को लिखित आदेश द्वारा प्रत्यायोजित किया जा सकता है। यह प्रावधान नोटिस पर हस्ताक्षर करने वाले सदस्यों के हस्ताक्षरों की प्रामाणिकता के बारे में स्वयं को संतुष्ट करने के लिए जिलाधिकारी की शक्ति को किसी समिति को प्रत्यायोजित या उप-प्रत्यायोजित करने की परिकल्पना नहीं करता है। जैसा कि इस न्यायालय ने **उत्तमा देवी** के वाद में देखा और **श्रीमती शीला देवी** के वाद में पुष्टि की, जहां प्रस्ताव के समर्थन में अभिलेख पर शपथपत्र हैं और इसके अलावा यदि इसके विपरीत शपथपत्र प्रस्तुत किए गए हैं, तो जिलाधिकारी का यह कर्तव्य है कि वह क्षेत्र पंचायत के अभिलेख से खुद को संतुष्ट करे कि प्रथम दृष्टया, प्रस्ताव पर सदस्यों के हस्ताक्षर हैं या नहीं। उसे एक सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करने और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए सबूतों की बारीकियों में शामिल होने की आवश्यकता नहीं है कि अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर वास्तविक हैं या नहीं।

27. हम अभिलेख से जो पाते हैं वह यह है कि मुख्य विकास अधिकारी द्वारा पारित 16.8.2024 के कार्यालय आदेश के अनुसरण में सहायक विकास अधिकारी (पंचायत), खंड विकास अधिकारी और जिला पंचायत राज अधिकारी वाली तीन सदस्यीय जांच समिति द्वारा 17.8.2024 की एक जांच रिपोर्ट (परीक्षण आख्या) तैयार की गई थी। जांच रिपोर्ट इस आशय की है कि 12.8.2024 को क्षेत्र पंचायत दुदही के कुछ सदस्यों ने क्षेत्र पंचायत के 101 सदस्यों के साथ मुख्य विकास अधिकारी/प्रभारी जिलाधिकारी के समक्ष श्रीमती रमावती देवी, प्रमुख, क्षेत्र पंचायत दुदही, जिला कुशीनगर के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने के उद्देश्य से एक नोटरीकृत शपथ पत्र प्रस्तुत किया था, जिसमें उस संबंध में एक तिथि तय करने की मांग की गई थी। 16.8.2024 को आवेदक दीपक कुमार मिश्रा और अन्य सदस्यों ने जिलाधिकारी, कुशीनगर को इस आशय की शिकायत प्रस्तुत की कि फर्जी दस्तावेजों के आधार पर ब्लॉक प्रमुख के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया जा रहा है। प्रकरण की जांच एवं अभिलेखों के सत्यापन हेतु मुख्य विकास अधिकारी ने जिला पंचायत राज अधिकारी की अध्यक्षता में दिनांक 6.8.2024 के आदेश द्वारा तीन सदस्यीय सत्यापन/जांच समिति गठित की, जिसके सदस्य उपरोक्त थे।

28. जांच रिपोर्ट में कहा गया कि क्षेत्र पंचायत दुदही के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या 139 है, जिसमें से एक सदस्य की मृत्यु हो चुकी है, अतः वर्तमान में 138 सदस्य हैं; 48 सदस्य समिति के समक्ष उपस्थित हुए तथा उनके पहचान पत्रों की जांच एवं सत्यापन किया गया; खण्ड विकास अधिकारी एवं सहायक विकास अधिकारी (पंचायत), दुदही ने क्षेत्र पंचायत के उन सभी 48 सदस्यों की पहचान की तथा वे सही पाए गए; उन सभी सदस्यों ने खण्ड विकास अधिकारी, दुदही को इस आशय का शपथ पत्र प्रस्तुत किया कि इससे पूर्व उन्होंने कोई शपथ पत्र प्रस्तुत नहीं किया है तथा यदि किसी व्यक्ति ने सदस्यों के हस्ताक्षर सहित शपथ पत्र प्रस्तुत किया है, तो उसे भी कूटरचित एवं मनगढ़ंत माना जाए; इसके अतिरिक्त सत्यापन/जांच समिति ने सम्पूर्ण प्रक्रिया की वीडियो रिकार्डिंग कराई, जिसमें उपस्थित सभी सदस्यों ने बताया कि उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव से संबंधित किसी पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किए तथा अविश्वास प्रस्ताव में उनके कूटरचित हस्ताक्षर किए गए हैं; उक्त 48 क्षेत्र पंचायत सदस्यों की सूची का मिलान 12.8.2024 को दाखिल अविश्वास प्रस्ताव के साथ संलग्न 101 क्षेत्र पंचायत सदस्यों की सूची से किया गया; कि सभी 48 सदस्यों के नाम क्षेत्र पंचायत सदस्यों की सूची में संलग्न अविश्वास प्रस्ताव में पाए गए; और चूंकि इन 48 क्षेत्र पंचायत सदस्यों ने क्षेत्र पंचायत दुदही के प्रमुख के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव पर अपने हस्ताक्षर से इनकार कर दिया है, इसलिए, 12.8.2024 को दायर अविश्वास प्रस्ताव का समर्थन करने वाले केवल 53 सदस्यों की परिणामी संख्या ही शेष है।

29. जांच रिपोर्ट में आगे उल्लेख किया गया है कि अधिनियम, 1961 की धारा 15(2) के प्रावधानों के तहत, क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या के कम से कम आधे सदस्यों द्वारा लिखित नोटिस पर हस्ताक्षर करना अनिवार्य है और क्षेत्र पंचायत दुधई के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या 139 है और इसलिए, सदस्यों का आधा हिस्सा 70 होगा, जिन्हें अनिवार्य रूप से अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करना था; विश्वास प्रस्ताव पर, केवल 53 सदस्यों के हस्ताक्षर पाए गए हैं जो निर्दिष्ट संख्या के 50% से कम है। आगे कहा गया है कि प्रमुख और उप-प्रमुख के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव लाने के संबंध में नियम 1 के अनुसार, प्रस्ताव का तात्पर्य अनुसूची के फॉर्म-1 में एक लिखित नोटिस से है; 12.8.2024 को दायर अविश्वास प्रस्ताव निर्धारित प्रारूप के अनुसार नहीं है और इसलिए, अविश्वास प्रस्ताव पोषणीय नहीं है।

30. दिनांक 21.8.2024 को जिला पंचायत राज अधिकारी द्वारा आदेश पारित किया गया कि अविश्वास प्रस्ताव के संबंध में दिनांक 12.8.2024 का आवेदन अस्वीकार किया जाता है।

31. जहां तक नोटिस के उचित प्रारूप में न होने का संबंध है, **आरती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2017 (7) एडीजे 30 (डीबी)** के वाद में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि संबंधित नियमावली एक विशेष प्रारूप का प्रावधान करते हैं, तथापि, यदि लिखित नोटिस में, नोटिस के अवलोकन से अविश्वास प्रस्ताव लाने का इरादा परिलक्षित होता है, तो यह प्रस्ताव लाने के इरादे की सूचना पर्याप्त होगी और इस प्रकार यह अनिवार्य नहीं है कि प्रस्ताव निर्धारित प्रारूप में हो। संबंधित टिप्पणियां इस प्रकार हैं:

“18. अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना देने का उद्देश्य जिलाधिकारी के लिए यह सुनिश्चित करना है कि प्रस्ताव को कम से कम आधे निर्वाचित सदस्यों का समर्थन प्राप्त है या नहीं। यह आवश्यकता

अनिवार्य है। यदि प्रस्ताव लाने के इरादे की लिखित सूचना पर कुल निर्वाचित सदस्यों में से कम से कम आधे सदस्यों के हस्ताक्षर नहीं हैं, तो जिलाधिकारी को न तो उस पर संज्ञान लेने का अधिकार होगा और न ही धारा 15 की उपधारा (3) के अंतर्गत सूचना जारी करने का। हालाँकि, साथ ही, यदि प्रस्ताव लाने के इरादे की सूचना निर्धारित प्रारूप में नहीं दी गई है, लेकिन उसमें प्रपत्र-1 के सभी तत्व शामिल हैं, तो जिलाधिकारी के पास सूचना देने वाले सदस्यों की मंशा जानने और उस पर कार्रवाई करने का अधिकार हमेशा खुला रहता है। प्रपत्र-1 निर्धारित करने का उद्देश्य केवल प्रक्रियात्मक प्रकृति का है ताकि जिलाधिकारी इसके महत्व को समझ सकें और बिना किसी देरी के कार्रवाई कर सकें। जहाँ प्रस्ताव प्रस्तुत करने के आशय की लिखित सूचना निर्धारित प्रारूप में दी जाती है, वहाँ जिलाधिकारी के लिए सूचना देने वालों की मंशा को समझना और उसके अनुसार कार्रवाई करना आसान हो जाता है। इस प्रकार, प्रस्ताव प्रस्तुत करने के आशय की लिखित सूचना की प्रति जिलाधिकारी की सुविधा के लिए है। यदि कोई व्यक्ति जिलाधिकारी को निर्धारित प्रारूप के अलावा कोई सूचना देता है, तो जिलाधिकारी द्वारा उसका उचित संज्ञान न लेने का जोखिम हमेशा बना रहता है। हालाँकि, ऐसे मामले में जहाँ जिलाधिकारी अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की सूचना पर कार्रवाई करता है, भले ही वह निर्धारित प्रारूप में न हो, तो जिस व्यक्ति के विरुद्ध प्रस्ताव लाया गया है, वह इसकी शिकायत नहीं कर सकता। इससे उसे किसी भी तरह का कोई पूर्वाग्रह नहीं है क्योंकि सूचना उसके लिए नहीं, बल्कि जिलाधिकारी के लिए है। यहाँ तक कि इसकी प्रति सदस्यों या उस व्यक्ति को भेजने की भी आवश्यकता नहीं है जिसके विरुद्ध प्रस्ताव लाया गया है। जिलाधिकारी की सूचना के साथ केवल प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव की प्रति ही संलग्न की जानी है।

32. जहाँ तक जॉच रिपोर्ट में उल्लिखित 48 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरों को अस्वीकार करने का प्रश्न है, जिलाधिकारी को व्यक्तिगत रूप से अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना में दिए गए हस्ताक्षरों का क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों से सत्यापन करना होगा कि प्रथम दृष्टया प्रस्ताव पर सदस्यों के हस्ताक्षर हैं या नहीं।

33. जहाँ तक जिला पंचायत राज अधिकारी के अविश्वास प्रस्ताव को अस्वीकार करने के क्षेत्राधिकार का प्रश्न है, अधिनियम, 1961 की धारा 15 के अंतर्गत, जिलाधिकारी को ही अविश्वास प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों में से किसी एक द्वारा व्यक्तिगत रूप से नोटिस दिया जाना है। इसके बाद, जिलाधिकारी को या तो उसे विधिपूर्वक अस्वीकार करना होगा, या सदस्यों को ऐसी बैठक में भाग लेने के लिए कम से कम 15 दिन का नोटिस देने के बाद अविश्वास प्रस्ताव पर विचार के लिए बैठक बुलानी होगी। जब धारा 15 के प्रावधानों के तहत जिलाधिकारी को बैठक बुलाने और अन्य कदम उठाने का क्षेत्राधिकार दिया जाता है, तो यह जिलाधिकारी ही होता है जो नोटिस की वैधता के संबंध में प्रथम दृष्टया संतुष्टि दर्ज करने और उस पर उचित आदेश पारित करने के लिए जिम्मेदार होता है। अधिनियम, 1961 द्वारा प्रदत्त कोई भी शक्ति जिलाधिकारी द्वारा उस प्राधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं सौंपी जा सकती, जिसे प्रत्यायोजन की अनुमति है। इस प्रक्रिया में जिला पंचायत राज अधिकारी की भागीदारी अधिनियम, 1961 की धारा 15 के अंतर्गत प्रासंगिक प्रावधानों से बिल्कुल अलग है। जिला पंचायत राज अधिकारी की कोई भूमिका नहीं है और उसके पास अविश्वास प्रस्ताव के नोटिस को अस्वीकार करने या स्वीकार करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इसलिए, जिला पंचायत

राज अधिकारी का 21.08.2024 का आदेश पूरी तरह से क्षेत्राधिकार से बाहर है। प्रश्न संख्या 2 और 3 का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

34. जहां तक न्यायालय द्वारा तैयार किए गए चौथे प्रश्न का संबंध है, अधिनियम, 1961 की धारा 15 के अधिदेश को देखते हुए, हमारी सुविचारित राय में, जिलाधिकारी को ऐसा आदेश शीघ्रता से पारित करने का अधिदेश दिया गया है। विधायिका इस तथ्य से अवगत थी कि अविश्वास प्रस्ताव से संबंधित मामलों में और उसे नियत समय में सदन में मतदान के लिए रखे जाने में, समय का महत्व है। वोटों को प्रभावित करने के लिए सदन के सदस्यों पर दबाव और प्रस्तावों के तत्वों से इनकार नहीं किया जा सकता है। इसलिए, जिलाधिकारी से तत्परता से कार्य करने की अपेक्षा की जाती है, जो कि वर्तमान वाद में नहीं किया गया है। हम पाते हैं कि 12.11.2024 के अपने आदेश में, जिलाधिकारी ने केवल 17.8.2024 की जांच रिपोर्ट पर भरोसा किया है, जो अवैध है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

35. मामले का एक और पहलू है। जिलाधिकारी ने अविश्वास प्रस्ताव पर विचार करने के लिए कोई भी कदम नहीं उठाया कि आवेदन सही है या नहीं। वह किनारे पर खड़े रहे, जिससे उन्होंने अधिनियम, 1961 के अंतर्गत अपनी ज़िम्मेदारी और अपने गंभीर दायित्व का परित्याग कर दिया। या तो जिलाधिकारी अधिनियम के अंतर्गत अपने कर्तव्यों को नहीं समझते हैं या उन्होंने जानबूझकर किसी अवैध कार्य को होने दिया है। किसी को भी विधि द्वारा उस पर लगाए गए गंभीर दायित्व से विचलित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

36. यहाँ यह उल्लेख करना उचित है कि जब जिलाधिकारी का व्यक्तिगत शपथपत्र 21.10.2024 को न्यायालय में दायर किया गया था, तब भी उन्होंने अपने कार्यों या अपनी निष्क्रियता को उचित ठहराने का प्रयास किया था। जब मामला अगली बार 4.11.2024 को सूचीबद्ध किया गया, तो न्यायालय द्वारा जिलाधिकारी के आचरण के संबंध में कुछ मौखिक टिप्पणियाँ की गईं। इसके बाद जिलाधिकारी ने 12.11.2024 को आदेश पारित किया और वह भी केवल मुख्य विकास अधिकारी की 20.8.2024 की तथाकथित रिपोर्ट (व्यक्तिगत शपथपत्र के अनुलग्नक पीए-5) के आधार पर, जो रिपोर्ट केवल 17.8.2024 की पूर्वोक्त जांच/जांच रिपोर्ट की पुष्टि करती है। 12.11.2024 का आदेश जल्दबाजी में पारित किया गया है, जो कि न्यायालय की 4.11.2024 की मौखिक टिप्पणियों की 'अनायास' प्रतिक्रिया है और यह बाद में लिया गया एक विचार है और जिलाधिकारी द्वारा 'अपने रास्ते छिपाने' का एक प्रयास है जो कि एक दिखावा के अलावा और कुछ नहीं है। यह 12.8.2024 को अविश्वास प्रस्ताव पेश किए जाने के लगभग 3 महीने बाद और वह भी *उत्तमा देवी* में इस न्यायालय के आदेश पर विचार किए बिना पारित किया गया है। 12.11.2024 के आदेश में स्वतंत्र विचार का कोई प्रतिबिंबन नहीं दिखता है। अतः, यह आदेश अवैध और अमान्य है। हम पाते हैं कि जिलाधिकारी ने विधि के विरुद्ध कार्य किया है। *तदनुसार, इस न्यायालय द्वारा प्रस्तुत चौथे प्रश्न का उत्तर नकारात्मक है।*

37. इस वाद के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, दिनांक 21.08.2024 और 12.11.2024 के आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाते हैं। दिनांक 17.8.2024 की जाँच रिपोर्ट, अधिनियम, 1961 की मूल भावना के विरुद्ध गठित एक समिति द्वारा प्रस्तुत की गई थी, अतः इसे भी अपास्त किया जाता है।

38. चूँकि संबंधित जिलाधिकारी द्वारा जाँच हेतु समिति गठित करने और जिला पंचायत राज अधिकारी को दिनांक 21.8.2024 का आक्षेपित आदेश पारित करने की अनुमति देने के कार्य को संबंधित जिलाधिकारी द्वारा वैधानिक उत्तरदायित्व का परित्याग माना गया है, जिसके परिणामस्वरूप अधिनियम, 1961 के प्रावधानों को निरर्थक घोषित करने का प्रयास किया गया है, इसलिए हम रिट याचिका को आंशिक रूप से 50,000/- रुपये की लागत के साथ **स्वीकार** करते हैं, जिसका भुगतान राज्य सरकार द्वारा आज से एक माह के भीतर याचिकाकर्ताओं को किया जाएगा। राज्य सरकार संबंधित प्राधिकारी/जिलाधिकारी से लागत की राशि वसूल करने के लिए स्वतंत्र होगा।

39. जिला मजिस्ट्रेट/जिलाधिकारी को निर्देश दिया जाता है कि वे **उत्तमा देवी** वाद में दिए गए निर्णय के अनुसार, जैसा कि इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **श्रीमती शीला देवी** वाद में पुष्टि की गई है, नोटिस की वैधता के संबंध में स्वयं को संतुष्ट करने का कार्य स्वयं करें, जिसका अंश ऊपर प्रस्तर संख्या 24 में उद्धृत है। यदि जिला मजिस्ट्रेट, क्षेत्र पंचायत के अभिलेखों को देखने के पश्चात् अविश्वास प्रस्ताव लाने के आशय की लिखित सूचना में क्षेत्र पंचायत के सदस्यों के हस्ताक्षरों के बारे में प्रथम दृष्टया संतुष्ट हो, तो वह आज से तीस दिन की अवधि के भीतर, उनके द्वारा नियत तिथि को क्षेत्र पंचायत के कार्यालय में 'अविश्वास प्रस्ताव' पर विचार करने के लिए क्षेत्र पंचायत की बैठक आहूत करेंगे और क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों को निर्धारित तरीके से ऐसी बैठक की कम से कम पंद्रह दिन पहले सूचना देगे।

(2025) 1 ILRA 321

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 17.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 41517/2024

मेसर्स आर्य राइस मिल

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

साधना दुबे, शशिकांत शुक्ला

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 21 - क्षेत्राधिकार पर आपत्तियाँ - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - धारा 16 - मध्यस्थ न्यायाधिकरण की अपने क्षेत्राधिकार पर निर्णय लेने की क्षमता - क्षेत्राधिकार पर आपत्ति, विशेष रूप से क्षेत्रीय या वित्तीय क्षेत्राधिकार के संबंध में, यथाशीघ्र और किसी भी स्थिति में, मुद्दों के निस्तारण से पहले ली जानी चाहिए। यदि ऐसी आपत्ति शीघ्रता से नहीं ली जाती है, तो उसे आगामी चरण में अनुमति नहीं दी जा सकती। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम की धारा 16 की उप-धारा (2) के अनुसार, यह तर्क कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास क्षेत्राधिकार नहीं है, बचाव पक्ष के प्रस्तुतीकरण के बाद नहीं उठाया जाना चाहिए। यदि कार्यवाही के दौरान क्षेत्राधिकार की अधिकता का मुद्दा उठता है, तो उसी समय आपत्ति की जानी चाहिए। किसी भी स्थिति में, क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर आपत्ति मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष ही की जानी चाहिए, और मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अपने क्षेत्राधिकार पर निर्णय देने का अधिकार है। (प्रस्तर 9, 10, 11)

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 21 - क्षेत्राधिकार पर आपत्तियाँ - मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 - याचिकाकर्ता ने मध्यस्थ द्वारा पारित आदेश का इस आधार पर विरोध किया कि उत्तर प्रदेश राज्य कर्मचारी कल्याण निगम के कार्यकारी निदेशक ने पहले ही वसूली प्रमाणपत्र जारी कर दिए थे, और इसलिए उन्हें इस वाद में मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता था। अभিনিर्धारित: याचिकाकर्ता ने इस वाद में कार्यकारी निदेशक की मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के संबंध में पहली बार में कोई आपत्ति नहीं उठाई। याचिकाकर्ता यह बताने में सक्षम नहीं है कि कार्यकारी निदेशक को मध्यस्थ नियुक्त किए जाने से उसे क्या पूर्वाग्रह हुआ। याचिकाकर्ता ने, क्षेत्राधिकार या मध्यस्थ के किसी भी कथित पूर्वाग्रह के संबंध में किसी भी आपत्ति के बिना कार्यवाही में भाग लिया था, इसलिए वह बाद की कार्यवाही में ऐसी कोई भी आपत्ति उठाने से वंचित होगा। (प्रस्तर 8, 12)

खारिज। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

एवं माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य-प्रत्यर्थी के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा मध्यस्थ के रूप में पारित दिनांक 19.11.2024 के आदेश और उसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी दिनांक 20.11.2024 के वसूली प्रमाणपत्रों और प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा पारित दिनांक 29.11.2024 के आदेश को चुनौती देने का प्रयास किया गया है, जिसमें याचिकाकर्ता को वर्ष 2024-25 के लिए कस्टम मिल्ड राइस (सीएमआर) के हलिंग से रोक दिया गया।

3. याचिकाकर्ता ने खुद को धान को चावल में बदलने के लिए छिलका उतारने के व्यवसाय में लगी एक फर्म के रूप में वर्णित किया है। वर्ष 2018-19 के लिए सीएमआर घाटे से संबंधित बकाया राशि के संबंध में, याचिकाकर्ता के खिलाफ दिनांक 4.3.2020 के वसूली प्रमाणपत्र जारी किए गए थे। उक्त वसूली प्रमाणपत्रों के खिलाफ कुछ अभ्यावेदन प्रस्तुत किए गए बताए गए हैं। इसके बाद, पूर्व में जारी किए गए वसूली प्रमाणपत्रों के अनुसरण में दिनांक 29.5.2023 का एक उपस्थिति पत्र जारी किया गया।

4. याचिकाकर्ता ने इस स्तर पर एक रिट याचिका, रिट-सी संख्या 22401/2023 दायर किया, जिसे 2.8.2023 के आदेश द्वारा मध्यस्थ के पास जाकर मध्यस्थता का उपाय प्राप्त करने की स्वतंत्रता के साथ वापस लेने की अनुमति दी गई।

5. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता कार्यवाही शुरू करने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 से संपर्क किया। यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2 ने स्वयं को मध्यस्थ नियुक्त किया और पक्षों को सुनने के बाद, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन/दावे को खारिज करते हुए 19.11.2024 का आदेश पारित किया। उपरोक्त आदेश के परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा दिनांक 20.11.2024 के वसूली प्रमाण पत्र जारी किए गए हैं, और प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा दिनांक 29.11.2024 का आदेश भी पारित किया गया है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को अगले आदेश तक वर्ष 2024-25 के लिए सीएमआर के हलिंग कार्य से रोक दिया गया है।

6. मध्यस्थ द्वारा पारित दिनांक 19.11.2024 के आदेश का विरोध करने के लिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा हमारे समक्ष एकमात्र आधार यह रखा गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 2/कार्यकारी निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य कर्मचारी कल्याण निगम ने पहले ही वसूली प्रमाण पत्र जारी कर दिए थे, और इसलिए, उन्हें वाद में मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जा सकता था।

7. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 21 का हवाला देते हुए प्रस्तुत किया है कि क्षेत्राधिकार पर आपत्ति या किसी व्यक्ति के मध्यस्थ होने पर आपत्ति पहली बार में ही उठाई जानी चाहिए थी। उन्होंने यह भी तर्क प्रस्तुत किया है कि आपत्ति इस आशय की भी की गई थी कि याचिकाकर्ता के साथ इस तथ्य के कारण पूर्वाग्रह हुआ था कि मध्यस्थ, अर्थात् कार्यकारी निदेशक को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया गया था।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य के विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद, हम पाते हैं कि यह विवादित नहीं है कि याचिकाकर्ता ने वाद में कार्यकारी निदेशक की मध्यस्थ के रूप में नियुक्ति के संबंध में कोई आपत्ति नहीं उठाई थी। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता यह इंगित नहीं कर पाए हैं कि कार्यकारी निदेशक को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किए जाने के तथ्य से याचिकाकर्ता के साथ क्या पूर्वाग्रह हुआ था।

9. सीपीसी की धारा 21 में अंतर्निहित सिद्धांत इस आशय के हैं कि क्षेत्राधिकार पर आपत्ति, विशेष रूप से क्षेत्रीय या आर्थिक क्षेत्राधिकार के संबंध में, यथाशीघ्र और किसी भी स्थिति में, मुद्दों के निपटारे से पहले की जानी चाहिए। विधि इस बिंदु पर अच्छी तरह से स्थापित है कि यदि ऐसी आपत्ति जल्द से जल्द नहीं ली जाती है, तो इसे आगामी चरण में अनुमति नहीं दी जा सकती है।

10. सी.पी.सी. की धारा 21, वस्तुतः, इस सिद्धांत को वैधानिक मान्यता प्रदान करती है कि क्षेत्राधिकार के संबंध में आपत्ति को क्षमा किया जा सकता है, तथा तत्पश्चात्, इस क्षमा के कारण, संबंधित पक्ष को ऐसी कोई भी आपत्ति लेने से रोक दिया जाएगा।

11. मध्यस्थता से संबंधित सामान्य विधि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 में निहित है, जिसे घरेलू मध्यस्थता, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता और विदेशी मध्यस्थता अधिनिर्णयों के प्रवर्तन से संबंधित विधि को समेकित और संशोधित करने के साथ-साथ सुलह से संबंधित विधि को परिभाषित करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए अधिनियमित किया गया था। मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 16 में मध्यस्थ न्यायाधिकरण के क्षेत्राधिकार को चुनौती देने का प्रावधान है। इसकी उप-धारा (2) के अनुसार, यह तर्क कि मध्यस्थ न्यायाधिकरण के पास क्षेत्राधिकार नहीं है, बचाव प्रस्तुत करने के बाद नहीं उठाया जाना चाहिए। यदि कार्यवाही के दौरान क्षेत्राधिकार की अधिकता का मुद्दा उठता है, तो उसी समय आपत्ति की जानी चाहिए। किसी भी स्थिति में, क्षेत्राधिकार के प्रश्न पर आपत्ति मध्यस्थ न्यायाधिकरण के समक्ष ही की जानी चाहिए, और मध्यस्थ न्यायाधिकरण को अपने क्षेत्राधिकार पर निर्णय देने का अधिकार है।

12. वर्तमान वाद में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता यह इंगित नहीं कर पाए कि याचिकाकर्ता ने मध्यस्थता कार्यवाही के दौरान मध्यस्थ की सक्षमता या क्षेत्राधिकार के संबंध में कोई आपत्ति उठाई थी। याचिकाकर्ता ने मध्यस्थ के क्षेत्राधिकार या उसके किसी भी कथित पूर्वाग्रह के संबंध में बिना किसी आपत्ति के कार्यवाही में भाग लिया था, इसलिए यह याचिकाकर्ता को आगामी कार्यवाहियों में ऐसी कोई भी आपत्ति उठाने से वंचित करता है।

13. ऐसी परिस्थितियों में, हम इस वाद में हस्तक्षेप करने से परहेज करते हैं और तदनुसार, रिट याचिका **खारिज** की जाती है।

14. याचिकाकर्ता विधि के अंतर्गत उपलब्ध अन्य विधिक उपायों का लाभ उठा सकता है।

(2025) 1 ILRA 323

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल

आवेदन अंतर्गत धारा 482 संख्या - 41426/2024

अनंत कुमार यादव

...आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षीगण

आवेदक के अधिवक्ता:

धीरेंद्र कुमार श्रीवास्तव

विपक्षीगण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक विधि - गर्भधारण पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 1994-धारा 23-यद्यपि समन आदेश पारित करते समय स्पष्ट कारण दर्ज करना आवश्यक नहीं है-परन्तु समन जारी करने से पूर्व प्रथम दृष्टया वाद के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि या राय दर्ज की जानी आवश्यक है -भले ही वाद किसी लोक सेवक द्वारा दायर किया गया हो -अवर न्यायालय द्वारा कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई -आक्षेपित आदेश रद्द किया गया।

आवेदन स्वीकृत। (ई-9)

उद्धृत वादों की सूची:

1. ललन कुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन 1383
2. सरीफ अहमद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 726 [एस.एल.पी. (सीआरएल) संख्या 1074/2017]
3. डेल डिसूजा बनाम भारत संघ (2021) 20 एससीसी 135

(माननीय न्यायमूर्ति अरुण कुमार सिंह देशवाल द्वारा प्रदत्त)

1. आवेदक की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री बृजेश कुमार द्विवेदी को सुना गया।

2. वर्तमान आवेदन दिनांक 21.6.2024 के समन आदेश के साथ-साथ गर्भधारण पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 की धारा 23 के अंतर्गत परिवाद संख्या 10707/2024 की संपूर्ण कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए दायर किया गया है, जो कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, चंदौली के समक्ष लंबित है।

3. आवेदक के विद्वान अधिवक्ता का एकमात्र तर्क यह है कि समन आदेश बिना विवेक के पारित होने के कारण प्रथम दृष्टया अवैध है। यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने **ललनकुमार सिंह एवं अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य; 2022 एससीसी ऑनलाइन 1383** के वाद में स्पष्ट रूप से टिप्पणी किया है कि किसी व्यक्ति को समन करना एक गंभीर मामला है और किसी व्यक्ति को समन करते समय, न्यायालय को अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए, जो आदेश से ही परिलक्षित होनी चाहिए।

4. विद्वान ए.जी.ए. ने यद्यपि प्रार्थना का विरोध किया, परन्तु इस बात पर विवाद नहीं कर सके कि समन आदेश में प्रथम दृष्टया वाद के संबंध में कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई थी।

5. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और अभिलेखों के अवलोकन के पश्चात, ऐसा प्रतीत होता है कि आक्षेपित शिकायत उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से अपर मुख्य चिकित्सा अधिकारी, चंदौली के माध्यम से आवेदक के डायग्नोस्टिक सेंटर परिसर के 28.5.2024 को किए गए निरीक्षण के आधार पर दायर की गई थी, जिसमें कई अवैधताएँ पाई गई थीं।

6. आक्षेपित समन आदेश के अवलोकन से, ऐसा प्रतीत होता है कि अवर न्यायालय ने इस बात का कोई उल्लेख नहीं किया है कि आवेदक के विरुद्ध कोई प्रथम दृष्टया वाद बनता है या नहीं और ऐसी किसी सामग्री पर भी चर्चा नहीं किया है, जो इस शिकायत को दायर करने का आधार है। सर्वोच्च न्यायालय ने **ललनकुमार सिंह (पूर्वोक्त)** वाद में दिए गए निर्णय के प्रस्तर संख्या 38 में स्पष्ट रूप से कहा है कि किसी व्यक्ति को समन जारी करना एक गंभीर मामला है, इसलिए प्रक्रिया जारी करना कोई कोरी औपचारिकता नहीं है और विद्वान मजिस्ट्रेट को इस बात पर विचार करना चाहिए कि व्यक्ति को समन जारी करने का कोई आधार है या नहीं। **ललनकुमार सिंह (पूर्वोक्त)** के प्रस्तर संख्या 38 को इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

"38. आदेशिका जारी करने का आदेश एक कोरी औपचारिकता नहीं है। मजिस्ट्रेट को यह विचार करना आवश्यक है कि वाद में कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है या नहीं। ऐसी राय बनाने का विवरण आदेश में ही दिया जाना आवश्यक है। यदि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया वाद बनने के निष्कर्ष पर पहुँचते समय कोई कारण नहीं दिया जाता है, तो आदेश अपास्त किया जा सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि आदेश में विस्तृत

कारण शामिल करना आवश्यक नहीं है। इस संबंध में सुनील भारती मित्तल बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो के वाद में इस न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है, जो इस प्रकार है:

"51. दूसरी ओर, संहिता की धारा 204 आदेशिका जारी करने से संबंधित है, यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में, कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। यह धारा आपराधिक कार्यवाही शुरू करने से संबंधित है। यदि किसी वाद का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट (यह वह मजिस्ट्रेट हो सकता है जिसने शिकायत प्राप्त की है या जिसे धारा 192 के अंतर्गत इसे स्थानांतरित किया गया है), अपने समक्ष मौजूद सामग्रियों (अर्थात् शिकायत, शिकायतकर्ता और उसके साक्षीगण के परीक्षण, यदि उपस्थित हों, या जांच की रिपोर्ट, यदि कोई हो) पर विचार करने के बाद, सोचता है कि किसी अपराध के संबंध में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया वाद बनता है, तो वह अभियुक्त के विरुद्ध आदेशिका जारी करेगा।

52. आदेशिका जारी करने या अस्वीकार करने के संबंध में व्यापक विवेक दिया गया है और इसका न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को केवल इसलिए न्यायालय में नहीं घसीटा जाना चाहिए क्योंकि शिकायत दर्ज की गई है। यदि प्रथम दृष्टया वाद बनता है, तो मजिस्ट्रेट को आदेशिका जारी करना चाहिए और इसे केवल इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सोचता है कि इससे दोषसिद्धि होने की संभावना नहीं है।

53. तथापि, धारा 204 में प्रयुक्त शब्द "कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार" अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। ये शब्द स्पष्ट रूप से यह सुझाव देते हैं कि उचित विचार-विमर्श के बाद ही यह राय बनाई जानी चाहिए कि उक्त अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है और ऐसी राय बनाने का उल्लेख आदेश में ही किया जाना चाहिए। यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचते समय कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथम दृष्टया वाद बनता है, कोई कारण नहीं दिया जाता है, तो आदेश अपास्त किया जा सकता है, हालाँकि आदेश में विस्तृत कारण दिए जाने आवश्यक नहीं हैं। इसके अलावा, यदि दिया गया कारण स्पष्टतः गलत निकला तो आदेश विधिक रूप से गलत होगा।"

7. हाल ही में **सरीफ अहमद एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य; 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 726 [एस.एल.पी. (सीआरएल.) संख्या 1074/2017]** के वाद में दिए गए एक निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि समन जारी करते समय संबंधित न्यायालय को विस्तृत तर्क दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन उसे अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए। **सरीफ अहमद (पूर्वोक्त)** के प्रस्तर संख्या 17 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

"17. संहिता की धारा 204 मजिस्ट्रेट को समन जारी करने के कारणों को स्पष्ट रूप से बताने के लिए बाध्य नहीं करता है और यह समन की वैधता तय करने के लिए कोई पूर्वापेक्षा नहीं है। फिर भी, संहिता की आवश्यकता यह है कि समन तब जारी किया जाता है जब मजिस्ट्रेट को लगता है कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है। समन उस व्यक्ति को जारी किया जाता है जिसके विरुद्ध विधिक कार्यवाही शुरू हो

गई है। जानबूझकर अवज्ञा करने पर दंड संहिता, 1860 की धारा 174 के अंतर्गत दंडनीय है। इसके परिणामस्वरूप, संहिता की धारा 204 की भाषा और दंडात्मक परिणामों को ध्यान में रखते हुए, मजिस्ट्रेट को यह राय बनाने का अधिकार है कि क्या समन जारी करने के लिए पर्याप्त आधार मौजूद हैं। किसी व्यक्ति को समन जारी किया जाए या नहीं, यह तय करते समय, मजिस्ट्रेट वाद में उत्पन्न होने वाली किसी भी प्रथम दृष्टया असंभावना पर विचार कर सकता है। जिन मानदंडों के आधार पर समन आदेश में हस्तक्षेप किया जा सकता है, वे भूषण कुमार (पूर्वोक्त) वाद में इस न्यायालय के निर्णय द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित हैं। संहिता की धारा 204 के अनुसार, मजिस्ट्रेट को अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग कुछ हद तक सावधानी के साथ करना आवश्यक है, भले ही उसे कारण दर्ज करने की आवश्यकता न हो, कि क्या कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार मौजूद है। किसी आपराधिक न्यायालय द्वारा शुरू की गई कार्यवाही में आमतौर पर उच्च न्यायालय हस्तक्षेप नहीं करते, जब तक कि न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक न हो।”

8. इसी प्रकार, **डेले डिसूजा बनाम भारत संघ (2021) 20 एससीसी 135** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से कहा कि किसी व्यक्ति को समन नियमित और यांत्रिक तरीके से नहीं किया जाना चाहिए और न्यायालय को किसी व्यक्ति को समन करने से पूर्व अपनी संतुष्टि दर्ज करनी चाहिए। **डेले डिसूजा (पूर्वोक्त)** के प्रस्तर संख्या 36 को इस प्रकार उद्धृत किया गया है:-

36. इसी प्रकार, न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह यांत्रिक और नियमित तरीके से समन जारी न करे। यदि ऐसा किया जाता है, तो 1973 संहिता के अध्याय XV के अंतर्गत विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित करने का संपूर्ण उद्देश्य ही विफल हो जाता है। 1973 संहिता की धारा 200 के परन्तुक (क) के अंतर्गत, जब कोई लोक सेवक अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में निजी शिकायत दर्ज करता है, तो समन-पूर्व साक्ष्य दर्ज करने से छूट प्राप्त हो सकती है; हालाँकि, मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि वह यह देखने के लिए विवेक का प्रयोग करे कि लगाए गए आरोपों और साक्ष्यों के आधार पर, संज्ञान लेने और अभियुक्त को समन करने का प्रथम दृष्टया वाद बनता है या नहीं। इस न्यायालय ने राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) [राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम लिमिटेड बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली), (2009) 1 एससीसी 407 : (2009) 1 एससीसी (सिविल) 192 : (2009) 1 एससीसी (क्रि) 513] में इस छूट के पीछे के तर्क को स्पष्ट किया: (एससीसी पृष्ठ 415, प्रस्तर 12)

“12. संहिता की धारा 200 का उद्देश्य, जिसमें शिकायतकर्ता और साक्षीगण के परीक्षण की आवश्यकता होती है, यह पता लगाना है कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार हैं और उन शिकायतों पर आदेशिका जारी होने से रोकना है जो झूठी या तंग करने वाली हैं या जिनका उद्देश्य अभियुक्त के रूप में खड़े व्यक्तियों को परेशान करना है। (देखें निर्मलजीत सिंह हून बनाम पश्चिम बंगाल राज्य [निर्मलजीत सिंह हून बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1973) 3 एससीसी 753 : 1973 एससीसी (क्रि) 521]) जहाँ शिकायतकर्ता लोक सेवक या न्यायालय हो, संहिता की धारा 200 के परन्तुक का खंड (क) एक निहित वैधानिक उपधारणा उत्पन्न करता है कि शिकायत जिम्मेदारीपूर्वक और सद्भावपूर्व , न कि मिथ्या या तंग करने वाले ढंग से की

गई है। ऐसी निहित उपधारणा के कारण, जहाँ शिकायतकर्ता लोक सेवक है, वहाँ विधि आदेशिका जारी करने से पहले शिकायतकर्ता और साक्षीगण के परीक्षित करने करने से छूट देती है।”

समन के परिणामस्वरूप आदेशिका जारी करना एक न्यायिक प्रक्रिया है जो अपने साथ एक पवित्रता और विधिक औचित्य का वादा लेकर चलती है।”

9. उपरोक्त विधिक स्थिति से यह स्पष्ट है कि यद्यपि समन आदेश पारित करते समय स्पष्ट कारण दर्ज करना आवश्यक नहीं है, लेकिन यह गूढ़ नहीं होना चाहिए और कम से कम उपलब्ध सामग्री के आधार पर प्रथम दृष्टया वाद के संबंध में न्यायालय की संतुष्टि या राय, किसी व्यक्ति को समन जारी करने से पहले अवर न्यायालय द्वारा दर्ज की जानी चाहिए, भले ही वाद लोक सेवक द्वारा दायर किया गया हो।

10. वर्तमान वाद में, दिनांक 21.6.2024 को समन आदेश पारित करते समय, आवेदक के विरुद्ध प्रथम दृष्टया वाद के बारे में अवर न्यायालय द्वारा कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की गई। अतः, आक्षेपित आदेश पूर्णतः गूढ़ एवं त्रुटिपूर्ण है, जो रद्द किये जाने योग्य है।

11. तदनुसार, गर्भधारण पूर्व एवं प्रसव पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम, 1994 की धारा 23 के अंतर्गत, थाना बलुआ, जिला चंदौली, परिवाद संख्या 10707/2024 में पारित दिनांक 21.6.2024 का आक्षेपित समन आदेश को एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

12. अवर न्यायालय को विधि के अनुसार नया आदेश पारित करने का निर्देश दिया जाता है।

13. उपरोक्त अवलोकन के साथ, वर्तमान आवेदन स्वीकार किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 327

पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 22.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार

सिविल पुनरीक्षण संख्या 524/2011

पवन कुमार कोठीवाल और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...पुनरीक्षणकर्ता

...विपरीत पक्षकार

पुनरीक्षणकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: आर्चित मेहरोत्रा

विपरीत पक्षकारों के लिए अधिवक्ता: सी.एस.सी.

A. सिविल कानून -- संपत्ति अंतरण अधिनियम -- अपंजीकृत पट्टा -- टी.पी.ए. की धारा 107 प्रावधान करती है कि एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए अचल संपत्ति का पट्टा केवल पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है। अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो पंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के साथ मौखिक करार द्वारा किए जा सकते हैं। टी.पी.ए. की धारा 106 बताती है कि करार की अनुपस्थिति में, कृषि या विनिर्माण उद्देश्यों के लिए अचल संपत्ति का पट्टा वर्ष से वर्ष का पट्टा माना जाएगा, जो पट्टादाता या पट्टाधारक को छः महीने की सूचना देकर; तथा किसी अन्य प्रयोजन के लिए अचल संपत्ति का पट्टा, महीने दर महीने का पट्टा माना जाएगा, जो पट्टाकर्ता या पट्टाधारक की ओर से पन्द्रह दिन की सूचना देकर समाप्त किया जा सकेगा। किसी अपंजीकृत लिखत/दस्तावेज से संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के अंतर्गत निर्धारित अवधि के बाद अचल संपत्ति के संबंध में कोई पट्टा अधिकार प्रवाहित नहीं हो सकता। (पैरा 16)

बी. सिविल कानून - पंजीकरण अधिनियम, 1908 - निजी भूमि के संबंध में निजी पक्ष और सरकार के बीच हुए समझौते का पंजीकरण - धारा 90(1)(डी), पंजीकरण अधिनियम, 1908 में प्रावधान है:

की पंजीकरण अधिनियम में निहित किसी भी बात से यह अपेक्षा नहीं समझी जाएगी कि वह सनद, इनाम, स्वामित्व विलेख और अन्य दस्तावेजों के पंजीकरण की अपेक्षा करती है या कभी भी अपेक्षा करती थी, जो भूमि या भूमि में किसी हित के लिए सरकार द्वारा अनुदान या समनुदेशन होने का तात्पर्य रखते हैं या उसका साक्ष्य देते हैं। पंजीकरण अधिनियम की धारा 90(1)(डी) केवल ऐसे प्रमाण पत्रों और दस्तावेजों को निर्धारित करती है जो सरकार द्वारा सरकारी भूमि के संबंध में अधिकार या ऐसी भूमि के संबंध में कोई अन्य अधिकार सृजित करने के लिए जारी किए जाते हैं।

धारा 90(1)(घ) की व्याख्या निजी भूमि के संबंध में निजी पक्ष और सरकार के बीच हुए किसी समझौते के रूप में नहीं की जा सकती। अचल संपत्ति से संबंधित कोई भी अधिकार, जो धारा 90(1)(घ) के तहत परिकल्पित किसी भी प्रकार के समनुदेशन या अधिकार का सृजन या प्रदत्त नहीं करता है, उसे पंजीकरण अधिनियम के तहत अनिवार्य रूप से पंजीकृत किया जाना आवश्यक है। (अनुच्छेद 18)

सी. वादी का बेदखली वाद। प्रतिवादियों के पक्ष में किरायेदारी अधिकार बनाने वाला कोई लिखित समझौता नहीं था। राज्यपाल की ओर से जारी पत्र में कहा गया था कि किरायेदारी 30.06.2009 तक थी।

वादी का मामला यह था कि यह एक निश्चित अवधि का किरायेदारी था जो 01.07.1995 से शुरू होकर 30.06.2009 को समाप्त हुआ था और इसलिए, किरायेदारी की अवधि समाप्त होने पर प्रतिवादियों को बेदखल

किया जा सकता था और यदि वे परिसर खाली नहीं करते, तो संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत नोटिस जारी करके किरायेदारी का निर्धारण किया जा सकता था। प्रतिवादी ने अदालत के समक्ष एक अपंजीकृत समझौता प्रस्तुत किया ताकि यह साबित किया जा सके कि कोई निश्चित अवधि का किरायेदारी नहीं था।

प्रतिवादी द्वारा गैर-न्यायिक स्टाम्प पर दस्तावेज़ दाखिल किया गया और दावा किया गया कि उस पर मकान मालिक ने 01.07.1994 से किरायेदारी स्थापित करते हुए हस्ताक्षर किए थे। हालाँकि, इसमें केवल 30.05.2005 तक के किराए के भुगतान का उल्लेख था।

उस दस्तावेज़ में धारा 6 थी जिसमें कहा गया था कि अवधि समाप्त होने के बाद किराए में 25% की और वृद्धि के साथ नया पट्टा निष्पादित किया जाएगा। ऐसा कोई समझौता दोबारा नहीं किया गया। प्रश्न यह उठा कि किरायेदारी अधिकारों की व्याख्या के लिए कौन सा दस्तावेज़ पढ़ा जाए।

ट्रायल कोर्ट ने माना कि प्रतिवादियों द्वारा जिस समझौते पर भरोसा किया गया था, उसके मददेनजर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई निश्चित अवधि की किरायेदारी नहीं थी और इसलिए यह शाश्वत किरायेदारी के बराबर है और वादी ने अपने कृत्य और आचरण से प्रतिवादियों को किरायेदारी में जारी रखा है, इसलिए संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 116 के तहत किरायेदार-प्रतिवादी को लाभ दिया जाना चाहिए।

मुद्दा: क्या प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत अपंजीकृत दस्तावेज़ को पढ़कर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहां स्थायी किरायेदारी थी और इसलिए, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के तहत नोटिस जारी करके इसका निर्धारण नहीं किया जा सकता था?

निर्णय: प्रतिवादी द्वारा दायर पट्टा दस्तावेज़ के प्रासंगिक खंड को देखते हुए, जिसमें 01.07.1994 से मई, 2005 तक की अवधि के लिए प्रावधान किया गया था, इसे संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 107 के अनुसार पंजीकृत होना आवश्यक था। चूंकि वह दस्तावेज़ पंजीकृत नहीं था, इसलिए इससे बारह महीने से अधिक की अवधि के लिए पट्टा अधिकार नहीं बन सकते थे।

चूंकि पट्टा न तो कृषि उद्देश्यों के लिए था और न ही विनिर्माण उद्देश्यों के लिए, इसलिए इसे मासिक आधार पर लिया जाएगा। चूंकि विचाराधीन पट्टा मासिक आधार पर था, इसलिए प्रतिवादी को धारा 116 का लाभ देने का कोई औचित्य नहीं है।

मकान मालिक-वादी द्वारा 30.07.2009 को पट्टे का निर्धारण करते हुए जारी किया गया नोटिस वैध था। निचली अदालत द्वारा दिया गया यह निष्कर्ष कि पट्टा स्थायी था, दस्तावेज़ की गलत व्याख्या और कानून के

प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या पर आधारित था और कानून में टिक नहीं सकता। सर्वोच्च न्यायालय के वाद में प्रतिवादियों को संबंधित परिसर खाली करने का निर्देश दिया गया। (अनुच्छेद 17, 18, 19)

स्वीकृत। (ई-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. सेवोक प्रॉपर्टीज़ लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड, (2020)11एससीसी 782
2. पार्क स्ट्रीट प्रॉपर्टीज़ प्राइवेट लिमिटेड बनाम दीपक कुमार सिंह एवं अन्य, (2016) 9 एससीसी 268
3. राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश के सचिव वित्त एवं राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश के माध्यम से लखनऊ एवं अन्य, 2016 (165) एआईसी 939 (एएलएल उच्च न्यायालय)
4. यूओआई एवं अन्य बनाम सुदर्शन लाल तलवार, 2022 एएलएल एलजे 1623
5. अनीश अहमद बनाम विशेष/अपर जिला न्यायाधीश, सहारनपुर एवं अन्य, 1997 एससीसी ऑनलाइन एएलएल 303

(माननीय न्यायमूर्ति अजित कुमार द्वारा प्रदत्त)

1. पुनरीक्षण-आवेदकों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आर्चित मेहरोत्रा तथा उत्तर प्रदेश राज्य और क्षेत्रीय खाद्य नियंत्रक, सिविल लाइंस, मुरादाबाद, किरायेदार प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री ओ.पी. सिंह सिकरवार को सुना गया।
2. न्यायालय के समक्ष विचारार्थ उत्पन्न होने वाला एकमात्र मुद्दा यह है कि क्या प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत एक अपंजीकृत दस्तावेज को यह अनुमान लगाने के लिए पढ़ा जा सकता है कि स्थायी किरायेदारी थी और इसलिए, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के तहत नोटिस जारी करके इसे निर्धारित नहीं किया जा सकता था।
3. प्रस्तुत मामले में पुनरीक्षण-आवेदक/वादी को बेदखली वाद में केवल इस कारण से अयोग्य ठहराया गया है कि प्रत्यर्थी ने न्यायालय के समक्ष एक अपंजीकृत करार प्रस्तुत किया ताकि यह प्रदर्शित किया जा सके कि वादी द्वारा लिए गए रुख के विपरीत कोई निश्चित अवधि की किरायेदारी नहीं थी कि 30.06.2009 को समाप्त होने वाली एक निश्चित अवधि की किरायेदारी थी और इसलिए, प्रत्यर्थी किरायेदारी की अवधि की समाप्ति पर बेदखल किए जाने के उत्तरदायी थे और परिसर खाली करने में उनकी विफलता की स्थिति में, किरायेदारी संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत नोटिस जारी करके निर्धारित किए जाने के उत्तरदायी थी। विचारण

न्यायालय ने संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत नोटिस जारी करके किरायेदारी निर्धारित करने के वादी के रुख को हटाते हुए यह माना कि प्रत्यर्थियों द्वारा भरोसा किए गए करार के दृष्टिगत कोई निश्चित अवधि की किरायेदारी प्रतीत नहीं होती है और इसलिए, यह स्थायी किरायेदारी के समान था और वादी/पुनरीक्षण-आवेदक ने अपने कार्य और आचरण द्वारा प्रत्यर्थियों को किरायेदारी में जारी रखा है, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के तहत धारण जारी रखने का लाभ किरायेदार प्रत्यर्थी को विस्तारित किए जाने के उत्तरदायी था।

4. निर्णय पर आक्षेप करने के लिए पुनरीक्षण-आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतीकरण यह है कि अचल संपत्ति के संबंध में कोई अपंजीकृत करार संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 और पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 के अनुसार 12 महीने की निर्धारित अवधि से परे पट्टा अधिकार नहीं बना सकता है, ऐसी परिस्थितियों में, इसलिए, एक अपंजीकृत करार का अर्थ केवल महीने से महीने के आधार पर किरायेदारी अधिकार बनाना होगा जो संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 के प्रावधान 106 के तहत विधि में तब विद्यमान 30 दिन के पूर्व नोटिस के साथ निर्धारणीय है। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि निचला न्यायालय स्थायी रूप से किरायेदारी अधिकार बनाने वाले वैध करार के रूप में पट्टे को धारण करने और फिर किरायेदार प्रत्यर्थियों के पक्ष में संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 का लाभ प्रदान करने में न्यायोचित नहीं था, जो वादी के कार्य और आचरण के लिए उन्हें पांच वर्ष की किरायेदारी के अपने स्वयं के दस्तावेज के अनुसार निर्धारित अवधि से परे किरायेदारी में जारी रखने के लिए था जिस पर कार्रवाई नहीं की गई थी। पुनरीक्षण आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, पुनरीक्षण आवेदक धारा 106 के तहत नोटिस जारी करने पर सहन किरायेदार होगा और इसलिए, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के तहत लाभ का हकदार नहीं होगा।

5. पुनरीक्षण-आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने **सेवोक प्रॉपर्टीज लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य विद्युत वितरण कंपनी लिमिटेड (2020) 11 सुप्रीम कोर्ट केसेज 782** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है और न्यायालय के समक्ष निर्णय के पैराग्राफ 12 और 13 प्रस्तुत किए हैं जो निम्नानुसार चलते हैं:

"12. वर्तमान मामले में विवाद का सार यह है कि क्या धारा 106 के तहत समाप्ति की नोटिस आवश्यक थी। सतीश चंद मखन में इस न्यायालय के निर्णय में, वादी के पिता ने पंजीकृत पट्टा विलेख के तहत पांच वर्ष की अवधि के लिए प्रतिवादी को खुली भूमि पट्टे पर दी थी। प्रारंभिक अवधि की समाप्ति के बाद, नौ वर्ष की अतिरिक्त अवधि के लिए नवीनीकरण के लिए एक प्रारूप करार था, जो हालांकि, पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (1) (d) के तहत पंजीकृत नहीं था। वादी ने धारा 111 (g) के तहत जब्ती के आधार पर किरायेदारी के निर्धारण के लिए नोटिस दी और बेदखली के लिए वाद दायर किया। उच्च न्यायालय ने माना कि धारा 111 (a) के तहत नौ वर्ष की अवधि की समाप्ति पर समय व्यतीत होने से पट्टा निर्धारित हो गया था और इसलिए, पट्टे के निर्धारण के लिए धारा 106 के तहत किसी नोटिस की आवश्यकता नहीं थी। उच्च न्यायालय के निर्णय

की शुद्धता निर्धारित करते हुए, इस न्यायालय ने अवलोकित किया कि "प्रतिवादियों ने कहीं भी यह स्वीकार नहीं किया है कि पट्टा नौ वर्ष की विशिष्ट अवधि के लिए था"। इसके विपरीत, प्रतिवादियों ने यह अभिव्यक्ति व्यक्त की कि वे टी.पी. अधिनियम की धारा 116 के तहत धारण किरायेदार थे। इस न्यायालय ने माना कि अपंजीकृत प्रारूप पट्टा करार प्रतिवादियों के कब्जे की प्रकृति और चरित्र प्रदान करने के संपार्श्विक उद्देश्य को छोड़कर पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 के तहत साक्ष्य में अग्रहण था। पट्टे की शर्तें संपार्श्विक उद्देश्य का गठन नहीं करती थीं। परिणामस्वरूप, अपंजीकृत प्रारूप पट्टे को नौ वर्ष की नवीकृत अवधि के लिए वैध पट्टा बनाने के लिए अग्रहण माना गया था। इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने माना कि प्रतिवादी धारा 116 के तहत धारण किरायेदार थे जिस स्थिति में वादी के लिए धारा 106 के तहत नोटिस देना आवश्यक था। ऐसी नोटिस की अनुपस्थिति में, यह माना गया कि वाद पोषणीय नहीं होगा।

13. श्री सुंदरम ने इस निर्णय को भिन्न करने की मांग की है, क्योंकि उस मामले में इस न्यायालय ने पाया कि प्रतिवादी धारा 116 के अर्थ के भीतर धारण किरायेदार था। हम श्री सुंदरम द्वारा उठाए गए प्रस्तुतीकरण में योग्यता पाते हैं। इस न्यायालय के समक्ष उल्लिखित मामले में, प्रतिवादियों ने यह स्वीकार नहीं किया था कि पट्टे की अवधि नौ वर्ष की अवधि के लिए थी। यह न्यायालय द्वारा नोट किया गया था, जैसा कि हमने पहले निकाला है। इसके विपरीत, हम पाते हैं कि वर्तमान मामले में, प्रतिवादियों की ओर से एक स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि वे 1981 से प्रभावी पंद्रह वर्ष की अवधि के लिए पट्टा करार के तहत कब्जे में थे और पट्टे की अवधि 24-5-1996 को समाप्त हो गई। प्रतिवादियों की ओर से ऐसी विशिष्ट स्वीकारोक्ति लिखित कथन के पैरा 22 में निहित है। धारा 111 (a) के तहत, अचल संपत्ति का पट्टा उसके द्वारा सीमित समय के व्यतीत होने से निर्धारित होता है। एक बार यह स्थिति हो जाने पर, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि पट्टे की समाप्ति पर प्रत्यर्थी की स्थिति सहन किरायेदार की थी। परिस्थितियों में, धारा 106 के प्रावधानों के तहत पट्टे की समाप्ति की नोटिस की कोई आवश्यकता नहीं थी। प्रत्यर्थी ने अपने लिखित कथन में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वह पंद्रह वर्ष की अवधि के लिए कब्जे में था, वह अवधि समाप्त हो गई है, पट्टा समय के व्यतीत होने से निर्धारित हो गया। एक बार पट्टा समय के व्यतीत होने से निर्धारित हो गया, धारा 106 के तहत समाप्ति की नोटिस की कोई आवश्यकता नहीं थी।"

6. उन्होंने **पार्क स्ट्रीट प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड बनाम दीपक कुमार सिंह और अन्य (2016) 9 सुप्रीम कोर्ट केसेज 268** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय पर भी भरोसा किया है जहां संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 और पंजीकरण अधिनियम की धारा 17 (1) (d) धारा 39 के साथ पठित में निहित प्रावधान पर विस्तृत विचार दिया गया है। उन्होंने न्यायालय के समक्ष पैराग्राफ 9,10,17, 19 प्रस्तुत किए हैं जो निम्नानुसार हैं:

"9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने समीर मुखर्जी बनाम दविंदर के. बजाज में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसका प्रासंगिक भाग निम्नानुसार निकाला गया है:

6. धारा 107, पक्षकारों के बीच पट्टे के निष्पादन की प्रक्रिया निर्धारित करती है। इस धारा के पहले पैराग्राफ के तहत वर्ष से वर्ष के लिए या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए या वार्षिक किराया आरक्षित करने वाली अचल संपत्ति का पट्टा केवल पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है और पट्टों की शेष श्रेणियां दूसरे पैराग्राफ द्वारा शासित होती हैं, अर्थात् अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो पंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के साथ मौखिक करार द्वारा किए जा सकते हैं।

7. हाथ में मामले में, हम एक मौखिक पट्टे से संबंधित हैं जो संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के पहले पैराग्राफ से प्रभावित है। धारा 107 के तहत पक्षकारों के पास एक वर्ष से कम अवधि के लिए या वर्ष से वर्ष या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए या वार्षिक किराया आरक्षित करने के लिए अचल संपत्ति के संबंध में पट्टे में प्रवेश करने का विकल्प है। यदि वे वर्ष से वर्ष या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए, या वार्षिक किराया आरक्षित करते हुए किसी भी अचल संपत्ति के संबंध में पट्टा रखने का निर्णय लेते हैं, तो ऐसा पट्टा केवल पंजीकृत लिखत द्वारा होना चाहिए। पंजीकृत लिखत की अनुपस्थिति में, वर्ष से वर्ष या एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए या वार्षिक किराया आरक्षित करने के लिए कोई वैध पट्टा नहीं बनाया जा सकता है। यदि पट्टा धारा 106 के प्रारंभिक शब्दों के अर्थ के भीतर वैध पट्टा नहीं है, तो उसमें सन्निहित निर्माण का नियम आकर्षित नहीं होगा। उपरोक्त दोनों धाराओं के सामंजस्यपूर्ण पठन पर कानूनी स्थिति है।

8. राम कुमार दास में धारा 106 को इस न्यायालय की चार न्यायाधीशों की पीठ द्वारा विचार किया गया था। इस न्यायालय ने माना कि यह धारा 106 निर्माण का नियम निर्धारित करती है जिसे लागू किया जाना है जब पक्षकारों के बीच कोई अवधि सहमत नहीं होती है और ऐसे मामलों में अवधि को उस उद्देश्य के लिए संदर्भ द्वारा निर्धारित किया जाना है जिसके लिए उद्देश्यों के लिए किरायेदारी बनाई गई है। यह भी माना गया कि इस धारा में सन्निहित निर्माण का नियम न केवल अनिश्चित अवधि के स्पष्ट पट्टों पर लागू होता है बल्कि कानून द्वारा निहित पट्टों पर भी लागू होता है जो कब्जे और किराए की स्वीकृति और अन्य परिस्थितियों से अनुमानित किया जा सकता है। यह भी माना गया कि यह विवादित नहीं है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 द्वारा परिकल्पित विपरीत करार एक स्पष्ट करार होना आवश्यक नहीं है; यह निहित हो सकता है लेकिन यह निश्चित रूप से एक वैध करार होना चाहिए। उस मामले के तथ्य पर, न्यायालय ने माना कि

13. ... इस नियम को वर्तमान मामले में लागू करने में कठिनाई इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि वर्ष से वर्ष की किरायेदारी या वार्षिक किराया आरक्षित करना केवल पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है, जैसा कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 में निर्धारित है।

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री सुंदरम ने के.बी. साहा एंड संस (पी) लिमिटेड बनाम डेवलपमेंट कंसल्टेंट लिमिटेड में इस न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा किया जिसमें निम्नानुसार माना गया था:

34. इस न्यायालय और उच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित सिद्धांतों से, जैसा कि यहां ऊपर संदर्भित किया गया है, यह स्पष्ट है कि:

1. पंजीकृत होने के लिए आवश्यक दस्तावेज, यदि अपंजीकृत है, पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 के तहत साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है।
2. ऐसे अपंजीकृत दस्तावेज का उपयोग हालांकि पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 के परंतुक में प्रदान किए गए संपार्श्विक उद्देश्य के साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है।
3. संपार्श्विक लेन-देन उस लेन-देन से स्वतंत्र या विभाज्य होना चाहिए जिसे प्रभावित करने के लिए कानून ने पंजीकरण की आवश्यकता है।
4. संपार्श्विक लेन-देन ऐसा लेन-देन होना चाहिए जिसे स्वयं पंजीकृत दस्तावेज द्वारा प्रभावित करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात्, एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य की अचल संपत्ति में कोई अधिकार, शीर्षक या हित बनाने वाला लेन-देन।
5. यदि पंजीकरण के अभाव में कोई दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है, तो उसकी कोई भी शर्त साक्ष्य में स्वीकार नहीं की जा सकती है और किसी महत्वपूर्ण खंड को प्रदान करने के उद्देश्य से दस्तावेज का उपयोग करना इसे संपार्श्विक उद्देश्य के रूप में उपयोग नहीं होगा।

35. हमारे विचार में, विचाराधीन पट्टा करार में विशेष खंड को संपार्श्विक उद्देश्य नहीं कहा जा सकता है। जैसा कि पहले नोट किया गया है, यह अपीलकर्ता का मामला है कि वाद परिसर केवल प्रत्यर्थी के विशेष नामित अधिकारी के लिए पट्टे पर दिए गए थे और तदनुसार, उक्त अधिकारी द्वारा खाली किए जाने के बाद, प्रत्यर्थी किसी अन्य कर्मचारी को इसे आवंटित करने का हकदार नहीं था और इसलिए, बेदखल किए जाने के उत्तरदायी था, जो हमारे विचार में, पट्टा करार का हिस्सा बनने वाली एक महत्वपूर्ण शर्त थी। इसलिए, ऐसे खंड, अर्थात्, इस मामले में पट्टा करार के खंड 9 को, यह निष्कर्ष निकालने के लिए संपार्श्विक उद्देश्यों के लिए भी नहीं देखा जा सकता है कि प्रत्यर्थी पट्टा करार के खंड 9 के उल्लंघन के कारण बेदखल किए जाने के उत्तरदायी था, जो स्वीकार रूप से अपंजीकृत है, वाद परिसर से प्रत्यर्थी को बेदखल करने के उद्देश्य से केवल इसलिए देखा जा सकता है क्योंकि प्रत्यर्थी उसी में नामित अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति को शामिल करने का हकदार नहीं था।

17. अधिनियम की धारा 106 का अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि यह उन मामलों में एक मानित मासिक किरायेदारी बनाता है जहां विपरीत कोई स्पष्ट करार नहीं है, जो 15 दिनों की नोटिस अवधि पर समाप्त किया जा सकता है। धारा किरायेदारी को समाप्त करने के लिए वैध नोटिस की आवश्यकताओं को भी निर्धारित करती है, जैसे कि यह लिखित में होना चाहिए, इसे भेजने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए और विधिवत वितरित किया जाना चाहिए। स्वीकार रूप से, नोटिस की वैधता स्वयं चुनौती के अधीन नहीं है। प्रत्यर्थियों की ओर से प्रस्तुत मुख्य तर्क यह है कि आक्षेपित निर्णय और आदेश अधिनियम की धारा 107 के दूसरे भाग के प्रकाश में वैध हैं, जिसके लिए आवश्यक है कि एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए पट्टा केवल पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है।

19. यह भी कानून की सुस्थापित स्थिति है कि पंजीकृत लिखत की अनुपस्थिति में, न्यायालय अभिलेख पर अन्य साक्ष्य के साथ-साथ पक्षकारों के आचरण से किरायेदारी के तथ्य को निर्धारित करने से वर्जित नहीं है। इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने एंथोनी बनाम के.सी. इट्टूप एंड संस में निम्नानुसार माना:

12.... अचल संपत्ति का पट्टा टी.पी. अधिनियम की धारा 105 में परिभाषित है। समय-समय पर भुगतान की गई या प्रस्तुत की जाने वाली कीमत के प्रतिफल में संपत्ति का आनंद लेने के अधिकार का हस्तांतरण या निर्दिष्ट अवसरों पर प्रस्तुत किया जाना वैध पट्टे के लिए मूल ताना-बाना है। प्रावधान कहता है कि ऐसा हस्तांतरण स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से किया जा सकता है। एक बार संपत्ति का आनंद लेने के अधिकार का ऐसा हस्तांतरण होने पर, पट्टा बन जाता है। टी.पी. अधिनियम की धारा 107 के पहले भाग के तीन पैराग्राफों में जो उल्लेख किया गया है, वे केवल विभिन्न तरीके हैं कि पट्टे कैसे बनाए जाते हैं। पहले पैराग्राफ को उपरोक्त के साथ पढ़ा जा सकता है क्योंकि इसमें एक शर्त शामिल है जिसका पालन किया जाना है यदि पक्षकार उसमें उल्लिखित पंजीकृत लिखत के अनुसार पट्टा बनाना चुनते हैं। अन्य सभी पट्टे, यदि बनाए गए, तो आवश्यक रूप से दूसरे पैराग्राफ के दायरे में आते हैं। इस प्रकार लिखत के अलावा पक्षकार धारा 107 के दूसरे पैराग्राफ में परिकल्पित पट्टा बना सकते हैं जो इस प्रकार पढ़ता है...

13. जब पट्टा संपत्ति का आनंद लेने के अधिकार का हस्तांतरण है और ऐसा हस्तांतरण स्पष्ट रूप से या निहितार्थ से किया जा सकता है, तो यह मात्र तथ्य कि एक अपंजीकृत लिखत अस्तित्व में आई, न्यायालय के मार्ग में यह निर्धारित करने के लिए खड़ी नहीं होगी कि क्या वास्तव में ऐसे विलेख के अलावा पट्टा था।

16. एक अलग दृष्टिकोण लेना वास्तविकता के विपरीत होगा जब पक्षकारों ने स्पष्ट रूप से पट्टा बनाने का इरादा किया था, हालांकि उन्होंने जो दस्तावेज निष्पादित किया था वह पंजीकरण की प्रक्रियाओं में नहीं गया था। उस कमी ने दस्तावेज की वैधता को प्रभावित किया था, लेकिन संपत्ति के संबंध में पक्षकारों के बीच जो हुआ वह वास्तविकता बन गई। दस्तावेज का गैर-पंजीकरण केवल दो परिणाम पैदा करता है। एक यह है कि एक वर्ष से अधिक का कोई पट्टा नहीं बनाया गया था। दूसरा यह है कि पट्टे के निर्माण के संबंध में लिखत बेकार हो गई। फिर भी यह धारणा कि पक्षकारों के आचरण द्वारा एक वर्ष से अधिक नहीं का पट्टा बनाया गया, अखंडित रहता है।

इस प्रकार, दस्तावेज के पंजीकरण की अनुपस्थिति में, जो मानित रूप से बनाया गया है वह महीने से महीने की किरायेदारी है, जिसकी समाप्ति अधिनियम की धारा 106 द्वारा शासित होती है।"

7. उन्होंने इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय **राजीव कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य सचिव वित्त एवं राजस्व विभाग उ.प्र., लखनऊ और अन्य [2016 (165) एएलसी 939 (इलाहाबाद उच्च न्यायालय)]** के मामले में भी भरोसा किया है जहां सुरक्षित संपत्तियों के संबंध में नौ वर्ष की अवधि के लिए बनाया गया पट्टा जो अनिवार्य रूप से पंजीकृत होना आवश्यक था लेकिन नोटरीकृत दस्तावेज पर निष्पादित किया गया था, को कोई बाध्यकारी

प्रभाव नहीं होने के रूप में माना गया था। उन्होंने न्यायालय के समक्ष पैराग्राफ 9 और 10 प्रस्तुत किए हैं जो निम्नानुसार हैं:

"9. कानूनी स्थिति का विश्लेषण करने के बाद, हम अब हाथ में मामले के तथ्यों पर इसे लागू करने के लिए आगे बढ़ते हैं। स्वीकार रूप से, याचीकर्ता दावा करता है कि किराए के भुगतान पर नौ वर्ष की अवधि के लिए नोटरीकृत दस्तावेज के आधार पर विवाद में परिसर का पट्टा उसके पक्ष में है। विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या नोटरीकृत दस्तावेज जो किराया करार का विलेख है (रिट याचिका का अनुलग्नक-1) जिस पर याचीकर्ता भरोसा करता है, यह स्थापित करने के लिए दस्तावेज कहा जा सकता है कि वह सुरक्षित संपत्तियों का सदाशय पट्टेदार है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 निर्धारित करती है कि पट्टा कैसे बनाया जाना है।

"107. पट्टा कैसे बनाया जाए - वर्ष से वर्ष, या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए, या वार्षिक किराया आरक्षित करने वाली अचल संपत्ति का पट्टा केवल पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है।

अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो पंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के साथ मौखिक करार द्वारा किए जा सकते हैं।

जहां अचल संपत्ति का पट्टा पंजीकृत लिखत द्वारा किया जाता है, ऐसी लिखत या, जहां एक से अधिक लिखतें हैं, प्रत्येक ऐसी लिखत पट्टादाता और पट्टागृहीता दोनों द्वारा निष्पादित की जाएगी;

परंतु राज्य सरकार समय-समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निर्देश दे सकती है कि वर्ष से वर्ष, या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए, या वार्षिक किराया आरक्षित करने के अलावा अचल संपत्ति के पट्टे, या ऐसे पट्टों की कोई श्रेणी, अपंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के बिना मौखिक करार द्वारा की जा सकती है।

10. प्रावधान के केवल पठन से पता चलता है कि वर्ष से वर्ष या एक वर्ष को छोड़कर किसी भी अवधि के लिए अचल संपत्ति का पट्टा केवल पंजीकृत करार द्वारा किया जा सकता है और अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो पंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के माध्यम से मौखिक करार द्वारा किए जा सकते हैं। विचाराधीन मामले में दस्तावेज में उल्लिखित अवधि 6.1.2012 से 5.1.2012 अर्थात् संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के तहत 9 वर्ष है ऐसी लिखत को आवश्यक रूप से पंजीकृत होना चाहिए। चूंकि याचीकर्ता पट्टादाता द्वारा अपने पक्ष में निष्पादित कोई पंजीकृत दस्तावेज प्रस्तुत करने में विफल रहा है, उसे दस्तावेज के निष्पादन की तारीख से एक वर्ष को छोड़कर किसी भी अवधि के लिए सुरक्षित संपत्तियों के कब्जे में रहने का हकदार नहीं माना जा सकता है। स्वीकार रूप से, याचीकर्ता द्वारा भरोसा किया जा रहा दस्तावेज, 6.1.2012 को निष्पादित, एक अपंजीकृत दस्तावेज है, उसका कब्जा उक्त तारीख से एक वर्ष की अवधि के लिए संरक्षित

किए जाने के उत्तरदायी है। इस प्रकार, केवल अप्रतिरोध्य निष्कर्ष यह है कि याचीकर्ता दिनांक 6.1.2012 के लिखत/किराया करार की तारीख से एक वर्ष से अधिक के लिए सुरक्षित संपत्तियों के कब्जे का हकदार नहीं है।

8. उन्होंने इस न्यायालय के समन्वय पीठ के निर्णय **भारत संघ और अन्य बनाम सुदर्शन लाल तलवार 2022 एलएल एल.जे. 1623** के मामले में प्रासंगिक पैराग्राफ भी प्रस्तुत किए हैं जिसमें न्यायालय ने माना है कि किरायेदारी की समाप्ति की अवधि के बाद किराए की मात्र स्वीकृति छूट के बराबर नहीं है। उन्होंने न्यायालय के समक्ष निर्णय का पैराग्राफ-18 प्रस्तुत किया है जो निम्नानुसार है।

"18. इन निर्णयों के प्रकाश में इसलिए मैं पाता हूँ कि किरायेदारी की समाप्ति की अवधि के बाद किराए की मात्र स्वीकृति खाली करने की नोटिस की छूट के बराबर नहीं है। छूट का कुछ इरादा होना चाहिए। वर्तमान मामले में, विपरीत पक्षकार ने उसके द्वारा दायर बेदखली के वाद को सक्रिय रूप से चलाया। इसलिए, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि नोटिस को माफ कर दिया गया है। तदनुसार मैं पाता हूँ कि विचारण न्यायालय ने सही ढंग से माना है कि खाली करने की नोटिस माफ नहीं की गई है और इसलिए, पुनरीक्षणकर्ता बेदखली के उत्तरदायी हैं।"

9. उन्होंने किरायेदारी की समाप्ति के मामले में छूट के सिद्धांत के संबंध में विद्वान एकल न्यायाधीश के एक अन्य निर्णय **अनीश अहमद बनाम विशेष/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, सहारनपुर और अन्य 1997 एससीसी ऑनलाइन एलएल 303** के मामले में भी भरोसा किया है। न्यायालय के समक्ष पैराग्राफ 5, 6, 7 और 8 प्रस्तुत करते हुए। पैराग्राफ 5, 6, 7, 8 और 9 नीचे पुनरुत्पादित हैं:

"5. एक मकान मालिक संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 113 के तहत प्रदान की गई नोटिस को माफ कर सकता है जो प्रावधान करती है कि धारा 111, खंड (h) के तहत दी गई नोटिस, जिस व्यक्ति को यह दी गई है उसकी स्पष्ट या निहित सहमति से, इसे देने वाले व्यक्ति की ओर से किसी भी कार्य द्वारा माफ कर दी जाती है जो पट्टे को निर्वाह के रूप में मानने के इरादे को दर्शाता है। नोटिस को माफ किया गया है यह दावा करने वाले व्यक्ति को दो आवश्यक तत्वों को संतुष्ट करना होता है (i) मकान मालिक का इरादा पट्टे को निर्वाह के रूप में मानने का था, और (ii) उसे इस तथ्य का ज्ञान था कि यह आचरण छूट के बराबर है।

6. एसोसिएटेड होटल्स ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम एस.बी. सरदार रणजीत सिंह में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया:

"छूट एक ज्ञात अधिकार का जानबूझकर त्याग है। कोई छूट नहीं हो सकती जब तक कि जिस व्यक्ति के खिलाफ छूट का दावा किया गया है उसे अपने अधिकारों और तथ्यों का पूर्ण ज्ञान नहीं था जो उसे ऐसे अधिकारों के प्रवर्तन के लिए प्रभावी कार्रवाई करने में सक्षम बनाते हैं।

7. राम कृष्ण बनाम झामन दास में, यह माना गया कि यदि मकान मालिक किरायेदारी की समाप्ति की तारीख के बाद की अवधि के लिए वाद के संस्थित होने के बाद किराया स्वीकार करता है, तो यह नहीं माना जा सकता है कि उसने नोटिस माफ कर दी है।

8. गुलाब सिंह रावत बनाम जिला न्यायाधीश, उत्तर काशी में, यह माना गया कि यदि मकान मालिक परिसर खाली करने के लिए किरायेदार को दी गई समय सीमा की समाप्ति के बाद किरायेदार से किराया स्वीकार करता है, तो यह किरायेदारी की समाप्ति की छूट के बराबर नहीं होगा जब तक कि यह साबित नहीं हो जाता है कि मकान मालिक और किरायेदार के बीच किरायेदारी का एक नया करार दर्ज किया गया था।

9. यदि मकान मालिक किरायेदारी की समाप्ति की तारीख के बाद की अवधि के लिए किराया स्वीकार करता है, तो यह नोटिस की छूट के बराबर नहीं है, जब तक कि यह दर्शाने के लिए अन्य बाध्यकारी परिस्थितियां न हों कि मकान मालिक का पट्टे को निर्वाह के रूप में मानने का इरादा था।"

10. पुनरीक्षण आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा ऊपर प्रस्तुत तर्कों का सामना करते हुए श्री ओ.पी. सिंह सिकरवार, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने न्यायालय के समक्ष पंजीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 90 प्रस्तुत की है और न्यायालय के समक्ष धारा 90 की उप-धारा 1 (d) प्रस्तुत की है जो निम्नानुसार चलती है:

"90. सरकार द्वारा या सरकार के पक्ष में निष्पादित कुछ दस्तावेजों की छूट।

.....(d) सनद, इनाम शीर्षक-विलेख और अन्य दस्तावेज जो सरकार द्वारा भूमि या भूमि में किसी हित के अनुदान या असाइनमेंट को साबित करने के लिए या साक्ष्य के लिए दिखाई देते हैं; या....."

11. श्री सिकरवार ने यह तर्क देने की मांग की कि यह एक दस्तावेज के माध्यम से अचल संपत्ति के संबंध में बनाया गया एक प्रकार का अधिकार था और चूंकि इसने भूमि में हित के लिए प्रावधान किया था जो सरकारी भूमि के अलावा हो सकता है, इसे विचाराधीन संपत्ति को कवर करने के लिए लिया जाना चाहिए और इसलिए, छूट का कानून आकर्षित होगा। श्री सिकरवार ने उपरोक्त कारणों से वाद को खारिज करते हुए न्यायालय द्वारा पारित आदेश का बचाव किया। हालांकि, श्री सिकरवार बहुत निष्पक्ष रूप से स्वीकार करेंगे कि उस मामले में जहां किरायेदार की स्थिति सहन-किरायेदार की है, ऐसा किरायेदार संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 116 के लाभ का हकदार नहीं होगा। श्री सिकरवार भी, पुनरीक्षण आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत प्राधिकारियों के विपरीत कानून निर्धारित करने वाली कोई प्राधिकरण उद्धृत नहीं कर सके।

12. संबंधित पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता को सुनने के बाद और इस पुनरीक्षण के अभिलेखों के साथ-साथ न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत विचारण न्यायालय के अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह वादी-पुनरीक्षण आवेदक की ओर से एक स्वीकृत स्थिति सामने आती है कि प्रत्यर्थियों के पक्ष में किरायेदारी अधिकार बनाने वाला लिखित रूप में कोई करार नहीं था। हालांकि, 19.05.2006 को उप सचिव द्वारा राज्यपाल

की ओर से जारी पत्र ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया कि किरायेदारी 30.06.2009 तक थी। इस प्रकार, यह 01.07.1995 से शुरू होकर 30.06.2009 को समाप्त होने वाली एक निश्चित अवधि की किरायेदारी थी और दूसरा प्रत्यर्थी द्वारा दायर गैर-न्यायिक स्टाम्प पर एक दस्तावेज है और दावा किया गया कि मकान मालिक द्वारा हस्ताक्षरित 01.07.1994 से किरायेदारी बनाया गया था। यह दस्तावेज प्रत्यर्थियों के पक्ष में बनाए गए पट्टा अधिकारों को संदर्भित करता है। प्रश्न उठता है कि किरायेदारी अधिकारों की व्याख्या के लिए किस दस्तावेज को पढ़ा जाए। स्वीकार रूप से इस न्यायालय के समक्ष याचीकर्ताओं ने ऐसे अधिकारों को बनाने वाले किसी भी दस्तावेज को निष्पादित करने से इनकार किया और केवल राज्यपाल की ओर से जारी अधिकृत पत्र पर भरोसा किया। इसे केवल एक संपाश्विक दस्तावेज के रूप में लिया जा सकता है क्योंकि कब्जे के अधिकार और मकान मालिक और किरायेदार संबंध के न्यायिक संबंध का निर्णय करने के लिए एक सीमित उद्देश्य के लिए। इसलिए, न्यायालय भले ही किसी निश्चित समय की किरायेदारी बनाने के लिए इस दस्तावेज पर भरोसा नहीं करता, निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण नहीं माने जा सकते हैं लेकिन चूंकि मकान मालिक किरायेदार का न्यायिक संबंध निर्धारित हो गया है और पक्षकार इससे सहमत हैं, अधिक से अधिक, यह केवल वर्ष 2009 तक सीमित किरायेदारी अधिकारों के लिए संदर्भित हो सकता है। यह एक मामला है जहां किसी को इस तथ्य को स्वीकार करना होगा कि पक्षकार न्यायिक संबंध से सहमत हैं तो ऐसे दस्तावेजों को निश्चित रूप से केवल ऐसे संबंध के निर्धारण के उद्देश्यों के लिए विचार में लिया जा सकता है और उस सीमा तक इसकी ग्राह्यता पर संदेह नहीं किया जा सकता है।

13. अब यह प्रश्न उठता है कि किसी निश्चित अवधि की किरायेदारी के कभी विद्यमान रहने को कैसे निर्धारित किया जाए या यह स्थायी किरायेदारी थी जैसा कि निचले न्यायालय द्वारा माना गया है। निचले न्यायालय के समक्ष दायर गैर-न्यायिक स्टाम्प पर दूसरे दस्तावेज पर आते हुए और जिस पर प्रत्यर्थियों ने भारी भरोसा किया है क्योंकि यह उनका दस्तावेज है, यह इस तथ्य को साक्ष्यित करता है कि किरायेदारी 01.07.1994 से शुरू हुई, हालांकि, यह केवल 30.05.2005 तक किराए के भुगतान को संदर्भित करता है। इस दस्तावेज में दिलचस्प रूप से एक और खंड पैराग्राफ 6 शामिल था जिसने निर्धारित किया कि अवधि की समाप्ति के बाद भी किराए के 25% वृद्धि के साथ नया पट्टा निष्पादित किया जाएगा। यह पक्षकारों के बीच ऐसा मामला नहीं है कि ऐसा कोई करार पुनः दर्ज किया गया था। इस दस्तावेज की निचले न्यायालय द्वारा दो तरीकों से व्याख्या की गई है: सबसे पहले मकान मालिक याचीकर्ताओं ने प्रत्यर्थी को 1.7.1994 से 30.05.2005 तक निर्धारित अवधि से परे जारी रखा है, अपने आचरण द्वारा किरायेदारी जारी रखी है और इसलिए, किरायेदार प्रत्यर्थी स्वचालित रूप से धारा 116 के तहत लाभ का हकदार हो जाएगा और दूसरा, उक्त करार के खंड-6 के दृष्टिगत, यह स्थायी किरायेदारी के समान था न कि निश्चित अवधि की किरायेदारी।

14. यहां ऐसे दस्तावेज की स्थिति को परिभाषित करने के लिए संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों को संदर्भित करना महत्वपूर्ण और वास्तव में प्रासंगिक हो जाता है। स्वीकार रूप से निचले न्यायालय ने यह मानते हुए आगे बढ़ाया है कि दस्तावेजों ने पट्टा अधिकार बनाया। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107

एक वर्ष से अधिक की अवधि के उद्देश्यों के लिए अचल संपत्ति के संबंध में पट्टों को बनाने के तरीके और विधि के लिए प्रावधान करती है। संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 निम्नानुसार है:

"107. पट्टा कैसे बनाया जाए - वर्ष से वर्ष, या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए, या वार्षिक किराया आरक्षित करने वाली अचल संपत्ति का पट्टा केवल पंजीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है।

अचल संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो पंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के साथ मौखिक करार द्वारा किए जा सकते हैं।

जहां अचल संपत्ति का पट्टा पंजीकृत लिखत द्वारा किया जाता है, ऐसी लिखत या, जहां एक से अधिक लिखतें हैं, प्रत्येक ऐसी लिखत पट्टादाता और पट्टाग्रहीता दोनों द्वारा निष्पादित की जाएगी;

परंतु राज्य सरकार समय-समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, निर्देश दे सकती है कि वर्ष से वर्ष, या एक वर्ष से अधिक की किसी भी अवधि के लिए, या वार्षिक किराया आरक्षित करने के अलावा अचल संपत्ति के पट्टे, या ऐसे पट्टों की कोई श्रेणी, अपंजीकृत लिखत द्वारा या कब्जे की सुपुर्दगी के बिना मौखिक करार द्वारा की जा सकती है।"

(बल दिया गया)

15. उपर्युक्त उद्धृत प्रावधान के केवल पठन से, विधायिका का आशय बिल्कुल स्पष्ट प्रतीत होता है कि अचल संपत्ति के संबंध में बारह महीने की अवधि से परे पट्टे पंजीकृत लिखतों के माध्यम से होने चाहिए। इस प्रकार, प्रत्यर्थी द्वारा दायर पट्टे के दस्तावेज के प्रासंगिक खंड को देखते हुए जिसने 01.07.1994 से मई, 2005 तक चलने वाली अवधि के लिए निर्धारित किया था, यह संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के अनुसार आवश्यक रूप से पंजीकृत होना आवश्यक था। चूंकि यह दस्तावेज स्वीकार रूप से पंजीकृत नहीं है, यह बारह महीने की अवधि से परे पट्टा अधिकार नहीं बना सकता है। यह भी पक्षकारों के बीच विवादित नहीं है कि यह पट्टा न तो कृषि उद्देश्यों के लिए था, न ही विनिर्माण उद्देश्यों के लिए और इसलिए, ऐसी परिस्थितियों में, पट्टे को महीने से महीने के आधार पर एक के रूप में लिया जाना था और संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के तहत निहित प्रावधानों के अनुसार तीस दिन की अग्रिम नोटिस जारी करके निर्धारणीय था जैसा कि विधि में तब विद्यमान था। धारा 106 नीचे पुनरुत्पादित है:

"106. लिखित करार या स्थानीय प्रथा की अनुपस्थिति में कुछ पट्टों की अवधि।---

(1) विपरीत करार या स्थानीय कानून या प्रथा की अनुपस्थिति में, कृषि या विनिर्माण उद्देश्यों के लिए अचल संपत्ति का पट्टा वर्ष से वर्ष का पट्टा माना जाएगा, जो पट्टादाता या पट्टाग्रहीता की ओर से, छह महीने की नोटिस द्वारा समाप्त किया जा सकता है; और किसी अन्य उद्देश्य के लिए अचल संपत्ति का पट्टा महीने से महीने का पट्टा माना जाएगा, जो पट्टादाता या पट्टाग्रहीता की ओर से, पंद्रह दिन की नोटिस द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

(2) समय के लिए प्रवर्तित किसी अन्य कानून में निहित किसी बात के होते हुए भी, उप-धारा (1) में उल्लिखित अवधि नोटिस की प्राप्ति की तारीख से शुरू होगी।

(3) उप-धारा (1) के तहत एक नोटिस केवल इसलिए अमान्य नहीं मानी जाएगी क्योंकि उसमें उल्लिखित अवधि उस उप-धारा के तहत निर्दिष्ट अवधि से कम है, जहां उस उप-धारा में उल्लिखित अवधि की समाप्ति के बाद वाद या कार्यवाही दायर की जाती है।

(4) उप-धारा (1) के तहत प्रत्येक नोटिस लिखित में होनी चाहिए, इसे देने वाले व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से हस्ताक्षरित होनी चाहिए, और या तो उस पक्षकार को डाक द्वारा भेजी जानी चाहिए जो इससे बाध्य होना है या व्यक्तिगत रूप से ऐसे पक्षकार को, या उसके परिवार के किसी सदस्य या उसके निवास पर नौकरों को सौंपी या वितरित की जानी चाहिए, या (यदि ऐसी पेशकश या वितरण व्यावहारिक नहीं है) संपत्ति के एक स्पष्ट भाग पर चिपकाई जानी चाहिए।"

16. मैं पहले ही पार्क स्ट्रीट प्रॉपर्टीज प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) और राजीव कुमार (उपरोक्त) के मामलों में निर्णयों के प्रासंगिक पैराग्राफ उद्धृत कर चुका हूं जिसमें न्यायालयों ने माना है कि ऐसे पट्टा अधिकार केवल धारा 17 पंजीकरण अधिनियम की धारा 49 के साथ पठित के दृष्टिगत केवल पंजीकृत लिखत के माध्यम से अचल संपत्ति के संबंध में बनाए जा सकते हैं और इसलिए, संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के तहत निर्धारित अवधि से परे अचल संपत्ति के संबंध में अपंजीकृत लिखत/दस्तावेज से कोई पट्टा अधिकार प्रवाहित नहीं हो सकते हैं।

17. मामले के ऊपर उक्त दृष्टिकोण में, इसलिए, निचले न्यायालय द्वारा लौटाई गई निष्कर्ष कि स्थायी पट्टा था, दस्तावेज की गलत पठन के साथ-साथ ऊपर चर्चा किए गए कानून के प्रासंगिक प्रावधानों की व्याख्या पर बिल्कुल प्रतीत होता है और इसलिए, ये निष्कर्ष कानून में पोषणीय नहीं हैं।

18. चूंकि मैं पहले ही ऊपर माना है कि विचाराधीन पट्टा संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के दृष्टिगत महीने से महीने के आधार पर होता और ऊपर चर्चा और उद्धृत निर्णय, मैं प्रत्यर्थी को धारा 116 का लाभ देने में न्यायालय के लिए कोई औचित्य नहीं देखता हूं। पंजीकरण अधिनियम की धारा 90 (1) (d) के तहत निहित प्रावधान जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है स्पष्ट रूप से केवल ऐसे प्रमाण पत्र और दस्तावेज निर्धारित करते हैं जो सरकार द्वारा सरकारी भूमि के संबंध में अधिकार बनाने या ऐसी भूमियों के संबंध में किसी अन्य अधिकार के लिए जारी किए जाते हैं और इन प्रावधानों की व्याख्या निजी भूमि के संबंध में निजी पक्षकार और सरकार के बीच दर्ज किए गए किसी भी करार के अर्थ के लिए नहीं की जा सकती है। अचल संपत्ति के संबंध में कोई भी अधिकार जो धारा 90(1) (d) के तहत परिकल्पित किसी असाइनमेंट या अधिकार को नहीं बना रहा है या प्रदान नहीं कर रहा है, पंजीकरण अधिनियम के तहत अनिवार्य रूप से पंजीकृत होना आवश्यक है, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रावधानों के साथ पंजीकरण अधिनियम के प्रावधानों को पढ़ना।

19. उपरोक्त के दृष्टिगत, इसलिए, मकान मालिक वादी द्वारा 30.07.2009 को पट्टा निर्धारित करते हुए जारी नोटिस एक वैध नोटिस थी और चूंकि नोटिस विवादित नहीं है और अधिनियम संख्या 13 of 1972 लागू नहीं

था, वाद डिक्री किए जाने योग्य है। इसलिए, एस.सी.सी. वाद संख्या 16 of 2009 में विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है और वाद डिक्री किए जाने योग्य है। इसलिए, एस.सी.सी. वाद संख्या 16 of 2009 को इसके द्वारा डिक्री किया जाता है जिसमें प्रत्यर्थियों को विचाराधीन परिसर खाली करने का निर्देश दिया जाता है।

20. इस स्तर पर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता बताते हैं कि राज्य मृत परिसर से अपना कार्यालय चला रहा है, इसलिए परिसर खाली करने के लिए कुछ उचित समय दिया जा सकता है।

21. तदनुसार, प्रत्यर्थियों को 31.12.2025 को या उससे पहले विचाराधीन परिसर खाली करने का निर्देश दिया जाता है। चूंकि यह 4150 वर्ग फुट की भूमि है जो प्रत्यर्थी के कब्जे में है और भवन की भूतल पहले से ही रु. 100 प्रति वर्ग फुट की दर से पट्टे पर दी गई है, प्रत्यर्थियों को रु. 50,000/- प्रति माह का भुगतान करने का निर्देश दिया जाता है और यदि वे 31.12.2025 को विचाराधीन परिसर खाली करने में विफल रहते हैं, तो वे रु. 50 प्रति वर्ग फुट की दर से क्षति का भुगतान करेंगे जब तक वे विचाराधीन परिसर खाली नहीं कर देते।

22. तदनुसार डिक्री तैयार की जाए।

23. यह स्पष्ट किया जाता है कि यह निर्णय पक्षकारों के विचाराधीन परिसर के संबंध में नया करार मांगने के मार्ग में नहीं आएगा, यदि वे ऐसा चाहते हैं।

(2025) 1 ILRA 338

अपीलीय अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांकित: इलाहाबाद 29.11.2024

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी

आपराधिक अपील संख्या 1490 सन् 1984

कुंवर पाल एवं अन्य

...अपीलार्थीगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

...प्रत्यर्थी

अपीलार्थियों के अधिवक्ता: आर.एस. यादव, अरविन्द यादव, बी.एन. नारायण, जे.एस. तोमर, के.डी. तिवारी, कृष्ण दत्त तिवारी, नूर मोहम्मद

प्रत्यर्थियों के अधिवक्ता: ए.जी.ए.

क. आपराधिक विधि -- हत्या - अभियोजन अपीलार्थियों के विरुद्ध विरचित आरोपों को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ था। सा.अ.-2 की उपस्थिति भी बहुत संदिग्ध थी। अपीलार्थी संख्या 1 की पहले ही मृत्यु हो चुकी है; अपीलार्थी संख्या 2 को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी संख्या 2 जमानत पर है; उसे आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिभुओं को मुक्त किया जाए। (पैरा 17)

प्रस्तुत मामले में, यह बहुत अस्वाभाविक था कि जब अभियुक्त व्यक्ति, अर्थात्, रामफल और कुंवर पाल, मृतका के पति की तलाश में आए थे, तो उन्होंने वास्तव में मृतका को मार दिया और पति को जाने दिया, जो बिना किसी आग्नेयास्त्र आदि के दृश्य पर प्रकट हुआ था और स्वीकार्य रूप से शोर मचाया था। अभियोजन के मामले के अनुसार, कुंवर पाल देसी पिस्तौल ले जा रहा था और रामफल एकनली बन्दूक ले जा रहा था, लेकिन उन्होंने पति को बख्श दिया, जिसकी वे तलाश में आए थे।

एक अन्य विरोधाभास, जो मामले की जड़ तक जाता है, यह है कि पति कह रहा था कि दूसरी पुत्री उसके साथ नहीं सो रही थी, जबकि सा.अ.-2 ने कहा था कि, वास्तव में, वह सा.अ.-1 और सा.अ.-2 के बीच की खाट पर सो रही थी। सामान्यतः, ऐसे विरोधाभास को नजरअंदाज किया जा सकता था, लेकिन जब सा.अ.-1 एक अधिवक्ता था और सोने के लिए उसके पास अपना एक कमरा था, तो वह अपने कमरे में एक पूर्ण विकसित पुत्री की उपस्थिति को नजरअंदाज नहीं कर सकता था।

माननीय न्यायालय आश्वस्त था कि सा.अ.-2 और सा.अ.-3 गढ़े गए साक्षी थे, क्योंकि उन्होंने पूरे समय कहा कि वे घटना की तिथि को उपस्थित थे, लेकिन बहुत गैर-जिम्मेदारी से, जब उन्हें पुलिस के समक्ष अपने कथन देने की आवश्यकता थी, तो वे गायब हो गए थे। यह दर्शाता है कि सा.अ.-2 और सा.अ.-3 वास्तव में घटना स्थल पर नहीं थे बल्कि बाद में चित्र में लाए गए थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राथमिकी में सा.अ.-2 का नाम इसलिए उल्लिखित नहीं किया गया था क्योंकि सा.अ.-1 को विश्वास नहीं था कि वह दृश्य पर प्रकट होगा और अपना कथन देगा। यह एक तथ्य का विषय था कि सा.अ.-2 वास्तव में केवल दिनांक 10.12.1982 को प्रकट हुआ और सा.अ.-3 दिनांक 26.12.1982 को प्रकट हुआ। वास्तव में, दूसरा साक्षी जिस पर सा.अ.-1 को विश्वास था, अर्थात्, जगत वीर आदि, साक्षी बॉक्स में बिल्कुल प्रकट नहीं हुआ। (पैरा 16)

अपील स्वीकृत। (ई-4)

प्रस्तुत आपराधिक अपील दिनांक 23.04.1984 को चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद द्वारा पारित निर्णय और आदेश को आक्षेपित करती है, जिसमें अपीलार्थी संख्या 1 - कुंवर पाल को धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन

आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट किया गया तथा अपीलार्थी संख्या 2 रामफल को धारा 302 सहपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट किया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा एवं
माननीय न्यायमूर्ति सैयद कमर हसन रिजवी द्वारा प्रदत्त)

1. प्रस्तुत आपराधिक अपील दिनांक 23.04.1984 को चतुर्थ अपर सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद द्वारा सत्र विचारण संख्या 260 सन् 1983 में पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध संस्थित की गई है, जिसमें अपीलार्थी संख्या 1 - कुंवर पाल को धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट किया गया तथा अपीलार्थी संख्या 2 रामफल को धारा 302 सहपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन आजीवन कारावास के लिए दोषसिद्ध और दण्डादिष्ट किया गया।

2. जब दिनांक 28/29 नवम्बर, 1982 की रात्रि में लगभग 1:30 बजे एक घटना घटित हुई थी, तो प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 29.11.1982 को प्रातः 8:00 बजे दर्ज की गई थी। प्रथम सूचनाकर्ता, बदाम सिंह ने पुलिस को अपनी पत्नी की हत्या के बारे में सूचित किया और उसने आरोप लगाया था कि यह हत्या कुंवर पाल द्वारा की गई थी। जो कारण दिया गया था वह यह था कि प्रथम सूचनाकर्ता जो एक अधिवक्ता था, नन्हू बनाम किशनिया के वाद में उपस्थित हुआ था और उक्त वाद की कार्यवाही के दौरान, किशनिया ने एक विक्रय विलेख के माध्यम से सम्पत्ति को कुंवर पाल पुत्र खेम करन को बेच दिया था। कुंवर पाल ने भूमि का कब्जा बलपूर्वक लेने का प्रयास किया और जब प्रथम सूचनाकर्ता ने बलपूर्वक कब्जा लिए जाने का विरोध किया था, तो कुंवर पाल ने प्रथम सूचनाकर्ता से बात की थी और उसे गंभीर परिणामों की धमकी दी थी।

3. प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह कथन किया गया है कि दिनांक 28/29.11.1982 की रात्रि में जबकि प्रथम सूचनाकर्ता दोमंजिला मकान की पहली मंजिल पर छोके लाल पुत्र मुन्ना के साथ सो रहा था, दुष्कर्मी अर्थात् कुंवर पाल और रामफल लगभग 1:30 बजे मकान के मुख्य दरवाजे को उसके कब्जों से हटाकर घर में प्रविष्ट हुए थे और रामवती, प्रथम सूचनाकर्ता की पत्नी पर गोली चलाई थी, जो भूतल पर पिंकी नामक अपनी लगभग तीन माह की आयु की पुत्री के साथ सो रही थी। दस्तक की आवाज से वह और छोके लाल जो उसके पास सो रहा था, जाग गए। जब वे सीढ़ियों से नीचे आए, तो उन्होंने देखा कि कुंवर पाल के पास एक देसी पिस्तौल थी और रामफल के हाथों में एक एकनली बन्दूक थी। प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही यह कथन किया गया था कि रामफल जिसके पास एकनली बन्दूक थी, ने पत्नी से पूछा कि उसका पति कहाँ है (वकील कहाँ है) और जब पत्नी ने सूचना देने से इन्कार कर दिया, तो रामफल ने कहा कि यदि उसने सूचना नहीं दी, तो उसे गोली मार दी जाएगी। उस समय, कुंवर पाल जिसके पास देसी पिस्तौल थी, ने प्रथम सूचनाकर्ता की पत्नी पर गोली चलाई। उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में ही कहा है कि सम्पूर्ण घटना उसके और छोके लाल द्वारा बरामदे में जलती हुई लालटेन के प्रकाश में देखी गई थी। जब उन्होंने शोर मचाया, तो कुंवर पाल और रामफल घटना स्थल से

भाग गए और पड़ोस से मशालें लेकर लोग घटना स्थल पर आए। यह कथन किया गया है कि हर नारायण और जगतवीर पड़ोसी जो आए थे, उन्होंने दोनों अभियुक्त व्यक्तियों को घर से भागते हुए देखा था।

4. प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज होने पर विवेचना आरम्भ हुई थी। पुलिस ने घटना स्थल से साक्ष्य एकत्र किया था जिसमें वह खाट भी शामिल थी जिस पर रक्त था। साथ ही, वह मशाल जिससे छोके लाल और हर नारायण ने घटना को देखा था, अभिरक्षा में ली गई थी और ये सभी बरामदगी ज्ञापन प्रदर्श संख्या क-10, क-11 और क-21 के रूप में प्रदर्शित किए गए। तत्पश्चात् पंचायतनामा आयोजित किया गया जो दिनांक 29.11.1982 को प्रातः 10:00 बजे आरम्भ हुआ और उसी दिन अपराहन 1:00 बजे समाप्त हुआ। पंचायतनामा के पश्चात् शव परीक्षा की गई जो दिनांक 13.11.1982 को लगभग अपराहन 3:30 बजे आयोजित की गई थी। तत्पश्चात्, विवेचना के समापन पर, पुलिस ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और जब रिपोर्ट का संज्ञान लिया गया, तो अपर सत्र न्यायाधीश, मुरादाबाद के न्यायालय ने दिनांक 08.08.1983 को कुंवर पाल के विरुद्ध धारा 302 भा.दं.सं. के अधीन और रामफल के विरुद्ध धारा 302 सहपठित धारा 34 भा.दं.सं. के अधीन आरोप विरचित किए। जब अभियुक्त व्यक्तियों ने आरोपों से इन्कार किया तो विचारण आरम्भ हुआ।

5. अभियोजन के मामले को सिद्ध करने के लिए, इसने छः साक्षियों को प्रस्तुत किया। बदाम सिंह जो मृतका का पति और प्रथम सूचनाकर्ता भी है, को पी.डब्ल्यू.-1 के रूप में परीक्षित किया गया। उसने कहा है कि उसने दोनों अभियुक्त व्यक्तियों अर्थात् कुंवर पाल और रामफल को पहचाना जो न्यायालय में उपस्थित थे। उसने प्रथम सूचना रिपोर्ट में कथित मामले को दोहराया है कि घटना के समय न्यायालयों में नन्हू बनाम किशनिया के विवरण से ग्राम नधौस का एक मामला चल रहा था और यह एक भूमि से सम्बन्धित था। उसने आगे कहा है कि अभियुक्त कुंवर पाल ने किशनिया से अपने पक्ष में एक फर्जी विक्रय विलेख निष्पादित करवाया था और विवादित भूमि पर अपना नाम उत्परिवर्तित करवाना चाहता था और अवैध कब्जा लेने का भी प्रयास किया था। उसने उसके पश्चात् स्वयं को वाद में पक्षकार भी बनवाया था। इतना ही नहीं, कुंवर पाल ने प्रथम सूचनाकर्ता से, जो एक अधिवक्ता था, अनुरोध किया था कि वह मामले में पैरवी न करे और इस तथ्य के कारण कि प्रथम सूचनाकर्ता ने मामले में पैरवी करना जारी रखा, अभियुक्त ने अपराध किया। उस तिथि को, यह कथन किया गया है कि प्रथम सूचनाकर्ता छोके लाल के साथ मकान की पहली मंजिल पर स्थित कमरे में सो रहा था। यह आगे कथन किया गया है कि भूतल में, पत्नी रामवती अपने लगभग तीन माह की आयु के छोटे बच्चे के साथ सो रही थी और जब मुख्य दरवाजे को दुष्कर्मियों द्वारा कब्जों से हटा दिया गया, तो प्रथम सूचनाकर्ता और छोके लाल अपने कमरे से बाहर आए जहाँ वे सो रहे थे। जब वे नीचे आए तो उन्होंने पाया कि दो व्यक्ति कुंवर पाल और रामफल जो क्रमशः एक देसी पिस्तौल और एकनली बन्दूक लिए हुए थे, प्रथम सूचनाकर्ता की पत्नी की खाट के पास खड़े थे। यह आगे कथन किया गया है कि पी.डब्ल्यू.-1 की सुनवाई में कुंवर पाल ने उसकी पत्नी से पूछा कि अधिवक्ता (पति) कहाँ है। पी.डब्ल्यू.-1 ने तत्पश्चात् कहा है कि जब उसकी पत्नी ने सूचना देने से इन्कार कर दिया, तो रामफल ने कहा कि यदि उसने सूचना नहीं दी, तो उसे गोली मार दी जाएगी। उस समय, कुंवर पाल ने अपनी देसी पिस्तौल से उस पर गोली चलाई। घटना के घटित हो जाने पर, पी.डब्ल्यू.-1

और छोके लाल ने शोर मचाया और जगतवीर तथा हर नारायण अपनी मशालों के साथ घटना स्थल पर आए। प्रथम सूचनाकर्ता ने कहा था कि उसकी पत्नी उस पर गोली चलाए जाने के कारण तत्पश्चात् मर गई थी।

6. प्रतिपरीक्षण में, पी.डब्ल्यू.-1 मुख्य परीक्षण के दौरान किए गए अपने कथनों के साथ सुसंगत रहा और उसने कहा था कि घटना से डेढ़ वर्ष पूर्व अधिवक्ता के रूप में प्रैक्टिस करने से पहले वह एक शिक्षक था और रामफल अभी भी एक शिक्षक था। उसने कहा है कि किशनिया का मामला वर्ष 1982 से चल रहा था। उसने यह भी कहा था कि पुलिस ने गलत रूप से अभिलिखित किया था कि पी.डब्ल्यू.-1 किशनिया की ओर से पैरवी कर रहा था। उसने कहा था कि अपनी पुत्री के सम्बन्ध में, जो उसकी तीन माह की सबसे छोटी पुत्री थी, उसने विवेचना के दौरान पुलिस को कुछ भी सूचित नहीं किया था। अपनी प्रतिपरीक्षा के पैराग्राफ 13 में, पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने पड़ोस में विभिन्न घरों के स्थानों का वर्णन किया और यह भी वर्णन किया कि जगतवीर और हर नारायण के घर उसके पड़ोस में कहाँ स्थित थे। आगे, उसने यह भी कहा कि कुंवर पाल उसके पड़ोस में रहता था। उसने पैराग्राफ 15 में आगे कहा है कि कुंवर पाल उसके घर काफी बार आता रहता था। गाँव के अन्य लोग भी उनसे मिलने आते रहते थे। उसने कहा है कि जिस बिस्तर पर उसकी पत्नी और बच्चा सो रहे थे, उस पर कोई रक्त नहीं था। प्रथम सूचना रिपोर्ट में, उसने लालटेन के सम्बन्ध में कोई स्थिति नहीं दी थी। उसने आगे कहा कि उसने पुलिस को लालटेन की स्थिति के बारे में सूचित किया था लेकिन यदि साइट प्लान में लालटेन की स्थिति नहीं दी गई थी, तो पी.डब्ल्यू.-1 को नहीं पता था कि क्यों। उसने यह भी कहा था कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दिनांक 29.11.1982 की सुबह दर्ज की गई थी और वह रात को पुलिस के पास नहीं गया क्योंकि वह तब जाने से डर रहा था। दिनांक 06.12.1983 को, प्रतिपरीक्षण में, उसने कहा था कि पुलिस ने उल्लेख किया था कि प्रथम सूचनाकर्ता ने कहा था कि रामफल ने उसकी पत्नी से पूछा था कि पी.डब्ल्यू.-1 कहाँ है, और उसने सूचना देने से इन्कार कर दिया था। उसने कहा था कि पुलिस ने उसके कथन को गलत रूप से अभिलिखित किया था। उसने कहा था कि वास्तव में यह कुंवर पाल था जिसने उसकी पत्नी से पूछा था कि प्रथम सूचनाकर्ता कहाँ है। जब उससे पूछा गया कि यह तथ्य कि मुख्य दरवाजा उसके कब्जों से हटा दिया गया था, पुलिस रिपोर्ट में क्यों नहीं उल्लिखित था, तो उसने कहा कि उसने पुलिस को मुख्य दरवाजा दिखाया था और यह भी सूचित किया था कि इसे दुष्कर्मियों द्वारा हटा दिया गया था। यदि पुलिस ने उल्लेख नहीं किया, तो उसे नहीं पता था कि क्यों। उसने यह भी कहा है कि जो पुत्री उसकी पत्नी के पास सो रही थी, उस पर कोई रक्त नहीं था। उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि दूसरी पुत्री भी उसकी पत्नी के साथ सो रही थी और उसने कहा है कि गलत रूप से उसने कहा था कि घटना की तिथि को पुत्री पहली मंजिल पर उसके साथ सो रही थी। उसने आगे कहा है कि छोके लाल उत्तरी ओर सो रहा था और तीसरी खाट खाली थी। उसने कहा है कि इस तथ्य के बावजूद कि वह गोली चलाए जाने के तुरंत बाद घटना स्थल पर पहुंच गया था, उसे कोई हानि नहीं पहुंचाई गई थी। उसने तत्पश्चात् कहा है कि कुछ पॉलिसी थी जो उसने जनरल फाइनैस एंड इन्वेस्टमेंट लिमिटेड कंपनी से प्राप्त की थी जहाँ उसकी पत्नी एक फील्ड ऑफिसर थी। उसने यह भी कहा है कि उस पॉलिसी से आने वाली राशि उसे नहीं दी गई थी क्योंकि कंपनी को संदेह था कि हत्या धन प्राप्त करने के लिए करवाई गई थी।

7. **पी.डब्ल्यू.-2**, छोके लाल, मामले में एक अन्य प्रत्यक्षदर्शी है। उसने भी घटना का वर्णन उसी प्रकार से किया है जिस प्रकार पी.डब्ल्यू.-1 ने वर्णन किया था। उसने कहा है कि वह प्रथम सूचनाकर्ता के दोमंजिला मकान की पहली मंजिल में सो रहा था। तथापि, उसने यह नहीं कहा है कि अभियुक्त व्यक्तियों को घर में प्रवेश करने की अनुमति देने के लिए घर से मुख्य दरवाजा हटा दिया गया था, बल्कि उसने कहा है कि जब दरवाजे के खुलने के कारण आवाज आई तो वह अपनी नींद से उठ गया था। उसने तत्पश्चात् कहा है कि पहली मंजिल के कमरे में, पी.डब्ल्यू.-1 सो रहा था और एक बच्चा भी वहाँ था। उसने तत्पश्चात् कहा है कि पी.डब्ल्यू.-1 और वह स्वयं दोनों ने उस आवाज को ट्रैक करना शुरू किया था जो भूतल से आई थी। उसने आगे कहा है कि जबकि कुंवर पाल के पास एक देसी पिस्तौल थी, रामफल के हाथ में एकनली बन्दूक थी। पी.डब्ल्यू.-2 ने यह भी कहा था कि उसने घटना को जलती हुई लालटेन के प्रकाश में देखा था। उसने कहा है कि उसने अभियुक्त व्यक्तियों को पहचाना। उसने तत्पश्चात् कहा है कि उसके गाँव में एक करन जाटव था जिसने उसके विरुद्ध एक मामला दर्ज करवाया था, और उस मामले में, क्या कुंवर पाल एक साक्षी था, उसे कोई जानकारी नहीं थी। उसने तत्पश्चात् कहा है कि जब पी.डब्ल्यू.-1 ने लगभग 13 व्यक्तियों के विरुद्ध एक अन्य मामला दर्ज करवाया था, तो वह उस मामले में एक साक्षी था। जब उससे पूछा गया कि क्या वह एक पेशेवर साक्षी था जो पैसे लेकर साक्ष्य देता था, तो उसने इससे इन्कार किया। उसने कहा है कि पी.डब्ल्यू.-1 घटना की तिथि से एक से दो दिन पूर्व गाँव आया था, और उस तिथि को वह उसके घर में सोने गया था। उस दिन से पहले वह कभी भी पी.डब्ल्यू.-1 के घर में नहीं सोया था। पी.डब्ल्यू.-1 के घर में सोने का कारण वह यह देता है कि उन्होंने सुबह गंगा में स्नान करने जाने की व्यवस्था की थी, और फिर उसने कहा है कि उसका घर केवल 100-150 कदम दूर था। उसने तत्पश्चात् कहा है कि उसने पुलिस को बताया था कि यह कुंवर पाल था जिसने मृतका से पूछा था कि उसका पति कहाँ है। वह कहता है कि यदि पुलिस ने अभिलिखित किया था कि रामपाल ने मृतका के पति के बारे में प्रश्न पूछा था, तो उसे इसका कारण नहीं पता था। उसने तत्पश्चात् बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि जिस कमरे में वह पी.डब्ल्यू.-1 के साथ सो रहा था, उसमें तीन बिस्तर थे। एक बिस्तर पर पी.डब्ल्यू.-1 की पुत्री सो रही थी, जबकि पी.डब्ल्यू.-1 और वह स्वयं अन्य बिस्तरों पर सो रहे थे। पुत्री उन दो खाटों के बीच में सो रही थी जहाँ पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 सो रहे थे। उसने, पैराग्राफ 9 में, कहा है कि उसने जिस खाट पर मृतका सो रही थी, उस पर कोई रक्त नहीं देखा। उसने कहा है कि उन्होंने केवल गोली चलाए जाने के बाद ही शोर मचाया था। उसने, तत्पश्चात्, दं.प्र.सं. की धारा 161 के अधीन पुलिस द्वारा अभिलिखित कथन से इन्कार किया है कि पी.डब्ल्यू.-2, पी.डब्ल्यू.-1 के घर में था क्योंकि पी.डब्ल्यू.-1 ने उसे अपनी सुरक्षा और संरक्षा के लिए बुलाया था।

8. **पी.डब्ल्यू.-3**, हर नारायण है, और वह एक साक्षी है जिसने दोनों अभियुक्तों को पी.डब्ल्यू.-1 के घर से भागते हुए देखा था। अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसने कहा है कि पुलिस ने घटना के बीस दिन बाद कथन अभिलिखित किया था। घटना घटित होने के पश्चात् वह उपलब्ध नहीं था, और मृतका रामवती के दाह संस्कार आदि होने के बाद वह अपने ससुराल चला गया था।

9. **पी.डब्ल्यू.-4** वह चिकित्सक है जिसने बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रवेश घाव एक निकट-सीमा का घाव था और चोट के चारों ओर कालापन और टैटूइंग थी।

10. **पी.डब्ल्यू.-5** विवेचना अधिकारी, मनवीर सिंह है, जिन्होंने अपनी प्रतिपरीक्षा में, बहुत स्पष्ट रूप से कहा है कि घटना घटित होने के बाद छोखे लाल, हर नारायण और जगतवीर गाँव में नहीं मिल रहे थे। रामफल को दिनांक 2.12.1982 को गिरफ्तार किया गया था, और कुंवर पाल को दं.प्र.सं. की धारा 82 और 83 के अधीन कार्यवाही आरम्भ होने के बाद गिरफ्तार किया गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि छोखे लाल का कथन दिनांक 10.12.1982 को अभिलिखित किया गया था, जो घटना के 12 दिनों बाद था, और जगतवीर का कथन दिनांक 26.12.1982 को 28 दिनों की अवधि के पश्चात् अभिलिखित किया गया था। यद्यपि उन्होंने लालटेन देखी थी, अनजाने में उन्होंने साइट प्लान में इसके बारे में उल्लेख नहीं किया था। अपनी प्रतिपरीक्षा में, उन्होंने कहा था कि उन्होंने साइट प्लान में साक्षियों के घरों को दिखाया था। उन्होंने कहा है कि उन्हें प्रथम सूचनाकर्ता का दूसरा बच्चा घर में नहीं मिला था। उन्होंने तत्पश्चात् कहा है कि उन्हें परिवादी/प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा बताया गया था कि वह वास्तव में कुंवर पाल की ओर से पैरवी कर रहा था। उन्होंने यह भी कहा है कि दरवाजा, जो उसके कब्जों से हटा दिया गया था, उनके द्वारा अभिरक्षा में नहीं लिया गया था। उन्होंने कहा है कि यह कहना गलत है कि इसे कब्जों से हटाया नहीं गया था और इसलिए उन्होंने पुलिस रिपोर्ट में दरवाजे के बारे में उल्लेख नहीं किया था। उन्होंने आगे कहा है कि उन्हें पी.डब्ल्यू.-1 द्वारा बताया गया था कि वास्तव में यह रामफल था, जिसने यह पूछना शुरू किया था कि उसका पति कहाँ है। उन्होंने तत्पश्चात् कहा है कि छोखे ने उन्हें सूचित किया था कि वह पी.डब्ल्यू.-1 के साथ वहाँ था क्योंकि पी.डब्ल्यू.-1 ने कहा था कि कुंवर पाल से उसके जीवन को खतरा था।

11. **पी.डब्ल्यू.-6** डूंगर सिंह है, जिन्होंने मृत शरीर को सिला था और इसे शव परीक्षा के लिए ले गए थे।

12. तत्पश्चात्, दोनों अभियुक्तों ने दं.प्र.सं. की धारा 313 के अधीन अपने कथन अभिलिखित करवाए थे।

13. जब चतुर्थ अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश ने दिनांक 23.04.1984 को दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया था और उन्हें धारा 302 और धारा 302 सहपठित धारा 34 दं.प्र.सं. के अधीन दोषसिद्ध होने के कारण आजीवन कारावास के लिए निर्देशित किया था, तो प्रस्तुत आपराधिक अपील संस्थित की गई थी। अपील की लंबितता के दौरान, अपीलार्थी कुंवर पाल की मृत्यु हो गई थी, और तत्पश्चात् कुंवर पाल के सम्बन्ध में अपील को व्यपगत के रूप में खारिज कर दिया गया था।

14. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री नूर मोहम्मद ने, तर्क दिया था कि अपीलार्थी, रामफल, निर्दोष था, और उन्होंने निम्नलिखित प्रस्तुतियाँ की थीं:-

(i) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत मामला कि यह देखकर कि पी.डब्ल्यू.-1 कुंवर पाल के विरोधी की सहायता कर रहा था, अपीलार्थी उसकी पत्नी को मारने के लिए पी.डब्ल्यू.-1 के घर गए थे, बहुत विश्वसनीय नहीं प्रतीत होता है। अभियुक्त, जब उनका पी.डब्ल्यू.-1 के विरुद्ध कोई द्वेष है, तो वास्तव में उसे मार देते और जब पी.डब्ल्यू.-1 अपनी पत्नी के पास आया तो वे भाग नहीं जाते। वे प्रस्तुत करते हैं कि बिना किसी कारण के मृतका रामवती को मार दिया गया था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि, वास्तव में, कोई अन्य कारण था जिसके लिए रामवती को मारा गया था और जो अभियुक्त प्रथम सूचनाकर्ता के परिचित थे, उन्हें प्राथमिकी में नामित किया गया था और झूठा फंसाया गया था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पत्नी को मारना और पति को जाने देना, जो वहाँ एक लंगड़ी बत्तख की तरह खड़ा था, मानव स्वभाव के बिल्कुल विरुद्ध था, और इसलिए एकमात्र निष्कर्ष जो निकाला जा सकता था वह यह था कि अपीलार्थियों को प्रथम सूचनाकर्ता द्वारा झूठा फंसाया जा रहा था।

(ii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे न्यायालय का ध्यान पी.डब्ल्यू.-1 के कथन की ओर आकर्षित किया है, जिसमें उन्होंने कहा था कि वास्तव में, यह रामफल था जिसने उसकी पत्नी से यह बताने के लिए कहा था कि उसका पति कहाँ है, लेकिन बाद में अपनी प्रतिपरीक्षा में उन्होंने उल्लेख किया कि यह रामफल नहीं था जिसने ऐसा पूछा था बल्कि यह कुंवर पाल था जिसने यह प्रश्न पूछा था। उन्होंने न्यायालय का ध्यान प्रथम सूचना रिपोर्ट की ओर भी आकर्षित किया जिसमें बहुत स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था कि रामफल वह व्यक्ति था जिसने पूछा था कि मृतका का पति कहाँ है। वे प्रस्तुत करते हैं कि उपदेश की भूमिका, जो प्रथम सूचना रिपोर्ट में रामफल को दी गई थी, बाद के कथन में भी समाप्त कर दी गई थी जो पी.डब्ल्यू.-1 द्वारा दिया गया था जब वह कहता है कि रामफल ने, वास्तव में, मृतका के पति के बारे में पूछा भी नहीं था। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि पी.डब्ल्यू.-2 ने भी इतने शब्दों में उल्लेख किया था कि यह कुंवर पाल था जिसने पूछा था कि मृतका का पति कहाँ है और यह रामफल नहीं था जिसने पूछा था कि उसका पति कहाँ है। पेपर बुक के पृष्ठ 25 पर, पी.डब्ल्यू.-1 द्वारा उच्चारित निम्नलिखित शब्द महत्वपूर्ण हो जाते हैं:

“मैंने दरोगा जी को यह बयान नहीं दिया था कि “रामफल ने मेरी बीवी से पूछा कि वकील कहाँ है तो उसने बताने से इनकार कर दिया” अगर रामफल वाली बात लिखी हो तो मैं नहीं कह सकता कि कैसे लिखी है। कुंवर पाल मेरी बीवी से पूछ रहा था कि वकील कहाँ है यह बात मैंने रपट में भी लिखी और दरोगा जी को भी बताई थी।”

अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि चूंकि पी.डब्ल्यू.-1 वहाँ नहीं था और उसने हड़बड़ी में प्राथमिकी दर्ज करवाई थी, इसलिए जब वह न्यायालय में कथन दे रहा था तो कथन में सुधार किया जा रहा था।

(iii) अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि यदि पी.डब्ल्यू.-2 के कथन को देखा जाए, तो यह भी स्पष्ट हो जाता है कि, वास्तव में, पी.डब्ल्यू.-2 घटना स्थल पर नहीं था। उसने एक ऐसा कथन किया है जो पी.डब्ल्यू.-1 के कथन से बहुत भिन्न है। पी.डब्ल्यू.-1 ने अपने मुख्य कथन में और अपनी प्रतिपरीक्षा में कहा था कि

दूसरी पुत्री पहली मंजिल के कमरे में तीसरे बिस्तर पर नहीं सो रही थी जहाँ सूचनाकर्ता और पी.डब्ल्यू.-2 सो रहे थे। वास्तव में, उन्होंने कहा था कि तीसरा बिस्तर खाली पड़ा था, लेकिन पी.डब्ल्यू.-2 ने मुख्य परीक्षण में एक पूर्णतः भिन्न कथन दिया था और अपनी प्रतिपरीक्षा में भी ऐसा कहा था कि दूसरा बच्चा तीसरी खाट पर सो रहा था, जो प्रथम सूचनाकर्ता और पी.डब्ल्यू.-2 की खाट के बीच में थी। इसलिए वे कहते हैं कि सम्पूर्ण मामला गलत तथ्यों पर आधारित था कि पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 ने किसी और से सुना था और वे एक-दूसरे से बिल्कुल विरोधाभासी थे। अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 पी.डब्ल्यू.-1 के बहुत करीबी प्रतीत होते हैं। पी.डब्ल्यू.-2 ने कहा था कि वह उसी घर में सो रहा था जहाँ घटना घटित हुई थी, और पी.डब्ल्यू.-3 ने दिनांक 28/29.11.1982 की रात्रि को घटना घटित होने के बाद रात में घटना स्थल तक पहुँचने की परेशानी उठाई थी। यदि ऐसी बात थी, तो उन्हें पुलिस को कथन देने के लिए वहीं रुकना चाहिए था, लेकिन वास्तव में दोनों साक्षी पुलिस के समक्ष अपने कथन देने के लिए क्रमशः दिनांक 10.12.1982 और 26.12.1982 को पुलिस के समक्ष उपस्थित हुए थे। पी.डब्ल्यू.-2 ने पुलिस के समक्ष अपना कथन दिया था कि वह प्रथम सूचनाकर्ता के घर में सो रहा था क्योंकि उत्तरार्द्ध को कुंवरपाल से अपने जीवन को कुछ खतरा था, लेकिन जो कथन उसने न्यायालय के समक्ष किया था, उसमें उसने पलटा खाया था और कहा था कि वास्तव में वह पी.डब्ल्यू.-1 के घर में था क्योंकि उन्होंने सुबह गंगा में स्नान करने जाने की व्यवस्था की थी।

IV. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि घटना स्थल पर प्रकाश के किसी स्रोत का भी उल्लेख नहीं किया गया था। वे प्रस्तुत करते हैं कि लालटेन, जैसा कि पी.डब्ल्यू.-1 द्वारा उल्लेख किया गया था, पुलिस द्वारा साइट प्लान में नहीं दिखाई गई थी। पी.डब्ल्यू.-2, इस तथ्य के बावजूद कि उसने कहा था कि वह वहाँ था, अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि वास्तव में पी.डब्ल्यू.-2 घटना स्थल पर बिल्कुल नहीं था। उसने उल्लेख किया है कि खाट पर कोई रक्त नहीं था, लेकिन वास्तव में पुलिस रिपोर्ट के अनुसार रक्त विद्यमान था, और इसे पुलिस द्वारा बरामद भी किया गया था, और इसका एक जापन भी तैयार किया गया था।

15. विद्वान ए.जी.ए. श्री राहुल अस्थाना ने, तथापि, दिनांक 23.04.1984 के निर्णय और आदेश का समर्थन किया है और अपील का विरोध किया है। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि घटना को दो प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा देखा गया था, और दोनों प्रत्यक्षदर्शियों पर अविश्वास करने का बहुत कम कारण था। उन्होंने यह भी कहा है कि चोट आदि, जैसा कि प्राथमिकी में रिपोर्ट किया गया था और अभियोजन साक्षी संख्या 1 और 2 द्वारा न्यायालय में कहा गया था, शव परीक्षा रिपोर्ट में चोटों के साथ मेल खाता था। वे आगे कहते हैं कि यदि कुछ मामूली विरोधाभास थे, तो उन्हें नजरअंदाज किया जाना था।

16. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता, श्री नूर मोहम्मद जिन्हें श्री इरशाद मोहम्मद द्वारा सहायता प्रदान की गई और विद्वान ए.जी.ए. श्री राहुल अस्थाना को सुनने के पश्चात्, हम पाते हैं कि प्रथम सूचनाकर्ता ने प्रथम सूचना रिपोर्ट में कहा था कि अपीलार्थी संख्या 2 रामफल ने वास्तव में मृतका से यह प्रश्न किया था कि उसका

पति कहाँ है लेकिन बाद में पेपर बुक के पृष्ठ 25 पर उन्होंने पलटा खाया था और कहा था कि वास्तव में यह कुंवर पाल था जिसने यह कथन पूछा था। संभवतः पी.डब्ल्यू.-1 ऐसा इसलिए कर रहा था क्योंकि पी.डब्ल्यू.-2 ने पुलिस के समक्ष अपने कथन में कहा था कि यह कुंवर पाल था जिसने मृतका से यह प्रश्न रखा था। हम पाते हैं कि पी.डब्ल्यू.-2 छोखे भी अपने कथन के साथ दृढ़ रहा था कि यह कुंवर पाल था जिसने मृतका से यह प्रश्न रखा था। इसलिए हम पाते हैं कि, वास्तव में, रामफल, यद्यपि उपस्थित दिखाया गया है, वास्तव में वहाँ नहीं था और इसलिए उसकी उपदेश की भूमिका समाप्त हो जाती है। कुंवर पाल, जो अब मृत है, मृतका को मारने गया हो सकता है। हम अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता के तर्क से भी आश्वस्त हैं कि यह बहुत अस्वाभाविक था कि जब अभियुक्त व्यक्ति, अर्थात्, रामफल और कुंवर पाल, मृतका के पति की तलाश में आए थे, तो उन्होंने वास्तव में मृतका को मार दिया और पति को जाने दिया, जो बिना किसी आग्नेयास्त्र आदि के दृश्य पर प्रकट हुआ था और स्वीकार्य रूप से शोर मचाया था। प्रस्तुत मामले में, हम पाते हैं कि अभियोजन के मामले के अनुसार, कुंवर पाल देसी पिस्तौल ले जा रहा था और रामफल एकनली बन्दूक ले जा रहा था, लेकिन उन्होंने पति को बख्श दिया, जिसकी वे तलाश में आए थे। एक अन्य विरोधाभास, जो मामले की जड़ तक जाता है, यह है कि पति कह रहा था कि दूसरी पुत्री उसके साथ नहीं सो रही थी, जबकि पी.डब्ल्यू.-2 ने कहा था कि, वास्तव में, वह पी.डब्ल्यू.-1 और पी.डब्ल्यू.-2 के बीच की खाट पर सो रही थी। सामान्यतः, ऐसे विरोधाभास को नजरअंदाज किया जा सकता था, लेकिन जब पी.डब्ल्यू.-1 एक अधिवक्ता था और सोने के लिए उसके पास अपना एक कमरा था, तो वह अपने कमरे में एक पूर्ण विकसित पुत्री की उपस्थिति को नजरअंदाज नहीं कर सकता था। हम यह भी आश्वस्त हैं कि पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 गढ़े गए साक्षी थे, क्योंकि उन्होंने पूरे समय कहा कि वे घटना की तिथि को उपस्थित थे, लेकिन बहुत गैर-जिम्मेदारी से, जब उन्हें पुलिस के समक्ष अपने कथन देने की आवश्यकता थी, तो वे गायब हो गए थे। यह दर्शाता है कि पी.डब्ल्यू.-2 और पी.डब्ल्यू.-3 वास्तव में घटना स्थल पर नहीं थे बल्कि बाद में चित्र में लाए गए थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राथमिकी में पी.डब्ल्यू.-2 का नाम इसलिए उल्लिखित नहीं किया गया था क्योंकि पी.डब्ल्यू.-1 को विश्वास नहीं था कि वह दृश्य पर प्रकट होगा और अपना कथन देगा। यह एक तथ्य का विषय था कि पी.डब्ल्यू.-2 वास्तव में केवल दिनांक 10.12.1982 को प्रकट हुआ और पी.डब्ल्यू.-3 दिनांक 26.12.1982 को प्रकट हुआ। वास्तव में, दूसरा साक्षी जिस पर पी.डब्ल्यू.-1 को विश्वास था, अर्थात्, जगत वीर आदि, साक्षी बॉक्स में बिल्कुल प्रकट नहीं हुआ।

17. ऐसी परिस्थितियों में, हमारे द्वारा दिए गए सभी कारणों से हम इस विचार के हैं कि अभियोजन अपीलार्थियों के विरुद्ध विरचित आरोपों को सिद्ध करने में सक्षम नहीं हुआ था। साथ ही, हम इस विचार के हैं कि पी.डब्ल्यू.-2 की उपस्थिति भी बहुत संदिग्ध थी। अपीलार्थी संख्या 1 की पहले ही मृत्यु हो चुकी है; अपीलार्थी संख्या 2 को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से दोषमुक्त किया जाता है। अपीलार्थी संख्या 2 जमानत पर है; उसे आत्मसमर्पण करने की आवश्यकता नहीं है। प्रतिभुओं को उन्मोचित किया जाए।

18. अपील स्वीकृत की जाती है; दिनांक 23.04.1984 का निर्णय और आदेश अपास्त किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 346

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव

आपराधिक अपील संख्या 10939/2024

विशु

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता : अतुल कुमार

प्रतिवादियों के अधिवक्ता : जी.ए.

क. आपराधिक कानून - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 14-ए (2) - जमानत देने से इनकार करने के आदेश के खिलाफ उच्च न्यायालय में अपील - डिफॉल्ट जमानत का अधिकार - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 167 (2) (ए) (आई) - कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति को नब्बे दिनों से अधिक की कुल अवधि के लिए हिरासत में रखने के लिए अधिकृत नहीं करेगा, जहां जांच मृत्यु, आजीवन कारावास या दस साल से कम अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित है; और, नब्बे दिनों की उक्त अवधि की समाप्ति पर, अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर रिहा कर दिया जाएगा यदि वह जमानत देने के लिए तैयार है और देता है।

निर्णय: यदि 61वें दिन या 91वें दिन कोई अभियुक्त आरोप-पत्र दाखिल न होने की स्थिति में जमानत पर रिहा होने के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय के पास अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

हालाँकि, एक बार निर्धारित अवधि के भीतर आरोप-पत्र दाखिल हो जाने पर, अभियुक्त का वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है और अभियुक्त गुण-दोष के आधार पर नियमित जमानत के लिए प्रार्थना करने का हकदार होगा।

एक बार आरोप-पत्र दाखिल हो जाने पर, धारा 167(2)(ए) सीआरपीसी के प्रावधान के तहत वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है और केवल इसलिए पुनर्जीवित नहीं होता है क्योंकि आगे जांच का आदेश लंबित है या संबंधित अदालत द्वारा आरोप-पत्र पर संज्ञान नहीं लिया गया है।

धारा 167 सीआरपीसी के तहत वैधानिक आवश्यकता केवल निर्धारित समय के भीतर आरोप-पत्र दाखिल करना है। धारा 167(2) सीआरपीसी के प्रावधान (क) के तहत निर्धारित अवधि के भीतर संज्ञान लेने की कोई अतिरिक्त आवश्यकता नहीं है, अन्यथा अभियुक्त निर्धारित अवधि के भीतर आरोप-पत्र दाखिल करने के बाद भी डिफॉल्ट जमानत का हकदार होगा। (अनुच्छेद 15, 16, 17)

ख. दंड विधि - अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 14-ए(2) - डिफॉल्ट जमानत - इस मामले में, अभियुक्त/अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 3(2)(v) के अंतर्गत न्यायिक हिरासत में रखा गया था। पहली रिमांड 22.05.2024 को दी गई थी। आरोप-पत्र प्रस्तुत होने पर, न्यायालय ने आगे की जांच के लिए आदेश पारित किया।

दिनांक 03.08.2024 के आदेश द्वारा। धारा 167(2)(a)(i) Cr.P.C. के अंतर्गत वैधानिक जमानत के लिए दिनांक 08.10.2024 को संबंधित न्यायालय में आवेदन प्रस्तुत किया गया था, लेकिन दिनांक 08.10.2024 के आदेश द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया गया। निर्णय: एक बार निर्धारित अवधि के भीतर आरोप-पत्र दाखिल हो जाने पर, अभियुक्त का वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है। अपील खारिज। (अनुच्छेद 18) खारिज। (E-5)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रितु छाबड़िया बनाम यू.ओ.आई., रिट याचिका (आपराधिक) संख्या 60/2023, दिनांक 26.04.2023
2. दिनेश डालमिया बनाम सीबीआई, (2007) 8 एससीसी 770
3. सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य, (2013) 3 एससीसी 77
4. गंभीर धोखाधड़ी जांच कार्यालय बनाम राहुल मोदी एवं अन्य, (2023) 15 एससीसी 311; 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 153 (आपराधिक अपील संख्या 185-186/2022, 7 फरवरी, 2022 को निर्णीत)

(माननीय न्यायमूर्ति नलिन कुमार श्रीवास्तव, द्वारा प्रदत्त)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता, तथा राज्य के लिए विद्वान ए.ए.जी.ए. को सुना और अभिलेख पर विद्यमान अंतर्वस्तु का अध्ययन किया।

2. यह अपराधिक अपील अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार की रोकथाम) अधिनियम की धारा 14-A (2) के तहत संस्थित है, जिसे आगे एससी/एसटी अधिनियम के रूप में संदर्भित किया जाता है, जो अपीलकर्ता-विशु द्वारा विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश/विशेष न्यायाधीश, एससी/एसटी अधिनियम, मुजफ्फरनगर द्वारा दिनांक 08.10.2024 को पारित आदेश के विरुद्ध प्राथमिकी दायर की गई है, जिसमें अभियुक्त/अपीलकर्ता द्वारा धारा 167 (2) (a) (i) सी.आर.पी.सी. के तहत दायर आवेदन को निरस्त कर दिया गया।

3. इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत विषय यह है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत एक प्रकरण में, जो आजीवन कारावास या मृत्यु दंड के साथ जुर्माना प्रदान करती है, अभियुक्त की पहली रिमांड 22.05.2024 को दी गई थी, जिसे समय-समय पर बढ़ाया गया था, और सांविधिक अवधि 90 दिन के भीतर आरोप पत्र दाखिल न करने के परिणामस्वरूप अभियुक्त/अपीलकर्ता के पक्ष में वैधानिक जमानत का अधिकार उत्पन्न हुआ।

4. अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अभियुक्त/अपीलकर्ता को प्रकरण अपराध संख्या 117 of 2024 में न्यायिक हिरासत में रखा जा रहा है, जो भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत है, पुलिस स्टेशन तितावी, जिला मुजफ्फरनगर। उसकी पहली पूछताछ धारा 167 सी.आर.पी.सी. के तहत न्यायालय द्वारा 22.05.2024 को दी गई थी और तब से वह जेल में हिरासत में है। इस प्रकरण के विवेचना अधिकारी ने 90 दिनों की समाप्ति के बाद भी आरोप पत्र दाखिल नहीं किया और धारा 167 (2) सी.आर.पी.सी. के प्रावधानों के आधार पर अपीलकर्ता के पक्ष में वैधानिक जमानत का अधिकार उत्पन्न हुआ। इस आधार पर दिनांक 08.10.2024 का धारा 167(2)(a)(i) सी.आर.पी.सी. के तहत वैधानिक जमानत के लिए आवेदन संबंधित न्यायालय के समक्ष दायर किया गया, परंतु दिनांक 08.10.2024 को पारित आदेश द्वारा इसे निरस्त कर दिया गया और यह प्रेक्षण किया गया कि चूंकि आरोप पत्र दाखिल करने के बाद न्यायालय ने दिनांक 03.08.2024 को प्रकरण में आगे विवेचना के लिए आदेश पारित किया था और अभियुक्त/अपीलकर्ता की सामान्य जमानत याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थी, इसलिए उसकी वैधानिक जमानत के लिए आवेदन को निरस्त किया जाना पोषणीय है। इन तथ्यों के आधार पर यह जोरदार तर्क दिया जाता है कि आक्षेपित आदेश अवैध है और पोषणीय नहीं है और इसे मनमाने ढंग से पारित किया गया है। अभियुक्त/अपीलकर्ता धारा 167(2) सी.आर.पी.सी. के प्रावधान के अंतर्गत वैधानिक जमानत के लिए हकदार है।

5. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. ने वैधानिक/डिफॉल्ट जमानत के लिए प्रार्थना का विरोध किया है और यह तर्क दिया गया है कि विवेचना अधिकारी द्वारा इस प्रकरण में आरोप पत्र दिनांक 03.08.2024 को दाखिल किया गया था, अर्थात् सांविधिक अवधि समाप्त होने से पहले। संबंधित न्यायालय ने पूरे प्रकरण डायरी का परीक्षण किया और अपना न्यायिक विवेक लागू करते हुए, कुछ निर्देशों के साथ प्रकरण को आगे विवेचना के लिए भेजा और आगे की विवेचना अब पूर्ण हो गई है। अभियुक्त/अपीलकर्ता की पहली पूछताछ 22.05.2024

को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत दी गई थी और चूंकि आरोप पत्र 03.08.2024 को दाखिल किया गया था, जो एक अपराध के लिए निर्धारित अवधि के भीतर अच्छी तरह से था जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से कम न होने वाली अवधि के लिए कारावास के दंड से युक्त है, जैसा कि सी.आर.पी.सी. की धारा 167 (2) (a) (i) के तहत प्रदान किया गया है, इसलिए वैधानिक जमानत के लिए आवेदन को न्यायालय द्वारा सही तरीके से निरस्त किया गया।

6. यह आगे प्रस्तुत किया गया है कि राज्य के अधिवक्ता द्वारा चूंकि अभियुक्त/अपीलकर्ता की पहली पूछताछ 22.05.2024 को दी गई थी और आरोप पत्र 03.08.2024 को दाखिल किया गया था, सी.आर.पी.सी. की धारा 167(2) के प्रकाश में अभियुक्त/अपीलकर्ता के पक्ष में वैधानिक जमानत का कोई अधिकार उत्पन्न नहीं हुआ।

7. तत्काल अपील के निस्तारण के लिए सी.आर.पी.सी. की धारा 167(2) के तहत विद्यमान प्रावधानों का अध्ययन आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं:

"धारा 167 (2)- वह मजिस्ट्रेट जिसे एक अभियुक्त व्यक्ति इस धारा के तहत भेजा गया है, चाहे उसे प्रकरण का विचारण करने का क्षेत्राधिकार हो या नहीं, समय-समय पर अभियुक्त की हिरासत में रहने को अधिकृत कर सकता है, जैसा कि ऐसा मजिस्ट्रेट उचित समझे, कुल मिलाकर पंद्रह दिन से अधिक की अवधि के लिए नहीं; और यदि उसे प्रकरण का विचारण करने या प्रतिबद्ध करने का क्षेत्राधिकार नहीं है और वह अधिक हिरासत को अनावश्यक मानता है, तो वह अभियुक्त को उस क्षेत्राधिकार रखने वाले मजिस्ट्रेट को भेज सकता है।

बशर्ते कि—

[(ए) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति की पुलिस की हिरासत के अलावा अन्य प्रकार की हिरासत में पंद्रह दिन की अवधि से परे हिरासत को अधिकृत कर सकता है, यदि वह संतुष्ट है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार विद्यमान हैं, परंतु कोई भी मजिस्ट्रेट इस अनुच्छेद के तहत अभियुक्त व्यक्ति की हिरासत को कुल मिलाकर अधिकृत नहीं करेगा।

(i) नब्बे दिन, जहां विवेचना एक ऐसे अपराध से संबंधित है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से कम न होने वाली अवधि के लिए कारावास के दंड से युक्त है;

(ii) साठ दिन, जहां विवेचना किसी अन्य अपराध से संबंधित है, और नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर, जैसा भी मामला हो, अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर रिहा किया जाएगा यदि वह तैयार है और जमानत प्रदान करता है, और इस उप-धारा के तहत जमानत पर रिहा किया गया प्रत्येक व्यक्ति उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए अध्याय XXXIII के प्रावधानों के तहत जमानत पर रिहा किया गया माना जाएगा;]

[(बी) कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के तहत अभियुक्त की पुलिस हिरासत में हिरासत को अधिकृत नहीं करेगा जब तक कि अभियुक्त को पहली बार व्यक्तिगत रूप से और बाद में हर बार उसके समक्ष प्रस्तुत न किया

जाए जब तक अभियुक्त पुलिस हिरासत में रहे, परंतु मजिस्ट्रेट न्यायिक हिरासत में आगे की हिरासत को बढ़ा सकता है, अभियुक्त को व्यक्तिगत रूप से या इलेक्ट्रॉनिक वीडियो लिंकेज के माध्यम से प्रस्तुत करने पर;] (सी) द्वितीय श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस संबंध में विशेष रूप से अधिकृत नहीं है, पुलिस हिरासत में हिरासत को अधिकृत नहीं करेगा।"....."

8. अपीलकर्ता के अधिवक्ता ने *रितु छब्बारिया बनाम भारत संघ, रिट याचिका (अपराधिक) क्रमांक 60 of 2023* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया है, जिसका फैसला 26 अप्रैल, 2023 को हुआ था।

9. *रितु छब्बारिया (उपरोक्त)* में माननीय सर्वोच्च न्यायालय को इस मामले में विचाराधीन विषय से निपटने का अवसर मिला। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने समाज में बड़े पैमाने पर व्यक्तियों की नागरिक स्वतंत्रता की सुरक्षा पर बल दिया और यह निर्धारित किया कि धारा 167 (2) सी.आर.पी.सी. के तहत वैधानिक जमानत की राहत भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 से सीधे प्रवाहित होने वाला एक मौलिक अधिकार है। यह आगे प्रेक्षण किया गया कि धारा 167 के तहत सांविधिक अवधि से पूरे पूछताछ की प्रदायी से गंभीर दुरुपयोग हो सकता है, क्योंकि इस तरीके से एक गिरफ्तार व्यक्ति को अनिश्चित काल के लिए हिरासत में रखा जा सकता है जबकि विवेचना आराम से चल सकती है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे प्रेक्षण किया कि यह इस प्रकार स्वयंसिद्ध है कि पहली विवेचना को पूर्ण किया जाना है और तभी निर्धारित अवधि के भीतर एक आरोप पत्र या शिकायत दायर की जा सकती है और ऐसा करने में विफलता धारा 167(2) सी.आर.पी.सी. के तहत डिफॉल्ट जमानत का वैधानिक अधिकार प्रेरित करेगी। भारत संघ बनाम थामीशरसी और अन्य (1995) 4 एससीसी 190 के प्रकरण में, जो नारकोटिक ड्रग्स और साइकोट्रोपिक पदार्थ अधिनियम, 1985 के तहत एक प्रकरण था, यह पाया जाता है कि विवेचना पूर्ण नहीं थी और आरोप पत्र निर्धारित अवधि के भीतर दाखिल नहीं किया गया था, डिफॉल्ट जमानत के अस्वीकार को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन माना गया था और यह आगे निर्धारित किया गया था कि जमानत पर अनुदान के सम्बन्धित दोनों सीमाएं भी लागू नहीं होंगी।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के *रितु छब्बारिया (उपरोक्त)* के उक्त अधिनिर्णय का एक अध्ययन प्रकट करता है कि उस प्रकरण में विषय वर्तमान प्रकरण से काफी भिन्न था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त रिट में इस विषय पर कानून को दोहराया कि यदि आरोप पत्र निर्धारित अवधि के भीतर दाखिल किया गया है तो वैधानिक जमानत का मूल्यवान अधिकार लुप्त हो जाता है। एक ही समय में यह भी नोट किया गया कि प्रारंभिक रिपोर्ट दाखिल करने की प्रथा अब वास्तविकता में विवेचना को पूर्ण किए बिना आरोप पत्र दाखिल करने का रूप ले चुकी है, केवल डिफॉल्ट जमानत के अधिकार को तोड़ने के लिए और परिणामस्वरूप वास्तव में डिफॉल्ट जमानत के संबंध में प्रावधानों को पेश करने के उद्देश्य को नकारता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष उपरोक्त वर्णित प्रकरण में कुछ पूरक आरोप पत्र विवेचना को पूर्ण किए बिना दाखिल किए गए थे और परिणामस्वरूप अभियुक्त की पूछताछ को जारी रखा गया था और उसे डिफॉल्ट जमानत पर रिहा नहीं

किया गया था। यह तथ्य भी ध्यान में लाया गया था कि विवेचना अभी भी लंबित थी जैसा कि पूरक आरोप पत्र में उल्लेख किया गया था। ऐसी घटनाओं की इसी पृष्ठभूमि में रिट याचिका को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किया गया था।

11. परंतु वर्तमान प्रकरण में स्थिति अलग है और इसके पीछे का सरल कारण यह है कि स्वीकृत रूप से इस प्रकरण में आरोप पत्र सांविधिक अवधि के भीतर दाखिल किया गया था और यह न तो प्रारंभिक और न ही पूरक आरोप पत्र था। दिनांक 12.07.2024 का आरोप पत्र भारतीय दंड संहिता की धारा 306 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3 (2) (v) के तहत दिनांक 03.08.2024 को न्यायालय के समक्ष विवेचना को निष्कर्ष के बाद दाखिल किया गया था और आरोप पत्र में ही उल्लेख किए अनुसार भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के तहत कोई अपराध पाया गया नहीं। अभिलेख के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि विद्वान न्यायालय ने पूरे प्रकरण डायरी का परीक्षण किए बाद, उसी पर संज्ञान लेने के बिना दिनांक 03.08.2024 को प्रकरण में विवेचना अधिकारी की ओर से कुछ कमियों और चूक को ध्यान में रखते हुए आगे विवेचना के लिए प्रकरण को नियत किया और बाद में आगे की विवेचना आरोप पत्र के साथ समाप्त हुई। अभिलेख के अध्ययन से यह प्रकट है कि हालांकि न्यायालय ने विवेचना अधिकारी की ओर से कुछ चूक और लापरवाही पाई और उस कारण से आगे विवेचना के लिए आदेश पारित किया गया, परंतु आरोप पत्र में ही यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया कि यह प्रारंभिक या पूरक आरोप पत्र था और कोई विवेचना आरोप पत्र की प्रस्तुति के बाद भी लंबित थी। इस दृष्टिकोण में यह विवेचना का अंतिम परिणाम था जो अब पूर्ण हो गया था।

12. जैसा कि पहले नोट किया गया था, सी.आर.पी.सी. की धारा 167 के तहत अभियुक्त की पहली पूछताछ न्यायालय द्वारा 22.05.2024 को दी गई थी और तब से अभियुक्त जेल में हिरासत में रहा है और न्यायालय प्रकरण के विवेचना अधिकारी के अनुरोध पर अभियुक्त को आगे की पूछताछ प्रदान करता रहा। चूंकि विषय भारतीय दंड संहिता की धारा 302 और एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(v) से संबंधित प्रकरण था, जिसमें आजीवन कारावास/मृत्यु दंड पारित किया जा सकता था, आरोप पत्र 22.05.2024 से 90 दिन के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए था। अभिलेख के एक स्पष्ट अध्ययन से प्रकट होता है कि आरोप पत्र 03.08.2024 को भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के तहत दाखिल किया गया था, जो अधिकतम दस वर्ष की अवधि के लिए कारावास का दंड देती है, साथ ही एससी/एसटी अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत जो आजीवन कारावास और जुर्माना से दंडनीय है, जिसका अर्थ है कि यह निर्धारित अवधि 90 दिन से बहुत पहले प्रस्तुत किया गया था।

13. विरोधी पक्षों द्वारा प्रस्तुत की गई विशेष रूप से दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में अधिविकास/विवेचना से, दो कानूनी प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा परीक्षा की जानी है। पहला, क्या आरोप पत्र को न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत न किया गया माना जाएगा यदि उसी पर संज्ञान न लिया गया हो, और दूसरा, आरोप पत्र प्राप्त करने के बाद न्यायालय के प्रकरण में आगे विवेचना के आदेश का तत्काल प्रकरण के संबंध में क्या प्रभाव होगा।

14. उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर दिनेश दालमिया बनाम सीबीआई (2007) 8 सुप्रीम कोर्ट केसेस 770 में पाया जाता है, जो निम्नलिखित है:

"39. सांविधिक योजना धारा 173 की उप-धारा (2) के तहत अंतिम रूप दाखिल करने की ओर जाने वाली विवेचना और उसकी उप-धारा (8) के तहत विचारधीन आगे की विवेचना के संबंध में कोई निष्कर्ष तक नहीं पहुंचाती है।

जबकि केवल तब जब आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया है और विवेचना को लंबित रखा गया है, तब धारा 167 की उप-धारा (2) के तहत संलग्न बशर्ता के लाभ उपलब्ध होंगे। हालांकि, एक बार आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया है, तो उक्त अधिकार समाप्त हो जाता है। ऐसा अधिकार केवल इसलिए पुनः जीवित नहीं होता है क्योंकि आगे की विवेचना धारा 173 की उप-धारा (8) के अर्थ के भीतर लंबित रहती है।"

15. इसके अलावा, सुरेश कुमार भीकमचंद जैन बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (2013) 3 एससीसी 77 में दिए गए एक पहले के निर्णय का संदर्भ देते हुए, गंभीर धोखाधड़ी अनुसंधान कार्यालय बनाम राहुल मोदी और अन्य (2023) 15 एससीसी 311, 2022 एससीसी ऑनलाइन एससी 153 (अपराधिक अपील क्रमांक 185-186 सन 2022, दिनांक 7 फरवरी, 2022 को निर्णीत) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्पष्ट रूप से यह निर्धारित किया गया है, जैसा कि नीचे निकाला गया है:

"9. विषय इस न्यायालय के भीकमचंद जैन (उपरोक्त) के अधिनिर्णय द्वारा वर्ग किया जाता है, जैसा कि अपीलकर्ता द्वारा विवाद किया गया है। भीकमचंद जैन (उपरोक्त) में दिए गए अधिनिर्णय की सूक्ष्मता से परीक्षा करना आवश्यक है। उक्त प्रकरण में याचिकाकर्ता को 11.03.2012 को जलगांव शहर में झुगियों के विकास के लिए निर्धारित राशि के गबन के आरोप पर गिरफ्तार किया गया था। उक्त प्रकरण में याचिकाकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 120-बी, 409, 411, 406, 408, 465, 466, 468, 471, 177 और 109 में धारा 34 के साथ पढ़ी गई धाराओं के तहत और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(1)(सी), 13(1)(डी) और 13(2) के तहत अपराधों के लिए अभियुक्त किया गया था। उक्त प्रकरण में याचिकाकर्ता का विवाद यह था कि उसे अनुमति के अभाव में संज्ञान न लिए जाने के कारण सांविधिक अवधि 90 दिन के भीतर हिरासत में नहीं रखा जा सकता था। अभियुक्त की पहली विवेचना अवधि के दौरान हिरासत से संबंधित प्रावधानों की योजना और बाद में संज्ञान लिए जाने के बाद, विधायिका का इरादा कुछ अपराधों की विवेचना को निर्धारित अवधि के भीतर पूर्ण करना था, इस न्यायालय के अनुसार भीकमचंद जैन (उपरोक्त) में। इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि यदि विवेचना प्राधिकारियों द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर पूर्ण नहीं की जाती है, तो अभियुक्त को जमानत की पेशकश करने पर जमानत दी जाने का अपरिवर्तनीय अधिकार प्राप्त होता है। इस न्यायालय का दृढ़ मत था कि यदि 61वें दिन या 91वें दिन, कोई अभियुक्त आरोप पत्र दाखिल न करने की डिफॉल्ट में जमानत के लिए आवेदन करता है, तो न्यायालय के पास अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। हालांकि, एक बार आरोप पत्र निर्धारित अवधि के भीतर दाखिल

कर दिया गया है, तो अभियुक्त का वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है और अभियुक्त आरोप पत्र दाखिल करने की डिफॉल्ट में नहीं बल्कि गुणों पर आधार पर सामान्य जमानत के लिए प्रार्थना करने के लिए हकदार होगा। इस न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया कि आरोप पत्र दाखिल करना सी.आर.पी.सी. की धारा 167(2) के पूर्वानुमान (ए) के प्रावधानों का पर्याप्त अनुपालन है और संज्ञान लेना धारा 167 के लिए महत्वपूर्ण नहीं है।"

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह निर्धारित किया कि सी.आर.पी.सी. की धारा 167(2) के तहत डिफॉल्ट जमानत के विषय में निर्धारित अवधि के भीतर सी.आर.पी.सी. की धारा 167(2) के पूर्वानुमान (ए) के तहत संज्ञान लिए जाने की कोई अतिरिक्त आवश्यकता नहीं है, ऐसा न करने से अभियुक्त आरोप पत्र दाखिल किए जाने के बाद भी वैधानिक जमानत के लिए हकदार होगा।

17. उपरोक्त विवेचना का संकेत यह है कि एक बार आरोप पत्र दाखिल कर दिया गया है, तो सी.आर.पी.सी. की धारा 167(ए)(2) के पूर्वानुमान के तहत वैधानिक जमानत का अधिकार समाप्त हो जाता है और केवल इसलिए पुनः जीवित नहीं होता क्योंकि आगे की विवेचना का आदेश लंबित है या आरोप पत्र पर संबंधित न्यायालय द्वारा संज्ञान नहीं लिया गया है। **दिनेश दालमिया (उपरोक्त)** और **गंभीर धोखाधड़ी अनुसंधान कार्यालय (उपरोक्त)** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के अधिनिर्णय सीधे हाथ के प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू होते हैं। पुलिस द्वारा इस प्रकरण में आरोप पत्र विवेचना का अंतिम परिणाम के रूप में धारा 167(2) (ए) (I) सी.आर.पी.सी. के पूर्वानुमान के प्रयोजनों के लिए निर्धारित 90 दिन की अवधि के भीतर प्रस्तुत किया गया था। यदि न्यायालय ने इसी पर संज्ञान नहीं लिया या प्रकरण को आगे विवेचना के लिए नियत किया गया था, तो इससे निर्धारित समय अवधि के भीतर आरोप पत्र दाखिल करने का तथ्य झूठ नहीं हो जाता। यह न्यायिक विचार में प्रतिपादित किया गया है जैसा कि ऊपर वर्णित है कि किसी भी परिस्थिति में न्यायालय द्वारा आरोप पत्र पर संज्ञान लेना कभी आवश्यक नहीं है क्योंकि यह धारा 167 सी.आर.पी.सी. के तहत एक सांविधिक आवश्यकता नहीं है और वास्तव में यह केवल निर्धारित समय में आरोप पत्र दाखिल करना है और कुछ और नहीं।

ऊपर तैयार किए गए प्रश्नों का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

18. इस प्रकरण के दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में और ऊपर संदर्भित माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर निर्भरता कायम करते हुए, इस न्यायालय का विचार यह है कि **रितु छब्बारिया (उपरोक्त)** में अपीलकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया कानून अपीलकर्ता को कोई सहायता प्रदान नहीं करता है। अपील में कोई योग्यता नहीं है और इसे निरस्त किया जाना चाहिए। अतः अपील को तदनुसार **निरस्त** किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 352

पुनरीक्षण अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 13.12.2024

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर

आपराधिक पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 753/2024

शबाना बानो

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...विपक्षी पक्षकार

पुनरीक्षणकर्ता के लिए अधिवक्ता: मुजीब खान, नवीन कुमार

विपक्षी पक्षकारों के लिए अधिवक्ता: जी.ए., एम.ए. सिद्दीकी

आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धाराएं 125 एवं 397(1) - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 19 - भरण-पोषण की राशि में वृद्धि - विवाह के पश्चात्, प्रत्यर्थी-पति ने अतिरिक्त दहेज की मांग की - जब मांग पूरी नहीं हुई, तो उसके साथ क्रूरता, तलाक की धमकी इत्यादि का व्यवहार किया गया - तत्पश्चात् पुनरीक्षणकर्ता को मुफ्ती के निर्णय की प्रति सहित तलाकनामा परोसा गया। (पैरा 3, 5)

पुनरीक्षणकर्ता ने अपने पति एवं परिवार के अन्य सदस्यों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धाराओं एवं घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत शिकायत दायर की, तत्पश्चात् विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट ने समन जारी किया - आदेश को चुनौती दी गई, मामला स्थगित किया गया एवं निर्देशों सहित मध्यस्थता को संदर्भित किया गया, कार्यवाही लंबित है। (पैरा 6, 8, 9)

भरण-पोषण आवेदन अभियोजन के अभाव में खारिज - पुनरीक्षणकर्ता ने पुनर्स्थापन आवेदन दायर किया, खारिज - द्वितीय आवेदन दायर किया, पूर्व-निर्णीत (रेस ज्युडिकेटा) के आधार पर खारिज - उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई, निर्देशों सहित स्वीकृत। (पैरा 10)

पारिवारिक न्यायालय ने प्रत्यर्थी को नया नोटिस जारी किया, उपस्थित नहीं हुआ - आवेदन आंशिक रूप से एकपक्षीय स्वीकृत किया गया, रु. 20,000/- प्रति माह भरण-पोषण राशि प्रदान की गई, प्रत्यर्थी द्वारा पालन नहीं किया गया - निष्पादन आवेदन दायर किया गया - साथ ही, पुनरीक्षणकर्ता ने विभिन्न आधारों पर वर्तमान याचिका के माध्यम से आक्षेपित आदेश को चुनौती दी। (पैरा 11, 12)

निर्णीत, विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश ने दिनांक 30.6.2023 के पत्र के आधार पर प्रत्यर्थी की आय का निर्धारण किया, जो द्वितीय वेतन आयोग की कार्यान्वयन रिपोर्ट से संबंधित है, न कि पुनरीक्षणकर्ता के कथन एवं पति के वेतन के आधार पर - पारिवारिक न्यायाधीश यह निर्धारित करने में असमर्थ रहे कि प्रत्यर्थी जिला संवर्ग में प्रवेश स्तर के अधिकारी के पद पर है या चयन श्रेणी के अधिकारी, वास्तविक वेतन का आकलन नहीं किया गया, द्वितीय राष्ट्रीय न्यायिक वेतन आयोग के अनुसार उसका वेतन कम से कम रु. 1,44,840/- प्रति माह अवश्य होना चाहिए। (पैरा 24)

पुनरीक्षणकर्ता ने अंतरिम भरण-पोषण के लिए आवेदन दायर किया, मामला 47 बार सूचीबद्ध किया गया, आवेदन अनिर्णीत रहा जब तक कि अभियोजन न होने के कारण खारिज नहीं किया गया - पारिवारिक न्यायाधीश ने कारण अभिलिखित किए बिना बारंबार मामला स्थगित किया, लगभग 32 बार व्यक्तिगत छूट आवेदन को अवकाश आवेदन स्वीकृत न होने के आधार पर स्वीकार किया गया - आक्षेपित आदेश अपास्त किए गए। (पैरा 35)

पुनरीक्षण याचिका स्वीकृत। (E-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. राजनेश बनाम नेहा, (2021) 2 एससीसी 324
2. चतुर्भुज बनाम सीता बाई, (2008) 2 एससीसी 316
3. शबाना बानो बनाम इमरान खान, (2010) 1 एससीसी 66
4. पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी, (2023) एससीसी ऑनलाइन एएलएल 2684, (पैरा 51, 52, 65, 70, 71, 73)
5. राजेश बाबू सक्सेना बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य, (2024) एससीसी ऑनलाइन एएलएल 2260, (पैरा 19, 20, 21, 27)

(माननीय न्यायमूर्ति विनोद दिवाकर, द्वारा उद्धोषित)

1. पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के विद्वान अधिवक्ता, प्रत्यर्थी-पति के विद्वान अधिवक्ता, राज्य-प्रत्यर्थी के विद्वान ए.जी.ए. को सुना गया और सम्पूर्ण अभिलेख का अवलोकन किया गया।
2. यह वर्तमान पुनरीक्षण विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र द्वारा दाण्डिक विविध वाद संख्या 387/2019 में अधिनिर्णीत भरण-पोषण की राशि में वृद्धि की मांग करते हुए प्राथमिकृत किया गया है, जो पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा 17.8.2019 को दायर किया गया था।

3. संक्षेप में, संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी और प्रत्यर्थी-पति का विवाह 4.5.2002 को मुस्लिम रीति-रिवाजों के अनुसार सम्पन्न हुआ था। विवाह के समय, प्रत्यर्थी-पति जिला न्यायालय, सोनभद्र में सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में सेवारत थे। वर्तमान में, वह जिला इटा में विशेष न्यायाधीश (यू.पी. डकैती प्रभावित क्षेत्र) के पद पर कार्यरत हैं और पूर्व में 3.8.2019 से 4.7.2022 तक जौनपुर के पारिवारिक न्यायालय में अपर मुख्य न्यायाधीश के रूप में सेवा की है। पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी का कथन है कि उसके माता-पिता ने विवाह पर लगभग 30 लाख रुपये व्यय किए। इसके अतिरिक्त, सगाई समारोह के दौरान, एक इंडिका कार खरीदने के लिए 11 लाख रुपये प्रदान किए गए थे; हालांकि, प्रत्यर्थी-पति ने अपनी हाल की न्यायिक नियुक्ति के कारण कार को अपने नाम पर पंजीकृत करने से इनकार कर दिया। विवाह के शीघ्र बाद, प्रत्यर्थी-पति ने कथित रूप से पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के माता-पिता से 20 लाख रुपये का अतिरिक्त दहेज मांगा। जब यह मांग पूरी नहीं की गई, तो उसने कथित रूप से उसे क्रूरता के अधीन किया, जिसमें शारीरिक हमला, पिटाई, मौखिक दुर्व्यवहार और तलाक की धमकियां शामिल थीं।

4. पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने क्रूरता के सभी कृत्यों को सहन किया क्योंकि उसका पति एक न्यायाधीश था जो समाज में महत्वपूर्ण सम्मान रखता था। उसके सम्मान और प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए और इस आशा में कि वह अंततः बदल जाएगा, उसने प्रारंभ में कोई शिकायत या भरण-पोषण आवेदन दाखिल नहीं किया। उसने परिवार के सम्मान को बनाए रखने के लिए अपने सहयोगियों या उनकी पत्नियों को उसके आचरण का खुलासा नहीं करने का भी चुनाव किया। दम्पति के विवाह से चार बच्चे हैं; कु. राना राजक, कु. नाजिया राजक, कु. सुभाना और ईशा राजक, जो सभी जन्म से प्रत्यर्थी-पति के साथ रह रहे हैं।

5. 18.11.2013 को, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को वैवाहिक घर से बाहर निकाल दिया गया था और उसे 2.12.2013 दिनांकित तलाकनामा के साथ इस संबंध में मुफती के निर्णय की एक प्रति डाक द्वारा भेजी गई थी, जिसे पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा 30.12.2013 दिनांकित उत्तर के माध्यम से झूठ और झूठे दावों के रूप में वापस लौटाया और उत्तर दिया गया था।

6. सुलह और समझौते के लिए कोई विकल्प न छोड़ते हुए, 20.1.2014 को, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने अपने पति अली रजा और 12 अन्य के विरुद्ध दाण्डिक परिवाद संख्या 366/2014 धारा 498-ए, 504, 506, 323, 120-बी आई.पी.सी. धारा 3/4 घरेलू हिंसा अधिनियम के साथ पठित तथा धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन विविध वाद संख्या 21/2014 और विविध वाद संख्या 387/2021 क्रमशः 30.1.2014 और 17.8.2019 को प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश, सोनभद्र के समक्ष दायर किए।

7. परिवाद वाद संख्या 366/2014 में, विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सोनभद्र ने 11.9.2015 को अली रजा (प्रत्यर्थी-पति), अब्दुल रहीम, श्रीमती जहीदा बेगम, सोहराब अली, सबनम, जरीना, श्यारा, नेहा, तर्नुम, बब्लू, मोइन और श्रीमती रुकसाना को धारा 498-ए, 323, 504 और 506 आई.पी.सी., धारा 3/4 दहेज निषेध

अधिनियम के साथ पठित तथा हजरत अली को धारा 498-ए, 323, 354, 504 और 506 आई.पी.सी., धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम के साथ पठित के अधीन समन जारी किए।

8. 11.9.2015 दिनांकित आदेश को इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 के अधीन आवेदन संख्या 32214/2025 के माध्यम से चुनौती दी गई। 3.11.2015 को, इस न्यायालय ने मामले को मध्यस्थता और सुलह केंद्र को भेजा, आवेदकों को निर्देश दिया कि वे आदेश के तीन सप्ताह के भीतर इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के पास मांग प्रारूप के माध्यम से पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के नाम पर 15,000/- रुपये जमा करें। मध्यस्थता कार्यवाही तीन महीने के भीतर समाप्त की जानी थी। न्यायालय ने परिवाद वाद संख्या 366/2014 में कार्यवाही को अगली सूचीबद्धता की तिथि तक स्थगित भी किया।

9. तब से, मामला इस न्यायालय के समक्ष सात बार सूचीबद्ध किया गया है बिना किसी प्रभावी सुनवाई के, अंतिम सूचीबद्धता 27.11.2021 को हुई। परिणामस्वरूप, ट्रायल कोर्ट की कार्यवाही आगे नहीं बढ़ी। विशेष रूप से, इस न्यायालय के 27.4.2016 दिनांकित आदेश में स्पष्ट किया गया कि, "यह स्पष्ट किया जाता है कि स्थगन का अंतरिम आदेश यदि कोई हो, तो विस्तारित नहीं किया गया है।" हालांकि, ट्रायल कोर्ट कार्यवाही फिर से शुरू करने में विफल रहा, बार-बार 2016 से "उच्च न्यायालय से स्थगन" का दोहरावदार आदेश उद्धृत करते हुए। मामला तब से 65 बार सूचीबद्ध किया गया है बिना आगे की प्रगति के।

10. भरण-पोषण आवेदन संख्या 21/2014 को 1.3.2017 को अभियोजन के अभाव में खारिज कर दिया गया था। पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने एक पुनर्स्थापना आवेदन दायर किया, जिसे भी खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात, उसने धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन दूसरा आवेदन दायर किया, जो वाद संख्या 387/2019 के रूप में पंजीकृत किया गया। इस आवेदन को 20.5.2022 को विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र द्वारा न्यायनिर्णीत विषय के आधार पर खारिज कर दिया गया। 20.5.2022 दिनांकित खारिजी आदेश को पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा धारा 482 के अधीन आवेदन संख्या 2559/2023 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई, जिसे 4.4.2023 दिनांकित आदेश द्वारा अनुमति दी गई, विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश, सोनभद्र को निर्देश के साथ कि वह विविध आवेदन संख्या 387/2019 को गुणागुण के आधार पर पुनः निर्णीत करें, अधिमानतः आदेश की प्रमाणित प्रति के प्रस्तुतीकरण की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर।

11. विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र ने इस न्यायालय के 4.4.2023 दिनांकित आदेश का अनुपालन करते हुए, प्रत्यर्थी-पति को नया नोटिस जारी किया। हालांकि, प्रत्यर्थी-पति न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में विफल रहा। परिणामस्वरूप, दूसरे भरण-पोषण आवेदन को आंशिक रूप से एकपक्षीय 3.10.2023 दिनांकित आदेश द्वारा अनुमति दी गई, जिसमें न्यायालय के समक्ष आवेदन दाखिल करने की तिथि से प्रभावी 20,000/- रुपये प्रति माह का भरण-पोषण अनुदान दिया गया।

12. 3.10.2023 दिनांकित भरण-पोषण आदेश का प्रत्यर्थी-पति द्वारा अनुपालन नहीं किया गया है। परिणामस्वरूप, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने धारा 128 सी.आर.पी.सी. के अधीन निष्पादन आवेदन संख्या 552/2023 भरण-पोषण राशि की वसूली के लिए दायर किया। साथ ही, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने 3.10.2023 दिनांकित आक्षेपित आदेश को चुनौती दी है, इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान याचिका के माध्यम से भरण-पोषण राशि में वृद्धि की मांग करते हुए, *अन्य बातों के साथ-साथ* निम्नलिखित आधारों पर: (i) पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के प्रति अपने वैवाहिक दायित्वों को परिश्रमपूर्वक और सम्मानपूर्वक पूरा किया है। उनके विवाह से तीन बेटियां और एक बेटा उत्पन्न हुए। इसके बावजूद, प्रत्यर्थी-पति ने 18.11.2013 को पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को वैवाहिक घर से अन्यायपूर्ण रूप से बाहर निकाल दिया। इसके अलावा, उसकी सहमति या जानकारी के बिना, प्रत्यर्थी-पति ने एक अन्य महिला से विवाह किया जो उससे 22 वर्ष छोटी है, (ii) धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन 13.1.2014 को दायर पहला भरण-पोषण आवेदन विद्वान पारिवारिक न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी-पति के अनुचित प्रभाव के तहत त्रुटिपूर्ण रूप से व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया, जो एक सेवारत न्यायाधीश का पद धारण करता है, (iii) पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी का पुनर्स्थापना आवेदन भी विद्वान पारिवारिक न्यायालय द्वारा अनुचित रूप से गैर-अभियोजन के लिए खारिज कर दिया गया, पुनः प्रत्यर्थी-पति के अनुचित प्रभाव के तहत, (iv) दूसरे भरण-पोषण आवेदन को विद्वान पारिवारिक न्यायालय द्वारा न्यायनिर्णीत विषय के आधार पर खारिज कर दिया गया। हालांकि, इस आदेश को इस न्यायालय की समन्वय पीठ द्वारा अपास्त कर दिया गया, जिसने पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के मामले को गुणागुण के आधार पर निर्णीत करने का निर्देश दिया, (v) प्रत्यर्थी-पति की वास्तविक आय और व्यय पर उचित विचार किए बिना, धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन आवेदन को केवल आंशिक रूप से अनुमति दी गई, त्रुटिपूर्ण रूप से 20,000/- रुपये प्रति माह का भरण-पोषण अधिनिर्णीत किया गया, (vi) आक्षेपित एकपक्षीय आदेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **रजनीश बनाम नेहा [(2021) 2 एससीसी 324]; चतुर्भुज बनाम सीता बाई [(2008) 2 एससीसी 316]; और शबाना बानो बनाम इमरान खान [(2010) 1 एससीसी 666]** में निर्धारित विधि के उल्लंघन में पारित किया गया है, (vii) संपत्ति और देनदारियों का शपथपत्र न तो प्रत्यर्थी-पति द्वारा दायर किया गया और न ही विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय द्वारा मांगा गया, विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश को सर्वाधिक ज्ञात कारणों से। आवेदन में विशेष रूप से कहा गया कि प्रत्यर्थी-पति ने पूर्व में जौनपुर के पारिवारिक न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में काम किया था और जिला न्यायपालिका में सबसे वरिष्ठ न्यायाधीशों में से एक है। भरण-पोषण आवेदन का निर्णय करते समय न्यायालय द्वारा इस तथ्य को विचार में नहीं लिया गया, (viii) विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति की वास्तविक आय का खुलासा नहीं किया। परिणामस्वरूप, दूसरे न्यायिक वेतन आयोग के अनुसार प्रवेश स्तर पर जिला न्यायाधीश के न्यूनतम वेतन 1,44,840/- रुपये को भरण-पोषण अधिनिर्णय के लिए गलती से ध्यान में रखा गया। इसके अलावा, प्रत्यर्थी-पति की ओर से किसी उत्तर या संपत्ति और देनदारियों के शपथपत्र की अनुपस्थिति में, न्यायालय ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्यर्थी-पति के पास अपने वेतन के अलावा आय का कोई स्वतंत्र स्रोत नहीं है। पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के अधिवक्ता ने अपने तर्कों के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा **पारुल त्यागी बनाम गौरव त्यागी [(2023) एससीसी ऑनलाइन एलएल 2684]** और **राजेश बाबू सक्सेना बनाम उ.प्र. राज्य एवं अन्य [(2024) एससीसी ऑनलाइन एलएल 2260]** में पारित निर्णयों पर भरोसा किया है।

13. इस प्रकार मामला भरण-पोषण राशि में वृद्धि के लिए इस न्यायालय में पहुंचा है। स्पष्टता के लिए, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध दो भरण-पोषण आवेदन दायर किए हैं; (i) विविध वाद संख्या 21/2014, और (ii) विविध वाद संख्या 387/2019। इसलिए, इस न्यायालय ने दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में यह उचित समझा कि विविध वाद संख्या 21/2014 और विविध वाद संख्या 387/2019 से संबंधित पूर्ण न्यायिक अभिलेख, शबाना बानो बनाम अली रजा शीर्षक वाले, को पारित सभी आदेशों की टाइप की गई प्रति के साथ, और प्रक्रिया सेवक द्वारा प्रस्तुत सेवा रिपोर्टों की प्रतियों के साथ मंगवाया जाए, ताकि प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय द्वारा संचालित कार्यवाही का व्यापक दृष्टिकोण प्राप्त किया जा सके। प्रत्यर्थी-पति को भी इटा के विशेष न्यायाधीश (यू.पी. डकैती प्रभावित क्षेत्र) के उसके आधिकारिक पते पर, जिला न्यायाधीश, इटा के माध्यम से नोटिस जारी किया गया, उसे निर्देश देते हुए कि वह पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा उठाए गए तर्कों के उत्तर में प्रति-शपथपत्र दायर करे।

14. नोटिस के उत्तर में, प्रत्यर्थी-पति अपने अधिवक्ता, श्री एम.ए. सिद्दीकी के माध्यम से उपस्थित हुआ, और उसने वर्तमान पुनरीक्षण में उठाए गए तर्कों के उत्तर में और धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन भरण-पोषण आवेदन - विविध वाद संख्या 21 सन् 2014 और विविध वाद संख्या 387 सन् 2019 में विद्वान पारिवारिक न्यायालय के समक्ष संचालित कार्यवाही के उत्तर में प्रति-शपथपत्र दायर करने के लिए एक सप्ताह का समय मांगा।

15. इस प्रकार, 10.5.2024 दिनांकित आदेश के अनुपालन में, विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय ने दोनों मामलों का मूल अभिलेख प्रेषित किया। विविध वाद संख्या 21/2014 में अभिलेख की जांच करने पर, यह प्रकट हुआ कि (i) मामला सुनवाई के लिए बार-बार लगभग 64 बार सूचीबद्ध किया गया था, (ii) पहली सुनवाई 15.1.2014 को आयोजित की गई, जिसके दौरान प्रत्यर्थी-पति को नोटिस जारी किया गया, और मामले को आगे की कार्यवाही के लिए 22.2.2014 को सूचीबद्ध किया गया, (iii) 19.3.2014 दिनांकित आदेश इंगित करता है कि पिछली तिथि पर प्रत्यर्थी-पति पर सेवा प्रभावित की गई थी, और पर्याप्त अवसर प्रदान करने के बावजूद, कोई भी उसकी ओर से उपस्थित नहीं हुआ। इसलिए, मामला एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ा, और इसे साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के लिए 17.4.2014 को पुनः सूचीबद्ध किया गया, (iv) एकपक्षीय आदेश को वापस लिया गया, और मामले को मध्यस्थता और सुलह के लिए भेजा गया। इसी तरह के आदेश कई बार पारित किए गए - 35 बार से अधिक। 28.8.2015 दिनांकित आदेश में यह भी देखा गया कि प्रत्यर्थी-पति जानबूझकर अन्य कारणों से कार्यवाही में देरी कर रहा था, (v) 17.8.2015 को, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने अंतरिम भरण-पोषण के अधिनिर्णय के लिए एक आवेदन दायर किया, जो आवेदन संख्या 30-जी के रूप में पंजीकृत किया गया। इस आवेदन पर विपक्षी द्वारा आपत्ति की गई, और भरण-पोषण के लिए अंतरिम आवेदन के बाद मामला लगभग 47 बार सूचीबद्ध होने के बावजूद, इसका कभी निर्णय नहीं किया गया जब तक कि मामले को गैर-उपस्थिति के लिए व्यक्तिगत छूट आवेदन दायर किए, यह कहते हुए कि वह साक्ष्य की रिकॉर्डिंग के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सकता क्योंकि उसके अवकाश आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया था।

दुर्भाग्य से, इन सभी व्यक्तिगत छूट आवेदनों को अनुमति दी गई, (vii) इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के जिला सोनभद्र के माननीय प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा 03.07.2015 दिनांकित एक परिपत्र जारी किया गया था, जिसमें सी.जे.एम., ए.सी.जे.एम., और मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय को स्थगन से संबंधित प्रावधानों का सख्ती से पालन करने का निर्देश दिया गया था, (viii) कई अवसरों पर, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने भी व्यक्तिगत छूट आवेदन दायर किए, मुख्य रूप से बीमारी और अनुपलब्धता का हवाला देते हुए, (ix) ऐसा कोई अभिलेख नहीं है जो सुझाव देता हो कि प्रत्यर्थी-पति कभी व्यक्तिगत रूप से या तो वैवाहिक विवाद को सुलझाने के लिए मध्यस्थता और सुलह केंद्र में या न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ, (x) मामले को पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी की गैर-उपस्थिति के लिए 1.3.2017 को व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया, और (xi) पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा दायर पुनर्स्थापना आवेदन, संख्या 138/2017, को भी गैर-उपस्थिति के लिए 8.2.2018 को व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया।

16. दायिगक विविध वाद संख्या 387/2019 में अभिलेख की जांच करने पर, यह प्रकट होता है कि; (i) दूसरा भरण-पोषण आवेदन 17.8.2019 को नए कारण के आधार पर दायर किया गया था। तदनुसार, आवेदक के अधिवक्ता को सुनने के बाद विपक्षी को नोटिस जारी किया गया, और मामले को आपतियां दाखिल करने और मध्यस्थता के लिए 19.8.2019 को सूचीबद्ध किया गया, (ii) मामला लगभग 42 बार सूचीबद्ध किया गया, (iii) 12.3.2020 दिनांकित आदेश इंगित करता है कि विपक्षी को नोटिस 17.2.2020 को पंजीकृत डाक के माध्यम से परोसा गया था, (iv) 15.2.2021 को, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने एकपक्षीय कार्यवाही करने के लिए एक आवेदन दायर किया, क्योंकि पंजीकृत डाक रसीद (अर्थात्, ट्रैक खेप रिपोर्ट) ने जौनपुर के जिला न्यायालय में नोटिस की डिलीवरी की पुष्टि की, जहां उस समय प्रत्यर्थी-पति तैनात था। हालांकि, आवेदन को आश्चर्यजनक रूप से खारिज कर दिया गया, न्यायालय के इस निष्कर्ष के साथ कि डाक रसीद के माध्यम से सेवा को विधि के तहत वैध सेवा नहीं माना जा सकता, क्योंकि इसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 और सिविल प्रक्रिया संहिता (सी.पी.सी.) के संबंधित प्रावधानों के अनुसार द्वितीयक साक्ष्य माना जाता है, (v) 3.3.2023 दिनांकित आदेश द्वारा, न्यायालय एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ा, यह अवलोकन करते हुए कि पिछले दो वर्षों से, विपक्षी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है, और विपक्षी को आपतियां दाखिल करने के लिए पर्याप्त समय दिया गया है, (vi) 22.3.2022 दिनांकित आदेश इंगित करता है कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी/आवेदक ने पी.डब्ल्यू.-1, पी.डब्ल्यू.-2, और पी.डब्ल्यू.-3 के शपथपत्रों के माध्यम से गवाहों की सूची दायर की। एकपक्षीय साक्ष्य की रिकॉर्डिंग समाप्त हो गई, और मामले को 2.4.2022 को बहस के लिए सूचीबद्ध किया गया, (vii) प्रत्यर्थी-पति के लिए सेवा अभिलेख की डाउनलोड की गई प्रति को प्रलेख संख्या 37बी/2 के रूप में अंकित किया गया है, (viii) रजनीश बनाम नेहा मामले (उपर्युक्त) में निर्णय के अनुसार पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा दायर संपत्ति और देनदारियों का शपथपत्र, 49-बी/1 के रूप में अंकित किया गया है, (ix) 19.7.2023 दिनांकित पत्र, श्री राजेंद्र सिंह-IV, विद्वान मुख्य न्यायाधीश सोनभद्र द्वारा जारी, उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के रजिस्ट्रार जनरल को, प्रत्यर्थी-पति को समन की सेवा का अनुरोध करते हुए और उसे 9.8.2023 को पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश देते हुए, (x) 7.8.2023 दिनांकित पत्र, प्रभारी अधिकारी, केंद्रीय नाजिर, जिला न्यायालय, इटा द्वारा, इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल को प्रत्यर्थी-पति पर सेवा के बारे में सूचित करते

हुए, 53-बी/1 के रूप में अंकित किया गया है, (xi) विविध प्रकृति के कई आदेश हैं, जिनमें या तो प्रत्यर्थी-पति या पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने विभिन्न कारणों का हवाला देते हुए व्यक्तिगत छूट आवेदन स्थानांतरित किए हैं, (xii) 25.4.2022 दिनांकित आदेश सुझाव देता है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा उठाई गई आपत्ति और उसके समर्थन में दायर दस्तावेजों को साक्ष्य के रूप में माना जाएगा। इसे 29.4.2022 दिनांकित आदेश द्वारा अनुमति दी गई, और पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को सुनने के बाद, भरण-पोषण आवेदन को 20.5.2022 को न्यायनिर्णीत विषय के आधार पर खारिज कर दिया गया, (xiii) 20.5.2022 दिनांकित आदेश से व्यथित होकर, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने आदेश को अपास्त करने के लिए धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अधीन आवेदन संख्या 35559/2023 दायर किया। इस आवेदन को 4.4.2023 दिनांकित आदेश द्वारा अनुमति दी गई, विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश को निर्देश के साथ कि अधिमानतः छह महीने के भीतर, वह भरण-पोषण के आवेदन को गुणागुण के आधार पर निर्णीत करें।

17. 27.5.2024 दिनांकित आदेश के अनुपालन में, प्रत्यर्थी-पति द्वारा एक प्रति-शपथपत्र दायर किया गया। जांच करने पर, यह प्रकट होता है कि प्रति-शपथपत्र 27.5.2024 दिनांकित आदेश के अनुरूप दायर नहीं किया गया है, उचित अवसर दिए जाने के बावजूद। इसलिए, प्रत्यर्थी-पति को 11.6.2024 को इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का निर्देश दिया गया। 11.6.2024 को, प्रत्यर्थी-पति एक पूरक प्रति-शपथपत्र की प्रति के साथ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुआ, जिसे अभिलेख पर लिया गया। प्रत्यर्थी-पति को व्यक्तिगत रूप से भी सुना गया और विविध आवेदन संख्या 21/2014 और विविध आवेदन संख्या 387/2019 में विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश द्वारा पारित कई आदेशों का सामना कराया गया। पहला प्रश्न यह था कि 2014 से मुकदमेबाजी में शामिल होने के बावजूद, वह मुद्दे को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल करने के लिए किसी भी न्यायालय या मध्यस्थता केंद्र के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित क्यों नहीं हुआ; उसका उत्तर पूर्ण मौन में था। प्रत्यर्थी-पति का सामना तब मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र द्वारा 3.10.2023 दिनांकित आदेश में दर्ज निष्कर्षों से कराया गया, कि क्या उसे इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से नोटिस परोसा गया था। उससे पूछा गया कि पीठासीन अधिकारी के लिए इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से सेवा प्रभावित करना क्यों आवश्यक था। फिर से, उसका उत्तर पूर्ण मौन में था। प्रत्यर्थी-पति का सामना विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेशों से भी कराया गया, लेकिन उसने जवाब नहीं देने का चुनाव किया। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि दोनों मामले विद्वान पारिवारिक न्यायालय के समक्ष लगभग 106 बार सूचीबद्ध किए गए थे।

18. प्रत्यर्थी-पति द्वारा दायर 29.5.2024 दिनांकित प्रति-शपथपत्र में, यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी-पति के नाम पर कोई घर नहीं है, सिवाय उसके गांव में एक पैतृक घर के, जो उसके चार भाइयों के बीच समान रूप से साझा किया गया है। प्रत्यर्थी-पति ने 19.12.2019 को 28,40,000/- रुपये में गांव मुरगई परगना अराइल, जिला प्रयागराज में एक आवासीय भूखंड खरीदा, जिसे उच्च न्यायालय को सूचित किया गया। लखनऊ में रेरा न्यायालय के समक्ष लंबित विवाद के कारण उसे फ्लैट का कब्जा नहीं दिया जा सका। तत्पश्चात, प्रत्यर्थी-पति ने 25 लाख रुपये में गांव सिरोमानपुर, परगना खैरागढ़, मेजा, भरतगंज, जिला प्रयागराज में स्थित 40 x 50

फीट का एक और आवासीय भूखंड खरीदा। यह जानकारी भी उच्च न्यायालय को प्रदान की गई। प्रत्यर्थी-पति चार बच्चों की भलाई का ध्यान रखने के लिए जिम्मेदार हैं: (i) कु. राना राजक, लगभग 20 वर्ष की आयु, (ii) कु. नाजिया राजक, लगभग 18 वर्ष की आयु; (iii) सुभाना, लगभग 13 वर्ष की आयु; और (iii) ईशा रजा, लगभग 14 वर्ष की आयु; जो सभी पढ़ रहे हैं, और उनकी शिक्षा पर महत्वपूर्ण राशि खर्च की जा रही है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी-पति ने एक चालक नियुक्त किया है, जिसके लिए वह वेतन के रूप में वार्षिक 1,60,000/- रुपये का भुगतान करता है। यह भी उल्लेख किया गया है कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी एक सुशिक्षित महिला है, जिसने भाऊ देवरास सरकारी महाविद्यालय, दुधौ, सोनभद्र से स्नातक किया है, और अपने भरण-पोषण के लिए कमाने में सक्षम है। इसलिए, वह दावा करता है कि वह प्रति माह 20,000/- रुपये भरण-पोषण की ओर भुगतान करने की स्थिति में नहीं है।

19. पहले प्रति-शपथपत्र में, प्रत्यर्थी-पति ने **रजनीश बनाम नेहा** मामले (उपर्युक्त) में अनिवार्य अनुलग्नक-1 के तहत आवश्यक विवरण प्रदान नहीं किए। परिणामस्वरूप, उसे एक पूरक शपथपत्र दायर करने का निर्देश दिया गया। 19.6.2024 दिनांकित पूरक शपथपत्र की जांच करने पर, यह प्रकट होता है कि 2019 से 2022 तक, जब पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने दूसरा भरण-पोषण आवेदन दायर किया था, प्रत्यर्थी-पति का सकल वेतन 1,59,773/- रुपये प्रति माह था, कटौती के बाद 99,373/- रुपये का शुद्ध वेतन था। वित्तीय वर्ष 2020-2021 में, उसका सकल वेतन 1,63,189/- रुपये प्रति माह था, कटौती के बाद 1,12,789/- रुपये का शुद्ध वेतन था। वित्तीय वर्ष 2022-2023 में, उसका सकल वेतन 2,01,734/- रुपये था, और वह 1,31,334/- रुपये शुद्ध वेतन प्राप्त कर रहा था। वित्तीय वर्ष 2023-2024 के लिए, उसका सकल वेतन 3,18,960/- रुपये प्रति माह था, प्रति माह 2,23,560/- रुपये के शुद्ध वेतन के साथ।

20. प्रत्यर्थी-पति ने अपने आश्रितों के भविष्य के कल्याण के लिए इक्विटी शेयरों में 12,69,201.39/- रुपये का निवेश भी किया है। वह आगे कहता है कि उसके पास दो बैंक खाते हैं; एसबीआई बैंक के साथ खाता संख्या 42197838591 और खाता संख्या 31417926245। वह समय की कमी के कारण खाता संख्या 31417926245 के लिए पिछले दो वर्षों के खाता विवरण प्रदान करने में असमर्थ था। प्रत्यर्थी-पति यह भी उल्लेख करता है कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी 18.11.2013 से अलग रह रही है, और उसने 3.12.2013 को तलाक जारी किया। उपरोक्त विवरणों के अलावा, प्रत्यर्थी-पति ने धारा 126(2) सी.आर.पी.सी. के अधीन वाद संख्या 384/2014 में मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र को प्रस्तुत अपने उत्तर की प्रति दायर की है। यह उत्तर विद्वान पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उसकी गैर-उपस्थिति के कारणों के साथ-साथ पुनर्स्थापना आवेदन और एकपक्षीय आदेश को वापस लेने से संबंधित विवरण बताता है। शपथपत्र में उसके अधिवक्ता के विरुद्ध आरोप भी शामिल हैं, जो प्रत्यर्थी-पति का परिश्रमपूर्वक और प्रभावी रूप से बचाव करने के निर्देशों के बावजूद विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुए।

21. ट्रायल कोर्ट अभिलेखों, इस न्यायालय की आधिकारिक वेबसाइट पर अपलोड किए गए पोस्टिंग विवरणों और आक्षेपित आदेश की जांच करने पर, यह न्यायालय नोट करता है कि प्रत्यर्थी-पति एक न्यायिक अधिकारी

है। उसने 4.7.2001 को मुंसिफ/सिविल जज के रूप में न्यायिक सेवा में शामिल हुआ और 17.2.2018 को यू.पी. उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1975 के नियम 22(1) के तहत उच्चतर न्यायिक सेवाओं में पदोन्नत हुआ। तब से, प्रत्यर्थी-पति ने विभिन्न क्षमताओं में सेवा की है। 3.8.2019 और 4.7.2022 के बीच, उसने जौनपुर में पारिवारिक न्यायालय में अपर मुख्य न्यायाधीश के रूप में काम किया, और वर्तमान में इटा में विशेष न्यायाधीश (यू.पी. डकैती प्रभावित क्षेत्र) के रूप में सेवारत है।

22. अभिलेख आगे दर्शाता है कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन एक आवेदन दायर किया, जो वाद संख्या 21/2014 के रूप में पंजीकृत किया गया, जिसे 64 बार सूचीबद्ध होने के बाद गैर-उपस्थिति के लिए 1.3.2017 को व्यतिक्रम में खारिज कर दिया गया और 08.02.2028 को पुनर्स्थापना आवेदन। इस अवधि के दौरान, अंतरिम भरण-पोषण के आवेदन का भी न्यायालय द्वारा निर्णय नहीं किया गया, भले ही अंतरिम भरण-पोषण के आवेदन को दायर करने के बाद न्यायालय द्वारा व्यतिक्रम में खारिज करने तक मामला 47 बार सूचीबद्ध किया गया था। उस आवेदन में प्रत्यर्थी-पति द्वारा क्रूरता और स्वेच्छापूर्वक परित्याग के संबंध में विशिष्ट आरोप लगाए गए थे, जिनमें शामिल हैं (i) कि वह जौनपुर में अपर सत्र न्यायाधीश के रूप में काम कर रहा था, (ii) उसका वेतन 1,50,000/- रुपये प्रति माह था, और (iii) उसके पास अपना घर और कृषि भूमि थी, अन्य संपत्तियों के अलावा, और लगभग 2,50,000/- रुपये प्रति माह कमाता था। इन कथनों के आधार पर, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने 1,00,000/- रुपये प्रति माह का भरण-पोषण दावा किया।

23. अभिलेख आगे प्रकट करता है कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने तब धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन दूसरा भरण-पोषण आवेदन दायर किया, जो विविध वाद संख्या 387/2019 के रूप में पंजीकृत किया गया था। इस आवेदन को 20.5.2022 को न्यायनिर्णीत विषय के आधार पर खारिज कर दिया गया। तत्पश्चात, पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी ने इस न्यायालय के समक्ष धारा 482 सी.आर.पी.सी. के अधीन 20.5.2022 दिनांकित आदेश को चुनौती दी। इस न्यायालय ने 4.4.2023 दिनांकित आदेश द्वारा विविध वाद संख्या 387/2019 को इसकी मूल संख्या में पुनर्स्थापित किया और विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश को मामले को छह महीने के भीतर इसके गुणागुण के आधार पर निर्णीत करने का निर्देश दिया। मुख्य पारिवारिक न्यायाधीश, सोनभद्र, 13.7.2023 को 4.4.2023 दिनांकित आदेश से अवगत हुए, जिसके बाद 9.8.2023 दिनांकित नोटिस इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल के माध्यम से प्रत्यर्थी-पति को परोसा गया। 9.8.2023 को नोटिस प्राप्त करने के बावजूद, प्रत्यर्थी-पति धारा 125 सी.आर.पी.सी. आवेदन के जवाब में अपना बचाव प्रस्तुत करने के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुआ। परिणामस्वरूप, विद्वान पारिवारिक न्यायालय प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध गुणागुण के आधार पर आक्षेपित एकपक्षीय आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ा।

24. आक्षेपित आदेश की जांच करने पर, यह स्पष्ट है कि विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी-पति की आय का निर्धारण उत्तर प्रदेश सरकार के न्यायिक अनुभाग द्वारा दूसरे वेतन आयोग के कार्यान्वयन रिपोर्ट के संबंध में जारी 30.6.2023 दिनांकित पत्र के आधार पर किया और पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के कथन और प्रत्यर्थी-पति के वेतन के आधार पर नहीं - एक सेवारत न्यायाधीश के लिए एक खुला रहस्य। मुख्य न्यायाधीश,

पारिवारिक न्यायालय ने धारा 125 सी.आर.पी.सी. के अधीन दायर आवेदन दाखिल करने की तिथि से पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को 20,000/- रुपये प्रति माह का भरण-पोषण अधिनिर्णीत किया जो 2019 में दायर किया गया था। पारिवारिक न्यायाधीश, सोनभद्र ने अवलोकन किया कि पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा दायर दस्तावेजों और 22.07.2022 दिनांकित आदेश के अवलोकन के आधार पर, यह निर्धारित नहीं किया जा सका कि प्रत्यर्थी-पति जिला कैडर में प्रवेश स्तर के अधिकारी का पद धारण करता है या चयन श्रेणी अधिकारी का। इसलिए, उसके वास्तविक वेतन का सटीक आकलन नहीं किया जा सका, लेकिन यह स्पष्ट है कि दूसरे राष्ट्रीय न्यायिक वेतन आयोग के अनुसार उसका वेतन कम से कम 1,44,840/- रुपये प्रति माह होना चाहिए।

25. यह आश्चर्यजनक है कि विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश उत्तर प्रदेश में उच्च न्यायिक सेवा अधिकारियों के वेतन संरचना से अनभिज्ञ थे और उन्हें सर्वाधिक ज्ञात कारणों से, प्रत्यर्थी-पति के वेतन को उसकी वास्तविक आय का निर्धारण करने के लिए जिला न्यायाधीश के कैडर में प्रवेश स्तर के न्यायिक अधिकारी के वेतन के बराबर मानने की त्रुटि की। कहने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों - विद्वान न्यायाधीश पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र और प्रत्यर्थी-पति - उत्तर प्रदेश में जिला न्यायाधीश कैडर में सेवारत रहे हैं और लगभग 25 वर्षों से न्यायाधीश हैं; दोनों 2003-2004 के बीच सोनभद्र में सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में तैनात थे। चौंकाने वाली बात यह है कि विद्वान पीठासीन न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र, प्रत्यर्थी-पति के मूल वेतन से अनभिज्ञ रहते हैं, चाहे वह चयन श्रेणी स्तर का पद धारण करता है या प्रवेश श्रेणी स्तर का। विद्वान न्यायाधीश की बुद्धिमत्ता और निष्पक्षता पर कोई टिप्पणी किए बिना, क्योंकि वे इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हैं, मैं उन्हें आत्म-आत्मनिरीक्षण और अनुभूति के लिए छोड़ता हूँ। हालांकि, मुझे अपनी निराशा व्यक्त करनी होगी कि विद्वान मुख्य न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के प्रति निष्पक्ष और न्यायसंगत नहीं रहे हैं और पत्नी को भरण-पोषण के अधिनिर्णय से संबंधित संवैधानिक न्यायालयों द्वारा जारी विधि और निर्देशों को कई निर्णयों में बनाए रखने में विफल रहे हैं।

26. पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के विद्वान अधिवक्ता ने पारुल त्यागी मामले (उपर्युक्त), और राजेश बाबू सक्सेना के मामले (उपर्युक्त) पर भरोसा किया। राजेश बाबू सक्सेना के मामले का संबंधित भाग नीचे उद्धृत किया गया है:

"19. शमीमा फारुकी बनाम शाहिद खान में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा चिंता और व्यथा व्यक्त की गई थी, सर्वोच्च न्यायालय का विचार था कि अंतरिम भरण-पोषण के अनुदान के लिए आवेदन का शीघ्रातिशीघ्र निस्तारण किया जाना है। जब पत्नी भरण-पोषण के अनुदान के लिए आवेदन करती है, तो आवेदन के निस्तारण में देरी, कहने की आवश्यकता नहीं है, एक अस्वीकार्य स्थिति है। वास्तव में, यह एक दुःखद घटना है। ये मुकदमेबाजियां न केवल आज बल्कि आने वाले वर्षों तक मानवीय संबंधों को क्षीण कर सकती हैं, संभावित रूप से समाज पर प्रभाव डाल सकती हैं। न्यायालय को कार्यवाही पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहिए और विवाद को समय की अप्रत्याशित महान नदी में तैरने की अनुमति नहीं देनी चाहिए बिना यह जाने कि यह कब किनारे पर उतरेगी या किसी अज्ञात नदी के किनारे पर 'स्थिर' खड़े एक कोने के पेड़ में शरण लेगी। यह ब्रुक के गीत को गाने की अनुमति नहीं दे सकता, 'पुरुष आ सकते हैं, और पुरुष जा सकते हैं, लेकिन मैं हमेशा के लिए चलता रहता हूँ।'

यह न्यायनिर्णायक प्रणाली के लिए सबसे बड़ी त्रासदी होगी, जिसे पति और पत्नी या वैवाहिक और घरेलू मामलों से संबंधित अन्य परिवार के सदस्यों के बीच सबसे संवेदनशील मामलों से निपटने की आवश्यकता है। इस संबंध में एक सक्रिय दृष्टिकोण होना चाहिए, और उच्च न्यायालयों के तहत कार्यरत न्यायिक अकादमियों द्वारा पारिवारिक न्यायालय के न्यायाधीशों में उक्त दृष्टिकोण को प्रेरित किया जाना चाहिए। देरी पक्षकारों के अनियंत्रित डिजाइन या पारिवारिक न्यायालयों का प्रबंधन करने वाले न्यायाधीशों द्वारा दिखाई गई सुस्ती और उदासीनता के कारण होती है।

20. भरण-पोषण कार्यवाही का उद्देश्य किसी व्यक्ति को दंडित करना नहीं है बल्कि उन लोगों को मजबूर करके भिक्षावृत्ति को रोकना है जो उनका समर्थन कर सकते हैं जो खुद का समर्थन नहीं कर सकते और उनका समर्थन करने का नैतिक दावा रखते हैं। धारा 125 सी.आर.पी.सी. सामाजिक न्याय के उपाय। यह विशेष रूप से महिलाओं और बच्चों की रक्षा के लिए अधिनियमित किया गया है और संविधान के अनुच्छेद 39 द्वारा प्रबलित अनुच्छेद 15(3) के संवैधानिक दायरे में आता है। भरण-पोषण का उद्देश्य एक त्यागी हुई पत्नी को भोजन, कपड़े और आश्रय प्रदान करके एक त्वरित उपाय के माध्यम से भिक्षावृत्ति और दरिद्रता को रोकना है। यह एक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों और अपनी पत्नी, बच्चों और माता-पिता का भरण-पोषण करने के प्राकृतिक कर्तव्यों को प्रभावित करता है जो खुद का भरण-पोषण नहीं कर सकते।

21. पत्नी को भरण-पोषण भत्ता पूर्ण भरण-पोषण अधिकार है। पति केवल वित्तीय बाधाओं और सक्षम शरीर होने के बावजूद कमाने में असमर्थता की दलील पर अपने भरण-पोषण प्रदान करने के दायित्व से खुद को मुक्त नहीं कर सकता।

27. न्यायालयों को संवैधानिक न्यायालयों द्वारा स्थापित संवैधानिक सिद्धांतों और कानूनी उदाहरणों का पालन करना चाहिए, एक सुसंगत और तर्कसंगत दृष्टिकोण को नियोजित करते हुए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के पीछे अंतर्निहित और मौलिक सिद्धांत का उद्देश्य वित्तीय परिस्थितियों में सुधार करना और भावनात्मक संकट को कम करना है जब एक महिला को वैवाहिक निवास से प्रस्थान करने के लिए मजबूर किया जाता है। जब बच्चे उसके साथ होते हैं तो निर्वाह का सिद्धांत और अधिक ऊंचा हो जाता है।"

27. पारुल त्यागी मामले (उपर्युक्त) में, इस न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया:

"51. न्यायिक प्रशासन की पवित्रता आवश्यक है; न्याय प्रशासन की स्वतंत्रता की सफलता के लिए एक पूर्व शर्त। सार में, विधि का समान, एकसमान और सुसंगत अनुप्रयोग न्यायिक प्रशासन की पहचान है। उच्च न्यायालयों के दिशानिर्देशों को लागू करने का प्राथमिक कारण न्यायपालिका के अधिकार और विश्वसनीयता को संरक्षित करना है। यदि उनके दिशानिर्देशों को नियमित रूप से नजरअंदाज किया जाता है, किसी भी कारण से, यह कानूनी प्रणाली में सार्वजनिक विश्वास को क्षीण करता है और खतरनाक उदाहरण स्थापित करता है। यह विधि के असंगत अनुप्रयोग को जन्म दे सकता है, जो कानूनी निश्चितता के सिद्धांतों को कमजोर करता है।

52. अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के दिशानिर्देशों का गैर-पालन विधि के शासन के सार को ही कमजोर करता है, जिससे असमान व्यवहार होता है जो न्यायिक उदाहरण के क्षरण, अन्याय और असमानता

को स्थायी बनाने, नागरिकों द्वारा न्यायपालिका में सार्वजनिक विश्वास की हानि, और एक खंडित कानूनी परिदृश्य की ओर ले जाता है, जहां प्रत्येक न्यायालय स्वतंत्र रूप से कार्य करता है।

65. वादकर्ता शिकायतों के साथ न्यायालयों से संपर्क करते हैं, अपने मुद्दों के समाधान और निवारण की मांग करते हैं। उनके मामले केवल कानूनी मामले नहीं हैं बल्कि उनके जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं, अधिकार और संपत्ति शामिल हैं। मामले का परिणाम उनकी भलाई, आजीविका और सुरक्षा की भावना को गहराई से प्रभावित कर सकता है।

70. इस न्यायालय ने कई अवसरों पर भी नोट किया है कि कानूनी रूप से विवाहित पत्नियों और वृद्ध माता-पिता द्वारा भरण-पोषण के लिए आवेदन/याचिकाएं प्रभावी सुनवाई के बिना वर्षों और वर्षों तक लंबित रखी जाती हैं, और उन्हें समय पर निर्णीत या ध्यान नहीं दिया जाता है।

71. उचित अवधि में या समय के साथ, जब एक वादकर्ता को अंततः एक लंबी और कठिन कानूनी लड़ाई के बाद न्यायालय से कुछ राहत मिलती है, तो यह तत्काल उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती है। जब तक वादकर्ता को न्यायालयों से राहत मिलती है, तब तक पहले ही पर्याप्त कठिनाई और अनिश्चितता को सहन कर चुका होता है। संबंधित तनाव, वित्तीय बोझ और भावनात्मक प्रभाव एक वादकर्ता को निराश करते हैं।

73. कानूनी प्रक्रिया में तेजी लाने और समय पर राहत प्रदान करने के प्रयास न्याय की प्रभावशीलता के लिए महत्वपूर्ण हैं और यह सुनिश्चित करते हैं कि वादकर्ताओं को निष्पक्ष और सार्थक परिणाम प्राप्त हों। न्यायाधीशों के लिए न्याय की खोज में समय के महत्व को पहचानना और देरी को कम करने, दक्षता में सुधार करने और कानूनी प्रणाली के माध्यम से निवारण चाहने वालों को समापन की भावना प्रदान करने की दिशा में काम करना आवश्यक है।"

28. प्रत्यर्थी-पति का आचरण और दृष्टिकोण इन कारणों से गहरा चिंताजनक है कि वह साधन या संसाधनों के बिना एक सामान्य व्यक्ति नहीं है, बल्कि वह कानून में पृष्ठभूमि और न्याय के वितरण में व्यापक अनुभव के साथ एक शिक्षित और सक्षम व्यक्ति है। न्यायपालिका में सार्वजनिक विश्वास बनाए रखने और एक ऐसी संस्कृति को बढ़ावा देने में एक न्यायाधीश की भूमिका महत्वपूर्ण है जहां अधिकारों को बनाए रखा जाता है, कानूनों का सम्मान किया जाता है, और वैवाहिक विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से हल किया जाता है।

29. यह सत्य है कि न्यायाधीश, सभी व्यक्तियों की तरह, प्रत्येक नागरिक को गारंटीकृत अधिकारों के हकदार हैं, लेकिन उन्हें उन्हें प्रदान की गई उन्नत स्थिति और सम्मान के प्रति भी सचेत रहना चाहिए, और

ऐसी स्थिति व्यक्तिगत, सामाजिक और न्यायिक कर्तव्यों को इस तरीके से निर्वहन करने की अधिक जिम्मेदारी के साथ आती है जो विधि के शासन को बनाए रखे। दुर्भाग्य से, प्रत्यर्थी-पति इन अपेक्षाओं को पूरा करने में विफल रहा है, जिससे न्याय के सिद्धांतों और मूल्यों को कमजोर किया गया है जिन्हें बनाए रखने का उसे विश्वास दिया गया था।

30. कानूनी पेशा लंबे समय से ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के सिद्धांतों में लंगर डाला गया है, इसकी नींव का निर्माण करता है और न्याय के उचित प्रशासन को सुनिश्चित करता है। ये गुण विशेष रूप से न्यायाधीशों के लिए जोर दिए जाते हैं, जिनकी भूमिका निष्पक्ष और समान रूप से न्याय प्रदान करने के लिए केंद्रीय है। हालांकि, जब न्यायपालिका के सदस्य स्वयं व्यक्तिगत मुकदमेबाजी में उलझ जाते हैं, तो फोकस एक महत्वपूर्ण प्रतिच्छेदन की ओर स्थानांतरित हो जाता है और अधिक सावधानी और जिम्मेदारी के साथ निपटने की आवश्यकता है।

31. न्यायाधीश केवल विधि के निर्णायक नहीं हैं; वे कानूनी प्रणाली की विश्वसनीयता को मूर्त रूप देते हैं और जवाबदेही के उच्चतम मानकों पर रखे जाते हैं। उनकी व्यावसायिक सत्यनिष्ठा, बिना असफल हुए, उनके व्यक्तिगत आचरण में प्रतिबिंबित होनी चाहिए। व्यक्तिगत मुकदमेबाजी में शामिल न्यायाधीश जांच के दोहरे मानक का सामना करते हैं। यह निर्विवाद है कि न्यायालय में एक न्यायाधीश के व्यक्तिगत कार्य न्यायपालिका की सार्वजनिक धारणा को प्रभावित करते हैं। यदि कोई न्यायाधीश प्रतिशोधी, हेरफेर करने वाला, या अनुचित रूप से लड़ाकू प्रतीत होता है, तो यह कानूनी प्रणाली में सार्वजनिक विश्वास को कमजोर करने का जोखिम उठाता है।

32. मुकदमेबाजी में उलझे एक न्यायाधीश को सावधानीपूर्वक चलना चाहिए यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनके कार्य उन सिद्धांतों के साथ संघर्ष न करें जिन्हें वे न्यायालय में समर्थन करते हैं और प्रक्रियात्मक निष्पक्षता का पालन करेंगे। न्यायाधीशों को ध्यान रखना चाहिए कि उनका आचरण, यहां तक कि निजी नागरिकों के रूप में भी, उस संस्था को प्रतिबिंबित करता है जिसका वे प्रतिनिधित्व करते हैं।

33. प्रत्यर्थी-पति का आचरण पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी के अधिकारों को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाएगा, सबसे पहले, क्योंकि वह 2018 से दरिद्र जीवन जी रही है। प्रत्यर्थी-पति 2001 से एक न्यायिक अधिकारी रहा है और भरण-पोषण के लिए धारा 125 सी.आर.पी.सी. के तहत एक पत्नी के अधिकारों से अच्छी तरह से अवगत है। अपने दायित्वों को पूरा करने के बजाय, उसने विभिन्न कानूनी युद्धाभ्यासों के माध्यम से मामले को लंबा करने का चुनाव किया है, न्याय में देरी की है। पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी का कीमती समय न्यायालय की लड़ाइयों में खपत हो गया है। इसके अतिरिक्त, उसने अपनी पहली पत्नी की जानकारी और सहमति के बिना एक महिला से पुनर्विवाह किया, भले ही वह दावा करता है कि उसने वर्ष 2018 में पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को तलाक दे दिया था। हालांकि, इस तथ्य को पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी द्वारा गंभीरता से

विरोध और विवाद किया गया है। विद्वान न्यायाधीश इसे देखने में विफल रहे, और इस प्रकार, वह इस न्यायालय से किसी सहानुभूति के योग्य नहीं है।

34. सी.आर.पी.सी. की धारा 397(1) उच्च न्यायालय या सत्र न्यायाधीश को एक अधीनस्थ दाण्डिक न्यायालय के समक्ष किसी भी कार्यवाही के अभिलेख को बुलाने और जांच करने का अधिकार देती है। यह प्रावधान किसी भी निष्कर्ष, सजा, या आदेश की शुद्धता, वैधता, या औचित्य और कार्यवाही की नियमितता सुनिश्चित करता है। पुनरीक्षणीय शक्ति का उद्देश्य न्याय के गर्भपात को रोकना है, और पुनरीक्षणीय न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग स्वप्रेरणा से कर सकता है उन त्रुटियों को सुधारने के लिए जो मामले की जड़ तक जाती हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि न्याय प्रदान किया जाए। जब पुनरीक्षणीय शक्तियों को विवेकपूर्ण तरीके से लागू किया जाता है, तो ये शक्तियां यह सुनिश्चित करके न्यायपालिका में सार्वजनिक विश्वास को प्रबलित करती हैं कि न्याय न केवल किया जाता है बल्कि किया हुआ भी देखा जाता है।

35. उपरोक्त विचार-विमर्श के आधार पर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि प्रकीर्ण वाद संख्या 21 सन् 14 को परीक्षण न्यायालय द्वारा गलती से खारिज कर दिया गया था। यह मामला लगभग 64 बार सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया गया था, और विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और 125 सीआरपीसी में निहित उद्देश्य को सुनिश्चित करते हुए कोई ठोस कार्यवाही नहीं की गई। पुनरीक्षणकर्ता पत्नी ने 18.5.2017 को अंतरिम भरण-पोषण के लिए आवेदन दायर किया, और भरण-पोषण के लिए अंतरिम आवेदन के बाद लगभग 47 बार मामला सूचीबद्ध होने के बावजूद, उक्त आवेदन तब तक अनिर्णीत रहा जब तक कि मुकदमा गैर-अभियोजन के कारण खारिज नहीं कर दिया गया। विद्वान पारिवारिक न्यायाधीश ने बिना कारण दर्ज किए मामले को बार-बार स्थगित कर दिया, और लगभग 32 बार व्यक्तिगत छूट आवेदन को इसी आधार पर स्वीकार कर लिया कि उनका अनुमति याचिका स्वीकृत नहीं हुआ है। अतः, प्रकीर्ण वाद संख्या 21 सन् 2014 में पारित दिनांक 1.3.2017 और 8.2.2018 के आदेश विधिक रूप से अवधारित नहीं पाए जाते और इस प्रकार अपास्त किए जाते हैं।

36. जैसा कि **रजनीश बनाम नेहा** मामले (उपरोक्त) में कहा गया है, न्यायालय को आवेदन की तिथि से या सीआरपीसी की धारा 125(2) के तहत आदेश की तिथि से भरण-पोषण देने का विवेकाधिकार प्राप्त है। सर्वोच्च न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि सीआरपीसी की धारा 125 के तहत आवेदनों सहित सभी मामलों में आवेदन की तिथि से भरण-पोषण देना उचित होगा। प्रतिवादी पति 2014 से ही इन मामलों को जोरदार तरीके से लड़ रहा है तथा सभी संभावित प्रभावों का उपयोग करके और अदालती प्रक्रियाओं का दुरुपयोग करके भरण-पोषण देने के अपने दायित्व से बच रहा है। इसलिए, अनुच्छेद 19 और धारा 125 सीआरपीसी के तहत निहित उद्देश्यों, साथ ही संवैधानिक न्यायालयों के निर्देशों को, प्रकीर्ण वाद संख्या 21 सन् 2014 के दाखिल होने की तारीख से भरण-पोषण प्रदान करके पूरा किया जाएगा।

37. तदनुसार, पूर्वोक्त चर्चाओं के आलोक में, वर्तमान पुनरीक्षण याचिका को निम्नलिखित निर्देशों के साथ स्वीकार किया जाता है:

(ए) प्रतिवादी-पति प्रथम भरण-पोषण आवेदन दाखिल करने की तारीख अर्थात् केस संख्या 21/2014 से 16.8.2019 तक पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को 20,000/- रुपये प्रति माह का भुगतान करेगा, और उसके बाद 17.8.2019 से आगे अर्थात् केस संख्या 387/19 दाखिल होने की तारीख से 30,000/- रुपये प्रति माह का भुगतान करेगा।

(बी) मासिक भरण-पोषण राशि अगले महीने के वेतन से शुरू होकर, प्रतिवादी-पति के वेतन खाते से सीधे "शबाना बानो" के खाते (खाता संख्या 701510110006536, आईएफएससी कोड बीकेआईडी0007015, बैंक ऑफ इंडिया, दुधौ सोनभद्र शाखा) में जमा की जाएगी।

(सी) विद्वान प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्राप्ति के तीन सप्ताह के भीतर इस न्यायालय के निर्देशों के अनुसार बकाया राशि की गणना करें।

(डी) प्रतिवादी-पति को पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को 50,000/- रुपये का मुकदमा खर्च अदा करने का निर्देश दिया जाता है।

(ई) प्रतिवादी-पति को बकाया राशि किशतों में भुगतान करने के लिए प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र के समक्ष आवेदन करने की स्वतंत्रता दी जाती है। तथापि, विद्वान प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सोनभद्र यह सुनिश्चित करेंगे कि बकाया भरण-पोषण राशि अगले छह महीनों के भीतर पुनरीक्षणकर्ता-पत्नी को पूरी तरह से भुगतान कर दी जाए। यदि कोई राशि पहले ही भुगतान की जा चुकी है, तो उसे तदनुसार समायोजित किया जाएगा।

38. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह ट्रायल कोर्ट के रिकॉर्ड को तुरंत संबंधित न्यायालय को वापस भेजे।

39. निबंधक (अनुपालन) को निर्देश दिया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति विद्वान प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, सुभद्रा (?) और जिला कोषागार अधिकारी, एटा को आवश्यक अनुपालन हेतु तत्काल प्रेषित करें।

(2025) 1 ILRA 365

अपीलीय अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

प्रथम अपील संख्या 844/2024

निम्मी इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड (पूर्व में सत्य होम्स प्राइवेट लिमिटेड)

...अपीलार्थी

बनाम

फुन्दन एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

अपीलार्थी के अधिवक्ता: निशीथ यादव

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता: अनिल कुमार मेहरोत्रा, सृजन मेहरोत्रा, यश टंडन

सिविल विधि - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 96 - आदेश-VII नियम 11 एवं 14 - उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 - धाराएं 144 एवं 206 -- चूंकि विवादित भूमि कृषि से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोगित नहीं है, इसे "धारण" नहीं कहा जा सकता -- वादी भूमि के 'भूमिधर' या 'आसामी' के रूप में दावे के साथ नहीं आया है बल्कि सिविल न्यायालय के समक्ष अपने हित के प्रतिकूल विक्रय विलेखों के निष्पादन और शेष भूमि के विक्रय विलेख के अपने पक्ष में निष्पादन न होकर तृतीय पक्षकारों के पक्ष में निष्पादन से उत्पन्न शिकायत उठाई है -- एक बार यह पाया जाता है कि विक्रय के लिए करार या चुनौती के अधीन विवादित विक्रय विलेखों द्वारा आच्छादित विवादित भूमि "भूमि" या "धारण" की परिभाषा से परे चली गई है, तो संहिता 2006 का कोई भी प्रावधान लागू नहीं होगा और उस स्थिति में, केवल सिविल न्यायालय को प्रार्थित डिक्ली अनुदत्त करने का अधिकार क्षेत्र होगा -- आक्षेपित आदेश अपास्त किया गया। (पैरा 19 एवं 21)

अपील स्वीकृत। (E-15)

उद्धृत मामलों की सूची: प्रेम कुमार रस्तीगी बनाम मेसर्स, ऑन-यूपी ऑटोमोबाइल्स प्रा. लि. एवं अन्य, 2019 (3) ए.डी.जे. 491 (डी.बी.) (एल.बी.)

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा प्रदत्त)

उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के तहत दायर मुकदमे के निषेध का विश्लेषण बनाम आदेश 7 नियम के तहत वाद को अस्वीकार करना अपील

1. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसके पश्चात 'सी.पी.सी.' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की धारा 96 के अधीन यह तत्काल अपील दिनांक 16.08.2024 के आक्षेपित निर्णय एवं आदेश तथा उस पर आधारित दिनांक 20.08.2024 की डिक्ली की वैधता को चुनौती देती है, जिसके द्वारा विद्वान सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग), गौतम बुद्ध नगर ने प्रतिवादी-प्रत्यर्थी संख्या 6 द्वारा आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन दाखिल आवेदन 20-क को स्वीकार कर लिया है और मूल वाद संख्या 828/2024 (निम्मी इंप्राटेक प्रा. लि. बनाम फुन्दन एवं अन्य) के वादपत्र को अस्वीकार कर दिया है। आक्षेपित आदेश सी.पी.सी. की धारा 2(2) के अधीन एक डिक्ली के समतुल्य है, अतः यह नियमित अपील है।

तथ्यात्मक आधार

2. उपर्युक्त वाद इस कथन के साथ दायर किया गया था कि सत्य होम्स प्राइवेट लिमिटेड, जो कंपनी अधिनियम, 1956 के प्रावधानों के अधीन निगमित एवं पंजीकृत एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी है, को बाद में निम्मी इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड के रूप में नामित किया गया। प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को विवादित संपत्ति के स्वामी होने का आरोप लगाया गया था और यह कथन किया गया था कि उनके नाम राजस्व अभिलेखों में अभिलिखित थे और उन्होंने वादी-कंपनी के साथ दिनांक 02.05.2014 को विक्रय के लिए करार किया था और कुल प्रस्तावित विक्रय प्रतिफल रु.15,21,37,274/- में से रु. 3,00,00,000/- की राशि कंपनी द्वारा भुगतान की गई थी; करार संबंधित उप-पंजीयक के कार्यालय में पंजीकृत किया गया था; करार के अनुसार ही संपत्ति का कब्जा अपीलार्थी को सौंप दिया गया था; संपूर्ण विक्रय प्रतिफल पर रु.76,12,100/- की स्टाम्प ड्यूटी का भुगतान किया गया था; निष्पादक मेहर चंद द्वारा वादी-कंपनी के पक्ष में गाटा संख्या 795 द्वारा आच्छादित भूमि के भाग के संबंध में दिनांक 14.12.2015 को एक विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था और विक्रय के लिए करार के संबंध में रु.29,23,700/- की राशि का भुगतान किया गया था जिसे विक्रय प्रतिफल के विरुद्ध समायोजित किया गया था और शेष राशि प्रतिवादी संख्या 1 से 4 को भुगतान की गई थी। गाटा संख्या 793 के कुछ भाग के संबंध में निष्पादित दिनांक 20.06.2015 के अन्य विक्रय विलेख तथा विक्रय के लिए करार के संदर्भ में भुगतान की गई राशि के समायोजन के संबंध में अतिरिक्त कथन किए गए थे।

3. वाद को जन्म देने वाला वाद कारण इस तथ्य के कारण आरोपित किया गया था कि प्रतिवादी संख्या 1 से 4 ने भूमि के शेष भाग के संबंध में विक्रय के लिए करार के अनुसरण में विक्रय विलेख निष्पादित करने के बजाय, अन्य प्रतिवादियों के पक्ष में छह विक्रय विलेख निष्पादित किए और यद्यपि सिविल न्यायाधीश (वरिष्ठ प्रभाग), गौतम बुद्ध नगर के न्यायालय में मूल वाद संख्या 1183/2023 (सत्य होम्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम फुन्दन एवं अन्य) होने वाला एक वाद पूर्व में करार के विनिर्दिष्ट पालन की डिक्ली का दावा करते हुए दायर किया गया था, जिसमें दिनांक 10.10.2023 को एक अस्थायी निषेधाज्ञा आदेश पारित किया गया था, विक्रय विलेख उसके उल्लंघन में निष्पादित किए गए थे। विक्रय विलेखों को अनेक कारणों से शून्य एवं वादी के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाला बताते हुए, इस आशय की डिक्ली का दावा किया गया था कि विक्रय विलेखों को अवैध, जाली, फर्जी एवं शून्य दस्तावेज और वादी-कंपनी के अधिकारों के संबंध में अप्रभावी घोषित किया जाए और संबंधित उप-पंजीयक के अभिलेखों में ऐसा पृष्ठान्कन किया जाए। शून्य विक्रय विलेखों के आधार पर प्रत्यर्थियों को संपत्ति अंतरित करने से प्रतिबंधित करने वाली निषेधाज्ञा की एक अग्रेतर डिक्ली का भी रु.15,00,000/- प्रति माह की क्षतिपूर्ति की अग्रेतर राहत के साथ दावा किया गया था।

4. विचारण न्यायालय ने दिनांक 21.05.2024 को एक एकपक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा आदेश पारित किया जिसमें पक्षकारों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया और प्रतिवादियों को नोटिस जारी किए गए। निषेधाज्ञा

आदेश को समय-समय पर बढ़ाया गया और बाद में प्रतिवादी संख्या 6 द्वारा आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन वादपत्र को अस्वीकार करने की प्रार्थना के साथ एक आवेदन 20-क दाखिल किया गया था। इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 227 के अधीन मामला संख्या 7743/2024 (मेसर्स आहान इंफ्रास्ट्रक्चर बनाम निम्मी इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड एवं 9 अन्य) में पारित दिनांक 02.07.2024 के आदेश के अनुसरण में, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय को आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन का निर्णय करने के लिए सभी प्रयास करने का निर्देश दिया गया था, विचारण न्यायालय ने विचाराधीन उक्त आवेदन को लिया और आक्षेपित आदेश द्वारा उसे अस्वीकार कर दिया है।

आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन

5. आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन में वादपत्र के प्रत्याख्यान के लिए यह आधार उठाया गया था कि वाद का मूल्यांकन भू-राजस्व के तीस गुना पर किया गया है जैसा कृषि भूमि के मामले में किया जाता है; मूल वाद संख्या 1183/2023 होने वाले पूर्ववर्ती वाद की लंबितता आदेश II नियम 2 सी.पी.सी. के अधीन वर्जन उत्पन्न करती है और पर्याप्त न्यायालय शुल्क का गैर-भुगतान यद्यपि चुनौती के अधीन विक्रय विलेखों में निहित उल्लेखों के अनुसार उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे इसके पश्चात '1950 का अधिनियम' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की धारा 143 के अधीन सक्षम प्राधिकारी द्वारा भूमि को "गैर-कृषि" घोषित किया गया था।

वादपत्र को अस्वीकार करने वाला आदेश

6. विचारण न्यायालय ने सी.पी.सी. की धारा 9 के साथ पठित उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 (जिसे इसके पश्चात '2006 की संहिता' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) की धाराओं 144 एवं 206 का संदर्भ देकर वादपत्र को अस्वीकार कर दिया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि वादी ने कृषि भूमि के संबंध में भुगतान योग्य भू-राजस्व पर वाद का मूल्यांकन किया है और एक घोषणात्मक डिक्री का दावा किया गया है, 2006 की संहिता की धारा 206 के अधीन निहित वर्जन के दृष्टिगत, वाद वर्जित है।

विद्वान अधिवक्ता को सुना गया

7. मैंने श्री सी.बी. यादव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा वादी-अपीलार्थी के लिए श्री आनंद कुमार यादव, विद्वान अधिवक्ता द्वारा सहायता प्राप्त; प्रत्यर्थी संख्या 1 से 4 के लिए श्री यश टंडन, विद्वान अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 6 के लिए श्री अनिल कुमार मेहरोत्रा, विद्वान अधिवक्ता द्वारा श्री अश्विनी कुमार पटेल एवं श्री सृजन मेहरोत्रा, विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा सहायता प्राप्त, को सुना है। विचारण न्यायालय का अभिलेख पहले ही प्राप्त हो चुका है और अपील को पूर्व अवसर पर अंगीकृत किया जा चुका है।

निर्धारण हेतु बिंदु

8. इस अपील में विचाराधीन निर्धारण हेतु निम्नलिखित बिंदु उत्पन्न होता है और आदेश XLI नियम 31 सी.पी.सी. के अधीन प्रारूपित किया जाता है:-

"क्या यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों के संदर्भ में सिविल न्यायालय के वर्जन को आमंत्रित करके वादपत्र का प्रत्याख्यान न्यायोचित है?"

अपीलार्थियों के तर्क

9. श्री सी.बी. यादव, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि चूंकि विक्रय विलेखों को शून्य एवं निष्प्रभावी घोषित करने का अधिकार क्षेत्र केवल सिविल न्यायालय में निहित है और राजस्व न्यायालय को ऐसी डिग्री अनुदत्त करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, वादपत्र का प्रत्याख्यान स्वतः अवैध है। अपने प्रस्तुतीकरण को विस्तृत करते हुए, यह आग्रह किया जाता है कि पंजीकृत विक्रय विलेखों को शून्य एवं निष्प्रभावी न्यायनिर्णीत करने के लिए वाद 2006 की संहिता की धारा 206 से संदर्भित अनुसूचियों II एवं III की किसी खंड या उप-खंड या प्रविष्टि के अधीन नहीं आता है और वादी द्वारा 'भूमिधर' या 'आसामी' के रूप में अधिकारों की कोई घोषणा का दावा नहीं किया गया है, न तो धारा 206 और न ही 2006 की संहिता की धारा 144 का कोई अनुप्रयोग है और इसलिए, विचारण न्यायालय द्वारा घोर त्रुटि की गई है। यह भी आग्रह किया जाता है कि चूंकि प्रतिवादी संख्या 6 ने अपने आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन में ही यह आरोप लगाया है कि विवादित विक्रय विलेखों में उल्लिखित भूमि को पहले ही 1950 के अधिनियम की धारा 143 के अधीन "गैर-कृषि" घोषित किया जा चुका है, विचारण न्यायालय केवल इस आधार पर वादपत्र को अस्वीकार करने में न्यायोचित नहीं था कि वाद का मूल्यांकन किया गया है या कृषि भूमि के लिए लागू प्रावधानों के अनुसार न्यायालय शुल्क का भुगतान किया गया है। प्रस्तुतीकरण यह है कि वाद के गलत मूल्यांकन या कमी युक्त न्यायालय शुल्क का मुद्दा बाद में विचारण का विषय बन सकता है लेकिन वही, स्वतः में, इसकी दहलीज पर वादपत्र को अस्वीकार करने के लिए आधार नहीं बन सकता था।

10. प्रस्तुत एक अन्य तर्क 2006 की संहिता की धारा 4(14) पर आधारित है जो "भूमि" की परिभाषा निहित करती है और यह आग्रह किया जाता है कि चूंकि प्रतिवादी-प्रत्यर्थी संख्या 6 के अनुसार ही, भूमि कृषि से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोगित नहीं है, यह 2006 की संहिता के परिप्रेक्ष्य से परे चली जाती है और इसलिए, वादपत्र को अस्वीकार करने के लिए संहिता का कोई प्रावधान आमंत्रित नहीं किया जा सकता था।

प्रत्यर्थियों के तर्क

11. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता प्रस्तुत करते हैं कि आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन एक आवेदन पर विचार करने के लिए, केवल वादपत्र में निहित कथनों को देखा जा सकता है और चूंकि वादपत्र गैर-कृषि के रूप में भूमि की प्रकृति को प्रकट नहीं करता है, बल्कि वादी ने स्वयं कृषि भूमि के मूल्यांकन के लिए लागू सिद्धांतों पर वाद का मूल्यांकन किया है, 1950 के अधिनियम की धारा 143 के अधीन भूमि को गैर-कृषि घोषित करने के संबंध में आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन में निहित मात्र कथन अप्रासंगिक होगा। यह भी आग्रह किया जाता है कि एक आवेदन में निहित कथन को प्रतिवादियों की ओर से एक स्वीकारोक्ति नहीं माना जा सकता ताकि आवेदन पर विचार करते समय वाद की पोषणीयता का न्यायनिर्णयन किया जा सके। वाद में दावा की गई डिक्री अनुदत्त करने के लिए सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के संबंध में, यह आग्रह किया जाता है कि स्वीकार्यतः, वादी भूमि का स्वामी या भूमिधर नहीं है और यदि, विक्रय विलेख निरस्त भी किए जाते हैं, तो वही वादी को भूमि के संबंध में स्वामित्व या भूमिधारी अधिकार प्रदान नहीं करेगा और इसलिए, अपने पक्ष में कोई घोषणा, यदि कोई हो, प्राप्त करने के लिए वादी को 1950 के अधिनियम की धारा 144 के अनुसार राजस्व न्यायालय का दृष्टिगोचर होना चाहिए और इसलिए, 2006 की संहिता की धारा 206 (2)(b) के साथ पठित III अनुसूची में निहित प्रविष्टियों और II अनुसूची में निहित प्रविष्टियों के दृष्टिगत, केवल राजस्व न्यायालय को अधिकार क्षेत्र होगा; सिविल न्यायालय का अधिकार क्षेत्र वर्जित होगा और इसलिए, विचारण न्यायालय ने कोई त्रुटि नहीं की है। अपने प्रस्तुतीकरणों के समर्थन में, प्रत्यर्थियों के विद्वान अधिवक्ता ने निम्नलिखित प्राधिकारों पर निर्भरता रखी है:-

- (i) श्री राम एवं अन्य बनाम प्रथम ए.डी.जे. एवं अन्य, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 1250;
- (ii) कमला प्रसाद एवं अन्य बनाम किशना कांत पाठक एवं अन्य, (2007)4 एस.सी.सी. 213;
- (iii) जय प्रकाश सिंह बनाम बच्चू लाल एवं अन्य, 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला. 3522;
- (iv) प्यारे लाल बनाम शुभेन्द्र पिलानिया (नाबालिग) प्राकृतिक संरक्षक (पिता) श्री प्रदीप कुमार पिलानिया के माध्यम से एवं अन्य, (2019) 3 एस.सी.सी. 692;
- (v) बंसराज एवं अन्य बनाम मोती एवं अन्य, 2019 एस.सी.सी. ऑनलाइन इला. 4238;
- (vi) सरला पाल एवं अन्य बनाम अपर जिला न्याया धीश, न्यायालय संख्या 6, कानपुर देहात एवं अन्य, (2019) 144 आर.डी. 751;
- (vii) विजय पाल एवं अन्य बनाम राजेन्द्र कुमार, 2021 (4) ए.डी.जे. 182;
- (viii) श्री सूर्य डेवलपर्स एंड प्रमोटर्स बनाम एन. सैलेश प्रसाद एवं अन्य, (2022)5एस.सी.सी. 736;
- (ix) श्रीमती कुशमा देवी बनाम दर्शन सिंह एवं 4 अन्य; 2024 (4) ए.डी.जे. 247;
- (x) भागवती देवी बनाम राधे श्याम एवं अन्य, 1976 (2) ए.एल.आर. 702
- (xi) नरेन्द्र कुमार मित्तल एवं अन्य बनाम नूपुर हाउसिंग डेवलपमेंट प्रा. लि., (2020) 20 एस.सी.सी. 158;
- (xii) मंगू सिंह एवं अन्य बनाम राम औतार, 2024 (9) ए.डी.जे. 351।"

प्रतिद्वंद्वी तर्कों का विश्लेषण

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने के पश्चात्, यह न्यायालय पाता है कि वादपत्र को आदेश VII के नियम 11 के उप-नियम (d) को आमंत्रित करके अस्वीकार किया गया है, अर्थात् इस मामले में यू.पी. राजस्व संहिता, 2006 का वर्जन और इसलिए, यह आदेश VII नियम 11 (d) सी.पी.सी. के प्रावधानों का सर्वप्रथम संदर्भ लेना उचित समझता है जो इस प्रकार पठनीय है:-

"आदेश VII नियम 11 सी.पी.सी.

11. वादपत्र की अस्वीकृति - निम्नलिखित मामलों में वादपत्र को अस्वीकार किया जाएगा:-

.....

(डी) जहां वादपत्र में कथन से वाद किसी विधि द्वारा वर्जित प्रतीत होता है;"

13. यह सर्वविदित है कि सी.पी.सी. में अधिनियम संख्या 46/1999 द्वारा दिनांक 01.07.2002 से भारी संशोधन किया गया था। संशोधनों में से एक आदेश VII के नियम 14 में किया गया था जो वादपत्र में निर्भरित दस्तावेजों से संबंधित है। नियम को यहां उद्धृत किया जाता है:-

"आदेश VII नियम 14

वादपत्र में निर्भरित दस्तावेज

14. वादपत्र के आधार के दस्तावेज का प्रस्तुतीकरण.-

(1) जहां एक वादी किसी दस्तावेज के आधार पर वाद लाता है या अपने दावे के समर्थन में अपने कब्जे या शक्ति में किसी दस्तावेज पर निर्भर करता है, वह ऐसे दस्तावेजों को एक सूची में प्रविष्ट करेगा, और जब वादपत्र उसके द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तो उसे न्यायालय में प्रस्तुत करेगा और उसी समय, दस्तावेज एवं उसकी एक प्रति वादपत्र के साथ दाखिल किए जाने हेतु परिदत्त करेगा।

(2) जहां ऐसा कोई दस्तावेज वादी के कब्जे या शक्ति में नहीं है, वह जहां कहीं संभव हो, कथन करेगा कि यह किसके कब्जे या शक्ति में है।

(3) एक दस्तावेज जो वादी द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना चाहिए जब वादपत्र प्रस्तुत किया जाता है, या वादपत्र में जोड़ी जाने वाली या संलग्न की जाने वाली सूची में प्रविष्ट किया जाना चाहिए किंतु तदनुसार प्रस्तुत या प्रविष्ट नहीं किया गया है, न्यायालय की अनुमति के बिना, वाद की सुनवाई पर उसकी ओर से साक्ष्य में ग्रहण नहीं किया जाएगा।

(4) इस नियम में कुछ भी वादी के साक्षियों की प्रतिपरीक्षा के लिए प्रस्तुत दस्तावेजों, या केवल उसकी स्मृति को ताजा करने के लिए किसी साक्षी को सौंपे गए दस्तावेजों पर लागू नहीं होगा।"

14. नियम 14 के संशोधित प्रावधान, इसलिए, वादी पर यह दायित्व डालते हैं कि वह दस्तावेजों को एक सूची में प्रविष्ट करे और जब वादपत्र प्रस्तुत किया जाता है तो उन्हें प्रस्तुत करे जब वह ऐसे दस्तावेजों के आधार पर वाद लाता है या उन पर निर्भर करता है जो अपने दावे के समर्थन में उसके कब्जे या शक्ति में हैं। नियम 14 का उप-नियम (3) ऐसे दस्तावेजों के पश्चातवर्ती प्रस्तुतीकरण के विरुद्ध वर्जन उत्पन्न करता है और प्रावधान करता है कि वही न्यायालय की अनुमति के बिना वाद की सुनवाई पर साक्ष्य में ग्रहण नहीं किए जाएंगे। संशोधित प्रावधानों के दृष्टिगत, विधायिका का आशय स्पष्ट हो जाता है कि वादपत्र में निहित कथन को वादपत्र के साथ प्रस्तुत दस्तावेजों के साथ पढ़ा जाना है और अभिवचनों को वादपत्र के साथ दाखिल दस्तावेजों से पृथक नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **प्रेम कुमार रस्तोगी बनाम मेसर्स ऑन-यूपी ऑटोमोबाइल्स प्रा. लि. एवं अन्य, 2019 (3) ए.डी.जे. 491 (डी.बी.) (एल.बी.)** में समान दृष्टिकोण लिया गया है। निर्णय से संगत उद्धरण इस प्रकार पुनरुत्पादित है:-

".....

23. उपर्युक्त उद्धृत प्रावधान अर्थात् नियम 11 विशेष आधारों पर वादपत्र के प्रत्याख्यान से संबंधित है और नियम 14 वादी द्वारा दस्तावेजों के प्रस्तुतीकरण से संबंधित है जिन पर वादी वाद लाता है या निर्भर करता है। नियम 14 के अवलोकन से यह प्रकट होगा कि यदि कोई वादी किसी दस्तावेज के आधार पर वाद लाता है या किसी दस्तावेज पर निर्भर करता है तो उस स्थिति में वह उक्त दस्तावेज न्यायालय में तब प्रस्तुत करेगा जब वादपत्र प्रस्तुत किया जाता है। दूसरे शब्दों में, वादी वाद/दस्तावेज के आधार को जिस पर वादपत्र आधारित है, वाद दाखिल करने या वादपत्र प्रस्तुत करने के समय दाखिल करने के दायित्व के अधीन है।

24. कहने की आवश्यकता नहीं है कि दोनों प्रावधान आदेश 7 के अंग एवं भाग हैं। आदेश 7 का नियम 10 न्यायालय को अधिकार क्षेत्र के अभाव में वादपत्र को सक्षम अधिकार क्षेत्र के न्यायालय में प्रस्तुत करने के लिए वापस करने के लिए प्राधिकृत करता है।

25. उपर्युक्त प्रावधानों का संयुक्त पठन यह प्रकट करेगा कि न्यायालय आदेश 7 नियम 14 के अधीन दाखिल दस्तावेजों पर विचार करने के लिए सशक्त है, जो वादपत्र में किए गए आरोपों/कथनों के समर्थन में वाद/वादपत्र के आधार के रूप में दाखिल किए जाते हैं, उस समय जब सी.पी.सी. के नियम 10 या नियम 11 के अधीन किए गए आवेदन से निपटा जा रहा हो।"

15. तत्काल मामले में, वादपत्र के प्रस्तुतीकरण के समय प्रस्तुत दस्तावेज उसकी फोटोस्टेट प्रतियां नहीं हैं बल्कि प्राथमिक या द्वितीयक साक्ष्य की श्रेणी में आते हैं और अभिलेख से यह स्पष्ट है कि विवादित विक्रय विलेखों की प्रमाणित प्रतियां न केवल वादियों द्वारा दस्तावेजों की सूची में प्रविष्ट की गईं बल्कि वही उसके दावे के समर्थन में दाखिल की गईं। इन दस्तावेजों का क्या भविष्य होगा या विचारण या वाद में लिए जाने वाले अंतिम निर्णय पर उनका प्रभाव पूर्णतः भिन्न है, तथापि, जैसा कि उपर्युक्त अवलोकित किया गया है, जब न्यायालय VII नियम 11 सी.पी.सी. के अधीन आवेदन पर विचार करने के लिए अग्रसर होता है, वादपत्र के साथ दाखिल दस्तावेजों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, बल्कि, उन्हें वादपत्र में किए गए कथनों के साथ पढ़ा जाएगा।

16. इसलिए, यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या इस अपील को जन्म देने वाला वाद 2006 की संहिता के प्रावधानों द्वारा वर्जित है, जब वादपत्र में निहित कथन को वाद द्वारा चुनौती दिए गए पंजीकृत विक्रय विलेखों में निहित उल्लेखों के साथ पढ़ा जाता है, तो यह पाया जाता है कि सभी विक्रय विलेखों ने विक्रय/क्रय के प्रयोजन को "आवासीय" प्रकट किया और स्टाम्प ड्यूटी आवासीय संपत्तियों के लिए लागू वृत्त दरों पर भुगतान की गई थी। इसके अतिरिक्त, दिनांक 02.05.2014 के विक्रय के लिए करार ने भी वर्णित किया कि स्टाम्प ड्यूटी आवासीय संपत्तियों के लिए लागू वृत्त दरों पर भुगतान की गई थी। किसी भी दस्तावेज में यह कहीं भी प्रावधानित नहीं है कि विवादित भूमि प्रकृति में कृषि है। अग्रतर वादी द्वारा दाखिल दस्तावेजों की सूची में प्रश्नगत संपत्ति से संबंधित राजस्व अभिलेख सम्मिलित थे जिनमें सक्षम प्राधिकारी द्वारा 1950 के अधिनियम की धारा 143 के अधीन संपत्ति को "गैर-कृषि" घोषित करने की घोषणा का संदर्भ निहित था।

17. जब उपर्युक्त दस्तावेजों का 2006 की संहिता में निहित "भूमि" की परिभाषा पर आधारित श्री सी.बी. यादव के तर्कों के प्रकाश में विश्लेषण किया जाता है, तो यह न्यायालय इसे कुछ अन्य प्रावधानों के साथ पुनरुत्पादित करना उपयुक्त समझता है। 2006 की संहिता के संगत प्रावधान इस प्रकार उद्धृत किए जाते हैं:-

"4(12). 'जोत' का अर्थ एक कार्यकाल या एक पट्टा, व्यवस्था या अनुदान के अधीन धारित भूमि का एक पार्सल है;

4(14). 'भूमि', अध्याय VII एवं VIII और धाराओं 80, 81 एवं धारा 136 को छोड़कर, का अर्थ कृषि से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोगित भूमि है;

144. कार्यकाल-धारकों द्वारा घोषणात्मक वाद.- (1) किसी जोत या उसके भाग का भूमिधर या आसामी होने का दावा करने वाला कोई व्यक्ति, चाहे अनन्यतः या किसी अन्य व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से, ऐसे जोत या भाग में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए वाद ला सकता है।

(2) उप-धारा (1) के अधीन संस्थित प्रत्येक वाद में जो द्वारा या की ओर से संस्थित किया गया है:-.

(ए) एक भूमिधर, राज्य एवं ग्राम पंचायत आवश्यक पक्षकार होंगे;

(बी) एक *आसामी*, भूमि-धारक आवश्यक पक्षकार होगा

206. सिविल न्यायालय एवं राजस्व न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र.- (1) समय-समय पर प्रवृत्त किसी विधि में निहित किसी बात के होते हुए भी, किंतु इस संहिता के प्रावधानों के अधीन, कोई सिविल न्यायालय किसी वाद, आवेदन -या कार्यवाही का संज्ञान नहीं लेगा जिससे किसी ऐसे विषय पर निर्णय या आदेश प्राप्त किया जाए जिसे राज्य सरकार, बोर्ड, कोई राजस्व न्यायालय या राजस्व अधिकारी, इस संहिता द्वारा या इसके अधीन, अवधारित, निर्णीत या निस्तारित करने के लिए सशक्त किया गया है।

(2) उप-धारा (1) के प्रावधानों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, और इस संहिता द्वारा या इसके अधीन अन्यथा अभिव्यक्त रूप से प्रावधानित किए जाने को छोड़कर-

(ए) कोई सिविल न्यायालय द्वितीय अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी विषय पर अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा; और

(बी) तृतीय अनुसूची के [स्तंभ 3] में विनिर्दिष्ट राजस्व न्यायालय या राजस्व अधिकारी के अतिरिक्त कोई न्यायालय उसके [स्तंभ 2] में विनिर्दिष्ट किसी वाद, आवेदन या कार्यवाही का संज्ञान नहीं लेगा।

(3) इस संहिता में निहित किसी बात के होते हुए भी, यह आक्षेप कि उप-धारा (2)(बी) में उल्लिखित न्यायालय या अधिकारी को किसी वाद, आवेदन या कार्यवाही के संबंध में अधिकार क्षेत्र था या नहीं था, किसी अपीलीय, पुनरीक्षण या निष्पादन न्यायालय द्वारा ग्रहण नहीं किया जाएगा, जब तक कि आक्षेप प्रथम अवसर पर, शीघ्रतम अवसर पर, एवं सभी मामलों में जहां मुद्दे निर्धारित किए जाते हैं या ऐसे निर्धारण से पूर्व, अवर न्यायालय या अधिकारी के समक्ष नहीं लिया गया था, और जब तक कि न्याय की परिणामी विफलता नहीं हुई है।"

18. जहां तक 2006 की संहिता की धारा 206 के संगत अनुसूचियां II एवं III का संबंध है, जैसा कि विचारण न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश में विचार किया गया है, न्यायालय को उन्हें उद्धृत या पुनरुत्पादित करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह सरल कारण के लिए एक निरर्थक चित्रण होगा कि धारा 206 के प्रावधान संबंध अनुसूचियों के साथ पठित केवल तभी संगत हो सकते थे जब विवाद 2006 की संहिता की धाराओं 4(14) एवं 4(12) के अधीन क्रमशः परिभाषित "भूमि" या "जोत" के संबंध में हो न कि उस भूमि या जोत के संबंध में जो वादपत्र और/या संबंध दस्तावेजों से परावर्तित अपनी प्रकृति के कारण ही संहिता के परिप्रेक्ष्य से बाहर चली जाती है। चूंकि विचारण न्यायालय ने धारा 206 के वर्जन को आमंत्रित किया है और यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी-अपीलार्थी को संहिता 2006 की धारा 144 के अधीन घोषणा का दावा करना चाहिए, यह अवलोकित करना है कि धारा 144 तब लागू होती है जब किसी जोत या उसके भाग का अपने आप को 'भूमिधारी' या 'आसामी' होने का दावा करने वाला कोई व्यक्ति ऐसे जोत या उसके भाग में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए वाद लाता है। 'जोत', संहिता की धारा 4(12) के अनुसार, एक कार्यकाल या एक पट्टा, व्यवस्था या अनुदान के अधीन धारित "भूमि के टुकड़े" के रूप में परिभाषित किया गया है। 'भूमि', धारा 4(14) के अनुसार, का अर्थ कृषि से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोगित भूमि है।

19. जैसा कि उपर्युक्त उल्लिखित किया गया है, चूंकि विवादित भूमि कृषि से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोगित नहीं है, इसे "जोत" नहीं कहा जा सकता है और इसलिए, धारा 144 के प्रावधान लागू नहीं होंगे। वे इस कारण से भी लागू नहीं होंगे कि वादी भूमि के 'भूमिधर' या 'आसामी' के रूप में दावे के साथ नहीं आया है बल्कि सिविल न्यायालय के समक्ष पंजीकृत दिनांक 02.05.2014 के विक्रय के लिए करार एवं उसके अनुसरण में अपने पक्ष में कुछ विक्रय विलेखों पर आधारित दावे की अवहेलना में अपने हित के प्रतिकूल विक्रय विलेखों के निष्पादन और शेष भूमि के विक्रय विलेख के अपने पक्ष में निष्पादन न होकर तृतीय पक्षकारों के पक्ष में निष्पादन से उत्पन्न शिकायत उठाई है।

20. यह अवलोकित करना भी महत्वपूर्ण है कि वादी-अपीलार्थी एवं प्रतिस्पर्धी प्रतिवादी-प्रत्यर्थी संख्या 6 दोनों निर्माण/अवसंरचना कंपनियां हैं और इस अपील में सभी अवसरों पर तर्कों के दौरान, दोनों पक्षों ने हस्तांतरितियों द्वारा स्थल पर निर्माणों को उठाने के संबंध में एक-दूसरे के विरुद्ध आरोप उठाए। यह भी परावर्तित करता है कि भूमि न तो कृषि से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित है और न ही अधिभोगित है और यहां तक कि विक्रय विलेख भी आवासीय निर्माणों को उठाने के लिए अभिप्रेत हैं।

21. न्यायालय उद्धृत प्राधिकारों के आधार पर विस्तृत विवेचना में प्रवेश नहीं करना चाहता है जो लिखित लिखत को निरस्त करने या शून्य एवं निष्प्रभावी न्यायनिर्णीत करने के लिए डिक्री अनुदत्त करने की सिविल न्यायालय की शक्ति के संबंध में है जब ऐसे न्यायनिर्णयन की मांग करने वाला व्यक्ति अभिलिखित कार्यकाल-

धारक नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि, इस मामले के तथ्यों में, एक बार यह पाया जाता है कि विक्रय के लिए करार या चुनौती के अधीन विवादित विक्रय विलेखों द्वारा आच्छादित विवादित भूमि "भूमि" या "जोत" की परिभाषा से परे चली गई है, तो 2006 की संहिता का कोई प्रावधान लागू नहीं होगा और उस स्थिति में, केवल सिविल न्यायालय को प्रार्थित डिक्री अनुदत्त करने का अधिकार क्षेत्र होगा।

22. जहां तक वाद के कथित गलत मूल्यांकन का संबंध है, विचारण न्यायालय के लिए यह सदैव खुला है कि वह उचित मूल्यांकन एवं न्यायालय शुल्क के भुगतान के संबंध में मुद्दों को प्रारूपित करे और उस स्थिति में, उपयुक्त आदेश पारित किया जा सकता है किंतु, कार्यवाहियों के इस चरण पर, भू-राजस्व के तीस गुना पर वाद के मूल्यांकन पर आधारित मात्र कथन 2006 की संहिता के प्रावधानों का वर्जन उत्पन्न नहीं कर सकता ताकि आदेश VII नियम 11 (d) सी.पी.सी. के अधीन वादपत्र के प्रत्याख्यान का औचित्य सिद्ध हो सके।

23. यद्यपि श्री यादव का तर्क है कि जब वाद खारिज किया गया था, तब निषेधाज्ञा लागू थी और इसलिए, यदि न्यायालय अपील स्वीकार करता है और वाद को पुनर्जीवित करता है, तो उसे निषेधाज्ञा आदेश को भी पुनर्जीवित करना चाहिए। यह न्यायालय इस तर्क को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है, क्योंकि विचाराधीन वाद के संस्थित होने से पूर्व, वादी द्वारा मूल वाद संख्या 1183/2023 नामक एक अन्य वाद दायर किया गया था, जिसमें विवादित भूमि के अधिकारों के अभिलेख के संदर्भ में 10.10.2023 को एक सशर्त अंतरिम आदेश पारित किया गया था और उसका संदर्भ आगामी वाद के वाद में भी निहित है। यहाँ तक कि इस अपील को जन्म देने वाले आगामी वाद में पारित एकपक्षीय अंतरिम निषेधाज्ञा आदेश भी इसी आधार पर सशर्त है। इसलिए, हालांकि न्यायालय इस बात से संतुष्ट है कि वादपत्र को अस्वीकार करना अवैध है, लेकिन उसे निषेधाज्ञा आदेश को पुनर्जीवित करने के लिए कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है, क्योंकि इस संबंध में इस न्यायालय द्वारा की गई कोई भी टिप्पणी दो मुकदमों में पारित निषेधाज्ञा आदेश को रद्द/संशोधित कर सकती है और यह इस अपील के दायरे से बाहर होगा।

निष्कर्ष

24. उपरोक्त के मद्देनजर, निर्णय का एकमात्र बिंदु वादी-अपीलकर्ता के पक्ष में यह मानते हुए दिया जाता है कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता, 2006 के प्रावधानों का हवाला देकर वाद को खारिज करना विधिसम्मत नहीं था और विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करने में घोर त्रुटि की है।

25. परिणामस्वरूप, अपील सफल होती है और **स्वीकार** की जाती है।

26. इस निर्णय के प्रथम पैराग्राफ में वर्णित निर्णय, आदेश और डिक्री को **अपास्त** किया जाता है। मूल वाद संख्या 828/2024 का वाद सभी प्रयोजनों के लिए **पुनर्जीवित** किया जाता है।

27. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह विचारण न्यायालय का अभिलेख सिविल न्यायाधीश, (वरिष्ठ प्रभाग), गौतम बुद्ध नगर को तत्काल प्रेषित करे।

(2025) 1 ILRA 373

पुनरीक्षण अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

एस.सी.सी. पुनरीक्षण संख्या 95, 2023

श्री रमन अरोड़ा

...पुनरीक्षणकर्ता

बनाम

सुशील कुमार (मृतक) एवं अन्य

.....विपक्षी

पुनरीक्षणकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

महेंद्र, मोहन श्रीवास्तव

विपक्षीगण की ओर से अधिवक्ता:

विजय प्रकाश मिश्रा

क. किरायेदारी कानून - अलिखित समझौते के मामलों में बेदखली के मुकदमों की स्वीकार्यता - उत्तर प्रदेश नगरीय परिसर किरायेदारी विनियमन अधिनियम, 2021 - उत्तर प्रदेश सिविल कानून संशोधन अधिनियम, 1972 - केंद्रीय प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887।

धारा 1(4) को पढ़ने से ही यह स्पष्ट है कि विधानमंडल का इरादा 2021 के अधिनियम संख्या 16 को अध्यादेश जारी होने अर्थात् 11.01.2021 से पूर्वव्यापी प्रभाव देने का था और इसलिए, इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि अधिनियम 11.01.2021 से लागू माना जाएगा। (प्रस्तर 7)

ख. अलिखित समझौते के मामलों में बेदखली मुकदमों की स्वीकार्यता - कोई भी प्रावधान जो अपनी भाषा में बहुत स्पष्ट है, उसकी व्याख्या अन्यथा उसके आवेदन के दायरे को बढ़ाने या उसे कम करने के लिए नहीं की जा सकती।

धारा 38(2) की भाषा बहुत स्पष्ट है और यह उन मामलों में किराया प्राधिकरण द्वारा अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में रोक लगाती है जब 2021 के अधिनियम संख्या 16 की पहली अनुसूची के तहत निर्धारित प्रारूप के अनुसार मकान मालिक और किरायेदार के बीच लिखित समझौता नहीं होता है। विधायिका हर शब्द का प्रयोग सावधानीपूर्वक और सार्थक उद्देश्य से करती है। 2021 के अधिनियम का उद्देश्य नए कानूनों के साथ मौजूदा किरायेदारी कानूनों में सुधार करना है और मकान मालिक और किरायेदार दोनों के हितों की रक्षा के उद्देश्य से किराए, शर्तों और किरायेदारी की अवधि के बारे में अनिश्चितताओं को दूर करने के लिए पक्षों को लिखित रूप में किरायेदारी समझौते करने के लिए बाध्य करना है। अलिखित किरायेदारी के मामलों में मामलों की सुनवाई के लिए वर्तमान किराया प्राधिकरण में कोई भी हस्तक्षेप अधिनियम के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा। (प्रस्तर 8)

ग. यदि समान संख्या वाली पीठ किसी विधिक मुद्दे पर पूर्ववर्ती पीठ द्वारा व्यक्त किए गए विचार से भिन्न विचार पर पहुंचती है, तो उसे मामले को एक बड़ी पीठ को सौंप देना चाहिए। (प्रस्तर 9)

इस प्रकार, यदि समान संख्या वाली पीठ इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि पिछली समन्वय पीठ ने या तो कानून के किसी विशेष प्रावधान की अनदेखी की है या उसका उचित मूल्यांकन नहीं किया है, तो उसके पास मामले को एक बड़ी पीठ को सौंपने का ही विकल्प है। औचित्य और न्यायिक अनुशासन बनाए रखने के लिए, वह पूरी तरह से अलग दृष्टिकोण नहीं अपना सकती। (प्रस्तर 10)

इस प्रकार, चूंकि प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत पक्षकारों के बीच अलिखित समझौते के मामले में लघु वाद को राष्ट्रपति की सहमति से उत्तर प्रदेश सिविल विधि (संशोधन) अधिनियम, 1972 द्वारा लागू किया गया है, इसलिए इस आधार पर और *अमित गुप्ता (इंफ्रा)* के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के मद्देनजर वाद को पोषणीय माना जाता है। (पैरा 11)

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया। (ई-4)

अनुसरण की गई मिसाल:

1. अमित गुप्ता बनाम गुलाब चंद्र कनोडिया और श्री मेवाक राम, मनु/यूपी/1559/2023 एससीसी पुनरीक्षण संख्या 158/2022 (प्रस्तर 4)
2. केशव देव खेमका समाज सेवा सदम समिति बनाम कुलदीप चंद मलिक, एससीसी पुनरीक्षण दोष संख्या 48/2022 का निर्णय दिनांक 15.05.2023 (प्रस्तर 4)
3. मैरी पुष्पम बनाम तेल्वी कुरुसुमरी और अन्य, (2024) 3 एससीसी 224 (प्रस्तर 9)

पूर्व उदाहरण:

अमरजीत सिंह, रिट ए संख्या 3023/2024

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. पुनरीक्षण आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मोहन श्रीवास्तव और किरायेदार प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री विजय प्रकाश मिश्रा को सुना गया।

2. इस पुनरीक्षण आवेदन के माध्यम से, पुनरीक्षण आवेदक ने अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 15, बुलंदशहर द्वारा दिनांक 15.07.2023 को पारित आदेश पर सवाल उठाया है, जिसके तहत उसने न्यायाधीश लघुवाद के समक्ष मकान मालिक द्वारा लगाए गए बेदखली के मुकदमे की पोषणीयता को बरकरार रखा है, जिसमें अधिनियम संख्या 16, 2021, अर्थात् उत्तर प्रदेश नगरीय परिसर किरायेदारी विनियमन अधिनियम, 2021 के प्रवर्तन का कानूनी दृष्टिकोण 24.08.2021 को राजपत्र में प्रकाशन की तारीख से प्रभावी है। न्यायाधीश लघुवाद न्यायालय के समक्ष वाद की पोषणीयता पर प्रश्न उठाते हुए, किरायेदार ने आपत्ति की थी कि अध्यादेश, जो बाद में एक अधिनियम में परिवर्तित हो गया था, 11.01.2021 को लागू किया गया था और इसलिए, यूपी नगरीय परिसर किरायेदारी विनियमन अधिनियम, 2021 की धारा-1 की उपधारा 4 के मददेनजर अधिनियम को 11.01.2021 से प्रभावी माना जाएगा।

3. किरायेदार/पुनरीक्षण आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि सक्षम विधायिका द्वारा अधिनियमित कानून अध्यादेश, शासकीय आदेश और राजपत्र में अधिनियम की अधिसूचना सहित कार्यकारी अधिसूचनाओं पर प्रबल होगा और इसलिए, एक बार जब अधिनियम ने धारा 1 (4) के तहत 11.01.2021 से इसके प्रवर्तन के लिए प्रावधान किया, तो न्यायालय ने कानून में एक गलत दृष्टिकोण अपनाया कि इसका प्रवर्तन आधिकारिक राजपत्र में इसके प्रकाशन की तारीख से प्रभावी माना जाएगा।

4. इसके विपरीत, मकान मालिक प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि भले ही अधिनियम को 11.01.2021 से लागू माना जाता है, इस तथ्य के मददेनजर कि पक्षों के बीच पट्टे पर दिए गए परिसर के संबंध में कोई लिखित समझौता नहीं था, प्रांतीय लघु कारण अधिनियम, 1887 के तहत न्यायाधीश लघु कारण के समक्ष मुकदमा *अमित गुप्ता बनाम गुलाब चंद्र कनोडिया और श्री मेवाक राम और केशव देव खेमका समाज सेवा सदाम समिति बनाम कुलदीप चंद मलिक* के मामले में इस न्यायालय के फैसले के मददेनजर पूरी तरह से बनाए रखने योग्य था। *मनु/यूपी/1559/2023 एससीसी पुनरीक्षण संख्या 158/2022 और एससीसी पुनरीक्षण दोषपूर्ण संख्या 48/2022* 15.05.2023 को तय किया गया, जो अभी भी क्षेत्र में है। उनका तर्क है कि राष्ट्रपति की स्वीकृति के बाद उत्तर प्रदेश सिविल कानून संशोधन अधिनियम, 1972, न्यायाधीश लघु वाद के समक्ष अधिनियम संख्या 16/2021 की पहली अनुसूची द्वारा कवर नहीं किए गए अलिखित किरायेदारी समझौतों के संबंध में मुकदमे की पोषणीयता पर केवल इस आधार पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है कि लिखित में किरायेदारी समझौते या किराया प्राधिकरण को धारा 4 की

विभिन्न उप-धाराओं के तहत आवश्यक जानकारी नए अधिनियम की धारा 21 (2) के तहत आवेदन को बनाए रखने के लिए अनिवार्य नहीं है। उन्होंने न्यायालय को नए अधिनियम की धारा 38 (2) के तहत निहित प्रासंगिक प्रावधानों में ले जाया है जो विशेष रूप से किराया प्राधिकरण को केवल किरायेदारी समझौते के मामले में किरायेदारी विवादों की सुनवाई करने के लिए अधिकार क्षेत्र प्रदान करता है जो पहली अनुसूची में निर्दिष्ट निर्धारित प्रारूप के अनुसार इसे प्रस्तुत किए जाते हैं। नए अधिनियम की धारा 38 (2) को यहां पुनः प्रस्तुत किया गया है:

"(2) किराया प्राधिकरण का अधिकार क्षेत्र प्रथम अनुसूची में निर्दिष्ट अनुसार उसे प्रस्तुत किरायेदारी समझौते तक सीमित होगा और परिसर के शीर्षक या स्वामित्व के प्रश्न तक विस्तारित नहीं होगा।"

5. प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि धारा 38 की उप-धारा 2 के साथ-साथ धारा 4 की विभिन्न उप-धाराओं के तहत निहित प्रावधानों को पढ़ने से निश्चित रूप से एक विवेकपूर्ण मस्तिष्क इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि नए अधिनियम के तहत परिकल्पित लिखित समझौता 2021 के अधिनियम संख्या 16 की धारा 21 (2) के तहत प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि नया अधिनियम राज्य अधिनियम होने के नाते केवल राज्यपाल की सहमति वाला है, इसका उत्तर प्रदेश सिविल कानून संशोधन अधिनियम, 1972 पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, जो राष्ट्रपति की सहमति से शहरी भवनों के पट्टों के संबंध में बेदखली के मुकदमों को बनाए रखने के लिए उत्तर प्रदेश राज्य में अपने आवेदन में केंद्रीय प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 में संशोधन करता है। उनका तर्क है कि **अमरजीत सिंह (रिट ए संख्या 3023/2024)** के मामले में, जो समय के लिहाज से **अमित गुप्ता (पूर्वोक्त)** के बाद का है, इस मामले के पहलू पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया गया है और इसलिए यह एक बाध्यकारी न्यायिक मिसाल नहीं होगी। इसके अलावा, उनका यह भी तर्क है कि औचित्य के सिद्धांत पर, यदि एक समन्वय पीठ किसी अन्य समन्वय पीठ द्वारा अपने फैसले में पहले लिए गए निर्णय से अलग दृष्टिकोण अपना रही थी, जो समय के लिहाज से पहले था और जिसे खारिज नहीं किया गया था, तो बाद की समन्वय पीठ को मामले को एक बड़ी पीठ को भेज देना चाहिए था। उनका कहना है कि विचाराधीन परिसर के किरायेदारी/पट्टे के संबंध में पक्षों के बीच कोई लिखित समझौता नहीं होने के कारण, उत्तर प्रदेश सिविल कानून संशोधन अधिनियम, 1972 के तहत निहित प्रावधानों के मददेनजर लघु वाद पूरी तरह से पोषणीय था, जिसे राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त है, भले ही नया अधिनियम 11.01.2021 से लागू माना जाए।

6. संबंधित पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने और न्यायाधीश लघुवाद/अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 15, बुलंदशहर द्वारा दिनांक 15.07.2023 को पारित आदेश और **अमित गुप्ता (पूर्वोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय और **अमरजीत सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में दिए गए निर्णय का अवलोकन करने के बाद, मुझे प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों में बल मिलता है, हालांकि मैं स्वयं को न्यायाधीश लघुवाद द्वारा लिए गए इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं पाता हूं कि नया अधिनियम, अधिनियम संख्या 16/2021 होने के नाते, 24.08.2021 से ही लागू माना जाना चाहिए।

यद्यपि न्यायाधीश लघुवाद ने राज्यपाल द्वारा पूर्व में 11.01.2021 को जारी किए गए अध्यादेश का उल्लेख किया है, जिसे बाद में विधायी अधिनियम में बदल दिया गया, लेकिन वे अधिनियम संख्या 16/2021 की धारा 1 की उप-धारा 4 को समझने में विफल रहे। धारा 1 की उप-धारा 4 इस प्रकार है:

" 1.(4) यह 11 जनवरी, 2021 से लागू माना जाएगा।"

7. उपर्युक्त प्रावधान को पढ़ने से यह स्पष्ट है कि विधायिका का इरादा 2021 के अधिनियम संख्या 16 को अध्यादेश जारी होने अर्थात् 11.01.2021 से पूर्वव्यापी प्रभाव देने का था और इसलिए, इसमें कोई संदेह की गुंजाइश नहीं है कि अधिनियम 11.01.2021 से लागू माना जाएगा।

8. अब प्रश्न यह उठता है कि अलिखित समझौते के मामलों में बेदखली के मुकदमों की कानूनी स्थिति क्या है। अमित गुप्ता (पूर्वोक्त) में, ऐसे मुकदमों को प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 के तहत, अधिनियम संख्या 16/2021 के अस्तित्व में आने के बावजूद, पोषणीय माना गया है, लेकिन हाल ही में अमरजीत सिंह (पूर्वोक्त) में एक समन्वय पीठ ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया है, जिसमें कहा गया है कि अधिनियम संख्या 16/2021 की धारा 21(1) के तहत मकान मालिक के कहने पर बेदखली का मामला चलाने के लिए लिखित समझौता अनिवार्य नहीं है। विकसित सिद्धांत यह है कि नया अधिनियम सभी किराया मामलों को कवर करने के लिए एक मंच प्रदान करता है जब किरायेदारी पक्षों द्वारा स्वीकार की जाती है। माननीय न्यायाधीश के प्रति अत्यंत सम्मान के साथ, मुझे लगता है कि अधिनियम संख्या 16, 2021 की धारा 28 (2) के दायरे के बारे में, जहाँ तक उत्तर प्रदेश सिविल विधि संशोधन अधिनियम, 1972, जिसे राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त है, के अंतर्गत लघु वाद न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र की स्थिति का प्रश्न है, शायद ही कोई चर्चा हुई हो। धारा 38 (2) की भाषा अत्यंत स्पष्ट है और यह स्पष्ट रूप से उन मामलों में किराया प्राधिकारी द्वारा अधिकार क्षेत्र के प्रयोग पर रोक लगाती है जहाँ मकान मालिक और किरायेदार के बीच प्रथम दृष्टया निर्धारित प्रारूप के अनुसार लिखित समझौता नहीं हुआ है। अधिनियम संख्या 16, 2021 की अनुसूची। कोई भी प्रावधान जो अपनी भाषा में बहुत स्पष्ट है, उसकी व्याख्या उसके आवेदन के दायरे को बढ़ाने या उसे कम करने के लिए नहीं की जा सकती। विधायिका प्रत्येक शब्द का प्रयोग सावधानीपूर्वक और सार्थक उद्देश्य से करती है। 2021 के अधिनियम का उद्देश्य नए कानूनों के साथ मौजूदा किरायेदारी कानूनों में सुधार करना है और मकान मालिक और किरायेदार दोनों के हितों की रक्षा के उद्देश्य से किराए, शर्तों और किरायेदारी की अवधि के संबंध में अनिश्चितताओं को दूर करने के लिए पक्षों को लिखित रूप में किरायेदारी समझौते करने के लिए बाध्य करना है। अलिखित किरायेदारी के मामलों में मामलों की सुनवाई के लिए वर्तमान किराया प्राधिकरण में कोई भी हस्तक्षेप अधिनियम के मूल उद्देश्य को विफल कर देगा। अमित गुप्ता के मामले में बहुत विस्तृत विश्लेषण किया गया है, लेकिन अमरजीत सिंह के मामले में एक समन्वय पीठ के बाद के फैसले में यह सब लगभग अनदेखा रह गया है। न्यायालय ने इस पहलू पर चर्चा और विश्लेषण नहीं किया है कि क्या इस मामले (अमरजीत सिंह मामले) में की गई ऐसी व्याख्या, राष्ट्रपति की स्वीकृति वाले पूर्ववर्ती अधिनियम पर केवल

राज्यपाल की स्वीकृति के साथ राज्य अधिनियम को अधिभावी प्रभाव देगी और यदि हां, तो क्या ऐसी व्याख्या न्यायोचित होगी।

9. अब, प्रश्न इस अनुवर्ती निर्णय के संबंध में बाध्यकारी न्यायिक मिसाल का है। न्यायालयों ने बार-बार यह माना है कि यदि समान संख्या वाली पीठ किसी विधिक मुद्दे पर किसी पूर्ववर्ती पीठ द्वारा व्यक्त किए गए पूर्व दृष्टिकोण से भिन्न दृष्टिकोण पर पहुँचती है, तो उसे स्वामित्व में, मामले को एक बड़ी पीठ को भेज देना चाहिए। हाल ही में **मैरी पुष्पम बनाम तेलवी कुरुसुमरी एवं अन्य (2024) सर्वोच्च न्यायालय 224 के मामले में**, अनुच्छेद 20 और 21 के अनुसार, न्यायालय ने इस प्रकार निर्णय दिया है:

"20. समन्वय पीठों पर कानूनी स्थिति को इस न्यायालय द्वारा पंजाब राज्य बनाम देवेंस मॉडर्न ब्रुअरीज लिमिटेड में और अधिक विस्तार से बताया गया है:

339. न्यायिक अनुशासन में यह प्रावधान है कि एक समन्वय पीठ, किसी पूर्ववर्ती समन्वय पीठ के निर्णय का अनुसरण करेगी। यदि कोई समन्वय पीठ किसी अन्य पीठ द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांतों से सहमत नहीं है, तो मामला किसी बड़ी पीठ को भेजा जा सकता है।

340. हेल्सबरी के इंग्लैंड के कानून (चौथा संस्करण) खंड 26 के पृष्ठ 297-98 पैरा 578 में कहा गया है

'जब न्यायालय ने अपने या समन्वित क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के किसी पूर्व निर्णय की अनदेखी करते हुए निर्णय दिया हो, जो पहले मामले को कवर करता था, तो उसे प्रति इन्क्युरियम निर्णय दिया जाता है, ऐसी स्थिति में उसे यह निर्णय करना होता है कि किस मामले को आगे बढ़ाया जाए।'

21. हम पहले ही न्यायिक अनुशासन सुनिश्चित करने के महत्व पर चर्चा कर चुके हैं और इसे केंद्रीय दाउदी बोहरा समुदाय बोर्ड बनाम महाराष्ट्र राज्य में इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों द्वारा भी बरकरार रखा गया है, इस न्यायालय ने न्यायिक अनुशासन के नियमों की कानूनी स्थिति को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया है:

12. ... (1) इस न्यायालय द्वारा अधिक संख्या वाली पीठ द्वारा दिए गए निर्णय में प्रतिपादित विधि, कम संख्या वाली या समान संख्या वाली किसी भी बाद की पीठ पर बाध्यकारी होगी।

(2) कम कोरम वाली पीठ, अधिक कोरम वाली पीठ द्वारा कानून पर लिए गए दृष्टिकोण से असहमत या असहमत नहीं हो सकती। संदेह की स्थिति में, कम कोरम वाली पीठ केवल मुख्य न्यायाधीश का ध्यान आकर्षित कर सकती है और अनुरोध कर सकती है कि मामले को उस पीठ से अधिक कोरम वाली पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखा जाए जिसका निर्णय विचारार्थ आया है। केवल समान संख्या वाली पीठ ही समान

संख्या वाली पूर्ववर्ती पीठ द्वारा लिए गए दृष्टिकोण की सत्यता पर संदेह करते हुए राय व्यक्त कर सकती है, जिसके बाद मामले को उस पीठ के समक्ष सुनवाई के लिए रखा जा सकता है जिसका कोरम उस पीठ से अधिक हो जिसने उस कानून को निर्धारित करने का निर्णय सुनाया था जिसकी सत्यता पर संदेह है।

(महत्व जोड़ें)

10. इस प्रकार, यदि समान संख्या वाली पीठ इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि पिछली समन्वय पीठ ने या तो कानून के किसी विशेष प्रावधान की अनदेखी की है या उसका उचित मूल्यांकन नहीं किया है, तो उसके पास केवल एक ही विकल्प है कि वह मामले को किसी बड़ी पीठ को सौंप दे। औचित्य और न्यायिक अनुशासन बनाए रखने के लिए, वह पूरी तरह से अलग दृष्टिकोण नहीं अपना सकती।

11. इस प्रकार, चूंकि प्रांतीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम की धारा 15 के तहत पक्षकारों के बीच अलिखित समझौते के मामले में लघु वाद को राष्ट्रपति की सहमति से उत्तर प्रदेश सिविल कानून (संशोधन) अधिनियम, 1972 द्वारा लागू किया गया है, इसलिए मैं इस न्यायालय द्वारा **अमित गुप्ता (पूर्वोक्त)** के मामले में भी निर्धारित कानून के मददेनजर इस आधार पर वाद को पोषणीय मानता हूँ।

12. इस प्रकार, उपरोक्त के मददेनजर, मैं न्यायाधीश लघु वाद द्वारा अधिनियम संख्या 16/2021 की 24.08.2021 से लागू होने के संबंध में लिए गए दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूँ, मैं अभी भी मकान मालिक द्वारा दायर लघु वाद मुकदमे को न्यायाधीश लघु वाद के समक्ष बनाए रखने योग्य मानता हूँ।

13. अतः मैं मुकदमे की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने से इंकार करता हूँ।

14. अतः, इस आधार पर पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 377

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

प्रकरण अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 7309/2024

अंकित अग्रवाल

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती मोनिका अग्रवाल

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता :

परितोष जोशी, राघव देव गर्ग, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता :

अमृत शंकर दुबे

सिविल विधि- हिंदू विवाह अधिनियम, 1955- धारा 13बी - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 227--- याचिकाकर्ता संयुक्त राज्य अमेरिका में रहता है, इसलिए वह याचिका दायर करने के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं हो सका। हालांकि याचिकाकर्ता ने वर्चुअल मोड के माध्यम से अपनी उपस्थिति सुनिश्चित की जहां उसने अपनी पत्नी और अपने विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी धारक की पहचान सत्यापित की। याचिकाकर्ता अपनी याचिका को आगे बढ़ाने के लिए भारत वापस आने की स्थिति में नहीं था क्योंकि वह वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित एक कंपनी में कार्यरत है, इसलिए उसने एक आवेदन दायर करना पसंद किया जिसे खारिज कर दिया गया।--- इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि समय के साथ-साथ तकनीकी विकास बहुत हुआ है और वर्चुअल उपस्थिति के बहुत सारे तरीके हैं जैसे स्काइप, वीडियो कॉलिंग आदि, इसलिए वर्चुअल मोड के माध्यम से न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के आवेदन को खारिज नहीं किया जा सकता।—आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। ---अधीनस्थ अदालत को निर्देश जारी किए गए कि याचिकाकर्ता को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग या किसी अन्य इलेक्ट्रॉनिक मोड के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति दी जाए और उसे आगे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जाए। (प्रस्तर 9, 14 और 17)

याचिका स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर; (2017) 8 सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 746
2. शिल्पा चौधरी बनाम प्रधान न्यायाधीश एवं अन्य; 2016 (4) एडीजे 262.
3. आदित्य जगन्नाथ और अन्य; 2021 (1) एचएलआर 201 (एम.एफ.ए. संख्या 4453/2020 (एफसी)

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।

2. दिनांक 05.07.2024 को, इस न्यायालय ने प्रत्यर्थी को नोटिस जारी किया है और दिनांक 25.07.2024 के कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 22.07.2024 को नोटिस की तामील की गई है, लेकिन नोटिस

की तामील के बाद भी, उसकी ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ है, इसलिए, न्यायालय मामले को गुण-दोष के आधार पर तय करने के लिए आगे बढ़ रहा है।

3. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:-

“ i . हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत हिंदू विवाह याचिका संख्या 508/2023 (अंकित अग्रवाल बनाम मोनिका अग्रवाल) में विद्वान प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फिरोजाबाद द्वारा पारित दिनांक 16 मई 2024 को रद्द करते हुए कोई आदेश या निर्देश जारी करना।

ii. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13बी के तहत कार्यवाही में याचिकाकर्ता की शारीरिक उपस्थिति को छूट देने के लिए पारिवारिक न्यायालय, फिरोजाबाद के विद्वान प्रधान न्यायाधीश की अदालत को कोई आदेश या निर्देश जारी करें, जो कि हिंदू विवाह याचिका संख्या 508/2023 (अंकित अग्रवाल बनाम मोनिका अग्रवाल) के रूप में पंजीकृत है और याचिकाकर्ता को आगे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दी जा सकती है, जिसमें अदालत द्वारा वर्चुअल रूप से या अपने विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से की गई कोई भी मध्यस्थता शामिल है।”

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी का विवाह 25.07.2015 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार हुआ था। 2018 तक, याचिकाकर्ता नोएडा में कंप्यूटर इंजीनियर के रूप में काम कर रहा था और बाद में, याचिकाकर्ता प्रत्यर्थी के साथ संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थानांतरित हो गया। समय के साथ, पक्षों के बीच कुछ मतभेद हुए, जिससे याचिकाकर्ता के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही के साथ-साथ घरेलू हिंसा अधिनियम के प्रावधानों के तहत कार्यवाही शुरू हुई। अंत में, उपरोक्त कार्यवाहियों को तार्किक निष्कर्ष देने के लिए, याचिकाकर्ता और उसके विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी के बीच दिनांक 06.05.2023 को एक समझौता ज्ञापन/समझौता हुआ, जिसमें पक्षों के बीच आपसी सहमति से तलाक के लिए फिरोजाबाद के पारिवारिक न्यायालय में हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13बी के तहत याचिका दायर करने का निर्णय लिया गया। पक्षों के मध्य यह भी तय हुआ कि प्रत्यर्थी याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही नहीं करेगा। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता ने अपने विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13बी के अंतर्गत 06.05.2023 को फिरोजाबाद स्थित पारिवारिक न्यायालय में एक याचिका दायर की। उक्त याचिका एच.एम.पी. संख्या 508/2023 के रूप में पंजीकृत की गई।

5. प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फिरोजाबाद ने इस मामले में मध्यस्थता का निर्णय लिया है, लेकिन याचिकाकर्ता संयुक्त राज्य अमेरिका में रह रहा था, इसलिए वह याचिका दायर करने के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित नहीं हो सका। हालाँकि, याचिकाकर्ता ने वर्चुअल माध्यम से अपनी उपस्थिति सुनिश्चित की, जहाँ उसने अपनी पत्नी और अपने विशेष पावर ऑफ अटॉर्नी धारक की पहचान सत्यापित की। याचिकाकर्ता अपनी याचिका को आगे बढ़ाने के लिए भारत वापस आने की स्थिति में नहीं था क्योंकि वह वर्तमान में संयुक्त राज्य

अमेरिका स्थित एक कंपनी में कार्यरत है, इसलिए उसने दिनांक 09.05.2023 को एक आवेदन प्रस्तुत किया है। उक्त आवेदन पर विचार करने के बाद, प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फिरोजाबाद ने दिनांक 16.05.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा इसे अस्वीकार कर दिया है।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी से उत्पन्न इसी तरह का विवाद **अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर; (2017) 8 सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 746** में सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष आया था, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि न्यायालय वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम का भी उपयोग कर सकता है और माता-पिता या भाई-बहन जैसे करीबी रिश्तेदारों के माध्यम से पक्षों के वास्तविक प्रतिनिधित्व की भी अनुमति दे सकता है।

7. उन्होंने आगे कहा कि सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में, याचिकाकर्ता के आवेदन को अस्वीकार करना गलत है और दिनांक 16.05.2024 का आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

8. मैंने याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है तथा अभिलेखों के साथ-साथ संबंधित निर्णयों का भी अवलोकन किया है।

9. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि समय के साथ तकनीकी विकास बहुत हुआ है और वर्चुअल उपस्थिति के कई तरीके हैं जैसे स्काइप, वीडियो कॉलिंग आदि, इसलिए वर्चुअल मोड के माध्यम से न्यायालय के समक्ष उपस्थिति के लिए आवेदन को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

10. यह मुद्दा **शिल्पा चौधरी बनाम प्रधान न्यायाधीश एवं अन्य; 2016 (4) एडीजे 262** के मामले में भी इस न्यायालय के समक्ष था। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 1, 16, 17, 18, 19 एवं 20 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

“1. आवेदक और दूसरे प्रत्यर्थी ने 20 नवंबर 2010 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह किया। अगस्त 2013 में हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13बी के तहत एक संयुक्त याचिका मुजफ्फरनगर में पारिवारिक न्यायालय के समक्ष आपसी सहमति से तलाक की मांग करते हुए स्थापित की गई थी। याचिका का वाद संख्या 1149/2014 (श्रीमती शिल्पा चौधरी बनाम विक्रम सिंह) है। हालांकि अदालत ने तारीखें तय की थीं, लेकिन मामले की सुनवाई नहीं हो सकी और अंत में आवेदक अपना करियर बनाने के लिए बोस्टन, अमेरिका चली गई। आवेदक ने अपनी मां के पक्ष में परिवार के लिए और पारिवारिक न्यायालय के समक्ष विवाह विच्छेद के लिए समझौता करने के लिए पावर ऑफ अटॉर्नी निष्पादित की। 28 नवंबर 2015 को आवेदक ने अपने अधिवक्ता के माध्यम से एक आवेदन (11का) दायर किया और मामले के निर्णय/निस्तारण के लिए प्रार्थना की

16. पारिवारिक न्यायालयों में यह बात बढ़ती जा रही है कि एक पक्ष विदेश में रहता है। ऐसे पक्षों के लिए कई उचित कारणों से भारत आना हमेशा संभव नहीं हो पाता। किसी पक्ष की जाँच के निर्धारित दिन, न्यायालय में किसी अन्य आवश्यक कार्य में व्यस्तता के कारण कार्यवाही न तो चल पाती है और न ही पूरी हो पाती है। फिर भी, प्रौद्योगिकी, विशेष रूप से सूचना क्षेत्र में, अभूतपूर्व प्रगति हुई है। भारत में न्यायालय भी उपलब्ध तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रयास कर रहे हैं। स्काइप ऐसी ही एक सुविधा है, जो आसानी से उपलब्ध है। इसलिए, पारिवारिक न्यायालयों के लिए किसी विशेष मामले में आवश्यक स्काइप सुविधा प्रदान करने के लिए किसी भी पेशेवर अधिवक्ता की सहायता लेना उचित है। इस उद्देश्य के लिए, पक्षकारों को एक ऐसे अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अनुमति दी जा सकती है, जो एक मोबाइल उपकरण ला सकता है। स्काइप तकनीक का उपयोग करके, पारिवारिक न्यायालय न केवल विदेश में रहने वाले पक्षकारों की पहचान कर सकता है, बल्कि उनकी स्वतंत्र इच्छा और सहमति के बारे में भी पूछताछ कर सकता है। इससे मुकदमेबाजी की लागत में भारी कमी आएगी और न्यायालय का बहुमूल्य समय भी बचेगा। इसके अलावा, न्यायालय में मौजूद दूसरा पक्ष न केवल दूसरे पक्ष की पहचान करने में न्यायालय की मदद कर सकेगा, बल्कि आवश्यक जानकारी भी प्राप्त कर सकेगा।

17. अमिताभ बागची बनाम एना बागची¹⁰ में कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया, जिसमें न्यायालय ने डॉ. प्रफुल्ल (पूर्वोक्त) मामले पर भरोसा करते हुए यह निर्णय दिया कि "उपस्थिति" का अर्थ आवश्यक रूप से न्यायालय में वास्तविक भौतिक उपस्थिति नहीं है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 3 में प्रावधान है कि साक्ष्य का अर्थ है और इसमें वे सभी कथन शामिल हैं जिनकी न्यायालय जाँच के अधीन तथ्यों के संबंध में गवाहों द्वारा अपने समक्ष दिए जाने की अनुमति देता है या अपेक्षा करता है; इसलिए, साक्ष्य में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग भी शामिल होगी जो सभी मामलों में लागू होती है और आवश्यक रूप से आपराधिक मामलों में नहीं।

18. संशोधित सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 18 के नियम 4(3) के अनुसार, न्यायालय में उपस्थिति का अर्थ अनिवार्यतः शारीरिक उपस्थिति नहीं है। नियम 4(3) में न्यायाधीश की उपस्थिति में लिखित रूप से या यंत्रवत् साक्ष्य दर्ज करने का प्रावधान है।

19. कर्नाटक उच्च न्यायालय ने ट्वेंटीएथ सेंचुरी फॉक्स फिल्मस कॉर्पोरेशन बनाम एन.आर.आई. फिल्म प्रोडक्शन एसोसिएट्स (प्रा.) लिमिटेड¹¹ मामले में यह निर्णय दिया कि यांत्रिक प्रक्रिया में न्यायालय और आयुक्त दोनों के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्रक्रिया भी शामिल है। संशोधित साक्ष्य अधिनियम के अनुसार, उन्हें साक्ष्य का तरीका अपनाने का अधिकार है।

20. न्याय प्रदान करने का अर्थ है शीघ्र न्याय और पक्षकारों तथा गवाहों को न्यूनतम असुविधा के साथ न्याय प्रदान करना। यदि वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से साक्ष्य दर्ज करने की सुविधा उपलब्ध है, जिससे

पक्षकारों को किसी भी प्रकार की देरी या असुविधा से बचा जा सके, तो ऐसी सुविधाओं का उपयोग किया जाना चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि गवाह को अदालत में आकर प्रत्यक्ष रूप से गवाही देनी पड़े।”

11. सर्वोच्च न्यायालय ने **अमरदीप सिंह (पूर्वोक्त)** मामले में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के मुद्दे पर भी विचार किया है। संबंधित अनुच्छेद संख्या 20 और 21 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

“20. चूंकि हमारा विचार है कि धारा 13बी(2) में उल्लिखित अवधि अनिवार्य नहीं है बल्कि निर्देशात्मक है, इसलिए न्यायालय के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग करना खुला होगा जहां पक्षों के सहवास को फिर से शुरू करने की कोई संभावना नहीं है और वैकल्पिक पुनर्वास की संभावनाएं हैं।

21. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी कार्यवाही के संचालन में न्यायालय वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम का भी उपयोग कर सकता है और माता-पिता या भाई-बहन जैसे करीबी रिश्तेदारों के माध्यम से पक्षकारों के वास्तविक प्रतिनिधित्व की भी अनुमति दे सकता है, जहां पक्षकार किसी उचित और वैध कारण से व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने में असमर्थ हैं, जो न्याय के हित को आगे बढ़ाने के लिए न्यायालय को संतुष्ट कर सकता है।”

12. इसी तरह का विवाद कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष आदित्य जगन्नाथ एवं अन्य के मामले में भी आया था; 2021 (1) एचएलआर 201 (एम.एफ.ए. संख्या 4453/2020 (एफसी) जिसमें तथ्य भी इस मामले के समान हैं। उक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ संख्या 16 से 20 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

“16. हाल के दिनों में, हम देखते हैं कि जो पक्ष आपसी सहमति से तलाक के आदेश द्वारा अपने विवाह विच्छेद की मांग करते हैं, वे लंबी बातचीत और चर्चा के बाद ऐसा करते हैं। कई बार, दुनिया के विभिन्न हिस्सों में रहने के कारण, वे स्काइप, टेलीफोन या व्हाट्सएप कॉल, वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग आदि जैसी अन्य तकनीकों का उपयोग करते हैं। देश के विभिन्न हिस्सों या दुनिया भर में रहने वाले पक्षों और नौकरी या बीमारी आदि जैसी अन्य बाधाओं के कारण, दोनों पक्षों के लिए याचिकाओं पर हस्ताक्षर करना और उनका सत्यापन करना और आपसी सहमति से विवाह विच्छेद के लिए संयुक्त रूप से न्यायालय में याचिका प्रस्तुत करना संभव नहीं हो सकता है। वर्तमान मामले में ऐसा ही है। ऐसी परिस्थितियों में, याचिका के पक्षकारों में से एक पावर ऑफ अटॉर्नी/एजेंट नियुक्त करने की सुविधा का लाभ उठा सकता है, जिस पर पक्षकार को पारिवारिक न्यायालय या वैवाहिक या किसी अन्य राहत के लिए वर्तमान मामले की तरह किसी अन्य न्यायालय में दायर की जाने वाली कार्यवाही में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए पूर्ण विश्वास और भरोसा हो। इसलिए, विभिन्न अधिनियमों के प्रावधानों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। सामंजस्यपूर्ण ढंग से पढ़ा और व्याख्या किया गया हो, ताकि किसी कार्यवाही में किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिए पावर ऑफ अटॉर्नी धारक की नियुक्ति के माध्यम से लाभ उठाना या उसका सहारा लेना सुविधाजनक हो। यह विशेष रूप से, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जहाँ

पक्षकार आपसी सहमति से तलाक के आदेश द्वारा अपने विवाह विच्छेद की मांग कर रहे हैं। इसके अलावा, ऐसे मामलों में, कोई पक्षकार इस मामले पर सावधानीपूर्वक विचार कर सकता है और किसी ऐसे व्यक्ति को पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के रूप में नियुक्त कर सकता है जिस पर पक्षकार को पूर्ण विश्वास हो। पावर ऑफ अटॉर्नी के ऐसे दस्तावेज़ के आधार पर ही पावर ऑफ अटॉर्नी धारक किसी पक्षकार का प्रतिनिधित्व करेगा ताकि वह निष्पादक या पावर ऑफ अटॉर्नी की ओर से आपसी सहमति से अपने विवाह विच्छेद के लिए संयुक्त रूप से याचिका दायर कर सके। पारिवारिक न्यायालय स्वयं को संतुष्ट करने पर जोर दे सकता है कि वास्तव में पक्षकारों का इरादा आपसी सहमति से तलाक का आदेश प्राप्त करने का है और स्वयं को पूरी तरह से संतुष्ट करने के लिए, न्यायालय किसी भी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने वाले पावर ऑफ अटॉर्नी धारक की वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से भी जांच कर सकता है (जिसका उपयोग अब कोविड-19 महामारी के कारण व्यापक रूप से किया जा रहा है), पक्षों की जांच कर सकता है, जिसमें पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से प्रतिनिधित्व करने वाला पक्ष भी शामिल है जिसका वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग किया जा रहा है। केवल इसलिए कि एक पक्ष दूसरे पक्ष के साथ मिलकर पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से आपसी सहमति से विवाह विच्छेद की मांग करते हुए याचिका दायर करता है, इस तथ्य की अनदेखी नहीं की जा सकती कि न्यायालय को आपसी सहमति से तलाक के आदेश द्वारा अपने विवाह विच्छेद की मांग करने वाले पक्षों द्वारा दायर याचिका की वास्तविकता के बारे में स्वयं संतुष्ट होना चाहिए, चाहे वह पावर ऑफ अटॉर्नी के माध्यम से दायर की गई हो या नहीं। वास्तव में, ऐसी याचिका दायर करना अधिनियम की धारा 23 में बताई गई बातों का अपवाद है। फिर भी, न्यायालय को पांडित्यपूर्ण नहीं होना चाहिए, बल्कि एक लचीली प्रक्रिया लागू करनी चाहिए जो विधि के अनुसार हो, न कि एक प्रक्रिया, लेकिन ऐसी भी नहीं जो विधि के अनुरूप न हो।

17. दरअसल, हाल ही में, अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर (2017) 8 एससीसी 746 के मामले में, अधिनियम की धारा 13बी(2) पर विचार करते हुए, जिसमें अधिनियम की धारा 13बी(1) के अंतर्गत तलाक की याचिका दायर करने के बाद छह महीने की कूलिंग ऑफ अवधि निर्धारित की गई है, जो कि लोकस पॉएनिटेंशिया की अवधि भी है, ताकि पक्षकारों को निर्णय पर पुनर्विचार करने और उसके छह महीने बाद अपने निर्णय की पुष्टि करने का अवसर मिल सके, न्यायालय ने मामले की बदली हुई परिस्थितियों और विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए उक्त प्रावधान को कम कठोर और अधिक वादी-पक्षकार के अनुकूल बना दिया है। फिर भी, उक्त मामले में, यह देखा गया है कि विशेष मामले की परिस्थितियों, स्थिति की अनिवार्यताओं और पक्षकारों के हितों को ध्यान में रखते हुए छह महीने की अवधि को माफ कर दिया जाना चाहिए ताकि मामले में न्याय सुनिश्चित हो सके। इस संबंध में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की है कि धारा 13बी(2) में उल्लिखित अवधि को निर्देशात्मक माना जा सकता है, न कि अनिवार्य। न्यायालय प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है, जहाँ पक्षों के बीच सुलह, सहवास और वैकल्पिक पुनर्वास की कोई संभावना न हो। उक्त निर्णय के पैराग्राफ संख्या 21 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित भी टिप्पणी की है:-

" यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी कार्यवाही के संचालन में न्यायालय वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम का भी उपयोग कर सकता है और माता-पिता या भाई-बहन जैसे करीबी रिश्तेदारों के माध्यम से पक्षकारों के वास्तविक प्रतिनिधित्व की अनुमति भी दे सकता है, जहां पक्षकार किसी उचित और वैध कारण से व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने में असमर्थ हैं, जो न्याय के हित को आगे बढ़ाने के लिए न्यायालय को संतुष्ट कर सकता है।"

18. उपरोक्त को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पक्षकारों के प्रतिनिधित्व के संदर्भ में उनके निकट संबंधियों, साझेदारों या भाई-बहनों या किसी अन्य व्यक्ति, जिस पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो, को पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के रूप में नियुक्त करने के संबंध में भी लचीलापन प्रदान किया है। वास्तव में, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, न्यायालय उन पक्षकारों के इरादे की वास्तविकता के बारे में हमेशा स्वयं संतुष्ट हो सकता है जो स्वयं या पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के माध्यम से वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से न्यायालय में आते हैं, ताकि न्यायालय के समक्ष दायर की जा रही याचिका की वास्तविकता के बारे में कोई भी संदेह दूर हो सके।

19. माननीय सर्वोच्च न्यायालय की उपरोक्त टिप्पणियों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 13बी(1) या किसी अन्य अधिनियम में किसी अन्य समान प्रावधान के तहत दायर कार्यवाही में पक्षकारों को अपने साझेदारों या भाई-बहनों द्वारा प्रतिनिधित्व करने की अनुमति है, जो आपसी सहमति से तलाक के आदेश द्वारा विवाह विच्छेद का प्रावधान करता है।

20. इन परिस्थितियों में, हम पाते हैं कि इस मामले में पारिवारिक न्यायालय को अपीलकर्ता संख्या 2 के पिता को उसकी पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के रूप में याचिकाओं पर हस्ताक्षर करने और उन्हें सत्यापित करने और कार्यवाही में उसका प्रतिनिधित्व करने की अनुमति देनी चाहिए थी। इसके अलावा, याचिका की संतुष्टि और वास्तविकता के लिए, पारिवारिक न्यायालय हमेशा वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग का सहारा ले सकता था, जिसके माध्यम से, दोनों पक्ष, दूसरी अपीलकर्ता की पावर ऑफ अटॉर्नी धारक के अलावा, उसकी ओर से उपस्थित हो सकते थे, ताकि पक्षों द्वारा दायर याचिका की वास्तविकता के बारे में पूरी तरह से संतुष्ट हो सके, ठीक वैसे ही जैसे इस अपील में, दोनों अपीलकर्ता वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से उपस्थित हुए हैं, पहला अपीलकर्ता बेंगलुरु से और दूसरा अपीलकर्ता टोरेंटो, कनाडा से। इस संबंध में, हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा लिए गए निर्णयों पर भी संक्षेप में चर्चा कर सकते हैं।"

13. अब वर्तमान वाद पर आते हैं। इस वाद के तथ्य ऊपर उद्धृत निर्णयों के तथ्यों से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं, इसलिए इस न्यायालय के पास अलग राय रखने का कोई कारण नहीं है। न्यायालय को याचिकाकर्ता को प्रार्थना के अनुसार वर्चुअल माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति देना आवश्यक है।

14. इसलिए, मामले के तथ्यों के साथ-साथ न्यायालयों द्वारा निर्धारित विधि के तहत, दिनांक 16.05.2024 का आक्षेपित आदेश गलत है और इसे रद्द किया जाता है।

15. तदनुसार रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

16. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

17. प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फिरोजाबाद को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग या किसी अन्य इलेक्ट्रॉनिक मोड के माध्यम से उपस्थित होने की अनुमति दें और आगे की कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति दें।

18. प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, फिरोजाबाद को यह स्वतंत्रता है कि वे प्रत्यर्थी द्वारा याचिकाकर्ता की पहचान सत्यापित करें, जब वह इलेक्ट्रॉनिक मोड के माध्यम से उपस्थित हो रहा हो।

(2025) 1 ILRA 383

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी

प्रकरण अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 12692/2024

अजीत सिंह यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती नीलम यादव

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के लिए अधिवक्ता:

उपेंद्र नाथ यादव

प्रत्यर्थी के लिए अधिवक्ता:

सिविल कानून-हिंदू विवाह अधिनियम, 1955- धारा 13बी(20) -भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 227---
धारा 13बी(2) में प्रदत्त छह महीने की कूलिंग ऑफ अवधि अनिवार्य नहीं बल्कि निर्देशात्मक है---वर्तमान मामले में, दोनों पक्ष 20.12.2021 से अलग रह रहे हैं और संयुक्त रूप से तलाक की याचिका भी दायर की है। इसके

अलावा, मध्यस्थता के पहले के प्रयास विफल रहे थे, लेकिन बाद में, एक अन्य कार्यवाही में, विवाह को भंग करने और उनके बीच लंबित आपराधिक मामलों को वापस लेने के समझौते के साथ पक्षों के बीच मध्यस्थता हुई। इसलिए, ऐसे तथ्यों के तहत, याचिकाकर्ता को धारा 13-बी(2) में प्रदत्त कूलिंग ऑफ अवधि की प्रतीक्षा करने का निर्देश देने का कोई अवसर नहीं है इ-आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है---प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय को धारा 13-बी(2) (प्रस्तर 9 और 13) में प्रदत्त छह महीने की कूलिंग अवधि को माफ करते हुए तलाक की याचिका पर आगे बढ़ने का निर्देश दिया जाता है

याचिका स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर; (2017) 8 सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 746

(माननीय न्यायमूर्ति नीरज तिवारी द्वारा दिया गया)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया।
2. वर्तमान याचिका निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए दायर की गई है:-

“i. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13-बी के तहत हिंदू विवाह याचिका संख्या 551/2024, (अजीत सिंह यादव बनाम श्रीमती नीलम यादव) में प्रधान न्यायाधीश, परिवार न्यायालय, गाजीपुर द्वारा पारित दिनांक 11.09.2024 के विवादित आदेश को रद्द किया जाता है, जिसके द्वारा निचली अदालत ने दिनांक 10.09.2024 के आवेदन को खारिज कर दिया है।”

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता और प्रत्यर्थी का विवाह 11.12.2020 को हुआ था। कुछ समय बाद, पक्षों के बीच कुछ मतभेद हो गए और उन्होंने 20.12.2021 से अलग रहने का फैसला किया है। पक्षों के बीच सुलह के लिए किए गए सभी प्रयास विफल रहे हैं। चूंकि पक्षों के बीच सुलह की कोई गुंजाइश नहीं थी, इसलिए उन्होंने विशिष्ट कथन के साथ तलाक की याचिका दायर की है कि वे 20.12.2021 से अलग रह रहे हैं। उक्त याचिकाकर्ता को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (इसके बाद 'अधिनियम, 1955' के रूप में संदर्भित) की धारा 13 (बी) के तहत हिंदू विवाह याचिका संख्या 551/2024 के रूप में प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, गाजीपुर के समक्ष पंजीकृत किया गया था। तत्पश्चात, दिनांक 30.07.2024 को आदेश पारित कर पक्षकारों को दिनांक 10.09.2024 को मध्यस्थता केंद्र के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया गया तथा सुनवाई/साक्ष्य के लिए दिनांक 01.02.2025 नियत किया गया। दोनों पक्ष दिनांक 10.09.2024 को मध्यस्थता केंद्र के समक्ष उपस्थित हुए तथा उसके बाद मध्यस्थता कार्यवाही समाप्त कर दी गई। चूंकि दिनांक

01.02.2025 नियत थी, अतः पक्षकारों ने धारा 13-बी (2) अधिनियम, 1955 के अंतर्गत प्रदत्त छह माह की वैधानिक अवधि में छूट हेतु आवेदन संख्या 11(सी) दिनांक 20.09.2024 प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 11.09.2024 के आक्षेपित आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि पक्षों के बीच मध्यस्थता की कोई गुंजाइश नहीं है, इसलिए **अमरदीप सिंह बनाम हरवीन कौर (2017) 8 सर्वोच्च न्यायालय प्रकरण 746** के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के मद्देनजर, न्यायालय को छह महीने की कूलिंग अवधि को माफ करना आवश्यक है।

5. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि एक अन्य आपराधिक मामला संख्या 652/2021 में, मामला फिर से मध्यस्थता केंद्र को भेजा गया था और इस बार दोनों पक्ष मध्यस्थता केंद्र के समक्ष उपस्थित हुए और उनके बीच दिनांक 01.08.2024 को विवाह विच्छेद हेतु एक समझौता हुआ। उक्त समझौते में, यह भी स्वीकार किया गया था कि कुल 13 लाख रुपये की समझौता राशि में से, प्रत्यर्थी को पहले ही 8 लाख रुपये मिल चुके हैं और शेष 5 लाख रुपये तलाक की डिक्री के बाद उसे दिए जाएंगे। उन्होंने दृढ़ता से कहा कि ऐसे तथ्यों के आधार पर, आक्षेपित आदेश गलत है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

6. मैंने याचिकाकर्ता के वकील द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार किया है और अभिलेख के साथ-साथ मध्यस्थता और सुलह केंद्र, गाजीपुर के समक्ष दिनांक 01.08.2024 के समझौते की प्रति का भी अवलोकन किया है।

7. अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आज की तिथि तक, दोनों पक्ष अलग-अलग रह रहे हैं और दोनों पक्षों के बीच सुलह की कोई गुंजाइश नहीं है। 01.08.2024 के समझौते में भी यही तथ्य दिए गए हैं कि अब दोनों पक्ष अपने बीच के सभी आपराधिक मामले वापस लेने पर सहमत हो गए हैं और तलाक की डिक्री प्राप्त करने के लिए तलाक याचिका पर आगे बढ़ रहे हैं।

8. **अमरदीप सिंह (सुप्रा)** के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने भी यही दृष्टिकोण अपनाया है। प्रासंगिक अनुच्छेद संख्या 14 से 20 नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

“14. विद्वान एमिकस क्यूरी ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 13- बी(2) के तहत प्रतिष्ठापित प्रतीक्षा अवधि निर्देशिका है और असाधारण स्थितियों में, जहां कार्यवाही लंबित है, न्यायालय द्वारा इसे माफ किया जा सकता है। यह दृष्टिकोण आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के के. ओमप्रकाश बनाम के. नलिनी, कर्नाटक उच्च न्यायालय के रूपा रेड्डी बनाम प्रभाकर रेड्डी, दिल्ली उच्च न्यायालय के धनजीत वाड़ा बनाम श्रीमती बीना वाड़ा और मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के दिनेश कुमार शुक्ला बनाम श्रीमती नीता के निर्णयों द्वारा समर्थित है। केरल उच्च न्यायालय ने एम. कृष्णा प्रीथा बनाम जयन मूरक्कनट में विपरीत दृष्टिकोण अपनाया है। यह प्रस्तुत किया गया कि धारा 13 बी(1) न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से संबंधित है और याचिका तभी पोषणीय है

जब पक्षकार एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि से अलग रह रहे हों और यदि वे एक साथ नहीं रह पाए हैं और इस बात पर सहमत हो गए हैं कि विवाह विच्छेद कर दिया जाए। धारा 13 बी(2) प्रक्रियात्मक है यह न्याय के हित में निर्देशित विवेकाधिकार है, जहाँ सुलह की कोई संभावना नहीं है और पक्षकार पहले से ही लंबी अवधि से अलग हो चुके हैं या धारा 13 बी(2) में उल्लिखित अवधि से अधिक समय से कार्यवाही लड़ रहे हैं। इस प्रकार, न्यायालय को निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करना चाहिए:

- i) दोनों पक्षों की शादी को कितने समय हो गया है?
- ii) मुकदमा कब से लंबित है?
- iii) वे कितने समय से अलग रह रहे हैं?
- iv) क्या पक्षों के बीच कोई अन्य कार्यवाही चल रही है?
- v) क्या पक्षकार मध्यस्थता/सुलह में शामिल हुए हैं?
- vi) क्या दोनों पक्षों के बीच वास्तविक समझौता हो गया है, जो गुजारा भत्ता, बच्चे की हिरासत या पक्षों के बीच किसी अन्य लंबित मुद्दे का ध्यान रखता है?

15. न्यायालय को इस बात से संतुष्ट होना चाहिए कि पक्षकार वैधानिक अवधि से अधिक समय से अलग रह रहे थे और मध्यस्थता और सुलह के सभी प्रयास विफल हो गए हैं और सुलह की कोई संभावना नहीं है और आगे की प्रतीक्षा अवधि केवल उनकी पीड़ा को बढ़ाएगी।

16. हमने संबंधित मुद्दे पर समुचित विचार किया है। पारंपरिक हिंदू विधि के अंतर्गत, जैसा कि इस विषय पर वैधानिक कानून से पहले था, विवाह एक संस्कार है और इसे सहमति से भंग नहीं किया जा सकता। अधिनियम ने न्यायालय को वैधानिक आधार पर विवाह विच्छेद करने का अधिकार दिया। वर्ष 1976 में संशोधन के माध्यम से, आपसी सहमति से तलाक की अवधारणा को प्रस्तुत किया गया। हालाँकि, धारा 13 बी(2) में आपसी सहमति से तलाक की याचिका दायर करने के छह महीने बाद तक तलाक देने पर रोक है। उक्त अवधि पक्षकारों को पुनर्विचार करने का अवसर देने के लिए निर्धारित की गई थी ताकि न्यायालय आपसी सहमति से तलाक तभी दे जब सुलह की कोई संभावना न हो।

17. इस प्रावधान का उद्देश्य पक्षकारों को सहमति से विवाह विच्छेद करने में सक्षम बनाना है, यदि विवाह पूरी तरह से टूट चुका है और उन्हें उपलब्ध विकल्पों के अनुसार पुनर्वास करने में सक्षम बनाना है। यह संशोधन इस विचार से प्रेरित था कि अनिच्छुक भागीदारों के बीच विवाह की स्थिति को बलपूर्वक बनाए रखने से कोई उद्देश्य पूरा नहीं होता। कूलिंग ऑफ अवधि का उद्देश्य, यदि मतभेदों के समाधान की संभावना हो, तो जल्दबाजी में लिए गए निर्णय से बचाव करना था। इसका उद्देश्य एक उद्देश्यहीन विवाह को बनाए रखना या सुलह की कोई संभावना न होने पर पक्षकारों की पीड़ा को बढ़ाना नहीं था। यद्यपि विवाह को बचाने के लिए हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए, यदि पुनर्मिलन की कोई संभावना नहीं है और नए पुनर्वास की संभावना है, तो न्यायालय पक्षकारों को बेहतर विकल्प चुनने में असमर्थ नहीं होना चाहिए।

18. यह तय करने में कि प्रावधान अनिवार्य है या निर्देशात्मक, केवल भाषा ही हमेशा निर्णायक नहीं होती। न्यायालय को प्रावधान के संदर्भ, विषय-वस्तु और उद्देश्य का ध्यान रखना होगा। न्यायमूर्ति जी.पी. सिंह के "वैधानिक व्याख्या के सिद्धांत" (9वां संस्करण, 2004) में प्रतिपादित इस सिद्धांत को कैलाश बनाम नन्हकू व अन्य में अनुमोदन के साथ इस प्रकार उद्धृत किया गया है: (एससीसी पृष्ठ 496-97, प्रस्तर 34)।

"34... .. इस विषय पर अनेक मामलों के अध्ययन से कोई सार्वभौमिक नियम नहीं बनता, सिवाय इसके कि केवल भाषा ही अक्सर निर्णायक नहीं होती, और यह निर्धारित करते समय कि संबंधित वैधानिक प्रावधान अनिवार्य है या निर्देशात्मक, यह आवश्यक है कि उसके संदर्भ, विषय-वस्तु और उद्देश्य पर ध्यान दिया जाए। लॉर्ड कैंपबेल ने एक बहुधा उद्धृत अंश में कहा: "इस बारे में कोई सार्वभौमिक नियम नहीं बनाया जा सकता कि अनिवार्य अधिनियमों को केवल निर्देशात्मक माना जाए या अवज्ञा के लिए निहित निरस्तीकरण के साथ अनिवार्य। न्यायालयों का यह कर्तव्य है कि वे विचाराधीन कानून के संपूर्ण दायरे पर ध्यानपूर्वक ध्यान देकर विधायिका के वास्तविक उद्देश्य को जानने का प्रयास करें।" (पृष्ठ 338)

न्यायमूर्ति सुब्बाराव बताते हैं, "विधानमंडल की वास्तविक मंशा जानने के लिए, न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ, कानून की प्रकृति और संरचना, और उसे किसी भी तरह से व्याख्यायित करने से उत्पन्न होने वाले परिणामों पर विचार कर सकता है; अन्य प्रावधानों का प्रभाव जिससे संबंधित प्रावधानों के अनुपालन की आवश्यकता समाप्त हो जाती है; परिस्थितियाँ, अर्थात्, क्या कानून प्रावधानों के अनुपालन न होने की आकस्मिकता का प्रावधान करता है; यह तथ्य कि प्रावधानों का अनुपालन न करने पर कोई दंड दिया जाएगा या नहीं; इससे उत्पन्न होने वाले गंभीर या तुच्छ परिणाम; और सबसे बढ़कर, क्या विधान का उद्देश्य विफल होगा या आगे बढ़ेगा।" यदि समान निर्देशिका रखने से अधिनियमन का उद्देश्य विफल हो जाता है, तो इसे अनिवार्य माना जाएगा, जबकि यदि इसे अनिवार्य रखने से अधिनियमन के उद्देश्य को और अधिक आगे बढ़ाए बिना निर्दोष व्यक्तियों को गंभीर सामान्य असुविधा होगी, तो इसे निर्देशिका माना जाएगा।" (पृष्ठ 339-40)

19. उपर्युक्त को वर्तमान स्थिति पर लागू करते हुए, हमारा मत है कि जहां किसी मामले से निपटने वाला न्यायालय संतुष्ट है कि धारा 13 बी(2) के तहत वैधानिक अवधि को माफ करने का मामला बनता है, वह निम्नलिखित पर विचार करने के बाद ऐसा कर सकता है :

i) धारा 13 बी (2) में निर्दिष्ट छह महीने की वैधानिक अवधि, धारा 13 बी (1) के तहत पक्षों के पृथक्करण की एक वर्ष की वैधानिक अवधि के अतिरिक्त, पहले प्रस्ताव से पहले ही समाप्त हो चुकी है;

ii) मध्यस्थता/समाधान के लिए सभी प्रयास, जिनमें आदेश XXXIIA नियम 3 सीपीसी/अधिनियम की धारा 23(2)/परिवार न्यायालय अधिनियम की धारा 9 के अनुसार पक्षकारों को पुनः एकजुट करने के

प्रयास शामिल हैं, विफल हो गए हैं और आगे किसी भी प्रयास से उस दिशा में सफलता की कोई संभावना नहीं है;

iii) पक्षकारों ने गुजारा भत्ता, बच्चे की हिरासत या पक्षों के बीच किसी अन्य लंबित मुद्दे सहित अपने मतभेदों को वास्तव में सुलझा लिया है;

iv) प्रतीक्षा अवधि केवल उनकी पीड़ा को बढ़ाएगी।

छूट के लिए आवेदन, छूट के लिए प्रार्थना के कारण बताते हुए, पहले आवेदन के एक सप्ताह बाद दायर किया जा सकता है। यदि उपरोक्त शर्तें पूरी होती हैं, तो दूसरे आवेदन के लिए प्रतीक्षा अवधि की छूट संबंधित न्यायालय के विवेक पर निर्भर होगी।

20. चूंकि हमारा विचार है कि धारा 13बी(2) में उल्लिखित अवधि अनिवार्य नहीं बल्कि निर्देशात्मक है, इसलिए न्यायालय को प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपने विवेक का प्रयोग करने की स्वतंत्रता होगी, जहां पक्षकारों के सहवास को पुनः शुरू करने की कोई संभावना नहीं है और वैकल्पिक पुनर्वास की संभावनाएं हैं।

9. इस मामले के तथ्य **अमरदीप सिंह (सुप्रा)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुरूप हैं। वर्तमान मामले में, दोनों पक्ष 20.12.2021 से अलग-अलग रह रहे हैं और उन्होंने संयुक्त रूप से तलाक की याचिका भी दायर की है। इसके अलावा, मध्यस्थता के पहले के प्रयास विफल रहे, लेकिन बाद में, एक अन्य कार्यवाही में, पक्षकारों के बीच विवाह विच्छेद और उनके बीच लंबित आपराधिक मामलों को वापस लेने के समझौते के साथ मध्यस्थता हुई। अतः, ऐसे तथ्यों के आधार पर, याचिकाकर्ता को अधिनियम, 1955 की धारा 13- बी(2) के अनुसार क्लिंग ऑफ पीरियड की प्रतीक्षा करने का निर्देश देने का कोई कारण नहीं है।

10. इसलिए, मामले के तथ्यों के साथ-साथ **अमरदीप सिंह (सुप्रा)** में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के तहत, दिनांक 11.09.2024 का आक्षेपित आदेश गलत है और इसे रद्द किया जाता है।

11. तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है।

12. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

13. प्रधान न्यायाधीश, पारिवारिक न्यायालय, गाजीपुर को अधिनियम, 1955 की धारा 13- बी (2) में प्रावधानित छह महीने की क्लिंग अवधि को माफ करते हुए तलाक याचिका पर आगे बढ़ने का निर्देश दिया जाता है।

(2025) 1 ILRA 387

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार

प्रकरण अन्तर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 15637/2024

हरि शंकर

...याचिकाकर्ता

बनाम

राकेश कुमार

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

पंकज अग्रवाल

प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता:

आकांक्षा गौर

सिविल विधि - 30प्र0 शहरी भवन (किराए पर देने, किराया और बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 - धारा 21 (1) (ए) - उन्मुक्ति प्रार्थना पत्र - सद्भावना की आवश्यकता - किरायेदार की दलील है कि मकान मालिक का बेटा पहले से ही दो अन्य दुकानों में स्वतंत्र रूप से व्यवसाय चला रहा है - बेटे को मालिक दिखाने वाले जीएसटी दस्तावेजों को अप्रासंगिक माना गया क्योंकि वे उन्मुक्ति प्रार्थना पत्र की संस्थित होने से पहले की अवधि से संबंधित थे - बेटे की स्वतंत्रता स्थापित करने के लिए प्रासंगिक वर्ष का कोई दस्तावेज दायर नहीं किया गया - 2018 में बेटे के नाम पर जीएसटीआईएन को रद्द करना - दस्तावेजी साक्ष्य की प्रासंगिकता का आकलन प्रकरण की स्थापना की तारीख के संदर्भ में किया जाना है - मकान मालिक की बेटे को व्यवसाय में बसाने की आवश्यकता को वास्तविक माना गया - निर्धारित प्राधिकारी और अपीलीय न्यायालय का निष्कर्ष सद्भावना की पुष्टि करता है कि यह विकृत नहीं है - याचिका खारिज। (पैरा 10 और 11)

अभिनिर्धारित:

याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाए गए दस्तावेजों के अवलोकन से, वह स्वीकार करता है कि जीएसटी रसीदों के रूप में ये एकमात्र दस्तावेज थे जिन्हें साक्ष्य में पेश किया गया था और साक्ष्य को हमेशा तथ्यों और मुद्दों पर एक निष्कर्ष देने के लिए प्रासंगिक और ठोस कहा जाता है यदि यह प्रकरण की संस्था की तिथि पर किसी बिंदु पर विचार करने के तथ्यात्मक स्थिति से संबंधित हो। इसलिए,

मुद्दे के तथ्यों के रूप में दस्तावेजों की प्रासंगिकता प्रकरण की संस्था की तिथि पर स्थिति के रूप में निर्धारित करने योग्य होगी। वर्तमान प्रकरण में, मुझे लगता है कि लिखित बयान में किए गए कथन के समर्थन में याचिकाकर्ता द्वारा साक्ष्य में पेश किए गए दस्तावेज कि बेटे को संस्कार ट्रेडर्स के नाम पर एक व्यवसाय में स्वतंत्र रूप से स्थापित किया गया था, वर्ष 2020 और उसके बाद का नहीं था, जबकि वास्तविक जरूरतों के लिए उन्मुक्ति पहली बार वर्ष 2020 में स्थापित की गई थी। कोई भी दस्तावेज जो यह दर्शाता है कि जीएसटी रसीदें संस्कार ट्रेडर्स के नाम पर जारी की गई थीं, जिसमें आकाश वाष्णीय फर्म के मालिक थे, प्रासंगिक होते अगर यह जारी करने के प्रकरण के संबंधित वर्ष का होता। इसके अलावा, मुझे पता चला है कि 2018 की जीएसटी रसीद से ही पता चला है कि आकाश वाष्णीय के मालिक के रूप में संस्कार ट्रेडर्स के नाम पर मौजूद जीएसटीआईएन संख्या रद्द हो गया। जीएसटी के लिए फर्म के पंजीकरण को रद्द करने के तथ्य को प्रमाणित करने वाला एक दस्तावेज इस बात के समर्थन में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक नहीं होता कि बेटा आकाश वाष्णीय स्वतंत्र व्यवसाय कर रहा था। किसी तथ्य को साबित करने के लिए साक्ष्य का नेतृत्व किया जाता है, जो मुद्दे से प्रासंगिक हो। इसलिए साक्ष्य एक तथ्य को साबित करने का माध्यम बन जाता है। बेशक, साक्ष्य मौखिक या दस्तावेजी हो सकता है। एक पक्ष जो किसी तथ्य को साबित करने में सक्षम नहीं है, निश्चित रूप से दस्तावेजी साक्ष्य या सामग्री का नेतृत्व करेगा लेकिन इस तरह के साक्ष्य को मुद्दे के तथ्य के लिए प्रासंगिक होना चाहिए। कभी-कभी दायर किए गए दस्तावेज से निष्कर्ष निकाला जा सकता है, लेकिन इस प्रकरण में, चूंकि जीएसटीएन रसीद से ही पता चलता है कि आकाश के नाम से संस्कार ट्रेडर का टिन रद्द हो गया है, इसलिए केवल प्रतिकूल निष्कर्ष ही निकाला जा सकता था। इसलिए, अपील न्यायालय द्वारा उक्त दस्तावेज की अनदेखी करना और याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं दिए गए इस कथन पर अधिक भरोसा करना पूरी तरह से उचित था कि पुत्र अपने पिता के साथ व्यापार कर रहा था। वैसे भी, मकान मालिक प्रत्यर्थीगण द्वारा पूरक हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड में लाए गए दस्तावेज से पता चलता है कि सितंबर, 2018 के बाद से फर्म केवल राकेश वाष्णीय के नाम पर फर्म के मालिक के रूप में पंजीकृत थी। (प्रस्तर 10)

इस प्रकार, यदि पुत्र अपने पिता के साथ व्यापार कर रहा है, तो उसे स्वतंत्र रूप से व्यवसाय में स्थापित होने का पूरा अधिकार है और पिता द्वारा अपने पुत्र को स्थापित करने के लिए संबंधित दुकान को मुक्त कराने की आवश्यकता स्थापित करना पूर्णतः उचित है। अतः, आवश्यकता को वास्तविक माना जाना चाहिए और मुझे विहित प्राधिकारी तथा अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में विधि या तथ्यों के आधार पर कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं दिखाई देती। (प्रस्तर 11)

याचिका खारिज। (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति अजीत कुमार द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे के साथ-साथ प्रत्यर्थी मकान मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे को रिकॉर्ड में लिया जाता है।

2. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज अग्रवाल और प्रत्यर्थी मकान मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री आकांक्षा गौड़ को सुना गया।

3. संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने उत्तर प्रदेश शहरी भवन (किराया, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 (संक्षेप में "अधिनियम संख्या 13/1972") की धारा 21 (1) (क) के अंतर्गत प्रत्यर्थी मकान मालिक के पक्ष में मृत्यु-प्राप्ति परिसर की उन्मुक्ति हेतु विहित प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को वास्तविक आवश्यकता के आधार पर चुनौती दी है। याचिकाकर्ता ने अपील में आदेश पर असफल रूप से प्रश्न उठाया है और इसलिए, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित दिनांक 18.10.2024 का आदेश भी चुनौती के अधीन है।

4. याचिकाकर्ता श्री अग्रवाल की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा निर्धारित प्राधिकारी और अपील की न्यायालय द्वारा लौटाए गए निष्कर्ष पर सवाल उठाते हुए मुख्य तर्क यह दिया गया है कि उन्होंने संस्कार ट्रेडर्स नामक फर्म के पंजीकरण के लिए जीएसटी फॉर्म के पर्याप्त दस्तावेज पेश किए थे, जिसमें व्यवसाय का जीएसटीआईएन संख्या प्रदर्शित था जो पिता और पुत्र दोनों के नाम पर था और बेटा तब से कर का भुगतान कर रहा था, इसलिए, बेटे को अपने पिता के अधीन पूरी तरह से व्यवसाय करने वाला नहीं कहा जा सकता है और इसने याचिकाकर्ता द्वारा लिखित बयान में किए गए कथन की भी पुष्टि की कि मकान मालिक प्रत्यर्थी के कब्जे में तीन दुकानें थीं, जिनमें से दो दुकानों में व्यापार चल रहा था। यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही बेटा पिता का व्यवसाय कर रहा था, क्योंकि मकान मालिक प्रत्यर्थीगण के कब्जे में दो दुकानें थीं, इसलिए, दुकानों में से एक जरूरतमंद बेटे को बहुत आसानी से मिल सकती थी

5. अपने उपरोक्त निवेदन के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय को पूरक हलफनामे के पृष्ठ संख्या 49 से 53 तक ले गए जो माल और सेवा कर की रसीदें हैं जिनमें फर्म का टीआईएन संख्या है जो दर्शाता है कि व्यवसाय आकाश वाष्णीय के नाम पर था और चूंकि यह एक प्रोप्राइटरशिप फर्म थी, इसलिए यह पर्याप्त रूप से साबित हुआ कि पूरा व्यवसाय आकाश वाष्णीय, पुत्र द्वारा चलाया जा रहा था और इसलिए वह स्वतंत्र रूप से व्यवसाय चला रहा था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि अपील की न्यायालय ने प्रकरण के इस पहलू पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया और यहां तक कि जब उसने इन दस्तावेजों का उल्लेख किया, तो उसने उनसे निपटा नहीं और केवल किरायेदार याचिकाकर्ता द्वारा निर्धारित प्राधिकारी के समक्ष दिए गए बयान पर भरोसा किया कि पिता और पुत्र दोनों संयुक्त रूप से व्यवसाय कर रहे थे। इस प्रकार, यह प्रस्तुत किया गया है कि निर्धारित प्राधिकारी द्वारा पारित निर्णय और आदेश और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा निर्णय की पुष्टि करने वाला आदेश दोनों ही विकृति के दोष से ग्रस्त हैं।

6. प्रत्यर्थी मकान मालिक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री आकांक्षा गौर ने याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत तर्कों का उत्तर देते हुए कहा कि उन्मुक्ति प्रार्थना पत्र स्वयं वर्ष 2020 में दायर किया गया था, जबकि जीएसटी रसीदों के रूप में जो दस्तावेज रिकॉर्ड में लाए गए हैं, वे यह दर्शाते हैं कि व्यवसाय उनके बेटे आकाश वाष्णीय की स्वामित्व वाली फर्म के रूप में चलाया जा रहा था, वे केवल वर्ष 2017-2018 के थे। उन्होंने प्रस्तुत

किया कि 2018 में, जीएसटीआईएन संख्या रद्द कर दिया गया और संस्कार ट्रेडर्स के नाम से एक नई स्वामित्व वाली फर्म, जिसके मालिक पिता राकेश वाष्ण्य थे, 10.09.2018 से अस्तित्व में आई।

7. अपने उपरोक्त निवेदन के समर्थन में उन्होंने एक पूरक हलफनामा भी दाखिल किया है जिसमें जीएसटी रसीदें रिकॉर्ड में लाई गई हैं जिनमें राकेश वाष्ण्य की प्रोपराइटरशिप फर्म के नाम पर जीएसटीआईएन संख्या है। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि चूंकि याचिकाकर्ता द्वारा पूरक हलफनामे के पृष्ठ 53 पर दाखिल किया गया यह दस्तावेज अवर न्यायालयों के समक्ष था और जिसने स्वयं प्रदर्शित किया कि आकाश वाष्ण्य के नाम पर प्रोपराइटरशिप फर्म का जीएसटीआईएन पंजीकरण रद्द कर दिया गया है, अवर न्यायालय ने याचिकाकर्ता के इस कथन पर भरोसा करना सही माना कि पिता और पुत्र दोनों वर्ष 2020 में संयुक्त रूप से व्यवसाय कर रहे थे। इसलिए, उनके अनुसार दस्तावेज ने पर्याप्त रूप से प्रदर्शित किया कि पुत्र वस्तुतः अपने पिता के व्यवसाय में सहायक था, जिसे वर्ष 2020 में मुख्य रूप से पिता द्वारा चलाया जा रहा था जब उन्मुक्ति प्रार्थना पत्र दायर किया गया था।

8. सुश्री गौर ने यह भी तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित तीन दुकानों का सिद्धांत भी सही नहीं है, क्योंकि सर्वेक्षण आयोग की रिपोर्ट ने पर्याप्त रूप से प्रदर्शित किया है कि मौके पर सर्वेक्षण के दौरान केवल दो दुकानें ही पाई गईं।

9. संबंधित पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की दलीलें सुनने के बाद, बार में उठाए गए उनके तर्कों के बाद, एकमात्र बिंदु जिस पर मुझे विचार करने की आवश्यकता दिखती है और जिसे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्तागण ने भी जोर दिया है, वह यह है कि क्या अपील की न्यायालय द्वारा जीएसटी प्राप्तियों को नजरअंदाज करना उचित था, जबकि वह इस निष्कर्ष पर पहुंची थी कि उन्मुक्ति देने की वास्तविक आवश्यकता थी और निर्धारित प्राधिकारी ने ऐसा सही तरीके से किया था।

10. याचिकाकर्ता द्वारा दायर पूरक हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड पर लाए गए दस्तावेजों के अवलोकन से, वह स्वीकार करता है कि जीएसटी रसीदों के रूप में ये एकमात्र दस्तावेज थे जिन्हें साक्ष्य में पेश किया गया था और साक्ष्य को हमेशा तथ्यों और मुद्दों पर एक निष्कर्ष देने के लिए प्रासंगिक और ठोस कहा जाता है यदि यह प्रकरण की संस्था की तिथि पर किसी बिंदु पर विचार करने के तथ्यात्मक स्थिति से संबंधित है। इसलिए, मुद्दे के तथ्यों के रूप में दस्तावेजों की प्रासंगिकता प्रकरण की संस्था की तिथि पर स्थिति के रूप में निर्धारित करने योग्य होगी। वर्तमान प्रकरण में मुझे लगता है कि लिखित बयान में किए गए कथन के समर्थन में याचिकाकर्ता द्वारा साक्ष्य में पेश किए गए दस्तावेज कि बेटा संस्कार ट्रेडर्स के नाम पर एक व्यवसाय में स्वतंत्र रूप से बस गया था, वर्ष 2020 और उसके बाद का नहीं था, जबकि वास्तविक जरूरतों के लिए उन्मुक्ति पहली बार वर्ष 2020 में स्थापित की गई थी। कोई भी दस्तावेज जो यह दर्शाता है कि जीएसटी रसीदें संस्कार ट्रेडर्स के नाम पर जारी की गई थीं, जिसमें आकाश वाष्ण्य फर्म के मालिक थे, प्रासंगिक होते अगर यह जारी करने के प्रकरण के संबंधित वर्ष का होता। इसके अलावा, मुझे पता चला है कि 2018 की जीएसटी रसीद से ही पता चला है कि आकाश वाष्ण्य के मालिक के रूप में संस्कार ट्रेडर्स के नाम पर मौजूद जीएसटीआईएन संख्या रद्द हो गया। जीएसटी के लिए फर्म के पंजीकरण को रद्द करने के तथ्य को प्रमाणित करने वाला एक दस्तावेज इस बात के समर्थन में पर्याप्त रूप से प्रासंगिक नहीं होता कि बेटा आकाश वाष्ण्य स्वतंत्र व्यवसाय

कर रहा था। किसी तथ्य को साबित करने के लिए साक्ष्य का नेतृत्व किया जाता है, जो मुद्दे से प्रासंगिक हो। इसलिए साक्ष्य एक तथ्य को साबित करने का माध्यम बन जाता है। बेशक, साक्ष्य मौखिक या दस्तावेजी हो सकता है। एक पक्ष जो किसी तथ्य को साबित करने में सक्षम नहीं है, निश्चित रूप से दस्तावेजी साक्ष्य या सामग्री का नेतृत्व करेगा लेकिन इस तरह के साक्ष्य को मुद्दे के तथ्य के लिए प्रासंगिक होना चाहिए। कभी-कभी दायर किए गए दस्तावेज़ से निष्कर्ष निकाला जा सकता है, लेकिन इस प्रकरण में, चूँकि जीएसटीएन रसीद से ही पता चलता है कि संस्कार ट्रेडर्स का आकाश के नाम से टिन रद्द हो गया है, इसलिए केवल प्रतिकूल निष्कर्ष ही निकाला जा सकता था। इसलिए, अपील न्यायालय द्वारा उक्त दस्तावेज़ की अनदेखी करना और याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं दिए गए इस कथन पर अधिक भरोसा करना पूरी तरह से उचित था कि पुत्र अपने पिता के साथ व्यापार कर रहा था। वैसे भी, मकान मालिक प्रत्यर्थीगण द्वारा पूरक हलफनामे के माध्यम से रिकॉर्ड में लाए गए दस्तावेज़ से पता चलता है कि सितंबर, 2018 के बाद से फर्म केवल राकेश वाष्णीय के नाम पर फर्म के मालिक के रूप में पंजीकृत थी।

11. इस प्रकार, यदि पुत्र अपने पिता के साथ व्यापार कर रहा है, तो उसे स्वतंत्र रूप से व्यापार करने का पूरा अधिकार है और पिता द्वारा अपने पुत्र को बसाने के लिए संबंधित दुकान को मुक्त कराने की आवश्यकता स्थापित करना पूर्णतः उचित है। अतः, आवश्यकता को वास्तविक माना जाना चाहिए और मुझे विहित प्राधिकारी तथा अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेशों में विधि या तथ्यों के आधार पर कोई स्पष्ट त्रुटि नहीं दिखाई देती।

12. याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 390

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

विशेष अपील संख्या- 367/2024

शिव दत्त शर्मा

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

राजेश कुमार, राजेश कुमार मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी., यतीन्द्र

ए. सेवा विधि - अनुकंपा नियुक्ति - निरस्तीकरण - सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति आवश्यक योग्यता न होने पर भी की गई - अनुमति - अभिनिर्धारित किया गया कि सहायक अध्यापक जैसे उच्च पद के लिए पात्रता अनुकंपा नियुक्ति प्रक्रिया से अलग है और इसमें अपेक्षित योग्यता और चयन नियमों का पालन किया जाना चाहिए - डी. दिनेश चंद्र शर्मा के प्रकरण पर भरोसा किया गया। (प्रस्तर 24)

बी. सेवा विधि - अनुकंपा नियुक्ति - रद्दीकरण - यद्यपि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का लाभ पहले भी लिया गया था, उच्च पद के लिए दूसरी बार भी यही लाभ लिया गया - अनुमति - अभिनिर्धारित किया गया कि याचिकाकर्ता को पहले भी चौकीदार/ चपरासी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया जा चुका है, इसलिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा करने का उसका अधिकार समाप्त हो गया है और याचिकाकर्ता के लिए सहायक अध्यापक के पद पर अनुकंपा के आधार पर फिर से नियुक्ति की मांग करना संभव नहीं है। (प्रस्तर 31)

द्वितीय अपील खारिज। (ई-1)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. राजस्थान राज्य बनाम उमराव सिंह; (1994) 6 एससीसी 560
2. हरियाणा बनाम नरेश कुमार बाली; (1994) 4 एससीसी 448
3. कृष्ण कुमार पांडेय बनाम एम.पी. राज्य; (2023) एससीसी ऑनलाइन एम.पी. 7036
4. डी. दिनेश चंद्र शर्मा बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक; (2000) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 861
5. अश्विनी कुमार गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2011) एससीसी ऑनलाइन इलाहाबाद 1854
6. मोहम्मद सरताज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2006) 2 एससीसी 315

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.के. ओझा को सुना गया, जिनकी सहायता अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश कुमार मिश्रा ने की, राज्य-प्रत्यर्था की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री तेज भानु पांडेय और प्रत्यर्था संख्या 2 से 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री यतीन्द्र को सुना।

2. वर्तमान विशेष अपील रिट-ए संख्या 6916/2019 (शिव दत्त शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में पारित दिनांक 07.03.2024 के निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है, जिसके तहत रिट याचिका का निस्तारण कुछ टिप्पणियों एवं निर्देशों के साथ किया गया है।
3. प्रकरण के मूल तथ्य जो अभिलेख पर उपलब्ध हैं, यह दर्शाते हैं कि अपीलार्थी-याचिकाकर्ता को दिनांक 10.11.1981 के नियुक्ति आदेश द्वारा जूनियर हाई स्कूल, बड़ागांव, विकास क्षेत्र अरनिया, जिला बुलंदशहर में चौकीदार के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति प्रदान की गई थी।
4. दिनांक 06.02.1984 के आवेदन पर, याचिकाकर्ता को बी.एड. (शिक्षाशास्त्री) पाठ्यक्रम में प्रवेश हेतु आवेदन करने की अनुमति प्रदान की गई। याचिकाकर्ता को इस प्रयोजन हेतु अवैतनिक अवकाश स्वीकृत कराकर प्रवेश लेने का निर्देश दिया गया, इस शर्त के साथ कि अवकाश अवधि समाप्त होने के बाद वह स्वयं उसी विद्यालय में कार्यभार ग्रहण करेगा।
5. याचिकाकर्ता का दावा है कि उसे जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बुलंदशहर द्वारा पारित आदेश दिनांक 16.08.1986 द्वारा सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया है, जो बुलंदशहर जिले के बेसिक स्कूलों के शिक्षकों की नियुक्ति/पदोन्नति समिति के दिनांक 03.07.1986 के निर्णय के अनुसार है। नियुक्ति आदेश याचिकाकर्ता के आवेदन पत्र में दर्शाई गई योग्यता के आधार पर जारी किया गया बताया गया है।
6. याचिकाकर्ता लगभग 32 वर्षों तक सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत रहे। हालाँकि, उनकी सेवानिवृत्ति तिथि अर्थात् 31.03.2019 से कुछ माह पूर्व, जब वे प्राथमिक विद्यालय, सलेमपुर, पहाड़गढ़ी में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्यरत थे, खंड शिक्षा अधिकारी, ब्लॉक अरनिया द्वारा दिनांक 21.12.2018 को एक नोटिस/आदेश जारी किया गया, जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता ने अनुकंपा के आधार पर अपनी प्रथम नियुक्ति से संबंधित तथ्य छिपाकर सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति प्राप्त की है। याचिकाकर्ता को इस संबंध में साक्ष्य सहित अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया, अन्यथा यह माना जाएगा कि उन्हें इस प्रकरण में कुछ नहीं कहना है और उनके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही शुरू की जाएगी।
7. याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.12.2018 को उपरोक्त नोटिस का जवाब प्रस्तुत किया, जिसमें नोटिस में उल्लिखित तथ्यों पर कोई जवाब नहीं दिया गया तथा नोटिस को निराधार बताया गया।
8. याचिकाकर्ता ने दिनांक 05.01.2019 को एक और जवाब पेश किया जिसमें कहा गया कि उन्होंने अपनी शैक्षणिक योग्यता के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन किया था; हालाँकि, उन्हें चपरासी

/चौकीदार के पद पर नियुक्ति दी गई थी, जो उनकी शैक्षणिक योग्यता के अनुसार नहीं था। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि विभाग से अनुमति प्राप्त करने के बाद, याचिकाकर्ता ने बिना वेतन के अवकाश लेकर बी.एड. की परीक्षा उत्तीर्ण की और उसके बाद बेसिक स्कूलों के लिए नियुक्ति समिति द्वारा दिनांक 03.07.1986 के एक निर्णय के आधार पर उन्हें प्रशिक्षित सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्ति दी गई, और उन्होंने 16.08.1986 को उक्त पद पर कार्यभार संभाला। यह कहा गया कि उन्होंने विभाग से कोई तथ्य नहीं छिपाया था और चूंकि उन्हें 31.01.2019 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करनी थी, और शैक्षणिक सत्र पूरा करने के बाद 31.03.2019 को सेवानिवृत्त होना था, इसलिए 21.12.2018 के नोटिस का कोई औचित्य नहीं था।

9. उपरोक्त जवाब पर विचार करने के बाद, बेसिक शिक्षा अधिकारी, बुलंदशहर ने दिनांक 08.02.2019 को एक कार्यालय आदेश जारी किया जिसमें कहा गया कि याचिकाकर्ता को जूनियर हाई स्कूल, बड़ागांव, ब्लॉक अरनिया, जिला बुलंदशहर में चौकीदार के पद पर नियुक्त किया गया था और पुनः उसे अनुकंपा के आधार पर प्राथमिक विद्यालय, बदौली, ब्लॉक अरनिया में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया गया और उसने 16.08.1986 को कार्यभार ग्रहण किया। उपरोक्त के मद्देनजर, याचिकाकर्ता को एक सप्ताह के भीतर कुछ दस्तावेज प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया। दिनांक 08.02.2019 का उपरोक्त कार्यालय आदेश नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बुलन्दशहर

पत्रांक प्रबन्ध/15707-8/2018-19

दिनांक 08.02.2019

कार्यालय आदेश

श्री शिवदत्त शर्मा (प्रधानाध्यापक),
प्राथमिक विद्यालय सलेमपुर, पहाड़गढ़ी,
विकास क्षेत्र अरनियां,
जनपद बुलन्दशहर।

आप अपने पत्र दिनांक 05.01.2019 का सन्दर्भ ग्रहण करें, जिसके माध्यम से आप द्वारा अवगत कराया गया है कि मृतक आश्रित के रूप में विभाग द्वारा आपकी नियुक्ति चौकीदार के पद पर जू0हा0 स्कूल, बड़ागांव विकास क्षेत्र अरनियां में की गयी, जिसमें आपका अभिकथन है कि उक्त नियुक्त पद पर आप द्वारा दिनांक 20.01.1982 को सशर्त योगदान किया था। दिनांक 20.01.1982 के उपरान्त आप द्वारा बी0एड0 (व्यवसायिक प्रशिक्षण) प्राप्त करने हेतु विभागीय अनुमति तथा अवैतनिक अवकाश लेकर बी0एड0 (व्यवसायिक प्रशिक्षण) उत्तीर्ण किया। पुनः विभाग द्वारा मृतक आश्रित के रूप में आपकी नियुक्ति प्राथमिक विद्यालय बादौली विकास

क्षेत्र अर्नियां में सहायक अध्यापक के पद पर की गयी तथा आप द्वारा दिनांक 16.08.1986 को कार्यभार ग्रहण किया गया।

अतः उक्त परिस्थिति को दृष्टिगत रखते हुये तत्काल प्रभाव से आपको आदेशित किया जाता है कि आप निम्नांकित अभिलेख एक सप्ताह के अन्दर अद्योहस्ताक्षरी कार्यालय में प्राप्त कराना सुनिश्चित करें।

1. चौकीदार पद हेतु आवेदित पत्रावली की छायाप्रति।
2. चौकीदार पद के नियुक्ति पत्र की छायाप्रति।
3. चौकीदार के पद पर की गयी दिनांक 20.01.1982 की कार्यभार ग्रहण आख्या की छायाप्रति।
4. सशर्त अभिलेख मूल रूप में।
5. बी0एड0 (व्यवसायिक प्रशिक्षण) विभागीय अनुमति तथा अवैतनिक अवकाश स्वीकृति आदेश की छायाप्रति।
6. अध्यापक नियुक्ति समिति का निर्णय दिनांक 03.07.1986 की छायाप्रति।
7. सहायक अध्यापक पद हेतु आवेदित पत्रावली की छायाप्रति।
8. सहायक अध्यापक के पद का नियुक्ति पत्र की छायाप्रति।
9. सहायक अध्यापक के पद पर की गयी दिनांक 16.08.1986 की कार्यभार ग्रहण आख्या की छायाप्रति।
10. ऐसा कोई आवश्यक अभिलेख जिसे आप देना चाहते हैं।

नोट:- यदि आप द्वारा निर्धारित समयावधि में उल्लेखित अभिलेख अद्योहस्ताक्षरी कार्यालय में प्राप्त नहीं कराये जाते हैं, तो विभागीय कार्यवाही अमल में लायी जायेगी।

ह0 अप0

(अम्बरीष कुमार) जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी,

बुलन्दशहर।"

10. बुलंदशहर के आदेश दिनांक 25.02.2019 द्वारा तीन सदस्यीय जांच समिति गठित की गई तथा याचिकाकर्ता को दिनांक 18.03.2019 को नोटिस/संचार के माध्यम से अपना लिखित उत्तर/स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया गया, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है :-

"कार्यालय खण्ड शिक्षा अधिकारी विकास क्षेत्र डिबाई।

पत्रांक / 2018-19

दिनांक-18.03.2019

श्री शिवदत्त शर्मा प्रधानाध्यापक

उच्च प्राथमिक विद्यालय सलेमपुर पहाडगढी

विकास क्षेत्र अरनियां।

कार्यालय जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बुलन्दशहर के कार्यालय आदेश पत्रांक पत्रांक/प्रबन्ध/16404-08/2018-19 दिनांक 25.02.2019 के द्वारा आपकी नियुक्ति से सम्बंधित प्रकरण की विस्तृत जाँच हेतु जाँच समिति गठन कर जाँच आख्या उपलब्ध कराये जाने हेतु आदेशित किया गया है। आदेश में आप द्वारा मृतक आश्रित के रूप में अनुकम्पा के आधार पर जू0हा0 स्कूल, बड़ागांव विकास क्षेत्र अरनियाँ जनपद बुलन्दशहर में चौकीदार के पद भर नियुक्ति प्राप्त कर लेने के उपरान्त तथ्यों को छिपाते हुये पुनः सहायक अध्यापक के पद पर प्राथमिक विद्यालय बादौली विकास क्षेत्र अरनियां में नियुक्ति प्राप्त करने का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार आपके ऊपर मृतक आश्रित के रूप में एक बार नियुक्ति प्राप्त करने के उपरान्त तथ्य गोपन कर द्वितीय नियुक्ति प्राप्त करने का आरोप है।

अतः आप उक्त आरोप के सम्बन्ध में अपना लिखित पक्ष / स्पष्टीकरण, जिसमें दोनों नियुक्तियों से सम्बंधित आप द्वारा आवेदित पत्रावली, नियुक्ति पत्र, कार्यभार ग्रहण आख्या व अपने बचाव से सम्बंधित अन्य साक्ष्य (यदि कोई हो) पत्र प्राप्ति के तीन दिन के अन्दर पंजीकृत डाक से अथवा स्वयं कार्यालय में उपस्थित होकर प्रस्तुत करना सुनिश्चित करें। आप द्वारा निर्धारित समयावधि के अन्तर्गत प्रस्तुत लिखित पक्ष / स्पष्टीकरण पर परीक्षणोपरान्त नियमानुसार जाँच आख्या जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बुलन्दशहर महोदय को प्रेषित की जायेगी। यदि आप द्वारा अपना लिखित पक्ष / स्पष्टीकरण निर्धारित समयावधि के अन्तर्गत प्रस्तुत नहीं कराया जाता है, तो यह मानते हुये कि आपके ऊपर लगाये गये आरोप सत्य है, तदनुसार जाँच आख्या जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बुलन्दशहर महोदय की सेवा में प्रेषित कर दी जायेगी।

(चन्द भूषण प्रसाद)

(पुष्पेन्द्र कुमार)

(प्रकाश चन्द्र)

खण्ड शिक्षा अधिकारी

खण्ड शिक्षा अधिकारी

खण्ड शिक्षा अधिकारी

विकास क्षेत्र डिबाई

विकास क्षेत्र लखावटी

विकास क्षेत्र अगौता"

(प्रभाव वर्द्धित)

11. जाँच समिति ने दिनांक 28.03.2019 को जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी के समक्ष एक जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत की। जाँच रिपोर्ट की एक प्रति राज्य-प्रत्यर्थीगण की ओर से दायर प्रति-शपथपत्र के साथ रिट न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की गई। उपरोक्त जाँच रिपोर्ट के कुछ अंश, जिनका उल्लेख विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में किया गया है, नीचे पुनः प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"श्री शिवदत्त शर्मा प्रधानाध्यापक प्राथमिक विद्यालय सलेमपुर पहाड़गढ़ी विकास क्षेत्र अरनियां द्वारा प्रस्तुत आख्या/प्रार्थना पत्रों, पत्रावली में उपलब्ध सेवा पुस्तिकाओं व अन्य साक्ष्यों के आधार पर प्रकरण की जांच आख्या निम्नवत् है-

01. श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अपने पिता स्व० श्री राम स्वरूप शर्मा की मृत्यु के उपरान्त मृतक आश्रित के रूप में जूनियर हाई स्कूल, बड़ागांव विकास क्षेत्र अरनियां जनपद बुलन्दशहर में चौकीदार के पद पर की गयी नियुक्ति के क्रम में दिनांक 20.01.1982 को कार्यभार ग्रहण किया गया।

02. चौकीदार के पद पर नियुक्ति के समय श्री शिवदत्त शर्मा की शैक्षिक योग्यता स्नातक थी।

03. इसके उपरान्त आपके कार्यालय (कार्यालय जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बुलन्दशहर) के पत्रांक: प्रबन्ध/1836-37/86-87 दिनांक 16.08.1986 के द्वारा श्री शिवदत्त शर्मा की नियुक्ति प्राथमिक विद्यालय बादौली विकास क्षेत्र दनकौर जनपद बुलन्दशहर में सहायक अध्यापक के पद पर की गयी, जिसके क्रम में श्री शिवदत्त शर्मा पुत्र स्व० श्री राम स्वरूप शर्मा द्वारा दिनांक 16.08.1986 को ही प्राथमिक विद्यालय बादौली विकास क्षेत्र दनकौर जनपद बुलन्दशहर में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यभार ग्रहण किया गया।

04. श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अपने प्रार्थना पत्र दिनांक 28.12.2018, जो शिक्षा सचिव महोदय बेसिक शिक्षा विभाग लखनऊ (उत्तर प्रदेश) को सम्बोधित है, में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि "कार्यालय जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी बुलन्दशहर के आदेश संख्या 6034-8/83-84 दिनांक 13.02.1984 के अनुसार मैंने बी०एड० के लिये लिखित अनुमति मांगी थी, जिसमें आदेश हुआ कि श्री शिवदत्त शर्मा, चौकीदार जूनियर हाई स्कूल बड़ागांव को उनके प्रार्थना पत्र दिनांक 06.02.1984 तथा प्रधानाध्यापक की संस्तुति के आधार पर बी० एड० शिक्षा /शास्त्री में प्रवेश की अनुमति दी जाती है जिसके बाद मैंने वर्ष 1984 में अनुक्रमांक 116 अपनी बी०एड० शिक्षा/शास्त्री में प्राप्त की"। श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा उक्त से सम्बंधित कोई भी साक्ष्य संलग्न नहीं किया गया है। 5. श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अपने प्रार्थना पत्र दिनांक 28.12.2018, जो शिक्षा सचिव महोदय बेसिक शिक्षा विभाग लखनऊ (उत्तर प्रदेश) को सम्बोधित है, में स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि "सहायक अध्यापक के पद पर मेरी नियुक्ति मेरे आवेदन पत्र और मेरी योग्यता के अनुसार प्रदान की गयी है, ना कि मृतक आश्रित के रूप में या किसी अन्य कारण का लाभ देकर सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्त किया है, यह नियुक्ति प्रार्थी को उसकी योग्यता के मानदंडों को देखकर और मुझे सहायक अध्यापक पद के लिये उपयुक्त एवं योग्यता को देखकर दी गयी"। श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा आवेदन से सम्बंधित कोई भी साक्ष्य संलग्न नहीं किया गया है।

उक्त के आधार पर निम्न तथ्य प्रमाणित हो रहे हैं-

01. श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अपने पिता स्व० श्री राम स्वरूप शर्मा की मृत्यु के उपरान्त मृतक आश्रित के रूप में जू०हा० स्कूल, बड़ागांव विकास क्षेत्र अरनियां जनपद बुलन्दशहर में चौकीदार के पद पर नियुक्ति प्राप्त कर ली गयी।

02. अध्यापक भर्ती नियमावली के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों में सहायक अध्यापक के पद पर भर्ती के लिये तत्समय प्रशिक्षण योग्यता के रूप में बी०एड० प्रशिक्षण अर्ह नहीं था, जिसके कारण श्री शिवदत्त शर्मा की सहायक अध्यापक के पद पर सामान्य भर्ती में किया गया चयन नियम विरुद्ध है।

03. श्री शिवदत्त शर्मा की नियुक्ति मृतक आश्रित के रूप में सहायक अध्यापक के पद पर होना भी नियम विरुद्ध है, क्योंकि इनके द्वारा पूर्व में ही मृतक आश्रित के रूप में चौकीदार के पद पर नियुक्ति का लाभ प्राप्त किया जा चुका है। अतः जाँच समिति की जाँच आख्या आवश्यक कार्यवाही हेतु सेवा में सादर प्रेषित है।

संलग्न - पत्रावली।

(चन्द भूषण प्रसाद)

(पुष्पेन्द्र कुमार)

(प्रकाश चन्द्र)

खण्ड शिक्षा अधिकारी

खण्ड शिक्षा अधिकारी

खण्ड शिक्षा अधिकारी

विकास क्षेत्र डिबाई

विकास क्षेत्र लखावटी

विकास क्षेत्र अगौता"

(प्रभाव वर्द्धित)

12. जाँच रिपोर्ट और उपलब्ध तथ्यों के आधार पर, जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, बुलंदशहर ने दिनांक 28.03.2019 के एक आदेश द्वारा, जिसका रिट याचिका में उल्लेख किया गया था, याचिकाकर्ता की नियुक्ति तत्काल प्रभाव से रद्द कर दी। उपरोक्त आदेश के कुछ अंश, जिनका उल्लेख विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलाधीन निर्णय में किया है, नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं:-

"जांच समिति द्वारा प्रस्तुत जांच आख्या से स्पष्ट है कि श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अभिलेख और दस्तावेज को छुपाकर सहायक अध्यापक के पद पर बी०एड० योग्यता के आधार पर खाद्य पदार्थ प्राप्त की गई है, जबकि शैक्षिक सेवा नियमावली 98 भाग 04- अर्हताये केक 8 के उद्यम आरंभ अर्हताएवत निम्न है-

"जाँच समिति द्वारा प्रस्तुत जाँच आख्या से स्पष्ट है कि श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अभिलेखों तथा तथ्यों को छुपाकर सहायक अध्यापक के पद पर बी०एड० योग्यता के आधार पर नियुक्ति प्राप्त की जबकि अध्यापक सेवा नियमावली 1981 भाग 04- अर्हताये के परन्तुक 8 के अन्तर्गत शैक्षिक अर्हताए निम्नवत है-

01. अध्यापक पद हेतु शैक्षिक योग्यता-माध्यमिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश की इंटरमीडिएट परीक्षा या राज्य सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त कोई अन्य परीक्षा जिसमें यथास्थिति विज्ञान, गणित, कॉम्पट या विशिष्ट भाषा का कोई एक विषय रहा हो जिससे उसकी ऐसी परीक्षा में प्रयोजनार्थ परीक्षा ली गयी हो।

02. प्रशिक्षण अर्हता जिसके अन्तर्गत बेसिक अध्यापक प्रमाण पत्र, हिन्दुस्तानी अध्यापक प्रमाण पत्र, जूनियर अध्यापक प्रमाण पत्र, अध्यापक प्रमाण पत्र या सरकार द्वारा उसके समकक्ष मान्यता प्राप्त कोई अन्य प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी हो।

श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त वर्ष 1982 में मृतक आश्रित के रूप में अनुकम्पा के आधार पर चौकीदार के पद पर नियुक्ति प्राप्त करने के उपरान्त वर्ष 1986 में तथ्यों को छुपाकर तथा अध्यापक पद की आवश्यक अर्हताएं प्राप्त न होने पर भी सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति प्राप्त किया जाना अवैधानिक है।

अतः इस कार्यालय के पत्रांक: प्रबन्ध । 1836-37/86-87 दिनांक 16.08.1986 से श्री शिवदत्त शर्मा द्वारा सहायक अध्यापक (प्राथमिक विद्यालय) के पद की प्रशिक्षण योग्यता न रखते हुये भी सहायक अध्यापक के पद पर प्राप्त की गयी नियुक्ति को तत्काल प्रभाव से निरस्त किया जाता है।"
(प्रभाव वर्द्धित)

13. अपनी नियुक्ति रद्द करने के दिनांक 28.03.2019 के उपरोक्त आदेश से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने एक रिट याचिका प्रस्तुत की, जिसे अपील के तहत निर्णय के अनुसार खारिज कर दिया गया है।

14. विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका को खारिज करते हुए अपने तर्क और निष्कर्ष निम्नलिखित तरीके से दर्ज किए हैं:-

"4. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की बहस को श्रवण किया गया एवं पत्रावली का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया गया। वर्तमान प्रकरण में यह अविवादित है कि, याचिकाकर्ता 10.11.1981 को मृतक आश्रित के रूप में चौकीदार के पद पर नियुक्ति हुआ और उसके प्रार्थना पत्र पर, अवैतनिक अवकाश पर उसे बी.एड. (शिक्षा शास्त्री) की शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति दी गयी। इसके उपरान्त कब उनसे चौकीदार के पद से त्याग पत्र दिया और किस प्रक्रिया के अंतर्गत परिषदीय अध्यापकों की नियुक्ति/पदोन्नति समिति ने उसको सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति कर दिया, इसका पत्रावली पर कोई साक्ष्य नहीं है। यह भी जानकारी नहीं है कि यह नवीन नियुक्ति थी अथवा पदोन्नति। यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बी.एड. सहायक अध्यापक की अर्हता नहीं।

उसकी अर्हता बी.टी.सी. है जो याचिकाकर्ता के पास नहीं है। अतः वो सहायक अध्यापक के पद के लिए आरम्भ से ही अर्ह नहीं था।

(प्रभाव वर्द्धित)

15. विद्वान न्यायाधीश ने माना कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति नियमों के विरुद्ध थी; तथापि, चूंकि उसने 32 वर्षों तक काम किया था और उसकी सेवानिवृत्ति की आयु निकट थी, इसलिए रिट याचिका को विवादित आदेश में हस्तक्षेप किए बिना निपटा दिया गया, तथा यह प्रावधान किया गया कि वेतन और अन्य भत्तों के लिए याचिकाकर्ता को किए गए भुगतान की वसूली नहीं की जाएगी।

16. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का तर्क मुख्यतः इस कथन पर आधारित है कि याचिकाकर्ता ने सहायक अध्यापक के पद पर काफी लंबे समय तक कार्य किया है, इसलिए इस स्तर पर नियुक्ति रद्द करने का आदेश नहीं दिया जा सकता था, खासकर जब याचिकाकर्ता को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होना था। अपेक्षित प्रशिक्षण योग्यता अर्थात् बीटीसी की कमी के संबंध में, यह तर्क दिया गया कि उस समय बीटीसी प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी थी, फलस्वरूप बेसिक स्कूलों में बी.एड. योग्यता वाले शिक्षकों की नियुक्ति की प्रथा थी।

17. उपरोक्त दलीलों का खंडन करते हुए, राज्य-प्रत्यर्थागण और बेसिक शिक्षा परिषद की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्तागण ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता की सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्ति अवैध थी क्योंकि नियुक्ति के समय उसके पास निर्धारित प्रशिक्षण योग्यता नहीं थी। यह बताया गया है कि संबंधित प्राधिकारी से अनुमति प्राप्त करने के बाद बी.एड. की डिग्री प्राप्त करने के अपने दावे के संबंध में प्रासंगिक दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत करने और प्रासंगिक नियमों के तहत उचित चयन प्रक्रिया का पालन करके अपनी नियुक्ति को वैध रूप से किए जाने के अपने दावे के समर्थन में पर्याप्त अवसर दिए जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता यह प्रदर्शित करने के लिए कोई भी सामग्री प्रस्तुत नहीं कर सका कि उसकी नियुक्ति वैध रूप से की गई थी या उसके पास पद के लिए अपेक्षित योग्यता थी।

18. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि याचिकाकर्ता को एक बार मान्यता प्राप्त बेसिक स्कूल में चौकीदार/चपरासी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था, वह सहायक अध्यापक के पद पर अनुकंपा के आधार पर फिर से नियुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता था।

19. मुख्य मुद्दा, जो विचारणीय है, वह यह है कि क्या इस स्वीकृत स्थिति के आलोक में कि याचिकाकर्ता के पास सहायक अध्यापक के पद के लिए आवश्यक योग्यता नहीं है, उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना उसे दी गई नियुक्ति को वैध माना जा सकता है।

20. अन्य मुद्दा, जो विचारणीय होगा, वह यह होगा कि क्या याचिकाकर्ता, एक बार चौकीदार/ चपरासी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का लाभ प्राप्त करने के बाद, अनुकंपा के आधार पर पुनः सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति का दावा कर सकता है।

21. **राजस्थान राज्य बनाम उमराव सिंह** के प्रकरण में, यह माना गया कि एक बार किसी व्यक्ति को अनुकंपा नियुक्ति प्रदान कर दी जाती है और वह उसे स्वीकार कर लेता है, तो उसी योजना के अंतर्गत किसी उच्च पद पर आगे नियुक्ति का दावा करने का उसका अधिकार समाप्त हो जाता है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत हैं:-

"8. निस्संदेह प्रत्यर्थी के पिता की मृत्यु 16-3-1988 को सीआईडी (विशेष शाखा) में उप-निरीक्षक के रूप में कार्य करते हुए हुई थी। प्रत्यर्थी ने रिक्ति की उपलब्धता के अनुसार अनुकंपा के आधार पर उप-निरीक्षक या एलडीसी के रूप में अपनी नियुक्ति के लिए 8-4-1988 को आवेदन दायर किया था। उनकी याचिका पर विचार करने के बाद 14-12-1989 के आदेश द्वारा उन्हें एलडीसी के पद पर नियुक्त किया गया। उन्होंने एलडीसी के रूप में नियुक्ति स्वीकार कर ली। इसलिए, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने का अधिकार समाप्त हो गया। अनुकंपा के आधार पर आगे कोई विचार कभी नहीं होगा। अन्यथा, यह "अंतहीन अनुकंपा" का प्रकरण होगा। पुलिस उप-निरीक्षक के रूप में नियुक्त होने की पात्रता एक बात है, चयन की प्रक्रिया एक और बात है। केवल तथाकथित पात्रता के कारण, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश को इस दृष्टिकोण से राजी किया गया कि नियमावली के नियम 5 के प्रावधान के तहत निर्देश जारी किया जाए, जिसका इस प्रकरण के तथ्यों पर कोई अनुप्रयोग नहीं है।

9. चूँकि दोनों पक्षों ने नरेश कुमार बाली के प्रकरण [(1994) 4 एससीसी 448 : 1994 एससीसी (एल एंड एस) 909 : (1994) 27 एटीसी 611 : जेटी (1994) 4 एससी 184] पर भरोसा किया था, इसलिए अब हम उसी का संदर्भ लेंगे। हमने उक्त निर्णय के पैराग्राफ 15 में उसी निर्णय में अपनी राय व्यक्त की थी। यह इस प्रकार है: (एससीसी पृष्ठ 452, पैराग्राफ 15)

"यद्यपि प्रत्यर्थी ने दावा किया कि उसने अध्यापक के पद के लिए आवेदन किया था, अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड ने उसे अध्यापक के पद के लिए नहीं चुना क्योंकि उसके पास अपेक्षित योग्यता नहीं थी। वास्तव में,

प्रत्यर्थी ने लिपिक के रूप में अपनी नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी और अध्यापक के पद के लिए विचार हेतु उसका दावा उसकी नियुक्ति के एक वर्ष बाद का था। इस प्रकार, योजना के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पूरी हो गई थी।"

(प्रभाव वर्द्धित)

22. हरियाणा राज्य बनाम नरेश कुमार बाली प्रकरण में भी इसी प्रकार का विचार लिया गया था; इसका पैराग्राफ 15 इस प्रकार है:-

"15. हमने तथ्यात्मक पृष्ठभूमि पूरी तरह से प्रस्तुत की है। प्रत्यर्थी की माँ के दिनांक 3-8-1988 के पत्र में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उनका पुत्र (प्रत्यर्थी) लिपिक के पद पर नियुक्ति के लिए इच्छुक था। इसी आधार पर, ऊपर उद्धृत नियुक्ति पत्र जारी किया गया। यद्यपि प्रत्यर्थी ने दावा किया कि उसने अध्यापक के पद के लिए आवेदन किया था, अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड ने उसे अध्यापक के पद के लिए नहीं चुना क्योंकि उसके पास अपेक्षित योग्यता नहीं थी। वास्तव में, प्रत्यर्थी ने लिपिक के रूप में अपनी नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं जताई थी और अध्यापक के पद के लिए विचार हेतु उसका दावा उसकी नियुक्ति के एक वर्ष बाद का था। इस प्रकार, योजना के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पूरी हो चुकी थी। निरीक्षक के पद पर नियुक्ति का दावा पहले कभी नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय ने उन परिस्थितियों का विश्लेषण किए बिना ही, जिनके तहत उसके निर्णय में उल्लिखित सात व्यक्तियों को पुलिस अधिकारी (एएसआई या निरीक्षक) के रूप में नियुक्त किया गया, सीधे यह निष्कर्ष निकाल लिया है कि भेदभाव हुआ था। हम इस तर्क को समझने की स्थिति में नहीं हैं। सकारात्मक निष्कर्ष दिया जाना चाहिए था, चाहे प्रत्यर्थी का प्रकरण सातों के प्रकरण के साथ तुलनीय था और तब भेदभाव का निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए था।"

(प्रभाव वर्द्धित)

23. कृष्ण कुमार पांडेय बनाम एम.पी. राज्य प्रकरण में, यह अभिनिर्धारित किया गया कि अनुकंपा नियुक्ति योजना के तहत आगे या उन्नत नियुक्ति की मांग करने से 'अंतहीन' अनुकंपा की भावना पैदा होती है, जो ऐसी योजना की मूल भावना के विरुद्ध है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत हैं :-

"5. अब याचिकाकर्ता की शिकायत यह है कि चूंकि याचिकाकर्ता उच्चतर माध्यमिक उत्तीर्ण है, इसलिए उसे सामान्य प्रशासन विभाग के दिनांक 18-8-2008 के परिपत्र के अनुसार वार्ड बॉय, पटवारी, पंजीकरण क्लर्क आदि जैसे तृतीय श्रेणी के पद पर नियुक्ति दी जानी चाहिए।

6. इस संबंध में विधि सर्वविदित है कि अनुकंपा नियुक्ति अंतहीन नहीं हो सकती। एक बार याचिकाकर्ता ने चतुर्थ श्रेणी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति स्वीकार कर ली, तो वह चतुर्थ श्रेणी के पद पर नियुक्ति स्वीकार करने के बाद अपनी नियुक्ति में उन्नयन की मांग नहीं कर सकता, इसलिए, राजस्थान राज्य बनाम उमराव सिंह (1994) 6 एससीसी 560 के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, जिसमें यह माना गया है कि एक बार अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने और स्वीकार किए जाने के बाद, ऐसी नियुक्ति का अधिकार समाप्त हो जाता है। उच्च पद के लिए दूसरा विचार उचित नहीं है। इसलिए, चतुर्थ श्रेणी के पद पर अनुकंपा नियुक्ति स्वीकार करने के बाद उच्च पद पर अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना याचिकाकर्ता को स्वीकार नहीं की जा सकती।

(प्रभाव वर्द्धित)

24. डी. दिनेश चंद्र शर्मा बनाम जिला विद्यालय निरीक्षक के प्रकरण में इसी प्रकार के तथ्यों में, यह पाया गया है कि सहायक अध्यापक जैसे उच्च पद के लिए पात्रता, अनुकंपा नियुक्ति प्रक्रिया से अलग है और इसके लिए अपेक्षित योग्यता और चयन नियमों का पालन करना आवश्यक है। यह इस प्रकार कहा गया था:-

“6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता को विस्तार से सुनने और हलफनामे के साथ दायर सभी दस्तावेजों का अध्ययन करने के बाद, हमारा विचार है कि जब याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु हुई तो याचिकाकर्ता विधिक रूप से अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति पाने का हकदार था और उसे सहायक लिपिक के रूप में सही ढंग से नियुक्त किया गया क्योंकि वह केवल इंटरमीडिएट की योग्यता रखते हुए उस पद के लिए योग्य था। अनुकंपा के आधार पर विधि बहुत स्पष्ट है। यह मृतक के आश्रितों और परिवार के सदस्यों को वित्तीय सहायता देने के उद्देश्य से है, जो परिवार का कमाने वाला था और अपनी नौकरी के दौरान उसकी मृत्यु हो गई। जिला विद्यालय निरीक्षक, मेरठ द्वारा 24 अप्रैल 1998 को पारित आदेश से स्पष्ट है कि संबंधित अधिकारी ने 1996 (2) एलएलएन 225 (ऊपर देखें) में रिपोर्ट किए गए प्रासंगिक नियमों और विधि पर विचार किया, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि कोई भी व्यक्ति एक बार से अधिक डाइंग-इन-हार्नेस नियमों के तहत लाभ का दावा करने का हकदार नहीं है। सहायक अध्यापक के पद के लिए। हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता का प्रकरण ऊपर उद्धृत निर्णय द्वारा पूरी तरह से कवर किया गया है और विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में विशेष अपील में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।”

(प्रभाव वर्द्धित)

25. यह प्रश्न कि क्या एक बार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति स्वीकार कर लेने के बाद, क्या उसी अधिकार के तहत उच्चतर पद पर दूसरी बार विचार किया जा सकता है, अश्विनी कुमार गौतम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के प्रकरण में विचार किया गया था, और यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अनुकंपा के आधार पर किसी

पद को स्वीकार करने से, भले ही वह निम्नतर पद हो, उसी योजना के तहत उच्चतर पद के लिए किसी भी बाद के दावे की पात्रता समाप्त हो जाती है।

“10. इस अपील में विचारार्थ जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या एक बार अनुकंपा नियुक्ति स्वीकार कर लेने के बाद, क्या उसी अधिकार के तहत उच्चतर पद पर दूसरी बार विचार किया जा सकता है।

11. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि अपीलकर्ता ने तृतीय श्रेणी के पद पर नियुक्ति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और उसके अनुरूप, वह 18 फरवरी, 1994 को सेवा में शामिल हो गया। अतः, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता ने तृतीय श्रेणी के पद पर अनुकंपा नियुक्ति स्वीकार कर ली है, अतः अधिनियम/विनियमों के अंतर्गत विचार किए जाने का उसका अधिकार समाप्त हो गया है। अपीलकर्ता, अधिक से अधिक, अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने पर विचार किए जाने का हकदार था। यह उसे अपने पसंदीदा पद पर नियुक्ति का दावा करने का अविभाज्य अधिकार नहीं देता। अतः, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता अब अपनी योग्यता को ध्यान में रखते हुए उच्च पद दिए जाने के लिए उसी प्रावधान के अंतर्गत अपने दावे पर पुनर्विचार के लिए आवेदन या प्रयास नहीं कर सकता।

12. पुनः मध्य प्रदेश राज्य बनाम रमेश कुमार शर्मा, 1994 सप (3) एससीसी 661: एआईआर 1994 एससी 845: (1994 एआईआर एससीडब्ल्यू 218) के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने वाले व्यक्ति को अपनी पसंद के किसी विशेष पद का कोई अधिकार नहीं है।

13. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विधि की व्याख्या के मददेनजर, यह निष्कर्ष निकाला गया है कि एक बार जब कोई पदधारी अनुकंपा नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले नियमों या विनियमों के तहत उसे दिए गए पद को स्वीकार कर लेता है, तो उक्त नियमों या विनियमों के तहत उसे दिया गया अधिकार समाप्त हो जाता है और उक्त अधिकार के लिए कोई दूसरा विचार नहीं किया जा सकता है।

(प्रभाव वर्द्धित)

26. याचिकाकर्ता के पास सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए अपेक्षित प्रशिक्षण योग्यता अर्थात् बीटीसी न होना विवादित नहीं है।

27. समान प्रकार के तथ्यों के संबंध में प्रश्न की जांच मोहम्मद सरताज बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के प्रकरण में की गई थी और यह देखा गया था कि ऐसे प्रकरण में, जहां अपीलकर्ता के पास सहायक अध्यापक के पद पर

नियुक्ति के लिए प्रासंगिक नियमों के तहत निर्धारित प्रशिक्षण योग्यता नहीं थी, नियुक्ति को रद्द करने के आदेश में कोई त्रुटि नहीं हो सकती थी।

28. एक से अधिक बार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का अधिकार न मिलने के संबंध में विधिक स्थिति काफी हद तक स्थापित है। इसलिए, याचिकाकर्ता, पूर्व में उक्त लाभ प्राप्त कर चुका है, और वह सहायक अध्यापक के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का लाभ लेने का हकदार नहीं है। दूसरे बिंदु के संबंध में विधिक स्थिति यह है कि यदि विचाराधीन पद के लिए मूल योग्यताएँ पूरी नहीं होती हैं, तो नियुक्ति का कोई दावा नहीं किया जा सकता, इस पर भी अधिक विस्तार से विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह पूरी तरह स्थापित है कि यदि मूल योग्यताएँ पूरी नहीं होती हैं, तो संबंधित व्यक्ति विचाराधीन पद पर नियुक्ति का दावा नहीं कर सकता।

29. याचिकाकर्ता के संबंध में तथ्य यह है कि उसे यह प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त अवसर दिया गया था कि सहायक अध्यापक के पद पर उसकी नियुक्ति उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद की गई थी, तथा यह विवादित नहीं है।

30. विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तथ्य पर उचित संज्ञान लिया है कि अवसर दिए जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता यह सिद्ध करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सका कि सहायक अध्यापक के पद पर उसकी नियुक्ति प्रासंगिक वैधानिक नियमों का पालन करते हुए की गई थी। यह भी संज्ञान लिया गया है कि याचिकाकर्ता के पास उक्त पद पर नियुक्ति के लिए आवश्यक प्रशिक्षण योग्यता नहीं थी, एक ऐसा तथ्य जिस पर याचिकाकर्ता ने किसी भी स्तर पर विवाद नहीं किया।

31. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि याचिकाकर्ता की सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्ति को रद्द करने वाले दिनांक 28.3.2019 के आदेश को दोनों आधारों पर गलत नहीं ठहराया जा सकता है, अर्थात्, (i) याचिकाकर्ता के पास सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए विचार किए जाने हेतु प्रासंगिक नियमों के तहत निर्धारित अपेक्षित प्रशिक्षण योग्यता नहीं है; और (ii) याचिकाकर्ता को पहले चौकीदार/चपरासी के पद पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया था, अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा करने का उक्त अधिकार समाप्त हो गया है और याचिकाकर्ता के लिए अनुकंपा के आधार पर फिर से सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति की मांग करना संभव नहीं होगा।

32. यह तथ्य कि याचिकाकर्ता ने काफी लम्बी अवधि तक काम किया था, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा ध्यान में लिया गया है और तदनुसार, आदेश में हस्तक्षेप किए बिना रिट याचिका का निस्तारण करते हुए, यह

प्रावधान किया गया है कि वेतन और अन्य भत्तों के लिए याचिकाकर्ता को किए गए भुगतान की वसूली नहीं की जाएगी।

33. विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय, अभिलेख में उपलब्ध तथ्यों और सामग्री के मूल्यांकन तथा ठोस कारणों को दर्ज करने के बाद आधारित है। हम इस प्रकरण में कोई भिन्न दृष्टिकोण अपनाने के लिए सहमत नहीं हैं।

34. अपील में कोई गुण-दोष नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 402

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 02.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

विशेष अपील संख्या- 432 सन् 2024

पद्माकर दीक्षित

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

सिद्धार्थ खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी., कुशमंडेय शाही, सुनील कुमार दुबे

ए. दीवानी विधि - सहायक अध्यापकों की भर्ती में आरक्षण - कैरी फॉरवर्ड नियम का विलोपन - नियुक्ति की वैधता - उत्तर प्रदेश लोक सेवा (शारीरिक रूप से विकलांग, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों और भूतपूर्व सैनिकों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1993 - धारा 3(5) को उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 12 सन् 2016 द्वारा विलोपित - उत्तर प्रदेश द्वारा अधिनियम संख्या 12 सन् 2016 - उक्त अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (5), जो रिक्त पदों को अगले वर्ष के लिए अग्रणी करने का प्रावधान करती थी, को हटा दिया गया था - आरक्षित

श्रेणी की रिक्तियों को अगले वर्ष के लिए अग्रेषित नहीं किया जा सकता था - शारीरिक रूप से विकलांग उम्मीदवारों के पक्ष में पदों के आरक्षण के संबंध में 'अग्रेषित करने का नियम', अधिनियम, 1993 की धारा 3 की उपधारा (5) के लोप के मददेनजर अब लागू नहीं है, 2016 के संशोधित अधिनियम के अनुसार, सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा उक्त पदों को भरने को किसी भी विधिक दुर्बलता से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता है। (पैरा 11)

बी. सहायक अध्यापकों की भर्ती - प्रथम दृष्टया मामले में, विज्ञापन में यह प्रावधान था कि प्रथम चरण की काउंसलिंग में अभ्यर्थी केवल उसी जिले में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन कर सकता है जहां से उसने बीटीसी प्रशिक्षण प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम किया हो। यह भी प्रावधान था कि द्वितीय चरण की काउंसलिंग में अभ्यर्थी शेष रिक्त पदों के लिए आवेदन कर सकता है - अपीलकर्ता ने अपना बीटीसी प्रशिक्षण प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम वाराणसी जिले से उत्तीर्ण किया था, इसलिए उसने वाराणसी जिले में आवेदन किया था। वह प्रथम चरण की काउंसलिंग में असफल रहा। एक विकल्प था कि द्वितीय चरण की काउंसलिंग में राज्य के किसी भी जिले के लिए आवेदन किया जा सकता है। अपीलार्थी ने जिला मिर्जापुर का विकल्प चुना। अपीलार्थी दूसरे चरण की काउंसलिंग में उपस्थित हुआ। पहले और दूसरे चरण की काउंसलिंग में चयनित दोनों अभ्यर्थियों को संयुक्त सूची में दिखाया गया था और अपीलार्थी का नाम संयुक्त चयन सूची में क्रम संख्या 1 पर था। अपीलार्थी को नियुक्ति पत्र जारी किया गया और उसके अनुसरण में उसने 06.09.2016 को कार्यभार ग्रहण कर लिया। 18.11.2021 को अपीलार्थी को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें कहा गया कि पहली काउंसलिंग पूरी होने के बाद जिला मिर्जापुर में सहायक अध्यापक के 17 पद रिक्त रह गए, जिसमें अनुसूचित जाति के ऊर्ध्वाधर आरक्षण के तहत 3 पद और क्षैतिज आरक्षण के तहत 14 पद शामिल थे, जिनमें से 2 पद दृष्टिबाधित शारीरिक रूप से विकलांग अभ्यर्थियों के लिए और 2 पद श्रवणबाधित अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित थे, 10 पद भूतपूर्व सैनिकों के लिए थे। कारण बताओ नोटिस में कहा गया था कि चूंकि सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों के लिए कोई पद उपलब्ध नहीं था, इसलिए अपीलकर्ता को दूसरे चरण की काउंसलिंग में गलत तरीके से नियुक्त किया गया। अपीलकर्ता की नियुक्ति को अवैध ठहराया गया। एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका खारिज कर दी। अभिनिर्धारित: काउंसलिंग के पहले दौर में जो पद नहीं भरे जा सके थे, उन्हें अधिनियम, 1993 की धारा 3 की उपधारा (5) के लोप के कारण चयन की अगली प्रक्रिया में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था और इसलिए, रिक्त पद, निहितार्थतः, सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा भरे जा सकते थे। सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा पदों को भरना किसी भी विधिक दुर्बलता से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता। (प्रस्तर 11)

स्वीकृत। (ई-5)

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

और

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को सुना गया, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने की और बेसिक शिक्षा बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कुशमंडेय शाही को सुना गया।

2. इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 695 सन् 2023 (पद्माकर दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में पारित दिनांक 1.3.2024 के निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए तत्काल विशेष अपील दायर की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता-अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई है।

3. राज्य सरकार ने दिनांक 16.6.2016 की अधिसूचना द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के सभी बेसिक शिक्षा परिषद विद्यालयों में सहायक अध्यापकों की भर्ती हेतु अधिसूचना जारी की और इस संबंध में दिनांक 27.6.2016 को एक विज्ञापन भी जारी किया गया। 30.6.2016 से 15.7.2016 के मध्य उत्तर प्रदेश के सभी जिलों में भर्ती हेतु आवेदन आमंत्रित किए गए। विज्ञापन में यह प्रावधान किया गया था कि प्रथम चरण की काउंसलिंग में अभ्यर्थी केवल उसी जिले में सहायक अध्यापक के पद पर नियुक्ति के लिए आवेदन कर सकता है, जहाँ से उसने बीटीसी प्रशिक्षण प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम किया हो। तथापि, यह प्रावधान किया गया था कि द्वितीय चरण की काउंसलिंग में अभ्यर्थी उत्तर प्रदेश के किसी भी जिले में शेष रिक्त पदों के लिए आवेदन कर सकता है। प्रथम चरण की काउंसलिंग 16.8.2016 और 17.8.2016 को हुई थी। अपीलकर्ता ने वाराणसी जिले से बीटीसी प्रशिक्षण प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम उत्तीर्ण किया था, इसलिए उसने वाराणसी जिले में उपलब्ध रिक्तियों के लिए आवेदन किया था। हालाँकि, वह पहले चरण की काउंसलिंग में असफल रहा, इसलिए उसने दूसरे चरण की काउंसलिंग के लिए आवेदन किया। चूँकि दूसरे चरण की काउंसलिंग में राज्य के किसी भी जिले के लिए आवेदन करने का विकल्प था, इसलिए अपीलकर्ता ने मिर्जापुर जिले को चुना और उसे अपनी पहली प्राथमिकता दी। जिला मिर्जापुर के लिए आयोजित काउंसलिंग 24.8.2016 को की गई थी और जब मेरिट सूची तैयार की गई, तो अपीलकर्ता को मेरिट सूची में क्रम संख्या 1 पर रखा गया था। इसके बाद, अपीलकर्ता को बेसिक शिक्षा अधिकारी, मिर्जापुर द्वारा 27.8.2016 को नियुक्ति पत्र जारी किया गया और उसके अनुसरण में, उन्होंने 6.9.2016 को कार्यभार ग्रहण किया। हालाँकि, 18.11.2021 को अपीलकर्ता को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसमें कहा गया कि पहली काउंसलिंग पूरी होने के बाद, जिला मिर्जापुर में सहायक अध्यापक के 17 पद रिक्त रह गए, जिसमें अनुसूचित जाति के ऊर्ध्वधर आरक्षण के तहत 3 पद और क्षैतिज आरक्षण के तहत 14 पद शामिल थे, जिनमें से 2 पद दृष्टि विकलांगता से पीड़ित शारीरिक रूप से विकलांग उम्मीदवारों के लिए आरक्षित थे और 2 पद श्रवण विकलांगता से पीड़ित उम्मीदवारों के लिए थे, 10 पद भूतपूर्व सैनिकों के लिए थे। कारण बताओ नोटिस में कहा गया था कि चूँकि सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए कोई पद उपलब्ध नहीं था, इसलिए अपीलकर्ता को दूसरे चरण की काउंसलिंग में गलत तरीके से नियुक्त किया गया था। अपीलकर्ता ने कारण बताओ नोटिस का जवाब दिया और उसके बाद, बेसिक शिक्षा अधिकारी, मिर्जापुर ने 10.3.2022 को अपीलकर्ता के वेतन भुगतान पर रोक लगाने का आदेश पारित किया। इस आदेश को अपीलकर्ता ने रिट याचिका संख्या 11964 सन् 2022 (पद्माकर दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) दायर करके चुनौती दी।

4. हालाँकि, जब अपीलकर्ता की नियुक्ति को 2.12.2022 के आदेश द्वारा अवैध ठहराया गया, तो उसने रिट याचिका के माध्यम से इसे चुनौती दी, जो रिट-ए संख्या 695 सन् 2023 थी। जब उक्त रिट याचिका को विद्वान एकल न्यायाधीश के 1.3.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, तो तत्काल अपील दायर की गई।

5. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश का विरोध करते हुए कहा कि जाँच स्वयं एक विलम्बित जाँच थी, जो अपीलकर्ता की प्रारंभिक नियुक्ति के छह वर्ष बाद शुरू हुई थी। आगे यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता एक साधारण अभ्यर्थी था, जिसने दूसरे चरण की काउंसलिंग में भाग लिया था और उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि जिस पद पर उसकी नियुक्ति की जा रही है, वह दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए आरक्षित है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि सेवा समाप्ति आदेश से पहले कोई विभागीय जाँच नहीं हुई थी, जैसा कि उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा (कर्मचारी) सेवा नियमावली, 1973 और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (दंड एवं अपील) नियमावली, 1999 के अंतर्गत निर्धारित है। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आक्षेपित आदेश में जो आपत्ति ली गई थी, जिसे रिट याचिका में चुनौती दी गई थी, कि याचिकाकर्ता को एक रिक्ति के विरुद्ध नियुक्त किया गया था जो शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए क्षैतिज आरक्षण के अंतर्गत आती थी, वह पूरी तरह से गलत थी। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि भले ही जिस पद पर अपीलकर्ता की नियुक्ति हुई थी, वह शारीरिक रूप से विकलांग उम्मीदवार को समायोजित करने के उद्देश्य से आरक्षित था, जो काउंसलिंग के पहले दौर में खाली रह गया था, उस स्थिति में भी, यह एक रिक्ति बन गई जिसे सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार द्वारा भरा जा सकता था, क्योंकि शारीरिक रूप से विकलांग, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों और पूर्व सैनिकों के लिए आरक्षण के संबंध में प्रासंगिक अधिनियम, यानी उत्तर प्रदेश लोक सेवा (शारीरिक रूप से विकलांग, स्वतंत्रता सेनानियों के आश्रितों और पूर्व सैनिकों के लिए आरक्षण) अधिनियम, 1993 में संशोधन किया गया था और संशोधन द्वारा, उक्त अधिनियम की धारा 3 की उप-धारा (5), जो एक खाली आरक्षित रिक्ति को अगले वर्ष के लिए आगे ले जाने का प्रावधान करती थी, को यूपी अधिनियम संख्या 12 सन् 2016 द्वारा हटा दिया गया था और इस प्रकार, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि आरक्षित श्रेणी की रिक्ति को अगले वर्ष के लिए आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है, काउंसलिंग के दूसरे दौर में, रिक्त पद सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार द्वारा भरा गया।

6. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विद्वान एकल न्यायाधीश के आदेश की और भी आलोचना करते हुए कहा कि रिट याचिका इस गलत आधार पर खारिज कर दी गई कि अपीलकर्ता अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों के समर्थन में कोई भी सामग्री अभिलेख पर नहीं ला सका। विद्वान अधिवक्ता ने कहा है कि अपीलकर्ता से यह साबित करने की उम्मीद की गई थी कि वह काउंसलिंग के दूसरे दौर में उपस्थित हुआ था। यह सबूत अपीलकर्ता द्वारा नहीं लाया जा सकता था। हालाँकि, यह तथ्य कि अपीलकर्ता काउंसलिंग के दूसरे दौर में उपस्थित हुआ था, आरण -1 से स्पष्ट था, जिसे रिट याचिका के जवाबी हलफनामे में दायर किया गया था। क्या अपीलकर्ता पहले दौर में या काउंसलिंग के दूसरे दौर में उपस्थित हुआ था, यह मामले में प्रत्यर्थीगण के अभिलेख से ही स्पष्ट हो सकता था। उस समय के दौरान, जब प्रत्यर्थी अपीलकर्ता के मामले की जांच कर रहे

थे, क्षेत्रीय सहायक शिक्षा निदेशक (बेसिक), मिर्जापुर द्वारा 23.12.2021 को उत्तर प्रदेश के स्कूल शिक्षा महानिदेशक के समक्ष एक जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, और इसे प्रत्यर्थी संख्या 2, 4, 5 और 6 की ओर से दायर पूरक जवाबी हलफनामे के अनुलग्नक-8 के माध्यम से अभिलेख पर लाया गया था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इस मामले के प्रयोजन के लिए निम्नलिखित पैराग्राफ प्रासंगिक थे और चूंकि उन्होंने उसी पर भरोसा किया था, इसलिए उन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:

“जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी मीरजापुर से प्राप्त अनन्तिम चयनित सूची के अनुसार प्रथम चरण एवं द्वितीय चरण के अभ्यर्थियों की एक अन्तिम चयन सूची तैयार की गयी है जबकि अलग-अलग होना चाहिए था क्योंकि प्रथम वरीयता जनपद के अभ्यर्थियों की मेरिट अलग एवं द्वितीय वरीयता के अभ्यर्थियों की मेरिट अलग होगी। किन्तु जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा एक ही सूची तैयार की गयी, जो कि नियमानुसार नहीं है।

प्रथम चरण की काउन्सिलिंग के अभ्यर्थियों का उपस्थित पत्र जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी मीरजापुर द्वारा उपलब्ध कराया गया है किन्तु द्वितीय चरण की काउन्सिलिंग के अभ्यर्थियों का उपस्थिति पत्रक जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी मीरजापुर द्वारा उपलब्ध नहीं कराया गया है।”

7. उपर्युक्त पैराग्राफों पर भरोसा करते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि प्रत्यर्थीगण का मामला यह था कि चयनित उम्मीदवारों की एक संयुक्त चयन सूची विभाग द्वारा प्रकाशित की गई थी और इसलिए, दो अलग-अलग चयन सूचियों का कोई सवाल ही नहीं था। अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि उम्मीदवार, जो पहले और दूसरे दौर की काउंसलिंग में चुने गए थे, दोनों को संयुक्त सूची में दिखाया गया था, इसलिए, यह प्रतीत होता है कि रिक्तियां, जो पहले काउंसलिंग के पहले दौर में भरी नहीं गई थीं, हालांकि अधिनियम, 1993 की धारा 3 की उप-धारा (5) में संशोधन के मद्देनजर अगले वर्ष के लिए आगे नहीं बढ़ाई जा सकती थीं, उन्हें गलती से आरक्षित श्रेणी की रिक्तियों के रूप में दिखाया गया था। विद्वान अधिवक्ता ने आगे कहा कि आरक्षित रिक्ति के रूप में रिक्तियों की उपरोक्त गलत प्रविष्टि के खिलाफ, याचिकाकर्ता का नाम दिखाया गया था और इसलिए, पूरा मामला अपीलकर्ता के खिलाफ गलत आधार पर आगे बढ़ाया गया था।

8. सुनवाई के दौरान, बेसिक शिक्षा बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने अपनी दलील केवल इस तथ्य तक सीमित रखी कि 16.8.2016 और 17.8.2016 को आयोजित प्रथम चरण की काउंसलिंग के बाद तैयार की गई चयन सूची में, अपीलकर्ता को दृष्टिबाधित अभ्यर्थी की श्रेणी में चयनित अभ्यर्थी के रूप में दर्शाया गया था, वह भी प्रथम चरण की काउंसलिंग में। उन्होंने आगे तर्क दिया कि अपीलकर्ता ने चयन सूची में अपना नाम धोखाधड़ी से दर्ज करवाया था।

9. यह भी आरोप लगाया गया है कि चूंकि अपीलकर्ता ने धोखाधड़ी की थी, इसलिए उसका नाम चयन सूची में उस रिक्ति के विरुद्ध दिखाया गया था जो दृष्टिबाधित व्यक्ति के लिए आरक्षित थी।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेखों का अवलोकन करने के पश्चात् ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम चरण की काउंसलिंग में अपीलार्थी जनपद वाराणसी से उपस्थित हुआ था, क्योंकि उसने अपना बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम उसी जनपद से पूरा किया था, किन्तु जब उसे प्रथम चरण की काउंसलिंग में असफल घोषित कर दिया गया, तो वह पुनः 24.8.2016 को आयोजित द्वितीय चरण की काउंसलिंग में उपस्थित हुआ तथा 27.8.2016 को उसे विद्यालय अर्थात् प्राथमिक विद्यालय आराजी देवघटा, विकास खण्ड लालगंज, जनपद मिर्जापुर में सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया।

11. हम अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिए गए तर्क से निश्चित रूप से प्रभावित हैं कि क्या अपीलकर्ता दूसरे चरण की काउंसलिंग में उपस्थित हुआ था, यह अपीलकर्ता द्वारा उत्तर देने योग्य प्रश्न नहीं है क्योंकि अपीलकर्ता का नाम संयुक्त चयन सूची में क्रम संख्या 1 पर दिखाई दिया था, जिसे पूरक प्रति शपथ पत्र के पृष्ठ 51 पर संलग्न किया गया है। यह बात बहुत मायने नहीं रखती कि जिस पद पर अपीलकर्ता का चयन किया गया था, उसे दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए आरक्षित पद के रूप में दिखाया गया था। हम यह इस कारण से कह रहे हैं कि जो पद काउंसलिंग के पहले चरण में नहीं भरे गए थे, उन्हें अधिनियम, 1993 की धारा 3 की उपधारा (5) में संशोधन के मददेनजर चयन की अगली प्रक्रिया में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था और इसलिए, निहितार्थ रूप से, रिक्त पद सामान्य उम्मीदवारों द्वारा भरे जा सकते थे।

12. शारीरिक रूप से विकलांग उम्मीदवारों के पक्ष में पदों के आरक्षण के संबंध में 'आगे ले जाने का नियम', अधिनियम, 1993 की धारा 3 की उपधारा (5) के लोप के मददेनजर अब लागू नहीं है, 2016 के संशोधन अधिनियम के अनुसार, सामान्य श्रेणी के उम्मीदवारों द्वारा उक्त पदों को भरने को किसी भी विधिक दुर्बलता से ग्रस्त नहीं कहा जा सकता है।

13. बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता भी अधिनियम, 1993 की धारा 3 की उपधारा (5) में संशोधन के संबंध में विधि की स्थिति का खंडन नहीं कर पाए हैं, जिसके तहत आरक्षित श्रेणी के रिक्त पदों को अगले चयन वर्ष में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता था और इसलिए, उन रिक्त पदों के विरुद्ध सामान्य श्रेणी के अभ्यर्थियों का चयन किया जा सकता था।

14. प्रस्तुत तर्कों और दिए गए कारणों के आलोक में, हमारा विचार है कि अपीलकर्ता की सेवाओं को समाप्त करने वाला दिनांक 2.12.2022 का आदेश, अभिलेख के अनुसार त्रुटिपूर्ण था, क्योंकि यह अपीलकर्ता पर गलत तरीके से साक्ष्य पेश करने का भार डालने के बाद पारित किया गया था कि उसने काउंसलिंग के दूसरे दौर में भाग लिया था। मामले का तथ्य यह है कि नियुक्ति/काउंसलिंग की प्रक्रिया के संबंध में सभी प्रासंगिक दस्तावेज और साक्ष्य बोर्ड के पास थे और ऐसी स्थिति में, अपीलकर्ता द्वारा काउंसलिंग के दूसरे दौर में भाग लेने का

साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। अपीलकर्ता का चयन सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार के रूप में किया गया था। अधिनियम, 1993 की धारा 5(3) में किए गए संशोधन के मद्देनजर, अब आरक्षित वर्ग की रिक्तियों को अगले चयन में आगे बढ़ाने का कोई प्रावधान नहीं था। चूंकि काउंसिलिंग के दोनों चरणों के बाद चयनित उम्मीदवारों के संबंध में एकल/संयुक्त चयन सूची तैयार की गई थी, जैसा कि प्रत्यर्थागण द्वारा स्वीकार किया गया था, याचिकाकर्ता के दावे में कोई त्रुटि नहीं थी, जिसका नाम संयुक्त रूप से प्रकाशित चयन सूची के क्रम संख्या 1 पर था।

15. पूर्वोक्त चर्चाओं के आलोक में, हमारी राय है कि वर्तमान विशेष अपील स्वीकार किए जाने योग्य है और तदनुसार, इसे स्वीकार किया जाता है। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 1.3.2024 को पारित आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा दिनांक 2.12.2022 को पारित आदेश भी अपास्त किया जाता है। चूंकि हमने विशेष अपील स्वीकार कर ली है, इसलिए अपीलकर्ता को सेवा में पुनः बहाल किया जाए और वह सभी परिणामी लाभों का हकदार होगा।

(2025) 1 ILRA 407

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक : इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला,
माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव,
विशेष अपील संख्या 614 सन् 2024

मनीष कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

महाप्रबन्धक कार्मिक मानव संसाधन प्रबन्धन एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

सिद्धार्थ खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता :

कृष्ण मोहन अस्थाना

अ. प्रक्रिया एवं कार्यप्रणाली- विशेष अपील - न्यायिक पुनर्विलोकन - परिधि - साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन - अनुमन्यता - यह निर्णयित किया गया कि यह न्यायालय अपील के रूप में बैठकर साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं

कर सकता। भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारों का प्रयोग करते हुए विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा याचिका निरस्त किए जाने के विरुद्ध अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की विशेष अपील में इस न्यायालय का पुनर्विलोकन क्षेत्र अत्यंत सीमित है। (प्रस्तर 9)

ब. प्रक्रिया एवं कार्यप्रणाली - विशेष अपील - परिधि - वह बिंदु जो रिट न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया, विशेष अपील में प्रस्तुत करने की अनुमति - यह निर्णयित किया गया कि जो बिंदु रिट न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया, उसे विशेष अपील में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। (प्रस्तर 17)

स. सेवा विधि - विभागीय जांच - सेवा से अनधिकृत अनुपस्थिति - इस आरोप से संबंधित तथ्य विभागीय जांच के दौरान स्वीकार किया गया - जांच प्रतिवेदन की अप्राप्ति - प्रभाव - यह निर्णयित किया गया कि यदि यह मान भी लिया जाए कि जांच प्रतिवेदन अपीलकर्ता को उपलब्ध नहीं कराया गया, तो भी उससे अपीलकर्ता को कोई प्रतिकूलता नहीं हुई - स्वीकृत तथ्यों को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं होती, जबकि वर्तमान मामले में विधि के अनुसार पूर्ण रूप से विभागीय जांच संपन्न की गई। (प्रस्तर 17 एवं 18)

विशेष अपील निरस्त की गई। (ई-1)

उल्लिखित मामलों की सूची:

1. प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर; (1993) 4 एससीसी 727
2. एस.के. सिंह बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य; (1996) 6 एससीसी 415

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला द्वारा प्रदत्त)

1. श्री अशोक खरे, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनकी सहायता अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे ने की और प्रतिपक्षी-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री के.एम. अस्थाना, को सुना गया।

2. वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है ताकि याचिका-ए संख्या 7405 सन् 2021 (मनीष कुमार बनाम मानव संसाधन प्रबंधन एवं अन्य) में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 5.6.2024 में पारित **आक्षेपित** निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए दाखिल की गई है।

3. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता का मामला, जैसा कि यहाँ **आक्षेपित** आदेश में वर्णित है, यह है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को 17.11.2008 को चेन्नई में सिंडिकेट बैंक में **परिवीक्षाधीन अधिकारी (सहायक प्रबंधक) मध्यवर्गीय प्रबंधक पद-मानक** । के पद पर नियुक्त किया गया था और उन्हें 26.06.2014 को **मध्यवर्गीय प्रबंधक पद-**

मानक II के पद पर पदोन्नति प्राप्त हुई। पदोन्नति के कारण उन्होंने ग्वालियर के सिटी सेंटर शाखा में **कार्यभार ग्रहण** किया और 19.03.2016 तक सेवा में बिना किसी अवकाश के कार्य किया। उन्हें समय-समय पर विभिन्न शहरों और राज्यों में स्थानांतरित किया गया। उन्होंने अपने कर्तव्यों को ईमानदारी और निष्ठा के साथ निर्वहन किया और उन्हें अंतिम बार 16.09.2017 को जिला एटा शाखा में सहायक प्रबंधक के रूप में स्थानांतरित किया गया। उन्होंने कुल 13 वर्षों तक बिना किसी अवकाश के कार्य किया और इस अवधि के दौरान उनके कार्य और आचरण को बैंक के उच्च अधिकारियों द्वारा सराहा गया। वर्ष 2017 में उन्हें अहमदाबाद मुख्य शाखा से सिंडिकेट शाखा, एटा में स्थानांतरित किया गया, लेकिन दुर्भाग्य से, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा बताई गई मधुमेह आदि से उत्पन्न गंभीर बीमारी के कारण, वह 22.11.2018 से नियमित रूप से कर्तव्य पालन नहीं कर पाए। इस दौरान उनके परिवार ने चिकित्सीय **प्रतिवेदन** और उपचार के दस्तावेज बैंक को प्रस्तुत किए। स्वस्थ होने पर उन्होंने 05.06.2020 का चिकित्सीय प्रमाण-पत्र बैंक के समक्ष प्रस्तुत किया। 05.06.2020 को संपत्ति विवाद के कारण अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने भुरे सिंह के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करवाई, जिसके प्रतिवाद में भुरे सिंह ने अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करवाई। इस संबंध में 12.06.2020 को अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को गिरफ्तार किया गया और 10.11.2020 को जमानत दी गई। जब अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता हिरासत में था, तब उसे लंबी अवधि की अनुपस्थिति के कारण उन्हें सेवा से निलंबित किया गया। जमानत पर रिहाई के बाद अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने निलंबन रद्द करने और वेतन का भुगतान करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्हें 10.03.2021 की **आरोप-पत्र** प्रदान किया गया और 12.03.2021 को बागपत क्षेत्रीय कार्यालय में सहायक प्रबंधक के रूप में नियुक्त किया गया। उन्होंने आरोप-पत्र का जवाब 14.03.2021 को दिया और 16.03.2019 एवं 21.04.2019 के पत्रों की प्राप्ति से इनकार किया। बैंक की इटावा शाखा में तैनाती के दौरान 22.11.2018 से 12.06.2020 तक उनकी अनुपस्थिति के बारे में बचाव पक्ष ने तर्क दिया कि वे गंभीर रूप से बीमार थे और सर गंगा राम अस्पताल, दिल्ली में भर्ती थे। अनुशासनिक प्राधिकरण ने जांच अधिकारी नियुक्त किया, जिसने जांच **प्रतिवेदन** प्रस्तुत किया। इसके आधार पर, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को **सूचना-पत्र** जारी करने के पश्चात, सहायक महाप्रबंधक, मानव संसाधन प्रबंधन अनुभाग, कैनरा बैंक, लखनऊ द्वारा सेवा से वंचित किया गया। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने 10.04.2021 को अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष अपील की, जिसे अपीलीय प्राधिकारी - उप महाप्रबंधक, मानव संसाधन प्रबंधन, कैनरा बैंक, प्रधान कार्यालय, बेंगलुरु द्वारा अनुशासनिक प्राधिकारी के निर्णय की पुष्टि करते हुए निरस्त कर दिया गया।

4. उक्त आदेश से आक्रोशित होकर, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने याचिका-ए संख्या 7405 सन् 2021 (मनीष कुमार बनाम मानव संसाधन प्रबंधन एवं अन्य) योजित की, जिसे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा दिनांक 5.6.2024 के **आक्षेपित** आदेश के माध्यम से निरस्त कर दिया गया। अतः वर्तमान अपील प्रस्तुत की गई है।

5. अपील में प्रस्तुत किये गए आधार यह हैं कि 22.3.2021 को केवल जल्दीबाजी में संपूर्ण कार्यवाही करने का कोई औचित्य नहीं था और इसे संविधान के अनुच्छेद 14 के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए तथा 1976 के आचरण और अपील नियम का उल्लंघन करते हुए संचालित किया गया। यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को अपनी रक्षा में साक्ष्य प्रस्तुत करने का पर्याप्त अवसर प्रदान नहीं किया गया। यह भी प्रस्तुत

किया गया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को न तो जांच **प्रतिवेदन** के संबंध में कोई सूचना दी गई और न ही उसकी प्रति प्रदान की गई। यह प्रस्तुत किया गया कि **प्रस्तुतिकरण अधिकारी** ने स्वयं दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया और प्रबंधन की ओर से (प्रस्तुतिकर्ता अधिकारी 1) गवाह के रूप में गवाही दी। यह प्रस्तुत किया गया कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने **आक्षेपित** आदेश पारित करते समय अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किये गए आधारों को ग़लत रूप में व्याख्यायित किया और यह मूल्यांकन करने में विफल रहे कि प्रस्तुतिकरण अधिकारी किसी भी प्रकार से उन दस्तावेजों से परिचित नहीं था जिन्हें उसकी ओर से प्रमाणित करने का प्रयास किया गया। उपस्थिति **पंजी** की ओर ध्यान आकृष्ट कराते हुए यह और प्रस्तुत किया गया कि उपस्थिति पंजी स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को बैंक द्वारा 6.6.2019 तक अवकाश पर अंकित किया गया था और 7.6.2019 से अनुपस्थित था; अतः अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप कि वह 22.11.2018 से 12.6.2020 तक अनधिकृत रूप से कर्तव्यों से अनुपस्थिति रखी, अशुद्ध एवं असत्य है।

6. अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के तर्कों का सार यह है कि प्रथम, प्रारंभिक जांच भोजन से पूर्व आयोजित की गई और उसी दिन दोपहर के बाद नियमित जांच भी की गई, अतः अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को जांच कार्यवाही में सुनवाई का कोई अवसर नहीं प्रदान किया गया, जो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का स्पष्ट उल्लंघन है और अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को गंभीर हानि पहुँचाता है; दूसरा, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को कभी भी जांच **प्रतिवेदन** की प्रति प्रदान नहीं की गई। इस संबंध में 31.3.2021 के दंड आदेश पर ध्यान आकृष्ट किया गया, जो दस्तावेज-पुस्तक के परिशिष्ट-1 के रूप में संलग्न है, जिसमें लिखा गया है कि जांच **प्रतिवेदन** 25.3.2021 को प्रस्तुत किया गया और कर्मचारी ने 23.3.2021 के पत्र द्वारा जांच **प्रतिवेदन** के निष्कर्षों पर अपनी प्रस्तुतियाँ दीं, जो संभव नहीं हैं, जबकि इसे संबंधित प्राधिकारी द्वारा 30.3.2021 को प्राप्त किया गया। प्रस्तुत किया गया कि इससे यह प्रमाणित होता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को वास्तव में कभी भी जांच **प्रतिवेदन** की प्रति प्रदान नहीं की गई और इसलिए जांच कार्यवाही शिथिल मानी जानी चाहिए। तीसरा तर्क यह है कि पेपर बुक के पृष्ठ 163 में संलग्न उपस्थिति **पंजी** पर ध्यान आकृष्ट कराते हुए अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को बैंक द्वारा 6.6.2019 तक अवकाश पर अंकित किया गया था और केवल 7.6.2019 से अनुपस्थित दिखाया गया, अतः डेढ़ वर्ष की अवधि के लिए अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की अनुपस्थिति प्रमाणित नहीं होती और इसलिए आरोप सिद्ध नहीं होता।

7. इसके विपरीत, श्री के.एम. अस्थान, बैंक की ओर से प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को प्रारंभ में 2008 में तत्कालीन सिंडिकेट बैंक में सहायक प्रबंधक के रूप में नियुक्त किया गया था। इसके पश्चात, जब 1.4.2020 से सिंडिकेट बैंक का विलय कैनरा बैंक में हुआ, तब अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की सेवाएँ स्थानांतरण प्राप्त कैनरा बैंक में अवशोषित हो गईं और 1.4.2020 से सिंडिकेट बैंक के सभी कर्मचारी, जिनमें अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता भी शामिल हैं, कैनरा बैंक के कर्मचारी बन गए। यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाया गया आरोप सिद्ध है कि वह 22.11.2018 से 12.6.2020 तक अनधिकृत रूप से अनुपस्थित था। यह दर्शाया गया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को कई पत्र, जैसे कि 16.3.2019,

21.4.2019 और 19.11.2019 की तिथियों वाले पत्र, जारी किए गए थे, जिसमें उन्हें तत्काल कर्तव्यों के लिए उपस्थित होने का निर्देश दिया गया, अन्यथा आवश्यक अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाएगी। यह बताया गया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को 10.3.2021 की तिथि वाला आरोप-पत्र जारी किया गया, जिस पर उसने 14.3.2021 को उत्तर प्रस्तुत किया जिसमें उसने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोपों से इनकार नहीं किया और केवल यह स्वीकार किया कि 22.11.2018 से 12.6.2020 तक उसकी अनुपस्थिति उसके बीमारी के कारण थी, जिसके लिए उसने खेद व्यक्त किया और आश्वासन दिया कि भविष्य में ऐसी त्रुटि नहीं होगी। यह भी बताया गया कि वास्तव में 22.3.2021 को दोपहर से पहले प्रारंभिक सुनवाई और दोपहर के बाद नियमित सुनवाई हुई और 25.3.2021 के तिथि वाला जांच प्रतिवेदन उचित रूप से अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को प्रदान किया गया, जिस पर उसने 30.3.2021 को उत्तर प्रस्तुत किया, हालांकि उत्तर में जानबूझकर 23.3.2021 की गलत तिथि लिखी। यह भी बताया गया कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने 22.11.2018 से एटा शाखा में तैनात रहते हुए अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति से कभी इनकार नहीं किया और इसके विपरीत कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। जांच के दौरान उसने न तो कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया और न कोई गवाह पेश किया। यह प्रस्तुत किया गया कि 31.3.2021 के तिथि वाला आदेश, जिसके द्वारा अनुशासनिक प्राधिकरण ने अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को सेवा से वंचित किया, कैनरा बैंक, अधिकारी-कर्मचारी (अनुशासन एवं अपील) नियमावली 1976 के नियम 4(1) के तहत भविष्य की नियुक्ति के लिए अयोग्यता नहीं होगा। नियमावली 1976 के नियम 17 के तहत चुनौती प्रस्तुत की गई, जिसमें भी उसने अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति से इनकार नहीं किया और केवल यह तर्क दिया कि 'ऐसी परिस्थितियों में जब अवकाश की स्वीकृति का इंतजार करना संभव नहीं था, ऐसी अनुपस्थिति को जानबूझकर नहीं माना जा सकता' और जांच अधिकारी ने यह निष्कर्ष दिया कि अनुपस्थिति जानबूझकर थी। यह भी बताया गया कि अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष भी उसने केवल यह प्रस्तुत किया कि दयालु दृष्टि से कम दंड दिया जाए और इस प्रकार उसने अपने अनधिकृत अनुपस्थिति को स्वीकार किया। यह भी प्रस्तुत किया गया कि उसने अनुशासनिक प्राधिकरण या अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष कभी जांच प्रतिवेदन की न सेवा का दावा नहीं किया। यह प्रस्तुत किया गया कि यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत साक्ष्यों का पुनर्विलोकन स्वीकार्य नहीं है, लेकिन अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत वरिष्ठ अधिवक्ता ने उपस्थिति पंजी पर विशेष जोर दिया। यह भी बताया गया कि यदि केवल तर्क के लिए माना जाए कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता 22.11.2018 से 6.6.2019 (6 माह और 14 दिन) तक अवकाश पर था, तो भी अनधिकृत अनुपस्थिति की कुल अवधि एक वर्ष छह माह में से शेष अवधि 12 माह और 5 दिन है, और इस प्रकार अनधिकृत अनुपस्थिति स्वीकार्य है।

8. हमने अभिलेखों का अवलोकन किया और प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया है।

9. यह स्थापित विधि है कि यह न्यायालय अपील में नहीं बैठ सकता और साक्ष्यों का पुनर्विलोकन नहीं कर सकता। जब अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध विशेष अपील में हो, जिसके द्वारा संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत याचिका खारिज की गई थी, तब इस न्यायालय द्वारा न्यायिक

पुनर्विलोकन का दायरा अत्यंत सीमित होता है। विभिन्न माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों का उल्लेख कर हमारा निर्णय बोज़िल करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यह कानून अत्यंत स्पष्ट एवं स्थापित है।

10. हालांकि, चूंकि तर्क जांच संचालन में खामी और जांच **प्रतिवेदन** की न सेवा के आधार पर प्रस्तुत किए गए हैं, हमने दस्तावेजों का सावधानीपूर्वक अध्ययन किया। अभिलेखों से स्पष्ट स्थिति यह है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप यह है कि वह 22.11.2018 से 12.6.2020 तक अनधिकृत रूप से कर्तव्यों से अनुपस्थित था। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध आरोप, जैसा कि **आक्षेपित** निर्णय में उद्धृत है, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को 13.6.2020 को पुलिस और राँ अधिकारी का भेष धारण करने के कारण कारागार में बंद किया गया और 16.6.2020 के आदेश के माध्यम से निलंबित किया गया। हालांकि पुलिस और राँ अधिकारी का भेष धारण करने का आरोप अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विरुद्ध नहीं लगाया गया और यह याचिका का विषय भी नहीं है, फिर भी यह अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के चरित्र पर प्रकाश डालता है, साथ ही यह तथ्य भी कि अभिलेख दर्शाता है कि पूर्व में भी अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को संबंधित प्राधिकारी द्वारा सेवा के दौरान दंड दिया गया था। आगे यह भी स्पष्ट है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को **आरोप-पत्र** की प्रति प्रदान की गई और उसने आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत किया। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने यह भी स्वीकार किया कि वर्ष 2019 में उसने लखनऊ सिंडिकेट बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय हलवासिया हज़रतगंज में 24.2.2019 को प्रारंभिक विभागीय जांच में उपस्थित होकर भाग लिया, अतः प्रारंभिक जांच हुई थी।

11. हमें लगता है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने ठीक तरह से यह अवलोकन किया कि वास्तव में यह प्रारंभिक जांच नहीं थी, बल्कि 22.3.2021 को दोपहर से पहले हुई प्रारंभिक **सुनवाई** थी और दोपहर के बाद नियमित जांच आयोजित की गई। अभिलेखों में ऐसा कुछ नहीं है जो दर्शाता हो कि नियमित जांच संबंधित प्राधिकारी द्वारा संचालित नहीं की गई और यह भी स्पष्ट है कि अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष भी इस प्रकार का कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। आगे यह भी स्पष्ट तथ्य है कि जांच कार्यवाही के दौरान कर्मचारी ने न तो जांच अधिकारी के समक्ष, न अपने उत्तर में, न अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष और न ही विभागीय अपील में यह दावा किया कि वह कुल अवधि में से किसी निश्चित अवधि के लिए अवकाश पर था; अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा केवल यह प्रस्तुत किया गया कि वह बीमारी के कारण कर्तव्य में शामिल नहीं हो सका। यह भी स्वीकार्य तथ्य है कि अपनी अनधिकृत अनुपस्थिति से इनकार किए बिना उसने केवल अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष यह याचना की कि उस पर कम दंड लगाया जाए। यह भी विवादित नहीं है कि याचिका में भी इस न्यायालय के समक्ष केवल अपनी बीमारी को अनुपस्थिति का कारण बताते हुए कहीं यह नहीं कहा गया कि वह अवकाश पर था। केवल पूरक शपथपत्र दाखिल कर अपने दावे को जोड़ते हुए यह दावा प्रस्तुत किया गया कि 22.11.2018 से 6.6.2019 तक वह अवकाश पर था।

12. इस पृष्ठभूमि में, हम पाते हैं कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया प्रथम तर्क न्यायसंगत नहीं है। विद्वान एकल न्यायाधीश ने ठीक तरह से अवलोकन किया

कि 22.3.2021 को दोपहर से पहले प्रारंभिक सुनवाई हुई और दोपहर के बाद नियमित जांच आयोजित की गई, और इस निष्कर्ष में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

13. जहाँ तक जांच प्रतिवेदन की न सेवा का संबंध है, यह हानि कभी भी अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष आरोपित नहीं की गई और न ही याचिका न्यायालय के समक्ष स्पष्ट रूप से आरोपित की गई। यह तर्क बाद में केवल अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत उत्तर में उल्लिखित तिथि 23.3.2021 के आधार पर विकसित किया गया, और यह कहा गया कि 25.3.2021 को प्रस्तुत जांच प्रतिवेदन के उत्तर के रूप में यह संभव नहीं था। इसमें कोई विवाद नहीं कि कथित 23.3.2021 की तिथि वाला उत्तर वास्तव में 30.3.2021 को कार्यालय में प्राप्त हुआ। कागज़ात के पृष्ठ 281 पर प्राप्त उत्तर पर एक सामान्य दृष्टि स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि उक्त दावा गलत है। वास्तव में, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को जांच प्रतिवेदन प्रदान किया गया था। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा योजित पूरक शपथपत्र में संलग्न पेपर बुक के पृष्ठ 281 के दस्तावेजों का अवलोकन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यह अनुशासनिक प्राधिकारी और मुख्य प्रबंधक/वरिष्ठ प्रबंधक, लखनऊ मुख्य कार्यालय, कैनरा बैंक को संबोधित था, विषय “22.3.2021 के जांच पर मेरे लिखित प्रस्तुतियाँ, आरोप-पत्र संख्या उच्च न्यायालय मानव संसाधन प्रबंधन विभाग मुख्य कार्यालय आरोप-पत्र संख्या दिनांक 10.3.2021 के अनुसार” है। स्पष्ट है कि उसे 10.3.2021 के तिथि वाला आरोप-पत्र जांच प्रतिवेदन और 22.3.2021 को लखनऊ कैनरा बैंक सर्किल कार्यालय में आयोजित नियमित जांच आयोजित की गई थी। प्रासंगिक अंश इस प्रकार उद्धृत है:

“अनुशासनिक प्राधिकारी एवं मुख्य
प्रबंधक/वरिष्ठ प्रबंधक
लखनऊ सर्किल कार्यालय, कैनरा बैंक
मान्यवर,

विषय: आरोपपत्र संख्या श्रम प्रकोष्ठ मानव संसाधन प्रबंधन अनुशासनात्मक कार्यवाही प्रमुख मानव अधिकारी प्रकरण श्रृंखला दिनांक 10.03.2021 के अनुसार दिनांक 22.03.2021 की जांच के संबंध में मेरा लिखित प्रतिवेदन।

मैं आपके आरोप-पत्र जांच प्रतिवेदन संख्या उच्च न्यायालय मानव संसाधन प्रबंधन विभाग मुख्य कार्यालय आरोप-पत्र संख्या दिनांक 10.03.2021 और 22.03.2021 को लखनऊ कैनरा बैंक सर्किल कार्यालय में आयोजित नियमित जांच प्राप्त करने की पुष्टि करता हूँ।

मैं विनम्रतापूर्वक अपनी प्रस्तुतियाँ निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करता हूँ:

स्वयं को निर्दोष साबित करते हुए मैंने आरोप-पत्र का उत्तर प्रस्तुत किया। मैंने जांच का सामना किया और जांच के दौरान यह अभिलेखों में आया कि:”

(प्रमुख अंश पर विशेष जोर)

14. उसी उत्तर में, अगले पृष्ठ पर, उसने यह स्वीकार किया कि उसने 24.2.2019 को लखनऊ सिंडिकेट बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय हलवासिया हज़रतगंज में प्रारंभिक विभागीय जांच में भाग लिया और यह भी स्वीकार किया कि उसने **चिकित्सा दस्तावेजों** का उल्लेख किया और प्रस्तुत किया कि वह इस अप्रत्याशित अनुपस्थिति के लिए अत्यंत खेद प्रकट करता है तथा आश्वासन दिया कि भविष्य में ऐसी त्रुटि नहीं होगी। बैंक प्राधिकारी का स्पष्ट मामला यह है कि वास्तव में अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को 26.3.2021 के पत्र के साथ जांच **प्रतिवेदन** प्रदान किया गया और उक्त पत्र की प्राप्ति की तिथि स्वीकार्य रूप से 30.3.2021 है। अतः, इस मुद्दे पर विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किए गए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने का कोई पर्याप्त आधार नहीं मिलता।

15. इसके अतिरिक्त, यह न तो याचिका में और न ही विशेष अपील में उठाए गए आधारों में कहीं कहा गया है कि जांच **प्रतिवेदन** की न सेवा के कारण अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को क्या हानि हुई। इस मुद्दे पर विधि माननीय सर्वोच्च न्यायालय की पांच-सदस्यीय पीठ द्वारा **प्रबंध निदेशक, ईसीआईएल बनाम बी. करुणाकर**, (1993) 4 एससीसी 727, में स्थापित की गई थी, जिसका प्रस्तर 2 इस प्रकार उद्धृत है:

*“2. इन मामलों में उठने वाला मूल विधिक प्रश्न यह है कि क्या अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा दोषपूर्ण कर्मचारी के विरुद्ध आरोपों की जांच करने के लिए नियुक्त जांच अधिकारी/प्राधिकारी की **प्रतिवेदन** कर्मचारी को प्रदान की जानी चाहिए ताकि वह अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष उचित प्रस्तुति दे सके, इससे पहले कि उक्त प्राधिकारी कर्मचारी की दोषिता या निर्दोषता तथा उसे दिए जाने वाले दंड का निर्णय करे। यह प्रश्न परोक्ष रूप से निम्नलिखित सहायक प्रश्न उत्पन्न करता है:*

- (i) क्या **प्रतिवेदन** कर्मचारी को प्रदान की जानी चाहिए, भले ही अनुशासनिक जांच की प्रक्रिया निर्धारित करने वाले विधिक नियम इस विषय पर मौन हों या इसके विरुद्ध हों?
- (ii) क्या जांच अधिकारी की **प्रतिवेदन** दोषपूर्ण कर्मचारी को प्रदान की जानी चाहिए, भले ही लगाया गया दंड निलंबन, सेवा से बर्खास्तगी या पदहास जैसे मुख्य दंड के अलावा अन्य हो?
- (iii) क्या **प्रतिवेदन** प्रदान करने की बाध्यता केवल तब होती है जब कर्मचारी इसका अनुरोध करे या यह अन्यथा भी लागू होती है?
- (iv) क्या मोहम्मद रमज़ान खान, एआईआर 1991 एससी 471 में स्थापित विधि सभी संस्थाओं—सरकारी और गैर-सरकारी, सार्वजनिक और निजी क्षेत्र उपक्रमों—पर लागू होगी?
- (v) **प्रतिवेदन** न प्रदान किए जाने का दंड आदेश पर क्या प्रभाव होगा और ऐसे मामलों में कर्मचारी को किस प्रकार की राहत दी जानी चाहिए?
- (vi) **प्रतिवेदन** प्रदान करने की विधि किस तिथि से लागू होनी चाहिए?

(vii) चूँकि रमजान खान मामले (एआईआर 1991 एससी 471) का निर्णय लागू करने में भविष्यसूचक था, अर्थात् 20 नवंबर, 1990 के बाद दिए गए दंड आदेशों पर लागू, इसलिए यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि 20 नवंबर, 1990 से पहले लागू विधि क्या थी?"

16. उक्त प्रश्नों का उत्तर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय के प्रस्तर 30 में दिया गया है, जिसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

“30. अतः ऊपर उठाए गए गौण प्रश्नों का उत्तर निम्नानुसार दिया जा सकता है:

(i) चूँकि जांच अधिकारी की **प्रतिवेदन** को न देने का अर्थ है उचित अवसर की अस्वीकृति और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन, अतः यदि कोई वैधानिक नियम कर्मचारी को प्रतिवेदन देने से इनकार करता है, तो वे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विरुद्ध हैं और इसलिए अमान्य हैं। दोषपूर्ण कर्मचारी को **प्रतिवेदन** की प्रति प्राप्त करने का अधिकार होगा, भले ही वैधानिक नियम प्रतिवेदन प्रदान करने की अनुमति न देते हों या इस विषय पर मौन हों।

(ii) संविधान के अनुच्छेद 311(2) का संबंधित भाग इस प्रकार है:

“(2) ऐसा कोई व्यक्ति, जैसा ऊपर कहा गया है, केवल तब तक निलंबित, सेवा से बर्खास्त या पदहास किया जाएगा जब उसे उसके विरुद्ध आरोपों की सूचना दी गई हो और उन आरोपों के संबंध में उचित सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया हो।”

अतः यह अनुच्छेद कर्मचारी को बर्खास्त, निलंबित या पदहास करने से पहले जांच करना अनिवार्य बनाता है। तथापि, यह अनुच्छेद इस अर्थ में नहीं है कि जब बर्खास्तगी, निलंबन या पदहास के अलावा अन्य दंड दिया जाता है, तो जांच को रोका जाए। अन्य दंड देने की प्रक्रिया कर्मचारी को लागू सेवा नियमों में निर्धारित है। अनुच्छेद 311(2) केवल संघीय या राज्य की नागरिक सेवा के सदस्यों या संघ/राज्य के नागरिक पदों पर लागू होता है। सभी दंड मामलों में सरकारी और अन्य कर्मचारी अपने सेवा नियमों द्वारा नियंत्रित होते हैं। इसलिए, जब सेवा नियम दंड देने से पहले जांच करने का प्रावधान करते हैं और जांच अधिकारी अनुशासनिक प्राधिकारी नहीं हैं, तो दोषपूर्ण कर्मचारी को जांच अधिकारी की **प्रतिवेदन** प्राप्त करने का अधिकार होगा, चाहे दंड का स्वरूप कुछ भी हो।

(iii) चूँकि यह कर्मचारी का अधिकार है कि वह खुद को प्रभावी ढंग से बचाने के लिए **प्रतिवेदन** प्राप्त करे और उसे पहले से नहीं पता होगा कि प्रतिवेदन उसके पक्ष में है या विरुद्ध, इसलिए यह उचित नहीं होगा कि प्रतिवेदन न मांगने को उसके अधिकार का परित्याग माना जाए। अतः चाहे कर्मचारी प्रतिवेदन मांगे या न मांगे, उसे प्रतिवेदन प्रदान किया जाना आवश्यक है।

(iv) हमारे दृष्टिकोण में, अर्थात् जांच प्रतिवेदन में दर्ज निष्कर्षों के विरुद्ध अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुति देने का अधिकार प्रतिवाद का अभिन्न हिस्सा है और इस अधिकार को अस्वीकार करना प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन है, इसलिए मोहम्मद रमज़ान खान मामले (एआईआर 1991 एससी 471) (उपरोक्त) में स्थापित विधि सभी संस्थाओं सरकारी या गैर-सरकारी, सार्वजनिक या निजी के कर्मचारियों पर लागू होगी। यह मामला तब भी लागू होगा जब अनुशासनात्मक कार्यवाही को नियंत्रित करने वाले नियम हों या न हों और जब नियम स्पष्ट रूप से प्रतिवेदन की प्रति प्रदान करने से रोकते हों या मौन हों। चाहे दंड का स्वरूप कुछ भी हो, जब नियम दंड देने से पहले जांच की आवश्यकता बताते हैं, दोषपूर्ण कर्मचारी को जांच अधिकारी की प्रतिवेदन का लाभ प्राप्त होना चाहिए इससे पहले कि अनुशासनिक प्राधिकारी उसके विरुद्ध आरोपों पर निष्कर्ष निकाले। अतः प्रश्न (iv) का उत्तर इस प्रकार दिया जाता है।”

(v) अगला उत्तर दिया जाने योग्य प्रश्न यह है कि जब जांच अधिकारी की प्रतिवेदन कर्मचारी को प्रदान नहीं की जाती है तो दंड आदेश पर क्या प्रभाव पड़ता है और ऐसे मामलों में उसे कौन-सी राहत दी जानी चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर दंड के स्वरूप के सापेक्ष होना चाहिए। जब कर्मचारी को सेवा से बर्खास्त या निष्कासित किया जाता है और जांच को रद्द कर दिया जाता है क्योंकि प्रतिवेदन उसे प्रदान नहीं की गई, कुछ मामलों में प्रतिवेदन न देने से उसे गंभीर हानि हो सकती है, जबकि अन्य मामलों में इससे उसे दिए गए अंतिम दंड पर कोई अंतर नहीं पड़ता। अतः सभी मामलों में कर्मचारी को पुनः नियुक्ति के साथ पिछली वेतन अदायगी का निर्देश देना न्याय के नियमों को केवल यांत्रिक रूप से निभाने जैसा होगा। उचित अवसर का सिद्धांत और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत विधि शासन की रक्षा के लिए विकसित किए गए हैं और व्यक्ति को उसके न्यायसंगत अधिकारों की रक्षा में सहायता करने के लिए हैं। ये मंत्र नहीं हैं जिन्हें हर अवसर पर लागू किया जाए और न ही अनुष्ठान हैं जिन्हें सभी पर लागू करना आवश्यक हो। वास्तव में, यह देखना आवश्यक है कि कर्मचारी को प्रतिवेदन न देने के कारण हानि हुई या नहीं, और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसलिए, जहां प्रतिवेदन प्रदान करने के बाद भी कोई भिन्न परिणाम नहीं निकलता, वहां कर्मचारी को सेवा पर लौटने और सभी परिणामस्वरूप लाभ प्राप्त करने देना न्याय का विकृति होगा। यह बेईमानों और दोषियों को पुरस्कार देने जैसा है और इस प्रकार न्याय की संकल्पना को तर्कहीन और अप्रिय सीमाओं तक बढ़ा देता है। इसे “प्राकृतिक न्याय का अप्राकृतिक विस्तार” कहा गया है, जो स्वयं में न्याय के विरुद्ध है।”

17. ऊपर उद्धृत अनुच्छेद स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि कर्मचारी को यह स्थापित करना आवश्यक है कि जांच प्रतिवेदन न प्रदान किए जाने के कारण उसे क्या हानि हुई, जो वर्तमान मामले में नहीं किया गया। पुनरावृत्ति की कीमत पर यह इंगित किया जा सकता है कि यह मुद्दा याचिका न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया गया था और स्थापित विधि के अनुसार इसे बाद में उठाने की अनुमति नहीं है। अतः इसे विशेष अपील में उठाया नहीं जा सकता। तथापि, न्याय के हित में, इस प्रश्न पर हमारा विचार किया गया और हमने पाया कि जब अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा अवैध अनुपस्थिति स्वीकार की गई और केवल यह स्पष्टीकरण दिया गया कि यह गंभीर बीमारी के कारण थी, और भविष्य में इसे दोहराया नहीं जाएगा तथा कम दंड देने की प्रार्थना की

गई। अतः हम पाते हैं कि वास्तव में अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता को कोई हानि नहीं हुई, भले ही यह मान लिया जाए कि उसे जांच प्रतिवेदन प्रदान नहीं किया गया, यद्यपि ऊपर की चर्चा स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने जांच प्रतिवेदन प्राप्त होने के पश्चात अपनी प्रतिक्रिया प्रस्तुत की थी।

18. एस.के. सिंह बनाम सेंट्रल बैंक ऑफ़ इंडिया एवं अन्य, (1996) 6 एससीसी 415 में समान तर्क इस आधार पर खारिज किया गया कि कर्मचारी को जांच प्रतिवेदन न प्रदान किए जाने के कारण कोई हानि नहीं हुई। वर्तमान मामले में भी तथ्य यही है कि यह आधार कभी अपील प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया गया और इसके विपरीत, अवैध अनुपस्थिति स्वीकार की गई तथा केवल यह स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया कि गंभीर रोग के कारण उसने इस अप्रत्याशित अनुपस्थिति के लिए अत्यंत खेद व्यक्त किया और आश्वासन दिया कि भविष्य में ऐसा नहीं होगा, और कम दंड प्रदान करने की प्रार्थना की गई। अतः, वास्तव में उसने अपने विरुद्ध लगाए गए आरोप को स्वीकार किया और केवल कम दंड की प्रार्थना की। यह स्थापित विधि है कि स्वीकृत तथ्यों को प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती, जबकि वर्तमान मामले में विधि के अनुसार पूर्ण रूप से जांच संपन्न हुई थी। अतः विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता का दूसरा तर्क कि जांच प्रतिवेदन न प्रदान किए जाने के कारण कार्यवाही अवैध हो गई, न्यायसंगत नहीं है और इसे अस्वीकार किया जाता है।

19. जहां तक अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की तीसरी प्रस्तुति का प्रश्न है कि वह वास्तव में 22.11.2018 से 6.6.2019 तक बैंक द्वारा प्रदत्त अवकाश पर था, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने विभागीय जांच के दौरान स्वीकार किया कि वह इस अवधि के लिए अविनियोजित अनुपस्थिति में था, जो उसकी रोगावस्था के कारण थी, और केवल कम दंड की प्रार्थना अपील प्राधिकरण के समक्ष की। फिर भी, यदि तर्क के लिए उस अवधि को छोड़ भी दिया जाए, तो निर्विवाद रूप से स्वीकृत अविनियोजित अनुपस्थिति की अवधि 12 माह और 5 दिन होती है, जिसके लिए अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता द्वारा कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया।

20. इसके अतिरिक्त, यह स्थापित विधि है कि बैंक सेवा में कार्यरत व्यक्तियों के लिए उच्चतम स्तर की समर्पण, ईमानदारी और अनुशासन अपेक्षित है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय कनारा बैंक बनाम वी.के. अवस्थी, 2005 एआईआर एससीडब्ल्यू 2005 का संदर्भ दिया जा सकता है। अपीलकर्ता-याचिकाकर्ता ने स्पष्ट रूप से अपने उत्तर में अपील प्राधिकरण के समक्ष, (पत्रावली के पृष्ठ 138) में स्वीकार किया कि वह 13.6.2020 को पुलिस और राँ अधिकारी का प्रतिरूपण करने के कारण कारागार में निरुद्ध किया गया था। यह तथ्य भी अभिलेखों पर विद्यमान है (बैंक द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 6) कि पहले भी उसे दंडित किया गया और पूर्व सिंडिकेट बैंक द्वारा निम्न श्रेणी/मानक 2 से 1 में कमी का दंड प्रदान किया गया।

21. अतः, हमें वर्तमान आक्षेपित आदेश में किसी प्रकार की विधिक त्रुटि परिलक्षित नहीं होती।

22. वर्तमान विशेष अपील गुण-दोष रहित है, अतः इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 416

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट-ए संख्या 1049 वर्ष 2024

नन्द किशोर शुक्ला

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :

आलोक सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता :

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, ऋषभ त्रिपाठी

सेवा विधि-उत्तर प्रदेश राज्य उद्यमों के कर्मचारियों हेतु आचरण, अनुशासन एवं अपील नियमावली-नियम 39 एवं 48 --- अवकाशप्राप्ति के पश्चात याचिकाकर्ता से किसी राशि की वसूली हेतु आक्षेपित आदेश—यह देखते हुए कि याचिकाकर्ता द्वारा एक अभिप्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया गया था, जिसके अंतर्गत उसने प्रतिपक्षीगण को यह अधिकृत किया था कि यदि वेतन निर्धारण में कोई त्रुटि पाई जाती है, तो उक्त राशि उसकी देयकों से वसूल की जा सकती है, तथा यह कि प्रतिपक्षीगण ने आक्षेपित आदेश में यह उल्लेख किया है कि ₹3,23,756/- की राशि वेतन निर्धारण की त्रुटि से सम्बन्धित है, जो याचिकाकर्ता स्वयं द्वारा की गई थी—अतः दिनांक 13.10.2023 के आक्षेपित आदेश में ₹3,23,756/- की वसूली से सम्बन्धित कोई त्रुटि नहीं पाई जाती—जहाँ तक ₹2,29,651.29/- की वसूली का प्रश्न है, नियम 39 में संशोधन को नियम 48 के साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी से वसूली का यह संशोधन दिनांक 10.10.2022 से प्रभावी हुआ है और वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्ता दिनांक 30.11.2021 को ही सेवानिवृत्त हो चुका था, अतः वह उक्त संशोधन के अंतर्गत आवृत या नियंत्रित नहीं होगा, जिसके द्वारा निगम ने सेवानिवृत्त कर्मचारी से विधिवत कार्यवाही उपरांत वसूली करने का अधिकार प्राप्त किया—याचिकाकर्ता से ₹2,29,651.29/- की वसूली निरस्त की जाती है। (प्रस्तर 20, 28 एवं 30)

याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-15)

उद्धृत वादों की सूची :

1. पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय एवं अन्य बनाम रफीक मसीह (श्वेत धोबी) एवं अन्य 2015 (4) एससीसी 334
2. पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय एवं अन्य बनाम जगदेव सिंह 2016 (14) एससीसी 267

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री पंकज पटेल, प्रतिपक्षी संख्या 1 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता तथा प्रतिपक्षीगण संख्या 2 से 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषभ त्रिपाठी को सुना गया।

2. प्रतिद्वंद्वी पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण की सहमति से यह रिट याचिका अंतिम रूप से निस्तारित की जा रही है।

3. प्रस्तुत याचिका निम्नलिखित मुख्य अनुरोधित अनुतोष के लिए दाखिल की गई है:

"(i). प्रतिपक्षी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 13.10.2023 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करते हुए, उत्प्रेषण-पत्र की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश निर्गत करें, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 1 के रूप में दाखिल की गई है।

(ii). प्रतिपक्षीगण को 553407.29/- रुपये की राशि ब्याज सहित भुगतान करने का आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश निर्गत करें, जो प्रतिपक्षीगण द्वारा याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति-पश्चात बकाया से वसूल की गई है।"

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि याचिकाकर्ता विक्रय अधिकारी के पद पर कार्य करते हुए दिनांक 30.11.2021 को अधिवार्षिकी आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हुआ। तत्पश्चात प्रतिपक्षीगण द्वारा दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश निर्गत किया गया, जिसकी प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक-1 के रूप में संलग्न है, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ता के देयकों से वसूली की गई है।

5. यह निवेदन है कि याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के समय, जिन नियमों के अधीन याचिकाकर्ता शासित था, अर्थात् उत्तर प्रदेश राज्य उद्यमों के कर्मचारियों हेतु आचरण, अनुशासन एवं अपील नियमावली (आगे "नियमावली" के रूप में अभिहित), में सेवानिवृत्त कर्मचारी के विरुद्ध उसकी सेवानिवृत्ति के उपरांत किसी प्रकार की कार्यवाही किए जाने का कोई उपबंध विद्यमान नहीं था।

6. यह निवेदन किया गया है कि नियमावली में संशोधन प्रतिपक्षी निगम द्वारा केवल दिनांक 10.10.2022 को आयोजित बैठक में किया गया, जिसकी प्रति दिनांक 04.09.2024 के अनुपूरक शपथपत्र के अनुलग्नक *पूरक प्रत्युत्तर शपथपत्र-2* का भाग है, जिसके अनुसार यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी कर्मचारी के सेवानिवृत्त होने के उपरांत कोई तथ्य प्रकाश में आता है, तो यह अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है, बशर्ते कि उस समय से चार वर्ष की अवधि समाप्त न हुई हो।

7. यह निवेदन किया गया है कि विनियम के नियम 48 के अनुसार कोई भी संशोधन तभी प्रभावी हो सकता है जब निदेशक मंडल द्वारा इस संबंध में निर्णय लिया गया हो, और निदेशक मंडल द्वारा अपने नियमों में संशोधन का निर्णय केवल दिनांक 10.10.2022 को ही लिया गया है। फलस्वरूप याचिकाकर्ता उक्त तिथि से पूर्व सेवानिवृत्त हो चुका होने के कारण संशोधित नियम याचिकाकर्ता पर लागू नहीं किए जा सकते, विशेषकर याचिकाकर्ता से वसूली की कार्यवाही के लिए, और अतः याचिकाकर्ता के देयकों से वसूली से संबंधित आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य है।

8. यह आगे निवेदन किया गया है कि प्रतिपक्षीगण ने यह भी इंगित किया है कि याचिकाकर्ता द्वारा अपने वेतन का निर्धारण स्वयं करते समय की गई त्रुटि के कारण अधिक भुगतान किया गया था, जिसके फलस्वरूप ₹3,23,756/- की राशि याचिकाकर्ता को देय अनुग्रह राशि से समायोजित की गई है।

9. तर्क यह है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *राज्य बनाम रफीक मसीह (श्वेत वाशिंग मशीन) एवं अन्य, 2015 (4) एससीसी 334* के मामले में प्रतिपादित विधि को दृष्टिगत रखते हुए किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी से वसूली किया जाना अनुमन्य नहीं है, अतः दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश, जहाँ तक ₹3,23,756/- की वसूली से संबंधित है, केवल इसी आधार पर निरस्त किया जाना न्यायोचित है।

10. जहाँ तक दूसरी वसूली का संबंध है, अर्थात् ₹2,29,651.29/- की राशि के संबंध में, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि उक्त वसूली उस कथित हानि से संबंधित है जो याचिकाकर्ता द्वारा निगम को पहुँचाई गई बताई गई है, तथा वसूली हेतु आक्षेपित आदेश दिनांक 13.10.2023 को पारित किया गया है जबकि याचिकाकर्ता 30.11.2021 को सेवानिवृत्त हो चुका था, और याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्त होने के समय नियमों में सेवानिवृत्त कर्मचारी से वसूली किए जाने का कोई प्रावधान नहीं था। फलस्वरूप, जो संशोधन नियमों में याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्त होने के पश्चात अर्थात् 10.10.2022 से प्रभावी हुआ है, उसका प्रयोग प्रतिपक्षीगण द्वारा याचिकाकर्ता से वसूली के लिए नहीं किया जा सकता।

11. दूसरी ओर, प्रतिपक्षी निगम की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषभ त्रिपाठी का तर्क है कि विनियम के नियम 39 में किया गया संशोधन, जो 10.10.2022 से प्रभावी हुआ है, उन सभी सेवानिवृत्त कर्मचारियों पर भी लागू होगा, बशर्ते उनके द्वारा की गई अनियमितता उनके सेवानिवृत्त होने की तिथि से चार वर्ष की अवधि के भीतर विभाग के संज्ञान में आ जाए। चूँकि याचिकाकर्ता 30.11.2021 को सेवानिवृत्त हुआ है,

अतः दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश उक्त चार वर्ष की अवधि के भीतर पारित किया गया है, जो विधिसंगत है तथा ₹2,29,651.29/- की राशि निगम को हुई हानि की वसूली से संबंधित होने के कारण इसमें कोई त्रुटि नहीं है।

12. प्रतिपक्षी (कों)- निगम की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री त्रिपाठी ने कहा कि प्रबंधन मण्डल ने दिनांक 10.10.2022 को विनियम के नियम 39 में किए गए संशोधन को अनुमोदित किया है, अतः उक्त संशोधन उसी तिथि से प्रभावी होगा।

13. जहाँ तक ₹3,23,756/- की राशि का प्रश्न है, श्री त्रिपाठी ने *माननीय सर्वोच्च न्यायालय के पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय और अन्य बनाम जगदेव सिंह, 2016 (14) एससीसी 267* के निर्णय पर भरोसा जताते हुए कहा कि याचिकाकर्ता ने अपने वेतन निर्धारण के समय एक अभिप्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया था, जिसकी प्रति दिनांक 22.03.2024 के लघु प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक प्रति-शपथपत्र .2 के रूप में संलग्न है, जिसमें यह उपबंध किया गया था कि वेतन निर्धारण में त्रुटि होने पर अधिक प्राप्त राशि उसकी देयकों से वसूली जा सकती है। अतः प्रतिपक्षिण उक्त राशि की वसूली के अधिकार में हैं और *रफीक मसिह (उपरोक्त)* में प्रतिपादित विधि का सिद्धांत लागू नहीं होगा।

14. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्कों और अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता 30.11.2021 को अधिवार्षिकी आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हुआ। उसके सेवानिवृत्त होने के पश्चात याचिकाकर्ता से एक निश्चित राशि वसूलने के लिए दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश पारित किया गया।

16. वसूली हेतु राशि दो भागों में है, अर्थात् (क) ₹3,23,756/- की राशि, जो याचिकाकर्ता द्वारा विभाग में *आहरण एवं संवितरण अधिकारी* के पद पर कार्य करते समय अपने वेतन के गलत निर्धारण के कारण है, और (ख) ₹2,29,651.29/- की वसूली, जो निगम को हुए नुकसान के संबंध में है।

17. जहाँ तक ₹3,23,756/- की राशि का संबंध है, चूंकि दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्त होने के पश्चात पारित किया गया है, अतः प्रारंभिक दृष्टि से *रफीक मसीह (उपरोक्त)* मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिसिद्धांत लागू होता प्रतीत होता है, जिसमें निर्धारित किया गया है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी से कोई वसूली नहीं की जा सकती।

18. तथापि, वर्तमान प्रकरण में विवाद यह है कि याचिकाकर्ता ने एक अभिप्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया था, जिसकी प्रति लघु प्रति-शपथपत्र के परिशिष्ट प्रति-शपथपत्र -2 के रूप में संलग्न है, जिसके माध्यम से उसने निगम को यह अधिकृत किया था कि यदि उसके वेतन निर्धारण में कोई त्रुटि या गलत निर्धारण पाया जाता है, तो उक्त

राशि उसकी देयकों से वसूली जा सकती है। संयोगवश, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत अभिप्रमाण-पत्र को प्रत्युत्तर शपथपत्र में किसी भी प्रकार से अस्वीकार नहीं किया गया है, केवल यह उल्लेख किया गया है कि विकल्प वर्ष 2016-17 में 7वें वेतनमान की सिफारिश करते समय दिया गया था, जबकि वसूली दिनांक 17.11.2023 को की गई।

19. एक बार कर्मचारी द्वारा अभिप्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया गया हो, तो **रफीक मसिह (उपरोक्त)** में प्रतिपादित विधि का सिद्धांत लागू नहीं होगा; बल्कि यह **जगदेव सिंह (उपरोक्त)** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांत के अनुसार होगा, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि कर्मचारी द्वारा प्रस्तुत अभिप्रमाण-पत्र, जिसके द्वारा उत्तरदाताओं को उसके देयकों से किसी भी त्रुटिपूर्ण वेतन निर्धारण की वसूली करने का अधिकार दिया गया था, निम्नानुसार है:

"11. उपर्युक्त प्रावधान (ii) में प्रतिपादित सिद्धांत वर्तमान प्रकरण जैसी स्थिति पर लागू नहीं होता। वर्तमान प्रकरण में, जिस अधिकारी को प्रारंभ में भुगतान किया गया, उसे स्पष्ट रूप से सूचित किया गया था कि कोई भी अधिक भुगतान पाया गया, तो उसे प्रतिपूर्ति करना आवश्यक होगा। अधिकारी ने संशोधित वेतनमान चुनते समय अभिप्रमाण-पत्र प्रस्तुत किया। वह इस अभिप्रमाण-पत्र द्वारा बाध्य है।"

20. तदनुसार, **जगदेव सिंह (उपरोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि, जिसमें पूर्व में **रफीक मसिह (उपरोक्त)** का निर्णय भी विचार किया गया था, तथा याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया अभिप्रमाण पत्र, जिसके द्वारा उसने प्रतिपक्षीगण को यह अधिकृत किया था कि यदि उसके वेतन निर्धारण में कोई त्रुटि पाई जाती है तो राशि उसके देयकों से वसूल की जा सकती है, तथा यह कि आक्षेपित आदेश में प्रतिपक्षीगण ने यह उल्लेख किया है कि ₹3,23,756/- की राशि याचिकाकर्ता द्वारा की गई त्रुटिपूर्ण वेतन निर्धारण से संबंधित है, को ध्यान में रखते हुए, दिनांक 13.10.2023 के आक्षेपित आदेश में याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्त देयकों से ₹3,23,756/- की वसूली के संबंध में कोई त्रुटि नहीं पाई जाती।

21. इस स्तर पर, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि उन्हें गणना पत्र उपलब्ध नहीं कराया गया है।

22. प्रतिपक्षीगण के लिए यह स्वतंत्र होगा कि वे याचिकाकर्ता को वह गणना पत्रक उपलब्ध कराएँ, जिसके आधार पर उन्होंने ₹3,23,756/- की राशि निर्धारित की है, और यदि याचिकाकर्ता इससे संतुष्ट नहीं है, तो वह वसूल की जाने वाली सही राशि इंगित करेगा, जिसे प्रतिपक्षी विधि के अनुसार विचार करेंगे।

23. जहाँ तक ₹2,29,651.29/- की वसूली का संबंध है, जैसा कि दिनांक 13.10.2023 के आक्षेपित आदेश में उल्लेखित है, उक्त राशि की वसूली के लिए प्रतिपक्षी निगम का प्रमुख आधार नियमावली में किए गए संशोधन, विशेष रूप से नियम 39, पर आधारित है।

24. विनियम के नियम 39 में संशोधन इस प्रकार है:

"बिन्दु 19-यदि विभागीय जांच की कार्यवाही के लंबित रहते हुए आरोपित सरकारी सेवक अपनी अधिवर्षता आयु प्राप्त कर सेवानिवृत्त हो जाता है तो लम्बित जांच को सी०एस०आर० के अनुच्छेद-351 ए के तहत पेंशन से कटौती के लिये जारी रखा जा सकता है, परन्तु सेवानिवृत्त सरकारी सेवक को कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता है और न ही उक्त दण्ड के उद्देश्य से कार्यवाही प्रारम्भ की जारी रखी जा सकती है।

बिन्दु 20 - यदि सेवानिवृत्ति के पश्चात कोई तथ्य सामने आए तो सेवानिवृत्त के पश्चात सी०एस०आर० के अनुच्छेद-351ए के तहत कार्यवाही की जा सकती है, बशर्ते कि जिस घटना के सम्बन्ध में यह जाँच प्रारम्भ की जाय, जाँच प्रारम्भ करने की तिथि को उस घटना को चार वर्ष से अधिक समय न बीत चुका हो।

बिंदु 21 - सरकारी धन का गबन या दुर्विनियोजन आदि होने पर दोषी सरकारी सेवक के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही में शासकीय धन की क्षति की सम्पूर्ण वसूली किये जाने हेतु प्रथम चरण में ही सक्षम प्राधिकारी द्वारा यह सुनिश्चित कर लिया जाय कि सम्पूर्ण धन की क्षति की वसूली सम्भव है अथवा नहीं। यदि यह सम्भव न हो तो तत्परता से न्यायालय के माध्यम से उस सरकारी सेवक से सिविल लायबिलिटी के रूप में उक्त हानि की धनराशि वसूल करने हेतु कार्यवाही सुनिश्चित की जाय।"

25. उक्त संशोधन को प्रबंधन मण्डल ने अपनी बैठक दिनांक 10.10.2022 में प्रस्ताव क्रमांक 271(7) के अंतर्गत अनुमोदित किया है, जिसकी एक प्रति अनुपूरक लघु प्रति-शपथपत्र के अनुलग्नक अनुपूरक लघु प्रत्युत्तर शपथपत्र -2 के रूप में संलग्न है।

26. विनियमों का नियम 48 के अनुसार प्रावधान निम्नानुसार है:

"48- बोर्ड समय-समय पर इस नियमावली में संशोधन, परिवर्तन तथा परिवर्धन कर सकता है और ऐसे सभी संशोधन, परिवर्तन अथवा परिवर्धन उसमें उल्लिखित तिथि से प्रभावी होंगे।"

27. विनियम के नियम 48 का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि निदेशक मण्डल नियमों में संशोधन, परिवर्तन और संशोधन कर सकता है, और ऐसे परिवर्तन उसी तिथि से प्रभावी होंगे, जो उसमें निर्दिष्ट की गई हो।

28. नियम 39 में संशोधन को नियम 48 के साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी से वसूली करने का उक्त संशोधन केवल दिनांक 10.10.2022 से प्रभावी हुआ है और वर्तमान प्रकरण में याचिकाकर्ता दिनांक 30.11.2021 को ही सेवानिवृत्त हो चुका था, अतः वह उक्त संशोधन के अंतर्गत सम्मिलित या नियंत्रित

नहीं होगा, जिसके द्वारा निगम ने सेवानिवृत्त कर्मचारी से विधिवत कार्यवाही उपरांत वसूली करने का अधिकार प्राप्त किया।

29. उपरोक्त विवेचना को दृष्टिगत रखते हुए, यह स्पष्ट है कि दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश, जहाँ तक संशोधित नियम 39 के अंतर्गत याचिकाकर्ता से ₹2,29,651.29/- की राशि वसूलने का सम्बन्ध है, प्रतिपक्षीगण द्वारा त्रुटिपूर्ण ढंग से पारित किया गया है, जिससे उक्त आक्षेपित आदेश दिनांक 13.10.2023 उस सीमा तक अवैध हो जाता है।

30. तदनुसार, यह रिट याचिका **आंशिक रूप से स्वीकृत** की जाती है। दिनांक 13.10.2023 का आक्षेपित आदेश, जिसकी प्रति याचिका के अनुलग्नक 1 के रूप में संलग्न है, जहाँ तक याचिकाकर्ता से ₹2,29,651.29/- की राशि वसूलने का निर्देश देता है, उसे **रद्द** किया जाता है। यदि उक्त राशि पहले ही वसूली गई हो, तो प्रतिपक्षीगण को निर्देशित किया जाता है कि वे इसे याचिकाकर्ता को प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से छह सप्ताह के भीतर उक्त राशि वापस करें।

(2025) 1 ILRA 421

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक : लखनऊ 31.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री अलोक माथुर,

रिट-ए संख्या 1416 सन् 2025

डॉ. मीनाक्षी सक्सेना

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

जय बहादुर सिंह

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता

(क) सेवा विधि - चिकित्साधिकारी - राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा -2024 में प्रतिभाग हेतु 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान करने हेतु याचिका - प्रांतीय चिकित्सा स्वास्थ्य सेवा (सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रबंधन प्रणाली) - शासनादेश

दिनांक 15.03.2022 - ग्रामीण नियुक्ति - 'ग्रामीण नियुक्ति' का निर्धारण जनपद मुख्यालय से दूरी एवं शासनादेश में समावेशन के आधार पर - राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा - 2024 में 30% भारांक प्राप्त करने हेतु तीन वर्ष की ग्रामीण सेवा आवश्यक - एक ही परिसर में स्थित सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र को यदि ग्रामीण नियुक्ति के रूप में वर्गीकृत किया गया है, तो उसी परिसर में स्थित अन्य चिकित्सालय को वैध औचित्य के बिना ग्रामीण वर्गीकरण से पृथक नहीं किया जा सकता। (प्रस्तर - 4, 6, 9, 13)

याचिकाकर्ता (चिकित्साधिकारी) का चयन लोक सेवा आयोग के माध्यम से हुआ था - वर्ष 2014 में सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र पर नियुक्ति की गयी - जिसे ग्रामीण पद के रूप में वर्गीकृत किया गया था - तत्पश्चात् उन्हें उसी परिसर में नव स्थापित 100 शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय में कार्य करने का निर्देश दिया गया - याचिकाकर्ता ने राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा - 2024 हेतु ग्रामीण सेवा लाभ प्राप्त करने के लिए 'अनापति प्रमाणपत्र' की मांग की - किन्तु यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया गया कि उक्त चिकित्सालय ग्रामीण पद के रूप में सूचीबद्ध नहीं है। (प्रस्तर - 4, 6)

अभिनिर्धारित - याचिकाकर्ता ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत रहने की अवधि के लिए, सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा 100 शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय दोनों में कार्य करने के आधार पर, 'अनापति प्रमाणपत्र' प्राप्त करने की विधिवत पात्र हैं। आक्षेपित आदेश निरस्त किया गया। प्रतिपक्षीगण को निर्देशित किया गया कि वे याचिकाकर्ता को तत्काल 'अनापति प्रमाणपत्र' प्रदान करें, ताकि वे राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा - 2024 में प्रतिभाग कर सकें। (प्रस्तर - 15, 16, 17)

याचिका स्वीकृत की जाती है। (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति श्री अलोक माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा तत्काल सुनवाई की आवश्यकता का उल्लेख किये जाने पर, प्रकरण को आज नवीन प्रकरणों की परिशिष्ट सूची में सूचीबद्ध कर सुनवाई की गई।

2. जब उक्त उल्लेख किया गया, उस समय विद्वान स्थायी अधिवक्ता को आवश्यक निर्देश प्राप्त करने हेतु निर्देशित किया गया, और तदनुसार मुख्य चिकित्साधिकारी, 100 शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी से लिखित निर्देश प्राप्त कर इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किये गये, जिन्हें अभिलेख पर ग्रहण कर लिया गया।

3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जय बहादुर सिंह, राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता प्रांतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा (सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रबंधन प्रणाली) संवर्ग में चिकित्साधिकारी के पद पर लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयनित हुईं तथा आदेश दिनांक 11.11.2014 द्वारा एलोपैथिक चिकित्साधिकारी के रूप में नियुक्त की गयीं और दिनांक 17.12.2014 को सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी में कार्यभार ग्रहण किया। इसमें कोई विवाद नहीं है कि सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी को ग्रामीण नियुक्ति माना गया है तथा इसे प्रतिवादियों द्वारा निर्गत शासनादेश दिनांक 15.03.2022 की सूची में अनुक्रमांक 172 पर सम्मिलित किया गया है। याचिकाकर्ता को मुख्य चिकित्साधिकारी, बाराबंकी द्वारा मौखिक रूप से निर्देशित किया गया कि वे 100 शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय, जो वर्ष 2017 के प्रारंभ में उसी परिसर में स्थापित होकर कार्यशील हुआ, में कार्यभार ग्रहण करें। उक्त निर्देश के अनुपालन में याचिकाकर्ता ने उक्त संयुक्त चिकित्सालय में कार्य प्रारम्भ किया। यह तथ्य भी विवादित नहीं है क्योंकि यही तथ्य आपक्षिप्त आदेश में उल्लिखित है, जिसमें याचिकाकर्ता के 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान किये जाने हेतु अभ्यावेदन को अस्वीकार किया गया था, ताकि वह राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा स्नातकोत्तर - 2024 में सम्मिलित होकर उन 30% भारांक का लाभ प्राप्त कर सके, जो कम से कम तीन वर्ष ग्रामीण क्षेत्र में कार्य करने वाले प्रांतीय चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवा के चिकित्साधिकारियों को प्रदान किया जाता है। याचिकाकर्ता इस विश्वास में थीं कि 100 शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी में कार्य करते हुए उनकी सेवा ग्रामीण सेवा में गणना की जाएगी, अतः उन्होंने कार्य जारी रखा और 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्राप्त करने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया ताकि वह राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा - 2024 में प्रतिभाग कर सकें।

5. याचिकाकर्ता द्वारा अपनी समस्त सेवा का विवरण प्रस्तुत करते हुए आवेदन देने के बावजूद, प्रतिपक्षीगण द्वारा 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' निर्गत नहीं किया गया। उपर्युक्त परिस्थितियों में याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय का रुख किया और रिट याचिका संख्या रिट-ए 748 सन् 2025 प्रस्तुत की, जिसे इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.01.2025 के आदेश के माध्यम से निस्तारित किया गया, जिसमें प्रतिपक्षीगण को निर्देशित किया गया कि वे याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन पर स्वयं आदेश में प्रदत्त शीघ्रता के साथ निर्णय लें।

6. इस न्यायालय के दिनांक 21.01.2025 के आदेश के अनुपालन में ही याचिकाकर्ता के प्रकरण पर 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान किये जाने हेतु विचार किया गया तथा याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आवेदन को अस्वीकार कर दिया गया। याचिकाकर्ता के आवेदन को अस्वीकार करते हुए केवल यही आधार ग्रहण किया गया कि तीन वर्ष की ग्रामीण सेवा अनिवार्य रूप से अपेक्षित है तथा 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' केवल उन्हीं चिकित्साधिकारियों को प्रदान किया जाता है जो उक्त शर्त का अनुपालन करते हैं। प्रतिपक्षीगण के अनुसार, याचिकाकर्ता ने सिरौली गौसपुर,

जनपद बाराबंकी में मात्र एक वर्ष, तीन माह एवं तेरह दिन की ही ग्रामीण सेवा की है, इसलिए प्रमाण पत्र अस्वीकार कर दिया गया है।

7. आगे यह भी बताया गया कि सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी, उन चिकित्सालयों की सूची में सम्मिलित नहीं है जिन्हें ग्रामीण सेवा के अंतर्गत माना गया है, अतः उसी कारण से याचिकाकर्ता को 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान नहीं किया गया।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि दिनांक 12.01.2025 का आपत्तिपूर्ण आदेश अवैध, मनमाना एवं असंगत है, क्योंकि ग्रामीण सेवा की गणना नियुक्ति स्थल के आधार पर की जाती है तथा मुख्यालय से दूरी एक प्रासंगिक विचारणीय तत्व है। उन्होंने आगे यह भी प्रस्तुत किया कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी में नियुक्त थीं, जिसे स्वयं प्रतिपक्षीगण ने ग्रामीण नियुक्ति माना है तथा शासनादेश दिनांक 15.03.2022 में अनुक्रमांक 172 पर उक्त सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र को ग्रामीण नियुक्ति के रूप में उल्लिखित किया गया है।

9. उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि उसी परिसर में सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय वर्ष 2016 में स्थापित होकर कार्यशील हुआ, किन्तु अब तक उसे ग्रामीण नियुक्ति के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया है और इसी आधार पर याचिकाकर्ता का प्रकरण अस्वीकृत किया गया। उन्होंने आगे तर्क प्रस्तुत किया कि शासनादेश दिनांक 15.03.2022 का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि किसी चिकित्सालय या सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र को ग्रामीण नियुक्ति घोषित किये जाने के लिए केवल मुख्यालय से दूरी ही प्रासंगिक विचारणीय तत्व है। दूरी 25 किलोमीटर निर्धारित की गयी है और जब उसी परिसर में स्थित सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र को ग्रामीण नियुक्ति घोषित किया जा चुका है तो यह कहने का कोई औचित्य नहीं है कि सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय को ग्रामीण नियुक्ति घोषित नहीं किया गया।

10. दूसरी ओर, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया। उनका तर्क है कि किसी नियुक्ति को ग्रामीण नियुक्ति माना जाये या नहीं, यह पूर्णतः इस पर निर्भर करता है कि क्या उक्त सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र शासनादेश दिनांक 15.03.2022 में सम्मिलित है या नहीं? जब सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय को शासनादेश दिनांक 15.03.2022 में ग्रामीण नियुक्ति के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया है, तब उसका लाभ याचिकाकर्ता को नहीं दिया जा सकता। अतः उन्होंने आपत्तिपूर्ण आदेश का समर्थन करते हुए रिट याचिका को खारिज करने का अनुरोध किया है।

11. इस न्यायालय ने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के प्रतिवादित तर्कों को सुना तथा अभिलेख सहित शासनादेश दिनांक 15.03.2022 एवं लिखित निर्देशों का अवलोकन किया।

12. वर्तमान प्रकरण में विचारणीय सीमित प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता द्वारा सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी स्थित सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय में अपनी सेवाएँ प्रदान किये गये अवधि को 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान किये जाने के उद्देश्य से ग्रामीण नियुक्ति की अवधि माना जा सकता है, जिससे वह राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा - 2024 में प्रवेश हेतु पात्र बन सके? इसमें कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 17.11.2014 को सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी में कार्यभार ग्रहण किया और लगभग एक वर्ष से अधिक समय तक उसी पद पर कार्य किया, तत्पश्चात् उन्हें निर्देशित किया गया कि वे सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय में कार्यभार ग्रहण करें, जो इस बीच निर्मित होकर कार्यशील हो चुका था। याचिकाकर्ता ने उक्त चिकित्सालय में दिनांक 01.03.2016 को कार्यभार ग्रहण किया और 12.12.2024 तक कार्यरत रहें। उक्त चिकित्सालय निर्विवाद रूप से उसी परिसर में स्थित है जिसमें सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी स्थित है।

13. इस न्यायालय ने यह भी देखा कि सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी को ग्रामीण नियुक्ति के रूप में सम्मिलित किया गया है। उक्त प्रविष्टि केवल इस आधार पर की गयी है कि उक्त स्थान जनपद मुख्यालय से 25 किलोमीटर से अधिक दूरी पर स्थित है, जैसा कि शासनादेश दिनांक 15.03.2022 में उल्लिखित है। जब एक बार सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी को ग्रामीण नियुक्ति घोषित किया जा चुका है, तो इस न्यायालय को ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता कि उसी परिसर में स्थित अन्य चिकित्सालय, यद्यपि वह सौ शैय्यायुक्त चिकित्सालय ही क्यों न हो, को राष्ट्रीय पात्रता सह प्रवेश परीक्षा - 2024 में 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान किये जाने के सीमित उद्देश्य हेतु ग्रामीण नियुक्ति क्यों न माना जाये।

14. तदनुसार, यह न्यायालय पाता है कि सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी स्थित सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय में कार्य करने के लाभ से वंचित करने का कोई औचित्य नहीं है, क्योंकि यह सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी के समान दूरी पर स्थित है। अतः यह न्यायालय पाता है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 21.01.2025 केवल इस आधार पर पारित किया गया कि सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी को शासनादेश दिनांक 15.03.2022 में ग्रामीण नियुक्ति के रूप में उल्लेखित किया गया है, जबकि सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय के सम्बन्ध में कोई प्रविष्टि सम्मिलित नहीं है। इसके अतिरिक्त, प्रतिपक्षीगण द्वारा यह विचार नहीं किया गया कि सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी को ग्रामीण नियुक्ति माना जाये या नहीं। प्रतिपक्षीगण का यह भी कहना नहीं है कि सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी ग्रामीण नियुक्ति में सम्मिलित नहीं होगा, केवल यह कहा गया है कि अब तक इसे ग्रामीण नियुक्ति घोषित नहीं किया गया है।

15. तदनुसार, यह न्यायालय पाता है कि प्रतिपक्षीगण ने याचिकाकर्ता को 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान करने के आधारों पर पर्याप्त विचार नहीं किया है, और अन्यथा भी इस न्यायालय को ऐसा कोई कारण प्रतीत नहीं होता

कि प्रतिपक्षीगण ने याचिकाकर्ता को उस लाभ से वंचित क्यों किया, जिसने सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय में आठ वर्ष से अधिक कार्य किया है, जो सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र के समान परिसर में स्थित है और जिसे ग्रामीण नियुक्ति घोषित किया गया है। अतः यह न्यायालय पाता है कि याचिकाकर्ता सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी तथा सौ शैय्यायुक्त संयुक्त चिकित्सालय, सिरौली गौसपुर, जनपद बाराबंकी में कार्य करने की अवधि के लिए ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत रहने के कारण 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्राप्त करने की विधिवत पात्र हैं।

16. उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में, रिट याचिका स्वीकृत की जाती है और आक्षेपित आदेश दिनांक 21.01.2025 निरस्त किया जाता है।

17 प्रतिपक्षीगण को निर्देशित किया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को तत्काल 'अनापत्ति प्रमाणपत्र' प्रदान करें, ताकि वह नीट पीजी परीक्षा - 2024 में प्रतिभाग कर सके।

(2025) 1 ILRA 424

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-ए संख्या- 4610/2024

के साथ

रिट-ए संख्या- 7284/2024

रवि कुमार शुक्ला एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

रिपु दमन शाही, छाया त्रिपाठी, विवेक कुमार वर्मा

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी., शिरीष कुमार, उत्कर्ष कुमार

ए. सेवा विधि-भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 226-उ0प्र0 पुलिस रेडियो अधिष्ठापन सेवा नियमावली 2015-खण्ड 8(सी)- नियमावली 2015 में उ0प्र0 पुलिस रेडियो संवर्ग में हेड ऑपरेटर (मैकेनिकल) के पद के लिए न्यूनतम योग्यता के रूप में डिप्लोमा निर्धारित किया गया है-पुलिस भर्ती बोर्ड ने राज्य सरकार की मंजूरी के बिना बीई/ बीटेक डिग्री को डिप्लोमा के बराबर बताते हुए 2021 का आदेश जारी करके अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया है -बोर्ड के 2021 के फैसले के आधार पर भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने वाले उम्मीदवारों को पात्रता की वैध उम्मीद थी- परीक्षा आयोजित होने के बाद पात्रता में बीच में किया गया बदलाव निष्पक्षता और गैर- मनमानी भर्ती नियमों के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए अवैध था। एक बार विज्ञापन में निर्धारित होने के बाद प्रक्रिया के दौरान इसमें बदलाव नहीं किया जा सकता है-प्रशासनिक कुप्रबंधन और पात्रता पर स्पष्टता की कमी के कारण पूरी चयन प्रक्रिया को रद्द एवं अपास्त किया जाता है-पूरी चयन प्रक्रिया रद्द कर दी गई है, और एक नई भर्ती अभियान शुरू किया जाना चाहिए। (पैरा 1 से 33)

रिट याचिकाएं आंशिक रूप से स्वीकार की जाती हैं। (ई-6)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. नील ऑरेलियो नून्स (ओबीसी आरक्षण) बनाम भारत संघ (2022) 4 एससीसी 1
2. के. मंजूश्री बनाम ए.पी. राज्य (2008) 3 एससीसी 512: (2008) 1 एससीसी (एल एंड एस) 841
3. महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम राजेंद्र भीमराव मोडवे (2001) 10 एससीसी 51: 2002 एससीसी (एल एंड एस) 720
4. तेज प्रकाश पाठक बनाम राजस्थान एचसी (2013) 4 एससीसी 540: (2013)2 एससीसी (एल एंड एस) 353
5. प्रेरित शर्मा बनाम बिलु बी.एस. (2022) 2 एससीसी 751

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण की ओर से श्री रिपु दमन शाही, सुश्री छाया त्रिपाठी और श्री प्रदीप कुमार मिश्रा, राज्य-प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता और प्रत्यर्थी संख्या 3 और 4 की ओर से श्री शिरीष कुमार और श्री उत्कर्ष कुमार को सुना गया।

2. श्री शिरीष कुमार ने पक्षकार बनने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया है, जिसमें कहा गया है कि आवेदक आवश्यक पक्षकार हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि उन्होंने उ0प्र0 पुलिस रेडियो कैंडर में हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिकल) के पद के लिए चयन में भी भाग लिया है और डिप्लोमा धारक हैं और उन्होंने प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनने की मांग की है।

3. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा अभियोग के लिए आवेदन का विरोध नहीं किया गया है तथा पक्षकार बनने के आवेदन पर विचार करने पर हम पाते हैं कि आवेदक आवश्यक पक्षकार हैं और तदनुसार, पक्षकार बनने के आवेदन को स्वीकार किया जाता है।

4. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता को निर्देश दिया जाता है कि वे उन्हें प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाएं।

5. चूँकि दोनों रिट याचिकाओं में तथ्यों और विधि के समान प्रश्न शामिल हैं, इसलिए इस सामान्य निर्णय और आदेश द्वारा उनकी सुनवाई और निर्णय किया जा रहा है। प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार सहित सभी पक्षों को विस्तार से सुना गया है और तदनुसार, पक्षों की सहमति से, न्यायालय याचिका को प्रवेश स्तर पर ही निस्तारित करने की कार्यवाही कर रहा है।

6. याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि अतिरिक्त सचिव (भर्ती) उत्तर प्रदेश पुलिस भर्ती और प्रोन्नति बोर्ड लखनऊ द्वारा 06.01.2022 को एक विज्ञापन जारी किया गया था जिसमें पुलिस रेडियो विभाग में हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद के लिए ऑनलाइन आवेदन आमंत्रित किए गए थे। यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त विज्ञापन के खंड 3.2 में, उत्तर प्रदेश पुलिस रेडियो अधिष्ठापन सेवा नियमावली, 2015 में निहित प्रावधानों के अनुसार योग्यताएं निर्धारित की गई थीं, जहां खंड 8 (सी) में हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद के लिए आवश्यक योग्यताएं हैं कि उम्मीदवार को भारत में विधि द्वारा स्थापित बोर्ड द्वारा इलेक्ट्रॉनिक्स / दूरसंचार / इलेक्ट्रिकल / कंप्यूटर विज्ञान / सूचना प्रौद्योगिकी / इंस्ट्रूमेंटेशन टेक्नोलॉजी / मैकेनिकल इंजीनियरिंग में तीन साल का डिप्लोमा कोर्स उत्तीर्ण होना चाहिए या सरकार द्वारा इसके समकक्ष मान्यता प्राप्त योग्यता होनी चाहिए।

7. याचिकाकर्ता, जो इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं में डिग्री धारक हैं, ने खुद को पात्र मानते हुए उक्त भर्ती में भाग लेने के लिए आवेदन किया था और उन्हें ऑनलाइन परीक्षाओं में उपस्थित होने के लिए प्रवेश पत्र भी जारी किए गए थे और लिखित परीक्षा 31.01.2024 को आयोजित की गई थी। याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि उक्त विज्ञापन के प्रकाशन से पहले, पुलिस भर्ती बोर्ड ने 25.08.2021 को एक निर्णय लिया था, जिसमें यह संकल्प लिया गया था कि इलेक्ट्रिकल, मैकेनिकल, इलेक्ट्रॉनिक्स, सूचना प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर विज्ञान और दूरसंचार जैसे स्ट्रीम में बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग (बीई) / बैचलर ऑफ टेक्नोलॉजी (बी.टेक) के रूप में चार साल का अनुभव रखने वाले उम्मीदवारों को भी उच्च योग्यता होने के कारण पात्र माना जाना चाहिए। तदनुसार, पुलिस भर्ती बोर्ड के प्रस्ताव के साथ 06.01.2022 के विज्ञापन को पढ़ने पर, याचिकाकर्तागण का यह विश्वास था कि वे उक्त चयन में भाग लेने के लिए पूरी तरह से पात्र थे। लिखित परीक्षा के बाद उत्तरदाताओं द्वारा दिनांक 06.02.2024 को उक्त परिणाम की उत्तर कुंजी भी प्रकाशित की गई।

8. पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा कोई भी आगे कदम उठाए जाने से पहले, दिनांक 23.04.2024 के आदेश के माध्यम से, बोर्ड के एक निर्णय से अवगत कराया गया कि बोर्ड के दिनांक 25.08.2021 के पिछले आदेश को काफी हद तक संशोधित किया गया है और अब यह प्रावधान किया गया है कि विभिन्न धाराओं की इंजीनियरिंग में चार साल की डिग्री को हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद पर भर्ती के लिए अयोग्य माना गया है।

9. याचिकाकर्ता, जो इंजीनियरिंग की विभिन्न धाराओं में डिग्री धारक हैं, जिन्होंने आवेदन किया था और उक्त भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया था, अब अयोग्य घोषित कर दिए गए हैं और उन्होंने प्रत्यर्थागण के फैसले को चुनौती देते हुए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है और प्रस्तुत किया है कि एक बार जब प्रत्यर्थागण ने याचिकाकर्तागण को योग्य मान लिया और उक्त संकल्प के आधार पर, उन्होंने भर्ती प्रक्रिया के बीच में उक्त परीक्षा में भाग लिया, तो भर्ती के नियम और शर्तों को नहीं बदला जा सकता है और तदनुसार, उन्होंने 23.04.2024 के आदेश की वैधता पर चुनौती दी है और आगे प्रत्यर्था को निर्देश देने की मांग की है कि वे याचिकाकर्तागण को उनके पास इंजीनियरिंग में स्नातक की डिग्री होने के कारण योग्य मानें और उन्हें उक्त भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दें और उन्हें विभिन्न पदों पर नियुक्त करें, यदि उन्हें चयनित घोषित किया जाता है।

10. याचिकाकर्तागण के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि सेवा नियमों के अनुसार, एक व्यक्ति जो इंजीनियरिंग की विभिन्न धाराओं में डिप्लोमा या किसी अन्य समकक्ष योग्यता रखता है, वह उक्त भर्ती में भाग लेने के लिए पात्र होगा। समकक्षता के संबंध में, पुलिस भर्ती बोर्ड ने दिनांक 25.08.2021 के आदेश द्वारा घोषित किया था कि विभिन्न धाराओं में इंजीनियरिंग की डिग्री रखने वाले व्यक्ति भी इस तथ्य पर विचार करने के लिए पात्र होंगे कि डिग्री डिप्लोमा से उच्च योग्यता है। यह पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा लिए गए जानबूझकर निर्णय के कारण है कि याचिकाकर्तागण ने भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया और उनकी पात्रता के संबंध में वैध उम्मीद है और तदनुसार, प्रस्तुत करता है कि प्रत्यर्था उन्हें लिखित परीक्षा में भाग लेने की अनुमति देने और उत्तर कुंजी प्रकाशित करने के बाद उन्हें अपात्र मानते हुए आपत्तिजनक आदेश पारित नहीं कर सकते थे, तदनुसार प्रत्यर्थागण को उक्त चयन प्रक्रिया में उन्हें योग्य मानने और उनके परिणाम घोषित करने के लिए निर्देश देने की प्रार्थना की।

11. दूसरी ओर राज्य और पुलिस भर्ती बोर्ड की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया है और यह प्रस्तुत किया है कि इस तथ्य के संबंध में कोई संदेह नहीं है कि सेवा नियमों के अनुसार, हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद के लिए पात्रता इंजीनियरिंग की विभिन्न धाराओं में डिप्लोमा या कोई अन्य समकक्ष योग्यता है। योग्यता की समकक्षता के संबंध में, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि केवल राज्य सरकार ही उक्त समकक्षता का निर्धारण कर सकती है और पुलिस भर्ती बोर्ड को किसी भी शक्ति से वंचित किया गया था और उसने 25.08.2021 के आदेश को पारित करते समय गलत तरीके से अपनी शक्ति का प्रयोग किया था, जिसमें इंजीनियरिंग को डिप्लोमा के समकक्ष घोषित किया गया था और यह घोषित किया गया था कि इंजीनियरिंग की डिग्री डिप्लोमा से उच्च योग्यता है और परिणामस्वरूप, इंजीनियरिंग की डिग्री

रखने वाले ऐसे व्यक्ति उक्त भर्ती में भाग लेने के लिए अपात्र होंगे। तदनुसार, दिनांक 21.08.2021 का आदेश अवैध और मनमाना था और जैसे ही उक्त प्रकरण प्रत्यर्थागण के संज्ञान में आया, उन्होंने उसे रद्द करते हुए आक्षेपित आदेश पारित कर दिया। उनका तर्क है कि बोर्ड के पास उनके द्वारा पारित किसी भी आदेश, जो नियमों के विपरीत हो, से पीछे हटने का पर्याप्त अधिकार है और तदनुसार, उनके पास आदेश की समीक्षा करने की अंतर्निहित शक्ति है और इसलिए इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, उन्होंने दिनांक 25.08.2021 के आदेश को काफी हद तक संशोधित कर दिया है और यथास्थिति बहाल कर दी है और याचिकाकर्तागण जैसे व्यक्तियों, जिनके पास इंजीनियरिंग की डिग्री है, को उक्त चयन प्रक्रिया में भाग लेने या हेड ऑपरेटर/हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद पर नियुक्त होने के योग्य नहीं घोषित किया है।

12. डिप्लोमा रखने वाले उम्मीदवारों की ओर से पेश हुए श्री शिरीष कुमार ने प्रस्तुत किया है कि वास्तव में उम्मीदवारों की पात्रता के संबंध में कोई विवाद नहीं है, जो उक्त भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने के पात्र हैं। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश पुलिस रेडियो अधीनस्थ सेवा नियम, 2015 बहुत स्पष्ट हैं और नियम 8 स्पष्ट रूप से एक व्यक्ति द्वारा रखी जाने वाली योग्यताएं प्रदान करता है, जो उक्त पद पर भाग ले सकता है या नियुक्त किया जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि समतुल्यता, यदि कोई हो, तो डिप्लोमा योग्यता के साथ होगी। प्रकरण के किसी भी दृष्टिकोण से, एक डिग्री कभी भी डिप्लोमा के समकक्ष नहीं हो सकती है और इसलिए, शुरू से ही बोर्ड ने अवैध रूप से 25.08.2021 का आदेश पारित किया था, जिसे उन्होंने 23.04.2024 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से सुधारने की मांग की है और तदनुसार, रिट याचिका का विरोध किया है और उसी को खारिज करने की प्रार्थना की है।

13. मैंने प्रतिद्वन्द्वी तर्कों को सुना है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

14. ऊपर चर्चा किए गए तथ्यों को दोहराए बिना, यह न्यायालय प्रतिद्वन्द्वी तर्कों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता है। पुलिस भर्ती बोर्ड ने 25.08.2021 को आदेश जारी किया जिसमें घोषणा की गई कि डिग्री डिप्लोमा से उच्च योग्यता है, और तदनुसार यह माना गया कि संबंधित क्षेत्रों में डिग्री रखने वाले उम्मीदवार भी हेड ऑपरेटर/हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद के लिए पात्र होंगे। विवाद 23/04/2024 के बाद के आदेश के कारण उत्पन्न हुआ है जहां पुलिस भर्ती बोर्ड ने समकक्षता के संबंध में कुछ निर्णयों पर ध्यान दिया था और यह निर्णय लिया था कि चल रही चयन प्रक्रिया के दौरान भी वे योग्यता बदल सकते हैं और इसलिए 23/04/24 को आपत्तिजनक आदेश पारित करने के लिए आगे बढ़ा।

15. इस न्यायालय ने प्रत्यर्थागण की इस दलील पर विचार किया है कि पुलिस भर्ती बोर्ड ने अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है, जहां उसने 25.08.2021 का आदेश पारित कर डिग्री को डिप्लोमा के समकक्ष बना दिया और तदनुसार, इंजीनियरिंग की धाराओं में डिग्री रखने वाले सभी व्यक्तियों को हेड ऑपरेटर/हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) की परीक्षा में भाग लेने की अनुमति दी। पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा पारित आदेश के आधार पर ही याचिकाकर्तागण ने भर्ती प्रक्रिया में आवेदन किया और भाग लिया। इस न्यायालय के संज्ञान में यह भी लाया

गया है कि पुलिस भर्ती बोर्ड ने 01.04.2024 के आदेश द्वारा 25/08/2021 के आदेश की पुष्टि की। 01.04.2024 के आदेश में, उन्होंने यह रुख दोहराया था कि जिन व्यक्तियों के पास इंजीनियरिंग में चार साल की डिग्री है, जो डिप्लोमा से उच्च डिग्री है और तदनुसार, ऐसे उम्मीदवार को भी उक्त चयन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी जाएगी।

16. निस्संदेह, उ0प्र0 पुलिस अधीनस्थ सेवा नियमावली की धारा 8 के प्रावधानों पर विचार करते हुए पुलिस भर्ती बोर्ड ने हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद पर नियुक्ति के लिए उम्मीदवारों की पात्रता से संबंधित सेवा नियमों में पात्रता शर्तों के प्रावधानों की व्याख्या करके अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया था, यह मानते हुए कि डिग्री डिप्लोमा के समकक्ष होगी। यह 25.08.2021 का आदेश है जिसने याचिकाकर्तागण और इंजीनियरिंग में डिग्री रखने वाले अन्य व्यक्तियों को यह निर्धारित करने की अनुमति दी है कि वे उक्त भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने के पात्र हैं। आज के नियम स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि केवल डिप्लोमा धारक ही हेड ऑपरेटर / हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद पर नियुक्त होने के पात्र हैं। चयन प्रक्रिया करने की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए बोर्ड एक कार्यकारी निकाय है जिसे केवल भर्ती के मशीनरी प्रावधानों को पूरा करने का काम सौंपा गया है। वे उन व्यक्तियों के नियुक्ति प्राधिकारी या नियंत्रण प्राधिकारी नहीं हैं जिन्हें वे भर्ती करना चाहते हैं। उन्हें विभिन्न सेवा नियमों का पालन करना होगा जो भर्ती किए जाने वाले उम्मीदवारों की पात्रता शर्तों का प्रावधान करते हैं। वे सेवा नियम की शर्तों से बंधे हैं, और वे भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने वाले उम्मीदवारों की पात्रता के संबंध में कोई भी स्पष्टीकरण जारी करने में पूरी तरह से अक्षम हैं। संबंधित भर्ती बोर्ड द्वारा पारित ऐसा आदेश शुरू से ही मनमाना, अवैध और अधिकार क्षेत्र से बाहर था। इसके बाद, उन्होंने 31.01.2024 के आदेश के माध्यम से आदेश की पुष्टि की और बाद में, कुछ दिनों में उन्होंने यू-टर्न ले लिया और 23.04.2024 के आदेश के माध्यम से कहा कि उन्होंने 25.08.2021 के पिछले आदेश को काफी हद तक संशोधित किया है और आगे यह घोषित किया है कि इंजीनियरिंग के चार वर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम की योग्यता रखने वाले उम्मीदवार उक्त भर्ती परीक्षा में भाग लेने के पात्र नहीं होंगे। जब पुलिस भर्ती बोर्ड को इस तथ्य की जानकारी थी कि वे पात्रता शर्तों को निर्धारित या संशोधित या बदल नहीं सकते हैं, तो उन्हें 23.04.2024 के आदेश में डिग्री रखने वाले व्यक्तियों की पात्रता के संबंध में कोई भी बयान/घोषणा करने से बचना चाहिए था। केवल राज्य सरकार ही समतुल्यता से संबंधित कोई आदेश पारित कर सकती थी।

17. उपरोक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा दिनांक 25.08.2021 के आदेश और तत्पश्चात 01.04.2024 तथा 23.04.2024 को जारी आदेशों द्वारा अनाधिकृत एवं गैरविधिक हस्तक्षेप के कारण ही पूरी चयन प्रक्रिया सवाल के घेरे में आ गई है और अधिकांश अभ्यर्थियों को यह पता ही नहीं है कि वे उक्त भर्ती परीक्षा में भाग लेने के पात्र हैं या नहीं। विद्वान स्थायी अधिवक्ता द्वारा हमें सूचित किया गया है कि चयन प्रक्रिया में भाग लेने वाले 75% अभ्यर्थी इंजीनियरिंग डिग्री धारक हैं।

18. प्रथम दृष्टया, डिग्री धारक जो उक्त परीक्षा में भाग लेने के पात्र नहीं थे, उन्हें पात्र माना गया और उन्हें भाग लेने की अनुमति दी गई। केवल याचिकाकर्ता ही नहीं, बल्कि अन्य निर्दोष अभ्यर्थी, जिनके पास इंजीनियरिंग

की डिग्री हो सकती है, लेकिन विज्ञापन पढ़ने के बाद, उन्होंने सही निष्कर्ष निकाला होगा कि केवल डिप्लोमा धारक ही उक्त परीक्षा में भाग लेने के योग्य हैं, उन्होंने उक्त परीक्षा में भाग लेने के लिए आवेदन नहीं किया होगा। तदनुसार, पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा उक्त परीक्षा शुरू होने से पहले और साथ ही पात्रता से संबंधित उक्त परीक्षा के दौरान पारित मनमाने आदेशों ने पूरी परीक्षा को दूषित कर दिया है। हम इस तथ्य पर भी ध्यान देते हैं कि 25/08/2021 के आदेश के पारित होने के बावजूद, बाद में 06/01/2022 को जारी किए गए विज्ञापन में इंजीनियरिंग स्नातकों को पात्रता प्रदान नहीं की गई। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस संबंध में विधि बिल्कुल स्पष्ट है और सर्वोच्च न्यायालय के साथ-साथ इस न्यायालय ने भी लगातार यह माना है कि भर्ती के लिए विज्ञापन में निर्धारित नियमों और शर्तों को भर्ती प्रक्रिया के दौरान बदला या परिवर्तित नहीं किया जा सकता। विज्ञापन प्रकाशित होने के बाद, भर्ती एजेंसियों को उसमें निर्धारित दिशानिर्देशों और योग्यताओं का कड़ाई से पालन करना आवश्यक है और उनमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन या विचलन स्वीकार्य नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय ने **नील ऑरेलियो नून्स (ओबीसी आरक्षण) बनाम भारत संघ, (2022) 4 एससीसी 1** प्रकरण में इस पहलू पर विचार किया है और सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न अन्य निर्णयों पर भी विचार किया है :-

“79. के. मंजूश्री बनाम ए.पी. राज्य [के. मंजूश्री बनाम एपी राज्य, (2008) 3 एससीसी 512: (2008) 1 एससीसी (एल एंड एस) 841] में, आंध्र प्रदेश राज्य उच्चतर न्यायिक सेवा में जिला और सत्र न्यायाधीशों (ग्रेड II) के दस रिक्त पदों पर उम्मीदवारों का चयन अपील का विषय था। जिला और सत्र न्यायाधीशों (ग्रेड II) के पद पर चयन और नियुक्तियां आंध्र प्रदेश राज्य उच्चतर न्यायिक सेवा नियम, 1958 द्वारा शासित होती हैं। नियम यह निर्धारित करते हैं कि एक तिहाई पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाने हैं। हालाँकि, नियमों में भर्ती की विधि निर्धारित नहीं है। इसलिए, उच्च न्यायालय रिक्तियों को अधिसूचित करते समय चयन की विधि निर्धारित करता है। 28-5-2004 को आवेदन आमंत्रित करते हुए एक विज्ञापन जारी किया गया था। प्रशासनिक समिति ने अपने संकल्प दिनांक 30-11-2004 द्वारा लिखित परीक्षा आयोजित करने का निर्णय लिया। पचहतर अंक और पच्चीस अंकों के लिए एक साक्षात्कार, और लिखित परीक्षा के लिए न्यूनतम श्रेणी अंक निर्धारित किए। परीक्षा 30-1-2005 को हुई थी। परिणाम 24-2-2005 को घोषित किए गए थे। लिखित परीक्षा में प्राप्त 100 अंकों और 25 अंकों के साक्षात्कार को मिलाकर मेरिट सूची तैयार की गई थी। हालाँकि, पूर्ण न्यायालय चयन सूची से सहमत नहीं था और सूची तैयार करने के लिए न्यायाधीशों की एक और समिति गठित की गई थी। समिति का मानना था कि चयन सूची ने लिखित परीक्षा और साक्षात्कार के अंकों के अनुपात को 3: 1 से बदलकर 4: 1 कर दिया क्योंकि लिखित परीक्षा के अंक (100 में से) 75 अंकों में परिवर्तित नहीं किए गए थे। उप-समिति ने यह भी निर्देश दिया कि साक्षात्कार घटक के लिए न्यूनतम अंक होने चाहिए, उसी कट-ऑफ प्रतिशत में जो लिखित परीक्षा घटक पर लागू होता है। संशोधित चयन मानदंडों के आधार पर एक और चयन सूची तैयार की गई। जिन उम्मीदवारों के नाम पहली चयन सूची में थे, लेकिन दूसरी सूची में अनुपस्थित थे, उन्होंने दूसरी चयन सूची को चुनौती दी।

80. के. मंजूश्री [के. मंजूश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2008) 3 एससीसी 512: (2008) 1 एससीसी (एल एंड एस) 841] प्रकरण में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने माना कि लिखित परीक्षा में अधिकतम

75 अंकों के अनुपात में अंकों को कम करना वैध था क्योंकि यह 30-11-2004 के प्रस्ताव के अनुरूप था। हालांकि, यह देखा गया कि "संपूर्ण चयन प्रक्रिया (लिखित परीक्षा और साक्षात्कार से मिलकर) पूरी हो जाने के बाद साक्षात्कार घटक में न्यूनतम अंक जोड़ना, खेल खेले जाने के बाद खेल के नियमों को बदलने के समान होगा जो स्पष्ट रूप से अस्वीकार्य है"। (एससीसी पृष्ठ 524, पैरा 27) के. मंजूश्री [के. मंजूश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2008) 3 एससीसी 512 : (2008) 1 एससीसी (एल एंड एस) 841] हमारे समक्ष प्रस्तुत तथ्यात्मक मैट्रिक्स से भिन्न हैं क्योंकि एआईक्यू में आरक्षण को अधिसूचित करने वाला विवादित नोटिस परीक्षा आयोजित होने से पहले ही प्रस्तुत किया गया था। इसके अलावा, हमारे समक्ष प्रस्तुत प्रकरण के विपरीत, उस प्रकरण में चयन मानदंड में बदलाव किया गया था।

81. **महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम राजेंद्र भीमराव मांडवे** [महाराष्ट्र एसआरटीसी बनाम राजेंद्र भीमराव मांडवे, (2001) 10 एससीसी 51: 2002 एससीसी (एल एंड एस) 720] प्रकरण में, ड्राइवरों और कंडक्टरों के पद पर चयन संदिग्ध था। रिट याचिकाकर्ता योग्यताएँ पूरी करते थे और उनके पास अपेक्षित अनुभव था। व्यक्तिगत साक्षात्कार के लिए शुरू में कुल 12.5% अंक निर्धारित थे। हालाँकि, ड्राइविंग टेस्ट के बाद चयन के मानदंडों में बदलाव किया गया। इस न्यायालय ने तब यह माना कि नया मानदंड अमान्य था क्योंकि इसमें खेल शुरू होने के बाद खेल के नियमों में बदलाव का प्रस्ताव था। उमराव सिंह बनाम पंजाबी विश्वविद्यालय [उमराव सिंह बनाम पंजाबी विश्वविद्यालय, (2005) 13 एससीसी 365: 2006 एससीसी (एल एंड एस) 1071] में, इस न्यायालय ने माना कि व्याख्याताओं के पदों पर चयन के मानदंडों को आवेदन करने की अंतिम तिथि और चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद शिथिल नहीं किया जा सकता था।

82. **तेज प्रकाश पाठक बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय** [तेज प्रकाश पाठक बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय, (2013) 4 एससीसी 540: (2013) 2 एससीसी (एल एंड एस) 353] में, राजस्थान उच्च न्यायालय ने "अनुवादक" के पद के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे। राजस्थान उच्च न्यायालय कर्मचारी सेवा नियम, 2002 के अनुसार, लिखित परीक्षा के लिए 100 अंक और व्यक्तिगत साक्षात्कार के लिए 50 अंक निर्धारित किए गए थे। परीक्षा आयोजित होने के बाद, लिखित परीक्षा में अर्हक अंकों के रूप में 75% अंक निर्धारित किए गए थे। तीन न्यायाधीशों की पीठ के लिए लिखते हुए, जे. चेलमेश्वर ने कहा कि खेल के बीच में या खेल खेले जाने के बाद "खेल के नियमों" को बदलना "पूर्वव्यापी विधि बनाने की शक्ति का एक पहलू" है। इस न्यायालय ने माना कि मंजूश्री [के. मंजूश्री बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (2008) 3 एससीसी 512 : (2008) 1 एससीसी (एल एंड एस) 841], बिना आगे की जांच के सार्वजनिक न्याय और कुशल प्रशासन को आगे नहीं बढ़ाएगा। इस न्यायालय ने इस प्रश्न को निम्नलिखित शब्दों में एक बड़ी पीठ को संदर्भित किया [पीठ ने हरियाणा राज्य बनाम सुभाष चंद्र मारवाह, (1974) 3 एससीसी 220 : 1973 एससीसी (एल एंड एस) 488 के फैसले पर ध्यान दिया जहां सर्वोच्च न्यायालय ने राज्य के उन सभी उम्मीदवारों को नियुक्त नहीं करने के फैसले को बरकरार रखा जिन्होंने न्यूनतम अंक प्रतिशत हासिल किए थे।] : (तेज प्रकाश पाठक प्रकरण [तेज प्रकाश पाठक बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय, (2013) 4 एससीसी 540 : (2013) 2 एससीसी (एल एंड एस) 353], एससीसी पृ. 545-46, पैरा 15)

“15. इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक हितकर सिद्धांत है कि राज्य या उसके उपकरणों को पात्रता मानदंडों के निर्धारण के संबंध में “खेल के नियमों” के साथ छेड़छाड़ करने की अनुमति न दी जाए जैसा कि सी. चन्नबसवैह बनाम मैसूर राज्य [सी. चन्नबसवैह बनाम मैसूर राज्य, एआईआर 1965 एससी 1293], आदि में भर्ती प्रक्रिया और उसके परिणामों में हेरफेर से बचने के लिए किया गया था। क्या इस तरह के सिद्धांत को चयन की प्रक्रिया निर्धारित करने वाले “खेल के नियमों” के संदर्भ में लागू किया जाना चाहिए, खासकर जब परिवर्तन की मांग चयन के लिए अधिक कठोर जांच लागू करने के लिए की जाती है, इसके लिए इस न्यायालय की एक बड़ी पीठ की आधिकारिक घोषणा की आवश्यकता है। इसलिए, हम आदेश देते हैं कि इस संबंध में उचित आदेशों के लिए प्रकरण भारत के माननीय मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए।”

83. प्रेरित शर्मा बनाम बिलु बी.एस. [प्रेरित शर्मा बनाम बिलु बीएस, (2022) 2 एससीसी 751] में, नीट-एसएस 2020 के लिए सूचना बुलेटिन 3-8-2020 को जारी किया गया था। परीक्षा 15-9-2020 को आयोजित की गई थी और परिणाम 25-9-2020 को घोषित किए गए थे। पंजीकरण प्रक्रिया शुरू होने पर जारी किए गए सूचना बुलेटिन के खंड 5.16 में यह प्रावधान था कि एसएस पाठ्यक्रमों में कोई आरक्षण नहीं होगा। मेडिकल काउंसलिंग कमेटी ने नीट-एसएस कोर्स 2020-2021 के लिए एआईक्यू के लिए काउंसलिंग स्कीम जारी की, जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि प्रीति श्रीवास्तव [प्रीति श्रीवास्तव बनाम म.प्र. राज्य, (1999) 7 एससीसी 120: 1 एससीईसी 742] और संदीप बनाम भारत संघ [संदीप बनाम भारत संघ, (2016) 2 एससीसी 328: 7 एससीईसी 518] में इस न्यायालय के निर्णयों का हवाला देकर एसएस पाठ्यक्रमों के लिए कोई आरक्षण नहीं होगा। एसएस कोर्स के लिए काउंसलिंग स्थगित कर दी गई। तमिलनाडु राज्य ने GOMS संख्या 462 दिनांक 7-11-2020 जारी किया, जिसमें कहा गया था कि तमिलनाडु राज्य के सरकारी मेडिकल कॉलेजों में 50% एसएस सीटें इन-सर्विस उम्मीदवारों के लिए आरक्षित होंगी। इस न्यायालय ने देखा कि जब एसएस पाठ्यक्रमों में प्रवेश की प्रक्रिया शुरू हुई थी इसलिए, यह माना गया कि चालू शैक्षणिक वर्ष के लिए सेवारत डॉक्टरों के लिए आरक्षण की अनुमति नहीं दी जाएगी।

19. वर्तमान प्रकरण में, हम पाते हैं कि विज्ञापन जारी करने के बाद, पुलिस भर्ती बोर्ड ने विज्ञापन के प्रकाशन, लिखित परीक्षा के आयोजन और उत्तर कुंजी की घोषणा के बाद उम्मीदवारों की पात्रता शर्तों में बदलाव करते हुए आदेश पारित किया है और भर्ती प्रक्रिया के दौरान इस तरह की कार्रवाई पूरी तरह से अस्वीकार्य है।

20. विचारणीय मुद्दा यह है कि क्या वर्तमान प्रकरण के तथ्यों के आधार पर संपूर्ण चयन प्रक्रिया दोषपूर्ण है, जहाँ उक्त चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए उम्मीदवारों की पात्रता के बारे में संदेह उत्पन्न किया गया है। यह सूचित किया गया है कि चयन प्रक्रिया में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवारों में से लगभग 75% के पास इंजीनियरिंग की डिग्री है। निस्संदेह, यह तथ्य कि विज्ञापन में इंजीनियरिंग की डिग्री को पात्र योग्यता के रूप में सूचीबद्ध नहीं किया गया था, फिर भी इंजीनियरिंग स्नातकों को भाग लेने की अनुमति दी गई, स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि चयन प्रक्रिया शुरू से ही अनुचित और मनमानी थी।

21. तत्पश्चात्, दिनांक 01.04.2024 के आदेश द्वारा, चयन बोर्ड ने इंजीनियरिंग डिग्री की डिप्लोमा के समकक्षता के संबंध में अपना रुख दोहराया। ताबूत में आखिरी कील दिनांक 23.04.2024 का विवादित आदेश था, जिसमें चयन बोर्ड ने निष्कर्ष निकाला कि केवल राज्य सरकार ही चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए आवश्यक शैक्षिक योग्यताओं की समकक्षता के संबंध में आदेश जारी कर सकती है। परिणामस्वरूप, बोर्ड ने दिनांक 25.08.2021 के अपने पूर्व आदेश को रद्द कर दिया और यह निर्णय दिया कि इंजीनियरिंग डिग्री शैक्षिक योग्यता के रूप में योग्य नहीं होगी, जिससे उम्मीदवार उक्त चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अयोग्य हो जाएगा।

22. किसी भी चयन प्रक्रिया की एक विशेषता उसकी निष्पक्षता और पारदर्शिता है। सभी पात्र उम्मीदवारों को परीक्षा शुरू होने से पहले उसकी पात्रता शर्तों के बारे में सूचित किए जाने का अधिकार है, और विज्ञापन में आवेदकों से अपेक्षित पात्रता मानदंडों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। ये शर्तें निस्संदेह सेवा नियमों के अनुरूप होनी चाहिए, जो निर्धारित पात्रता आवश्यकताओं को रेखांकित करती हैं। नियमों में निर्धारित शर्तों से कोई भी विचलन पूरी चयन प्रक्रिया को दूषित कर देगा, इसे अवैध और मनमाना बना देगा, और इस प्रकार उचित कार्यवाही में न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन होगा।

23. हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के सात माननीय न्यायाधीशों की पीठ ने तेज प्रकाश पाठक बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय और अन्य सिविल अपील संख्या 2634/2013 के प्रकरण में संदर्भ का उत्तर दिया है, जहां संदर्भ की शर्तें थीं: -

“1. इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस हितकर सिद्धांत को स्वीकार करते हुए कि एक बार भर्ती प्रक्रिया शुरू हो जाने के बाद राज्य या उसके संस्थान पात्रता मानदंड के निर्धारण के संबंध में “खेल के नियमों” के साथ छेड़छाड़ नहीं कर सकते, इस पर आश्चर्य व्यक्त किया कि क्या इसे चयन प्रक्रिया पर लागू किया जाना चाहिए। उस संदर्भ में, के. मंजूश्री² में एक समन्वय पीठ के फैसले की सत्यता पर संदेह करते हुए, क्योंकि उसने सुभाष चंद्र मारवाह³ में 20 मार्च 2013 के आदेश⁴ के तहत पहले के फैसले पर ध्यान नहीं दिया था, यह निर्देश दिया गया था कि इस विषय पर एक आधिकारिक घोषणा के लिए एक बड़ी पीठ के गठन हेतु प्रकरण को मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखा जाए।

इस संबंध में अनेक निर्णयों पर विचार करने के पश्चात् इस संदर्भ का उत्तर निम्नलिखित शब्दों में दिया गया :-

42. अतः हम इस संदर्भ का उत्तर निम्नलिखित शब्दों में देते हैं:

(1) भर्ती प्रक्रिया आवेदन आमंत्रित करने वाले विज्ञापन जारी होने से शुरू होती है और रिक्तियों को भरने के साथ समाप्त होती है;

(2) चयन सूची में शामिल होने के लिए भर्ती प्रक्रिया के प्रारंभ में अधिसूचित पात्रता मानदंड, भर्ती प्रक्रिया के बीच में तब तक नहीं बदले जा सकते जब तक कि मौजूदा नियम इसकी अनुमति न दें, या विज्ञापन, जो मौजूदा नियमों के विपरीत न हो, इसकी अनुमति न दे। यदि मौजूदा नियमों या विज्ञापन के तहत ऐसा परिवर्तन अनुमेय भी है, तो उस परिवर्तन को संविधान के अनुच्छेद 14 की आवश्यकताओं को पूरा करना होगा और मनमानी न होने की कसौटी पर खरा उतरना होगा;

(3) के. मंजूश्री (पूर्वोक्त) प्रकरण में दिया गया निर्णय उचित विधि स्थापित करता है और सुभाष चंद्र मारवाह (पूर्वोक्त) प्रकरण में दिए गए निर्णय के विपरीत नहीं है। सुभाष चंद्र मारवाह (पूर्वोक्त) प्रकरण में चयन सूची से नियुक्ति के अधिकार से संबंधित है, जबकि के. मंजूश्री (पूर्वोक्त) प्रकरण में चयन सूची में रखे जाने के अधिकार से संबंधित है। इसलिए, दोनों प्रकरण पूरी तरह से अलग-अलग मुद्दों से संबंधित हैं;

(4) भर्ती निकाय, विद्यमान नियमों के अधीन, भर्ती प्रक्रिया को उसके तार्किक अंत तक लाने के लिए उपयुक्त प्रक्रिया तैयार कर सकते हैं, बशर्ते कि अपनाई गई प्रक्रिया पारदर्शी, गैर-भेदभावपूर्ण/गैर-मनमाना हो तथा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से उसका तर्कसंगत संबंध हो।

(5) वैधानिक बल वाले मौजूदा नियम प्रक्रिया और पात्रता दोनों के संदर्भ में भर्ती निकाय पर बाध्यकारी हैं। हालाँकि, जहाँ नियम मौजूद नहीं हैं, या मौन हैं, वहाँ प्रशासनिक निर्देश रिक्तियों को भर सकते हैं;

(6) चयन सूची में स्थान मिलने से नियुक्ति का कोई अपरिहार्य अधिकार नहीं मिलता। राज्य या उसकी संस्थाएँ सद्भावनापूर्ण कारणों से रिक्तियों को न भरने का विकल्प चुन सकती हैं। हालाँकि, यदि रिक्तियाँ मौजूद हैं, तो राज्य या उसकी संस्थाएँ चयन सूची में विचाराधीन क्षेत्र के किसी व्यक्ति को मनमाने ढंग से नियुक्ति देने से इनकार नहीं कर सकती।”

24. वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता चयन प्रक्रिया में भाग लेने के पात्र नहीं होते क्योंकि इंजीनियरिंग की डिग्री आवश्यक योग्यता के रूप में निर्धारित नहीं थी। हालाँकि, चयन बोर्ड के दिनांक 25.08.2021 के निर्णय के अनुसार, उन्होंने आवेदन किया और उन्हें लिखित परीक्षा में भाग लेने की अनुमति दी गई।

25. चयन बोर्ड द्वारा दिनांक 25.08.2021 को इंजीनियरिंग डिग्री धारकों को पात्र घोषित करने का निर्णय संदिग्ध था, क्योंकि इंजीनियरिंग डिग्री और डिप्लोमा के बीच समतुल्यता का निर्धारण उक्त नियमावली के नियम 8 के अनुसार केवल राज्य सरकार द्वारा ही किया जाना चाहिए था। अपनी गलती स्वीकार करते हुए, चयन बोर्ड ने उक्त आदेश के माध्यम से त्रुटि को सुधारने का प्रयास किया, जिसमें इंजीनियरिंग डिग्री धारकों को चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अयोग्य घोषित किया गया।

26. चयन प्रक्रिया के दौरान की गई ऐसी कार्यवाही, इसकी निष्पक्षता और पारदर्शिता की जड़ पर ही प्रहार करती है। चयन प्रक्रिया शुरू होने के बाद उम्मीदवारों की पात्रता निर्धारित करना या स्पष्ट करना स्वाभाविक रूप से त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि ऐसे प्रकरण का समाधान विज्ञापन प्रकाशन से पहले ही हो जाना चाहिए था। पात्रता शर्तों को समय पर अंतिम रूप न देने से पूरी चयन प्रक्रिया ही दूषित हो जाती है।

27. एक बार चयन प्रक्रिया शुरू हो जाने के बाद, प्रक्रिया के मूलभूत तत्वों को उसके पूरा होने तक बदला या परिवर्तित नहीं किया जा सकता, क्योंकि वर्तमान प्रकरण में सेवा नियमों में चयन प्रक्रिया के दौरान किसी भी प्रकार के परिवर्तन का प्रावधान नहीं है। पात्रता की शर्तें, परीक्षा प्रक्रियाएँ और अंकन पद्धति किसी भी चयन प्रक्रिया के मूलभूत तत्व हैं और इन्हें विज्ञापन में स्पष्ट रूप से दर्शाया जाना चाहिए, जो कि संबंधित सेवा नियमों के अनुरूप होना चाहिए। विज्ञापन के प्रकाशन के बाद और परिणाम घोषित होने से पहले इन मूलभूत तत्वों में कोई भी परिवर्तन या संशोधन अस्वीकार्य है।

28. यह विज्ञापन एक महत्वपूर्ण उद्देश्य पूरा करता है: संभावित आवेदकों को चयन प्रक्रिया से संबंधित नियमों, शर्तों और दिशानिर्देशों के बारे में सूचित करना। यह चयन प्रक्रिया के संबंध में उम्मीदवारों की वैध अपेक्षाओं को स्थापित करता है। विज्ञापन में दी गई जानकारी के आधार पर, उम्मीदवार इस प्रक्रिया में भाग लेने या न लेने का निर्णय ले सकते हैं।

29. इसी प्रकार, प्राधिकारी विज्ञापन में निर्धारित नियमों और शर्तों से बंधे हैं। इसलिए, यह आवश्यक है कि विज्ञापन में दिए गए मूलभूत तत्व अपरिवर्तित रहें, क्योंकि किसी भी प्रकार का परिवर्तन उम्मीदवारों के लिए अनुचित रूप से हानिकारक हो सकता है। वर्तमान प्रकरण में, मौलिक पात्रता मानदंडों के संबंध में प्रत्यर्थीगण के परस्पर विरोधी आदेश चयन प्रक्रिया की अखंडता को कमजोर करते हैं, जिससे पूरी प्रक्रिया रद्द किए जाने योग्य हो जाती है।

30. यह मानते हुए कि दिनांक 24/04/2024 का आदेश अवैध और मनमाना है, यह प्रश्न उठता है कि क्या याचिकाकर्ता दिनांक 25/08/2021 के आदेश के आधार पर भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने के हकदार होंगे?

31. प्रकरण के इस पहलू पर भी ऊपर चर्चा की जा चुकी है, और इस न्यायालय की सुविचारित राय है कि 24/04/2024 के आदेश को रद्द करने से 25/08/2021 के पिछले आदेश को पुनर्जीवित करने का प्रभाव नहीं होगा, जो स्वयं अवैध और मनमाना था और पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा अनधिकृत रूप से पारित किया गया था, और अन्यथा भी यह संबंधित सेवा नियमों के नियम 8 के प्रावधानों के विपरीत है जो केवल योग्य उम्मीदवारों के लिए इंजीनियरिंग के संबंधित क्षेत्र में डिप्लोमा रखने का प्रावधान करता है। सेवा नियमों को साधारण रूप से पढ़ने पर डिग्री धारक पात्र नहीं होंगे, क्योंकि इंजीनियरिंग की धारा के संबंध में केवल डिप्लोमा धारक ही राज्य सरकार द्वारा समकक्षता के संबंध में पारित किसी भी आदेश के अधीन पात्र होंगे। तदनुसार, राज्य सरकार

द्वारा समकक्षता के किसी भी आदेश के अभाव में याचिकाकर्तागण द्वारा मांगे गए किसी भी निर्देश को उनके पक्ष में चयन प्रक्रिया में आगे भाग लेने की अनुमति देने के लिए पारित नहीं किया जा सकता है।

32. तदनुसार, हम पाते हैं कि पुलिस भर्ती बोर्ड द्वारा अनुचित हस्तक्षेप और आदेश पारित करने के कारण संपूर्ण चयन प्रक्रिया दोषपूर्ण हो गई है और यह भी विचार करते हुए कि चयन बोर्ड के अवैध और मनमाने हस्तक्षेप से उम्मीदवारों का एक बड़ा प्रतिशत (लगभग 75%) प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ है। तदनुसार, संपूर्ण चयन प्रक्रिया को **अपास्त** किया जाता है। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि यदि वे चाहें तो पात्रता शर्तों को अंतिम रूप दें और सेवा नियमों में संशोधन करें। इस संबंध में निर्णय लेने के बाद, उन्हें हेड ऑपरेटर/हेड ऑपरेटर (मैकेनिक) के पद के लिए योग्यता की शर्तों को स्पष्ट रूप से दर्शाते हुए एक नया विज्ञापन प्रकाशित करना चाहिए और उक्त विज्ञापन के प्रकाशन के बाद उन्हें भर्ती प्रक्रिया आयोजित करनी चाहिए और विधि के अनुसार जल्द से जल्द इसे समाप्त करना चाहिए। चूंकि विज्ञापन जारी होने के बाद से ढाई वर्ष बीत चुके हैं और कई अभ्यर्थी तय आयु सीमा से अधिक हो गए हैं, तथा यह देखते हुए कि केवल प्रत्यर्थीगण की चूक/कमी के कारण ही वर्तमान भर्ती को **अपास्त** किया जा रहा है, न्याय हित में यह होगा कि ऐसे अभ्यर्थियों को, जिनके पास अपेक्षित शैक्षणिक योग्यताएं हैं तथा जिन्होंने वर्तमान भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया है, अगली भर्ती प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति दी जाए, केवल उनकी आयु की आवश्यकता को नजरअंदाज करते हुए।

33. उपरोक्त के आलोक में, दोनों रिट याचिकाएं आंशिक रूप से **स्वीकार** की जाती हैं।

(2025) 1 ILRA 435

मूल अधिकारिता

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 23.01.2025

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

समक्ष

रिट-ए संख्या- 8637 सन् 2024

अनिल कुमार गंगवार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

शिरीष कुमार, उत्कर्ष कुमार

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी., अनघ शुक्ला, ज्योतिंजय वर्मा, रत्नेश चंद्र

ए. सेवा विधि - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-याचिकाकर्ता 30.04.2021 को सेवानिवृत्त हुआ-शुरुआत में उसकी पेंशन 56,200 रुपये निर्धारित थी-बाद में अधिकारियों ने उसका वेतन कम कर दिया और वसूली का आदेश दिया, जिसके कारण कई रिट याचिकाएँ दायर हुईं-उच्च न्यायालय ने वसूली आदेश को रद्द कर दिया और कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद नई कार्यवाही का निर्देश दिया-एक नए वसूली आदेश को चुनौती दी गई, जहाँ अदालत ने वसूली पर रोक लगा दी- अभिनिर्धारित किया गया कि, रफीक मसीह और जगदीश सिंह मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार, सेवानिवृत्त लोगों से पूर्वव्यापी वसूली स्वीकार्य नहीं है- याचिकाकर्ता द्वारा सेवानिवृत्ति के बाद दिया गया हलफनामा जगदेव सिंह के लिए अनुपयुक्त है। लंबे समय के अंतराल के बाद वेतन निर्धारण नहीं किया जा सकता। पेंशन में कटौती और वसूली को रद्द कर दिया गया और न्यायालय ने सभी परिणामी लाभों के साथ 56,200 रुपये की पेंशन बहाल करने का आदेश दिया। (पैरा 1 से 42)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. अनिल कुमार गंगवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट ए संख्या 1336 सन् 2024
2. अनिल कुमार गंगवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, रिट ए संख्या 4742 सन् 2024
3. पंजाब राज्य व अन्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर) (2015) 4 एससीसी 334
4. जगदीश प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य व अन्य (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी 1909
5. सैयद अब्दुल कादिर बनाम बिहार राज्य (2009) 3 एससीसी 475
6. पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय व अन्य बनाम जगदेव सिंह (2016) 14 एससीसी 267

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा प्रदत्त)

1. सुना गया।

2. निम्नलिखित राहतों की मांग करते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है:-

"(ए) इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 11 और 10 में क्रमशः दिनांक 31.07.2024 और 29.08.2024 के आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(बी) विपक्षीयता को याचिकाकर्ता की आधार मासिक पेंशन 56,200/- रुपये से घटाकर 52,950/- रुपये प्रति माह न करने और याचिकाकर्ता की मासिक मूल पेंशन 56,200/- रुपये प्रति माह पर बहाल करने और उसे

उसी दर पर पेंशन का भुगतान जारी रखने का आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(सी)..."

3. अनावश्यक विवरणों से रहित, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत मामले के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता 30.04.2021 को सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गया। याचिकाकर्ता को 22.05.2021 को सभी बकाया राशि का भुगतान कर दिया गया था। अचानक, याचिकाकर्ता का वेतन कम कर दिया गया और 31.01.2024 के आदेश द्वारा वसूली का आदेश दिया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-2 में है।

4. व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने **अनिल कुमार गंगवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य के संबंध में रिट ए संख्या 1336 सन् 2024** दायर की। इस न्यायालय ने अपने आदेश दिनांक 19.03.2024 के तहत, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-3 में है, दिनांक 31.01.2024 के आदेश को रद्द कर दिया और प्रत्यर्थीगण को कानून के अनुसार एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता प्रदान की, लेकिन याचिकाकर्ता को कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद।

5. याचिकाकर्ता को दिनांक 03.04.2024 का एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-4 में है। याचिकाकर्ता का दावा है कि उसने अपना जवाब 08.04.2024 और 30.04.2024 को प्रस्तुत कर दिया है।

6. दिनांक 10.05.2024 के आदेश द्वारा, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-7 में है, याचिकाकर्ता के विरुद्ध पुनः वसूली का आदेश पारित किया गया। इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने **रिट ए संख्या 4742 सन् 2024** के सम्बन्ध में **अनिल कुमार गंगवार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** दायर की। इस न्यायालय ने दिनांक 27.06.2024 के अंतरिम आदेश द्वारा, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-8 में है, याचिकाकर्ता के विरुद्ध दिनांक 10.05.2024 के आदेश के अनुसरण में शुरू की गई वसूली पर अगले आदेश तक रोक लगा दी। यह उल्लेख किया जाता है कि उक्त रिट याचिका अभी भी इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ लंबित है।

7. इसके बाद प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 31.07.2024 को आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-11 में है, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 3 को सूचित किया गया है कि रिट न्यायालय के दिनांक 27.06.2024 के आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता की पेंशन से कोई वसूली नहीं की जानी है, लेकिन दिनांक 31.07.2024 का संशोधित पेंशन भुगतान आदेश प्रत्यर्थी संख्या 3 को भेजा जा रहा है।

8. दिनांक 31.07.2024 का संशोधित पेंशन भुगतान आदेश, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-11 (पृष्ठ 83) का हिस्सा है, यह दर्शाता है कि याचिकाकर्ता का वेतन कम कर दिया गया है जो याचिकाकर्ता के अनुसार

पहले 56,200/- रुपये था जो अब पेंशन भुगतान आदेश में इंगित अनुसार घटकर 52,950/- रुपये हो गया है। यह दिनांक 29.08.2024 के आदेश में भी इंगित किया गया है, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-10 में है, जिसे लखनऊ विकास प्राधिकरण द्वारा जारी किया गया है, जो दर्शाता है कि याचिकाकर्ता का पहले का वेतन 56,200/- रुपये था जबकि संशोधित पेंशन भुगतान आदेश में 52,950/- रुपये है।

9. दिनांक 31.07.2024 के आदेश के आधार पर दिनांक 29.08.2024 का एक अन्य आदेश जारी किया गया, जिसकी प्रति याचिका के अनुलग्नक-10 में संलग्न है। इसमें याचिकाकर्ता के सेवानिवृत्ति के समय प्राप्त वेतन में कटौती का उल्लेख है और लखनऊ विकास प्राधिकरण ने याचिकाकर्ता की पेंशन से प्रति माह 35,579/- रुपये की कटौती हेतु बैंक को पत्र लिखा है। आदेश में अगले आदेश तक कोई भी राशि न काटने का भी निर्देश दिया गया है।

10. व्यथित होकर यह रिट याचिका दायर की गई है।

11. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क यह है कि रिट न्यायालय के दिनांक 19.03.2024 के आदेश के बावजूद, जिसमें प्रत्यर्थागण को याचिकाकर्ता को सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी गई थी, याचिकाकर्ता को जारी किया गया दिनांक 03.04.2024 का कारण बताओ नोटिस याचिकाकर्ता की पेंशन में कटौती करने और याचिकाकर्ता की पेंशन से कोई कटौती करने के उद्देश्य से की जाने वाली किसी कार्रवाई से संबंधित किसी नोटिस का संकेत नहीं देता है और परिणामस्वरूप, आक्षेपित आदेश रिट न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.03.2024 के निर्णय और आदेश के विपरीत होगा, जो अंतिम हो चुका है, इसलिए आक्षेपित आदेश केवल इसी आधार पर रद्द किए जाने योग्य है।

12. इसके अलावा, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार ने पंजाब राज्य एवं अन्य बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर): (2015) 4 एससीसी 334 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए तर्क दिया कि सेवानिवृत्त कर्मचारी से कोई वसूली नहीं की जा सकती। इसके अलावा जगदीश प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य एवं अन्य: 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 1909 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हाल के फैसले पर भरोसा किया गया है, जिसमें सैयद अब्दुल कादिर बनाम बिहार राज्य: (2009) 3 एससीसी 475 के मामले में अपने पहले के फैसले पर भरोसा करने के बाद माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी कर्मचारी के वेतनमान को कम करने और अतिरिक्त राशि वसूलने के लिए राज्य सरकार द्वारा लिया गया निर्णय पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है और वह भी लंबे समय के अंतराल के बाद, यह तर्क देने के लिए कि एक बार जब प्रत्यर्था ने जवाबी हलफनामे में विशेष रूप से कहा है कि याचिकाकर्ता को जो लाभ दिया गया था, वह 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होने के उनके कथित विकल्प के आधार पर दिया गया था, तो यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को उक्त लाभ बहुत समय पहले दिए जा चुके हैं और परिणामस्वरूप पुनर्निर्धारण या वसूली का कोई अवसर नहीं हो सकता है।

13. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री शिरीष कुमार ने यह भी बताया कि रिट याचिका के पैरा 17 में एक विशिष्ट कथन दिया गया है कि उन्होंने कभी भी 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति के लिए विकल्प नहीं चुना है, जिस कथन को प्रत्यर्थीगण ने उपरोक्त पैरा का उत्तर देते समय अस्वीकार नहीं किया है, जैसा कि प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से दायर जवाबी हलफनामे के पैरा 7 के अवलोकन से स्पष्ट होगा, जिसका अर्थ यह है कि प्रत्यर्थी भी इस बात से इनकार नहीं करते हैं कि याचिकाकर्ता ने कभी भी 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्ति के लिए विकल्प नहीं चुना था, फलस्वरूप प्रत्यर्थीगण ने अपनी इच्छा से उक्त लाभ स्वाभाविक रूप से बढ़ाया था, इसलिए याचिकाकर्ता से कोई वसूली करने का कोई अवसर नहीं हो सकता है।

14. उपरोक्त तर्कों का जवाब देते हुए प्रत्यर्थी संख्या 2 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री ज्योतिंजय वर्मा ने प्रति-शपथपत्र में निहित कथनों के आधार पर तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता को 58 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होने का विकल्प देने के कारण उच्च वेतन निर्धारण का लाभ प्राप्त हुआ है, जिसमें 8 वर्ष, 14 वर्ष, 19 वर्ष और 24 वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद वेतन वृद्धि और पदोन्नति वेतनमान के संबंध में लाभ शामिल हैं।

15. यह तर्क दिया गया है कि चूंकि याचिकाकर्ता 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त हुआ था, इसलिए वह 10 वर्ष, 16 वर्ष, 19 वर्ष और 24 वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद वेतन वृद्धि और पदोन्नति वेतनमान के लाभों का हकदार था और इस प्रकार यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता को बढ़ा हुआ लाभ दिया गया है जो उसे 58 वर्ष की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त होने पर स्वीकार्य था और चूंकि वह 60 वर्ष तक सेवारत रहा है, इसलिए वह बढ़ा हुआ लाभ पाने का हकदार नहीं है, इसलिए उसके वेतन में कटौती और याचिकाकर्ता की पेंशन से वसूली करने का एक सचेत निर्णय लिया गया है।

16. श्री वर्मा ने यह भी तर्क दिया कि याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.05.2021 को एक हलफनामा दिया था, जिसकी एक प्रति प्रति-हलफनामे के अनुलग्नक-1 में है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता ने वचन दिया था कि यदि उसे वे लाभ दिए गए हैं जिनके वह नियमों के अनुसार हकदार नहीं था, तो परिणामस्वरूप उसे संशोधित किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं होगी और उसने अतिरिक्त राशि, यदि कोई हो, जो उसे भुगतान की गई है, उसे वापस करने का भी वचन दिया था।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय एवं अन्य बनाम जगदेव सिंह 2016 (14) एससीसी 267** में दिए गए निर्णय पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि एक बार याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थीगण को अतिरिक्त राशि वसूलने या उसे वापस भुगतान करने के लिए अधिकृत करने का वचन दे दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थीगण द्वारा आक्षेपित आदेश जारी करने में कोई त्रुटि नहीं की गई है।

18. श्री वर्मा ने विभाग में लागू नियमों, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश विकास प्राधिकरण केंद्रीय सेवानिवृत्ति लाभ नियमावली, 2011 (जिसे आगे 'नियम, 2011' कहा जाएगा) के नियम 13(4) का भी हवाला देते हुए तर्क दिया

है कि याचिकाकर्ता द्वारा उक्त नियम के अनुसार ही उक्त वचन दिया गया है और फलस्वरूप याचिकाकर्ता अपने द्वारा दिए गए उक्त वचन से आबद्ध होगा। परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थीगण द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय कोई त्रुटि नहीं हुई है।

19. प्रत्यर्थी संख्या 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अनघ शुक्ला ने कहा कि प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा जारी दिनांक 29.08.2024 का आक्षेपित आदेश, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा भेजे गए दिनांक 31.07.2024 के पत्र के आधार पर जारी किया गया है और याचिकाकर्ता के वेतन में पुनर्निर्धारण/कटौती हो जाने के बाद, पेंशन भी कम हो जाएगी और याचिकाकर्ता की पेंशन से वसूली करने का निर्देश दिया जाएगा, जिसकी वसूली फिलहाल रोक दी गई है, फलस्वरूप प्रत्यर्थीगण द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करते समय कोई त्रुटि नहीं हुई है। वे अधिवक्ता श्री ज्योतिंजय वर्मा के तर्कों को भी स्वीकार करते हैं।

20. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

21. प्रत्यर्थी पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण द्वारा उठाए गए तर्कों और अभिलेख के अवलोकन से, यह सामने आता है कि याचिकाकर्ता 30.04.2021 को अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हो गया। प्रत्यर्थीगण द्वारा दिनांक 31.01.2024 को एक आदेश जारी किया गया जिसमें याचिकाकर्ता का वेतन कम किया गया और वसूली का निर्देश दिया गया। उक्त आदेश को रिट न्यायालय ने दिनांक 19.03.2024 के निर्णय और आदेश द्वारा रद्द कर दिया। प्रत्यर्थीगण को एक नया आदेश पारित करने की स्वतंत्रता दी गई। दिनांक 03.04.2024 को एक कारण बताओ नोटिस जारी किया गया, जिसका याचिकाकर्ता द्वारा उत्तर प्रस्तुत किया गया लेकिन दिनांक 10.05.2024 के आदेश द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ फिर से वसूली का आदेश पारित किया गया। उक्त आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा रिट ए संख्या 4742 सन् 2024 में चुनौती दी गई थी जिसमें दिनांक 27.06.2024 को अंतरिम आदेश पारित किया गया था तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध शुरू की गई वसूली पर अगले आदेश तक रोक लगा दी गई थी, जो रिट याचिका अभी भी इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ लंबित है।

22. इसके बाद, प्रत्यर्थी संख्या 2 ने दिनांक 31.07.2024 को आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को सूचित किया गया कि इस न्यायालय के दिनांक 27.06.2024 के आदेश के अनुसरण में याचिकाकर्ता की पेंशन से कोई वसूली नहीं की जानी है, बल्कि दिनांक 31.07.2024 का संशोधित पेंशन भुगतान आदेश प्रत्यर्थी संख्या 3 को भेजा जा रहा है। संशोधित पेंशन भुगतान आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि याचिकाकर्ता का वेतन, जो वह पहले प्राप्त कर रहा था, ₹56,200/- से घटाकर ₹52,950/- कर दिया गया है, जैसा कि पेंशन भुगतान आदेश में दर्शाया गया है। यह प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा पारित दिनांक 29.08.2024 के आदेश के अवलोकन से भी स्पष्ट होता है।

23. दिनांक 31.07.2024 के आदेश के आधार पर, प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा दिनांक 29.08.2024 का आक्षेपित आदेश जारी किया गया, जिसमें याचिकाकर्ता के वेतन में कटौती का संकेत दिया गया था, जो याचिकाकर्ता

अपनी सेवानिवृत्ति के समय प्राप्त कर रहा था, जैसा कि दिनांक 31.07.2024 के आदेश में दर्शाया गया है। उक्त आदेश में यह दर्शाया गया है कि प्रत्यर्थी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता की पेंशन से प्रति माह 35,579 रुपये की राशि काटने के लिए बैंक को पत्र लिखा था, लेकिन आदेश में अगले आदेश तक कोई राशि न काटने का भी उल्लेख है।

24. दिनांक 31.07.2024 और 29.08.2024 के आदेशों से व्यथित होकर, वर्तमान याचिका दायर की गई है।

25. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क **रफीक मसीह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि सेवानिवृत्त कर्मचारी से कोई वसूली नहीं की जा सकती है।

26. जगदेव सिंह (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय, जिस पर प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने भरोसा किया है, को याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस आधार पर अलग किया है कि उनके प्रारंभिक वेतन निर्धारण के समय, उनके द्वारा ऐसा कोई वचन नहीं दिया गया था, बल्कि जिस वचन पर प्रत्यर्थीगण ने भरोसा रखा है, वह 25.05.2021 का वचन है जो याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद का है और इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता से कोई वसूली करने से रोक दिया गया है।

27. जगदीश प्रसाद सिंह (पूर्वोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए तर्क यह है कि पुनर्निर्धारण भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि उक्त वेतन निर्धारण बहुत समय पहले किया जा चुका है और **जगदीश प्रसाद सिंह (पूर्वोक्त)** के फैसले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि लंबे समय के बाद वेतन पुनर्निर्धारण नहीं किया जा सकता है।

28. दूसरी ओर, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क देकर याचिकाकर्ता की पेंशन से वसूली को उचित ठहराया है कि चूंकि याचिकाकर्ता ने प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता से अतिरिक्त राशि वसूलने के लिए अधिकृत करते हुए एक वचनबद्धता दी थी, फलस्वरूप **जगदेव सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को ध्यान में रखते हुए वे आक्षेपित आदेश पारित करने और वेतन के पुनर्निर्धारण के बाद याचिकाकर्ता से वसूली करने के अधिकार के भीतर हैं।

29. उपर्युक्त तर्कों पर विचार करते हुए, इस न्यायालय द्वारा निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया जाना अपेक्षित है, जो नीचे दिए गए हैं:-

(ए) क्या सेवानिवृत्त कर्मचारी से कोई वसूली की जा सकती है?

(बी) यदि किसी कर्मचारी द्वारा प्रत्यर्थीगण को गलत निर्धारण की वसूली के लिए अधिकृत करने वाला वचन दिया गया है, तो क्या **रफीक मसीह (पूर्वोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय लागू होगा? और

(सी) क्या वेतन का पुनर्निर्धारण लंबी अवधि के बाद किया जा सकता है?

30. चूँकि प्रश्न (ए) और (बी) एक-दूसरे पर निर्भर हैं, अतः उन पर निर्णय हेतु एक साथ विचार किया जा रहा है।

31. एक सेवानिवृत्त कर्मचारी से वसूली से संबंधित मामले ने **रफीक मसीह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"12. कठिनाई की सभी स्थितियों की कल्पना करना संभव नहीं है, जो वसूली के मुद्दे पर कर्मचारियों को नियंत्रित करेंगी, जहाँ नियोक्ता द्वारा गलती से उनके हक से अधिक भुगतान किया गया हो। जैसा भी हो, ऊपर उल्लिखित निर्णयों के आधार पर, हम एक त्वरित संदर्भ के रूप में, निम्नलिखित कुछ स्थितियों का सारांश प्रस्तुत कर सकते हैं, जिनमें नियोक्ताओं द्वारा वसूली कानूनन अस्वीकार्य होगी:

(i) श्रेणी-III और श्रेणी-IV सेवा (या समूह 'सी' और समूह 'डी' सेवा) से संबंधित कर्मचारियों से वसूली।

(ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों से या एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले कर्मचारियों से वसूली का आदेश।

(iii) कर्मचारियों से वसूली, जब वसूली का आदेश जारी होने से पहले, पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए अतिरिक्त भुगतान किया गया हो।

(iv) उन मामलों में वसूली जहाँ किसी कर्मचारी से उच्च पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अनुचित रूप से अपेक्षा की गई हो, और उसे तदनुसार भुगतान किया गया हो, भले ही उसे किसी निम्न पद पर कार्य करने के लिए उचित रूप से अपेक्षित किया जाना चाहिए था।

(v) किसी अन्य मामले में, जहाँ न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि कर्मचारी से वसूली की जाती है, तो वह इस सीमा तक अन्यायपूर्ण, कठोर या मनमानी होगी, जो नियोक्ता के वसूली के अधिकार के न्यायसंगत संतुलन से कहीं अधिक होगी।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

32. **रफीक मसीह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि किसी सेवानिवृत्त कर्मचारी से कोई वसूली स्वीकार्य नहीं है और परिणामस्वरूप यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थागण को याचिकाकर्ता से कोई वसूली करने से रोक दिया गया है।

33. हालांकि, साथ ही, न्यायालय 20.05.2021 के अंडरटेकिंग/शपथ पत्र को नजरअंदाज नहीं कर सकता है, जो याचिकाकर्ता द्वारा प्रत्यर्थागण के समक्ष दिया गया है कि यदि उसे वे लाभ दिए गए हैं, जिनके वह नियमों के अनुसार हकदार नहीं था, तो परिणामस्वरूप, उसे इसे संशोधित करने और अतिरिक्त राशि वापस करने पर कोई आपत्ति नहीं होगी।

34. प्रथम दृष्टया, उक्त अंडरटेकिंग **जगदेव सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के दायरे में आता प्रतीत होता है। हालांकि, याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया कि वह 30.04.2021 को सेवानिवृत्त हुआ था, जबकि अंडरटेकिंग/शपथ पत्र 20.05.2021 को दिया गया है, अर्थात् याचिकाकर्ता की सेवानिवृत्ति के बाद।

35. उपर्युक्त मामले में, **जगदेव सिंह (पूर्वोक्त)**, जो सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद पर कार्यरत थे, को वरिष्ठ वेतनमान दिए जाने के समय एक वचन-पत्र प्रस्तुत करना था कि यदि अतिरिक्त भुगतान पाया जाता है तो वह सरकार को वापस कर दिया जाएगा। इसके अनुसरण में और संशोधित वेतनमान प्राप्त करते समय, जगदेव सिंह ने यह वचन दिया कि यदि कोई अतिरिक्त भुगतान पाया जाता है और उसकी मांग की जाती है तो वह उसे वापस कर देंगे। तत्पश्चात्, उन्हें संशोधित वेतनमान प्रदान किया गया। कुछ वर्षों बाद, जगदेव सिंह को कथित अतिरिक्त राशि की वसूली हेतु एक पत्र दिया गया। वसूली की उक्त कार्रवाई को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई, जहाँ जगदेव सिंह द्वारा दायर रिट याचिका को स्वीकार कर लिया गया। पंजाब एवं चंडीगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दिए जाने पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रफीक मसीह (पूर्वोक्त)** के निर्णय पर विचार करने के बाद यह निर्णय दिया कि अतिरिक्त राशि की वसूली तभी की जा सकती है जब अधिकारी ने अपने वेतन में प्रारंभिक संशोधन के समय यह स्पष्ट रूप से वचन दिया हो कि यदि कोई भुगतान अधिक पाया गया तो उसे समायोजित किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में, **रफीक मसीह (पूर्वोक्त)** के निर्णय को प्रतिष्ठित किया गया।

36. सुविधा के लिए, **जगदेव सिंह (पूर्वोक्त)** की प्रासंगिक टिप्पणियों को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जाता है:-

"2. तथ्य एक संकीर्ण दायरे में हैं। प्रत्यर्थी को 16 जुलाई 1987 को सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के रूप में नियुक्त किया गया था और 28 अगस्त 1997 को राज्य की न्यायिक सेवा में अतिरिक्त सिविल जज के रूप में पदोन्नत किया गया था। 28 सितंबर 2001 की अधिसूचना द्वारा, हरियाणा सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) और हरियाणा सुपीरियर न्यायिक सेवा संशोधित वेतन नियम 2001 के तहत 10000-325-15200 रुपये (वरिष्ठ वेतनमान) का वेतनमान दिया गया था। नियमों के तहत, प्रत्येक अधिकारी को एक वचनबद्धता प्रस्तुत

करने की आवश्यकता थी कि जो भी अतिरिक्त भुगतान किया गया पाया जाता है, उसे सरकार को भविष्य के भुगतानों के खिलाफ समायोजन द्वारा या अन्यथा वापस कर दिया जाएगा।

3. प्रत्यर्थी ने एक वचनबद्धता प्रस्तुत की और उसे संशोधित वेतनमान और चयन ग्रेड 14300-400-18000-300 रुपये प्रदान किया गया। संशोधित वेतनमान चुनते समय, प्रत्यर्थी ने यह वचन दिया कि यदि बाद में कोई अतिरिक्त भुगतान पाया गया और उसकी मांग की गई, तो वह उसे वापस कर देगा। चयन ग्रेड में संशोधित वेतनमान प्रत्यर्थी को 7 जनवरी 2002 को प्रदान किया गया।

4. प्रत्यर्थी को 19 अगस्त 2002 को निलंबित कर दिया गया और अंततः 12 फरवरी 2003 को अनिवार्य रूप से सेवा से सेवानिवृत्त कर दिया गया।

5. इसी बीच, इस न्यायालय ने सिविल रिट (सी) 1022 सन् 1989 में प्रथम राष्ट्रीय न्यायिक वेतन आयोग (शेड्टी आयोग) की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। इसके बाद, हरियाणा सिविल सेवा (न्यायिक शाखा) और हरियाणा उच्च न्यायिक सेवा संशोधित वेतन नियम 2003 को 7 मई 2003 को अधिसूचित किया गया।

6. इसके मद्देनजर, हरियाणा में न्यायिक अधिकारियों के वेतनमानों को 1 जनवरी 1996 से पुनः संशोधित किया गया। संशोधित वेतन नियमों की अधिसूचना के बाद, न्यायिक अधिकारियों को किए गए अतिरिक्त भुगतानों के समायोजन हेतु एक प्रक्रिया शुरू की गई। 18 फरवरी 2004 को, उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार के निर्देशानुसार, प्रत्यर्थी को 1,22,003/- रुपये की राशि की वसूली हेतु एक पत्र भेजा गया।

7. प्रत्यर्थी ने अनुच्छेद 226 के तहत रिट कार्यवाही में वसूली के लिए कार्रवाई को चुनौती दी। याचिका को उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय द्वारा अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी की शिकायत में तथ्य पाया कि उसकी सेवानिवृत्ति से पहले वेतन और भत्ते के रूप में उसे किए गए अतिरिक्त भुगतान को उस स्तर पर वसूल नहीं किया जा सकता था, क्योंकि उसकी ओर से कोई धोखाधड़ी या गलत बयानी नहीं की गई थी।

8. इन कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती दी गई है। कार्यवाही के अभिलेखों से, यह स्पष्ट है कि जब प्रत्यर्थी ने संशोधित वेतनमान का विकल्प चुना, तो उसने इस आशय का एक वचन दिया कि वह उसे किए गए किसी भी अतिरिक्त भुगतान को वापस करने के लिए उत्तरदायी होगा। इन कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी द्वारा दायर किए गए जवाबी हलफनामे में, इस स्थिति को विशेष रूप से स्वीकार किया गया है। इसके बाद, जब नियमों को संशोधित किया गया और 7 मई 2003 को अधिसूचित किया गया, तो पाया गया कि प्रत्यर्थी को अतिरिक्त भुगतान किया गया था 18 फरवरी 2004 को, वचन के अनुसार अतिरिक्त भुगतान की वसूली की मांग की गई।

9. प्रत्यर्थी का यह तर्क, जिसे उच्च न्यायालय ने स्वीकार किया, यह था कि राज्य की सेवा से सेवानिवृत्त हुए किसी कर्मचारी से अतिरिक्त भुगतान की वसूली नहीं की जा सकती। हमारे विचार से, यह वर्तमान स्थिति में लागू नहीं होगा, जहाँ अधिकारी ने अपने वेतन में प्रारंभिक संशोधन के समय विशेष रूप से एक वचनबद्धता प्रस्तुत की थी जिसमें स्वीकार किया गया था कि यदि कोई अतिरिक्त भुगतान किया गया है तो उसे समायोजित किया जा सकता है। संशोधित वेतनमान का लाभ चुनते समय, प्रत्यर्थी को इस तथ्य का स्पष्ट ज्ञान था कि भविष्य में पुनर्निर्धारण या संशोधन के कारण, यदि कोई अतिरिक्त भुगतान किया गया हो, तो उसका समायोजन आवश्यक हो सकता है।

10. पंजाब राज्य एवं अन्य आदि बनाम रफीक मसीह (व्हाइट वॉशर) आदि मामले में, इस न्यायालय ने यह माना कि यद्यपि कठिनाई की सभी स्थितियों की कल्पना करना संभव नहीं है, जहाँ नियोक्ता द्वारा गलती से भुगतान किया गया हो, निम्नलिखित स्थितियों में, नियोक्ता द्वारा वसूली कानूनन अस्वीकार्य होगी:

(i) तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी सेवा (या समूह 'सी' और समूह 'डी' सेवा) से संबंधित कर्मचारियों से वसूली।

(ii) सेवानिवृत्त कर्मचारियों, या उन कर्मचारियों से वसूली जो वसूली के आदेश के एक वर्ष के भीतर सेवानिवृत्त होने वाले हैं।

(iii) कर्मचारियों से वसूली, जब अतिरिक्त भुगतान पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए किया गया हो, वसूली का आदेश जारी होने से पहले।

(iv) उन मामलों में वसूली जहाँ किसी कर्मचारी से उच्च पद के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए अनुचित रूप से अपेक्षा की गई हो, और उसे तदनुसार भुगतान किया गया हो, भले ही उसे उचित रूप से निम्न पद के विरुद्ध कार्य करने के लिए अपेक्षित किया जाना चाहिए था।

(v) किसी अन्य मामले में, जहाँ न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि यदि कर्मचारी से वसूली की जाती है, तो वह इस सीमा तक अन्यायपूर्ण या कठोर या मनमानी होगी, जो नियोक्ता के वसूली के अधिकार के न्यायसंगत संतुलन से कहीं अधिक होगी।

11. उपरोक्त प्रस्ताव (ii) में प्रतिपादित सिद्धांत वर्तमान मामले जैसी स्थिति पर लागू नहीं हो सकता। वर्तमान मामले में, जिस अधिकारी को प्रथम दृष्टया भुगतान किया गया था, उसे स्पष्ट रूप से सूचित किया गया था कि यदि कोई भी भुगतान अधिक पाया गया तो उसे वापस करना होगा। अधिकारी ने संशोधित वेतनमान का विकल्प चुनते समय एक वचनबद्धता प्रस्तुत की थी। वह इस वचनबद्धता से बाध्य है।"

(न्यायालय द्वारा प्रभाव वर्द्धित)

37. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण के अनुसार, वेतन का गलत निर्धारण हुआ है क्योंकि याचिकाकर्ता को उसकी सेवानिवृत्ति की आयु 58 वर्ष मानकर उसे बढ़ा हुआ लाभ दिया गया, जबकि उसने स्वीकार किया था कि वह 60 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त हुआ था। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को 10 वर्ष, 16 वर्ष, 19 वर्ष और 24 वर्ष की सेवा पूरी करने के बजाय 8 वर्ष, 14 वर्ष, 19 वर्ष और 24 वर्ष की सेवा पूरी करने के बाद वेतन वृद्धि और पदोन्नति वेतनमान दिया गया। स्पष्टतः, याचिकाकर्ता को उक्त लाभ उस समय दिए गए थे जब वह सेवा में था और इस प्रकार, 30.04.2021 को उसकी सेवानिवृत्ति के बाद 20.05.2021 को याचिकाकर्ता द्वारा दिया गया वचन प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता के बकाया/पेंशन से कोई वसूली करने के लिए अधिकृत या सशक्त नहीं करता।

38. तदनुसार, **जगदेव सिंह (पूर्वोक्त)** मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा, जिससे प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए वचन के अनुसरण में उससे कोई राशि वसूलने का अधिकार प्राप्त हो सके। दोनों प्रश्न तदनुसार निर्णीत माने जाते हैं।

39. जहां तक प्रश्न (सी) का संबंध है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **जगदीश प्रसाद सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

"21. हमारा दृढ़ विश्वास है कि राज्य सरकार द्वारा किसी कर्मचारी के वेतनमान को कम करने और अतिरिक्त राशि वसूलने के लिए लिया गया कोई भी निर्णय पूर्वव्यापी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है और वह भी लंबे समय के अंतराल के बाद।"

40. **जगदीश प्रसाद सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट रूप से सामने आता है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि किसी कर्मचारी का वेतनमान लंबे समय के अंतराल के बाद कम नहीं किया जा सकता है।

41. वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थीगण के अनुसार, याचिकाकर्ता को 8 वर्ष, 14 वर्ष, 19 वर्ष और 24 वर्ष की सेवा पूरी करने पर वेतन वृद्धि और प्रोन्नति वेतनमान का लाभ दिए जाने के कारण गलत निर्धारण हुआ प्रतीत होता है, जबकि वास्तव में वह 10 वर्ष, 16 वर्ष, 19 वर्ष और 24 वर्ष की सेवा का हकदार था, जिसका अर्थ है कि वेतन निर्धारण, वेतन वृद्धि का अनुदान और प्रोन्नति वेतनमान का अनुदान बहुत समय पहले हुआ था। इस प्रकार, **जगदीश प्रसाद सिंह (पूर्वोक्त)** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थीगण को याचिकाकर्ता के वेतन और परिणामस्वरूप पेंशन को पुनर्निर्धारित करने से स्पष्ट रूप से रोक दिया गया है। उक्त प्रश्न का उत्तर भी तदनुसार दिया जाता है।

42. उपर्युक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। दिनांक 31.07.2024 और 29.08.2024 के आदेश को निरस्त करने हेतु एक उत्प्रेषण रिट जारी की जाती है, जिसकी प्रतियां क्रमशः

अनुलग्नक-11 और 10 में हैं। प्रत्यर्थीगण को आदेश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्ता को 56,200/- रुपये के वेतन के आधार पर मासिक पेंशन और सभी परिणामी लाभों का भुगतान करें।

(2025) 1 ILRA 444

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 10.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति न्यायाधीश मुनीर

रिट-ए संख्या- 9166 वर्ष 2024

गोपाल सिंह

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

दिनेश मिश्र, प्रभाकर अवस्थी

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226, - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियम, 1999 - नियम 10(2) - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियम, 1956- रिट याचिका - याचिकाकर्ता अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-द्वितीय, ललितपुर के प्रभार को लेकर विवाद में शामिल था - प्रमुख अभियंता ने आदेश दिया कि प्रभार छत्रपति सिंह को सौंप दिया जाए, लेकिन भागीरथी सिंह ने इसका पालन करने से इनकार कर दिया, जिसके कारण याचिकाकर्ता को निर्देश लागू करना पड़ा - बाद में, एक हेरफेर की गई शिकायत के परिणामस्वरूप छत्रपति सिंह को निलंबित कर दिया गया, जिससे उन्हें एक रिट याचिका दायर करने के लिए प्रेरित किया गया, जिसके कारण एक अंतरिम आदेश हुआ - एक कथात्मक पैरा संख्या के माध्यम से रिट याचिका का जवाब देते हुए। 11 अनुत्तरित रहे - कथा की जांच करने वाले पांच जिम्मेदार अधिकारियों में से केवल याचिकाकर्ता को सेवा कदाचार का आरोप लगाते हुए कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था - याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि आरोप निराधार और दुर्भावना से प्रेरित थे, जबकि प्रत्यर्थीगण ने शक्ति के दुरुपयोग और मिलीभगत का दावा किया - न्यायालय को कोई ठोस सबूत नहीं मिला जिससे साबित हो कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर एक दोषपूर्ण कथा सुनिश्चित की - याचिकाकर्ता को पैरा संख्या 11 की चूक से जोड़ने वाली सामग्री के अभाव में, उसे कदाचार का दोषी ठहराने वाले आक्षेपित आदेश में योग्यता का अभाव

था - क्योंकि पर्याप्त दलीलों के साथ किसी निश्चित व्यक्ति या अभियोगी व्यक्ति के खिलाफ दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है नामांकित - अभिनिर्धारित किया गया कि, आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए - याचिका सफल हुई और उसे स्वीकृत किया जाता है। (प्रस्तर - 19, 24, 25, 26, 28)

रिट याचिका स्वीकृत। (ई-11)

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. यह रिट याचिका राज्य सरकार द्वारा दिनांक 24.05.2024 को पारित आदेश के विरुद्ध है, जिसमें याचिकाकर्ता को सेवा कदाचार के लिए कारण बताओ नोटिस के बाद निंदा का दंड दिया गया था।

2. याचिकाकर्ता ने 10.02.1991 को सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग में सहायक अभियंता के पद पर सेवा प्रारंभ की थी। 19.04.2000 को उन्हें अधिशासी अभियंता और फिर 20.01.2009 को अधीक्षण अभियंता के पद पर पदोन्नत किया गया। इसके बाद, 01.06.2018 को उन्हें मुख्य अभियंता, स्तर-II के पद पर पदोन्नत किया गया। 30.06.2022 को उन्हें मुख्य अभियंता, स्तर-I के पद पर और पदोन्नति मिली। जैसा कि अभिलेखों से प्रकट होता है, प्रमुख अभियंता एवं विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश के एक आदेश द्वारा छत्रपति सिंह, अधिशासी अभियंता, अनुसंधान एवं योजना प्रभाग-I, सिंचाई भवन एनेक्सी, लखनऊ को अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण प्रभाग-II, ललितपुर का अतिरिक्त प्रभार दिए जाने का निर्देश दिया गया था। यह प्रभार लखनऊ में उनके कर्तव्यों के अतिरिक्त था और यह व्यवस्था छह महीने की अवधि के लिए की गई थी जब तक कि एक नियमित पदाधिकारी की तैनाती नहीं हो जाती। सरकारी कार्य के हित में प्रमुख अभियंता ने यह आदेश पारित किया था। जब प्रमुख अभियंता ने 15.03.2023 को अपने आदेश पारित किए, तो इन्हें प्रमुख सचिव, सिंचाई एवं जल संसाधन, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ से अधिशासी अभियंता, कंप्यूटर केंद्र, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, लखनऊ सहित अन्य संबंधित अधिकारियों को विधिवत प्रसारित किया गया।

3. जिस समय प्रमुख अभियंता द्वारा दिनांक 15.03.2023 का आदेश पारित किया गया था, उस समय भागीरथी सिंह अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-I, ललितपुर के पद पर तैनात थे। उन्हें अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर का अतिरिक्त प्रभार दिया गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अधीक्षण अभियंता, सिंचाई निर्माण मंडल, झांसी द्वारा किया गया था, जो ललितपुर में अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-I और II के नियंत्रक प्राधिकारी और तत्काल वरिष्ठ बताए जाते हैं। जब छत्रपति सिंह ने प्रमुख अभियंता के आदेश के अनुपालन में अधिशासी अभियंता, निर्माण खंड-II के रूप में कार्यभार संभाला और अतिरिक्त प्रभार संभाल रहे भागीरथी सिंह से संपर्क किया, तो भागीरथी सिंह ने छत्रपति सिंह को प्रभार सौंपने

से इनकार कर दिया। छत्रपति सिंह ने 16.03.2023 को याचिकाकर्ता को लिखा कि प्रमुख अभियंता के आदेश के अनुपालन में सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर का प्रभार उन्हें सौंपने का निर्देश दिया जाए।

4. याचिकाकर्ता का यह भी कहना है कि यह प्रकरण प्रमुख अभियंता के संज्ञान में लाया गया, जिन्होंने याचिकाकर्ता को अपने 15.03.2023 के आदेश का अनुपालन सुनिश्चित करने का निर्देश दिया। इन परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता ने 16.03.2023 को एक आदेश पारित किया, जिसमें प्रमुख अभियंता के आदेश के अनुपालन में सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर का प्रभार छत्रपति सिंह को सौंपने का निर्देश दिया गया। याचिकाकर्ता ने इस मोड़ पर दलील दी है कि सिंचाई निर्माण खंड-II का प्रभार संभाल रहे अधिशासी अभियंता भागीरथी सिंह की राजपाल सिंह, मुख्य अभियंता, स्तर-II के साथ मिलीभगत थी और दोनों ने यह सुनिश्चित करने के लिए कि छत्रपति सिंह को रास्ते से हटाया जाए, 17.07.2023 को छह कनिष्ठ अभियंताओं और चार सहायक अभियंताओं के माध्यम से छत्रपति सिंह के खिलाफ एक हेरफेरपूर्ण शिकायत दर्ज कराई। रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 8 में इन तथ्यों का दावा किया गया है और फिर पैराग्राफ संख्या 9 में द्वेषपूर्ण कार्य के और आरोप लगाए गए हैं, जहाँ कहा गया है कि छत्रपति सिंह के विरुद्ध व्यापक आंतरिक राजनीति मौजूद थी, जिसे याचिकाकर्ता ने देखा और 28.07.2023 को उनके पक्ष में लिखा, जिसमें उनके अच्छे कार्यों और भागीरथी सिंह के बुरे कार्यों को प्रमाणित किया गया। 28.07.2023 का यह पत्र मुख्य अभियंता एवं विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन, उत्तर प्रदेश को संबोधित था।

5. छत्रपति सिंह को 04.08.2023 के आदेश के तहत जांच लंबित रहने तक निलंबित रखा गया था। उन्होंने उक्त आदेश को रिट-ए संख्या 13224/2023 के माध्यम से चुनौती दी। इस न्यायालय ने अंतिम रिट याचिका में पारित दिनांक 29.08.2023 के आदेश के तहत 04.08.2023 के निलंबन आदेश पर रोक लगा दी और निर्देश दिया कि छत्रपति सिंह उसी तरह पद पर कार्य करते रहेंगे जैसे उन्होंने उक्त आदेश से पहले किया था। याचिकाकर्ता ने रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 13 में छत्रपति सिंह द्वारा सेवा से अपने निलंबन के खिलाफ दायर रिट-ए संख्या 13224/2023 के पैराग्राफ संख्या 11 को उद्धृत करते हुए दलील दी है। छत्रपति सिंह की रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 को पूर्वोक्त रूप में उद्धृत किया गया है:

"11. 28.07.2023 को पदानुक्रम में विभागाध्यक्ष ने याचिकाकर्ता के पक्ष में 3 महीने के प्रदर्शन के आधार पर पत्र लिखा। प्रत्यर्थी संख्या 3 के 28.07.2023 के पत्र की फोटो प्रति इस रिट याचिका के साथ संलग्न की जा रही है और इसे अनुलग्नक संख्या-6 के रूप में चिह्नित किया गया है।"

6. इस न्यायालय द्वारा 29.08.2023 को उपरोक्त स्थगन आदेश दिए जाने के बाद, प्रत्यर्थीगण को एक नोटिस जारी किया गया, जिसमें उन्हें प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए बाध्य किया गया। इस प्रयोजन के लिए प्रत्यर्थीगण के कार्यालय द्वारा एक विवरणिका तैयार की जानी थी। यह विवरणिका प्रत्यर्थीगण द्वारा तैयार की गई, लेकिन इसमें छत्रपति सिंह द्वारा स्थापित रिट-ए संख्या 13224/2023 के पैराग्राफ संख्या 11 का कोई

उत्तर नहीं था। पूर्वोक्त विवरणिका पर पहले अधिशासी अभियंता, फिर अधीक्षण अभियंता, फिर मुख्य अभियंता, स्तर-II, उसके बाद याचिकाकर्ता और अंत में विभागाध्यक्ष, अर्थात् मुख्य अभियंता द्वारा हस्ताक्षर किए गए।

7. ऐसा प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता द्वारा पारित दिनांक 16.03.2023 के आदेश, जिसके द्वारा उन्होंने छत्रपति सिंह को सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर के अधिशासी अभियंता का कार्यभार ग्रहण करने का निर्देश दिया था और विभाग के वृत्तांत में रिट-ए संख्या 13224/2023 के अनुत्तरित पैराग्राफ संख्या 11 के आधार पर, याचिकाकर्ता को दिनांक 16.11.2023 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया था, जिसमें उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 (संक्षेप में, '1999 की नियमावली') के नियम 10(2) के अंतर्गत उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का प्रस्ताव था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 04.12.2023 को कारण बताओ नोटिस का त्वरित उत्तर प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने अपनी स्थिति को विस्तार से समझाया। इसके तुरंत बाद, राज्य सरकार ने दिनांक 24.05.2024 को आक्षेपित आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता को विवादित निंदा से दंडित किया गया।

8. दिनांक 24.05.2024 के आदेश से व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की गई है।

9. दिनांक 08.07.2024 को जारी प्रस्ताव के नोटिस के उत्तर में प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 की ओर से प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिस पर याचिकाकर्ता ने प्रत्युत्तर दाखिल किया है।

10. दिनांक 23.07.2024 को जब याचिका सुनवाई के लिए आई, तो दोनों पक्षों ने अपने-अपने हलफनामे प्रस्तुत किए, तथा इसे सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया, जो तत्काल शुरू हुई। निर्णय सुरक्षित रखा गया।

11. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभाकर अवस्थी और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री मोनिका आर्य को सुना गया।

12. श्री प्रभाकर अवस्थी ने तर्क दिया है कि याचिकाकर्ता के विरुद्ध ऐसा कोई भी आरोप नहीं है जिसके आधार पर उसे दंडित किया जा सके। उनका कहना है कि किसी कर्मचारी के विरुद्ध 1999 के नियमों के अंतर्गत कार्यवाही करने से पहले, उसके द्वारा किया गया कोई ऐसा कार्य होना चाहिए जो कदाचार का प्रतीक हो और फिर कदाचार के आरोप के समर्थन में कुछ ठोस सामग्री या साक्ष्य मौजूद होने चाहिए, जिसके आधार पर प्रत्यर्थी कर्मचारी के अपराध के बारे में संभावित अनुमान लगा सकें। श्री अवस्थी ने आग्रह किया कि यहाँ एक ऐसा प्रकरण है जहाँ याचिकाकर्ता ने सिंचाई निर्माण खण्ड-II, ललितपुर के अधिशासी अभियंता के पद का अतिरिक्त प्रभार देने के लिए, मुख्य अभियंता एवं विभागाध्यक्ष, सिंचाई एवं जल संसाधन, उत्तर प्रदेश द्वारा पारित दिनांक 15.03.2023 के आदेश को प्रभावी किया। उन्होंने न्यायालय का ध्यान मुख्य अभियंता के आदेश की ओर आकर्षित किया, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 में संलग्न है।

13. अगला आरोप छत्रपति सिंह द्वारा दायर रिट-ए संख्या 13224/2023 के पैराग्राफ संख्या 11 का पालन न करने के बारे में है। श्री अवस्थी ने कहा है कि प्रत्यर्थागण का विवरण कार्यालय द्वारा तैयार किया गया था और सबसे पहले कार्यकारी अभियंता ने उस पर हस्ताक्षर किए, उसके बाद अधीक्षण अभियंता ने, फिर मुख्य अभियंता, स्तर-II ने, उसके बाद याचिकाकर्ता ने उस पर हस्ताक्षर किए और अंत में मुख्य अभियंता ने उस पर हस्ताक्षर किए। उस विवरण पर हस्ताक्षर करने में किसी अन्य अधिकारी का आचरण, जिसने रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 का उत्तर नहीं दिया, दोषपूर्ण नहीं पाया गया है। याचिकाकर्ता पर छत्रपति सिंह द्वारा दायर रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 का उत्तर न देने का आरोप लगाया गया है। उन्होंने कहा है कि पांच अधिकारियों, जिनमें याचिकाकर्ता से तीन कनिष्ठ और एक वरिष्ठ हैं, द्वारा हस्ताक्षरित विवरण का पालन न करना किसी भी प्रकार का कदाचार नहीं है। उन्होंने आगे आग्रह किया कि उनके द्वारा किए गए इन गैर-मौजूद कदाचार के कृत्यों या चूक के लिए याचिकाकर्ता के संभावित दोष का अनुमान लगाने के समर्थन में कोई सामग्री या सबूत नहीं है। उन्होंने आक्षेपित आदेश की निंदा करते हुए कहा कि यह विकृत है, कदाचार के गैर-मौजूद आरोपों/अभिकथनों पर आधारित है और ऐसा आदेश है जो याचिकाकर्ता के दोष का अनुमान लगाने के लिए किसी सामग्री या सबूत के अभाव में आगे बढ़ता है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि आक्षेपित आदेश दुर्भावना से प्रेरित है। उन्होंने मुख्य अभियंता स्तर-I के कैडर के अधिकारियों की वरिष्ठता सूची के विवरण का हवाला देते हुए कहा कि वह उन तीन अधिकारियों में शामिल हैं, जो अब मुख्य अभियंता के रूप में पदोन्नत होने के पात्र हैं, अर्थात् अखिलेश कुमार सचान, संदीप कुमार और याचिकाकर्ता स्वयं। उन्होंने आग्रह किया कि आक्षेपित आदेश जानबूझकर पारित किया गया है ताकि उन्हें पदोन्नति के लिए विचार करने से अयोग्य ठहराया जा सके, जो अन्यथा उन्हें निश्चित रूप से मिल जाती। याचिकाकर्ता 31.03.2025 को सेवानिवृत्त होने वाला है और उसके आचरण की निंदा करने का पूरा प्रयास दुर्भावना से प्रेरित है।

14. दूसरी ओर, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री मोनिका आर्य ने दलील दी है कि याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप पुख्ता हैं। उन्होंने कहा कि भागीरथी सिंह, जो कि अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-I, ललितपुर थे, को डिवीजन-II का अतिरिक्त प्रभार दिया गया क्योंकि वह निकट थे। यह निर्णय अधीक्षण अभियंता, सिंचाई निर्माण मंडल, झांसी, जो कि नियंत्रक प्राधिकारी हैं, ने लिया। उन्होंने जोर देकर कहा कि छत्रपति सिंह ने मुख्य अभियंता के आदेश दिनांक 15.03.2023 के अनुपालन में न तो भागीरथी सिंह से अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर के पद का अतिरिक्त प्रभार लेने के लिए संपर्क किया और न ही नियंत्रक प्राधिकारी अर्थात् अधीक्षण अभियंता, सिंचाई निर्माण मंडल, झांसी को अवगत कराया। इसके बजाय, उन्होंने सीधे याचिकाकर्ता से संपर्क किया और उन्हें अतिरिक्त प्रभार सौंपने के लिए आवेदन किया। उक्त आवेदन पर याचिकाकर्ता ने 16 मार्च, 2023 का आदेश पारित किया, जिसमें छत्रपति सिंह को भागीरथी सिंह को कोई अवसर दिए बिना, सिंचाई निर्माण खंड- II, ललितपुर के अधिशासी अभियंता का अतिरिक्त प्रभार संभालने का निर्देश दिया। उन्होंने इस संबंध में न्यायालय का ध्यान जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 5 की ओर आकर्षित किया है, जहां इस प्रकरण की पैरवी की गई है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता और छत्रपति सिंह की मिलीभगत थी, क्योंकि बाद वाले को कभी भी सिंचाई निर्माण खंड- II, ललितपुर के अधिशासी अभियंता का अतिरिक्त प्रभार देने से इनकार नहीं किया गया और न ही मुख्य अभियंता के आदेश को पूरा

करने में कोई अनुचित देरी की गई। याचिकाकर्ता ने अपनी आधिकारिक शक्ति का दुरुपयोग किया, अधिकार की रेखा को लांघा, अधीक्षण अभियंता को दरकिनार किया और स्वयं 16 मार्च, 2023 के अपने आदेश द्वारा छत्रपति सिंह को सिंचाई निर्माण खंड- II, ललितपुर के अधिशासी अभियंता का अतिरिक्त प्रभार संभालने का निर्देश दिया। छत्रपति सिंह ने पद पर रहते हुए भी दुर्यवहार किया और अपने अधीनस्थ अभियंताओं को परेशान किया। उन्होंने उनसे रिश्तों की माँग की और उनकी माँग पूरी न करने पर उनकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (एसीआर) खराब करने की धमकी दी। इसके चलते अधीनस्थ अभियंताओं ने मुख्य अभियंता, बेतवा परियोजना, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, झाँसी को दिनांक 03.07.2023 को अपने ज्ञापन के माध्यम से छत्रपति सिंह के विरुद्ध शिकायत की। विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता के अनुसार, इस ज्ञापन पर कम से कम दस सहायक और कनिष्ठ अभियंताओं के हस्ताक्षर हैं। इससे छत्रपति सिंह के सेवा निलम्बन का रास्ता साफ हो गया।

15. अब, जब छत्रपति सिंह ने अपने निलम्बन के आदेश को चुनौती दी और इस न्यायालय द्वारा एक नोटिस जारी किया गया, तो तैयार की गई कहानी में कहा गया कि याचिकाकर्ता ने अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में घोर लापरवाही बरती। उन्होंने रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 का उत्तर देने का ध्यान नहीं रखा। छत्रपति सिंह के साथ मिलीभगत करके, उन्होंने कहानी पर हस्ताक्षर किए और एक जवाबी हलफनामा तैयार करने के लिए इसे विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता के कार्यालय को भेज दिया। यह याचिकाकर्ता की ओर से लापरवाही दर्शाता है, जिसके लिए उन्हें अन्य दुष्कर्म के अलावा दंडित किया गया है। सुश्री आर्य का तर्क है कि याचिकाकर्ता के जवाब पर उचित विचार करने के बाद उन्हें दंडित किया गया है। साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करना और निष्कर्ष पर लौटना इस न्यायालय का कार्य नहीं है यदि साक्ष्य प्राथमिक निर्णयकर्ता द्वारा पहुँचे निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए पर्याप्त वजनदार थे।

16. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत दलीलों पर ध्यानपूर्वक विचार किया है तथा अभिलेख का अवलोकन किया है।

17. दो आरोप हैं, या यूँ कहें कि आरोप हैं, जिनके आधार पर याचिकाकर्ता को दंडित किया गया है। याचिकाकर्ता का कहना है कि ये गैर-आरोप या कार्य या चूक हैं जो उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक आचरण नियमावली, 1956 (संक्षेप में, '1956 की नियमावली') या कदाचार को परिभाषित करने वाले किसी नियम के तहत कोई कदाचार नहीं बनाते हैं। पहला आरोप या आरोप, जैसा कि पहले ही विस्तार से कहा गया है, याचिकाकर्ता द्वारा 16.03.2023 को एक आदेश पारित करने के बारे में है, जिसमें छत्रपति सिंह को अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड- II, ललितपुर के रूप में अतिरिक्त प्रभार लेने का निर्देश दिया गया है। ऐसा कहा जाता है कि यह एक कदाचार है, क्योंकि याचिकाकर्ता अधिशासी अभियंता का नियंत्रण प्राधिकारी नहीं था। यह झाँसी में अधीक्षण अभियंता थे। याचिकाकर्ता पर अधिकार या नियंत्रण रेखा को लांघने और स्वयं आदेश पारित करने के पीछे किसी प्रकार का उद्देश्य बताया गया है, जिसमें उसने मुख्य अभियंता के दिनांक 15.03.2023 के आदेश के

अनुपालन में छत्रपति सिंह को कार्यभार ग्रहण करने का निर्देश दिया है, जिसमें छत्रपति सिंह को सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर के अधिशासी अभियंता का अतिरिक्त प्रभार सौंपने का आदेश दिया गया है।

18. इस तथ्य से कोई इनकार नहीं है कि प्रमुख अभियंता ने एक आदेश पारित किया था, जो दिनांक 15.03.2023 को अभिलेखों में उपलब्ध है, जिसमें अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर का अतिरिक्त प्रभार छत्रपति सिंह को देने का निर्देश दिया गया था, जिससे भागीरथी सिंह को उस प्रभार से वंचित कर दिया गया था। ऐसा कहा जाता है कि छत्रपति सिंह ने भागीरथी सिंह या अधीक्षण अभियंता से संपर्क नहीं किया, बल्कि सीधे याचिकाकर्ता से संपर्क किया, जिन्होंने दिनांक 16.03.2023 को आपत्तिजनक आदेश पारित किया। पक्षों के आचरण और विभाग के अधिकारियों के रूप में उनकी सापेक्ष स्थिति को देखते हुए, छत्रपति सिंह द्वारा भागीरथी सिंह को प्रभार सौंपने के लिए न कहने का कोई ठोस कारण नहीं है। भले ही उन्होंने मुख्य अभियंता के आदेश के अनुपालन में भागीरथी सिंह को कार्यभार सौंपने के लिए नहीं कहा हो या पहली बार में अधीक्षण अभियंता से संपर्क नहीं किया हो, लेकिन याचिकाकर्ता, जिसने 16 मार्च, 2023 के अपने आदेश द्वारा मुख्य अभियंता के आदेश को लागू किया, यह कोई दोषपूर्ण आचरण नहीं है जो किसी भी प्रकार के सेवा कदाचार का गठन करता है जो याचिकाकर्ता के लिए सजा को आमंत्रित कर सकता है।

19. प्रत्यर्थीगण के लिए, अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि यह किसी प्रकार की अविवेकपूर्णता थी। यह भी कहना कभी-कभी कठिन होता है, क्योंकि आधिकारिक कार्यों के निर्वहन के दौरान जो परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, वे स्वाभाविक हैं। एक वरिष्ठ अधिकारी के ध्यान में कई ऐसी बातें आ सकती हैं, जो उसे किसी विशेष तरीके से कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं, जो बाहर से एक निष्पक्ष और निष्पक्ष दृष्टि से अविवेकपूर्ण या अजीब लग सकती हैं। लेकिन, किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा अपने आधिकारिक कार्यों के निर्वहन में किसी विशेष तरीके से कार्य करने या कोई आदेश पारित करने का निर्णय, जो स्वयं में अवैध नहीं है, किसी भी प्रकार का कदाचार नहीं होगा। यह एक अधिकारी द्वारा अपने कार्यों के निर्वहन में लिया गया निर्णय है, जिसे एक वरिष्ठ अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने के लिए कई बातों का ज्ञान होगा। यदि ऐसी परिस्थितियों में थोड़ी सी भी चूक होती है, तो यह मानवीय दुर्बलताओं का एक सहज परिणाम मात्र है, जब उसे अधिकार के पद पर रखा जाता है और पद से जुड़ी ज़िम्मेदारी सौंपी जाती है। सद्भावपूर्वक की गई हर छोटी-मोटी चूक या अविवेक की कदाचार के रूप में निंदा नहीं की जा सकती।

20. संभवतः, उपरोक्त कारण से ही प्रत्यर्थीगण ने यह तर्क दिया है कि 16.03.2023 का आदेश याचिकाकर्ता द्वारा छत्रपति सिंह की मिलीभगत से पारित किया गया था। हालाँकि, ऐसा कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह सिद्ध हो कि इसमें कोई मिलीभगत थी। आखिरकार, छत्रपति सिंह को अतिरिक्त प्रभार देने का निर्णय मुख्य अभियंता द्वारा लिया गया था, जिनका आचरण बिल्कुल भी दोषपूर्ण नहीं पाया गया है। मुख्य अभियंता के आदेश का क्रियान्वयन झांसी के अधीक्षण अभियंता या परियोजना के मुख्य अभियंता सहित सभी को करना था। यदि याचिकाकर्ता ने उक्त आदेश को लागू करने के लिए, अधीक्षण अभियंता को दरकिनार करते हुए, कार्य किया, तो केवल उक्त तथ्य के आधार पर, छत्रपति सिंह और याचिकाकर्ता के बीच मिलीभगत का कोई अनुमान

नहीं लगाया जा सकता। प्रत्यर्थीगण का यह अनुमान कि याचिकाकर्ता और छत्रपति सिंह के बीच किसी प्रकार की मिलीभगत थी, वास्तव में अनुमान और याचिकाकर्ता को दंडित करने की पूर्व-योजना पर आधारित प्रतीत होता है।

21. समझने के लिए एक और पहलू है, जिसे प्रत्यर्थीगण ने नज़रअंदाज़ कर दिया है, कि याचिकाकर्ता ने मुख्य अभियंता के दिनांक 15.03.2023 के आदेश को स्वयं लागू करने में इतनी जल्दबाजी क्यों दिखाई। रिट के पैराग्राफ संख्या 22 में ही नहीं, बल्कि दिनांक 04.12.2023 को जारी कारण बताओ नोटिस के जवाब में भी एक विशिष्ट प्रकरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें लिखा है:

“जब द्वाँत कार्यभार हस्तांतरण से भी श्री भागीरथ अधिशासी अभियंता द्वारा स्पष्ट इनकार कर दिया गया तो यह प्रकरण प्रमुख अभियन्ता (विभागाध्यक्ष) के संज्ञान में आया और उन्होंने मुझे निर्देशित किया कि मैं तत्काल उनके आदेश दिनांक-15.03.2023 का अनुपालन सुनिश्चित करूं। ऐसी स्थिति में मैंने नियमानुसार द्वाँत कार्यभार हस्तांतरण धारण किए जाने हेतु आदेश कर दिए जो मेरा कर्तव्य था।”

22. प्रत्यर्थीगण द्वारा जारी दिनांक 04.12.2023 के कारण बताओ नोटिस के जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा किया गया यह दावा, रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 22 में, इसके संदर्भ को बताने के बाद, उद्धृत किया गया है। प्रति-शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 8 में, यह दावा कि जब मुख्य अभियंता को पता चला कि भागीरथी सिंह ने मुख्य अभियंता के आदेशानुसार छत्रपति सिंह को अधिशासी अभियंता का अतिरिक्त प्रभार देने से इनकार कर दिया है, तो याचिकाकर्ता को उनके आदेश का तत्काल प्रवर्तन सुनिश्चित करने का निर्देश मुख्य अभियंता द्वारा दिया गया था, प्रत्यर्थीगण द्वारा स्पष्ट रूप से अस्वीकार नहीं किया गया है। कारण बताओ नोटिस के जवाब में याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत इस प्रकरण पर राज्य सरकार ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय विचार नहीं किया है। इसलिए, यदि याचिकाकर्ता ने वास्तव में मुख्य अभियंता के निर्देशों के तहत उनके आदेशों को तुरंत लागू करने का काम किया, तो प्रकरण के किसी भी दृष्टिकोण से, याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 16.03.2023 को छत्रपति सिंह को अधिशासी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर का कार्यभार संभालने का निर्देश देने वाला आदेश पारित करने में कोई अविवेक नहीं है। यह दावा कि याचिकाकर्ता को मुख्य अभियंता द्वारा दिनांक 15.03.2023 के अपने आदेश का तत्काल पालन सुनिश्चित करने का निर्देश/निर्देश दिया गया था, न तो प्रत्यर्थीगण द्वारा अपनी दलीलों में खंडन किया गया और न ही आक्षेपित आदेश पारित करते समय इसकी जाँच, विचार और अस्वीकार किया गया, इसे सही स्थिति के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

23. याचिकाकर्ता के खिलाफ आरोप या लांछन का पहला भाग, छत्रपति सिंह को सीधे तौर पर सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर के कार्यकारी अभियंता का प्रभार सौंपने का आदेश देने में उनके आचरण की निंदा करता है, इसे शायद ही कदाचार का कार्य कहा जा सकता है। राज्य सरकार का यह अनुमान कि यह कदाचार का कार्य था, स्पष्ट रूप से विकृत है, जो अनुमान और अज्ञानता पर आधारित है कि वैध रूप से कदाचार का कार्य क्या हो सकता है। जहां तक याचिकाकर्ता और छत्रपति सिंह के बीच किसी प्रकार की मिलीभगत या साजिश के कोण

का संबंध है, जिसके कारण याचिकाकर्ता ने कार्यकारी अभियंता, सिंचाई निर्माण खंड-II, ललितपुर का प्रभार सौंपना सुनिश्चित किया, रिकॉर्ड में थोड़ी सी भी सामग्री नहीं है, जिससे वह निष्कर्ष निकाला जा सके। इसलिए, आदेश में दिए गए आंकड़ों की सीमा तक वह अनुमान किसी भी सामग्री पर आधारित नहीं है।

24. यह हमें आरोप या अभिकथन के दूसरे पहलू की ओर ले जाता है। यह याचिकाकर्ता द्वारा तथ्यों की जांच किए बिना लापरवाही से एक कथन पर हस्ताक्षर करने के बारे में है, जहां छत्रपति सिंह द्वारा सेवा से उनके निलंबन के खिलाफ दायर रिट-ए संख्या 13224/2023 के पैराग्राफ संख्या 11 का कोई जवाब नहीं दिया गया। किसी भी स्तर पर प्रत्यर्थीगण द्वारा यह तर्क नहीं दिया गया कि यह याचिकाकर्ता था, जिसने कथन लिखा या तैयार किया। यह स्पष्ट रूप से कार्यकारी अभियंता के कार्यालय या किसी अन्य स्तर द्वारा तैयार किया गया था, लेकिन विधिक प्रकरण से निपटने वाले कार्यालय द्वारा तैयार किया गया था। इस पर कार्यकारी अभियंता द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, जो सबसे कनिष्ठ अधिकारी थे, उनके बाद अधीक्षण अभियंता, मुख्य अभियंता स्तर- II और फिर याचिकाकर्ता द्वारा, अंत में विभागाध्यक्ष, यानी मुख्य अभियंता द्वारा हस्ताक्षर किए गए। ऐसी स्थिति में, जब याचिकाकर्ता के अलावा किसी भी अधिकारी का आचरण, उनके द्वारा संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित रिट-ए संख्या 13224/2023 के पैराग्राफ संख्या 11 का उत्तर न देने में दोषपूर्ण नहीं पाया गया, तो इस चूक को सभी अधिकारियों की ओर से एक अनजाने में हुई भूल या चूक माना जाना चाहिए। यह चूक चाहे किसी भी प्रकार की हो, इसे निश्चित रूप से किसी भी प्रकार के कदाचार की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

25. अन्य अधिकारी, जिन्होंने कथन पर हस्ताक्षर किए थे, उनके खिलाफ इस चूक के लिए उचित रूप से कार्रवाई नहीं की गई है। जैसा कि पहले ही कहा गया है, आधिकारिक कामकाज के दौरान, यदि किसी अधिकारी की हर गलती या चूक को कदाचार करार दिया जाता है, तो सेवा के प्रत्येक सदस्य को किसी भी आधिकारिक कागज पर कलम चलाने पर अनुशासनात्मक कार्यवाही का खतरा होगा। सेवा कदाचार का मतलब निश्चित रूप से छोटी-मोटी चूक, गलतियाँ, अनजाने में हुई चूक, गलत निर्णय और इसी तरह की अन्य बातें नहीं हैं जो एक सरकारी कर्मचारी या अधिकारी अपने कर्तव्यों के दौरान हर रोज सद्भावपूर्वक करता है। अब आक्षेपित आदेश कहता है कि कथन पर लापरवाही से और तथ्यों की पुष्टि किए बिना हस्ताक्षर करके, याचिकाकर्ता ने लापरवाही और असावधानी दिखाई है। चीजों की प्रकृति को देखते हुए, याचिकाकर्ता के खिलाफ इस तरह का आरोप शायद ही लगाया जा सकता है।

26. ऐसा कोई प्रकरण नहीं है और न ही कोई ऐसा तथ्य है जो यह दर्शाता हो कि याचिकाकर्ता ने जानबूझकर यह सुनिश्चित किया कि विवरण अपूर्ण रहे। इस आरोप के अभाव में कि याचिकाकर्ता ही था जिसने छत्रपति सिंह की रिट याचिका के पैराग्राफ संख्या 11 को विवरण में अनुत्तरित रहने दिया, यह आदेश, जिसमें याचिकाकर्ता को उक्त चूक के लिए कदाचार के कृत्य के रूप में दोषी ठहराया गया है, पुनः विकृत है और किसी भी तथ्य पर आधारित नहीं है। यद्यपि प्रत्यर्थीगण के विरुद्ध दुर्भावना का निष्कर्ष निकालने के लिए कोई ठोस तथ्य भी नहीं है, इस तथ्य के आधार पर कि यह आदेश याचिकाकर्ता को मुख्य अभियंता के पद पर पदोन्नति के अवसर से वंचित करने के उद्देश्य से पारित किया गया था, हमने जो अत्यंत विचित्रताएँ देखी हैं, वे छिपी हुई हैं, जो

उस प्रकार का संदेह पैदा कर सकती हैं। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि सामान्य परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता पर कदाचार के रूप में आरोपित किए गए कृत्यों पर ध्यान नहीं दिया जाता; ठीक वैसे ही जैसे उन्होंने चार अन्य अधिकारियों के प्रकरण में किया था, जिनमें मुख्य अभियंता भी शामिल थे, जिन्होंने याचिकाकर्ता की तरह ही इस कथन पर हस्ताक्षर किए थे। फिर भी, चूँकि हमें आक्षेपित आदेश की वैधता पर निर्णय देने के लिए उस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए हम याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाए गए दुर्भावना के मुद्दे पर कोई राय व्यक्त करने से बचते हैं। और भी अधिक इसलिए, क्योंकि पर्याप्त दलीलों वाले किसी निर्णायक व्यक्ति या अभियोगी व्यक्ति के विरुद्ध दुर्भावना का आरोप नहीं लगाया गया है।

27. हमने जो ऊपर कहा है, उसके मद्देनजर, आक्षेपित आदेश कायम नहीं रखा जा सकता और उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए।

28. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होकर स्वीकार की जाती है। राज्य सरकार द्वारा पारित दिनांक 24.05.2024 का आक्षेपित आदेश एतद्वारा रद्द किया जाता है।

29. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा।

30. इस आदेश की एक प्रति निबंधक (अनुपालन) द्वारा प्रमुख सचिव, सिंचाई एवं जल संसाधन विभाग, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ को प्रेषित की जाए।

(2025) 1 ILRA 452

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर

रिट-ए संख्या- 9913/2023

सम्बद्ध

रिट-ए संख्या- 4808 वर्ष 2024

आशुतोष पांडेय एवं अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता:

(ए) सेवा विधि - पदोन्नति एवं वरिष्ठता विवाद - उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक नियमावली, 2013, तहसीलदार सेवा नियमावली, 1966 - नियम 6 एवं 4 - उत्तर प्रदेश अधीनस्थ राजस्व (तहसीलदार) सेवा नियमावली, 1966 - नियम 6, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक पदोन्नति हेतु अर्हक सेवा में छूट नियमावली, 2006 (2013 में संशोधित) - नियम 2 एवं 4, उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक पदोन्नति द्वारा भर्ती हेतु मानदण्ड नियमावली, 1998 - मनमानी नियुक्ति - वरिष्ठता सिद्धांत का उल्लंघन - पदोन्नति - वरिष्ठता सूची - पात्रता में छूट - लोक सेवा आयोग द्वारा जारी चयन सूची के अनुसार वरिष्ठता बनाए रखी जानी चाहिए - अर्हक सेवा में छूट प्रदान करना विवेकाधीन है और इसे अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता - पदोन्नति पर अंतिम आधार पर विचार किया जाना चाहिए, न कि अनंतिम वरिष्ठता सूची के आधार पर - कर्मचारी को केवल पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार है, लेकिन यदि शर्तें पूरी होती हैं तो पदोन्नति का कोई अधिकार नहीं है। (प्रस्तर - 23,24,27,35,36, 39)

याचिकाकर्तागण का चयन 2016 बैच में नायब तहसीलदार के रूप में हुआ था - उन्हें अलग-अलग समय पर नियुक्ति पत्र जारी किए गए, जिससे कार्यभार ग्रहण करने में देरी हुई - राजस्व मंडल ने 2020 में वरिष्ठता सूची तैयार की - देरी से कार्यभार ग्रहण करने के कारण शुरुआत में याचिकाकर्तागण को इसमें शामिल नहीं किया गया - बाद में अर्हक सेवा में छूट केवल उन्हीं को दी गई जिन्होंने 31/12/2019 से पहले कार्यभार ग्रहण किया था, जिसमें याचिकाकर्ता शामिल नहीं थे - याचिकाकर्तागण ने अपने विचार से पहले कनिष्ठ उम्मीदवारों की पदोन्नति को चुनौती दी। (प्रस्तर - 2 से 27)

अभिनिर्धारित: - राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पात्रता में छूट से वरिष्ठता सिद्धांत का उल्लंघन न हो; पदोन्नति अंतिम वरिष्ठता सूचियों के आधार पर की जानी चाहिए। राज्य सरकार को दिनांक 17/10/2024 के प्रस्ताव पर शीघ्र विचार कर निर्णय लेने का निर्देश दिया गया, साथ ही तहसीलदार के पद पर भी शीघ्रता से पदोन्नति पर विचार करने और उसे लागू करने का निर्देश दिया गया। पदोन्नति पर रोक लगाने वाला अंतरिम आदेश निरस्त किया जाता है। (प्रस्तर - 29,38,41)

रिट ए संख्या- 9913/2023 निस्तारित।

रिट ए संख्या- 4808/2024 खारिज। (ई-7)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. उ०प्र० बनाम विकास कुमार सिंह, (2022) 1 एससीसी 347

2. भारत संघ बनाम मनप्रीत सिंह, (2022) 6 एससीसी 105

(माननीय न्यायमूर्ति आलोक माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्तागण की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता डॉ. लालता प्रसाद मिश्रा और श्री जयदीप नारायण माथुर को सुना गया, जिनकी सहायता श्री अविनाश सिंह विशेन ने की, तथा उत्तर प्रदेश राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता श्री कुलदीप पति त्रिपाठी को सुना।

2. याचिकाकर्तागण की ओर से यह प्रस्तुत किया गया है कि नायब तहसीलदार के पद सहित विभिन्न पदों पर नियुक्ति के लिए उ०प्र० लोक सेवा आयोग द्वारा जारी दिनांक 11/01/2016 के विज्ञापन के अनुसरण में याचिकाकर्तागण ने आवेदन किया और भर्ती परीक्षा में उपस्थित हुए और उन्हें चयनित घोषित किया गया। लोक सेवा आयोग द्वारा तैयार की गई चयन सूची में याचिकाकर्तागण के नाम क्रमशः क्रमांक 33, 35, 108, 115, 152 और 186 पर उल्लिखित हैं। यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्तागण को नियुक्ति पत्र 03/09/2019 और 04/03/2021 के बीच विभिन्न तिथियों पर जारी किए गए थे। यह प्रस्तुत किया गया कि राज्य द्वारा विसंगति की गई क्योंकि नियुक्ति पत्र उन उम्मीदवारों को बेतरतीब ढंग से जारी किए गए जिनके दस्तावेज सत्यापित थे। इसके परिणामस्वरूप नियुक्ति पत्र बेतरतीब ढंग से जारी किए गए जिससे उ०प्र० लोक सेवा आयोग द्वारा तैयार की गई चयन सूची में बहुत नीचे के व्यक्तियों को अन्य उम्मीदवारों से बहुत पहले शामिल होने की अनुमति मिल गई, जिनका सत्यापन बाद में पूरा हुआ। याचिकाकर्तागण ने बहुत देरी से नायब तहसीलदार के पद पर कार्यभार ग्रहण किया और परिवीक्षा अवधि पूरी होने के बाद याचिकाकर्ता संख्या 1, 3, 4, 5 और 6 को 20/04/2022 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई, जिसे 05/09/2023 को सही किया गया, जबकि याचिकाकर्ता संख्या 2 को 19/06/2023 के आदेश द्वारा पुष्टि की गई।

3. प्रत्यर्थीगण ने 18/09/2020 को सभी चयनित अभ्यर्थियों की एक ग्रेडेशन सूची तैयार की, जिसमें याचिकाकर्तागण को शामिल नहीं किया गया क्योंकि वे 03/07/2020 और 07/04/2021 के बीच सेवा में शामिल हुए थे। प्रस्तुत है कि बाद में याचिकाकर्तागण द्वारा अभ्यावेदन दिए जाने पर नाम शामिल किए गए।

4. इस बीच, याचिकाकर्तागण के सेवाओं में शामिल होने से पहले, राजस्व परिषद ने 18/09/2020 को तैयार की गई वरिष्ठता सूची के आधार पर, तहसीलदार सेवा नियमावली, 1966 (द्वितीय संशोधन) 1999 के नियम 6 और उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक पदोन्नति नियमावली (प्रथम संशोधन) नियम, 2013 के नियम 4 के प्रावधानों के अनुसार 31/12/2019 को या उससे पहले सेवा में शामिल होने वाले पदाधिकारियों की योग्यता सेवा में 6 महीने की छूट के लिए राज्य सरकार को एक प्रस्ताव भेजा और राज्य सरकार ने अपने आदेश दिनांक 14/08/2023 द्वारा विधिवत छूट प्रदान की। यह ध्यान देने योग्य है कि राज्य सरकार ने छूट प्रदान करते समय कुछ शर्तें लगाई थीं और वर्तमान प्रकरण के लिए सबसे प्रासंगिक शर्त संख्या 4 थी, जिसमें प्रावधान था

कि राजस्व परिषद यह सुनिश्चित करेगी कि किसी भी परिस्थिति में किसी कनिष्ठ व्यक्ति को पात्रता की शर्त में छूट प्रदान न की जाए, किसी भी वरिष्ठ व्यक्ति के दावे की अनदेखी करते हुए, जिससे वरिष्ठ व्यक्ति पात्रता की शर्त के कारण छूट से वंचित हो जाए। राजस्व परिषद ने दिनांक 16/08/2023 के आदेश द्वारा 141 नायब तहसीलदारों को तहसीलदार के पद पर पदोन्नत किया।

5. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि राजस्व परिषद द्वारा 28/12/2023 को नई अनंतिम वरिष्ठता सूची जारी की गई है, जिसमें याचिकाकर्तागण का नाम उ0प्र0 लोक सेवा आयोग द्वारा तैयार की गई चयन सूची के अनुसार उल्लेखित है। 01/07/2020 तक सेवा में शामिल होने वाले व्यक्तियों को छूट देने के बाद तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए राजस्व परिषद द्वारा 10/11/2023 को एक और प्रस्ताव राज्य सरकार को भेजा गया है। याचिकाकर्तागण को उक्त प्रस्ताव में शामिल नहीं किया गया है क्योंकि उन्होंने 01/07/2020 के बाद सेवा में शामिल हुए हैं। राजस्व परिषद ने पदोन्नति के लिए 2017 बैच के सदस्यों को भी शामिल करने की कार्यवाही की है, जो याचिकाकर्तागण से कनिष्ठ थे और बाद के भर्ती वर्ष में भर्ती हुए थे, याचिकाकर्तागण के दावे पर विचार किए बिना, और जब यह तथ्य याचिकाकर्तागण के संज्ञान में आया तो उन्होंने निम्नलिखित प्रार्थनाओं के साथ तत्काल रिट याचिका दायर की है:-

“(ए) एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जो विरोधी पक्षों को आदेश दे कि वे पहले याचिकाकर्तागण को तहसीलदार के रूप में उस तारीख से विचार करें और पदोन्नत करें जिस तारीख से 2016 बैच की चयन सूची/मेरिट सूची में याचिकाकर्तागण से नीचे रखे गए व्यक्तियों को 16/08/2023 से इस तरह पदोन्नत किया गया है, नायब तहसीलदार चयन 2016 से संबंधित किसी अन्य व्यक्ति पर विचार करने और उसे पदोन्नत करने से पहले, जो याचिकाकर्तागण के नीचे उस चयन की चयन सूची/मेरिट सूची में याचिकाकर्तागण से नीचे आया हो और 2016 बैच के बाद बैचों के किसी भी चयनित बाद के बैच पर विचार करने और उसे पदोन्नत करने से पहले।

(बी) विपक्षी पक्षों को याचिकाकर्तागण को पदोन्नत करने और उन्हें सभी परिणामी लाभों के साथ 16/08/2023 से तहसीलदार के रूप में मानने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

(ग) यदि आवश्यक हो तो तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए नायब तहसीलदार के रूप में सेवा की पात्रता के 4 वर्षों में 250% या 50% से अधिक की छूट देने के लिए विपक्षी पक्षों को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट या निर्देश जारी करना।

6. याचिकाकर्तागण की आशंका यह है कि प्रत्यर्थी 2017 बैच के व्यक्तियों पर विचार करने और उन्हें पदोन्नत करने के लिए केवल इस आकस्मिक परिस्थिति के कारण आगे बढ़ेंगे कि वे याचिकाकर्तागण से पहले सेवा में शामिल हुए थे। यह आगे जोरदार ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि राजस्व बोर्ड द्वारा शामिल होने की कट-

ऑफ तिथि तय करना अवैध और मनमाना है क्योंकि यह याचिकाकर्तागण के साथ प्रतिकूल भेदभाव करता है और उस निर्णय पर आधारित है जिसके लिए प्रत्यर्थी स्वयं जिम्मेदार थे। वरिष्ठता के सिद्धांत का पालन किए बिना विलंबित तरीके से नियुक्ति पत्र जारी करना प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई थी, और ऐसे नियुक्ति पत्र डेढ़ साल से अधिक के अंतराल के साथ जारी किए गए थे जिसके लिए प्रत्यर्थी स्वयं जिम्मेदार थे, और प्रत्यर्थीगण के ऐसे कार्यों के लिए याचिकाकर्तागण को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता और वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति से वंचित नहीं किया जा सकता।

7. रिट ए संख्या 9913/2023 में 23/01/2024 को एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थीगण को 2016 बैच के किसी भी व्यक्ति को, जो चयन सूची में याचिकाकर्तागण से नीचे हैं, पदोन्नत करने से और साथ ही तहसीलदार के पद पर बाद में चयन से किसी को भी रोक दिया गया था। अंतरिम आदेश के विरुद्ध रिट ए संख्या 4808/2024 (2017 बैच की) के याचिकाकर्तागण द्वारा विशेष अपील दायर की गई थी, जो विशेष अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 388/2024 थी। विशेष अपील का निस्तारण रिट न्यायालय के इस अनुरोध के साथ किया गया कि यदि संभव हो तो प्रकरण की सुनवाई अगले दिन की जाए, यदि संभव न हो तो यथाशीघ्र, एक सप्ताह के भीतर, ताकि अपीलकर्ताओं द्वारा दायर किए गए अभियोग आवेदन और अन्य आवेदनों का निस्तारण किया जा सके।

8. उपरोक्त दोनों आदेशों के विरुद्ध माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 44243/2024 प्रस्तुत की गई थी, जिसका निस्तारण 14/10/2024 को इस न्यायालय को निर्देश देते हुए किया गया था कि वह पक्षकार बनाने के लिए आवेदन और दिनांक 23/01/2024 के अंतरिम आदेश में परिवर्तन/त्याग/संशोधन के लिए लंबित अन्य आवेदनों पर विचार करे और उसी शर्तों पर अंतरिम आदेशों को जारी रखने के लिए उचित निर्णय ले।

9. उपरोक्त के अलावा 2017 बैच के 7 आवेदकों द्वारा रिट ए संख्या 4808/2023 के तहत एक रिट याचिका भी दायर की गई है, जिसमें निम्नलिखित प्रार्थना की गई है:-

“(ए) विपक्षी संख्या 1 से 4 को दिनांक 10/11/2023 के प्रस्ताव के अनुसार अर्हक सेवा में छूट प्रदान करने का निर्देश देने वाला परमादेश।

(बी) विपक्षी संख्या 1 से 4 को निर्देश दिया जाता है कि वे याचिकाकर्तागण को 01/01/2024 से तहसीलदार के पद पर पदोन्नत करें और उन्हें तहसीलदार के रूप में व्यापार करें।”

10. रिट ए संख्या 4808/2024 के याचिकाकर्तागण ने रिट ए संख्या 9913/2023 में पक्षकार बनने के लिए एक आवेदन भी दायर किया और अंतरिम आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन पर जोर दिया। इस न्यायालय ने 02/08/2024 को दर्ज किया है कि आवेदक के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उन्होंने स्वयं रिट "ए" संख्या

4808/2024 दायर की है जो पहले से ही वर्तमान याचिका से जुड़ी है, और यह भी कहा गया है कि आवेदकों द्वारा न केवल आवेदन में बल्कि संबंधित प्रकरण में भी सभी संभावित दलीलें पहले ही दी जा चुकी हैं। इसलिए, उन्हें रिट ए संख्या 4808/2024 के याचिकाकर्तागण और रिट ए संख्या 9913/2023 में हस्तक्षेपकर्ताओं के रूप में विस्तार से सुना गया है और दोनों रिटों पर वर्तमान आदेश के माध्यम से अंतिम रूप से निर्णय लिया जा रहा है।

11. श्री जयदीप नारायण माथुर, वरिष्ठ अधिवक्ता और श्री अविनाश सिंह विशेन की सहायता से रिट ए संख्या 9913/2023 और साथ ही रिट ए संख्या 4808/2024 में दायर हलफनामों के समर्थन में सुना गया है। दलीलों का मुख्य जोर इस बात पर था कि प्रत्यर्थीगण को तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए, जिसमें सबसे पहले प्रत्यर्थीगण के दिनांक 10/11/2023 के प्रस्ताव के अनुसार पात्रता शर्तों में छूट प्रदान की जाए, जिसमें याचिकाकर्तागण के नाम भी शामिल थे और आगे तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए उनके नाम पर विचार करने के लिए आगे बढ़ा, इस तथ्य पर विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता पात्र हैं क्योंकि उन्होंने नियमों के तहत निर्धारित पात्रता मानदंड पूरे कर लिए हैं। यह दृढ़ता से प्रार्थना की गई कि प्रत्यर्थीगण को पदोन्नति के साथ आगे बढ़ने से रोकने वाले अंतरिम आदेश को रद्द किया जाए।

12. यह भी तर्क दिया गया कि उत्तर प्रदेश अधीनस्थ राजस्व (तहसीलदार) सेवा नियमावली, 1966 के नियम 6 के अनुसार तहसीलदार के पद पर पदोन्नति हेतु पात्रता में ऐसे कर्मचारी शामिल होंगे, जिन्होंने भर्ती के वर्ष की 1 जुलाई को मूल पद पर कम से कम 5 वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो, किन्तु यदि पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी उपलब्ध न हों तो ऐसे अभ्यर्थियों पर विचार किया जा सकता है, जिनकी नियुक्ति स्थायी हो चुकी है तथा जिन्होंने 4 वर्ष की सेवा पूरी कर ली है।

13. प्रत्यर्थीगण ने तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश राज्य में तहसीलदारों की भारी कमी है, कुल स्वीकृत पदों 766 के सापेक्ष केवल 386 तहसीलदार ही कार्यरत हैं, तथा 380 पद रिक्त हैं, क्योंकि फीडिंग कैडर में न्यूनतम 4 वर्ष की अर्हक सेवा वाले अभ्यर्थी उपलब्ध नहीं हैं।

14. उपर्युक्त कठिनाई के समाधान हेतु, प्रत्यर्थीगण ने 2013 में यथासंशोधित उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक पदोन्नति अर्हक सेवा में छूट नियमावली, 2006 (जिसे आगे छूट नियम कहा जाएगा) के प्रावधानों का उपयोग करते हुए अर्हक सेवा अवधि में छूट देने का प्रयास किया। नियम 2 के अनुसार, उक्त नियमावली राज्यपाल द्वारा बनाए गए किसी अन्य सेवा नियम में निहित किसी भी बात के होते हुए भी प्रभावी होगी, जबकि नियम 4 में न्यूनतम सेवा अवधि में 50% तक छूट का प्रावधान है, जो संबंधित प्रशासनिक विभाग द्वारा कार्मिक विभाग के परामर्श से उक्त निम्न पद या पदों के लिए निर्धारित परिवीक्षा अवधि को छोड़कर किया जा सकता है।

15. नियम 4 को वर्ष 2013 में संशोधित किया गया तथा एक परन्तुक जोड़ा गया, जिसमें यह प्रावधान किया गया कि यदि विशेष परिस्थितियों में प्रशासनिक विभाग को यह पता चले कि पदोन्नति के लिए निम्न पद या पदों पर निर्धारित न्यूनतम सेवा अवधि में 50% से अधिक छूट प्रदान करने का औचित्य है, तो ऐसी स्थिति में प्रशासनिक विभाग द्वारा कार्मिक विभाग के माध्यम से मुख्य सचिव, कार्मिक विभाग के प्रमुख सचिव तथा विचाराधीन प्रशासनिक विभाग में सरकार के प्रमुख सचिव की समिति के समक्ष अनुमोदन के लिए एक उचित प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाएगा।

16. याचिकाकर्तागण की ओर से यह तर्क दिया गया है कि उन्होंने 3 वर्ष से अधिक की सेवा पूरी कर ली है और अब यदि उनके पक्ष में उपयुक्त छूट प्रदान की जाती है, तो वे तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के पात्र होंगे। यह भी प्रस्तुत किया गया कि राज्य सरकार ने भी राजस्व मंडल द्वारा भेजे गए प्रस्ताव पर दिनांक 14/08/2023 के आदेश द्वारा छूट प्रदान करते हुए पैरा 4 में यह प्रावधान किया था कि राजस्व मंडल यह सुनिश्चित करे कि किसी भी कनिष्ठ व्यक्ति को किसी वरिष्ठ व्यक्ति के दावे की अनदेखी करते हुए छूट न दी जाए और यह भी सुनिश्चित किया जाए कि वरिष्ठता सूची में कोई भी वरिष्ठ व्यक्ति केवल इसी कारण पदोन्नति से वंचित न रहे।

17. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि राज्य सरकार तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए सभी योग्य उम्मीदवारों पर विचार करने के लिए तैयार और इच्छुक है, क्योंकि बड़ी संख्या में रिक्तियाँ मौजूद हैं और तहसीलदार के पद को भरने की तत्काल आवश्यकता है, यह देखते हुए कि प्रत्येक तहसील में कम से कम एक तहसीलदार होना आवश्यक है और यदि पदोन्नति शीघ्र नहीं की जाती है तो राजस्व का काम अत्यधिक प्रभावित होगा। इसलिए, प्रस्तुत किया गया कि अंतरिम आदेश को निरस्त किया जाए और प्रत्यर्थी को पदोन्नति करने की अनुमति दी जाए। 24/02/2024 को दायर प्रति-शपथपत्र में कहा गया था कि केवल इसलिए कि याचिकाकर्तागण ने 3 वर्ष की अर्हक सेवा पूरी नहीं की है, उनके प्रकरण पर पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया जा सकता।

18. विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने इस न्यायालय को सूचित किया है और हमारे समक्ष 17.10.2024 का एक अन्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया है तथा अन्य अधिवक्तागण को उसकी प्रतियाँ भी उपलब्ध कराई हैं, जिसे राजस्व बोर्ड ने नायब तहसीलदार के संवर्ग से तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के संबंध में राज्य सरकार को भेजा है। इसमें कहा गया है कि नियम 6 के अनुसार या तो किसी व्यक्ति को नायब तहसीलदार के पद पर पांच वर्ष का अनुभव होना चाहिए या उक्त पद पर चार वर्ष तक कार्य किया होना चाहिए और यदि ऐसे व्यक्ति पदोन्नति के लिए उपलब्ध नहीं हैं तो पात्रता शर्त की आवश्यकता में ढील दी जा सकती है ताकि पर्याप्त संख्या में व्यक्तियों को तहसीलदार के पद पर पदोन्नत किया जा सके। उन्होंने 2013 में संशोधित छूट नियमों के प्रावधानों पर भी ध्यान दिलाया है जिसमें यह प्रावधान है कि प्रशासनिक विभाग द्वारा 50 प्रतिशत पात्रता में ढील दी जा सकती है और यदि 50 प्रतिशत से अधिक पात्रता सेवा की शर्त में ढील देने की आवश्यकता है तो प्रकरण पर मुख्य सचिव की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा विचार किया जाना है। उपरोक्त परिस्थितियों में

उन्होंने न्यूनतम आवश्यक सेवा अवधि की पात्रता शर्त को शिथिल करने का प्रस्ताव दिया है ताकि 31.12.2020 तक नायब तहसीलदार के पद पर शामिल होने वाले व्यक्तियों को शामिल किया जा सके और तदनुसार चयन वर्ष 2024-25 की पहली तारीख को नायब तहसीलदार के पद पर कार्यरत 23 व्यक्ति जिन्होंने तीन वर्ष और छह महीने पूरे कर लिए हैं उन्हें अधिकतम 50 प्रतिशत की छूट दी जाएगी और 31.12.2020 से 1.7.2021 के बीच शामिल होने वाले व्यक्ति जिनकी संख्या 13 है और चयन वर्ष 2024-25 की पहली तारीख को तीन साल पूरे कर लिए हैं उन्हें भी 50 प्रतिशत की छूट दी जाएगी और तदनुसार उक्त प्रस्ताव में 36 व्यक्तियों के नाम शामिल हैं। यह कहा गया है कि यदि प्रस्ताव सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो अब सभी याचिकाकर्तागण को तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए विधिवत विचार किया जाएगा। यह प्रस्तुत किया गया कि रिट ए संख्या 9193/2023 के याचिकाकर्तागण की शिकायत का निवारण हो गया है और रिट याचिका को खारिज करने के अंतरिम आदेश को रद्द करने की प्रार्थना की गई।

19. हमने प्रतिद्वन्द्वी तर्कों को सुना है तथा अभिलेख का भी अवलोकन किया है।

20. वर्तमान प्रकरण में विवाद की जड़ें उस तरीके में हैं, जिसमें राज्य सरकार ने 30प्र0 लोक सेवा आयोग द्वारा चयन सूची प्रस्तुत करने के बाद 2016 बैच के चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी किए थे। निस्संदेह, राज्य सरकार को उम्मीदवारों के आपराधिक इतिहास का सत्यापन करना है, लेकिन इस तरह के सत्यापन को समयबद्ध तरीके से किया जाना चाहिए और समाप्त किया जाना चाहिए, और किसी भी प्रकरण में उक्त अभ्यास के पूरा होने पर नियुक्ति पत्र जहां तक संभव हो या तो एक साथ या मेरिट सूची के अनुसार जारी किए जाने चाहिए। दूसरी ओर, प्रत्यर्थागण ने नियुक्ति पत्र बेतरतीब और कंपित तरीके से जारी किए हैं और उनके अनुसार जब विशेष उम्मीदवार का सत्यापन पूरा हो गया, तो नियुक्ति पत्र जारी किए गए। यह अभ्यास पूरी तरह से मेरिट सूची में उम्मीदवार के स्थान की अनदेखी करके किया गया था। इतना ही नहीं, इस अभ्यास में डेढ़ साल से अधिक समय लगा। इसके अलावा, समस्या इस तथ्य से और भी जटिल हो गई कि कुछ लोग जो विभिन्न सरकारी या अर्ध-सरकारी विभागों या यहां तक कि निजी क्षेत्र में कार्यरत थे, उन्हें कार्यभार ग्रहण करने से पहले ही त्यागपत्र देना पड़ा और कार्यमुक्ति की मांग करनी पड़ी, जिसके लिए और अधिक समय लग गया और इसलिए कार्यभार ग्रहण करने में भी देरी हुई।

21. इसी बीच, 2017 बैच की भर्ती पूरी हो गई और चयनित अभ्यर्थी, याचिकाकर्तागण सहित, 2016 बैच के कुछ अभ्यर्थियों से पहले सेवा में शामिल हो गए। तहसीलदार संवर्ग में रिक्तियों की संख्या को देखते हुए, और यह भी देखते हुए कि उक्त पद पूरी तरह से नायब तहसीलदार और राजस्व निरीक्षकों के संवर्ग से पदोन्नति द्वारा भरा जाना था, और यह भी कि उच्च न्यायालय ने राज्य को रिक्तियों को जल्द से जल्द भरने का निर्देश दिया था और यह भी देखते हुए कि उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता के प्रावधानों के तहत विभिन्न मुद्दों पर निर्णय लेने के लिए तहसील में तहसीलदार एक महत्वपूर्ण पद है, प्रत्यर्थागण ने सभी नियुक्ति पत्र जारी होने और नियुक्ति प्रक्रिया पूरी होने से पहले ही वरिष्ठता सूची तैयार करने की प्रक्रिया शुरू कर दी थी।

22. उक्त पदोन्नतियां (चयन वर्ष 23-24) करने में मुख्य बाधा यह थी कि पर्याप्त संख्या में ऐसे व्यक्ति उपलब्ध नहीं थे, जिनके पास उत्तर प्रदेश अधीनस्थ राजस्व (तहसीलदार) सेवा नियमावली, 1966 के नियम 6 के तहत अपेक्षित पात्रता हो। उन्होंने 2016 बैच की नियुक्ति की पूरी प्रक्रिया पूरी होने से पहले ही वरिष्ठता सूची को अंतिम रूप देने का काम शुरू कर दिया और नायब तहसीलदार के पद पर कार्यरत 141 व्यक्तियों पर विचार किया, जो 31/12/2019 तक सेवा में शामिल हो गए थे और 14/08/2023 के सरकारी आदेश के तहत उचित छूट दी गई, जिसके बाद 16/08/2023 को पदोन्नति का आदेश पारित किया गया। चूंकि याचिकाकर्तागण ने 31/12/2019 तक सेवा में शामिल नहीं हुए थे, इसलिए उन्हें उक्त पदोन्नति के लिए विचार नहीं किया गया, जबकि उ0प्र0 लोक सेवा आयोग द्वारा तैयार की गई चयन सूची में याचिकाकर्तागण से कनिष्ठ 50 से अधिक व्यक्तियों पर विचार किया गया और उन्हें तहसीलदार के पद पर पदोन्नत किया गया।

23. तहसीलदार के पद पर पदोन्नति उत्तर प्रदेश सरकारी सेवक पदोन्नति द्वारा भर्ती मानदंड नियम, 1998 के अनुसार की जानी है जो अयोग्य को अस्वीकार करने के अधीन वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति का प्रावधान करती है। जिस तरह से प्रत्यर्थागण ने पदोन्नति की है वह स्पष्ट रूप से संदिग्ध है। जब राज्य को उ0प्र0 लोक सेवा आयोग से उम्मीदवारों की एक चयनित सूची प्राप्त हुई थी, तो हमें कोई कारण नहीं दिखता कि सितंबर, 2019 और मार्च 2021 के बीच नियुक्ति पत्र मेरिट सूची का पालन न करते हुए क्रमबद्ध तरीके से क्यों जारी किए गए, जिससे प्रत्यर्थागण की मनमानी और मनमर्जी के लिए यह खुला छोड़ दिया गया कि वे कुछ व्यक्तियों को शेष उम्मीदवारों की तुलना में पहले नियुक्ति पत्र जारी कर दें जो मेरिट सूची में ऊपर हो सकते हैं। इस मनमानी कार्रवाई के कारण ही मेरिट सूची में नीचे के व्यक्ति बहुत पहले सेवा में शामिल हो पाए और सेवा की अवधि के आधार पर अगले उच्च पद पर पदोन्नति का दावा कर पाए।

24. इस स्तर पर, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उत्तर प्रदेश अधीनस्थ राजस्व (तहसीलदार) सेवा नियमावली, 1966 का नियम 6 तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए पात्रता की शर्तें प्रदान करता है, जो विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा विचार किए जाने वाले संभावित उम्मीदवारों की सूची तैयार करने के लिए प्रासंगिक होगा। मानदंड नियम 1994 विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा पदोन्नति के लिए विचार करने के तरीके के बारे में प्रावधान करता है, जो कि वरिष्ठता है, अयोग्य को अस्वीकार करने के अधीन है। इसलिए, विभागीय पदोन्नति समिति के समक्ष प्रत्येक उम्मीदवार की उपयुक्तता पर अयोग्य को अस्वीकार करने के अधीन वरिष्ठता के आधार पर विचार किया जाना चाहिए, जिसका अर्थ है कि वरिष्ठता सूची में वरिष्ठ व्यक्ति को वरिष्ठता सूची में नीचे वाले व्यक्ति से पहले विचार करने का अधिकार होगा।

25. वरिष्ठता नियमों के नियम 9 के अनुसार, वरिष्ठता सूची "किसी सेवा में नियुक्तियाँ होने के तुरंत बाद" तैयार की जानी चाहिए, जबकि वर्तमान प्रकरण में 2016 बैच के सभी चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी करने से पहले, और सभी चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी करके भर्ती प्रक्रिया पूरी होने से पहले, प्रत्यर्थागण ने वरिष्ठता सूची तैयार करने का कार्य शुरू कर दिया। उक्त कार्रवाई के परिणामस्वरूप कई ऐसे उम्मीदवार सूची से बाहर हो गए जिन्हें उस समय तक नियुक्ति पत्र जारी नहीं किए गए थे और उन्होंने

सेवा ग्रहण नहीं की थी, जबकि वे उन व्यक्तियों से बहुत वरिष्ठ थे जिन्हें नियुक्ति पत्र जारी किए गए थे और जो सेवा ग्रहण कर चुके थे। यद्यपि नियुक्ति पत्र जारी करने से संबंधित प्रकरण का यह पहलू किसी भी नियम में नियंत्रित या प्रदान नहीं किया गया है, लेकिन विवेक और औचित्य के आधार पर प्रत्यर्थी को योग्यता के क्रम में क्रमिक रूप से नियुक्ति पत्र जारी करने चाहिए थे।

26. सार्वजनिक रोजगार के प्रकरण में राज्य चुनिंदा नीति का सहारा नहीं ले सकता है, बल्कि उसे नियमों और समानता के सुस्थापित सिद्धांतों के अनुसार कार्य करना होगा। हमारी संवैधानिक योजना सरकार और उसके तंत्रों द्वारा उस संबंध में स्थापित प्रक्रिया के आधार पर रोजगार की परिकल्पना करती है। अवसर की समानता इसकी पहचान है, और संविधान ने यह सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक कार्रवाई का भी प्रावधान किया है कि असमान लोगों के साथ समान व्यवहार न किया जाए। इस प्रकार, कोई भी सार्वजनिक रोजगार संवैधानिक योजना के अनुसार होना चाहिए। अपने-अपने वर्ग में सर्वश्रेष्ठ और मेधावी उम्मीदवारों को सुरक्षित करने के लिए निष्पक्ष चयन की प्रक्रिया अपनाई जाती है, जिसकी सूचना भर्ती एजेंसी या लोक सेवा आयोग द्वारा एक चयन सूची के माध्यम से राज्य सरकार को दी जाती है। यदि राज्य सरकार चयन सूची के आधार पर कार्य करना चाहती है, तो उसे उक्त सूची का उसी रूप में पालन करना होगा जिस रूप में उसे अग्रेषित किया गया है और उसे उक्त सूची में परिवर्तन या संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है।

27. नियुक्ति पत्र जारी करने और चयन सूची में वरिष्ठ व्यक्तियों से पहले कनिष्ठों को कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति देने के परिणामस्वरूप, कनिष्ठ व्यक्ति पहले कार्यभार ग्रहण कर चुके थे और जब उनसे वरिष्ठ व्यक्तियों को नियुक्ति पत्र जारी किए गए, तब वे एक वर्ष से अधिक समय से सेवा में थे। प्रत्यर्थीगण की कार्रवाई के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है जहाँ कनिष्ठ व्यक्तियों की वास्तविक कार्यभार ग्रहण करने की तिथि से सेवा की अवधि चयन सूची में वरिष्ठ व्यक्तियों की तुलना में अधिक है। इस कार्रवाई के परिणामस्वरूप वरिष्ठता के नियम का उल्लंघन हुआ है जो स्पष्ट रूप से मनमाना है। मनमाने ढंग से नियुक्ति पत्र जारी करने की कार्रवाई तब और जटिल हो गई जब वरिष्ठता सूची तब तैयार की गई जब 2016 बैच के चयनित उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी करने की प्रक्रिया चल रही थी, और उम्मीदवारों को नियुक्ति पत्र जारी नहीं किए गए थे। तहसीलदार के पद पर आगे की पदोन्नति उस वरिष्ठता सूची से की गई जो तैयार की गई थी, जहाँ याचिकाकर्ता उन व्यक्तियों से बहुत वरिष्ठ हैं जिन्हें उनसे पहले कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति दी गई थी और उन्हें इस तरह के विचार से बाहर रखा गया था। वास्तव में, चयन सूची के अनुसार जो वरिष्ठता बनाए रखी जानी थी, वह राजस्व बोर्ड जैसे वैधानिक प्राधिकारी द्वारा सुविधा की बलिवेदी पर बलि चढ़ गई।

28. तथ्य के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि तत्पश्चात वरिष्ठता सूची तैयार की जा रही है, जिसमें 2016 बैच के नायब तहसीलदारों को 2017 बैच के नायब तहसीलदारों की तुलना में वरिष्ठता सूची में उच्च स्थान दिया गया है, तथा तदनुसार 2016 बैच के व्यक्तियों को 2017 बैच के व्यक्तियों से पहले पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार है।

29. राजस्व बोर्ड के अनुरोध पर प्रतिक्रिया देते हुए राज्य सरकार ने दिनांक 14/08/2023 के आदेश के माध्यम से निर्देश जारी किए थे कि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि वरिष्ठता की अवधारणा का पालन किया जाना चाहिए और सेवा में छूट इस तरह से प्रदान नहीं की जानी चाहिए कि वरिष्ठों को पात्रता के आधार पर विचार के क्षेत्र से बाहर रखा जाए। राज्य सरकार ने न केवल राजस्व बोर्ड द्वारा छूट प्रदान करते समय वरिष्ठता के सिद्धांतों का पालन करने का निर्देश देते हुए नीति निर्धारित की, बल्कि जब यह उनके संज्ञान में लाया गया कि उक्त नियम का उल्लंघन किया गया था और याचिकाकर्तागण और 2016 बैच के अन्य व्यक्तियों से शिकायतें प्राप्त हुईं, तो उन्होंने दिनांक 01/09/2023 के पत्र के माध्यम से राजस्व बोर्ड से जवाब मांगा, लेकिन ऐसा कोई जवाब रिकॉर्ड में उपलब्ध नहीं है।

30. विद्वान अपर महाधिवक्ता ने आयुक्त एवं सचिव, राजस्व परिषद द्वारा राज्य सरकार को लिखे गए दिनांक 17/10/2024 के पत्र की एक प्रति प्रस्तुत की है, जिसमें 31/12/2020 तक नायब तहसीलदार के पद पर कार्यभार ग्रहण करने वाले व्यक्तियों, जिनकी संख्या उनके अनुसार 23 है, और 01/07/2021 तक कार्यभार ग्रहण करने वाले 13 व्यक्तियों, जो 24-25 वर्ष की आयु के हैं और चयन वर्ष के प्रथम दिन हैं, को पदोन्नति के लिए आवश्यक न्यूनतम सेवा में छूट प्रदान करने का अनुरोध किया गया है। आगे यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उक्त प्रस्ताव के स्वीकृत होने पर याचिकाकर्तागण को तहसीलदार के पद पर पदोन्नत करने पर विधिवत विचार किया जाएगा और फलस्वरूप उनकी शिकायत का निवारण हो जाएगा। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता डॉ. लालता प्रसाद मिश्रा ने दिनांक 17/10/2024 के उक्त आदेश का अवलोकन करने के पश्चात प्रस्तुत किया कि वे इस तथ्य पर विवाद नहीं करते हैं कि यदि उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो याचिकाकर्ता को भी तहसीलदार के पद पर पदोन्नत किया जाएगा, लेकिन उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्तागण को उनके कनिष्ठों की पदोन्नति की तिथि से पदोन्नत करने के लिए प्रार्थना की गई है, जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है।

31. रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्तागण की सेवा में छूट की मांग करते हुए राज्य सरकार को दिनांक 17/10/2024 का प्रस्ताव भेजा गया है और यदि इसे स्वीकार कर लिया जाता है, और छूट प्रदान की जाती है तो इसमें याचिकाकर्तागण को 2017 बैच के उम्मीदवारों की पदोन्नति पर विचार करने से पहले पदोन्नति के लिए विचार किया जाएगा, और उस सीमा तक उनकी शिकायत का निवारण हो जाएगा। दूसरी ओर, रिट ए संख्या 4808/2024 में याचिकाकर्तागण का दावा केवल प्रत्यर्थीगण को पदोन्नति के साथ आगे बढ़ने का निर्देश देने की सीमा तक है, और उनकी शिकायत का भी निवारण हो जाएगा यदि प्रत्यर्थीगण को 17/10/2024 के प्रस्ताव के अनुसार राजस्व बोर्ड द्वारा मांगी गई छूट से संबंधित मुद्दे पर विचार करने और निर्णय लेने के लिए आगे बढ़ने और पदोन्नति के लिए पात्र उम्मीदवारों के प्रकरण पर आगे विचार करने का निर्देश दिया जाता है।

32. दोनों प्रतियोगी पक्ष, रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्ता जो 2016 बैच के हैं और रिट ए संख्या 4808/2024 के याचिकाकर्ता जो 2017 बैच के हैं, एक दूसरे से पहले पदोन्नति का दावा कर रहे हैं। रिट ए

संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्ता पिछले चयन वर्ष में नायब तहसीलदार के रूप में नियुक्त होने के कारण 2017 बैच के उम्मीदवारों की तुलना में खुद को वरिष्ठ होने का दावा कर रहे हैं, क्योंकि पदोन्नति का मानदंड वरिष्ठता है जो अयोग्य को अस्वीकार करने के अधीन है। दूसरी ओर, रिट ए संख्या 4808/2024 के याचिकाकर्तागण का दावा है कि उन्होंने रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्तागण से पहले सेवा में प्रवेश लिया है और इसलिए, सेवा की अवधि के आधार पर वे पदोन्नति के पात्र हैं और प्रत्यर्थागण को तुरंत पदोन्नतियां करने का निर्देश दिया जाना चाहिए। उन्होंने राजस्व बोर्ड के दिनांक 10/11/2023 के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए उपरोक्त निर्देश की मांग की थी, जिसमें रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्तागण को छूट और आगे पदोन्नति देने से बाहर रखा गया था, जबकि रिट ए संख्या 4808/2024 के याचिकाकर्तागण, जो 2017 बैच के हैं, को शामिल किया गया था।

33. श्री कुलदीप पति त्रिपाठी, विद्वान अतिरिक्त महाधिवक्ता ने उचित रूप से प्रस्तुत किया है कि राज्य सरकार राजस्व बोर्ड के दिनांक 17/10/2024 के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आगे बढ़ेगी, और आगे की छूट दी जाएगी, और आगे की पदोन्नति केवल उक्त प्रस्ताव के अनुसार की जाएगी, दिनांक 10/11/2023 के पिछले प्रस्ताव को अनदेखा करते हुए।

34. रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्तागण की ओर से उपस्थित डॉ. लालता प्रसाद मिश्रा ने यह सूचित किए जाने के बाद संतोष व्यक्त किया कि अब सभी याचिकाकर्तागण को पात्रता शर्तों में छूट देने पर विचार किया जाएगा और 17/10/2024 के पत्र के साथ संलग्न सूची के 2017 बैच से पहले पदोन्नति के लिए विचार किया जाएगा। तदनुसार, यह देखते हुए कि 10/11/2023 का पिछला प्रस्ताव जो रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्तागण की शिकायत का आधार था, अपनी प्रासंगिकता खो चुका है और अब राज्य सरकार के सक्रिय विचाराधीन नहीं है क्योंकि इसे 17/10/2024 के प्रस्ताव ने हटा दिया है, इसलिए, हमें उक्त प्रस्ताव की वैधता पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय लेने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उक्त प्रस्ताव मौजूद नहीं है और तदनुसार रिट ए संख्या 9913/2023 के याचिकाकर्तागण की शिकायत उस सीमा तक दूर हो गई है। तदनुसार, राज्य को राजस्व बोर्ड के दिनांक 10/11/2023 के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए कोई निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है।

35. हमने 2017 बैच के याचिकाकर्तागण द्वारा की गई प्रार्थना को भी ध्यान में रखा है, जिन्होंने केवल 23/01/2024 के अंतरिम आदेश को रद्द करने के लिए आवेदन किया था और तदनुसार, पूर्वोक्त काफी बदली हुई परिस्थितियों में, 23/01/2024 के अंतरिम आदेश को रद्द करने का प्रकरण बनाया गया ताकि प्रत्यर्थागण को छूट प्रदान की जा सके और आगे पात्रता शर्तों में छूट प्रदान करने के लिए 17/10/2024 के प्रस्ताव पर विचार करने के लिए आगे बढ़ सकें और तहसीलदार के पद पर शीघ्रता से पदोन्नति पर विचार कर सकें। राज्य सरकार द्वारा दायर जवाबी हलफनामे में कहा गया है कि एक नई और व्यवस्थित सूची तैयार की जा रही है और फिर आपत्तियां प्राप्त होने पर अनंतिम वरिष्ठता सूची प्रसारित की गई थी। उक्त हलफनामे के दाखिल होने तक, ऐसा लगता है कि वरिष्ठता सूची को अंतिम रूप नहीं दिया गया था। विधि के स्थापित प्रस्ताव के अनुसार

प्रत्यर्थी केवल अंतिम वरिष्ठता सूची के आधार पर पदोन्नति के लिए आगे बढ़ेगा, न कि एक अनंतिम वरिष्ठता सूची के आधार पर।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य बनाम विकास कुमार सिंह (2022) 1 एससीसी 347** के प्रकरण में यह माना है कि न्यूनतम सेवा अवधि में छूट देना सक्षम प्राधिकारी के विवेक पर निर्भर है और इसे अधिकारों के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। इसी निर्णय के प्रासंगिक अनुच्छेद इस प्रकार उद्धृत हैं: अंतर्गत:-

“7. सबसे पहले, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने सक्षम प्राधिकारी को योग्यता सेवा में 2006 के छूट नियमों के नियम 4 के अनुसार छूट देने का आदेश देते हुए परमादेश रिट जारी की और परिणामस्वरूप 18-3-2019 और 10-5-2019 की पात्रता सूचियों को रद्द कर दिया और अलग रखा। सबसे पहले, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 1990 के नियमों के नियम 5(iii) के अनुसार, पात्र होने की शर्तों में से एक यह है कि अधीक्षण अभियंता ने 25 वर्ष की सेवा पूरी कर ली हो (अधीक्षण अभियंता के रूप में कम से कम तीन वर्ष की सेवा सहित)। यह एक स्वीकृत स्थिति है कि मूल रिट याचिकाकर्ता पात्रता मानदंडों को पूरा नहीं करते थे क्योंकि उनके पास 25 वर्ष की सेवा पूरी करने की योग्यता सेवा नहीं थी। इस प्रकार, विभाग द्वारा पात्रता सूची 1990 के नियमों के नियम 5(iii) और 8(iii) के अनुसार पूरी तरह से तैयार की गई थी। मुख्य अभियंता के पद पर पदोन्नति के लिए अधीक्षण अभियंता की पात्रता सूची को इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि वे 1990 के नियमों के नियम 5(iii) के अनुसार पात्रता मानदंड पूरा नहीं करते थे। इसलिए, उच्च न्यायालय को उक्त पात्रता सूचियों को रद्द नहीं करना चाहिए था, जो कि पूरी तरह से 1990 के नियमों के अनुसार तैयार की गई थीं।

7.1. इसके बाद विद्वान एकल न्यायाधीश ने 18-3-2019 और 10-5-2019 की पात्रता सूचियों को रद्द और अलग करते हुए सक्षम प्राधिकारी को अर्हक सेवा में छूट देने का आदेश देने या निर्देश देने के लिए परमादेश रिट जारी की है, जो कि 2006 के छूट नियमों के नियम 4 के तहत स्वीकार्य थी। 2006 के छूट नियमों के नियम 4 में प्रयुक्त शब्द “हो सकता है” है। इसलिए, छूट सक्षम प्राधिकारी के विवेक पर हो सकती है। छूट का अधिकार के रूप में अनुरोध नहीं किया जा सकता है। यदि छूट न देने का सचेत निर्णय केवल इसलिए लिया जाता है क्योंकि नियम छूट की अनुमति देता है, तो सक्षम प्राधिकारी को अर्हक सेवा में छूट देने का निर्देश देने के लिए परमादेश रिट जारी नहीं की जा सकती है। इसलिए, उच्च न्यायालय ने सक्षम प्राधिकारी को अर्हक सेवा में छूट देने का आदेश देने के लिए परमादेश रिट जारी करने में गंभीर त्रुटि की है। परिणामस्वरूप, उच्च न्यायालय ने दिनांक 18-3-2019 और 10-5-2019 की पात्रता सूचियों को रद्द करने और रद्द करने में भी त्रुटि की है, जो कि 1990 और 2006 के नियमों के पूर्णतः अनुरूप तैयार की गई थीं। उच्च न्यायालय की विद्वान एकल न्यायाधीश और खंडपीठ द्वारा पारित विवादित निर्णय और आदेश विधिन टिकने योग्य नहीं हैं।

8. उपरोक्त के मद्देनजर और ऊपर बताए गए कारणों से, वर्तमान अपील सफल होती है। स्टेट ऑफ 30प्र0 बनाम विकाश कुमार सिंह [स्टेट ऑफ 30प्र0 बनाम विकाश कुमार सिंह, 2020 एससीसी ऑनलाइन ऑल 1600] में डिवीजन बेंच द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश और दिनांक 11-12-2019 को विकाश कुमार सिंह बनाम स्टेट ऑफ 30प्र0 [विकाश कुमार सिंह बनाम स्टेट ऑफ 30प्र0, 2019 एससीसी ऑनलाइन ऑल 6930] में विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को एतद्वारा रद्द और अपास्त किया जाता है। परिणामस्वरूप, मूल रिट याचिकाकर्तागण द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 14962 (एस/एस) 2019 खारिज की जाती है। तदनुसार वर्तमान अपील स्वीकार की जाती है, हालांकि, लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं होगा। लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का भी निस्तारण किया जाता है।

37. यह देखते हुए कि रिट ए संख्या 4808/2024 के याचिकाकर्तागण द्वारा की गई प्रार्थना दिनांक 10/11/2023 के प्रस्ताव के अनुसार योग्यता सेवा में छूट देने के लिए है और उक्त प्रस्ताव को 17/10/2024 के नए प्रस्ताव द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है, याचिकाकर्तागण द्वारा मांगे गए ऐसे कोई निर्देश पारित नहीं किए जा सकते क्योंकि उक्त प्रस्ताव को प्रत्यर्थीगण ने स्वयं ही त्याग दिया है। दूसरी प्रार्थना याचिकाकर्तागण को 01/01/2024 से तहसीलदार के रूप में पदोन्नत करने और उन्हें तहसीलदार के पद पर मानने के निर्देश के लिए है, इसे भी प्रदान नहीं किया जा सकता क्योंकि यह प्रदर्शित नहीं किया जा सका कि याचिकाकर्तागण से कनिष्ठ किसी को उस तिथि से पदोन्नत किया गया है, याचिकाकर्तागण में 01/01/2024 से पदोन्नत होने का कोई अन्य अधिकार निहित है। तदनुसार उक्त प्रार्थना अस्वीकार की जाती है।

38. यह देखते हुए कि यदि 17/10/2023 का नया प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाता है तो दोनों रिट याचिकाओं के सभी याचिकाकर्तागण को तहसीलदार के पद पर पदोन्नति के लिए विधिवत रूप से विचार किया जाएगा और इसलिए यह न्यायालय इस विचार पर है कि तहसीलदार के कैडर में रिक्तियों की संख्या को देखते हुए और यह देखते हुए कि जो व्यक्ति विधिवत रूप से योग्य और पात्र थे, वे उपलब्ध नहीं हैं और इसलिए प्रत्यर्थीगण द्वारा पात्रता मानदंड में ढील देने का निर्णय लिया गया है और इस संबंध में प्रस्ताव पहले ही राज्य सरकार को भेज दिया गया है, और तदनुसार हम राज्य सरकार को 17/10/2024 के प्रस्ताव पर शीघ्रता से विचार करने और निर्णय लेने का निर्देश देते हैं, साथ ही तहसीलदार के पद पर भी शीघ्रता से विचार करने और पदोन्नति करने का निर्देश देते हैं।

39. इस बिंदु पर, **भारत संघ बनाम मनप्रीत सिंह, (2022) 6 एससीसी 105** के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा, जिसमें यह माना गया है कि कर्मचारी को केवल पदोन्नति के लिए विचार किए जाने का अधिकार है, लेकिन यदि शर्तें पूरी होती हैं, तो उसे पदोन्नति का अधिकार नहीं है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश इस प्रकार उद्धृत है :-

“18. मात्र रिक्ति का अस्तित्व ही किसी कर्मचारी के पक्ष में पूर्वव्यापी पदोन्नति का अधिकार नहीं बनाएगा, जब पदोन्नत पद में रिक्तियां नियमों के तहत विशेष रूप से निर्धारित की गई हों, जो चयन प्रक्रिया के माध्यम

से मंजूरी को भी अनिवार्य बनाती हैं। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जब हम पदोन्नति के प्रकरण से निपटते हैं, तो नियमों के दो अलग-अलग सेटों के बीच कभी समानता नहीं हो सकती है। दूसरे शब्दों में, पदोन्नति और उसके बाद के लाभों और वरिष्ठता का अधिकार केवल उक्त पदोन्नति को नियंत्रित करने वाले नियमों के संबंध में उत्पन्न होगा, न कि नियमों के एक अलग सेट के संबंध में जो आगे पदोन्नति की सुविधा देने वाले पदोन्नत पद पर लागू हो सकते हैं जो नियमों के एक अलग सेट द्वारा शासित हैं।

19. वर्तमान प्रकरण में, नियमों के अंतर्गत कार्य करने वाले प्राधिकारी ने 17-4-2012 को डीपीसी की मंजूरी के बाद 1-7-2011 से पदोन्नति प्रदान की है, जब वास्तविक रिक्तियां उत्पन्न हुई थीं, जो किसी भी प्रकरण में सिविल अपील संख्या 518/2017 में प्रत्यर्थी को दिया गया लाभ है। हमारे विचार में, वास्तविक रिक्तियां उत्पन्न होने की तारीख से पूर्वव्यापी पदोन्नति प्रदान करने के प्राधिकारी द्वारा शक्ति का यह प्रयोग वस्तुनिष्ठ विचारों और एक वैध वर्गीकरण पर आधारित है।

20. इस न्यायालय ने **यूनियन ऑफ इंडिया बनाम के.के. वडेरा [यूनियन ऑफ इंडिया बनाम के.के. वडेरा, 1989 पूरक (2) एस.सी.सी. 625: 1990 एस.सी.सी. (एल एंड एस) 127]** में स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि किसी पद पर पदोन्नति केवल पदोन्नति की तारीख से दी जानी चाहिए, न कि उस तारीख से जिस दिन रिक्ति उत्पन्न हुई है, और यह देखा है कि: (एस.सी.सी. पृष्ठ 627, पैरा 5)

“5. ... हमें किसी ऐसे विधि या नियम की जानकारी नहीं है जिसके तहत किसी भी कारण से किसी पद के रिक्त होने के बाद पदोन्नति, पदोन्नति पद के सृजन की तिथि से प्रभावी हो, उस पद पर पदोन्नति पदोन्नति प्रदान किए जाने की तिथि से होनी चाहिए न कि उस तिथि से जिस दिन ऐसा पद रिक्त होता है। इसी प्रकार जब अतिरिक्त पद सृजित किए जाते हैं, तो उन पदों पर पदोन्नति केवल मूल्यांकन बोर्ड की बैठक और पदोन्नति प्रदान करने की सिफारिशें करने के बाद ही प्रदान की जा सकती है। इसके विपरीत, यदि पदोन्नतियों को अतिरिक्त पदों के सृजन की तिथि से प्रभावी होने का निर्देश दिया जाता है, तो इसका प्रभाव यह होगा कि मूल्यांकन बोर्ड की बैठक और पदोन्नति के लिए उम्मीदवारों की उपयुक्तता का आकलन करने से पहले ही पदोन्नतियां दे दी जाएंगी। इन परिस्थितियों में, न्यायाधिकरण के फैसले को कायम रखना मुश्किल है।”

21. इसी तरह, **गंगा विशन गुजराती बनाम राजस्थान राज्य [गंगा विशन गुजराती बनाम राजस्थान राज्य, (2019) 16 एससीसी 28: (2021) 1 एससीसी (एल एंड एस) 403]** में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि: (एससीसी पीपी. 52-53, पैरा 45)

45. इस न्यायालय के पूर्ववर्ती सिद्धांतों की एक सुसंगत पंक्ति इस सिद्धांत का पालन करती है कि किसी कर्मचारी को उस तिथि से पूर्वव्यापी वरिष्ठता प्रदान नहीं की जा सकती जब वह किसी संवर्ग में नहीं था। समान ग्रेड के सदस्यों के बीच वरिष्ठता की गणना उस ग्रेड में प्रारंभिक प्रवेश की तिथि से की जानी चाहिए। यह सिद्धांत **डायरेक्ट रिक्रूट क्लास II इंजीनियरिंग ऑफिसर्स एसोसिएशन बनाम महाराष्ट्र राज्य [डायरेक्ट रिक्रूट**

क्लास II इंजीनियरिंग ऑफिसर्स एसोसिएशन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1990) 2 एससीसी 715: 1990 एससीसी (एल एंड एस) 339] में इस न्यायालय की संविधान पीठ के निर्णय से उभरता है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय ने बिहार राज्य बनाम अखौरी सचिन्द्र नाथ [बिहार राज्य बनाम अखौरी सचिन्द्र नाथ, 1991 प्रक (1) एससीसी 334: 1991 एससीसी (एल एंड एस) 1070] और उत्तरांचल राज्य बनाम दिनेश कुमार शर्मा [उत्तरांचल राज्य बनाम दिनेश कुमार शर्मा, (2007) 1 एससीसी 683: (2007) 1 एससीसी (एल एंड एस) 594] में दोहराया था। पवन प्रताप सिंह बनाम रीवन सिंह [पवन प्रताप सिंह बनाम रीवन सिंह, (2011) 3 एससीसी 267: (2011) 1 एससीसी (एल एंड एस) 481] में, इस न्यायालय ने इस विषय पर पूर्व उदाहरणों पर फिर से विचार किया और कहा: (पवन प्रताप सिंह प्रकरण [लिफ्ट इरिगेशन कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम प्रवत किरण मोहंती, (1991) 2 एससीसी 295: 1991 एससीसी (एल एंड एस) 472], एससीसी पृ. 281-82, पैरा 45)

45. ... (i) चयन की प्रभावी तिथि को उन सेवा नियमों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिनके अंतर्गत नियुक्ति की जाती है। इसका तात्पर्य उस तिथि से हो सकता है जिस दिन विज्ञापन जारी होने या चयन सूची तैयार होने के साथ चयन प्रक्रिया शुरू होती है, जैसा भी प्रकरण हो।

(ii) किसी विशेष सेवा में पारस्परिक वरिष्ठता का निर्धारण सेवा नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए। किसी विशेष सेवा में प्रवेश की तिथि या मौलिक नियुक्ति की तिथि, एक अधिकारी या दूसरे के बीच या अधिकारियों के एक समूह और विभिन्न स्रोतों से भर्ती किए गए दूसरे समूह के बीच पारस्परिक वरिष्ठता निर्धारित करने का सबसे सुरक्षित मानदंड है। वैधानिक नियमों, कार्यकारी निर्देशों या अन्यथा में कोई भी विचलन संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए।

(iii) सामान्यतः काल्पनिक वरिष्ठता पिछली तिथि से प्रदान नहीं की जा सकती है और यदि ऐसा किया जाता है तो यह वस्तुनिष्ठ विचारों और वैध वर्गीकरण पर आधारित होना चाहिए तथा वैधानिक नियमों के अनुरूप होना चाहिए।

(iv) वरिष्ठता की गणना रिक्ति की तिथि से नहीं की जा सकती और इसे पूर्वव्यापी आधार पर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि संबंधित सेवा नियमों में ऐसा स्पष्ट रूप से प्रावधान न किया गया हो। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब कोई कर्मचारी उस संवर्ग में रहा ही नहीं हो, तो उसे पूर्वव्यापी आधार पर वरिष्ठता नहीं दी जा सकती और ऐसा करने से उन कर्मचारियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है जिनकी नियुक्ति इस बीच वैध रूप से हुई है।' इस दृष्टिकोण की पुष्टि इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ ने पी. सुधाकर राव बनाम यू. गोविंदा राव [पी. सुधाकर राव बनाम यू. गोविंदा राव, (2013) 8 एससीसी 693: (2014) 1 एससीसी (एल एंड एस) 690] में की है।

40. रिट ए संख्या 9913/2023 में याचिकाकर्तागण को 16/08/2023 से पदोन्नत करने के लिए की गई प्रार्थना के संबंध में, जो कि वह तारीख है जिस दिन से 2016 बैच के याचिकाकर्ता से कनिष्ठों पर विचार किया गया

और उन्हें पदोन्नत किया गया, हम प्रत्यर्थागण को निर्देश देते हैं कि वे तहसीलदार के पद पर उनकी पदोन्नति पर विचार करते समय इस संबंध में याचिकाकर्तागण की शिकायत पर विचार करें और विधि के अनुसार उचित आदेश पारित करें।

41. इस न्यायालय का दिनांक 23/01/2024 का अंतरिम आदेश एतद्वारा निरस्त किया जाता है, और रिट ए संख्या 9913/2023 को तदनुसार ऊपर पारित निर्देशों के साथ **निस्तारित** किया जाता है, जबकि रिट ए संख्या 4808/2024 को **खारिज** किया जाता है।

42. लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 465

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 31.01.2025

समक्ष

माननीय मुख्य न्यायाधीश अरुण भंसाली

माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार

रिट-ए संख्या- 11282 वर्ष 2018

रमेश चंद्र बारी एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

अपर्णा बर्मन, बीरेंद्र कुमार मिश्रा, दीवान सैफुल्लाह खान

प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता:

दिलीप कुमार पांडेय, रजनीश कुमार राय, विवेक कुमार राय

क. श्रम विधि - नियमित नियुक्ति - एक बार जब रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता के संबंध में आपत्तियों का न्यायिक मंच द्वारा निर्णय हो जाता है और प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका को खारिज करके इसे अंतिम रूप दे दिया जाता है, तो इसे रिट याचिकाकर्तागण को लाभ से वंचित करने के लिए एक उपकरण के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है।

प्रत्यर्थी फिर से वही आपतियाँ उठा रहे हैं और रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता पर सवाल उठा रहे हैं। उनका आरोप है कि रिट याचिकाकर्तागण के पास न्यूनतम 120 दिनों का आवश्यक कार्यकाल नहीं है, महाप्रबंधक की पूर्वव्यापी स्वीकृति नहीं ली गई है, उनकी आयु अधिक है और *उमा देवी (इंफ्रा)* प्रकरण में दिया गया निर्णय उनके आड़े आएगा। स्पष्टतः, उक्त आपतियों के अलावा कोई नई आपति नहीं उठाई गई है, जो रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता से संबंधित प्रकरण की जड़ तक जाती है और ऐसी स्थिति में न्यायाधिकरण द्वारा रिट याचिकाकर्तागण के दावे को अस्वीकार करना उचित नहीं था। (प्रस्तर 23, 25)

प्रत्यर्थी रेलवे के लिए उन आधारों पर रिट याचिकाकर्तागण की उपयुक्तता पर सवाल उठाना संभव नहीं है जिन पर पहले ही निर्णय हो चुका है। हो सकता है कि किसी उम्मीदवार की उपयुक्तता पर आपति के संबंध में कुछ प्रासंगिक आधार प्रतीत हों, जो प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न कारकों के कारण उत्पन्न हो सकते हैं, हालाँकि, वर्तमान प्रकरण में, रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता पर सवाल उठाते हुए वही पुरानी आपतियाँ उठाई जा रही हैं। (प्रस्तर 28)

वर्तमान प्रकरण में रिट याचिकाकर्तागण के पक्ष में सकारात्मक निष्कर्ष निकला है, जिसमें उन्हें पात्र माना गया है और मुकदमेबाजी के पिछले दौर में न्यायाधिकरण के आदेश के आधार पर प्रत्यर्थी-रेलवे को एकमात्र कार्य यह सौंपा गया था कि यदि वे सफल होते हैं, तो उनका परिणाम घोषित किया जाए, लेकिन किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी-रेलवे को उन मुद्दों को फिर से खोलने का कोई लाभ दिया गया है, जिन पर पहले ही निर्णय हो चुका है। (प्रस्तर 30)

मूल आवेदक की मृत्यु हो चुकी है और शेष रिट याचिकाकर्ता आज की तारीख में अस्थायी/नियमित दर्जा प्राप्त करने के लिए निर्धारित आयु से अधिक हैं। चूँकि रिट याचिकाकर्ता लंबे समय से, कई दशकों से, बेरोजगार हैं, इसलिए उन्हें नियमित दर्जा देने के लिए निर्देश जारी करना उचित नहीं होगा। रिट याचिकाकर्ता न्यायिक मंचों के समक्ष अपने दावों का विरोध करते रहे हैं और उनके पास उन्हें पात्र घोषित करने वाला सकारात्मक आदेश, परिणाम घोषित करने का आदेश और यह तथ्य है कि रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता के संबंध में प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा उठाई गई आपतियाँ वही हैं जिन पर न्यायालय ने निर्णय दिया है और रिकॉर्ड पर कोई नई और वैध आपति उपलब्ध नहीं है जिससे रिट याचिकाकर्तागण को लाभ से वंचित किया जा सके, इस प्रकार, प्रकरण के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार बहाली के बदले उचित मुआवजा दिया जाता है। (प्रस्तर 32)

ओए संख्या 330/00370/2015 में पारित दिनांक 16.02.2018 के निर्णय एवं आदेश को अपास्त किया जाता है। दिनांक 17.12.2005 की अधिसूचना एवं वर्ष 2007 में आयोजित स्क्रीनिंग परीक्षा के अनुसरण में नियमित रिक्तियों के विरुद्ध रिट याचिकाकर्तागण को नियुक्ति आदेश जारी करने की अनुतोष अस्वीकार किया जाता है। (प्रस्तर 33)

रिट याचिका आंशिक रूप से स्वीकृत। (ई-4)

अनुसरण की गई मिसाल:

1. नरपत सिंह बनाम राजस्थान फाइनेंशियल कॉर्पोरेशन, 2007 आईएनएससी 969; एआईआर 2008 एससी 77 (पैरा 7)
2. भारत संघ बनाम श्री प्रवीण कुमार एवं अन्य, सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 22808/2003, दिनांक 22.05.2003 को निर्णीत (पैरा 26)

विशिष्ट उदाहरण:

भारत संघ एवं अन्य बनाम अशोक कुमार एवं अन्य, रिट-ए संख्या 1006/2016, दिनांक 04.02.2016 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति विकास बुधवार द्वारा प्रदत्त)

1. रमेश चंद्र बारी (अब दिवंगत) के विधिक उत्तराधिकारियों और 13 अन्य (संक्षेप में 'रिट याचिकाकर्तागण') के माध्यम से वर्तमान कार्यवाही में मूल आवेदन संख्या 330/00370/2015 (राज बहादुर सिंह और 24 अन्य बनाम भारत संघ और 4 अन्य) में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण इलाहाबाद बेंच, इलाहाबाद (संक्षेप में 'न्यायाधिकरण') द्वारा पारित दिनांक 16.02.2018 का आदेश लागू किया गया है, जिसके तहत मूल आवेदकों/रिट याचिकाकर्तागण द्वारा दिनांक 18.04.2013 के स्क्रीनिंग टेस्ट परिणाम पर सवाल उठाते हुए उन्हें असफल घोषित करने और नियमित नियुक्ति के प्रकरण पर विचार करने के निर्देश के लिए प्रस्तुत मूल आवेदन को खारिज कर दिया गया था।

2. प्रकरण के तथ्य, जैसा कि अभिलेखों से स्पष्ट है, यह है कि रिट याचिकाकर्तागण का दावा है कि उन्होंने रेलवे में अनियमित श्रमिक के रूप में कई बार काम किया है और 120 दिनों से अधिक की नियुक्ति पूरी की है, जिससे वे नियमित नियुक्ति के पात्र हो गए हैं। रिट याचिकाकर्तागण के अनुसार, प्रत्यर्थी रेलवे ने 17.12.2005 को व्यापक रूप से प्रसारित समाचार पत्र अमर उजाला में एक अधिसूचना प्रकाशित की, जिसमें स्पष्ट रिक्तियों के विरुद्ध नियमित नियुक्ति के लिए पूर्व अनियमित श्रमिकों को स्क्रीनिंग के लिए उपस्थित होने की आवश्यकता थी। 17.12.2005 की अधिसूचना के अनुसार, वे पूर्व अनियमित श्रमिक जो 120 दिनों की अवधि के लिए रेलवे में कार्यरत थे और नियुक्ति के समय उनकी आयु 28 वर्ष से अधिक नहीं थी, उन्हें नियमित नियुक्ति के लिए विचार किया जाना था। अधिसूचना में आगे कहा गया था कि सामान्य वर्ग के लिए ऊपरी आयु सीमा में 40 वर्ष, अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए 43 वर्ष और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लिए 45 वर्ष की छूट दी गई थी। पात्रता निर्धारित करने की अंतिम तिथि 01.01.2006 थी और आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 15.01.2006 थी। रिट याचिकाकर्ता, जिन्होंने पूर्व-अनियत मजदूर होने का दावा किया था, जिन्हें विभिन्न अवधियों में कार्य सौंपा गया था, ने 10.10.2007 से 16.11.2007 तक आयोजित स्क्रीनिंग परीक्षा में अन्य

कुल 359 उम्मीदवारों के साथ भाग लिया था। स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम 10.12.2007 को घोषित किया गया, जिसमें केवल एक उम्मीदवार अविनीशी प्रसाद को सफल घोषित किया गया। रिट याचिकाकर्तागण ने अपने परिणामों की घोषणा न होने से व्यथित होकर अभ्यावेदन/अनुरोध पत्र प्रस्तुत किए, लेकिन वे अनिर्णीत रहे, जिसके कारण उन्हें 2009 की ओए संख्या 738 और 2009 की ओए संख्या 741 प्रस्तुत करने के लिए बाध्य होना पड़ा, जिसमें स्क्रीनिंग परीक्षा के परिणाम की घोषणा और सफल होने की स्थिति में सेवाओं की नियमित स्थिति प्रदान करने के लिए राहत की मांग की गई।

3. उपरोक्त मूल आवेदनों का निपटारा कर दिया गया और रिट याचिकाकर्तागण को शिकायतों के निवारण हेतु अभ्यावेदन प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। तत्पश्चात, 10.09.2009 और 07.09.2009 को रिट याचिकाकर्तागण द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन अस्वीकार कर दिए गए।

4. इसी पर सवाल उठाते हुए, रिट याचिकाकर्तागण ने न्यायाधिकरण के समक्ष ओए संख्या 1568/2009 (रमेश चंद्र बारी और 18 अन्य बनाम भारत संघ) पेश किया, जो ओए संख्या 1233/2009 (राज बहादुर सिंह और 13 अन्य बनाम भारत संघ और अन्य) से जुड़ा था, जिस पर हलफनामों के आदान-प्रदान के बाद 12.05.2011 को निर्णय हुआ, उसका प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

6. यह एक स्वीकृत तथ्य है कि रेलवे बोर्ड ने पूर्व-अनियत श्रमिकों के आमेलन/नियमितीकरण के लिए कई अधिसूचनाएं जारी की हैं; अनुलग्नक-ए-2 आरईएम खंड II से प्रासंगिक नियमों का उद्धरण है। यह पूर्व-अनियत श्रमिकों के नियमितीकरण/आमेलन के लिए रेलवे बोर्ड द्वारा जारी अधिसूचना/परिपत्र पत्रों की प्रति है, इसे आरईएम खंड II के अध्याय XX के नियम 2001-2007 में प्रकाशित किया गया है। यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रत्यर्थीगण ने रेलवे बोर्ड द्वारा इन परिपत्र पत्रों को जारी करने पर विवाद नहीं किया है। काउंटर एफिडेविट के पैरा संख्या 3 (iv) में प्रत्यर्थीगण द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि आईआरईएम खंड-II (1990 संस्करण) के पैरा 2001 से 2007 में पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों के अवशोषण/पुनर्नियोजन/नियमितीकरण के संबंध में नियम उपलब्ध है। इसलिए यह स्वीकार किया जाता है कि इंदु पाल यादव के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में रेलवे बोर्ड द्वारा एक योजना तैयार की गई थी कि पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों को नियमित किया जाना चाहिए, बशर्ते वे शर्तों को पूरा कर रहे हों। आवेदकों के अभ्यावेदन पर प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित आदेश के अवलोकन और काउंटर उत्तर के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि प्रत्यर्थीगण ने इस तथ्य से इनकार नहीं किया है कि अपेक्षित योग्यताएं पूरी करने वाले पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों के नियमितीकरण/अवशोषण के लिए रेलवे बोर्ड द्वारा कोई योजना या नीति जारी नहीं की गई है। लेकिन आवेदकों के अभ्यावेदन को केवल उमा देवी के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आधार पर खारिज कर दिया गया। प्रत्यर्थीगण द्वारा यह भी स्वीकार किया गया है कि अधिसूचना अनुलग्नक-ए-4 के तहत प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों से नियमितीकरण/आमेलन के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे, बशर्ते वे अपेक्षित योग्यताएं पूरी करते हों। 17 दिसंबर, 2005 के समाचार पत्र (अमर उजाला) का उद्धरण भी है जिसमें पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों से नियमितीकरण/आमेलन के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए थे, जिन्होंने टूटे हुए

समय में पूर्व-अनौपचारिक श्रमिक के रूप में 120 दिन बिताए थे और प्रारंभिक नियुक्ति के समय उनकी आयु कम से कम 28 वर्ष थी और पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों को आयु में कुछ छूट भी स्वीकार्य होगी। पूर्व-अनौपचारिक श्रमिक की अधिकतम आयु 40 वर्ष (सामान्य श्रेणी), 43 वर्ष (ओबीसी) और 45 वर्ष (एससी/एसटी) है। निर्धारित प्रारूप पर आवेदन जमा करने की अंतिम तिथि 15 जनवरी, 2006 थी। प्रत्यर्थीगण द्वारा यह आरोप नहीं लगाया गया है और प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित आदेश में भी यह आरोप लगाया गया है कि ये आवेदक समाचार पत्र (अमर उजाला) में जारी और कार्यालय के नोटिस बोर्ड पर चिपकाए गए अधिसूचना के अनुसरण में स्क्रीनिंग परीक्षा में भाग लेने के पात्र थे। यह भी आरोप नहीं लगाया गया है कि ये आवेदक अधिकतम आयु सीमा से ऊपर हैं। लेकिन आवेदकों का प्रतिनिधित्व केवल इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि; उमा देवी के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक निर्णय दिया गया था और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के मददेनजर आवेदक अधिकार के रूप में नियमितीकरण/समावेश का दावा नहीं कर सकते हैं। प्रत्यर्थीगण द्वारा यह आरोप लगाने के भी प्रयास किए गए हैं कि आवेदकों की नियुक्ति विधि के अनुसार नहीं थी और उनकी नियुक्तियां अनियमित थीं और उन्हें नियमित नहीं किया जा सकता प्रत्यर्थीगण का यह प्रकरण नहीं है कि आवेदक पूर्व-आकस्मिक श्रमिकों के नियमितीकरण के लिए रेलवे बोर्ड के परिपत्र पत्रों और 17 दिसंबर, 2005/21 दिसंबर, 2005 को प्रकाशित और चिपकाई गई अधिसूचना में प्रदान की गई अपेक्षित योग्यता को पूरा नहीं कर रहे थे। यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि आवेदकों ने अक्टूबर, 2007 के महीने में स्क्रीनिंग टेस्ट में भाग लिया था, इसका मतलब है कि आवेदक रेलवे बोर्ड की योजना और प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी अधिसूचना में निर्धारित सभी अपेक्षित योग्यताएं पूरी कर रहे थे।

7. प्रतिउत्तर के अवलोकन से पता चलता है कि प्रत्यर्थी का रुख स्पष्ट नहीं है और प्रत्यर्थी एक ही सांस में यह स्वीकार करते हुए कि रेलवे बोर्ड ने पूर्व-अनियतकालीन श्रमिकों के नियमितीकरण/समावेशन के लिए परिपत्र जारी किए थे, कभी गरम तो कभी गरमा रहे हैं। प्रत्यर्थीगण ने अलग-अलग तिथियों पर स्वीकार किया है कि इलाहाबाद के मंडल रेल प्रबंधक द्वारा पूर्व-अनियतकालीन श्रमिकों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे। आवेदकों ने समय से पहले आवेदन जमा कर दिए और उन्हें स्क्रीनिंग परीक्षा से गुजरना पड़ा। लेकिन साथ ही प्रत्यर्थीगण ने आरोप लगाया कि आवेदकों की नियुक्ति अनियमित थी और इसलिए उन्हें नियमितीकरण के योग्य नहीं पाया गया, लेकिन यह नहीं बताया गया कि आवेदकों की अनियतकालीन श्रमिक के रूप में नियुक्ति अनियमित कैसे थी। चूंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने तदर्थ कर्मचारियों या सक्षम प्राधिकारी की स्वीकृति के बिना अनियमित रूप से नियुक्त कर्मचारियों की सेवा पर रोक लगाने वाला एक निर्णय दिया है, इसलिए उन्हें नियमित नहीं किया जा सकता। लेकिन प्रत्यर्थीगण ने यह आरोप नहीं लगाया है कि अपेक्षित योग्यता पूरी करने वाले पूर्व-अनियतकालीन श्रमिकों के नियमितीकरण के लिए रेलवे बोर्ड की कोई नीति नहीं थी। और प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पूर्व-अनियतकालीन श्रमिकों से आवेदन आमंत्रित किए गए, लेकिन साथ ही उमा देवी के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विधि के आधार पर आवेदकों के आवेदन/अभ्यावेदन को अस्वीकार कर दिया गया। हालाँकि, प्रत्यर्थीगण का ऐसा कोई प्रकरण नहीं है कि ये आवेदक अधिक आयु के थे या अधिसूचना के अनुसरण में आवेदन पत्र जमा करने की तिथि तक अपेक्षित योग्यताएँ पूरी नहीं कर रहे थे, इसलिए मेरा मत है कि प्रत्यर्थीगण द्वारा आवेदकों की पात्रता पर कोई विवाद नहीं किया गया था...

10. निस्संदेह, रेलवे की एक नीति और योजना थी। इसे इंदुपाल यादव प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के अनुसरण में तैयार किया गया था और बाद में विभिन्न अन्य निर्णयों में दोहराया गया था। इन परिस्थितियों में, मेरी राय में, उमा देवी प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि, आकस्मिक जीवित रजिस्टर में दर्ज पूर्व-आकस्मिक श्रमिकों पर लागू नहीं होता है, क्योंकि इन आकस्मिक श्रमिकों के नियमितीकरण/समावेशन के लिए रेलवे बोर्ड की एक नीति है और आवेदकों ने प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसरण में आवेदन पत्र जमा करने की तिथि तक अपेक्षित योग्यताएँ पूरी करते हुए आवेदन भी प्रस्तुत किए थे। केवल स्क्रीनिंग टेस्ट का परिणाम घोषित किया जाना है और जब आवेदकों को स्क्रीनिंग टेस्ट में भाग लेने की अनुमति दी गई थी, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ये आवेदक सभी अपेक्षित योग्यताएँ पूरी कर रहे थे और स्क्रीनिंग टेस्ट में भाग लेने के हकदार थे, फिर स्क्रीनिंग टेस्ट का परिणाम घोषित किया जाना चाहिए और प्रत्यर्थीगण को प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसरण में प्रस्तुत किए गए अवशोषण/नियमितीकरण के लिए आवेदकों के आवेदन को अस्वीकार करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और प्रत्यर्थी संख्या 2 ने यह भी आरोप लगाया है कि आवेदन रेलवे बोर्ड की नीति के अनुसरण में आमंत्रित किए जा रहे हैं।

12. अतः आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि आवेदक का अभ्यावेदन केवल उमा देवी के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के आधार पर और माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के आलोक में खारिज कर दिया गया था। लेकिन पूर्व-अनियतकालीन श्रमिकों के नियमितीकरण/आमेलन के प्रकरण में, जिन्होंने रेलवे बोर्ड की नीति के अनुसरण में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा जारी अधिसूचना के अनुसरण में अपना आवेदन प्रस्तुत किया था, उनका अभ्यावेदन केवल विधि के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता और मेरी राय में स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित किया जाना चाहिए।

13. ऊपर बताए गए कारणों से मेरी राय है कि आवेदकों का अभ्यावेदन केवल माननीय उच्च न्यायालय और माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के आधार पर खारिज कर दिया गया था, जो जीवित आकस्मिक श्रमिक रजिस्टर पर पैदा हुए पूर्व आकस्मिक श्रमिकों के नियमितीकरण के लिए रेलवे बोर्ड की नीति/योजना का उल्लंघन है। क्योंकि अभ्यावेदन इस आधार पर खारिज नहीं किया गया था कि आवेदक स्क्रीनिंग टेस्ट में भाग लेने के लिए रेलवे बोर्ड की नीति के अनुसार फिट या पात्र नहीं थे, बल्कि आवेदकों को स्क्रीनिंग टेस्ट में भाग लेने की अनुमति दी गई थी और यह तथ्य स्वयं दर्शाता है कि आवेदक स्क्रीनिंग टेस्ट में भाग लेने के योग्य पाए गए थे, इसलिए प्रत्यर्थी संख्या 2 ने आवेदक के अभ्यावेदन को अवैध रूप से उस आधार पर खारिज कर दिया था जो उसके पास उपलब्ध नहीं था। नियमितीकरण/आमेलन का दावा अधिकार के रूप में नहीं किया गया था, इसका दावा रेलवे बोर्ड की नीति/योजना के अनुसरण में किया जा रहा है। चूँकि रेलवे बोर्ड ने पूर्व-कैजुअल श्रमिकों के नियमितीकरण हेतु इंदुपाल यादव प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसरण में नीति बनाई थी और समय-समय पर नीति को अद्यतन किया गया था तथा स्क्रीनिंग टेस्ट के लिए पूर्व-कैजुअल श्रमिकों से आवेदन आमंत्रित किए गए थे, अतः OA को अनुमति दी जानी चाहिए तथा आदेश को रद्द किया जाना चाहिए।

14. ओ.ए. को अनुमति दी जाती है, आवेदक अनुलग्नक-ए-1 के अभ्यावेदन पर प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 17 सितंबर, 2009 (ओए संख्या 1568/2009 में) के आदेश और दिनांक 10 सितंबर, 2009 (ओए संख्या 1233/2009 में) के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थी को दिनांक 21 दिसंबर, 2005 की अधिसूचना अनुलग्नक-ए-5 के अनुसरण में अक्टूबर, 2007 के महीने में आयोजित स्क्रीनिंग टेस्ट का परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया जाता है और यदि आवेदक स्क्रीनिंग टेस्ट में सफल पाए जाते हैं तो उन्हें उनके सेवा रिकॉर्ड और नियमों के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर स्क्रीनिंग टेस्ट का परिणाम घोषित करें और उस अवधि के भीतर जो आवेदक सफल पाए जाते हैं उन्हें भी नियमित किया जाएगा और नियोजित किया जाएगा। आवेदक इस आदेश की प्रति प्रत्यर्थी संख्या 2 के समक्ष तत्काल प्रस्तुत करें। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

5. रिट याचिकाकर्तागण का यह भी कहना है कि प्रत्यर्थी रेलवे ने ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में पारित न्यायाधिकरण के आदेश का क्रियान्वयन नहीं किया, जिसके कारण रिट याचिकाकर्तागण को न्यायाधिकरण के समक्ष निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 दायर करना पड़ा। प्रत्यर्थी रेलवे ने ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में पारित न्यायाधिकरण के दिनांक 12.05.2011 के निर्णय और आदेश से व्यथित होकर माननीय उच्च न्यायालय में रिट-ए संख्या 49441/2011 (भारत संघ जरिए जी.एम.एन.सी.आर. एवं अन्य बनाम राज बहादुर सिंह एवं अन्य) दायर करके 30.08.2011 को निम्नलिखित आदेश पारित किए।

"1. प्रत्यर्थी पूर्व में रेलवे में कार्यरत थे। इसके बाद उन्हें 12.10.2010 को आयोजित होने वाली स्क्रीनिंग परीक्षा के लिए बुलाया गया। स्क्रीनिंग परीक्षा आयोजित की गई, लेकिन परिणाम घोषित नहीं किया गया।

2. प्रत्यर्थीगण ने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष ओए संख्या 741/2009 दायर किया। 7.8.2009 को इसका निपटारा कर उन्हें अभ्यावेदन दायर करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई। प्रत्यर्थीगण ने अभ्यावेदन दायर किया। इसे 10.9.2009 को खारिज कर दिया गया। प्रत्यर्थीगण ने एक और ओए संख्या 1568/2009 दायर किया। इसे 12.5.2011 को स्वीकार कर लिया गया। अतः वर्तमान रिट याचिका।

3. हमने पक्षों के अधिवक्ता को सुना है।

4. इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि स्क्रीनिंग परीक्षा आयोजित की गई थी और याचिकाकर्ता द्वारा उसे रद्द नहीं किया गया था। न्यायाधिकरण ने केवल परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया है और यदि प्रत्यर्थी परीक्षा में सफल होते हैं तो उन्हें नियमों के अनुसार लाभ दिया जा सकता है। निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।

5. रिट याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है। इसे खारिज किया जाता है।"

6. प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा एक अन्य रिट याचिका भी प्रस्तुत की गई, रिट-ए संख्या 48102/2011 (यूनियन ऑफ इंडिया थ्रू जीएमएनसीआर एंड अदर बनाम रमेश चंद्र बारी) जिसमें 24.08.2012 को निम्नलिखित आदेश पारित किया गया।-

"याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री ए. के. गौर ने दलील दी है कि यह याचिका निष्फल हो गई है और इसे खारिज किया जाना चाहिए क्योंकि इस पर जोर नहीं दिया गया। इस याचिका को खारिज किया जाता है क्योंकि इस पर दबाव नहीं डाला गया है।"

7. निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में, कई आदेश पारित किए गए थे, जिनमें से एक 05.10.2012 को मूल पक्ष पर पारित न्यायाधिकरण के आदेश के निष्पादन हेतु बैंक खाते को कुर्क करने के लिए था। उक्त आदेश को प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा रिट-ए संख्या 6879/2013 (भारत संघ के माध्यम से जी.एम.एन.सी.आर. और अन्य बनाम रमेश चंद्र बारी एवं अन्य) दायर करते समय चुनौती दी गई थी, जिसमें 12.02.2013 को निम्नलिखित आदेश पारित किए गए थे:

"याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया और रिकॉर्ड का अवलोकन किया गया।

इस प्रकरण का इतिहास उतार-चढ़ाव भरा रहा है। वर्ष 2009 में, प्रत्यर्थीगण द्वारा मूल आवेदन संख्या 1233 और 1568 दायर किए गए थे, जिन्हें 12.5.2011 को निम्नलिखित निर्देशों के साथ स्वीकार किया गया था:- "ओए की अनुमति है। आवेदकों के अभ्यावेदन अनुलग्नक ए-1 पर प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 17 सितंबर 2009 (ओए संख्या 1568/2009 में) के आदेश और दिनांक 10 सितंबर 2009 (ओए संख्या 1233/2009 में) के आक्षेपित आदेश को रद्द किया जाता है। प्रत्यर्थी संख्या 1 को दिनांक 21 दिसंबर 2005 की अधिसूचना अनुलग्नक ए-5 के अनुसरण में अक्टूबर 2007 में आयोजित स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया जाता है और यदि आवेदक स्क्रीनिंग परीक्षा में सफल पाए जाते हैं तो उन्हें उनके सेवा रिकॉर्ड और नियमों के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित करें और उस अवधि के भीतर जो आवेदक सफल पाए जाते हैं उन्हें भी नियमित किया जाएगा और उनकी नियुक्ति की जाएगी। संख्या 23 पर तत्काल प्रभाव से विचार किया जाएगा। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।"

उक्त आदेश को चुनौती देते हुए याचिकाकर्ता-भारत संघ ने सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 49441/2011 दायर की, जिसे दिनांक 24.8.2012 के आदेश द्वारा प्रवेश स्तर पर ही निम्नलिखित निर्देशों के साथ खारिज कर दिया गया:-

"इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि स्क्रीनिंग टेस्ट हुआ था और याचिकाकर्ता ने इसे रद्द नहीं किया था। न्यायाधिकरण ने केवल परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया है और यदि प्रत्यर्थी टेस्ट में सफल होते हैं तो उन्हें नियमों के अनुसार लाभ दिया जा सकता है। फैसले में कोई अवैधता नहीं है।"

याचिका खारिज होने के बाद, याचिकाकर्तागण के लिए न्यायाधिकरण द्वारा जारी दिनांक 12.5.2011 के निर्देशों का पालन करना अनिवार्य था। जब उक्त निर्देशों का पालन नहीं किया गया, तो प्रत्यर्थीगण ने निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 दायर किया, जिस पर दिनांक 5.10.2012 को निर्णय हुआ। याचिकाकर्ता ने निष्पादन प्रकरण में यह तर्क दिया था कि 24.2.2012 को दो व्यक्तियों को सफल घोषित किया गया था और अन्य को निहितार्थतः असफल घोषित किया गया था। याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री ए. के. गौर ने कहा कि सफल अभ्यर्थियों के परिणाम घोषित करके दिनांक 12.5.2011 के आदेश का अनुपालन किया गया है। याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता के इस निवेदन का संज्ञान निष्पादन प्रकरण में पारित दिनांक 5.10.2012 के आदेश में लिया गया है, जिसके तहत सभी दलीलों पर विचार करने के बाद, न्यायाधिकरण ने पाया कि "दिनांक 12.5.2011 के आदेश का अभी तक पूरी तरह से अक्षरशः पालन नहीं किया गया है। निष्पादन प्रार्थना पत्र का उद्देश्य दिनांक 27.10.2007 के आदेश के आधार पर आवेदकों को दी गई राहत को ठोस रूप देना है। इसलिए, प्रत्यर्थीगण को एक अंतिम अवसर दिया जाता है कि वे ओए संख्या 1568/09 और 1233/09 के सभी अभ्यर्थियों के संबंध में दिनांक 27.10.2007 को आयोजित स्क्रीनिंग के परिणामस्वरूप उनके पास उपलब्ध परिणाम को तीन महीने की अवधि के भीतर प्रकट करें और उसके बाद संबंधित नियमों के अनुसार उनके नियमितीकरण के लिए कार्रवाई करें"। श्री गौड़ ने विशेष रूप से कहा है कि दिनांक 5.10.2012 के उक्त आदेश को चुनौती नहीं दी जा रही है, भले ही ऐसी प्रार्थना की गई हो। वर्तमान याचिका में चुनौती दी गई बात प्रत्यर्थीगण द्वारा दायर सुधार आवेदन पर न्यायाधिकरण द्वारा पारित दिनांक 30.10.2012 के बाद के आदेश की है। उक्त आदेश के द्वारा न्यायाधिकरण ने अनुपालन रिपोर्ट दाखिल करने की तारीख तय की है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि एक बार निष्पादन प्रार्थना पत्र का निपटारा हो जाने के बाद न्यायाधिकरण पदेन कार्य बन गया था और अनुपालन रिपोर्ट दाखिल करने की तारीख तय नहीं कर सकता था। अपने प्रस्तुतिकरण के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने नरपत सिंह बनाम राजस्थान वित्तीय निगम एआईआर 2008 एससी 77 के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले का हवाला दिया है। हमने सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेश का अध्ययन किया है और हमारी राय है कि उक्त प्रकरण के तथ्य वर्तमान प्रकरण पर लागू नहीं होते हैं क्योंकि वर्तमान प्रकरण में न्यायाधिकरण द्वारा जो भी निर्देशित किया गया है वह यह है कि उनके आदेश का अनुपालन तीन महीने के भीतर किया जाए वैसे भी, हम ऐसे याचिकाकर्ता के पक्ष में अपने असाधारण विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के लिए इच्छुक नहीं होंगे, जो न्यायाधिकरण द्वारा जारी निर्देशों का अनुपालन न करने के लिए तकनीकी आधार लेता है और इस आधार पर निर्देशों का अनुपालन न करने की दलील देता है कि न्यायाधिकरण के पास 5.10.2012 के बाद कोई और आदेश पारित करने का क्षेत्राधिकार नहीं है, भले ही उक्त आदेश केवल मूल आदेश अर्थात् 5.10.2012 के अनुपालन की रिपोर्टिंग के लिए हो।

इस प्रकरण को ध्यान में रखते हुए, हम इस याचिका को खारिज करते हैं और याचिकाकर्तागण को तत्काल परिणाम घोषित करने का निर्देश देते हैं। यदि दिनांक 5.10.2012 के आदेश का अनुपालन आज से दो महीने की अवधि के भीतर कर दिया जाता है, तो इसे उक्त आदेश का पर्याप्त अनुपालन माना जाएगा।”

8. निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में, न्यायाधिकरण ने प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा प्रस्तुत अभिलेख का अवलोकन करने के पश्चात दिनांक 25.07.2013 को आदेश पारित किया जो इस प्रकार है:-

“श्री टी.एस. पांडेय, आवेदक के विद्वान अधिवक्ता। श्री के.पी. सिंह, तथा श्री बी. तिवारी, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता।

न्यायालय के निर्देशानुसार श्री जटाशंकर त्रिपाठी मूल अभिलेखों के साथ न्यायालय में उपस्थित हुए।

मूल अभिलेख के अवलोकन से यह पाया गया कि इस मूल आवेदन में लगभग सभी आवेदक स्क्रीनिंग में उपयुक्त पाए गए, सिवाय दो या तीन व्यक्तियों के जिन्हें अनुपयुक्त घोषित किया गया।

प्रत्यर्थीगण को इस न्यायालय के समक्ष एक हलफनामा दायर करने का निर्देश दिया जाता है, जिसमें यह स्पष्ट किया जाए कि आवेदक उपयुक्त पाए जाने के बाद कैसे अयोग्य हो गए, तथा योग्य पाए गए लोगों की तुलना में उपयुक्त पाए जाने के बाद उनके अनुपयुक्त होने का आधार क्या था।

दिनांक 29.08.2013 को सूचीबद्ध। प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाता है कि वे संपूर्ण स्क्रीनिंग रिपोर्ट की फोटोकॉपी इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करें।

आवेदक के अधिवक्ता श्री टीएस पांडेय ने दिनों की संख्या के सत्यापन पर आपत्ति जताई। आवेदकों को निर्देश दिया जाता है कि वे अपने पहचान पत्र की फोटोकॉपी लेकर आएँ, जिससे यह साबित हो सके कि वे कितने समय से काम कर रहे हैं।

आदेश की प्रति प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता को दी जाए।

9. प्रत्यर्थी रेलवे ने निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 की कार्यवाही में अपनी आपत्ति दर्ज करते हुए यह तर्क दिया कि ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में पारित आदेश का अनुपालन किया गया है, क्योंकि 18.04.2013 को घोषित स्क्रीनिंग परीक्षा परिणाम में रिट याचिकाकर्तागण को अनुपयुक्त पाया गया था। उक्त तथ्य को ध्यान में रखते हुए, न्यायाधिकरण ने 03.09.2014 को निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 का निपटारा यह कहते हुए किया कि चूँकि वाद का एक नया कारण उत्पन्न हुआ है, इसलिए रिट याचिकाकर्तागण के लिए यह विकल्प खुला है कि यदि उन्हें सलाह दी जाए तो वे विधि का सहारा ले सकते हैं। निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में पारित 03.09.2014 के आदेश को नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

“यह आवेदन उन आवेदकों द्वारा किया गया है जो न केवल हमारे समाज के सबसे दलित वर्ग से हैं, बल्कि उन लोगों में से भी हैं जिन्हें उच्च पद पर बैठे शक्तिशाली लोगों द्वारा लगातार अनुचित व्यवहार का सामना करना पड़ा है, जबकि रेलवे ने इन लोगों को राहत प्रदान करने के लिए एक उदार विधि बनाया है, जिन्हें अपने परिवार के सदस्यों को भूख से तड़पते हुए पेट भरने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

2. इस न्यायाधिकरण द्वारा 12.5.2011 को दोनों ओए को अनुमति देते हुए एक विस्तृत आदेश पारित किया गया, जिसमें आवेदकों ने इस न्यायाधिकरण के समक्ष प्रत्यर्थागण को 2.12.2005 की अधिसूचना के अनुसरण में अक्टूबर, 2007 में आयोजित स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित करने का निर्देश देने का अनुरोध किया था। उन्होंने प्रत्यर्थागण को यह निर्देश देने का भी अनुरोध किया कि यदि आवेदक उक्त स्क्रीनिंग परीक्षा में सफल पाए जाते हैं, तो उन्हें इयूटी प्रदान की जाए और मौजूदा नियमों के अनुसार उनकी सेवाओं के नियमितीकरण पर विचार किया जाए।

ओए को निम्नलिखित निर्देशों के साथ अनुमति दी गई:-

"14. ओए को स्वीकृत किया जाता है। आवेदक अनुलग्नक ए -1 के प्रतिनिधित्व पर प्रत्यर्था संख्या 2 द्वारा पारित 17 सितंबर 2009 (ओए संख्या 1568 / 2009 में) के आदेश और 10 सितंबर, 2009 (ओए संख्या 1233 / 2009 में) के आदेश को रद्द कर दिया गया है। प्रत्यर्था को 21 दिसंबर, 2005 के अधिसूचना अनुलग्नक ए -5 के अनुसरण में अक्टूबर, 2007 के महीने में आयोजित स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया गया है, और यदि आवेदक स्क्रीनिंग परीक्षा में सफल पाए गए हैं तो उन्हें उनके सेवा रिकॉर्ड और नियमों के अनुसार नियमित किया जाना चाहिए। प्रत्यर्थागण को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रति उनके समक्ष प्रस्तुत किए जाने की तारीख से दो महीने की अवधि के भीतर स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित करें, और उस अवधि के भीतर जो आवेदक सफल पाए जाते हैं उन्हें भी नियमित किया जाएगा और नियोजित किया जाएगा। 2 तत्काल। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।"

3. अब मैं इस न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए निर्णय की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करना चाहूंगा, जो मेरी सुविचारित राय में प्रकरण की जड़ तक जाती हैं। अतः इन्हें यहाँ नीचे दिया गया है:-

क) इस न्यायाधिकरण ने कुछ शर्तों के तहत यह माना है कि पूर्व-अनियत मजदूर को महाप्रबंधक के विशिष्ट अनुमोदन के बाद नियोजित या तैनात किया जाना आवश्यक नहीं है।

(ख) कि इस न्यायाधिकरण ने उमा देवी के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के फैसले की वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर गैर-लागू होने से संबंधित निष्कर्ष को विशेष रूप से इस तथ्य के प्रकाश में दर्ज किया है कि आवेदकों ने एक बार रेलवे बोर्ड द्वारा तैयार की गई एक विशिष्ट योजना के आधार पर राहत का दावा किया था ताकि उन्हें नियमितीकरण और उसके तहत परिणामी लाभ प्रदान किए जा सकें।

(ग) आदेश के प्रभावी भाग में प्रत्यर्थागण (रेलवे) को स्पष्ट निर्देश दिया गया है कि वे आवेदकों को केवल एक शर्त के अधीन नियमित करें, अर्थात् उनका स्क्रीनिंग टेस्ट में सफल होना, इससे अधिक कुछ नहीं।

घ) चूँकि आवेदक केवल रेलवे बोर्ड द्वारा पारित विकास विधेयक के आधार पर अपनी दशकों पुरानी शिकायतों का समाधान चाहते हैं, इसलिए माननीय सर्वोच्च न्यायालय के बार-बार दिए गए निर्णयों के मद्देनजर, जिसमें कहा गया है कि एक उदार विधि की हमेशा उदारतापूर्वक व्याख्या और व्याख्या की जानी चाहिए।

(ड) कि इस न्यायाधिकरण की पूर्ण पीठ ने महाबीर एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य के प्रकरण में रेलवे के इस तर्क को स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया है कि महाप्रबंधक के अनुमोदन के बिना नियोजित आकस्मिक श्रमिक अपने नाम को आकस्मिक श्रम रजिस्टर में रखने का दावा नहीं कर सकते हैं।

4. तथ्य और विधि की उपरोक्त स्थिति के आलोक में, यह निष्कर्ष निकलता है कि ये श्रमिक केवल स्क्रीनिंग में उपयुक्त पाए जाने के आधार पर नियमितीकरण के हकदार हैं, जो अपरिहार्य है।

5. इस आदेश के विरुद्ध प्रत्यर्थांगण ने माननीय उच्च न्यायालय में रिट याचिका संख्या 48102/2011 (भारत संघ एवं अन्य बनाम रमेश चंद्र बारी एवं अन्य) और अन्य याचिका संख्या 49441/2011 (भारत संघ एवं अन्य बनाम राज बहादुर सिंह एवं अन्य) के माध्यम से दो रिट याचिकाएँ दायर कीं। माननीय उच्च न्यायालय ने याचिका संख्या 49441/2011 को खारिज कर दिया। प्रत्यर्थांगण ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका (एसएलपी) दायर करने का प्रस्ताव रखा, लेकिन इसे कभी दायर नहीं किया।

6. माननीय उच्च न्यायालय ने डब्ल्यूपी संख्या 49441/2011 को खारिज करते हुए निम्नलिखित कहा है:-

"4. यह विवादित नहीं है कि स्क्रीनिंग परीक्षा आयोजित की गई थी और इसे याचिकाकर्ता द्वारा रद्द नहीं किया गया था। न्यायाधिकरण ने केवल परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया है और यदि प्रत्यर्थांगण परीक्षा में सफल होते हैं तो उन्हें नियमों के अनुसार लाभ दिया जा सकता है। निर्णय में कोई अवैधता नहीं है।"

7. माननीय उच्च न्यायालय में दायर रिट याचिका संख्या 48102/2011 भी 24.8.2012 को खारिज कर दी गई थी। रिट याचिका संख्या 49441/2011 खारिज होने पर आवेदकों ने यह निष्पादन याचिका दायर की, जिसका निपटारा 5.10.2012 को निम्नलिखित निर्देशों के साथ किया गया:-

"20. इसलिए, मैं पाता हूँ कि दिनांक 12.5.2011 के आदेश का अभी तक पूरी तरह से अक्षरशः पालन नहीं किया गया है। निष्पादन प्रार्थना पत्र का उद्देश्य दिनांक 27.10.2007 के आदेश के आधार पर आवेदकों को दी गई राहत को ठोस रूप देना है। इसलिए, प्रत्यर्थांगण को एक अंतिम अवसर दिया जाता है कि वे ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 के सभी उम्मीदवारों के संबंध में 27.10.2007 को आयोजित स्क्रीनिंग के परिणामस्वरूप उनके पास उपलब्ध परिणाम को तीन महीने की अवधि के भीतर प्रकट करें और उसके बाद संबंधित नियमों के अनुसार उनके नियमितीकरण के लिए कार्रवाई करें।

21. निष्पादन प्रार्थना पत्र उपर्युक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ निपटाया जाता है। लागत के सम्बन्ध में आदेश नहीं।"

8. प्रत्यर्थीगण ने माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय के समक्ष पुनः एक रिट याचिका संख्या 6879/2013 दायर की। माननीय उच्च न्यायालय ने 12.02.2013 को निम्नलिखित टिप्पणी के साथ रिट याचिका खारिज कर दी :-

"इस प्रकरण को ध्यान में रखते हुए, हम इस याचिका को खारिज करते हैं और याचिकाकर्तागण को तत्काल परिणाम घोषित करने का निर्देश देते हैं। यदि दिनांक 5.10.2012 के आदेश का अनुपालन आज से दो महीने की अवधि के भीतर कर दिया जाता है, तो इसे उक्त आदेश का पर्याप्त अनुपालन माना जाएगा।"

9. प्रत्यर्थीगण ने अब परिणाम घोषित कर दिया है और इस न्यायालय के आदेशानुसार परिणाम इस न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने स्क्रीनिंग और परिणाम के बारे में विभिन्न मुद्दे उठाए। उन्होंने प्रत्यर्थीगण की ओर से दायर कई हलफनामों में अनियमितताओं और विरोधाभासों को इंगित करने का प्रयास किया है। लेकिन आदेश का प्रभावी भाग केवल स्क्रीनिंग परीक्षा का परिणाम घोषित करना था। मैंने अपने समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों का अवलोकन किया है।

10. लेकिन चूँकि परिणाम घोषित हो चुका है और सेवा का नियमितीकरण एक पूर्व शर्त है, यदि वे (आवेदक) सफल पाए जाते हैं, इसलिए निष्पादन प्रार्थना पत्र में न्यायालय पारित मूल आदेश से आगे नहीं जा सकता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विभिन्न निर्णयों में माना है कि यदि न्यायाधिकरण के निर्देशानुसार प्रत्यर्थीगण द्वारा कोई आदेश पारित/अनुपालन किया गया है, तो यह नहीं माना जा सकता कि यह न्यायाधिकरण द्वारा जारी निर्देश के अनुरूप नहीं है, इससे आवेदक के लिए एक नया वाद-कारण उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त, माननीय उच्च न्यायालय ने अपने दिनांक 13.2.2013 के आदेश में निम्नलिखित अंतिम कुछ पंक्तियाँ दर्ज करके हमारी शक्तियों पर भी प्रतिबंध लगा दिया है :-

".....यदि दिनांक 5.10.2012 के आदेश का अनुपालन आज से दो महीने की अवधि के भीतर किया जाता है, तो इसे उक्त आदेश का पर्याप्त अनुपालन माना जाएगा।"

11. दुर्भाग्यवश, प्रत्यर्थीगण द्वारा पारित/घोषित आदेश/परिणाम इन अभागे वादियों को कोई राहत नहीं देता। सद्भावनापूर्वक पारित त्रुटिपूर्ण आदेश को न तो निष्पादन कार्यवाही में और न ही अवमानना कार्यवाही में सुधारा जा सकता है। हालाँकि, इससे एक नया वाद-कारण उत्पन्न होता है और आवेदक सलाह मिलने पर विधि का सहारा ले सकते हैं। तदनुसार, निष्पादन प्रार्थना पत्र का निपटारा किया जाता है। लागत के सम्बन्ध में आदेश नहीं।

10. इसके बाद रिट याचिकाकर्तागण ने ओए संख्या 330/00370/2015 दायर कर निम्नलिखित राहत की मांग की।

"i. कम से कम वर्तमान ओए के आवेदकों से संबंधित उपरोक्त प्रस्तुतिकरण और आधारों को ध्यान में रखते हुए 18.04.2013 को घोषित स्क्रीनिंग परिणाम [अनुच्छेद-ए-2] को रद्द करने के लिए।

ii. स्क्रीनिंग की मूल रिपोर्ट/रिकॉर्ड को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थीगण को नियमित नियुक्तियों के लिए आवेदकों पर विचार करने का निर्देश दिया जाए, जिसे 25.07.2013 को माननीय न्यायाधिकरण के समक्ष श्री जटा शंकर त्रिपाठी द्वारा प्रस्तुत किया गया था और उसी के अवलोकन के बाद माननीय न्यायाधिकरण ने पाया था कि दो या तीन व्यक्तियों को छोड़कर लगभग सभी उपयुक्त पाए गए हैं।

iii. प्रत्यर्थीगण को निर्देश दिया जाए कि वे पूर्वोक्त के अनुसरण में आवेदकों को नियमित रिक्तियों के विरुद्ध तत्काल नियुक्ति आदेश जारी करें तथा उन्हें बिना किसी और विलम्ब के इयूटी पर आने की अनुमति दें।

वर्तमान प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के मद्देनजर कोई अन्य आदेश या निर्देश भी पारित किया जा सकता है जिसे यह न्यायालय उचित और उपयुक्त समझे।

11. प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा मूल आवेदन का विरोध करते हुए अपना प्रत्युत्तर दाखिल किया गया, जिस पर प्रत्युत्तर हलफनामा भी दाखिल किया गया। मूल आवेदन 09.02.2018 को न्यायाधिकरण के समक्ष विचारार्थ आया, जिस दिन न्यायाधिकरण ने अपना निर्णय सुरक्षित रख लिया और अंततः 16.02.2018 के निर्णय एवं आदेश के आधार पर मूल आवेदन को खारिज कर दिया गया।

12. उक्त आदेश पर सवाल उठाते हुए, रिट याचिकाकर्तागण ने निम्नलिखित राहत की मांग करते हुए वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

"(क) 2015 के मूल आवेदन संख्या 330/0370 में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण इलाहाबाद द्वारा पारित दिनांक 16.02.2018 के आक्षेपित आदेश को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जिसके माध्यम से याचिकाकर्ताओं के मूल आवेदन को खारिज कर दिया गया है।

(ख) दिनांक 17.12.2005 के विज्ञापन और उसके अनुसरण में यानी अक्टूबर, 2007 के अनुसरण में नियमित रिक्तियों के लिए याचिकाकर्ताओं को नियुक्ति आदेश जारी करने के लिए प्रतिवादियों को आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना।

(ग) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसे यह माननीय न्यायालय प्रकरण के वर्तमान तथ्य और परिस्थितियों में उचित और उचित समझे।

(घ) याचिका की लागत का निर्धारण करना।”

13. हालाँकि, वर्तमान रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान, रिट याचिकाकर्ता संख्या 1, रमेश चंद्र बारी की मृत्यु हो गई, एक प्रतिस्थापन आवेदन दायर किया गया जिसे स्वीकार कर लिया गया और मृतक के विधिक उत्तराधिकारियों को अभिलेख में दर्ज कर लिया गया। रिट याचिकाकर्तागण द्वारा तथ्यों, आधारों और प्रार्थना में संशोधन की मांग करते हुए एक संशोधन आवेदन भी दायर किया गया जिसे भी स्वीकार कर लिया गया। अनुतोष खंड में मांगे गए संशोधन को नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

“(ड) कुल 359 अभ्यर्थियों-आवेदकों के स्क्रीनिंग टेस्ट परिणाम के मूल अभिलेखों को तलब करने का आदेश निर्देश, जिसे श्री जटा शंकर त्रिपाठी, तत्कालीन वैयक्तिक निरीक्षक (एस एंड डब्ल्यू 1-III/पॉलिसी) [कर्मचारी कल्याण निरीक्षक] द्वारा माननीय सुश्री जैस्मीन अहमद (सदस्य (जे)) के न्यायालय, केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, इलाहाबाद पीठ के समक्ष दिनांक 25.07.2013 को प्रस्तुत किया गया है, [आवेदकों-याचिकाकर्तागण द्वारा ओए संख्या 1568/2009 में ओए संख्या 1233/2009 के साथ दायर निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में], जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, 2011 के निष्पादन प्रकरण संख्या 12 में विद्वान न्यायाधिकरण के दिनांक 10.07.2013 के निर्देश/आदेश के मद्देनजर।”

(च) माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों के आलोक में, न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए, प्रत्यर्थीगण को निर्देश दें कि वे गरीब आवेदकों-याचिकाकर्तागण को उनके निवारण के लिए मुआवजा दें और उनकी वित्तीय तंगी को कम करने के लिए सहायता प्रदान करें।

14. प्रकरण की कई तारीखों पर विस्तृत सुनवाई हुई और 13.08.2024 को प्रत्यर्थीगण को एक सारणीबद्ध चार्ट तैयार करने को कहा गया, जिसमें रिट याचिका के साथ संलग्न अनुसूची में दर्शाए गए रिट याचिकाकर्तागण की अनुपयुक्तता के कारणों का खुलासा किया गया हो। रिट न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में, प्रत्यर्थीगण ने एक सारणीबद्ध चार्ट दाखिल किया है।

15. प्रतिद्वंदी पक्षों की ओर से उपस्थित अधिवक्तागण द्वारा एक संयुक्त वक्तव्य दिया गया है कि उनकी दलीलें पूरी हो चुकी हैं और वे आगे कोई हलफनामा दाखिल करने का प्रस्ताव नहीं रखते हैं तथा रिट याचिका पर रिकॉर्ड में उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर निर्णय लिया जाएगा। पक्षों की सहमति से, रिट याचिका पर प्रवेश स्तर पर निर्णय लिया जा रहा है।

16. रिट याचिकाकर्तागण की विद्वान अधिवक्ता सुश्री अपर्णा बर्मन ने तर्क दिया है कि वर्तमान रिट याचिका में न्यायाधिकरण के निर्णय और आदेश को एक क्षण के लिए भी बरकरार नहीं रखा जा सकता है, क्योंकि न्यायाधिकरण ने पूरे विवाद को गलत समझा है और गलत दृष्टिकोण अपनाया है। उक्त प्रस्तुतिकरण को विस्तृत करते हुए, यह प्रस्तुत किया गया है कि 12.05.2011 को तय किए गए ओए संख्या 1568/2009 और

1233/2009 के मुकदमे के पिछले दौर में, रिट याचिकाकर्तागण के दावे को एक विशिष्ट निष्कर्ष के साथ समर्थन दिया गया था कि रिट याचिकाकर्ता स्क्रीनिंग में भाग लेने के लिए पूरी तरह से पात्र और योग्य थे क्योंकि उनके पास आकस्मिक श्रमिक के रूप में काम करने के 120 दिनों से अधिक का अनुभव था और आकस्मिक श्रमिक के रूप में शामिल किए जाने के समय उनकी आयु 28 वर्ष से कम थी और फिर प्रत्यर्थीगण के पास रिट याचिकाकर्तागण के दावे को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं है, जबकि उन्होंने यह माना कि रिट याचिकाकर्ता पात्र या योग्य नहीं थे क्योंकि उनकी नियुक्ति के संबंध में कोई पूर्व-अनुमोदन नहीं था।

17. प्रस्तुतीकरण यह है कि एक बार न्यायाधिकरण की समन्वय पीठ ने मुकदमेबाजी के एक पूर्व दौर में रिट याचिकाकर्तागण को राहत प्रदान की थी और रिट याचिकाकर्तागण के पक्ष में स्पष्ट रूप से स्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया गया था, जिसे रिट-ए संख्या 49441/2011 और रिट-ए संख्या 48102/2011 में उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दिए जाने पर प्रत्यर्थी-रेलवे के कहने पर खारिज कर दिया गया था, तो प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा उठाई गई उन्हीं आपत्तियों पर, न्यायाधिकरण द्वारा रिट याचिकाकर्तागण के दावे को अस्वीकार करना न्यायोचित नहीं था। तर्क यह है कि निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 की निष्पादन कार्यवाही में भी, 05.10.2012 को आदेश पारित किए गए थे, जिसमें प्रत्यर्थी-रेलवे को निर्दिष्ट अवधि के भीतर परिणाम घोषित करने की आवश्यकता थी और एक बार जब रिट ए संख्या 6879/2013 में प्रत्यर्थी-रेलवे के कहने पर चुनौती पर उक्त आदेश की 12.02.2013 को पुष्टि हो गई और इसे किसी उच्च न्यायिक मंच के समक्ष अपील में नहीं रखा गया, तो जो करने की आवश्यकता थी, वह केवल परिणाम घोषित करना था, रिट याचिकाकर्तागण को पूरी तरह से योग्य और पात्र मानना, खासकर जब रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में मुकदमेबाजी के पहले के दौर में परीक्षण की गई थी। संक्षेप में, प्रस्तुतीकरण यह है कि बाद की कार्यवाही में प्रत्यर्थी के लिए अपना रुख बदलना और रिट याचिकाकर्तागण को मुख्य रूप से उन आधारों पर असफल घोषित करते हुए यू-टर्न लेना खुला नहीं है चूंकि वे रिट याचिकाकर्तागण के पक्ष में निर्णयित थे। अतः, यह प्रार्थना की जाती है कि न्यायाधिकरण के आदेश को रद्द किया जाए और समग्र रूप से राहत प्रदान करने का निर्देश दिया जाए।

18. रिट याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री दिलीप कुमार पांडेय, जो प्रत्यर्थी रेलवे की ओर से उपस्थित हैं, के तर्क का प्रतिवाद करते हुए, कहा है कि न्यायाधिकरण के निर्णय और आदेश में वर्तमान कार्यवाही में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उनके अनुसार, रिट याचिकाकर्ता पात्र और योग्य नहीं हैं और उन्हें दिनांक 18.04.2013 को स्क्रीनिंग के परिणाम घोषित होने के बाद अनुपयुक्त ठहराया जाना उचित ही है। तर्क यह है कि ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में पारित दिनांक 12.05.2011 के आदेश में निहित एकमात्र निर्देश परिणाम घोषित करने का था और यदि रिट याचिकाकर्ता सफल पाए जाते हैं, तो उन्हें नियोजित और नियमित किया जाएगा। उन्होंने दलील दी कि चूंकि रिट याचिकाकर्ता 18.04.2013 को घोषित स्क्रीनिंग परीक्षा परिणाम में असफल पाए गए थे, इसलिए वे किसी भी राहत के हकदार नहीं हैं क्योंकि न्यायाधिकरण का यह इरादा कभी नहीं था कि रिट याचिकाकर्तागण को लाभ दिया जाए, इस तथ्य के बावजूद कि वे असफल रहे थे। तर्क यह है कि रिट याचिकाकर्ता केवल पूर्व-अनौपचारिक श्रमिक हैं जिन्होंने विभिन्न अवधियों में काम किया

था और कुछ रिट याचिकाकर्तागण की नियुक्ति या तो 120 दिनों से कम है जो अनिवार्य रूप से आवश्यक है और अन्य प्रकरण में कोई पूर्वव्यापी अनुमोदन नहीं हुआ है जो भारतीय रेलवे स्थापना संहिता में निहित प्रावधानों के तहत आवश्यक है। तर्क यह है कि रिट याचिकाकर्तागण के अधिकार को एक नियमित कर्मचारी के समान नहीं कहा जा सकता है क्योंकि केवल इसलिए कि उन्होंने एक पूर्व-अनौपचारिक श्रमिक के रूप में एक निश्चित अवधि के लिए काम किया था, यदि वे उपयुक्त हैं, तो उनकी स्थिति अस्थायी कर्मचारियों के रूप में परिवर्तित हो जाएगी लेकिन किसी भी तरह से उन्हें नियमितीकरण का हकदार नहीं कहा जा सकता है क्योंकि यह उपयुक्तता और रिक्ति की उपलब्धता के अधीन है।

19. प्रति-शपथ पत्र के साथ-साथ उनके द्वारा दायर अनुपूरक प्रति-शपथ पत्र का भी संदर्भ दिया गया है, जिसमें यह तथ्य दर्शाया गया है कि रिट याचिकाकर्तागण ने पूर्व-आकस्मिक कर्मचारी के रूप में 120 दिन की नियुक्ति पूरी नहीं की थी और उनकी नियुक्ति पूर्वव्यापी अनुमोदन के बिना की गई थी और इसके अलावा वे अधिक आयु के हैं और इस प्रकार, उन्हें अस्थायी दर्जा देने या नियमित करने पर विचार नहीं किया जा सकता है। **रिट-ए संख्या 1006/2016 (भारत संघ और 4 अन्य बनाम अशोक कुमार और 9 अन्य)** में 04.02.2016 को दिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है ताकि यह तर्क दिया जा सके कि **सचिव, कर्नाटक राज्य बनाम उमा देवी 2006 (4) एससीसी 1** के निर्णय के मद्देनजर और अध्याय 25 (आईआरईएम) के पैरा 2511 (सी) और नियम 102 (13) आर -1 के प्रावधानों के मद्देनजर आकस्मिक श्रमिकों को रेलवे कर्मचारी नहीं माना जाना चाहिए। इसके अलावा, दिनांक 17.12.2005 की इसी अधिसूचना के संबंध में समान स्थिति वाले पदाधिकारियों द्वारा अस्थायी दर्जा प्रदान करने और नियमितीकरण के लिए इसी प्रकार की चुनौती उठाई गई थी, जिसे इस न्यायालय ने यह कहते हुए खारिज कर दिया कि आकस्मिक श्रमिकों को नियमित कर्मचारी के समान दर्जा प्राप्त नहीं है।

20. हमने बार द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर गहन विचार किया है तथा अभिलेख का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया है।

21. तथ्य विवादास्पद नहीं हैं। यह विवाद का विषय नहीं है कि रिट याचिकाकर्ता पूर्व-अनौपचारिक श्रमिक हैं जो किसी समय प्रत्यर्थी रेलवे में कार्यरत थे। यह भी विवाद का विषय नहीं है कि 17.12.2005 को एक अधिसूचना प्रकाशित हुई थी जिसमें उन पूर्व-अनौपचारिक श्रमिकों को, जिन्होंने एक अवधि में या विभिन्न अवधियों में अनौपचारिक श्रमिक के रूप में 120 दिन की नियुक्ति पूरी कर ली थी, स्क्रीनिंग के लिए उपस्थित होने की आवश्यकता थी, बशर्ते कि अनौपचारिक श्रमिक के रूप में उनकी प्रारंभिक नियुक्ति के समय उनकी आयु 28 वर्ष से अधिक न हो और ऊपरी आयु सीमा के संबंध में, यह कट- ऑफ तिथि, 01.01.2006 को सामान्य (43), अन्य पिछड़ा वर्ग (45) और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (45) के प्रकरण में 40 वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए और आवेदन पत्र जमा करने की अंतिम तिथि 15.01.2006 थी। पक्षकारों ने यह भी स्वीकार किया है कि रिट याचिकाकर्तागण ने अन्य 359 अभ्यर्थियों के साथ स्क्रीनिंग परीक्षा में भाग लिया था, जो 10.10.2007 और 06.11.2007 के बीच आयोजित की गई थी। स्क्रीनिंग का परिणाम 10.12.2007

को घोषित किया गया, जिसमें केवल एक अभ्यर्थी अविनीशी प्रसाद को सफल घोषित किया गया। रिट याचिकाकर्तागण द्वारा परिणाम घोषित करने और सफल होने की स्थिति में सेवाओं के नियमितीकरण के लिए ओए संख्या 738/2009 और 741/2009 प्रस्तुत की गई थी, जिसका निपटारा प्रत्यर्थी-रेलवे को रिट याचिकाकर्तागण द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर निर्णय लेने के लिए करना था, जिसे 10.09.2009/17.09.2009 को अस्वीकार कर दिया गया। रिट याचिकाकर्तागण और अन्य द्वारा उक्त आदेश पर प्रश्न उठाते हुए मूल आवेदन संख्या 1568/2009 और 1233/2009 प्रस्तुत किए गए थे, जिन्हें समेकित कर 12.05.2011 को स्वीकार कर लिया गया। ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में पारित दिनांक 12.05.2011 के आदेश की मुख्य विशेषताएं निम्नानुसार संक्षेपित हैं: -

“(क) महाप्रबंधक के विशिष्ट अनुमोदन के बाद पूर्व आकस्मिक श्रमिकों को नियुक्त या तैनात करने की आवश्यकता नहीं है ;

(ख) आवेदकों (रिट याचिकाकर्तागण) ने 120 दिन का कार्य पूरा कर लिया है;

(ग) वे अधिक आयु के नहीं हैं।

(ख) उमा देवी (पूर्वोक्त) प्रकरण में निर्णय की अप्रयोज्यता ;

(ग) प्रत्यर्थी रेलवे को निर्देश दिया जाए कि वह रिट याचिकाकर्तागण को स्क्रीनिंग टेस्ट में सफल पाए जाने की एक शर्त के अधीन नियमित करे, इससे अधिक कुछ नहीं।”

22. उक्त आदेश को प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा रिट याचिकाओं, रिट-ए संख्या 49441/2011 और रिट-ए संख्या 48102/2011 के माध्यम से चुनौती दी गई, जिन्हें 30.08.2011 और 24.08.2012 को खारिज कर दिया गया। निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में मूल पक्ष द्वारा 05.10.2012 को पारित आदेशों के निष्पादन हेतु आदेश पारित किए गए थे, जिन्हें प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा रिट-ए संख्या 6879/2013 में चुनौती दी गई, जिसके परिणामस्वरूप 12.02.2013 को इसे खारिज कर दिया गया और प्रत्यर्थी रेलवे को तत्काल परिणाम घोषित करने का आदेश दिया गया। निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में न्यायाधिकरण के दिनांक 25.07.2013 के आदेश से यह भी पता चलता है कि न्यायाधिकरण प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा प्रस्तुत अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि दो या तीन अनुपयुक्त उम्मीदवारों को छोड़कर सभी उपयुक्त पाए गए। इसके बाद, प्रत्यर्थीगण ने निष्पादन प्रार्थना पत्र पर अपना प्रत्युत्तर इस तर्क के साथ प्रस्तुत किया कि रिट याचिकाकर्ता 18.04.2013 को घोषित स्क्रीनिंग परीक्षा परिणाम में असफल रहे। न्यायाधिकरण ने निष्पादन प्रार्थना पत्र संख्या 12/2011 में पारित दिनांक 03.09.2014 के आदेश द्वारा निष्पादन प्रार्थना पत्र का निपटारा कर दिया और रिट याचिकाकर्तागण को मूल पक्ष पर न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाने की स्वतंत्रता प्रदान की, जो कि विवादित आदेश पारित करने में उत्पन्न हुआ था, जो वर्तमान रिट याचिका में चुनौती का विषय है।

23. हमारे समक्ष निर्धारण हेतु जो पहला और सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है, वह यह है कि क्या न्यायाधिकरण द्वारा प्रत्यर्थी रेलवे के इस दृष्टिकोण का समर्थन करना न्यायोचित था कि रिट याचिकाकर्ता अनुपयुक्त थे, इस

तथ्य के आधार पर कि मुकदमेबाजी के पहले के दौर में रिट याचिकाकर्तागण के पक्ष में एक सकारात्मक निष्कर्ष निकला था, जो बरकरार है तथा यह माना गया है कि रिट याचिकाकर्ता उपयुक्त हैं।

24. उक्त मुद्दे का परीक्षण करने के लिए, ओए संख्या 1568/2009 और 1233/2009 में मुकदमेबाजी के पहले दौर में रेलवे का रुख देखना आवश्यक है। प्रासंगिक रूप से, प्रत्यर्थी रेलवे की चार आपतियां थीं - पहली, रिट याचिकाकर्ता पूर्व-अनौपचारिक श्रमिक थे जिन्होंने 120 दिन काम पूरा नहीं किया था, दूसरी, वे अधिक आयु के थे, तीसरी, महाप्रबंधक के किसी भी पूर्वव्यापी अनुमोदन के अभाव में, रिट याचिकाकर्तागण की नियुक्ति अवैध थी और चौथी, **उमा देवी (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में निर्णय रिट याचिकाकर्तागण को राहत देने के रास्ते में आएगा। न्यायाधिकरण ने ओ.ए. संख्या 1368/2009 और 1233/2009 में दिनांक 12.05.2011 को दिए गए अपने निर्णय में प्रत्यर्थी रेलवे के विरुद्ध उक्त आपतियों पर निर्णय दिया तथा यह माना कि रिट याचिकाकर्ता पात्र हैं, क्योंकि उनके पास पूर्व-आकस्मिक श्रमिक के रूप में 120 दिनों से अधिक कार्य करने का अनुभव है, वे अधिक आयु के नहीं हैं, पूर्वव्यापी अनुमोदन लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, उमा देवी (पूर्वोक्त) के प्रकरण में दिया गया निर्णय रिट याचिकाकर्तागण के आड़े नहीं आएगा तथा एक ऐसी योजना मौजूद है, जो स्क्रीनिंग और नियमित रोजगार के लिए लाभ प्रदान करती है।

25. दिलचस्प बात यह है कि, यद्यपि उक्त तथ्यात्मक निष्कर्षों को प्रत्यर्थी रेलवे द्वारा उच्च न्यायालय में **रिट-ए संख्या 49441/2011 और रिट-ए संख्या 48102/2011** के माध्यम से चुनौती दी गई थी, जिसके परिणामस्वरूप 30.08.2011 और 24.08.2012 के आदेशों के आधार पर बर्खास्तगी हुई। यदि रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता के संबंध में गुण-दोष का निर्धारण किए बिना स्क्रीनिंग परीक्षा के परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया जाता, तो स्थिति भिन्न हो सकती थी, लेकिन वर्तमान प्रकरण में स्थिति अलग है, न्यायाधिकरण ने रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता पर निर्णय दिया है और परिणाम घोषित करने का निर्देश दिया है। हालांकि, प्रत्यर्थी फिर से रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता पर सवाल उठाते हुए वही आपतियां उठा रहे हैं, जबकि आरोप लगा रहे हैं कि रिट याचिकाकर्तागण के पास न्यूनतम आवश्यक 120 दिनों का कार्यकाल नहीं है, महाप्रबंधक की कोई पूर्वव्यापी स्वीकृति नहीं थी, वे अधिक उम्र के हैं और **उमा देवी (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में फैसला उनके आड़े आएगा। न्यायालय की राय में, एक बार रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता के बारे में उक्त आपतियों का न्यायिक मंच द्वारा निर्णय हो जाता है और प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका को खारिज करके इसे अंतिम रूप मिल जाता है, तो इसे रिट याचिकाकर्तागण को लाभ देने से इनकार करने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। स्पष्ट रूप से, हम पाते हैं कि उक्त आपतियों को छोड़कर, कोई नई आपति नहीं उठाई गई है जो रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता के संबंध में प्रकरण की जड़ तक जाती है और ऐसी स्थिति में न्यायाधिकरण रिट याचिकाकर्तागण के दावे को नकारने में न्यायोचित नहीं था।

26. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 22808/2003 (भारत संघ बनाम श्री प्रवीण कुमार और अन्य) में 22.05.2003 को निर्णय दिया था कि वर्तमान प्रकरण के समान तथ्यों पर विचार किया जाए और यह निम्नानुसार देखा गया: -

“इस प्रकार उपरोक्त के मद्देनजर, न्यायाधिकरण द्वारा पहले अपने 2.4.2002 के फैसले और आदेश में दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों की योग्यता और शुद्धता जो भी हो, याचिकाकर्ता संघ ऑफ इंडिया के लिए न्यायाधिकरण के अलावा एक अपीलीय प्राधिकारी के रूप में बैठकर इस मुद्दे को फिर से खोलना खुला नहीं था। इसे न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश के निष्पादन/कार्यान्वयन की एक सीमित भूमिका सौंपी गई थी और कल्पना के किसी भी दायरे में यह उक्त फैसले के खिलाफ अपील में बैठने की क्षमता नहीं रख सकता था, और इस प्रकार, याचिकाकर्ता संघ ऑफ इंडिया द्वारा पारित 7.5.2002 के आदेश को 31.3.2003 के फैसले और आदेश द्वारा सही रूप से रद्द कर दिया गया है। हमें श्री बी. एन. सिंह द्वारा राजीव यादव (पूर्वोक्त) के फैसले पर भरोसा रखने वाले प्रस्तुतीकरण में कोई बल नहीं लगता है क्योंकि उक्त प्रकरण के तथ्य काफी अलग हैं और उक्त फैसले का अनुपात तत्काल प्रकरण में लागू नहीं होता है। एक बार यह माना जाता है कि उत्तर प्रदेश में अंदरूनी उम्मीदवार के लिए उपलब्ध एक रिक्ति सामान्य श्रेणी के उम्मीदवार के लिए थी जिसे आरक्षित श्रेणी के उम्मीदवार द्वारा नहीं भरा जा सकता था। प्रत्यर्थी संख्या 1 को उक्त रिक्ति के खिलाफ आवंटन की वैध उम्मीद थी।

इस प्रकार, उपरोक्त के मद्देनजर, हमारा सुविचारित मत है कि याचिकाकर्ता भारत संघ ने दिनांक 7.5.2002 का आदेश पारित करते समय अपनी क्षमता/अधिकार क्षेत्राधिकार के बिना कार्य किया है क्योंकि उसे न्यायाधिकरण के निर्णय और आदेश पर अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करने की भूमिका कभी नहीं सौंपी गई थी। उसे दिनांक 2.4.2002 के निर्णय और आदेश के क्रियान्वयन की सीमित भूमिका सौंपी गई है। न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 31.3.2002 के निर्णय और आदेश द्वारा इस आदेश को उचित रूप से रद्द किया गया है। इस प्रकरण में न्यायिक समीक्षा के सीमित अधिकार क्षेत्र में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने हेतु कोई विशेष विशेषता प्रस्तुत नहीं की गई है।

इसलिए, याचिका खारिज की जाती है। हालाँकि, प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, खर्च के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।”

27. प्रवीण कुमार (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निर्णय विशेष अपील (सिविल) संख्या 3004/2004 (भारत संघ बनाम प्रवीण कुमार एवं अन्य) में चुनौती का विषय था, जो 29.11.2004 को खारिज हो गया।

28. प्रकरण के तथ्यों के आधार पर, ऊपर उल्लिखित निर्णयों में उल्लिखित विधि के सिद्धांतों को लागू करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रत्यर्थी-रेलवे के लिए उन आधारों पर रिट याचिकाकर्तागण की उपयुक्तता पर प्रश्न उठाना उचित नहीं है जिन पर पहले ही निर्णय हो चुका है। हो सकता है कि किसी उम्मीदवार

की उपयुक्तता पर आपत्ति के संबंध में कुछ प्रासंगिक आधार प्रतीत हों, जो प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न कारकों के कारण उत्पन्न हो सकते हैं, हालाँकि, वर्तमान प्रकरण में हम पाते हैं कि वही पुरानी आपत्तियाँ उठाई जा रही हैं जिनमें रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता पर प्रश्न उठाया जा चुका है, जिन पर पहले ही निर्णय हो चुका है और जिन्हें उच्च मंच पर चुनौती दी जा चुकी है।

29. जहां तक **अशोक कुमार (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में समन्वय पीठ के फैसले का संबंध है, इस प्रस्ताव पर कोई विवाद नहीं है कि एक पूर्व-अनौपचारिक कर्मचारी/श्रमिक को अस्थायी दर्जा दिए जाने या नियमित किए जाने का कोई विधिक अविभाज्य अधिकार नहीं है और यह उसमें बनाए गए नियमों के अनुपालन और नियोक्ता द्वारा नियम द्वारा प्रदान की जाने वाली विधिक आवश्यकता की पूर्ति के अधीन है। हालांकि, वर्तमान प्रकरण में एक मामूली अंतर है कि इस प्रकरण में, स्क्रीनिंग के लिए रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता का निर्णय एक न्यायालय द्वारा किया गया था, जिसमें प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा उठाई गई आपत्तियों को नकारते हुए उन्हें पात्र माना गया था और एकमात्र निर्देश यह था कि यदि रिट याचिकाकर्तागण को सफल होना है तो स्क्रीनिंग का परिणाम घोषित किया जाए, लेकिन प्रत्यर्थीगण ने पहले से तय की गई पात्रता के अलावा कोई नई आपत्ति नहीं की है। **अशोक कुमार (पूर्वोक्त)** प्रकरण में, खंडपीठ को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा था, जिसमें आकस्मिक श्रमिकों ने 120 दिन काम नहीं किया था और इसके अलावा खंडपीठ ने यह भी कहा था कि केवल पूछने पर पूर्व-आकस्मिक श्रमिक की स्थिति को रेलवे के नियमित कर्मचारी में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है।

30. स्पष्टतः, वर्तमान प्रकरण में रिट याचिकाकर्तागण के पक्ष में सकारात्मक निष्कर्ष निकला है, जिसमें उन्हें पात्र माना गया है और मुकदमेबाजी के पिछले दौर में न्यायाधिकरण के आदेश के आधार पर प्रत्यर्थी-रेलवे को जो एकमात्र कार्य सौंपा गया था, वह था कि यदि वे सफल होते, तो उनका परिणाम घोषित किया जाता, लेकिन किसी भी तरह से यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी-रेलवे को उन मुद्दों को फिर से खोलने का कोई लाभ दिया गया है, जिन पर पहले ही निर्णय हो चुका था।

31. अब प्रश्न यह उठता है कि रिट याचिकाकर्तागण को क्या राहत दी जाए। प्रत्यर्थी-रेलवे की ओर से मंडल कार्मिक अधिकारी, उत्तर मध्य रेलवे, प्रयागराज मंडल द्वारा दिनांक 31.03.2023 को शपथपूर्वक एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है, जिसमें 01.01.2006 की स्थिति के अनुसार स्क्रीनिंग के संबंध में विचार के समय आयु दर्शाने वाला एक चार्ट पुनः प्रस्तुत किया गया है। संदर्भ हेतु उसी को नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

क्र.सं.	अभ्यर्थी का नाम	स्क्रीनिंग क्रमांक	जाति	जन्मतिथि	नियुक्ति तिथि	शैक्षिक योग्यता	विचार के समय अर्थात् 01.01.2006 को आयु
1	2	3	4	5	6	7	8
1	रमेशचन्द्र बारी	162	ओबीसी	19.03.64	16.04.82	12	41/09/11

2	प्रकाश कुमार	113	ओबीसी	08.08.65	10.05.86	12	41/04/10
3	विजय सिंह	149	ओबीसी	13.05.67	08.04.86	9	38/07/16
4	उपेन्द्र कुमार	324	एससी	06.11.66	19.01.85	8	39/01/23
5	राम अभिलाष सिंह	128	ओबीसी	05.01.66	24.04.84	10	39/01/24
6	चेतन राज	15	ओबीसी	05.02.64	30.06.82	10	41/10/25
7	रईस अहमद	165	ओबीसी	08.07.64	16.04.84	8	41/05/24
8	जाहिद अली	52	ओबीसी	06.07.68	09.07.86	10	37/04/24
9	राम गोपाल	81	ओबीसी	03.01.64	16.07.86	12	41/08/27
10	राकेश कुमार	123	ओबीसी	06.12.64	11.05.85	12/ आईटीआई	41/00/24
11	अनिल कुमार	41	एससी	17.06.62	01.01.81	8	43/06/12
12	सुरेश चन्द	70	सामान्य	13.07.67	17.04.85	10	38/09/16
13	राम चन्द्र	125	ओबीसी	15.08.63	29.05.84	8	42/04/14
14	भोलानाथ	26	एससी	04.07.63	27.05.93	10	42/05/25

32. जहाँ तक मूल आवेदक रमेश चंद्र बारी का प्रश्न है, उनकी मृत्यु हो चुकी है और शेष रिट याचिकाकर्तागण का प्रश्न है, वे आज की तिथि में अस्थायी/नियमित दर्जा प्राप्त करने के लिए निर्धारित आयु से अधिक आयु के हैं। चूँकि रिट याचिकाकर्ता लंबे समय से, कई दशकों से, बेरोजगार हैं, इसलिए इस न्यायालय के लिए उन्हें नियमित दर्जा प्रदान करने हेतु निर्देश जारी करना उचित नहीं होगा। न्यायालय इस तथ्य को भी ध्यान में रखता है कि रिट याचिकाकर्ता न्यायिक मंचों के समक्ष अपने दावों को प्रस्तुत करते रहे हैं और उनके पास उन्हें पात्र घोषित करने वाला सकारात्मक आदेश तथा परिणाम घोषित करने का आदेश है। साथ ही, यह भी ध्यान में रखता है कि रिट याचिकाकर्तागण की पात्रता के संबंध में प्रत्यर्थी-रेलवे द्वारा उठाई गई आपत्तियाँ वही हैं जिन पर न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जा चुका है और अभिलेखों में कोई नई और वैध आपत्ति उपलब्ध नहीं है जिससे रिट याचिकाकर्तागण को लाभ से वंचित किया जा सके। अतः, प्रकरण के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, बहाली के बदले में मुआवज़ा देना उचित होगा।

33. तदनुसार, रिट याचिका **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है। ओए संख्या 330/00370/2015 में पारित दिनांक 16.02.2018 के निर्णय एवं आदेश को अपास्त किया जाता है। दिनांक 17.12.2005 की अधिसूचना और वर्ष 2007 में आयोजित स्क्रीनिंग परीक्षा के अनुसरण में नियमित रिक्तियों के विरुद्ध रिट याचिकाकर्तागण को नियुक्ति आदेश जारी करने की राहत अस्वीकार की जाती है। प्रत्यर्थी-रेलवे को आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से दो माह की अवधि के भीतर प्रत्येक रिट याचिकाकर्ता/उनके विधिक उत्तराधिकारियों को 5 लाख रुपये का मुआवज़ा देने का परमादेश जारी किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 483

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 23.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-बी संख्या 13084 सन् 1983

के साथ

रिट-बी संख्या 13085 सन् 1983

श्रीमती पुरुषोत्तमी

...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड व अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

सिद्धेश्वरी प्रसाद, हरिद्वार सिंह, राम चंद्र यादव

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता:

एस.सी., बी.के. त्रिपाठी, रामेश्वर प्रसाद शुक्ला, एस. राय, सुधांशु प्रताप सिंह, वी.के. सिंह

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 - धारा 49 - अधिकार क्षेत्र का निषेध - चकबंदी कार्यवाही में सिरदार घोषित व्यक्तियों द्वारा उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम और भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 229-बी के तहत घोषणात्मक वाद दायर किया गया - राजस्व बोर्ड ने विचारण और अपीलीय न्यायालयों के समवर्ती निष्कर्षों को रद्द कर दिया - यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब चकबंदी के दौरान धारा 9ए(2) के तहत खातेदार के अधिकार का न्यायनिर्णयन किया गया और मिसिलबंद रजिस्टर में दर्ज किया गया, तो धारा 49 के तहत निषेध लागू नहीं होता - राजस्व बोर्ड ने विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार किए बिना निष्कर्षों को पलटने में गलती की - आदेश रद्द किया गया। (प्रस्तर 13, 14, 17, 18 और 20)

अभिनिर्धारित:

इस न्यायालय ने 2016 (133) आरडी 800, अदालत यादव बनाम डी.एम./डी.डी.सी एवं अन्य मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि किसी अभिलेख की वास्तविकता से संबंधित प्रश्न का निर्णय किया जाना है तो मिसिलबैंड में उसकी प्रविष्टि की जांच की जानी चाहिए... (प्रस्तर 13)

चूँकि चकबंदी प्रक्रिया के दौरान पारित आदेश को राजस्व अभिलेखों में शामिल नहीं किया जा सका, अतः याचिकाकर्ताओं की ओर से उन्हें संबंधित भूखंड का सिरदार घोषित करने के लिए उत्तर प्रदेश चकबंदी एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद दायर किया गया और परीक्षण न्यायालय ने वादी के वाद पर केवल चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर निर्णय नहीं दिया, बल्कि वादी एवं प्रत्यर्थी दोनों द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर निर्णय दिया। उप लेखपाल की ओर से संबंधित पक्ष की जाँच की गई और ग्राम सभा प्रधान की ओर से पक्ष की जाँच की गई। परीक्षण न्यायालय ने चकबंदी प्रपत्र 2ए, 41 एवं 45 में की गई प्रविष्टियों को ध्यान में रखते हुए यह माना कि वादी वाद में शामिल भूखंड के सिरदार हैं। अवर न्यायालय द्वारा यह तथ्य भी दर्ज किया गया कि वाद उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 द्वारा वर्जित नहीं है क्योंकि चकबंदी न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ताओं/वादी के पक्ष में निर्णय दिया गया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने राज्य द्वारा दायर प्रथम अपील को खारिज करते हुए अवर न्यायालय के फैसले और डिक्री को बरकरार रखा है। राजस्व बोर्ड ने राज्य द्वारा दायर द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुए अवर न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्ष को उचित तरीके से पलटे बिना अवर न्यायालय और अपीलीय न्यायालय के फैसले और डिक्री को रद्द कर दिया है। यह भी उल्लेख करना प्रासंगिक है कि राजस्व बोर्ड ने अवर न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित फैसले और डिक्री को रद्द करते हुए और वादी के मुकदमे को खारिज करते हुए द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुए कोई भी महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न/निर्धारण बिंदु तैयार नहीं किया है। (प्रस्तर 14)

उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2024 (163) आरडी 691, प्रशांत सिंह एवं अन्य बनाम मीना एवं अन्य, के मामले में उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के दायरे पर विचार किया है। उपर्युक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कर्बलाई बेगम बनाम मोहम्मद सईद (1980) 4 एससीसी 396 के निर्णय के साथ-साथ सीता राम बनाम छोटा बोंडे एवं अन्य 1991 अनुपूरक (1) 556 के निर्णय पर भी विचार किया है। (प्रस्तर 17)

कर्बलाई बेगम (उपरोक्त) से लेकर प्रशांत सिंह (उपरोक्त) तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात पर विचार करते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सह-किरायेदारी का दावा उत्तर प्रदेश राज्य विधि आयोग अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित नहीं होगा, लेकिन अन्य दावे उत्तर प्रदेश राज्य विधि आयोग अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वर्जित होंगे। (प्रस्तर 18)

राजस्व परिषद द्वारा द्वितीय अपील को स्वीकार करने और वादी के घोषणा-पत्र के वाद को गुप्त निर्णय द्वारा खारिज करने का आदेश विधि की दृष्टि में मान्य नहीं हो सकता। राजस्व परिषद द्वारा जिस प्रकार आक्षेपित निर्णय पारित किया गया है, वह द्वितीय अपील को खारिज करने का निर्णय हो सकता है, जो निम्न न्यायालयों के निर्णय की पुष्टि करता है, लेकिन यह उलटने का निर्णय नहीं हो सकता जिसके द्वारा द्वितीय अपील को स्वीकार किया गया हो और द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 229बी के अंतर्गत वाद को खारिज कर दिया गया हो। (पैरा 20)

याचिका स्वीकृत। (ई-14)**उद्धृत मामलों की सूची:**

1. अदालत यादव बनाम डी.एम./डी.डी.सी., 2016 (133) आरडी 800
2. प्रशांत सिंह बनाम मीना, 2024 (163) आरडी 691
3. करबलाई बेगम बनाम मोहम्मद सईद, (1980) 4 एससीसी 396
4. शारदा देवी बनाम राजस्व बोर्ड, 1985 आरडी 93

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. रिट-बी संख्या 13084/1983 में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दायर प्रत्युत्तर शपथपत्र तथा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मिसिलबंद रजिस्टर को अभिलेख पर लिया गया।

2. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री राम चन्द्र यादव, राज्य-प्रत्यर्थियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार श्रीवास्तव तथा प्रत्यर्थी-गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला को सुना गया।

3. चूंकि दोनों याचिकाओं में समान मुद्दे शामिल हैं, इसलिए दोनों रिट याचिकाओं पर एक साथ सुनवाई की जा रही है और एक समान आदेश द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।

4. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (जिसे आगे "उत्तर प्रदेश ज़मींदारी अधिनियम एवं भूमि सुधार अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद पुरुषोत्तमी और चौथी द्वारा राज्य और गाँव सभा को प्रत्यर्थी बनाते हुए दायर किया गया था। पुरुषोत्तमी द्वारा दायर वाद संख्या 150/235/75 के रूप में पंजीकृत किया गया था और चौथी द्वारा दायर वाद संख्या 151/1977 के रूप में पंजीकृत किया गया था, जिसमें यह तर्क दिया गया था कि वादी संबंधित भूखंड के सिरदार हैं और पिछले 30 वर्षों से संबंधित भूखंड पर उनका कब्जा है। उन्होंने आगे दलील दी कि उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (जिसे आगे "उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम" कहा जाएगा) की धारा 9 के अंतर्गत कार्यवाही में, चकबंदी अधिकारी द्वारा दिनांक 23.2.1967 को एक आदेश पारित किया गया था जिसमें पुरुषोत्तमी और चौथी को संबंधित भूखंड का सिरदार घोषित किया गया था, लेकिन प्रविष्टियों को तदनुसार सही नहीं किया गया, इसलिए यह वाद दायर किया गया। राज्य और गाँव सभा द्वारा वाद में लगाए गए आरोपों का खंडन करते हुए लिखित बयान दायर किया गया। अवर न्यायालय के समक्ष सात मुद्दे तय किए गए और पक्षकारों ने अपने मामले के समर्थन में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किए। अवर न्यायालय ने दिनांक 28.1.1978

के निर्णय और डिक्री द्वारा याचिकाकर्ताओं (पुरुषोत्तम और चौथी) द्वारा दायर उपर्युक्त वाद में निर्णय दिया। अवर न्यायालय के दिनांक 28.1.1978 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध, केवल उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा आयुक्त के समक्ष दो अपीलें दायर की गईं। राज्य द्वारा दायर अपील को अपील संख्या 669-ए-1978 और 668-ए-1978 के रूप में पंजीकृत किया गया। अपर आयुक्त, गोरखपुर मंडल, गोरखपुर ने उपर्युक्त अपील को एक साथ मिलाकर सुनवाई की और दिनांक 26.10.1979 के निर्णय द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर अपील को यह तथ्य दर्ज करते हुए खारिज कर दिया कि राज्य द्वारा उठाया गया तर्क उत्तर प्रदेश राज्य आय-आय अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत प्रतिबंधित है। प्रथम अपीलीय न्यायालय/अपर आयुक्त के दिनांक 26.10.1979 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद के समक्ष दो द्वितीय अपीलें दायर की गईं, जिन्हें अपील संख्या 36 और 37 वर्ष 1979-1980 के रूप में पंजीकृत किया गया। उपर्युक्त अपीलों को राजस्व बोर्ड के विद्वान सदस्य द्वारा एक साथ मिलाकर सुना गया और दिनांक 14.9.1983 के निर्णय के अनुसार, उपर्युक्त दूसरी अपीलों को अनुमति दी गई और परीक्षण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अलग रखा गया और साथ ही वादी के मुकदमे को खारिज कर दिया गया, इसलिए निम्नलिखित राहत के लिए रिट याचिका संख्या 13084/1983 और 13085/1983 दायर की गईं:

रिट-बी संख्या 13084 सन् 1983

(क) दिनांक 14 सितंबर, 1983 (अनुलग्नक 3) के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के उद्देश्य से मामले का अभिलेख मंगवाने हेतु उत्प्रेषण-पत्र (सर्टिओरारी) के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और उसे निरस्त करना;

(ख) प्रत्यर्थियों को रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान आक्षेपित आदेश को प्रभावी न करने का आदेश देते हुए परमादेश के रूप में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;

रिट-बी संख्या 13085 सन् 1983

"(क) दिनांक 14 सितंबर, 1983 (संलग्नक 3) के आक्षेपित आदेश को निरस्त करने के उद्देश्य से मामले का अभिलेख मंगवाने हेतु उत्प्रेषण-पत्र (सर्टिओरारी) की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और उसे निरस्त करना;

(ख) प्रत्यर्थियों को रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान आक्षेपित आदेश को प्रभावी न करने का आदेश देते हुए परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना;"

5. उपर्युक्त रिट याचिकाएँ 25.10.1983 को स्वीकार कर ली गईं और राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी गई। उपर्युक्त आदेश दिनांक 25.10.1983 के अनुसरण में, गाँव सभा ने प्रति-शपथपत्र दायर किया है, लेकिन राज्य की ओर से कोई प्रति-शपथपत्र दायर नहीं किया गया है।

6. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 9ए (2) के अंतर्गत चकबंदी कार्यवाही के दौरान, दिनांक 23.2.1967 को दोनों रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ताओं का नाम प्रश्नगत भूखंड पर सिरदार के रूप में दर्ज करने का आदेश पारित किया गया था, लेकिन यह आदेश राजस्व अभिलेखों में प्रभावी नहीं हुआ और उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत गाँव को गैर-अधिसूचित कर दिया गया है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि चकबंदी कार्यवाही के दौरान पारित आदेशों को ध्यान में रखते हुए, याचिकाकर्ताओं की ओर से उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद दायर किया गया था, जिसमें उन्हें प्रश्नगत भूखंड का सिरदार घोषित किया गया था। उन्होंने यह प्रदर्शित करने के लिए कि दिनांक 23.2.1967 का आदेश उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 9-ए (2) के अंतर्गत कार्यवाही में चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित किया गया था, वर्ष 1967-1968 के मिसिलबंद रजिस्टर की प्रमाणित प्रति भी प्रस्तुत की। उन्होंने आगे कहा कि अवर न्यायालय ने यू.पी.जेड.ए. और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के तहत मुकदमे में मुद्दे तय किए हैं और राज्य के साथ-साथ गाँव सभा को विधि के अनुसार साक्ष्य पेश करने का पूरा अवसर दिया है। उन्होंने आगे कहा कि दोनों पक्षों ने साक्ष्य पेश किए हैं और अवर न्यायालय ने यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के साथ-साथ अन्य मुद्दों से संबंधित मुद्दों पर उचित तरीके से फैसला किया है और याचिकाकर्ता-वादी को प्रश्नगत भूखंड का सिरदार घोषित किया है। उन्होंने आगे दलील दी कि केवल उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर प्रथम अपील को ही विधि के अनुसार दोनों पक्षों के मामले पर विचार करते हुए खारिज कर दिया गया था। उन्होंने आगे दलील दी कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर द्वितीय अपील को परीक्षण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यों पर उचित तरीके से विचार किए बिना मनमाने ढंग से स्वीकार कर लिया गया है। उन्होंने आगे दलील दी कि द्वितीय अपील को बिना किसी अनुवर्ती विधि प्रश्न/निर्धारण बिंदु को तैयार किए स्वीकार कर लिया गया है और आक्षेपित आदेश द्वारा परीक्षण न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय के आदेश को रद्द कर दिया गया है और वाद को मनमाने ढंग से खारिज कर दिया गया है। उन्होंने आगे दलील दी कि राजस्व बोर्ड द्वारा पारित निर्णय और डिग्री रद्द किए जाने योग्य है और परीक्षण न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा जाना चाहिए।

7. राज्य प्रत्यर्थियों के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री अभिषेक कुमार श्रीवास्तव और प्रत्यर्थी गाँव सभा के विद्वान अधिवक्ता श्री रामेश्वर प्रसाद शुक्ला ने तर्क दिया कि चकबंदी अधिकारी के आदेश की प्रति रिट याचिका के साथ प्रस्तुत नहीं की गई है, अतः चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 23.2.1967 के आदेश के संबंध में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्क पर विचार नहीं किया जा सकता। उन्होंने आगे तर्क दिया कि याचिकाकर्ताओं का नाम चकबंदी प्रपत्र 23 और 45 में दर्ज नहीं है, अतः याचिकाकर्ताओं को चकबंदी प्रक्रिया के दौरान आपत्ति/अपील/पुनरीक्षण दायर करके उचित कार्यवाही शुरू करनी चाहिए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि राज्य द्वारा राजस्व परिषद के समक्ष दायर द्वितीय अपील को उचित रूप से स्वीकार किया गया है, जिसमें अवर न्यायालय और प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय/आदेश को निरस्त कर दिया गया है। उन्होंने आगे दलील दी कि राजस्व बोर्ड द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष के मद्देनजर, द्वितीय अपील में राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ताओं द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी के तहत

दायर वाद, उत्तर प्रदेश राज्य भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 49 के प्रावधानों के मददेनजर वर्जित है। उन्होंने आगे दलील दी कि यह भूमि उत्तर प्रदेश राज्य भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम की श्रेणी 132 के अंतर्गत आती है, इसलिए याचिकाकर्ता/प्रत्यर्थी के पक्ष में कोई अधिकार अर्जित नहीं होगा और राजस्व बोर्ड ने राज्य द्वारा दायर द्वितीय अपील को उचित ही स्वीकार किया है।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्क पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि याचिकाकर्ताओं द्वारा उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 229-बी के तहत दायर दो वादों पर विचारण न्यायालय ने यह निर्णय देते हुए निर्णय दिया था कि याचिकाकर्ता संबंधित भूखंड के सिरदार हैं। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा दायर प्रथम अपील को अपर आयुक्त ने खारिज कर दिया था, लेकिन राज्य द्वारा दायर द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया गया है, जिसमें परीक्षण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय/डिक्री को भी रद्द कर दिया गया है और वादी का वाद खारिज कर दिया गया है।

10. इस मामले में निहित विवाद को समझने के लिए, उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम की धारा 229-बी और उत्तर प्रदेश राज्य भूमि सुधार अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत निहित प्रावधानों का अवलोकन प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार हैं:

उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 229बी

229बी. किसी जोत या उसके किसी भाग का असामी होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा घोषणात्मक वाद।

[(1) कोई भी व्यक्ति जो किसी जोत या उसके किसी भाग का असामी होने का दावा करता है, चाहे वह अनन्य रूप से हो या किसी अन्य व्यक्ति के साथ संयुक्त रूप से, ऐसी जोत या भाग में असामी के रूप में अपने अधिकारों की घोषणा के लिए भूस्वामी पर वाद दायर कर सकता है, जैसा भी मामला हो।]

(2) उप-धारा (1) के अंतर्गत किसी भी वाद में, भूस्वामी के अधीन असामी होने का दावा करने वाले किसी अन्य व्यक्ति को प्रत्यर्थी के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा।

(3) उपधारा (1) और (2) के उपबंध, यथावश्यक परिवर्तनों सहित, भूमिधर होने का दावा करने वाले व्यक्ति द्वारा दायर वाद पर इस संशोधन के साथ लागू होंगे कि "भूमिधारक" शब्द के स्थान पर "राज्य सरकार और गांव सभा" शब्द प्रतिस्थापित कर दिए जाएं।

उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 49

"धारा 49. सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का निषेध- तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किसी क्षेत्र में स्थित भूमि के संबंध में खातेदारों के अधिकारों की घोषणा और न्यायनिर्णयन, जिसके लिए [धारा 4 की उपधारा (2) के अधीन] अधिसूचना जारी की गई है, या चकबंदी कार्यवाहियों से उत्पन्न किसी अन्य अधिकार का न्यायनिर्णयन, जिसके संबंध में इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी, इस अधिनियम के उपबंधों के अनुसार किया जाएगा और कोई भी सिविल या राजस्व न्यायालय ऐसी भूमि में अधिकारों के संबंध में या किसी अन्य मामले के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही स्वीकार नहीं करेगा, जिसके लिए इस अधिनियम के अधीन कार्यवाही की जा सकती थी या की जानी चाहिए थी:

परंतु इस धारा की कोई भी बात सहायक कलेक्टर को उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 122-ख के अधीन कार्यवाही आरंभ करने से नहीं रोकेगी। किसी भूमि का, जिसका कब्जा इस अधिनियम के प्रावधानों के तहत या उसके अनुसार किसी गांव सभा को सौंप दिया गया है या सौंप दिया जाना समझा गया है।"

11. यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 9-ए (2) के अंतर्गत केस संख्या 1621/162 के संबंध में 1967 और 1968 के मिसिलबंद रजिस्टर का अवलोकन भी प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:

"मसिलिवन्द रजिस्टर चकबन्दी सन् 1967-68 बावत् न्यायालय चकबन्दी अधिकार क्षेत्र नं० 2 लालगंज, जिला आजमगढ़ मु० नं० 1621/162 धारा 9(क)2 जो० च० अधि० पुरुषोत्तमी बनाम तलिक धारी व चौथी बनाम तलिकधारी ता० फै० 23.02.67 की छाया प्रतिलिपि फोलियों के साथ संलग्न है।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
16 2 1/ 1 62	इनव लने ला दौल ताबा द	पुर षोत मी बना म तिल कथा री चौ थी बना म	आ०न० 587,4944 610/3,354,551/2, 551/1/1,508,909/ 1/1 मि०,769 मि० 110 मि० पर वादिनी की सीरदारी होना चाहिए 380,440 मि०, 441 मि०,289 मि० 281 मि०, 274 मि०, 503, 463/2 मि. 463/3 पर वादी की		3 1/ 7/ 6 3		खाता नं० 88 ग्राम इनवल के नम्बारा न पर गांव सभा का इन्द्राज खारिज		23.3. 67	1235 22/1/68	

		तिल कधा री	सीरदारी चाहिए।	होनी				कर के परषोत्त मी बेवा सेवक के नाम बतौर सीरदार दर्ज हो। खाता नं0 33 ग्राम इनवल के नम्बरा न पर गांव सभा का इन्द्राज खारिज हो कर चौथी पुत्र वरन के नाम बतौर सीरदार दर्ज हो।			

12. अभिलेख में दर्ज और ऊपर उद्धृत मिसिलबंद रजिस्टर की प्रमाणित प्रति का अवलोकन पूर्णतः दर्शाता है कि ये मामले चकबंदी प्रक्रिया के दौरान दायर किए गए थे और इनका निर्णय दिनांक 23.2.1967 के आदेश द्वारा प्रकरण संख्या 1621/162 में किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ताओं को प्रश्नगत भूखंड का सीरदार घोषित किया गया था।

13. इस न्यायालय ने **2016 में प्रस्तुत मामले (133) आर.डी. 800, अदालत यादव बनाम डी.एम./डी.डी.सी. एवं अन्य** में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि किसी अभिलेख की प्रामाणिकता से संबंधित प्रश्न का निर्णय किया जाना है, तो मिसिलबंद में उसकी प्रविष्टि की जाँच की जानी आवश्यक है। **अदालत यादव (उपरोक्त)** में दिए गए निर्णय का पैरा संख्या 8 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

"8. जहाँ तक अपील स्वीकार करने और चकबंदी अधिकारी के दिनांक 31.03.1981 के आदेश को रद्द करने का प्रश्न है, पक्षकारों के बीच प्रकरण संख्या 139/1980 में चकबंदी अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 31.03.1981 के आदेश की सत्यता के संबंध में गंभीर विवाद है। यह आदेश लगभग 12 वर्षों तक चकबंदी/राजस्व अभिलेखों में प्रभावी नहीं रहा, जिसके कारण याचिकाकर्ता के पूर्ववर्तियों को 1993 में एक और वाद अर्थात् वाद संख्या 193/1993 दायर करना पड़ा और इस अवधि के दौरान जगर नाथ और उसके बाद बुनेला यादव और पतरू यादव का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज रहा। प्रत्यर्थियों द्वारा दिनांक 31.03.1981 के आदेश की सत्यता को चुनौती दी गई है। इस प्रकार, इसकी सत्यता सिद्ध करने का भारी दायित्व याचिकाकर्ता पर था। याचिकाकर्ता ने दिनांक 31.03.1981 (06.08.1981 को जारी) के आदेश की प्रमाणित प्रति और दिनांक 04.04.2002 को जारी गोस्वारा रजिस्टर की प्रमाणित प्रति की फोटोस्टेट प्रति दाखिल की है। नियम 25 (ई) (ii) और (एफ) के तहत सहायक चकबंदी अधिकारी को दो श्रेणियों (धारा 9-ए और धारा 9-बी) के मामलों को अलग-अलग मिसिलबंद रजिस्टर में दर्ज करना आवश्यक है। नियम 30 के अनुसार, धारा 12 के तहत मामलों को भी पंजीकृत किया जाना आवश्यक है। आजकल गोस्वारा रजिस्टर (राजस्व अभिलेख कक्ष, कलेक्ट्रेट द्वारा संधारित एक रजिस्टर, जो उसे सौंपे गए कागजातों को दर्ज करने के लिए होता है) में जालसाजी करना बहुत आसान हो गया है। यदि किसी अभिलेख की प्रामाणिकता से संबंधित प्रश्न का निर्णय करना हो, तो मिसिलबंद रजिस्टर में उसकी प्रविष्टि की जाँच आवश्यक है। वर्तमान मामले में, उप संचालक चकबंदी के न्यायालय से, संबंधित चकबंदी अधिकारी एवं प्रभारी राजस्व अभिलेख कक्ष, कलेक्ट्रेट देवरिया को मिसिलबंद रजिस्टर प्रस्तुत करने हेतु प्रार्थना पत्र भेजा गया था। चकबंदी अधिकारी के रीडर ने बताया कि ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि वर्ष 1980-1981 का मिसिलबंद रजिस्टर अभिलेख कक्ष में भेजा गया था। प्रभारी राजस्व अभिलेख कक्ष, कलेक्ट्रेट देवरिया ने बताया कि मिसिलबंद रजिस्टर गोस्वारा रजिस्टर में पृष्ठांकित नहीं है। याचिकाकर्ता ने अपने दिनांक 14.9.2013 के आवेदन में यह भी उल्लेख किया है कि मिसिलबंद रजिस्टर का पता नहीं चल पा रहा है। इस न्यायालय के समक्ष, अधिनियम की धारा 12 के तहत मामलों से संबंधित मिसिलबंद रजिस्टर की प्रमाणित प्रति, 19.12.1979 से 27.10.1980 तक प्रत्यर्थियों द्वारा दायर की गई थी, जिसमें क्रम संख्या 139 पर, ओम प्रकाश बनाम राम श्री और अन्य का मामला पंजीकृत था। इस प्रकार यह पूर्णतः सिद्ध हो गया कि वर्ष 1980-1981 का कोई मिसिलबंदी रजिस्टर नहीं था। प्रत्यर्थी-1 का यह निष्कर्ष कि वाद संख्या 139/1980 में पारित दिनांक 31.03.1981 का आदेश संदिग्ध/मनगढ़ंत था, किसी भी प्रकार से अवैध नहीं है। यदि मामला मिसिलबंदी रजिस्टर में विधिवत दर्ज नहीं है, तो चकबंदी अधिकारी द्वारा मनगढ़ंत मामले की सुनवाई की अनुमति नहीं दी जाएगी, विशेष रूप से अधिनियम की धारा 52 के तहत अधिसूचना के बाद। हालाँकि, रिमांड आदेश के कारण, याचिकाकर्ता के पास अभी भी मिसिलबंदी रजिस्टर में अपने मामले के पंजीकरण के संबंध में चकबंदी अधिकारी को संतुष्ट करने का अवसर है। अतः इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

हालाँकि, चकबंदी अधिकारी इस न्यायालय के किसी भी अवलोकन से प्रभावित हुए बिना इस मुद्दे पर नए सिरे से निर्णय लेंगे।"

14. चूँकि चकबंदी प्रक्रिया के दौरान पारित आदेश को राजस्व अभिलेख में शामिल नहीं किया जा सका, अतः याचिकाकर्ताओं की ओर से उन्हें संबंधित भूखंड का सीरदार घोषित करने के लिए उत्तर प्रदेश चकबंदी एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 229-बी के अंतर्गत वाद दायर किया गया और परीक्षण न्यायालय ने वादी के वाद पर केवल चकबंदी न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर निर्णय नहीं दिया, बल्कि वादी एवं प्रत्यर्थी दोनों द्वारा प्रस्तुत मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों के आधार पर निर्णय दिया। राज्य लेखपाल की ओर से संबंधित पक्ष की जाँच की गई और ग्राम सभा प्रधान की ओर से पक्ष की जाँच की गई। परीक्षण न्यायालय ने चकबंदी प्रपत्र 2ए, 41 एवं 45 में की गई प्रविष्टियों को ध्यान में रखते हुए यह माना कि वादी वाद में शामिल भूखंड के सीरदार हैं। परीक्षण न्यायालय द्वारा यह तथ्य भी दर्ज किया गया कि उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के अंतर्गत वाद वर्जित नहीं है क्योंकि चकबंदी न्यायालय द्वारा याचिकाकर्ताओं/वादी के पक्ष में निर्णय दिया गया था। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने राज्य द्वारा दायर प्रथम अपील को खारिज करते हुए अवर न्यायालय के निर्णय और डिक्री को बरकरार रखा है। राजस्व बोर्ड ने राज्य द्वारा दायर द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुए अवर न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यों के निष्कर्ष को उचित तरीके से पलटे बिना अवर न्यायालय और अपीलीय न्यायालय के निर्णय और डिक्री को रद्द कर दिया है। यह भी उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि राजस्व बोर्ड द्वारा द्वितीय अपील को स्वीकार करते हुए निर्णय पारित करते समय विधि का कोई महत्वपूर्ण प्रश्न/निर्धारण का कोई बिंदु तैयार नहीं किया गया है, जिसमें परीक्षण न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया गया है तथा वादी के मुकदमे को खारिज कर दिया गया है।

15. 1983 से राज्य की ओर से इस न्यायालय के समक्ष कोई प्रति-शपथपत्र दाखिल नहीं किया गया है, यद्यपि गाँव सभा ने प्रति-शपथपत्र में लगाए गए आरोपों के समर्थन में कोई दस्तावेज़ संलग्न किए बिना प्रति-शपथपत्र दाखिल किया है।

16. वर्तमान रिट याचिकाएँ पिछले 41 वर्षों से अधिक समय से इस न्यायालय में लंबित हैं, अतः इस विवाद का गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाना चाहिए, न कि मामले को नए सिरे से निर्णय के लिए वापस भेजना चाहिए, जिससे विवाद 50 वर्षों के लिए और लंबा खिंच जाएगा।

17. उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के संदर्भ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **2024 (163) आरडी 691, प्रशांत सिंह एवं अन्य बनाम मीना एवं अन्य** मामले में उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के दायरे पर विचार किया है। उपर्युक्त मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कर्बलाई बेगम बनाम मोहम्मद सईद (1980) 4 एससीसी 396** के निर्णय के साथ-साथ **सीता राम बनाम छोटा बोंडे एवं अन्य 1991 अनुपूरक (1) 556** के निर्णय पर भी विचार किया है।

18. **कर्बलाई बेगम (उपरोक्त)** से लेकर **प्रशांत सिंह (उपरोक्त)** तक माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात पर विचार करते हुए, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सह-किरायेदारी का दावा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जित नहीं होगा, लेकिन अन्य दावे यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 के तहत वर्जित होंगे।

19. द्वितीय अपील पर निर्णय करते समय राजस्व बोर्ड द्वारा उचित कार्यवाही नहीं की गई। इस न्यायालय ने **1985 में प्रस्तुत मामले, आर.डी. 93, शारदा देवी बनाम राजस्व मण्डल इलाहाबाद एवं अन्य** में राजस्व मण्डल के द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के बिन्दु पर निम्नलिखित निर्णय दिया है:

"24. उपर्युक्त प्रावधान में विधानमंडल द्वारा उस समस्त हित पर बल दिया गया है जिसे हस्तान्तरणकर्ता उस समय संपत्ति में हस्तांतरित करने में सक्षम है। दूसरे शब्दों में, केवल हस्तान्तरणकर्ता का वह हित ही क्रेता को हस्तांतरित होगा जिसे वह संपत्ति में हस्तांतरित करने में सक्षम है और यदि वह संपत्ति में कोई हित हस्तांतरित करने में सक्षम नहीं है, तो क्रेता को कुछ भी हस्तांतरित नहीं होगा। इस मामले में विक्रेताओं के पास कोई अधिकार नहीं बचा था क्योंकि उन्होंने उपरोक्त समझौते में विवादित भूखंडों में सभी अधिकार, स्वामित्व और हित खो दिए थे और ये भूखंड याचिकाकर्ता के पक्ष में दिए गए थे और इसके बदले में विक्रेताओं को कुछ संगत भूखंड दिए गए थे। अतः विक्रेताओं के पास हस्तान्तरणकर्ताओं को हस्तांतरित करने के लिए कोई हित नहीं बचा था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि क्रेता विक्रेताओं द्वारा उनके पक्ष में निष्पादित बिक्री विलेख में कोई अधिकार, शीर्षक या हित प्राप्त नहीं किया गया है। पूर्व में की गई चर्चा के आलोक में, मेरा यह मत है कि राजस्व बोर्ड ने अधिनियम की धारा 331(4) के साथ धारा 100 सी.पी.सी. के अंतर्गत स्पष्ट रूप से अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण किया है। द्वितीय अपीलीय न्यायालय के पास अपर आयुक्त द्वारा डिक्री की कपटपूर्ण या मिलीभगत वाली प्रकृति के बारे में दर्ज तथ्यों के निष्कर्षों को रद्द करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। तथ्यों के निष्कर्ष भी साक्ष्य पर आधारित थे और चाहे वे कितने भी गलत प्रतीत हों, जब वास्तव में वे गलत नहीं थे, और न ही वे गलत थे, तो द्वितीय अपीलीय न्यायालय को उनमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं था। प्रत्यर्थी संख्या 7 और 8, विक्रेताओं के पास समझौता डिक्री में याचिकाकर्ता के दावे को स्वीकार करने के बाद विवादित भूखंडों पर कोई अधिकार, स्वामित्व या हित नहीं बचा था, जिससे वे दिनांक 11.7.1966 के विक्रय विलेख द्वारा विक्रेताओं के पक्ष में कोई हित हस्तांतरित कर सकें। इसलिए विक्रेता को बिक्री विलेख से कोई अधिकार प्राप्त नहीं हुआ।

25. परिणामस्वरूप, रिट याचिका सफल होती है और स्वीकृत की जाती है तथा राजस्व बोर्ड का दिनांक 30.7.1976 का निर्णय एवं आदेश निरस्त किया जाता है। याचिकाकर्ता अपनी लागत की भी हकदार होगी।

20. राजस्व बोर्ड द्वारा पारित आदेश, जिसमें द्वितीय अपील को स्वीकार किया गया और वादी के घोषणा-पत्र के वाद को गुप्त निर्णय द्वारा खारिज कर दिया गया, विधि की दृष्टि में टिक नहीं सकता। जिस प्रकार राजस्व बोर्ड द्वारा आक्षेपित निर्णय पारित किया गया है, वह द्वितीय अपील को खारिज करने का निर्णय हो सकता

है, तथा अवर न्यायालयों के निर्णय की पुष्टि कर सकता है, परन्तु यह उलटने का निर्णय नहीं हो सकता जिसके द्वारा द्वितीय अपील को स्वीकार किया गया हो और द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 229बी के अंतर्गत वाद को खारिज कर दिया गया हो।

21. मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों के साथ-साथ यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 49 पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुपात, परीक्षण न्यायालय द्वारा दर्ज तथ्यों की खोज, मिसिलबैंड रजिस्टर में प्रविष्टि को ध्यान में रखते हुए, राजस्व बोर्ड द्वारा 14.9.1983 को द्वितीय अपील संख्या 36 और 37 वर्ष 1979-80 में पारित विवादित निर्णय विधि की नजर में कायम नहीं रह सकता है और इसे एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

22. रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं और यू.पी.जेड.ए और एल.आर. अधिनियम की धारा 229-बी के तहत दोनों वादों में परीक्षण न्यायालय द्वारा 28.1.1978 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है।

23. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 491

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव

रिट-बी संख्या- 39710 सन् 2003

हरि चंद एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

राजस्व बोर्ड एवं अन्य

...प्रत्यर्थागण

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

अजय श्रीवास्तव, अयूब खान, राहुल वर्मा, राजेश त्रिपाठी, एस.के. दुबे

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

सी.एस.सी., ए.सी. श्रीवास्तव, अनिल कुमार, भोला नाथ यादव, चंदन शर्मा, हीरा लाल सिंह (कुशवाहा), कमल सिंह, आर.पी. सिंह, राम सूरत सरोज, रोहन गुप्ता, एस.डी. कौटिल्य, एस.के. निगम, एस.के. राव, एस.के. पाठक, सतीश चंद्र मिश्र, श्रीकृष्ण मिश्र, सोमेश खरे, वी.के. सिंह

सिविल विधि - भारत का संविधान - अनुच्छेद 226 - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - आदेश 41 नियम 27 - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 - धारा 195, 197, 198 (4), 333 और 333 (2) - उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार नियम, 1952 - धारा 173 (ख), 174 और 175: - रिट याचिका - राजस्व बोर्ड द्वारा पारित किए गए आदेशों पर सवाल उठाते हुए, जिसके तहत बोर्ड ने संशोधन की अनुमति दी और रिकॉल के आवेदन को निरस्त कर दिया - 164 अयोग्य व्यक्तियों के पक्ष में गांव एलएमसी द्वारा भूमि का आवंटन - एसडीओ द्वारा अनुमोदित - व्यथित होने के कारण याचिकाकर्तागण ने एक शिकायत मामला दायर किया - अनुमति दी गई - पुनरीक्षण - खारिज कर दिया गया, यह मानते हुए कि प्रश्नगत आवंटन नियम, 1952 के प्रासंगिक प्रावधानों के खिलाफ किया गया था - बोर्ड के समक्ष दूसरा पुनरीक्षण - खारिज कर दिया गया, यह मानते हुए कि उन्हीं व्यक्तियों द्वारा दूसरा पुनरीक्षण बनाए रखने योग्य नहीं है - रिकॉल आवेदन - अस्वीकृत - रिट याचिका - इस आधार पर विरोध किया गया कि याचिकाकर्ता पीड़ित व्यक्ति नहीं हैं या "पीड़ित व्यक्ति" की श्रेणी में नहीं आते हैं - न्यायालय ने पाया कि, भूमि का आवंटन निर्धारित आवंटन नियमों का पूर्ण उल्लंघन था, और प्रत्यर्थियों ने तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत करके अपने पक्ष में आवंटन प्राप्त किया - यह न्यायालय उपरोक्त तथ्यों से अपनी आँखें नहीं मूंद सकती - माना गया, गाँव सभा के एक सदस्य द्वारा मानदंडों का उल्लंघन करके भूमि आवंटित करने में गाँव सभा की कार्रवाई के खिलाफ आरोप लगाने वाली रिट याचिका पर हमला किया जा सकता है - इसमें एक सार्वजनिक तत्व शामिल है और इसलिए, शिकायत और साथ ही तत्काल रिट याचिका भी बनाए रखने योग्य है - तदनुसार, याचिका को अनुमति दी गई। (प्रस्तर - 19, 20, 21)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. 1996 आरडी 190,
2. 1999 आरडी 699,
3. 2008 (105) आरडी 1,
4. 2004 (1) जेसीएलआर (एएलएल) 25,
5. रिट-सी सं. 36068/2004,
6. कन्हाई एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य- रिट याचिका सं. 44338/2006 - 02.03.2012 को निर्णय,
7. अवधेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य - रिट-सी सं. 32252/2022 - 15.02.2023 को निर्णय,
8. राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य - विविध एकल संख्या 27989/2016 - 25.11.2016 को निर्णय,

9. हरि शंकर कुशवाहा व अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य - रिट याचिका संख्या 64061/2016 24.11.2017 को निर्णय,
10. ब्रह्म सिंह बनाम बोर्ड ऑफ रेवेन्यू यूपी इलाहाबाद व अन्य - 2008 (105) आरडी 1,
11. राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (मनु/यूपी/3147/2016),
12. राम जियावान एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त (जे), विंध्याचल मंडल, मिर्जापुर एवं अन्य- 2014 (124) आरडी 219,
13. नथई लाल दुबे बनाम जिलाधिकारी, संत रविदाद नगर - 2000 (4) एडब्ल्यूसी 2752।

(माननीय न्यायमूर्ति आशुतोष श्रीवास्तव द्वारा प्रदत्त)

1. प्रत्यर्थागण के विद्वान अधिवक्ता विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन, जिनकी सहायता याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुभव सिन्हा और श्री अयूब खान ने की, विरोधी प्रत्यर्थागण का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान अधिवक्ता श्री सोमेश खरे के साथ श्री एस. के. कुमार और श्री प्रेम चंद सरोज, राज्य प्रत्यर्थागण की ओर से स्थायी अधिवक्ता तथा प्रत्यर्था संख्या 3, संबंधित भूमि प्रबंधन समिति के विद्वान अधिवक्ता श्री भोला नाथ यादव को सुना गया।

2. रिट याचिका, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा यूपीजेडए एवं एलआर अधिनियम की धारा 333 के अंतर्गत 1997-98 के पुनरीक्षण संख्या 64(2) में पारित रिट याचिका के क्रमशः दिनांक 03.11.2000 और 08.05.2003 (संलग्नक संख्या 3 एवं 5) के आदेशों पर प्रश्न उठाते हुए दायर की गई है, जिसके तहत दिनांक 03.11.2000 के आदेश के तहत पुनरीक्षण की अनुमति दी गई थी और दिनांक 08.05.2003 के आदेश के तहत केस संख्या 49/2001-02 के रूप में पंजीकृत रिकॉल आवेदन को पोषणीय न मानते हुए निरस्त कर दिया गया था।

3. यह विवाद ग्राम गुलावटी, परगना दनकौर, जिला बुलंदशहर (वर्तमान गौतम बुद्ध नगर) की भूमि प्रबंधन समिति, प्रत्यर्था संख्या 3 द्वारा ग्राम के 164 व्यक्तियों के पक्ष में दिनांक 15.12.1989 के आवंटन आदेश के तहत भूमि आवंटन से संबंधित है। यह आवंटन उप-खण्ड अधिकारी, सदर, गौतम बुद्ध नगर, प्रत्यर्था संख्या 2 द्वारा दिनांक 10.05.1990 को अनुमोदित बताया गया है।

4. रिट याचिकाकर्ता, जो संबंधित गाँव के ग्रामीण हैं, प्रत्यर्था संख्या 4 से 164 के पक्ष में भूमि के आवंटन से व्यथित हैं, ने अन्य व्यथित व्यक्तियों के साथ मिलकर 01.06.1990 को एक शिकायत दर्ज की, जिसे मुकदमा संख्या 72/1991 के रूप में बुलंदशहर के अपर कलेक्टर के समक्ष पंजीकृत किया गया, जिसमें उक्त आवंटन को इस आधार पर रद्द करने की मांग की गई कि आवंटन अनियमित थे, नियमों के अनुसार नहीं थे और

आपात्र व्यक्तियों के पक्ष में किए गए थे। मुकदमा संख्या 72/1991 के रूप में पंजीकृत शिकायत मामले को बुलंदशहर के अपर कलेक्टर द्वारा पारित दिनांक 04.06.1994 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

5. दिनांक 04.06.1994 के आदेश के विरुद्ध, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 ने अपर आयुक्त, मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष एक पुनरीक्षण वाद प्रस्तुत किया, जो पुनरीक्षण संख्या 88 वर्ष 1994-95 (बलवीर बनाम सतवीर व अन्य) के रूप में पंजीकृत था, जिसे दिनांक 25.06.1998 के आदेश द्वारा यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि आवंटन उ.प्र. शासन एवं भूमि सुधार नियम, 1952 के नियम 173 (ख), 174 और 175 के प्रावधानों के विरुद्ध किया गया था। दिनांक 25.06.1998 के आदेश द्वारा उनके पुनरीक्षण को अस्वीकार किए जाने से व्यथित होकर, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 ने राजस्व बोर्ड के समक्ष एक द्वितीय पुनरीक्षण वाद प्रस्तुत किया, जो पुनरीक्षण संख्या 64(2) वर्ष 1997-98 (बली राम व अन्य बनाम सत्यबीर व अन्य) के रूप में पंजीकृत था। राजस्व बोर्ड ने अत्यंत मनमाने और अवैध तरीके से, इस पहलू पर विचार किए बिना कि उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किया गया दूसरा पुनरीक्षण स्वीकार्य नहीं था, दूसरे पुनरीक्षण पर विचार किया और दिनांक 03.11.2000 के आदेश द्वारा उसे स्वीकार कर लिया। याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 03.11.2000 के आदेश को रिकॉल की मांग करते हुए दायर किया गया पुनः प्राप्ति आवेदन भी राजस्व बोर्ड द्वारा दिनांक 19.01.2001 के आदेश द्वारा अस्वीकार कर दिया गया। 2001-02 के केस संख्या 49 के रूप में पंजीकृत दिनांक 22.08.2002 का पुनः प्राप्ति आवेदन भी दिनांक 08.05.2003 के आदेश द्वारा निरस्त कर दिया गया।

6. याचिकाकर्तागण के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने तर्क दिया कि इलाहाबाद स्थित राजस्व परिषद ने आक्षेपित आदेश पारित करने में स्पष्ट रूप से अवैधानिकता बरती है। उन्होंने तर्क दिया कि:-

(i) राजस्व परिषद ने उत्तर प्रदेश प्राकृतिक आपदा प्रबंधन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 333 की उपधारा 2 में निहित स्पष्ट निषेधाज्ञा के मददेनजर धारा 333 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए द्वितीय पुनरीक्षण को स्वीकार करने में विधिक त्रुटि की है।

(ii) प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 के पक्ष में आवंटन उत्तर प्रदेश प्राकृतिक आपदा प्रबंधन एवं भूमि सुधार नियम, 1952 के नियम 173 (खा), 174 और 175 के प्रावधानों का घोर उल्लंघन करते हुए किया गया था और अपर कलेक्टर, बुलंदशहर द्वारा इसे उचित रूप से रद्द किया गया था। राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद ने पुनरीक्षण पर विचार किया और इस आधार पर उसे अनुमति दी कि अतिरिक्त कलेक्टर के पास आवंटन को रद्द करने का कोई अधिकार नहीं था और इस न्यायालय द्वारा **1996 आरडी 190** और **1999 आरडी 699** में निर्धारित विधि के मददेनजर ऐसी शक्ति केवल कलेक्टर में निहित थी, जो इस न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा **2008 (105) आरडी 1** में रिपोर्ट किए गए विधि की पूरी तरह से अनदेखी थी।

(iii) राजस्व बोर्ड ने प्रत्यर्थी/आवंटियों को इस आधार पर रियायत देने में स्पष्ट रूप से गलती की कि याचिकाकर्ता यह प्रदर्शित करने में विफल रहे कि वे आवंटन से कैसे व्यथित थे, इस स्थापित सिद्धांत की अनदेखी करते

हुए कि आवंटन धोखाधड़ी से किए गए थे और याचिकाकर्ता गांव के निवासी होने के नाते भूमि प्रबंधन समिति द्वारा गोवा सभा भूमि के अवैध और अनियमित आवंटन के खिलाफ आपत्ति उठा सकते थे।

(iv) राजस्व मंडल ने रिकॉल और पुनर्विलोकन आवेदनों को अस्वीकार करने में त्रुटि की है।

7. तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि आक्षेपित आदेश स्पष्टतः अवैध हैं और अपास्त किए जाने योग्य हैं। रिट याचिका प्रार्थना के अनुसार स्वीकार किए जाने योग्य है।

8. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 अर्थात् आवंटियों के विद्वान अधिवक्ता श्री सोमेश खरे ने रिट याचिका का पुरजोर विरोध किया है और राजस्व मंडल द्वारा पारित आदेश का समर्थन किया है, जिसमें अपर कलेक्टर द्वारा आवंटन रद्द करने के आदेश और पुनरीक्षण में उसे बरकरार रखने के अपर आयुक्त के आदेश को अपास्त किया गया है। श्री सोमेश खरे ने इस आधार पर विशेष बल दिया है कि याचिकाकर्तागण को उत्तर प्रदेश प्राकृतिक गैस और भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 198(4) के अर्थ में व्यथित व्यक्ति नहीं कहा जा सकता, जिसके कारण उत्तरदाता प्रत्यर्थीगण के पक्ष में किए गए आवंटन के विरुद्ध शिकायत कायम रही और वर्तमान कार्यवाही शुरू हुई।

9. यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता पीड़ित व्यक्ति नहीं हैं/या यूपीजेडए और एलआर अधिनियम, 1950 की धारा 198 (4) के प्रावधानों के अनुसार "पीड़ित व्यक्ति" की श्रेणी में नहीं आते हैं। याचिकाकर्ता संख्या 1 के नाम पर खाता संख्या 540 के अंतर्गत पर्याप्त भूमि जोत दर्शाई गई है और वह इसके संकरमनिया भूमिधर के रूप में दर्ज है। रिट याचिकाकर्ता भूमिहीन व्यक्ति नहीं हैं और धारा 195 और 197 के तहत भूमि पर व्यक्तियों को स्वीकार करने के वरीयता क्रम में योग्य नहीं हैं, जिससे वे यूपीजेडए और एलआर अधिनियम की धारा 198 (4) के अर्थ में "पीड़ित व्यक्ति" बन सकें। उन्होंने शिकायत दर्ज करते समय या इस रिट याचिका के समय यह स्पष्ट नहीं किया है कि वे गाँव सभा द्वारा पट्टा आवंटन के हकदार हैं।

10. इस न्यायालय के डिवीज़न बेंच के **2004 में दिए गए निर्णय (1) जेसीएलआर 25 (इलाहाबाद), रिट-सी संख्या 36068 सन् 2004** में लिए गए निर्णय, **रिट याचिका संख्या 44338 सन् 2006 (कन्हौई (अब मृतक) एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, 02.03.2012** को निर्णीत, **रिट-सी संख्या 32252 सन् 2022 (अवधेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में 15.02.2023 को निर्णीत, प्रकीर्ण एकल संख्या 27989 सन् 2016 (राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में 25.11.2016 को निर्णीत निर्णय तथा रिट याचिका संख्या 64061 सन् 2016 (हरि शंकर कुशवाहा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य द्वारा सचिव, राजस्व विभाग, लखनऊ एवं अन्य) में लिए गए निर्णय पर भरोसा किया गया है। 24 नवंबर, 2017 को इस बात पर बल देने के लिए निर्णय लिया गया कि रिट याचिकाकर्तागण को "पीड़ित व्यक्ति" नहीं कहा जा सकता है ताकि शिकायत को बरकरार रखा जा सके और परिणामस्वरूप वर्तमान रिट याचिका को कोई विधिक क्षति न पहुँची हो। तदनुसार, यह प्रस्तुत किया जाता है कि राजस्व बोर्ड का आदेश न्यायसंगत और उचित है और इसमें भारत के संविधान**

के अनुच्छेद 226 के तहत इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और प्रस्तुत रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है और अभिलेखों का अवलोकन किया है। पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों से इस रिट याचिका में निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ उठते हैं:-

(क) क्या आवंटियों अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 के पक्ष में किया गया आवंटन, उत्तर प्रदेश भू-आवंटन एवं भूमि अधिग्रहण नियम, 1952 के नियम 173 (खा), 174 और 175 के प्रावधानों के विपरीत होने के दोष से ग्रस्त है और क्या इसे अपर कलेक्टर, बुलंदशहर द्वारा उचित रूप से रद्द किया गया था?

(ख) क्या अपर कलेक्टर, बुलंदशहर, यूपीजेडए एवं एलआर अधिनियम, 1950 की धारा 198(4) के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आवंटियों के पक्ष में आवंटन रद्द करने के अपने अधिकार के अंतर्गत थे?

(ग) क्या यूपीजेडए एवं एलआर अधिनियम की धारा 333(1) के तहत राजस्व परिषद, इलाहाबाद के समक्ष द्वितीय पुनरीक्षण सुनवाई योग्य था?

(घ) क्या रिट याचिकाकर्तागण के कहने पर भूमि प्रबंधन समिति द्वारा आवंटियों अर्थात् प्रत्यर्थी संख्या 1 से 150 के पक्ष में किए गए आवंटन के विरुद्ध शिकायत तथा वर्तमान रिट याचिका सुने जाने योग्य है?

12. दोनों पक्ष इस बात पर एकमत हैं कि ग्राम गुलावली, परगना दनकौर, बुलंदशहर की भूमि प्रबंधन समिति ने अपने दिनांक 15.12.1989 के संकल्प द्वारा 164 व्यक्तियों के पक्ष में भूमि आवंटित की थी और इस आवंटन को संबंधित उप-खण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा दिनांक 10.05.1990 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 के पक्ष में स्वीकृत किया गया था। आवंटन के विरुद्ध दिनांक 01.06.1990 को एक शिकायत दर्ज की गई थी, जिसे 1991 के मुकदमा संख्या 72 के रूप में पंजीकृत किया गया था। अपर कलेक्टर, बुलंदशहर ने अपने दिनांक 4.6.1994 के आदेश द्वारा शिकायत को स्वीकार कर लिया और आवंटन को रद्द कर दिया। अपर कलेक्टर के आदेश के अवलोकन से पता चलता है कि आवंटन की कार्यवाही में कई विसंगतियाँ पाई गईं और यह निष्कर्ष निकाला गया कि पूरी कार्यवाही अवैध और अनियमित थी। अपर कलेक्टर के दिनांक 4.6.1994 के आदेश का प्रासंगिक अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है:-

"मैंने पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य एवं विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सनने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ सर्व प्रथम तो आवंटन पत्रावली देखने से यह स्पष्ट है कि आकार पत्र 57-01 पर परगनाधिकारी की स्वीकृति नहीं है। इस प्रकार नियम 172, 173 एवं 174 की अवहेलना की गयी है जो कि मैनेडेटरी है। इस प्रकार आवंटन अनियमित एवं अवैधानिक हो जाना है। 74 प्रत्यर्थी (आवंटी) बाहर के बताये हैं। इसके संबंध में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि जिससे यह स्पष्ट हो कि वह गांव के निवासी हैं मात्र यह कह देने से कि वोटर लिस्ट में नाम न होने से गांव का निवासी नहीं रह जाता है, गलत है। ओम प्रकाश व धर्मवीर प्रधान के सगे लड़के व मनोज

कपील व प्रवीण पुत्रगण ओमप्रकाश व अजब सिंह मनोज, मोरध्वज व कवर सिंह पुत्रगण धर्मवीर प्रधान के सगे पौत्र हैं जिन्हें आवंटन किया गया है। इसी प्रकार अन्य बहुत से व्यक्ति सदस्यों के पुत्र पिता व भाई हैं जिनकी कोई इजाजत आवंटन हेतु जिलाधिकारी से नहीं ली गयी है। रणजीत पुत्र मनसुख तो ग्रामसभा गुलिस्ता का प्रधान है जिसे स्वयं बाबू सिंह प्रधान ने स्वीकार कर अपने जवाब में किया है। ज्यादातर आवंटी जनपद गाजियाबाद के हैं। और प्रधान से संबंधी है तहसीलदार ने अपनी आख्या में यह भी स्पष्ट लिखा है कि पवन व भीषण पुत्रगण देवराज नावालिगो के संबंध में जो विवरण किया गया है उसके संबंध में कोई ऐसा ठोस साक्ष्य प्रत्यर्थीगण द्वारा नहीं दिया गया है जिससे यह स्पष्ट हो कि वह नावालिग नहीं है। प्रधान ने जिसने यह आवंटन किया है स्वयं माना है कि कुछ पात्र व्यक्ति आवंटन से शेष रह गये हैं कुछ गांव से अन्य गांव निवासियों को पट्टा हो गया है तथा कुछ नावालिगो को भी आवंटन हो गया है। इस प्रकार इस आवंटन में मनमाने ढंग से कार्यवाही करके अनियमित एवं अवैधानिक तरीके से अपात्र व्यक्तियों को आवंटन दिया गया है। इसी कारण परगनाधिकारी ने जांच के बाद अध्यक्ष भूमि प्रबन्धक समिति को निलिम्बित किया था कार्यवाही रजिस्टर पर अन्य के साथ राधेप्याम सदस्य, चन्दर सदस्य भारत सिंह, तेजी व ज्ञानी व मितरो सदस्यों के हस्ताक्षर/नि0अ0 दिखाये गये हैं जबकि उन्होंने शपथ पत्र प्रस्तुत किया है उन्होंने 12.12.89 को किसी प्रस्ताव पर हस्ताक्षर/अंगूठा निवासी नहीं किया है और ना ही उनकी उपस्थिति में यह कार्यवाही हुई है। जिसके संबंध में की प्रतिशपथ पत्र भी दाखिल नहीं किया गया है। इस प्रकार इनके शपथ पत्रों पर विश्वास न किया जाने का कोई आधार नहीं है। शपथ पत्र के समर्थन में चन्दर एवं तेजी सदस्यों के सपथ बयान भी हुये हैं। इस प्रकार इस आवंटन पूर्णतया अवैधानिक है। ग्रामसभा में कुल सदस्यों की संख्या मीटिंग में मय प्रधान के 111 दर्शायी है जिसमें से 6 सदस्यों ने शपथ पत्र दाखिल कर कहा है कि उन्हें इस कार्यवाही की कोई जानकारी नहीं है इस प्रकार कोरम ही पूरा नहीं होता है इस प्रकार समस्त कार्यवाही अवैध एवं अनियमित हो जाती है और कार्यवाही बाला ही बाला हो सिद्ध है।"

13. उपरोक्त निष्कर्ष स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 के पक्ष में आवंटन कार्यवाही, उत्तर प्रदेश राज्य भूमि अधिग्रहण एवं भूमि अधिग्रहण नियम, 1952 के नियम 173 (खा), 174 और 175 का उल्लंघन थी। आवंटियों, प्रत्यर्थी संख्या 4 से 150 द्वारा अपर आयुक्त, मेरठ, मंडल मेरठ के समक्ष धारा 333(1) के अंतर्गत दायर पुनरीक्षण वाद में उक्त निष्कर्षों को बरकरार रखा गया। इन निष्कर्षों में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रश्न संख्या (क) का उत्तर तदनुसार दिया गया है।

14. प्रत्यर्थीगण संख्या 4 से 150 के विद्वान अधिवक्ता ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया है कि अपर कलेक्टर, बुलंदशहर धारा 198(4) के अंतर्गत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने के लिए सक्षम नहीं थे और केवल कलेक्टर, बुलंदशहर ही आवंटन रद्द करने के लिए सक्षम थे। यह तर्क दिया जाता है कि मामले के इस दृष्टिकोण से, अपर कलेक्टर का आदेश मान्य नहीं हो सकता। यह न्यायालय प्रत्यर्थीगण संख्या 4 से 150 के विद्वान अधिवक्ता के तर्क से प्रभावित नहीं है। यह मुद्दा अब पुनर्गठित नहीं है और **ब्रह्म सिंह बनाम राजस्व बोर्ड, उत्तर प्रदेश इलाहाबाद एवं अन्य, 2008 (105) आरडी 1**, में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय द्वारा सुलझ गया है, जिसमें यह स्पष्ट रूप से माना गया है कि उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि अधिग्रहण अधिनियम

की धारा 198(4) के अंतर्गत शक्तियों के प्रयोग सहित कलेक्टर की शक्तियों और कार्यों का प्रयोग अपर कलेक्टर द्वारा किया जा सकता है। प्रश्न संख्या (ख) भी तदनुसार निर्णीत हो जाता है।

15. अब राजस्व बोर्ड के समक्ष प्रत्यर्थीगण-आवंटियों संख्या 4 से 150 द्वारा द्वितीय पुनरीक्षण की पोषणीयता के संबंध में प्रश्न संख्या (ग) पर आते हैं। न्यायालय की राय में, उत्तर प्रदेश भूमि अधिग्रहण एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 333(2) में निहित स्पष्ट प्रतिबंध के मददेनजर द्वितीय पुनरीक्षण वर्जित था। यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्यर्थीगण संख्या 4 से 150 के अनुरोध पर प्रस्तुत प्रथम पुनरीक्षण, जो कि पुनरीक्षण संख्या 88 वर्ष 1994-95 था, दिनांक 25/6/1998 के आदेश द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया था। राजस्व बोर्ड के समक्ष प्रस्तुत द्वितीय पुनरीक्षण संख्या 64(2) वर्ष 1997-98 स्पष्ट रूप से पोषणीय नहीं था। प्रश्न संख्या (ग) का उत्तर तदनुसार दिया गया।

16. अब प्रश्न संख्या (घ) पर आते हैं। प्रत्यर्थीगण अर्थात् आवंटियों संख्या 4 से 150 के विद्वान अधिवक्ता श्री सोमेश खरे ने इस तथ्य पर विशेष बल दिया है कि याचिकाकर्तागण को धारा 198(4) के अर्थ में व्यथित व्यक्ति नहीं कहा जा सकता। इसमें पूर्व में संदर्भित निर्णयों का हवाला देते हुए यह तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्तागण और अन्य व्यथित व्यक्तियों के अनुरोध पर की गई शिकायत पोषणीय नहीं थी और फलस्वरूप वर्तमान कार्यवाही भी पोषणीय नहीं है। राजस्व बोर्ड द्वारा पुनरीक्षण की अनुमति देना पूर्णतः उचित था और उक्त आदेश में इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

17. प्रत्यर्थीगण संख्या 4 से 150 के विद्वान अधिवक्ता श्री सोमेश खरे ने कन्हौई (अब दिवंगत) एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 44338 सन् 2006, जिस पर 2.3.2012 को निर्णय हुआ था, के मामले का हवाला देते हुए तर्क दिया कि जो व्यक्ति आवंटन पर प्रश्न उठाना चाहता है, उसे यह दर्शाना होगा कि उक्त आवंटन पर उसका अधिमन्य अधिकार था। बिना अधिमन्यता दर्शाए आवंटन आदेश को रद्द करने की मांग पर गाँव सभा के हस्तक्षेप के अलावा कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। याचिकाकर्ता का दावा है कि प्रत्यर्थीगण को भूमि का आवंटन गलत तरीके से किया गया है, जबकि उन्होंने यह दावा नहीं किया है कि अधिनियम के तहत उन्हें उक्त भूमि का आवंटन प्राप्त करने का अधिकार है। सुविधा-स्थायी के संबंध में नियम यह है कि न्यायिक निवारण केवल उसी व्यक्ति को उपलब्ध है जिसे राज्य या किसी लोक प्राधिकरण की विवादित कार्यवाही द्वारा उसके विधिक अधिकार या विधिक रूप से संरक्षित हित के उल्लंघन के कारण विधिर क्षति हुई हो। पीड़ित व्यक्ति को यह दर्शाना होगा कि उसके विरुद्ध कोई विधिक शिकायत थी, जिसके विरुद्ध एक निर्णय सुनाया गया है, जिसमें उसे वह चीज़ देने से अनुचित रूप से इनकार किया गया है, जिसकी माँग करने का उसे अधिकार था। इसी सीमा के अंतर्गत पीड़ित व्यक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अपनी शिकायत का निवारण चाह सकता है।

18. मनु/यूपी/3147/2016 में प्रतिवेदित **राम कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** के मामले का हवाला देते हुए, वह आगे निम्नलिखित दलीलें देते हैं:

“12. यह एक स्थापित विधिक प्रस्ताव है कि किसी अजनबी को किसी कार्यवाही में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जा सकती, जब तक कि वह प्राधिकरण/न्यायालय को संतुष्ट न कर दे कि वह पीड़ित व्यक्ति की श्रेणी में आता है।

और व्यक्ति का अर्थ केवल वही व्यक्ति है जिसने विधिक क्षति झेली है या झेल रहा है, और वह किसी कृत्य/कार्रवाई/आदेश आदि को न्यायालय में चुनौती दे सकता है। संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका या तो किसी वैधानिक या विधिक अधिकार को लागू करने के उद्देश्य से, या जब अपीलकर्ता द्वारा यह शिकायत की जाती है कि प्राधिकारियों की ओर से वैधानिक कर्तव्य का उल्लंघन हुआ है, तब सुनवाई योग्य होती है। इसलिए, प्रवर्तन के लिए न्यायिक रूप से प्रवर्तनीय अधिकार उपलब्ध होना चाहिए, जिसके आधार पर रिट क्षेत्राधिकार का सहारा लिया जाता है। न्यायालय, किसी व्यक्ति के कहने पर, अपने रिट क्षेत्राधिकार का उपयोग करते हुए, किसी सार्वजनिक निकाय द्वारा किसी वैधानिक कर्तव्य के पालन को लागू कर सकता है, बशर्ते कि ऐसा व्यक्ति न्यायालय को यह विश्वास दिलाए कि उसे ऐसे पालन पर जोर देने का विधिक अधिकार है। ऐसे अधिकार का अस्तित्व न्यायालयों के रिट क्षेत्राधिकार का आह्वान करने के लिए एक पूर्व शर्त है। ऐसे असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में यह अंतर्निहित है कि, जिस राहत की प्रार्थना की गई है, वह विधिक अधिकार को लागू करने के लिए होनी चाहिए।

13. वास्तव में, ऐसे अधिकार का अस्तित्व ही न्यायालय द्वारा उक्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग का आधार है। लागू किया जा सकने वाला विधिक अधिकार सामान्यतः अपीलकर्ता का ही अधिकार होना चाहिए, जो ऐसे अधिकार के उल्लंघन की शिकायत करता है और उससे संबंधित राहत के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाता है।

14. इसके अतिरिक्त, "विधिक अधिकार" का अर्थ विधिक नियमों से उत्पन्न होने वाला अधिकार है। इस प्रकार, इसे विधि के नियम द्वारा किसी व्यक्ति को प्रदान किए गए फायदे या लाभ के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। "पीड़ित व्यक्ति" पद में वह व्यक्ति शामिल नहीं है जो मनोवैज्ञानिक या काल्पनिक क्षति से पीड़ित है; इसलिए, पीड़ित व्यक्ति अनिवार्य रूप से वह व्यक्ति होना चाहिए जिसके अधिकार या हित पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा हो या जो खतरे में पड़ गया हो।”

19. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शशि नंदन ने श्री सोमेश खरे के तर्कों का विरोध करते हुए कहा कि शिकायत और वर्तमान रिट याचिका दोनों ही स्वीकार्य हैं क्योंकि गाँव सभा की सार्वजनिक संपत्ति के संबंध में कोई भी व्यक्ति कार्यवाही शुरू कर सकता है या निजी व्यक्तियों के साथ गाँव सभा की ऐसी भूमि के निस्तारण के आदेश को चुनौती दे सकता है। राम जियावन एवं अन्य बनाम अपर आयुक्त (न्यायिक), विंध्याचल मंडल, मिर्जापुर एवं अन्य, 2014 (124) आरडी 219, के मामले में समन्वय पीठ के निर्णय का सम्मान किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, नथई लाल दुबे बनाम जिला मजिस्ट्रेट, संत रविदास नगर, 2000 (4) एडब्ल्यूसी 2752, में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि गाँव सभा के किसी सदस्य द्वारा मानदंडों का उल्लंघन करके

भूमि आवंटित करने की गाँव सभा की कार्यवाई के विरुद्ध आरोप लगाने वाली रिट याचिका को रिट न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जा सकती है।

20. न्यायालय की राय में, सामान्य परिस्थितियों में, कोई शिकायतकर्ता भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत रिट याचिका दायर करने का हकदार नहीं हो सकता क्योंकि उसे व्यथित व्यक्ति नहीं माना जा सकता। हालाँकि, किसी व्यक्ति द्वारा उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर करने के अधिकार का निर्धारण वैधानिक प्रावधानों और मामले के तथ्यों के संदर्भ में किया जाना चाहिए। ऐसा कोई निश्चित नियम नहीं हो सकता कि सभी मामलों में कोई शिकायतकर्ता रिट याचिका दायर नहीं कर सकता। इस मामले में, न्यायालय का मानना है कि भूमि प्रबंधन समिति द्वारा प्रत्यर्थीगण संख्या 4 से 150 के पक्ष में भूमि का आवंटन निर्धारित आवंटन नियमों का पूर्णतः उल्लंघन था। प्रत्यर्थीगण संख्या 4 से 150 ने तथ्यों को गलत तरीके से प्रस्तुत करके अपने पक्ष में आवंटन प्राप्त किया। यह न्यायालय उपरोक्त तथ्यों से मुँह नहीं मोड़ सकता। न्यायालय की राय में, इसमें एक सार्वजनिक तत्व शामिल है और शिकायत तथा वर्तमान रिट याचिका दोनों ही विचारणीय हैं। प्रश्न संख्या (घ) का निर्णय तदनुसार किया जाता है।

21. उपरोक्त के मददेनजर, राजस्व परिषद, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद द्वारा पारित क्रमशः दिनांक 03.11.2000 और 08.05.2003 (संलग्नक संख्या 3 और 5) के आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाते हैं।

22. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

(2025) 1 ILRA 498

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 22.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय

रिट-बी संख्या 47925 सन् 2014

के साथ

रिट-बी संख्या 8596 सन् 2015

राजेश्वरी देवी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उप निदेशक, चकबंदी, शाहजहाँपुर व अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

आर.सी. सिंह

प्रत्यर्थीगण के अधिवक्ता:

अमित कुमार सिंह, एचएमबी सिन्हा, जितेंद्र कुमार चक्रवर्ती, राम किशोर पांडे, उमेश वत्स

सिविल विधि - चकबंदी कार्यवाही - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 की धारा 52 के तहत गांव की अधिसूचना रद्द करने का प्रभाव - अधिसूचना रद्द करने के बाद अधिनियम की धारा 20 के तहत आपत्ति दायर की गई - जब तक देरी के लिए क्षमा प्रार्थना के साथ दायर नहीं की जाती और मिसिलबंद में दर्ज नहीं की गई, तब तक इसे बनाए रखने योग्य नहीं माना गया - केवल पंजीकरण में देरी या आपत्ति का गलत स्थान पर रखा जाना घातक नहीं है, जहां अधिसूचना रद्द करने से पहले दायर किया गया था और साक्ष्य के माध्यम से इसकी पुष्टि की गई थी - अभिलेख से पता चला कि राष्ट्रीय राजमार्ग से सटे प्रत्यर्थी के भूखंड का वाणिज्यिक मूल्य था - ऐसे भूखंड की सी.एच 18 के रूप में घोषणा वैध पाई गई - रिट क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है। (प्रस्तर 11 से 16)

अभिनिर्धारित:

इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि संबंधित गाँव को चकबंदी के अंतर्गत लाया गया था और उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अधिसूचना 24.03.2023 को प्रकाशित की गई थी, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अधिसूचना 27.03.2003 को प्रकाशित की गई थी, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना 27.06.2007 को प्रकाशित की गई थी। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि चकबंदी अधिकारी ने दिनांक 26.02.2009 के आदेश द्वारा उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत कार्यवाही में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का लाभ प्रदान किया तथा दिनांक 27.05.2009 के आदेश द्वारा भूखण्ड संख्या 454/525 क्षेत्रफल 0.049 हेक्टेयर को चकबंदी एच 18 घोषित किया। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) द्वारा दायर पुनरीक्षण संख्या 42 में भूखण्ड संख्या 455 को भी चकबंदी एच 18 घोषित किया गया था। (प्रस्तर 11)

यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि भूखंड संख्या 454/525, 455 राष्ट्रीय राजमार्ग 24 के निकट स्थित हैं और प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) की ओर से आपत्ति प्रस्तुत की गई थी और गाँव की अधिसूचना रद्द होने से पहले विलंब के लिए क्षमादान की प्रार्थना की गई थी। अतः चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा भूखंड संख्या 454/525 क्षेत्रफल 0.049 हेक्टेयर और भूखंड संख्या 455 क्षेत्रफल 0.543 हेक्टेयर को चकबंदी भूमि 18 घोषित करने के आदेश में कोई अवैधता नहीं है। मिसिल बैंड में की गई प्रविष्टि यह भी दर्शाती है कि लता देवी द्वारा गाँव की अधिसूचना रद्द होने से पहले आपत्ति प्रस्तुत की गई थी। उप निदेशक, चकबंदी ने प्रत्येक पुनरीक्षण पर निर्णय लेते समय पक्षों के दावे पर उचित विचार किया और लता देवी द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण संख्या 48 को छोड़कर संबंधित पक्षों द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया। (प्रस्तर 12)

इस न्यायालय ने 1985 के आरडी 71 पारस नाथ सिंह बनाम उप निदेशक चकबंदी व अन्य प्रकरण में यह माना है कि यदि कोई आदेश अवैध है तो उसे रिट क्षेत्राधिकार में रद्द या अपास्त नहीं किया जा सकता, यदि उसे रद्द करने के परिणामस्वरूप कोई अन्य अवैध आदेश अभिलेख में लाया जाता है। (प्रस्तर 15)

याचिका खारिज (ई-14)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. (2003) 8 सर्वोच्च न्यायालय के प्रकरण 319 [सिविल अपील संख्या 8216 सन् 2003 के साथ सिविल अपील संख्या 8217 सन् 2003 (राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी व अन्य)]
2. (2000) 3 सर्वोच्च न्यायालय के प्रकरण 581 [सिविल अपील संख्या 2087 सन् 2000 (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह व अन्य)] [सिविल अपील संख्या 2088 सन् 2000 (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम संजय सिंह व अन्य)]
3. 1985 आरडी 71 पारस नाथ सिंह बनाम उप निदेशक, चकबंदी व अन्य।

(माननीय न्यायमूर्ति चंद्र कुमार राय द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री नारायण दत्त शुक्ला ने की, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह, जिनकी सहायता प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री वी.पी. शुक्ला ने की और रिट बी संख्या 47925 सन् 2014 में राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हसन अब्बास को सुना।

याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री आर.के. पांडेय ने की, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह, जिनकी सहायता प्रत्यर्थी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री नारायण दत्त शुक्ला ने की और रिट बी संख्या 8596 सन् 2015 में राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री हसन अब्बास को सुना।

2. चूँकि दोनों रिट याचिकाओं में समान मुद्दे शामिल हैं, इसलिए दोनों रिट याचिकाओं को एक साथ मिलाकर उनकी सुनवाई की जाती है और रिट याचिका संख्या 47925 सन् 2014 को एक प्रमुख याचिका माना जाएगा।

3. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि ग्राम-भेदपुर परगना-जमौर, तहसील-सदर, जिला-शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (जिसे आगे "उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम" कहा जाएगा) के अंतर्गत आता है। उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 8 (ए) के अंतर्गत तैयार सिद्धांतों का विवरण वर्ष 2004 में प्रकाशित हुआ था। प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) के अनुसार, वर्ष 2005 में उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 20 के

अंतर्गत एक आपति दायर की गई थी, जिसे वाद संख्या 9/299 के रूप में पंजीकृत किया गया था, जिसमें 2007 तक कई तिथियाँ निर्धारित की गईं, लेकिन 2007 के बाद, उपरोक्त प्रकरण की फाइल गुम हो गई, तदनुसार प्रत्यर्थी संख्या 4 ने 24.11.2008 को दूसरी आपति दायर की। चकबंदी अधिकारी ने अपने आदेश दिनांक 27.05.2009 द्वारा भूखंड संख्या 454/525 सी.एच 18 को (चकबंदी प्रक्रिया से बाहर) घोषित किया, लेकिन भूखंड संख्या 455 के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया। प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) के अनुसार, उन्होंने श्रीमती विबो देवी व अन्य से भूखंड संख्या 455 क्षेत्रफल 0.543 हेक्टेयर और 454/525 क्षेत्रफल 0.049 हेक्टेयर कुल क्षेत्रफल 0.592 हेक्टेयर खरीदा था। उपरोक्त भूखंड संख्या 455 और 454/525 राष्ट्रीय राजमार्ग 24 बरेली-शाहजहाँपुर मार्ग के समीप स्थित थे। प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) के अनुसार, उपरोक्त भूखंडों के संबंध में उनके पक्ष में निष्पादित विक्रय पत्र के आधार पर राजस्व अभिलेखों में उनका नाम दर्ज किया गया था। प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) चक संख्या 274 की धारक हैं। भूखंड संख्या 454/425 याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) के चक में प्रस्तावित था, तदनुसार प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) ने वर्ष 2005 में अपनी चक आपति दाखिल की थी, लेकिन याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) ने वर्ष 2005 में चक आपति दाखिल करने के तथ्य से इनकार किया है। याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) के अनुसार, अधिसूचना के प्रकाशन पर प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) द्वारा उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा-9 (बी) के अंतर्गत कोई आपति दाखिल नहीं की गई थी, अतः उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 11 (ए) में निहित प्रावधानों के मद्देनजर प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) का दावा वर्जित है। याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) चक संख्या 277 की धारक हैं। याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) के अनुसार, सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा तैयार अनंतिम चकबंदी योजना की पुष्टि बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी द्वारा की गई और संबंधित गाँव के चकधारकों को उनके संबंधित चकों पर कब्जा दिलाया गया। उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 27 के अंतर्गत अंतिम अभिलेख तैयार किए गए और 27.06.2007 को उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत गाँव को गैर-अधिसूचित कर दिया गया। याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) के अनुसार, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 9 (बी) और 20 के अंतर्गत कोई आपति दर्ज नहीं की गई और पक्षों के बीच मुकदमा भी लड़ा गया, इसलिए 27.06.2007 को संबंधित गाँव को गैर-अधिसूचित करने के बाद कोई दावा नहीं उठाया जा सकता। दिनांक 27.05.2009 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) ने दो अलग-अलग अपीलें दायर कीं। एक, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 21(2) के अंतर्गत दिनांक 27.05.2009 के आदेश के विरुद्ध और दूसरी, उत्तर प्रदेश चकबंदी नियमावली, 1954 (जिसे आगे "उत्तर प्रदेश चकबंदी नियमावली" कहा जाएगा) के नियम 109-ए के अंतर्गत दिनांक 24.06.2009 के आदेश के विरुद्ध। उपर्युक्त अपीलें अपील संख्या 3/113 और 27 के रूप में पंजीकृत की गईं। बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी ने दिनांक 04.07.2011 के आदेश द्वारा अपील संख्या 3/113 को खारिज कर दिया, लेकिन अपील संख्या 27 को स्वीकार कर लिया गया, जिसमें दिनांक 24.06.2009 के आदेश को रद्द कर दिया गया। अपील संख्या 3/113 में दिनांक 04.07.2011 को पारित। याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) ने उप संचालक, चकबंदी के समक्ष उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत एक पुनरीक्षण वाद दायर किया, जिसे पुनरीक्षण संख्या 83/2011 के रूप में पंजीकृत किया गया। अपील संख्या 27 में पारित बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के दिनांक 04.07.2011 के आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) ने उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण वाद दायर किया, जिसे पुनरीक्षण संख्या 86 के रूप में पंजीकृत किया गया।

प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) ने भी बंदोबस्त अधिकारी चकबंदी के दिनांक 04.07.2011 के आदेश के विरुद्ध दो पुनरीक्षण वाद दायर किए, जिन्हें उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 48 के अंतर्गत पुनरीक्षण संख्या 42 और 18 के रूप में पंजीकृत किया गया। उपर्युक्त चारों पुनरीक्षणों को समेकित कर एक साथ सुना गया। उप निदेशक, चकबंदी ने अपने आदेश दिनांक 08.08.2014 द्वारा चारों पुनरीक्षणों पर निर्णय दिया, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) द्वारा दायर पुनरीक्षण संख्या 42 को स्वीकार किया गया तथा शेष पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया गया। अतः याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) की ओर से निम्नलिखित अनुतोष हेतु रिट बी संख्या 47925 सन् 2014 दायर की गई है:

"(i) अभिलेख मंगाने के लिए उत्प्रेषण-पत्र की प्रकृति का रिट, आदेश या निर्देश जारी करना तथा प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा पारित दिनांक 08.08.2014 (संलग्नक संख्या) के आदेश, अपील संख्या 27 में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 04.07.2011 (संलग्नक संख्या 11) के आदेश, प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा अपील संख्या 3/313 में पारित दिनांक 04.07.2011 (संलग्नक संख्या 10) के आदेश तथा चकबंदी अधिकारी के दिनांक 27.05.2009 (संलग्नक संख्या 7) के आदेश को रद्द करना।"

4. प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) और राम किशोर की ओर से निम्नलिखित राहत के लिए रिट बी संख्या 8596 सन् 2015 दायर की गई है:-

"(i) अपील संख्या 27 (श्रीमती राजेश्वरी बनाम श्रीमती लता देवी) में प्रत्यर्थी संख्या 3 द्वारा सी.एच. अधिनियम के नियम 109 के अंतर्गत पारित दिनांक 04.07.2011 के आक्षेपित आदेश और पुनरीक्षण संख्या 18 (श्रीमती लता देवी बनाम श्रीमती राजेश्वरी) में प्रत्यर्थी संख्या 2 द्वारा पारित दिनांक 08.08.2014 के आदेश (रिट याचिका के संलग्नक संख्या 13 और 17) को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें।

(ii) प्रत्यर्थी संख्या 1 को निर्देशित करते हुए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें कि वह उन व्यक्तियों के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई करें जिन्होंने रिट याचिका के लिए चकबंदी आयुक्त (संलग्नक संख्या 8) की रिपोर्ट के अनुसार राजस्व अभिलेख में जालसाजी/हेरफेर किया है।"

5. इस न्यायालय ने दिनांक 19.09.2014/25.09.2014 के आदेश द्वारा रिट बी संख्या 47925 सन् 2014 पर विचार किया और पक्षकारों को विवादित संपत्ति की प्रकृति बदलने से रोका।

6. इस न्यायालय ने दिनांक 12.02.2015 के आदेश द्वारा रिट बी संख्या 8596 सन् 2015 पर विचार किया और उसे रिट बी संख्या 47925 सन् 2014 से संबद्ध किया और साथ ही पक्षकारों को विवादित संपत्ति की प्रकृति बदलने या किसी तीसरे पक्ष के हित का सृजन करने से रोका।

7. उपर्युक्त आदेशों के अनुसरण में, पक्षकारों ने अपने शपथपत्रों का आदान-प्रदान किया है।

8. रिट बी संख्या 47925 सन् 2014 में उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर.सी. सिंह ने प्रस्तुत किया कि दिनांक 24.11.2008 के आवेदन/आपति के परिणामस्वरूप संपूर्ण कार्यवाही अवैध है, क्योंकि संबंधित गांव को दिनांक 27.06.2007 को यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत गैर-अधिसूचित किया गया था। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 9-बी के अंतर्गत कोई आपति लता देवी द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत कार्यवाही में दायर नहीं की गई थी। यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 11 (ए) के अंतर्गत निहित प्रावधानों के मद्देनजर मूल्यांकन के संबंध में आपति पर विचार नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि चकबंदीकर्ता की दिनांक 20.12.2008 की रिपोर्ट पूरी तरह से प्रदर्शित करती है कि प्रकरण में यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत कोई प्रकरण पंजीकृत नहीं किया गया था। उन्होंने आगे कहा कि यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 20 के तहत आपति दर्ज करने की समय सीमा 15 दिन है और धारा 20 के तहत प्रकाशन 24.03.2005 को किया गया था, इसलिए धारा 20 के तहत आपति पर तब तक विचार नहीं किया जा सकता जब तक कि विलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थना न की जाए। उन्होंने आगे कहा कि प्रत्येक प्रकरण मिसिल बंद (सी.एच. फॉर्म-6) में पंजीकृत होता है जब प्रकरण चकबंदी अधिकारी को भेजा जाता है, लेकिन वर्तमान प्रकरण में इस बात का कोई सबूत नहीं है कि प्रकरण मिसिल बंद में पंजीकृत किया गया था, इसलिए यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 11 (ए) द्वारा पूरी कार्यवाही वर्जित है। उन्होंने दलील दी कि अनंतिम चकबंदी योजना की पुष्टि हो चुकी है और पक्षकारों को कब्जा दिलाया जा चुका है तथा उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 27 के तहत अंतिम अभिलेख भी तदनुसार तैयार किया जा चुका है, इसलिए चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित आक्षेपित आदेश विधि की दृष्टि में टिक नहीं सकते। उन्होंने आगे दलील दी कि आक्षेपित आदेश निरस्त किये जाने योग्य हैं और रिट याचिका स्वीकार किये जाने योग्य है।

9. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एच.एन. सिंह ने तर्क दिया कि प्रश्नगत भूखण्ड (455 और 454/525) के संबंध में प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) के पक्ष में निष्पादित दिनांक 28.08.2004 के पंजीकृत विक्रय विलेख के आधार पर प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) का नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उपर्युक्त भूखण्ड राष्ट्रीय राजमार्ग (एन.एच. 24) से सटे हुए हैं और उनका व्यावसायिक मूल्य है। उन्होंने तर्क दिया कि भूखण्ड संख्या 454/525 याचिकाकर्ता (राजेश्वरी देवी) के चक में प्रस्तावित था, तदनुसार, प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) ने प्रश्नगत गाँव की अधिसूचना रद्द होने से बहुत पहले जून, 2005 में एक आपति दायर की थी। उन्होंने दलील दी कि याचिकाकर्ता द्वारा दायर की गई पहली आपति गलत थी, इसलिए दूसरी आपति दायर की गई, जिसे भूखंड संख्या 454/525 के संबंध में स्वीकार कर लिया गया। उन्होंने आगे दलील दी कि चकबंदी कार्यवाही के दौरान हेराफेरी की गई है और भूखंड संख्या 514/532 क्षेत्रफल 0.057 हेक्टेयर को मानचित्र में बिना किसी आधार के अंकित कर दिया गया, क्योंकि भूखंड संख्या 514/532 का कोई अस्तित्व ही नहीं था। उन्होंने आगे दलील दी कि याचिकाकर्ता ने भूखंड संख्या 514 क्षेत्रफल 0.057 हेक्टेयर, वीरपाल, सोनपाल पुत्रगण दुलारे, जौहरी, शिवराम, नेवाराम पुत्रगण मुन्ना लाल से 26.10.1998 को पंजीकृत विक्रय विलेख के माध्यम से खरीदा था और ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमती कलावती द्वारा 17.01.2014 को याचिकाकर्ता के पक्ष में एक अन्य विक्रय विलेख निष्पादित किया गया था। उन्होंने दलील दी कि प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) ने इस प्रकरण में जाँच शुरू करने के लिए प्राधिकारियों

के समक्ष आपत्ति/शिकायत दायर की थी, जिसमें पाया गया कि 16 सदस्यों ने जालसाजी की है और प्राधिकारियों द्वारा बड़ी संख्या में अनियमितताएँ की गई हैं। उन्होंने दलील दी कि चकबंदी अधिकारी ने दिनांक 27.05.2009 के आदेश द्वारा भूखंड संख्या 454/525 को चकबंदी के दायरे से बाहर घोषित करना सही ठहराया था, लेकिन भूखंड संख्या 455 के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया गया, तदनुसार, अपील और पुनरीक्षण दायर किए गए। उन्होंने दलील दी कि पुनरीक्षण संख्या 42 में, उप निदेशक चकबंदी ने भूखंड संख्या 455 को चकबंदी के दायरे से बाहर घोषित करना सही ठहराया है। उन्होंने दलील दी कि लता देवी व अन्य ने पुनरीक्षण संख्या 18 में पारित पुनरीक्षण आदेश को रिट बी संख्या 8596 सन् 2015 के माध्यम से चुनौती दी है। उन्होंने दलील दी कि याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण संख्या 18 को भी स्वीकार किया जाना चाहिए और तदनुसार रिट बी संख्या 8596 सन् 2015 को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। अपने तर्कों के समर्थन में, उन्होंने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णयों पर भरोसा किया:-

1. (2003) 8 सुप्रीम कोर्ट प्रकरण 319 [सिविल अपील संख्या 8216 सन् 2003 के साथ सिविल अपील संख्या 8217 सन् 2003 (राम चंद्र सिंह बनाम सावित्री देवी और अन्य)]

2. (2000) 3 सुप्रीम कोर्ट प्रकरण 581 [सिविल अपील संख्या 2087 सन् 2000 (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम राजेंद्र सिंह और अन्य)] [सिविल अपील संख्या 2088 सन् 2000 (यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम संजय सिंह और अन्य)]

10. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया है और अभिलेख का अवलोकन किया है।

11. इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि विचाराधीन गाँव को चकबंदी के अंतर्गत लाया गया था और उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अधिसूचना 24.03.2023 को प्रकाशित की गई थी, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 20 के अंतर्गत अधिसूचना 27.03.2003 को प्रकाशित की गई थी, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अंतर्गत अधिसूचना 27.06.2007 को प्रकाशित की गई थी। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि चकबंदी अधिकारी ने दिनांक 26.02.2009 के आदेश द्वारा उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 21 के अंतर्गत कार्यवाही में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का लाभ प्रदान किया तथा दिनांक 27.05.2009 के आदेश द्वारा भूखण्ड संख्या 454/525 क्षेत्रफल 0.049 हेक्टेयर को चकबंदी भूमि 18 घोषित किया। इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) द्वारा दायर पुनरीक्षण संख्या 42 में भी चकबंदी भूमि 18 घोषित किया गया था।

12. प्रकरण में शामिल विवाद को समझने के लिए, चकबंदीकर्ता की दिनांक 18.12.2008 की रिपोर्ट का अवलोकन प्रासंगिक होगा, जो निम्नानुसार है:-

"न्यायालय बन्दोस्त चकबन्दी अधिकारी,

शाहजहांपुर

अपील सं० 03/113

धारा 21(2) जो०च०अ०

श्रीमती राजेश्वरी देवी

बनाम

लता देवी

ग्राम भेदपुर परगना जमौर तहसील सदर

रिपोर्ट चकबन्दी कर्ता 18.12.08

स०च०अ०- न्यायालय च०अ० सदर वाद नं० 194 धारा 21(1) जो०च०अ० ग्राम भेदपुर परगना जमौर तहसील सदर के गा० सं० 454/525, 455 के समबन्ध में लता देवी पत्नी रामककिशोर निवासी मोहल्ला रोशनगंज नगर व जिला शहजहाँपुर ने कालबाधित प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करके मांग की है कि उसका प्रस्तावित चक मूल जोत के गाटो पर सड़क के किनारे दिया जाय तथा सड़क के किनारे चौड़ाई बढ़ाई जाय।

आपत्ती कर्ता का यह भी कथन है कि उसने दिनांक 30.6.05 में आपत्ति प्रस्तुत की थी जो वर्ष 2007 तक सुनवाई में रही तत्पश्चात पत्रावली गायब हो गयी फलस्वरूप यह आपत्ति पुनः करने पड़ी इसीलिए आपत्ति कालबन्धन से मुक्त रखी जाय।

ग्राम के अभिलेखों के अनुसार चक सं० 274 आपत्तिकर्ता के नाम अदा बैनामा अंकित किया गया है। इस चक में मूल जोत के गाटा सी० 455/543, 455/ 525/ 0.049 पूर्व अंश दर्शाये गये हैं। तथा यह चक गा० सं० 453मि०/ 0.010, प454मि/ 524/ 0.017, 454मि०/ 0.010, 455मि/ 0.515, 456/ 569/ 0.016 कुल 0.568 पर प्रदिष्ट किया गया है। इस चक पर च०अ० वाद सं० 9/ 299/ 24ए अमलदरामद की अधूरी पंक्ति अंकित हो तथा चक पर किसी प्रकार का कोई आदेश अंकित नहीं है। स०च०अ० स्तर का चक यथावत है। प्रस्तावित चक में संशोधन नहीं किया गया है।

जो. च०अ० पत्र -45 में खाता सं० 315 पर गा०सं० 572/0.568 आपत्तिकर्ती के नाम अंकित किया गया है।

ग्राम का धारा -20क प्रकाशन 24.3.05 तथा 52(1) प्रस्ताव मार्च 2007 में प्रेषित किया जा चुका है।

आख्या उचित कार्यावाही हेतु सेवा में सादर प्रेषित है।

ह०अ० 18.12.08 आर०एच०/कृ० पक्षों को नोटिस जारी

च०अ० सदर करते हुए दिनांक 18.1.08 को पेश

महोदय करें ह०अ० एसी० ओ० 24.12.08

चकबन्दी की विस्तृत आख्या सादर प्रेषित है। ह०अ० 20.12.08"

13. चकबंदीकर्ता की दिनांक 18.12.2008 की उपर्युक्त रिपोर्ट तथा दोनों पक्षों द्वारा अपनी रिट याचिका में प्रस्तुत दलीलों के अवलोकन से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि ग्राम भेदपुर, परगना-जमौर, तहसील-सदर, शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत दिनांक 09.05.1997 को जारी अधिसूचना,

उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा-9 के अन्तर्गत दिनांक 18.12.1998 को प्रकाशन, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत दिनांक 24.03.2005 को प्रकाशन, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम की धारा 52 के अन्तर्गत दिनांक 26.06.2001 को प्रकाशन द्वारा चकबंदी प्रक्रिया के अन्तर्गत आया। चकबंदीकर्ता की रिपोर्ट के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि चक आपति के साथ विलम्ब क्षमा प्रार्थना भी प्रस्तुत की गई थी। प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) द्वारा प्रस्तुत चक आपति पर निर्णय करते समय चकबंदी अधिकारी ने इस तथ्य पर विचार किया कि भूखंड संख्या 454/525 राष्ट्रीय राजमार्ग 24 (बरेली-सहारनपुर मार्ग) से सटा हुआ है, अतः चकबंदी नियमावली के प्रावधानों के अनुसार सड़क किनारे के भूखंडों को चकबंदी भूमि 18 घोषित किया जाना है। वर्तमान याचिकाओं और रिट बी संख्या 363/2022 में प्रस्तुत अभिलेख और अभिवचन पूरी तरह से यह प्रदर्शित करते हैं कि याचिकाकर्ता द्वारा पूर्व में प्रस्तुत आपति मिसिल बंद रजिस्टर में भी दर्ज की गई थी। इसकी प्रमाणित प्रति बहस के समय न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती है और इसकी सत्य प्रति रिट बी संख्या 363/2022 में दायर प्रति-शपथपत्र के साथ संलग्नक संख्या सी-ए.2 के रूप में संलग्न की जाती है। इसका प्रासंगिक अंश अवलोकनार्थ प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:

"नकल- मिसिलबन्द - न्यायालय चकबन्दी
अधिकारी (प्रथम) शाहजहाँपुर

धारा 21(1) जो 2005-2006 अधिनियम वर्ष-

लता देवी गाटा सं०. 455,454,565,484/425 के सम्बन्ध में 9/299 भेदपुर। जमौर 30/6/05

बनाम

सरकार

14. यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि भूखंड संख्या 454/525, 455 राष्ट्रीय राजमार्ग 24 के निकट स्थित हैं और प्रत्यर्थी संख्या 4 (लता देवी) की ओर से आपति प्रस्तुत की गई थी, साथ ही गाँव की अधिसूचना रद्द करने से पहले विलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थना भी की गई थी। अतः चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा भूखंड संख्या 454/525 क्षेत्रफल 0.049 हेक्टेयर और भूखंड संख्या 455 क्षेत्रफल 0.543 हेक्टेयर को चकबंदी भूमि 18 घोषित करने के आदेश में कोई अवैधानिकता नहीं है। मिसिल बैंड में की गई प्रविष्टि यह भी दर्शाती है कि लता देवी द्वारा गाँव की अधिसूचना रद्द करने से पहले आपति प्रस्तुत की गई थी। उप निदेशक, चकबंदी ने प्रत्येक पुनरीक्षण पर निर्णय लेते समय पक्षों के दावे पर उचित विचार किया और लता देवी द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण संख्या 48 को छोड़कर संबंधित पक्षों द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षणों को खारिज कर दिया।

15. इस न्यायालय ने 1985 के आरडी 71, पारस नाथ सिंह बनाम उप निदेशक, चकबंदी व अन्य, प्रकरण में यह निर्णय दिया है कि यदि किसी अवैध आदेश को रद्द करने से कोई अन्य अवैध आदेश अभिलेख में दर्ज हो जाता है, तो उसे रिट क्षेत्राधिकार में रद्द या अपास्त नहीं किया जा सकता। पारस नाथ सिंह (उपरोक्त) प्रकरण में दिए गए निर्णय का प्रस्तर संख्या 21 अवलोकनार्थ प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार है:-

"21. निस्संदेह, यह कहना सही है कि अधिकार क्षेत्र के बिना पारित कोई भी आदेश अमान्य है और निरस्त किए जाने योग्य है। लेकिन यदि उस आदेश को निरस्त करने के परिणामस्वरूप कोई अन्य गलत और अवैध आदेश बहाल हो जाता है, तो यह न्यायालय उस आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने से इंकार कर देगा जो पूर्णतः उचित और न्यायसंगत आदेश प्रतीत होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत शक्ति न्याय को आगे बढ़ाने के लिए है, न कि उसे विफल करने के लिए। मेरे विचार से यह सर्वमान्य प्रतीत होता है कि यदि किसी अवैध आदेश को निरस्त करने के परिणामस्वरूप कोई अन्य अवैध आदेश अभिलेख में दर्ज हो जाता है, तो उसे रिट अधिकार क्षेत्र में निरस्त या रद्द नहीं किया जा सकता।"

16. प्रकरण के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, चकबंदी प्राधिकारियों द्वारा पारित आक्षेपित आदेशों के विरुद्ध भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की कोई गुंजाइश नहीं है।

17. राजेश्वरी देवी द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 47925 सन 2014 को खारिज किया जाता है और श्रीमती लता देवी द्वारा दायर रिट याचिका संख्या 8596 सन 2015 को उप निदेशक चकबंदी द्वारा यू.पी.सी.एच. अधिनियम की धारा 48(3) के अंतर्गत संदर्भ कार्यवाही में पारित आदेश दिनांक 29.08.2024 के आलोक में निस्तारित किया जाता है।

18. लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 505

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति राजन राय

माननीय न्यायमूर्ति बृजराज सिंह

रिट सी संख्या- 953/2025

श्रीमती रचना सोनी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थीगण

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

रिंकू वर्मा, अजीत कुमार

प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी., ज़फ़र अज़ीज़

ए. सिविल विधि - भारतीय संविधान, 1950- अनुच्छेद 226- भारतीय संविदा अधिनियम, 1872- मुख्यमंत्री किसान एवं सर्वहित बीमा योजना-दावे में देरी- मुख्यमंत्री किसान एवं सर्वहित के तहत याचिकाकर्ता का दावा बीमा योजना को जिला स्तरीय समिति ने देरी के आधार पर खारिज कर दिया था, क्योंकि यह मृत्यु की तारीख से दो महीने की निर्धारित अवधि के बाद दायर की गई थी। याचिकाकर्ता ने ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम संजेश और अन्य प्रकरण पर भरोसा किया, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि बीमा योजनाओं में इस तरह के समय प्रतिबंध अधिनियम, 1872 की धारा 28 के तहत शून्य हैं। जिला स्तरीय समिति ने देरी के आधार पर अस्वीकृति को बरकरार नहीं रखा क्योंकि एक महीने की अवधि के भीतर दावा दर्ज करने की शर्त, जिसे एक और महीने तक बढ़ाया जा सकता है, अधिनियम की धारा 28 के विपरीत है। दावे पर तीन महीने के भीतर गुण-दोष के आधार पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। (पैरा 1 से 9)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम संजेश एवं अन्य, एसएलपी © संख्या 3978/2022
2. द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मुजफ्फर नगर बनाम श्रीमती संजेश एवं अन्य, रिट सी संख्या 19071/2020
3. नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम गौम यादव एवं अन्य, एसएलपी © संख्या 7647 वर्ष 2021

(माननीय न्यायमूर्ति राजन राय एवं माननीय न्यायमूर्ति बृज राज सिंह द्वारा पारित)

1. सुना।

2. मुख्यमंत्री किसान एवं सर्वहित के तहत याचिकाकर्ता का दावा जिला स्तरीय समिति ने देरी के आधार पर बीमा योजना को अस्वीकार कर दिया है। समिति के अनुसार, दावा मृत्यु की तिथि से एक माह के भीतर प्रस्तुत किया जाना चाहिए था, जिसे एक माह के लिए और बढ़ाया जा सकता था, अर्थात् अधिकतम दो माह के भीतर। इसके बजाय, दावा 16.11.2018 को प्रस्तुत किया गया, जबकि मृत्यु 14.05.2018 को हुई थी, इस प्रकार, दावा दो माह की पूर्वोक्त अवधि के बाद प्रस्तुत किया गया।

3. हालाँकि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 11.03.2022 को **एसएलपी (सी) संख्या 3978/2022 (द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम संजेश एवं अन्य)** में दिए गए निर्णय

का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि योजना की ऐसी शर्त भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 28 के अंतर्गत आती है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त प्रकरण में माना है। उक्त निर्णय उसी योजना के संबंध में दिया गया है, हालाँकि इसमें एक अन्य बीमा कंपनी अर्थात् द ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड भी शामिल है, क्योंकि यह देश का विधि है, इसलिए इस निर्णय के मद्देनजर, जिला स्तरीय समिति के निर्णय को बरकरार नहीं रखा जा सकता।

4. जब न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के अधिवक्ता श्री जफर अजीज से इस बारे में पूछा गया तो वे इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि अब माननीय सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय है, जैसा कि यहां उद्धृत किया गया है, जो इसमें शामिल मुद्दे को कवर करता है और न ही विद्वान स्थायी अधिवक्ता ऐसा कर सके।

5. हमने इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय के दिनांक 22.09.2021 के **रिट सी संख्या 19071/2020 (ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, मुज़फ़्फ़रनगर बनाम श्रीमती संजेश एवं अन्य)** में दिए गए निर्णय का अवलोकन किया है, जिसके द्वारा दावे में देरी के आधार पर स्थायी लोक न्यायालय के आदेश को चुनौती देने वाली बीमा कंपनी की रिट याचिका खारिज कर दी गई थी, जिसके विरुद्ध ओरिएंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड ने उपरोक्त विशेष अनुमति याचिका दायर की थी, जिसे भी खारिज कर दिया गया है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का दिनांक 11.03.2022 (पूर्वोक्त) का उक्त निर्णय इस प्रकार है:

"याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाया गया एकमात्र तर्क यह है कि दावा एक महीने की अवधि के भीतर या एक महीने की क्षमा योग्य अवधि के भीतर दायर नहीं किया गया था।

भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 (संक्षेप में, 'अधिनियम') की धारा 28 के मद्देनजर हम उक्त तर्कों में कोई योग्यता नहीं पाते हैं, जो इस प्रकार है: -

"28. विधिक कार्यवाही के अवरोध में समझौते, शून्य। [प्रत्येक समझौता, ?

(क) जिसके द्वारा किसी पक्षकार को किसी संविदा के अधीन या उसके संबंध में अपने अधिकारों को लागू करने से, सामान्य न्यायाधिकरणों में सामान्य विधिक 2 कार्यवाहियों द्वारा पूर्णतया प्रतिबंधित कर दिया जाता है, या जो उस समय को सीमित कर देता है जिसके भीतर वह इस प्रकार अपने अधिकारों को लागू कर सकता है; या

(ख) जो किसी पक्षकार के अधिकारों को समाप्त कर देता है, या किसी पक्षकार को किसी संविदा के अधीन या उसके संबंध में किसी दायित्व से विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति पर उन्मोचित कर देता है, जिससे किसी पक्षकार को अपने अधिकारों को प्रवर्तित करने से निर्बन्धित किया जा सके, इस सीमा तक शून्य है।]"

उपर्युक्त धारा के मद्देनजर, एक महीने की अवधि के भीतर दावा दायर करने की शर्त, जिसे एक महीने तक बढ़ाया जा सकता है, अधिनियम की धारा 28 के विपरीत है और इस प्रकार शून्य है। उक्त तथ्य के मद्देनजर,

हमें उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिलता है। तदनुसार, विशेष अनुमति याचिका खारिज की जाती है।

यदि कोई लंबित प्रार्थना पत्र है तो उसका भी निस्तारण हो जाएगा।

6. यद्यपि निर्णय एसएलपी चरण में दिया गया है, लेकिन यह एक तर्कपूर्ण निर्णय है, इसलिए इसमें बाध्यकारी अनुपात निहित है।

7. उपर्युक्त उद्धृत निर्णय के आलोक में, याचिकाकर्ता के दावे को अस्वीकार करने का दिया गया कारण, अर्थात् विलम्ब, स्वीकार्य नहीं है। तदनुसार, आक्षेपित निर्णय निरस्त किया जाता है। जिला स्तरीय समिति को निर्देश दिया जाता है कि वह उपर्युक्त उद्धृत निर्णय को ध्यान में रखते हुए, गुण-दोष के आधार पर याचिकाकर्ता के दावे पर पुनर्विचार करे। इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने के तीन माह के भीतर, शीघ्रतापूर्वक निर्णय लिया जाएगा।

8. रिट याचिका स्वीकार की जाती है।

9. **विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 7647/2021, नेशनल इश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम गौतम यादव और अन्य** में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष इसी तरह की याचिकाओं के लंबित होने को देखते हुए इस न्यायालय द्वारा इसी तरह की याचिकाओं को लंबित रखा गया है, हालांकि, अब माननीय सर्वोच्च न्यायालय का एक निर्णय रिकॉर्ड पर है, इसलिए, रजिस्ट्री को निर्देश दिया जाता है कि वह ऐसे सभी लंबित प्रकरण को जल्द से जल्द सूचीबद्ध करे। ऐसी याचिकाओं में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता अपने प्रकरण को सूचीबद्ध करने के लिए आवेदन करने के लिए स्वतंत्र हैं।

(2025) 1 ILRA 507

मूल न्यायाधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

रिट-सी संख्या- 2228/2025

अनिल पाठक एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

बृजेश कुमार केशरवानी, ममता सिंह

प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., अनूप तिवारी, सी.एस.सी., कृष्ण मोहन अस्थाना

ए. बैंकिंग और वसूली विधि - क्रय मूल्य की शेष राशि का भुगतान - सरफेसी अधिनियम, 2002 - धारा 13(4) - प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 - नियम 9(4) - संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण शक्तियों का भी उपयोग मूल विधि को प्रतिस्थापित करने के लिए नहीं किया जा सकता, इस विषय से संबंधित स्पष्ट वैधानिक प्रावधानों की अनदेखी करके और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से कुछ ऐसा हासिल करने के लिए जो प्रत्यक्ष रूप से हासिल नहीं किया जा सकता। क्रय मूल्य की शेष राशि नीलामी क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को बिक्री की पुष्टि के 15वें दिन या उससे पहले या क्रेता और सुरक्षित ऋणदाता के बीच लिखित रूप में सहमत किसी विस्तारित अवधि के भीतर, किसी भी स्थिति में तीन महीने से अधिक नहीं, भुगतान की जानी चाहिए। (प्रस्तर 27)

नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (4) और (5) में निहित प्रावधान - सुरक्षित लेनदार के प्राधिकृत अधिकारी को शेष राशि जमा करने के लिए समय बढ़ाने का विवेकाधिकार उपलब्ध है, लेकिन नब्बे दिनों की निर्धारित सीमा से अधिक नहीं। उप-नियम (5) के तहत सुरक्षित लेनदार की जमा राशि को जब्त करने की शक्तियों को लागू करने का उद्देश्य और आवश्यकता आगे स्पष्ट करती है कि विधायिका ने यह कल्पना की थी कि बिक्री प्रक्रियाओं को विफल करके बेईमान उधारकर्ताओं के कहने पर कीमतों में भ्रामक हेरफेर के प्रकरण को रोकने की आवश्यकता थी। प्रावधान का उद्देश्य इच्छुक खरीदारों में अनुशासन की भावना पैदा करना था, जबकि वे नीलामी-बिक्री प्रक्रिया में भाग लेने के लिए आगे बढ़ते हैं। (प्रस्तर 28)

वर्तमान प्रकरण में, रिकॉर्ड पर ऐसी कोई सामग्री नहीं है, जो इस न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए राजी कर सके कि प्रत्यर्था-बैंक की ओर से बोली राशि की शेष 75% राशि को नियमावली, 2002 के नियम 9(4) के तहत निर्धारित समय अवधि से परे जमा करने के लिए याचिकाकर्तागण के बार-बार अनुरोध को स्वीकार न करने में कोई स्पष्ट मनमानी या अनुचितता रही है। प्रासंगिक वैधानिक नियमों के तहत प्रदान की गई तीन महीने की अधिकतम स्वीकार्य सीमा, सुरक्षित ऋणदाता द्वारा पहले ही प्रदान की जा चुकी है, ऐसा कोई प्रशंसनीय कारण नहीं है जो याचिकाकर्तागण द्वारा मांगी गई समय अवधि के आगे विस्तार के लिए कोई निर्देश जारी करने का औचित्य साबित कर सके। (प्रस्तर 30, 31)

बी. जब किसी विधि में किसी विशेष कार्य को किसी विशेष तरीके से करने की आवश्यकता होती है, तो उसे उसी तरीके से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए, और प्रदर्शन के अन्य तरीकों पर अनिवार्य रूप से प्रतिबंध लगा दिया जाता है। (प्रस्तर 32)

नियमावली, 2002 के नियम 9(4), जिसे दिनांक 4.11.2016 से संशोधित किया गया है, में यह व्यवस्था है कि आपसी सहमति से, बिक्री मूल्य की शेष राशि जमा करने की अवधि को नब्बे दिन से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता है; तथापि, किसी भी स्थिति में नब्बे दिन से अधिक की अवधि बढ़ाने की अनुमति नहीं होगी। (प्रस्तर 33)

सुरक्षित ऋणदाता को विधिक तौर पर सुरक्षा हित को लागू करने का अधिकार है और इस प्रक्रिया में, वह ऐसे सभी कदम उठा सकता है और ऐसे उधारकर्ता को उधार दिए गए सार्वजनिक धन की वसूली करके सार्वजनिक हित की सुरक्षा के लिए सभी उपाय कर सकता है, जिसने इसकी अदायगी में चूक की है। (प्रस्तर 35)

रिट याचिका खारिज (ई-4)

अनुसरण की गई मिसाल:

1. मर्डिया केमिकल लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2004) 4 एससीसी 311 (पैरा 15)
2. यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन, (2010) 8 एससीसी 110 (पैरा 4)
3. यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम रजत इंफ्रास्ट्रक्चर (पी) लिमिटेड, (2023) 10 एससीसी 232 (पैरा 27)
4. प्राधिकृत अधिकारी, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम सी. नटराजन, (2024) 2 एससीसी 637 (पैरा 28)
5. टेलर बनाम टेलर, (1875) एलआर 1 अध्याय डी 426 (पैरा 32)
6. नजीर अहमद बनाम राजा सम्राट, एआईआर 1936 पीसी 253 (2) (पैरा 32)
7. राव शिव बहादुर सिंह बनाम विध्य प्रदेश राज्य, (1954) 1 एससीसी 296 (पैरा 32)
8. उ०प्र० बनाम सिंघारा सिंह, एआईआर 1964 एससी 358 (पैरा 32)
9. बाबू वर्गीस बनाम बार काउंसिल ऑफ केरल, (1990) 3 एससीसी 422, (पैरा 32)
10. ग्रेटर मुंबई नगर निगम बनाम अभिलाष लाल, (2020) 13 एससीसी 234 (पैरा 32)
11. नरेशभाई भागुभाई बनाम भारत संघ, (2019) 15 एससीसी 1 (पैरा 32)

पूर्व उदाहरण:

1. गौरव गर्ग बनाम सिंडिकेट बैंक एवं अन्य, रिट-सी संख्या 2196/2019 (पैरा 8)
2. जी.एम., श्री सिद्धेश्वर सहकारी बैंक लिमिटेड एवं अन्य बनाम श्री इकबाल एवं अन्य (2013) 10 एससीसी 83 (पैरा 8)

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. प्रत्यर्थी बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश कुमार शुक्ला के होल्टिंग ब्रीफ विद्वान अधिवक्ता श्री प्रखर शुक्ला द्वारा दिए गए निर्देशों को अभिलेख में रखा जाए।
2. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री बृजेश कुमार केशरवानी, प्रत्यर्थी-बैंक के विद्वान अधिवक्ता श्री रमेश कुमार शुक्ला के होल्टिंग ब्रीफ श्री प्रखर शुक्ला तथा राज्य प्रत्यर्थीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।
3. रिट याचिका में दिए गए तथ्यों से पता चलता है कि उज्ज्वल बांका और तुषार बांका के स्वामित्व वाले मकान संख्या 24, आवास विकास कॉलोनी बेतियाहाता, गोरखपुर को 1 करोड़ रुपये के ऋण और 20 लाख रुपये के ओवर ड्राफ्ट के बदले बंधक रखा गया था।
4. उपर्युक्त ऋण राशि का भुगतान न होने पर, प्रत्यर्थी संख्या 3-बैंक ने वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अधिनियम, 2002 की धारा 13(2) के अंतर्गत एक नोटिस जारी किया। तत्पश्चात, सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 13(4) के अंतर्गत एक कब्ज़ा नोटिस जारी किया गया और उपर्युक्त संपत्ति की नीलामी हेतु एक समाचार पत्र प्रकाशन भी किया गया। नीलामी की तिथि 23.10.2024 निर्धारित की गई और याचिकाकर्ता, एकमात्र बोलीदाता होने के कारण, सफल घोषित किए गए।
5. याचिकाकर्तागण ने नीलामी राशि का 25%, यानी 55,93,750/- रुपये, निर्धारित 15 दिनों की अवधि के भीतर जमा कर दिए। शेष 75% नीलामी राशि जमा करने के लिए, याचिकाकर्तागण ने प्रत्यर्थी बैंक से ऋण के लिए आवेदन किया। प्रत्यर्थी बैंक ने 3.1.2025 को उक्त आवेदन को अस्वीकार कर दिया। यह बताया गया है कि यद्यपि याचिकाकर्तागण ने शेष 75% नीलामी राशि जमा करने के लिए तीन महीने का अतिरिक्त समय देने का अनुरोध किया है, फिर भी प्रत्यर्थी बैंक 22.1.2025 को संपत्ति की नीलामी करने जा रहा है।
6. तदनुसार, याचिकाकर्तागण ने वर्तमान रिट याचिका प्रस्तुत की है, जिसमें प्रत्यर्थी संख्या 3-बैंक को नीलामी राशि का शेष 75% जमा करने के लिए तीन महीने का अतिरिक्त समय देने या पूर्व में जमा की गई 25% राशि को निर्धारित समयावधि के भीतर वापस करने का निर्देश देने की मांग की गई है।
7. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने उपर्युक्त तथ्यों का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि नीलामी राशि का 75% जमा करने में देरी मुख्यतः प्रत्यर्थी बैंक द्वारा याचिकाकर्तागण के ऋण आवेदन को अस्वीकार करने के कारण हुई है, और तदनुसार, उन्होंने इस प्रयोजन के लिए तीन महीने का और समय माँगा है। यह प्रस्तुत किया गया है कि बैंक संपत्ति की पुनः नीलामी करना चाहता है, जिससे उनके हितों को गंभीर नुकसान होगा।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट-सी संख्या 2196/2019 (गौरव गर्ग बनाम सिंडिकेट बैंक और अन्य) में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा रखा है, जिसका निस्तारण जी.एम., श्री सिद्धेश्वरा कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड और अन्य बनाम श्री इकबाल और अन्य के प्रकरण में फैसले के बाद किया गया था।

9. प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि उनके निर्देशानुसार, याचिकाकर्तागण, जिन्हें 23.10.2024 को आयोजित ऑनलाइन नीलामी में बोली राशि का 25% जमा करने के बाद सर्वोच्च बोलीदाता घोषित किया गया था, को बोली राशि का शेष 75% 7.11.2024 तक जमा करने की सलाह दी गई थी। हालांकि, उनके अनुरोध पर विचार करते हुए, बैंक ने 5.11.2024 के पत्र के माध्यम से 6.12.2024 तक समय विस्तार दिया। इसके बाद, 2.12.2024 के एक अन्य अभ्यावेदन के माध्यम से, याचिकाकर्तागण ने धन की व्यवस्था करने में अपनी कठिनाई बताते हुए 7.1.2025 तक समय का और विस्तार मांगा। उक्त अनुरोध पर विचार करते हुए, बैंक ने शेष बिक्री राशि जमा करने के लिए 27.12.2024 तक समय विस्तार की अनुमति दी। यह कहा गया है कि विस्तारित समय अवधि के भीतर शेष बिक्री राशि जमा करने के बजाय, याचिकाकर्तागण ने 22.12.2024 को एक और अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसमें 7.2.2025 तक समय बढ़ाने की मांग की गई।

10. यह प्रस्तुत किया गया है कि याचिकाकर्तागण से दिनांक 22.12.2024 को प्राप्त अभ्यावेदन के अनुसार, बैंक के सक्षम प्राधिकारी ने शेष राशि जमा करने के लिए अंतिम अवसर के रूप में 23.1.2025 तक समय विस्तार प्रदान किया था। यह बताया गया है कि बैंक ने याचिकाकर्तागण को दिनांक 18.1.2025 को विधिवत एक पत्र भेजा था, जिसमें शेष बिक्री राशि ₹1,67,81,250.00, 23.1.2025 से पहले जमा करने का निर्देश दिया गया था। ऐसा न करने पर, ₹55,93,750.00 की प्रारंभिक जमा राशि बैंक द्वारा जब्त कर ली जाएगी और उक्त संपत्ति को पुनः बेच दिया जाएगा।

11. बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि नीलामी बिक्री सरफेसी अधिनियम, 2002 और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के प्रावधानों के अनुसार की गई है, और इसके अनुसार, यह एक समयबद्ध प्रक्रिया है और नीलामी क्रेता को संबंधित वैधानिक नियमों के तहत निर्धारित समयावधि से आगे कोई विस्तार नहीं दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, निर्धारित समयावधि के भीतर पूरी बिक्री राशि का भुगतान न करने पर, नीलामी क्रेता द्वारा जमा की गई राशि सुरक्षित ऋणदाता-बैंक को जब्त कर ली जाएगी।

12. प्रतिद्वंद्वी तर्कों की जांच करने के लिए, प्रासंगिक वैधानिक प्रावधानों का संदर्भ लेना आवश्यक होगा।

13. सरफेसी अधिनियम, 2002 को वित्तीय परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हितों के प्रवर्तन को विनियमित करने और संपत्ति अधिकारों पर बनाए गए प्रतिभूति हितों का एक केंद्रीय डाटाबेस उपलब्ध कराने तथा उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक प्रकरण के लिए अधिनियमित किया गया था।

14. अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों का विवरण निम्नानुसार है:

“उद्देश्यों और कारणों का कथन

वित्तीय क्षेत्र, भारत की अर्थव्यवस्था के तीव्र विकास में सफलता प्राप्त करने के प्रयासों में प्रमुख प्रेरकों में से एक रहा है। यद्यपि भारत में बैंकिंग उद्योग उत्तरोत्तर अंतर्राष्ट्रीय विवेकपूर्ण मानदंडों और लेखा पद्धतियों का अनुपालन कर रहा है, फिर भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्र को विश्व के वित्तीय बाजारों के अन्य प्रतिभागियों की तुलना में समान अवसर प्राप्त नहीं हैं। बैंकों और वित्तीय संस्थानों की वित्तीय परिसंपत्तियों के प्रतिभूतिकरण को सुगम बनाने हेतु कोई विधिक प्रावधान नहीं है। इसके अतिरिक्त, अंतर्राष्ट्रीय बैंकों के विपरीत, भारत में बैंकों और वित्तीय संस्थानों को प्रतिभूतियों पर कब्जा करने और उन्हें बेचने का अधिकार नहीं है। वाणिज्यिक लेनदेन से संबंधित हमारा मौजूदा विधिक ढाँचा बदलती वाणिज्यिक पद्धतियों और वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के साथ तालमेल नहीं बिठा पाया है। इसके परिणामस्वरूप, चूककर्ता ऋणों की वसूली की गति धीमी हो गई है और बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों की गैर-निष्पादित परिसंपत्तियों का स्तर बढ़ रहा है। बैंकिंग क्षेत्र के सुधारों की जाँच के उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा गठित नरसिम्हन समिति । और II तथा अंध्यारुजिना समिति ने इन क्षेत्रों से संबंधित विधिक व्यवस्था में बदलाव की आवश्यकता पर विचार किया है। इन समितियों ने, अन्य बातों के साथ-साथ, प्रतिभूतिकरण के लिए एक नया विधि बनाने और बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों को प्रतिभूतियों पर कब्जा करने और उन्हें न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बेचने का अधिकार देने का सुझाव दिया है। इन सुझावों पर अमल करते हुए, 21 तारीख को वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण एवं पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित प्रवर्तन अध्यादेश, 2002 प्रख्यापित किया गया। जून, 2002 को वित्तीय आस्तियों के प्रतिभूतिकरण और पुनर्निर्माण तथा प्रतिभूति हित के प्रवर्तन को विनियमित करने और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक प्रकरण के लिए अध्यादेश पारित किया गया था। अध्यादेश के प्रावधान बैंकों और वित्तीय संस्थानों को दीर्घकालिक आस्तियों की प्राप्ति, तरलता की समस्या, आस्तियों की देयता के असंतुलन का प्रबंधन करने और प्रतिभूतियों को अपने कब्जे में लेने, उन्हें बेचने और वसूली या पुनर्निर्माण के उपाय अपनाकर गैर-निष्पादित आस्तियों को कम करने की शक्तियों का प्रयोग करके वसूली में सुधार करने में सक्षम बनाएंगे।

15. **मार्डिया केमिकल लिमिटेड बनाम भारत संघ** के प्रकरण में सरफेसी अधिनियम के अधिनियमन के इतिहास और विधायी पृष्ठभूमि की जांच की गई और यह निम्नानुसार देखा गया:

“34. कुछ तथ्य जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है, वे हैं कि बैंकों और वित्तीय संस्थानों ने याचिकाकर्तागण और अन्य उद्योगों को भारी मात्रा में वित्त पोषण प्रदान किया है। यह भी एक तथ्य है कि बड़ी राशि वसूल नहीं हो पाई है। न्यायालयों के माध्यम से ऋण वसूली की सामान्य प्रक्रिया लंबी होती है और इसमें लगने वाला समय ऐसे बकाया की वसूली के लिए उपयुक्त नहीं है। वित्तीय संस्थानों द्वारा उद्योगों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता के लिए, वित्तीय तरलता आवश्यक है, जिसके अभाव में बड़ी मात्रा में धनराशि का अवरोध उत्पन्न होता है जिससे आर्थिक प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है और इसके परिणामस्वरूप अनेक अन्य दुष्प्रभाव भी होते हैं। इन सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, 1993 में बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋण वसूली

अधिनियम बनाया गया था, लेकिन जैसा कि आंकड़े बताते हैं, इससे भी अपेक्षित परिणाम नहीं मिले। यद्यपि याचिकाकर्तागण की ओर से यह तर्क दिया गया है कि ऐसा लंबे समय तक ऋण वसूली न्यायाधिकरणों के गठन और पीठासीन अधिकारियों की नियुक्ति में सरकारों की निष्क्रियता के कारण हुआ है। इस सीमा को छोड़कर भी, यह ध्यान देने योग्य है कि संबंधित क्षेत्रों में चीजें तेजी से आगे बढ़ना अपेक्षित है। वर्तमान समय में वैश्विक अर्थव्यवस्था में वित्तपोषण और बकाया वसूली के पुराने और पारंपरिक तरीकों पर टिके रहना मुश्किल हो सकता है। इसलिए, हमारे विचार से, यह नहीं कहा जा सकता कि ऋणों के प्रतिभूतिकरण और एनपीए की तेजी से वसूली के उपाय विकसित करने की दिशा में उठाया गया कदम ज़रूरी नहीं था या यह एक अवांछित विधि थोपने जैसा था क्योंकि इस क्षेत्र में पहले से ही एक विधि, अर्थात् बैंकों और वित्तीय संस्थानों को देय ऋण वसूली अधिनियम, लागू था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस तरह के विधि का सहारा लेने का विचार अचानक नहीं आया। ऐसा प्रतीत होता है कि समस्याओं पर विचार किया गया और नरसिम्हन समिति का गठन किया गया जिसने बदलते समय और आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस तरह के विधि की सिफारिश की, जिसके बाद एक और विशेषज्ञ समिति का गठन किया गया, और उसके बाद ही विवादित विधि बनाया गया। किसी भी स्वस्थ और विकासोन्मुखी अर्थव्यवस्था के लिए वित्तीय तरलता और धन का प्रवाह आवश्यक है। लेकिन निश्चित रूप से, यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि विधि संविधान द्वारा लोगों को दिए गए अधिकारों का हनन न करे। प्रक्रिया भी निष्पक्ष, उचित और वैध होनी चाहिए, हालाँकि यह देखने में अलग-अलग हो सकती है। विभिन्न परिस्थितियों से निपटने की आवश्यकता है और लक्ष्य को प्राप्त करने की कोशिश की जा रही है।”

16. इस सन्दर्भ में **यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन** के प्रकरण में दिए गए निर्णय में की गई कुछ टिप्पणियों का भी उल्लेख किया जा सकता है। ये टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

“1. ... देश के औद्योगिक विकास को गति देने के उद्देश्य से, केंद्र और राज्य सरकारों ने बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों को नई औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित करने या मौजूदा इकाइयों का विस्तार करने के इच्छुक लोगों को ऋण और अन्य वित्तीय सुविधाएँ प्रदान करने हेतु उदार नीतियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। लाखों लोगों ने बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा आसान वित्तपोषण का लाभ उठाया, लेकिन उनमें से बड़ी संख्या में लोगों ने ऋण की राशि आदि नहीं चुकाई। इतना ही नहीं, उन्होंने तुच्छ मुकदमे दायर किए और बैंकों और वित्तीय संस्थानों द्वारा अपना बकाया वसूलने के लिए उठाए गए कदमों के विरुद्ध सिविल न्यायालयों को निषेधाज्ञा पारित करने के लिए राजी करने में सफल रहे। पर्याप्त बुनियादी ढाँचे की कमी और जनशक्ति की अनुपलब्धता के कारण, नियमित अदालतें बैंकों और अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा अपना बकाया वसूलने के लिए दायर मुकदमों का शीघ्रता से निस्तारण करने का कार्य पूरा नहीं कर सकीं। परिणामस्वरूप, कई सौ करोड़ रुपये का सार्वजनिक धन अनुत्पादक उपक्रमों में फंस गया।”

17. सरफेसी अधिनियम की धारा 13 में प्रतिभूति हित के प्रवर्तन से संबंधित प्रावधान हैं तथा इसके प्रावधानों के अनुसार न्यायालय या न्यायाधिकरण के हस्तक्षेप के बिना सुरक्षित ऋणदाता द्वारा ऐसा करने का तरीका भी बताया गया है।

18. सरफेसी अधिनियम की धारा 13 के अनुसार अचल सुरक्षित परिसंपत्तियों की बिक्री के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रियात्मक औपचारिकताएं सुरक्षा हित (प्रवर्तन) नियमावली, 2002 के नियम 8 और 9 के तहत प्रदान की गई हैं।

19. वर्तमान प्रकरण में विवाद नियम 9 के उप-नियम (4) से संबंधित है, जिसमें एक समयावधि का प्रावधान है जिसके भीतर नीलामी क्रेता द्वारा देय क्रय मूल्य की शेष राशि का भुगतान किया जाना है। संदर्भ की सुविधा के लिए, नियमावली, 2002 के नियम 9 का उद्धरण नीचे दिया गया है:

“9. बिक्री का समय, बिक्री प्रमाणपत्र जारी करना और कब्जे की डिलीवरी, आदि - (1) इन नियमों के तहत अचल संपत्ति की कोई भी बिक्री, पहली बार में उस तारीख से तीस दिन की समाप्ति से पहले नहीं होगी, जिस दिन बिक्री की सार्वजनिक सूचना नियम 8 के उप-नियम (6) के प्रावधान में निर्दिष्ट समाचार पत्रों में प्रकाशित की जाती है या उधारकर्ता को बिक्री की सूचना दी गई है:

बशर्ते कि यदि नियम 8 के उपनियम (5) द्वारा निर्दिष्ट किसी भी तरीके से अचल संपत्ति की बिक्री विफल हो जाती है और बिक्री फिर से की जानी आवश्यक हो जाती है, तो प्राधिकृत अधिकारी उधारकर्ता को किसी भी बाद की बिक्री के लिए पंद्रह दिनों से अन्यून की बिक्री की सूचना देगा, चिपकाएगा और प्रकाशित करेगा।

(2) बिक्री उस क्रेता के पक्ष में पुष्ट की जाएगी जिसने प्राधिकृत अधिकारी को अपनी बोली या निविदा या कोटेशन या प्रस्ताव में उच्चतम बिक्री मूल्य की पेशकश की है और वह सुरक्षित ऋणदाता द्वारा पुष्टि के अधीन होगी:

बशर्ते कि इस नियम के तहत कोई बिक्री पुष्ट नहीं की जाएगी, यदि बिक्री मूल्य द्वारा प्रस्तावित राशि नियम 8 के उप-नियम (5) के तहत निर्दिष्ट आरक्षित मूल्य से कम है:

बशर्ते कि यदि प्राधिकृत अधिकारी आरक्षित मूल्य से अधिक मूल्य प्राप्त करने में असफल रहता है तो वह उधारकर्ता और सुरक्षित ऋणदाता की सहमति से ऐसी कीमत पर बिक्री कर सकेगा।

(3) अचल संपत्ति की प्रत्येक बिक्री पर, क्रेता को तत्काल, अर्थात् उसी दिन या अगले कार्य दिवस से पहले, जैसा भी प्रकरण हो, भुगतान करना होगा। विक्रय मूल्य की राशि का पच्चीस प्रतिशत, जिसमें जमा की गई अग्रिम राशि, यदि कोई हो, सम्मिलित है, विक्रय करने वाले प्राधिकृत अधिकारी के पास जमा करना होगा और ऐसी जमा राशि जमा न करने पर, संपत्ति को पुनः बेचा जाएगा।

(4) देय क्रय मूल्य की शेष राशि क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को अचल संपत्ति की बिक्री की पुष्टि के पंद्रहवें दिन या उससे पहले या क्रेता और सुरक्षित लेनदार के बीच लिखित रूप में सहमत हुई विस्तारित अवधि तक भुगतान की जाएगी, जो किसी भी प्रकरण में तीन महीने से अधिक नहीं होगी।

(5) उपनियम (4) में उल्लिखित अवधि के भीतर भुगतान न करने पर, जमा राशि सुरक्षित लेनदार को जब्त कर ली जाएगी और संपत्ति को पुनः बेच दिया जाएगा तथा चूककर्ता क्रेता संपत्ति पर या उस राशि के किसी भाग पर, जिसके लिए इसे बाद में बेचा जा सकता है, अपना समस्त दावा खो देगा।

(6) सुरक्षित ऋणदाता द्वारा बिक्री की पुष्टि होने पर और यदि भुगतान की शर्तों का अनुपालन किया गया है, तो बिक्री की शक्ति का प्रयोग करने वाला प्राधिकृत अधिकारी इन नियमों के परिशिष्ट V में दिए गए प्ररूप में क्रेता के पक्ष में अचल संपत्ति की बिक्री का प्रमाण पत्र जारी करेगा।

(7) जहां बेची गई स्थावर संपत्ति किसी भारग्रस्तता के अधीन है, वहां प्राधिकृत अधिकारी, यदि वह उचित समझे, क्रेता को भारग्रस्तता के निर्वहन के लिए अपेक्षित धनराशि तथा उस पर देय ब्याज के साथ-साथ ऐसी अतिरिक्त राशि जमा करने की अनुमति दे सकेगा जो आकस्मिकताओं या अतिरिक्त लागत, व्यय और ब्याज को पूरा करने के लिए पर्याप्त हो, जैसा कि उसके द्वारा निर्धारित किया जाए:

बशर्ते कि यदि भार और आकस्मिकताओं को हटाने की लागत को पूरा करने के बाद क्रेता द्वारा जमा की गई धनराशि में से कोई अधिशेष उपलब्ध हो तो ऐसा अधिशेष बिक्री के अंतिम रूप देने की तारीख से पंद्रह दिनों के भीतर क्रेता को भुगतान किया जाएगा।

(8) भार के उन्मोचन के लिए धनराशि जमा किए जाने पर, प्राधिकृत अधिकारी क्रेता से उसके पास जमा धनराशि में हितबद्ध या उसके हकदार व्यक्तियों को नोटिस जारी करवाएगा या जारी करवाएगा तथा तदनुसार भुगतान करने के लिए कदम उठाएगा।

(9) प्राधिकृत अधिकारी, उपरोक्त उपनियम (7) में विनिर्दिष्ट धनराशि जमा करने पर, सुरक्षित ऋणदाता को ज्ञात भार से मुक्त होकर, क्रेता को संपत्ति सौंपेगा।

(10) उप-नियम (6) के अंतर्गत जारी बिक्री प्रमाणपत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाएगा कि क्रेता ने अचल सुरक्षित परिसंपत्ति को सुरक्षित ऋणदाता को ज्ञात किसी भी भार से मुक्त खरीदा है या नहीं।”

20. नियमावली, 2002 का नियम 9 बिक्री के समय, बिक्री प्रमाणपत्र जारी करने और कब्जे की सुपुर्दगी आदि से संबंधित है। बिक्री की सार्वजनिक सूचना समाचार पत्र में प्रकाशित की जानी है और उसके तीस दिन बाद ही अचल संपत्ति की बिक्री हो सकती है। नियमावली, 2002 के नियम 9 (2) के तहत, बिक्री की पुष्टि उस क्रेता के पक्ष में की जानी आवश्यक है जिसने प्राधिकृत अधिकारी को उच्चतम बिक्री मूल्य की पेशकश की है और यह सुरक्षित लेनदार द्वारा पुष्टि के अधीन होगी। परंतु यह स्पष्ट करता है कि उक्त नियम के तहत बिक्री की पुष्टि तभी की जाएगी जब प्रस्तावित राशि और कुल मूल्य नियम 9 (5) में निर्दिष्ट आरक्षित मूल्य से कम न हो।

21. नियम 9 (3) स्पष्ट करता है कि अचल संपत्ति की प्रत्येक बिक्री पर, क्रेता को उसी दिन या अगले कार्यदिवस से पहले, विक्रय मूल्य की पच्चीस प्रतिशत राशि जमा करनी होगी, जिसमें जमा की गई बयाना राशि (यदि कोई हो) भी शामिल है। नियम 9 (4) स्पष्ट करता है कि देय क्रय मूल्य की शेष राशि क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को "अचल संपत्ति की बिक्री की पुष्टि" के पंद्रहवें दिन या उससे पहले या क्रेता और सुरक्षित लेनदार के बीच लिखित रूप में सहमत किसी विस्तारित अवधि के भीतर भुगतान की जाएगी।

22. सफल नीलामी क्रेता का अपेक्षित राशि जमा करने का दायित्व उस तिथि से शुरू होता है जब सुरक्षित ऋणदाता द्वारा बिक्री की पुष्टि की जाती है और नीलामी क्रेता को सूचित किया जाता है और नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (3) के अनुसार, नीलामी मूल्य की पच्चीस प्रतिशत राशि बयाना राशि के रूप में, बिक्री की पुष्टि की तिथि से अगले कार्य दिवस के बाद जमा करनी होगी और शेष राशि उक्त तिथि से 15 दिनों के भीतर जमा करनी होगी।

23. नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (3) के अनुसार, जैसा कि यह मूल रूप से विद्यमान था, क्रय मूल्य के शेष 75% को जमा करने के लिए 15 दिनों की समयावधि को पक्षों के बीच लिखित रूप में सहमति से आगे बढ़ाया जा सकता था। संदर्भ की सुविधा के लिए, नियमावली, 2002 के नियम 9 का उप-नियम (4), जैसा कि यह मूल रूप से विद्यमान था, नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:

(4) देय क्रय मूल्य की शेष राशि क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को अचल संपत्ति की बिक्री की पुष्टि के पंद्रहवें दिन या उससे पहले या पक्षों के बीच लिखित रूप में सहमत विस्तारित अवधि के भीतर भुगतान की जाएगी।

24. नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (4) को बाद में भारत सरकार की अधिसूचना संख्या जीएसआर 1046 (ई) दिनांक 3.11.2026 के तहत संशोधित किया गया और प्रतिभूति हित (प्रवर्तन) (संशोधन) नियमावली, 2002 के नियम 7 के खंड (iv) को निम्नानुसार पढ़ा गया:

“(iv) उप-नियम (4) में, “जैसा कि पक्षकारों के बीच लिखित रूप में सहमति हो सकती है” शब्दों के स्थान पर, “जैसा कि क्रेता और सुरक्षित लेनदार के बीच लिखित रूप में सहमति हो सकती है, किसी भी प्रकरण में तीन महीने से अधिक नहीं” शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।”

25. उपर्युक्त संशोधन के पश्चात्, नियमावली, 2002 के नियम 9 का उप-नियम (4) अब निम्नानुसार होगा:

“(4) देय क्रय मूल्य की शेष राशि क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को अचल संपत्ति की बिक्री की पुष्टि के पंद्रहवें दिन या उससे पहले या क्रेता और सुरक्षित लेनदार के बीच लिखित रूप में सहमत विस्तारित अवधि में भुगतान की जाएगी, जो किसी भी प्रकरण में तीन महीने से अधिक नहीं होगी।”

(प्रभाव वर्द्धित)

26. नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (4) में संशोधन का प्रभाव यह है कि क्रेता द्वारा क्रय मूल्य की शेष राशि जमा करने के लिए पंद्रह दिन की समयावधि क्रेता और सुरक्षित ऋणदाता के बीच लिखित समझौते पर किसी भी प्रकरण में तीन महीने से अधिक की अवधि के लिए बढ़ाई जा सकेगी।

27. **यूनियन बैंक ऑफ इंडिया बनाम रजत इंफ्रास्ट्रक्चर (प्रा.) लिमिटेड** के निर्णय में नियम 9(4) 2002 की जांच की गई, जिसमें स्पष्ट किया गया कि क्रय मूल्य की शेष राशि नीलामी क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को बिक्री की पुष्टि के पंद्रहवें दिन या उससे पहले या क्रेता और सुरक्षित लेनदार के बीच लिखित रूप में सहमत किसी विस्तारित अवधि तक, किसी भी स्थिति में तीन महीने से अधिक नहीं, भुगतान की जानी चाहिए। यह देखा गया कि संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत सर्वोच्च न्यायालय की पूर्ण शक्तियों का उपयोग भी विषय से संबंधित स्पष्ट वैधानिक प्रावधानों की अनदेखी करके मूल विधि को प्रतिस्थापित करने और इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से कुछ ऐसा हासिल करने के लिए नहीं किया जा सकता है, जिसे सीधे तौर पर हासिल नहीं किया जा सकता। यह इस प्रकार देखा गया:

27. पूर्वोक्त उप-नियम (4) से स्पष्ट है, क्रेता द्वारा प्राधिकृत अधिकारी को देय क्रय मूल्य की शेष राशि अचल संपत्ति की बिक्री की पुष्टि के पंद्रहवें दिन या उससे पहले या क्रेता और सुरक्षित लेनदार के बीच लिखित रूप में सहमत हुई विस्तारित अवधि के भीतर, किसी भी स्थिति में तीन महीने से अधिक नहीं, चुकानी होगी। उप-नियम (5) में कहा गया है कि उप-नियम (4) में उल्लिखित अवधि के भीतर भुगतान न करने पर, जमा राशि सुरक्षित लेनदार को जब्त कर ली जाएगी और संपत्ति को फिर से बेच दिया जाएगा, और चूक करने वाला क्रेता संपत्ति पर या उस राशि के किसी भी हिस्से पर, जिसके लिए इसे बाद में बेचा जा सकता है, अपना सारा दावा खो देगा। उप-नियम (6) के अनुसार, सुरक्षित लेनदार द्वारा बिक्री की पुष्टि होने पर और यदि भुगतान की शर्तों का पालन किया गया है, तो बिक्री की शक्ति का प्रयोग करने वाला प्राधिकृत अधिकारी नियमों के तहत निर्धारित प्रपत्र में क्रेता के पक्ष में अचल संपत्ति की बिक्री का प्रमाण पत्र जारी करेगा।

28. नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (4) और (5) में निहित प्रावधान, **प्राधिकृत अधिकारी, भारतीय स्टेट बैंक बनाम सी. नटराजन** के प्रकरण में निर्णय में विचारार्थ आए, जिसमें यह देखा गया कि प्रतिभूत ऋणदाता के प्राधिकृत अधिकारी को शेष राशि जमा करने के लिए समय बढ़ाने का विवेकाधिकार प्राप्त है, लेकिन यह नब्बे दिनों की निर्धारित सीमा से अधिक नहीं हो सकता। उप-नियम (5) के तहत प्रतिभूत ऋणदाता की जमा राशि को जब्त करने की शक्तियों को अधिनियमित करने के उद्देश्य और आवश्यकता को यह इंगित करते हुए भी समझाया गया कि विधानमंडल ने यह कल्पना की थी कि बिक्री प्रक्रियाओं को विफल करके बेईमान उधारकर्ताओं के कहने पर कीमतों में भ्रामक हेरफेर के प्रकरण को रोकने की आवश्यकता है। यह देखा गया कि प्रावधान का उद्देश्य इच्छुक खरीदारों में नीलामी-बिक्री प्रक्रिया में भाग लेने के दौरान अनुशासन की भावना पैदा करना था। इस संबंध में निर्णय में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

27. वैश्वीकरण के वर्तमान युग में, समाज का संपूर्ण दर्शन, मुख्यतः आर्थिक मोर्चे पर, परिवर्तन की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है। बेईमान लोग राष्ट्र को ठगने और लूटने के नए-नए तरीके और तंत्र ईजाद कर रहे हैं। ऐसे में, अधिनियमों के प्रावधानों, विशेषकर उन प्रावधानों की, जिनका राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर सीधा प्रभाव पड़ता है, ऐसी व्याख्या की जानी चाहिए जिससे न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले, बल्कि नियम 9 के उप-नियम (5) जैसे प्रावधान को लागू करने के विधि-निर्माताओं के इरादे के अनुरूप भी हो। यह प्रावधान यद्यपि अपने क्रियान्वयन में कठोर है, परंतु इसका उद्देश्य शरारतों का दमन करना और उपचार को आगे बढ़ाना है। यदि वास्तव में धारा 73 और धारा 74, जो सामान्य संविदा विधि का हिस्सा हैं, उपचार प्रदान करने के लिए पर्याप्त होतीं, तो नियम 9 के उप-नियम (5) को नियमों का हिस्सा बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इसके अतिरिक्त, ज़बती के संबंध में इतनी विशिष्टता के साथ उप-नियम (5) को केवल पहले से मौजूद बातों को दोहराने के लिए ही शामिल करने पर विचार नहीं किया गया होगा। विधि निर्माताओं ने यह कल्पना की थी कि बिक्री प्रक्रियाओं को बाधित करके बेईमान उधारकर्ताओं के इशारे पर कीमतों में भ्रामक हेरफेर के प्रकरण को रोकना ज़रूरी है और यही कारण था कि ज़बती के व्यापक अधिकार प्रदान करने वाले व्यापक शब्दों वाला ऐसा प्रावधान जोड़ा गया। इस प्रावधान को शामिल करने का उद्देश्य नीलामी-बिक्री प्रक्रिया में भाग लेने के इच्छुक खरीदारों में अनुशासन की भावना पैदा करना भी रहा होगा।

28. पुनरावृत्ति की कीमत पर, यह नहीं भूलना चाहिए कि सरफेसी अधिनियम इसलिए बनाया गया क्योंकि सामान्य विधि किसी भी स्वस्थ और विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक वित्तीय तरलता और धन के प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त रूप से व्यावहारिक और कुशल नहीं पाए गए। *मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ [मार्डिया केमिकल्स लिमिटेड बनाम भारत संघ, (2004) 4 एससीसी 311]* में इस न्यायालय के निर्णय ने, सरफेसी अधिनियम के केवल एक भाग को गैरविधिक घोषित करते हुए और शेष को बरकरार रखते हुए, इस विधि के इतिहास और संसद के मन में मौजूद उद्देश्यों का पर्याप्त विस्तार से पता लगाया है। ऐसे निर्णय में निर्धारित विधि के अलावा, ये अन्य प्रासंगिक विचार हैं जिन्हें ज़बती आदेश को चुनौती की जाँच करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए।

29. एक और पहलू है जिसे अक्सर नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। नियम 9 के उप-नियम (5) के अनुसार, सामान्यतः ज़बती के बाद अचल संपत्ति को फिर से बेचने की प्रक्रिया अपनाई जाएगी। जिस दिन बोली लगाने वाले द्वारा किए गए उल्लंघन के लिए सुरक्षित लेनदार के प्राधिकृत अधिकारी द्वारा ज़बती का आदेश विचाराधीन होता है, वास्तव में, पूर्व के लिए स्थिति पूरी तरह अनिश्चित होती है क्योंकि न तो भविष्य में होने वाली बिक्री के लिए उसे बोलियाँ मिलने की कोई गारंटी होती है, जो सुरक्षित लेनदार की संतुष्टि के लिए पर्याप्त हो, और न ही उसे (सुरक्षित लेनदार को) होने वाले संभावित नुकसान को मापने का कोई पैमाना होता है यदि कोई बोली लगाने वाला अचल संपत्ति खरीदने में रुचि नहीं रखता। चूँकि नुकसान की सीमा का तुरंत अनुमान या गणना नहीं की जा सकती, इसलिए ऐसे अधिकारियों के पास सुरक्षित ऋण को कम करने के लिए यथासंभव अधिक से अधिक धनराशि वसूलने के प्रयास में चूककर्ता बोली लगाने वाले द्वारा जमा की गई राशि को ज़बती करने का आदेश देने के अलावा कोई विकल्प नहीं हो सकता है। अचल संपत्ति को बाद में उसी कीमत पर या ज़बती

झेलने वाले पक्ष द्वारा प्रस्तावित कीमत से अधिक कीमत पर बेचा जाना, हर प्रकरण में घटित होने वाली घटना नहीं है। इसलिए, अनुबंध अधिनियम की धाराएँ 73 और 74, ऐसे प्रकरण में सुरक्षित लेनदार के हितों का ध्यान रखने के लिए पर्याप्त नहीं होंगी और यही नियम 9 में ज़बती का प्रावधान लाने का एक और कारण प्रतीत होता है। इसलिए, सामान्यतः, ज़बती के आदेश की वैधता का आकलन उसके जारी होने की तिथि पर विद्यमान परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए, न कि बाद की घटनाओं के आधार पर।

33. उपर्युक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि जब भी किसी बोलीदाता द्वारा, जो नब्बे दिनों के भीतर संपूर्ण बिक्री मूल्य जमा करने में विफल रहा है, नियम 9 के उप-नियम (5) के अंतर्गत किसी प्राधिकृत अधिकारी द्वारा दिए गए ज़बती के आदेश को चुनौती दी जाती है, तो न्यायाधिकरणों/न्यायालयों को हस्तक्षेप करने में अत्यंत अनिच्छुक होना चाहिए, जब तक कि हस्तक्षेप के लिए कोई असाधारण प्रकरण स्थापित न हो। हालाँकि, एक असाधारण प्रकरण क्या होगा, इसका निर्धारण न्यायाधिकरणों/न्यायालयों द्वारा प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों और निष्कर्ष के लिए ठोस कारणों को दर्ज करके किया जाना चाहिए।

34. जहाँ तक नब्बे दिन की समाप्ति से पहले और निर्धारित अवधि के भीतर समय विस्तार के लिए आवेदन को अस्वीकार करने पर दिए गए ज़बती आदेश को चुनौती देने का संबंध है, यह जाँच थोड़ी अधिक गहन हो सकती है ताकि यह पता लगाया जा सके कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में किसी स्पष्ट मनमानी या अनुचितता ने चुनौती दिए गए आदेश को अमान्य तो नहीं कर दिया है। हालाँकि, ऐसी जाँच के दौरान, न्यायाधिकरणों/न्यायालयों को सावधान और सतर्क रहना चाहिए और प्रत्येक प्रकरण की गहराई से जाँच करने पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या बोली लगाने वाले की चूककर्ता उधारकर्ता को लाभ पहुँचाने के लिए बिक्री को रोकने में कोई छिपी हुई रुचि तो नहीं है और आवश्यकतानुसार, उन बोलीदाताओं के दावों को भी खारिज करना चाहिए जो नीलामी में भाग लेने में वास्तविक रुचि के बजाय कीमतों में हेराफेरी करने के लिए ऐसा करते हैं ताकि बोली प्रक्रिया समाप्त होने के बाद वे इस दौड़ से हट जाएँ। ऐसे निर्धारण के दौरान, न्यायाधिकरणों/न्यायालयों को केवल बाद में होने वाली घटनाओं जैसे कि बाद में अधिक कीमत पर बिक्री या चूककर्ता बोलीदाता द्वारा प्रस्तावित समान कीमत पर बिक्री या सुरक्षित ऋणदाता को सौदे में कोई नुकसान नहीं हुआ है या भावनाओं से प्रभावित नहीं होना चाहिए और उन्हें दूरी बनाए रखनी चाहिए, क्योंकि सहानुभूति, अनुग्रह या करुणा दिखाना संबंधित विधि के दायरे से बाहर है।

35. सरफेसी अधिनियम के व्यापक उद्देश्य, जो नियमों द्वारा विधिवत पूरक हैं, जो ऋणों की कुशल और शीघ्र वसूली के लिए तैयार हैं, और साथ ही इस न्यायालय द्वारा संबंधित कानूनों की व्याख्या को नज़रअंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए। इसे नज़रअंदाज़ करना राष्ट्र के व्यापक हित में नहीं हो सकता है और इसमें हस्तक्षेप की संभावना हो सकती है।

29. प्राधिकृत अधिकारी, भारतीय स्टेट बैंक (पूर्वोक्त) के प्रकरण में निर्णय में उस उद्देश्य और पृष्ठभूमि पर ध्यान दिया गया जिसके तहत चूक के लिए कड़े परिणाम प्रदान किए गए हैं, और यह निम्नानुसार देखा गया:

“24. ...पीठ के हमारे अनुभव से, यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि कई प्रकरण में, ऋणदाता स्वयं, नीलामी बिक्री को विफल करने के लिए, अपने ही गुर्गों को नीलामी में भाग लेने के इच्छुक क्रेता के रूप में इस्तेमाल करते हैं, लेकिन उसके बाद वे ऐसे मुद्दों का हवाला देते हुए लेन-देन को आगे नहीं बढ़ाते जो शायद ही तर्कसंगत हों। इसके परिणामस्वरूप नीलामी रद्द कर दी जाती है और नए नोटिस जारी किए जाते हैं। भागीदारी-वापसी की ऐसी प्रक्रिया को एक-दो या अधिक बार दोहराने से अचल संपत्ति के मूल्यांकन में हेराफेरी का अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। ऐसे प्रकरण में, एक सुरक्षित ऋणदाता को होने वाला एकमात्र प्रत्यक्ष नुकसान अचल संपत्ति को बिक्री के लिए रखने में उसके द्वारा किए गए खर्च की सीमा प्रतीत होता है। हालाँकि, इस प्रक्रिया में आमतौर पर जो बात ध्यान से बच जाती है, वह यह है कि यह शरारती ऋणदाता ही होता है जो सुरक्षित ऋणदाता को अपने किसी गुर्गे द्वारा कौड़ियों के दाम में अत्यधिक मूल्यवान संपत्ति खरीदवाकर, इस प्रकार ऐसी संपत्ति को बंधक के चंगुल से मुक्त करवाकर और उस सुरक्षा कवर को कमजोर करके, जो ऋणदाता ने लिया था, ऋणदाता को चित कर देता है। सुरक्षित लेनदार के पास अपने ऋण जोखिम के लिए कितना जोखिम था। ऐसी कठोर वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए, नियम 9 के उप-नियम (5) की व्यावहारिक रूप से व्याख्या दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जा सकती है - पहला, सुरक्षित लेनदार द्वारा सुरक्षा हित के उचित प्रवर्तन को सुगम बनाना (सरफेसी अधिनियम के उद्देश्यों में से एक); और दूसरा, इसके उदार अर्थ द्वारा गलत काम करने वालों को लाभान्वित होने से रोकना।”

30. इस प्रकरण में, याचिकाकर्तागण ने 23.10.2024 को आयोजित नीलामी में भाग लिया था और उक्त तिथि को बोली राशि का 25% जमा कर दिया था, उन्हें बिक्री की पुष्टि के पंद्रहवें दिन से पहले, अर्थात् 7.11.2024 तक खरीद मूल्य का शेष 75% जमा करना आवश्यक था। हालाँकि, याचिकाकर्तागण द्वारा 5.11.2024 को अनुरोध किए जाने पर, बैंक ने 6.12.2024 तक समय विस्तार प्रदान किया। याचिकाकर्तागण द्वारा दिनांक 2.12.2024 को एक और अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें धन की व्यवस्था में उनकी कठिनाई बताते हुए 7.1.2025 तक समय विस्तार की मांग की गई। उक्त अनुरोध को भी बैंक ने स्वीकार कर लिया और शेष बिक्री मूल्य जमा करने के लिए 27.12.2024 तक समय का और विस्तार दिया गया। याचिकाकर्ता ने 22.12.2024 को एक और अभ्यावेदन दिया, जिसमें 7.2.2025 तक समय विस्तार की मांग की गई, जिसे बैंक ने इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि वैधानिक नियमों के तहत निर्धारित समय अवधि से परे नीलामी क्रेता को कोई विस्तार नहीं दिया जा सकता है।

31. रिकॉर्ड में ऐसी कोई सामग्री नहीं है, जो इस न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए राजी कर सके कि नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (4) के तहत निर्धारित समय अवधि से परे बोली राशि की शेष 75% राशि जमा करने के लिए याचिकाकर्तागण के बार-बार अनुरोध को स्वीकार न करने में प्रत्यर्थी-बैंक की ओर से कोई स्पष्ट मनमानी या अनुचितता रही है। प्रासंगिक वैधानिक नियमों के तहत प्रदान की गई तीन महीने की अधिकतम स्वीकार्य सीमा, सुरक्षित लेनदार द्वारा पहले ही प्रदान की जा चुकी है, ऐसा कोई प्रशंसनीय कारण नहीं है जो याचिकाकर्तागण द्वारा मांगी गई समय अवधि के आगे विस्तार के लिए कोई निर्देश जारी करने का औचित्य साबित कर सके।

32. यह विधि के एक स्थापित सिद्धांत के रूप में दोहराया जा सकता है कि जब किसी विधि में किसी विशेष चीज़ को किसी विशेष तरीके से करने की आवश्यकता होती है, तो इसे उसी तरीके से किया जाना चाहिए या बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए, और प्रदर्शन के अन्य तरीके आवश्यक रूप से निषिद्ध हैं। (देखें: **टेलर बनाम टेलर**, (1875) एलआर 1 सीएच डी 426; **नजीर अहमद बनाम किंग एम्परर**, एआईआर 1936 पीसी 253 (2); **राव शिव बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य**, (1954) 1 एससीसी 296; **उ०प्र० राज्य बनाम सिंधारा सिंह**, एआईआर 1964 एससी 358; **बाबू वर्गीज बनाम बार काउंसिल ऑफ केरल**, (1990) 3 एससीसी 422; **न्युनिसिपल कॉर्पोरेशन ऑफ ग्रेटर मुंबई बनाम अभिलाष लाल** (2020) 13 एससीसी 234 **भागुभाई बनाम भारत संघ**, (2019) 15 एससीसी 1.

33. नियमावली, 2002 के नियम 9 (4), जिसे दिनांक 4.11.2016 से संशोधित किया गया है, में यह व्यवस्था है कि आपसी सहमति से बिक्री मूल्य की शेष राशि जमा करने की अवधि को नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए नहीं बढ़ाया जा सकता है; तथापि, किसी भी स्थिति में नब्बे दिन से अधिक की अवधि बढ़ाने की अनुमति नहीं होगी।

34. जीएम श्री सिद्धेश्वरा कोऑपरेटिव बैंक लिमिटेड (पूर्वोक्त) के महाप्रबंधक के प्रकरण में लिए गए निर्णय, जिसके बाद **गौरव गर्ग** (पूर्वोक्त) के बाद के निर्णय को याचिकाकर्तागण की ओर से आधार बनाया गया है, नियमावली, 2002 के असंशोधित नियम 9(4) के संदर्भ में दिए गए थे, जिसमें क्रय मूल्य के 75% की शेष राशि जमा करने की समयावधि बढ़ाने के लिए कोई बाहरी सीमा निर्धारित नहीं थी। नियमावली, 2002 के नियम 9 के उप-नियम (4) के तहत निर्धारित बाहरी सीमा, जो वर्तमान में विद्यमान है, से आगे समय बढ़ाने का दावा करने के लिए याचिकाकर्ता उक्त प्राधिकारियों पर भरोसा नहीं कर सकते।

35. सुरक्षित ऋणदाता, विधिक रूप से प्रतिभूति हित को लागू करने और इस प्रक्रिया में, ऐसे सभी कदम उठाने और ऐसे सभी उपाय करने का हकदार है जो किसी ऐसे उधारकर्ता को उधार दिए गए सार्वजनिक धन की वसूली करके जनहित की रक्षा के लिए किए जा सकते हैं जिसने ऋण चुकौती में चूक की है। नीलामी में भाग लेने वाले याचिकाकर्तागण (नीलामी क्रेताओं) को क्रय मूल्य जमा करने के संबंध में विधि के तहत आवश्यकताओं के बारे में पूरी तरह से अवगत माना जाएगा और यह भी कि यदि वे संबंधित वैधानिक नियमों के तहत अनुमेय समयावधि के भीतर विक्रय मूल्य का भुगतान करने में किसी भी प्रकार की चूक या विफलता करते हैं, तो उनके द्वारा पहले से जमा की गई जमा राशि जब्त कर ली जाएगी।

36. जिन उद्देश्यों के लिए सरफेसी अधिनियम, 2002 को अधिनियमित किया गया है, उन्हें देखते हुए, न्यायालयों ने एक समान दृष्टिकोण अपनाया है कि ऐसी स्थिति में, जहाँ बोलीदाता नब्बे दिनों की निर्धारित अवधि के भीतर संपूर्ण बिक्री मूल्य जमा करने में विफल रहता है, न्यायाधिकरण/न्यायालय हस्तक्षेप करने में अत्यंत अनिच्छुक होगा, जब तक कि हस्तक्षेप का कोई असाधारण प्रकरण न बने। न्यायाधिकरण/न्यायालय

1.इला राकेश टेकरीवाल बनाम अपर आयुक्त प्रशासन-1 देवीपाटन मंडल गौडा एवं अन्य 673

द्वारा न्यूनतम हस्तक्षेप के अंतर्निहित सिद्धांत और सरफेसी अधिनियम और उसके अंतर्गत बनाए गए नियमों के सर्वोपरि उद्देश्य, जो ऋण की शीघ्र वसूली के लिए हैं, को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता।

37. हम प्रत्यर्थी बैंक की ओर से कोई स्पष्ट मनमानी या अनुचितता नहीं देखते हैं, जो हमें मांगी गई राहत के संबंध में रिट याचिका पर विचार करने के लिए प्रेरित कर सके।

38. रिट याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 519

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 02.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर

रिट सी संख्या- 3700 वर्ष 2019

राकेश टेकरीवाल ...याचिकाकर्ता

बनाम

अपर आयुक्त प्रशासन-1 देवीपाटन मंडल गौडा एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

मयंक सिन्हा, गिरीश चंद्र सिन्हा

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

सिविल विधि-भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899- धारा 2(10), 2(14), 14 और 15 - अनुसूची 1(बी) के अनुच्छेद 23 के साथ अनुच्छेद 18 - परिशिष्ट 1(बी) के खंड 18 और 34(ए) - किसी विलेख को हस्तांतरण विलेख कहे जाने के लिए, उसमें बिक्री के प्रावधानों को इंगित किया जाना चाहिए जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 54 में दर्शाया गया है जिसके अनुसार बिक्री भुगतान की गई या वादा की गई कीमत या आंशिक भुगतान और आंशिक वादा की गई कीमत के बदले में स्वामित्व का हस्तांतरण है --- कि किसी विलेख को हस्तांतरण की परिभाषा के अंतर्गत आने के लिए, उपकरण में इंगित संपत्ति पर अधिकारों और देनदारियों और ब्याज का हस्तांतरण आवश्यक है --- कि विलेख का एकमात्र प्रभाव बिक्री विलेख में परिभाषित भूखंड के खिलाफ गाटा संख्या 215/1289 को हटाना या अनदेखा करना है --- विलेख के शब्दों से स्पष्ट है कि संपत्ति के

क्षेत्र में या सीमाओं के भीतर भी--- दिनांक 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख को किसी भी प्रकार से शुल्क से प्रभार्य दूसरा लिखत नहीं माना जा सकता है, जो स्टाम्प पेपर के उस टुकड़े पर लिखा गया है जिस पर शुल्क पहले ही लिखा जा चुका है, क्योंकि यह मुख्य रूप से हस्तांतरण के पहले विलेख में दर्शाई गई गलती को सुधारने के लिए जारी किया गया शुद्धिपत्र है--- विपक्षी यह सुनिश्चित करें कि जमा की तारीख से वापसी की तारीख तक विवादित आदेशों के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि पर याचिकाकर्ता को 8% प्रति वर्ष साधारण ब्याज का भुगतान किया जाए। (पैरा 15, 16, 17, 18 और 20)

याचिका स्वीकृति। (ई-15)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. मेसर्स कैलाश मानसरोवर बिल्ड कॉन. प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, एआईआर ऑनलाइन 2018 इलाहाबाद 5175 में प्रतिवेदित
2. मीनू पाठक बनाम पुनरीक्षण प्राधिकारी/उपायुक्त, स्टाम्प एवं अन्य, एआईआर 2017 इलाहाबाद 132 में प्रतिवेदित

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष माथुर द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता की ओर से विद्वान अधिवक्ता श्री जी.सी. सिन्हा, तथा विपक्षी की ओर से विद्वान राज्य अधिवक्ता को सुना।
2. भारतीय स्टाम्प अधिनियम 1899 की धारा 33 के अंतर्गत पारित दिनांक 5 अगस्त, 2016 के आदेश को चुनौती देते हुए एक याचिका दायर की गई है, जिसमें स्टाम्प शुल्क में कमी और उस पर ब्याज सहित जुर्माना लगाने का संकेत दिया गया है। इसके अलावा, याचिकाकर्तागण द्वारा प्रस्तुत पुनरीक्षण को अस्वीकार करने वाले दिनांक 15 जनवरी, 2019 के पुनरीक्षण आदेश को भी चुनौती दी गई है।
3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विचाराधीन संपत्ति तीन अन्य संपत्तियों के साथ याचिकाकर्ता द्वारा 4 जुलाई, 2015 को इलाहाबाद बैंक द्वारा आयोजित नीलामी में खरीदी गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता की बोली सबसे अधिक होने के कारण उसे स्वीकार कर लिया गया था, जिसके बाद 13 जुलाई, 2015 को चारों संपत्तियों के संबंध में एक ही बिक्री विलेख निष्पादित किया गया था, जिसमें चारों संपत्तियों का स्थान, सीमाएं और क्षेत्रफल दर्शाया गया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि संपत्ति संख्या 4 के संबंध में, बिक्री विलेख में इसे गाटा संख्या 215/1289 में स्थित बताया गया है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त बिक्री विलेख के निष्पादन के बाद, इलाहाबाद बैंक ने याचिकाकर्ता को 9 अक्टूबर, 2015 को एक नोटिस जारी किया, जिसमें विशेष रूप से यह दर्शाया गया था कि लिपिकीय गलती के कारण, बिक्री विलेख में भूखंड संख्या

4 के संबंध में गाटा संख्या अनजाने में दर्शा दी गई यह प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त के अनुसरण में, बैंक और याचिकाकर्ता के बीच दिनांक 17 अक्टूबर, 2015 को एक सुधार विलेख निष्पादित किया गया था, जिसे विपक्षीगण सुधार विलेख के बजाय एक नए विक्रय विलेख के रूप में ले रहे हैं और इसलिए इसे हस्तांतरण के एक नए विलेख के रूप में स्टाम्प शुल्क के लिए प्रभार्य बना दिया गया है।

4. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पुनरीक्षण ज्ञापन में भी एक विशिष्ट आधार लिया गया था कि चूंकि 17 अक्टूबर, 2015 के बाद के विलेख में केवल भूखंड संख्या को हटाने की मांग की गई थी, बिना किसी भी भूखंड के क्षेत्र या सीमाओं में संशोधन किए, उक्त विलेख स्पष्ट रूप से एक लिपिकीय गलती के सुधार की परिभाषा के अंतर्गत आएगा और इसे हस्तांतरण का नया विलेख नहीं माना जा सकता है और इसलिए स्टाम्प शुल्क में कमी गलत तरीके से याचिकाकर्ता पर थोपी गई है। विद्वान अधिवक्ता ने एआईआर ऑनलाइन 2018 इलाहाबाद 5175 में प्रतिवेदित **मेसर्स कैलाश मानसरोवर बिल्ड कॉन प्राइवेट लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एआईआर 2017 इलाहाबाद 132** में प्रतिवेदित **मीनू पाठक बनाम पुनरीक्षण प्राधिकारी/उपायुक्त, स्टाम्प और अन्य** के प्रकरण में इस न्यायालय के समन्वय पीठों द्वारा दिए गए निर्णयों का हवाला दिया है।

5. विद्वान राज्य अधिवक्ता ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों का खंडन करते हुए निवेदन किया है कि आक्षेपित आदेशों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख को सही रूप से एक नए हस्तांतरण विलेख के रूप में दर्शाया गया है, जिस पर अपर्याप्त स्टाम्प शुल्क दर्शाया गया है और इसलिए लगाया गया है। यह प्रस्तुत किया गया है कि 13 जुलाई, 2015 के विक्रय विलेख में दर्शाए गए भूखंड संख्या 4 के संबंध में, गाटा संख्या विक्रय विलेख में पहली बार नहीं, बल्कि याचिकाकर्ता के पक्ष में जारी नीलामी सूचना और विक्रय प्रमाण पत्र में भी स्पष्ट रूप से दर्शाई गई है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि पूर्व विक्रय विलेख में गाटा संख्या को पूर्णतः हटा देने को मात्र सुधार नहीं माना जा सकता, क्योंकि इससे यह संकेत मिलेगा कि ऐसे गाटा संख्या को हटाने के कारण संबंधित संपत्ति पर अधिकार सृजित हो गए हैं, विशेष रूप से तब जब उक्त गाटा संख्या न केवल नीलामी सूचना में, बल्कि इलाहाबाद बैंक द्वारा विधिवत हस्ताक्षरित और जारी विक्रय प्रमाण पत्र में भी पहले दर्शाई गई थी। यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त तथ्य के कारण, बाद के विलेख को सुधार विलेख कहना स्टाम्प अधिनियम की धारा 14 और 15 के प्रावधानों के साथ-साथ अधिनियम की अनुसूची के परिशिष्ट 1(बी) के खंड 18 के विरुद्ध है और इसलिए यह अधिनियम के परिशिष्ट 1(बी) के खंड 34(ए) के तहत शुद्धिपत्र की श्रेणी में नहीं आएगा।

6. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उपरोक्त गाटा संख्या 215/1289 वास्तव में गारंटर श्री समय प्रसाद मिश्रा के नाम पर है, जो ऋण की गारंटी के लिए बंधककर्ताओं की संतान हैं और इसलिए यह प्रस्तुत किया गया है कि गाटा संख्या को हटाने के कारण, संपत्ति वास्तव में गारंटर्स को वापस मिल जाएगी, जो संपत्ति पर ब्याज के नए हस्तांतरण का संकेत देगा और इसलिए इसे सही ढंग से नए हस्तांतरण विलेख के रूप में और सुधार विलेख के रूप में नहीं माना गया है।

7. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों पर विचार करने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात् निम्नलिखित प्रश्न पर निर्णय अपेक्षित है:-

क्या 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख को शुद्धिपत्र या नया हस्तांतरण विलेख माना जा सकता है?

8. उपर्युक्त प्रश्न के संबंध में, अभिलेखों से स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पक्ष में सार्वजनिक नीलामी के अनुसरण में दिनांक 13 जुलाई, 2015 के विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात्, बैंक ने याचिकाकर्ता को दिनांक 9 अक्टूबर, 2015 को एक पत्र जारी किया, जिसमें यह तथ्य दर्शाया गया कि भूखंड संख्या 4 के संबंध में, उक्त भूखंड के सामने गाटा संख्या 215/1289 अनजाने में इंगित किया गया था और इसमें सुधार की आवश्यकता है। उपरोक्त पत्र के अनुसरण में, बैंक और याचिकाकर्ता के बीच दिनांक 17 अक्टूबर, 2015 का विलेख निष्पादित किया गया है, जिसमें इसे शुद्धिपत्र दर्शाया गया है। उक्त विलेख में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि 13 जुलाई, 2015 के विक्रय विलेख में दर्शाए गए भूखंड संख्या 4 के संबंध में, गाटा संख्या अनजाने में उल्लिखित की गई है और इसे अनदेखा किया जाना चाहिए। विलेख में आगे कहा गया है कि शुद्धिपत्र का संपत्ति के मूल्यांकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि 13 जुलाई, 2015 के विक्रय विलेख में भूखंड का क्षेत्रफल और सीमाएं सही ढंग से दर्शाई गई हैं।

9. आक्षेपित आदेशों के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 17 अक्टूबर, 2015 के अनुवर्ती विलेख को इस आधार पर एक नया हस्तांतरण विलेख माना गया है कि गाटा संख्या का विलोपन एक गलती नहीं माना जा सकता, खासकर जब बैंक द्वारा पूर्व में जारी विक्रय प्रमाण पत्र में उक्त गाटा संख्या का स्पष्ट उल्लेख किया गया था। आक्षेपित आदेश इस तथ्य की ओर भी संकेत करते हैं कि भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत भूखंडों के गाटा संख्याओं को हटाने या जोड़ने का कोई प्रावधान नहीं है, जो हस्तांतरण के दस्तावेज का आधार हैं और इसके अतिरिक्त, 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख के माध्यम से, इसका प्रभाव यह होगा कि विभिन्न दस्तावेजों में दर्शाई गई उक्त गाटा संख्या को भी अनदेखा करना होगा, जो भारतीय स्टाम्प अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध है।

10. आक्षेपित आदेश में दर्शाए गए कारणों के अलावा, विपक्षी पक्षों द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र में अधिनियम की धारा 14 और 15 के प्रावधानों के साथ-साथ अधिनियम के परिशिष्ट 1-बी के खंड 18 का भी उल्लेख किया गया है।

11. उपर्युक्त के संबंध में, यह स्पष्ट है कि शब्द हस्तांतरण को अधिनियम की धारा 2(10) में निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया गया है:-

"2(10) 'हस्तांतरण'."-"हस्तांतरण" में बिक्री पर किया गया हस्तांतरण और प्रत्येक लिखत शामिल है जिसके द्वारा संपत्ति, चाहे चल या अचल, अंतर-जीव स्थानांतरित की जाती है और जो अन्यथा [अनुसूची 1, अनुसूची 1ए या अनुसूची आईबीबी द्वारा], [जैसा भी प्रकरण हो] विशेष रूप से प्रदान नहीं की गई है;"

12. इसके अलावा, अधिनियम की धारा 2(14) के तहत उपकरण शब्द को निम्नलिखित तरीके से परिभाषित किया गया है:-

"2(14) उपकरण.- 'उपकरण' में इलेक्ट्रॉनिक भंडारण और पुनर्प्राप्ति उपकरण या मीडिया में या उसके द्वारा निर्मित या अनुरक्षित प्रत्येक दस्तावेज और अभिलेख शामिल है जिसके द्वारा कोई अधिकार या दायित्व निर्मित, हस्तांतरित, सीमित, विस्तारित, समाप्त या रिकॉर्ड किया जाता है या होने का तात्पर्य है;"

13. उपर्युक्त दोनों प्रावधानों का संयुक्त मूल्यांकन स्पष्ट रूप से 'हस्तांतरण का साधन' शब्द का अर्थ देगा और इसमें ऐसे सभी कार्य शामिल होंगे जो चल या अचल संपत्ति पर किसी अधिकार या दायित्व को बनाने, स्थानांतरित करने, सीमित करने, विस्तार करने या समाप्त करने का दावा करते हैं और जिसके लिए अन्यथा विशेष रूप से प्रावधान नहीं किया गया है।

14. अधिनियम की अनुसूची 1(बी) के अनुच्छेद 18 को अनुच्छेद 23 के साथ पढ़ने पर विक्रय और हस्तांतरण प्रमाणपत्र और उस पर लगाए जाने वाले उचित स्टाम्प शुल्क का संकेत मिलता है। उपरोक्त अनुच्छेद अधिनियम की धारा 2(10) और 2(14) से स्पष्ट रूप से संबंधित है।

15. उपर्युक्त प्रावधानों की सराहना करने पर, यह स्पष्ट रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि किसी विलेख को हस्तांतरण विलेख कहे जाने के लिए, उसमें बिक्री के संदर्भ में प्रावधानों को इंगित किया जाना चाहिए जैसा कि संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 54 में दर्शाया गया है, जिसके अनुसार बिक्री भुगतान की गई या वादा की गई कीमत या आंशिक रूप से भुगतान की गई और आंशिक रूप से वादा की गई कीमत के बदले में स्वामित्व का हस्तांतरण है।

16. संपत्ति अंतरण अधिनियम के प्रावधानों के उपर्युक्त सार को स्टाम्प अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों के साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाएगा कि हस्तांतरण की परिभाषा के अंतर्गत आने वाले किसी विलेख के लिए, दस्तावेज में दर्शाई गई संपत्ति पर अधिकारों और दायित्वों तथा ब्याज का हस्तांतरण आवश्यक है।

17. दोनों अधिनियमों के उपर्युक्त प्रावधानों की प्रयोज्यता पर, दिनांक 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि विलेख का एकमात्र प्रभाव दिनांक 13 जुलाई, 2015 के विक्रय विलेख में परिभाषित भूखण्ड संख्या 4 के विरुद्ध गाटा संख्या 215/1289 को हटाना या अनदेखा करना है।

18. विलेख के शब्दों से यह भी स्पष्ट है कि संपत्ति के क्षेत्रफल या उसकी सीमाओं में कोई सहवर्ती परिवर्तन नहीं हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं माना जा सकता कि 17 अक्टूबर, 2015 का विलेख किसी नए भूखंड पर कोई नया हित या दायित्व सृजित करेगा, जो 13 जुलाई, 2015 के पूर्व विलेख से अलग होगा।

19. स्टाम्प अधिनियम की धारा 14 और 15 के प्रावधान इस पहलू से संबंधित हैं कि शुल्क से प्रभार्य कोई दूसरा लिखत स्टाम्प पेपर के उस टुकड़े पर नहीं लिखा जाएगा जिस पर शुल्क से प्रभार्य लिखत पहले ही लिखा जा चुका है और अधिनियम की धारा 13 और 14 के उल्लंघन में लिखा गया प्रत्येक ऐसा लिखत स्टाम्प रहित माना जाएगा।

20. अधिनियम की धारा 14 अपनी परिभाषा के अनुसार वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होती है, क्योंकि 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख को किसी भी प्रकार से स्टाम्प पेपर के एक टुकड़े पर शुल्क के साथ प्रभार्य दूसरा साधन नहीं माना जा सकता है, जिस पर पहले से ही शुल्क लिखा हुआ है, क्योंकि यह मुख्य रूप से हस्तांतरण के पहले विलेख में इंगित गलती को सुधारने के लिए जारी किया गया शुद्धिपत्र है।

21. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों तथा अधिनियम के प्रावधानों के मद्देनजर, यह स्पष्ट है कि दिनांक 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख को नया हस्तांतरण विलेख नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह न तो प्रश्नगत भूखंड के विवरण, सीमाओं या क्षेत्र में परिवर्तन करता है और न ही यह नए भूखंड पर कोई नया अधिकार, हित या दायित्व सृजित करता है।

22. उपरोक्त पहलुओं पर इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा बासदेव सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य 2004 अखिल एलजे 831 में भी विचार किया गया है, जिसमें निम्नलिखित निर्णय दिया गया है:-

"हमारा यह भी मानना है कि अंकगणितीय त्रुटि को गणना की त्रुटि माना जाना चाहिए और लिपिकीय त्रुटि को लेखन या टाइपिंग में त्रुटि माना जाना चाहिए। ऐसी त्रुटि जिसके लिए तथ्य या विधि के प्रश्न पर विस्तृत तर्क की आवश्यकता हो, उसे लिपिकीय या अंकगणितीय त्रुटि की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। याचिकाकर्ता ने यह दावा करते हुए अधिकार का दावा करने का प्रयास किया है कि निर्णय में त्रुटि थी। ऐसी शिकायत केवल अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत अपेक्षित संदर्भ प्राप्त करने के बाद ही निर्णय को चुनौती देने वाली कार्यवाही में उठाई जा सकती है, न कि अधिनियम की धारा 13-ए के अंतर्गत कार्यवाही में। वर्तमान प्रकरण में मांगे गए मुआवजे में वृद्धि के प्रश्न का निर्धारण भूमि अधिग्रहण अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत अपेक्षित संदर्भ प्राप्त करने के बाद उचित कार्यवाही में किया जाना चाहिए।"

23. इसी प्रकार **मीनू पाठक (पूर्वोक्त)** के प्रकरण में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने विनीता अग्रवाल बनाम अतिरिक्त आयुक्त (प्रशासन) के प्रकरण में इस न्यायालय द्वारा दिए गए एक अन्य निर्णय पर निम्नलिखित तरीके से भरोसा किया है:-

7. लीज डीड में प्लॉट संख्या के उल्लेख में हुई गलती विशुद्ध रूप से एक लिपिकीय त्रुटि है जो पक्षकारों, विशेषकर इलाहाबाद विकास प्राधिकरण कार्यालय की असावधानी के कारण हुई है। उक्त सुधार विलेख याची के पक्ष में कोई नया अधिकार सृजित नहीं करता है। उक्त दोनों दस्तावेजों को एक साथ पढ़ने पर याची को केवल प्लॉट संख्या डी-393 पर ही अधिकार प्राप्त होता है, इसलिए वह केवल एक बार स्टाम्प शुल्क के भुगतान के लिए उत्तरदायी है।

9. उपरोक्त के मद्देनजर, दिनांक 7.2.2006 का उपरोक्त विलेख एक सुधार विलेख है और चूंकि यह लिपिकीय त्रुटि के कारण आवश्यक था, इसलिए इस पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 34-ए के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क देय होगा और इस पर केवल 10/- रुपये का स्टाम्प शुल्क देय होगा। याचिकाकर्ता ने उक्त विलेख पर पहले ही 100/- रुपये का स्टाम्प शुल्क अदा कर दिया है।

इसके बाद यह माना गया कि चूंकि उपरोक्त रिट याचिका में विचाराधीन विलेख ने कोई नया अधिकार नहीं बनाया था, इसलिए इसे अधिनियम की अनुसूची 1-बी के अनुच्छेद 34-ए के तहत सुधार विलेख माना गया और इसलिए केवल 10 रुपये का स्टाम्प शुल्क देय होगा।

24. यह न्यायालय उपर्युक्त विधि प्रस्तावना से सम्मानपूर्वक सहमत है।

25. जहाँ तक इस पहलू का संबंध है कि गाटा संख्या पहले भी नीलामी एवं विक्रय प्रमाणपत्र में दर्शाई गई थी और इसलिए इसे गलती नहीं माना जा सकता, उक्त पहलू को 17 अक्टूबर, 2015 के विलेख में भी रेखांकित किया गया है, जिसमें स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि ई-नीलामी नोटिस में भी, संबंधित भूखंड के संबंध में गाटा संख्या का कोई उल्लेख नहीं था। यह पहलू विवादित आदेशों में दर्शाए गए तर्कों का ध्यान रखता है, जो स्पष्ट रूप से अभिलेखों में उपलब्ध सामग्री के विरुद्ध हैं।

26. उपर्युक्त के मद्देनजर, दिनांक 5 अगस्त, 2016 और 15 जनवरी, 2019 के आक्षेपित आदेश, जो विधि के प्रावधानों के विरुद्ध हैं, को उत्प्रेषण आदेश के रूप में एक रिट जारी करके निरस्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रतिपक्षियों को आदेश दिया जाता है कि वे विवादित आदेशों के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई कोई भी राशि याचिकाकर्ता को तत्काल वापस करें।

27. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस बात पर जोर दिया है कि चूंकि याचिकाकर्ता से अवैध वसूली की गई है, इसलिए वह उस पर ब्याज पाने का हकदार है। उन्होंने मेसर्स कैलाश मानसरोवर बिल्ड कॉन. प्राइवेट लिमिटेड (उपर्युक्त) प्रकरण में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के निर्णय का हवाला दिया है।

28. उपरोक्त निर्णय के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने राज्य सरकार और सभी संबंधित प्राधिकारियों को एक सामान्य परमादेश जारी किया है कि वे अधिनियम के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क

आदि की वापसी की सभी राशियों पर, जमा की तिथि से वापसी की तिथि तक, संबंधित व्यक्ति को 8% प्रति वर्ष की दर से साधारण ब्याज का भुगतान करें। आदेश की एक प्रति मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव, विधि और प्रमुख सचिव, कर एवं पंजीकरण को भी अनुपालन हेतु भेजी गई है। संबंधित अंश इस प्रकार है:-

"28. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सैंडविक एशिया लिमिटेड (पूर्वोक्त) के प्रकरण में भी यह माना है कि ऐसी स्थिति भेदभावपूर्ण प्रकृति की है और लाखों करदाताओं के लिए भारी नुकसानदेह है। टाटा केमिकल्स लिमिटेड (पूर्वोक्त) के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राजस्व द्वारा एकत्रित अतिरिक्त राशि/कर की वापसी पर ब्याज के भुगतान का कोई स्पष्ट वैधानिक प्रावधान न होने के कारण, सरकार ऐसी धनराशि के अनुचित प्रतिधारण की अवधि के लिए उपार्जित ब्याज सहित कटौतीकर्ताओं को वैध धनराशि वापस करने के अपने स्पष्ट दायित्व से बच नहीं सकती। राज्य द्वारा बिना अधिकार के धन प्राप्त करने और उसे अपने पास रखने तथा उसका उपयोग करने के कारण, वह पक्षकार को क्षतिपूर्ति देने के लिए बाध्य है, ठीक वैसे ही जैसे समान परिस्थितियों में एक व्यक्ति को क्षतिपूर्ति करनी होती है। बिना अधिकार के प्राप्त और रखी गई धनराशि को वापस करने का दायित्व ब्याज के अधिकार को भी दर्शाता है। हरि चंद्र (पूर्वोक्त) के प्रकरण में, इसी न्यायालय ने स्टाम्प प्रकरण में इसी तरह की परिस्थितियों में यह निर्णय दिया था कि राज्य सरकार द्वारा रखी गई धनराशि पर ब्याज का भुगतान तब आवश्यक है जब उसे अपीलीय या पुनरीक्षण न्यायालय के आदेशों के तहत वापस किया जाना हो। प्राधिकारी। प्रत्यर्थीगण द्वारा यह नहीं दर्शाया गया है कि इस निर्णय में प्रतिपादित विधि को उलट दिया गया है या संशोधित किया गया है। इस निर्णय में, इस न्यायालय ने धनराशि जमा करने की तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 8 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज देने का निर्देश दिया है।

29. उपरोक्त चर्चाओं के मद्देनजर, राज्य सरकार और सभी संबंधित प्राधिकारियों को एक सामान्य आदेश भी जारी किया जाता है कि वे अधिनियम के तहत स्टाम्प ड्यूटी आदि की वापसी की सभी राशियों पर संबंधित व्यक्ति को जमा की तारीख से वापसी की तारीख तक की अवधि के लिए 8 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से तीन महीने के भीतर साधारण ब्याज का भुगतान करें।

30. परिणामस्वरूप, रिट याचिका सफल होती है और ऊपर बताए अनुसार स्वीकृत की जाती है।

31. इस आदेश की एक प्रति इस न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल द्वारा मुख्य सचिव, प्रमुख सचिव विधि तथा प्रमुख सचिव कर एवं पंजीकरण को अनुपालन हेतु भेजी जाए।"

29. उपरोक्त निर्णय के आलोक में, प्रतिपक्षियों को आदेश दिया जाता है कि वे उक्त आदेशों के अनुसरण में याचिकाकर्ता द्वारा जमा की गई राशि पर, जमा की तिथि से वापसी की तिथि तक, 8% प्रतिवर्ष की दर से साधारण ब्याज का भुगतान सुनिश्चित करें। ब्याज और वापसी का ऐसा भुगतान, इस आदेश की प्रमाणित प्रति उक्त प्राधिकारियों को तामील होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर सुनिश्चित किया जाएगा।

30. परिणामस्वरूप याचिका सफल हो जाती है और उसे स्वीकार किया जाता है। पक्षकारों को अपना खर्च स्वयं वहन करना होगा।

(2025) 1 ILRA 525

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: 10.01.2025, इलाहाबाद

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम

रिट सी संख्या 22636 वर्ष 2024

सुरेंद्र मणि

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

... प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता :- अनिल कुमार तिवारी

प्रतिवादियों के अधिवक्ता :- मुख्य स्थाई अधिवक्ता

ए. भूमि कानून - विलंब को क्षमा करना -परिसीमा अधिनियम, 1963 - धारा 3 और 5 - उत्तर प्रदेश प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 - धारा 200 और 201 - आवेदन दाखिल करने में हुए विलंब को क्षमा किया जा सकता है यदि न्यायालय की राय में पर्याप्त आधार मौजूद हों, जिसके कारण पक्षकार मौखिक प्रार्थना पर भी समय पर न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सका। प्रत्येक मामले में लिखित आवेदन पर जोर देना आवश्यक नहीं है।(पैरा 30)

1901 के अधिनियम की धारा 201 के अनुसार, वादी या प्रतिवादी द्वारा अपनी अनुपस्थिति के लिए पर्याप्त कारण बताए जाने पर एकपक्षीय आदेश को वापस लिया जा सकता है। धारा 201 के प्रावधान परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के समान हैं, सिवाय इसके कि पक्षकार को यह साबित करना होगा कि न्याय में विफलता हुई है।

वर्तमान मामले में, अधिनियम, 1901 की धारा 200 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी संख्या 4 से 6 के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही का निर्णय किया गया। अधिनियम, 1901 की धारा 201 में यह प्रावधान है कि यदि वादी आदेश की तिथि से 15 दिनों के भीतर, और प्रतिवादी आदेश की सूचना प्राप्त होने के 15 दिनों के भीतर, या निर्णय को लागू करने के लिए किसी प्रक्रिया के निष्पादन के बाद, या किसी पूर्व अवधि में,

अपनी अनुपस्थिति का उचित कारण बताता है और आदेश देने वाले अधिकारी को संतुष्ट करता है कि न्याय में विफलता हुई है, तो ऐसा अधिकारी, खर्चे या अन्य शर्तों के संबंध में, जैसा वह उचित समझे, मामले को पुनर्जीवित कर सकता है और मामले के न्याय के अनुसार आदेश को बदल या रद्द कर सकता है। वर्तमान मामले में, अधिनियम, 1901 की धारा 201 के तहत शक्ति का प्रयोग किया गया है। (पैरा 31)

प्रतिवादी पक्ष द्वारा पुनर्स्थापन के लिए दायर आवेदन में उल्लिखित तथ्यों का खंडन नहीं किया गया है और अवर न्यायालयों ने दिनांक 08.06.2017 के एकपक्षीय आदेश को वापस लेने और पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा करने में कोई अवैधता नहीं की है। (पैरा 33, 34)

रिट याचिका खारिज कर दी गई।(ई-4)

पूर्व निर्णय जिनका अनुसरण किया गया:

1. मार्कलैंड प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम गुजरात राज्य, एआईआर 1989 गुजरात 44 (पैरा 13)
2. पटेल पुरुषोत्तमदास मोतीलाल बनाम पटेल छोटाभाई मोतीभाई, 1979 (1) जीएलआर 918 (पैरा 14)
3. कुलसुमुन निसा और अन्य बनाम नूर मोहम्मद और अन्य, एआईआर 1936 इलाहाबाद 666 (पैरा 15)
4. शकुंतला देवी बनाम बनवारी लाल एवं अन्य, एआईआर 1977 इलाहाबाद 551 (पैरा 16)
5. राजीव लोचन पांडे बनाम मदन गोपाल शर्मा एवं अन्य, एआईआर 1989 इलाहाबाद 45 (पैरा 17)
6. वीरेंद्र कुमार सिंघई बनाम मुरारी लाल सिंघल एवं अन्य, 1993 एडव्ल्यूसी 782 इलाहाबाद (पैरा 18)
7. सावित्री देवी बनाम डी.डी.सी. और अन्य, 2014 (122) आरडी 205 (पैरा 20)
8. भागमल एवं अन्य बनाम कुंवारी लाल एवं अन्य, (2010) 12 एससीसी 159 (पैरा 21)
9. द्वारिका प्रसाद (डी) थू एलआरएस बनाम पृथ्वी राज सिंह, 2024 आईएनएससी 1030 निर्णय 20.12.2024 को (पैरा 22)
10. फर्म कौरा माई बिशन दास बनाम फ़िरमा मथरा दास आत्मा राम और अन्य, एआईआर 1959 पंजाब 646 (पैरा 23)
11. मेहर सिंह बनाम धुरेन्दर सिंह एवं अन्य, एआईआर 1993 पी एंड एच 23; (पैरा 23)
12. मेघराज बनाम जेसराज कस्तूरजी, एआईआर 1975 मद्रास 137; (पैरा 23)
13. नंद सिंह बनाम पूर्व राज्य अधिकारी एवं अन्य, एआईआर 1993 दिल्ली 38; (पैरा 23)
14. सुरेश कुमार और अन्य बनाम फर्म कुर्बान हुसैन तैयब अली और अन्य, एआईआर 1996 एमपी 151 (पैरा 23)
15. काशीनाथ मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 2007 एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 739 (पैरा 23)

16. मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम प्रदीप कुमार एवं अन्य (2000) 7 एससीसी 372 (पैरा 28)
 17. जय प्रताप सिंह और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड एवं अन्य, 2006 (10) एडीजे 196 (पैरा 32)

विशिष्ट पूर्व निर्णय:

1. राम प्रकाश बनाम उप निदेशक चकबंदी, 2022 (3) ए.डी.जे. 1 (पैरा 4)
2. चंदर भान बनाम बाल मुकुंद एवं अन्य, एआईआर 1972 एससी 2125 (पैरा 4)

(माननीय न्यायमूर्ति मनीष कुमार निगम द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अनिल कुमार तिवारी और राज्य प्रतिवादियों के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. यह रिट याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए दायर की गई है:-

“(ए). उत्प्रेषण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश नायब तहसीलदार सदर देवरिया के न्यायालय द्वारा दिनांक 2.6.2023 और 31.1.2024 को वाद संख्या 9426 वर्ष 2020 में पारित आक्षेपित आदेश और साथ ही गोरखपुर क्षेत्र गोरखपुर के आयुक्त न्यायालय द्वारा दिनांक 28.2.2024 को पुनरीक्षण संख्या 926/23 में पारित आदेश को निरस्त करने हेतु जारी किया जाए, जिसे इस रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1, 2 और 3 के रूप में संलग्न किया गया है।

(ख). परमादेश की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश प्रतिवादी को आदेश देते हुए और उन्हें (प्रतिवादी संख्या 3 को) मामले की सुनवाई के दौरान मौके पर यथास्थिति बनाए रखने के लिए पक्षों को निर्देश देने हेतु जारी किया जाए।”

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि हरि नंदन की विधवा जानकी देवी के उत्तराधिकार को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। श्रीमती जानकी देवी ने 29.10.1993 को याचिकाकर्ता के पक्ष में वसीयत निष्पादित की। प्रतिवादी संख्या 4 से 6 के पूर्वज ने जानकी देवी के पति हरि नंदन द्वारा निष्पादित वसीयत के आधार पर विवादित संपत्ति पर दावा किया। इस संबंध में, प्रतिवादी संख्या 4 से 6 के पूर्वज द्वारा नामांतरण वाद संख्या 427 वर्ष 1994 दायर किया गया था। उपरोक्त वाद प्रतिवादी संख्या 3, नायब तहसीलदार, तहसील सदर, जिला देवरिया द्वारा 08.06.2017 को पारित आदेश द्वारा चूक के कारण खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त नामांतरण वाद के लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी संख्या 4 से 6 के पूर्वज दामादी का निधन हो गया और उनके स्थान पर प्रतिवादी संख्या 4 से 6 को प्रतिस्थापित किया गया। प्रतिवादी संख्या 4 से 6 ने दिनांक 26.02.2020 को प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष दिनांक 08.06.2017 को प्रतिवादी द्वारा पारित आदेश को वापस

लेने के लिए आवेदन किया, जिसमें वाद को चूक के कारण खारिज कर दिया गया था। आवेदन की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में संलग्न है। याचिकाकर्ता ने दिनांक 03.03.2022 को प्रतिवादी संख्या 4 से 6 द्वारा दायर पुनर्स्थापन/वापसी आवेदन पर आपत्ति दर्ज की, जिसमें अन्य बातों के साथ यह तर्क दिया गया कि उक्त आवेदन पोषणीय नहीं है क्योंकि प्रतिवादी संख्या 4 से 6 ने पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत कोई आवेदन दाखिल नहीं किया था। याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्तियां रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न हैं। प्रतिवादी संख्या 3 ने दिनांक 02.06.2023 के अपने आदेश द्वारा याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपत्तियों पर विचार करने के बाद पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा कर दिया। दिनांक 02.06.2023 के आदेश की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 1 के रूप में संलग्न है। दिनांक 02.06.2023 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने आयुक्त, गोरखपुर क्षेत्र, गोरखपुर (प्रतिवादी संख्या 2) के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की थी, जिसे दिनांक 28.02.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है। आदेश की प्रति रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 3 के रूप में संलग्न है। इसी बीच, प्रतिवादी संख्या 4 से 6 द्वारा दायर पुनर्स्थापन आवेदन भी दिनांक 31.01.2024 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया। दिनांक 31.01.2024 के आदेश की प्रति याचिका के अनुलग्नक संख्या 2 के रूप में संलग्न है। अतः यह याचिका प्रस्तुत की गई है।

4. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 08.06.2017 के आदेश को वापस लेने के लिए पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा करने हेतु परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत कोई अलग आवेदन दाखिल नहीं किया गया था, और इसलिए, प्रतिवादी संख्या 3 ने याचिकाकर्ता की आपत्तियों पर विचार करने के बाद आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को गलत तरीके से क्षमा कर दिया है और परिसीमा अधिनियम की धारा 3 के दृष्टिगत उक्त आदेश क्षेत्राधिकार से बाहर है। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 (जिसे आगे "अधिनियम, 1901" कहा गया है) के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे परिसीमा अधिनियम के प्रावधान अधिनियम, 1901 के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू किए गए हों, और इसलिए प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा देरी को क्षमा नहीं किया जा सकता था। यह स्वीकार किया जाता है कि कार्यवाही अधिनियम, 1901 के प्रावधानों के अंतर्गत थी। अपने तर्कों के समर्थन में याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ के **राम प्रकाश बनाम उप निदेशक चक्रबंदी, हरदोई और अन्य ; 2022 (3) एडीजे 1** में प्रकाशित मामले में दिए गए निर्णय; और साथ ही माननीय सर्वोच्च न्यायालय के **चंदर भान बनाम बाल मुकुंद और अन्य; एआईआर 1972 एससी 2125** में प्रकाशित मामले के निर्णय पर भरोसा किया।

5. इसके विपरीत, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 न्यायालय को विलंब को क्षमा करने और परिसीमा अवधि बढ़ाने का अधिकार देती है। विलंब को क्षमा करने के लिए अलग से आवेदन दाखिल करने की आवश्यकता नहीं है और इसे किसी पक्ष द्वारा मौखिक प्रार्थना पर भी क्षमा किया जा सकता है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया कि यदि यह मान भी लिया जाए कि परिसीमा अधिनियम के प्रावधान 1901 के अधिनियम के अंतर्गत कार्यवाही पर लागू नहीं होते हैं, तब भी

चूंकि दिनांक 08.06.2017 का आदेश एकपक्षीय था, इसलिए इसे 1901 के अधिनियम की धारा 201 के तहत वापस लिया जा सकता था।

6. प्रतिद्वंद्वी पक्षों की प्रस्तुतियों पर विचार करने से पहले, कानून के प्रासंगिक प्रावधानों पर गौर करना उचित होगा।

7. परिसीमा अधिनियम की धारा 3 परिसीमा पर रोक लगाती है। परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 3 का उद्धरण निम्नलिखित है:-

“3. **परिसीमा का अवरोध**—(1) धारा 4 से 24 (जिसमें दोनों धाराएं सम्मिलित हैं) में निहित प्रावधानों के अधीन रहते हुए, निर्धारित अवधि के बाद दायर किया गया प्रत्येक *वाद*, दायर की गई प्रत्येक अपील और दायर किया गया प्रत्येक आवेदन खारिज कर दिया जाएगा, भले ही *प्रतिरक्षा* के रूप में परिसीमा को आधार न बनाया गया हो।”

8. परिसीमा अधिनियम की धारा 5 कुछ मामलों में निर्धारित अवधि के विस्तार का प्रावधान करती है और इसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

“5. **कुछ मामलों में निर्धारित अवधि का विस्तार**— सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XXI के किसी भी प्रावधान के तहत आवेदन के अलावा कोई भी अपील या कोई आवेदन निर्धारित अवधि के बाद स्वीकार किया जा सकता है, यदि अपीलकर्ता या आवेदक न्यायालय को संतुष्ट कर दे कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न करने या आवेदन न करने का पर्याप्त कारण था।

स्पष्टीकरण.— इस धारा के अर्थ के अंतर्गत यह तथ्य कि अपीलकर्ता या आवेदक को निर्धारित अवधि का निर्धारण या गणना करने में उच्च न्यायालय के किसी आदेश, प्रक्रिया या निर्णय द्वारा गुमराह किया गया था, पर्याप्त कारण हो सकता है।”

9. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 200 पक्षकारों की अनुपस्थिति में सुनवाई का प्रावधान करती है। अधिनियम, 1901 की धारा 200 इस प्रकार उद्धृत की गई है:-

“200. **पक्षकार की अनुपस्थिति में सुनवाई**— जब भी किसी कार्यवाही का कोई पक्षकार समन में निर्दिष्ट दिन या किसी ऐसे दिन उपस्थित होने में लापरवाही करता है जिस दिन मामले को स्थगित किया गया हो, तो न्यायालय चूक के कारण मामले को खारिज कर सकता है या सुनवाई कर सकता है और एकपक्षीय निर्धारित कर सकता है।”

10. उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 201 में अनुपस्थिति के लिए उचित कारण साबित होने पर पुनःसुनवाई का प्रावधान है और इसे निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

“201. एकपक्षीय या चूक के कारण पारित आदेशों से कोई अपील नहीं – धारा 200 के तहत एकपक्षीय या चूक के कारण पारित आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी।

अनुपस्थिति के लिए उचित कारण साबित करने पर पुनःसुनवाई – परन्तु ऐसे सभी मामलों में, यदि वह पक्षकार जिसके विरुद्ध निर्णय दिया गया है स्वयं या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से उपस्थित होता है (यदि वादी है, तो ऐसे आदेश की तिथि से पंद्रह दिनों के भीतर, और यदि प्रतिवादी है, तो ऐसे आदेश की सूचना मिलने के पंद्रह दिनों के भीतर, या निर्णय को लागू करने की किसी प्रक्रिया के निष्पादित होने के बाद, या किसी पूर्व अवधि में), और अपनी अनुपस्थिति का उचित कारण बताता है, और आदेश देने वाले अधिकारी को संतुष्ट करता है कि न्याय में विफलता हुई है, तो ऐसा अधिकारी, *खर्च की ऐसी शर्तों पर* या अन्यथा, जैसा वह उचित समझे, मामले को पुनर्जीवित कर सकता है और मामले के न्याय के अनुसार आदेश को बदल या रद्द कर सकता है:

विरोधी पक्षकार को समन भेजे बिना आदेश में परिवर्तन नहीं होगा – परन्तु ऐसे किसी आदेश को तब तक रद्द या परिवर्तित नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को जिसके पक्ष में निर्णय दिया गया है, पहले उसे समन भेज करके अपने समर्थन में सुन न लिया जाए।”

11. परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में यह प्रावधान है कि एक अपील या एक आवेदन निर्धारित अवधि के बाद भी स्वीकार किया जा सकता है, यदि अपीलकर्ता या आवेदक न्यायालय को यह संतुष्ट कर दे कि उसके पास अपील या आवेदन को निर्धारित अवधि के भीतर प्रस्तुत न करने का पर्याप्त कारण था। वास्तव में, धारा 5 उन निर्दोष वादियों को बचाने के लिए बनाई गई है जो किसी गलतफहमी, गलत गणना, सद्भावनापूर्ण विश्वास या अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण परिसीमा के भीतर न्यायालय में कार्यवाही शुरू नहीं कर सके। न्यायालय को विलंब को क्षमा करने और परिसीमा अवधि बढ़ाने का अधिकार दिया गया है। न्यायालय को स्वयं संतुष्ट होना है कि विलंब को क्षमा करने के लिए पर्याप्त कारण मौजूद है या नहीं। यदि न्यायालय अपने समक्ष प्रस्तुत तथ्यों के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि विलंब क्षमा करने योग्य है, तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह पक्षकार को अनावश्यक कष्टों से बचाए और परिसीमा की बाधा को दूर करके अपीलकर्ता को मामले में अपने कानूनी अधिकारों का प्रयोग करने की अनुमति दे।

12. भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 3, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत न्यायालय को दी गई शक्तियों को नियंत्रित करेगी या नहीं, यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं है। धारा 3 में केवल यह प्रावधान है कि यदि कार्यवाही परिसीमा अवधि के भीतर शुरू नहीं की जाती है, तो उसे खारिज किया जा सकता है, भले ही परिसीमा को बचाव के रूप में प्रस्तुत न किया गया हो। लेकिन धारा 5 न्यायालय को परिसीमा अवधि बढ़ाने

की शक्ति देती है, यदि कार्यवाही को परिसीमा अवधि के भीतर शुरू न करने का पर्याप्त कारण हो। वास्तव में, धारा 5, धारा 3 का परंतुक है और धारा 3 की कठोरता को कम करती है।

13. **मार्कलैंड प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम गुजरात राज्य** के मामले में, जो **एआईआर 1989 गुजरात 44** में प्रकाशित किया गया है, गुजरात उच्च न्यायालय ने धारित किया कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत अपीलकर्ता या आवेदक को केवल यह साबित करना होता है कि उसके पास निर्धारित अवधि के भीतर अपील या पुनरीक्षण दाखिल न करने का पर्याप्त कारण था। इस धारा के तहत विलंब क्षमा के लिए लिखित आवेदन की आवश्यकता नहीं है। मार्कलैंड प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम गुजरात राज्य (उपरोक्त) के निर्णय का पैराग्राफ संख्या 9 नीचे उद्धृत किया गया है:-

‘9. याचिकाकर्ताओं के विद्वान *अधिवक्ता* ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम की धारा 9 के तहत पुनरीक्षण आवेदन चुनौती दिए गए आदेश की तिथि से साठ दिनों की अवधि के भीतर दाखिल किया जाना आवश्यक है। इस मामले में पुनरीक्षण आवेदन निर्धारित परिसीमा तिथि से लगभग दस महीने बाद दाखिल किया गया है। याचिकाकर्ताओं के विद्वान *अधिवक्ता* द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्क के अनुसार, न्यायाधिकरण विलंब को क्षमा कर सकता है, लेकिन इस मामले में विलंब क्षमा के लिए कोई आवेदन नहीं था। अतः, विलंब क्षमा के आवेदन के अभाव में विलंब को क्षमा नहीं किया जा सकता था, यह तर्क निराधार है। इस तथ्य पर कोई विवाद नहीं है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान इन कार्यवाही पर लागू होते हैं। परिसीमा अधिनियम की धारा 5 केवल *यह अपेक्षा करती है कि* अपीलकर्ता या आवेदक न्यायालय को *इस बात से संतुष्ट करे* कि उसके पास निर्धारित अवधि के भीतर अपील न करने या पुनरीक्षण आवेदन न करने का पर्याप्त कारण था। यह धारा विलंब क्षमा के लिए लिखित आवेदन की आवश्यकता नहीं बताती है। वास्तव में, यही दृष्टिकोण इस न्यायालय ने नारन अनेप्पा शेठी बनाम जयंतिलाल चेनिले शाह एमएएनयू/जीजे/0067/1987: एआईआर 1987 गुजरात 205 और पटेल पुरुषोत्तमदास मोतीलाल बनाम पटेल छोटाभाई मोतीभाई (1979) 20 जीएलआर 918 के मामले में अपनाया है। इसलिए, यह तर्क कि न्यायाधिकरण को विलंब क्षमा के लिए लिखित आवेदन के अभाव में विलंब को क्षमा नहीं करना चाहिए था, निराधार है और इसे अस्वीकार किया जाना आवश्यक है।”

14. **पटेल पुरुषोत्तमदास मोतीलाल बनाम पटेल छोटाभाई मोतीभाई** के मामले में, जो **1979 (1) जीएलआर 918**, में प्रकाशित किया गया है, पैराग्राफ संख्या 6 में, गुजरात उच्च न्यायालय ने निम्नलिखित धारित किया है:-

‘6. श्री मजमुदार ने यह तर्क दिया है कि वादी द्वारा विलंब क्षमा करने के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया था। सामान्यतः, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का लाभ उठाने के इच्छुक पक्षकार ऐसे आधारों को बताते हुए आवेदन करते हैं जो उनकी राय में ‘पर्याप्त कारण’ हों और विलंब क्षमा करने तथा अपील या आवेदन की सुनवाई स्वीकार करने का अनुरोध करते हैं जो अन्यथा समय-बाधित हो चुका है। इस मामले में, वादी ने ऐसा आवेदन नहीं किया। क्या वादी की यह चूक उसके मामले के लिए घातक थी? हमारी राय में,

यद्यपि विलंब क्षमा करने के लिए आवेदन सामान्यतः आवश्यक है, यह कानून की अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। किसी विशेष मामले में, मौखिक आवेदन पर भी, यदि मामले के तथ्य और परिस्थितियाँ इसकी अनुमति देती हैं, तो न्यायालय को विलंब क्षमा करने का अधिकार है। *वर्तमान* मामले में, विद्वान *विचारण न्यायाधीश* द्वारा वादी को अपनी आपत्तियाँ दर्ज करने के लिए समय देने वाले कई आदेश स्वयं ही विलंब क्षमा करने के लिए 'पर्याप्त कारण' थे। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वादी द्वारा अपनी आपत्तियों को *अभिलेख* में दर्ज कराने के लिए दिया गया मौखिक आवेदन, जो समय सीमा से बाहर प्रतीत होता था, *पोषणीय* नहीं था या उसमें 'पर्याप्त कारण' का उल्लेख करने में कोई गंभीर चूक हुई थी। अतः, विद्वान *विचारण न्यायाधीश* ने वादी के आवेदन को समय सीमा से बाहर होने के आधार पर प्रारंभिक चरण में ही खारिज करने में गलती की। उन्हें इसे फाइल में स्वीकार कर लेना चाहिए था और *उसकी* सुनवाई करनी चाहिए थी और *गुण-दोष के आधार पर* के आधार पर निर्णय लेना चाहिए था।

15. इस न्यायालय ने **कुलसूमुन निस्सा और अन्य बनाम नूर मोहम्मद और अन्य** के मामले में; जो **एआईआर 1936 इलाहबद 666** में प्रकाशित किया गया है, निम्नलिखित धारित किया:-

“अवर अपीलीय न्यायालय द्वारा अपील खारिज करने का पहला आधार यह है कि वादियों ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत समय विस्तार हेतु कोई औपचारिक आवेदन नहीं किया था, और इसलिए हकीम श्याम सुंदर लाल के विरुद्ध उनकी अपील समय सीमा से बाहर थी। हमारी राय में *अवर न्यायालय* ने इस मामले में अपने विवेक का प्रयोग करने में गलती की है। हकीम श्याम सुंदर लाल का नाम प्रतिवादियों की सूची से हटाए जाने का कारण स्पष्ट रूप से यह था कि उनका नाम डिक्री में शामिल नहीं था। उनका नाम प्रतिस्थापित किए जाने के 30 दिनों के भीतर उन्हें बाद में प्रतिवादी बनाया गया था। हमारा मानना है कि *अवर न्यायालय* को प्रतिवादी को समय विस्तार हेतु औपचारिक आवेदन के अभाव की तकनीकी आपत्ति को दूर करने की अनुमति देनी चाहिए थी।” (पैराग्राफ संख्या 1)

16. **शकुंतला देवी बनाम बनवारी लाल और अन्य; एआईआर 1977 इलाहाबाद 551** में प्रकाशित मामले में, इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि विलंब को क्षमा किया जाना चाहिए या नहीं, यह तय करने के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत औपचारिक आवेदन आवश्यक नहीं है। शकुंतला देवी बनाम बनवारी लाल और अन्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का पैराग्राफ संख्या 5 इस प्रकार नीचे उद्धृत किया गया है:-

“5. आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान *अधिवक्ता* ने आगे तर्क दिया कि केवल इसलिए कि 18 मार्च, 1964 को अपील के समापन को रद्द करने के लिए दायर आवेदन में विलंब क्षमा करने की औपचारिक प्रार्थना नहीं थी, न्यायालय इसे परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन मानने और *यह तय करने के लिए कि क्या आवेदक के पास प्रतिस्थापन के लिए आवेदन करने और अपील के समापन को रद्द करने के लिए आवेदन करने में विलंब क्षमा करने का पर्याप्त कारण था*, अभिलेख में मौजूद प्रासंगिक सामग्री पर विचार

करने से नहीं रोका जा सकता। इस तर्क के समर्थन में कि विलंब क्षमा करने योग्य है या नहीं, न्यायालय के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत औपचारिक आवेदन आवश्यक नहीं है, आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान *अधिवक्ता* ने पंजाब उच्च न्यायालय के फर्म कौरा मल बिशन दास बनाम फर्म मथुरा दास आत्मा राम, अहमदाबाद (*एमएएनयूपीएच*/0205/1959) के निर्णय पर भरोसा किया है। जिसमें यह कहा गया था कि (पृष्ठ 646 पर)–

"केवल इसलिए कि अपीलकर्ता द्वारा कोई लिखित आवेदन दाखिल नहीं किया गया है, उसे राहत देने से इनकार करने का कोई पर्याप्त आधार नहीं है, यदि वह अन्यथा इसके लिए हकदार है। प्रक्रिया का उद्देश्य न्याय को बढ़ावा देना है, न कि उसमें बाधा डालना; और यदि संपूर्ण सामग्री *अभिलेख* पर मौजूद है, तो भी न्याय के उद्देश्यों को बढ़ावा नहीं दिया जा सकता है यदि उस सामग्री को अनदेखा कर दिया जाए और अपीलकर्ता को केवल इसलिए राहत देने से इनकार कर दिया जाए क्योंकि उसने औपचारिक लिखित आवेदन के माध्यम से इसका दावा नहीं किया था या औपचारिक *शपथपत्र* दाखिल नहीं किया था। धारा 5 की भाषा भी यह प्रावधान नहीं करती है कि उक्त प्रावधान के तहत राहत दिए जाने से पहले लिखित आवेदन दाखिल करना आवश्यक है।"

उपरोक्त-उल्लिखित निर्णय में, इस न्यायालय की *खण्डपीठ* के कुलसूमुन निस्सा बनाम नूर मोहम्मद *एमएएनयूपी*/0237/1936 :*एआईआर* 1936 *इलाहाबाद* 666 निर्णय पर भरोसा किया गया था। प्रस्तुत तर्क ऊपर उद्धृत दो निर्णयों द्वारा समर्थित हैं और *परिणामस्वरूप वे निर्णय प्रभावी होंगे।*"

17. राजीव लोचन पांडे बनाम मदन गोपाल शर्मा और अन्य के मामले में, जो *एआईआर* 1989 *इलाहाबाद* 45 में प्रकाशित हुआ था, इस न्यायालय ने यह धारित किया कि विलंब के क्षमा के लिए, सभी मामलों में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है। राजीव लोचन पांडे बनाम मदन गोपाल शर्मा (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय का पैराग्राफ संख्या 26 इस प्रकार नीचे उद्धृत किया गया है:-

"26. श्री एस.एस. त्यागी ने तर्क दिया कि चूंकि याचिकाकर्ता को जानकारी थी और विलंब क्षमा के लिए कोई आवेदन नहीं था, इसलिए *विचारण न्यायालय* ने संहिता के आदेश IX, नियम 13 के तहत आवेदन को खारिज करने में कोई गलती नहीं की। याचिकाकर्ता ने *शपथपत्र* में स्पष्ट रूप से कहा था, चाहे उस पर भरोसा किया गया हो या नहीं, कि उसे मुकदमे की सुनवाई की तारीख की जानकारी नहीं थी और यदि यह अंततः सिद्ध हो जाता है, तो संहिता के आदेश IX, नियम 13 के तहत उसके द्वारा दायर आवेदन को *काल-बाधित* नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार, विलंब क्षमा के लिए, सभी मामलों में, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन करना हमेशा आवश्यक नहीं होता है। लेकिन यदि किसी विशेष मामले के *शपथपत्र* से विलंब पूरी तरह से स्पष्ट पाया जाता है, तो न्यायालय को इसे *क्षमा* करने की पर्याप्त शक्ति है।"

18. वीरेंद्र कुमार सिंघई बनाम. मुरारी लाल सिंघल और अन्य; 1993 एडव्ल्यूसी 782 इलाहाबाद में प्रकाशित मामले में, इस न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 5 में निम्नलिखित धारित किया है:-

5. आवेदक के विद्वान *अधिवक्ता* द्वारा प्रस्तुत प्रथम दलील के संबंध में, मैंने मृतक प्रतिवादी की विधवा और दो पुत्रियों को प्रतिस्थापित करने हेतु वादी-विपक्षी द्वारा दिनांक 29-1-1990 को दायर आवेदन और उसके समर्थन में दिए गए *शपथपत्र* का अवलोकन किया है। वादी ने वैधानिक अवधि के भीतर आवेदन दाखिल न करने के कारण बताए हैं। *शपथपत्र* के पैरा 7 में कहा गया है कि *अधिवक्ताओं* की हड़ताल के कारण न्यायालय 28-7-1989 से 10-12-1989 तक बंद रहे और चूंकि वादी को 27-1-1920 से पहले मृतक प्रतिवादी की पुत्रियों के पते ज्ञात नहीं थे, इसलिए हड़ताल समाप्त होने के बाद मामले में निर्धारित तिथि 29-1-1990 से पहले आवेदन दाखिल नहीं किया जा सका। *शपथपत्र* के पैरा 8 में प्रार्थना की गई है कि आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा किया जाए। अतः यह स्पष्ट है कि विलंब क्षमा करने की प्रार्थना दिनांक 29-1-1990 को दायर प्रतिस्थापन आवेदन में मौजूद थी। मेरा मत है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत कोई अलग आवेदन की आवश्यकता नहीं थी..."

19. वर्तमान मामले में भी पुनर्स्थापन आवेदन में, जो रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 7 के रूप में संलग्न है, पैराग्राफ संख्या 5 में, प्रतिवादियों ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का लाभ मांगा है।

20. पुनः सावित्री देवी बनाम डी.डी.सी. और अन्य; 2014 (122) आरडी 205 में प्रकाशित के मामले में, इस न्यायालय का मत था कि किसी पक्षकार के द्वारा मौखिक अनुरोध करने पर विलंब को क्षमा किया जा सकता है। सावित्री देवी बनाम डी.डी.सी. और अन्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 5 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

"5. याचिकाकर्ता के *अधिवक्ता* द्वारा विलंब को गलत तरीके से क्षमा किए जाने के तर्क के संबंध में, यह कहा गया है कि बंदोबस्ती अधिकारी, *चकबंदी* ने अपने दिनांक 6.9.2010 के आदेश में विलंब को स्पष्ट रूप से क्षमा कर दिया है। सर्वोच्च न्यायालय ने एल/नाइक महावीर सिंह बनाम चीफ ऑफ आर्मी स्टाफ, (सप्लीमेंट) एससीसी 89 के मामले में धारित किया है कि मौखिक अनुरोध पर भी विलंब को क्षमा किया जा सकता है। चूंकि प्रतिवादी संख्या 3 को कोई नोटिस जारी नहीं किया गया था और उसने सहायक *चकबंदी* अधिकारी के समक्ष समझौता नहीं किया था, और आदेश एकपक्षीय था, इसलिए विलंब को क्षमा करना उचित है। किसी भी स्थिति में, पर्यवेक्षी क्षेत्राधिकार रखने वाले न्यायालय से यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वह विलंब को क्षमा करने के संबंध में *अवर न्यायालय* के विवेक में हस्तक्षेप करे।"

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भागमल और अन्य बनाम कुंवर लाल और अन्य; (2010) 12 एससीसी 159 में प्रकाशित मामले के तथ्यों पर विचार करने के बाद यह धारित किया कि उच्च न्यायालय को यह अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए था कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत कोई अलग

आवेदन दायर नहीं किया गया था और उसे अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द नहीं करना चाहिए था। भागमल और अन्य बनाम कुंवर लाल और अन्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के पैरा संख्या 10, 11, 12 और 13 का उद्धरण निम्नानुसार है:-

“10. अपीलीय न्यायालय के इस सुविचारित आदेश में उच्च न्यायालय ने केवल इस आधार पर हस्तक्षेप किया कि अपीलकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के तहत अपने आवेदन के समर्थन में *विचारण न्यायालय* के समक्ष विलंब के क्षमा हेतु कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था। उच्च न्यायालय ने पाया कि अपीलीय न्यायालय ने इस प्रश्न पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया था कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत आवेदन दाखिल करना आवश्यक था या नहीं और उसने आवेदन का निर्णय गुण-दोष के आधार पर किया, अतः उसने अपने अधिकार क्षेत्र का उल्लंघन किया। उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर भी टिप्पणी की कि एकपक्षीय डिक्री 19-4-1985 को तय की गई थी, जबकि एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने के लिए आवेदन 8-7-1988 को दाखिल किया गया था और परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब के क्षमा हेतु कोई आवेदन दाखिल नहीं किया गया था। परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 123 पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि आवेदन डिक्री पारित होने की तिथि से 30 दिनों के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए था और चूंकि इसे इस प्रकार दाखिल नहीं किया गया था, इसलिए कम से कम परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब के क्षमा के लिए आवेदन किया जाना चाहिए था और इसलिए, विलंब के क्षमा के लिए प्रार्थना के अभाव में, अपीलीय न्यायालय आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन की अनुमति नहीं दे सकता था।

11. हमारी राय में, उच्च न्यायालय का अत्यधिक तकनीकी दृष्टिकोण अपनाना उचित नहीं था। हमने सभी आदेश देखे हैं। *विचारण न्यायालय* के आदेश से यह स्पष्ट है कि *विचारण न्यायालय* ने आवेदन पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया। *विचारण न्यायालय* ने निस्संदेह प्रतिवादियों के उस उत्तर का उल्लेख किया है जिसमें कहा गया था कि एकपक्षीय डिक्री को रद्द करने का आवेदन समय सीमा से बाहर था। हालांकि, *विचारण न्यायालय* का दृष्टिकोण गुण-दोष पर अधिक आधारित था। वास्तव में, *न्यायालय* ने यह निष्कर्ष निकाला कि कोई समझौता नहीं हुआ था और समझौते तथा उसके कारण हुई देरी का सिद्धांत स्वीकार्य नहीं था। *विचारण न्यायालय* ने देरी संबंधी अपने निष्कर्ष लगभग पूरी तरह से आदेशपत्रों के आधार पर दिए हैं। यह सही नहीं था क्योंकि आदेशपत्रों पर कहीं भी पक्षों के हस्ताक्षर नहीं थे। उन्हें केवल "पक्षकार पहले जैसे" लिखकर मात्र तैयार किया गया था। इसलिए, *विचारण न्यायालय* ने आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन को केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया कि *विलंब के क्षमा* के लिए कोई आवेदन नहीं किया गया था। *न्यायालय* ने *विलंब* के पहलू के साथ-साथ गुण-दोष पर भी विचार किया और पक्षों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति भी दी।

12. यहां यह देखना महत्वपूर्ण है कि विलंब का प्रश्न मामले के गुण-दोष से पूरी तरह जुड़ा हुआ था। अपीलकर्ता-प्रतिवादियों ने स्पष्ट रूप से दलील दी थी कि वे पहले न्यायालय में इसलिए नहीं आए क्योंकि उन्हें न्यायालय द्वारा एकपक्षीय कार्यवाही के माध्यम से पारित आदेश और पारित एकपक्षीय डिक्री के बारे में

जानकारी नहीं थी। उन्होंने यह भी स्पष्ट रूप से दलील दी कि उन्हें डिक्री के बारे में तब पता चला जब उन्हें निष्पादन नोटिस प्राप्त हुआ। यह अपीलकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन करने के समय दी गई एक औचित्यपूर्ण दलील थी। यह विलंब का एक वैध स्पष्टीकरण भी था। हमारी राय में, अपीलीय न्यायालय ने आदेश 9 नियम 13 के तहत आवेदन दाखिल करने के प्रश्न पर गुण-दोष के आधार पर सही विचार किया था और अपीलीय न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचने में बिल्कुल सही था कि अपीलकर्ता-प्रतिवादियों द्वारा आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के तहत आवेदन दाखिल करना पूरी तरह से उचित था और आवेदन दाखिल करने में हुई देरी का कारण भी पूरी तरह से स्पष्ट था क्योंकि उन्हें डिक्री और उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही शुरू करने वाले आदेशों के बारे में कभी जानकारी नहीं थी। यदि ऐसा था, तो न्यायालय ने वास्तव में देरी के कारणों पर भी विचार किया था। ऐसी परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय को यह अति-तकनीकी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए था कि धारा 5 के तहत कोई अलग आवेदन दाखिल नहीं किया गया था।

13. आदेश 9 नियम 13 सीपीसी के अंतर्गत आवेदन में ही विलंब के क्षमा के लिए आवेदन करने हेतु आवश्यक सभी तत्व मौजूद थे। अंततः प्रक्रिया ही न्याय की सहायक होती है...

22. बहुत हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **द्वारिका प्रसाद (डी) थू एलआरएस बनाम पृथ्वी राज सिंह; 2024 आईएनएससी 1030** में प्रकाशित मामले में, जो दिनांक 20.12.2024 को निर्णीत हुआ था, सर्वोच्च न्यायालय ने भागमल और अन्य बनाम कुंवर लाल और अन्य (उपरोक्त) के निर्णय पर भरोसा किया और पैराग्राफ संख्या 12 में निम्नानुसार धारित किया :-

“12. उपरोक्त मामलों से यह स्पष्ट है कि वर्तमान मामले में भी विलंब के क्षमा हेतु अलग से आवेदन दाखिल करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। उच्च न्यायालय ने अति तकनीकी दृष्टिकोण अपनाकर और यह निष्कर्ष निकालकर गलती की है कि कानून के अनिवार्य प्रावधान का उल्लंघन हुआ है। ऐसे दृष्टिकोण का समर्थन करना न्यायिक प्रक्रिया के उद्देश्य की अनदेखी करने के समान होगा। प्रक्रिया न्यायसंगत और निष्पक्ष परिणाम प्राप्त करने में बाधा नहीं बन सकती। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता ने सद्भावनापूर्वक और लगन से कार्य किया। उसका आचरण किसी भी कानूनी नियम का उल्लंघन नहीं करता है।

23. पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, मद्रास उच्च न्यायालय, दिल्ली उच्च न्यायालय, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय और कलकत्ता उच्च न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया है। उन्होंने **फर्म कौरा माई बिशन दास बनाम फर्म माथरा दास अतमा राम और अन्य, एआईआर 1959 पंजाब 646** में प्रकाशित, **मेहर सिंह बनाम धुरेंद्र सिंह और अन्य, एआईआर 1993 पंजाब और हरियाणा 23** में प्रकाशित, **मेघराज बनाम जसराज कस्तूरजी एआईआर 1975 मद्रास 137** में प्रकाशित, **नंद सिंह बनाम राज्य अधिकारी और अन्य एआईआर 1993 दिल्ली 38** में प्रकाशित, **सुरेश कुमार और अन्य बनाम फर्म कुर्बान हुसैन तैयब अली और अन्य एआईआर 1996 मध्य प्रदेश 151** में प्रकाशित और **काशीनाथ मंडल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 2007 एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 739** में प्रकाशित मामलों में भी यही मत व्यक्त किया है।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय, इस न्यायालय और विभिन्न अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा निर्धारित कानून के आलोक में, मेरा भी मत है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब क्षमा के लिए औपचारिक आवेदन की आवश्यकता नहीं होगी, यदि न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत तथ्य न्यायालय की न्यायिक चेतना को संतुष्ट करते हैं कि आवेदक पर्याप्त कारणों से परिसीमा के भीतर कार्यवाही शुरू करने से रोका गया था। यदि विलंब क्षमा के लिए औपचारिक आवेदन प्रस्तुत करने के बजाय, किसी पक्ष द्वारा समय पर कार्यवाही शुरू न करने के पर्याप्त कारण का उल्लेख आवेदन या अपील के ज्ञापन या पुनरीक्षण में किया गया है और साथ में विलंब क्षमा के लिए प्रार्थना करते हुए शपथपत्र भी दिया गया है, तो विलंब क्षमा के लिए अलग आवेदन न होने के कारण यह घातक नहीं होगा। यदि न्यायालय का मत है कि औपचारिक आवेदन के अभाव में विलंब क्षमा नहीं किया जा सकता है, तो न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह अपीलकर्ता को विलंब का कारण बताते हुए आवेदन प्रस्तुत करने और परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब क्षमा मांगने का अवसर दे। आवेदक को उन परिस्थितियों को स्पष्ट करने का उचित अवसर मिलना चाहिए जिनके कारण वह समय रहते कार्यवाही शुरू नहीं कर सका। इस संबंध में, मद्रास उच्च न्यायालय के **मेघराज बनाम जेसराज कस्तूरजी (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय से भी मैं सहमत हूँ, जहाँ उस न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश सिंह ने निर्णय के पैराग्राफ 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:-

"4..... अतः आम सहमति यही प्रतीत होती है कि यदि उचित परिस्थितियों में न्यायालय में कोई अपील या आवेदन दायर किया जाता है, लेकिन उसमें देरी के लिए औपचारिक आवेदन या लिखित आवेदन प्रस्तुत नहीं किया जाता है, तो न्यायालय को तकनीकी बाधाओं को दरकिनार करते हुए पीड़ित पक्ष को मामले को सुधारने का उचित अवसर प्रदान करना चाहिए। अन्यथा, इससे न्याय का उल्लंघन होगा।"

25. वर्तमान मामले में, पुनर्स्थापन आवेदन के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि पैराग्राफ संख्या 5 में विलंब के क्षमा के लिए प्रार्थना की गई है और उक्त आवेदन के पैराग्राफ संख्या 4 और 5 में इसके कारण बताए गए हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का यह तर्क कि प्रतिवादी संख्या 3 विलंब को क्षमा नहीं कर सकता था क्योंकि प्रतिवादी पक्ष ने परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब क्षमा के लिए कोई औपचारिक आवेदन नहीं किया था, गलत है। जहां तक याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा राम प्रकाश बनाम उप निदेशक, चकबंदी, हरदोई और अन्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय पर निर्भरता का संबंध है, उक्त निर्णय में निम्नलिखित प्रश्न खंडपीठ को संदर्भित किया गया था: "यदि किसी आदेश को, जो अधिनियम के तहत निर्धारित परिसीमा अवधि से बाधित है, चकबंदी प्राधिकारी के समक्ष चुनौती दिया जाता है, (वर्तमान मामले में अपीलीय प्राधिकारी/बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी- 1, हरदोई) और साथ ही विलंब क्षमादान के लिए आवेदन भी प्रस्तुत किया जाता है, तो ऐसी परिस्थितियों में क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब क्षमादान के लिए आवेदन पर पहले निर्णय लिया जाना चाहिए या मामले के गुण-दोष के साथ इस पर निर्णय लिया जा सकता है?" न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने के लिए नहीं कहा गया था कि क्या विलंब को तब तक क्षमा नहीं किया जा सकता जब तक कि पक्षकार द्वारा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब क्षमा हेतु औपचारिक आवेदन न दिया जाए, बल्कि न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि

क्या परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत दिए गए आवेदन पर पहले विचार किया जाना चाहिए और उसके बाद मामले की गुण-दोष के आधार पर सुनवाई की जानी चाहिए या दोनों कार्य एक साथ किए जा सकते हैं। इस न्यायालय की खंडपीठ ने राम प्रकाश बनाम उप निदेशक, चकबंदी, हरदोई और अन्य (उपरोक्त) के निर्णय के पैराग्राफ संख्या 22 में उपरोक्त प्रश्नों का उत्तर दिया है। जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:-

“22. उपरोक्त चर्चा के दृष्टिगत हम खंडपीठ को संदर्भित प्रश्न का उत्तर देते हैं कि विलंब के क्षमा की मांग करने वाले आवेदन पर अपील की गुण-दोष पर सुनवाई से पहले निर्णय लेना आवश्यक है। हालांकि, यह उसी दिन किया जा सकता है और विलंब के क्षमा की मांग करने वाला आवेदन स्वीकार होने के बाद अपील की गुण-दोष सुनवाई स्थगित करने की कोई आवश्यकता नहीं है।”

26. चंदर भान बनाम बाल मुकुंद (उपरोक्त) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों ने यह स्पष्ट नहीं किया है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब के क्षमा हेतु मौखिक प्रार्थना को लिखित आवेदन के अभाव में न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत मामले याचिकाकर्ता के इस तर्क का समर्थन नहीं करते कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब क्षमादान हेतु अलग से लिखित आवेदन के बिना विलंब क्षमा नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में यह आवश्यक नहीं है कि आवेदक द्वारा पर्याप्त कारण बताए जाने पर विलंब क्षमादान हेतु लिखित आवेदन दिया जाए।

27. सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 41 नियम 3-ए, जैसा कि 1976 में संशोधित किया गया था निम्नलिखित प्रावधान करता है:-

“3ए. विलंब के क्षमा हेतु आवेदन (1) जब कोई अपील उसके लिए निर्धारित परिसीमा अवधि की समाप्ति के बाद प्रस्तुत की जाती है, तो उसके साथ एक शपथपत्र सहित आवेदन होगा जिसमें उन तथ्यों का उल्लेख होगा जिन पर अपीलकर्ता न्यायालय को संतुष्ट करने के लिए भरोसा करता है कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था।

(2) यदि न्यायालय को प्रतिवादी को नोटिस जारी किए बिना आवेदन को अस्वीकार करने का कोई कारण नहीं दिखता है, तो प्रतिवादी को नोटिस जारी किया जाएगा और न्यायालय द्वारा नियम 11 या नियम 13 के तहत अपील पर विचार करने से पहले मामले का अंतिम निर्णय किया जाएगा।

(3) जहां उप-नियम (1) के तहत आवेदन किया गया है, वहां न्यायालय उस डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने का आदेश नहीं देगा जिसके विरुद्ध अपील दायर करने का प्रस्ताव है, जब तक कि न्यायालय नियम 11 के तहत सुनवाई के बाद अपील की सुनवाई करने का निर्णय नहीं लेता है।”

28. मध्य प्रदेश राज्य और अन्य बनाम प्रदीप कुमार और अन्य के मामले में, जो (2000) 7 एससीसी 372 में प्रकाशित किया गया है, सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश 41 के नियम 3-ए के उप-नियम 1 सीपीसी के प्रावधानों का निर्वचन करते हुए यह धारित किया कि विलंब के क्षमा के लिए आवेदन के बिना अपील ज़ापन दाखिल करना घातक नहीं होगा। किसी वादी की अनजाने में हुई चूक के कारण न्यायालय के दरवाजे स्थायी रूप से बंद नहीं होने चाहिए। नियम 3-ए (1) में "shall" शब्द किसी गलती को सुधारने के अवसर को समाप्त नहीं करता है और न्यायालय अपील ज़ापन को संबंधित पक्ष को दोषपूर्ण मानकर वापस करने के अधिकार क्षेत्र में है। ऐसा पक्ष तब दोष को दूर कर सकता है और अपील को पुनः प्रस्तुत कर सकता है। मध्य प्रदेश राज्य बनाम प्रदीप कुमार (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ 10, 11, 12, 15, 16, 17, 18, 19 निम्नवत उद्धृत किए गए हैं:-

"10. यदि ऐसी अपील के साथ नियम 3-ए के उप-नियम (1) में उल्लिखित आवेदन संलग्न न हो तो क्या परिणाम होगा? यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि संहिता के ठीक पूर्ववर्ती नियम में यह स्पष्ट किया गया है कि नियम 1 में उल्लिखित आवश्यकताओं का पालन न करने पर अपील ज़ापन अस्वीकृत कर दिया जाएगा। फिर भी, उक्त नियम न्यायालय को एक अन्य विकल्प देता है, और वह यह है कि अपील ज़ापन को अपीलकर्ता को एक निश्चित समय के भीतर या उसी समय संशोधन के लिए वापस कर दिया जाए। यह ध्यान देने योग्य है कि ऐसा कोई नियम नहीं है जो अपील ज़ापन को उस स्थिति में अस्वीकृत करने का प्रावधान करता हो जब अपील के साथ विलंब क्षमादान का आवेदन संलग्न न हो। यदि विलंब क्षमादान के आवेदन के बिना ऐसी अपील में अपील ज़ापन दाखिल किया जाता है, तो परिणाम गंभीर नहीं हो सकते। न्यायालय ऐसे मामले में यह मान सकता है कि अपील का कोई वैध प्रस्तुतीकरण नहीं हुआ था। इसका अर्थ यह है कि यदि अपीलकर्ता अपील अस्वीकृत होने से पहले विलंब क्षमादान के लिए आवेदन दाखिल करता है, तो उसे पहले से दाखिल किए गए अपील ज़ापन के साथ ही लिया जाना चाहिए। तभी न्यायालय अपील को विधिवत रूप से प्रस्तुत किया गया मान सकता है। यदि न्यायालय अपील ज़ापन (जिसमें विलंब का स्पष्टीकरण देने वाला आवेदन संलग्न नहीं था) को दोषपूर्ण मानकर लौटा देता है, तो इसमें कोई त्रुटि नहीं है। संबंधित पक्ष इस दोष को दूर कर बिना किसी और विलंब के अपील प्रस्तुत कर सकता है।

11. इसमें कोई संदेह नहीं कि नियम 3-ए के उप-नियम (1) में "shall" शब्द का प्रयोग किया गया है। यह तर्क दिया गया कि "shall" शब्द का प्रयोग स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि यह आवश्यकता अनिवार्य है। लेकिन इस तरह की अनिवार्यता अपीलकर्ता को अपनी गलती सुधारने का अवसर देने से नहीं रोकती, चाहे वह स्वयं सुधारे या न्यायालय द्वारा बताए जाने पर। इस संदर्भ में "shall" शब्द को अपीलकर्ता पर लगाए गए दायित्व के रूप में समझा जाना चाहिए। उप-नियम की अधिक प्रतिबंधात्मक व्याख्या क्यों की जानी चाहिए? नियम की बहुत कठोर व्याख्या नहीं की जा सकती और अनुपालन न करने पर अपीलकर्ता को दंडित नहीं किया जा सकता। ऐसा हो सकता है कि किसी गलती या चूक के कारण अपीलकर्ता अपील के साथ आवेदन (विलंब का स्पष्टीकरण देते हुए) दाखिल करना भूल जाए।

12. यह प्राचीन कहावत सत्य है कि "Vigilantibus Non Dormientiobus Jura Subveniunt" (कानून उन्हीं की सहायता करता है जो सतर्क रहते हैं, न कि उनकी जो अपने अधिकारों के प्रति लापरवाह रहते हैं)। लेकिन एक सतर्क वादी से भी गलती हो सकती है। "गलती करना मनुष्य का स्वभाव है" यह कहावत किसी अमूर्त दर्शन से अधिक मानवीय व्यवहार की एक व्यावहारिक अवधारणा है, इसलिए वादी की अनजाने में हुई चूक के कारण उसके लिए न्यायपालिका के द्वार हमेशा के लिए बंद नहीं हो जाने चाहिए। न्यायालय का प्रयास किसी भी गलती के कारण न्याय चाहने वाले पक्ष के समक्ष न्यायिक अधिकार क्षेत्र के द्वार बंद करने का नहीं होना चाहिए, बल्कि यह देखना चाहिए कि क्या उसकी शिकायत पर विचार करना संभव है, यदि वह वास्तविक है।

15. जगत धिश भार्गव बनाम जवाहर लाल भार्गव और अन्य, एआईआर (1961) एससी 832 में, इस न्यायालय ने दोषपूर्ण रूप से दायर अपीलों की प्राप्ति पर न्यायालय द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया पर विचार करते हुए निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:

“इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आदेश 41, नियम 1 के तहत दोषपूर्ण रूप से दायर की गई अपीलों से निपटने के लिए कोई कठोर और सर्वमान्य नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित आदेश पारित किए जाने होंगे, लेकिन दोषपूर्ण रूप से प्रस्तुत की गई अपीलों के मामलों में सबसे महत्वपूर्ण कदम यह है कि प्रारंभिक चरण में, अपील दायर होने के तुरंत बाद, उनकी सावधानीपूर्वक जांच की जाए और अपीलकर्ता को उन दोषों को दूर करने के लिए कहा जाए।” (एआईआर पैरा 14)

16. इसके बाद संहिता में नियम 3-ए जोड़ा गया, इसलिए इस प्रश्न पर नए सिरे से विचार करना आवश्यक हो गया। संहिता के आदेश 41 में नियम 3-ए को शामिल किए जाने के बाद शुरुआती दौर में, कुछ उच्च न्यायालयों ने इसकी बहुत कठोर व्याख्या की और प्रारंभिक चरण में भी इसका पालन न करना घातक माना गया। केरल उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश (उस समय न्यायमूर्ति खालिद) ने पद्मावती बनाम कालू, एआईआर (1980) केरल 173 में यह मत व्यक्त किया कि "यदि अपील दाखिल करने में हुई देरी की क्षमा के लिए याचिका अपील दाखिल करने के बाद दाखिल की गई है, तो याचिका खारिज की जा सकती है।" कर्नाटक उच्च न्यायालय के एक एकल न्यायाधीश ने मधुकर दासो देशपांडे बनाम अननल नीलकंठ देशपांडे एवं अन्य, एआईआर (1984) कर्नाटक 40 के मामले में उक्त निर्णय का अनुसरण करते हुए यह धारित किया कि "आदेश 41 नियम 3-ए सीपीसी के अनिवार्य प्रावधान के दृष्टिगत, यदि अपील समय सीमा के बाद प्रस्तुत की जाती है, तो विलंब के क्षमा के लिए आवेदन अपील जापन के साथ संलग्न होना चाहिए। न्यायालय के लिए यह कहने का कोई अवसर नहीं है कि विलंब के क्षमा के लिए आवेदन बाद में स्वीकार किया जा सकता है और अपीलकर्ता के लिए न्याय के हित में इस स्तर पर भी ऐसे आवेदन को स्वीकार करने का अनुरोध करने का कोई अवसर नहीं है।"

17. केरल उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने बाद में उपरोक्त मामले में एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय को रद्द कर दिया (देखें माया देवी बनाम एम.के. कृष्णा भट्टाथिरी और अन्य, एआईआर (1981) केरल 240)। यही हाल कर्नाटक उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा मधुकर के मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण का भी हुआ, जब एक खंडपीठ ने बाद में इसे रद्द कर दिया (कर्नाटक राज्य बनाम नागप्पा, एआईआर (1986))। एन. वेंकटचला और एस.ए. हकीम, न्यायमूर्ति (उस समय) ने संहिता के आदेश 41 में नियम 3-ए को शामिल करने की पृष्ठभूमि पर विचार किया और चर्चा के बाद यह धारित किया कि नियम 3-ए का उपनियम (1) अनिवार्य है। हालांकि, विद्वान न्यायाधीशों ने बताया कि उपनियम (2) और (3) का प्रयोग विधायिका द्वारा ऐसे नए नियम को शामिल करने के उद्देश्य को स्पष्ट करने के लिए किया गया है। इस संदर्भ में कर्नाटक उच्च न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय का निम्नलिखित अंश उद्धृत किया जा सकता है:

नियम 3ए के उप-नियम (1) और (2) को संयुक्त रूप से पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि उप-नियम (1) के तहत विलंब क्षमादान हेतु आवेदन दाखिल करने की आवश्यकता, समय सीमा समाप्त हो चुकी अपील के साथ अनिवार्य है, इस अर्थ में कि अपीलकर्ता ऐसे आवेदन पर निर्णय लिए बिना न्यायालय से अपनी समय सीमा समाप्त हो चुकी अपील की सुनवाई करने का आग्रह नहीं कर सकता। नियम 3ए के उप-नियम (1) और (2) को शामिल करने का यही उद्देश्य था, जो नए नियम 3ए के विधायी इतिहास से स्पष्ट हो जाता है, जिसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं।”

18. हम यह भी बता सकते हैं कि पटना उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने इससे पहले भी स्टेट ऑफ बिहार और अन्य बनाम रे चंडी नाथ सहाय और अन्य, एआईआर (1983) पटना 189 में यही दृष्टिकोण अपनाया था।

19. संहिता के आदेश 41 में नियम 3ए को अधिनियमित करने का दोहरा उद्देश्य प्रतीत होता है। पहला, अपीलकर्ता को, जिसने समय सीमा समाप्त होने के बाद अपील दायर की है, यह सूचित करना कि विलंब का स्पष्टीकरण देने वाले आवेदन के बिना उसकी अपील पर विचार नहीं किया जाएगा। दूसरा, प्रतिवादी को यह संदेश देना कि उसे अपील जापन में उठाए गए आधारों का जवाब देने के लिए तैयार होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि न्यायालय को विलंब क्षमादान के आवेदन पर पूर्व शर्त के रूप में विचार करना होता है। उपरोक्त उद्देश्यों को छोड़कर, हम इस नियम से यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि यदि अपील जापन के साथ पहली बार में ऐसा कोई आवेदन नहीं है, तो यह अपीलकर्ता के विरुद्ध अपूरणीय या अपरिवर्तनीय रूप से घातक साबित होगा। हमारी राय में, यह कमी दूर करने योग्य है, और यदि आवश्यक आवेदन बाद में दायर किया जाता है, तो अपील को संहिता के आदेश 41 के नियम 3-ए में निहित आवश्यकता के अनुसार प्रस्तुत माना जा सकता है।”

29. इस प्रकार, आदेश 41 सी.पी.सी. के नियम 3-ए के उप-नियम 1 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए, जहां कानून में विलंब की माफी के लिए आवेदन दाखिल करने की अपेक्षा की गई है, सर्वोच्च न्यायालय ने इसे उस स्थिति में घातक नहीं माना है, जब अलग से आवेदन दाखिल नहीं किया जाता है, जबकि अधिनियम, 1901 या परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जहां अलग से आवेदन की आवश्यकता हो।

30. चर्चा किए गए उपरोक्त न्यायिक निर्णयों के आलोक में, मेरा मत है कि यदि न्यायालय की राय में पर्याप्त आधार मौजूद हो, जिसके कारण पक्षकार समय पर न्यायालय में उपस्थित नहीं हो सका, तो आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा किया जा सकता है, भले ही पक्षकार ने मौखिक रूप से आवेदन किया हो। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक मामले में लिखित आवेदन पर ही जोर दिया जाए।

31. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत इस तर्क के संबंध में कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 में परिसीमा अधिनियम के प्रावधानों को अधिनियम, 1901 के अंतर्गत की गई कार्यवाही पर लागू करने का कोई प्रावधान नहीं है, इसलिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का सहारा लेकर विलंब को क्षमा नहीं किया जा सकता, याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का तर्क भ्रामक है क्योंकि वर्तमान मामले में, अधिनियम, 1901 की धारा 200 के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए प्रतिवादी संख्या 4 से 6 के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही का निर्णय किया गया था। अधिनियम, 1901 की धारा 201 में यह प्रावधान है कि यदि वादी आदेश की तिथि से पंद्रह दिनों के भीतर, और यदि प्रतिवादी आदेश की सूचना मिलने के पंद्रह दिनों के भीतर, या निर्णय को लागू करने के लिए किसी प्रक्रिया के निष्पादन के बाद, या किसी पूर्व अवधि में, अपनी अनुपस्थिति का उचित कारण बताता है, और आदेश देने वाले अधिकारी को संतुष्ट करता है कि न्याय में विफलता हुई है, तो ऐसा अधिकारी, खर्च की शर्तों या अन्यथा के संबंध में, जैसा वह उचित समझे, कार्यवाही को पुनर्जीवित कर सकता है और मामले के न्याय के अनुसार आदेश को बदल या रद्द कर सकता है। इस प्रकार, अधिनियम, 1901 की धारा 201 के तहत, वादी या प्रतिवादी द्वारा पेश न होने का पर्याप्त कारण बताए जाने पर एकपक्षीय आदेश को वापस लिया जा सकता है। धारा 201 के प्रावधान परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के समान हैं, सिवाय इसके कि पक्षकार को यह साबित करना होगा कि न्याय में विफलता हुई है। वर्तमान मामले में, अधिनियम, 1901 की धारा 201 के तहत इस शक्ति का प्रयोग किया गया है।

32. जय प्रताप सिंह और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य के मामले में, जो 2006 (10) ए.डी.जे. 196 में रिपोर्ट किया गया है, इस न्यायालय ने यह राय व्यक्त किया है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 के तहत कार्यवाही पर लागू होते हैं। जय प्रताप सिंह और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य (उपरोक्त) के मामले में दिए गए निर्णय के पैराग्राफ संख्या 5, 6, 7 और 8 को निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:-

“5. श्री राधे श्याम का तर्क है कि उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 214 की भाषा के दृष्टिगत, परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। वह प्रावधान इस प्रकार है:

214. शिकायत किए गए आदेश की तिथि से 30 दिनों की समाप्ति के बाद कोई अपील नहीं की जाएगी, जब तक कि इस अधिनियम में स्पष्ट रूप से अन्यथा प्रावधान न हो।

6. यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम एक संपूर्ण स्व-निहित संहिता है और परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 को लागू करने का कोई प्रावधान न होने के कारण, परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) का हवाला देकर इन प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सकता है। अपने तर्क के समर्थन में उन्होंने हुकुमदेव नारायण यादव बनाम ललित नारायण मिश्रा एमएएनयू एससी॥0247/1973:(1974) 3 एससीआर 31 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है। उस मामले में प्रश्न यह था कि क्या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत दायर चुनाव याचिका पर परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के प्रावधान लागू होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि भले ही विशेष कानून में स्पष्ट संदर्भ द्वारा परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के प्रावधानों को बाहर नहीं किया गया हो, फिर भी न्यायालय के लिए यह जांच करना खुला रहेगा कि क्या और किस हद तक विशेष कानून के प्रावधानों की प्रकृति या विशेष कानून के विषय वस्तु और योजना की प्रकृति उनके संचालन को बाहर करती है। सर्वोच्च न्यायालय ने यह धारित किया कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के तहत दायर चुनाव याचिका पर परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। ऐसा निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम धारा 81 और 86 पर भरोसा किया। धारा 81 के तहत 30 दिनों की समयसीमा निर्धारित है और यदि चुनाव याचिका उस धारा के अनुसार दायर नहीं की जाती है, तो अधिनियम की धारा 86 के तहत इसके परिणाम का प्रावधान है, जिसके अनुसार उच्च न्यायालय को याचिका खारिज करनी होगी। मेरे विचार से हुकुमदेव मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम के तहत अपील पर लागू नहीं होता है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 215 में यह प्रावधान है कि भारतीय परिसीमा अधिनियम, 1908 की धारा 5 में निर्दिष्ट आधारों पर अपील स्वीकार करने वाले आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं होगी। इस प्रावधान में यह निहित है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 में दिए गए आधारों का लाभ देते हुए अपील स्वीकार की जा सकती है। यदि याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता की दलील मान ली जाए, तो उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1901 की धारा 215 निरर्थक हो जाएगी। श्री राधे श्याम ने तर्क दिया कि उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 215 का प्रावधान निरर्थक है, क्योंकि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रों के लिए द्वितीय और तृतीय अपील के प्रावधानों को हटा दिया गया है। यदि ऐसा है भी, तो भी यह प्रावधान निरर्थक नहीं होगा, क्योंकि यह अन्य क्षेत्रों पर लागू होगा। इसके अतिरिक्त, इस याचिका में हम प्रथम अपील से संबंधित मामले पर विचार कर रहे हैं। यह सर्वविदित है कि किसी भी ऐसी व्याख्या से बचना चाहिए जो किसी अधिनियम के प्रावधान को निरर्थक बना दे, और उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं है जो न्यायालय को ऐसी व्याख्या अपनाने के लिए बाध्य करे। इसके अलावा, ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम परिसीमा संबंधी प्रावधानों का संपूर्ण संग्रह है। अधिनियम में

परिसीमा संबंधी एकमात्र प्रावधान धारा 214 है, जो अधिनियम में स्पष्ट रूप से अन्यथा निर्धारित न होने पर अपील के लिए 30 दिनों की परिसीमा अवधि प्रदान करती है। यह अधिनियम परिसीमा अधिनियम की धारा 4 से 24 के अंतर्गत आने वाली किसी भी स्थिति से संबंधित नहीं है। उदाहरण के लिए, यदि उस आदेश की प्रति, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, प्राप्त करने में 30 दिनों से अधिक समय व्यतीत होता है, तो आदेश की प्रति प्राप्त करने में व्यतीत समय को बाहर नहीं रखा जाएगा, यदि परिसीमा अधिनियम की धारा 12 का सहारा लेना वर्जित है। उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के अंतर्गत मुकदमेबाजी ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित है, जहाँ के लोग अशिक्षित हैं और परिसीमा के नियमों और कानूनों का उन्हें कम ज्ञान है। यदि यह मान लिया जाए कि धारा 5 लागू नहीं होती है, तो इससे बहुत कठिनाई होगी। मैं इस तर्क को स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हूँ कि उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम की योजना भारतीय परिसीमा अधिनियम की धारा 29(2) के आवेदन को वर्जित करती है।

7. इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि नामांतरण मामले में अपील का निर्णय करते समय उप-मंडल अधिकारी न्यायालय नहीं बल्कि अभिलेख अधिकारी होता है और इस कारण परिसीमा अधिनियम की धारा 5 लागू नहीं होती। इस तर्क पर विचार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 215 में यह निहित है कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 का लाभ दिया जा सकता है। हालांकि, यह तर्क भी सही प्रतीत नहीं होता। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम के अंतर्गत किसी भी कार्यवाही में पारित आदेश के विरुद्ध अपील, जब तक कि आदेश अंतिम न हो जाए, धारा 211 के अंतर्गत, धारा 210 के अंतर्गत अपीलों की सुनवाई के लिए अधिकृत न्यायालय में की जा सकती है। इस प्रकार नामांतरण आदेश के विरुद्ध अपील भी धारा 211 के अंतर्गत की जा सकती है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 210 का शीर्षक "वे न्यायालय जिनमें अपील की जा सकती है" है। धारा 211 में धारा 210 के अंतर्गत अधिकृत न्यायालय में प्रथम अपील का भी प्रावधान है। अधिनियम की धारा 4(8) के अंतर्गत राजस्व न्यायालय को परिभाषित किया गया है। इसमें अन्य अधिकारियों के साथ-साथ सहायक अभिलेख अधिकारी, तहसीलदार, सहायक कलेक्टर, अतिरिक्त कलेक्टर और कलेक्टर शामिल हैं। उपमंडल का प्रभारी सहायक कलेक्टर उपमंडल अधिकारी कहलाता है। भू-राजस्व अधिनियम के अंतर्गत राजस्व न्यायालयों को पक्षों के बीच विवाद का निपटारा करने का अधिकार दिया गया है। उन्हें उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 193 के तहत साक्ष्य लेने का भी अधिकार है। उत्तर प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम की धारा 199 में गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने की प्रक्रिया दी गई है और यह इस प्रकार है:

199. गवाहों की उपस्थिति सुनिश्चित करने की प्रक्रिया - यदि किसी राजस्व न्यायालय के समक्ष लंबित न्यायिक प्रकृति की किसी कार्यवाही में, कोई भी पक्ष गवाहों की उपस्थिति चाहता है, तो वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XVI, नियम 2 से 4 द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करेगा।

8. उपरोक्त सभी कारणों से यह प्रतीत होता है कि अपील का निर्णय करते समय उप- मंडल अधिकारी एक न्यायालय है और याचिकाकर्ता का यह तर्क कि परिसीमा अधिनियम की धारा 5 उत्तर प्रदेश भूमि राजस्व अधिनियम के अंतर्गत अपीलों पर लागू नहीं होती, सही नहीं प्रतीत होता है।”

में जय प्रताप सिंह और अन्य बनाम राजस्व बोर्ड और अन्य (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून से पूर्णतः सहमत हूँ।

33. वर्तमान मामले में, दोनों पक्षों की अनुपस्थिति में कार्यवाही न होने के कारण कार्यवाही खारिज कर दी गई थी और वादी-आवेदकों ने उक्त आदेश को वापस लेने के लिए आवेदन दायर किया है। दोनों पक्षकार अपने पक्ष में निष्पादित वसीयत के आधार पर दावा कर रहे हैं। विलंब क्षमा आवेदन को न्यायालय द्वारा दिनांक 02.06.2023 के आदेश द्वारा पहले ही स्वीकार कर लिया गया है। प्रतिवादी पक्ष द्वारा दायर आवेदन में कहा गया है कि राजस्व बोर्ड के समक्ष लंबित स्थानान्तरण आवेदन के निपटारे के बाद वादी के साक्ष्य के लिए मामला निर्धारित किया गया था। इस अवधि के दौरान, वादी दामादी की 18.09.2010 को मृत्यु हो गई, उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिस्थापन के लिए आवेदन दायर किया गया था, लेकिन न्यायालय ने इस पर संज्ञान नहीं लिया और प्रतिस्थापन आवेदन को स्वीकार किए बिना मामले में तारीखें निर्धारित कर दी गईं। 08.06.2017 को, दोनों पक्षों की अनुपस्थिति में कार्यवाही न होने के कारण मामला खारिज कर दिया गया था और आदेश एक मृत व्यक्ति के विरुद्ध था। आवेदकों/प्रतिवादी संख्या 4 से 6 द्वारा यह भी कहा गया है कि वे मृतक दामादी के पुत्र और वारिस हैं। वे अपने रोजगार के सिलसिले में अक्सर गांव से बाहर जाते थे और उन्होंने अपने अधिवक्ता को मामले की जिम्मेदारी सौंपी थी। मामले की सुनवाई के दौरान उनके अधिवक्ता का भी निधन हो गया। आगे यह भी कहा गया है कि उनका नाम राजस्व अभिलेखों में दर्ज था, लेकिन जब याचिकाकर्ता ने बाधा उत्पन्न करना शुरू किया, तो उन्होंने राजस्व अभिलेखों की जांच की और आदेश के बारे में पता चला। इसके बाद, पुनर्स्थापन का आवेदन दायर किया गया और आवेदन दायर करने में हुई देरी को क्षमा करने की भी अपील की गई। याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपतियों में केवल तीन आपतियां उठाई गईं: पहली, पुनर्स्थापन का आवेदन अत्यधिक विलंबित है; दूसरी, पुनर्स्थापन आवेदकों द्वारा परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब माफी के लिए कोई आवेदन नहीं दिया गया है; और तीसरी, चूंकि दिनांक 8.06.2017 का आदेश दोनों पक्षों की अनुपस्थिति में पारित किया गया है, जो अभिलेखों से स्पष्ट है, इसलिए न्यायालय को उक्त आदेश को वापस लेने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। याचिकाकर्ता द्वारा दायर आपतियां रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न हैं।

34. प्रतिवादी पक्ष द्वारा पुनर्स्थापन के लिए दायर आवेदन में बताए गए तथ्यों का खंडन नहीं किया गया है और इसलिए मेरी राय में, अवर न्यायालयों ने 8 जून 2017 के एकपक्षीय आदेश को वापस लेने और पुनर्स्थापन आवेदन दाखिल करने में हुई देरी को क्षमा करने में कोई अवैधता नहीं की है।

35. परिणामस्वरूप, रिट याचिका असफल है और खारिज की जाती है। खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 1 ILRA 542

आरंभिक अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता,

माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता,

रिट याचिका संख्या 30440 वर्ष 2024

राजवीर सिंह और अन्य

...याचिकाकर्तागण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

...प्रतिवादीगण

याचिकाकर्ताओं के लिए अधिवक्ता:

अजय मिश्रा, श्री कृष्ण मिश्रा

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, कौशलेन्द्र नाथ सिंह, शिवम यादव

ए. सिविल कानून - भारत का संविधान, 1950 अनुच्छेद 226 - भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 धारा 28ए-प्रतिकर का पुनर्निर्धारण -उच्च न्यायालय के निर्णय पर आधारित आवेदन की पोषणीयता- याचिकाकर्ताओं की भूमि का अधिग्रहण, न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण द्वारा एक अधिसूचना दिनांक 30.04.1976 के अंतर्गत किया गया था- प्रतिकर 15.02.1977 को अधिनिर्णीत किया गया था, जिसे याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों ने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत चुनौती दिए बिना स्वीकार कर लिया था- कुछ अन्य भूस्वामियों, जिनकी भूमि का अधिग्रहण इसी अधिसूचना के अंतर्गत किया गया था, ने अधिनिर्णय को चुनौती दी- धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ को शुरू में खारिज कर दिया गया था, लेकिन बाद में उच्च न्यायालय द्वारा इसे बढ़ा दिया गया, इसके आधार पर, याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत अपने प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया- अभिनिर्धारित हुआ, भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न मांगने वाले भूस्वामी, प्रथम अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आधार पर धारा 28ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन कर सकते हैं, बशर्ते आवेदन निर्धारित तीन महीने की परिसीमा अवधि के भीतर दायर किया गया हो- न्यायालय ने बनवारी बनाम हरियाणा

राज्य औद्योगिक एवं अवसंरचना विकास निगम लिमिटेड मामले पर भरोसा किया, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय सुनाया कि यदि संदर्भ न्यायालय वृद्धि को अस्वीकार करता है लेकिन उच्च न्यायालय अपील पर इसे प्रदान करता है, तो समान स्थिति वाले भूस्वामी धारा 28ए के अंतर्गत पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन कर सकते हैं- अतः, अस्वीकृति आदेश दिनांक 29.07.2022 को रद्द कर दिया गया- कलेक्टर को प्रतिकर का पुनर्निर्धारण प्रथम अपील में अधिनिर्णीत के अनुसार 28.12 रुपये प्रति वर्ग गज पर करना होगा। (प्रस्तर 1 से 23)

बी. धारा 28ए तब भी लागू होती है जब उच्च न्यायालय द्वारा अपील में प्रतिकर में वृद्धि की जाती है, न कि केवल संदर्भ न्यायालय द्वारा- अपील मूल कार्यवाही की निरंतरता है, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिकर में वृद्धि का निर्णय धारा 28ए के अंतर्गत दिए गए अधिनिर्णय के समतुल्य है- प्रतिकर में असमानताओं को दूर करने के लिए इस प्रावधान को प्रभावित भूस्वामियों के पक्ष में पढ़ा जाना चाहिए- जिन भूस्वामियों ने धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ दाखिल करने से चूक की है, वे बाद में उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिकर में वृद्धि किए जाने पर भी समानता का दावा कर सकते हैं। (प्रस्तर 20 से 22)

रिट याचिका स्वीकार की जाती है। (ई-6)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. प्रदीप कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य, प्रथम अपील संख्या 522 वर्ष 2009
2. भारत संघ और अन्य बनाम प्रदीप कुमारी और अन्य (1995) 2 एससीसी 736
3. सत्यपाल सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, रिट सी संख्या 38674 वर्ष 2017
4. जोस एंटोनियो क्रूज़ डोस आर. रोड्रिगेस और अन्य बनाम भूमि अधिग्रहण कलेक्टर और अन्य (1996) 6 एससीसी 746
5. भगती बनाम हरियाणा राज्य (1997) 4 एससीसी 473
6. उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम चित्रसेन भोई (2009) 17 एससीसी 74
7. बाबू राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1995) 2 एससीसी 689
8. भारत संघ बनाम करनैल सिंह (1995) 2 एससीसी 728
9. बनवारी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य औद्योगिक एवं अवसंरचना विकास निगम लिमिटेड और अन्य, एसएलपी संख्या 12221 वर्ष 2022 से उत्पन्न सिविल अपील संख्या 13348 वर्ष 2024
10. रामसिंहभाई (रामसंघभाई) जेरामभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य (2018) 16 एससीसी 445

(माननीय न्यायमूर्ति अनीश कुमार गुप्ता द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री कृष्ण मिश्रा, राज्य प्रतिवादी के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राजीव कुमार गुप्ता और प्रतिवादी संख्या 2-नोएडा की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कौशलेन्द्र नाथ सिंह को सुना।

2. याचिकाकर्ताओं ने आक्षेपित आदेश दिनांक 29.07.2022 से असंतुष्ट होकर यह रिट याचिका दायर की है, जो याचिकाकर्ताओं को दिनांक 05.07.2024 को सेवापित किया गया था, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 (जिसे आगे 'अधिनियम, 1894' कहा गया है) की धारा 28ए के अंतर्गत दायर आवेदन को पोषणीय न मानते हुए खारिज कर दिया गया है, क्योंकि उक्त आवेदन में कलेक्टर द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग की गई है, यह पुनर्निर्धारण उसी अधिसूचना के अंतर्गत आने वाले भूस्वामियों द्वारा दायर प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 (मल्खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) में इस न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 18.04.2022 के आधार पर किया जाना है।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ताओं के पूर्वज गौतम बुद्ध नगर जिले के नया बंस गांव में स्थित खसरा संख्या 51 (0-7-0 हेक्टेयर), खसरा संख्या 52 (1-2-0 हेक्टेयर), खसरा संख्या 53 (0-19-0 हेक्टेयर), खसरा संख्या 54 (1-7-0 हेक्टेयर) और खसरा संख्या 26/1 (0-7-0 हेक्टेयर) की भूमि के स्वामी थे। याचिकाकर्ताओं की उपरोक्त भूमि को अधिनियम, 1894 की धारा 4(1)/17 के अंतर्गत जारी अधिसूचना दिनांक 30.04.1976 के माध्यम से प्रतिवादी संख्या 2 - न्यू ओखला औद्योगिक विकास प्राधिकरण के पक्ष में अधिग्रहित किया गया था। अधिसूचना के बाद 15.02.1977 को प्रतिकर घोषित किया गया और उपरोक्त अधिनिर्णय के अनुसार संपूर्ण प्रतिकर यहाँ पर याचिकाकर्ता संख्या 7 के दादा को और अन्य याचिकाकर्ताओं के पूर्वजों को प्राप्त हुआ। यह स्वीकार किया जाता है कि यहाँ याचिकाकर्ताओं ने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत कोई संदर्भ नहीं दिया था। हालांकि, कुछ अन्य भूस्वामियों, जिनकी भूमि भी उसी अधिसूचना द्वारा अधिग्रहित की गई थी, ने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत न्यायालय में संदर्भ देकर उक्त अधिनिर्णय को चुनौती दी थी, जिसे अपर जिला न्यायाधीश, गाजियाबाद ने निर्णय और डिक्री दिनांक 25.11.1981 द्वारा खारिज कर दिया था। अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ अस्वीकृत किए जाने से व्यथित होकर, उक्त भूस्वामियों ने अधिनियम, 1894 की धारा 54 के अंतर्गत प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 (मल्खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य) दायर की। उक्त प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 का निर्णय इस न्यायालय द्वारा दिनांक 18.04.2022 के आदेश द्वारा प्रथम अपील संख्या 593 वर्ष 1982 में दिनांक 08.07.2019 को पारित निर्णय और आदेश पर आधारित था, जिसके अंतर्गत अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार 28.12 रुपये प्रति वर्ग गज की दर से 30% तोषण और अन्य लाभों के साथ प्रतिकर प्रदान किया गया था।

4. प्रथम अपील में आदेश दिनांक 18.04.2022 के द्वारा दिए गए उपरोक्त अधिनिर्णय के संदर्भ में, याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 23.05.2022 को अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया था। चूंकि प्रतिवादियों द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत उक्त आवेदन पर कोई आदेश

पारित नहीं किया गया था, इसलिए याचिकाकर्ताओं ने रिट याचिका संख्या 21023 वर्ष 2022 दायर की, जिसका निर्णय इस न्यायालय के आदेश दिनांक 09.04.2024 द्वारा किया गया, जिसमें प्रतिवादी को उक्त आवेदन पर शीघ्रता से, अधिमानतः उक्त आदेश की संसूचना के दिनांक से छह सप्ताह के भीतर, निर्णय लेने का निर्देश दिया गया था।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आदेश दिनांक 09.04.2024 को प्रतिवादियों को सूचित करने के बाद, आक्षेपित आदेश दिनांक 29.07.2022 याचिकाकर्ताओं को दिनांक 05.07.2024 को सेवापित की गई थी, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत दायर आवेदन को पोषणीय न मानते हुए खारिज कर दिया गया था, क्योंकि यह प्रथम अपील में पारित निर्णय के आधार पर दायर किया गया था, न कि अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आधार पर। याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि इस मामले में उक्त मलखान द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत दायर संदर्भ, यानी भूमि अधिग्रहण संदर्भ संख्या 95 वर्ष 1977 को द्वितीय अपर जिला न्यायाधीश ने दिनांक 25.11.1981 के निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दिया था। उन्होंने आगे निवेदन किया कि यह अपील मलखान द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत शुरू किए गए वाद या मूल कार्यवाही की निरंतरता में है, इसलिए प्रथम अपील में पारित उक्त आदेश अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अर्थ में याचिकाकर्ताओं द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने के उद्देश्य से अधिनिर्णय बन जाता है। इस प्रकार, आवेदन पोषणीय था और प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश अवैध है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

6. अपने तर्कों के समर्थन में याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **प्रथम अपील संख्या 522 वर्ष 2009 (प्रदीप कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य)** में दिए गए निर्णय दिनांक 21.04.2016 पर भरोसा जताया है, जिसमें इस न्यायालय की खंडपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय में अनिवार्य रूप से प्रथम अपीलीय न्यायालय, अर्थात् उच्च न्यायालय शामिल होगा, क्योंकि अधिनियम, 1894 की धारा 54 के अंतर्गत अपील मूल कार्यवाही की ही निरंतरता है और किसी विशेष अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली भूमि के संबंध में प्रतिकर की दर के निर्धारण के मामले में न्यायालय, जिसमें प्रथम अपीलीय न्यायालय, अर्थात् उच्च न्यायालय भी शामिल है, द्वारा पारित आदेश, समान स्थिति वाले भूमिधारकों के लिए उचित प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए एक प्रासंगिक विचारणीय बिंदु होगा, जिनकी भूमि उसी अधिसूचना के अंतर्गत अधिग्रहित की गई है।

7. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे सर्वोच्च न्यायालय के **भारत संघ और अन्य बनाम प्रदीप कुमारी और अन्य: (1995) 2 एससीसी 736**, के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अधिनियमन के अंतर्निहित उद्देश्यों और कारणों पर विचार करने के बाद स्पष्ट रूप से कहा है कि यह एक लाभकारी प्रावधान है जिसका उद्देश्य उन अव्यवहारिक गरीब लोगों को समान राहत देना है जो अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत लाभ उठाने में

सक्षम नहीं हैं, कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकार, न्यायालय के उस अधिनिर्णय से उत्पन्न होगा जिसके आधार पर कोई व्यक्ति प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग करते हुए आवेदन कर सकता है। अतः, उनका निवेदन है कि चूंकि इस मामले में संदर्भ न्यायालय ने प्रतिकर में वृद्धि करने को अस्वीकार कर दिया है और प्रतिकर में पहली बार वृद्धि उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील में दिनांक 18.04.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से की गई है, इसलिए याचिकाकर्ताओं द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत दायर किया गया आवेदन, जिसमें इस न्यायालय द्वारा प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 में निर्धारित प्रतिकर की मांग की गई है, परिसीमा अवधि के भीतर है और पोषणीय है। अतः, आक्षेपित आदेश दिनांक 29.07.2022 को रद्द किया जाना चाहिए और याचिकाकर्ता 28.12 रुपये प्रति वर्ग गज की दर से प्रतिकर के हकदार हैं, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 में दिनांक 18.04.2022 के निर्णय और आदेश के माध्यम से निर्धारित किया गया है।

8. *इसके विपरीत*, राज्य और विकास प्राधिकरण दोनों के विद्वान अधिवक्ताओं ने प्रस्तुत किया कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के प्रावधानों के अनुसार, समान स्थिति वाले व्यक्ति जिनकी भूमि उसी अधिसूचना द्वारा अधिग्रहित की गई थी, वे अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय द्वारा पारित अधिनिर्णय के साथ समानता का दावा करने के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन कर सकते हैं। यह आवेदन संदर्भ न्यायालय द्वारा ऐसे अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने की अवधि के भीतर किया जाना चाहिए। अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत ऐसा आवेदन उस प्रतिकर का दावा करते हुए दायर नहीं किया जा सकता है जो अधिनियम, 1894 की धारा 54 के अंतर्गत प्रथम अपील या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर अपील में बाद के चरणों में प्रदान किया गया था।

9. इस संबंध में, विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने इस न्यायालय की खंडपीठ के निर्णय दिनांक 21.09.2017 अंतर्गत *रिट याचिका संख्या 38674 वर्ष 2017 (सत्यपाल सिंह और 21 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 3 अन्य)* पर भरोसा किया है, जिसमें स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग करने वाला आवेदन केवल संदर्भ न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध दायर किया जा सकता है, न कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील में या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे की अपील में। राज्य के विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता ने सर्वोच्च न्यायालय के *जोस एंटोनियो क्लूज़ डॉस आर. रोड्रिगेज़ और अन्य बनाम भूमि अधिग्रहण कलेक्टर और अन्य: 1996 (6) एससीसी 746* के निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने की परिसीमा अवधि संदर्भ न्यायालय के उस आदेश के दिनांक से शुरू होगी जिसके आधार पर प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग की गई है। उन्होंने आगे सर्वोच्च न्यायालय के *भगती बनाम हरियाणा राज्य (1997) 4 एससीसी 473 और उड़ीसा राज्य एवं अन्य बनाम चित्रसेन भोई, (2009) 17 एससीसी 74*, के निर्णय पर भी भरोसा किया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि दावे का पुनर्निर्धारण संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर किया जा सकता है, न कि उच्च

न्यायालय के निर्णय के आधार पर। अतः, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में कोई अवैधता नहीं है, इसलिए, आवेदन खारिज किए जाने योग्य है।

10. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिद्वंदी दलीलों को सुनने के बाद हमने मामले के अभिलेख का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया है। मामले में निहित विवाद के निर्धारण के लिए अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के प्रावधानों और उक्त प्रावधानों को शामिल करने के उद्देश्यों और कारणों पर ध्यान देना प्रासंगिक होगा, जो इस प्रकार हैं:

धारा 28ए

“28-ए. न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर की राशि का पुनर्निर्धारण.—(1) जहाँ इस भाग के अंतर्गत किसी अधिनिर्णय में न्यायालय आवेदक को धारा 11 के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा दिए गए प्रतिकर की राशि से अधिक प्रतिकर देता है, तो धारा 4, उपधारा (1) के अंतर्गत उसी अधिसूचना में शामिल अन्य सभी भूमि में हित रखने वाले और कलेक्टर के अधिनिर्णय से व्यथित व्यक्ति, यद्यपि उन्होंने धारा 18 के अंतर्गत कलेक्टर को आवेदन नहीं किया था, न्यायालय के अधिनिर्णय के दिनांक से तीन माह के भीतर कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा यह मांग कर सकते हैं कि उन्हें देय प्रतिकर की राशि न्यायालय द्वारा दिए गए प्रतिकर की राशि के आधार पर पुनर्निर्धारित की जाए:

बशर्ते कि इस उपधारा के अंतर्गत कलेक्टर को आवेदन करने के लिए निर्धारित तीन महीने की अवधि की गणना करते समय, जिस दिन अधिनिर्णय सुनाया गया था और अधिनिर्णय की प्रति प्राप्त करने के लिए आवश्यक समय को शामिल नहीं किया जाएगा।

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत आवेदन प्राप्त होने पर कलेक्टर सभी संबंधित व्यक्तियों को नोटिस देने और उन्हें सुनवाई का उचित अवसर देने के बाद जांच करेगा और आवेदकों को देय प्रतिकर की राशि निर्धारित करते हुए एक अधिनिर्णय देगा।

(3) उपधारा (2) के अंतर्गत अधिनिर्णय स्वीकार न करने वाला कोई भी व्यक्ति कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा यह अनुरोध कर सकता है कि मामले को कलेक्टर द्वारा न्यायालय के निर्धारण के लिए संदर्भित किया जाए और धारा 18 से 28 के प्रावधान, जहां तक संभव हो, ऐसे संदर्भ पर उसी प्रकार लागू होंगे जैसे वे धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ पर लागू होते हैं।

उद्देश्यों और कारणों का विवरण

“(ix) यह विचार करते हुए कि अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत सिविल न्यायालय में मामला भेजने का अधिकार आमतौर पर अशिक्षित और गरीब लोगों द्वारा नहीं उठाया जाता है और आमतौर पर अपेक्षाकृत धनी भूस्वामियों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है, और इससे समान या समान गुणवत्ता वाली भूमि के लिए विभिन्न हितधारकों को प्रतिकर के भुगतान में काफी असमानता उत्पन्न होती है, यह प्रस्ताव किया जाता है कि उन

सभी पीड़ित पक्षों को, जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आती है, प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग करने का अवसर प्रदान किया जाए, एक बार जब उनमें से किसी ने अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय से उच्चतर प्रतिकर के भुगतान के आदेश प्राप्त कर लिए हों।”

11. अतः, उपरोक्त उद्देश्यों, कारणों और अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के प्रावधानों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट है कि उक्त प्रावधान अधिनियम, 1894 में उन निर्धन और गरीब लोगों की सुविधा के लिए शामिल किए गए हैं, जो अन्य धनी भूस्वामियों की तुलना में अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय में अधिनिर्णय को चुनौती नहीं दे सकते थे। इससे समान या समान गुणवत्ता वाली भूमि के लिए विभिन्न पक्षों को प्रतिकर के भुगतान में असमानता उत्पन्न होती है। इसलिए, अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के प्रावधानों को उन सभी पीड़ित पक्षों को अवसर प्रदान करने के लिए शामिल किया गया है जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आती है, ताकि यदि किसी भूस्वामी ने अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय से उच्च प्रतिकर के भुगतान का आदेश प्राप्त कर लिया हो, तो वे प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग कर सकें।

12. उपरोक्त प्रावधान को शामिल करने का उद्देश्य यह है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए का उद्देश्य उन भूस्वामियों को प्रतिकर के आवंटन में मौजूद असमानता को दूर करना है जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना द्वारा अधिग्रहित की गई है। यह असमानता उन दो व्यक्तियों के बीच होती है: एक वे जिन्होंने संदर्भ दाखिल करके प्रतिकर को चुनौती दी थी, और दूसरे वे जो गरीबी या कम जागरूकता के कारण संदर्भ दाखिल नहीं कर सके। अधिनियम, 1894 की धारा 28ए को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने का कारण उस दिनांक से उत्पन्न होगा जब इस भाग के अंतर्गत न्यायालय द्वारा कलेक्टर द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 11 के अंतर्गत दिए गए प्रतिकर से अधिक राशि का आवंटन किया गया हो और पीड़ित व्यक्ति भी अधिनियम, 1894 की धारा 4 उपधारा (1) के अंतर्गत उसी अधिसूचना के दायरे में आते हों और ऐसे व्यक्तियों ने अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ के लिए कोई आवेदन दाखिल न किया हो। ऐसे व्यक्ति न्यायालय द्वारा प्रतिकर के अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने की अवधि के भीतर अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल कर सकते हैं।

13. **बाबू राम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1995) 2 एससीसी 689 और भारत संघ बनाम करनैल सिंह (1995) 2 एससीसी 728** के पूर्व निर्णयों में, सर्वोच्च न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने की परिसीमा अवधि पहले अधिनिर्णय से शुरू होगी, न कि बाद के अधिनिर्णयों के आधार पर। हालांकि, **प्रदीप कुमारी (उपरोक्त)** मामले में सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने इस मत को खारिज कर दिया और स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने की परिसीमा अवधि उस अधिनिर्णय के दिनांक से शुरू होगी जिसके साथ आवेदक समानता का दावा कर रहा है। इस प्रकार, संदर्भ न्यायालय द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत कई अधिनिर्णय दिए जा सकते हैं। अधिनियम की

धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन नवीनतम अधिनिर्णय के आधार पर तीन महीने की अवधि के भीतर या उस अधिनिर्णय से दाखिल किया जा सकता है जिसके साथ आवेदक समानता का दावा कर रहा है। सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा व्यक्त किया गया उपरोक्त दृष्टिकोण आज भी मान्य है और इसे कभी भी रद्द नहीं किया गया है और सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अद्यतन निर्णय 10.12.2024 अंतर्गत **बनवारी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य औद्योगिक एवं अवसंरचना विकास निगम लिमिटेड और अन्य (एसएलपी (सिविल) संख्या 12221 वर्ष 2022 से उत्पन्न सिविल अपील संख्या 13348 वर्ष 2024)** में इसे दोहराया है। अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने का उद्देश्य यह है कि कलेक्टर न्यायालय द्वारा दिए गए उस अधिनिर्णय पर भरोसा करते हुए आवेदन को स्वीकार कर सकते हैं, जिसमें उच्चतर प्रतिकर का निर्धारण किया गया है। इस प्रकार, कलेक्टर को प्रतिकर की पात्रता के बारे में गहन जांच करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उन्हें केवल संदर्भ न्यायालय द्वारा दिए गए उस अधिनिर्णय पर भरोसा करना होगा। यह कानून की स्थापित स्थिति है कि अपील मूल वाद या कार्यवाही की निरंतरता मात्र है, जैसा कि इस न्यायालय की खंडपीठ ने **प्रदीप कुमार (उपरोक्त)** मामले में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय में प्रथम अपीलीय न्यायालय, अर्थात् उच्च न्यायालय, अनिवार्य रूप से शामिल होगा, क्योंकि अधिनियम, 1894 की धारा 54 के अंतर्गत अपील मूल कार्यवाही की निरंतरता मात्र है। **प्रदीप कुमार (उपरोक्त)** मामले में इस न्यायालय की खंडपीठ के संप्रेक्षण इस प्रकार हैं:

“ 35. प्रारंभ में ही यह दर्ज किया जा सकता है कि हम यह नहीं मान रहे हैं कि अधिनियम 1894 की धारा 28ए इस मामले के तथ्यों पर लागू होती है। हम यह दर्ज कर रहे हैं कि अधिनियम 1894 की धारा 28ए को पढ़ने से यह निष्कर्ष निकलता है कि उदाहरणों और अन्य साक्ष्यों के अभाव में भी, किसी भूमिधारक को उच्चतर प्रतिकर केवल इस आधार पर दिया जा सकता है कि 'न्यायालय' ने उन अन्य लोगों के लिए प्रतिकर में वृद्धि की है जिनकी भूमि उसी अधिसूचना के अंतर्गत अधिग्रहित की गई थी।

36. अधिनियम 1894 की धारा 28-ए के अंतर्गत संदर्भित 'न्यायालय' में अनिवार्य रूप से प्रथम अपीलीय न्यायालय, अर्थात् उच्च न्यायालय शामिल होगा, क्योंकि अधिनियम, 1894 की धारा 54 के अंतर्गत अपील केवल मूल कार्यवाही की निरंतरता है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 की धारा 3 (डी) के अंतर्गत 'न्यायालय' को निम्नानुसार परिभाषित किया गया है:-

3(डी) अभिव्यक्ति "न्यायालय" से तात्पर्य मूल क्षेत्राधिकार वाले प्रधान सिविल न्यायालय से है, जब तक कि [उपयुक्त सरकार] ने (जैसा कि उसे इसके द्वारा करने की शक्ति दी गई है) इस अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय के कार्यों को करने के लिए किसी निर्दिष्ट स्थानीय सीमा के भीतर एक विशेष न्यायिक अधिकारी नियुक्त न किया हो;

37. अतः हमारी राय में, निष्कर्ष यह निकलता है कि किसी विशेष अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली भूमि के संबंध में प्रतिकर की दर निर्धारित करने के मामले में प्रथम अपीलीय न्यायालय यानी उच्च

न्यायालय सहित न्यायालयों द्वारा पारित आदेश, समान स्थिति वाले उन भूमिधारकों के लिए उचित और न्यायसंगत प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए एक प्रासंगिक विचारणीय बिंदु होंगे, जिनकी भूमि उसी अधिसूचना या उसके बाद जारी की गई अधिसूचनाओं के अंतर्गत उसी गांव/क्षेत्र के संबंध में अधिग्रहित की गई है।"

14. प्रदीप कुमारी (उपरोक्त) के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारण भी दिया है:

"8. प्रारंभ में ही हम यह कहना चाहेंगे कि पूर्वोक्त उद्देश्यों और कारणों के विवरण को ध्यान में रखते हुए, धारा 28-ए को अधिनियमित करने का मूल उद्देश्य समान या समतुल्य गुणवत्ता वाली भूमि के प्रतिकर के भुगतान में उस असमानता को दूर करना है जो अक्षम और गरीब लोगों द्वारा अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत सिविल न्यायालय में अपील करने के अधिकार का लाभ न उठा पाने के कारण उत्पन्न होती है। इसका उद्देश्य उन सभी पीड़ित पक्षों को अवसर प्रदान करना है जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आती है, ताकि अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत अपील न्यायालय से उच्चतर प्रतिकर के भुगतान का आदेश प्राप्त करने के बाद वे पुनर्निर्धारण की मांग कर सकें। अतः धारा 28-ए एक लाभकारी प्रावधान है जिसका उद्देश्य असमानता को दूर करना और उन अक्षम और गरीब लोगों को राहत देना है जो अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत सिविल न्यायालय में अपील करने के अधिकार का लाभ नहीं उठा पाते हैं। लाभकारी विधान के संबंध में, यह सर्वविदित है कि ऐसे विधान के प्रावधानों की व्याख्या करते समय न्यायालय को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो विधान के लाभ को बढ़ाने की नीति को आगे बढ़ाए, न कि ऐसी व्याख्या जो इसके द्वारा प्रदत्त लाभ को कम करे। अतः, धारा 28-ए के प्रावधानों की व्याख्या उक्त प्रावधान के अंतर्निहित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए की जानी चाहिए।

9. अधिनियम की धारा 28-ए की उपधारा (1) में निहित प्रावधानों का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि भाग 3 के अंतर्गत किसी अधिनिर्णय के बाद, जिसमें न्यायालय आवेदक को कलेक्टर द्वारा धारा 11 के अंतर्गत दिए गए प्रतिकर की राशि से अधिक प्रतिकर प्रदान करता है, उसी अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली अन्य भूमि में हितधारक व्यक्ति को, जो कलेक्टर के निर्णय से व्यथित है, लेकिन जिसने धारा 18 के अंतर्गत कलेक्टर को आवेदन नहीं किया है, न्यायालय द्वारा दिए गए प्रतिकर की राशि के आधार पर उसे देय प्रतिकर की राशि के पुनर्निर्धारण के लिए कलेक्टर के समक्ष आवेदन करने का अधिकार प्राप्त होता है। प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए यह आवेदन न्यायालय के अधिनिर्णय के दिनांक से तीन माह के भीतर किया जाना आवश्यक है। धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकार न्यायालय के उस अधिनिर्णय से उत्पन्न होता है जिसके आधार पर आवेदन करने वाला व्यक्ति प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग कर रहा है। धारा 28-ए की उपधारा (1) में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि यह अधिकार धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए पहले अधिनिर्णय तक ही सीमित है। धारा 28-ए की उपधारा (1) में "इस भाग के अंतर्गत दिए गए अधिनिर्णय में" अभिव्यक्ति का अर्थ "इस भाग के अंतर्गत न्यायालय द्वारा दिए गए पहले अधिनिर्णय में" लगाने से, धारा 28-ए की उपधारा (1) में मौजूद न होने वाला शब्द "पहला" उसमें जोड़ा जा रहा है, जिससे उक्त प्रावधान का दायरा सीमित हो रहा है और इसके द्वारा दिए गए लाभ पर प्रतिबंध लग रहा है।

किसी लाभकारी प्रावधान की व्याख्या करते समय, न्यायिक व्याख्या द्वारा ऐसे शब्दों को जोड़ना अनुमेय नहीं है जो उसमें मौजूद नहीं हैं और इस प्रकार उक्त प्रावधान के दायरे को सीमित करना भी उचित नहीं है। (देखें: जान रंजन सेन गुप्ता बनाम अरुण कुमार बोस [(1975) 2 एससीसी 526, 530])

10. ऐसी स्थिति की कल्पना की जा सकती है जहाँ धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए पहले अधिनिर्णय में प्रतिकर की राशि में वृद्धि बहुत अधिक न हो, क्योंकि मामला दायर करने वाला व्यक्ति अपने दावे के समर्थन में पर्याप्त साक्ष्य पेश नहीं कर सका। वहीं, बाद में न्यायालय द्वारा दिए गए दूसरे मामले में, यदि ऐसे साक्ष्य पेश किए जाते हैं, तो प्रतिकर के रूप में बहुत अधिक राशि दी जाती है। धारा 28-ए के लाभ को केवल धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए पहले अधिनिर्णय तक सीमित रखने से, बाद में दिए गए अधिनिर्णय के आधार पर अधिक प्रतिकर का लाभ धारा 28-ए का सहारा लेने वाले व्यक्तियों को नहीं मिलेगा और उक्त प्रावधान का लाभ केवल धारा 28-ए के लागू होने के बाद दिए गए पहले अधिनिर्णय के अंतर्गत दिए गए कम प्रतिकर के आधार पर प्रतिकर के पुनर्निर्धारण तक ही सीमित रह जाएगा। धारा 28ए के शब्दों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह संकेत मिले कि विधायिका का आशय धारा 28ए के अंतर्गत ऐसा सीमित लाभ प्रदान करना था। इसी प्रकार, ऐसी स्थिति हो सकती है, जैसा कि वर्तमान मामले में है, जहां अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना विभिन्न गांवों में स्थित भूमि को आवृत करती है और धारा 28ए के लागू होने के दिनांक पर विभिन्न गांवों में भूमि रखने वाले व्यक्तियों की ओर से कई मामले न्यायालय में लंबित थे और उन मामलों में न्यायालय द्वारा अलग-अलग दिनांकों पर निर्णय दिए गए हैं। किसी विशेष गांव से संबंधित धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन करने का पात्र व्यक्ति, धारा 28ए के लागू होने के बाद किसी अन्य गांव के व्यक्ति की ओर से न्यायालय द्वारा दिए गए पहले अधिनिर्णय की जानकारी उक्त अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने की अवधि समाप्त होने के बाद प्राप्त कर सकता है, लेकिन उसी गांव के किसी अन्य व्यक्ति की ओर से न्यायालय द्वारा दिए गए बाद के अधिनिर्णय की जानकारी उक्त अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने की अवधि समाप्त होने से पहले प्राप्त कर सकता है। यह स्थिति उन अक्षम और गरीब लोगों के मामलों में अधिक होने की संभावना है, जिनसे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे धारा 28-ए के लागू होने के दिनांक तक न्यायालय में लंबित सभी मामलों का हिसाब रख सकें और धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए पहले अधिनिर्णय के बारे में समय पर जानकारी प्राप्त कर सकें। यदि धारा 28-ए(1) में संदर्भित अधिनिर्णय को धारा 28-ए के लागू होने के बाद दिया गया पहला अधिनिर्णय मान लिया जाए, तो ऐसे व्यक्ति धारा 28-ए द्वारा प्रदत्त लाभ से वंचित हो जाएंगे। इस प्रकार की व्याख्या से प्रतिकर के भुगतान में असमानता बनी रहेगी, जिसे विधायिका ने धारा 28-ए को अधिनियमित करके दूर करना चाहा था। धारा 28-ए के अंतर्निहित उद्देश्य को धारा 28-ए में "अधिनिर्णय" शब्द को उसका स्वाभाविक अर्थ देकर बेहतर ढंग से प्राप्त किया जा सकता है, जिसका अर्थ है धारा 28-ए के लागू होने के बाद अधिनियम के भाग 3 में न्यायालय द्वारा दिया गया अधिनिर्णय। यदि धारा 28-ए(1) में उक्त शब्द की इस प्रकार व्याख्या की जाए, तो कोई व्यक्ति उसे देय प्रतिकर की राशि के पुनर्निर्धारण की मांग कर सकेगा, बशर्ते निम्नलिखित शर्तें पूरी हों:

- (i) धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा भाग 3 के अंतर्गत अधिनिर्णय प्रदान किया गया है;
- (ii) उक्त निर्णय द्वारा धारा 11 के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा दी गई राशि से अधिक प्रतिकर की राशि उस संदर्भ में आवेदक को दी गई है;
- (iii) धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने वाला व्यक्ति धारा 4(1) के अंतर्गत उसी अधिसूचना द्वारा आवृत्त की गई अन्य भूमि में रुचि रखता है जिससे उक्त अधिनिर्णय संबंधित है;
- (iv) आवेदन प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति ने धारा 18 के अंतर्गत कलेक्टर को कोई आवेदन नहीं दिया था;
- (v) प्रतिकर की राशि के पुनर्निर्धारण की मांग करने वाले अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने के भीतर आवेदन प्रस्तुत किया जाता है; और
- (vi) किसी आवेदक द्वारा प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए धारा 28-ए के अंतर्गत केवल एक ही आवेदन किया जा सकता है।

11. चूंकि धारा 28-ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण हेतु आवेदन करने का कारण उस अधिनिर्णय से उत्पन्न होता है जिसके आधार पर प्रतिकर का पुनर्निर्धारण मांगा जाता है, इसलिए यह सिद्धांत कि "एक बार परिसीमा अवधि शुरू हो जाने पर, यह न्यायालय के आदेश द्वारा रोके जाने तक पूरी अवधि तक चलती रहती है" लागू नहीं हो सकता, क्योंकि धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने की परिसीमा अवधि केवल उस अधिनिर्णय के दिनांक से शुरू होगी जिसके आधार पर प्रतिकर का पुनर्निर्धारण मांगा जाता है।

12. अतः, हम बाबू राम [(1995) 2 एससीसी 689 : जेटी (1994) 7 एससी 377] और करनैल सिंह [(1995) 2 एससीसी 728 : (1995) 1 स्केल 21] में व्यक्त किए गए इस मत से सहमत नहीं हैं कि धारा 28-ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन केवल धारा 28-ए के लागू होने के बाद दिए गए पहले अधिनिर्णय के आधार पर ही किया जा सकता है। हमारी राय में, धारा 28-ए के अंतर्गत प्रतिकर की राशि के पुनर्निर्धारण का लाभ धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए किसी भी अधिनिर्णय के आधार पर लिया जा सकता है, बशर्ते कि ऐसा लाभ चाहने वाला आवेदक उस अधिनिर्णय के दिए जाने की निर्धारित तीन महीने की अवधि के भीतर धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करे जिसके आधार पर पुनर्निर्धारण की मांग की जा रही है। अतः, पुनर्विचार याचिकाओं के समर्थन में श्री गोस्वामी द्वारा प्रस्तुत पहला तर्क अस्वीकृत किया जाता है।

15. सत्यपाल सिंह (उपरोक्त) के निर्णय में, इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन, प्रथम अपील में उच्च न्यायालय की या आगे की अपील में सर्वोच्च न्यायालय की डिक्री के आधार पर प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए दायर नहीं किया जा सकता है। यह इस न्यायालय की समन्वय पीठ के प्रदीप कुमार (उपरोक्त) के पूर्व के निर्णयों के विपरीत है और ऐसा मानते हुए, सत्यपाल सिंह (उपरोक्त) में इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने प्रदीप कुमारी (उपरोक्त) के निर्णय

पर विचार नहीं किया है। **सत्यपाल सिंह (उपरोक्त)** में इस न्यायालय की समन्वय पीठ के प्रासंगिक संप्रेक्षण इस प्रकार हैं:

"दूसरा मुद्दा: क्या अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय द्वारा दिए गए अधिनिर्णय या अधिनियम की धारा 54 के अंतर्गत उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय की डिक्री के आधार पर प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग करते हुए आवेदन दायर किया जा सकता है।"

अधिनियम की धारा 28-ए में यह प्रावधान है कि यदि भाग-3 (जिसमें अधिनियम की धारा 18 से 28-ए शामिल हैं) के अंतर्गत किसी अधिनिर्णय में न्यायालय द्वारा आवेदक को कलेक्टर द्वारा धारा 11 के अंतर्गत दिए गए प्रतिकर की राशि से अधिक प्रतिकर दिया जाता है, तो अधिनियम की धारा 4(1) के अंतर्गत उसी अधिसूचना में शामिल सभी भूमि के हितधारक और कलेक्टर के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्ति न्यायालय के अधिनिर्णय के दिनांक से तीन माह के भीतर कलेक्टर को लिखित आवेदन द्वारा यह मांग कर सकते हैं कि उन्हें देय प्रतिकर की राशि न्यायालय द्वारा दिए गए प्रतिकर की राशि के आधार पर पुनर्निर्धारित की जाए। अधिनियम की धारा 3(d) में 'न्यायालय' को मूल क्षेत्राधिकार वाले प्रधान सिविल न्यायालय के रूप में परिभाषित किया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 28-ए(1) के अंतर्गत संदर्भित अधिनिर्णय केवल संदर्भ न्यायालय द्वारा दिया गया अधिनिर्णय है। यह बात इसलिए भी स्पष्ट है क्योंकि अधिनियम की धारा 28-ए की शुरुआत "जहां इस भाग में दिए गए किसी अधिनिर्णय में न्यायालय आवेदक को अनुमति देता है" से होती है और "न्यायालय द्वारा दिए गए प्रतिकर की राशि के आधार पर पुनर्निर्धारण किया जा सकता है" के साथ अंत होता है।

अतः अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन अधिनियम के भाग 8 में निहित अधिनियम की धारा 54 के अंतर्गत दायर प्रथम अपील में उच्च न्यायालय की या आगे की अपील में सर्वोच्च न्यायालय की डिक्री के आधार पर दायर नहीं किया जा सकता है।

बाबू राम मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यही अभिनिर्धारण दिया गया है और उसके संप्रेक्षण इस प्रकार हैं:

" 19. अगला प्रश्न यह है कि धारा 28-ए के अंतर्गत तीन महीने की परिसीमा अवधि कब से शुरू होती है और क्या एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आने वाली भूमि के संबंध में अलग-अलग समय पर सिविल न्यायालयों द्वारा दिए गए क्रमिक अधिनिर्णय धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने के लिए अलग-अलग कारण प्रदान करते हैं। आइए अधिनियम के भाग 3, धारा 28-ए(1) में संदर्भित "इस भाग के अंतर्गत अधिनिर्णय" शब्दों के अर्थ पर विचार करें। उस भाग का शीर्षक न्यायालय और उसकी प्रक्रिया के संदर्भ से शुरू होता है। "न्यायालय" का अर्थ मूल क्षेत्राधिकार वाला प्रधान सिविल न्यायालय या अधिनियम के अंतर्गत न्यायालय के कार्यों को करने के लिए नियुक्त विशेष न्यायिक अधिकारी है, जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। धारा 18 के अंतर्गत

संदर्भित किसी मामले में प्रतिकर का निर्धारण करते समय किन बातों पर विचार किया जाना चाहिए, इसका विवरण धारा 23 में दिया गया है, जबकि ऐसे प्रतिकर का निर्धारण करते समय किन बातों को उपेक्षित किया जाना चाहिए, इसका संकेत धारा 24 में दिया गया है। धारा 26 की उपधारा (2) के संचलन से, प्रतिकर की राशि निर्धारित करने वाला अधिनिर्णय एक डिक्री माना जाएगा, जबकि ऐसे प्रत्येक अधिनिर्णय के आधारों का विवरण सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रयोजन के लिए, एक निर्णय माना जाएगा। भाग 3 के उपरोक्त परिप्रेक्ष्यों से यह स्पष्ट होता है कि न्यायालय का अधिनिर्णय उस भाग में मूल क्षेत्राधिकार वाले सिविल न्यायालय का निर्णय है। यह धारा 54 के अंतर्गत अपील के प्रयोजन के लिए एक डिक्री है, जो अधिनियम के भाग 8 (विविध) में आती है। धारा 2(2) सी.पी.सी. में परिभाषित डिक्री उच्च न्यायालय की डिक्री है, जिसकी अपील अनुच्छेद 132, 133 और 136 के साथ आदेश 45 सी.पी.सी. के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकती है। अतः, धारा 28-ए की उपधारा (1) में संदर्भ न्यायालय का अधिनिर्णय केवल मूल क्षेत्राधिकार वाले सिविल न्यायालय या अधिनियम के अंतर्गत ऐसे न्यायालय के कार्यों का निष्पादन करने वाले न्यायिक अधिकारी द्वारा धारा 18 के अंतर्गत प्राप्त संदर्भ पर दिया गया और अधिनियम की धारा 26 के अंतर्गत सुनाया गया अधिनिर्णय और डिक्री है। चूंकि, धारा 54 के अंतर्गत उच्च न्यायालय या इस न्यायालय का निर्णय और डिक्री अधिनियम के भाग 3 में नहीं आते हैं, इसलिए वे धारा 28-ए की उपधारा (1) के अंतर्गत परिकल्पित अधिनिर्णय से बाहर रखे गए हैं। अतः पीड़ित हितधारक को धारा 28-ए के अंतर्गत अपनी अधिग्रहीत भूमि के प्रतिकर के पुनर्निर्धारण हेतु आवेदन करने का अधिकार और उपचार केवल सिविल न्यायालय या न्यायिक अधिकारी के उस अधिनिर्णय के आधार पर ही प्राप्त है जो धारा 26 के अंतर्गत दिया गया निर्णय एवं आदेश है, जब ऐसा अधिनिर्णय कलेक्टर द्वारा धारा 11 के अंतर्गत दिए गए प्रतिकर की राशि से अधिक प्रतिकर प्रदान करता है। जब पीड़ित व्यक्ति द्वारा ऐसा आवेदन लिखित में किया जाता है, भले ही उसने धारा 31 के अंतर्गत बिना विरोध के प्रतिकर प्राप्त किया हो और धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ के अधिकार एवं उपचार का लाभ न उठाया हो, तो धारा 28-ए(1) के अंतर्गत प्रतिकर का पुनर्निर्धारण करना आवश्यक है।

(जोर दिया गया)

यह बताना आवश्यक है कि प्रदीप कुमारी मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने बाबू राम मामले में लिए गए इस दृष्टिकोण से असहमति जताई कि अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने की परिसीमा अवधि अधिनियम की धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए सबसे पहले के अधिनिर्णय तक सीमित नहीं है।

इस अधिनियम की धारा 28-ए(1) में संदर्भित अधिनिर्णय को संदर्भ न्यायालय का अधिनिर्णय माना जाता है, इस विचार को सर्वोच्च न्यायालय ने भगती मामले में दोहराया और निम्नलिखित संप्रेक्षण किया:

6. इसी प्रकार, पुनर्निर्धारण का अधिकार और उपचार केवल तभी उपलब्ध होगा जब धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय ने धारा 26 के अंतर्गत किसी अधिनिर्णय और डिक्री में प्रतिकर में वृद्धि की हो। संदर्भ न्यायालय के दिनांक से तीन महीने के भीतर, परंतु के अंतर्गत लिए गए समय को छोड़कर, जिस आवेदक की भूमि उसी अधिसूचना के अंतर्गत अधिग्रहित की गई थी, लेकिन जो धारा 18 के अंतर्गत उपचार का लाभ

उठाने में विफल रहा, वह धारा 28ए के अंतर्गत अधिकार और उपचार का लाभ उठाने का हकदार होगा। उच्च न्यायालय का आदेश और निर्णय ऐसा अधिकार नहीं देता है। इस प्रकार, इस न्यायालय ने अवधारित किया कि धारा 28ए उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए दिए गए आदेश पर लागू नहीं होती है। अतः, हम मानते हैं कि संविधान पीठ को संदर्भित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। उच्च न्यायालय के निर्णय के बाद दावेदार धारा 28ए(1) के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन करने के हकदार नहीं हैं; न ही दावेदार उस अधिनिर्णय का लाभ उठाने के हकदार हैं जो दावेदारों के लिए अधिक लाभकारी है, अर्थात् उच्च न्यायालय का निर्णय।“

(जोर दिया गया)

अतः, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 28-ए(1) में उल्लिखित अधिनिर्णय संदर्भ न्यायालय का अधिनिर्णय है, न कि प्रथम अपील में उच्च न्यायालय की डिक्री या आगे की अपील में सर्वोच्च न्यायालय की डिक्री। यह भी स्पष्ट है कि संदर्भ न्यायालय का अधिनिर्णय कोई भी अधिनिर्णय हो सकता है, और यह आवश्यक नहीं कि वह प्रथम अधिनिर्णय ही हो।

तीसरा मुद्दा: क्या अधिनियम की धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने की परिसीमा अवधि संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने है?

दूसरे मुद्दे की जांच करते हुए, न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अधिनियम की धारा 28-ए(1) के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग करते हुए आवेदन केवल संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध ही दायर किया जा सकता है, न कि प्रथम अपील में उच्च न्यायालय की डिक्री या आगे की अपील में सर्वोच्च न्यायालय की डिक्री के विरुद्ध। अतः, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 28-ए(1) के अंतर्गत आवेदन दाखिल करने की समयावधि संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के दिनांक से गिनी जानी चाहिए, न कि प्रथम अपील में उच्च न्यायालय की डिक्री के दिनांक से या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे की अपील की डिक्री के दिनांक से की जानी चाहिए।“

16. उच्च न्यायालय द्वारा प्रथम अपील या सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आगे की अपील में पारित अधिनिर्णय के विरुद्ध अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन विचारणीय नहीं है, यह निष्कर्ष निकालते हुए खंडपीठ ने **भगती (उपरोक्त)** मामले पर भरोसा जताया है, जिसका अनुसरण **उड़ीसा राज्य और अन्य बनाम चित्रसेन भोई** के एक बाद के निर्णय में किया गया है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार संप्रेक्षकों को किया था:

"11. **भगती बनाम हरियाणा राज्य** [(1997) 4 एससीसी 473] मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के आधार पर प्रतिकर का पुनर्निर्धारण मांग सकता है, न कि उच्च न्यायालय के निर्णय के आधार पर, और आगे यह भी माना कि केवल वे दावेदार जिन्होंने अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ के लिए आवेदन करने में विफल रहे थे, उन्हें अधिनियम की धारा 28-ए(1) के

अंतर्गत पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन करने का अधिकार प्राप्त है। इसी दृष्टिकोण को भारत संघ बनाम बंत राम [(1996) 4 एससीसी 537] में भी दोहराया गया है।"

17. **रामसिंहभाई (रामसंघभाई) जेरामभाई बनाम गुजरात राज्य और अन्य: (2018) 16 एससीसी 445** में, सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन केवल अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय के किसी भी निर्णय के दिनांक से तीन महीने के भीतर दायर किया जा सकता है, जो उसी अधिग्रहण से उत्पन्न होता है, लेकिन उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के दिनांक से नहीं।

18. **रिट संख्या 31447 वर्ष 1992, 31448 वर्ष 1992, 31449 वर्ष 1992 और 31450 वर्ष 1992** में, जहां अधिनिर्णय दिए जाने और अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दायर किए गए के बाद और अधिनिर्णय के विरुद्ध अपील पहले ही दायर किए जाने के बावजूद स्वीकार कर लिए गए, इस न्यायालय ने 27.03.2003 के एक सामान्य निर्णय और आदेश के माध्यम से यह संप्रेक्षित किया था कि एक बार संदर्भ न्यायालय के अधिनिर्णय के विरुद्ध प्रथम अपील दायर हो जाने के बाद, अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत दायर आवेदन को अपील के निपटारे तक लंबित रखा जाना चाहिए था और उक्त आवेदन को प्रथम अपील के अंतिम परिणाम के आधार पर स्वीकार किया जा सकता था।

19. हाल ही में **बनवारी (उपरोक्त)** मामले में दिए गए निर्णय में, जहां समान तथ्य मौजूद थे, धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ खारिज कर दिया गया था, जिसके विरुद्ध भूस्वामियों ने नियमित प्रथम अपील दायर की थी, जिसे स्वीकार कर लिया गया था और पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिकर की राशि बढ़ा दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा बढ़ाई गई राशि के बराबर प्रतिकर की मांग करते हुए, भूस्वामियों ने अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया, जिसे कलेक्टर ने स्वीकार कर लिया, जिसके विरुद्ध रिट याचिका दायर की गई, जिसे उच्च न्यायालय ने **रामसिंहभाई (रामसंघभाई) जेरामभाई (उपरोक्त)** के निर्णय पर भरोसा करते हुए स्वीकार कर लिया, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन केवल अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय के किसी भी निर्णय के तीन महीने के भीतर दायर किया जा सकता है, जो उसी अधिग्रहण से उत्पन्न होता है, न कि उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के उस निर्णय से जिसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर की गई थी, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने अपील को स्वीकार कर लिया और उच्च न्यायालय के निर्णय को रद्द कर दिया यह अभिनिर्धारित करते हुए कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए एक लाभकारी कानून है जिसे व्यक्त करने में असमर्थ और गरीब लोगों को राहत देने के उद्देश्य से बनाया गया है, इसलिए व्याख्या का वह सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए जो लाभ को बढ़ाने के लिए कानून की नीति को आगे बढ़ाता है, न कि ऐसा अर्थ जो इसके द्वारा दिए गए लाभ को कम करता है। ऐसा मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने **प्रदीप कुमारी (उपरोक्त)** के पूर्ण पीठ के निर्णय पर भरोसा किया है और निम्नानुसार संप्रेक्षण किया है:

“11. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि इस न्यायालय ने यह माना है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के अधिनियमन का अंतर्निहित उद्देश्य समान या समान गुणवत्ता वाली भूमि के लिए प्रतिकर के भुगतान में असमानता को दूर करना है, जो कि अव्यवहारिक और गरीब लोगों द्वारा अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत सिविल न्यायालय में संदर्भ के अधिकार का लाभ न उठा पाने के कारण उत्पन्न होती है। यह माना गया कि इसका उद्देश्य उन सभी पीड़ित पक्षों को अवसर प्रदान करके इसे प्राप्त करना है जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आती है, ताकि उनमें से किसी को भी अधिनियम, 1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय से उच्चतर प्रतिकर के भुगतान के आदेश प्राप्त होने के बाद पुनर्निर्धारण की मांग की जा सके। यह माना गया कि ऐसे विधान के प्रावधानों की व्याख्या करते समय, न्यायालय को ऐसी व्याख्या अपनानी चाहिए जो लाभ को बढ़ाने के लिए विधान की नीति को आगे बढ़ाए, न कि ऐसी व्याख्या जो इसके द्वारा प्रदत्त लाभ को कम करने का प्रभाव डाले।

12. इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के अंतर्गत, धारा 4 की उपधारा (1) के अंतर्गत उसी अधिसूचना में शामिल अन्य भूमि में रुचि रखने वाले व्यक्ति को वह अधिकार प्राप्त होता है, जहां न्यायालय उक्त अधिसूचना में शामिल समान परिस्थितियों वाले व्यक्तियों को अधिक प्रतिकर देता है। यह माना गया है कि प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए आवेदन न्यायालय द्वारा दिए गए अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने के भीतर किया जाना आवश्यक है। यह माना गया है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकार न्यायालय के उस अधिनिर्णय से उत्पन्न होता है जिसके आधार पर आवेदन करने वाला व्यक्ति प्रतिकर के पुनर्निर्धारण की मांग कर रहा है। न्यायालय ने आगे यह भी माना है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए की उपधारा (1) में ऐसा कुछ भी नहीं है जो यह इंगित करता हो कि यह अधिकार अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा दिए गए सबसे पहले अधिनिर्णय तक ही सीमित है। इस न्यायालय ने माना कि यदि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए को इस प्रकार पढ़ा जाए, तो यह लाभकारी प्रावधान की व्याख्या के सिद्धांतों के विपरीत होगा। आगे यह भी माना गया कि न्यायिक व्याख्या द्वारा न्यायालय उन शब्दों को नहीं पढ़ सकता जो वहां मौजूद नहीं हैं और इस प्रकार किसी प्रावधान के दायरे को सीमित नहीं कर सकता।

13. उक्त मामले के प्रस्तर 10 में, इस न्यायालय ने उन विभिन्न संभावित परिणामों का उल्लेख किया था जो अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए की ऐसी प्रतिबंधात्मक व्याख्या किए जाने पर उत्पन्न हो सकते हैं। न्यायालय ने संप्रेक्षित किया कि इसे अक्षम और गरीब लोगों के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। न्यायालय ने माना कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के अंतर्निहित उद्देश्य को धारा 28-ए में "अधिनिर्णय" शब्द को उसके स्वाभाविक अर्थ में, यानी धारा 28-ए के लागू होने के बाद अधिनियम, 1894 के भाग 3 में न्यायालय द्वारा दिए गए अधिनिर्णय के रूप में, बेहतर ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

14. इस न्यायालय ने अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए(1) के प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक शर्तों को इस प्रकार निर्धारित किया है:

- (i) धारा 28-ए के लागू होने के बाद न्यायालय द्वारा अधिनियम के भाग 3 के अंतर्गत अधिनिर्णय प्रदान किया गया है;
- (ii) उक्त अधिनिर्णय के द्वारा, धारा 11 के अंतर्गत कलेक्टर द्वारा प्रदान की गई राशि से अधिक प्रतिकर की राशि उस संदर्भ में आवेदक को दी गई है;
- (iii) धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति धारा 4(1) के अंतर्गत उसी अधिसूचना द्वारा आच्छादित की गई अन्य भूमि में हित रखता है जिससे उक्त अधिनिर्णय संबंधित है;
- (iv) आवेदन प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति ने धारा 18 के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत नहीं किया;
- (v) प्रतिकर की राशि के पुनर्निर्धारण की मांग करने वाले अधिनिर्णय के दिनांक से तीन महीने के भीतर आवेदन प्रस्तुत किया जाता है; और
- (vi) धारा 28-ए के अंतर्गत आवेदक द्वारा प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए केवल एक ही ऐसा आवेदन दायर किया जा सकता है।

24. जैसा कि ऊपर चर्चा की जा चुकी है, अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए(1) के प्रावधानों पर इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने प्रदीप कुमारी और अन्य (उपरोक्त) मामले में विस्तार से विचार किया है। उक्त मामले में यह माना गया है कि धारा 28-ए के उद्देश्यों और कारणों के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उक्त प्रावधान को अधिनियमित करने का अंतर्निहित उद्देश्य समान या समान गुणवत्ता वाली भूमि के लिए प्रतिकर के भुगतान में असमानता को दूर करना है। यह माना गया है कि उक्त प्रावधान उन अक्षम और गरीब लोगों को लाभ देने के लिए है जो अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत सिविल न्यायालय में अपील करने के अधिकार का लाभ नहीं उठा सकते। यह माना गया है कि इसका उद्देश्य उन सभी पीड़ित पक्षों को अवसर प्रदान करना है जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना के अंतर्गत आती है, ताकि अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत अपील न्यायालय से उच्चतर प्रतिकर के भुगतान का आदेश प्राप्त करने के बाद वे पुनर्निर्धारण की मांग कर सकें। यही लाभ धारा 28-ए के अंतर्गत अन्य भूमिधारकों को भी उपलब्ध होगा। यह माना गया है कि धारा 28-ए एक लाभकारी कानून है जिसे अक्षम और गरीब लोगों को राहत देने के उद्देश्य से बनाया गया है, इसलिए व्याख्या का वह सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए जो लाभ को बढ़ाने के लिए कानून की नीति को आगे बढ़ाता है, न कि ऐसी व्याख्या जो इसके द्वारा प्रदत्त लाभ को कम करने का प्रभाव रखती है।

25. अतः हम अपील को स्वीकार करने के पक्ष में हैं। उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांक 25 नवंबर 2021 रद्द किया जाता है और खंडित किया जाता है तथा भूमि अधिग्रहण वाद के आदेश दिनांक 15 सितंबर 2020 को स्थिर रखा जाता है।”

20. अतः, हमारा यह मत है कि अधिनियम, 1894 की धारा 28-ए के प्रावधान लाभकारी हैं और इन्हें उन व्यक्तियों को प्रतिकर के वितरण में असमानता को दूर करने के लिए शामिल किया गया है जिनकी भूमि एक ही अधिसूचना द्वारा अधिग्रहित की गई है। यदि संदर्भ न्यायालय,

अधिनियम,1894 की धारा 18 के अंतर्गत प्रतिकर में वृद्धि करने को अस्वीकार कर देता है और अधिनियम,1894 की धारा 54 के अंतर्गत दायर अपील पर उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिकर में वृद्धि की जाती है, तो अन्य समान रूप से स्थित व्यक्तियों को अपील में पारित आदेश के दिनांक से तीन महीने की परिसीमा अवधि के भीतर अधिनियम,1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन करने का अधिकार होगा। कोई अन्य दृष्टिकोण, अधिनियम,1894 की धारा 28ए के अधिनियमन को निष्फल कर देगा।

21. **चित्रसेन भोई (उपरोक्त), सत्यपाल सिंह (उपरोक्त), रामसिंहभाई (रामसंघभाई) जेरामभाई (उपरोक्त)** में व्यक्त किए गए विचार इस मामले में लागू नहीं होते, क्योंकि वे निर्णय, अधिनियम,1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ न्यायालय द्वारा अनुमानित वृद्धि पर आधारित हैं। हालांकि, इस मामले में संदर्भ न्यायालय द्वारा कोई वृद्धि नहीं की गई थी और प्रतिकर में वृद्धि पहली बार इस न्यायालय द्वारा प्रथम अपील में की गई थी। इसलिए, उपरोक्त निर्णय इस मामले में लागू नहीं होगा और यदि उपरोक्त निर्णय में व्यक्त किए गए दृष्टिकोण को लागू किया जाता है, तो यह अधिनियम,1894 की धारा 28ए के मूल उद्देश्य को ही विफल कर देगा।

22. इस मामले में, याचिकाकर्ताओं ने प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय और आदेश के आधार पर प्रतिकर की समानता और पुनर्निर्धारण की मांग करते हुए अधिनियम,1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दायर किया था। निःसंदेह, याचिकाकर्ताओं ने उपरोक्त अपील आदेश के दिनांक से तीन महीने की परिसीमा अवधि के भीतर अधिनियम,1894 की धारा 28ए के अंतर्गत आवेदन दायर किया था। इसलिए, आवेदन पोषणीय था और कलेक्टर द्वारा आक्षेपित आदेश द्वारा आवेदन को अस्वीकार करना अनुचित है। यह मामला **बनवारी (उपरोक्त)** के निर्णय से पूरी तरह से मेल खाता है, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने समान तथ्यों के आधार पर भूस्वामियों की अपील स्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि अधिनियम,1894 की धारा 18 के अंतर्गत संदर्भ को खारिज करने के बाद उच्च न्यायालय द्वारा वृद्धि किए जाने के बाद, वे भूस्वामी जो संदर्भ या प्रथम अपील में पक्षकार नहीं थे, अधिनियम,1894 की धारा 28ए के अंतर्गत समानता का दावा कर सकते हैं। इसलिए, आक्षेपित आदेश दिनांक 29.07.2022, जो कथित तौर पर याचिकाकर्ता को 05.07.2024 को दिया गया था, को **रद्द किया जाता है** और प्रतिवादी संख्या 3 - अपर जिला मजिस्ट्रेट (भूमि अधिग्रहण), नोएडा जिला गौतमबुद्ध नगर, को अधिनियम,1894 की धारा 28ए के अंतर्गत प्रतिकर के पुनर्निर्धारण के लिए याचिकाकर्ताओं के आवेदन पर विचार करने और इसे पोषणीय मानते हुए एक नया आदेश पारित करने तथा इस न्यायालय द्वारा प्रथम अपील संख्या 458 वर्ष 1982 में पारित आदेश दिनांक 18.04.2022 के अनुसार प्रतिकर का निर्धारण करने का निर्देश दिया जाता है।

23. उपरोक्त संप्रेक्षणों के साथ, यह याचिका **स्वीकार की जाती है।**

(2025) 1 ILRA 557

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चंद्र दीक्षित

रिट सी संख्या- 35310 वर्ष 2024

के साथ

रिट-सी संख्या- 32047 वर्ष 2024

वी-मार्क इंडिया लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता की ओर अधिवक्ता:

प्रतिपक्षीगण की ओर से अधिवक्ता:

क. सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-वी-मार्क इंडिया लिमिटेड ने विद्युत वितरण निगम लिमिटेड के अधीक्षण अभियंता (सामग्री प्रबंधन-I) द्वारा जारी दिनांक 10.10.2024 के एक आदेश को चुनौती दी गई, जिसमें कंपनी को काली सूची में डाल दिया गया और अनुबंध समाप्ति सहित अन्य दंड लगाया गया- तीन सदस्यीय समिति की सूचना की प्रति प्रदान किए बिना आदेश पारित किया गया, जो निर्णय का आधार बनी- निर्णय दिया गया, तीन सदस्यीय समिति की सूचना याचिकाकर्ता को प्रदान की जानी चाहिए थी, और काली सूची में डालने का आदेश जारी करने से पहले जवाब देने का अवसर दिया जाना चाहिए था- ऐसा न करने पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ- काली सूची में डालना एक कठोर और सख्त दंड है जिसे केवल असाधारण प्रकरणों में ही लगाया जाना चाहिए, अधिकारियों को बाहरी कारणों से इसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिए- इसलिए, दिनांक 10.10.2024 के आदेश को रद्द कर दिया गया प्राधिकरण को दो महीने के भीतर नये शिरे से सुनवाई करनी होगी और एक तर्कसंगत आदेश पारित करना होगा तब तक, याचिकाकर्ता को कालीसूचा में नहीं माना जायेगा और वह शासकीय निविदाओं में भाग ले सकता है

रिट याचिकाओं का निस्तारण कर दिया गया है। (ई-6)

(माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ)

और

माननीय न्यायमूर्ति विपिन चन्द्र दीक्षित द्वारा पारित)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनूप त्रिवेदी और श्री साकेत सिंह को, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री मृणाल भारती, श्री रविकांत शर्मा, श्री मनीष शेखरी, सुश्री अनीशा महाजन और श्री कृष्ण गोपाल ने की, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता और विद्युत वितरण निगम लिमिटेड की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री कार्तिकेय सरन को सुना।

2. ये भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिकाएं हैं, जिसमें रिट याचिकाकर्ता प्रतिपक्षी संख्या 4/अधीक्षण अभियंता (सामग्री प्रबंधन-I), विद्युत वितरण निगम लिमिटेड, ऊर्जा, विक्टोरिया पार्क, मेरठ द्वारा पारित 10 अक्टूबर, 2024 के आदेश से व्यथित है।

3. दोनों पक्षों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने के बाद, हम पाते हैं कि तीन सदस्यीय समिति ने याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद, संबंधित प्राधिकारी को एक अनुशंसा दी, जिसके आधार पर यह आदेश पारित किया गया। संबंधित प्राधिकारी ने तीन सदस्यीय समिति की सूचना की प्रति उपलब्ध कराए बिना ही काली सूची में डालने और अनुबंध समाप्ति सहित अन्य दंड लगाने का अंतिम आदेश पारित कर दिया।

4. हमारा मानना है कि तीन सदस्यीय समिति की सूचना याचिकाकर्ता को उपलब्ध कराई जानी चाहिए थी और तीन सदस्यीय समिति की सूचना से रुबरू होने के बाद याचिकाकर्ता को सुनवाई का एक और अवसर दिया जाना चाहिए था। ऐसा न किए जाने पर, हमारा मानना है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है।

5. इसके आलोक में, प्रकरण के गुण-दोष पर विचार किए बिना, हम 10 अक्टूबर, 2024 के आक्षेपित आदेश को निरस्त करते हैं और संबंधित प्राधिकारी को निर्देश देते हैं कि वह याचिकाकर्ता को सुनवाई का अवसर प्रदान करे और उसके बाद एक तर्कसंगत आदेश पारित करे। पूरी प्रक्रिया इस तिथि से दो महीने की अवधि के भीतर पूरी की जानी चाहिए। हम स्पष्ट करते हैं कि याचिकाकर्ता को कोई स्थगन नहीं दिया जाएगा।

6. इस बीच, चूंकि आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया गया है, इसलिए याचिकाकर्ता को काली सूची में नहीं माना जाएगा और वह विधि के अनुसार शासकीय निविदा में भाग ले सकता है।

7. इसमें एक चेतावनी भी दी जानी आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय और इस न्यायालय के निर्णयों में यह प्रावधान है कि किसी व्यक्ति को काली सूची में डालने की सज़ा केवल दुर्लभ प्रकरणों में ही दी जानी चाहिए, क्योंकि यह अत्यंत कठोर और कठोर है जो किसी व्यक्ति को उसके व्यवसाय करने के अधिकार से वंचित कर

देती है। कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकारी बाहरी कारणों से काली सूची में डालने के उपकरण का उपयोग एक तंत्र के रूप में कर रहे हैं। इस न्यायालय द्वारा ऐसी प्रथाओं की निंदा की जाती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि काली सूची में डालने की अवधि उस व्यक्ति द्वारा की गई गलती के अनुपात में होनी चाहिए जिस पर काली सूची में डाला जा रहा है।

8. उपर्युक्त प्रस्तर में की गई टिप्पणियाँ केवल आज्ञापत्र की प्रकृति की हैं तथा इन्हें काली सूची में डालने का आदेश पारित करने से पहले प्राधिकारियों के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करना चाहिए।

9. उपर्युक्त टिप्पणियों और निर्देशों के साथ, दोनों रिट याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है।

10. चूंकि हमने प्रकरण के गुण-दोष पर विचार नहीं किया है, इसलिए सभी मुद्दे संबंधित प्राधिकारी के समक्ष खुले रहेंगे।

(2025) 1 ILRA 558

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

रिट सी संख्या 38488 वर्ष 2024

के साथ

रिट-सी संख्या 38495 वर्ष 2024 और 38521 वर्ष 2024

श्रीमती मंजू राकेश

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

रवि कांत, वत्सला

प्रतिपक्षीगण के अधिवक्ता:

अंकित प्रकाश, अशोक कुमार श्रीवास्तव, मुख्य स्थायी अधिवक्ता, मोहम्मद अफजल

क. सिविल विधि- भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 226-याचिकाकर्ता, जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड की नाइट्स न्यायालय परियोजना में घर खरीदने वालों ने अपने फ्लैटों के कब्जे में देरी के कारण याचिकाएं दायर कीं उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण ने पहले बिल्डर को निर्देश दिया था कि वह या तो 45 दिनों के भीतर कब्जा सौंप दे या ब्याज सहित राशि वापस करे अनुपालन न होने पर, वसूली प्रमाण पत्र जारी किए गए इसके बाद बिल्डर ने दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता (आईबीसी) के तहत दिवालियापन की कार्यवाही शुरू की और एक समाधान पेशेवर (आरपी) नियुक्त किया गया-याचिकाकर्तागण, जो अब कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया (सीआईआरपी) में लेनदार हैं, ने लेनदारों की समिति (सीओसी) द्वारा लिए गए निर्णयों को चुनौती दी और तर्क दिया कि कब्जे के उनके दावों पर उचित रूप से विचार नहीं किया गया-माना गया कि उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के आदेश वैध थे और याचिकाकर्ता ने पहले एक पुनर्वास योजना पर सहमति दी थी-अनुच्छेद 226 के तहत दिवालियापन की कार्यवाही में हस्तक्षेप उचित नहीं था क्योंकि समाधान योजना अभी भी विचाराधीन थी-याचिकाकर्तागण को सीआईआरपी ढांचे के भीतर राहत मांगनी चाहिए। (प्रस्तर 1 से 19)

रिट याचिकाओं का निस्तारण। (ई-6)

उद्धृत प्रकरणों की सूची:

1. मोहम्मद एंटरप्राइजेज (तंजानिया) लिमिटेड बनाम फारूक अली खान एवं अन्य (2025) एससीसी ऑनलाइन एससी 23
2. केएसके महानदी पावर कंपनी लिमिटेड के लेनदारों की समिति बनाम यूपीपीसीएल एवं अन्य (2024) एससीसी ऑनलाइन एससी4013

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ वर्मा

और

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण की विद्वान अधिवक्ता सुश्री वत्सला, प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित प्रकाश, प्रतिपक्षी संख्या 3 के विद्वान अधिवक्ता श्री रोहन गुप्ता और राज्य के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता इस बात पर सहमत हुए हैं कि सभी रिट याचिकाएं समान तथ्यों पर आधारित हैं तथा समान राहत की मांग की गई है, तथा उन पर एक साथ सुनवाई तथा निर्णय किया जा सकता है।

3. याचिकाकर्तागण/घर खरीदारों का दावा है कि उन्हें बिल्डर-प्रतिपक्षी संख्या 3/जयप्रकाश एसोसिएट्स लिमिटेड द्वारा विकसित परियोजना 'नाइट्स न्यायालय' - जेपी ग्रीन्स विश टाउन, सेक्टर-128, नोएडा, उत्तर प्रदेश में आवासीय फ्लैट आवंटित किए गए हैं। परियोजना के पूरा होने और संबंधित फ्लैटों का कब्जा सौंपने में देरी से व्यथित होकर, याचिकाकर्तागण ने रिट-सी संख्या 38488 और रिट-सी संख्या 38521 वर्ष 2024 में उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के समक्ष शिकायतें दर्ज कीं, जिन्हें 6.5.2019 के आदेशों के अनुसार अनुमति दी गई, जिसमें प्रतिपक्षी संख्या 3 को आदेश की तारीख से 45 दिनों की अवधि के भीतर कब्जा सौंपने का निर्देश दिया गया, और यदि वह ऐसा करने में असमर्थ है, तो जमा की गई राशि ब्याज सहित वापस कर दी जाए।

4. यह कहा गया है कि प्रतिपक्षी संख्या 3-बिल्डर ने न तो संबंधित आवासीय फ्लैटों का कब्जा सौंपा और न ही राशि वापस की, इसलिए, रिट-सी संख्या 38488 और रिट-सी संख्या 38521 वर्ष 2024 में याचिकाकर्तागण के संबंध में, उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा 18.12.2020 और 10.1.2020 की तारीखों वाले वसूली प्रमाण पत्र जारी किए गए थे। उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के प्रावधानों के तहत परियोजना को पूरा करने और सभी घर खरीदारों को कब्जा सौंपने के लिए प्रतिपक्षी संख्या 3-बिल्डर और परियोजना के गृह खरीदारों के संघ के बीच 22.1.2021 को एक समझौता किया गया था। इसके बाद, रियल एस्टेट (विनियमन और विकास) अधिनियम, 2016 की धारा 8 के तहत पुनर्वास का एक आदेश उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा पारित किया गया था, जिसमें एक निर्दिष्ट समय अवधि के भीतर परियोजना को पूरा करने और कब्जा देने का निर्देश दिया गया था। रिट-सी संख्या 38488 वर्ष 2024 में यह दावा किया गया है कि याचिकाकर्तागण द्वारा सहमति प्रदान किए जाने पर, दिनांक 31.3.2021 को उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा एक आदेश पारित किया गया, जिसमें निर्देश दिया गया कि दिनांक 6.5.2019 के आदेश के अनुसरण में जारी वसूली प्रमाणपत्र को स्थगित रखा जाए। रिट-सी संख्या 38521 वर्ष 2024 में याचिकाकर्तागण ने यह भी कहा है कि उन्होंने दिनांक 22.1.2021 के समझौते के परिणामस्वरूप परियोजना को पूरा करने और कब्जा लेने के लिए अपनी सहमति प्रदान की थी।

5. याचिकाकर्तागण ने रिट-सी संख्या 38495 वर्ष 2024 के तहत उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण के समक्ष भी एक शिकायत दायर की थी, जिसका निर्णय दिनांक 27.7.2021 के आदेश द्वारा किया गया, जिसमें पूर्व में पारित पुनर्वास आदेश को ध्यान में रखते हुए, 30.4.2022 के बाद परियोजना पूर्ण होने पर धनराशि वापस करने का निर्देश दिया गया था। यह भी कहा गया है कि प्रतिपक्षी संख्या 3 द्वारा आदेश का पालन न करने के कारण, उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण ने दिनांक 22.5.2024 को एक वसूली प्रमाण पत्र जारी किया, जो अभी तक निष्पादित नहीं हुआ है।

6. समय के साथ, बैंकों/वित्तीय संस्थानों द्वारा दायर याचिका पर प्रतिपक्षी संख्या 3-बिल्डर के खिलाफ दिवालियापन की कार्यवाही शुरू की गई और प्रतिपक्षी संख्या 3-बिल्डर के प्रकरणों का प्रबंधन करने के लिए राष्ट्रीय कंपनी विधि न्यायाधिकरण⁴ द्वारा एक समाधान पेशेवर³ नियुक्त किया गया।

7. रिट-सी संख्या 38488 और रिट-सी संख्या 38521, 2024 के तहत याचिकाकर्तागण ने दिवाला एवं शोधन अक्षमता (कॉर्पोरेट व्यक्तियों के लिए दिवाला समाधान प्रक्रिया) विनियम, 2016⁵ के अंतर्गत क्रमशः 15.6.2024 और 21.6.2024 को अपने दावे प्रस्तुत किए। रिट-सी संख्या 38495, 2024 के तहत याचिकाकर्तागण ने 3.11.2024 को अपने आवंटित आवासीय फ्लैटों के 'धनवापसी के अनुरोध को कब्जे में बदलने' के लिए आरपी को एक ईमेल भेजा था। बताया गया है कि परियोजना के अन्य घर खरीदारों के साथ याचिकाकर्तागण के दावों पर घर खरीदारों के अधिकृत प्रतिनिधि⁶ ने ऋणदाताओं की समिति⁷ की बैठक में विचार किया था। शिकायत यह उठाई गई है कि सीओसी की बैठक में आरपी की उपस्थिति में एआर द्वारा याचिकाकर्तागण और अन्य घर खरीदारों के दावे को उठाए जाने के बावजूद, आवासीय फ्लैटों का कब्जा सौंपने के संबंध में उनके दावों पर उचित विचार नहीं किया गया है।

8. याचिकाकर्तागण ने रिट-सी संख्या 38488 और रिट-सी संख्या 38521 वर्ष 2024 में प्रतिपक्षी संख्या 2/उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 6.5.2019 के आदेशों को इस सीमा तक रद्द करने की मांग की है, जिसमें उस राशि की वापसी का निर्देश दिया गया है, जो याचिकाकर्तागण के अनुसार, उन्होंने कभी मांगी ही नहीं थी। याचिकाकर्तागण ने रिट-सी संख्या 38495 वर्ष 2024 में इसी प्रकार, उनकी शिकायत पर उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 27.7.2021 के आदेश को इस सीमा तक रद्द करने का अनुरोध किया है, जिसमें राशि की वापसी का निर्देश जारी किया गया था। तीनों रिट याचिकाओं में प्रतिपक्षी संख्या 3/बिल्डर के समाधान पेशेवर द्वारा जारी दिनांक 30.08.2024, 27.09.2024, 25.10.2024 के निर्णयों और कब्जे के प्रस्ताव पर नोट को रद्द करने और निरस्त करने का अनुरोध किया गया है। इसके अलावा, तीनों रिट याचिकाओं में प्रतिपक्षी संख्या 3/बिल्डर को अपने समाधान पेशेवर के माध्यम से याचिकाकर्तागण को संबंधित आवासीय इकाइयों का कब्जा तुरंत देने का निर्देश देने के लिए समान प्रार्थना की गई है।

9. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा दिनांक 6.5.2019 और 27.7.2021 को पारित आदेश, जिसमें राशि वापसी का निर्देश दिया गया है, त्रुटिपूर्ण हैं क्योंकि याचिकाकर्तागण ने वापसी के संबंध में राहत कभी नहीं मांगी थी। यह भी तर्क दिया गया है कि सीओसी की बैठकों में लिए गए दिनांक 30.8.2014, 27.9.2024 और 25.10.2024 के निर्णय रद्द किए जाने योग्य हैं, क्योंकि इनके अनुसार, आरपी ने बिल्डर द्वारा याचिकाकर्तागण को आवंटित आवासीय इकाई का कब्जा देने से इनकार कर दिया है।

10. प्रतिपक्षीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने बताया कि याचिकाकर्तागण की शिकायत पर उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा पारित दिनांक 6.5.2019 का आदेश, जिसके अनुसार एक निर्दिष्ट समय अवधि के भीतर आवासीय फ्लैटों का कब्जा सौंपने और ऐसा न करने की स्थिति में राशि वापस करने का निर्देश जारी किया गया था, वास्तव में याचिकाकर्तागण के पक्ष में है। यह प्रस्तुत किया गया है कि उक्त आदेश के विरुद्ध उठाई जाने वाली चुनौती, जो राशि वापसी से संबंधित है, जो कि एक निर्देश था जो बिल्डर द्वारा निर्धारित समय अवधि के भीतर कब्जा सौंपने में विफल रहने की स्थिति में जारी किया गया था, इस विलम्बित चरण में विशेष रूप से घर खरीदारों और बिल्डर के बीच बाद में हुए समझौते के मद्देनजर स्वीकार नहीं की जा सकती है। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा पारित उपरोक्त आदेश अपील के वैधानिक उपाय के अधीन होगा और वर्तमान रिट याचिकाओं के माध्यम से इस संबंध में राहत नहीं मांगी जा सकती है।

11. वर्तमान रिट याचिकाओं में मांगी गई अन्य राहतों के संबंध में, यह प्रस्तुत किया गया है कि 30.8.2024, 27.9.2024 और 25.10.2024 को आयोजित सीओसी की बैठकों में लिए गए निर्णयों को इस स्तर पर चुनौती नहीं दी जा सकती क्योंकि कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं निकला है और समाधान योजना को अभी अंतिम रूप दिया जाना और अनुमोदित किया जाना बाकी है। यह प्रस्तुत किया गया है कि आवासीय इकाइयों का कब्जा देने के लिए आरपी के माध्यम से प्रतिपक्षी संख्या 3-बिल्डर को जो निर्देश मांगा जा रहा है, उस पर इस स्तर पर विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि समाधान योजना को अभी अंतिम रूप दिया जाना बाकी है।

12. यह विवाद में नहीं है कि उत्तर प्रदेश रियल एस्टेट विनियामक प्राधिकरण द्वारा पारित 6.5.2019 का आदेश याचिकाकर्तागण द्वारा की गई शिकायत पर था और उक्त आदेश के अनुसार, एक निर्धारित अवधि के भीतर आवासीय इकाइयों का कब्जा सौंपने और ऐसा न करने की स्थिति में राशि वापस करने का निर्देश जारी किया गया था। वसूली प्रमाणपत्र उपरोक्त आदेश के परिणामस्वरूप जारी किया गया था और बिल्डर और गृह खरीदारों के संघ के बीच हुए समझौते को आगे बढ़ाने में याचिकाकर्तागण द्वारा दी गई सहमति के मद्देनजर वसूली प्रमाणपत्र को स्थगित रखने का निर्देश दिया गया था। अब 6.5.2019 के आदेश के खिलाफ जो चुनौती उठाई जानी है, कि आदेश राशि वापस करने का निर्देश देता है, एक बाद का विचार प्रतीत होता है और अधिनियम, 2016 के तहत अपील के वैधानिक वैकल्पिक उपाय को दरकिनार करते हुए, एक रिट याचिका में इस विलंबित चरण पर विचार नहीं किया जा सकता है।

13. जहाँ तक अन्य प्रार्थनाओं का प्रश्न है, जिनमें दिनांक 30.8.2024, 27.9.2024 और 25.10.2024 के निर्णयों को रद्द करने हेतु मांगी गई राहत भी शामिल है, जो अनिवार्य रूप से सीओसी की बैठकों के कार्यवृत्त हैं, इस स्तर पर विचार नहीं किया जा सकता। ऐसा विशेष रूप से इसलिए होगा क्योंकि बैठकों के अभिलेख पक्षों के बीच विचार-विमर्श का संकेत देते हैं और समाधान योजना के संबंध में कोई अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है, जिसे निर्णायक प्राधिकारी द्वारा अनुमोदित किया जाना आवश्यक होगा। इसके अलावा, यह निर्विवाद

है कि याचिकाकर्तागण सहित घर खरीदारों का, सीओसी की आरपी के साथ बैठकों में उनके अधिकृत प्रतिनिधियों द्वारा विधिवत प्रतिनिधित्व किया जाता है, और घर खरीदारों की ओर से प्रस्तुत दावों पर विचार किया जा रहा है और अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचना अभी बाकी है। यह भी निर्विवाद है कि याचिकाकर्तागण ने अन्य घर खरीदारों के साथ, वित्तीय लेनदारों के रूप में, चल रही कॉर्पोरेट दिवाला समाधान प्रक्रिया⁸ में आरपी के समक्ष अपने दावे विधिवत प्रस्तुत किए हैं।

14. सर्वोच्च न्यायालय ने मोहम्मद एंटरप्राइजेज (तंजानिया) लिमिटेड बनाम फारूक अली खान एवं अन्य प्रकरण में सीआईआरपी कार्यवाही को समाप्त करने के महत्व पर बल दिया है, जहाँ कॉर्पोरेट दिवाला प्रक्रिया पर रोक लगाने वाले न्यायिक समीक्षा के अधिकार का प्रयोग करने वाले उच्च न्यायालय के एक निर्णय के विरुद्ध अपीलों पर विचार करते हुए, यह टिप्पणी की गई थी कि दिवाला एवं शोधन अक्षमता संहिता-2016¹⁰ के तहत शुरू की गई कार्यवाही में अनुचित हस्तक्षेप, विधि के अनुशासन का उल्लंघन है। आगे कहा गया कि आईबीसी, अपने आप में एक पूर्ण संहिता होने के कारण, उच्च न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षी और न्यायिक समीक्षा शक्तियों के प्रयोग के लिए विवेकपूर्ण अनुप्रयोग की कठोर जाँच की आवश्यकता होगी।

15. केएसके महानदी पावर कंपनी लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य के ऋणदाताओं की समिति के प्रकरण में पहले के फैसले में भी इसी तरह का विचार लिया गया था, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने सीआईआरपी को समाप्त करने के महत्व को रेखांकित किया था और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत शक्तियों का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा सीआईआरपी को स्थगित करने पर आपत्ति जताई थी।

16. उपर्युक्त विधिक स्थिति को देखते हुए, हमारा विचार है कि दिवाला और शोधन अक्षमता संहिता, अपने आप में एक पूर्ण संहिता है, जिसमें पर्याप्त जांच और संतुलन, उपचारात्मक रास्ते और अपील हैं, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपनी असाधारण शक्तियों के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा कोई हस्तक्षेप, जिसका प्रभाव सीआईआरपी पर रोक लगाने का हो सकता है, स्वाभाविक रूप से स्वीकार्य नहीं होगा।

17. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए और विशेष रूप से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि याचिकाकर्तागण ने लंबित सीआईआरपी कार्यवाही में पहले ही अपने दावे दायर कर दिए हैं, हम इस स्तर पर मांगी गई राहत के संबंध में रिट याचिकाओं पर विचार करने के इच्छुक नहीं हैं।

18. याचिकाकर्तागण को विधि अनुसार उपलब्ध उचित विधिक उपायों की मांग करने की स्वतंत्रता होगी।

19. तदनुसार, रिट याचिकाओं का निस्तारण किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 562

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी. चौहान

रिट सी संख्या- 40479 वर्ष 2018

राम सजीवन कोरी

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

राम किंकर शुक्ल, सुनील कुमार श्रीवास्तव, विजय कुमार पांडे

प्रतिपक्षीगण के लिए अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, दिवाकर सिंह, गोविंद कुमार सक्सेना, हिमांशु शेखर

(क) प्रशासनिक विधि - उचित मूल्य की दुकान का लाइसेंस रद्द करना प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत उचित मूल्य की दुकान के लाइसेंस को रद्द करने का आदेश सुनवाई का अवसर देने के बाद पारित किया जाना चाहिए और यह पिछले निष्कर्षों की पुनरावृत्ति के बजाय स्वतंत्र निष्कर्षों पर आधारित होना चाहिए। (प्रस्तर - 2,4,6,12,13,14)

याचिकाकर्ता की उचित मूल्य की दुकान का लाइसेंस 25.3.2006 को निलंबित कर दिया गया था - निलंबन के खिलाफ अपील लंबित थी लाइसेंस 25.5.2006 को रद्द कर दिया गया था याचिकाकर्ता को सुनवाई का कोई अवसर नहीं दिया गया था बाद की अपीलों को खारिज कर दिया गया था प्रकरण अंततः एसडीएम द्वारा नए सिरे से विचार के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वापस भेज दिया गया था एसडीएम ने स्वतंत्र निष्कर्षों के बिना पहले के रद्द करने के आदेश को दोहराया, इसलिए याचिका दाखिल की गयी।

(प्रस्तर 2 से 5)

अभिनिर्धारित: - चूंकि एसडीएम और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन नहीं किया गया, इसलिए दोनों प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेश निरस्त किए गए। सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 4.12.2017 के आदेश के आलोक में सभी संबंधित पक्षों को सुनवाई का उचित अवसर प्रदान करते हुए, प्रकरण को नए सिरे से निर्णय लेने हेतु एसडीएम को वापस भेज दिया गया। (प्रस्तर-14,15)

याचिका स्वीकृत. (ई-7)

(माननीय न्यायमूर्ति विक्रम डी.चौहान द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री विजय कुमार पांडे और श्री राम किंकर शुक्ला, प्रतिपक्षी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता श्री हिमांशु शेखर और राज्य प्रतिपक्षीगण के विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना गया।

2. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है कि मूलतः याचिकाकर्ता एक उचित दर दुकान का लाइसेंस धारक था। उचित दर दुकान का लाइसेंस 25.3.2006 को एसडीएम, लालगंज, प्रतापगढ़ के आदेश से निलंबित कर दिया गया था। 25.3.2006 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता ने निलंबन आदेश को चुनौती देते हुए अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर की थी। जबकि उपरोक्त अपील विचाराधीन है, याचिकाकर्ता ने 31.3.2006 को संबंधित एसडीएम के समक्ष अपना जवाब भी दाखिल कर दिया है। इसी बीच, एसडीएम द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध 25.5.2006 को रद्द करने का आदेश पारित कर दिया गया। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, 25.5.2006 के आदेश द्वारा उचित दर दुकान का लाइसेंस रद्द करने के चरण में न तो सुनवाई का अवसर दिया गया और न ही याचिकाकर्ता को इस स्तर पर एसडीएम के समक्ष अपना जवाब दाखिल करने का कोई अवसर दिया गया। तत्पश्चात्, निलंबन आदेश के विरुद्ध अपील का निर्णय दिनांक 29.8.2006 के आदेश द्वारा एसडीएम को यथाशीघ्र निर्णय देने का निर्देश देते हुए किया गया। उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 24.5.2011 को एसडीएम के समक्ष एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसे दिनांक 8.7.2011 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया, जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि याचिकाकर्ता का उचित मूल्य दुकान का लाइसेंस दिनांक 25.5.2006 को रद्द कर दिया गया है और इस प्रकार इस स्तर पर कोई आदेश पारित नहीं किया जा सकता। उपरोक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अपील दायर की, जिसे दिनांक 12.6.2012 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

3. याचिकाकर्ता ने 12.6.2012 और 25.5.2006 के आक्षेपित आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में रिट याचिका रिट-सी संख्या 46991 वर्ष 2012 दायर की थी, जिसे 29.5.2015 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया था। प्रतिपक्षी संख्या 6 ने 29.5.2015 के निर्णय से व्यथित होकर सर्वोच्च न्यायालय में सिविल अपील संख्या 20849 वर्ष 2017, उमा शंकर सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, प्रस्तुत की। उक्त सिविल अपील पर सर्वोच्च न्यायालय ने 4.12.2017 के आदेश द्वारा अंतिम निर्णय दिया और प्रकरण को संबंधित एसडीएम के समक्ष नए सिरे से निर्णय के लिए भेज दिया। उपरोक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत है:-

"हमारा मानना है कि पूरे प्रकरण को एसडीएम, लालगंज, प्रतापगढ़ द्वारा नए सिरे से देखा जाना चाहिए, विशेष रूप से यह ध्यान में रखते हुए कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी या यहां तक कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि प्रतिपक्षी संख्या 7 लाइसेंस/आवंटन की शर्तों के अनुसार उचित मूल्य की दुकान नहीं चला रहा था।

इस प्रकरण को ध्यान में रखते हुए, हम उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करते हैं और पूरे प्रकरण पर नए सिरे से विचार करने के लिए प्रकरण को एसडीएम, लालगंज, प्रतापगढ़ को वापस भेजते हैं। अंतिम निर्णय लेने से पहले, पक्षकारों को एसडीएम, लालगंज, प्रतापगढ़ द्वारा सुनवाई का अधिकार होगा। एसडीएम, लालगंज, प्रतापगढ़ द्वारा निर्णय लिए जाने तक, प्रतिपक्षी संख्या 7 उचित मूल्य की दुकान का संचालन जारी रखेगा।"

4. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 4.12.2017 के उपरोक्त आदेश के अनुसरण में, एसडीएम ने पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद 24.1.2018 को एक आदेश पारित किया, जिसमें याचिकाकर्ता के उचित मूल्य की दुकान के लाइसेंस को रद्द करने के अपने पहले के फैसले को बरकरार रखा गया। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष फिर से अपील दायर की, जिसे दिनांक 13.9.2018 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 4.12.2017 के आदेश के बाद, संबंधित एसडीएम के समक्ष प्रकरण को नए सिरे से निर्णय लेने के लिए वापस भेज दिया गया, एसडीएम ने इस मुद्दे पर नए सिरे से फैसला नहीं किया है और वास्तव में पहले के आदेश को दोहराया है। एसडीएम के समक्ष पेश किए गए तर्कों और साक्ष्यों पर कभी कोई विचार नहीं किया गया।

5. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने रिट याचिका के पृष्ठ 54 की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए प्रस्तुत किया है कि एसडीएम ने देखा है कि जब इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 29.5.2015 के आदेश को सर्वोच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया था, तो उचित मूल्य की दुकान का लाइसेंस रद्द करने वाला दिनांक 25.5.2006 का पूर्व आदेश और दिनांक 12.6.2012 का अपीलीय आदेश पुनर्जीवित हो गया और इस प्रकार याचिकाकर्ता का उचित मूल्य की दुकान का लाइसेंस रद्द कर दिया गया और कोई नया तथ्य नहीं लाया गया जिससे पहले के रद्द करने के आदेश को खारिज किया जा सके। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के अवलोकन से यह प्रदर्शित होगा कि प्रकरण को वापस भेजते समय सर्वोच्च न्यायालय ने एसडीएम को विशेष रूप से निर्देश दिया है कि वे इस प्रकरण को नए सिरे से तय करें, यह ध्यान में रखते हुए कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी या यहां तक कि अपीलीय प्राधिकारी द्वारा भी ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता लाइसेंस की शर्तों के अनुसार उचित मूल्य की दुकान नहीं चला रहा था।

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सर्वोच्च न्यायालय का उपरोक्त निर्देश इस तथ्य का संकेत है कि विवाद को नए सिरे से देखा जाना आवश्यक था और अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए पिछले निष्कर्ष को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं होगी। हालांकि, वर्तमान प्रकरण में, पिछले निष्कर्षों को केवल दोहराया गया है और वास्तव में 2.1.2018 की एक नई शिकायत पर भी ध्यान दिया गया है। ग्राम प्रधान की 2.1.2018 की शिकायत सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विषय वस्तु नहीं थी और इस तरह एसडीएम द्वारा इस संबंध में ताजा सूचना और भरोसा किए गए दस्तावेजों को दिए बिना इस पर विचार नहीं किया जा सकता था। याचिकाकर्ता को वर्ष 2018 के नए आरोपों की सूचना के बिना, एसडीएम द्वारा 24.1.2018 का आदेश पारित नहीं किया जा सकता था।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे दलील दी है कि अपीलीय प्राधिकारी ने भी याचिकाकर्ता द्वारा 24.1.2018 के आदेश के खिलाफ उठाए गए तर्कों के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। अपीलीय प्राधिकारी का आदेश यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है और केवल इस तथ्य पर ध्यान दिया है कि याचिकाकर्ता याचिकाकर्ता के रुख पर विचार किए बिना और याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत दस्तावेजों और तर्कों के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना याचिकाकर्ता के खिलाफ पहले के आरोपों के संबंध में अपनी बेगुनाही साबित नहीं कर पाया है। अपीलीय प्राधिकारी ने वर्ष 2018 के आरोपों पर भी ध्यान दिया है, हालांकि वे सर्वोच्च न्यायालय के रिमांड आदेश का हिस्सा नहीं थे और इस तरह अपीलीय प्राधिकारी का आदेश विधि की नजर में अस्थिर और टिकाऊ नहीं है।

8. विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने रिट याचिका का विरोध किया है और प्रस्तुत किया है कि याचिकाकर्ता को अपनी बेगुनाही साबित करने का अवसर दिया गया था, हालांकि, एसडीएम और अपीलीय प्राधिकारी द्वारा इसका समर्थन नहीं किया गया और इस प्रकार आक्षेपित आदेश विधि की नजर में टिकने योग्य हैं।

9. विद्वान स्थायी अधिवक्ता से यह प्रश्न पूछे जाने पर कि क्या एसडीएम और अपीलीय प्राधिकारी ने सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 4.12.2017 के आदेश के अनुसरण में कोई नया निष्कर्ष दर्ज किया है, विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने तर्क दिया कि केवल पूर्व निष्कर्ष को ही दोहराया गया है, यह कहते हुए कि याचिकाकर्ता अपनी बेगुनाही साबित नहीं कर पाया है। विद्वान स्थायी अधिवक्ता ने इस तथ्य पर भी कोई विवाद नहीं किया है कि अपीलीय प्राधिकारी ने भी याचिकाकर्ता द्वारा अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष उठाए गए तर्कों पर कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है।

10. प्रतिपक्षी संख्या 6 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री हिमांशु शेखर भी इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि संबंधित एसडीएम या अपीलीय प्राधिकारी द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 4.12.2017 के आदेश के अनुसरण में कोई नया निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है।

11. विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिपक्षी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता दोनों इस तथ्य पर विवाद नहीं कर सके कि दिनांक 2.1.2018 के पत्र के संबंध में आरोप सर्वोच्च न्यायालय के रिमांड आदेश में निर्देशों का हिस्सा नहीं थे।

12. यह देखा जाना चाहिए कि वर्तमान प्रकरण में मुकदमेबाजी के पहले दौर में रद्द करने का आदेश और अपीलीय आदेश इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29.5.2015 के आदेश द्वारा अलग रखा गया था, जिसके खिलाफ निजी प्रतिपक्षी संख्या 6 ने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक सिविल अपील पेश की थी और इस न्यायालय के दिनांक 29.5.2015 के आदेश को अलग रखा गया था और प्रकरण को नए सिरे से निर्णय के लिए संबंधित एसडीएम को वापस भेज दिया गया था, इस विशिष्ट निर्देश के साथ कि इस मुद्दे पर नए सिरे से निर्णय करते समय, संबंधित एसडीएम यह ध्यान में रखेंगे कि लाइसेंसिंग प्राधिकारी या यहां तक कि अपीलीय

प्राधिकारी द्वारा ऐसा कोई निष्कर्ष दर्ज नहीं किया गया है कि याचिकाकर्ता लाइसेंस आवंटन की शर्तों के अनुसार उचित मूल्य की दुकान नहीं चला रहा था। सर्वोच्च न्यायालय के पूर्वोक्त निर्देश का प्रभाव यह था कि प्रकरण पिछले निष्कर्ष पर गौर किए बिना नए सिरे से तय किए जाने के योग्य था और दोनों पक्षों के साक्ष्य पर विचार करने के बाद एक नया निष्कर्ष संबंधित एसडीएम द्वारा दर्ज किया जाना आवश्यक था। संबंधित एसडीएम ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित रिमांड आदेश के अनुसरण में दिनांक 24.1.2018 को पारित अपने आदेश में रिमांड किए गए प्रकरण के संबंध में कोई नया निष्कर्ष दर्ज नहीं किया है। संबंधित एसडीएम ने संज्ञान लिया है कि याचिकाकर्ता ऐसी कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं कर पाया है जिससे याचिकाकर्ता के विरुद्ध पूर्व में सिद्ध आरोपों को खारिज किया जा सके। संबंधित एसडीएम का उपरोक्त निष्कर्ष विधि की दृष्टि में पूर्णतः आधारणीय है क्योंकि संबंधित एसडीएम को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा रिमांड के बाद पिछले दर्ज निष्कर्षों पर विचार किए बिना ही प्रकरण पर नए सिरे से निर्णय लेना आवश्यक था और संबंधित एसडीएम ने पूर्व में सिद्ध आरोपों को बरकरार रखकर एक गंभीर त्रुटि की है।

13. संबंधित एसडीएम के आदेश का अवलोकन यह भी प्रदर्शित करता है कि याचिकाकर्ता या विभाग द्वारा प्रस्तुत किसी भी दस्तावेज़ पर विचार नहीं किया गया है। केवल पिछले आरोपों को सिद्ध माना गया है और उन्हें दोहराया गया है जो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित रिमांड आदेश का दायारा नहीं हो सकता है, ऐसे में संबंधित एसडीएम का आदेश विधि की नजर में टिकने योग्य नहीं है। इसी प्रकार, अपीलीय प्राधिकारी ने 24.1.2018 के आदेश के विरुद्ध याचिकाकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों के संबंध में कोई निष्कर्ष दर्ज किए बिना बहुत ही सरसरी तौर पर 13.9.2018 का आदेश पारित किया है। अपीलीय प्राधिकारी का कर्तव्य इस मुद्दे की जांच करना और यह देखना है कि क्या अपील में उठाए गए आधार मूल प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को खारिज करने के लिए कायम रखे जा सकते हैं। वर्तमान प्रकरण में, ऐसा कोई प्रयोग नहीं किया गया है जैसा कि विद्वान स्थायी अधिवक्ता और प्रतिपक्षी संख्या 6 के विद्वान अधिवक्ता ने स्वीकार किया है।

14. चूँकि संबंधित एसडीएम द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन नहीं किया गया है और अपीलीय प्राधिकारी ने भी उचित परिप्रेक्ष्य में निर्णय नहीं दिया है, अतः संबंधित एसडीएम द्वारा पारित दिनांक 24.1.2018 का आदेश और अपीलीय प्राधिकारी का दिनांक 13.9.2018 का आदेश एतद्वारा अपास्त किया जाता है। रिट याचिका स्वीकार की जाती है और प्रकरण प्रतिपक्षी संख्या 3-एसडीएम, लालगंज, प्रतापगढ़ को सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 4.12.2017 के आदेश के आलोक में नए सिरे से निर्णय लेने के लिए वापस भेज दिया जाता है। संबंधित एसडीएम प्रकरण पर नए सिरे से निर्णय लेते समय पूर्व में दर्ज किसी भी निष्कर्ष पर विचार नहीं करेंगे और प्रकरण पर नए सिरे से विचार करेंगे तथा पक्षों द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर विचार किया जाएगा।

15. चूँकि सर्वोच्च न्यायालय के रिमांड के बाद का आदेश अपास्त किया जाता है, अतः सर्वोच्च न्यायालय के दिनांक 4.12.2017 के आदेश के अनुपालन में विद्यमान स्थिति बहाल की जाती है। संबंधित एसडीएम को

निर्देश दिया जाता है कि वे सभी संबंधित पक्षों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के पश्चात इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर प्रकरण का नए सिरे से निर्णय लें।

(2025) 1 ILRA 566

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 28.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली

रिट सी संख्या- 1000717 वर्ष 1997

श्याम लाल और अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

श्याम मोहन

प्रतिपक्षीगण की ओर से अधिवक्ता:

मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अनूप कुमार श्रीवास्तव, एच.पी. श्रीवास्तव, सूर्य प्रकाश सिंह, सूर्य प्रकाश सिंह

सिविल विधि - उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम, 1939 धारा 59 और 275 - उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 धारा 49 भूमि 1366 फसली बंदोबस्त वर्ष में याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के पिता के नाम दर्ज थी। 1964-65 में अधिसूचित क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया, जहां भूखंड स्थित हैं और याचिकाकर्ता के पिता का नाम दर्ज पाया गया - भूखंड गैर-जमींदारी उन्मूलन भूमि हैं और 7 जुलाई, 1949 को संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 के प्रावधानों और उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधानों के तहत अधिसूचित क्षेत्र में शामिल भूखंड लागू नहीं हुए - खसरा और खतौनी के बंदोबस्त से साबित। (प्रस्तर 4, 6)

प्रतिपक्षी संख्या 5 ने यह आरोप लगाकर याचिकाकर्तागण के कब्जे में हस्तक्षेप किया कि वह भूमि का मालिक है, याचिकाकर्तागण ने वाद दायर किया, अपना स्वामित्व दावा किया - प्रतिपक्षी ने तर्क दिया कि भूमि उसकी स्व-अर्जित संपत्ति थी और जमींदारी उन्मूलन से पहले कब्जे में थी और कुछ भूखंड उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के दायरे में आते हैं। इसके अलावा, यह स्वीकार किया गया कि केवल एक भूखंड

उक्त अधिनियम के दायरे से बाहर था और चकबंदी 1973 में हुई थी और चकबंदी अधिनियम के प्रावधानों द्वारा वाद वर्जित था और पोषणीय नहीं था। (प्रस्तर 8)

याचिकाकर्ता ने अंतरिम आवेदन दायर किया, उप-मंडल अधिकारी ने यथास्थिति बनाए रखते हुए आदेश पारित कर दिया तथा स्थगन आवेदन पर सुनवाई के बाद भी आदेश निरस्त नहीं किया गया। (प्रस्तर 9)

उप-मंडल अधिकारी ने मुकदमे की पोषणीयता के संबंध में प्रारंभिक मुद्दों और प्रारंभिक आपत्तियों को सुनने के बाद निष्कर्ष निकाला कि मुकदमा पोषणीय है और याचिकाकर्तागण के पक्ष में निर्णय दिया। प्रतिपक्षी ने अतिरिक्त आयुक्त (न्यायिक) के समक्ष पुनरीक्षण प्रस्तुत किया और राजस्व बोर्ड को संदर्भ दिया गया, जिसे स्वीकार कर लिया गया - आक्षेपित आदेश। (प्रस्तर 10)

खसरे के अंतिम कॉलम के अवलोकन से यह निष्कर्ष निकला कि भूमि और गाटा संख्या उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के दायरे में नहीं आती। दस्तावेज राजस्व परिषद के समक्ष प्रस्तुत किए गए थे, लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया। दस्तावेजों और नगर पालिका के प्रकरण पर विचार न किए जाने के कारण, आदेश गुण-दोष से रहित है और निरस्त किए जाने योग्य है। (प्रस्तर 15, 16)

रिट याचिका स्वीकृत (ई-13)

(माननीय न्यायमूर्ति इरशाद अली द्वारा पारित)

1. आज न्यायालय में दायर पूरक हलफनामा अभिलेख में लिया गया है।
2. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता श्री श्याम मोहन, प्रतिपक्षी संख्या 1, 3 और 4 के विद्वान अतिरिक्त मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री शत्रुघ्न चौधरी, प्रतिपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.पी. सिंह और प्रतिपक्षी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनूप कुमार को सुना गया।
3. वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता राजस्व परिषद द्वारा पारित आदेश दिनांक 7.10.1996 तथा अपर आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद मण्डल फैजाबाद (अयोध्या) द्वारा पारित आदेश दिनांक 3.8.1995 सन्दर्भ संख्या 4 वर्ष 1995-96 को चुनौती दे रहे हैं।
4. प्रकरण के संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि मौजा नानपारा खास, नगर पालिका नानपारा, जिला बहराइच के पुराने भूखंड संख्या 3453/0.037, 347/0.07, 3458/0.08, 3459/0.02, 3460/0.08, 3461/0.10 को 6939/0.085, 6940/0.080, 6941/0.320, 6942/0.125, 6943/0.020 और 6944/0.113 के रूप में क्रमांकित

किया गया था, जो 20 वर्ष की अवधि के 1356 फसली बंदोबस्त वर्ष में याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के पिता लालता प्रसाद के नाम पर दर्ज किया गया था।

5. पहले यह ज़मीन 1336 फसली में लालता प्रसाद के पिता राम औतार के नाम दर्ज थी और राम औतार के बाद यह ज़मीन याचिकाकर्ता संख्या 2 के पिता लालता प्रसाद, निवासी मोहल्ला कायस्थ टोला, नानपारा, जिला बहराइच के नाम दर्ज हुई और बंदोबस्त वर्ष 1366 फसली में हुआ और उक्त बंदोबस्त वर्ष के खसरे में याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के पिता लालता प्रसाद का नाम दर्ज था। इस संबंध में, याचिकाकर्तागण ने 1366 फसली के बंदोबस्त खसरे और 1366 फसली के खतौनी मोहाल की प्रतिलिपि संलग्न की है, जिसमें यह दर्ज है कि उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते।

6. 1964-65 में अधिसूचित क्षेत्र, नानपारा, जहाँ संबंधित भूखंड स्थित हैं, का सर्वेक्षण किया गया था और याचिकाकर्तागण के पिता का नाम दर्ज पाया गया था। अधिसूचित क्षेत्र की खतौनी की प्रतिलिपि अनुलग्नक-2 के रूप में संलग्न है। उपर्युक्त भूखंड गैर-ज़मींदारी उन्मूलन भूमि हैं और अधिसूचित क्षेत्र नानपारा में स्थित थे और 7 जुलाई, 1949 को उक्त भूखंडों को संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 के प्रावधानों के अंतर्गत अधिसूचित क्षेत्र नानपारा में शामिल कर लिया गया था, अतः उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं हुए और उक्त भूखंड गैर-ज़मींदारी उन्मूलन क्षेत्र के रूप में बने रहे। उक्त तथ्य 1366 फसली के खसरा एवं खतौनी के निस्तारण से स्पष्ट है कि प्रश्नगत भूखण्ड गैर-जमींदारी उन्मूलन क्षेत्र है तथा इस पर उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

7. याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के पिता लालता प्रसाद की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 तथा याचिकाकर्ता संख्या 3 के पिता ज्वाला प्रसाद को लालता प्रसाद के पुत्र होने के नाते संपत्ति विरासत में मिली। ज्वाला प्रसाद की मृत्यु के बाद, ज्वाला प्रसाद के पुत्र होने के नाते याचिकाकर्ता संख्या 3, याचिकाकर्ता संख्या 1 और 2 के साथ संपत्ति का मालिक बन गया और उन सभी का भौतिक और कृषिगत कब्जा बना रहा।

8. जनवरी, 1992 में, प्रतिपक्षी संख्या 5 ने यह आरोप लगाते हुए याचिकाकर्तागण के कब्जे में हस्तक्षेप करने की कोशिश की कि वह जमीन का मालिक है और इसलिए, याचिकाकर्तागण ने उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम की धारा 59 के तहत एक मुकदमा दायर किया, जिसमें उनके शीर्षक के उपरोक्त तथ्यों का आरोप लगाया गया और उनके स्वामित्व की घोषणा की राहत मांगी गई। प्रतिपक्षी संख्या 5 ने लिखित बयान दायर किया, जिसमें उन्होंने कहा था कि विचाराधीन भूमि उनकी स्व-अर्जित संपत्ति थी और वह जमींदारी उन्मूलन से पहले से कब्जे में थे और प्लॉट संख्या 6930, 6940, 6941, 6942 और 6943 उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम के दायरे में आते हैं। प्रतिपक्षी संख्या 5 ने स्वीकार किया कि केवल एक भूखण्ड संख्या 6944 उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के दायरे से बाहर था तथा प्रश्नगत भूखण्ड की चकबंदी 1973 में हुई थी, अतः यह वाद चकबंदी अधिनियम की धारा 49 के प्रावधानों के तहत वर्जित था, तथा पोषणीय नहीं था।

9. याचिकाकर्ता ने प्रतिपक्षी संख्या 5 को कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने के लिए अंतरिम निषेधाज्ञा के लिए आवेदन दायर किया और उप-मंडल अधिकारी, नानपारा ने यथास्थिति बनाए रखते हुए 24.4.1992 को अंतरिम निषेधाज्ञा दी और स्थगन आवेदन पर सुनवाई के बाद उक्त आदेश को रद्द नहीं किया गया।

10. मुद्दे तय किए गए और मुद्दे संख्या 3, 4, 10, 12, 16, 18, 20 और 22 को प्रारंभिक मुद्दे घोषित किया गया और मुकदमे की पोषणीयता से संबंधित प्रारंभिक मुद्दों के रूप में तय किया गया। उप-मंडल अधिकारी, नानपारा, प्रतिपक्षी संख्या 5 द्वारा मुकदमे की पोषणीयता के संबंध में उठाए गए प्रारंभिक मुद्दों और प्रारंभिक आपत्तियों को सुनने के बाद, दस्तावेजों पर विचार करने के बाद, इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मुकदमा पोषणीय है और उन्होंने अपने आदेश दिनांक 23.11.1992 द्वारा याचिकाकर्तागण के पक्ष में प्रारंभिक मुद्दों का फैसला किया और वादी/याचिकाकर्तागण के साक्ष्य के लिए 18.12.1992 की तारीख तय की। उक्त अंतरिम आदेश के विरुद्ध, प्रतिपक्षी संख्या 5 ने अपर आयुक्त (न्यायिक), फैजाबाद मण्डल फैजाबाद (अयोध्या) के समक्ष उत्तर प्रदेश काश्तकारी अधिनियम की धारा 275 के अंतर्गत पुनरीक्षण संख्या 1061 प्रस्तुत किया और अपर आयुक्त का मत था कि चकबंदी प्रपत्र संख्या 41 और 45 के अवलोकन से उन्हें प्रतीत हुआ कि छः भूखण्डों में से पाँच भूखण्डों पर चकबंदी हो चुकी है और पाँच भूखण्डों के सम्बन्ध में जमींदारी समाप्त कर दी गई है तथा वाद दिनांक 16.1.1992 को प्रासंगिक वर्ष 1399 फसली में दायर किया गया है, अतः वाद पोषणीय नहीं है और उन्होंने दिनांक 3.8.1995 के आदेश द्वारा प्रकरण को राजस्व परिषद, इलाहाबाद को संदर्भित कर दिया। राजस्व परिषद ने दिनांक 7.10.1995 के आदेश द्वारा उक्त संदर्भ से सहमति व्यक्त की।

11. संदर्भ की अनुमति देने से व्यथित होकर, याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि रिट याचिका के अनुलग्नक-1 और 2 के रूप में दस्तावेज राजस्व परिषद के समक्ष थे, जिन पर विचार नहीं किया गया। यह तर्क दिया गया कि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते। यह भी तर्क दिया गया कि विवादित भूमि अधिसूचित क्षेत्र नानपारा में अधिसूचित है, इसलिए उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते। राजस्व परिषद ने प्रकरण पर विचार करते समय, अपर आयुक्त द्वारा दिए गए संदर्भ पर निर्णय लेते समय इन सभी तथ्यों पर विचार नहीं किया।

12. प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया गया है, जिसमें कहा गया है कि विवादित भूमि संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 के अंतर्गत अधिसूचित है और यह भी कहा गया है कि नगर पालिका नानपारा, बहराइच की सीमा के भीतर स्थित गैर-जमींदारी उन्मूलन भूमि की नकल खतौनी के अवलोकन से पता चलता है कि वे जमींदारी उन्मूलन से बाहर हैं। उन्होंने अनुलग्नक एससीए-4 के रूप में नकल खतौनी की एक प्रति भी संलग्न की है।

13. प्रतिपक्षी संख्या 5 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनूप कुमार ने तर्क दिया कि विवादित भूमि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के अंतर्गत आती है, इसलिए राजस्व परिषद द्वारा पारित आक्षेपित

आदेश में कोई त्रुटि या अवैधता नहीं है और यह एक न्यायोचित एवं वैध आदेश है। उन्होंने संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर 13 की विषय-वस्तु की ओर ध्यान आकर्षित किया, जिस पर प्रतिपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर हलफनामे की विषय-वस्तु का खंडन करते हुए उत्तर दाखिल किया गया।

14. उभय पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्क सुनने के पश्चात् मैंने अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया।

15. रिट याचिका के अनुलग्नक-1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 1366 फसली के खसरे के अंतिम कॉलम में यह उल्लेख किया गया है कि विवादित भूमि उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के दायरे में नहीं आती है। रिट याचिका के अनुलग्नक-2 से यह भी पता चलता है कि उपर्युक्त गाटा संख्याएँ उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम के दायरे में नहीं आती हैं। ये सभी सामग्री अपर आयुक्त, फैजाबाद मंडल, फैजाबाद द्वारा संदर्भित अभिलेख के रूप में राजस्व परिषद के समक्ष प्रस्तुत की गई थीं, लेकिन संदर्भित आदेश पारित करते समय इनमें से किसी भी दस्तावेज पर विचार नहीं किया गया।

16. इन सभी दस्तावेजों और नगर पालिका के प्रकरण पर विचार न किए जाने के कारण, यह आदेश गुण-दोष रहित है और अपास्त किए जाने योग्य है। नगर पालिका द्वारा प्रस्तुत प्रति-शपथपत्र के प्रस्तर-13 में यह स्पष्ट है कि विचाराधीन भूमि गैर-जमींदारी उन्मूलन अधिनियम में दर्ज है, अतः प्रकरण के इस पहलू पर विचार न किए जाने से राजस्व परिषद द्वारा पारित आक्षेपित आदेश त्रुटिपूर्ण और अवैधानिक हो जाता है।

17. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत निवेदन पर विस्तार से विचार किया है और मेरा यह मत है कि राजस्व परिषद ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय स्पष्ट विधिक त्रुटि की है। राजस्व परिषद ने अपर आयुक्त, फैजाबाद मंडल, फैजाबाद द्वारा संदर्भित प्रस्तुत करते समय अपने समक्ष प्रस्तुत अभिलेखों का ध्यान नहीं रखा है, अतः आक्षेपित आदेश को एतद्वारा अपास्त किया जाता है।

18. रिट याचिका सफल होती है और उसे स्वीकृत किया जाता है।

19. राजस्व बोर्ड को निर्देश दिया जाता है कि वह आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तिथि से चार माह की अवधि के भीतर संदर्भित अभिलेखों सहित उसके समक्ष प्रस्तुत दस्तावेजों का अध्ययन करने के पश्चात् नया आदेश पारित करे।

20. तथापि यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि अवर न्यायालय का अभिलेख राजस्व बोर्ड के समक्ष नहीं है तो उसे अवर न्यायालय से अभिलेख के अवलोकन के लिए मंगाया जाएगा।

(2025) 1 ILRA 570

मूल अधिकारिता

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ, 07.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज,

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या- 418 सन् 2008

श्रीमती रेखा एवं अन्य

...आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रत्यर्थागण

आवेदकगण के अधिवक्ता:

तुंग नाथ तिवारी, रविन्द्र बाजपेयी

प्रत्यर्थागण के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता आर. सी. गुप्ता, एस. मिश्र

(ए) दण्ड विधि - अतिरिक्त अभियुक्तगण को तलब किया जाना - भारतीय दण्ड संहिता, 1860 - धाराएँ 147, 302 एवं 406 - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319 - अपराध के लिए दोषी प्रतीत होने वाले अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति - धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति के प्रयोग हेतु आवश्यक संतुष्टि का परिमाण - यह विवेकाधीन एवं असाधारण शक्ति है, जिसका प्रयोग विरलता से तथा केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहाँ प्रकरण की परिस्थितियाँ इसकी अपेक्षा करें। यह शक्ति इसलिए प्रयोग नहीं की जानी चाहिए कि मजिस्ट्रेट अथवा सत्र न्यायाधीश का यह मत हो कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध के करने में दोषी हो सकता है। यह शक्ति तभी प्रयोग की जानी चाहिए जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के विरुद्ध प्रबल एवं ठोस प्रमाण उत्पन्न हों तथा इसका प्रयोग सामान्य या असावधान रूप से नहीं किया जाना चाहिए। (प्रस्तर - 12, 14, 15)

(बी) दण्ड विधि - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 319 - धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रक्रिया का निर्गमन विचारण न्यायालय द्वारा सामान्य अथवा असावधान रूप से नहीं किया जा सकता - न्यायालय को अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य के सार पर विचार करना आवश्यक है - लागू की जाने वाली कसौटी यह है कि "आरोप तय करते समय प्रस्तुत प्रथम दृष्टया मामले से अधिक, लेकिन इस हद तक संतुष्टि से कम कि साक्ष्य, यदि बिना खंडन के रह जाता है, तो दोषसिद्धि हो जाएगी।" (प्रस्तर - 14)

आवेदकगण आक्षेपित आदेश से व्यथित हैं – विचारण न्यायालय द्वारा उन्हें धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब किया गया – मामला सूचनाकर्ता अभियोजन साक्षी-1 की शिकायत पर पंजीकृत प्राथमिकी से उत्थापित हुआ – आरोप यह कि उसके पुत्र को 14.07.2000 को जहर दिया गया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई – प्रारम्भ में आवेदकगण को निर्दोष घोषित किया गया – परीक्षण के दौरान अभियोजन साक्षियों के साक्ष्य के आधार पर धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया – जिसके परिणामस्वरूप आवेदकगण को तलब करने वाला आक्षेपित आदेश पारित किया गया – परिणामस्वरूप यह आवेदन प्रस्तुत किया गया। (प्रस्तर - 1 से 5)

अभिनिर्धारित:- विचारण न्यायालय द्वारा प्रबल एवं ठोस साक्ष्य के अभाव में आवेदकगण को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब किया जाना त्रुटिपूर्ण पाया गया। आक्षेपित आदेश गंभीर अवैधानिकता एवं अनुचितता से ग्रसित है तथा न्यायालय के हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है। याचिका सफल होती है। आक्षेपित आदेश निरस्त किया जाता है। धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन अस्वीकृत किया जाता है। (प्रस्तर - 15, 16)

याचिका स्वीकृत की जाती है। (ई-7)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. हरदीप सिंह बनाम पंजाब एवं अन्य, (2014) 3 एससीसी 92
2. लाभुजी अमृतजी ठाकोर एवं अन्य बनाम गुजरात एवं अन्य, (2019) 12 एससीसी 644

(माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज द्वारा पारित)

1. आवेदकगण-अभियुक्तगण 14 सितंबर 2007 के आदेश से व्यथित हैं, जो अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 1, लखीमपुर खीरी द्वारा परीक्षण संख्या संख्या 659 सन् 2004 में पारित किया गया; प्रकरण शीर्षक **राज्य बनाम राम नारायण उर्फ सुखदेव एवं अन्य**, जो मुकदमा अपराध संख्या सी-3/2001, धारा 147, 302, 406 भारतीय दण्ड संहिता, थाना गोला, जिला लखीमपुर खीरी के अंतर्गत उत्पन्न हुआ था, जिसके द्वारा विचारण न्यायालय ने धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उन्हें अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब किया।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि काशी राम (अभियोजन साक्षी-1) की शिकायत के आधार पर, उपरोक्त मुकदमा अपराध संख्या सी-3 सन् 2001 अंकित किया गया, जो मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 156(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पारित आदेश के परिणामस्वरूप हुआ। शिकायतकर्ता के अनुसार, उसका पुत्र श्याम प्रकाश 12 जुलाई 2000 को अपने बहनोई रामबिलास मिश्रा से मिलने के लिए घर से निकला था।

शिकायतकर्ता के पुत्र ने तीन सोने की अंगूठियाँ, एक चैन, नकद राशि रु. 1,55,000/- तथा एक मोबाइल फोन भी साथ रखा था। शिकायतकर्ता के पुत्र अपनी दूसरी पत्नी रेखा के साथ रह रहा था, जो लखनऊ स्थित उसके घर पर अवैध रूप से कब्जा कर रही थी। शिकायतकर्ता ने आगे आरोप लगाया कि अभियुक्तगण ने एक-दूसरे के साथ मिलकर 14 जुलाई, 2000 को उसके बेटे को ज़हर दिया, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई। इन आरोपों के आधार पर उक्त प्राथमिकी अंकित की गई, जिसमें आठ अभियुक्तगण, जिनमें आवेदकगण श्रीमती. रेखा, अनंत राम अवस्थी, श्रीमती. राम बोली और बारकन शामिल हैं, के विरुद्ध धारा 302, 147 एवं 406 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अपराध अंकित किए गए।

3. इसके पश्चात प्रकरण में जाँच-पड़ताल की गई, और धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंतिम आख्या के माध्यम से केवल पाँच अभियुक्तगण को विचारण के लिए भेजा गया। जाँच के दौरान (राम नारायण मिश्रा के दामाद) विरेन्द्र कुमार को भी नामजद किया गया, जबकि आवेदकगण को निर्दोष घोषित किया गया।

4. धारा 173(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंतिम आख्या पर विचार करने के पश्चात् पाँच अभियुक्तगण के विरुद्ध विचारण प्रारंभ किया गया और अभियोजन ने अपनी जिम्मेदारी निर्वाह करने के लिए तीन साक्षियों से पूछताछ की, अर्थात् काशी राम (अभियोजन साक्षी-1), ओम प्रकाश (अभियोजन साक्षी-2) (शिकायतकर्ता का अन्य पुत्र) एवं पुट्टी राम (अभियोजन साक्षी-3)। इसी चरण में आवेदकगण को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब करने हेतु धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किया गया।

5. विचारण न्यायालय ने आक्षेपित आदेश दिनांक 14.09.2007 के माध्यम से उक्त आवेदन को स्वीकार किया और आवेदकगण को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब किया। अतः यह आवेदन प्रस्तुत किया गया है।

6. आवेदकगण के विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग लापरवाही से करते हुए विधिक त्रुटि की है, क्योंकि तथ्य, परिस्थितियाँ और अभिलेख में उपस्थित साक्ष्य आवेदकगण की कथित अपराध में संलिप्तता का संकेत नहीं देते। विद्वान अधिवक्ता ने न्यायालय का ध्यान आक्षेपित आदेश की ओर आकर्षित किया और बताया कि विचारण न्यायालय ने अभियोजन पक्ष द्वारा परीक्षित किए गए तीन साक्षियों के कथनों का अवलोकन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि आवेदकगण-अभियुक्तगण की संलिप्तता के संबंध में प्रथम दृष्टया मामला भी स्थापित होता है, जबकि न्यायालय ने प्रस्तुत साक्ष्यों की प्रकृति और अभियोजन द्वारा स्थापित मामले का सम्यक विचारण नहीं किया। विद्वान अधिवक्ता का तर्क है कि इस न्यायालय द्वारा दी गई अंतरिम सुरक्षा के अनुसार, नव सम्मिलित अभियुक्तगण के विरुद्ध कार्यवाही में कोई प्रगति नहीं हुई, जबकि अन्य पाँच अभियुक्तगण के विरुद्ध विचारण जारी रहा, जो अन्ततः 11 सितंबर 2009 के निर्णय द्वारा उनके बरी होने पर समाप्त हुआ। विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि आक्षेपित आदेश अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के

सम्यक मूल्यांकन पर आधारित नहीं है, इसलिए इस न्यायालय के हस्तक्षेप की आवश्यकता है। उन्होंने प्रार्थना की कि आक्षेपित आदेश रद्द किया जाए और आवेदन अस्वीकृत किया जाए।

7. राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना का विरोध करते हुए यह तर्क प्रस्तुत किया कि शिकायतकर्ता ने प्रारम्भ से ही सभी अभियुक्तगण के विरुद्ध एक समान मामला प्रस्तुत किया था और आवेदकगण के नाम का उल्लेख भी अभियोजन साक्षियों के धारा 161 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अंकित बयानों में किया गया था। राज्य के अधिवक्ता ने बताया कि विचारण न्यायालय के समक्ष अंकित बयानों में साक्षियों ने अभियुक्त-आवेदकगण की संलिप्तता का विवरण प्रस्तुत किया है, अतः अभिलेख में उपलब्ध सामग्री को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय ने धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का सम्यक प्रयोग किया। उनके अनुसार, अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करने के उद्देश्य से अभियोजन के मामले पर विचार करने के चरण में न्यायालय को यह संतोष अंकित करने की आवश्यकता नहीं है कि विचारण के दौरान प्रस्तुत साक्ष्य निश्चित रूप से उक्त अभियुक्त के दोषसिद्धि की ओर ले जाएंगे, और प्रथम दृष्टया अपराध में संलिप्तता ही अतिरिक्त अभियुक्त को तलब करने के लिए पर्याप्त है।

8. राज्य के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव कुमार वर्मा ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के सम्यक मूल्यांकन पर आधारित है, अतः इस न्यायालय द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने प्रार्थना की कि आवेदन अस्वीकृत किया जाए।

9. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की तर्कों को सुनने और उनके प्रस्तुतिकरणों पर विचार करने के पश्चात् यह न्यायालय पाता है कि अभियोजन पक्ष का समग्र मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्यों पर आधारित है। शिकायतकर्ता के अनुसार, उसका पुत्र अपने साले रामबिलास मिश्रा के घर गया था, जहाँ उसे जहर दिया गया और इस घटना के पीछे प्रेरणा यह थी कि अभियुक्तगण पीड़ित द्वारा धारण किए गए नकद और सोने के आभूषणों को हड़पना चाहते थे। यद्यपि शिकायतकर्ता ने सभी अभियुक्तगण के बीच षड्यंत्र का आरोप लगाया है, किन्तु प्राथमिकी या अंतिम आरोप-पत्र में धारा 120-बी भारतीय दण्ड संहिता अथवा किसी अन्य धारा का समावेश नहीं किया गया, जिससे किसी सामान्य इरादा/उद्देश्य का संकेत मिलता। मृतक की मृत्यु जहर देने के कारण बताई गई है, जो अभियुक्तगण के घर पर दिया गया, जिन्होंने विचारण का सामना किया, किन्तु अभिलेख में ऐसा कोई संकेत नहीं है कि सभी ये आवेदकगण, जिन्हें अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब किया गया, उस समय उक्त स्थान पर निवास करते थे या गए थे। प्रारम्भ में अभियुक्तगण की संलिप्तता संबंधी शिकायतकर्ता के आरोप अस्पष्ट थे और जाँच अधिकारी ने उन्हें निर्दोष घोषित करते हुए उन पर विश्वास नहीं किया।

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों ने बार-बार धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के दायरे की निरंतर समीक्षा की है, जो विचारण न्यायालय को यह अधिकार प्रदान करती है कि वह किसी अन्य

व्यक्ति को चल रहे विचारण में अभियुक्त के रूप में तलब कर सके, जहाँ विचारण के दौरान अंकित साक्ष्य से उस व्यक्ति की कथित अपराध में संलिप्तता प्रतीत होती है। उक्त प्रावधान इस प्रकार है:-

“धारा 319. अन्य व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति जो अपराध के दोषी प्रतीत होते हैं।

(1) जब किसी अपराध की जाँच या विचारण के दौरान साक्ष्य से यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति, जो अभियुक्त नहीं है, ने ऐसा अपराध किया है, जिसके लिए उसे अभियुक्त के साथ एक साथ विचारण किया जा सकता है, तो न्यायालय उस व्यक्ति के विरुद्ध उस अपराध के लिए कार्यवाही कर सकता है, जो उसके द्वारा किया गया प्रतीत होता है।

(2) यदि ऐसा व्यक्ति न्यायालय में उपस्थित नहीं है, तो उसे उक्त उद्देश्य के लिए परिस्थिति के अनुसार गिरफ्तार या तलब किया जा सकता है।

(3) कोई भी व्यक्ति जो न्यायालय में उपस्थित है, भले ही गिरफ्तारी में न हो या तलब पत्र पर न हो, उसे उस अपराध की जाँच या विचारण के उद्देश्य से न्यायालय द्वारा निरुद्ध किया जा सकता है, जो उसके द्वारा किया गया प्रतीत होता है।

(4) जब न्यायालय उपधारा (1) के अंतर्गत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करता है, तो-

(ए) उस व्यक्ति के संबंध में कार्यवाही पुनः आरंभ की जाएगी और साक्षियों को पुनः सुनवाई की जाएगी;

(बी) उपधारा (ए) के प्रावधानों के अधीन, मामला ऐसे आगे बढ़ सकता है जैसे वह व्यक्ति प्रारम्भ में ही अभियुक्त था, जब न्यायालय ने उस अपराध पर संज्ञान लिया था जिसके आधार पर जाँच या विचारण प्रारंभ हुआ।”

11. उपरोक्त का अध्ययन यह दर्शाता है कि यह धारा विचारण न्यायालय को असाधारण शक्ति प्रदान करती है कि वह किसी अन्य व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में तलब कर सके, ताकि वह अन्य अभियुक्तगण के साथ विचारण का सामना करे, जो विचारण न्यायालय के समक्ष हैं। किन्तु माननीय सर्वोच्च न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों ने बार-बार यह कहा है कि इस विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग विरलता से और सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। इस समय, जब विचारण पहले से ही प्रारम्भ हो चुका है, किसी अन्य व्यक्ति को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब करते समय विचारण न्यायालय द्वारा आवश्यक संतोष की डिग्री आरोप गठन के चरण में अपेक्षित मानकों से अधिक होनी चाहिए। अन्य शब्दों में, अभिलेख में उपस्थित साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह संकेत होना चाहिए कि उस व्यक्ति के विरुद्ध “प्रथम दृष्टया” मामले से कहीं अधिक का दृढ़ता से सुझाव देते हैं।

12. इस संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय के वृहद पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का संदर्भ लिया जा सकता है, जो **हरदीप सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य**, (2014) 3 एससीसी 92 में प्रकाशित है, जिसमें प्रश्न (iv) का उत्तर निम्नलिखित प्रकार से गया था:-

“प्रश्न (iv) - धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग करने हेतु आवश्यक संतुष्टि की डिग्री क्या है?

उत्तर-105. धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत शक्ति एक विवेकाधीन एवं असाधारण शक्ति है। इसका प्रयोग विरलता से और केवल उन्हीं मामलों में किया जाना चाहिए जहाँ प्रकरण की परिस्थितियाँ इसकी अपेक्षा करें। इसका प्रयोग इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश का मत है कि कोई अन्य व्यक्ति भी उस अपराध के करने में दोषी हो सकता है। केवल तब जब न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से किसी व्यक्ति के विरुद्ध प्रबल एवं ठोस साक्ष्य प्राप्त हों, तभी इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और इसे सामान्य या असावधान रूप से नहीं अपनाया जाना चाहिए।”

13. यद्यपि, राज्य के विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, विचारण कार्यवाही के दौरान शिकायतकर्ता-अभियोजन साक्षी-1 का बयान आवेदकगण को अतिरिक्त अभियुक्त के रूप में तलब करने के लिए पर्याप्त है, किंतु इस न्यायालय को राज्य के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों में कोई बल नहीं दिखाई देता, क्योंकि न्यायालय के समक्ष शिकायतकर्ता-अभियोजन साक्षी-1 का बयान नए साक्ष्य के रूप में नहीं माना जा सकता, जो पहली बार सामने आया है और पहले उपलब्ध न था, जब प्राथमिकी अंकित की गई थी या जाँच-पड़ताल की गई थी। धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता में प्रयुक्त “साक्ष्य” शब्द में अस्पष्ट कथन शामिल नहीं होगा, और अभियोजन साक्षी के बयान की वास्तविकता का परीक्षण उसकी सार्थकता के आधार पर किया जाना आवश्यक है।

14. हरदीप सिंह के प्रकरण (उपरोक्त) के निर्णय का पुनः अनुसरण माननीय उच्चतम न्यायालय ने **लभुजी अमरतजी ठाकर एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य एवं एक अन्य**, (2019) 12 एससीसी 644 में किया, जिसमें यह स्थापित किया गया कि धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रक्रिया का निर्गमन विचारण न्यायालय द्वारा सामान्य अथवा असावधान रूप से नहीं किया जा सकता, क्योंकि हरदीप सिंह के प्रकरण के निर्णय के अनुसार, विचारण न्यायालय को सुनवाई के दौरान अंकित साक्ष्यों के सार का विश्लेषण करना आवश्यक है। प्रासंगिक टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं:

“13. उच्च न्यायालय इस बात पर भी संतुष्ट नहीं है कि अभिलेख में उपस्थित साक्ष्य, पीड़ित और उसकी माता के बयानों से, अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अपराध का प्रथम दृष्टया मामला भी बनता है। केवल यह तथ्य कि न्यायालय के पास धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत किसी ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध कार्यवाही करने की शक्ति है, जिसका नाम प्राथमिकी या आरोप-पत्र में नहीं है, यह नहीं दर्शाता कि जब न्यायालय के समक्ष अंकित

किसी बयान में किसी व्यक्ति का नाम लिया जाए, तो न्यायालय को तात्कालिक रूप से धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रक्रिया जारी करनी होगी। न्यायालय को अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के सार पर विचार करना आवश्यक है, और जैसा कि **हरदीप सिंह (उपरोक्त)** के संविधान पीठ द्वारा निर्धारित किया गया है, यह कसौटी लागू करनी होगी कि "आरोप गठन के समय अपनाई जाने वाली प्रथम दृष्टया स्थिति से अधिक, किन्तु उस संतुष्टि की सीमा से कम, जहाँ कहा जा सके कि यदि साक्ष्य का खंडन न किया जाए तो दोषसिद्धि होगी।"

15. इसके अतिरिक्त, 14 सितंबर 2007 के आक्षेपित आदेश का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि विचारण न्यायालय ने धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते समय अभियोजन साक्षियों के साक्ष्यों के सार का विश्लेषण करने में विफल रहा। अतः इस न्यायालय को इसमें कोई संकोच नहीं है कि आक्षेपित आदेश दिनांक 14 सितंबर 2007 गंभीर अवैधानिकता और अनुचितता से ग्रसित है तथा इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप किए जाने की आवश्यकता है।

16. परिणामस्वरूप, याचिका सफल होती है और 14 सितंबर 2007 का आक्षेपित आदेश एतद्वारा अपास्त किया जाता है। अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 319 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत प्रस्तुत आवेदन अस्वीकृत किया जाता है।

17. याचिका स्वीकृत की जाती है।

(2025) 1 ILRA 575

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या-724 वर्ष 2012

साथ में

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या-2966 वर्ष 2017

डॉ. राजेश कुमार सिंह और एक अन्य ... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ... प्रत्यर्थीगण

आवेदकों के लिए अधिवक्ता:

सुशील कुमार सिंह

प्रत्यर्थागण के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, मनदीप कुमार मिश्रा, प्रभात, एस.एम. रोयेकवार

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860-धारा 406, 504 और 506-आपराधिक धमकी के बराबर कोई विशिष्ट खतरा नहीं - धारा 504 और 506 के तहत कथित अपराध प्रथम दृष्टया भ०द०वि० की धारा 406 के तहत अपराध का गठन करने के लिए गैर-सामग्री भी अनुपस्थित है, शिकायतकर्ता द्वारा आरोपी व्यक्तियों को कोई स्वैच्छिक सौंपना नहीं है - केवल सिविल वाद का लंबित होना और राशि का भुगतान न करना भ०द०वि० की धारा 406 के तहत अपराध नहीं होगा।

आवेदन की अनुमति है। (ई-9)

उद्धृत वादों की सूची:

वेसा होल्डिंग्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य 2015 में रिपोर्ट किए गए (8) एस.सी.सी. 293

(माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज द्वारा दिया गया)

1. उपरोक्त दोनो आवेदन संबंधित अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत उस चार्जशीट संख्या 160/2010, दिनांक 11 मई, 2010, जो मुकदमा अपराध संख्या 241 of 2010, धारा 406, 504 एवं 506 आईपीसी, पुलिस स्टेशन गाज़ीपुर, जनपद लखनऊ से संबंधित है, तथा चार्जशीट संख्या 160A/2014, दिनांक 14 जुलाई, 2014, जो मुकदमा अपराध संख्या 241 / 2010, धारा 147, 148, 323, 504 एवं 506 आईपीसी, पुलिस स्टेशन गाज़ीपुर, जनपद लखनऊ से संबंधित है—को रद्द करने हेतु दाखिल किए गए हैं, जिन्हें प्रतिद्वन्द्वी पक्षों द्वारा एक-दूसरे के विरुद्ध दर्ज किया गया था। इसके अलावा, आवेदकों ने दिनांक 24 जून, 2010 और 4 सितम्बर, 2014 के संबंधित संज्ञानात्मक आदेशों को भी चुनौती दी है, जिसके द्वारा उन्हें लंबित आपराधिक कार्यवाही में तलब किया गया है।

2. संक्षेप में आवेदनों के लिए अग्रणी तथ्य यह हैं कि सीवरेज ट्रीटमेंट प्लांट (एस.टी.पी) और एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट (ईटीपी) की स्थापना हेतु दो वर्क ऑर्डरमेसर्स सावेन कंसल्टेंसी सर्विसेज़ (इसके बाद "पक्ष संख्या I" कहा जाएगा) द्वारा मेसर्स इको वाटर सॉल्यूशंस टेक्नोलॉजीज प्राइवेट लिमिटेड (इसके बाद "पक्ष संख्या II" कहा जाएगा) को क्रमशः दिनांक 23.06.2008 एवं 04.07.2008 के पत्रों के माध्यम से प्रदान किए गए। उक्त कार्यों के संबंध में दोनों कंपनियों के मध्य विवाद उत्पन्न हुआ और वाद-विवाद भी आरम्भ हो गया। दोनों पक्षों द्वारा

एक-दूसरे के विरुद्ध दायर सिविल वादों के अतिरिक्त, अपने अभियोजन के लिए दोनों पक्षों ने उपर्युक्त उल्लिखित दो एफ.आई.आर. के माध्यम से एक-दूसरे के विरुद्ध आपराधिक मामले भी दर्ज कराए। आवेदन धारा 482 के अंतर्गत संख्या 724/2012, *डा राजेश कुमार सिंह और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य* में, आवेदक क्रमशः "पक्ष संख्या-I" के निदेशक और संयुक्त निदेशक हैं, जबकि सच्चिदानंद राय और गुना केश राय "पक्ष संख्या-II" के निदेशक हैं।

3. मामला अपराध संख्या-241/2010 शिकायतकर्ता गुना केश राय द्वारा दी गई 3 अप्रैल, 2010 की एक लिखित शिकायत के आधार पर दर्ज किया गया था, जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि उनकी कंपनी "पक्ष सं 2. बी-38, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेज-I, नई दिल्ली में स्थित को 409-ए, 426-बी, चौथी मंजिल, सहारा शॉपिंग सेंटर, फैजाबाद रोड, लखनऊ में स्थित पक्ष सं 1 से एक कार्य आदेश प्राप्त हुआ। और दोनों कार्य आदेशों का कुल मूल्य क्रमशः 20,00,000 रुपये और 47,00,000 रुपये था, और इसके एवज में 23,80,500 रुपये की राशि बकाया है। पैसे मांगने पर देनदारों ने शिकायतकर्ता को गाली दी और धमकियां दीं, जिसने फॉर्म 'सी' जारी करने से भी इनकार कर दिया। मोटे तौर पर, इन आरोपों पर, शिकायतकर्ता ने आरोपी, यानी "पक्ष संख्या I" के निर्देशक(ओं) पर मुकदमा चलाने की अपील की, जिसके बाद आई.पी.सी की धारा 406, 504 और 506 के तहत दंडनीय अपराध करने के आरोप में मामला दर्ज किया गया।

4. विवेचना पूरी होने के बाद, आरोपी डॉ. राजेश कुमार सिंह और सतेंद्र सिंह के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था, जिसके बाद विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कस्टम, लखनऊ द्वारा 24 जून, 2010 को आक्षेपित संज्ञान आदेश पारित किया गया था। इसलिए, यह आवेदन धारा 482 के अंतर्गत संख्या-724 वर्ष 2012 है।

5. दूसरी एफ.आई.आर डॉ. राजेश कुमार सिंह के आग्रह पर दर्ज की गई थी, जिन्होंने 3 अप्रैल, 2010 को पुलिस को एक लिखित शिकायत भी दी थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उन्होंने 'पार्टी नं. II' के लिए सीवरेज ट्रीटमेंट प्लांट्स (एसटीपी) और एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट्स (ईटीपी) स्थापित करने का आदेश दिया था, लेकिन उक्त फर्म ने काम अधूरा छोड़ दिया, और इस संबंध में, डिफॉल्टिंग फर्म को कानूनी नोटिस जारी किया गया। विवाद के संबंध में, सच्चिदानंद राय ने शिकायतकर्ता को पुलिस स्टेशन गाज़ीपुर बुलाया, जहां उन्होंने शिकायतकर्ता के खिलाफ अपशब्दों का प्रयोग किया और मुद्दे पर चर्चा करने से इनकार कर दिया। बाद में, आरोपी सच्चिदानंद राय और कुछ अज्ञात व्यक्तियों ने शिकायतकर्ता की कंपनी के अधिकारियों/निदेशकों की अनुपस्थिति में उनके कार्यालय में आकर यह घोषणा की कि वे पैसे वसूलना जानते हैं। आरोपी उ.प्र. 65-के 0009 'सफारी', उ.प्र. 32-सीएन.3327 'टवेरे' और 'स्कॉर्पियो' (नंबर ज्ञात नहीं) वाहनों में आए थे। आरोपी ने डॉ. अर्पिता सिन्हा, जूनियर मैनेजर के साथ भी बदसलूकी की। इन आरोपों के आधार पर, पुलिस स्टेशन गाज़ीपुर, लखनऊ में आई.पी.सी की धाराओं 147, 148, 323, 504 और 506 के तहत अपराध के लिए FIR दर्ज की गई।

6. इस मामले की विवेचना पूरी होने के बाद, पुलिस ने प्रारंभिक रूप से आरोपी के खिलाफ कोई अभियोजन सामग्री नहीं पायी, और आरोपी को निर्दोष साबित करते हुए धारा 173(2) दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अंतिम रिपोर्ट दायर की गई, लेकिन उक्त अंतिम रिपोर्ट के खिलाफ पीड़ित ने विरोध याचिका दायर की, और इसके बाद, विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, कस्टम, लखनऊ ने 29 जनवरी, 2014 को आगे की जांच का आदेश दिया (परिशिष्ट संख्या '7')।

7. उक्त आदेश के सम्मान में, विवेचनाधिकारी ने फिर से आरोपों की जांच की और 14 जुलाई, 2014 को आरोपी के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया, जिसके बाद 4 सितंबर, 2014 को आक्षेपित संज्ञान आदेश पारित किया गया। इसलिए, यह आवेदन धारा अंतर्गत 482 संख्या-2966 वर्ष 2017 के तहत है।

8. श्री सुशील कुमार सिंह, जो आवेदन संख्या 724/2012 के तहत आवेदकों की ओर से उपस्थित प्रख्यात अधिवक्ता हैं, ने तर्क दिया कि आवेदक एक प्रसिद्ध "पार्टी संख्या I" के निदेशक हैं, जिन्हें मैडिकल कॉलेज कन्नौज में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट (एसटीपी) और एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट (ईटीपी) स्थापित करने का ठेका दिया गया था और उक्त कार्य को अंजाम देने के लिए उन्होंने आगे "पक्ष संख्या II" को नियुक्त किया था और उक्त कार्य को निर्धारित समय में पूरा करना था, लेकिन यह कार्य पूरा नहीं हो पाया। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि हालांकि यह कार्य "पक्ष संख्या II" द्वारा शुरू किया गया था और अधूरा छोड़ दिया गया, जिससे पक्षों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ और "पक्ष संख्या II" को एक कानूनी नोटिस जारी किया गया, फिर भी बाद में "पक्ष संख्या I" द्वारा 21 अप्रैल, 2011 को लेखा-जोखा प्रस्तुत करने के लिए एक सिविल मुकदमा दायर किया गया था, जो वर्तमान में लखनऊ में वाणिज्यिक न्यायालय में निपटारे के लिए लंबित है। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि दूसरी तरफ ने भी लंबित वसूली के लिए दो मामले दाखिल किए हैं, अर्थात् पहला मामला 21 अप्रैल, 2011 को ₹38,57,512/- की वसूली के लिए नई दिल्ली में दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष दायर किया गया, इसके बाद दूसरा मामला 5 मई, 2011 को नई दिल्ली के साकेत जिला न्यायालय में ₹5,25,786/- की वसूली के लिए दायर किया गया।

9. विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार सिंह के अनुसार, साकेत कोर्ट में दायर मुकदमे पर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 10 के विचाराधीन होने के संदर्भ में रोक लगा दी गई थी, क्योंकि उक्त मुकदमे में उठाए गए मुद्दे लखनऊ में अपने मुकदमे में लागू करने वाले आवेदकों डॉ. राजेश कुमार सिंह और सतेंद्र सिंह द्वारा उठाए गए मुद्दों के समान थे। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि स्पष्ट रूप से यह पूरी तरह से पक्षों के बीच एक सिविल विवाद है और आवेदकों पर दबाव डालने के लिए एक परोक्ष उद्देश्य से आक्षेपित प्राथमिकी दर्ज की गई है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया है कि विवेचनाधिकारी ने आक्षेपित प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों का विश्लेषण नहीं किया है, जिसने द०प्र०स० की धारा 173 (2) के तहत आरोप पत्र दायर किया है, जिसके बाद धारा 482 संख्या-724 वर्ष 2012 के तहत आवेदन वाले याचिका के आवेदकों के खिलाफ आक्षेपित संज्ञान आदेश पारित किया गया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि कथित अपराध नहीं बनते हैं, इसलिए, आवेदकों ने आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

10. प्रार्थना का विरोध श्री मंदीप कुमार मिश्रा, विद्वान अधिवक्ता, परिवादी-विपक्षी संख्या 2 गुना केश राय (आवेदन सं० 482 की धारा के तहत संख्या 2966 वर्ष 2017; जिसका शीर्षक सच्चिदानंद राय और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य है, में आवेदक संख्या 2) द्वारा किया गया है, जिन्होंने यह तर्क दिया है कि जब "पार्टी संख्या I" के निदेशक(कों) द्वारा इस बात पर विवाद नहीं किया जाता है कि उनकी कंपनी द्वारा "पार्टी संख्या II" के पक्ष में जारी किए गए कार्य आदेश के अनुसरण में, कार्य किया गया था, और "पार्टी संख्या II" कंपनी द्वारा किए गए व्यय का भुगतान "पार्टी संख्या I" द्वारा नहीं किया गया है, पार्टियों के बीच लिखित समझौते की शर्तों के अनुसार तो बिल्कुल नहीं, इसलिए, यह "विश्वास का हनन" माना जाता है और प्रथम दृष्टया अभियुक्त के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 406 के तहत दंडनीय मामला बनता है। विद्वान अधिवक्ता ने आगे बताया कि जब भी देनदारों से पैसे की मांग की गई, तो उन्होंने धमकी दी, इसलिए भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत दंडनीय अपराध भी बनते हैं और विचारण न्यायालय ने उक्त अपराधों का संज्ञान सही लिया है, और इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय द्वारा धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग में कोई हस्तक्षेप अपेक्षित नहीं है। विद्वान अधिवक्ता प्रार्थना करते हैं कि याचिका संख्या आवेदन 482 की धारा के तहत संख्या 724 वर्ष 2012 को खारिज कर दिया जाए।

11. श्री मनदीप कुमार मिश्रा, अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि "पक्ष संख्या I" के निदेशक(कों) के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट 3 अप्रैल, 2010 की शिकायत पर आधारित है, और जवाबी कार्रवाई में, शिकायतकर्ता डॉ. राजेश कुमार सिंह ने उन्हें केस अपराध संख्या 241ए/2010 के माध्यम से झूठा फंसाया है, जो कथित तौर पर भारतीय दंड संहिता की धारा 147, 148, 323, 504 और 506 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए पंजीकृत किया गया था। विद्वान अधिवक्ता का निवेदन है कि जांच पूरी होने के बाद, अभियुक्तों के पक्ष में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(2) के तहत एक अंतिम रिपोर्ट दायर की गई थी, जिसमें उन्हें निर्दोष घोषित किया गया था, लेकिन आगे की जांच करने के बाद, सच्चिदानंद राय और गुना केश राय के खिलाफ दिनांक 14 जुलाई, 2014 का आरोपित आरोप पत्र संख्या 160ए/2014 दायर किया गया है।

12. विद्वान अधिवक्ता श्री मनदीप कुमार मिश्रा ने तर्क दिया है कि आक्षेपित प्राथमिकी को पढ़ने से पता चलेगा कि भ०द०वि० की धारा 147, 148, 323, 504 और 506 के तहत दंडनीय कथित अपराधों का गठन करने के लिए सामग्री नहीं बनाई गई है, इसलिए, आवेदकों ने आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की मांग करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है, जो कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है। वह प्रार्थना करता है कि धारा अंतर्गत 482 आवेदन संख्या-2966 वर्ष 2017 के तहत आवेदन की अनुमति दी जाए और 14 जुलाई, 2014 के आरोप पत्र संख्या-160-ए के आधार पर आक्षेपित आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर दिया जाए।

13. जवाब में, प्रतिपक्षी संख्या-2-शिकायतकर्ता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार सिंह ने तर्क दिया है कि, भले ही, यह पक्षों के बीच एक सिविल विवाद है, लेकिन अभियुक्तों ने हिंसा का सहारा लिया, जिन्होंने अपने साथियों के साथ शिकायतकर्ता की कंपनी के परिसर में प्रवेश किया और कर्मचारियों के साथ

दुर्व्यवहार किया और धमकी दी, इसलिए आपराधिक मामला भी एक साथ आगे बढ़ सकता है। इस संबंध में, विद्वान अधिवक्ता ने "पक्ष संख्या I" की जूनियर मैनेजर डॉ. अर्पिता सिन्हा का बयान प्रस्तुत किया और बताया कि अभियुक्तों ने उनके साथ दुर्व्यवहार किया और "पक्ष संख्या I" कंपनी के निदेशक(कों) के ठिकाने के बारे में पूछा, ताकि उनसे जबरन पैसे की वसूली की जा सके। उन्होंने निवेदन किया कि अभियुक्तों के पक्ष में पहले दायर की गई अंतिम रिपोर्ट उचित विवेचना पर आधारित नहीं थी, इसलिए मजिस्ट्रेट ने आगे की जांच का निर्देश दिया, और अंत में, अभियुक्तों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया है। वह प्रार्थना करते हैं कि धारा अंतर्गत 482 आवेदन संख्या 2966 वर्ष 2017 को खारिज कर दिया जाए।

14. राज्य के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि दो प्राथमिकी दो अलग-अलग घटनाओं पर आधारित हैं और पक्षों के बीच विवाद मूल रूप से अनुबंध के उल्लंघन के लिए शुरू हुआ था, लेकिन दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के खिलाफ आक्रामकता दिखाई है, और चूंकि ये सभी अपराध संज्ञेय हैं, इसलिए, संबंधित प्राथमिकी दर्ज की गई थी। राज्य के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पूरी तरह से विवेचना के बाद, दो घटनाओं के संबंध में सबूत एकत्र किए गए थे, जिसके बाद दोनों पक्षों को अलग-अलग मुकदमे का सामना करने के लिए भेजा गया है। उन्होंने बताया है कि इन मामलों में विवादित तथ्य शामिल हैं, जिन्हें केवल सबूतों के आधार पर प्रभावी ढंग से पता लगाया जा सकता है, इसलिए, वह प्रार्थना करता है कि दोनों आवेदनों को खारिज कर दिया जाए।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और उनके तर्कों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि जहां तक दोनों कंपनियों "पक्ष सं 1 और पक्ष सं 2" के बीच व्यावसायिक संबंधों की बात है, यह विवादित नहीं है, जो एक लिखित समझौते पर आधारित है। इस वाणिज्यिक विवाद के लिए, दोनों प्रतिद्वंद्वी पक्षों ने एक-दूसरे पर आरोप लगाए हैं और नुकसान उठाने का दावा किया है, लेकिन माना जाता है कि पक्ष पहले ही सिविल न्यायालय के समक्ष पहुंच चुके हैं, जिन्होंने अपने-अपने दीवानी मुकदमे दायर किए हैं, या तो खातों के भुगतान या धन की बरामदगी की मांग कर रहे हैं। जहाँ तक दोनों कंपनियों के बीच लिखित अनुबंध से उत्पन्न होने वाले अधिकारों का संबंध है, वे सिविल न्यायालय द्वारा निर्धारित किए जाएंगे और सुनवाई के दौरान, दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा यह भी उचित रूप से कहा गया है कि "पक्ष संख्या I" द्वारा दायर पहला मुकदमा जो लखनऊ की वाणिज्यिक न्यायालय में लंबित है, एक उन्नत चरण में पहुँच गया है, क्योंकि दोनों पक्षों ने अपने-अपने साक्ष्य प्रस्तुत कर दिए हैं।

16. इसी प्रकार, "पक्ष संख्या II" द्वारा दिल्ली में दायर किए गए दो मुकदमों में से, केवल एक मुकदमे में कार्यवाही चल रही है, जबकि दूसरा रोक दिया गया है और "पक्ष संख्या I" के खिलाफ उनकी वसूली के दावे का निर्णय भी सिविल न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

17. अब, जब 3 अप्रैल, 2010 की लिखित शिकायत की समीक्षा की जाए जो कि शिकायतकर्ता गुणा केश राय द्वारा दी गई थी, इस न्यायालय को यह लगता है कि इसमें केवल "पक्ष सं. I" द्वारा "पक्ष सं. II" के पक्ष में कार्य आदेश देने का विवरण है और अनुबंध का मूल्य तथा बकाया ऋण राशि को निर्दिष्ट किया गया है।

धमकियाँ देने के संबंध में आरोप स्पष्ट नहीं हैं, और यहां तक कि घटना का स्थान भी प्रकट नहीं किया गया है। शिकायतकर्ता ने केवल उपयुक्त कार्रवाई के लिए प्रार्थना की है, लेकिन इस न्यायालय की विचाराधीन राय में, किसी विशिष्ट धमकी के अपराधात्मक रूप में उपस्थित न होने के कारण, धारा 504 और 506 के तहत कथित अपराध प्रथमतः भी साबित नहीं होते।

18. इसी तरह, भ०द०वि० की धारा 406 के तहत दंडनीय अपराध का गठन करने के लिए सामग्री भी अनुपस्थित है, क्योंकि यह शिकायतकर्ता गुना केश राय द्वारा आरोपी व्यक्तियों को किसी स्वैच्छिक रूप से सौंपने का मामला नहीं है। केवल इसलिए कि, पक्षों के बीच सिविल विवाद चल रहा है, और शिकायतकर्ता के अनुसार, कुछ राशि बकाया है और उक्त राशि का भुगतान न करना, कम से कम, भ०द०वि० की धारा 406 के तहत दंडनीय अपराध नहीं होगा। भ०द०वि० की धारा 405 में निहित "आपराधिक विश्वासघात" की परिभाषा निम्नानुसार है: -

"405. आपराधिक विश्वासघात .?"

जो कोई भी किसी भी प्रकार से किसी संपत्ति के साथ, या किसी संपत्ति पर किसी प्रभुत्व के साथ, ईमानदारी से दुरुपयोग करता है या उस संपत्ति को अपने उपयोग के लिए परिवर्तित करता है, या किसी कानून के दिशानिर्देश का उल्लंघन करते हुए उस संपत्ति का दुरुपयोग या निपटान करता है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि यह विश्वास कैसे निभाया जाना चाहिए, या किसी कानूनी अनुबंध, स्पष्ट या निहित, के उल्लंघन में जो उसने इस विश्वास को निभाने के संबंध में किया है, या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने देता है, वह , "आपराधिक विश्वासघात" करता है।

19. उपरोक्त का अध्ययन करने पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि न तो शिकायतकर्ता या फर्म "पार्टी नं. II" द्वारा कोई प्रभार दिया गया है, और न ही "पार्टी नं. I" या उसके निदेशक(यों) द्वारा किसी प्रकार का दुरुपयोग हुआ है जिससे विश्वास का उल्लंघन हुआ हो, इसलिए, आवेदन संख्या 482 संख्या 724/2012 में आवेदकों का अभियोजन अनुचित है और उनके खिलाफ आपराधिक कार्यवाही की निरंतरता को रद्द किया जाना चाहिए।

20. अब, जबकि इस न्यायालय ने 3 अप्रैल, 2010 को डॉ. राजेश कुमार सिंह द्वारा पुलिस के समक्ष 'पार्टी संख्या II' के निदेशकों के खिलाफ प्रस्तुत अन्य शिकायत का विश्लेषण किया, तो यह पाया कि मुख्य रूप से शिकायतकर्ता ने अपने अनुबंध को समाप्त न करने और इसके परिणामस्वरूप हुई हानि के संबंध में अपनी शिकायत उठाई है। चूंकि शिकायतकर्ता ने स्वयं खातों की मांग के लिए एक मुकदमा दायर किया है, जो पहले ही अंतिम चरण में पहुँच चुका है, इस न्यायालय को यह लगता है कि 'पार्टी संख्या II' के निदेशकों के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही की निरंतरता भी उचित नहीं है, विशेष रूप से जब शिकायतकर्ता ने किसी भी आपराधिक धमकी का आरोप नहीं लगाया है।

21. सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 3 अप्रैल, 2010 की शिकायत का अध्ययन करने पर पता चलता है कि शिकायतकर्ता ने केवल आरोपी द्वारा की गई बदसलूकी का आरोप लगाया है और इसे पीड़िता को धमकाने के रूप में नहीं समझा जा सकता, क्योंकि असभ्यता या अनुचित व्यवहार पीड़िता को अपमान का अनुभव करा सकता है, लेकिन यह सख्ती से धारा 504 या 506 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के रूप में नहीं आएगा। जूनियर मैनेजर डॉ. अर्पिता सिन्हा, का बयान, जो शिकायत के चार साल बाद दर्ज किया गया, भी आवश्यक तथ्यों में कमी है और विशेष नहीं है, इसलिए इसे 'पक्ष सं. II' के निदेशक(यों) के अभियोजन के लिए भरोसा योग्य नहीं माना जा सकता।

22. इस मोड़ पर, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य के मामले में आपराधिक अपील संख्या 2069 वर्ष 2012 में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया जा सकता है, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के संदर्भ में एक समान मुद्दे की जांच करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणियाँ कीं:-

"7. संहिता की धारा 482 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को सतर्क रहना चाहिए। इस शक्ति का उपयोग कम ही किया जाना चाहिए और केवल किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के उद्देश्य से किया जाना चाहिए। कि क्या कोई शिकायत एक आपराधिक अपराध का खुलासा करती है या नहीं, यह उसमें कथित तथ्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है। आपराधिक अपराध के आवश्यक तत्व मौजूद हैं या नहीं, इसका निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है। सिविल लेनदेन का खुलासा करने वाली शिकायत में भी आपराधिक रंग हो सकता है। लेकिन उच्च न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या एक विवाद जो अनिवार्य रूप से दीवानी प्रकृति का है, उसे आपराधिक अपराध का जामा पहनाया गया है। ऐसी स्थिति में, यदि कोई दीवानी उपचार उपलब्ध है और वास्तव में अपनाया गया है जैसा कि इस मामले में हुआ है, तो उच्च न्यायालय को न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में संकोच नहीं करना चाहिए।"

23. वेसा होल्डिंग्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य 2015 (8) एस.सी.सी. 293 में रिपोर्ट किए गए मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पक्षों के बीच सिविल विवादों के संदर्भ में कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग की जांच की और निम्नलिखित अवलोकन किए: -

"9. यह सच है कि तथ्यों का एक दिया गया समूह एक दीवानी गलती के साथ-साथ एक आपराधिक अपराध भी बना सकता है और केवल इसलिए कि शिकायतकर्ता के पास सिविल उपचार उपलब्ध हो सकता है, यह अपने आप में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का आधार नहीं हो सकता है। वास्तविक परीक्षण यह है कि क्या शिकायत में लगाए गए आरोप धोखाधड़ी के आपराधिक अपराध का खुलासा करते हैं या नहीं। वर्तमान मामले में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे यह पता चले कि शुरुआत में ही अभियुक्त व्यक्तियों की ओर से धोखा देने का कोई इरादा था जो भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के तहत अपराध के लिए एक पूर्व शर्त है। हमारे विचार

में शिकायत किसी भी आपराधिक अपराध का खुलासा नहीं करती है। आपराधिक कार्यवाही को तब प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए जब यह दुर्भावनापूर्ण पाई जाती है या अन्यथा न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होती है। इस शक्ति का प्रयोग करते समय वरिष्ठ न्यायालयों को भी न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने का प्रयास करना चाहिए। हमारी राय में, इन तथ्यों के मद्देनजर पुलिस जांच को जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा और उच्च न्यायालय ने कार्यवाही को रद्द करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने में त्रुटि की।

24. इसके अलावा, हरियाणा राज्य और अन्य में माननीय सर्वोच्च न्यायालय बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य, 1991 (1) आरसीआर (आपराधिक) 383 : 1992 पूरक (1) सर्वोच्च न्यायालय के मामले 335 ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के लिए सिद्धांतों और दिशानिर्देशों को निर्धारित किया था। निर्णय का प्रासंगिक भाग नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

"उदाहरण के तौर पर मामलों की निम्नलिखित श्रेणियाँ बताई जा सकती हैं जिनमें उच्च न्यायालय द्वारा किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, हालांकि कोई सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित, सुनिश्चित और लचीले दिशानिर्देश या कठोर सूत्र निर्धारित करना और उन असंख्य प्रकार के मामलों की विस्तृत सूची देना संभव नहीं हो सकता है जिनमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए:-

(1) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें ज्यों का त्यों मान लिया जाए और पूरी तरह से स्वीकार कर लिया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट और अन्य सामग्रियों, यदि कोई हों, जो प्राथमिकी के साथ हैं, एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करती हैं, जो संहिता की धारा 155(2) के दायरे में एक मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा पुलिस अधिकारियों द्वारा धारा 156(1) के तहत जांच को उचित ठहराती हों।

(3) जहाँ FIR या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के घटित होने का खुलासा नहीं करते हैं और अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

(4) जहाँ, प्राथमिकी में लगाए गए आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, बल्कि केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, तो संहिता की धारा 155(2) के तहत परिकल्पित मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना एक पुलिस अधिकारी द्वारा कोई जांच की अनुमति नहीं है।

(5) जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं जिसके आधार पर कोई भी विवेकपूर्ण व्यक्ति कभी भी इस उचित निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है कि अभियुक्त के खिलाफ कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहां संहिता या संबंधित अधिनियम (जिसके तहत एक आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) के किसी भी उपबंध में संस्था के लिए एक स्पष्ट कानूनी रोक लगाई गई है और कार्यवाही की निरंतरता और/या जहां संहिता या संबंधित अधिनियम में विशिष्ट प्रावधान है, पीड़ित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावी निवारण प्रदान करता है।

(7) जहां एक आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से भाग ली जाती है और/या जहां अभियुक्त से प्रतिशोध लेने के लिए एक गुप्त उद्देश्य के साथ और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे नाराज करने की दृष्टि से कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की जाती है।

हम इस आशय की सावधानी भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत कम और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि न्यायालय प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू करने में न्यायसंगत नहीं होगी और यह कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियां न्यायालय को अपनी इच्छा या मनमर्जी के अनुसार कार्य करने के लिए एक मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।

25. इस प्रकार, इस न्यायालय की सुविचारित राय में, यह मामला कानून के दुरुपयोग से बचने के लिए धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के लिए भी एक उपयुक्त मामला है।

26. परिणामस्वरूप, दोनों आवेदन सफल होते हैं और मुकदमा अपराध संख्या 241/2010 से उत्पन्न होने वाले आरोप पत्र संख्या 160/2010 दिनांक 11 मई, 2010 के साथ-साथ संज्ञान आदेश दिनांक 24 जून, 2010, जिसमें धारा 406, 504 और 506 भारतीय दंड संहिता, पुलिस स्टेशन गाजीपुर, लखनऊ शामिल हैं, और केस अपराध संख्या 241ए/2010 से उत्पन्न होने वाले आरोप पत्र संख्या 160ए/2014 दिनांक 14 जुलाई, 2014 के साथ-साथ संज्ञान आदेश दिनांक 04 सितंबर, 2014, जिसमें धारा 147, 148, 323, 504 और 506 भारतीय दंड संहिता, पुलिस स्टेशन गाजीपुर, लखनऊ शामिल हैं, और उनसे उत्पन्न होने वाली संपूर्ण कार्यवाही, जो विशेष मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, सीमा शुल्क, लखनऊ की न्यायालय में लंबित है, को रद्द करने का आदेश दिया जाता है।

27. आवेदनों की अनुमति है।

(2025) 1 ILRA 582

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज

धारा 482 के अंतर्गत आवेदन संख्या-2440 वर्ष 2016

राम सूरत सिंह और अन्य

... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य

... प्रत्यर्थागण

आवेदकों के लिए अधिवक्ता:

राजेन्द्र प्रसा मिश्रा, राकेश कुमार सिंह

प्रत्यर्थागण के लिए अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता, देवी प्रसाद मोर्य

आपराधिक कानून - दंड प्रक्रिया संहिता 1973 - धारा 482-आवेदकों-अभियुक्तों के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट-आरोप जाली समझौते से संबंधित हैं-कथित भूमि को अपने पक्ष में दर्ज करवा लिया-लेकिन एक बार जब उक्त चकबंदी कार्यवाही का उस दस्तावेज के आधार पर अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन किया गया-तो यह विवेकपूर्ण नहीं लगता कि शिकायतकर्ता उन कार्यवाहियों को चुनौती नहीं देगा-उनके बयानों में विसंगति-विचारण न्यायालय ने अभियुक्तों को तलब करते समय केवल गवाहों के बयानों का संदर्भ दिया है-न कि उन बयानों के सारतत्त्व पर ध्यान दिया है - आक्षेपित आदेश संपोषणीय नहीं है।

आवेदन की अनुमति है। (ई-9)

उद्धृत वादों की सूची:

1. एसडब्ल्यू पलांटिकर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2002) 1 सर्वोच्च न्यायालय के मामले 241
2. हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य, 1992 एस.सी.सी. (सीआर) 426
3. भजन लाल (उपरोक्त), सलीब उर्फ शालू उर्फ सलीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 947 के मामले में

(माननीय न्यायमूर्ति श्री मनोज बजाज द्वारा दिया गया)

1. आवेदक-आरोपी ने यह आवेदन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत दायर किया है, जिसमें शिकायत मामले संख्या 1228/2011, जिसका शीर्षक उदय राज बनाम राम सूरत सिंह और अन्य है, को खारिज करने के साथ-साथ 27 फरवरी, 2016 को अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-II, फैजाबाद द्वारा पारित विवादास्पद सम्मन आदेश को रद्द करने का अनुरोध किया गया है, जिसके तहत उन्हें धारा 504 और 506 आईपीसी के तहत दंडनीय अपराधों के कथित अपराध के लिए समनित किया गया था और उससे उत्पन्न पूरे कार्यवाही को।

2. याचिका के लिए संक्षेप में तथ्य यह हैं कि शुरू में उदय राज-प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दी गई शिकायत के आधार पर, एक केस अपराध संख्या-42 वर्ष 2011, धारा 419, 420, 467, 468, 471, 120-बी, 504, 506 भ०द०वि० और धारा 3 (1) (प्रदर्श) अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम के तहत, 1989, थाना- हैदरगंज, जिला फैजाबाद (अनुबंध संख्या-8) दर्ज किया गया था, जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि वह अनुसूचित जाति श्रेणी से संबंधित है और एक गरीब व्यक्ति है। गांव बैटिकाला, थाना हैदरगंज, जिला फैजाबाद में स्थित गाटा संख्या-638 में शामिल भूमि उसकी मां के नाम पर है, और आरोपी राम सूरत सिंह ने अपने बेटों के साथ चकबंदी विभाग के अधिकारियों पर प्रभाव डाला, और शिकायतकर्ता की मां की ओर से कथित तौर पर जाली समझौते का उपयोग करके उक्त भूमि को उनके पक्ष में दर्ज कराया। चकबंदी विभाग के अधिकारियों ने भी उनके साथ सांठगांठ की और इस संबंध में, 28 नवंबर, 2010 को जब शिकायतकर्ता ने राम सूरत सिंह से जानकारी मांगी, तो जवाब में उन सभी ने उनकी जाति के नाम पर उन्हें गाली दी और धमकियां दीं। पुलिस को शिकायत दी गई, लेकिन कोई कार्रवाई नहीं की गई, इसलिए, शिकायतकर्ता ने द०प्र०स० की धारा 156 (3) का सहारा लिया, जिसके बाद उपरोक्त प्राथमिकी दर्ज की गई।

3. मामला दर्ज होने के बाद, जांच की गई, और अंत में, आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कुछ भी प्रतिवादजनक नहीं पाया गया, जिन्हें 28 अप्रैल, 2011 की धारा 173 (2) द०प्र०स० (अनुबंध संख्या-11) के तहत अंतिम रिपोर्ट के माध्यम से निर्दोष घोषित किया गया था।

4. उक्त अंतिम रिपोर्ट से व्यथित होकर, शिकायतकर्ता ने दिनांक 1.7.2011 (अनुलग्नक संख्या-12) को एक विरोध याचिका दायर की, और उसके बाद, शिकायत के समर्थन में, उसने द०प्र०स० की धारा 200 के तहत अपना बयान दर्ज कराया, और उसकी मां-फगुना देवी भी उसके पक्ष में दिखाई दी। शिकायत की सामग्री और समन से पहले के सबूतों को ध्यान में रखते हुए, केवल तीन आरोपी व्यक्तियों (आवेदकों) को भ०द०वि० की धारा 504 और 506 के तहत दंडनीय अपराधों करने के आरोप में तलब किया गया था, जबकि शिकायत में आरोपित बाकी आरोपियों के खिलाफ कोई सबूत नहीं पाया गया था।

5. आवेदक-अभियुक्त के अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि शिकायतकर्ता का पूरा मामला दस्तावेजी सामग्री पर आधारित है और प्राथमिकी (अनुलग्नक संख्या-8) दर्ज होने के बाद शुरू में पुलिस द्वारा शिकायत में निहित

आरोपों की पूरी तरह से जांच की गई थी और आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कुछ भी नहीं पाया गया था। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि शिकायतकर्ता परस्पर विरोधी रुख अपना रहा है, जिसने शुरू में प्राथमिकी में निहित अपने संस्करण में राम सूरत सिंह और चकबंदी विभाग के अधिकारियों के खिलाफ आरोप लगाए हैं, लेकिन विरोध याचिका/शिकायत में, उसने आवेदक संख्या-2 और 3 को भी फंसाने का फैसला किया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि 27 फरवरी, 2016 को समन आदेश यांत्रिक तरीके से पारित किया गया है, और मामले की पृष्ठभूमि, साथ ही अभिलेखों पर सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच नहीं की गई है, इस संतुष्टि को दर्ज करने के लिए बहुत कम है कि आरोपी के खिलाफ प्रथम दृष्टया मामला बनाया गया है। अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया है कि आरोपों के अनुसार, चकबंदी कार्यवाही से संबंधित पक्षों के बीच विवाद, लेकिन उक्त विवाद अंततः आवेदकों के पक्ष में निर्णय दिया जाता है, इसलिए, यह स्पष्ट है कि अभियुक्त के अभियोजन पक्ष में दुर्भावना के साथ भाग लिया गया है। अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित आदेश कानून के स्थापित सिद्धांतों के खिलाफ है, इसलिए, यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करता है।

6. याचिका का नोटिस विपक्षी संख्या 2-शिकायतकर्ता को जारी किया गया था, और 22 दिसंबर, 2016 की कार्यालय रिपोर्ट के अनुसार, शिकायतकर्ता को प्रभावी ढंग से तामील किया गया था, और उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए, श्री देवी प्रसाद मौर्या, अधिवक्ता द्वारा वकालतनामा दायर किया गया था। लेकिन, आज तक, शिकायतकर्ता की ओर से कोई जवाबी हलफनामा दायर नहीं किया गया है, और आज भी शिकायतकर्ता का प्रतिनिधित्व करने के लिए कोई उपस्थित नहीं है।

7. आवेदकों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और उनकी दलीलों पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय ने पाया कि प्राथमिकी में शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोप सही नहीं पाए गए और आरोपी के खिलाफ दोषी पाए गए, जिसके परिणामस्वरूप आवेदक-अभियुक्तों के पक्ष में अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई, जिन्हें निर्दोष घोषित किया गया। हालांकि, प्राथमिकी के साथ-साथ शिकायत में भी आरोप जाली समझौते से संबंधित हैं, जिस पर राम सूरत सिंह द्वारा भरोसा किया गया था, लेकिन एक बार जब उक्त चकबंदी कार्यवाही का उस दस्तावेज के आधार पर अंतिम रूप से न्यायनिर्णयन किया गया, तो यह विवेकपूर्ण नहीं लगता कि शिकायतकर्ता उन कार्यवाहियों को चुनौती नहीं देगा। इस प्रकार, यह फगुना और उसके वंशजों द्वारा उक्त फैसले को स्वीकार करने के बराबर है।

8. इसके अलावा, जालसाजी और धोखाधड़ी से संबंधित आरोपों को भी मजिस्ट्रेट ने अविश्वसनीय माना है, क्योंकि दिनांक 27 फरवरी, 2016 का आक्षेपित सम्मन आदेश केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 504 और 506 के तहत दंडनीय कथित अपराधों से संबंधित है। इसी तरह, अनुसूचित जाति/जनजाति अधिनियम के तहत कथित अपराध से संबंधित आरोप भी नहीं बनते हैं और महत्वपूर्ण गवाहों, अर्थात् उदय राज और फगुना देवी (शिकायतकर्ता की माँ) के बयानों की जाँच करते समय, इस न्यायालय को उनके बयानों में विसंगति मिली है। शिकायतकर्ता उदय राज का बयान 21 अक्टूबर, 2011 को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 200 के तहत दर्ज किया

गया था, जिसमें शिकायतकर्ता को डराने-धमकाने का कोई उल्लेख नहीं है, अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा तो बिल्कुल नहीं, जिन्होंने केवल यह कहा कि जब वह समझौते के बारे में पूछताछ करने राम सूरत सिंह के घर गया, तो उसने उसे उसकी जाति के नाम पर गालियाँ दीं।

9. इसी तरह, फागुना देवी के अन्य कथन से भी शिकायतकर्ता के मामले को कोई मजबूती नहीं मिलती, जो घटना स्थल पर मौजूद नहीं था, और द०प्र०स० की धारा 202 के तहत अदालत के समक्ष अपने बयान में, उसने कहा कि जब उसका बेटा राम सूरत सिंह के घर गया था, तो आवेदक-आरोपी ने उसकी जाति के नाम पर उसके साथ दुर्व्यवहार किया। इस प्रकार, अभिलेखों पर मौजूद सामग्री प्रथम दृष्टया कथित अपराधों को दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं है, लेकिन विचारण कोर्ट ने नियमित तरीके से आरोपी के खिलाफ प्रक्रिया जारी करने के लिए आगे बढ़ाया है। यहां, एसडब्ल्यू पलांटिकर और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (2002) 1 सुप्रीम कोर्ट के मामले 241 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करना उपयोगी होगा। प्रासंगिक टिप्पणियां इस प्रकार हैं: -

"23. कई बार, पक्षकारों द्वारा धारा 200 दंड संहिता के तहत शिकायत दर्ज की जाती है, जिसमें उनका तात्कालिक उद्देश्य या परोक्ष कारण होता है जैसे कि उत्पीड़न करना, प्रतिशोध लेना, आरोपी पर दबाव डालकर उन्हें अपनी शर्तों पर लाना या वाणिज्यिक लेनदेन से संबंधित अनुबंधीय दायित्वों को लागू करना, इसके बजाय वे सिविल अदालतों का सहारा लेते हैं ताकि जल्द से जल्द पैसा वसूल किया जा सके। यह भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि जब पक्षकार कोई ऐसा गलत कार्य करते हैं जो अपराधात्मक तत्वों को पूरा करता है, तो उन्हें यह सोचकर नहीं छोड़ दिया जा सकता कि उनके खिलाफ आपराधिक कार्रवाई नहीं की जा सकती। ट्रस्ट में अपराधपूर्ण विश्वासघात, गबन, धोखाधड़ी या मानहानि जैसे गलत या अवैध कार्यों पर न केवल सिविल बल्कि आपराधिक कार्रवाई भी की जा सकती है, जब शिकायत और शपथपूर्वक बयान से यह स्पष्ट हो जाता है कि अपराध के आवश्यक तत्वों की पुष्टि हो गई है। कुछ परिस्थितियों में पक्षकार केवल सिविल मामले में ही आगे बढ़ सकते हैं यदि कोई अपराध का तत्व नहीं है, लेकिन आरोपी के खिलाफ आपराधिक अभियोजन में नहीं। इसलिए, आदेश जारी करने से पहले, एक मजिस्ट्रेट को धारा 200 और 203 दंड संहिता में निहित प्रावधानों की योजना को ध्यान में रखते हुए, उपरोक्त कानूनी स्थिति को समझते हुए, न्यायसंगत तरीके से और यांत्रिक या नियमित तरीके से नहीं, आदेश पारित करना आवश्यक है।

XX XX XX

XX XX XX

"27 एक मजिस्ट्रेट द्वारा प्रक्रिया जारी करने के समय शक्ति और क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते समय दृष्टिकोण और विचार, आपराधिक प्रक्रिया संहिता के अध्याय XV के तहत धारा 200 से 203 के संदर्भ में होने चाहिए, जिसमें इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में स्पष्ट की गई कानून की स्थिति का उचित ध्यान रखा जाना चाहिए, और जहाँ आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को उस उद्देश्य और प्रयोजन को देखना होता है जिसके लिए उसे उक्त प्रावधान के तहत ऐसी शक्ति

प्रदान की गई है। अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय को आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत किसी भी आदेश को प्रभावी करने, या किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए उपलब्ध है। यह स्थिति होने के कारण, धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग पूर्वोक्त निर्णयों के आलोक में इसके दायरे और विस्तार के अनुरूप होना चाहिए। उचित मामलों में, निराश या प्रतिशोधी मुकदमेबाजों के हाथों न्यायिक प्रक्रिया को उत्पीड़न या उत्पीड़न का एक साधन बनने से रोकने के लिए, अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग न केवल वांछनीय है बल्कि आवश्यक भी है, ताकि अदालत के न्यायिक मंच को किसी भी गलत इरादे के लिए उपयोग करने की अनुमति न दी जाए। जब कोई व्यक्ति प्रक्रिया को रद्द करने के लिए धारा 482 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के तहत उच्च न्यायालय से संपर्क करता है, तो उच्च न्यायालय को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर, जैसा कि ऊपर कहा गया है, उस उद्देश्य और वस्तु को सही मायने में पूरा करने के लिए सावधानी के साथ शक्तियों का प्रयोग करना पड़ता है जिसके लिए वे प्रदान की जाती हैं।"

10. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से यह भी पता चलेगा कि विचारण न्यायालय ने केवल गवाहों के बयानों की दर्ज करने का उल्लेख किया है, और अभियुक्त को बुलाते समय उक्त बयानों के सार पर टिप्पणी करने का विकल्प नहीं चुना है। इस प्रकार, 27 फरवरी, 2016 का आक्षेपित आदेश संपोषणीय नहीं है और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग करता है।

11. इसके अलावा, **हरियाणा राज्य और अन्य बनाम चौधरी भजन लाल और अन्य, 1992 एस.सी.सी. (सीआर) 426** में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने द०प्र०स० की धारा 482 में निहित शक्तियों का बारीकी से विश्लेषण किया था और ऐसी शक्ति के प्रयोग के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश निर्धारित किए थे, और माना था कि जहां आपराधिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण इरादों के साथ की जाती है, कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग उचित है। निर्णय का प्रासंगिक भाग इस प्रकार है: -

"निम्नलिखित श्रेणियों के मामलों को उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है जिसमें अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण शक्ति या धारा 482, द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा या तो किसी भी अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए किया जा सकता है, हालांकि यह बताना संभव नहीं है कि किसी सटीक, स्पष्ट रूप से परिभाषित, कठोर मार्गदर्शक उत्तरण और सख्त सूत्रों या उन अनेक प्रकार के मामलों की थोक सूची देना जिसमें इस शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए:-

(1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया गया हो और पूरी तरह से स्वीकार किया गया हो, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनता है या अभियुक्त के खिलाफ मामला नहीं बनता है।

(2) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोप और अन्य सामग्री, यदि कोई हो, प्राथमिकी के साथ एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं, सिवाय संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में एक मजिस्ट्रेट के आदेश के तहत।

(3) जहाँ प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उसके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के कमीशन का खुलासा नहीं करते हैं और आरोपी के खिलाफ मामला बनाते हैं।

(4) जहाँ, प्राथमिकी में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, लेकिन केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, संहिता की धारा 155(2) के तहत मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना पुलिस अधिकारी द्वारा किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है।

(5) जहाँ प्राथमिकी या शिकायत में की गई शिकायतें इतनी हास्यास्पद और स्वाभाविक रूप से असंभव हों कि किसी बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह निष्कर्ष पर पहुंचना असंभव हो कि आरोपी के खिलाफ कार्रवाई करने के पर्याप्त आधार हैं। हम यह चेतावनी भी देते हैं कि एक आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का उपयोग बहुत ही सावधानीपूर्वक और विवेक के साथ किया जाना चाहिए और वह भी अत्यंत दुर्लभ मामलों में; कि अदालत प्राथमिकी या शिकायत में की गई शिकायतों की विश्वसनीयता या प्रामाणिकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू करने में न्यायसंगत नहीं होगी और कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियाँ अदालत को अपनी मनमर्जी या इच्छानुसार कार्य करने का मनमाना अधिकार नहीं देतीं।

(6) जहाँ किसी भी प्रावधान में या संबंधित अधिनियम में (जिसके तहत कोई आपराधिक कार्यवाही शुरू की जाती है) कार्यवाही की शुरुआत और जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी प्रतिबंध शामिल है और/या जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम में पीड़ित पक्ष की शिकायत का प्रभावी समाधान प्रदान करने का विशेष प्रावधान है।

(7) जहाँ कोई आपराधिक कार्रवाई स्पष्ट रूप से दोषपूर्ण उद्देश्यों से प्रेरित हो और/या जहाँ यह कार्रवाई बदले की भावना या निजी और व्यक्तिगत दुश्मनी के कारण प्रतिवादी को हानि पहुंचाने के उद्देश्य से दुर्भावनापूर्ण रूप से शुरू की गई हो।

हम इस आशय की सावधानी भी देते हैं कि आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने की शक्ति का प्रयोग बहुत कम और सावधानी से किया जाना चाहिए और वह भी दुर्लभतम मामलों में; कि अदालत प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोपों की विश्वसनीयता या वास्तविकता या अन्यथा के बारे में जांच शुरू करने में न्यायसंगत नहीं होगी और यह कि असाधारण या अंतर्निहित शक्तियाँ अदालत को अपनी इच्छा या मनमर्जी के अनुसार कार्य करने के लिए एक मनमाना अधिकार क्षेत्र प्रदान नहीं करती हैं।

12. हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने भजन लाल (उपरोक्त) के मामले में निहित उपरोक्त दृष्टिकोण का फिर से अनुसरण **सालिब उर्फ शालू उर्फ सलीम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 947** के मामले में किया। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग से संबंधित प्रासंगिक टिप्पणियाँ नीचे पुनः प्रस्तुत की गई हैं: -

"27. हमारी राय में, प्रस्तुत मामला ऊपर उल्लिखित पैरामीटर संख्या-1, 5 और 7 के भीतर आता है।

28. इस स्तर पर, हम कुछ महत्वपूर्ण निरीक्षण करना चाहेंगे। जब भी कोई अभियुक्त न्यायालय के समक्ष आता है तो आपराधिक प्रक्रिया संहिता (द०प्र०स०) की धारा 482 के तहत अंतर्निहित शक्तियों या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत असाधारण अधिकार क्षेत्र का उपयोग करके प्राथमिकी प्राप्त करने के लिए या आपराधिक कार्यवाही को अनिवार्य रूप से इस आधार पर रद्द कर दिया जाता है कि ऐसी कार्यवाही स्पष्ट रूप से तुच्छ या कष्टप्रद है या प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से स्थापित की गई है, फिर ऐसी परिस्थितियों में न्यायालय का कर्तव्य है कि वह प्राथमिकी को सावधानी से और थोड़ा और बारीकी से देखे। हम ऐसा इसलिए कहते हैं क्योंकि एक बार जब शिकायतकर्ता व्यक्तिगत प्रतिशोध आदि के गुप्त उद्देश्य से आरोपी के खिलाफ आगे बढ़ने का फैसला करता है, तो वह यह सुनिश्चित करेगा कि सभी आवश्यक दलीलों के साथ प्राथमिकी/शिकायत बहुत अच्छी तरह से तैयार की गई है। शिकायतकर्ता यह सुनिश्चित करेगा कि प्राथमिकी/शिकायत में किए गए कथन ऐसे हैं कि वे कथित अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक सामग्री का खुलासा करते हैं। इसलिए, न्यायालय के लिए यह पर्याप्त नहीं होगा कि वह केवल प्राथमिकी/शिकायत में किए गए कथनों को देखे, ताकि यह पता लगाया जा सके कि कथित अपराध का गठन करने के लिए आवश्यक अवयवों का खुलासा किया गया है या नहीं। तुच्छ या कष्टप्रद कार्यवाही में, न्यायालय का कर्तव्य है कि वह मामले के अभिलेखों से उभरने वाली कई अन्य परिस्थितियों को देखे, और यदि आवश्यक हो, तो उचित देखभाल और सावधानी के साथ समझने का प्रयास करे। द०प्र०स० की धारा 482 या संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते समय न्यायालय को खुद को केवल किसी मामले के चरण तक ही सीमित रखने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि मामले की शुरुआत/पंजीकरण के साथ-साथ विवेचना के दौरान एकत्र की गई सामग्री के साथ-साथ समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखने का अधिकार है। उदाहरण के लिए मामले को लें। समय के साथ कई प्राथमिकी दर्ज की गई हैं। ऐसी परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में कई प्राथमिकी दर्ज करना महत्वपूर्ण हो जाता है, जिससे निजी या व्यक्तिगत द्वेष के कारण प्रतिशोध लेने का मुद्दा होता है, जैसा कि आरोप लगाया गया है।

(जोर दिया गया)

13. इस प्रकार, उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, इस न्यायालय को यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि आवेदक के खिलाफ प्रतिपक्षी संख्या-2 द्वारा दायर की गई आक्षेपित शिकायत कुछ भी नहीं है, बल्कि कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग है, इसलिए यह न्यायालय इसे धारा 482 द०प्र०स० के तहत अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के लिए एक उपयुक्त मामला मानता है।

14. परिणामस्वरूप, वर्तमान आवेदन सफल होता है और शिकायत वाद संख्या 1228/2011; जिसका शीर्षक उदय राज बनाम राम सूरत सिंह और अन्य है, जो धारा 504 और 506 भारतीय दंड संहिता के तहत है, साथ ही अपर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट-द्वितीय, फैजाबाद द्वारा पारित आक्षेपित सम्मन आदेश दिनांक 27 फरवरी, 2016, और उससे उत्पन्न होने वाली कार्यवाही, को रद्द करने का आदेश दिया जाता है।

15. आवेदन की अनुमति है।

(2025) 1 ILRA 589

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 31.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री बृजराज सिंह

आवेदन धारा 482 के तहत संख्या - 6982 वर्ष 2017

शरद कुमार और एक अन्य ... आवेदकगण

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य ... प्रतिपक्षी

आवेदकों के लिए अधिवक्ता: गोपेश त्रिपाठी

प्रतिपक्षीगण के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 107 और 306 - आत्महत्या के कथित उकसाने के मामले में कोई सबूत नहीं - आवेदकों की ओर से कोई सक्रिय कार्य नहीं दिखाया गया - ऋण मृतक के नाम पर स्वीकृत किया गया था, जो इसे चुका नहीं सकता था - आवेदक भाई होने के नाते मृतक द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता था- यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत नहीं है कि आवेदक चुकाने के लिए जिम्मेदार थे। ऋण राशि जो मृतक के नाम पर दी गई थी-प्रस्तुत आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

आवेदन की अनुमति है। (ई-9)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. मारियानो एंटो ब्रूनो और एक अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक, 2022 लाइवलो (एस.सी.) 834: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1387;
2. आपराधिक अपील संख्या-3578 वर्ष 2023, मोहित सिंघल और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, 01.12.2023 को निर्णय लिया गया;
3. स्वामी प्रहलाददास बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, 1995 पूरक (3) एस.सी.सी. 438
4. आवेदन धारा 482 संख्या-24303 वर्ष 2016, अंबेश मणि त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 01.12.2023 को निर्णय लिया गया
5. जियो वर्गीज बनाम राज का राज्य। और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 873
6. एम. अर्जुनन बनाम सेंट, जिसका प्रतिनिधित्व इसके पुलिस निरीक्षक द्वारा किया गया, (2019) 3 एस.सी.सी. 315
7. एस.एस. चीना बनाम विजय कुमार महाजन और अन्य, (2010) 12 एस.सी.सी. 190
8. उडे सिंह और अन्य बनाम हर राज्य, (2019) 17 एस.सी.सी. 301
9. मदन मोहन सिंह बनाम गुजरात राज्य। और अन्य, (2010) 8 एस.सी.सी. 628
10. केरल राज्य और अन्य बनाम एस. उन्नीकृष्णन नायर और अन्य, (2015)9 एस.सी.सी. 639
11. कंचन शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, 17.09.2021 को फैसला
12. एम. विजयकुमार बनाम तमिलनाडु राज्य, (2024) 4 एस.सी.सी. 633
13. आपराधिक अपील संख्या-221 वर्ष 2025, महेंद्र आवसे बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 17.01.2025 को निर्णीत

(माननीय न्यायमूर्ति श्री बृज राज सिंह द्वारा उद्धोषित)

1. वर्तमान आवेदन दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत इस आशय से प्रस्तुत किया गया है कि आपराधिक वाद संख्या 5450 सन् 2016, राज्य बनाम शरद कुमार एवं अन्य, जो कि अपराध संख्या 135 सन् 2016, धारा 306 भारतीय दण्ड संहिता, थाना महेशगंज, जनपद प्रतापगढ़ से उत्पन्न हुआ है, की समस्त कार्यवाही तथा दिनांक 06.12.2016 को माननीय न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ द्वारा पारित संज्ञान आदेश को निरस्त (रद्द) किया जाए।
2. संक्षेप में तथ्य यह है कि आवेदकों के बड़े भाई शिशिर कुमार ने 27.05.2016 को सल्फास का सेवन किया और उन्होंने दम तोड़ दिया। शिशिर कुमार की पत्नी श्रीमती कांति श्रीवास्तव ने उक्त घटना के बारे में पुलिस को सूचित किया, जिसे रिपोर्ट संख्या-26 वर्ष 27.05.2016 के माध्यम से 15.30 बजे दर्ज किया गया है। कि उसके पति ने सल्फास खाकर आत्महत्या कर ली थी और उसी दिन पंचनामा भी तैयार की गई थी। इसके बाद 28 मई 2016 को शव परीक्षण किया गया। मृतक के बहनोई प्रतिपक्षी संख्या-2 ने 02.06.2016 को एक

प्राथमिकी दर्ज की, जिसमें आरोप लगाया गया कि आवेदकों ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए इस कारण से उकसाया, कि बैंक द्वारा मृतक को दिया गया ऋण, आवेदकों और मृतक, जो सगे भाई हैं, द्वारा चुकाया जाना था, लेकिन आवेदकों ने ऋण चुकाने से इनकार कर दिया और संपत्ति का हिस्सा भी नहीं दिया। इसलिए मृतक शिशिर कुमार ने आत्महत्या कर ली। प्राथमिकी में आगे संकेत मिलता है कि आवेदकों के पिता ने मृतक को आश्वासन दिया था कि उसके भाई भी ऋण चुकाने में उसकी मदद करेंगे।

3. आवेदकों के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सभी तीन बेटे यानी आवेदक और मृतक अलग-अलग रह रहे थे और मृतक शिशिर कुमार को कोई समस्या नहीं थी। मृतक ने लोन लेकर ट्रैक्टर खरीदा था, लेकिन लोन की रकम नहीं चुका सका, इसी वजह से उसके खिलाफ रिकवरी नोटिस जारी किया गया। मृतक को स्वयं आवेदकों द्वारा इलाज के लिए स्वरूप रानी अस्पताल, इलाहाबाद ले जाया गया, लेकिन मृतक को बचाया नहीं जा सका। आवेदकों के पिता का बयान धारा 161 द०प्र०स० के तहत भी दर्ज किया गया था, जिसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि यह प्रतिपक्षी संख्या-2 है, जो आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए जिम्मेदार था क्योंकि वह चाहता था कि मृतक अपने बेटे को गोद ले ले, ताकि वह मृतक की संपत्ति का दावा कर सके। आवेदकों के अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि मृतक का नाम आवेदकों के साथ सह-कार्यकाल धारक के रूप में राजस्व अभिलेखों में दर्ज किया गया था और उसने अपनी जमीन गिरवी रखकर ऋण लिया, जो उसके नाम पर दर्ज था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया है कि अपराध के कमीशन में आवेदकों द्वारा उकसाने का कोई कार्य नहीं है। यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि आवेदकों के खिलाफ धारा 106 भ०द०वि० का कोई घटक नहीं है क्योंकि आवेदकों द्वारा किए गए किसी भी प्रकार के सक्रिय कार्य का कोई सबूत नहीं है। आरोप पत्र इस गलत धारणा पर दायर किया गया है कि आवेदकों ने बिना किसी सबूत के मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया है कि आवेदकों के खिलाफ अस्पष्ट और गंदे आरोप लगाए गए हैं, वह भी बिना किसी सबूत के और आवेदकों को अनुमानों और संयोगों के आधार पर आरोप पत्र दायर किया गया है।

4. अपने तर्क के समर्थन में, आवेदकों के अधिवक्ता ने निम्नलिखित मामलों पर भरोसा किया है: -

1. मारियानो एंटो ब्रूनो और एक अन्य बनाम पुलिस निरीक्षक, 2022 लाइवलो (एस.सी.) 834: 2022 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 1387;
2. आपराधिक अपील संख्या-3578 वर्ष 2023, मोहित सिंघल और अन्य बनाम उत्तराखंड राज्य और अन्य, 01.12.2023 को निर्णय लिया गया;
3. स्वामी प्रहलाददास बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य, 1995 पूरक (3) एस.सी.सी. 438; और
4. धारा 482 संख्या-24303 वर्ष 2016, अंबेश मणि त्रिपाठी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के तहत आवेदन का निर्णय 01.12.2023 को लिया गया।

5. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि विवेचनाधिकारी द्वारा साक्ष्य एकत्र किए गए हैं, जिसमें यह पाया गया है कि आवेदक आत्महत्या के लिए उकसाने में शामिल थे और मृतक ने दबाव में

आत्महत्या कर ली थी क्योंकि वह ऋण की राशि नहीं चुका सकता था। अपर शासकीय अधिवक्ता ने मृतक की पत्नी श्रीमती कांति श्रीवास्तव के बयान की ओर इशारा किया है, जिन्होंने कहा है कि ऋण उनके पति ने अपने ससुर की मदद से लिया था और उन्होंने आश्वासन दिया था कि ऋण की राशि तीनों भाइयों यानी आवेदकों और मृतक द्वारा चुकाई जाएगी। उसने आगे कहा कि ऋण की राशि आवेदकों द्वारा नहीं चुकाई गई थी, इसलिए उसके पति ने आत्महत्या कर ली। इसलिए, उन्होंने प्रस्तुत किया है कि यह आवेदन अस्वीकार किए जाने के योग्य है।

6. नोटिस की तामील के बावजूद, किसी ने भी प्रतिपक्षी संख्या-2 की ओर से पेश नहीं किया है।

7. मैंने पक्षों के अधिवक्ता को सुना और अभिलेखों को देखा है।

8. अभिलेखों को देखने के बाद, मुझे पता चलता है कि आवेदकों की ओर से कोई ऐसा सक्रिय कार्य नहीं है, जो यह स्थापित कर सके कि वे मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने में शामिल थे। एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी सामने आया है कि मृतक के पास अपनी कृषि संपत्ति थी, जिस पर उसके नाम पर ऋण स्वीकृत किया गया था, इसलिए वह ऋण राशि चुकाने के लिए जिम्मेदार था। अगर वह लोन की रकम नहीं चुका सका और दबाव में आकर उसने आत्महत्या कर ली तो आवेदक किसी भी तरह से कैसे जिम्मेदार हैं। यह मानने लायक नहीं है कि आवेदकों को भाई होने के नाते, ऋण राशि चुकानी पड़ी, जो बैंक द्वारा मृतक को दी गई थी। अभिलेखों पर मौजूद साक्ष्य यह संकेत नहीं देते हैं कि आवेदकों ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने के लिए किसी भी तरह से उकसाया।

9. स्वामी प्रहल्लादास (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय के प्रस्तर-3 में आत्महत्या के लिए उकसाने के मुद्दे पर विचार किया है, जो इस प्रकार है: -

"3. आरोप तय करने के समय, विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता को यहां एक आरोपी के रूप में संबद्ध करना उचित समझा क्योंकि उसने मृतक को जो शब्द कहे थे। हमें लगता है कि उस कथन के आधार पर सत्र न्यायालय ने अपीलकर्ता को मुकदमे का सामना करने के लिए बुलाने में गलती की। पहली बात तो यह है कि तथ्यों और परिस्थितियों में प्रथम दृष्टया इस दृष्टिकोण पर आना भी मुश्किल है कि अपीलकर्ता द्वारा जो कुछ भी कहा गया था वह मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने के लिए पर्याप्त था। वे शब्द प्रकृति में आकस्मिक होते हैं जो अक्सर झगड़ने वाले लोगों के बीच पल की गर्मी में नियोजित होते हैं। इसके बाद कुछ भी गंभीर होने की उम्मीद नहीं है। उक्त अधिनियम इस धारणा पर अपेक्षित मेन्स रिया (आशय / इरादा) को प्रतिबिंबित नहीं करता है कि इन शब्दों को सभी घटनाओं में लागू किया जाएगा। इसके अलावा, मृतक के पास उस कार्य के पेशेवरों और विपक्षों को तौलने के लिए बहुत समय था जिसके द्वारा उसने अंततः अपना जीवन समाप्त कर लिया। यह नहीं कहा जा सकता है कि मृतक द्वारा आत्महत्या अपीलकर्ता द्वारा बोले गए शब्दों का प्रत्यक्ष परिणाम थी। इन कारणों से, त्रुटि स्पष्ट है जिसमें सुधार की आवश्यकता है। तदनुसार अपील की

अनुमति दी जाती है। इस प्रकार उच्च न्यायालय और सत्र न्यायालय के आदेश परेशान हैं। अपीलकर्ता को आरोप का सामना करने की आवश्यकता नहीं है।

10. मोहित सिंघल (उपरोक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि अभियुक्त की ओर से उकसाना एक महत्वपूर्ण चीज है जिसे देखा जाना चाहिए और मृतक को आत्महत्या करने के लिए आरोपी की ओर से किसी न किसी रूप में उकसाना होना चाहिए। उक्त निर्णय के प्रस्तर-9 और 10 को नीचे उद्धृत किया गया है: -

"9. मामले के तथ्यों में, धारा 107 में दूसरी और तीसरी बात पर कोई आवेदन नहीं होगा। इसलिए, सवाल यह है कि क्या अपीलकर्ताओं ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। पहले खंड को आकर्षित करने के लिए, मृतक को आत्महत्या करने के लिए अभियुक्त की ओर से किसी न किसी रूप में उकसाना होना चाहिए। इसलिए, मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने के लिए अभियुक्त के पास मेन्स रिया (आशय / इरादा) होना चाहिए। उकसाने का कार्य इतनी तीव्रता का होना चाहिए कि मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलने का इरादा हो जिसके तहत उसके पास आत्महत्या करने के अलावा कोई विकल्प न हो। इस तरह के उकसावे को आत्महत्या करने के कार्य के करीब होना चाहिए।

10. प्रस्तुत मामले में, तीसरे प्रतिवादी की शिकायत और सुसाइड नोट की सामग्री को सही मानते हुए, यह निष्कर्ष निकालना असंभव है कि अपीलकर्ताओं ने अपमानजनक भाषा का उपयोग करके और उस उद्देश्य के लिए बेल्ट से उस पर हमला करके तीसरे प्रतिवादी द्वारा अपने पति से उधार ली गई राशि के भुगतान की मांग करके मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। उक्त घटना कथित तौर पर आत्महत्या की तारीख से दो सप्ताह से अधिक समय पहले हुई थी। ऐसा कोई आरोप नहीं है कि अपीलकर्ताओं द्वारा आत्महत्या की तारीख के करीब कोई कार्य किया गया था। किसी भी तरह से अपीलकर्ताओं के कथित कृत्य आत्महत्या के लिए उकसाने के समान नहीं हो सकते हैं। मृतक ने तीसरे प्रतिवादी को उसकी बुरी आदतों के कारण मुसीबत में फंसने के लिए दोषी ठहराया है।

11. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जियो वर्गीज बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 873 के मामले में माना है कि आत्महत्या अपने आप में अपराध नहीं है क्योंकि आत्महत्या करने वाला व्यक्ति कानून की पहुंच से परे है, लेकिन आत्महत्या का प्रयास भ०द०वि० की धारा 309 के तहत अपराध माना जाता है। उक्त निर्णय के प्रस्तर-13, 14, 15 और 16 नीचे दिए गए हैं: -

"13. हमारे देश में, जबकि आत्महत्या अपने आप में एक अपराध नहीं है क्योंकि आत्महत्या करने वाला व्यक्ति कानून की पहुंच से बाहर है, लेकिन आत्महत्या का प्रयास धारा 309 भ०द०वि० के तहत अपराध माना जाता है। किसी के द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाना भी धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध है। धारा 306 भ०द०वि० को निर्धारित करना प्रासंगिक होगा जो इस प्रकार है: -

306. आत्महत्या का दुष्प्रेरण- यदि कोई व्यक्ति आत्महत्या करता है, जो कोई भी ऐसी आत्महत्या करने के लिए उकसाता है, तो उसे किसी भी प्रकार के कारावास से दंडित किया जाएगा, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, और वह जुर्माने से भी भागी होगा।

14. हालांकि, भ०द०वि० 'आत्महत्या' शब्द को परिभाषित नहीं करता है, लेकिन आत्महत्या का सामान्य शब्दकोश अर्थ 'आत्महत्या' है। यह शब्द एक आधुनिक लैटिन शब्द 'सुइसाइडियम' से लिया गया है, 'सुई' का अर्थ है 'स्वयं' और 'सिडियम' का अर्थ है 'हत्या'। इस प्रकार, आत्महत्या शब्द का अर्थ है 'आत्म-हत्या' का कार्य। दूसरे शब्दों में, मृत्यु का कार्य मृतक द्वारा स्वयं किया जाना चाहिए, भले ही उसने खुद को मारने के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनाए गए साधनों की परवाह किए बिना।

15. धारा 306 भ०द०वि० आत्महत्या के लिए उकसाने को आपराधिक अपराध बनाती है और इसके लिए सजा निर्धारित करती है।

16. 'उकसाना' शब्द का सामान्य शब्दकोश अर्थ किसी को कुछ करने के लिए प्रेरित करना या शुरू करना, उकसाना है। इस न्यायालय ने रमेश कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, 2021 एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. 873 के मामले में 'उकसाने' शब्द को निम्नानुसार परिभाषित किया है: -

"उकसाना एक कार्य करने के लिए उकसाना, आगे बढ़ने के लिए, उकसाना या प्रोत्साहित करना है।

12. एम. अर्जुनन बनाम राज्य, जिसका प्रतिनिधित्व इसके पुलिस निरीक्षक, (2019) 3 एस.सी.सी. 315 द्वारा किया गया था, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 306 भ०द०वि० के अवयवों पर प्रदर्श से विचार किया है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर-यहां नीचे उद्धृत किया गया है: -

"धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध के आवश्यक तत्व हैं: (i) दुष्प्रेरण; (ii) मृतक को आत्महत्या करने के लिए सहायता करने या उकसाने या उकसाने के लिए अभियुक्त का इरादा। हालांकि, अभद्र भाषा का उपयोग करके मृतक का अपमान करना आरोपी का कृत्य अपने आप में आत्महत्या के लिए उकसाना नहीं होगा। यह सुझाव देने में सक्षम सबूत होना चाहिए कि अभियुक्त ने इस तरह के कृत्य से मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाने का इरादा किया था। जब तक आत्महत्या के लिए उकसाने या उकसाने के तत्व संतुष्ट नहीं हो जाते, तब तक आरोपी को धारा 306 भ०द०वि० के तहत दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

13. धारा 107 भ०द०वि० के दायरे और धारा 306 भ०द०वि० के साथ इसके सह-संबंध पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एसएस चीना बनाम विजय कुमार महाजन और अन्य, (2010) 12 एस.सी.सी. 190 के मामले में चर्चा की गई है। उक्त निर्णय का प्रासंगिक प्रस्तर इस प्रकार है: -

"उकसाने में किसी व्यक्ति को उकसाना या जानबूझकर किसी व्यक्ति को कुछ करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए अभियुक्त की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। विधायिका की मंशा और सुप्रीम न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का अनुपात स्पष्ट है कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट पुरुष होना चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है जिसके कारण मृतक ने कोई विकल्प नहीं देखते हुए आत्महत्या कर ली और उस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना था कि उसने आत्महत्या कर ली।

14. उडे सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2019)17 एस.सी.सी. 301 के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए कि आत्महत्या करने की मानसिक स्थिति को देखा जाना चाहिए, जिसका उल्लेख धारा 306 भ०द०वि० के तहत किया गया है, जो निम्नानुसार है:

"16. आत्महत्या के कथित उकसाने के मामलों में, आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्यों का प्रमाण होना चाहिए। इस बात पर शायद ही विवाद किया जा सकता है कि आत्महत्या के कारण का प्रश्न, विशेष रूप से आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध के संदर्भ में, एक जटिल प्रश्न बना हुआ है, जिसमें मानव व्यवहार और प्रतिक्रियाओं/प्रतिक्रियाओं के बहुआयामी और जटिल गुण शामिल हैं। आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप के मामले में, न्यायालय आत्महत्या के लिए उकसाने के कार्य के ठोस और ठोस सबूत की तलाश करेगा। आत्महत्या के मामले में, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा मृतक के उत्पीड़न का आरोप लगाना ही पर्याप्त नहीं होगा जब तक कि अभियुक्त की ओर से ऐसी कार्रवाई न हो जो व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करती हो; और इस तरह की अपमानजनक कार्रवाई घटना के समय के निकट होनी चाहिए। किसी व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने के लिए उकसाया है या नहीं, यह केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से ही पता लगाया जा सकता है।

16.1. यह पता लगाने के प्रयोजन के लिए कि क्या किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति द्वारा आत्महत्या करने के लिए उकसाया है; विचार यह होगा कि क्या अभियुक्त आत्महत्या के कार्य के लिए उकसाने के कार्य का दोषी है। जैसा कि इस न्यायालय द्वारा ऊपर उल्लिखित निर्णयों में समझाया और दोहराया गया है, उकसाने का अर्थ है किसी कार्य को करने के लिए उकसाना, आगे बढ़ाना या प्रोत्साहित करना। यदि आत्महत्या करने वाले व्यक्ति अतिसंवेदनशील थे और अभियुक्त की कार्रवाई से आमतौर पर इसी तरह के उस स्थिति वाले व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करने की उम्मीद नहीं की जाती है, तो आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराना सुरक्षित नहीं हो सकता है। लेकिन, दूसरी ओर, यदि अभियुक्त अपने कृत्यों और अपने निरंतर आचरण से ऐसी स्थिति पैदा करता है जिससे मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं दिखता है, तो मामला धारा 306 भ०द०वि० के चार-कोनों के भीतर आ सकता है। यदि आरोपी पीड़ित के आत्मसम्मान को धूमिल करने में सक्रिय भूमिका निभाता है, जो अंततः पीड़ित को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करता है, तो आरोपी को आत्महत्या के लिए उकसाने का दोषी ठहराया जा सकता है। ऐसे मामलों में अभियुक्त की ओर से पुरुषों के प्रश्न की जांच अभियुक्त के वास्तविक कार्यों और कार्यों के संदर्भ में की

जाएगी और यदि कार्य और कार्य केवल ऐसी प्रकृति के हैं जहां अभियुक्त का इरादा उत्पीड़न या क्रोध के प्रदर्शन से ज्यादा कुछ नहीं था, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने के अपराध से कम हो सकता है। हालांकि, अगर आरोपी मृतक को शब्दों या कर्मों से परेशान करता रहता है जब तक कि मृतक ने प्रतिक्रिया नहीं दी या उकसाया नहीं था, तो एक विशेष मामला आत्महत्या के लिए उकसाने का हो सकता है। मानव व्यवहार के नाजुक विश्लेषण का मामला होने के कारण, प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों पर जांच करने की आवश्यकता है, जबकि आरोपी और मृतक के कार्यों और मानस पर असर डालने वाले आसपास के सभी कारकों पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

15. **मदन मोहन सिंह बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2010)8 एस.सी.सी. 628** के मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी प्रस्तर-10, 11, 12, 13, 16, 17 में इसी तरह का दृष्टिकोण अपनाया है, जो निम्नानुसार पढ़ा गया है: -

"10. हम आश्वस्त हैं कि इस सुसाइड नोट या प्राथमिकी में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध के रूप में भी देखा जाएगा। हमें प्राथमिकी या तथाकथित सुसाइड नोट में ऐसा कुछ नहीं मिला, जिसे आत्महत्या के लिए उकसाने के रूप में सुझाया जा सके। ऐसे मामलों में यह आरोप लगाया जाना चाहिए कि अभियुक्त ने मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया था या दूसरा, किसी अन्य व्यक्ति के साथ साजिश में शामिल था और अंत में, अभियुक्त ने आत्महत्या करने के लिए किसी भी तरह से किसी भी कार्य या अवैध चूक में सहायता की थी।

11. सुसाइड नोट और प्राथमिकी की हमारे सर्वोत्तम प्रयासों और सूक्ष्म जांच के बावजूद, हम केवल यह पाते हैं कि सुसाइड नोट एक विभागीय शिकायत के रूप में एक बयानबाजी दस्तावेज है। यह मृतक की ओर से कुछ मानसिक असंतुलन का भी सुझाव देता है जिसे वह खुद अवसाद के रूप में वर्णित करता है। तथाकथित सुसाइड नोट में यह नहीं कहा जा सकता है कि आरोपी का कभी इरादा था कि उसके अधीन ड्राइवर को आत्महत्या करनी चाहिए या उसे अपनी जान खत्म कर लेनी चाहिए और उसने इस संबंध में कुछ भी किया। यहां तक कि अगर यह स्वीकार कर लिया जाता है कि आरोपी ने ड्राइवर की ड्यूटी बदल दी है या आरोपी ने उसे कार की चाबी नहीं लेने और कार की चाबी कार्यालय में ही रखने के लिए कहा है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि आरोपी का इरादा था या जानता था कि ड्राइवर को इस वजह से आत्महत्या करनी चाहिए।

12. धारा 306 के तहत अपराध करने के लिए, भ०द०वि० की धारा 107, भ०द०वि० द्वारा विचार किया गया विशिष्ट दुष्प्रेरण उस दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप संबंधित व्यक्ति की आत्महत्या को बाहर लाने के इरादे से आरोपी की ओर से आवश्यक है। धारा 306 भ०द०वि० के तहत इस विशेष अपराध के लिए मृतक को आत्महत्या करने में सहायता करने या उकसाने या उकसाने का आरोपी का इरादा जरूरी है। हमारी स्पष्ट राय है कि प्राथमिकी या तथाकथित सुसाइड नोट में धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए कोई सामग्री होने का कोई सवाल ही नहीं है।

13. यह सोचना भी बेतुका है कि अपीलकर्ता जैसा एक वरिष्ठ अधिकारी अपने डाइवर की आत्महत्या करने का इरादा रखेगा और इसलिए, अपराध को उकसाएगा। वास्तव में, तथाकथित आत्महत्या (यदि यह एक है जिसके लिए अभिलेखों पर कोई सामग्री भी नहीं है) और अपीलकर्ता की ओर से किसी भी कथित कृत्य के बीच कोई संबंध नहीं है। कोई निकटता भी नहीं है। धारा 306 भ०द०वि० के तहत अभियोजन में बहुत अधिक सामग्री की आवश्यकता होती है। न्यायालयों को अत्यंत सावधान रहना होगा क्योंकि मुख्य व्यक्ति अपीलकर्ता/अभियुक्त द्वारा जिरह के लिए उपलब्ध नहीं है। इसलिए, जब तक विशिष्ट आरोप और निश्चित प्रकृति की सामग्री (काल्पनिक या अनुमानित नहीं) न हो, तब तक अपीलकर्ता/अभियुक्त को मुकदमे का सामना करने के लिए कहना खतरनाक होगा। एक आपराधिक मुकदमा वास्तव में एक सुखद अनुभव नहीं है। प्रस्तुत मामले में अपीलकर्ता की तरह व्यक्ति जो एक जिम्मेदार पद पर सेवा कर रहा है, निश्चित रूप से बहुत पूर्वाग्रह का सामना करेगा, अगर उसे अप्रासंगिक प्रकृति के बेतुके आरोपों पर अभियोजन का सामना करना पड़े। इसी तरह की परिस्थितियों में, जैसा कि नेताई दत्ता बनाम डब्ल्यूबी 2005 (2) एस.सी.सी. 659 की स्थिति में, इस न्यायालय ने अभियुक्त के खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही को रद्द कर दिया था।

16. जहां तक भ०द०वि० की धारा 294 (बी) का सवाल है, हमें प्राथमिकी या तथाकथित सुसाइड नोट में एक भी शब्द नहीं मिला। जहां तक भारतीय दंड संहिता की धारा 306 का संबंध है, यहां तक कि पुनरावृत्ति की कीमत पर भी, हम कह सकते हैं कि केवल इसलिए कि किसी व्यक्ति को अपने वरिष्ठ अधिकारी के प्रति द्वेष था और उस द्वेष के कारण आत्महत्या कर ली, यहां तक कि ईमानदारी से यह महसूस करते हुए कि उसके साथ अन्याय हुआ था, फिर भी धारा 306 भ०द०वि० के तहत आरोप लगाने के लिए यह उचित आरोप नहीं होगा। यह अभी भी एक उचित आरोप से कम होगा। यह निष्पक्ष रूप से देखना होगा कि क्या लगाए गए आरोपों को अपीलकर्ता/अभियुक्त के खिलाफ उचित आरोपों के रूप में देखा जा सकता है, इस आशय के कि उसने अपने कृत्यों, शब्दों आदि से संबंधित व्यक्ति की आत्महत्या का इरादा किया था या उसे अंजाम दिया था। जब हम वर्तमान प्राथमिकी को इस परीक्षण पर रखते हैं, तो यह कम पड़ जाता है।

17. हम पहले ही समझा चुके हैं कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत एक गंभीर अपराध के लिए अभियोजन के आधार के रूप में निराधार और अप्रासंगिक आरोपों का उपयोग नहीं किया जा सकता है। इसी तरह, हम पहले ही भ०द०वि० की धारा 294 (बी) पर भी विचार कर चुके हैं। हमें कुछ भी नहीं मिल पाया है। ऐसी परिस्थितियों में, जहां प्राथमिकी में कोई सामग्री नहीं है या धारा 306 भ०द०वि० और 294 (बी) के तहत अपराध के लिए सामग्री के रूप में देखे जाने में सक्षम नहीं है, इस न्यायालय द्वारा हरियाणा राज्य और अन्य बनाम भजन लाल और अन्य 1992 के पूरक 1 एस.सी.सी. 335 में निर्धारित कानून के अनुसार, केवल प्राथमिकी और आगे की कार्यवाही को रद्द करना उचित होगा।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने केरल राज्य और अन्य बनाम एस. उन्नीकृष्णन नायर और अन्य, (2015) 9 एस.सी.सी. 639 के मामले में आत्महत्या के लिए उकसाने के मुद्दे पर विचार किया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर-इस प्रकार हैं: -

"9. तथ्यात्मक मैट्रिक्स प्राप्त करने में प्रतिद्वंद्विता प्रस्तुतियों की मूल्यांकन करने के लिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 107 में निहित उपशमन की अवधारणा को समझना आवश्यक है।
उक्त प्रावधान इस प्रकार है:

07. एक व्यक्ति किसी काम को करने के लिए उकसाता है, जो-

सबसे पहले- किसी भी व्यक्ति को वह काम करने के लिए उकसाता है; नहीं तो दूसरा-उस काम को करने के लिए किसी भी साजिश में एक या एक से अधिक अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के साथ संलग्न होना, यदि उस साजिश के अनुसरण में कोई कार्य या अवैध चूक होती है, और उस काम को करने के लिए; नहीं तो

तीसरा - जानबूझकर किसी भी कार्य या अवैध चूक से, उस काम को करने में सहायता करता है।

स्पष्टीकरण 1 - एक व्यक्ति, जो जानबूझकर गलत बयानी करके, या किसी भौतिक तथ्य को जानबूझकर छिपाकर, जिसे वह प्रकट करने के लिए बाध्य है, स्वेच्छा से कारण बनाता है या प्राप्त करता है, या किसी कार्य को करने या प्राप्त करने का प्रयास करता है, ऐसा कहा जाता है कि वह कार्य करने के लिए उकसाता है।

स्पष्टीकरण 2 - जो कोई भी, या तो किसी अधिनियम के कमीशन से पहले या उसके समय, उस अधिनियम के कमीशन को सुविधाजनक बनाने के लिए कुछ भी करता है, और इस तरह उसके कमीशन को सुविधाजनक बनाता है, उसे उस अधिनियम को करने में सहायता करने के लिए कहा जाता है।

10. उपरोक्त प्रावधान की व्याख्या किशोरी लाल बनाम किशोरी लाल में की गई थी। **मध्य प्रदेश राज्य (2007) 10 एस.सी.सी. 797** को दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा दायर किया गया था और उसमें चर्चा निम्नलिखित प्रभाव की है:

भारतीय दंड संहिता की धारा 107 किसी चीज के लिए उकसाने को परिभाषित करती है। दुष्प्रेरण का अपराध भारतीय दंड संहिता में प्रदान किया गया एक अलग और विशिष्ट अपराध है। एक व्यक्ति, किसी काम को करने के लिए उकसाता है जब (1) वह किसी भी व्यक्ति को उस काम को करने के लिए उकसाता है; या (2) उस काम को करने के लिए किसी भी साजिश में एक या एक से अधिक अन्य व्यक्तियों के साथ संलग्न है; या (3) जानबूझकर कार्य या अवैध चूक से, उस चीज को करने में सहायता करता है। दुष्प्रेरण को अपराध के रूप में पूरा करने के लिए ये चीजें आवश्यक हैं। "उकसाना" शब्द का शाब्दिक अर्थ है किसी भी काम को करने के लिए उकसाना, आग्रह करना या समझाना। उकसाने, साजिश या जानबूझकर सहायता के द्वारा किया जा सकता है, जैसा कि धारा 107 के तीन खंडों में प्रदान किया गया है। धारा 109 में प्रावधान है कि यदि उकसाया गया कार्य दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप किया जाता है और इस तरह के दुष्प्रेरण की सजा का कोई प्रावधान नहीं है, तो

अपराधी को मूल अपराध के लिए प्रदान की गई सजा के साथ दंडित किया जाना चाहिए। धारा 109 में "उकसाया" का अर्थ है विशिष्ट अपराध को बढ़ावा दिया गया। इसलिए, जिस अपराध के लिए किसी व्यक्ति पर दुष्प्रेरण का आरोप लगाया जाता है, वह सामान्य रूप से सिद्ध अपराध से जुड़ा होता है।

11. अमलेंदु पाल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2010)1 एस.सी.सी. 707 में दुष्प्रेरण की अभिव्यक्ति से संबंधित न्यायालय ने कहा:

"दुष्प्रेरण" शब्द को भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के तहत परिभाषित किया गया है, जिसे हम पहले ही ऊपर निकाल चुके हैं। एक व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए उकसाया जाता है जब कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति को उस काम को करने के लिए उकसाता है जैसा कि खंड में कहा गया है, सबसे पहले, या भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के खंड दूसरे या तीसरे में बताए अनुसार कुछ भी करने के लिए। भारतीय दंड संहिता की धारा 109 में प्रावधान है कि यदि उकसाया गया कार्य दुष्प्रेरण के अनुसार और उसके परिणामस्वरूप किया जाता है तो अपराधी को मूल अपराध के लिए प्रदान की गई सजा के साथ दंडित किया जाना चाहिए। हालांकि, प्रतिवादी राज्य के अधिवक्ता ने हमारे सामने स्पष्ट रूप से कहा कि यह एक ऐसा मामला होगा जहां भारतीय दंड संहिता की धारा 107 का खंड तीसरा केवल आकर्षित होगा। उनके अनुसार, भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के तहत आत्महत्या के लिए उकसाने का मामला बनाया गया है।

12. जैसा कि हम तथ्यों के कथन और मामले में अभिलेखों पर लाई गई सामग्री से पाते हैं, यह सुसाइड नोट है जो आरोपों का आधार है और उसी की उचित मूल्यांकन के लिए, हमने इसे पहले भी पुनः प्रस्तुत किया है। उसी को पढ़ने पर, यह मानना मुश्किल है कि प्रतिपक्षीगण द्वारा कोई दुष्प्रेरण किया गया है। नोट में, यह कहने के अलावा कि प्रतिपक्षीगण ने उसे सब कुछ करने के लिए मजबूर किया और उसे धोखा दिया और उसे गहरी मुसीबत में डाल दिया, इसमें और कुछ नहीं है। उत्तरदाता रैंक में हीन थे और यह आश्चर्य की बात है कि ऐसा कुछ हो सकता है। इसके अलावा, आरोप वास्तव में अस्पष्ट है। यह भी हैरान करने वाला कारण है, क्योंकि विभाग ने उन्हें जांच दल का प्रमुख बनाया था और उच्च न्यायालय ने उन पर पूरा विश्वास जताया था और उन्हें अदालत में जाने की स्वतंत्रता दी थी, ऐसी स्थिति में, ठगा हुआ महसूस करने और निचले रैंक के अधिकारियों द्वारा परेशानी में डालने का कोई वारंट नहीं था। इसके अलावा, उन्होंने यह कहकर मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट पर भी दोष मढ़ दिया है कि उन्होंने उन पर दबाव डाला था। उन्होंने एडवोकेट के खिलाफ भी आरोप लगाए हैं।

13. नेताई दत्ता (उपरोक्त) में, दो-न्यायाधीशों की पीठ ने भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के तहत दुष्प्रेरण की अवधारणा से निपटते हुए और, विशेष रूप से, सुसाइड नोट के संदर्भ में, यह कहना था:

सुसाइड नोट में, दो स्थानों पर अपीलकर्ता के नाम का उल्लेख करने के अलावा, किसी भी कार्य या घटना का कोई संदर्भ नहीं है, जिसके तहत अपीलकर्ता पर आरोप लगाया गया है कि उसने कोई जानबूझकर कार्य किया है या चूक की है या जानबूझकर मृतक प्रणब कुमार नाग को आत्महत्या का कार्य करने में सहायता या उकसाया

है। ऐसा कोई मामला नहीं है कि अपीलकर्ता ने किसी भी साजिश में कोई भूमिका या कोई भूमिका निभाई है, जिसने अंततः मृतक प्रणब कुमार नाग द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया या परिणाम दिया।

सुसाइड नोट के अलावा, शिकायतकर्ता द्वारा कोई आरोप नहीं लगाया गया है कि अपीलकर्ता किसी भी तरह से अपने भाई प्रणब कुमार नाग को परेशान कर रहा था। अपीलकर्ता के खिलाफ दर्ज मामला बिना किसी तथ्यात्मक आधार के है। कथित सुसाइड नोट की सामग्री किसी भी तरह से अपीलकर्ता के खिलाफ अपराध का पता नहीं लगाती है। अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू किए गए अभियोजन के परिणामस्वरूप अपीलकर्ता को बिना किसी फलदायी परिणाम के केवल उत्पीड़न किया जाएगा। हमारी राय में, एकल न्यायाधीश ने यह मानने में गंभीर गलती की कि अपीलकर्ता के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट में संज्ञेय अपराध के तत्वों का खुलासा किया गया है। यहां अपीलकर्ता के खिलाफ आगे बढ़ने का कोई आधार नहीं था। हम पाते हैं कि यह एक उपयुक्त मामला है जहां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत असाधारण शक्ति का उपयोग किया जाना है। हम अपीलकर्ता के खिलाफ शुरू की गई आपराधिक कार्यवाही को रद्द करते हैं और तदनुसार अपील की अनुमति देते हैं।

14. एम. मोहन (उपरोक्त) में, छूट से निपटने के दौरान, न्यायालय ने इस प्रकार देखा है:

दुष्प्रेरण में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए अभियुक्त की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। विधायिका की मंशा और इस न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का अनुपात स्पष्ट है कि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट पुरुष शक्ति होनी चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है जिसके कारण मृतक ने कोई विकल्प नहीं देखते हुए आत्महत्या कर ली और इस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना होगा कि उसने आत्महत्या कर ली।

15. जहां तक प्रवीण प्रधान (उपरोक्त) का संबंध है, श्री राव ने इस उद्देश्य के लिए इस पर जोर देकर भरोसा किया है कि न्यायालय ने प्राथमिकी को रद्द करने से इनकार कर दिया था क्योंकि एक सुसाइड नोट था। श्री राव ने फैसले के प्रस्तर-10 की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसमें सुसाइड नोट को फिर से पेश किया गया है। उक्त मामले में न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 107 के संबंध में कुछ अधिकारियों को संदर्भित किया है और निम्नानुसार राय दी है:

"18. वास्तव में, उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि किसी विशेष मामले की परिस्थितियों से उकसाया जाना चाहिए। यह पता लगाने के लिए कोई सीधा फार्मूला निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि क्या किसी विशेष मामले में ऐसा उकसाया गया है जो व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए मजबूर करता है। किसी विशेष मामले में, उकसाने के संबंध में प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं हो सकते हैं जिसका आत्महत्या से सीधा संबंध हो सकता है। इसलिए, ऐसे मामले में, परिस्थितियों से एक निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए और यह निर्धारित किया जाना

चाहिए कि क्या परिस्थितियां ऐसी थीं जिन्होंने वास्तव में ऐसी स्थिति पैदा की थी कि एक व्यक्ति पूरी तरह से निराश महसूस कर रहा था और आत्महत्या कर ली थी। इसके अलावा, कार्यवाही को रद्द करने के लिए एक आवेदन से निपटते समय, एक अदालत एक दृढ़ राय नहीं बना सकती है, बल्कि एक अस्थायी दृष्टिकोण बना सकती है जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 228 के तहत संदर्भित अनुमान को जन्म देगी।

19. इस प्रकार, मामले को पूर्वोक्त स्थापित कानूनी प्रस्तावों के आलोक में विचार करने की आवश्यकता है। इस मामले में, कथित उत्पीड़न एक आकस्मिक विशेषता नहीं थी, बल्कि लगातार उत्पीड़न का मामला बना हुआ था। यह ड्राइवर का मामला नहीं है; या एक विवाहित महिला के साथ अवैध संबंध रखने वाला पुरुष, यह जानते हुए कि उसका एक और प्रेमी भी था; और इसलिए, प्रस्तुत मामले में मृतक की स्थिति की तुलना नहीं की जा सकती है, जो एक योग्य स्नातक इंजीनियर था और फिर भी लगातार उत्पीड़न और अपमान का सामना कर रहा था और इसके अतिरिक्त, अपीलकर्ता द्वारा की गई लगातार अवैध मांगों को भी सहना पड़ता था, जिसके पूरा न होने पर, उसे अपीलकर्ता द्वारा लंबे समय तक बेरहमी से परेशान किया जाएगा। उन्हें कारखाने में लंबे समय तक लगातार काम करने के लिए मजबूर किया गया था, अन्य कर्मचारियों की तुलना में, जो अक्सर लगातार 16-17 घंटे तक भी काम करते थे। इस तरह का उत्पीड़न, इस आशय के शब्दों के उच्चारण के साथ मिलकर, कि, "अगर उसके स्थान पर कोई अन्य व्यक्ति होता, तो वह निश्चित रूप से आत्महत्या कर लेता" प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए प्रस्तुत मामले को उपरोक्त मामलों से अलग बनाता है, हमें नहीं लगता कि यह एक ऐसा मामला है जिसमें उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश के संबंध में इस न्यायालय द्वारा किसी भी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

16. हमने उक्त निर्णय से प्रदर्श में उद्धृत किया है और हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि उसमें सुसाइड नोट काफी अलग था, और न्यायालय ने सुसाइड नोट की अवधि और प्रकृति के कारण कार्यवाही को रद्द करना उचित समझा। इस प्रकार, उक्त निर्णय उसमें उजागर किए गए तथ्यात्मक स्कोर के संबंध में अलग है।

17. मामले पर आते हुए, जैसा कि हमने पहले कहा है, सुसाइड नोट वास्तव में उत्पीड़न के किसी भी निरंतर आचरण के बारे में नहीं बताता है और किसी भी मामले में, तथ्य और परिस्थितियां काफी अलग हैं। ऐसी स्थिति में, हम यह सोचने के लिए तैयार हैं कि उच्च न्यायालय कार्यवाही को रद्द करने में उचित है, क्योंकि यह कानून में एक स्वीकृत स्थिति है कि जहां अभियुक्त के खिलाफ प्रथम दृष्टया कोई मामला नहीं बनता है, तो उच्च न्यायालय कानून में संहिता की धारा 482 के तहत अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने और कार्यवाही को रद्द करने के लिए बाध्य है।

17. इसी तरह के मुद्दे को माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आपराधिक अपील संख्या-1022 वर्ष 2021, कंचन शर्मा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य के मामले में 17.09.2021 को निपटाया गया है। उक्त निर्णय के प्रासंगिक प्रस्तर नीचे उद्धृत किए गए हैं: -

9. दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं को सुनने के बाद, हमने आक्षेपित आदेश और अभिलेखों पर रखी गई अन्य सामग्री का अवलोकन किया है। शिकायतकर्ता और अन्य गवाहों के स्वार्थी बयानों को छोड़कर, जिसमें कहा गया है कि मृतक अपीलकर्ता से प्यार करता था, यह दिखाने के लिए कोई अन्य सामग्री नहीं है कि अपीलकर्ता मृतक के साथ कोई संबंध बनाए रख रहा था। अभिलेखों पर रखी गई सामग्री से यह स्पष्ट है कि 04.05.2018 को घटना की तारीख को मृतक अपीलकर्ता के घर गया और एक छोटी बोतल से जहर निकालकर जहर खा लिया, जिसे उसने अपनी जेब में रखा था। केवल इसलिए कि उसने अपीलकर्ता के घर के सामने जहर खा लिया था, यह स्वयं मृतक के साथ अपीलकर्ता के किसी भी संबंध का संकेत नहीं देगा। 'दुष्प्रेरण' में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए आरोपी की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, किसी को भी धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध के लिए किसी भी व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की आवश्यकता होती है जिसके कारण मृतक आत्महत्या कर लेता है, कोई विकल्प नहीं देखता है और उस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना होना चाहिए कि उसने आत्महत्या कर ली हो। यह दिखाने के लिए अभिलेखों पर कुछ भी नहीं है कि अपीलकर्ता मृतक के साथ संबंध बनाए रख रहा था और इसके अलावा यह आरोप लगाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि अपीलकर्ता ने धारा 306 भ०द०वि० के अर्थ के भीतर मृतक को आत्महत्या के लिए उकसाया था। यहां तक कि अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत कथित अपराध के संबंध में यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि अस्पष्ट और गंजे बयान को छोड़कर कि अपीलकर्ता और परिवार के अन्य सदस्यों ने जातिवादी शब्दों का उच्चारण करके मृतक के साथ दुर्व्यवहार किया, लेकिन कथित अपराध के लिए किसी भी सामग्री को आकर्षित करने के लिए अभिलेखों पर कुछ भी नहीं है।

इस न्यायालय के पास चित्रेश कुमार चोपड़ा बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार)(2009) 16 एस.सी.सी. 605 के मामले में दुष्प्रेरण के पहलू से निपटने का अवसर था। उक्त मामले में इस न्यायालय ने राय दी है कि अभियुक्त द्वारा किसी कार्य को करने के लिए उकसानेया प्रोत्साहित करने का इरादा होना चाहिए। इसके अलावा, फैसले में यह भी कहा गया कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्महत्या का पैटर्न दूसरे से अलग होता है और प्रत्येक व्यक्ति का आत्मसम्मान और आत्म-सम्मान का अपना विचार होता है। उक्त निर्णय में यह माना गया है कि आत्महत्या के मामलों से निपटने के लिए कोई सीधा फार्मूला निर्धारित करना असंभव है और प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तय किया जाना चाहिए। अमर्लेदु पाल @ झांटू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2010) 1 एस.सी.सी. 707 के मामले के तहत एक मामले को धारा 306 भ०द०वि० के दायरे में लाने के लिए इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"12. इस प्रकार, इस न्यायालय ने लगातार यह विचार किया है कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत किसी अपराध के लिए किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने से पहले, अदालत को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की ईमानदारी से जांच करनी चाहिए और यह पता लगाने के लिए कि क्या पीड़िता के साथ की गई क्रूरता और उत्पीड़न ने पीड़िता के जीवन को समाप्त करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं छोड़ा था। यह भी ध्यान में रखा जाना

चाहिए कि आत्महत्या के कथित उकसाने के मामलों में आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्यों का प्रमाण होना चाहिए। केवल अभियुक्त की ओर से घटना के समय के करीब कोई सकारात्मक कार्रवाई किए बिना उत्पीड़न के आरोप पर, जिसने व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया या मजबूर किया, धारा 306 भ०द०वि० के संदर्भ में दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है।

13. किसी मामले को धारा 306 भ०द०वि० के दायरे में लाने के लिए आत्महत्या का मामला होना चाहिए और उक्त अपराध के कमीशन में, जिस व्यक्ति के बारे में कहा जाता है कि उसने आत्महत्या के लिए उकसाया, या आत्महत्या करने की सुविधा के लिए कुछ कार्य करके सक्रिय भूमिका निभाई होगी। इसलिए, उक्त अपराध के आरोपी व्यक्ति द्वारा उकसाने के कार्य को धारा 306 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराए जाने से पहले अभियोजन पक्ष द्वारा साबित और स्थापित किया जाना चाहिए।

एसएस चीना बनाम विजय कुमार महाजन और अन्य (2010) 12 एस.सी.सी. 190 के मामले में फैसले में, इस न्यायालय ने धारा 306 भ०द०वि० के अपराध के अवयवों को दोहराया। निर्णय का प्रस्तर-25 इस प्रकार है:

"25. दुष्प्रेरण में किसी व्यक्ति को उकसाने या जानबूझकर किसी व्यक्ति को किसी काम को करने में सहायता करने की मानसिक प्रक्रिया शामिल है। आत्महत्या करने के लिए उकसाने या सहायता करने के लिए अभियुक्त की ओर से सकारात्मक कार्य के बिना, दोषसिद्धि को बरकरार नहीं रखा जा सकता है। विधायिका की मंशा और इस न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का अनुपात स्पष्ट है कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट पुरुष होना चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है जिसके कारण मृतक ने कोई विकल्प नहीं देखते हुए आत्महत्या कर ली और उस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना था कि उसने आत्महत्या कर ली।

राजीव थापर और अन्य बनाम मदन लाल कपूर (2013)3 एस.सी.सी. 330 के मामले में फैसले में इस न्यायालय ने धारा 482 द०प्र०स० के तहत प्रावधान के दायरे पर विचार किया है और धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रार्थना की सत्यता निर्धारित करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पालन किए जाने वाले कदमों को निर्धारित किया है। द०प्र०स० प्रस्तर-30 में चार चरण शामिल हैं, जिन्हें नीचे दिया गया है:

"30. पूर्वगामी प्रस्तर-में प्रचारित कारकों के आधार पर, हम धारा 482 द०प्र०स० के तहत उच्च न्यायालय में निहित शक्ति का उपयोग करके एक अभियुक्त द्वारा उठाए गए रद्द करने के लिए की गई प्रार्थना की सत्यता निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित चरणों को चित्रित करेंगे:

30.1. चरण एक: क्या अभियुक्त द्वारा भरोसा की गई सामग्री ठोस, उचित और निर्विवाद है यानी सामग्री उत्कृष्ट और त्रुटिहीन गुणवत्ता की है?

30.2. चरण दो: क्या अभियुक्त द्वारा भरोसा की गई सामग्री अभियुक्त के खिलाफ लगाए गए आरोपों में निहित दावों को खारिज कर देगी यानी सामग्री शिकायत में निहित तथ्यात्मक दावों को अस्वीकार करने और खारिज करने के लिए पर्याप्त है यानी सामग्री ऐसी है जो एक उचित व्यक्ति को आरोपों के तथ्यात्मक आधार को गलत मानने और निंदा करने के लिए राजी करेगी?

30.3. चरण तीन: क्या अभियुक्त द्वारा भरोसा की गई सामग्री का अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा खंडन नहीं किया गया है; और/या सामग्री ऐसी है कि अभियोजन/शिकायतकर्ता द्वारा इसका उचित खंडन नहीं किया जा सकता है?

30.4. चरण चार: क्या मुकदमे के साथ आगे बढ़ने से अदालत की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा, और न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होगी?

30.5. यदि सभी चरणों का उत्तर सकारात्मक है, तो उच्च न्यायालय के न्यायिक विवेक को धारा 482 द०प्र०स० के तहत निहित शक्ति का प्रयोग करते हुए ऐसी आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए राजी करना चाहिए। अभियुक्तों के साथ न्याय करने के अलावा, शक्ति के इस तरह के प्रयोग से अदालत के कीमती समय की बचत होगी, जो अन्यथा इस तरह के मुकदमे (साथ ही उससे उत्पन्न होने वाली कार्यवाही) को अवधारित करने में बर्बाद हो जाएगा, खासकर जब यह स्पष्ट हो कि आरोपी की दोषसिद्धि में इसका निष्कर्ष नहीं निकलेगा।

10. इस न्यायालय द्वारा तय किए गए पूर्वोक्त अनुपात को लागू करके, हमने अभिलेखों पर मौजूद सामग्री की सावधानीपूर्वक जांच की है और मामले के तथ्यों की जांच की है। इस कथन को छोड़कर कि मृतक अपीलकर्ता के साथ संबंध में था, यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि अपीलकर्ता मृतक के साथ कोई संबंध बनाए रख रहा था। वास्तव में, पहले के समय जब मृतक अपीलकर्ता का पीछा कर रही थी, अपीलकर्ता अपने पिता के साथ थाना गई और मृतक द्वारा अपीलकर्ता को किए जा रहे कॉल के बारे में शिकायत की। 05.07.2018 को दर्ज उप निरीक्षक मनोज कुमार के बयान से भी यही स्पष्ट है। दर्ज किए गए अपने बयान में उन्होंने स्पष्ट रूप से गवाही दी है कि अपीलकर्ता के साथ पिता पुलिस चौकी गए और मृतक के खिलाफ शिकायत की, जो लगातार अपीलकर्ता को फोन कर रहा था और प्रस्ताव दे रहा था कि उसे इस धमकी के साथ शादी करनी चाहिए कि वह अन्यथा मर जाएगा। अभिलेखों पर रखी गई ऐसी सामग्री के संबंध में और धारा 107 भ०द०वि० के अर्थ के भीतर किसी भी सामग्री के अभाव में, धारा 306 भ०द०वि० और अधिनियम की धारा 3(2)(v) के तहत कथित अपराध के लिए अपीलकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करने का कोई आधार नहीं है। अपीलकर्ता को बिना किसी विश्वसनीय सामग्री के आपराधिक मुकदमे का सामना करने के लिए मजबूर करना न्याय का उपहास होगा।

11. इसे ध्यान में रखते हुए, हमारा विचार है कि उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दायर आवेदन को केवल एक निष्कर्ष दर्ज करके खारिज करने में गलती की है कि तथ्यात्मक विवादों को देखते हुए धारा 482 द०प्र०स० के तहत एक याचिका में इसका निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

.....

23. धारा 107 भ०द०वि० सपठित धारा 306 भ०द०वि० किसी चीज के दुष्प्रेरण के लिए बहुत स्पष्ट है। उकसाना पहली शर्त है, दूसरी शर्त किसी भी साजिश में एक या एक से अधिक व्यक्तियों को शामिल करना है और आगे साजिश के अनुसरण में एक कार्य या अवैध चूक है और तीसरी चीज किसी भी कार्य या अवैध चूक द्वारा करने का इरादा है। इस मामले में ये सभी कानूनी तत्व पूरी तरह से गायब हैं। वास्तव में, केवल किसी अन्य तथ्य के साथ विवाह से इनकार करना धारा 107 भ०द०वि० में परिभाषित दुष्प्रेरण के दायरे में नहीं आता है, इसलिए, यह धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध नहीं होगा।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एम. विजयकुमार बनाम तमिलनाडु राज्य, (2024) 4 एस.सी.सी. 633 के मामले में धारा 306 भ०द०वि० के तहत अपराध करने में पुरुषों के प्रश्न पर विचार करते हुए निम्नानुसार अवधारित किया:

"19. प्रासंगिक स्थिति में, धारा 306 भ०द०वि० के तहत प्रावधानों के विश्लेषण और उपरोक्त को संदर्भित निर्णयों को देखते हुए, हमें यह भी विचार करना होगा कि मेन्स री क्या है? मेन्स री का अर्थ है दोषी दिमाग। एक सामान्य नियम के रूप में, प्रत्येक अपराध के लिए एक मानसिक तत्व की आवश्यकता होती है, जिसकी प्रकृति, प्रश्न में विशेष अपराध की परिभाषा पर निर्भर करेगी। यद्यपि 'मेन्स री' शब्द का कोई विशेष अर्थ बताना असंभव है, क्योंकि मेन्स रिया (आशय / इरादा) के अस्तित्व को निर्धारित करने की परिस्थिति विशेष अपराध का गठन करने वाले अवयवों और इस तरह के अपराध का गठन करने के लिए विशेष अपराध की परिभाषा में उपयोग की जाने वाली अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है। केवल इंग्लैंड के हैल्सबरी के कानून (4 वां संस्करण, खंड -11, प्रस्तर-10) का उल्लेख करना उचित है, उसी के अनुसार:

"... 'मेन्स री' शब्द का कोई विशेष अर्थ बताना असंभव है, इरादे, लापरवाही और ज्ञान जैसी अवधारणाएं जो आमतौर पर आपराधिक दायित्व के आधार के रूप में उपयोग की जाती हैं और कुछ मामलों में, इसे मौलिक कहा जा सकता है। आम तौर पर, योग्यता और अपवाद दोनों के अधीन, एक व्यक्ति को गंभीर अपराधों के लिए आपराधिक रूप से उत्तरदायी नहीं बनाया जाना चाहिए जब तक कि वह कारण बनने का इरादा नहीं रखता है या भविष्यवाणी करता है कि वह शायद कारण बनेगा या सबसे कम वह उन तत्वों का कारण बन सकता है जो प्रश्न में अपराध का गठन करते हैं।

20. प्रवर्तन निदेशक बनाम एमसीटीएम कॉर्प प्राइवेट लिमिटेड में निर्णय में, यह देखा गया था कि मेन्स रीआ मन की एक स्थिति है और माना गया कि आपराधिक कानून के तहत मेन्स री को "दोषी इरादा" माना जाता

है और जब तक यह नहीं पाया जाता है कि 'अभियुक्त' का अपराध करने का दोषी इरादा था, तब तक उसे अपराध करने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

19. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आपराधिक अपील संख्या-221 वर्ष 2025, महेंद्र अवसे बनाम मध्य प्रदेश राज्य में आत्महत्या के लिए उकसाने और इसके प्रभाव के संबंध में पहले के फैसलों पर विचार करने के बाद 17.01.2025 को निर्णय दिया, जो निम्नानुसार है: -

"14. मदन मोहन सिंह बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (2010)8 एस.सी.सी.628 में, इस न्यायालय ने माना कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत एक अपराध को सामने लाने के लिए धारा 107 भ०द०वि० द्वारा विचार किया गया विशिष्ट दुष्प्रेरण उस दुष्प्रेरण के परिणामस्वरूप संबंधित व्यक्ति की आत्महत्या करने के इरादे से आवश्यक है। यह भी माना गया कि धारा 306 को लागू करने के लिए मृतक को आत्महत्या करने के लिए सहायता करने या उकसाने या उकसाने का अभियुक्त का इरादा आवश्यक है।

15. अमलेंदु पाल उर्फ झांटू बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2010)1 एस.सी.सी. 707, इस न्यायालय ने निम्नानुसार व्यवस्था की: -

अपराध के लिए किसी अभियुक्त को दोषी ठहराने से पहले, अदालत को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों की ईमानदारी से जांच करनी चाहिए और यह पता लगाने के लिए कि क्या पीड़िता के साथ की गई क्रूरता और उत्पीड़न ने पीड़िता के जीवन को समाप्त करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं छोड़ा था। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि आत्महत्या के कथित उकसाने के मामलों में आत्महत्या के लिए उकसाने के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कृत्यों का प्रमाण होना चाहिए। केवल अभियुक्त की ओर से घटना के समय के करीब कोई सकारात्मक कार्रवाई किए बिना उत्पीड़न के आरोप पर, जिसने व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित किया या मजबूर किया, धारा 306 भ०द०वि० के संदर्भ में दोषसिद्धि टिकाऊ नहीं है। [महत्व सन्निविष्ट]

16. किसी मामले को धारा 306 भ०द०वि० के दायरे में लाने के लिए आत्महत्या का मामला होना चाहिए और उक्त अपराध के कमीशन में, जिस व्यक्ति के बारे में कहा जाता है कि उसने आत्महत्या के लिए उकसाया, या आत्महत्या करने की सुविधा के लिए कुछ कार्य करके सक्रिय भूमिका निभाई होगी। इसलिए, उक्त अपराध के आरोपी व्यक्ति द्वारा दुष्प्रेरण के कार्य को अभियोजन पक्ष द्वारा साबित किया जाना चाहिए और धारा 306 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराए जाने से पहले उसे स्थापित किया जाना चाहिए।

17. एम. मोहन बनाम राज्य, (2011) 3 एस.सी.सी. 626 के बाद रमेश कुमार बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2001) 9 एस.सी.सी. 618, जिसमें यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था: -

"41. इस न्यायालय ने रमेश कुमार के एस.सी.सी. प्रस्तर-20 में "उकसाने" के अर्थ के विभिन्न रंगों की जांच की है। प्रस्तर-20 (एस.सी.सी. पृष्ठ 629) इस प्रकार है:

"20. उकसाना 'एक कार्य' करने के लिए उकसाना, आगे बढ़ने का आग्रह करना, या प्रोत्साहित करना है। उकसाने की आवश्यकता को पूरा करने के लिए, हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि वास्तविक शब्दों का उपयोग उस प्रभाव के लिए किया जाना चाहिए या जो उकसाने का गठन करता है वह आवश्यक रूप से और विशेष रूप से परिणाम का विचारोत्तेजक होना चाहिए। फिर भी परिणाम को भड़काने के लिए एक उचित निश्चितता को स्पष्ट किया जा सकता है। प्रस्तुत मामला ऐसा नहीं है जहां अभियुक्त ने अपने कृत्यों या चूक से या निरंतर आचरण से ऐसी परिस्थितियां पैदा की हों कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा हो, इस मामले में उकसाने का अनुमान लगाया जा सकता है। वास्तव में अनुसरण करने के परिणामों का इरादा किए बिना क्रोध या भावना के फिट में बोले गए शब्द को उकसाने के रूप में नहीं कहा जा सकता है।

उक्त मामले में यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अभिलेखों पर कोई सबूत और सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिससे अपीलकर्ता-आरोपी द्वारा सीमा (अपीलकर्ता की पत्नी) द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाया गया अनुमान लगाया जा सकता है।

इसके बाद, मोहन (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने कहा:

"45. विधायिका का इरादा और इस न्यायालय द्वारा तय किए गए मामलों का अनुपात स्पष्ट है कि धारा 306 भ०द०वि० के तहत किसी व्यक्ति को दोषी ठहराने के लिए अपराध करने के लिए एक स्पष्ट पुरुष होना चाहिए। इसके लिए एक सक्रिय कार्य या प्रत्यक्ष कार्य की भी आवश्यकता होती है, जिसके कारण मृतक ने कोई विकल्प नहीं देखते हुए आत्महत्या कर ली और इस कार्य का उद्देश्य मृतक को ऐसी स्थिति में धकेलना होगा कि उसने आत्महत्या कर ली। [महत्व सन्निविष्ट]

18. जैसा कि यहां ऊपर अवधारित किया गया है, अभियुक्त को अपने कार्य या चूक या आचरण के निरंतर प्रविधि द्वारा उकसाने की आवश्यकता को पूरा करने के लिए ऐसी परिस्थितियां पैदा करनी चाहिए थीं कि मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं बचा था। यह भी माना गया कि वास्तव में अनुसरण करने के परिणामों का इरादा किए बिना क्रोध और भावना के आवेश में बोले गए शब्द को उकसाया नहीं कहा जा सकता है।

19. प्रस्तुत मामले के तथ्यों पर उपरोक्त सिद्धांत को लागू करते हुए, हम आश्वस्त हैं कि अपीलकर्ता के खिलाफ धारा 306 भ०द०वि० के तहत आरोप तय करने का कोई आधार नहीं है। यह तब भी है जब हम अभियोजन पक्ष के मामले को उसके उच्चतम स्तर पर लेते हैं। सुसाइड नोट पढ़ने से पता चलता है कि अपीलकर्ता मृतक से मृतक द्वारा गारंटीकृत ऋण चुकाने के लिए कह रहा था और रितेश मालाकार को अग्रिम भुगतान कर रहा था। यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता ने अपने नियोक्ता के कहने पर बकाया ऋणों

की बरामदगी के अपने कर्तव्य का पालन करके मृतक को आत्महत्या करने के लिए उकसाया। समान रूप से, प्रतिलेखों के साथ, जिसमें ऊपर जोर दिए गए अंश भी शामिल हैं। यहां तक कि शाब्दिक रूप से लिया गया, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता आत्महत्या के कमीशन को उकसाने का इरादा रखता था। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि अपीलकर्ता ने अपने कृत्यों से ऐसी परिस्थितियां पैदा कीं, जिससे मृतक के पास आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था। अपीलकर्ता की कुर्सी से देखने पर, मृतक के साथ आदान-प्रदान, भले ही गर्म हो, मृतक को आत्महत्या करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं छोड़ने के इरादे से नहीं है। यह वह निष्कर्ष है जिसे हम संदर्भ और स्थिति को ध्यान में रखते हुए यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। हैरानी की बात यह है कि दो महीने और बीस दिन की देरी के बाद प्राथमिकी भी दर्ज की गई है।

20. इस न्यायालय ने पिछले कई दशकों में, धारा 306 भ०द०वि० [अब भारतीय न्याय संहिता, 2023 की धारा 45 सपठित धारा 108] के लिए कानून द्वारा अनिवार्य उच्च सीमा को बार-बार दोहराया है। हालांकि ऐसा लगता है कि उन्होंने उल्लंघन में अधिक अनुसरण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 306 भ०द०वि० पुलिस द्वारा लापरवाही से और बहुत आसानी से अपनाई गई है। जबकि वास्तविक मामलों में शामिल व्यक्तियों को बख्शा नहीं जाना चाहिए जहां सीमा पूरी हो जाती है, इस प्रावधान को व्यक्तियों के खिलाफ लागू नहीं किया जाना चाहिए, केवल मृतक के व्यथित परिवार की तात्कालिक भावनाओं को शांत करने के लिए। प्रस्तावित अभियुक्त और मृतक के आचरण, मृतक की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु से पहले उनकी बातचीत को व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए और जीवन की दिन-प्रतिदिन की वास्तविकताओं से अलग नहीं किया जाना चाहिए। नियोजित अतिशयोक्ति को आत्महत्या करने के लिए उकसाने के रूप में महिमामंडित नहीं किया जाना चाहिए। अब समय आ गया है कि जांच एजेंसियों को धारा 306 के तहत इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के प्रति संवेदनशील बनाया जाए ताकि व्यक्तियों को पूरी तरह से असमर्थनीय अभियोजन की प्रक्रिया के दुरुपयोग का सामना न करना पड़े। विचारण न्यायालय को भी बहुत सावधानी और सतर्कता बरतनी चाहिए और यांत्रिक रूप से आरोप तय करके एक प्ले इट सेफ सिंड्रोम नहीं अपनाना चाहिए, भले ही किसी दिए गए मामले में जांच एजेंसियों ने धारा 306 के अवयवों के प्रति पूरी तरह से अवहेलना दिखाई हो।

20. प्रस्तुत मामले में, धारा 107 और 306 भ०द०वि० के मद्देनजर मामले पर विचार करते समय, मुझे लगता है कि आत्महत्या के कथित उकसाने के मामले में कोई सबूत नहीं है क्योंकि आवेदकों की ओर से किसी भी तरह से कोई सक्रिय कार्य नहीं दिखाया गया है जिससे मृतक को आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया गया हो। अभिलेखों के सामने यह स्पष्ट है कि ऋण मृतक के नाम पर स्वीकृत किया गया था, जो इसे चुका नहीं सका, फिर आवेदकों को भाई होने के नाते, मृतक द्वारा आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए जिम्मेदार कैसे ठहराया जा सकता था। आवेदकों और मृतक के बीच कोई सबूत या कोई प्रतिकूल सामग्री नहीं है, जो यह स्थापित कर सके कि आवेदक ऋण राशि को चुकाने के लिए जिम्मेदार थे जो मृतक के नाम पर दी गई थी। ऐसे मामलों में अभियुक्त की ओर से मेन्स रिया (आशय / इरादा) के प्रश्न की जांच अभियुक्त के वास्तविक कृत्यों और कार्यों के संदर्भ में की जाएगी, लेकिन प्रस्तुत मामले में, यह स्थापित करने के लिए कोई सबूत

उपलब्ध नहीं है कि आवेदकों को आत्महत्या के लिए उकसाने के लिए मेन्स रिया (आशय / इरादा) था। इसलिए, आवेदकों के खिलाफ प्रस्तुत आपराधिक कार्यवाही को जारी रखना कानून की प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है।

21. तदनुसार आवेदन की अनुमति दी जाती है और आवेदकों के खिलाफ न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रतापगढ़ की अदालत में लंबित आपराधिक मामला संख्या-56450 वर्ष 2016, राज्य बनाम शरद कुमार और अन्य की पूरी कार्यवाही एतद्वारा रद्द/खंडित की जाती है।

(2025) 1 ILRA 607

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 09.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल

आपराधिक प्रकीर्ण जमानत आवेदन संख्या-7768 वर्ष 2024

राघवेंद्र सिंह ... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य ... प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

श्री धर्मेन्द्र सिंह, श्री कुंवर भास्कर परिहार, सुश्री नीजा श्रीवास्तव, श्री सूर्य भान सिंह, श्री वीरेन्द्र सिंह, श्री विकास शर्मा, श्री वी.पी. श्रीवास्तव (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के लिए अधिवक्ता:

सुश्री अभिलाष सिंह, श्री आशुतोष यादव, शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 498ए, 304बी और 328 - दहेज निषेध अधिनियम, 1961 - धारा 3/4 - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 21 - जमानत - प्राथमिकी में, आवेदक द्वारा परिवार के अन्य सदस्यों के साथ मृतक व्यक्ति से अतिरिक्त दहेज की मांग की गई थी, उसे 04/05.06.2023 की रात लगभग 1:33 बजे जबरन कुछ जहरीला पदार्थ पिलाया गया। उसने अपने पिता को इस तथ्य की जानकारी दी, जो अपनी बेटी के ससुराल के घर पहुंचे और उसे अस्पताल ले गए, उसके मुंह से झाग निकल रहा था, उसमें तीखी गंध आ रही थी और इलाज के दौरान उसकी मौत हो गई। (प्रस्तर-4, 5)

आवेदक द्वारा दलील, प्राथमिकी में लगभग दस दिनों की देरी हुई, अभियोजन पक्ष द्वारा कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया - मृत्यु के कारण का पता नहीं लगाया जा सका, आत्महत्या का मामला क्योंकि पीड़िता ने घर में इस्तेमाल होने वाले सामान्य कीटनाशक के रूप में एल्यूमीनियम फॉस्फाइड का सेवन किया - जांच कार्यवाही के दौरान, सूचनाकर्ता ने दहेज की मांग के बारे में कुछ नहीं बताया नहीं की और कहा कि रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गई। - आगे तर्क दिया कि उसका अपनी बड़ी बहन के देवर के साथ निकट संबंध था, देर रात तक उससे बात की, सीडीआर ने पुष्टि की- विवेचना के दौरान देवर के मोबाइल संख्या-जानबूझकर विवेचनाधिकारी को नहीं दिए गए ताकि व्हाट्सएप चैट को प्राप्त न किया जा सके। (प्रस्तर-7, 8, 9, 10, 11, 15)

अभिनिर्धारित, उनके बीच बातचीत को स्वीकार किया जाता है और मामले पर संदेह किया जाता है, बचाव पक्ष को अपना मामला केवल प्रबलता और संभावनाओं के आधार पर रखना होता है - भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी के तहत अनुमान लगाया गया था जिसे मामले में उठाया जा सकता है लेकिन इससे पहले अभियोजन का कर्तव्य है कि वह अपने मामले को संदेह से परे साक्ष्यों के साथ साबित करे। (प्रस्तर-31)

जमानत आवेदन की अनुमति दी गई। (ई-13)

उद्धृत वादों की सूची:

1. निरंजन सिंह और एक अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य, ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 785
2. सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, 2022 आईएनएस.सी. 690
3. मनीष सिसोदिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय 2024 आईएनएससी 595

(माननीय न्यायमूर्ति श्री कृष्ण पहल द्वारा दिया गया)

[1] सूची को संशोधित किया गया है।

[2] श्री वी.पी. श्रीवास्तव, वरिष्ठ अधिवक्ता सुश्री नीजा श्रीवास्तव और श्री धर्मेन्द्र सिंह, आवेदक के अधिवक्ता और श्री आशुतोष यादव, सूचनाकर्ता के अधिवक्ता के साथ-साथ श्री दीपक कुमार सिंह, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया।

[3] आवेदक परीक्षण के लंबित रहने के दौरान वाद अपराध संख्या 415/2023, जिसमें धारा 498ए, 304बी, 328 भारतीय दंड संहिता और धारा 3/4 दहेज निषेध अधिनियम पुलिस स्टेशन कोतवाली, जिला फतेहपुर के तहत मामले दर्ज हैं, में जमानत चाहता है।

अभियोजन की कहानी:

[4] सूचनाकर्ता की बेटी की शादी 22.02.2023 को हिंदू रीति-रिवाजों के अनुसार आवेदक के साथ संपन्न हुई और इसमें पर्याप्त सुख-सुविधाओं और उपहारों का आदान-प्रदान किया गया। यह आरोप लगाया गया है कि आवेदक ने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ मिलकर अपनी बेटी को अतिरिक्त दहेज के रूप में फॉर्च्यूनर कार की मांग के लिए क्रूरता का सामना करना पड़ा, जिससे 04/05.06.2023 की रात लगभग 1:33 बजे उसे जबरन कुछ जहरीली सामग्री दी गई, जिससे उसने अपने पिता को उक्त तथ्य की सूचना दी, जो अपनी बेटी के ससुराल वालों के घर पहुंचे और उसे फतेहपुर के सदर अस्पताल ले गए, जहां उसके मुंह से झाग निकल रहा था और उसमें तीखी गंध आ रही थी।

[5] इस प्रकार, डॉक्टर ने गैस्ट्रिक पानी से धोने की प्रक्रिया का संचालन किया था और उसकी बिगड़ती हालत को देखते हुए उसे कानपुर रेफर कर दिया था। कानपुर जाते समय सूचनाकर्ता की बेटी की मौत हो गई बताई जा रही है।

आवेदक की ओर से तर्क:

[6] आवेदक को प्रस्तुत मामले में झूठा फंसाया गया है और उसका उक्त अपराध से कोई लेना-देना नहीं है।

[7] प्राथमिकी में लगभग दस दिनों की देरी हुई है और उक्त देरी का कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

[8] मृत्यु के कारण का पता नहीं लगाया जा सका क्योंकि विसरा को संरक्षित किया गया था और फॉरेंसिक विश्लेषण के दौरान, एल्यूमीनियम फॉस्फाइड रसायन पाया गया था क्योंकि मृत्यु का कारण केवल एल्यूमीनियम फॉस्फाइड बताया गया था।

[9] यह आत्महत्या का एक स्पष्ट मामला है क्योंकि पीड़िता ने एल्यूमीनियम फॉस्फाइड का सेवन किया था जो घर में इस्तेमाल किया जाने वाला एक आम कीटनाशक है और उसने खुद इसका सेवन किया था।

[10] मृतक व्यक्ति की जांच की कार्यवाही उसी दिन यानी 05.06.2023 को अवधारित की गई थी और सूचनाकर्ता ने इसके लिए विवेचनाधिकारी के समक्ष एक आवेदन दायर किया था, जिसके तहत उसने दहेज की मांग के बारे में एक भी शब्द नहीं कहा था और उसने बस इतना कहा है कि उसकी बेटी की रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गई थी, ऐसे में उसका शव परीक्षण कराया जाए। सूचनाकर्ता जांच कार्यवाही में पंच गवाह संख्या-1 है।

[11] यह सच है कि मृतका की शादी के लगभग चार महीने के भीतर मृत्यु हो गई थी, लेकिन मृतका का अपनी बड़ी बहन के छोटे देवर के साथ घनिष्ठ संबंध था और वह देर रात तक उससे बात करती थी।

[12] उक्त तथ्य सीडीआर विवरण से पुष्ट होता है जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि मृतका अपनी शादी से ठीक पहले और उसकी शादी के बाद रात के दौरान उससे बात करता था।

[13] मृतका का मोबाइल 8795779578 था और उसकी बड़ी बहन के देवर का मोबाइल 7068224351 था। उनकी बातचीत की प्रासंगिक तिथियों और समय पर इस प्रकार प्रकाश डाला जा रहा है: -

क्रम सं.	दिनांक	समय	मियाद
1.	19.02.2023	1: 53: 28 बजे	2305 सेकंड
2.	27.02.2023	4: 37: 25 बजे	155 सेकंड
3.	27.02.2023	4: 40: 13 बजे	2057 सेकंड
4.	27.02.2023	5:17: 20 बजे	2216 सेकंड
5.	14.03.2023	1: 24: 49 बजे	10794 सेकंड
6.	14.03.2023	4:26:41 बजे	6624 सेकंड

[14] इस प्रकार, यह आत्महत्या का स्पष्ट मामला है क्योंकि वह आवेदक से शादी नहीं करना चाहती थी, बल्कि वह अपनी बड़ी बहन के देवर से शादी करना चाहती थी।

[15] विवेचना के दौरान यह सामने आया है कि मृतका की बहन के देवर के मोबाइल संख्या-विवेचनाधिकारी को जानबूझकर नहीं दिए गए हैं ताकि व्हाट्सएप चैट को पुनर्प्राप्त न किया जा सके।

[16] सी.डी.आर पूरक हलफनामे में ही दायर किए गए हैं।

[17] आवेदक की ओर से उसके खिलाफ लगाए गए आरोपों की असत्यता को प्रदर्शित करने के लिए कई अन्य तर्क दिये गये हैं। अधिवक्ता के अनुसार, जिन परिस्थितियों के कारण आवेदक को झूठा निहितार्थ लगा, उन पर भी विस्तार से चर्चा की गई है।

[18] आवेदक का कोई आपराधिक इतिहास नहीं है। आवेदक 22.09.2023 से जेल में बंद है। आवेदक परीक्षण में सहयोग करने के लिए तैयार है। यदि आवेदक को जमानत पर रिहा कर दिया जाता है, तो वह जमानत की स्वतंत्रता का दुरुपयोग नहीं करेगा।

सूचनाकर्ता की ओर से तर्क :

[19] जमानत आवेदन का विरोध इस आधार पर किया गया है कि फील्ड यूनिट को घटना स्थल पर बुलाया गया था और उन्होंने उसी दिन मृतक के साथ-साथ उसके पति के मोबाइल फोन भी प्राप्त कर लिए थे, इस तरह उक्त विवरण विवेचनाधिकारी द्वारा उक्त फील्ड यूनिट टीम से मृतक का मोबाइल प्राप्त करके लिया जा सकता था।

[20] दोनों के बीच कोई व्हाट्सएप चैट नहीं है। आधुनिक युग में, व्हाट्सएप पर एक-दूसरे के साथ संवाद करना आम बात है और अगर उन व्हाट्सएप चैट को पुनः प्राप्त किया गया होता तो यह खुला और स्पष्ट मामला हो जाता।

[21] उक्त व्हाट्सएप चैट को आवेदक के साथ मिलीभगत में विवेचनाधिकारी द्वारा जानबूझकर छिपाया गया है।

[22] मृतका की बड़ी बहन के देवर का बयान दर्ज किया गया था और उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि मृतका की बहन का मोबाइल काम नहीं कर रहा था, इसलिए वह उसका मोबाइल फोन लेती थी और अपनी बहन से बात करती थी जो स्वाभाविक है, इसलिए आवेदक जमानत का हकदार नहीं है।

[23] भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-बी के तहत अनुमान के आलोक में, उक्त तथ्य का खंडन करने की जिम्मेदारी आवेदक पर है क्योंकि मृतका की मृत्यु आवेदक के घर के परिसर में जबरन जहर देने के बाद उसकी शादी के चार महीने की अवधि के भीतर समाप्त हो गई थी।

राज्य की ओर से तर्क :

[24] जमानत आवेदन का इस आधार पर विरोध किया गया है कि मृतका की शादी के सात साल के भीतर मृत्यु हो गई थी और मृतका से अतिरिक्त दहेज के रूप में एक फॉर्च्यूनर कार की मांग की गई थी, हालांकि उन्होंने अनुपालन हलफनामे में बताए गए तथ्य पर विवाद नहीं किया है, जिसमें कहा गया है कि विवेचना के दौरान मोबाइल फोन प्राप्त नहीं किए जा सके और इस तरह, वार्तालाप विवरण प्राप्त नहीं किया जा सका. मृतका और मृतका की बड़ी बहन के देवर के बीच हुई बातचीत को स्वीकार किया जाता है।

निष्कर्ष:

[25] इस न्यायालय ने, निरंजन सिंह और अन्य बनाम प्रभाकर राजाराम खरोटे और अन्य एआईआर 1980 एससी 785 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय के आलोक में, साक्ष्य की विस्तृत जाँच और मामले के गुण-दोषों के विस्तृत दस्तावेजीकरण से परहेज किया है, क्योंकि किसी भी पक्ष को यह आभास नहीं होना चाहिए कि उसके मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। मामले में प्रथम दृष्टया संतुष्टि की आवश्यकता है लेकिन यह आदेश में ही गुण-दोषों की विस्तृत खोज के समान नहीं है।

[26] "जब तक दोषी साबित न हो जाए, तब तक निर्दोषता की धारणा" का प्रसिद्ध सिद्धांत एक नियम के रूप में जमानत और अपवाद के रूप में कारावास की अवधारणा को जन्म देता है।

[27] भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत किसी व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार को केवल इसलिए नहीं छीना जा सकता है क्योंकि उस व्यक्ति पर अपराध करने का आरोप लगाया जाता है जब तक कि अपराध एक उचित संदेह से परे स्थापित नहीं हो जाता। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में कहा गया है कि किसी का भी जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता तब तक नहीं छीनी जा सकती जब तक कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन नहीं किया जाता है, और प्रक्रिया न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए। उक्त सिद्धांत को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **सतेंद्र कुमार अंतिल बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो और अन्य, 2022 आईएनएस.सी. 690** में दोहराया गया है।

[28] उपरोक्त दृष्टिकोण को दोहराते हुए, मनीष सिसोदिया बनाम प्रवर्तन निदेशालय 2024 आईएनएससी 595 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से इस बात पर जोर दिया है कि कानून के बहुत अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत कि जमानत को सजा के रूप में नहीं रोका जाना चाहिए, को भुलाया नहीं जाना चाहिए। अब समय आ गया है कि न्यायालयों को इस सिद्धांत को स्वीकार करना चाहिए कि "जमानत एक नियम है और जेल एक अपवाद है"।

[29] विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता किसी भी असाधारण परिस्थितियों को सामने नहीं ला सके जो आवेदक को जमानत से वंचित करने का औचित्य प्रदान करें।

[30] यह कानून का स्थापित सिद्धांत है कि जमानत का उद्देश्य मुकदमे में अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है। आवेदक के न्याय से भागने या न्याय के प्रविधि को बाधित करने या अपराधों को दोहराने या गवाहों को डराने आदि के रूप में अन्य परेशानी पैदा करने का कोई भौतिक विवरण या परिस्थितियां विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है।

[31] उक्त बातचीत ने मामले पर संदेह पैदा किया, लेकिन बचाव पक्ष को उचित अवधि से परे अपने मामले को साबित करने की अपेक्षा नहीं है, उसे केवल प्रबलता और संभावनाओं के आधार पर अपना मामला रखना होगा। यह सच है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 113 बी के तहत अनुमान है जिसे मामले में उठाया जा सकता है, लेकिन इससे पहले, यह अभियोजन पक्ष का सर्वोच्च कर्तव्य है कि वह उचित संदेह से परे अपने मामले को साबित करे।

[32] मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, पक्षों के अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्क, और सबूतों को लेते हुए और मामले के गुण-दोष पर कोई राय व्यक्त किए बिना, न्यायालय का विचार है कि आवेदक ने जमानत के लिए मामला बनाया है। जमानत आवेदन की अनुमति है।

[33] उपरोक्त मामले में शामिल आवेदक- राघवेंद्र सिंह उर्फ प्रिंस को निम्नलिखित शर्तों के अधीन संबंधित अदालत की संतुष्टि के लिए एक व्यक्तिगत बांड और दो-दो जमानतदार प्रस्तुत करने पर जमानत पर रिहा किया जाए।

(i) आवेदक साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ नहीं करेगा।

(ii) आवेदक (1) मामले को खोलने, (2) आरोप तय करने और (3) द०प्र०स० की धारा 313 के तहत बयान दर्ज करने के लिए निर्धारित तिथियों पर विचारण न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहेगा। यदि विचारण न्यायालय की राय में आवेदक की अनुपस्थिति जानबूझकर या पर्याप्त कारण के बिना है, तो विचारण न्यायालय के लिए इस तरह की चूक को जमानत की स्वतंत्रता के दुरुपयोग के रूप में माना जाएगा और कानून के अनुसार उसके खिलाफ कार्रवाई की जाएगी।

[34] उपरोक्त शर्तों में से किसी के उल्लंघन के मामले में, यह जमानत रद्द करने का आधार होगा। बांड स्वीकार करने से पहले आवेदक और जमानतदारों की पहचान, स्थिति और निवास प्रमाण को संबंधित न्यायालय द्वारा सत्यापित किया जाना चाहिए।

[35] यह स्पष्ट किया जाता है कि आवेदक को जमानत देने में की गई टिप्पणियों से गवाहों की गवाही के आधार पर अपनी स्वतंत्र राय बनाने में विचारण न्यायाधीश को किसी भी तरह से प्रभावित नहीं किया जाएगा।

(2025) 1 ILRA 612

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 08.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति मो. फैज़ आलम खान

आपराधिक अपील संख्या-165 वर्ष 2001

राज देव और अन्य

... .. अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... .. प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के लिए अधिवक्ता: यू.पी. सिंह

प्रतिवादी के लिए अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, अनिल कुमार सिंह, विजय शंकर त्रिपाठी

A. आपराधिक कानून - हत्या - मरने की घोषणा - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 - धारा 32 - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 161 और 162(2) - पुलिस के लिए बयान की स्वीकार्यता- धारा 162(2) द०प्र०स० के तहत, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के खंड (1) के तहत आने वाला कोई भी बयान स्वीकार्य है, भले ही धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया हो। किसी व्यक्ति द्वारा एक बयान, जो बाद में मर जाता है, उसकी मृत्यु के कारण या परिस्थितियों के बारे में, प्रासंगिक है और इसे मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में माना जा सकता है। इस तरह का बयान, यदि स्वेच्छा से और सच्चाई से किसी व्यक्ति द्वारा फिट मानसिक स्थिति में बनाया गया है, तो चिकित्सा प्रमाणन के बिना भी स्वीकार्य है। प्रमाणन की आवश्यकता सावधानी का नियम है और अनिवार्य नहीं है। प्रस्तुत मामले में घायल/मृतक का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था, जब वह अस्पताल में भर्ती था। धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि आरोपी व्यक्तियों ने उन पर लाठी से हमला किया था, और अपीलकर्ता राम विशाल के पास कुल्हाड़ी थी और उसने उस पर कुल्हाड़ी से हमला किया था। उनकी मृत्यु के बाद, उक्त कथन - उनकी मृत्यु के कारण से संबंधित होने के कारण - भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(प्रस्तर-21, 22) के आधार पर साक्ष्य में स्वीकार्य है

बी. आपराधिक कानून - हत्या - भारतीय दंड संहिता, 1860 - धारा 302, 147, 148 और 149 - सामान्य उद्देश्य, सामान्य इरादा - गैरकानूनी रूप से एकत्र होने का सबसे महत्वपूर्ण घटक सामान्य उद्देश्य है। उस सभा की रचना करने वाले व्यक्तियों का सामान्य उद्देश्य उस धारा के खंड "पहले", "दूसरे", "तीसरा", "चौथा" और "पांचवां" में बताए गए किसी भी कार्य या कार्य को करना है। एक गैरकानूनी सभा के किसी भी सदस्य पर प्रतिनिधिक जिम्मेदारी को जकड़ने के लिए, अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि अपराध का गठन करने वाला कार्य उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया गया था या किया गया कार्य ऐसा है जैसे कि उस सभा के सदस्यों को पता था कि उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में प्रतिबद्ध होने की संभावना है। प्रत्येक मामले में जो महत्वपूर्ण है वह यह पता लगाना है कि क्या अपराध सभा के सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया गया था या वह था जिसे सदस्यों को पता था कि इसके किए जाने की संभावना है। सामान्य उद्देश्य और किए गए अपराध के बीच एक सांठगांठ होनी चाहिए। यदि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में गैरकानूनी सभा के किसी सदस्य द्वारा कोई अपराध किया जाता है, तो गैरकानूनी सभा का कोई भी सदस्य जो अपराध के कमीशन के समय उपस्थित था और जो उस सभा के सामान्य उद्देश्य को साझा करता था, उस अपराध के कमीशन के लिए उत्तरदायी होगा, भले ही उसके द्वारा कोई प्रत्यक्ष कार्य न किया गया हो। धारा 149 भ०द०वि० के तहत सक्रिय भागीदारी एक आवश्यक शर्त नहीं है; सामान्य उद्देश्य का ज्ञान पर्याप्त है। (प्रस्तर-37)

C. दांडिक विधि - हत्या - ट्रैक्टर का पार्ट खरीदकर घर लौट रहे मृतक पर सड़क के किनारे छिपे आरोपी ने घात लगाकर हमला कर दिया। उसे साइकिल से खींच लिया गया और लाठी-डंडा और कुल्हाड़ी से मारा गया; कुल्हाड़ी का इस्तेमाल अपीलकर्ता राम विशाल ने अपनी कुंद तरफ से किया था। प्रत्यक्षदर्शी मौके पर पहुंचे और

घायलों को अस्पताल ले गए, जहां बाद में उन्होंने दम तोड़ दिया। उन्हें 21 चोटें आईं, जिनमें एक फ्रैक्चर खोपड़ी भी शामिल थी, और उनके संचयी प्रभाव के कारण मृत्यु हो गई। अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा गैरकानूनी रूप से एकत्र होने का गठन अच्छी तरह से स्थापित था। हालांकि गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य के लिए सक्रिय रूप से भाग लेना आवश्यक नहीं है, यह स्पष्ट था कि सभी अभियुक्तों ने 'प्रहार' में भाग लिया था, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मृतक के व्यक्ति पर 21 चोटें पाई गई थीं, यह अनुमान लगाया गया था कि गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की पीट-पीटकर हत्या करना था। तथ्य यह है कि आरोपी व्यक्तियों द्वारा मृतक पर लाठी से हमला किए जाने के बाद, उसके बाद आरोपी राम विशाल ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से हमला किया, यह मानने के लिए पर्याप्त नहीं होगा कि सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु का कारण बनना नहीं था या यह अनुमान लगाना था कि यह केवल राम विशाल ही था जो मृत्यु के लिए जिम्मेदार हो सकता था। दिवंगत व्यक्ति। एक बार जब सभी अभियुक्त व्यक्तियों ने एक 'गैरकानूनी सभा' का गठन किया था और उन्होंने एक ठोस और सुनियोजित तरीके से कार्य किया था और सामान्य उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर लगभग 21 चोटें पहुंचाई थीं, तो यह स्थापित हो गया था कि गैरकानूनी सभा के सभी सदस्य सभा के सामान्य उद्देश्य से अवगत थे, जो राम जस को पीट-पीटकर मार डालने के लिए हत्या का कारण बनना था। मृतक की मृत्यु का कारण बनने के लिए गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य उचित संदेह से परे स्थापित था। विचारण न्यायालय का फैसला सबूतों की उचित मूल्यांकन पर आधारित था। अदालत ने अपील में कोई योग्यता नहीं पाई और तदनुसार, अपीलकर्ताओं द्वारा पसंद की गई अपील को खारिज कर दिया गया। दृढ़ विश्वास की पुष्टि की गई। (प्रस्तर-18, 38, 40)

खारिज कर दिया। (ई-5)

उद्धृत वादों / निर्णय विधियों की सूची:

1. राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 सीआरआई एलजे 871
2. सुरेश दत्त भोजने बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2024) 7 एस.सी.सी. 15
3. गुरमेज सिंह और अन्य बनाम पुंज राज्य, ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 214
4. लालजी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1989) 1 एस.सी.सी. 437
5. धर्मेन्द्र कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, मनु/एससी/0566/2024
6. हरेंद्र राय बनाम बिहार राज्य और अन्य, मनु/एससी/0905/2023
7. मंजीत सिंह बनाम द सेंट ऑफ पुन., मनु/एससी/1195/2019
8. कुलदीप यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य, मनु/एस.सी./0390/2011
9. चाणक्य धीबर (मृत) बनाम पश्चिम बंगाल और अन्य की स्थिति, एमएएनयू/एस.सी./1096/2003

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा और माननीय न्यायमूर्ति मो. फैज़ आलम खान)

1. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता श्री यू.पी. सिंह, राज्य के लिए अपर शासकीय अधिवक्ता, शिकायतकर्ता/सूचनाकर्ता की ओर से पेश होने वाले अधिवक्ता श्री विजय शंकर त्रिपाठी को सुना और अभिलेखों का अवलोकन किया।

2. इस आपराधिक अपील को अपीलकर्ताओं नामत राज देव, राम सिंगार, राम विशाल, राम बोध और सूर्य भान द्वारा धारा 374(2) द०प्र०स० के तहत सत्र परीक्षण संख्या-222 वर्ष 1992(राज्य बनाम राज देव और अन्य) में तीसरे अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश, सुल्तानपुर द्वारा पारित विचारण न्यायालय के फैसले और आदेश के खिलाफ दायर किया गया है। केस अपराध संख्या-263 वर्ष 1991, भ०द०वि० की धारा 147, 148, 302/149 के तहत, थाना-लंभुआ, जिला सुल्तानपुर, जिसके तहत अपीलकर्ता- राम विशाल को धारा 148 और 302/149 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए दोषी ठहराया गया है और बाकी अपीलकर्ताओं को धारा 147 और 302/149 भ०द०वि० के तहत अपराध करने के लिए दोषी ठहराया गया है और उन्हें धारा 302/149 भ०द०वि० के तहत अपराध से संबंधित अधिकतम कठोर आजीवन कारावास, 5000/- रुपये का जुर्माना और डिफॉल्ट क्लॉज के साथ, की सजा सुनाई गई है।

3. अपीलकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता श्री यू.पी. सिंह ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता संख्या-1/राज देव और अपीलकर्ता संख्या-4/राम बोध की मृत्यु इस अपील के लंबित रहने के दौरान क्रमशः 13.02.2015 और 09.07.2012 को हुई थी। अपीलकर्ता के अधिवक्ता की इस प्रस्तुति की पुष्टि 30.09.2019 की सीजेएम, सुल्तानपुर की रिपोर्ट से भी हुई है। इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 13.03.2024 के आदेश के माध्यम से, अपीलकर्ता संख्या-1/राज देव और अपीलकर्ता संख्या-4/राम बोध के संबंध में इस अपील की कार्यवाही पहले ही समाप्त/निष्फल घोषित कर दी गई है। इस प्रकार, प्रस्तुत अपील केवल अपीलकर्ता संख्या-2, 3 और 5, अर्थात् राम सिंगार, राम विशाल और सूर्य भान के लिए बाकी रहती है।

4. प्रस्तुत अपील के निपटान के लिए आवश्यक तथ्य यह प्रतीत होते हैं कि, सूचनाकर्ता राज मणि द्वारा 10.09.1991 को 19:25 बजे थाना-कादीपुर में एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि उसका भतीजा रामजस पुत्र बब्बन मिश्रा शाम लगभग 5:00 बजे लंभुआ बाजार से लौट रहा था। साइकिल पर एक ट्रेक्टर के स्पेयर पार्ट्स खरीदने के बाद और उसे आरोपी व्यक्तियों राज देव द्वारा रोक लिया गया, लंभुआ-दुर्गापुर रोड पर राम सिंगार, राम विशाल, राम बोध और सूर्य भान ने लाठी-डंडा, कुल्हाड़ी से लैस होकर उस पर बेरहमी से हमला किया, जिससे वह गंभीर रूप से घायल हो गया। इस मौके पर राधेश्याम पुत्र बट्टी, राम जियावन पुत्र लाल मोहन, महेंद्र पुत्र राज मणि और राम बरन तिवारी पुत्र राम अभिलख घटनास्थल पर पहुंचे और हमलावरों को चुनौती दी। मृतक, जो उस समय घायल हो गया था, को राम बरन और महेंद्र कुमार 'रिक्शा' पर अस्पताल ले गए थे और अस्पताल में भर्ती होने के समय उसका बहुत खून बह रहा था।

5. इस लिखित सूचना के आधार पर थाना-कादीपुर, जिला सुल्तानपुर में धारा 147, 148, 323 एवं 308 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध संख्या-263 वर्ष 1991 में प्राथमिकी दर्ज किया गया, जिसका सार पुलिस थाने की रोजनामचा में दर्ज किया गया।

6. मृतक राम जस, जो उस समय घायल हो गया था, की जांच डॉक्टर आर.पी. सिंह ने 10.09.1991 को शाम 6:45 बजे सी.एच.सी., लंभुआ, सुल्तानपुर में की और उन्होंने उस पर निम्नलिखित चोटों का उल्लेख किया।

(1) पार्श्विका क्षेत्र के दाईं ओर 4 सेमी x 3 सेमी। लाल रंग का दाहिने कान से 6 सेमी ऊपर। दाहिनी नाक से खून बहना मौजूद है। दाहिनी पुतली अर्ध फैली हुई है।

(2) बाएं कंधे के जोड़ से बाईं ऊपरी बांह पर 7 सेमी x 2 सेमी .2 सेमी नीचे लाल रंग का घाव है।

(3) दाहिनी कोहनी के जोड़ के पीछे के पहलू पर घर्षण संलयन: 4 सेमी x 2 सेमी। खून का रिसना मौजूद है।

(4) छाती क्षेत्र के आकार 14 सेमी x 2 सेमी के क्षेत्र में रोगी की पीठ पर कई संक्षेपण। प्रत्येक लाल रंग का घाव।

(5) दाहिने पैर पर घाव 6 सेमी x 2 सेमी x हड़डी गहरा। ताजा रक्तस्राव मौजूद।

राय:- कुंद वस्तु के कारण सभी चोटें ताजा होती हैं। मरीज को निगरानी में रखा गया क्योंकि उसके सिर में चोट है, एक्स रे खोपड़ी, दाहिनी कोहनी के जोड़ और दाहिने पैर की सलाह दी गई है।

7. उपचार के दौरान, घायल राम जस की मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु से संबंधित जानकारी संबंधित थाना को भेजी गई, जिसके बाद मामले की विवेचना को धारा 302 भ०द०वि० में संशोधित किया गया। मृतक के शव की जांच की तैयारी की गई और जरूरी कागजी कार्रवाई के बाद मृतक के शव को शव परीक्षण के लिए सीलबंद हालत में भेज दिया गया।

8. मृतक के शव का शव परीक्षण डॉक्टर एस.एम.एम. नकवी द्वारा 11.09.1991 को दोपहर 12:00 बजे जिला अस्पताल सुल्तानपुर में किया गया। मृतक का शव अच्छे कद का पाया गया। रिगोर मोर्टिस चारों अंगों में मौजूद था, अपघटन के कोई निशान नहीं पाए गए।

शव परीक्षण के समय डॉक्टर द्वारा मृत्यु-पूर्व परीक्षण में निम्नलिखित चोटों को नोट किया गया था:

(i) सिर के दाईं ओर 7.5 सेमी x 5 सेमी का घर्षण संलयन।

(ii) दाहिनी जाइगोमैटिक प्रक्रिया पर घर्षण 1 सेमी x 0.8 सेमी

(iii) हथेली तक ऊपरी अंग के पीछे के पार्श्व पहलू पर कई घर्षण।

(iv) हथेली तक बाएं ऊपरी अंग के पीछे के पहलू पर कई संक्षेपण।

(v) क्षत-विक्षत घाव 0.5 सेमी x 0.5 सेमी दाहिनी कोहनी के जोड़ पर गहरी मांसपेशी।

(vi) मध्य रेखा से 7 सेमी दूर छाती के दाईं ओर 30 सेमी x 13 सेमी के क्षेत्र में एक दूसरे को पार करने वाले कई संकुचन।

(vii) संकुचन 11 सेमी x 1.5 सेमी पीठ के दाईं ओर मध्य रेखा से 8 सेमी दूर।

(viii) दाएं कूल्हे के दाईं ओर 28 सेमी x 13 सेमी की दूरी पर एक दूसरे को पार करने वाले कई संकुचन।

(ix) 04 सेमी x 01 सेमी के क्षेत्र में कई घर्षण छाती के दाईं ओर 7 सेमी नीचे दाएं निम्पल से 8'0 घड़ी की स्थिति में।

(x) एक दूसरे को पार करने वाले कई संकुचन 26 सेमी x 8 सेमी दाहिनी जांघ के सामने के पहलू पर 05 सेमी नीचे आरटी इलियाक फोसा के नीचे।

(xi) बाएं जांघ के मध्य पर 8 सेमी x 5 सेमी के एकाधिक संकुचन।

(xii) एक सिला हुआ घाव दाहिने पैर पर 5 सेमी दाहिने घुटने के जोड़ से 7 सेमी नीचे।

(xiii) दाहिने पैर के मध्य पर घर्षण 2 सेमी x 0.5 सेमी।

(xiv) दाहिने पैर के निचले हिस्से पर 2 x 0.5 सेमी गहरी मांसपेशी घुटने से 5 सेमी।

(xv) दाहिने पैर पर एक घर्षण 1.5 सेमी x 0.8 सेमी।

(xvi) एक घाव 1 सेमी x 0.5 सेमी दाहिने पैर के अंगूठे पर गहरी मांसपेशी।

(xvii) बाएं पैर के बीच में घर्षण 2.5 x 1 सेमी बाएं घुटने से 3 सेमी नीचे।

(xviii) एक घाव 3 x 1 सेमी x दाहिने पैर पर गहरी मांसपेशी घुटने के जोड़ से 9 सेमी नीचे।

(xix) एक घाव 3 सेमी x 1 सेमी बाएं पैर पर गहरी मांसपेशी 6 सेमी ऊपर की चोट से नीचे।

(xx) बाएं पैर के औसत दर्जे के पहलू पर 5 सेमी x 4 सेमी के क्षेत्र में बाएं पार्श्व मैलेओलस से 4 सेमी ऊपर कई घर्षण।

(xxi) बाएं पैर के अंगूठे के आधार पर संलयन 3.5 सेमी x 2 सेमी।

आंतरिक परीक्षा

आंतरिक जांच करने पर खोपड़ी कंजेसटेड वाली पाई गई। खोपड़ी पार्श्विका क्षेत्र के दाईं ओर फ्रैक्चर पाई गई थी, सबड्यूरल हेमेटोमा सेरेब्रल गोलार्ध के दाईं ओर पाया गया था। मस्तिष्क कंजेसटेड पाई गई। दिल खून से लथपथ पाया गया और उसका वजन 250 ग्राम था। मूत्राशय खाली था।

डॉक्टर की राय में, मृतक की मृत्यु शव परीक्षण से पहले की चोटों के परिणामस्वरूप 'कोमा और सदमे' के कारण हुई थी।

9. मामले के विवेचनाधिकारी ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत घायल (मृतक) राम जस का बयान भी दर्ज किया, जिसमें उन्होंने कहा कि जब संबंधित दिन और समय पर जब वह ट्रैक्टर के हिस्से के साथ अपने घर जा रहे थे, तो आरोपी व्यक्तियों ने उस पर 'लाठी-डंडा और कुल्हाड़ी' से हमला किया और आरोपी राम विशाल ने उस पर कुल्हाड़ी से हमला किया, जबकि अन्य आरोपी व्यक्तियों ने उस पर लाठी से हमला किया। उनके द्वारा यह भी कहा गया है कि राम विशाल 'कुल्हाड़ी' की बट से उन पर हमला कर रहे थे (इसके नुकीले हिस्से से नहीं)।

10. विवेचनाधिकारी ने नक्शा नज़री तैयार किया और अभियोजन पक्ष के विभिन्न गवाहों के बयान भी दर्ज किए और पर्याप्त सामग्री मिलने के बाद सभी आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ धारा 147, 148, 302 और 323 भ०द०वि० के तहत आरोप पत्र प्रस्तुत किया।

11. विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ता- राम विशाल के खिलाफ धारा 148 और 302 सपठित धारा 148 और 302 भ०द०वि० के तहत आरोप तय किए, जबकि धारा 302/149 भ०द०वि० सपठित धारा 147 के तहत आरोप अन्य आरोपियों के खिलाफ तय किए गए थे, अर्थात् राज देव, राम सिंगार, राम बोध और सूर्य भान, जिसे उन्होंने अस्वीकार कर दिया और मुकदमे का दावा किया।

12. अभियोजन पक्ष ने अपने मामले को साबित करने के लिए अ०सा०-1/सूचनाकर्ता, अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा, अ०सा०-3/राम बरन तिवारी, अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा (चश्मदीद गवाह), अ०सा०-5/डॉ. आर.पी. सिंह (डॉक्टर जिन्होंने मृतक के घायल होने पर उसकी जांच की है), अ०सा०-6/डॉ. एस.एम.एम.नकवी (शव परीक्षण करने वाले डॉक्टर), अ०सा०-7/उप निरीक्षक पुरुषोत्तम मिश्रा, जांच अधिकारी और पहले विवेचनाधिकारी, अ०सा०-8/रमाकांत शर्मा, जिन्होंने आरोप पत्र दायर किया है।

13. उपर्युक्त मौखिक साक्ष्यों के अलावा, अभियोजन पक्ष ने दस्तावेजी साक्ष्यों पर भी भरोसा किया है जैसे लिखित तहरीर, प्रदर्श क-1, पंचनामा, प्रदर्शन-क-2, धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज मृतक का बयान, प्रदर्श क-3, मृतक की चोट की रिपोर्ट, प्रदर्श क-5, फोटो लैश, चिट्ठी आर.आई., चिट्ठी सीएमओ, प्रदर्श क-11, आरआई को पत्र, प्रदर्श क-12, नमूना मुहर, प्रदर्श क-13, साइट योजना, प्रदर्श क-14, चिक प्राथमिकी, प्रदर्श क-16, रोज़नामचा कायामी, प्रदर्श क-17, मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट, प्रदर्श क-7, आरोप पत्र, प्रदर्श क-15 इत्यादि दस्तावेजी साक्ष्यों पर भी भरोसा किया।

14. अभियोजन पक्ष के साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद, अपीलकर्ताओं/अभियुक्तों का बयान धारा 313 द०प्र०स० के तहत दर्ज किया गया, जिसमें उन्होंने अभियोजन पक्ष द्वारा पेश किए गए सभी सबूतों से इनकार किया और दावा किया कि उन्हें इस मामले में झूठा फंसाया गया है।

15. पक्षों के अधिवक्ता को सुनने के बाद विचारण न्यायालय ने पाया कि अभियोजन पक्ष का मामला उचित संदेह से परे साबित हुआ और आरोपी राम विशाल को धारा 148 भ०द०वि० के तहत और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों को धारा 147 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया, जबकि धारा 302 भ०द०वि० के तहत सभी आरोपी व्यक्तियों को धारा 149 भ०द०वि० के तहत दोषी ठहराया।

16. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को चुनौती देते हुए प्रस्तुत किया कि विचारण न्यायालय ने अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों की मूल्यांकन करने में स्पष्ट अवैधता की है और केवल अनुमानों के आधार पर दोषसिद्धि का निर्णय पारित किया है।

अभियोजन पक्ष के चार चश्मदीद गवाहों की गवाही की ओर इस न्यायालय का ध्यान आकर्षित करते हुए, यह प्रस्तुत किया जाता है कि यदि अभियोजन पक्ष के इन गवाहों के साक्ष्य को समग्रता में देखा जाता है, तो यह सामने आएगा कि वे कथित अपराध के चश्मदीद गवाह नहीं हो सकते हैं और यह प्रस्तुत किया जाता है कि यह पचाना मुश्किल है कि अभियोजन पक्ष का कोई भी गवाह मृतक को बचाने के लिए आगे नहीं आया है और उनमें से किसी ने भी कोई भी नहीं रखा है कि उन्हें इस प्रक्रिया में चोट लगी जबकि उनके करीबी रिश्तेदार को उनके सामने मौत के घाट उतार दिया जा रहा था।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष की कहानी के अनुसार, मौके पर केवल पांच आरोपी व्यक्ति थे, जबकि अभियोजन पक्ष के चार गवाह थे और आरोपी व्यक्तियों के पास कोई घातक हथियार नहीं था। इसलिए, मृतक को बचाने का कोई प्रयास न करने में गवाहों का आचरण यह सुझाव देगा कि वे मौके पर मौजूद नहीं थे और उन्होंने कोई घटना नहीं देखी है और पूर्व दुश्मनी के आधार पर अपीलकर्ताओं को एक अंधा हत्या के लिए जिम्मेदार ठहराया गया है।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि भले ही अभियोजन पक्ष के मामले को उसके अंकित मूल्य पर लिया जाए, यह सामने आएगा कि गैरकानूनी रूप से एकत्र होने का उद्देश्य मृतक की मृत्यु का कारण नहीं था, क्योंकि सभी आरोपी व्यक्तियों के पास साधारण घरेलू सामान थे जिन्हें हथियार के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता था। इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि कुल्हाड़ी और लाठी गांव के हर घर में पाई जाने वाली एक आम वस्तु है और इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के साक्ष्य ही यह सुझाव देंगे कि मृतक की मौत का कारण बनने के लिए कथित गैरकानूनी सभा का कोई सामान्य उद्देश्य नहीं था।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि विचारण न्यायालय ने धारा 161 द०प्र०स० के तहत विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज मृतक के बयान पर भरोसा करके अवैधता की है और जिस तरह से बयान दर्ज किया गया है, उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह डॉक्टर के साक्ष्य में आया है कि उसके सिर पर चोट लगने के बाद, हो सकता है कि मृतक एक बार में 'कोमा' में चला गया हो, इस प्रकार, वह कोई बयान देने की स्थिति में नहीं होगा।

17. यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि जब एक हथियार का उपयोग आरोपी व्यक्ति द्वारा किया गया था, तो इसे अपने प्राकृतिक तरीके से इस्तेमाल किया गया माना जाएगा और इस प्रकार, जब यह कहा जाता है कि अपीलकर्ता- राम विशाल द्वारा कुल्हाड़ी का उपयोग किया गया है, तो इसे अपने तेज पक्ष से इस्तेमाल किया गया माना जाएगा और मृतक को कोई चोट नहीं पहुंची है, जिसे कुल्हाड़ी के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और इस प्रकार, चश्मदीद और चिकित्सा साक्ष्य में बड़ा विरोधाभास है। यह भी काफी ताकत के साथ तर्क दिया गया है कि छोटेलाल, जिसे साइकिल पर मृतक के साथ आते हुए दिखाया गया है, को अभियोजन पक्ष द्वारा गवाह के रूप में पेश नहीं किया गया है, जिससे अभियोजन पक्ष का मामला झूठा साबित हो गया है।

इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि भले ही यह माना जाए कि आरोपी व्यक्तियों ने एक गैरकानूनी सभा का गठन किया था, उक्त सभा का उद्देश्य केवल मामूली चोटें पहुंचाना हो सकता है, क्योंकि मृतक के सिर पर लगी एक चोट को छोड़कर, अन्य चोटें साधारण पाई गई हैं और सिर पर लगी चोट के लिए केवल अपीलकर्ता राम विशाल को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है और, इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता था कि सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु का कारण बनना था।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि अपराध करने के उद्देश्य से जो मकसद रखा गया है, वह बहुत कमजोर है और अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य में प्रमुख विरोधाभास, अलंकरण, अंतर्निहित कमजोरियां हैं और यह एक ऐसा मामला था जिसमें विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत अभियोजन पक्ष के साक्ष्य से उचित संदेह सामने आ रहा था और विचारण न्यायालय ने अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में गलती की है। इस प्रकार, विचारण न्यायालय के आक्षेपित निर्णय और आदेश को रद्द कर दिया जाए और अपीलकर्ताओं को उनके खिलाफ लगाए गए सभी आरोपों से बरी कर दिया जाए।

18. दूसरी ओर, अपर शासकीय अधिवक्ता प्रस्तुत करता है कि दोनों परिवारों के बीच दुश्मनी मौजूद थी जो एक स्वीकृत तथ्य है। मृतक संबंधित दिन ट्रैक्टर का एक हिस्सा खरीदने गया था और आरोपी व्यक्तियों को यह पता था कि वह अपने घर लौटेगा और इस प्रकार, उन्होंने एक जाल बिछाया और उसकी वापसी का इंतजार किया और जब वह छोटेलाल के साथ अपने घर वापस आ रहा था तो आरोपी व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं द्वारा उस पर हमला किया गया जो लाठी और कुल्हाड़ी से लैस थे।

यह आगे प्रस्तुत किया जाता है कि शुरू से ही, यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि अभियुक्त/अपीलकर्ता राम विशाल ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद पक्ष से हमला किया है और चिकित्सा साक्ष्य इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

यह भी प्रस्तुत किया जाता है कि मृतक को 21 चोटें आई हैं और जिस तरह से हमला किया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, एकमात्र निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि गैरकानूनी सभा का उद्देश्य मृतक की मृत्यु का कारण बनना था।

इसके बाद यह प्रस्तुत किया जाता है कि अभियोजन पक्ष के चश्मदीद गवाहों के साक्ष्य में कोई बड़ा विरोधाभास नहीं है। वे स्वाभाविक गवाह थे और उनकी गवाही पर केवल इस आधार पर संदेह नहीं किया जा सकता था कि वे मृतक से संबंधित हैं क्योंकि वे स्वाभाविक गवाह थे। गवाहों द्वारा स्थान तय किया गया है और इस प्रकार, अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में निचली अदालत द्वारा कोई अवैधता नहीं की गई है।

राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले अपर शासकीय अधिवक्ता ने निम्नलिखित कानून रिपोर्टों पर भरोसा किया है:

- (1) *राम भरोसे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2010 में रिपोर्ट किया गया सीआर.एल.जे. 871।*
- (2) *सुरेश दत्त भोजने बनाम महाराष्ट्र राज्य (2024) 7 एस.सी.सी. 15 में रिपोर्ट किया गया।*
- (3) *गुरमेज सिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 214 में रिपोर्ट की गई।*
- (4) *लालजी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (1989) 1 एस.सी.सी. 437 में रिपोर्ट किया गया।*

19. आगे बढ़ने से पहले, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उठाए गए प्रस्तुतियों के साथ-साथ अभियोजन पक्ष के गवाह (गवाह) के साक्ष्य की मूल्यांकन करने की दिशा में, अभियोजन पक्ष के गवाहों के साक्ष्य को याद करना न्याय के हित में है।

अ०सा०-1/राज मणि मिश्रा, जो इस मामले का सूचनाकर्ता है, घटना का चश्मदीद गवाह नहीं है और उसका साक्ष्य केवल इस तथ्य के संबंध में है कि उसने मृतक को ट्रैक्टर का एक हिस्सा खरीदने के लिए भेजा था और उसके बाद वह चौकिया गांव में स्थित अपने खेत में गया था जहां उसे उसके नौकर ने घटना के बारे में सूचित किया और, इसके बाद, कहा जाता है कि वह अपराध स्थल पर पहुंचा जहां उसे इस तथ्य के बारे में सूचित

किया गया कि उसके भाई को अस्पताल ले जाया गया है और उसके बाद वह अस्पताल पहुंचा और पूरी घटना उसके बेटे महेंद्र कुमार मिश्रा/अ०सा०-4 ने उसे बताई है।

अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा ने खुद को घटना का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया है और उनके अनुसार, वह प्रासंगिक समय पर अपने गन्ने के खेत में थे, जब उन्होंने मृतक द्वारा शोर गुल को सुना तो वह तुरंत पहुंचे और पूरी घटना को देखा। उन्होंने इस घटना का विस्तृत विवरण दिया है कि सभी आरोपी व्यक्ति उसकी आंखों के सामने मृतक पर हमला कर रहे थे और आरोपी व्यक्तियों राज देव, राम सिंगार, सूर्य भान और राम बोध के पास लाठी थी, जबकि आरोपी राम विशाल के हाथ में कुल्हाड़ी थी और यह भी कि यह राम विशाल था जिसने मृतक के सिर पर आरोपी के कुंद पक्ष से हमला किया था। उन्होंने बताया कि मृतक को अ०सा०-3/राम बरन तिवारी और अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा अस्पताल ले गए।

अ०सा०-3/राम बरन तिवारी ने भी इस घटना को देखने का दावा किया है, क्योंकि प्रासंगिक समय पर वह रिक्शे पर लंभुआ जा रहा था और जब वह अपराध स्थल के पास पहुंचा, तो उसने आरोपी व्यक्तियों को मृतक पर हमला करते हुए देखा और राम विशाल के अलावा, जिसके पास कुल्हाड़ी है, अन्य आरोपी व्यक्ति लाठी से लैस थे और राम विशाल ने कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से मृतक पर हमला किया उसके सिर पर जबकि अन्य लोगों ने मृतक पर लाठी-बरत से हमला किया। उन्होंने यह भी दावा किया कि उन्होंने मृतक को उनके द्वारा दिए गए हमले के संबंध में आरोपियों को डांटा था। उन्होंने यह भी कहा कि अ०सा०-4/महेंद्र मिश्रा की मदद से मृतक को अपने रिक्शा पर अस्पताल ले गए थे और यह भी कि विवेचनाधिकारी (दारोगा जी) ने डॉक्टर की उपस्थिति में मृतक (जो उस समय घायल हो गए थे) का बयान लिया था और उसके बाद उसी रात मृतक की मृत्यु हो गई थी।

अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा मृतक के चचेरे भाई हैं। उसने यह भी दावा किया है कि उसने इस घटना को देखा है, क्योंकि प्रासंगिक समय पर वह अपने खेत में था और वहीं उसने मृतक द्वारा शोर गुल की आवाज सुनी क्योंकि मृतक लंभुआ से अपने घर लौट रहा था। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने आरोपी राम विशाल द्वारा मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी से किए गए हमले को देखा था, जबकि अन्य आरोपी व्यक्ति उनके पास लाठी से हमला कर रहे थे। उन्होंने यह भी दावा किया कि वह अ०सा०-3/राम बरन तिवारी की मदद से मृतक को अस्पताल ले गया था और यह भी कि मृतक रात में होश में आ गया था और विवेचनाधिकारी ने उसका बयान दर्ज किया था।

अ०सा०-5 डॉ. आर.पी. सिंह हैं, जिन्होंने मृतक के घायल होने पर लगी चोटों की जांच की है और इन चोटों को इस बयान में एक उपयुक्त स्थान पर दर्ज किया गया है।

अ०सा०-6/डॉ. एस.एम.एम. नकवी ने कहा है कि उन्होंने 11.09.1991 को दोपहर 12:00 बजे मृतक का शव परीक्षण किया और शव परीक्षण रिपोर्ट को भी साबित किया और उनके अनुसार मृतक की मृत्यु मृत्यु पूर्व चोटों के परिणामस्वरूप 'सदमे और रक्तस्राव' के कारण हुई थी।

अ०सा०-7/उप निरीक्षक पुरुषोत्तम मिश्रा मामले के पहले विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने धारा 161 द०प्र०स० के तहत मृतक के बयान को दर्ज करने के लिए साबित किया है और प्रदर्श क-8 के रूप में अभिलेखों पर उपलब्ध उसी की एक प्रति साबित की है। उन्होंने यह भी कहा कि मृतक के शव परीक्षण के लिए जांच रिपोर्ट सहित आवश्यक कागजात तैयार किए गए हैं और मृतक के शव को शव परीक्षण के लिए भी भेजा गया है।

अ०सा०-8/थानाध्यक्ष रमाकांत शर्मा इस मामले के तीसरे विवेचनाधिकारी हैं, जिन्होंने विवेचना का प्रभार संभाला है, क्योंकि पहले विवेचनाधिकारी पुरुषोत्तम मिश्रा और श्री आशुतोष शर्मा को किसी अन्य थाना में स्थानांतरित कर दिया गया था। उन्होंने प्राथमिकी के दर्ज होने के साथ-साथ पूर्व विवेचनाधिकारी उप निरीक्षक पुरुषोत्तम मिश्रा और श्री आशुतोष शर्मा द्वारा किए गए हस्ताक्षर और कार्यवाही को साबित किया है।

20. पक्षकारों के अधिवक्ता को सुनने और अभिलेखों का अवलोकन करने के बाद, यह स्पष्ट है कि संक्षेप में अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि 10.09.1991 को शाम लगभग 5:00 बजे मृतक ट्रैक्टर का एक हिस्सा खरीदकर अपने घर लौट रहा था, जो खराब हो गया था और जब वह 'लंभुआ-दुर्गापुर रोड' पर पहुंचा, 'लाठी-डंडा' और कुल्हाड़ी से लैस अपीलकर्ता उसका इंतजार कर रहे थे और 'लाठी-डंडा' और कुल्हाड़ी से उस पर हमला करना शुरू कर दिया। कुल्हाड़ी का उपयोग अपीलकर्ता- राम विशाल द्वारा इसके कुंद पक्ष से किया गया है। शोर मचाए जाने पर गवाह राधे श्याम, राम जियावन, महेंद्र, राम बरन तिवारी घटनास्थल पर पहुंचे थे और मृतक को 'रिक्शा' पर अस्पताल ले गए थे और इलाज के दौरान मृतक की मौत हो गई थी।

21. जहां तक अभियुक्त-अपीलकर्ता राम विशाल द्वारा कुल्हाड़ी के उपयोग के संबंध में अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता की प्रस्तुति और यह भी कि चिकित्सा और नेत्र गवाही में विरोधाभास हैं, यह याद किया जाना चाहिए कि हालांकि, प्रथम सूचना रिपोर्ट में, यह कहा गया है कि अपीलकर्ताओं ने मृतक पर 'लाठी-डंडा' और कुल्हाड़ी के साथ हमला किया है, हालांकि, घायल का बयान विवेचनाधिकारी द्वारा दर्ज किया गया था, जब वह अस्पताल में भर्ती था और उसने धारा 161 द०प्र०स० के तहत दर्ज अपने बयान में स्पष्ट रूप से कहा है कि अन्य सह-अभियुक्तों ने उस पर लाठी से हमला किया था, जबकि अपीलकर्ता राम विशाल एक कुल्हाड़ी ले जा रहा था और 'कुल्हाड़ी' के कुंद पक्ष से उस पर हमला कर रहा था। घायल/मृतक राम जस का यह बयान अस्पताल में भर्ती होने के दौरान दर्ज किया गया। उनकी मृत्यु के बाद, यह भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के आधार पर साक्ष्य में स्वीकार्य है क्योंकि यह उनकी मृत्यु के कारण से संबंधित है। इस संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **धर्मेन्द्र कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य मनु/एससी/0566/2024** और **हरेंद्र राय बनाम बिहार राज्य और अन्य मनु/एससी/0905/2023** में रिपोर्ट किए गए कानून को वापस लिया जा सकता है, जिसे निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है: -

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **धर्मेन्द्र कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य मनु/एससी/ 0566/2024** में रिपोर्ट किया है:

"64. इससे पहले कि हम आगे बढ़ें, आ.ई.ई.ए. की धारा 32(1) को दोहराना उचित होगा, जिसके तहत किसी व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान, जो मर चुका है, उसकी मृत्यु के कारण के रूप में या लेन-देन की किसी भी परिस्थिति के रूप में, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, प्रासंगिक और स्वीकार्य है, इस तथ्य के बावजूद कि बयान देने के समय ऐसा व्यक्ति मृत्यु की उम्मीद में नहीं था।

65. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 पुलिस को किसी भी ऐसे व्यक्ति की मौखिक रूप से जांच करने का अधिकार देती है जो जांच के तहत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित है। पुलिस ऐसे बयान को लिखित में भी बदल सकती है। फिर भी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162(1) यह अनिवार्य करती है कि किसी भी व्यक्ति द्वारा पुलिस अधिकारी को दिए गए किसी भी बयान पर, यदि लिखित रूप में कम हो जाता है, तो इसे बनाने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित नहीं किया जाना चाहिए, और न ही इस तरह के बयान का उपयोग साक्ष्य में किया जाएगा, सिवाय इसके कि आ.ई.ई.ए. की धारा 145 द्वारा प्रदान किए गए तरीके से एक गवाह का खंडन किया जाए। हालांकि, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 162 की उप-धारा (2) उप-धारा (1) के अपवाद को बनाती है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से प्रदान करती है कि धारा 162 में कुछ भी आ.ई.ई.ए. की धारा 32 के खंड (1) के दायरे में आने वाले किसी भी बयान पर लागू नहीं माना जाएगा। दूसरे शब्दों में, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया गया बयान जो मृत है, उसकी मृत्यु के कारण के रूप में या लेन-देन की परिस्थितियों के बारे में, जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई, एक पुलिस अधिकारी को दिया गया और जिसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया है, प्रासंगिक और स्वीकार्य होगा, इसमें निहित साक्ष्य में ऐसे बयान के उपयोग के खिलाफ स्पष्ट रोक के बावजूद। ऐसी स्थिति में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत दर्ज किया गया बयान एक मृत्युपूर्व घोषणा का स्वरूप ग्रहण करता है। चूंकि इस तरह की मृत्युपूर्व घोषणा पर असाधारण विश्वास किया गया है, इसलिए अदालत को उस पर भरोसा करने में बेहद सावधान और सतर्क रहना चाहिए। इस न्यायालय के निर्णयों का एक समूह है जो दंड प्रक्रिया संहिता और आ.ई.ई.ए. के प्रावधानों के बीच परस्पर क्रिया को समर्थन देता है, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

67. **लक्ष्मण बनाम महाराष्ट्र राज्य मनु/एससी/0707/2002:एससी:352: (2002)6 एससी 710** में संविधान पीठ ने आधिकारिक रूप से फैसला सुनाया है कि:

3. लेकिन जहां प्रत्यक्षदर्शी कहते हैं कि मृतक घोषणा करने के लिए फिट और सचेत अवस्था में था, चिकित्सा राय प्रबल नहीं होगी, न ही यह कहा जा सकता है कि चूंकि घोषणाकर्ता के दिमाग की फिटनेस के बारे में डॉक्टर का कोई प्रमाणन नहीं है, इसलिए मृत्युपूर्व घोषणा स्वीकार्य नहीं है। एक मरणासन्न घोषणा मौखिक या लिखित रूप में हो सकती है और संचार का कोई भी पर्याप्त तरीका चाहे शब्दों द्वारा या संकेतों द्वारा या अन्यथा पर्याप्त हो, बशर्ते संकेत सकारात्मक और निश्चित हो। हालांकि, ज्यादातर मामलों में, इस

तरह के बयान मृत्यु से पहले मौखिक रूप से दिए जाते हैं और मजिस्ट्रेट या डॉक्टर या पुलिस अधिकारी जैसे किसी व्यक्ति द्वारा लिखित रूप में कम हो जाते हैं।

... ..

अनिवार्य रूप से आवश्यक यह है कि जो व्यक्ति मृत्युपूर्व घोषणा दर्ज करता है, उसे संतुष्ट होना चाहिए कि मृतक मन की स्थिति में था। जहां मजिस्ट्रेट की गवाही से यह साबित हो जाता है कि घोषणाकर्ता डॉक्टर द्वारा जांच किए बिना भी बयान देने के लिए उपयुक्त था, घोषणा पर कार्रवाई की जा सकती है, बशर्ते कि अदालत अंततः इसे स्वैच्छिक और सत्य मानती है। डॉक्टर द्वारा प्रमाणन अनिवार्य रूप से सावधानी का एक नियम है और इसलिए घोषणा की स्वैच्छिक और सच्ची प्रकृति को अन्यथा स्थापित किया जा सकता है।

68. इस मामले में यह मूल्यांकन करना महत्वपूर्ण है कि विवेचनाधिकारी ने घटना के एक दिन बाद तुरंत बयान दर्ज किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि मेडिकल रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि घोषणाकर्ता तुलाराम की स्थिति गंभीर प्रकृति की थी। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि तुलाराम अपने बयान को ठीक से व्यक्त करने में सक्षम थे। इसके अलावा, बयान के अवलोकन पर, यह स्पष्ट है कि घोषणाकर्ता तुलाराम एक फिट स्थिति में था क्योंकि उसने न केवल घटना को ठीक से समझाया बल्कि अपीलकर्ता की भूमिका को भी स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किया है। इसके अलावा, अंसा०-13 और अंसा०-15 द्वारा की गई शव परीक्षण जांच के दौरान पाई गई चोटों ने मृतक तुलाराम के बयान की विधिवत पुष्टि की है।

69. उपरोक्त चर्चा से, यह स्पष्ट है कि केवल एक चिकित्सा फिटनेस प्रमाण पत्र की गैर-प्राप्ति इस न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के तहत एक उचित रूप से दर्ज बयान को एक मृत्युपूर्व घोषणा मानने से नहीं रोकेगा।

माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरेंद्र राय बनाम बिहार राज्य और अन्य मनु/एससी/0905/2023 में रिपोर्ट किया है:

"91. अब आगे का मुद्दा प्राथमिकी/बायन तहरीरी को मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में मानने के बारे में सामने आता है और इस संबंध में इस न्यायालय के पहले के विभिन्न फैसलों ने कानून की स्थिति को स्पष्ट किया है कि प्राथमिकी के रूप में दर्ज किए गए घायल व्यक्ति के बयान को मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में माना जा सकता है और इस तरह के बयान को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत स्वीकार्य है। यह भी माना गया कि मृत्युपूर्व घोषणा में पूरी घटना को शामिल नहीं किया जाना चाहिए या मामले के इतिहास का वर्णन नहीं किया जाना चाहिए। इस स्थिति के लिए पुष्टि आवश्यक नहीं है; मृत्युपूर्व घोषणा दोषसिद्धि का एकमात्र आधार हो सकती है।

92. मुन्नू राजा और अन्य बनाम एमपी राज्य मनु/एस.सी./0174/1975:(1976)3 एस.सी.सी. 104 के मामले में, निम्नलिखित टिप्पणियां प्रासंगिक हैं:

प्रस्तर-5. इन मृत्युपूर्व घोषणाओं के संबंध में, सत्र न्यायालय का निर्णय एक पेटेंट अशक्तता से ग्रस्त है क्योंकि यह इन मृत्युपूर्व घोषणाओं में से सबसे पहले को पूरी तरह से नजरअंदाज कर देता है, जो मृतक द्वारा बरजोर सिंह के घर में घटना के तुरंत बाद की गई थी। दूसरा बयान जिसे उच्च न्यायालय द्वारा मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में माना गया है, वह है प्रदर्श-14, प्राथमिकी है जो मृतक द्वारा थाना में दर्ज की गई थी। सत्र न्यायाधीश ने शायद यह मान लिया था कि चूंकि बयान को प्राथमिकी के रूप में दर्ज किया गया था, इसलिए इसे मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में नहीं माना जा सकता है। इस धारणा में, वह स्पष्ट रूप से गलती में था। पुलिस के समक्ष बयान देने के बाद, बहादुर सिंह ने अपनी चोटों के कारण दम तोड़ दिया और इसलिए बयान को मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में माना जा सकता है और साक्ष्य अधिनियम की धारा 32(1) के तहत स्वीकार्य है। बयान देने वाले की मौत हो चुकी है और बयान उसकी मौत के कारण से संबंधित है।

प्रस्तर-6. उच्च न्यायालय ने माना है कि ये कथन अनिवार्य रूप से सत्य हैं और इनमें कोई कमी नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि हालांकि एक मृत्युपूर्व घोषणा को इस कारण से सावधानी के साथ संपर्क किया जाना चाहिए कि बयान के निर्माता को जिरह के अधीन नहीं किया जा सकता है, न तो कानून का शासन है और न ही विवेक का नियम है जो कानून के शासन में कठोर हो गया है कि एक मरणासन्न घोषणा पर तब तक कार्रवाई नहीं की जा सकती है जब तक कि इसकी पुष्टि न हो जाए...

प्रस्तर-10. हम उच्च न्यायालय के साथ पूरी तरह से सहमत हैं कि ये दोनों मृत्युपूर्व घोषणाएं सत्य हैं। हमारी आगे की राय है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इन दो बयानों को बिना पुष्टि के स्वीकार किया जा सकता है। बहादुर सिंह पर दिवंगत होने का हमला किया गया और वह अपीलकर्ताओं को जानता था। वह उनके प्रति कोई द्वेष नहीं रखता था और इसलिए उनके पास उन्हें झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं था। जो लोग हमले के बाद बहादुर सिंह के साथ लगातार थे, उनके पास अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाने का कोई कारण नहीं था। उन्होंने अपीलकर्ताओं के प्रति कोई दुर्भावना या द्वेष नहीं रखा। हम दो मरणासन्न घोषणाओं से जुड़ी कोई दुर्बलता नहीं देखते हैं जिससे पुष्टि पर ध्यान देना आवश्यक हो जाएगा।

93. इस न्यायालय ने **राम बिहारी यादव बनाम बिहार राज्य और अन्य मनु/एससी/0302/1998: (1998)4 एससी 517** के मामले में प्रस्तर-6 में कानून पर चर्चा की है:

प्रस्तर-6. मरने की घोषणा से संबंधित कानून- प्रासंगिकता, स्वीकार्यता और इसका संभावित मूल्य- काफी हद तक तय है। अधिक बार 'प्रासंगिकता और स्वीकार्यता' अभिव्यक्तियों का उपयोग समानार्थक शब्द के रूप में किया जाता है, लेकिन उनके कानूनी निहितार्थ अलग-अलग होते हैं, क्योंकि अक्सर ऐसे तथ्य जो प्रासंगिक होते हैं, वे स्वीकार्य नहीं होते हैं; इसलिए जो तथ्य स्वीकार्य हैं, वे प्रासंगिक नहीं हो सकते हैं, उदाहरण के लिए, सत्यता का परीक्षण करने या गवाहों के क्रेडिट पर महाभियोग लगाने के लिए जिरह में रखने की अनुमति दिए गए प्रश्न, हालांकि प्रासंगिक नहीं हैं, स्वीकार्य हैं। साक्ष्य का संभावित मूल्य उसे दिया जाने वाला महत्व है जिसे प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आंका जाना चाहिए। इस मामले में, सबमिशन

का जोर प्रासंगिकता या स्वीकार्यता से संबंधित नहीं है, बल्कि प्रदर्श-2 को दिए जाने वाले मूल्य से संबंधित है। किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा की गई मृत्युपूर्व घोषणा जो उसकी मृत्यु के कारण के रूप में या लेन-देन की किसी भी परिस्थिति के रूप में उसकी मृत्यु के कारण के रूप में की गई है, ऐसे मामलों में जिसमें उसकी मृत्यु का कारण प्रश्न में आता है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत प्रासंगिक है और साक्ष्य में भी स्वीकार्य है। हालांकि मृत्युपूर्व घोषणा अप्रत्यक्ष साक्ष्य है जो सुनी-सुनाई बातों की एक प्रजाति है, फिर भी यह सुनी-सुनाई बातों की स्वीकार्यता के खिलाफ नियम का अपवाद है। वास्तव में, यह ठोस सबूत है और किसी भी अन्य ठोस सबूत की तरह किसी अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाने के लिए किसी पुष्टि की आवश्यकता नहीं है। लेकिन फिर यह सवाल कि मरणासन्न घोषणा को कितना महत्व दिया जा सकता है, यह तथ्य का सवाल है और इसे प्रत्येक मामले के तथ्यों पर निर्धारित किया जाना चाहिए।

94. हम सुरेश चंद्र जन बनाम सुरेश चंद्र जन के मामले में इस न्यायालय के फैसले के प्रासंगिक प्रस्तर- को उपयोगी रूप से पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं। पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, मनु/एससी/ 0997/2017: (2017)16 एस.सी.सी. 466 में रिपोर्ट किए गए हैं, जो इस प्रकार हैं:

32. साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत मृत्युपूर्व घोषणा के महत्व पर चर्चा करना अनुचित नहीं होगा। साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 में अंतर्निहित सिद्धांत है 'निमो मोरिटुरस प्रेसुमितुर मेंटायर' अर्थात् मनुष्य अपने निर्माता से मुंह में झूठ लेकर नहीं मिलेगा। मृत्युपूर्व घोषणा सुनी-सुनाई बातों के नियम के अपवादों में से एक है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कानून का कोई पूर्ण नियम नहीं है कि मृत्युपूर्व घोषणा दोषसिद्धि का एकमात्र आधार नहीं बन सकती है जब तक कि इसकी पुष्टि न हो जाए। पुष्टि की आवश्यकता वाला नियम केवल विवेक का एक नियम है [देखें पानीबेन (श्रीमती) बनाम गुजरात राज्य, मनु/एससी/0346/1992: (1992) 2 एस.सी.सी. 474; मध्य प्रदेश राज्य, मनु/एससी/ 0174/1975: (1976) 3 एस.सी.सी. 104; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राम सागर यादव, मनु/ एस.सी./0118/1985: (1985)1 एस.सी.सी. 552; रमावती देवी वी. बिहार राज्य, मनु/एससी/ 0135/1983: (1983)1 एस.सी.सी. 211]। इसके अलावा, यदि मृत्युपूर्व घोषणा करने वाला व्यक्ति जीवित रहता है, तो ऐसा कथन साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत स्वीकार्य नहीं होगा, बल्कि ऐसे बयान साक्ष्य अधिनियम की धारा 157 के तहत स्वीकार्य हो सकते हैं [देखें गजुला सूर्य प्रकाशराव बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, मनु/एस.सी./1809/2009: (2010)1 एस.सी.सी. 88]

33. एक आपराधिक मुकदमे में मृत्युपूर्व घोषणा के महत्व के प्रकाश में, मृत्युपूर्व घोषणा को दर्ज करने में कर्तव्य की अवहेलना और मेडिको-लीगल न्यायशास्त्र के बारे में डॉक्टर की अज्ञानता हमारे सामने रखी गई सामग्री से स्पष्ट है। मेरा ध्यान विभिन्न निर्णयों की ओर आकर्षित किया गया है, जिन्होंने डॉक्टरों द्वारा कर्तव्य की अवहेलना के पहलुओं और चिकित्सा न्यायशास्त्र में मेडिको-लीगल पहलू के महत्व को संबोधित किया है [देखें गुजरात राज्य बनाम हसमुख @ भीखा गोवा हरिजन, मनु/जीजे/0280/1995: (1996)1 गुज एलआर 292, मुनिअम्मल बनाम पुलिस अधीक्षक, मनु/टीएन/0239/2008 और इंद्रजीत खांडेकर बनाम भारत संघ और अन्य, मनु/एमएच/3171/2014]। यह याद रखना चाहिए कि इस आपराधिक न्याय प्रणाली में प्रत्येक हितधारक

से अपेक्षा की जाती है कि वह सच्चाई को सामने लाने के लिए निष्पक्षता की भावना के साथ कार्य करे ताकि उन लोगों को सजा दी जा सके जो इसके हकदार हैं। यद्यपि न्यायालयों को न्याय देने का कर्तव्य प्रदान किया जाता है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस देश में न्यायालयों द्वारा न्याय के प्रभावी वितरण के लिए सभी हितधारकों के समर्थन की आवश्यकता होती है। उपरोक्त के आलोक में, प्रत्येक हितधारक से अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी जिम्मेदारी से अवगत हो और आपराधिक न्याय प्रणाली के उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में काम करे।

22. प्रस्तुत अपील में, अन्य गवाहों, जिनसे विचारण न्यायालय के समक्ष पूछताछ की गई है, अर्थात्, अ०सा०-1/राज मणि मिश्रा (सूचनाकर्ता), अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा, अ०सा०-3/राम बरन तिवारी, अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा, सभी ने एक स्वर में कहा है कि यह राम विशाल था जो कुल्हाड़ी ले जा रहा था और उसने इसे कुंद हिस्से से इस्तेमाल किया था, जबकि अन्य आरोपी व्यक्तियों ने मृतक पर लाठी से हमला किया था।

इस संबंध में, अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा मृतक (जो उस समय घायल हो गया था) का बयान दर्ज करने के तरीके के संबंध में बहुत जोर दिया गया है ताकि यह दिखाया जा सके कि यह अत्यधिक संदिग्ध है कि मृतक कोई बयान देने की स्थिति में हो सकता है। इस संबंध में, अ०सा०-5/डॉ. आर.पी. सिंह का बयान महत्वपूर्ण है, जिन्होंने सबसे पहले 10.09.1991 को शाम 6:45 बजे मृतक/घायल राम जस मिश्रा की जांच की और उन्होंने अपने बयान में विशेष रूप से कहा है कि रोगी को अस्पताल में भर्ती कराया गया था और उपचार के दौरान वह होश में आ गया था और बात कर रहा था और जब मृतक बातचीत करने की स्थिति में था, पुलिस उप निरीक्षक ने अस्पताल का दौरा किया था और मृतक से पूछताछ की है और उससे घटना के बारे में भी पूछताछ की। इस गवाह ने जिरह के दौरान यह भी कहा है कि जब 'दारोगा जी' घायलों का बयान दर्ज कर रहे थे, तो उन्होंने अन्य सभी को बाहर रहने के लिए कहा था और केवल वह (दारोगा जी) और घायल व्यक्ति उस कमरे में मौजूद थे जहां घायलों का बयान दर्ज किया गया था। इस गवाह द्वारा यह भी कहा गया है कि घायल 'कोमा' की अवस्था में नहीं था, बल्कि उर्नीदापन में था।

इस संबंध में मृतक/घायलों को अस्पताल पहुंचाने वाले अ०सा०-3/राम बरन तिवारी और अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा का बयान भी महत्वपूर्ण है। इन गवाहों ने बताया है कि रात करीब 1:15 बजे मध्यरात्रि में 'दारोगा जी' अस्पताल आए थे और घायल/मृतक राम जस से घटना के बारे में पूछताछ की थी और अपना बयान भी दर्ज कराया था और उस समय राम जस को होश आ गया था। उनके द्वारा यह भी कहा गया है कि उनका बयान भी 'दारोगा जी' ने दर्ज किया था। इस गवाह ने यह भी कहा है कि यह लगभग 3:00 बजे था। रात में घायल की हालत बिगड़ गई और परिणामस्वरूप उसकी मौत हो गई। अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा ने यह भी कहा था कि रात के लगभग 12:00 बजे मृतक/घायल को होश आया था और उसने दूध भी लिया था और ये लगभग 1-1:15 बजे था। रात में 'दारोगा जी' ने आकर घायलों का बयान दर्ज कराया था और अस्पताल में ही उसके पिता और चाचा राम अंजोर और गवाह रामबरन के बयान भी दर्ज किए गए थे और विवेचनाधिकारी के जाने के बाद घायलों की हालत बिगड़ गई थी। इस प्रकार, इन गवाहों के साक्ष्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि

घायल/मृतक का धारा 161 द०प्र०स० के तहत बयान विवेचनाधिकारी द्वारा वर्ष 10-11.09.1991 की मध्यरात्रि में दर्ज किया गया था। इसलिए, विवेचनाधिकारी द्वारा घायल-मृतक राम जस का बयान दर्ज करने का तथ्य इन गवाहों द्वारा साबित हो गया है, और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मृतक की मृत्यु से संबंधित बयान इसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 32 के तहत मृत्युपूर्व घोषणा के रूप में स्वीकार्य है। घायल ने यह भी कहा है कि अन्य आरोपी व्यक्तियों ने उस पर लाठी से हमला किया, जबकि राम विशाल ने उसके सिर पर 'कुल्हाड़ी' के कुंद हिस्से से हमला किया। माना जाता है कि कथित घटना के समय अ०सा०-1/राज मणि मिश्रा मौके पर मौजूद नहीं थे, हालांकि, गवाह अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा, अ०सा०-3/राम बरन तिवारी, अ०सा०-4/महेंद्र मिश्रा ने दावा किया था कि उन्होंने घटना देखी है और उन्होंने एक स्वर में कहा है कि अपीलकर्ता राम विशाल ने कुल्हाड़ी का इस्तेमाल किया था। इस प्रकार, अभिलेखों पर उपलब्ध सबूतों को ध्यान में रखते हुए, हमारी राय में, यह उचित संदेह से परे स्थापित है कि इसके कुंद हिस्से से कुल्हाड़ी का उपयोग अपीलकर्ता राम विशाल द्वारा किया गया था और इसलिए, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत मौखिक और चिकित्सा साक्ष्य में कोई विरोधाभास नहीं दिखाई देता है।

23. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा यह भी तर्क दिया जाता है कि अभियोजन पक्ष के गवाहों में से किसी ने भी मृतक को बचाने का प्रयास नहीं किया था और इस प्रक्रिया में कोई चोट नहीं लगी है, जिससे पता चलता है कि ये गवाह गवाह हैं और उन्होंने कोई घटना नहीं देखी है। इस संबंध में, जैसा कि पहले कहा गया है, अ०सा०-1/राज मणि मिश्रा स्वीकार करते हैं कि अपराध का चश्मदीद गवाह नहीं है। अभियोजन पक्ष ने अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा, अ०सा०-3/राम बरन तिवारी और अ०सा०-4/महेंद्र मिश्रा के बयान पर भरोसा किया है, जिन्होंने खुद को अपराध का चश्मदीद गवाह होने का दावा किया था। अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि जब मृतक ट्रैक्टर का एक हिस्सा खरीदकर लौट रहा था, तो अपीलकर्ताओं ने उस पर लाठी और कुल्हाड़ी से हमला किया। यह भी मामला है कि कुल्हाड़ी का इस्तेमाल केवल अपीलकर्ता राम विशाल ने किया था, जबकि अन्य सह-अभियुक्तों ने लाठी से हमला किया था। अभियोजन पक्ष का यह भी मामला है कि अपीलकर्ताओं ने जाल बिछाया था और वे मृतक की वापसी की प्रतीक्षा कर रहे थे जो एक छोटे लाल की साइकिल पर आया था। अभियोजन पक्ष के इन गवाहों के साक्ष्य से यह स्पष्ट है कि किसी भी गवाह के पास लाठी या कोई अन्य हथियार नहीं था, जैसा कि अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा ने अपने कृषि क्षेत्र में उपस्थित होने के बारे में कहा है; अ०सा०-3/राम बरन तिवारी ने कहा है कि वह रिकशा से लंभुआ जा रहे हैं और अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा ने भी अपने खेत में मौजूद होने का उल्लेख किया है जो घटना से लगभग 70-75 कदम की दूरी पर था। अ०सा०-2/राम जियावन ने कहा है कि वह अपने गन्ने के खेत में हैं और इस प्रकार, इनमें से किसी भी गवाह के पास कोई हथियार या लाठी आदि नहीं था। उन्होंने घटना से पहले अपीलकर्ताओं को नहीं देखा था और यह अभियोजन पक्ष का मामला है कि जब मृतक द्वारा शोर गुल किया गया, तो उन्हें अपीलकर्ताओं द्वारा हमले के बारे में पता चला। कहा जाता है कि यह घटना एक योजना को आगे बढ़ाने के लिए हुई थी और इस प्रकार, सभी अपीलकर्ताओं ने घटना में भाग लिया था। अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा ने कहा है कि जब उसने पहली बार घायल/मृतक को देखा तो वह जमीन पर गिर गया था और यह अ०सा०-4/महेंद्र और अ०सा०-3/राम बरन थे जो उनसे पहले अपराध स्थल पर पहुंचे थे और उन्होंने आरोपी व्यक्तियों को 40-45 कदम की दूरी से मृतक

पर हमला करते हुए देखा था। अ०सा०-3/राम बरन तिवारी ने कहा है कि उन्होंने अपीलकर्ताओं को डांटा था और रिकशा चालक को तेजी से गाड़ी चलाने के लिए कहा था और जब वह लगभग 10-15 कदम दूर था तो आरोपी व्यक्ति घटनास्थल से भाग गए थे। अ०सा०-4/महेंद्र मिश्रा ने कहा था कि जब हमला शुरू हुआ, तो वह मृतक/घायलों द्वारा उठाए गए शोर गुल से आकर्षित हो गया और शोर मचाते हुए अपराध स्थल की ओर भागने लगा और गवाह राम बरन तिवारी, राम जियावन मिश्रा और राधे श्याम भी घटना स्थल की ओर भागने लगे थे और जब वे घटनास्थल से 10-15 कदम की दूरी पर थे, अपीलकर्ता/आरोपी व्यक्ति दूर हो गए थे और उसी समय अपीलकर्ता राम विशाल ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से मृतक के सिर पर एक वार किया था। इन गवाहों के साक्ष्य स्पष्ट रूप से स्थापित करते हैं कि जब आरोपी व्यक्तियों ने मृतक पर हमला किया था तो वे मौके पर मौजूद नहीं थे और मृतक की शोर गुल सुनने के बाद ही घटनास्थल पर पहुंचे और जब वे लगभग 10-15 कदम की दूरी पर थे तो हमला खत्म हो गया था और इसलिए, इन गवाहों के लिए 'प्रहार' में भाग लेने या मृतक को बचाने के लिए कोई प्रयास करने का कोई अवसर नहीं था।

24. यह भी याद किया जाना चाहिए कि अलग-अलग गवाह अलग-अलग तरीकों से व्यवहार करते हैं, गवाह के लिए रूढ़िवादी तरीके से व्यवहार करने के लिए कोई सीधा-सटीक फॉर्मूला नहीं है और यदि गवाहों का व्यवहार आरोपी व्यक्तियों द्वारा स्थापित बचाव की लाइन में नहीं है, तो यह अभियोजन पक्ष की कहानी में कोई सेंध नहीं लगा सकता है। इस प्रकार, केवल इस स्कोर पर कि गवाहों को कोई चोट नहीं आई है या मृतक को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया गया है, अभियोजन पक्ष के मामले को संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है।

25. यह भी काफी बल के साथ तर्क दिया जाता है कि सभी गवाह मृतक और सूचनाकर्ता से संबंधित हैं और इन गवाहों के साक्ष्य में विभिन्न भौतिक विरोधाभास, सुधार और अलंकरण हैं और यह उभरता है कि ये गवाह घटना के चश्मदीद गवाह नहीं हो सकते हैं और वे प्लांट किए गए हैं। जिस तरह से तथ्य के गवाहों के साक्ष्य या चश्मदीद गवाहों की मूल्यांकन की जानी है, वह अब और ल अधिक नहीं है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कई निर्णयों द्वारा इसे अंत समाप्त कर दिया गया है। हालांकि, प्रत्येक आपराधिक मामले के अपने तथ्य और परिस्थितियां और स्वयं का मिश्रण होता है। इसलिए, सार्वभौमिक अनुप्रयोग के लिए कोई सीधा-सटीक फॉर्मूला विकसित नहीं किया जा सकता है और यह गवाहों द्वारा दी गई गवाही की प्रकृति के संबंध में प्रत्येक मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स पर निर्भर करेगा, जिसके आधार पर यह माना जा सकता है कि क्या तथ्य के गवाह जो खुद को घटना देखने का दावा कर रहे हैं, सत्य हैं, विश्वसनीय और उस पर कार्रवाई की जा सकती है।

12. राजस्थान राज्य बनाम श्रीमती कल्कि और अन्य एमएनयू/एस.सी./0254/1981: ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1390 में, इस न्यायालय ने कहा:

"5ए। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उच्च न्यायालय ने दो आधारों पर अ०सा०-1 के साक्ष्य पर भरोसा करने से इनकार कर दिया है: (1) वह एक "अत्यधिक रुचि" वाली गवाह थी क्योंकि वह "मृतक की पत्नी है"

..... क्योंकि, मामले की परिस्थितियों में, वह एकमात्र और सबसे स्वाभाविक गवाह थी; घटना के समय मृतक के साथ झोपड़ी में मौजूद वह एकमात्र व्यक्ति थी, और घटना को देखने वाली एकमात्र व्यक्ति थी। सच है कि वह मृतक की पत्नी है; लेकिन उसे 'दिलचस्प' गवाह नहीं कहा जा सकता। वह मृतक से संबंधित है। 'संबंधित' 'रुचि' के बराबर नहीं है। एक गवाह को केवल तभी 'रुचि' कहा जा सकता है जब वह मुकदमेबाजी के परिणाम से कुछ लाभ प्राप्त करता है; एक सिविल मामले में डिक्री में, या एक आरोपी व्यक्ति को दंडित करते हुए देखने में। एक गवाह जो एक स्वाभाविक गवाह है और किसी मामले की परिस्थितियों में एकमात्र संभावित चश्मदीद गवाह है, उसे 'रुचि' नहीं कहा जा सकता है। इस मामले में अ०सा०-1 को वास्तविक अपराधी की रक्षा करने और प्रतिवादियों को गलत तरीके से फंसाने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। (यह भी देखें: चकली मैडिलेटी और अन्य बनाम एपी मनु/एस.सी./0609/2010: ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 3473)

(महत्व सन्निविष्ट)

13. सच्चे लाल तिवारी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0865/2004: ए.आई.आर. 2004 एससी 5039 में, इस न्यायालय ने मामले से निपटते समय कहा:

"7.... गवाहों को पूर्व नोटिस के साथ हत्याएं नहीं की जाती हैं; उनकी उपस्थिति का अनुरोध करना। यदि किसी आवासीय घर में हत्या की जाती है, तो घर के निवासी प्राकृतिक गवाह होते हैं। अगर किसी गली में हत्या की जाती है तो केवल राहगीर ही गवाह होंगे। उनके सबूतों को इस आधार पर दरकिनार नहीं किया जा सकता है या संदेह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता है कि वे केवल 'संयोग के गवाह' हैं। अभिव्यक्ति 'मौका गवाह' उन देशों से उधार ली गई है जहां हर आदमी के घर को उसका महल माना जाता है और हर किसी के पास कहीं और या किसी अन्य व्यक्ति के महल में उसकी उपस्थिति के लिए स्पष्टीकरण होना चाहिए। यह एक ऐसे देश में एक अभिव्यक्ति है जहां लोग कम औपचारिक और अधिक आकस्मिक हैं, किसी भी दर पर उनकी उपस्थिति की व्याख्या करते हुए।

14. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, यह सुरक्षित रूप से माना जा सकता है कि प्राकृतिक गवाहों को हितबद्ध गवाहों के रूप में लेबल नहीं किया जा सकता है। हितबद्ध गवाह वे हैं जो मुकदमेबाजी/मामले से कुछ लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। यदि परिस्थितियों से पता चलता है कि एक गवाह घटना स्थल पर मौजूद था और उसने अपराध देखा था, तो उसके बयान को केवल पीड़ित/मृतक से निकटता से संबंधित होने के आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता है।

भागलू लोध और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0700/2011 में रिपोर्ट किया गया, यह निम्नानुसार अवधारित किया गया था:

"14. घनिष्ठ संबंध के साक्ष्य पर भरोसा किया जा सकता है बशर्ते वह भरोसेमंद हो। किसी दिए गए मामले में अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले इस तरह के साक्ष्य की सावधानीपूर्वक जांच

और मूल्यांकन की जानी चाहिए। लेकिन जहां सत्र न्यायालय ने सबूतों की उचित रूप से मूल्यांकन की और उनका सावधानीपूर्वक विश्लेषण किया और उच्च न्यायालय ने उसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उक्त साक्ष्य की उचित रूप से फिर से मूल्यांकन की, उच्च न्यायालय के लिए इसके विपरीत दृष्टिकोण लेना मुश्किल है, जब तक कि ऐसे गवाहों पर अविश्वास करने के कारण न हों। इस प्रकार, साक्ष्य पर केवल इस आधार पर विश्वास नहीं किया जा सकता है कि गवाह एक-दूसरे से या मृतक से परस्पर संबंधित हैं। (द्वारा: एम.सी. अली और अन्य बनाम केरल राज्य मनु/एससी/0247/2010: ए.आई.आर. 2010 एससी 1639; मायलादिम्मल सुरेंद्रन और अन्य वी। केरल राज्य मनु/एससी/0670/2010: ए.आई.आर. 2010 एससी 3281; श्याम वी. मध्य प्रदेश राज्य एमएनयू/एस.सी./7112/2007: (2009) 16 एस.सी.सी. 531; पृथ्वी वी। हरियाणा राज्य मनु/एससी/0532/2010: (2010) 8 एस.सी.सी. 536; सुरेंद्र पाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य एमएनयू/एस.सी./0713/2010: (2010) 9 एस.सी.सी. 399; और हिमांशु @ चिट्टू वी। राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) मनु/एससी/0006/2011: (2011) 2 एस.सी.सी. 36)

यहां ऊपर दिए गए कानून को ध्यान में रखते हुए, निकट से संबंधित गवाहों के साक्ष्य को स्वीकार करते हुए निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए सबूतों में कोई दोष नहीं पाया जा सकता है।

26. इसलिए यह तय हो गया है कि केवल इसलिए कि गवाह पीड़ित के करीबी रिश्तेदार हैं, उनकी गवाही को खारिज नहीं किया जा सकता है। मृतक के साथ संबंध एक ऐसा कारक नहीं है जो गवाह की विश्वसनीयता को प्रभावित करता है, इसके अलावा, एक रिश्तेदार वास्तविक अपराधी को नहीं छिपाएगा और एक निर्दोष व्यक्ति के खिलाफ आरोप लगाएगा। हालांकि, ऐसे मामले में न्यायालय को सावधानीपूर्वक दृष्टिकोण अपनाना होगा और ऐसे गवाह के साक्ष्य का विश्लेषण करना होगा ताकि यह पता लगाया जा सके कि क्या वह एक प्राकृतिक गवाह है और क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में उसका साक्ष्य ठोस और विश्वसनीय है।

महेंद्रन और अन्य बनाम तमिलनाडु राज्य मनु/एससी/0257/2019 और अन्य में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अवधारित किया है: -

"38. यह तर्क कि पूरा मामला झूठ पर आधारित है और इस प्रकार अपीलकर्ताओं की दोषसिद्धि के लिए विश्वसनीय नहीं है, तर्कसंगत नहीं है। यह अच्छी तरह से स्थापित है कि कहावत "मिथ्या इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस" का भारत में कोई आवेदन नहीं है, केवल इस कारण से कि गवाह के बयान का कुछ हिस्सा विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है। गंगाधर बेहरा के मामले में इस न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण ऐसा है, जिसमें न्यायालय ने निम्नानुसार निर्णय दिया:

15 . इसी आशय का निर्णय पंजाब राज्य बनाम जागीर सिंह मनु/एस.सी./0193/1973: (1974)3 एस.सी.सी.277 और लेहना बनाम लेहना बनाम हरियाणा राज्य, एमएनयू/एस.सी./ 0075/2002: (2002)3 एस.सी.सी.76 में अभियुक्त-अपीलकर्ताओं द्वारा पूरे अभियोजन मामले को खारिज करने की वांछनीयता के बारे में तर्क देने के

लिए कुछ गवाहों द्वारा दिए गए सबूतों को स्वीकार न करने पर जोर दिया गया था। संक्षेप में प्रार्थना "यूनो फाल्स, ओम्निबस फाल्सस" (एक में झूठा, हर चीज में झूठा) के सिद्धांत को लागू करना है। यह दलील स्पष्ट रूप से असमर्थनीय है। यहां तक कि अगर साक्ष्य का एक बड़ा हिस्सा कमी पाया जाता है, तो यदि अवशेष किसी अभियुक्त के अपराध को साबित करने के लिए पर्याप्त है, तो कई अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों को बरी किए जाने के बावजूद, उसकी दोषसिद्धि को बनाए रखा जा सकता है। अनाज को भूसी से अलग करना अदालत का कर्तव्य है। जहां भूसी को अनाज से अलग किया जा सकता है, अदालत के लिए यह खुला होगा कि वह किसी अभियुक्त को दोषी ठहरा सके, इस तथ्य के बावजूद कि अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के अपराध को साबित करने के लिए सबूतों की कमी पाई गई है। किसी विशेष भौतिक गवाह या विशेष सामग्री का झूठ इसे शुरू से अंत तक बर्बाद नहीं करेगा। "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस" की कहावत का भारत में कोई उपयोग नहीं है और गवाहों को झूठा नहीं बताया जा सकता है। कहावत "फाल्सस इन यूनो, फाल्सस इन ओम्निबस" को सामान्य स्वीकृति नहीं मिली है और न ही यह कहावत कानून के शासन की स्थिति पर कब्जा करने के लिए आई है। यह केवल सावधानी का नियम है। इसका मतलब यह है कि ऐसे मामलों में गवाही की अवहेलना की जा सकती है, न कि इसकी अवहेलना की जानी चाहिए। सिद्धांत में केवल साक्ष्य के वजन का प्रश्न शामिल है जिसे एक अदालत परिस्थितियों के एक निश्चित सेट में लागू कर सकती है, लेकिन यह वह नहीं है जिसे "साक्ष्य का अनिवार्य नियम" कहा जा सकता है। (देखें **निसार अल्ली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0032/1957: ए.आई.आर. 1957 एससी 366**) केवल इसलिए कि कुछ अभियुक्त व्यक्तियों को बरी कर दिया गया है, हालांकि उन सभी के खिलाफ सबूत, जहां तक प्रत्यक्ष गवाही की बात है, एक आवश्यक परिणाम के रूप में नहीं ले जाता है कि जिन लोगों को दोषी ठहराया गया है उन्हें भी बरी किया जाना चाहिए। यह हमेशा एक अदालत के लिए खुला है कि उन अभियुक्तों को अलग किया जाए जिन्हें दोषसिद्ध लोगों से बरी कर दिया गया था। (देखें **गुरचरण सिंह बनाम पंजाब राज्य मनु/एससी/0122/1955: एआईआर 1956 एससी 460**)। यह सिद्धांत विशेष रूप से भारत में खतरनाक है क्योंकि यदि गवाही के एक पूरे समूह को खारिज कर दिया जाता है, क्योंकि एक गवाह स्पष्ट रूप से किसी पहलू में असत्य बोल रहा था, तो यह डर माना जा सकता है कि आपराधिक न्याय का प्रशासन एक मृत पड़ाव पर आ जाएगा। गवाह किसी कहानी को कड़ाई देने में मदद नहीं कर सकते, हालांकि, मुख्य रूप से सच है। इसलिए, प्रत्येक मामले में यह मूल्यांकन किया जाना चाहिए कि साक्ष्य किस हद तक स्वीकृति के योग्य है, और केवल इसलिए कि कुछ मामलों में अदालत गवाह की गवाही पर भरोसा करने के लिए इसे अपर्याप्त मानती है, यह आवश्यक रूप से कानून के मामले के रूप में पालन नहीं करता है कि इसकी सभी तरह से अवहेलना की जानी चाहिए। सबूतों को सावधानी से छानना होगा। उपरोक्त कहावत इस कारण से एक ठोस नियम नहीं है कि शायद ही कोई ऐसा गवाह मिलता है जिसके साक्ष्य में असत्य का एक दाना या किसी भी दर पर अतिशयोक्ति, कड़ाई या अलंकरण नहीं होता है। (देखें **सोहराब बनाम मध्य प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0254/1972: (1972) 3 एस.सी.सी. 751 और उगर अहीर बनाम बिहार राज्य मनु/एस.सी./0333/1964: ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 277**)। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, एक प्रयास किया जाना चाहिए, फेलिसियस रूपक के संदर्भ में, अनाज को भूसी से, सत्य को झूठ से अलग करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जहां सत्य को झूठ से अलग करना संभव नहीं है, क्योंकि अनाज और भूसी को अटूट रूप से मिलाया जाता है, और अलगाव की प्रक्रिया में अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत आवश्यक विवरणों को पूरी तरह

से संदर्भ और जिस पृष्ठभूमि के खिलाफ वे बनाए गए हैं, से अलग करके एक बिल्कुल नए मामले का पुनर्निर्माण करना पड़ता है, एकमात्र उपलब्ध रास्ता सबूतों को पूरी तरह से त्यागना है। (देखें *ज़िंगली एरियल बनाम म.प्र. राज्य मनु/एस.सी./ 0093/1952: ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 15 और बालाका सिंह बनाम पंजाब राज्य एमएनयू/ एस.सी./0087/1975: (1975) 4 एस.सी.सी. 511।*)”

27. अब अभियोजन पक्ष के तीन चश्मदीद गवाहों, अर्थात् अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा, अ०सा०-3/राम बरन तिवारी और अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा के साक्ष्य को उपरोक्त स्थापित सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में सराहा जाना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि अ०सा०-1/राज मणि मिश्रा/सूचनाकर्ता ने घटना को नहीं देखा है और उसे अ०सा०-4/महेंद्र द्वारा घटना के बारे में सूचित किया गया था और उसके बाद वह अस्पताल गया था। अ०सा०-2/राम जियावावन ने कहा कि वह प्रासंगिक समय पर अपने गन्ने के खेत में था, जो घटना स्थल के पास स्थित है और मृतक की चीखें सुनने के बाद, वह मौके पर पहुंचा और अपीलकर्ताओं को मृतक पर लाठी से हमला करते देखा और यह भी कि यह राम विशाल ही था जिसने मृतक पर उसके सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से हमला किया था और जब वह पहुंचा अपराध स्थल पर आरोपी लोग मुंह मोड़ चुके थे। यह भी कहा गया है कि उस समय मृतक अपनी चेतना खो चुका था। अ०सा०-3/राम बरन तिवारी ने कहा है कि वह संबंधित समय पर लंभुआ के लिए 'रिक्शा' से जा रहे थे और जब वह पुलिया के पश्चिम की ओर लगभग 100 कदम की दूरी पर थे, तो उन्होंने अपीलकर्ताओं को मृतक पर लाठी और कुल्हाड़ी से हमला करते हुए देखा था। उन्होंने यह भी कहा कि आरोपी राम विशाल ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से हमला किया था। उसके द्वारा यह भी कहा गया है कि जब उसने अपीलकर्ताओं को मृतक पर हमला करते देखा, तो वह उन पर चिल्लाया और मौके की ओर भागा और जब वह घटनास्थल से लगभग 10-15 कदम दूर था तो आरोपी व्यक्ति उत्तर की ओर भाग गए थे। घायल राम जिस बेहोश हो चुका था। उन्होंने यह भी कहा कि उन्होंने महेंद्र और राम जियावन की मदद से घायल/मृतक राम जिस को रिक्शा पर रखा था और उन्हें अस्पताल ले जाया गया जहां उन्हें भर्ती कराया गया था। अ०सा०-4/महेंद्र कुमार मिश्रा मृतक का चचेरा भाई है। उन्होंने कहा कि संबंधित समय में वह अपने कृषि क्षेत्र में थे, जो घटनास्थल से लगभग 70-75 कदम की दूरी पर स्थित है और उन्होंने मृतक को लंभुआ से छोटेलाल की साइकिल से अपने घर जाते देखा था। उन्होंने यह भी कहा कि आरोपी व्यक्ति/अपीलकर्ता सड़क के किनारे स्थित एक गड्ढे से निकले थे और मृतक को साइकिल से खींच लिया था और उसके बाद उस पर लाठी से हमला किया था और यह आरोपी / अपीलकर्ता राम विशाल था जिसने कुल्हाड़ी के कुंद पक्ष से मृतक पर हमला किया था। उन्होंने यह भी कहा कि वह और अन्य गवाह घटनास्थल से लगभग 10-15 कदम की दूरी पर थे जब अपीलकर्ता भाग गए थे। इस प्रकार, इन सभी गवाहों ने एक स्वर में अपराध करने के तरीके और आरोपी राम विशाल और अन्य सह-अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा निभाई गई भूमिका को विशेष रूप से यह कहते हुए बताया है कि अन्य सभी आरोपी व्यक्ति लाठी ले जा रहे थे, जबकि आरोपी राम विशाल के पास कुल्हाड़ी थी और सबसे पहले जिनके पास लाठी थी, मृतक के साथ प्रहार की और उसके बाद आरोपी राम विशाल ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी की ओर से हमला किया।

28. मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट से पता चलेगा कि उसे 21 चोटें आई थीं और ये सभी चोटें या तो चोट, घायल घाव, खरोंच, सिले हुए घाव हैं और शरीर पर, खोपड़ी दाहिने पार्श्विका क्षेत्र में फ्रैक्चर पाई गई थी, जो मृतक द्वारा उसके सिर के दाईं ओर चोट संख्या-1 के नीचे थी। स्मृति चिन्हों को कंजैसेटड पाया गया था और सब-ड्यूरल हेमेटोमा के साथ थक्के पाए गए थे और डॉक्टर की राय में, मृतक की मृत्यु 'शॉक, रक्तस्राव और कोमा' के कारण हुई थी।

29. यह सच है कि इस मामले में तथ्य के सभी गवाह सूचनाकर्ता और मृतक से संबंधित हैं, लेकिन जैसा कि यहां उद्धृत वादों / निर्णयज विधियों में कहा गया है; माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कई निर्णयों में माना है कि इन संबंधित गवाहों की गवाही को केवल इस स्कोर पर खारिज नहीं किया जा सकता है और न्यायालय का कर्तव्य इन गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन करना है। हमने इन तीन चश्मदीद गवाहों, अ०सा०-2/राम जियावन, अ०सा०-3/राम बरन तिवारी और अ०सा०-4/महेंद्र मिश्रा के साक्ष्यों का अवलोकन किया है। अ०सा०-3/राम बरन तिवारी को छोड़कर, जिन्होंने कहा कि वह संबंधित समय में लंभुआ से 'रिक्षा' पर जा रहे थे और उस स्थान से लगभग 100 कदम की दूरी पर थे जहां घटना हुई थी, अन्य दो गवाह, अर्थात् अ०सा०-2/राम जियावन मिश्रा और अ०सा०-4/महेंद्र मिश्रा स्वाभाविक गवाह हैं क्योंकि वे प्रासंगिक समय पर अपने कृषि क्षेत्र में बताए गए थे, जो दिन के उस समय सामान्य और स्वाभाविक है।

30. तथ्य के इन तीन गवाहों के साक्ष्य के अवलोकन से पता चलता है कि हालांकि इन गवाहों के साक्ष्य में मामूली विरोधाभास हैं, लेकिन उनकी गवाही अभियोजन की कहानी के मूल में दृढ़ और भरोसेमंद है।

31. यह याद किया जाना चाहिए कि गवाहों से यह उम्मीद नहीं की जाती है कि वे 'तोते की तरह घटना' का वीडियो-ग्राफिक विवरण दें। यदि कुछ समय बीत जाने के बाद गवाहों के साक्ष्य दर्ज किए जा रहे हैं, तो मामूली विरोधाभास होना तय है और ये विरोधाभास, हमारी सुविचारित राय में, ऐसे गवाहों की गवाही को विश्वसनीय गवाहों की श्रेणी में रखते हैं, क्योंकि मामूली विरोधाभासों का उभरना काफी स्वाभाविक है और यह इस विश्वास को मजबूत करता है कि वे सिखाए गए गवाह नहीं हैं। इन गवाहों के साक्ष्य पर अपना विचारशील विचार करने के बाद, हमें उनके साक्ष्य में कोई बड़ी कमजोरी, अलंकरण या विरोधाभास नहीं मिला है और हमारी सुविचारित राय में इन गवाहों के साक्ष्य के चारों ओर सच्चाई का घेरा है और इसे स्वीकार किया जा सकता था और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने ऐसे सच्चे गवाहों के साक्ष्य पर भरोसा करके कोई अवैधता नहीं की है।

32. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि घटना के मौखिक विवरण में चिकित्सा साक्ष्य के साथ विरोधाभास हैं और इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि मृतक की भी चिकित्सकीय जांच की गई थी, जब वह जीवित था, डॉ. आर.पी. सिंह द्वारा और उसके बाद, जब उसकी मृत्यु हो गई, तो उसका शव परीक्षण अ०सा०-6/डॉ. एस.एम.एम. नकवी द्वारा किया गया था और जीवन भर की चोट रिपोर्ट में रहते हुए, केवल पांच चोटें पाई गई हैं, उनकी शव परीक्षण रिपोर्ट में 21 चोटें पाई गई हैं और यह एक विरोधाभास और लाभ है जिसका लाभ आरोपी व्यक्तियों/अपीलकर्ताओं को मिलना चाहिए।

33. अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत प्रस्तुतियों की पृष्ठभूमि में अभिलेखों के अवलोकन पर, यह सामने आएगा कि मृतक को अस्पताल ले जाया गया था और 10.09.1991 को भर्ती कराया गया था और यह शाम 6:45 बजे था। उसकी चोटों की जांच की गई और अ०सा०-5/डॉ. आर.पी. सिंह द्वारा दर्ज किया गया, जो विचारण न्यायालय के समक्ष पेश हुए और कहा कि घायल/मृतक को पांच चोटें आई थीं। ये पांच चोटें सिर, बाएं हाथ, दाहिनी कोहनी-जोड़ पर पाई गई हैं, एक क्षेत्र में पीठ पर कई चोट 14 सेमी x 02 सेमी और दाहिने पैर के सामने की तरफ एक घाव पाया गया है। पीठ के बाईं ओर पाए गए चोट, 7 सेमी x 2 सेमी के क्षेत्र में थे। मृतक की मृत्यु के बाद जब उसके शरीर का शव परीक्षण किया गया और अ०सा०-6/एस.एम.एम. नकवी द्वारा किया गया था और उसके शरीर पर विभिन्न प्रकृति के लगभग 21 घाव पाए गए थे, जिसका विवरण इस निर्णय में पहले ही उचित स्थान पर दिया जा चुका है और इसे दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।

34. यह समझा जाना चाहिए कि जब एक गंभीर रूप से घायल व्यक्ति जिसकी स्थिति स्थिर नहीं है, अस्पताल में भर्ती कराया जाता है, तो एक डॉक्टर के लिए मुख्य चिंता उसकी जान बचाना है और एक आरोपी व्यक्ति के जीवनकाल के दौरान चोटों को देखते समय डॉक्टरों द्वारा अपनाई गई सावधानी और मृतक के शरीर को शव परीक्षण के अधीन करते समय बरती गई सावधानी के बीच अंतर होता है। जब भी आजीवन चोट रिपोर्ट और शव परीक्षण रिपोर्ट के साक्ष्य में विरोधाभास हो, तो चोटों या शव परीक्षण रिपोर्ट में दर्ज तथ्यों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए।

35. यह भी समझा जाना चाहिए कि मृतक को एक-दूसरे को पार करते हुए कई चोटें आई हैं, जिन्हें अ०सा०-5/डॉ. आर.पी. सिंह ने एक चोट के रूप में माना होगा, जबकि शव परीक्षण रिपोर्ट में व्यक्तिगत रूप से इसका वर्णन किया गया है। इसके अलावा, इनमें से कई चोटें खरोंच हैं, जो शायद अ०सा०-5 का ध्यान नहीं दे सकती हैं। साथ ही, उनके बयानों में यह विसंगति उन दोनों डॉक्टरों के सामने नहीं रखी गई है जिनकी जांच अ०सा०-5 और अ०सा०-6 के रूप में की गई है और हमारी सुविचारित राय में, इसे अधिक महत्व नहीं दिया जा सकता है क्योंकि मृतक की शव परीक्षण रिपोर्ट उचित है और तथ्य के तीन गवाहों द्वारा दिए गए मौखिक साक्ष्य के अनुरूप हैं और मृतक के सिर पर चोट संख्या-1 को छोड़कर, ये सभी चोटें लाठी के कारण हो सकती हैं और अभियोजन पक्ष का मामला शुरू से ही यह है कि आरोपी राम विशाल ने मृतक के सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से हमला किया था, जिसकी पुष्टि चिकित्सा साक्ष्य से भी होती है। इस प्रकार, हमें घटना के चश्मदीद संस्करण के साथ चिकित्सा साक्ष्य का कोई विरोधाभास नहीं मिलता है।

36. अंत में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता श्री यू.पी. सिंह द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि भले ही अभियोजन पक्ष के मामले को वैसा ही माना जाए, मृतक की मृत्यु करने का कोई सामान्य उद्देश्य नहीं था, क्योंकि अभियुक्त राम विशाल द्वारा भी, कुल्हाड़ी के प्राकृतिक पक्ष का उपयोग नहीं किया गया था, जबकि अन्य आरोपी व्यक्ति लाठी से लैस थे, जो एक घातक हथियार नहीं है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय ने धारा 302 भ०द०वि० के तहत मृतक की हत्या के लिए अपीलकर्ताओं को दोषी ठहराने में अवैधता की है।

37. यह याद किया जाना चाहिए कि प्रस्तुत अपील एक ऐसा मामला है जहां आरोपी व्यक्ति मृतक की वापसी की प्रतीक्षा कर रहे थे और जब मृतक छोटेला की साइकिल पर अपराध स्थल पर पहुंचा, तो उसे नीचे खींच लिया गया और 'लाठी-डंडा' और कुल्हाड़ी से हमला किया गया। एक गैरकानूनी सभा के गठन और उसके सामान्य उद्देश्य को केवल उस तरीके से जाना जा सकता है जिसमें ऐसी सभा के सदस्यों ने अपराध किया है और उनके द्वारा ले जाए गए हथियार और इस तरह की सामान्य उद्देश्य के प्रत्यक्ष प्रमाण शायद ही कभी उपलब्ध हों।

चाणक्य धीबर (मृत) बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य, एमएएनयू/एस.सी./1096/2003 में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 149 भ०द०वि० के दायरे पर ध्यान देते हुए निम्नानुसार व्यवस्था दी है:

"11. धारा 149 भ०द०वि० में सामान्य उद्देश्य पर जोर दिया गया है न कि सामान्य इरादे पर। एक गैरकानूनी सभा में केवल उपस्थिति किसी व्यक्ति को उत्तरदायी नहीं बना सकती है जब तक कि कोई सामान्य उद्देश्य न हो और वह उस सामान्य उद्देश्य से प्रेरित हो और वह वस्तु धारा 141 भ०द०वि० में निर्धारित वस्तुओं में से एक हो। जहां गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य साबित नहीं होता है, वहां आरोपी व्यक्तियों को धारा 149 भ०द०वि० की मदद से दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या सभा Rमें पांच या अधिक व्यक्ति शामिल थे और क्या उक्त व्यक्तियों ने एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों पर विचार किया, जैसा कि धारा 141 में निर्दिष्ट है। इसे कानून के एक सामान्य प्रस्ताव के रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि जब तक किसी ऐसे व्यक्ति के खिलाफ कोई प्रत्यक्ष कार्य साबित नहीं हो जाता है, जिसे कथित तौर पर गैरकानूनी सभा का सदस्य माना जाता है, तब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि वह किसी सभा का सदस्य है। केवल एक चीज की आवश्यकता है कि उसे यह समझना चाहिए था कि सभा गैरकानूनी थी और धारा 141 के दायरे में आने वाले किसी भी कार्य को करने की संभावना थी। 'वस्तु' शब्द का अर्थ है उद्देश्य या डिजाइन और, इसे 'सामान्य' बनाने के लिए, इसे सभी द्वारा साझा किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उद्देश्य उन व्यक्तियों के लिए सामान्य होना चाहिए, जो सभा की रचना करते हैं, अर्थात्, उन सभी को इसके बारे में पता होना चाहिए और इसमें सहमत होना चाहिए, आपसी संविधान के बाद स्पष्ट समझौते से एक सामान्य उद्देश्य का गठन किया जा सकता है, लेकिन यह किसी भी तरह से आवश्यक नहीं है। यह किसी भी स्तर पर सभा के सभी या कुछ सदस्यों द्वारा गठित किया जा सकता है और अन्य सदस्य इसमें शामिल हो सकते हैं और इसे अपना सकते हैं। एक बार बनने के बाद, इसे पहले जैसा बने रहने की आवश्यकता नहीं है। इसे किसी भी स्तर पर संशोधित या बदला या छोड़ा जा सकता है। धारा 149 में दिखाई देने वाली अभिव्यक्ति 'सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में' को 'सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए' के बराबर के रूप में सख्ती से माना जाना चाहिए। वस्तु की प्रकृति के आधार पर इसे तुरंत सामान्य उद्देश्य से जोड़ा जाना चाहिए। वस्तु का समुदाय होना चाहिए और वस्तु केवल एक विशेष चरण तक मौजूद हो सकती है, और उसके बाद नहीं। एक गैरकानूनी सभा के सदस्यों के पास एक निश्चित बिंदु तक वस्तु का समुदाय हो सकता है, जिसके बाद वे अपने उद्देश्यों में भिन्न हो सकते हैं और प्रत्येक सदस्य के पास जो ज्ञान होता है, उसके सामान्य उद्देश्य के अगसारण में क्या होने की संभावना है, न केवल उसके आदेश पर दी गई जानकारी के अनुसार भिन्न हो सकता है, बल्कि उस सीमा के अनुसार भी भिन्न हो सकता है जिस हद तक वह वस्तु के

समुदाय को साझा करता है, और इसके परिणामस्वरूप धारा 149, भ०द०वि० का प्रभाव एक ही सभा के विभिन्न सदस्यों पर अलग-अलग हो सकता है।

12. 'सामान्य उद्देश्य' एक "सामान्य इरादे" से अलग है क्योंकि इसमें हमले से पहले एक पूर्व संगीत कार्यक्रम और मन की एक आम बैठक की आवश्यकता नहीं होती है। यह पर्याप्त है यदि प्रत्येक के पास एक ही वस्तु है और उनकी संख्या-पांच या अधिक है और वे उस वस्तु को प्राप्त करने के लिए एक असंबली के रूप में कार्य करते हैं। एक सभा का "सामान्य उद्देश्य" इसे बनाने वाले सदस्यों के कार्यों और भाषा से और आसपास की सभी परिस्थितियों पर विचार करने से पता लगाया जाना है। इसे सभा के सदस्यों द्वारा अपनाए गए आचरण के प्रविधि से प्राप्त किया जा सकता है। घटना के एक विशेष चरण में गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य क्या है, यह अनिवार्य रूप से तथ्य का प्रश्न है, जिसे सभा की प्रकृति, सदस्यों द्वारा ले जाए गए हथियारों और घटना स्थल पर या उसके आस-पास सदस्यों के व्यवहार को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए। कानून के तहत यह आवश्यक नहीं है कि गैरकानूनी रूप से एकत्र होने के सभी मामलों में, एक गैरकानूनी सामान्य उद्देश्य के साथ, इसे कार्रवाई में बदला जाना चाहिए या सफल होना चाहिए। धारा 141 के स्पष्टीकरण के तहत, एक सभा जो इकट्ठा होने पर गैरकानूनी नहीं थी, बाद में गैरकानूनी हो सकती है। यह आवश्यक नहीं है कि किसी सभा को गैरकानूनी बनाने के लिए आवश्यक इरादा या उद्देश्य शुरुआत में ही अस्तित्व में आ जाए। गैरकानूनी इरादा बनाने का समय महत्वपूर्ण नहीं है। एक सभा, जो इसके प्रारंभ में या उसके बाद कुछ समय के लिए भी वैध है, बाद में गैरकानूनी हो सकती है। दूसरे शब्दों में, यह घटनास्थल पर घटना के दौरान विकसित हो सकता है।

13. धारा 149 भ०द०वि० में दो भाग होते हैं। धारा के पहले भाग का अर्थ है कि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया जाने वाला अपराध वह होना चाहिए जो सामान्य उद्देश्य को पूरा करने की दृष्टि से किया गया हो। ताकि वह अपराध पहले भाग के भीतर आ सके, अपराध को तुरंत उस गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य से जोड़ा जाना चाहिए जिसका आरोपी सदस्य था। यहां तक कि अगर किया गया अपराध सभा के सामान्य उद्देश्य के प्रत्यक्ष अभियोजन में नहीं है, तो यह अभी भी धारा 141 के अंतर्गत आ सकता है, यदि यह माना जा सकता है कि अपराध ऐसा था जैसा कि सदस्यों को पता था कि किए जाने की संभावना थी और धारा के दूसरे भाग में यही आवश्यक है। जिस उद्देश्य के लिए सभा के सदस्य निर्धारित होते हैं या प्राप्त करना चाहते हैं वह उद्देश्य है। यदि सभी सदस्यों द्वारा वांछित वस्तु समान है, तो जान जो वस्तु है जिसका पीछा किया जा रहा है, सभी सदस्यों द्वारा साझा किया जाता है और वे सामान्य रूप से सहमत हैं कि इसे कैसे प्राप्त किया जाना है और यह अब सभा का सामान्य उद्देश्य है। मानव मन में एक वस्तु का मनोरंजन किया जाता है, और यह केवल एक मानसिक दृष्टिकोण होने के कारण, कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं हो सकता है और, इरादे की तरह, आम तौर पर उस कार्य से एकत्र किया जाना चाहिए जो व्यक्ति करता है और उसके परिणाम से प्राप्त होता है। यद्यपि उन परिस्थितियों में कोई कठोर और तेज नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है जिनसे सामान्य उद्देश्य को बाहर निकाला जा सकता है, इसे यथोचित रूप से सभा की प्रकृति, हथियारों और घटना के दृश्य से पहले या बाद में व्यवहार से एकत्र किया जा सकता है। खंड की दूसरी शाखा में प्रयुक्त शब्द 'जानता

था' एक संभावना से अधिक कुछ का तात्पर्य रखता है और इसे 'ज्ञात हो सकता था' का अर्थ सहन करने के लिए नहीं बनाया जा सकता है। सकारात्मक ज्ञान आवश्यक है। जब कोई अपराध सामान्य उद्देश्य के अभियोजन में किया जाता है, तो यह आम तौर पर एक अपराध होगा जिसे गैरकानूनी सभा के सदस्यों को पता था कि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किए जाने की संभावना है। हालाँकि, यह विपरीत प्रस्ताव को सत्य नहीं बनाता है; ऐसे मामले हो सकते हैं जो दूसरे भाग के भीतर आएंगे लेकिन पहले भाग के भीतर नहीं। धारा 149 के दो हिस्सों के बीच के अंतर को नजरअंदाज या मिटाया नहीं जा सकता है। हर मामले में यह निर्धारित किया जाना चाहिए कि क्या अपराध पहले भाग के भीतर आता है या यह एक अपराध था जैसे कि सभा के सदस्यों को पता था कि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किए जाने की संभावना है और दूसरे भाग के भीतर आता है। हालाँकि, ऐसे मामले हो सकते हैं जो सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किए गए पहले अपराधों के भीतर होंगे, लेकिन आम तौर पर, यदि हमेशा नहीं, तो दूसरे के साथ, अर्थात्, ऐसे अपराध जो पक्षों को सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किए जाने की संभावना थी। (देखें चिकरंगे गौड़ा और अन्य बनाम मैसूर राज्य, मनु/एससी/0116/1956: 1956 1365)

लालजी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0283/1989 में यह देखा गया कि:

"गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य सभा की प्रकृति, उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले हथियारों और घटना स्थल पर या उससे पहले सभा के व्यवहार से एकत्र किया जा सकता है। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से निकाला जाना एक निष्कर्ष है।

16. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रॉय फर्नांडीस बनाम गोवा राज्य और अन्य में दंड संहिता की धारा 149 के दायरे को स्पष्ट करते हुए निम्नानुसार माना है: -

"19. गजानंद और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एससी/0173/1954: ए.आई.आर. 1954 एससी 695, इस न्यायालय ने राम चरण राय बनाम पटना उच्च न्यायालय के निर्णय से निम्नलिखित मार्ग को मंजूरी दी। सम्राट मनु/बीएच/0073/1945 : ए.आई.आर. 1946 पैट 242:

"धारा 149 के तहत घटना की निरंतरता के दौरान किए गए अपराध के लिए अन्य सदस्यों का दायित्व इस तथ्य पर निर्भर करता है कि क्या अन्य सदस्यों को पहले से पता था कि वास्तव में किया गया अपराध सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया जा सकता था। इस तरह के ज्ञान को कार्रवाई के दृश्य पर या उससे पहले सभा, हथियारों या व्यवहार की प्रकृति से यथोचित रूप से एकत्र किया जा सकता है। यदि इस तरह के ज्ञान को सभा के अन्य सदस्यों को यथोचित रूप से जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है, तो घटना के दौरान किए गए अपराध के लिए उनकी देयता उत्पन्न नहीं होती है।

20. इस न्यायालय ने तब कानूनी स्थिति को निम्नानुसार दोहराया:

सवाल यह है कि क्या इस तरह के ज्ञान का श्रेय अपीलकर्ताओं को दिया जा सकता है जो खुद तेज धार वाले हथियारों से लैस नहीं थे। इस बिंदु पर सबूतों का पूरी तरह से अभाव है। अपीलकर्ताओं के पास केवल लाठियां थीं जो संभवतः सुक्खू के बाएं हाथ और बाएं हाथ पर 2 और 3 की चोटों के लिए जिम्मेदार हो सकती हैं, लेकिन उन्हें भारतीय दंड संहिता की धारा 149 की सहायता से हत्या के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। सबूतों के अनुसार, केवल दो व्यक्ति घातक हथियारों से लैस थे। दोनों को बरी कर दिया गया था और सोसा, जिसके पास कथित रूप से भाला था, फरार है। इसलिए हम अपीलकर्ताओं को घातक हथियारों के अस्तित्व के बारे में कोई जानकारी देने के लिए तैयार नहीं हैं, इस बात से भी कम कि उनका उपयोग मौत का कारण बनने के लिए किया जाएगा।

21. मिज़ाजी और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य मनु/एस.सी./0040/1958 : ए.आई.आर. 1959 एस.सी. 572 में यह न्यायालय एक ऐसे मामले से निपट रहा था जहां घातक हथियारों से लैस पांच व्यक्ति उस भूमि पर जबरन कब्जा करने के सामान्य उद्देश्य से गए थे जो मृतक के खेती के कब्जे में थी। कब्जे वाले व्यक्ति के प्रतिरोध का सामना करते हुए, दूसरे के उलाहना पर सभा के सदस्यों में से एक ने गोली मार दी और मृतक की हत्या कर दी। इस न्यायालय ने माना कि गैरकानूनी सभा के सदस्यों का आचरण ऐसा था जिससे पता चलता है कि वे किसी भी कीमत पर जबरन कब्जा करने के लिए दृढ़ थे। इसलिए, भारतीय दंड संहिता की धारा 149 को आकर्षित किया गया था और हत्या के लिए सभा के सदस्यों की सजा को कानूनी रूप से उचित ठहराया गया था। इस न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में धारा 149 का विश्लेषण किया:

6. यह धारा भारत के विभिन्न उच्च न्यायालयों में व्याख्या की विषय रही है, लेकिन प्रत्येक मामले को अपने स्वयं के तथ्यों पर तय किया जाना है। धारा के पहले भाग का अर्थ है कि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया गया अपराध वह होना चाहिए जो सामान्य उद्देश्य को पूरा करने की दृष्टि से किया गया हो। यह आवश्यक नहीं है कि गैरकानूनी सभा के सदस्यों की बैठक के अर्थ में सामान्य उद्देश्य के रूप में एक पूर्व नियोजित कार्यक्रम होना चाहिए; यह पर्याप्त है यदि इसे सभी सदस्यों द्वारा अपनाया जाता है और उन सभी द्वारा साझा किया जाता है। ताकि मामला पहले भाग के अंतर्गत आ सके, किए गए अपराध को उस गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य से तुरंत जोड़ा जाना चाहिए जिसके आरोपी सदस्य थे। यहां तक कि अगर किया गया अपराध सभा के सामान्य उद्देश्य के प्रत्यक्ष अभियोजन में नहीं है, तो यह अभी भी धारा 149 के तहत आ सकता है यदि यह माना जा सकता है कि अपराध ऐसा था जैसा कि सदस्यों को पता था कि किए जाने की संभावना थी। अभिव्यक्ति 'जानना' का अर्थ केवल एक संभावना नहीं है, जैसे कि हो सकता है या नहीं हो सकता है। उदाहरण के लिए, यह सामान्य ज्ञान का विषय है कि जब एक गांव में भारी हथियारों से लैस पुरुषों का एक समूह एक महिला को बलपूर्वक ले जाने के लिए निकलता है, तो किसी के मारे जाने की संभावना होती है और गैरकानूनी सभा के सभी सदस्यों को उस संभावना के बारे में पता होना चाहिए और धारा 149 के दूसरे भाग के तहत दोषी होंगे। इसी तरह, यदि व्यक्तियों का कोई निकाय भूमि पर जबरन कब्जा करने के लिए सशस्त्र जाता है, तो यह कहना भी उतना ही सही होगा कि उन्हें यह ज्ञान है कि हत्या की संभावना है यदि गैरकानूनी सभा

के सदस्यों के हथियारों और अन्य आचरण के बारे में परिस्थितियां स्पष्ट रूप से उन सभी की ओर से इस तरह के ज्ञान की ओर इशारा करती हैं।

22. शंभू नाथ सिंह और अन्य बनाम में। बिहार राज्य मनु/एससी/0214/1959: ए.आई.आर. 1960 एससी 725 के मामले में, इस न्यायालय ने माना कि एक गैरकानूनी सभा के सदस्यों के पास एक निश्चित बिंदु तक वस्तु का एक समुदाय हो सकता है, जिसके बाद वे अपने उद्देश्यों में भिन्न हो सकते हैं और प्रत्येक सदस्य के पास उनके सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किए जाने वाले कार्यों का ज्ञान न केवल उसके आदेश पर दी गई जानकारी के अनुसार भिन्न हो सकता है, बल्कि उस सीमा के अनुसार भी भिन्न हो सकता है जिसे वह वस्तु के समुदाय को साझा करता है। परिणामस्वरूप, भारतीय दंड संहिता की धारा 149 का प्रभाव एक ही गैरकानूनी सभा के विभिन्न सदस्यों पर अलग-अलग हो सकता है। इस न्यायालय के निर्णय **गंगाधर बेहरा और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य मनु/एस.सी./0875/2002 2002(8) एस.सी.सी. 381 और बिश्ना उर्फ भीष्म महातो और अन्य बनाम उड़ीसा राज्य** के मामले में मामला दर्ज किया गया है। **पश्चिम बंगाल राज्य मनु/एससी/1913/2005: 2005 (12) एस.सी.सी. 657** इसी तरह इस विषय पर कानूनी स्थिति की व्याख्या और दोहराता है।

17. भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **कुलदीप यादव और अन्य बनाम बिहार राज्य, मनु/एससी/0390/2011** में दंड संहिता की धारा 149 की सहायता से दोषसिद्धि के दायरे पर टिप्पणी करते हुए निम्नानुसार व्यवस्था दी है: -

"प्रस्तर-25-.....

149. गैरकानूनी सभा का प्रत्येक सदस्य सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किए गए अपराध का दोषी है - यदि उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किसी गैरकानूनी सभा के किसी सदस्य द्वारा कोई अपराध किया जाता है, या जैसे कि उस सभा के सदस्यों को पता था कि उस उद्देश्य के अभियोजन में प्रतिबद्ध होने की संभावना है, प्रत्येक व्यक्ति, जो उस अपराध को करते समय, उसी सभा का सदस्य है, उस अपराध का दोषी है।

26. उपरोक्त प्रावधान यह स्पष्ट करता है कि धारा 149 भ०द०वि० की सहायता से अभियुक्त को दोषी ठहराने से पहले, न्यायालय को सामान्य उद्देश्य की प्रकृति के बारे में स्पष्ट निष्कर्ष देना चाहिए और यह कि उद्देश्य गैरकानूनी था। इस तरह के निष्कर्ष के अभाव में और आरोपी व्यक्तियों की ओर से किसी भी प्रत्यक्ष कार्य के अभाव में, केवल यह तथ्य कि वे सशस्त्र थे, सामान्य उद्देश्य को साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा। धारा 149 एक विशिष्ट अपराध बनाती है और उस अपराध की सजा से संबंधित है। जब भी अदालत धारा 149 की सहायता से किसी व्यक्ति या व्यक्ति को अपराध के लिए दोषी ठहराती है, तो सभा के सामान्य उद्देश्य के बारे में एक स्पष्ट निष्कर्ष दिया जाना चाहिए और चर्चा किए गए साक्ष्य को न केवल सामान्य उद्देश्य की प्रकृति को दिखाना चाहिए, बल्कि यह भी दिखाना चाहिए कि वस्तु गैरकानूनी थी। धारा 149 भ०द०वि० के तहत दोषसिद्धि दर्ज करने से पहले, धारा 141 भ०द०वि० के आवश्यक तत्व स्थापित किए जाने चाहिए।

उपर्युक्त सिद्धांतों को भूदेव मंडल और अन्य बनाम बिहार राज्य मनु/एससी/0125/1981: (1981) 2 एस.सी.सी. 755 में दोहराया गया है।

27. **रणबीर यादव बनाम बिहार राज्य मनु/एससी/0245/1995: (1995)4 एस.सी.सी.392** के मामले में, इस न्यायालय ने इस बात पर प्रकाश डाला कि जहां पक्ष गुट होते हैं, वहां निर्दोष को दोषी के साथ शामिल करने की प्रवृत्ति होती है और अदालत के लिए इस तरह के खतरे से बचाव करना बेहद मुश्किल होता है। यह बताया गया कि दोषियों के साथ निर्दोष की निंदा करने के जोखिम के खिलाफ एकमात्र वास्तविक सुरक्षा स्वीकार्य साक्ष्य पर जोर देने में निहित है जो कुछ हद तक ऐसे अभियुक्त को फंसाता है और अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट करता है।

28. **अलाउद्दीन मियां और अन्य शरीफ मियां और अन्य बनाम बिहार राज्य मनु/एससी/ 0648/1988: (1989)3 एस.सी.सी.5** में, इस न्यायालय ने कहा: ... इसलिए, एक गैरकानूनी सभा के किसी भी सदस्य पर प्रतिनिधिक जिम्मेदारी को जकड़ने के लिए, अभियोजन पक्ष को यह साबित करना होगा कि अपराध का गठन करने वाला कार्य उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया गया था या किया गया कार्य ऐसा है जैसे कि उस सभा के सदस्यों को पता था कि उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में प्रतिबद्ध होने की संभावना है। इसलिए, इस धारा के तहत, एक गैरकानूनी सभा का प्रत्येक सदस्य खुद को किसी अन्य सदस्य या उस सभा के सदस्यों के आपराधिक कृत्यों या कृत्यों के लिए उत्तरदायी बनाता है, बशर्ते कि यह सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया गया हो या ऐसा है जैसा कि उस सभा के प्रत्येक सदस्य को पता था कि प्रतिबद्ध होने की संभावना है। यह धारा एक विशिष्ट अपराध बनाती है और गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य को घटना के दौरान किए गए अपराध या अपराधों के लिए उत्तरदायी बनाती है, बशर्ते कि वह सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया गया था/किया गया था या उस सभा के सदस्यों को पता था कि उनके किए जाने की संभावना है। चूंकि यह धारा एक रचनात्मक दंडात्मक दायित्व लगाती है, इसलिए इसका सख्ती से अर्थ लगाया जाना चाहिए क्योंकि यह एक गैरकानूनी सभा के सदस्यों को उनके सहयोगी या सहयोगियों द्वारा किए गए अपराध या अपराधों के लिए दंडित करना चाहता है। प्रत्येक मामले में जो महत्वपूर्ण है वह यह पता लगाना है कि क्या अपराध सभा के सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया गया था या वह था जिसे सदस्यों को पता था कि इसके किए जाने की संभावना है। सामान्य उद्देश्य और किए गए अपराध के बीच एक सांठगांठ होनी चाहिए और यदि यह पाया जाता है कि यह सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध था, तो सभा का प्रत्येक सदस्य इसके लिए उत्तरदायी हो जाएगा। इसलिए, धारा 141 भ०द०वि० में उल्लिखित पांच उद्देश्यों में से किसी एक या अधिक के अभियोजन में गैरकानूनी सभा के सदस्य द्वारा किया गया कोई भी अपराध धारा 149 भ०द०वि० की सहायता से गैरकानूनी सभा का गठन करने वाले उसके साथियों को उस अपराध के लिए उत्तरदायी बना देगा।

29. धारा 149 को अधिनियमित करने में विधायिका का यह इरादा नहीं है कि गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य को उसके एक या अधिक सदस्यों द्वारा किए गए प्रत्येक अपराध के लिए दंड का उत्तरदायी बनाया जाए। धारा

149 को आकर्षित करने के लिए, यह दिखाया जाना चाहिए कि प्रतिवादजनक कार्य गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए किया गया था और यह अन्य सदस्यों के ज्ञान के भीतर होना चाहिए क्योंकि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में प्रतिबद्ध होने की संभावना है। यदि सभा के सदस्यों को सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किसी विशेष अपराध के होने की संभावना के बारे में पता था या पता था, तो वे धारा 149 भ०द०वि० के तहत इसके लिए उत्तरदायी होंगे।

30. राजेंद्र शांताराम तोडनकर बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य मनु/एससी/0002/2003: (2003) 2 एस.सी.सी. 257: 2003 एस.सी.सी. (क्रि) 506, इस न्यायालय ने एक बार फिर धारा 149 की व्याख्या की है और निम्नानुसार अवधारित किया है:

14. भारतीय दंड संहिता की धारा 149 में प्रावधान है कि यदि उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किसी गैरकानूनी सभा के किसी सदस्य द्वारा कोई अपराध किया जाता है, या जैसे कि उस सभा के सदस्यों को पता था कि उस उद्देश्य के अभियोजन में किए जाने की संभावना है, तो प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध को करने के समय, यदि कोई उसी सभा का सदस्य उस अपराध का दोषी है। धारा 149 के दो खंड निश्चितता की डिग्री में भिन्न हैं। पहला खंड एक गैरकानूनी सभा के किसी भी सदस्य द्वारा अपराध करने पर विचार करता है जिसे सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में किया जा सकता है। दूसरा खंड अपने दायरे में एक अधिनियम के कमीशन को गले लगाता है जो जरूरी नहीं कि सभा का सामान्य उद्देश्य हो, फिर भी, सभा के सदस्यों को सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में उस अपराध के कमीशन की संभावना का ज्ञान था। सामान्य उद्देश्य एक अपराध का कमीशन हो सकता है जबकि एक और अपराध के होने की संभावना हो सकती है, जिसका ज्ञान गैरकानूनी सभा के सदस्यों के लिए सुरक्षित रूप से जिम्मेदार होने में सक्षम है। किसी भी मामले में, सभा का प्रत्येक सदस्य सभा के किसी अन्य सदस्य द्वारा वास्तव में किए गए अपराध के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी होगा। अपराध के कमीशन की एक मात्र संभावना आवश्यक रूप से अदालत को यह निष्कर्ष निकालने में सक्षम नहीं बनाएगी कि इस तरह के अपराध के होने की संभावना गैरकानूनी सभा के प्रत्येक सदस्य के ज्ञान में थी। इस तरह के ज्ञान के प्रत्यक्ष प्रमाण एकत्र करना वास्तव में असंभव नहीं है, हालांकि असंभव नहीं है। घटना की पृष्ठभूमि, मकसद, सभा की प्रकृति, सभा के सदस्यों द्वारा ले जाए गए हथियारों की प्रकृति, उनकी सामान्य उद्देश्य और अपराध के वास्तविक कमीशन से पहले या बाद में सदस्यों के व्यवहार जैसी परिस्थितियों से एक अनुमान लगाया जा सकता है। जब तक धारा 149 भ०द०वि० की प्रयोज्यता - या तो खंड - आकर्षित नहीं होती है और न्यायालय तथ्यों और कानून में, दोनों के आधार पर, धारा 149 भ०द०वि० के किसी भी खंड के संदर्भ में परोक्ष रूप से बन्धन करने में सक्षम दायित्व के बारे में आश्वस्त नहीं होता है, केवल इसलिए कि सभा के एक सदस्य द्वारा एक आपराधिक कार्य किया गया था, उसका प्रत्येक दूसरा सदस्य आवश्यक रूप से इस तरह के आपराधिक कृत्य के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। दिए गए आपराधिक कृत्य के कमीशन की संभावना के रूप में अनुमान सभा के किसी अन्य सदस्य के ज्ञान के भीतर होने में सक्षम होना चाहिए, जिसे उक्त आपराधिक कृत्य के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी ठहराया जाना चाहिए। (महत्व सन्निविष्ट)

18. **मनजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, मनु/एससी/1195/2019** के मामले में भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मामले में निम्नानुसार निर्णय दिया गया: -

"14.4. **सुबल घोरल बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, मनु/एससी/0296/2013** (उपरोक्त) के मामले में, इस न्यायालय ने प्रमुख मामलों के सर्वेक्षण के बाद, सिद्धांतों को निम्नानुसार अभिव्यक्त किया:

52. उपरोक्त निर्णय धारा 149 भ०द०वि० के दायरे को रेखांकित करते हैं। हमें सिद्धांतों को संक्षेप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता है ताकि प्रस्तुत मामले को उनके प्रकाश में देखा जा सके। धारा 141 भ०द०वि० गैरकानूनी सभा को पांच या अधिक व्यक्तियों के जमावड़े के रूप में परिभाषित करती है। अपराध करने के लिए उनके पास सामान्य उद्देश्य होना चाहिए। धारा 142 भ०द०वि० में कहा गया है कि जो कोई भी उन तथ्यों से अवगत है जो किसी भी सभा को गैरकानूनी बनाते हैं, जानबूझकर उसमें शामिल होते हैं, वह उसका सदस्य होगा। धारा 143 भ०द०वि० में गैरकानूनी सभा का सदस्य होने पर सजा का प्रावधान है। धारा 149 भ०द०वि० एक गैरकानूनी सभा के प्रत्येक व्यक्ति के रचनात्मक दायित्व का प्रावधान करती है यदि उस सभा के सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में उसके किसी सदस्य द्वारा अपराध किया जाता है या उस सभा के ऐसे सदस्य जो उस उद्देश्य के अभियोजन में प्रतिबद्ध होने की संभावना जानते थे। गैरकानूनी असेंबली का सबसे महत्वपूर्ण घटक सामान्य उद्देश्य है। उस सभा की रचना करने वाले व्यक्तियों का सामान्य उद्देश्य उस धारा के खंड "पहले", "दूसरे", "तीसरा", "चौथा" और "पांचवां" में बताए गए किसी भी कार्य को करना है। सामान्य उद्देश्य पल के प्रोत्साहन पर बनाई जा सकती है। आम सभा के सदस्यों द्वारा अपनाया गया आचरण एक प्रासंगिक कारक है। किस समय गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य बनाया गया था, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। एक बार जब व्यक्ति का मामला धारा 149 भ०द०वि० के अंतर्गत आता है, तो यह सवाल कि उसने अपने हाथों से कुछ नहीं किया, महत्वहीन होगा। यदि सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में गैरकानूनी सभा के किसी सदस्य द्वारा कोई अपराध किया जाता है, तो गैरकानूनी सभा का कोई भी सदस्य जो अपराध के कमीशन के समय उपस्थित था और जो उस सभा के सामान्य उद्देश्य को साझा करता था, उस अपराध के कमीशन के लिए उत्तरदायी होगा, भले ही उसके द्वारा कोई प्रत्यक्ष कार्य न किया गया हो। यदि हथियारों से लैस व्यक्तियों की एक बड़ी भीड़ पीड़ितों पर हमला करती है, तो सभी वास्तविक हमले में भाग नहीं ले सकते हैं। यदि कुछ सदस्यों द्वारा ले जाए गए हथियारों का उपयोग नहीं किया जाता है, तो यह उन्हें धारा 149 भ०द०वि० की सहायता से अपराध के लिए दायित्व से मुक्त नहीं करेगा यदि वे गैरकानूनी रूप से एकत्र होने के सामान्य उद्देश्य को साझा करते हैं।

53. लेकिन रचनात्मक दायित्व की इस अवधारणा को इतना बढ़ाया नहीं जाना चाहिए कि निर्दोष दर्शकों का झूठा निहितार्थ हो। अक्सर, लोग जिज्ञासा से अपराध स्थल पर इकट्ठा होते हैं। वे गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को साझा नहीं करते हैं। यदि बड़ी संख्या में लोगों के खिलाफ सामान्य आरोप लगाए जाते हैं, तो अदालत को सतर्क रहना होगा। इसे केवल निष्क्रिय दर्शकों को दोषी ठहराने की संभावना से बचना चाहिए जो गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को साझा नहीं करते थे। जब तक उचित प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिस्थितियां

अभियोजन पक्ष के मामले को यह आश्वासन नहीं देती हैं कि वे गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य को साझा करते हैं, तब तक उन्हें धारा 149 भ०द०वि० की सहायता से दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। प्रत्येक मामले में यह साबित किया जाना चाहिए कि संबंधित व्यक्ति न केवल किसी स्तर पर गैरकानूनी सभा का सदस्य था, बल्कि सभी महत्वपूर्ण चरणों में भी था और सभी चरणों में सभा के सामान्य उद्देश्य को साझा करता था। अदालत के पास यह राय बनाने के लिए कुछ सामग्री होनी चाहिए कि अभियुक्त ने सामान्य उद्देश्य साझा की है। किसी विशेष स्तर पर गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य क्या है, यह हमले से पहले और उस समय गैरकानूनी सभा के सदस्यों के आचरण, अपराध स्थल पर या उसके आस-पास उनके व्यवहार, अपराध के लिए उद्देश्य, उनके द्वारा ले जाए गए हथियारों और ऐसे अन्य प्रासंगिक विचारों को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया जाना चाहिए। अपराध में निर्दोष लोगों को फंसाने से बचने के लिए आपराधिक अदालत को सबूतों का आकलन करने की यह कठिन और सावधानीपूर्वक कवायद करनी होगी। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित ये सिद्धांत रचनात्मक दायित्व की अवधारणा को कमजोर नहीं करते हैं। वे सावधानी के नियम का प्रतीक हैं।

(महत्व सन्निविष्ट)

38. उपरोक्त कानून की पृष्ठभूमि में तथ्य के तीन गवाहों के साक्ष्य के मूल्यांकन से पता चलेगा कि आरोपी व्यक्तियों ने एक जाल बिछाया था क्योंकि वे सड़क के किनारे स्थित गड्ढे में छिपे हुए थे और मृतक की वापसी की प्रतीक्षा कर रहे थे क्योंकि वह ट्रैक्टर का एक हिस्सा खरीदने के लिए दिन में पहले गया था क्योंकि उसका ट्रैक्टर खराब हो गया था। अ०सा०-1/राज मणि मिश्रा ने अपने बयान में ट्रैक्टर के उस हिस्से का नाम स्पष्ट शब्दों में बताया है जिसे बदलने की आवश्यकता थी और इस प्रकार, यह स्थापित किया गया है कि आरोपी व्यक्तियों को यह भी पता था कि मृतक ट्रैक्टर का हिस्सा खरीदने के बाद अपने घर लौट आएगा और जिस तरह से मृतक को साइकिल से नीचे खींचा गया था और सभी आरोपियों द्वारा उस पर हमला किया गया था व्यक्तियों को पूर्व-संगठित तरीके से और इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मृतक के शरीर पर लगभग 21 चोटें आई हैं और मृतक की मृत्यु इन चोटों के संचयी प्रभाव के कारण हुई थी, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस गैरकानूनी सभा का उद्देश्य मृतक की हत्या करना था। तथ्य यह है कि आरोपी राम विशाल ने मृतक पर कुल्हाड़ी के कुंद पक्ष से हमला किया था, यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि इस सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु करना नहीं था। हमारी सुविचारित राय में, मृतक के शरीर पर महत्वपूर्ण भागों पर 21 चोट लगना, यह अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त है कि सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु का कारण बनना था और इस गैरकानूनी सभा के सभी सदस्य इस सामान्य उद्देश्य के ज्ञान में थे या वे जानते थे कि मृतक की हत्या किसी एक या ऐसी सभा के अधिक सदस्य बनने जा रहे हैं। जैसा कि विभिन्न मामलों में अवधारित किया गया है, एक आरोपी व्यक्ति की भागीदारी, जो इस तरह की गैरकानूनी सभा का सदस्य है, उसकी दोषसिद्धि के लिए एक पूर्व शर्त नहीं है। यह पर्याप्त है कि वह गैरकानूनी सभा के सामान्य उद्देश्य के ज्ञान में था या उसे पर्याप्त ज्ञान था कि यह अपराध ऐसी सभा द्वारा किए जाने की संभावना है और उसने उचित समय पर ऐसी सभा से खुद को वापस नहीं लिया है। आरोपी व्यक्तियों का एक साथ गड्ढे से बाहर निकलना और घटना के घटित होने के बाद एक साथ भागना स्पष्ट शब्दों में यह संकेत देगा कि उन्होंने मृतक की हत्या करने की योजना बनाई थी। इस प्रकार, यह तथ्य कि मृतक पर आरोपी

व्यक्तियों द्वारा लाठी से हमला करने के बाद, उसके बाद आरोपी राम विशाल ने मृतक को उसके सिर पर कुल्हाड़ी के कुंद हिस्से से हमला किया, यह मानने के लिए अपने आप में पर्याप्त नहीं होगा कि सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की मृत्यु का कारण बनना नहीं था या यह अनुमान लगाना था कि यह केवल राम विशाल ही था जो मृतक की मौत के लिए जिम्मेदार हो सकता था। एक बार जब सभी आरोपी व्यक्तियों ने एक 'गैरकानूनी सभा' का गठन किया था और उन्होंने एक ठोस और सुनियोजित तरीके से काम किया था और सामान्य उद्देश्य के अग्रसारण में और दोहराव की कीमत पर शरीर के महत्वपूर्ण अंगों पर लगभग 21 चोटें पहुंचाई थीं, तो हम दोहराते हैं कि इस गैरकानूनी सभा के ये सभी सदस्य सभा के सामान्य उद्देश्य के बारे में जानते थे, जो राम जस को पीट-पीटकर मार डालने के लिए हत्या का कारण बनना था।

39. यह भी याद किया जाना चाहिए कि जब मृतक की हत्या करने का इरादा होता है, तो यह हमेशा 'फस्ट डिग्री हत्या' का मामला होगा यानी धारा 302 भ०द०वि० के तहत दंडनीय होगा। इस प्रकार, हमें अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता के इस प्रस्तुतीकरण में कोई वजन नहीं मिलता है।

गवाह छोटेलाल का पेश न होना भी एक ऐसी परिस्थिति नहीं है जो अभियोजन पक्ष की कहानी में एक उचित संदेह पैदा करने के लिए पर्याप्त होगी। आज कोई भी व्यक्ति दूसरों के मामलों में खुद को शामिल नहीं करना चाहता है और अपने लिए कठिनाइयों को आमंत्रित नहीं करना चाहता है जब हमारे पास गवाहों की सुरक्षा के लिए कोई मजबूत प्रणाली नहीं है। इस प्रकार, अभियोजन पक्ष के मामले को उन गवाहों के साक्ष्य की मूल्यांकन पर देखा जाना चाहिए जिन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किया गया है।

40. संपूर्ण प्रकरण के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर विचार करने के पश्चात्, हमारा यह विचारित मत है कि विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों के विधिसम्मत मूल्यांकन के आधार पर एक सुविचारित एवं युक्तिसंगत निर्णय पारित किया है। अपीलार्थियों के अधिवक्ता द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय को विकृत अथवा साक्ष्यों के अनुचित मूल्यांकन पर आधारित सिद्ध करने हेतु किए गए सभी प्रयास निरर्थक सिद्ध होते हैं। हमारे विचार में, विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों ने अभियोजन पक्ष का मामला संदेह से परे स्थापित कर दिया है। घटना का जो स्थल था, उसे अभियोजन पक्ष के तीन प्रत्यक्षदर्शी साक्षियों ने निश्चित किया है तथा उन्होंने घटना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। यह तथ्य निर्विवाद एवं स्वीकृत है कि घटना से पूर्व ही दोनों पक्षों के मध्य शत्रुता विद्यमान थी, जिसे अभियुक्तगण द्वारा अस्वीकार नहीं किया गया है। आरोपी व्यक्तियों द्वारा गैरकानूनी सभा का गठन अच्छी तरह से स्थापित किया गया है और हालांकि गैरकानूनी सभा के सदस्य के लिए सक्रिय रूप से भाग लेना आवश्यक नहीं है, यह स्पष्ट है कि सभी आरोपी व्यक्तियों ने 'प्रहार' में भाग लिया था और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मृतक के व्यक्ति पर 21 चोटें पाई गई हैं, यह सुरक्षित रूप से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस गैरकानूनी सभा का सामान्य उद्देश्य मृतक की पीट-पीटकर हत्या करना था और इस प्रकार, हमें प्रस्तुत अपील में कोई बल नहीं मिलता है और इस प्रकार, अपीलकर्ताओं, अर्थात् राम सिंगार, राम विशाल और सूर्य भान द्वारा दायर की गई अपील, एतद्वारा **खारिज** की जाती है और आक्षेपित निर्णय और विचारण न्यायालय के दिनांक 05.03.2001 के आदेश की **पुष्टि** की जाती है।

41. अपीलकर्ता- **राम सिंगार, राम विशाल और सूर्य भान** जमानत पर हैं। वे आज से 30 दिनों के भीतर संबंधित निचली अदालत के समक्ष आत्मसमर्पण करेंगे और निचली अदालत द्वारा दी गई सजा काटेंगे।

42. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि अभियुक्त/अपीलकर्ता इससे पहले निर्धारित समय के भीतर विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं करते हैं, तो विचारण न्यायालय उनके खिलाफ बलपूर्वक प्रक्रिया जारी करेगा ताकि विचारण न्यायालय द्वारा लगाई गई सजा उनके द्वारा पूरी की जा सके।

43. विचारण न्यायालय के अभिलेखों के साथ इस आदेश की एक प्रति अनुपालन के लिए तुरंत विचारण न्यायालय को भेजी जाए।

(2025) 1 ILRA 644

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार

आपराधिक अपील संख्या 4027/2024

आशा

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: धीरेंद्र प्रताप सिंह

प्रतिवादियों के वकील: जी.ए.

A. आपराधिक कानून - प्रथम सूचना रिपोर्ट का अनिवार्य पंजीकरण - अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - धारा 4 - अधिनियम के अंतर्गत, लोक सेवक का यह कर्तव्य है कि वह सूचक को मौखिक और लिखित रूप में दी गई सूचना पढ़कर सुनाए और शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करे- अधिनियम की धारा 18ए(1) के अंतर्गत, किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए प्रारंभिक जाँच आवश्यक नहीं है- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995, नियम 5 - संबंधित पुलिस थाने और उसके अधिकारियों का यह वैधानिक कर्तव्य है कि वे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के तहत आदेश का पालन करें और प्राथमिकी दर्ज की जाए। (अनुच्छेद 5)

B. अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 - प्रथम सूचना रिपोर्ट का पंजीकरण - वर्तमान मामले में, संबंधित पुलिस अधिकारी द्वारा पुलिस स्टेशन में प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई थी। एफआईआर दर्ज न होने पर पीड़िता ने पुलिस अधीक्षक से गुहार लगाई। पुलिस अधीक्षक ने एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4 और एससी/एसटी नियमावली के नियम 5 के तहत दिए गए निर्देशों का भी पालन नहीं किया। इसके बाद, विद्वान विशेष न्यायालय ने पीड़िता की शिकायत खारिज कर दी।

निर्णय: विद्वान विशेष न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते समय, संबंधित पुलिस थाने को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देने के बजाय, स्वयं जाँच की, जो कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 18ए के अंतर्गत निषिद्ध है। आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है। (पैरा 11)

Allowed. (E-5)

(माननीय न्यायमूर्ति करुणेश सिंह पवार द्वारा)

1. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता तथा प्रतिवादी राज्य के विद्वान अपर महाधिवक्ता को सुना गया।
2. चुनौती के अंतर्गत आपराधिक विविध वाद संख्या 709/2024 में विद्वान विशेष न्यायाधीश एससी/एसटी अधिनियम रायबरेली द्वारा पारित दिनांक 18.11.2024 का आदेश है, जिसके तहत आवेदक का आवेदन धारा 173(4) बीएनएसएस (पूर्व में 156(3) सीआरपीसी) के तहत खारिज कर दिया गया है।
3. अपीलार्थी के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि यशवंत मौर्य ने आवेदक को शादी का झूठा झांसा देकर उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए और 4.8.2024 को जब उसने उससे शादी करने के लिए कहा तो उसने उसे जान से मारने की धमकी दी और जाति के आधार पर उसके साथ दुर्व्यवहार भी किया क्योंकि वह चमार जाति से संबंधित है। आवेदक ने थाना जगतपुर, जिला रायबरेली में एफआईआर दर्ज कराने हेतु प्रार्थना पत्र दिया, परन्तु पुलिस द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई। तत्पश्चात आवेदक द्वारा दिनांक 4.9.2024 को पुलिस अधीक्षक रायबरेली को पंजीकृत डाक द्वारा प्रार्थना पत्र दिया गया। फिर भी पुलिस अधीक्षक रायबरेली द्वारा कोई कार्रवाई नहीं की गई। इसके बाद आवेदक ने दिनांक 12.9.2024 को धारा 173(4) बीएनएसएस (पूर्व में 156(3) सीआरपीसी) के अंतर्गत आवेदन प्रस्तुत किया। जिस पर न्यायालय द्वारा संबंधित थाना जगतपुर से आख्या मांगी गई। दिनांक 2.10.2024 की रिपोर्ट विद्वान विशेष न्यायालय को प्राप्त हुई, तथापि विद्वान न्यायालय ने एफआईआर दर्ज करने का निर्देश देने के बजाय स्वयं जाँच की और शिकायत को खारिज कर दिया, जो अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 (जिसे आगे 'एससी/एसटी अधिनियम' कहा जाएगा) की धारा 4, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) नियम, 1995 (जिसे आगे 'एससी/एसटी नियम' कहा जाएगा) के नियम 5 का स्पष्ट उल्लंघन है और यह अनुसूचित

जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 18(ए)(1) के प्रावधानों के भी विरुद्ध है।

4. विद्वान ए.जी.ए. ने आपत्ति का विरोध किया है, तथापि, वे अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम के अंतर्गत लोक सेवक के वैधानिक/अनिवार्य कर्तव्यों पर विवाद नहीं कर सके।

5. अभिलेख का अवलोकन किया गया।

6. अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम की धारा 4 में ऐसे लोक सेवकों को दण्ड का प्रावधान है जो इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत अपने कर्तव्यों के निर्वहन में जानबूझकर लापरवाही बरतते हैं।

7. एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4 की उपधारा 2(ए) में आगे प्रावधान है कि सूचक से मौखिक सूचना प्राप्त होने पर उसे सूचक को पढ़कर सुनाया जाएगा और संबंधित लोक सेवक/पुलिस अधिकारी द्वारा उसे लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4 की उपधारा 2(बी) में प्रावधान है कि शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जाएगी। इसी तरह एससी/एसटी नियमों के नियम 5 के उपनियम (1) में यह भी प्रावधान है कि एससी/एसटी अधिनियम के तहत अपराध के होने से संबंधित प्रत्येक सूचना, जो मौखिक रूप से पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को दी जाती है, उसे उसके द्वारा या उसके निर्देश पर लिखित रूप में प्रस्तुत किया जाएगा और उसे सूचक को पढ़कर सुनाया जाएगा और ऐसी प्रत्येक सूचना पर शिकायत देने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर होंगे और उसका सार उस पुलिस थाने द्वारा रखी जाने वाली एक पुस्तक में दर्ज किया जाएगा। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति नियम के नियम 5 के उप-नियम (1) के तहत दर्ज की गई सूचना की एक प्रति सूचना देने वाले को तुरंत मुफ्त दी जाएगी। अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति नियम के नियम 5 के उप-नियम (3) में प्रावधान है कि किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी द्वारा उप-नियम (1) में निर्दिष्ट सूचना दर्ज करने से इनकार करने से व्यथित कोई भी व्यक्ति ऐसी सूचना का सार लिखित रूप में और डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकता है, जो स्वयं या पुलिस उपाधीक्षक के पद से नीचे के पुलिस अधिकारी द्वारा जांच के बाद संबंधित पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को लिखित में आदेश देगा कि वह उस सूचना का सार पुलिस थाने द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में दर्ज करे।

8. एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4 और एससी/एसटी नियमों के नियम 5 का सारांश नीचे दिया गया है:-

धारा 4. कर्तव्यों की उपेक्षा के लिए दंड?

"(1) जो कोई लोक सेवक होते हुए, किन्तु अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य न होते हुए, इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन अपने कर्तव्यों का जानबूझकर पालन करने की उपेक्षा

करेगा, वह कारावास से दण्डनीय होगा, जिसकी अवधि छह मास से कम नहीं होगी, किन्तु जो एक वर्ष तक की हो सकेगी। (2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट लोक सेवक के कर्तव्यों में निम्नलिखित शामिल होंगे: (क) पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा मौखिक रूप से दी गई और लिखित रूप में दी गई सूचना को सूचना देने वाले को मुखबिर के हस्ताक्षर लेने से पहले पढ़कर सुनाना; (ख) इस अधिनियम और अन्य सुसंगत उपबंधों के अधीन शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करना और उसे इस अधिनियम की समुचित धाराओं के अधीन पंजीकृत करना; (ग) इस प्रकार दर्ज की गई सूचना की एक प्रति सूचना देने वाले को तुरंत उपलब्ध कराना; (घ) पीड़ितों या गवाहों का बयान दर्ज करना; (ङ) साठ दिन की अवधि के भीतर जांच करना और विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय में आरोप पत्र दाखिल करना और यदि कोई विलंब हुआ हो तो उसका लिखित में स्पष्टीकरण देना; (च) किसी दस्तावेज या इलेक्ट्रॉनिक अभिलेख को सही ढंग से तैयार करना, तैयार करना और उसका अनुवाद करना; (छ) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों में विनिर्दिष्ट किसी अन्य कर्तव्य का पालन करना: परंतु इस संबंध में लोक सेवक के विरुद्ध आरोप प्रशासनिक जांच की सिफारिश पर दर्ज किए जाएंगे। (3) किसी लोक सेवक द्वारा उपधारा (2) में निर्दिष्ट कर्तव्य की उपेक्षा के संबंध में संज्ञान विशेष न्यायालय या अनन्य विशेष न्यायालय द्वारा लिया जाएगा तथा ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध दंडात्मक कार्यवाही के लिए निर्देश देगा।]

नियम 5. पुलिस थाने के प्रभारी पुलिस अधिकारी को सूचना?

"(1) अधिनियम के अधीन किसी अपराध के किए जाने से संबंधित प्रत्येक सूचना, यदि मौखिक रूप से पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को दी जाती है, तो उसे उसके द्वारा या उसके निर्देशानुसार लिखित रूप में दिया जाएगा और सूचना देने वाले को पढ़कर सुनाया जाएगा, तथा ऐसी प्रत्येक सूचना, चाहे वह लिखित रूप में दी गई हो या पूर्वोक्त रूप में लिखित रूप में दी गई हो, उसे देने वाले व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षरित की जाएगी, और उसका सार उस पुलिस थाने द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में दर्ज किया जाएगा।

(2) उप-नियम (1) के अधीन इस प्रकार अभिलिखित सूचना की एक प्रति सूचना देने वाले को तत्काल निःशुल्क दी जाएगी।

(3) उप-नियम (1) में निर्दिष्ट सूचना को अभिलिखित करने से पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा इंकार किए जाने से व्यथित कोई व्यक्ति ऐसी सूचना का सार लिखित रूप में या डाक द्वारा संबंधित पुलिस अधीक्षक को भेज सकेगा, जो स्वयं या पुलिस उपाधीक्षक के पद से अन्यून पुलिस अधिकारी द्वारा जांच के पश्चात संबंधित पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को लिखित आदेश देगा कि वह उस सूचना का सार उस पुलिस थाने द्वारा रखी जाने वाली पुस्तक में दर्ज कर ले।

9. प्रथम दृष्टया, एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4 और एससी/एसटी नियमों के नियम 5 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि एससी/एसटी अधिनियम के तहत आदेश का पालन करना संबंधित पुलिस स्टेशन और उसके अधिकारियों का वैधानिक कर्तव्य था और एफआईआर दर्ज की जानी चाहिए थी।

10. एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18ए के अनुसार, एफआईआर दर्ज करने के लिए किसी जांच या अनुमति की आवश्यकता नहीं है। एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18ए का प्रासंगिक अनुच्छेद नीचे दिया गया है:-

"18A. किसी पूछताछ या अनुमोदन की आवश्यकता नहीं है।

(1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए,?

(क) किसी व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने के लिए प्रारंभिक जांच की आवश्यकता नहीं होगी; या

(b) जांच अधिकारी को, यदि आवश्यक हो, किसी ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए अनुमोदन की आवश्यकता नहीं होगी, जिसके विरुद्ध इस अधिनियम के अधीन अपराध करने का आरोप लगाया गया है और इस अधिनियम या संहिता के अधीन उपबंधित प्रक्रिया के अलावा कोई अन्य प्रक्रिया लागू नहीं होगी।"

11. आक्षेपित आदेश के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान मजिस्ट्रेट ने आक्षेपित आदेश पारित करने से पहले तथ्यों की जाँच की है। इस प्रकार, वास्तव में, उन्होंने स्वयं जाँच की है, जो अधिनियम के अंतर्गत निषिद्ध है। इस मामले में, जगतपुर पुलिस स्टेशन में संबंधित पुलिस अधिकारी द्वारा प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की जानी चाहिए थी। चूँकि एफआईआर दर्ज नहीं की गई थी, इसलिए उन्होंने रायबरेली के पुलिस अधीक्षक से संपर्क किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने एससी/एसटी अधिनियम की धारा 4 और एससी/एसटी नियमावली के नियम 5 के तहत दिए गए निर्देशों का पालन नहीं किया। तत्पश्चात, विद्वान विशेष न्यायालय ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए, संबंधित पुलिस थाने को प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज करने का निर्देश देने के बजाय, स्वयं जाँच कर ली, जो एससी/एसटी अधिनियम की धारा 18-ए के तहत निषिद्ध है। अतः, उपरोक्त विवेचना के आलोक में, यह आक्षेपित आदेश मान्य नहीं है और अपास्त किए जाने योग्य है।

12. तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है। विद्वान विशेष न्यायाधीश, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम, रायबरेली द्वारा पारित दिनांक 18.11.2024 का आक्षेपित आदेश एतद्वारा निरस्त किया जाता है तथा प्रकरण को अधीनस्थ विद्वान न्यायालय को प्रत्यावर्तित किया जाता है ताकि आवेदक/पीड़ित द्वारा धारा 173(4) भारतीय राष्ट्रीय राइफल्स अधिनियम, 2006 के अन्तर्गत प्रस्तुत आवेदन पर निर्णय लिया जा सके तथा उपरोक्त विवेचना के आलोक में तथा अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति अधिनियम एवं अनुसूचित

जाति/अनुसूचित जनजाति नियमों के अनिवार्य प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत किए जाने की तिथि से एक माह के भीतर नया आदेश पारित किया जा सके।

(2025) 1 ILRA 647

अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 07.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सौमित्र दयाल सिंह

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी

आपराधिक अपील संख्या 4817 वर्ष 2019

एवं

आपराधिक अपील संख्या 4639 वर्ष 2019

अरुण कुमार यादव एवं अन्य

.... अपीलार्थी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

..... प्रत्यर्थी

अपीलार्थी के अधिवक्ता: श्री आनंद कुमार मिश्रा, श्री अश्विनी कुमार अवस्थी, श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी, श्री मनीष पांडे (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता: शासकीय अधिवक्ता, श्री राजीव कुमार सिंह

आपराधिक विधि - चिकित्सा विधि शास्त्र - हत्या - लाठी-डण्डे से मारने का आरोप - भा विच्छेदन आख्या - चिरा-फटा चोट (Lacerated injury) और कुचलाव/क्षति चोट (Contusion injury) - लाठी-डण्डा की चोट होने पर Contusion (कुचलाव) और Lacerated (चिरा-फटा) दोनों आ सकते हैं, जिसका समर्थन मृतक के भाव विच्छेदन आख्या में आयी चोटों के अवलोकर से परिलक्षित हो रहा है - यह भी विदित है कि केवल क्षति (Contusion) से हड्डी नहीं टूट सकती, जबकि इस मामले में मृतक की हड्डियां भी टूटी पायी गयी है। {पैरा 20 (घ)}

आपराधिक विधि - भारतीय दण्ड संहिता - धारा 34 एवं 302 - हत्या - आजीवन कारावास - मारपीट के बाद ट्रैक्टर से कुचलकर मृतक की हत्या करने का आरोप - हत्या का हेतुक (Motive) - मामले में घटना का

प्रत्यक्षदर्शी मौजूद - अन्तिम दृश्य का सिद्धान्त - प्रयोज्यता (Applicability) निर्धारित किया गया - हत्या से सम्बन्धित घटना को प्रत्यक्ष रूप से अभियोजन साक्षी द्वारा देखी गयी, इसलिए प्रश्नगत प्रकरण में अन्तिम दृश्य का सिद्धान्त लागू नहीं होता है, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से घटना देखने का सिद्धान्त लागू होता है - मृतक एवं अभियुक्तगण के मध्य रूप्यों के लेन-देन की रंजिश है, अभियुक्तगण द्वारा मृतक को पूर्व रंजिश के कारण मारने का हेतुक विद्यान था. {पैरा 20 (ज) एवं (झ)}

आपराधिक विचारण - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1972 - धारा 8 - अभियुक्त का फरार होना - अपराध में संलिप्तता के लिए कितना सुसंगत तथ्य - द0 प्र0 सं0 की धारा 83 की उद्घोषणा के बाद और धारा 174ए के अंतर्गत आरोप पत्र दाखिल होने के बाद अभियुक्त द्वारा आत्मसमर्पण किया गया - सुसंगति (Relevancy) - निर्धारित किया गया - घटना के पश्चात् सभी अभियुक्तों का घर से फरार होना उनकी अपराध में संलिप्तता को साबित करने के उद्देश्य से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत एवं सुसंगत तथ्य है - अनन्तचिंतामन मामले पर भरोसा किया गया {पैरा 20 (ठ) }

आपराधिक अपील निरस्त (E-1)

उल्लेखित पूर्व - निर्णयों की सूची:-

1. रो।न बनाम तमिलनाडु राज्य; एआईआर 1976 सुप्रीम कोर्ट 2027
2. महाराष्ट्र राज्य बनाम कालू शिवराम; एआईआर 1980 सुप्रीम कोर्ट 879
3. नन्दू रस्तोगी बनाम बिहार राज्य; एआईआर 2002 सुप्रीम कोर्ट 3443
4. देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य; एआईआर 1971 सुप्रीम कोर्ट 1444
5. अनन्तचिंतामन बनाम बाम्बे राज्य; एआईआर 1960 सुप्रीम कोर्ट 500
6. सैफुद्दीन बनाम पश्चिम बंगाल; क्रिमिनल ला जनरल एन0ओ0सी0 140 कोलकाता

(माननीय न्यायमूर्ति डॉ. गौतम चौधरी द्वारा पारित)

१. दाण्डिक अपील सं० 4817/2019 अपीलार्थीगण अरूण कुमार यादव, उमेश कुमार, रुचित सिंह तथा दाण्डिक अपील सं० 4639/2019 अपीलार्थी अरविन्द कुमार की ओर से, मु०अ०सं० 376/2016, अन्तर्गत धारा- 302/34 भा०दं०वि०, थाना दिबियापुर, जनपद औरैया से उद्भूत सत्र परीक्षण सं० 07/2017 एवं सत्र परीक्षण सं०-76/2017 में सत्र न्यायाधीश, औरैया द्वारा पारित निर्णय/आदेश दिनांक 22.06.2019, जिसके द्वारा अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण को धारा- 302 भा०दं०वि० सपठित धारा 34 भा०दं०वि० के अंतर्गत आजीवन कारावास व अंकन 1,00,000/- रुपये (प्रत्येक) अर्थदण्ड से दण्डित किया गया, के विरुद्ध योजित किया गया है।

२. उपरोक्त दोनों दाण्डिक अपीलें एक ही घटना से संबंधित हैं तथा एक ही सत्र परीक्षण में सत्र न्यायाधीश, औरैया द्वारा पारित निर्णय के विरुद्ध योजित की गयी है। इसलिए दोनों दाण्डिक अपीलों को एकीकृत करते हुए दोनों अपीलों का निस्तारण एक ही निर्णय से किया जा रहा है।

३. वाद के तथ्य संक्षेप में इस प्रकार हैं कि अभियोगी मनोज कुमार पुत्र सुखवीर सिंह निवासी केविन की मढ़ैया, हाल निवासी नहर बाजार, दिबियापुर औरैया द्वारा थानाध्यक्ष दिबियापुर को लिखित तहरीर प्रदर्श क-1 प्रस्तुत की गयी, जिसमें उल्लेख है कि दिनांक 07/08/09/2016 की रात उसकी माताजी, वह तथा उसके चाचा अनिल कुमार तथा उसका भाई प्रशान्त उर्फ शेर सिंह उम्र करीब 19 वर्ष घर पर लेटे थे कि रात समय करीब दो बजे रुचित सिंह पुत्र सुनील सिंह निवासी बादशाह छाँक थाना सहायल अपने अन्य साथी अरविन्द कुमार पुत्र भारत सिंह, जो उसी के गांव बादशाहपुर छाँक का निवासी है तथा अरुण कुमार यादव व उसका भाई उमेश कुमार पुत्रगण रामकेश यादव निवासी अजमतपुर थाना दिबियापुर घर पर आये। रुचित ने उसके भाई प्रशान्त को आवाज देकर बुलाया और कहा कि कुछ जरूरी काम है। उसने पूछा कि क्या काम है, नहीं बताया और उसका भाई प्रशान्त बाहर गया, तो उसको मोटरसाइकिल पर बैठाकर लेकर चले गये। ले जाते समय उसके अलावा अनिल कुमार, उसकी मां ने देखा है। उक्त लोगों ने उसके भाई प्रशान्त को श्री साईं सीमेण्ट एजेंसी के गेट पर मारपीट कर समय करीब चार बजे सुबह हत्या कर दी। इस वाक्या को उसके भाई राजेश कुमार व चाचा यशपाल ने देखा है तथा बाद में चारपाई पर रखकर ट्रैक्टर चढ़ा दिया। चारों उपरोक्त लोग दबंग किस्म के हैं। उनके डर के कारण उसका भाई राजेश व यशपाल सिंह भाई को नहीं बचा सके। चारों मुल्जिमान से रुपया का लेन-देन व पुरानी रंजिश है।

४. अभियोगी के उपरोक्त लिखित तहरीर के आधार पर मुकदमा अपराध संख्या- 376/2016, धारा- 302/34 भा०दं०सं० के अन्तर्गत पंजीकृत हुआ, जिसकी चिक प्रथम सूचना रिपोर्ट प्रदर्श क-11 है तथा कायमी मुदकमा की जी०डी० दस्तावेज संख्या-16क है।

५- दिनांक 08.09.2016 को मृतक प्रशान्त कुमार के मृत शरीर का पंचायतनामा तैयार किया गया, पंचनामा रिपोर्ट पत्रावली पर प्रदर्श क-6 है। पंचायतनामा तैयार करने के पश्चात मृतक के मृत शरीर को पोस्टमार्टम के लिए भेजा गया, जिससे संबंधित दस्तवेज प्रदर्श क-7 लगायत प्रदर्श क -10 हैं।

६- दिनांक 08.09.2016 को समय 02:50 PM पर मृतक का पोस्टमार्टम प्रारम्भ किया गया जो इसी तिथि को 03:20 PM पर सम्पादित किया गया तथा पोस्टमार्टम रिपोर्ट तैयार की गयी, जो पत्रावली पर प्रदर्श क-12 है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार मृतक के शरीर पर मृत्यु पूर्व निम्न चोटें मौजूद थी:-

मृतक की बांयी आँख शरीर से अलग थी। मृतक के बांये कान से खून निकल रहा था।

चोट संख्या 1- सिर से ब्रेन अलग हुआ था, चोट के कारण।

चोट संख्या 2- नीलगू निशान, जिसका आकार 3 सेमी० x 6 सेमी० छाती की बांयी तरफ पीछे। छठी एवं आठवीं पसली टूटी पाई गयी थी।

चोट संख्या 3- नीलगू निशान, जिसका आकार 3 सेमी० x 2 सेमी० जो दाहिने छाती के पीछे था, जिसकी चार एवं पांच नम्बर की पसलियां टूटी पाई गई थी।

चोट संख्या 4- एक नीलगू निशान 2.5 सेमी० x 2 सेमी० कंधे के पीछे नीचे की ओर हड्डी टूटी हुई थी।

चोट संख्या 5- कई प्रकार की खरोंच, जिनके आकार 10 सेमी० x 4 सेमी० दाहिनी रीढ़ की हड्डी की तरफ थी।

चोट संख्या 6- एक नीलगू निशान, जिसका आकार 2 सेमी० x 1 सेमी० बांयी टांग के ऊपर।

चोट संख्या 7- एक नीलगू निशान, जिसका आकार 6 सेमी० x 4 सेमी० जो दाहिनी टांग में थी।

चोट संख्या 8- खरोंचदार नीलगू निशान, जिसका आकार 4 सेमी० x 3 सेमी० जो बांये कंधे पर थी, इसकी हड्डी टूटी हुई पाई गई थी।

मृतक के शव का शव-विच्छेदन करने वाले चिकित्सक की राय के अनुसार मृतक की मृत्यु, मृत्यु पूर्व आई उपरोक्त चोटों से रक्तस्राव एवं सदमा से हुई है। मृत्यु का समय लगभग 1/2 दिन था। चार पहिए के वाहन चढ़ाने से उपरोक्त चोटें आना सम्भव है। इस साक्षी द्वारा शव विच्छेदन रिपोर्ट प्रदर्श क-12 को साबित किया गया है। मृतक की मृत्यु दिनांक 07/08 की रात्रि में सुबह 04:00 बजे उसके शरीर में आई चोटों के कारण हुई है।

७- विवेचनाधिकारी द्वारा दिनांक 08.09.2016 को तथाकथित घटनास्थल श्री साई सीमेण्ट एजेन्सी के गेट के पास फर्श से खूनालूदा एवं सादा मिट्टी ली गयी, जिसकी फर्द प्रदर्श क-2 है। घटनास्थल से मृतक के पास से रक्त रंजित कपड़े व एक जोड़ी सैण्डल बरामद किये गये, जिसकी फर्द प्रदर्श क-3 है, घटनास्थल से एक अदद मोबाइल सैमसंग बरामद किया गया, जिसकी फर्द प्रदर्श क-4 है तथा इसी तिथि को विवेचक द्वारा दो बण्डल मिट्टी खूनालूदा एवं सादा मृतक के शव के पास से कब्जे में ली गयी, जिसकी फर्द प्रदर्श क-5 है। घटनास्थल से बरामद खूनालूदा एवं सादा मिट्टी, फर्श के टुकड़े खूनालूदा एवं सादा एवं मृतक के कपड़े आदि को विधि विज्ञान प्रयोगशाला प्रेषित किया गया। विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट प्रदर्श क-18 है।

८- विवेचनाधिकारी द्वारा दिनांक 09.09.2016 को घटनास्थल का नक्शा-नजरी तैयार किया गया, जो प्रदर्श क 13 है। दिनांक 18.10.2016 को अभियुक्त अरुण कुमार को गिरफ्तार किया गया और उसकी निशानदेही पर एक अदद आलाकत्ल डण्डा, जो वस्तु प्रदर्श क-1 है, ट्रैक्टर की सीट में घुसा हुआ बरामद किया गया, फर्द

बरामदगी प्रदर्श क-14 है तथा इसी तिथि को ट्रैक्टर पावर ट्रेक बिना नम्बर, जिससे मृतक को कुचला गया बरामद किया गया, फर्द बरामदगी प्रदर्श क-15 है।

९- विवेचना के पश्चात विवेचनाधिकारी द्वारा अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत किये गये, जिन पर मजिस्ट्रेट के न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया। अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण को पुलिस दस्तावेजों की प्रतियाँ प्रदान करते हुए प्रकरण सत्र न्यायालय को सुपुर्द किया गया।

१०- प्रश्नगत प्रकरण में पुलिस थाना दिबियापुर द्वारा उक्त प्रेषित अलग-अलग आरोप पत्रों पर अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण का विचारण धारा 302/34 भा०दं०सं० के अन्तर्गत किया गया है।

११- अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 34 के अन्तर्गत आरोप विरचित किया गया, जो बहस के स्तर पर दुरुस्त किया गया। अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण ने आरोप से इन्कार करते हुए परीक्षण की मांग की है।

१२- सत्र परीक्षण के दौरान अभियोजन की ओर से अभियोजन साक्षी सं०-1 मनोज कुमार, अभियोजन साक्षी सं०-2 अनिल कुमार, अभियोजन साक्षी सं०-3 राजेश कुमार, अभियोजन साक्षी सं०-4 यशपाल, अभियोजन साक्षी सं०-5 उपनिरीक्षक पप्पू सिंह, अभियोजन साक्षी सं०-6 कां० जितेन्द्र सिंह, अभियोजन साक्षी सं०-7 डॉ० चन्द्रशेखर, अभियोजन साक्षी सं०-8 निरीक्षक आदित्य प्रकाश, अभियोजन साक्षी सं०-9 उपनिरीक्षक विनोद कुमार मिश्रा एवं अभियोजन साक्षी सं०-10 निरीक्षक जितेन्द्र कुमार का परीक्षण किया गया।

१३- अभियोजन साक्षी सं०-1 मनोज कुमार, अभियोजन साक्षी सं०-2 अनिल कुमार, अभियोजन साक्षी सं०-3 राजेश कुमार, अभियोजन साक्षी सं०-4 यशपाल तथ्य के साक्षी है, जिनका परीक्षण विचारण न्यायालय के समक्ष किया गया तथा इनसे बचाव पक्ष की ओर से जिरह भी की गयी।

१४- अभियोजन साक्षी सं०-5 उपनिरीक्षक पप्पू सिंह, अभियोजन साक्षी सं०-6 कां० जितेन्द्र सिंह, अभियोजन साक्षी सं०-7 डॉ० चन्द्रशेखर, अभियोजन साक्षी सं०-8 निरीक्षक आदित्य प्रकाश, अभियोजन साक्षी सं०-9 उपनिरीक्षक विनोद कुमार मिश्रा एवं अभियोजन साक्षी सं०-10 निरीक्षक जितेन्द्र औपचारिक साक्षी है, जिन्होंने अपने-अपने द्वारा की गयी कार्यवाही के संबंध में बयान दिया है तथा आवश्यक फर्द प्रदर्श आदि को साबित किया है।

१५- अभियोजन साक्ष्य संपन्न होने के उपरांत अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण का बयान अतंगत धारा 313 दं०प्र०सं० अंकित किया गया, जिसमें उन्होंने अभियोजन साक्षीगण द्वारा गलत बयान दिये गये हैं, कुछ साक्ष्य की जानकारी होने से इंकार किया गया है। मृतक को लाठी-डंडों से मारना तथा फोल्डिंग चारपाई पर लेटाकर टैक्टर से कुचलने की बात से इंकार तथा झूठा फंसाने की बात कही है।

१६- अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विद्वान अधिवक्ता श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी एवं विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना एवं पत्रावली का परिशीलन किया।

१७- अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि:-

क- प्रथम सूचनाकर्ता अर्थात् अभियोजन साक्षी सं०-1 मनोज कुमार ने कहा है कि वह "सीविन की मड़ैया" का निवासी है तथा वर्तमान में "नहर बाजार दिबियापुर" में रहता है, उसके इस बयान से स्पष्ट होता है कि मनोज कुमार की उस समय उपस्थिति अत्यधिक संदिग्ध है, उसने अपने बयान में यह भी बताया है कि घटनास्थल उसके घर से 1.5 किमी दूर है। चूँकि पीडब्लू 1 मनोज कुमार तथा पीडब्लू 2 अनिल कुमार मृतक की हत्या के गवाह नहीं हैं, इसलिए उन्होंने मृतक को 7/8.09.2016 की रात्रि में लगभग 02:00 बजे अभियुक्त के साथ जाते नहीं देखा था। उसे मृतक की हत्या के बारे में उसके भाई राजेश कुमार के माध्यम से सुबह लगभग 04:15 बजे पता चला, जिसने घटना को 08.09.2016 को सुबह 04:00 बजे का बताया है, इसलिए पीडब्लू 1 मनोज कुमार तथा पीडब्लू 2 अनिल कुमार को अंतिम बार देखे जाने का गवाह नहीं कहा जा सकता।

ख- वर्तमान मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट पूर्व निर्धारित दस्तावेज प्रतीत होती है, क्योंकि प्रथम सूचक मनोज कुमार को घटना अर्थात् मृतक की हत्या के बारे में लगभग 04:15 बजे पता चला और प्रथम सूचना रिपोर्ट 08.09.2016 को 08:30 बजे दर्ज की गई। इस संबंध में यह कहा गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट जितेंद्र सिंह द्वारा लिखी गई थी जो प्रथम सूचनाकर्ता के गांव से 10 किमी की दूरी पर रहता है। इसके बाद वह प्रथम सूचनाकर्ता के गांव में आया, प्रथम सूचना रिपोर्ट लिखी और फिर लगभग 06:15 बजे पुलिस स्टेशन के लिए रवाना हुआ, इसलिए अभियोजन पक्ष द्वारा आरोपित समय तक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज नहीं की जा सकती थी। वास्तव में प्रथम सूचना रिपोर्ट कथित समय के बहुत बाद में अस्तित्व में आई है और अपीलकर्ताओं को झूठा फंसाने के लिए इसे पूर्वनिर्धारित किया गया है। जितेंद्र सिंह घटना के बारे में सुनने के बाद आया था।

ग- प्रथम सूचना रिपोर्ट में यह उल्लेख नहीं है कि 4 आरोपी व्यक्ति 2 मोटरसाइकिल पर प्रथम सूचनाकर्ता मनोज कुमार के घर आए थे और मृतक, उनके साथ मोटरसाइकिल पर गया था, लेकिन परीक्षण के दौरान यह कहा गया है कि 2 मोटरसाइकिलों पर आरोपी आए थे।

घ- अभियोजन साक्षी सं०- 3 राजेश कुमार और अभियोजन साक्षी सं०-4 यशपाल के बयान एक दूसरे के विरोधाभासी हैं, इसलिए उनकी गवाही पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अभियोजन साक्षी सं०- 2 अनिल कुमार और अभियोजन साक्षी सं०- 3 राजेश कुमार के धारा 161 दं०प्र०सं० के तहत दिये गये बयान एवं परीक्षण के दौरान दिये गये बयान परस्पर विरोधाभासी हैं।

च- प्रथम सूचना रिपोर्ट में लाठी- डण्डे का कोई उल्लेख नहीं है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट कई मामलों में अभियोजन पक्ष की कहानी को पूरी तरह से झुठलाती है, ऐसा लगता है कि मृतक की मृत्यु दुर्घटना में हुई थी और प्रथम सूचनाकर्ता और अन्य गवाहों को सुबह घटना के बारे में पता चला, फिर जितेंद्र सिंह को उसके गांव से बुलाया गया, फिर आवेदक को झूठा फंसाने के लिए पूरा अभियोजन मामला गढ़ा गया है। वास्तव में आरोपी अरुण से डण्डा की कोई बरामदगी नहीं हुई है, इसलिए बरामदगी पूरी तरह से झूठी है।

छ- अभियोजन साक्षी सं०- 1 मनोज कुमार और अभियोजन साक्षी सं०- 3 राजेश कुमार मृतक के सगे भाई हैं और अभियोजन साक्षी सं०- 3 अनिल कुमार और अभियोजन साक्षी सं०- 4 यशपाल मृतक के चाचा हैं, इस इस प्रकार यह सभी अभियोजन साक्षी हितबद्ध साक्षी हैं तथा घटना का कोई स्वतंत्र जन साक्षी नहीं है तथा घटनास्थल पर किसी प्रकाश स्रोत का उल्लेख न तो अभियोजन साक्षी द्वारा किया गया और न ही विवेचक द्वारा इसके संबंध में उल्लेख किया गया है।

ज- अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विद्वान अधिवक्ता का यह भी कथन है कि अभियोजन साक्ष्य यह है कि अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण, मृतक को मोटरसाइकिल से ले गये, उसके साथ मारपीट की फिर उसे चारपाई पर रखकर उसके ऊपर ट्रैक्टर चढ़ा दिया, यह कथन स्वयं में हास्यास्पद है एवं अविश्वसनीय प्रतीत हो रहा है कि कोई भी अभियुक्त किसी व्यक्ति को कहीं ले जाकर मार तो सकते हैं तथा मारकर भाग सकते हैं, किंतु किसी व्यक्ति को मारने के पश्चात उठाकर उसे चारपाई पर लेटाने के उपरांत उसके ऊपर ट्रैक्टर चढ़ाना अपने आप में विचारणीय तथ्य है।

झ- विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय/आदेश अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य विपरीत पारित किया गया है तथा अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण को दोषी ठहराते समय पूरे साक्ष्य पर सही परिप्रेक्ष्य में विचार और मूल्यांकन नहीं किया एवं अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण को उपरोक्तानुसार दोषी ठहराते हुए कठोर कारावास एवं अर्थदण्ड से दण्डित कर दिया गया। इसलिए प्रश्नगत आदेश/निर्णय खण्डित किये जाने योग्य है।

१८- विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विद्वान अधिवक्ता के तर्कों का प्रबल विरोध करते हुए तर्क प्रस्तुत किया कि अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन असत्य

है कि विवेचक द्वारा घटनास्थल पर रोशनी के किसी स्रोत का उल्लेख नहीं किया गया, किंतु अभियोजन साक्षियों के बयान में यह तथ्य आया है कि घटना रात्रि की है तथा उस समय ट्रैक्टर की रोशनी थी, मृतक पर अभियुक्तगण द्वारा ट्रैक्टर चढ़ाया गया। इस प्रकार अभियोजन साक्षीगण द्वारा अभियुक्तों को ट्रैक्टर की रोशनी में पहचान की गयी तथा मृतक एवं अभियुक्तगण के मध्य रूपयों के लेन-देन की पुरानी रंजिश चली आ रही थी तथा इसी रंजिश को लेकर अभियुक्तगण द्वारा मृतक को मारने का पर्याप्त हेतुक विद्यमान था। इसकी परिपुष्टि तथ्य के साक्षीगण के बयानों से भी हो रही है। अभियोजन साक्षीगण ने घटना को संदेह से परे साबित किया है। इस आधार पर यह दाण्डिक अपील निरस्त किये जाने योग्य है तथा विचारण न्यायालय द्वारा पारित प्रश्नगत आदेश/निर्णय, दिनांकित 22.06.2019 पुष्ट किये जाने योग्य है।

१९- विचारण न्यायालय ने उभय पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सुना, पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य का परिशीलन किया तथा उपलब्ध साक्ष्य पर गहनतापूर्व विचार करने के उपरांत यह अभिमत व्यक्त किया कि:-

क- विचारण न्यायालय ने अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण को धारा 302/34 भा०दं०वि० के अंतर्गत दोषी पाने हेतु यह अभिमत व्यक्त किया है कि अभियोजन साक्षी सं० 1. मनोज कुमार ने यह बयान दिया है कि दि० 7/8.09.2016 की रात्रि दो बजे वह तथा उसका भाई प्रशांत उर्फ शेर सिंह व उसकी माता सुमन देवी व चाचा अनिल कुमार घर पर लेटे हुए थे तो उस समय अपीलार्थी/अभियुक्त रुचित सिंह अपने साथ अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण अरविंद कुमार, अरुण कुमार व उमेश कुमार के साथ उसके घर पर मोटर साइकिल से आये, उसके भाई प्रशांत कुमार को जरूरी कार्य हेतु बुलाया, प्रशांत कुमार को मोटर साइकिल पर बैठाकर साई सीमेंट एजेंसी के पास बेला रोड ले गये उसके साथ मारपीट की तथा प्रशांत को चारपाई पर लेटाकर ट्रैक्टर चढ़ा दिया। इन सभी साक्षीगण ने इस घटना को अपनी आंखों से देखा है। वादी के इस कथन का समर्थन अन्य अभियोजन साक्षीगण ने भी किया है।

ख- अभियोजन केस की कहानी दो भागों में विभाजित है। अभियोजन कहानी का प्रथम भाग यह है कि दिनांक 07/08.09.2016 की रात 02:00 बजे रुचित सिंह अपने साथ अरविन्द कुमार, अरुण कुमार व उमेश कुमार के साथ दो मोटरसाइकिल से आये और प्रशान्त को घर से बुलाकर अपने साथ ले गये। अभियोजन साक्षी सं०- 1 मनोज कुमार ने मुख्य परीक्षा में उपरोक्त वर्णित तथ्यों की पुष्टि में बयान दिया है और यह कथन किया है कि सभी अभियुक्तों को वह पहले से जानते-पहचानते थे, क्योंकि ये लोग मृतक प्रशान्त के साथ सड़क पर मिट्टी डालने का काम साथ-साथ करते थे। मृतक इन चारों व्यक्तियों के साथ साझेदार था।

ग- अभियोजन साक्षी सं० 1 एवं 2 के अनुसार चार अपीलार्थीगण/ अभियुक्तगण मोटरसाइकिल पर मृतक प्रशान्त को घर से लेकर चले गये और इसके बाद उसकी हत्या की सूचना प्राप्त हुई, परन्तु हत्या से संबंधित घटना

प्रत्यक्ष रूप से अभियोजन साक्षी सं०- ३ राजेश कुमार द्वारा देखी गयी, इसलिए प्रश्नगत प्रकरण में अन्तिम दृश्य का सिद्धान्त लागू नहीं होता, अपितु प्रत्यक्ष रूप से घटना देखने का सिद्धान्त लागू होता है, इसलिए पी०डब्लू० 1 एवं पी०डब्लू० 2 द्वारा मृतक को अन्तिम रूप से चार अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण के साथ देखने और इसके पश्चात उसकी लाश मिलने के आधार पर परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर विचार किया जाना विधि सम्मत नहीं है, क्योंकि घटना को घटित होते हुए स्वयं राजेश कुमार अभियोजन साक्षी सं०- ३ ने देखा है। इस साक्षी का बयान घटना घटित होने के संबंध में वर्णित किया गया है। इस साक्षी के बयान के अनुसार दिनांक 07/08.09.2016 की सुबह 04:00 बजे साई सीमेण्ट एजेन्सी, दिबियापुर के पास सड़क पर ट्रैक्टर से मिट्टी डाली जा रही थी, उसी समय वहाँ पर यशपाल और प्रशान्त भी मौजूद थे तथा अपीलार्थीगण/अभियुक्तगण भी मौके पर मौजूद थे। इस साक्षी ने बयान दिया है कि अभियुक्तगण प्रशान्त उर्फ शेर सिंह की लाठी-डण्डों से मारपीट कर रहे थे। इन चारों लोगों ने मारपीट के बाद मृतक के ऊपर ट्रैक्टर चढ़ा दिया। ट्रैक्टर चढ़ाने के कारण घटनास्थल पर ही उसकी मृत्यु हो गयी।

घ- आपराधिक न्यायशास्त्र का यह सिद्धान्त है कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत की गयी साक्ष्य संदेह से परे स्थापित होनी चाहिए, परन्तु यह सिद्धान्त इस प्रकृति का नहीं है कि अभियोजन द्वारा प्रस्तुत की गयी साक्ष्य हर दृष्टि से पूर्णता होनी चाहिए। प्रस्तुत प्रकरण में घटना के दोनों प्रत्यक्षदर्शी साक्षीगण जो मिट्टी डालने के कार्य में संलग्न थे, ने मारपीट के पश्चात अरुण द्वारा मृतक पर ट्रैक्टर चढ़ाने का कथन किया है। चारपाई पर डालने के बिन्दु पर साक्षियों का बयान विरोधाभासी है, परन्तु दोनों साक्षियों ने ट्रैक्टर चढ़ाने का कथन किया है। ट्रैक्टर चढ़ाने के तरीके में जो अन्तर मौजूद है, वह न्यायालय के परिवेश में बयान देते समय किसी ग्रामीण व्यक्ति द्वारा शब्दों का सही क्रम वर्णित न किये जाने के कारण सामने आ सकता है।

च- साक्षी ग्रामीण परिवेश का रहने वाला है। चूँकि चारों व्यक्तियों ने मृतक के साथ इस साक्षी के समक्ष मारपीट की थी, इसलिए चारों व्यक्तियों द्वारा ही ट्रैक्टर चढ़ाने का कथन किया गया और न्यायालय द्वारा पूछने पर स्पष्ट रूप से बताया गया कि ट्रैक्टर अरुण चला रहा था, परन्तु चूँकि सभी अभियुक्त मारपीट में संलग्न थे, इसलिए इस साक्षी द्वारा सभी के द्वारा ट्रैक्टर चढ़ाने का कथन किया गया है, चाहे ट्रैक्टर एक ही व्यक्ति चला रहा हो। अतः सभी व्यक्तियों द्वारा ट्रैक्टर चढ़ाने का बयान देने के कारण इस साक्षी का बयान असत्य नहीं माना जा सकता, क्योंकि विधि का यह सुस्थापित सिद्धान्त है कि एक बात में मिथ्या, तब सब बात में मिथ्या का सिद्धान्त भारतीय न्यायिक व्यवस्था में लागू नहीं होता, फिर यह भी कि इस साक्षी द्वारा जो शब्द प्रयुक्त किये गये हैं, उनमें केवल शब्दावली का अन्तर है, परन्तु तत्व एवं सार यही है कि सभी अभियुक्तों ने अपने सामान्य आशय के अग्रसरण में मृतक के प्रति आपराधिक कृत्य किया और ट्रैक्टर चढ़ाने के समय सभी अभियुक्त मौके पर मौजूद थे, इसलिए इस साक्षी ने सभी के द्वारा ट्रैक्टर चढ़ाने का कथन किया है।

छ- अभियोजन साक्षी सं०-3 ने शेष अभियुक्तों के संबंध में यह बयान दिया है कि सभी अभियुक्तों ने लाठी-डण्डों से मृतक के साथ मारपीट की, परन्तु लाठी-डण्डों से मारपीट करने का कोई उल्लेख प्रथम सूचना रिपोर्ट में नहीं है, परन्तु मारपीट करने का उल्लेख अवश्य मौजूद है। विद्वान डी०जी०सी० का तर्क है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट बृहद ग्रन्थ नहीं है, इस रिपोर्ट का उद्देश्य आपराधिक मशीनरी को गति प्रदान करना होता है और इसमें समस्त तथ्यों का विवरण आना आवश्यक नहीं है। विद्वान डी०जी०सी० का तर्क विधि से समर्थित है। इस प्रकार सभी अभियुक्तों ने प्रशान्त पर आक्रमण किया। अतः सभी अभियुक्त अपने सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में कार्य कर रहे थे। सामान्य आशय के उद्देश्य पर विचार करते समय भारतीय दण्ड संहिता की धारा 33 में दी गयी व्यवस्था को भी विचार में लिया जाना आवश्यक है। धारा 33 में यह उल्लेख है कि "कार्य" शब्द कार्यावली का द्योतक उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक कार्य का "लोप" शब्द लोपावली का द्योतक उसी प्रकार है, जिस प्रकार एक लोप का। नजीर रोशन बनाम तमिलनाडू राज्य AIR 1976 सुप्रीम कोर्ट 2027 में व्यवस्था दी गयी है कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 को हमेशा धारा 33 के साथ पढ़ा जाना चाहिए, जिसमें बोले गये शब्द भी सामान्य आशय को इंगित करते हैं और जहाँ कोई कार्य अनेक व्यक्तियों द्वारा सम्पादित किया जाता है, तब उनका आपराधिक कृत्य अलग-अलग हो सकता है, लेकिन सबका रास्ता एक होता है और जहाँ पर शारीरिक हिंसा का तत्व मौजूद रहता है, तब मौके पर साक्षी की उपस्थिति साबित किया जाना आवश्यक है। धारा 34 भा०दं०सं० के अन्तर्गत सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में वे व्यक्ति भी शामिल हैं, जो उकसाते हैं या सहायता करते हैं। उपरोक्त नजीर में दी गयी व्यवस्था के अनुसार मौके पर मौजूद रहकर उकसाने एवं सहायता करने वाले सभी व्यक्ति धारा 34 भा०दं० सं० के अन्तर्गत परिभाषित अपराध की श्रेणी में आते हैं। नजीर महाराष्ट्र राज्य बनाम कालू शिवराम AIR 1980 सुप्रीम कोर्ट 879 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा व्यवस्था दी गयी है कि अपने सामान्य आशय के अग्रसरण में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकृति के कार्य सम्पादित किये जा सकत, जिनका परिणाम अपराध का घटित होना है, तब धारा 34 भा०दं०सं० यह व्यवस्था करती है कि प्रत्येक व्यक्ति उस अपराध के लिए उसी प्रकार दोषी है, जैसे कि यह कार्य अकेले उसी के द्वारा किया गया हो। नजीर नन्दू रस्तोगी बनाम बिहार राज्य AIR 2002 सुप्रीम कोर्ट 3443 के अनुसार धारा 34 भा०दं०सं० के लागू होने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति ने मृतक पर प्रहार किया हो। अभियोजन के लिए केवल यह साबित करना पर्याप्त है कि जिस अभियुक्त द्वारा जो कार्य बताया गया है, वह कार्य अभियुक्त के द्वारा किया गया है। नजीर देवीलाल बनाम राजस्थान राज्य AIR 1971 सुप्रीम कोर्ट 1444 में व्यवस्था दी गयी है कि धारा 34 भा०दं०सं० के प्रावधान लागू करने के लिए आवश्यक है कि सभी अभियुक्तों का घटना से पूर्व घटना घटित करने का विचार-विमर्श करते हुए कोई प्लान हो। प्रस्तुत केस में अभियुक्त अरुण द्वारा ट्रैक्टर चढ़ाने के बावजूद शेष अभियुक्त भी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 34 के अन्तर्गत प्रशान्त की हत्या करने के लिए मारपीट कर रहे थे।

ज- मृतक के शव परीक्षण आख्या के अनुसार मृतक प्रशान्त के शरीर पर 8 चोटें मौजूद थीं। अभियोजन साक्षी सं०- 7 डॉ० चन्द्रशेखर के बयान के अनुसार चोट संख्या 1 में (Brain), यानी कि दिमाग सिर से अलग हो चुका था। मृतक के शरीर पर अनेक नीलगू निशान तथा खरोंच के निशान मौजूद थे। डॉक्टर द्वारा बयान दिया गया है कि वाहन चढ़ाने के कारण ये चोटें आना सम्भव है। यद्यपि डॉक्टर द्वारा लाठी-डण्डे के प्रयोग से इनमें से कुछ चोटों की उपस्थिति के संबंध में कोई कथन नहीं किया गया है। यथार्थ में इस बिन्दु पर अभियोजन की ओर से कोई प्रश्न ही नहीं पूछा गया, परन्तु मृतक के शरीर पर मौजूद 8 चोटें, जिनमें से सिर से दिमाग अलग होने के अलावा शेष चोट नीलगू निशान और खरोंच के निशान हैं। अतः इस प्रकृति की चोट मृतक के ऊपर ट्रैक्टर चढ़ाने एवं लाठी-डण्डों से मारपीट करने से, यानी दोनों तरीकों से आ सकती हैं। इस प्रकार अभियोजन साक्षियों द्वारा जिन तरीकों से मृतक के शरीर पर चोट कारित करना बताया गया है, पोस्टमार्टम रिपोर्ट एवं अभियोजन साक्षी सं०- 7 के बयान के अनुसार उन्हीं तरीकों/प्रकृति की चोटें मृतक के शरीर पर मौजूद हैं। अतः अभियोजन साक्षियों की मौखिक साक्ष्य की पुष्टि मेडिकल साक्ष्य से होती है। नजीर देवेन्द्र तथा अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 2007 (7) ए०एल० जे० 57 में व्यवस्था दी गयी है कि जब अभियोजन साक्षी द्वारा दी गयी घटना का विवरण मेडिकल साक्ष्य से साबित हो, तब दोषसिद्धि उचित है। एक अन्य नजीर उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सर्वजीत 2005 इलाहाबाद दण्ड निर्णय 511 में धारा 101 व 102 भारतीय साक्ष्य अधिनियम की व्याख्या की गयी है और व्यवस्था दी गयी है कि जब किसी घटना के संबंध में अभियोजन साक्षियों का साक्ष्य चिकित्सीय साक्ष्य से समर्थित हो, तो उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

झ- अभियोजन साक्षी सं०-8 विवेचनाधिकारी आदित्य प्रकाश ने बयान दिया है कि दिनांक 18.10.2016 को अभियुक्त अरुण कुमार को सुबह 08:30 बजे गिरफ्तार किया गया और उसका बयान अंकित किया गया। इसने बताया कि जिस डण्डे से मृतक प्रशान्त उर्फ शेर सिंह को मारकर घायल किया गया था और बाद में ट्रैक्टर चढ़ा दिया था, वह डण्डा ड्राइवर की दाहिनी तरफ सीट के नीचे घुसा दिया था। अभियुक्त अरुण कुमार द्वारा इस डण्डे को बरामद कराया गया, साथ ही विवेचनाधिकारी द्वारा घटना में प्रयुक्त ट्रैक्टर को भी बरामद किया गया तथा फर्द तैयार की गयी, जो पत्रावली पर क्रमशः प्रदर्श क-14 एवं प्रदर्श क-15 हैं। किसी अन्य अभियुक्त की निशानदेही से कोई डण्डा बरामद नहीं हुआ है। इस बिन्दु पर भी विधिक स्थिति स्पष्ट है कि घटना में प्रयुक्त हथियार की बरामदगी हर परिस्थिति में आवश्यक नहीं है। अतः शेष अभियुक्तों द्वारा जो डण्डे प्रयुक्त किये गये, उनकी बरामदगी न होने का अभियोजन केस पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं है, परन्तु अरुण कुमार की निशानदेही पर जो डण्डा बरामद हुआ है, वह अभियोजन केस की पुष्टि में सहायक है।

ट- अग्रिम विवेचनाधिकारी अभियोजन साक्षी सं०- 10 जितेन्द्र कुमार सिंह के अनुसार अभियुक्त उमेश कुमार लगातार फरार रहा। इस अभियुक्त के विरुद्ध धारा 83 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत उदघोषणा प्राप्त की गयी, परन्तु यह अभियुक्त लगातार फरार चलता रहा, इसलिए इस अभियुक्त के विरुद्ध धारा 174ए भा०दं०सं०

के अन्तर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और इस अभियुक्त ने दिनांक 09.01.2017 को न्यायालय में आत्मसमर्पण किया तथा अभियुक्त के विरुद्ध बाद में आरोप पत्र प्रेषित किया गया। अतः घटना के पश्चात सभी अभियुक्तों का घर से फरार होना उनकी अपराध में संलिप्तता को साबित करने के उद्देश्य से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत एक सुसंगत तथ्य है। नजीर अनन्तचिंतामन बनाम बॉम्बे राज्य AIR 1960 सुप्रीम 500 में व्यवस्था दी गयी है कि घटना के पश्चात अभियुक्त का आचरण उसके विरुद्ध निर्दोष होने की अवधारणा को ध्वस्त कर देता है, सुसंगत होता है। एक अन्य नजीर सैफुद्दीन बनाम पश्चिम बंगाल 1984 क्रिमिनल लॉ जनरल एन०ओ०सी० 140, कोलकाता के अनुसार मृतक के मृत शरीर को तालाब से निकालने के पश्चात अभियुक्त घटनास्थल से फरार हो गया। अभियुक्त के इस आचरण को इस रूप से सुसंगत माना गया कि वह दोषी है।

ठ- हेतुक:- हत्या का हेतुक यह बताया गया है कि चारों मुल्जिमान लेन-देन के कारण रंजिश मानते थे। यह तथ्य पी०डब्लू० 1 द्वारा अपनी मुख्य परीक्षा में स्पष्ट किया गया है कि प्रशान्त के चार लाख रुपये इन चारों मुल्जिमान पर निकल रहे थे, भाई पैसे मांगता था, लेकिन ये लोग नहीं दे रहे थे। प्रशान्त ने इस साक्षी को इतना विवाद के बारे में बताया था।

ड- अभियोजन साक्षी सं०- 3 राजेश कुमार ने हेतुक के संबंध में निम्न बयान दिया है:-"मेरा भाई प्रशान्त और चारों मुल्जिमान मिलकर मिट्टी डालने की ठेकेदारी करते थे। मेरे भाई प्रशान्त का पैसा इन चारों लोगों पर निकल रहा था, जिसे वह मांगता था और ये लोग दे नहीं रहे थे, पैसे न देने के कारण ही इन चारों ने मिलकर मेरे भाई को मार डाला।" साई सीमेण्ट एजेंसी पर मृतक की मौजूद का तथ्य बचाव पक्ष की ओर से स्वीकार किया गया है, क्योंकि पी०डब्लू० 3 को यह सुझाव दिया गया है कि साई सीमेण्ट एजेंसी पर दुर्घटना के कारण उसकी मृत्यु कारित हुई है। पूछे गये प्रश्न का सुसंगत उत्तर निम्न प्रकार दिया गया है:-"यह भी गलत है कि भाई के साथ दुर्घटना मिट्टी डालते समय साई सीमेण्ट एजेंसी पर आराम करते हुए हुई हो।" अतः इस प्रकार बचाव पक्ष को यह स्थिति स्वीकार है कि मिट्टी डालने का कार्य मौके पर चल रहा था।

ढ- अतः साक्ष्य की उपरोक्त विवेचना के आधार पर अभियुक्तों के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 302 सपठित धारा 34 का आरोप संदेह से परे साबित होता है। सभी अभियुक्त प्रशान्त उर्फ शेर सिंह की हत्या अपने सामान्य आशय के अग्रसरण में करने के लिए दोषसिद्ध होने योग्य है।

२०- हमने उभय पक्ष के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों को सुना तथा पत्रावली एवं विचारण न्यायालय के मूल अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों का परिशीलन किया एवं उन पर गहनतापूर्वक विचार किया। हमारा अभिमत है कि:-

क- मृतक के शरीर पर आयी चोट सं० 1 से 3 तक कुचलने की चोट (Crust Injury) है।

ख- शव विच्छेदन आख्या के अनुसार मृतक की चोट सं० 2 नीलगू निशान था, जिसका आकार 3 सेमी० X 6 सेमी० छाती की बांयी तरफ पीछे था, छठी एवं आठवीं पसली टूटी पायी गयी थी। चोट सं० 4 नीलगू निशान 2.5 सेमी० X 2 सेमी० कंधे के पीछे नीचे की ओर हड्डी टूटी हुयी थी तथा चोट सं० 8 खरोचदार नीलगू निशान, जिसका आकार 4 सेमी० X 3 सेमी० जो बांये बंधे पर थी, इसकी हड्डी टूटी हुयी पायी गयी थी।

ग- शव विच्छेदन करने वाले चिकित्सक के अनुसार मृतक के मृत्यु का समय लगभग ½ दिन पूर्व था. चार पहिए के वाहन चढ़ाने से सभी 8 चोटें आना सम्भव है।

घ- जहाँ तक अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन है कि कथित रूप से लाठी-डण्डा की चोट होने पर मृतक के शरीर पर केवल चिरा-फटा (lacerated) की चोट आएगी, अतः क्षति (Contusion) की चोट नहीं आएगी, लेकिन हमारे अभिमत में लाठी-डण्डे की चोट होने पर Contusion एवं Lacerated दोनों आ सकते है, जिसका समर्थन मृतक के शव विच्छेदन आख्या में आयी हुयी चोटों को अवलोकन से परिलक्षित हो रहा है, चूकिं यह भी विदित है कि केवल अतः क्षति (Contusion) से हड्डी नहीं टूट सकती, जबकि इस मामले में मृतक की हड्डियां भी टूटी पायी गयी है।

च- जहाँ तक अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता का यह कथन है कि तथाकथित घटना अभियुक्तगण ने नहीं कारित की बल्कि मृतक रोड के किनारे रात में चारपाई पर सो रहा था तथा किसी अज्ञात वाहन ने उस पर ट्रैक्टर चढ़ा दिया, किन्तु वे इस बात को साबित करने में असफल रहे हैं, अपितु ऐसी घटना का ना तो कोई तार्किक साक्ष्य उपलब्ध है, वरन् ऐसी घटना के घटित होना अभियोजन द्वारा प्रमाणित साक्ष्य के परिप्रेक्ष्य में संभव भी नहीं है। इस स्तर पर उनका यह कथन इसलिए भी मान्य नहीं है, क्योंकि अभियुक्तगण ने विचारण न्यायालय के समक्ष अपने धारा 313 दं०प्र०सं० के बयान में इस तथ्य के संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया है।

छ- अभियोजन साक्षियों के बयानों से स्पष्ट है कि मृतक प्रशान्त कुमार को अभियुक्तगण द्वारा बुलाकर ले जाते हुए अभियोजन साक्षियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से देखा गया है, तथाकथित घटना के दिनांक एवं समय पर ही मृतक की मृत्यु कारित की गयी है, मृतक के शव विच्छेदन आख्या से भी अभियोजन कथानक की पुष्टि होती है।

ज- घटनास्थल पर ट्रैक्टर की रोशनी होना तथा उसमें अभियुक्तगण को पहचानना अभियोजन साक्षियों के बयानों से स्पष्ट है, मृतक एवं अभियुक्तगण पहले से एक दूसरे से परिचित थे, साथ-साथ सड़क पर मिट्टी डालने का

कार्य करते थे। मृतक एवं अभियुक्तगण के मध्य रूपों के लेन देन की रंजिश थी, अभियुक्तगण द्वारा मृतक को पूर्व रंजिश के कारण मारने का हेतुक विद्यमान था।

झ- अभियोजन साक्षी सं० 1 व 2 के अनुसार चार अभियुक्त मोटरसाईकिल पर मृतक प्रशान्त को घर से लेकर चले गये और इसके बाद उसकी हत्या की सूचना प्राप्त हुयी, परन्तु हत्या से संबंधित घटना प्रत्यक्ष रूप से अभियोजन साक्षी सं० 3 राजेश कुमार द्वारा देखी गयी, इसलिए प्रश्नगत प्रकरण में अन्तिम दृश्य का सिद्धान्त लागू नहीं होता है, बल्कि प्रत्यक्ष रूप से घटना देखने का सिद्धान्त लागू होता है। इस प्रकरण में मृतक को अभियुक्तों के साथ देखने और इसके पश्चात उसकी लाश मिलने के आधार पर परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर विचार किया जाना भी विधि सम्मत नहीं है।

ट- उपलब्ध साक्ष्य एवं अभियोजन साक्षियों के बयान से इस प्रकरण का तत्व एवं सार यही निकलता है कि सभी अभियुक्तों ने अपने सामान्य आशय की पूर्ति में मृतक के प्रति आपराधिक कृत्य किया और ट्रैक्टर चढ़ाने के समय सभी अभियुक्तगण मौके पर भौजूद थे, तथा सभी के सहयोग से मृतक पर ट्रैक्टर चढ़ाया गया।

ठ- अग्रिम विवेचनाधिकारी अभियोजन साक्षी सं० 10 जितेन्द्र कुमार सिंह के अनुसार अभियुक्त उमेश कुमार लगातार फरार रहा। इस अभियुक्त के विरुद्ध धारा 83 दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत उद्घोषणा प्राप्त की गयी, परन्तु यह अभियुक्त लगातार फरार चलता रहा, इसलिए इस अभियुक्त के विरुद्ध धारा 174ए भा०दं०सं० के अन्तर्गत आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया और इस अभियुक्त ने दिनांक 09.01.2017 को न्यायालय में आत्मसमर्पण किया तथा अभियुक्त के विरुद्ध बाद में आरोप पत्र प्रेषित किया गया। अतः घटना के पश्चात सभी अभियुक्तों का घर से फरार होना उनकी अपराध में संलिप्तता को साबित करने के उद्देश्य से भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 8 के अन्तर्गत एक सुसंगत तथ्य है। नजीर अनन्तचिंतामन बनाम बॉम्बे राज्य AIR 1960 सुप्रीम 500 में व्यवस्था दी गयी है कि घटना के पश्चात अभियुक्त का आचरण उसके विरुद्ध निर्दोष होने की अवधारणा को ध्वस्त कर देता है, सुसंगत होता है।

ड- इस प्रकरण में अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता अपने तर्क एवं साक्ष्य से अभियोजन कथानक को संदेहास्पद साबित करने में असफल रहे हैं।

२१- इस प्रकार विचारण न्यायालय ने अभियुक्तगण अरूण कुमार यादव, उमेश कुमार, अरविन्द कुमार एवं रुचित सिंह को धारा 302 भा०दं०वि० सपठित धारा 34 भा०दं०वि० के विरुद्ध दोषसिद्ध एवं दण्डित किया है। विचारण न्यायालय द्वारा अपने निर्णय में साक्ष्य के समस्त बिन्दुओं पर विस्तृत चर्चा किया, माननीय उच्चतम न्यायालय की विभिन्न नजीरों के आधार पर समुचित निर्णय/आदेश पारित किया है, जिसमें किसी भी प्रकार के

क्षेत्राधिकारी संबंधी या विधिक रूप से कोई त्रुटि परिलक्षित नहीं हो रही है एवं प्रश्नगत आदेश/निर्णय पुष्ट किये जाने योग्य है।

२२- तदनुसार, यह दोनों दाण्डिक अपीलें निरस्त की जाती हैं तथा सत्र न्यायाधीश औरैया द्वारा पारित प्रश्नगत निर्णय/आदेश दिनांकित 22.06.2019 की पुष्टि की जाती है।

२३- अभियुक्तगण को इस न्यायालय की अन्य न्यायपीठ द्वारा पारित आदेश दि० 10.08.2022 के द्वारा जमानत पर मुक्त किया गया है, उनकी जमानत निरस्त की जाती है।

२४- संबंधित न्यायालय को निर्देशित किया जाता है कि अभियुक्तगण अरूण कुमार यादव, उमेश कुमार, अरविन्द कुमार एवं रुचित सिंह को नियमानुसार अभिरक्षा में लेकर उन्हें प्रश्नगत निर्णय/आदेश, दिनांकित 22.06.2019 का अनुपालन सुनिश्चित करने हेतु कारागार में निरूद्ध कर दिया जाये तथा प्रतिभूओं को नियमानुसार उन्मोचित कर दिया जाए।

२५- कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि विचारण न्यायालय को अभिलेख वापस भेज दिया जाय तथा इस आदेश की एक प्रतिलिप संबंधित विचारण न्यायालय को अनुपालन हेतु अविलंब प्रेषित करना सुनिश्चित किया जाय।

(2025) 1 ILRA 657

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 21.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष चंद्र शर्मा

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4818/2022

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4820/2022, 4870/2022 और 3586/2022

फिरोज मलिक

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री जे.बी. सिंह, श्री राजीव लोचन शुक्ला

प्रतिवादियों के वकील: जी.ए.

दण्ड विधि-उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमन-228 से 252-भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 14, 19 एवं 21-हिस्ट्रीशीट खोलना-राज्य के किसी भी नागरिक के विरुद्ध वर्ग-ए या वर्ग-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने से पूर्व, उसे पुलिस के उच्च अधिकारी द्वारा स्वीकार किए जाने से पूर्व तथा ऐसे अधिकारी द्वारा किसी नागरिक के विरुद्ध किसी भी वर्ग की हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश दिए जाने से पूर्व अपनी आपत्ति प्रस्तुत करने का एक अवसर दिया जाना चाहिए--- वर्ग-ए और वर्ग-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश देते समय, उच्च पुलिस प्राधिकारी पुलिस थाने की रिपोर्ट के विरुद्ध नागरिक की आपत्ति पर विचार करने के पश्चात किसी भी वर्ग की हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश देने के अपने कारण दर्ज करेगा।---आलोचना की गई हिस्ट्रीशीट/शीटें निरस्त---स्टेट को निर्देश जारी किए गए- सरकार हिस्ट्रीशीट खोलने की प्रक्रिया पर गौर करेगी और उस व्यक्ति को आपत्ति का अवसर प्रदान करने के लिए आवश्यक संशोधन/दिशानिर्देश बनाएगी/जारी करेगी, जिसके खिलाफ पुलिस वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के समक्ष वर्ग-ए या वर्ग-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने की सिफारिश करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करती है- राज्य सरकार प्रत्येक वर्ष नागरिकों के विरुद्ध खोले गए हिस्ट्रीशीटों की समीक्षा का भी प्रावधान करेगी, ताकि जिन मामलों में ऐसे व्यक्ति शामिल हों जिनके विरुद्ध हिस्ट्रीशीट खोली गई थी और जो बाद में आपराधिक आरोपों से दोषमुक्त/बरी हो गए हों, उनकी हिस्ट्रीशीट बंद कर दी जाए और उनके जीवन एवं स्वतंत्रता पर पुलिस की निगरानी का साया हट जाए। (पैरा 26, 27 एवं 28)

याचिकाएं स्वीकृत. (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 9174/2022, आफताब आलम बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश एवं अन्य।
2. मांगी लाल बनाम मध्य प्रदेश के न्यायाधीश, (2004) 2 एससीसी 447
3. मुन्ना लाल गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश के न्यायाधीश एवं अन्य, 2016 में रिपोर्ट किया गया एससीसी ऑनलाइन सभी 3023

(माननीय न्यायमूर्ति सिद्धार्थ द्वारा)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री जे.बी. सिंह और श्री राजीव लोचन शुक्ला; राज्य प्रतिवादियों की विद्वान ए.जी.ए.-1 सुश्री मंजू ठाकुर को सुना गया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4818/2022 (फ़िरोज़ मलिक), आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4820/2022 (साजिद मलिक), और आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 4870/2022 (इमरान मलिक) के याचिकाकर्ता, आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 3586/2022 के याचिकाकर्ता निज़ाम मलिक के पुत्र हैं। इन सभी के विरुद्ध समान मामलों में संलिप्तता के आधार पर हिस्ट्रीशीट खोली गई है। अतः, तीन पुत्रों और उनके पिता, जिनका नाम ऊपर दिया गया है, द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त रिट याचिकाओं का निर्णय इस समान निर्णय द्वारा किया जा रहा है।

3. उपरोक्त रिट याचिकाएँ सभी याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रतिवादी संख्या 3, पुलिस उपायुक्त, ग्रेटर नोएडा, जिला गौतमबुद्ध नगर द्वारा पारित दिनांक 16.6.2021 के उस आदेश को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई हैं, जिसके तहत याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध श्रेणी-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने की स्वीकृति प्रदान की गई थी। इसके अतिरिक्त, प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा पारित उपरोक्त आदेश के अनुसरण में प्रतिवादियों को याचिकाकर्ताओं की निगरानी बंद करने का निर्देश देने का अनुरोध किया गया है।

4. रिट याचिका संख्या 4818/2022 में दिए गए संक्षिप्त तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता एक व्यवसायी है और उसने ऑक्टस ई-रीसाइक्लिंग सॉल्यूशन प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स हिंदुस्तान मेटल्स के नाम से अपनी फर्म/कंपनी स्थापित की है और अपना व्यवसाय चला रहा है और सरकार को आयकर का भुगतान कर रहा है। 30.12.2019 को उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (रोकथाम) अधिनियम, 1986 की धारा 2 के तहत याचिकाकर्ता के पिता और अन्य के खिलाफ पुलिस स्टेशन साइट-5, ग्रेटर नोएडा में एक राजनीतिक रूप से प्रेरित मामला अपराध संख्या 336/2019 पंजीकृत किया गया था, जबकि उनके पिता (निज़ाम मलिक) का कोई पूर्व आपराधिक इतिहास नहीं था, जिसके खिलाफ उन्होंने इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया, जिसके तहत आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 140/2020 और अंतरिम आदेश उनके पक्ष में पारित किया गया। उपरोक्त रिट याचिका में जवाबी हलफनामा मांगे जाने के बाद, पुलिस ने महसूस किया कि इस न्यायालय के समक्ष गैंगस्टर अधिनियम के तहत दर्ज एफआईआर को चुनौती देना मुश्किल होगा, इसलिए याचिकाकर्ता, उसके भाइयों और पिता के खिलाफ धारा 386 आईपीसी के तहत मामला अपराध संख्या 408/2020, 30.7.2020 को आजाद कुमार की मदद से पुलिस स्टेशन बिटा-2, जिला गौतमबुद्ध नगर में पंजीकृत किया गया। याचिकाकर्ता, उसके पिता और भाइयों को उपरोक्त मामले में अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया था, लेकिन बाद में आरोप पत्र दायर किया गया और इसे आपराधिक विविध 482 सीआरपीसी संख्या 11237/2021 के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई। दिनांक 30.7.2020 की उपरोक्त एफआईआर के आधार पर, याचिकाकर्ताओं को गैंगस्टर अधिनियम के तहत एक मामले में फंसाया गया था, जो कि केस क्राइम नंबर 710/2020, पुलिस स्टेशन कासना (अब बीता-2), जिला गौतमबुद्ध नगर में 10.11.2020 को दर्ज किया गया था और उन्हें विशेष न्यायाधीश, गौतमबुद्ध नगर द्वारा 10.3.2021 को जमानत पर रिहा कर दिया गया था। याचिकाकर्ता, उसके पिता और भाइयों के खिलाफ दर्ज उपरोक्त आपराधिक मामलों के आधार पर, स्टेशन हाउस ऑफिसर, पुलिस स्टेशन बिटा -2, जिला गौतमबुद्ध नगर ने याचिकाकर्ता, उसके पिता और भाइयों की कक्षा की इतिहास शीट खोलने के लिए 17.4.2021 को प्रतिवादी संख्या 3 के समक्ष रिपोर्ट प्रस्तुत की। प्रतिवादी संख्या 3 ने दिनांक

16.6.2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा इसे स्वीकार कर लिया है और एच.एस. संख्या 21(बी) वाली हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश दिया है, जो इस न्यायालय के समक्ष चुनौती का विषय है। याचिकाकर्ताओं ने प्रतिवादी संख्या 3 और उच्च अधिकारियों के समक्ष इसके विरुद्ध कई अभ्यावेदन प्रस्तुत किए, लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ।

5. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि दिनांक 30.7.2020 को मुकदमा अपराध संख्या 408/2020 के रूप में धारा 386 आईपीसी, पुलिस स्टेशन कासना (अब बीता-2), जिला गौतमबुद्ध नगर में पंजीकृत प्रथम सूचना दर्ज करने से पहले, याचिकाकर्ताओं का कोई आपराधिक इतिहास नहीं था। पुलिस ने याचिकाकर्ताओं को सुंदर भाटी गैंग या नवीन भाटी गैंग से जोड़ने की कोशिश की है, जिनसे याचिकाकर्ता (निज़ाम मलिक) का कोई संबंध नहीं था। बल्कि उक्त गैंग ने याचिकाकर्ता और उसके परिवार के सदस्यों को धमकाया था और उसके भाई इमरान मलिक ने सुंदर भाटी गैंग के तीन सदस्यों के खिलाफ 20.7.2018 को मुकदमा अपराध संख्या 203/2018 के तहत धारा 386, 392 आईपीसी के तहत एफआईआर दर्ज कराई थी और पुलिस ने 19.9.2018 को आरोपियों के खिलाफ आरोप पत्र दाखिल किया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ केवल दो मामले दर्ज हैं, केस क्राइम नंबर 408/2020, धारा 386 आईपीसी और केस क्राइम नंबर 710/2020, धारा 2/3(1) यूपी गैंगस्टर्स एक्ट के तहत, पुलिस स्टेशन- बीता-2, जिला गौतमबुद्ध नगर और उनके आधार पर श्रेणी-बी की हिस्ट्रीशीट खोलना बिल्कुल अनुचित है। उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशन की धारा 228 के अनुसार अपराधियों की हिस्ट्रीशीट दो भागों में वर्णित की गई है, वर्ग-ए और वर्ग-बी; वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट पुष्ट एवं पेशेवर अपराधियों के लिए खोली जाती है, जो डकैती, संधमारी, पशु-चोरी और रेलवे माल, वैगनों से चोरी के अलावा अन्य अपराध करते हैं, जैसे पेशेवर ठग और अन्य विशेषज्ञ जिनके आपराधिक व्यक्तिगत फाइलें आपराधिक जांच विभाग द्वारा रखी जाती हैं। वर्ग-ए के अंतर्गत आने वाले अपराधों के अलावा अन्य मामलों में शामिल अपराधियों के लिए वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट खोली जाती है। याचिकाकर्ताओं के खिलाफ वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट खोलना अनुचित है और उनके खिलाफ पारित आदेश रद्द किए जाने योग्य है।

6. राज्य प्रतिवादियों की ओर से प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया है जिसमें कहा गया है कि समाज के हित में याचिकाकर्ता की गतिविधियों पर निगरानी आवश्यक है। याचिकाकर्ता ने अपने पिता और भाइयों के साथ मिलकर एक गिरोह बनाया है जो कई अपराधों में संलिप्त है। इसलिए याचिकाकर्ताओं के खिलाफ हिस्ट्रीशीट खोलना उचित है। वे आदतन और पेशेवर अपराधी हैं।

7. याचिकाकर्ता के विद्वान वकील द्वारा प्रत्युत्तर हलफनामा दायर किया गया है, जिसमें उन्होंने प्रति हलफनामे में किए गए कथनों का खंडन किया है।

8. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 9174/2022, आफताब आलम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और दो अन्य के मामले में हिस्ट्रीशीट खोलने के पीछे के उद्देश्य पर विचार करते हुए निम्नलिखित आदेश दिए:-

3. "हिस्ट्रीशीटर" शब्द का ज़िक्र आते ही एक अनुभवी अपराधी की छवि मन में उभरती है जिसका लंबा-चौड़ा रिकॉर्ड हो। सवाल उठता है: ये हिस्ट्रीशीटर आखिर कौन हैं, और पुलिस किसी को इस श्रेणी में कैसे रखती है? हिस्ट्रीशीटर घोषित होने के बाद एक अपराधी को क्या नुकसान उठाना पड़ता है, और इसके क्या परिणाम होते हैं? इन सवालों के जवाब इस खोज में मिलते हैं।

4. संक्षेप में, हिस्ट्रीशीटर पुलिस द्वारा एक ऐसा पदनाम है जिसका उपयोग गंभीर आपराधिक इतिहास वाले व्यक्तियों की पहचान करने के लिए किया जाता है। यह लेबल उन लोगों को दिया जाता है जो कई अपराधों में शामिल रहे हैं और पुलिस द्वारा उनकी आपराधिक गतिविधियों का विवरण विधिवत दर्ज किया जाता है। किसी भी अपराधी का हिस्ट्रीशीटर शुरू करने से पहले, पुलिस उस व्यक्ति की वर्तमान आपराधिक स्थिति की पुष्टि करती है।

5. यह प्रक्रिया तब शुरू होती है जब कोई व्यक्ति, जो पहले से ही कई मामलों में दोषी साबित हो चुका हो और/या लगातार आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो, थाने के SHO का ध्यान आकर्षित करता है। इसके बाद, एसएसपी या एसपी को एक रिपोर्ट भेजी जाती है और आवश्यक आदेश मिलने पर हिस्ट्रीशीट खोली जाती है। इस विस्तृत दस्तावेज़ में अपराधी के बारे में विस्तृत जानकारी होती है, जिसमें आपराधिक प्रोफाइल, उसके साथी और ज्ञात रिश्तेदार शामिल होते हैं। कुछ परिस्थितियों में, जहाँ लोग संगठित गिरोहों या जबरन वसूली से संबंधित अपराधों की रिपोर्ट करने में हिचकिचाते हैं, पुलिस स्थानीय स्रोतों पर भरोसा करते हुए, समाज के लिए ऐसे संभावित खतरों पर निगरानी रखती है। हिस्ट्रीशीट खोलने का काम कॉल, पुलिस नियंत्रण कक्ष में दैनिक प्रविष्टियों और समाज के लिए खतरा पैदा करने वालों के निरंतर आकलन के आधार पर किया जाता है।

6. हिस्ट्रीशीट की मौजूदगी एक निवारक के रूप में काम करती है, क्योंकि यह अपराधियों पर लगातार पुलिस की नज़र रखती है। हिस्ट्रीशीट खुलने के बाद, अपराधियों को नियमित रूप से पुलिस स्टेशन में अपनी उपस्थिति दर्ज करानी होती है; ऐसा न करने पर पुलिस अधिकारियों को उनके घरों पर जाना पड़ता है। इसके अलावा, हिस्ट्रीशीट अपराधियों की आय के स्रोत का पता लगाने में भी मदद करती है, जिससे अधिकारियों को यह पता लगाने में मदद मिलती है कि क्या उन्होंने कमाई के वैध साधनों का इस्तेमाल किया है। इस जांच से ऐसे मामलों की पहचान करने में मदद मिलती है, जहाँ कोई व्यक्ति पहले अवैध गतिविधियों में लिप्त रहा हो, तथा बेरोजगार होने के बावजूद विलासितापूर्ण जीवनशैली जीने के संकेत देता हो।

7. "हिस्ट्री शीट" खोलने की प्रक्रिया संबंधित राज्य के पुलिस नियमों या आदतन अपराधियों को नियंत्रित करने वाले अधिनियम द्वारा नियंत्रित होती है।

8. अपराधी अक्सर बार-बार पते बदलकर पकड़ से बचने की कोशिश करते हैं। इससे निपटने के लिए, पुलिस अन्य जिलों या राज्यों के साथ संवाद करती है, संभावित स्थानांतरण क्षेत्रों के बारे में जानकारी साझा करती है और सतर्क निगरानी का अनुरोध करती है।

अपराध मानचित्रण और हॉट स्पॉट की पहचान जैसी विभिन्न रणनीतियों का उपयोग करते हुए, कानून प्रवर्तन का उद्देश्य आपराधिक गतिविधियों पर अंकुश लगाना और सार्वजनिक सुरक्षा बनाए रखना है।

9. हिस्ट्रीशीट हमारे आपराधिक खुफिया डेटाबेस के समान हैं, लेकिन उन पर कानूनी बाध्यताएँ ज़्यादा होती हैं। साथ ही, उनके सार्वजनिक प्रकटीकरण की संभावना भी ज़्यादा होती है क्योंकि उन पर पुलिस और नागरिक नेताओं, दोनों की गहन और लगातार निगरानी की ज़रूरत होती है।

10. ब्रिटिश शासन के दिनों से ही, भारतीय पुलिस विभाग ऐसे व्यक्तियों के लिए हिस्ट्रीशीट तैयार करते रहे हैं जिनके भविष्य में अपराधी बनने का खतरा माना जाता है। हिस्ट्रीशीटर को दोषी ठहराया जा चुका हो या उस पर आपराधिक आरोप लंबित हों। हिस्ट्रीशीटरों पर निगरानी और निगरानी रखी जाती है। भारत में, आपराधिक रिकॉर्ड रखने की व्यवस्था अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग है। सभी राज्यों में कुछ आपराधिक रिकॉर्ड वाले व्यक्तियों के लिए हिस्ट्रीशीट स्वतः तैयार करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में गंभीर हिंसक अपराध के लिए एक बार, सैधमारी के लिए दो बार, चोरी के लिए तीन बार और कुछ अन्य अपराधों के लिए दोषी पाए गए व्यक्ति के लिए हिस्ट्रीशीट तैयार करना अनिवार्य है। पुलिस को आम तौर पर ऐसे व्यक्ति के लिए भी हिस्ट्रीशीट तैयार करने का अधिकार है जिसे दोषी नहीं ठहराया गया है, लेकिन जिसे पुलिस अपराध का आदी या सार्वजनिक व्यवस्था के लिए खतरा मानती है। हिस्ट्रीशीट तैयार करने के लिए पुलिस के पास एक स्पष्ट कारण होना चाहिए और उन्हें रिकॉर्ड-विषय को सूचित करना होगा कि हिस्ट्रीशीट खोली गई है।

11. पुलिस, ग्राम अधिकारियों की सहायता से, अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाले हिस्ट्रीशीटरों की गतिविधियों और गतिविधियों की निगरानी और जानकारी दर्ज करने के लिए बाध्य है। अनुमेय निगरानी और निगरानी के स्तर पर, राज्य दर राज्य अलग-अलग अदालती प्रतिबंध और पुलिस के सर्वोत्तम अभ्यास दिशानिर्देश हैं। हिस्ट्रीशीट कब खोली जा सकती है, उसे कितने समय तक रखा जा सकता है और उस पर निगरानी की कितनी तीव्रता की अनुमति है, इसे नियंत्रित करने वाले कई कारक हैं। अदालतों ने माना है कि हिस्ट्रीशीटरों की निगरानी अत्यधिक नहीं होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, कुछ राज्य न्यायालयों और कुछ पुलिस एजेंसियों ने दिशानिर्देश जारी किए हैं, जिनमें कहा गया है कि पहली बार हिस्ट्रीशीटर बनने वालों पर विशेष रूप से कड़ी नज़र रखी जानी चाहिए; निगरानी पृथक होनी चाहिए; घर पर मुलाकात की अनुमति नहीं है; परिवार के सदस्यों को परेशान नहीं किया जाना चाहिए; पुलिस अधिकारियों को हिस्ट्रीशीटर की आदतों, संगठनों, आय, व्यय और व्यवसाय के बारे में समय-समय पर और नियमित पूछताछ करनी चाहिए; पुलिस अधिकारियों को हिस्ट्रीशीटर की गतिविधियों और उसके निवास स्थान या क्षेत्र से उसकी अनुपस्थिति को रिकॉर्ड करना चाहिए, और इसी तरह के दिशानिर्देश।

12. हिस्ट्रीशीटर को निजता के आधार पर संवैधानिक चुनौती दी गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि हिस्ट्रीशीटर के आधार पर पुलिस निगरानी, संवैधानिक जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार में निहित निजता के सीमित अधिकार को प्रभावित करती है। न्यायालय के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति की स्वायत्तता का सम्मान किया जाना चाहिए; अकेले रहने का अधिकार है। हालाँकि, निजता का अधिकार पूर्ण नहीं है और

हिस्ट्रीशीटर की हिस्ट्रीशीटर बनाना और निगरानी करना असंवैधानिक नहीं है, अगर यह कानूनी मानकों के अनुसार किया जाए या मानकों के अभाव में, अगर उचित तरीके से किया जाए। एक मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने घर पर जाकर मुलाकात करने को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आवागमन की स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन मानते हुए खारिज कर दिया।

13. पुलिस को नियमित पुलिस गश्त और पूछताछ से प्राप्त अनुकूल और प्रतिकूल, दोनों प्रकार की सूचनाओं के साथ फ़ाइल को समय-समय पर अद्यतन करना चाहिए। ऐसी जानकारी निष्पक्ष रूप से दर्ज की जानी चाहिए, न कि रिकॉर्ड में शामिल व्यक्ति के खिलाफ कोई नकारात्मक मामला बनाने की दृष्टि से। हिस्ट्रीशीटर की तस्वीर सहित हिस्ट्रीशीट एक गोपनीय रिकॉर्ड है। पुलिस को सरकारी या निजी नियोक्ताओं को यह बताने का अधिकार नहीं है कि कोई नौकरी का आवेदक या कर्मचारी हिस्ट्रीशीटर है या नहीं, और न ही यह बताने का कि हिस्ट्रीशीटर में क्या जानकारी है। हालाँकि, हिस्ट्रीशीटर की निगरानी/अपराध नियंत्रण के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि पुलिस अधिकारियों की हिस्ट्रीशीट तक आसान पहुँच हो। स्थानीय पुलिस केवल तभी रिकॉर्ड में दर्ज लोगों की निगरानी और निगरानी कर सकती है जब उन्हें पता हो कि वे कौन हैं। हिस्ट्रीशीट रेलवे पुलिस के साथ साझा की जानी चाहिए। अगर हिस्ट्रीशीट किसी दूसरे क्षेत्राधिकार में चला जाता है, तो हिस्ट्रीशीट नए क्षेत्राधिकार वाले पुलिस विभाग को स्थानांतरित कर दी जाती है। इसके अलावा, उचित कारणों से, पुलिस किसी भगोड़े को पकड़ने या किसी अपराध को सुलझाने के लिए, आवश्यकता पड़ने पर, जनता को हिस्ट्रीशीटर की तस्वीरें दिखा सकती है।

14. संक्षेप में, भारतीय कानून और नीति यह मानती है कि पुलिस रिकॉर्ड, अपराध नियंत्रण के लिए आवश्यक होते हुए भी, निजता और व्यक्तिगत स्वायत्तता को प्रभावित करते हैं। अदालतों ने हिस्ट्रीशीट प्रणाली को विनियमित करने के लिए संघर्ष किया है, इसके लिए उन्होंने अपनी हिस्ट्रीशीट दर्ज करने पर आपत्ति करने वाले व्यक्तियों के लिए अदालती समीक्षा का प्रावधान किया है और निगरानी खोलने, बनाए रखने और संचालित करने के पुलिस विवेकाधिकार को सीमित किया है।

15. जब हिस्ट्रीशीट खोलने और परिस्थितियों के अनुसार हिस्ट्रीशीटरों पर निगरानी रखने के पीछे यही स्थिति और दर्शन है, तो क्या यह कहा जा सकता है कि हिस्ट्रीशीट खोलना या निगरानी जारी रखना व्यक्ति के लिए कलंक है और क्या हिस्ट्रीशीट को स्थायी रूप से बंद करना या न्यायालय द्वारा उसे रद्द करना उचित होगा? इसका उत्तर होगा - नहीं। इसका कारण यह है कि पुलिस को अपराध नियंत्रण के लिए एक तंत्र की आवश्यकता होती है, चाहे वह व्यक्तिगत हो या संगठित। संदिग्धों, आदतन और संभावित अपराधियों की निगरानी आवश्यक हो सकती है, इसलिए अपराध की रोकथाम के उद्देश्य से हिस्ट्रीशीट और निगरानी रजिस्टर बनाए रखना आवश्यक है। अनुमेय निगरानी केवल निगरानी में रखे गए व्यक्ति की गतिविधियों पर कड़ी नज़र रखने तक ही सीमित है, इससे ज़्यादा कुछ नहीं। इसके अलावा, भारत में पुलिस अधिकारियों का एक स्थान से दूसरे स्थान पर बार-बार स्थानांतरण एक सामान्य घटना है। किसी विशेष स्थान पर अपने छोटे से कार्यकाल के दौरान, संबंधित पुलिस अधिकारियों के पास किसी अपराधी के बारे में कुछ जानकारी हो सकती है, लेकिन उस विशेष

स्थान को छोड़ने और नए अधिकारी के कार्यभार संभालने के बाद, किसी विशेष क्षेत्र, गाँव या शहर में आपराधिक गतिविधियों के बारे में जानने के लिए नए अधिकारी के पास क्या डेटा उपलब्ध होगा, यह महत्वपूर्ण है। इसलिए, हिस्ट्रीशीट सहित पिछला रिकॉर्ड और हिस्ट्रीशीट पर निगरानी रखने का रिकॉर्ड, एक मार्गदर्शक कारक होगा। इसलिए, हिस्ट्रीशीट, बेहतर पुलिस प्रशासन के लिए अपराधियों और उनके पिछले रिकॉर्ड के बारे में जानकारी और जानकारी रखने का एक पवित्र विचार है।

9. उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमों के अंतर्गत हिस्ट्रीशीट से संबंधित प्रावधान निम्नानुसार हैं:-

228. भाग V में हिस्ट्रीशीट शामिल हैं। ये निगरानी में रखे गए अपराधियों के व्यक्तिगत रिकॉर्ड हैं। हिस्ट्रीशीट केवल उन्हीं लोगों की खोली जानी चाहिए जो आदतन अपराधी हैं या बनने की संभावना रखते हैं या ऐसे अपराधियों को उकसाते हैं। हिस्ट्रीशीट दो श्रेणियों में होगी:

(1) Class A history-sheets for dacoits, burglars, cattle-thieves, railway-goods wagon thieves, and abettors thereof.

(2) वर्ग बी हिस्ट्री शीट उन पुष्ट और पेशेवर अपराधियों के लिए है जो डकैती, संधमारी, मवेशी चोरी और रेलवे माल डिब्बों से चोरी के अलावा अन्य अपराध करते हैं, उदाहरण के लिए, पेशेवर धोखेबाज और अन्य विशेषज्ञ जिनके आपराधिक व्यक्तिगत फाइलें आपराधिक जांच विभाग द्वारा रखी जाती हैं, जहर देने वाले, मवेशी जहर देने वाले, रेलवे यात्री चोर, साइकिल चोर, विशेषज्ञ जेबकतरे, जालसाज, सिक्का बनाने वाले, कोकीन और अफीम तस्कर, किराए के बदमाश और गुंडे, टेलीग्राफ तार काटने वाले, आदतन अवैध शराब बनाने वाले और इसके लिए उकसाने वाले।

दोनों कक्षाओं की हिस्ट्री शीट्स समान रूप में रखी जाएंगी, लेकिन कक्षा बी की इतिहास-पत्रिकाओं को पहले पृष्ठ के शीर्ष पर चिह्नित लाल पट्टी द्वारा पहचाना जाएगा। वर्ग 'ख' के किसी भी हिस्ट्रीशीट को वर्ग 'क' के हिस्ट्रीशीट में परिवर्तित नहीं किया जा सकता, हालाँकि यदि वर्ग 'ख' के हिस्ट्रीशीट का विषय डकैती, संधमारी, पशु-चोरी या रेलवे मालगाड़ियों से चोरी का भी आदी पाया जाता है, तो उस पर वर्ग 'क' के साथ-साथ वर्ग 'ख' की भी निगरानी अनुच्छेद 238 के अंतर्गत लागू की जा सकती है। यदि वर्ग 'क' के हिस्ट्रीशीट व्यक्ति विविध अपराधों का आदी हो जाता है, तो अधीक्षक की स्वीकृति से उसकी हिस्ट्रीशीट को वर्ग 'ख' के हिस्ट्रीशीट में परिवर्तित किया जा सकता है।

229. हिस्ट्रीशीटों का A और B के रूप में यह वर्गीकरण इस सिद्धांत पर आधारित है कि जहाँ एक डाकू, चोर, मवेशी चोर या रेलवे मालगाड़ी चोर के सुधरने की हमेशा उम्मीद रहती है, वहीं विशेषज्ञ विविध अपराधी आमतौर पर सुधरने में असमर्थ होता है। इसलिए, यह वर्गीकरण पूरी तरह से उस अपराध के प्रकार पर आधारित है जिसके लिए संदिग्ध आदी हैं और इसका उद्देश्य केवल यह विनियमित करना है कि-

(1) वह अवधि जिसके लिए किसी संदिग्ध को उसके विरुद्ध शिकायत न होने पर सामान्यतः निगरानी में रहना चाहिए, (2) वह निगरानी जिसके लिए उसकी गतिविधियों की आवश्यकता है। किसी संदिग्ध व्यक्ति पर उचित प्रकार की निगरानी की डिग्री उसके वर्गीकरण पर निर्भर नहीं करेगी, बल्कि इस बात पर निर्भर करेगी कि किसी विशेष समय में वह किस हद तक सक्रिय है।

230. यदि किसी 'ए' श्रेणी के हिस्ट्रीशीटर का विषय इतना खतरनाक या अक्षम्य माना जाता है कि उसे अपनी कक्षा के सामान्य लोगों की तुलना में अधिक लंबी निगरानी की आवश्यकता है, तो उसे अधीक्षक के आदेश से "आरंभ" किया जा सकता है। यहाँ भी, यह तथ्य कि किसी हिस्ट्रीशीटर को आरंभ किया गया है, अनिवार्य रूप से केवल यही दर्शाता है कि उसे लंबे समय तक निरंतर निगरानी में रखा जाना है। यह आवश्यक रूप से यह नहीं दर्शाता कि जब तक निगरानी जारी रहेगी, उसकी निगरानी अधिक गहन होगी। इसका उद्देश्य सबसे गहन निगरानी उस अपराधी पर केंद्रित करना है, चाहे वह तारांकित हो या अतारांकित, जिसके बारे में माना जाता है कि वह अस्थायी रूप से सक्रिय है।

जिला पुलिस अधीक्षक, राजकीय रेलवे पुलिस अधीक्षक की सहमति के बिना, किसी हिस्ट्रीशीटर या रेलवे पुलिस संदिग्ध पर निगरानी रखने या निगरानी बंद करने का आदेश नहीं दे सकते।

231. वर्ग 'क' के हिस्ट्री शीट के विषय, जब तक कि उन पर "तारांकित" न किया गया हो, कम से कम दो लगातार वर्षों तक निगरानी में रहेंगे, जिनमें से उन्होंने जेल में कोई समय नहीं बिताया हो। जब वर्ग 'क' के हिस्ट्री शीट के विषय, जिसका नाम "तारांकित" न किया गया हो, जिसे कभी भी संज्ञेय अपराध का दोषसिद्ध न किया गया हो और जो लगातार दो वर्षों तक जेल में न रहा हो या किसी अपराध का संदिग्ध न रहा हो या संदिग्ध परिस्थितियों में अनुपस्थित न रहा हो, तो उसकी निगरानी बंद कर दी जाएगी, जब तक कि विशेष कारणों से, जो पुलिस थाने की निरीक्षण पुस्तिका में दर्ज किए जाएँगे, अधीक्षक यह निर्णय न ले कि निगरानी जारी रहनी चाहिए।

जब वर्ग 'ए' के हिस्ट्री शीट के विषय को "तारांकित" किया जाता है, तो वह कम से कम लगातार दो वर्षों तक तारांकित रहेगा, जिसके दौरान वह जेल में नहीं रहा हो, किसी संज्ञेय अपराध का संदिग्ध न रहा हो, या उसके विरुद्ध कोई संदिग्ध अनुपस्थिति दर्ज न की गई हो। उस अवधि के अंत में, यदि यह माना जाता है कि उसने सुधार कर लिया है, तो उस पर "तारांकित" नहीं किया जाएगा, लेकिन निगरानी जारी रहेगी, और निगरानी तभी समाप्त की जाएगी जब उस अवधि के दौरान उसके विरुद्ध कोई शिकायत दर्ज न की गई हो।

पूर्व दोषियों और विशेष रूप से पूर्व दोषी डकैतों की हिस्ट्रीशीट को बंद करते समय बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए।

232. **बी श्रेणी के हिस्ट्री शीट्स** - बी श्रेणी के हिस्ट्री शीट्स निरंतर खुले अभिलेख होंगे और इन पत्रों के विषय, विशेष कारणों को छोड़कर, मृत्युपर्यंत निगरानी में रहेंगे। अतः इस श्रेणी के संदिग्धों पर स्टार लगाना अनावश्यक है।

233. हिस्ट्रीशीट के विषय की निगरानी बंद करने का अर्थ उस हिस्ट्रीशीट को बंद करना नहीं है। एक हिस्ट्रीशीट, जो केवल सूचना का अभिलेख है, उसे कभी भी बंद नहीं माना जाना चाहिए। जिन व्यक्तियों की निगरानी बंद कर दी गई है, उनके मामले में हिस्ट्रीशीट में इस आशय का एक नोट दर्ज किया जाना चाहिए, और उसके बाद कोई भी पत्रिका या अन्य प्रविष्टियाँ दर्ज करने की आवश्यकता नहीं है, जब तक कि कोई ऐसी बात ध्यान में न आए जिसे शीट में दर्ज करना वांछनीय हो। जिन व्यक्तियों की निगरानी बंद कर दी गई है, उनके पत्रक इन ग्राम अपराध-नोटबुक में ही रखे जाने चाहिए, लेकिन यदि उनकी संख्या इतनी अधिक हो कि जिल्द बहुत बड़ी हो जाए, तो उन्हें नोटबुक से जुड़ी एक अलग जिल्द में रखा जाना चाहिए। इन्हें केवल तभी नष्ट किया जाएगा जब पत्रक के विषय की मृत्यु हो जाए, या यदि अधीक्षक की राय में उनके आगे रखने का कोई मूल्य न रह जाए।

234. पुलिस अधीक्षक की अनुमति के बिना वर्ग 'क' का कोई भी हिस्ट्रीशीट बंद नहीं किया जा सकता। यदि वर्ग 'ख' के हिस्ट्रीशीट के विषय की निगरानी बंद करने से इनकार किया जाता है, तो रेलवे पुलिस के उप-महानिरीक्षक या अधीक्षक की अनुमति लेनी होगी। हिस्ट्रीशीट बंद करने और वर्ग संदिग्धों पर 'तारांकित या तारांकित' करने के लिए थाना प्रभारियों से प्रस्ताव, जब तक कि निरीक्षण के दौरान किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा सीधे तौर पर न निपटाया जाए, सर्कल इंस्पेक्टर के माध्यम से प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

240. दोनों वर्गों की हिस्ट्रीशीट (1) संदेह होने पर या (2) दोषसिद्धि या दोषमुक्ति पर खोली जा सकती है। पुलिस अधीक्षक के आदेश के बिना कोई भी हिस्ट्रीशीट नहीं खोली जा सकती।

(1) **संदेह होने पर-** जब भी डकैती, संधमारी, रेलवे मालगाड़ी से पशु चोरी या किसी व्यावसायिक प्रकार के विविध अपराध के मामले की जांच के परिणामस्वरूप, पुलिस थाने का प्रभारी अधिकारी किसी व्यक्ति का नाम अपराध रजिस्टर में उचित रूप से संदिग्ध के रूप में दर्ज करने के लिए आवेदन करता है, तो उसे उसी समय यह भी रिपोर्ट करना चाहिए कि क्या संदिग्ध व्यक्ति निगरानी में है, और यदि नहीं, तो क्या उसकी राय में उसके लिए हिस्ट्रीशीट खोली जानी चाहिए। यदि किसी उपखंड का राजपत्रित प्रभारी अधिकारी ऐसी रिपोर्ट प्राप्त होने पर और आवश्यक समझी जाने वाली आगे की जाँच के बाद यह समझता है कि हिस्ट्रीशीट आवश्यक है, तो वह रिपोर्ट अधीक्षक को भेजेगा, जो यदि प्रस्ताव स्वीकार कर लेता है, तो खोले जाने वाले हिस्ट्रीशीट के प्रकार को परिभाषित करेगा और आदेश देगा कि संदिग्ध व्यक्ति को "स्टार" किया जाना चाहिए या नहीं। इसी प्रकार, जब भी किसी पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को, जाँच के अलावा, यह विश्वास करने का कारण मिले कि उसके क्षेत्र का कोई निवासी अपराध का आदी है, या जब भी किसी राजपत्रित अधिकारी या क्षेत्र निरीक्षक

को किसी भी कारण से यह विश्वास हो कि किसी व्यक्ति के लिए हिस्ट्रीशीट आवश्यक है, तो रिपोर्ट अधीक्षक को प्रस्तुत की जानी चाहिए, जो ऊपर बताए अनुसार उस पर आदेश पारित करेगा।

(2) **दोषसिद्धि या बरी होने पर.**- जब भी किसी व्यक्ति को डकैती, संधमारी, पशु चोरी या रेलवे मालगाड़ी से चोरी या किसी व्यावसायिक प्रकार के विविध अपराध के आरोप में सुनवाई के लिए भेजा जाता है, तो पुलिस थाने के प्रभारी अधिकारी को अपनी डायरी में यह लिखना होगा कि क्या अभियुक्त के पास हिस्ट्रीशीट है और यदि नहीं, तो क्या वह सिफारिश करता है कि उसके लिए हिस्ट्रीशीट खोली जानी चाहिए। यदि अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिया जाता है तो सरकारी अभियोजक का यह कर्तव्य होगा कि वह अपनी रिपोर्ट में, दोषमुक्ति या अन्यथा, अधीक्षक को सूचित करे कि क्या उसकी राय में हिस्ट्रीशीट की आवश्यकता है। इस संबंध में अधीक्षक स्टेशन अधिकारी को आवश्यक आदेश देंगे। यदि अभियुक्त को दोषी ठहराया जाता है, तो सरकारी अभियोजक को दोषसिद्धि और दोषमुक्ति की दैनिक रिपोर्ट (फॉर्म संख्या 107) के टिप्पणी कॉलम में लाल स्याही से शब्द "ऑन एच.एस." दर्ज करना होगा, यदि हिस्ट्रीशीट पहले से खुली है, या अक्षर "एच.एस." दर्ज करना होगा। अगर वह सिफारिश करता है कि किसी को तैयार रहना चाहिए। दोनों ही मामलों में, उसे एक पी.आर. पर्ची (फॉर्म संख्या 313) तैयार करनी होगी और उसे दोषसिद्धि और बरी होने की दैनिक रिपोर्ट के साथ संलग्न करना होगा। यदि हिस्ट्रीशीट पहले से ही खुली हुई है या अधीक्षक इस बात पर सहमत हैं कि हिस्ट्रीशीट खोली जानी चाहिए, तो वे इस पी.आर. पर्ची पर हस्ताक्षर करेंगे और दोषसिद्धि और बरी होने की दैनिक रिपोर्ट पर "एच.एस." या "ऑन एच.एस." अक्षरों के आद्याक्षर करेंगे। इसके बाद, सरकारी वकील संबंधित पुलिस थाने को हिस्ट्रीशीट खोलने के अधीक्षक के आदेश की सूचना देगा और पी.आर. पर्ची को जेल अधीक्षक को भेज देगा। यदि कोई हिस्ट्रीशीट नहीं खोली जाती है और यदि अधीक्षक इस बात पर सहमत नहीं हैं कि हिस्ट्रीशीट तैयार की जानी चाहिए, तो वह पी.आर. पर्ची पर हस्ताक्षर नहीं करेगा, जिसे रद्द कर दिया जाएगा।

10. अभिलेख पर प्रस्तुत दलीलों से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं के पिता निजाम मलिक को उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स और असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1986 की धारा 2 के तहत मुकदमा अपराध संख्या 336/2019 में फंसाया गया था, थाना कासना (बीटा-2), जिला गौतम बुद्ध नगर और इसके आधार पर, याचिकाकर्ता और उनके भाइयों, अर्थात् साजिद मलिक और इमरान मलिक और उनके पिता को बाद में उसी पुलिस स्टेशन द्वारा धारा 386 आईपीसी के तहत मुकदमा अपराध संख्या 408/2020 में फंसाया गया था और रिट याचिका दायर करने और हलफनामों के आदान-प्रदान के समय, ऊपर नामित याचिकाकर्ताओं के खिलाफ आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता और उसके भाइयों को उत्तर प्रदेश गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2/3(1) के अंतर्गत मुकदमा अपराध संख्या 710/2020 में आरोपित किया गया। याचिकाकर्ताओं का कोई अन्य आपराधिक इतिहास अभिलेखों में दर्ज नहीं है। गैंगस्टर अधिनियम की धारा 2 के तहत 2019 के अपराध संख्या 336 में, याचिकाकर्ताओं के केवल पिता, निजाम मलिक को फंसाया गया था और इसलिए, तीन याचिकाकर्ताओं, अर्थात् फिरोज मलिक, साजिद मलिक और इमरान मलिक के खिलाफ, उस समय धारा 386 आईपीसी के तहत केवल एक मामला दर्ज किया गया था। उपरोक्त मामले से पता चलता है कि एफआईआर दो निजी व्यक्तियों, आजाद कुमार पुत्र धर्मवीर सिंह और राजकुमार, पुत्र स्वर्गीय बलराज, निवासी ग्राम दादपुर,

थाना दनकौर, जिला गौतम बुद्ध नगर द्वारा दर्ज कराई गई थी। एफआईआर में याचिकाकर्ताओं और पांच नामजद तथा 9-10 अज्ञात अभियुक्तों के विरुद्ध जबरन वसूली का आरोप है। उपरोक्त आधार पर याचिकाकर्ता और उसके भाइयों को मुकदमा अपराध संख्या 710/2020 में धारा 2/3(1) उत्तर प्रदेश गैंगस्टर एक्ट के अंतर्गत आरोपित किया गया है। याचिकाकर्ताओं के पिता, निजाम मलिक को उत्तर प्रदेश गैंगस्टर और असामाजिक क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 1986 की धारा 2 के तहत फंसाना बिना किसी आधार के मामला था। याचिकाकर्ताओं के पिता के साथ 54 व्यक्तियों को उपरोक्त मामले में फंसाया गया था और याचिकाकर्ता के पिता की गिरफ्तारी पर इस न्यायालय द्वारा आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 140/2020 के आदेश दिनांक 10.1.2020 द्वारा रोक लगा दी गई थी।

11. किसी उचित निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह विचार करना आवश्यक है कि किसी व्यक्ति की हिस्ट्रीशीट खोलने से पहले पुलिस को किन मानदंडों का पालन करना चाहिए।

12. पुलिस विनियमन में एक पूरा अध्याय है, जिसका नाम अध्याय XX है और जिसका शीर्षक है "दुष्ट चरित्र वालों का पंजीकरण और निगरानी"। यह पूरा अध्याय विनियमन 223 से विनियमन 276 तक फैला हुआ है। हमारे उद्देश्य के लिए प्रासंगिक विनियमन विनियमन 223 से 252 होंगे। इन विनियमों के अवलोकन से पता चलता है कि इनका पूरा स्वर और भाव तत्कालीन औपनिवेशिक मानसिकता को दर्शाता है क्योंकि यह "आपराधिक जनजाति अधिनियम" (एक अधिनियम, जिसे 1956 में ही निरस्त कर दिया गया है) की बात करता है और इसके अन्य प्रावधान भी उस बीते हुए औपनिवेशिक काल को दर्शाते हैं जहाँ किसी समूह या व्यक्ति या जाति को "आपराधिक जनजाति" के रूप में दर्ज किया जाता था और उन पर निगरानी रखी जाती थी। यह "आदतन अपराधियों" की बात करता है और इतना ही नहीं, यह आगे कहता है कि कुछ प्रकार के अपराधी ऐसे होते हैं जो "सुधारने में असमर्थ" होते हैं।

13. यहाँ चुनौती सीमित है, लेकिन "पुलिस विनियमों" के विभिन्न प्रावधानों की वैधता कठोर प्रतीत होती है। पुलिस विनियमों के प्रतीत होने वाले घृणित प्रावधानों का संदर्भ उस समय और युग का आभास देने के लिए है जब पुलिस अधिनियम, 1861 के तहत ऐसे विनियम बनाए गए थे।

14. पुलिस विनियमों के नियम 228 में हिस्ट्रीशीट के दो वर्गों की बात की गई है: "क्लास-ए" और "क्लास-बी"। क्लास-ए डकैतों, चोरों, मवेशी चोरों, रेलवे मालगाड़ी चोरों और उनके दुष्प्रचारकों के लिए हिस्ट्रीशीट है, जबकि क्लास-बी उन पुष्ट और पेशेवर अपराधियों के लिए हिस्ट्रीशीट है जो डकैती, संधमारी, मवेशी चोरी और रेलवे मालगाड़ी से चोरी के अलावा अन्य अपराध करते हैं, जैसे पेशेवर धोखेबाज और अन्य विशेषज्ञ जिनकी आपराधिक व्यक्तिगत फाइलें आपराधिक जांच विभाग द्वारा रखी जाती हैं।

15. इस पुलिस विनियम के लेखकों के लिए, अपराधों के दो समूह (अर्थात वर्ग "ए" और वर्ग "बी") पूरी तरह से अलग प्रकृति के हैं। यू.पी. पुलिस विनियम के विनियम 228 में आगे कहा गया है कि यद्यपि वर्ग "ए" या

वर्ग "बी" में निगरानी के अभिलेखों और हिस्ट्रीशीट खोलने का तरीका एक ही है, फिर भी जहां वर्ग "बी" हिस्ट्रीशीट खोली जाती है, उसे पहले पृष्ठ के शीर्ष पर लाल पट्टी के निशान के साथ खोलना होगा और वर्ग "बी" के हिस्ट्रीशीटर को कभी भी वर्ग "ए" के हिस्ट्रीशीटर में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, हालांकि यदि कोई व्यक्ति, जो वर्ग "बी" के अंतर्गत है और वर्ग "ए" के इतिहास से संबंधित अपराध में भी लिप्त पाया जाता है, तो उसके खिलाफ दोनों प्रकार के अपराधों की निगरानी खोली जानी चाहिए। हालांकि, यह संभव है कि वर्ग "ए" का हिस्ट्रीशीटर वर्ग "बी" के हिस्ट्रीशीटर में परिवर्तित हो जाए।

16. सामान्यतः यह मान लेना पड़ता है कि चूँकि वर्ग "क" की हिस्ट्रीशीट में डकैती, संधमारी आदि जैसे बड़े अपराधों का विवरण होता है, इसलिए ऐसे मामलों में खोली गई हिस्ट्रीशीट अधिक गंभीर प्रकृति की होती है। लेकिन यह सच नहीं है, बल्कि सच्चाई इसके विपरीत है। उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमावली के विनियम 229 के अनुसार, हिस्ट्रीशीट को "वर्ग क" और "वर्ग ख" के रूप में वर्गीकृत करना इस सिद्धांत पर आधारित है कि जहाँ एक ओर डकैत, चोर, मवेशी चोर या रेल-मालगाड़ी चोर के सुधारने की हमेशा आशा रहती है, वहीं विशेषज्ञ विविध अपराधी (वर्ग "ख" की हिस्ट्रीशीट वाला) सामान्यतः "सुधारने में असमर्थ" होता है। इसलिए, यह वर्गीकरण पूरी तरह से उस अपराध के प्रकार पर आधारित है जिसके लिए संदिग्ध आदी हैं और इसे विनियमित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। पुलिस विनियमों का विनियम 229 इस प्रकार है:-

"229. हिस्ट्रीशीटों का ए और बी के रूप में यह वर्गीकरण इस सिद्धांत पर आधारित है कि, जहां एक डाकू, चोर, मवेशी चोर या रेलवे मालगाड़ी चोर के अपने तौर-तरीके सुधारने की हमेशा उम्मीद रहती है, वहीं विशेषज्ञ विविध अपराधी सामान्य तौर पर सुधार के अयोग्य होता है। इसलिए, यह वर्गीकरण पूरी तरह से उस अपराध के प्रकार पर आधारित है जिसके लिए संदिग्ध आदी हैं और इसका उद्देश्य केवल यह नियंत्रित करना है कि- (1) वह अवधि जिसके लिए किसी संदिग्ध को उसके खिलाफ कोई शिकायत न होने पर सामान्यतः निगरानी में रहना चाहिए। (2) उसकी गतिविधियों के लिए किस प्रकार की निगरानी आवश्यक है। किसी संदिग्ध पर की जाने वाली उचित निगरानी की सीमा उसके वर्गीकरण पर नहीं, बल्कि इस बात पर निर्भर करेगी कि किसी विशेष समय में वह किस हद तक सक्रिय माना जाता है।

17. वर्ग "ए" के हिस्ट्रीशीटों का एक और वर्गीकरण है। निगरानी में रखे गए व्यक्तियों की अधिक गंभीर प्रकृति को "तारांकित" श्रेणी में रखा जाता है। उनकी निगरानी अधिक गहन होती है और उनकी अवधि भी अधिक होती है, जबकि पुलिस विनियमों के लेखकों के अनुसार, वर्ग "बी" का हिस्ट्रीशीटर "सुधारने में असमर्थ" होता है। पुलिस विनियमों के विनियम 232 में कहा गया है कि वर्ग "बी" के संदिग्धों पर तारांकित करना आवश्यक नहीं है। पुलिस विनियमों के विनियम 232 में निम्नलिखित लिखा है:-

"232. बी श्रेणी की हिस्ट्रीशीट लगातार खुली रहेगी और इन शीटों में दर्ज व्यक्ति, किसी विशेष कारण को छोड़कर, मृत्युपर्यंत निगरानी में रहेंगे। इसलिए इस श्रेणी के संदिग्धों पर स्टार लगाना अनावश्यक है।"

18. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश ने दिनांक 03.11.2022 के पत्र द्वारा उत्तर प्रदेश पुलिस विनियमन के अंतर्गत दिशा-निर्देश तैयार किए हैं जिनका पालन संबंधित पुलिस अधिकारियों द्वारा वर्ग 'ए' श्रेणी की हिस्ट्रीशीट खोलते/समीक्षा करते समय किया जाना है।

दिशा-निर्देश इस प्रकार हैं:

ज्ञातव्य है कि उ०प्र० पुलिस रेगुलेशन के पैरा-228 में अभ्यासिक अपराधियों एवं उसके दुष्प्रेरक शीर्षक के अन्तर्गत दोनों वर्गों की हिस्ट्रीशीट को वर्गीकृत किया गया है। वर्ग "क" की हिस्ट्रीशीट में डकैत, सैधमार, पशुचोर, रेल के डिब्बों के माल चोर और उसके दुष्प्रेरक वर्णित हैं, परन्तु दोनों वर्गों के लिए शीर्ष पर जो महत्वपूर्ण विश्लेषित है, वह अभ्यासिक अपराधी शब्द है। वर्ग "क" की हिस्ट्रीशीट को पुलिस रेगुलेशन के पैरा-231 के अन्तर्गत 02 वर्ष बाद पुर्नाविलोकित किये जाने की प्रक्रिया अपनाए जाने का प्राविधान है, अतः मा० उच्च न्यायालय द्वारा निर्गत आदेश के आलोक में हिस्ट्रीशीट खोले जाने की कार्यवाही को अधिक न्यायसंगत एवं वस्तुपरक बनाये जाने हेतु निम्नलिखित दिशा-निर्देश निर्गत किये जा रहे-

1- 18 वर्ष से कम आयु के किसी भी व्यक्ति की हिस्ट्रीशीट नहीं खोली जायेगी।

2- हिस्ट्रीशीट खोलने के लिए उ०प्र० पुलिस रेगुलेशन के पैरा 228 से 240 तक का गहन अध्ययन करके उसी के अनुरूप कार्यवाही की जाये।

3- हिस्ट्रीशीट ऐसे व्यक्तियों की खोली जाये जिनके बारे में यह विश्वास करने का युक्तियुक्त आधार हो कि आदतन अपराधी है या हो सकता है। रूटीन में हिस्ट्रीशीट न खोली जाये।

1- हिस्ट्रीशीट ऐसे व्यक्तियों की खोली जाये जिनकी गहन निगरानी (Intense Surveillance) की आवश्यकता हो।

ii- जो ऐसे अपराधियों के दुष्प्रेरक हों अथवा उनका ऐसा होना सम्भावित हो।

iii- निजी रंजिश में दर्ज अभियोगों अथवा अन्य असंगत आधारों पर किसी व्यक्ति की हिस्ट्रीशीट न खोली जाये।

iv- उत्तर प्रदेश गिरोहबंद और समाज विरोधी क्रियाकलाप अधिनियम/उ०प्र० गुण्डा नियंत्रण अधिनियम के अन्तर्गत की गयी कार्यवाहियों को हिस्ट्रीशीट खोलने का आधार न बनाया जाये।

V- चूंकि हिस्ट्रीशीट जनपद के पुलिस अधीक्षक के आदेश से खोली जाती है, अतः वे पूर्णतया आधारों से संतुष्ट होने पर ही हिस्ट्रीशीट खोलने का अनुमोदन करें।

vi- थाना प्रभारी द्वारा प्रेषित हिस्ट्रीशीट का सम्बन्धित क्षेत्राधिकारी एवं अपर पुलिस अधीक्षक द्वारा सघन परीक्षण करने के उपरान्त ही वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक द्वारा हिस्ट्रीशीट खोलने अनुमोदित किया जाये।

4- उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशन के पैरा 228 में 276 में वर्णित प्रावधानों के अन्तर्गत 18 वर्ष से अधिक तथा 21 वर्ष तक के अपराधियों की हिस्ट्रीशीट खोलने से पूर्व वरिष्ठ अधीक्षक / पुलिस अधीक्षक द्वारा सूचनार्थ पुलिस महानिरीक्षक, सी.बी.सी.आई.डी. को इस आशय से प्रेषित की जायेगी कि उन्हें कोई आपत्ति हो तो पत्र प्राप्ति के दिनांक 15 दिवस के अन्दर वह अपनी टिप्पणी सहित सम्बन्धित जिला मुख्यालयों को भेजेंगे।

5- पुलिस महानिरीक्षक, सी.बी.सी.आई.डी. द्वारा यदि कोई आपत्ति व्यक्त की जाती है, तो जनपद के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक/पुलिस अधीक्षक द्वारा प्रकरण का परीक्षण किया जायेगा एवं यदि अब भी हिस्ट्रीशीट खोलने के लिए उपयुक्त पाया जाता है तो उसकी हिस्ट्रीशीट खोलकर इसकी सूचना पुलिस महानिरीक्षक, सी.बी.सी.आई.डी. को प्रेषित की जायेगी।

6- यदि पत्र की प्राप्ति के 15 दिनों के अन्दर पुलिस महानिरीक्षक, सी.बी.सी.आई.डी. द्वारा उक्त प्रकरण में कोई आपत्ति नहीं की जाती है तो यह मान लिया जायेगा कि उनको वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक /पुलिस अधीक्षक द्वारा संस्तुत की गयी आख्या पर कोई आपत्ति नहीं है।

अतः आप सभी को निर्देशित किया जाता है कि उ०प्र० पुलिस रेगुलेशन के उपरोक्त पैरा एवं मुख्यालय स्तर से निर्गत निर्देशों/परिपत्रों का पुनः गहनता से अध्ययन कर लें एवं जनपद स्तर पर कार्यशाला का आयोजन कर अपने अधीनस्थ राजपत्रित अधिकारियों को विस्तार से अवगत करा दें और यह भी सुनिश्चित करें कि इन निर्देशों का कड़ाई से अनुपालन किया जाए।

19. विनियमन 228 का अवलोकन करने से पता चलता है कि इसमें प्रयुक्त भाषा स्पष्ट है तथा इसमें स्पष्ट आदेश है कि हिस्ट्रीशीट केवल उन व्यक्तियों के लिए खोली जा सकती है जो आदतन अपराधी हैं या बनने की संभावना रखते हैं या ऐसे अपराधियों को बढ़ावा देते हैं। वर्ग ए और वर्ग बी में हिस्ट्रीशीट का वर्गीकरण भी स्पष्ट रूप से किया गया है और चूंकि वर्तमान रिट याचिका में चुनौती वर्ग बी की हिस्ट्रीशीट को दी गई है, इसलिए विनियमन 228 के उप-विनियम (2) पर विचार करने की आवश्यकता है, जो स्पष्ट रूप से प्रावधान करता है कि ऐसी हिस्ट्रीशीट उन पुष्ट और पेशेवर अपराधियों के लिए खोली जा सकती है जो डकैती, चोरी, मवेशी चोरी आदि के अलावा अन्य अपराध करते हैं, जैसा कि उक्त उप-विनियम में वर्णित है।

20. हालाँकि, विनियम 232 अधिकारियों पर हिस्ट्रीशीट को लगातार खुला रखने और हिस्ट्रीशीट की मृत्यु तक निगरानी रखने का दायित्व डालता है। हालाँकि, ऐसी कार्रवाई के लिए, अधिकारियों को विशेष कारण दर्ज करने होंगे। विनियम 233 में स्पष्ट रूप से प्रावधान है कि हिस्ट्रीशीट के विषय की निगरानी बंद करने का अर्थ हिस्ट्रीशीट को बंद करना नहीं है और हिस्ट्रीशीट, जो केवल सूचना का एक अभिलेख है, उसे कभी भी बंद नहीं माना जाना चाहिए। यह प्राधिकारियों पर एक और दायित्व डालता है कि वे इतिहास पत्र पर निगरानी बंद करने के संबंध में एक नोट बनाएं और उसके बाद, कोई आवधिक या अन्य प्रविष्टियां करने की आवश्यकता नहीं है,

जब तक कि प्राधिकारियों के ध्यान में कोई ऐसी बात न आ जाए जिसे इतिहास पत्र में दर्ज करना वांछनीय हो।

21. पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश के उपर्युक्त दिशा-निर्देशों के अवलोकन के पश्चात्, यह स्पष्ट है कि उप-खण्ड (iii) के अनुसार, वर्ग-A में हिस्ट्रीशीट खोलने की आवश्यकता नहीं है, जहाँ व्यक्तिगत रंजिश के कारण मामला दर्ज किया गया हो। वर्तमान मामले में, याचिकाकर्ताओं के साथ स्क्रेप की बिक्री/खरीद की व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता के कारण निजी व्यक्तियों द्वारा धारा 386 आईपीसी के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया है। उपरोक्त दिशा-निर्देशों के उप-खण्ड (iv) में उल्लेख है कि उत्तर प्रदेश गैंगस्टर्स एवं असामाजिक क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अंतर्गत किसी मामले में संलिप्तता, वर्ग-A की हिस्ट्रीशीट खोलने का आधार नहीं हो सकती। अतः यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध दिनांक 16.6.2021 के आक्षेपित आदेश द्वारा हिस्ट्रीशीट खोली गई है, जो कि पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक 03.11.2022 को निर्धारित दिशा-निर्देशों के खंड (iii) और (iv) के विरुद्ध है, किन्तु यह केवल वर्ग-A की हिस्ट्रीशीट पर लागू होता है, वर्ग-B की हिस्ट्रीशीट पर नहीं। अतः यह उन याचिकाकर्ताओं के लिए कोई सहायक नहीं है जिनके विरुद्ध वर्ग-B की हिस्ट्रीशीट खोली गई है।

22. इसके अलावा, इस मामले में पुलिस उपायुक्त, ग्रेटर नोएडा, गौतमबुद्ध नगर का आदेश किसी भी प्रकार की विवेकपूर्ण कार्रवाई को नहीं दर्शाता है। इसमें केवल प्रभारी एस.एच.ओ., थाना बिटा-2, गौतमबुद्ध नगर और जिला समिति की रिपोर्ट को ही स्वीकार किया गया है। उपरोक्त रिपोर्ट को स्वीकार करने का कोई कारण नहीं बताया गया है।

23. पुलिस विनियमन स्वतंत्रता-पूर्व का विनियमन है, जब भारत का संविधान अस्तित्व में नहीं आया था, फिर भी, उपरोक्त रिपोर्ट को स्वीकार करने और याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध हिस्ट्रीशीट खोलने के निर्देश में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 की आवश्यकताओं का पालन नहीं किया गया प्रतीत होता है। यहाँ तक कि ऐसे कानून/विनियम/नियम/कानून में भी जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का अनुप्रयोग प्रदान नहीं किया गया है, ऐसे प्रावधानों में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिदेश को पढ़ा जाना आवश्यक है।

24. मांगी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2004) 2 एससीसी 447 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 के अधिदेश के पालन के संबंध में पैराग्राफ संख्या 10 में निम्नानुसार निर्णय दिया है:-

यहां तक कि यदि कोई कानून मौन है और अधिनियम या उसके तहत बनाए गए नियमों में कोई सकारात्मक शब्द नहीं हैं, तो भी उन पक्षों को सुनने की आवश्यकता को स्पष्ट करने में कुछ भी गलत नहीं हो सकता है जिनके अधिकार और हित, पारित किए जाने वाले आदेशों से प्रभावित होने की संभावना है, और निर्णय लेने से पहले निष्पक्ष प्रक्रिया का पालन करने की आवश्यकता है, जब तक कि कानून में अन्यथा प्रावधान न हो।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को कानून के रिक्त अंतरालों में पढ़ा जाना चाहिए, जब तक कि इसके विपरीत स्पष्ट आदेश न हो। किसी भी रूप या प्रक्रिया को वादी के बचाव या पक्ष की प्रस्तुति को रोकने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। प्रक्रियात्मक कानूनों में किसी प्रावधान के अभाव में भी, न्यायिक या अर्ध-न्यायिक प्रकृति के प्रत्येक न्यायाधिकरण/न्यायालय को अपने कर्तव्यों का बेहतर और उचित निर्वहन सुनिश्चित करने के लिए प्राकृतिक न्याय और निष्पक्षता की आवश्यकताओं को प्राप्त करने हेतु आवश्यक तौर-तरीकों को अपनाने की शक्ति निहित है। प्रक्रिया मुख्य रूप से प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित होती है, चाहे किसी भी स्थिति में उस संबंध में स्पष्ट प्रावधान द्वारा इसके अनुप्रयोग की सीमा कुछ भी हो। यह हमेशा से एक प्रिय सिद्धांत रहा है। जहाँ कानून प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन के बारे में मौन है, वहाँ ऐसी वैधानिक मौनता को प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुपालन के रूप में समझा जाता है जहाँ पक्षों के पर्याप्त अधिकार काफी हद तक प्रभावित होते हैं। प्राकृतिक न्याय का अनुप्रयोग तब तक प्रकल्पित हो जाता है, जब तक कि कानून के स्पष्ट शब्दों या आवश्यक आशय द्वारा इसे अपवर्जित न पाया जाए। (देखें स्वदेशी कॉटन मिल्स आदि आदि बनाम भारत संघ आदि आदि, एआईआर 1961 एससी 818)। इसका उद्देश्य न्याय सुनिश्चित करना या न्याय की विफलता को रोकना है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत कानून का स्थान नहीं लेते, बल्कि उसके पूरक होते हैं। ये नियम केवल उन क्षेत्रों में लागू होते हैं जो किसी भी वैध रूप से बनाए गए कानून के अंतर्गत नहीं आते। ये एक साध्य के साधन हैं, न कि स्वयं साध्य। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के कई पहलू हैं। उनमें से दो हैं: मामले की सूचना, और स्पष्टीकरण का अवसर।

96. इन अपीलों और रिट याचिकाओं में हम जिस प्राकृतिक न्याय के नियम, अर्थात् ऑडी अल्टरम पार्टम नियम, से संबंधित हैं, का अपने पूर्णतम रूप में अर्थ यह है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध उसके विरुद्ध कोई पक्षपातपूर्ण आदेश पारित किया जा सकता है, उसे उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों और अभियोगों की जानकारी दी जानी चाहिए, उस पर अपना स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अवसर दिया जाना चाहिए, उसे मौखिक या दस्तावेजी, दोनों प्रकार के साक्ष्य जानने का अधिकार होना चाहिए, जिनके आधार पर उसके विरुद्ध मामले का निर्णय प्रस्तावित है, और उन दस्तावेजों का निरीक्षण करने का अधिकार होना चाहिए जिनका उपयोग उसके विरुद्ध किए जाने के उद्देश्य से किया जा रहा है, उसे अपने विरुद्ध साक्ष्य देने वाले गवाहों की अपनी उपस्थिति में जाँच कराने और उनसे जिरह करने का अधिकार होना चाहिए, और अपने बचाव में मौखिक और दस्तावेजी, दोनों प्रकार के साक्ष्य स्वयं प्रस्तुत करने का अधिकार होना चाहिए। हालाँकि, निष्पक्ष सुनवाई की प्रक्रिया का न्यायालय में न्यायिक प्रक्रिया के अनुरूप होना आवश्यक नहीं है, क्योंकि वादों के न्यायिक निर्णय में प्रक्रिया और साक्ष्य के कई तकनीकी नियम शामिल होते हैं जो अनावश्यक हैं और अर्ध-न्यायिक या प्रशासनिक जाँच में ऑडी अल्टरम पार्टम नियम के अर्थ में निष्पक्ष सुनवाई के उद्देश्य के लिए आवश्यक नहीं हैं। (जोर दिया गया)

25. भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 के संदर्भ में, इस न्यायालय ने मुन्ना लाल गुप्ता बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य के मामले में वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट खोलने के प्रभाव पर विचार किया है, जो 2016 एससीसी ऑनलाइन ऑल 3023 में रिपोर्ट किया गया है: -

9. यह स्पष्ट है कि हिस्ट्रीशीट में उनका नाम दर्ज रहने का कोई औचित्य नहीं है। यह जानना भी उचित है कि हिस्ट्रीशीट में उल्लिखित चार मामले वर्ष 1982, 1987 और 1988 से संबंधित हैं, लेकिन प्रति-शपथपत्र के अनुसार, यह वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट वर्ष 1979 में खोली गई थी। रिट याचिका के साथ दायर याचिकाकर्ता के हलफनामे के किसी भी तर्क का प्रति-शपथपत्र में खंडन नहीं किया गया और केवल इतना ही उल्लेख किया गया कि:

" हालांकि यह प्रस्तुत किया गया है कि पुलिस अधीक्षक द्वारा आपराधिक मामले में याचिकाकर्ता की संलिप्तता के संबंध में उनके समक्ष प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार पर हिस्ट्रीशीट खोली गई थी।

10. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बिना किसी प्रत्यक्ष कृत्य या आपराधिक गतिविधि में संलिप्तता के, याचिकाकर्ता के लिए वर्ष 1979 में वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट खोली गई थी। यह स्पष्ट है कि यह हिस्ट्रीशीट तथ्यों की पुष्टि किए बिना और बिना सोचे-समझे खोली गई थी। इसलिए, हम इस बात से संतुष्ट हैं कि पुलिस अधीक्षक के पास यह मानने के लिए पर्याप्त आधार नहीं थे कि याचिकाकर्ता के मामले में निगरानी आवश्यक थी और इस तथ्य का समर्थन करने के लिए कोई सबूत मौजूद नहीं था कि याचिकाकर्ता की निगरानी आवश्यक थी।

11. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1)(क) एक नागरिक के मौलिक अधिकार की रक्षा करता है, जिसमें यह प्रावधान है कि 'सभी नागरिकों को वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार होगा।' संविधान का अनुच्छेद 19(1)(घ) यह प्रावधान करता है कि 'सभी नागरिकों को भारत के राज्यक्षेत्र में स्वतंत्र रूप से घूमने का अधिकार होगा।' संविधान का अनुच्छेद 21 एक नागरिक के जीवन और दैहिक स्वतंत्रता संबंधी मौलिक अधिकार की रक्षा करता है, जिसमें कहा गया है कि 'किसी भी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही उसके जीवन या दैहिक स्वतंत्रता से वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।' ये मौलिक अधिकार उचित प्रतिबंधों के अधीन हैं।

12. इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या याचिकाकर्ता के अनुच्छेद 19 (1) (घ) के तहत प्राप्त मौलिक अधिकार का भी इतिहास-पत्र और निगरानी द्वारा उल्लंघन होता है। उक्त मौलिक अधिकार की विषय-वस्तु क्या है? राज्य की ओर से तर्क दिया गया है कि इसका अर्थ केवल यह है कि कोई व्यक्ति बिना किसी रोक-टोक के एक स्थान से दूसरे स्थान पर भौतिक रूप से आ-जा सकता है। यह तर्क खंड (घ) में क्रियाविशेषण "स्वतंत्र रूप से" की उपेक्षा करता है। यदि वह क्रियाविशेषण उपवाक्य में नहीं है, तो इस तर्क का कुछ औचित्य हो सकता है; लेकिन क्रियाविशेषण "स्वतंत्रतापूर्वक" स्वतंत्रता को एक व्यापक अर्थ प्रदान करता है। केवल भौतिक प्रतिबंधों से अप्रभावित गति ही अपने आप में किसी व्यक्ति की यात्रा का उद्देश्य नहीं हो सकती। एक व्यक्ति सामान्यतः किसी उद्देश्य की तलाश में यात्रा करता है। वह किसी स्थान पर आनंद लेने, व्यापार करने, मित्रों से मिलने, दूसरों के साथ गुप्त और अंतरंग परामर्श करने और ऐसे ही कई अन्य कार्यों के लिए जाता है। अगर किसी व्यक्ति पर नज़र रखी जाए, तो उसकी गतिविधियाँ स्पष्ट रूप से सीमित हो जाती हैं। वह शारीरिक रूप से तो घूम सकता है, लेकिन यह केवल एक स्वचालित मशीन की ही गतिविधि हो सकती है। पुलिसवालों की निगरानी

में होने वाली गतिविधि को स्वतंत्र गतिविधि कैसे कहा जा सकता है? पूरा देश ही उसकी जेल है। इसलिए खंड (घ) में वर्णित गतिविधि की स्वतंत्रता एक स्वतंत्र देश में गतिविधि होनी चाहिए, यानी एक ऐसे देश में जहाँ वह जो चाहे कर सकता है, जिससे चाहे बात कर सकता है, बिना किसी आशंका के अपनी पसंद के लोगों से मिल सकता है, और निश्चित रूप से सामाजिक नियंत्रण के कानून के अधीन है। निगरानी की छाया में याचिकाकर्ता निश्चित रूप से इस स्वतंत्रता से वंचित है। वह शारीरिक रूप से घूम तो सकता है, लेकिन स्वतंत्र रूप से ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि उसकी सभी गतिविधियों पर नज़र रखी जाती है और उन्हें दर्ज किया जाता है। उस पर डाली गई निगरानी की चादर उसके अंदर अनिवार्य रूप से संकोच पैदा करती है और वह अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पाता।

13. यह मानते हुए कि संविधान का अनुच्छेद 19(1)(डी) केवल शारीरिक गतिविधियों तक ही सीमित होना चाहिए, वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ इसका संयोजन हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है। निगरानी का कार्य निश्चित रूप से उक्त स्वतंत्रता पर प्रतिबंध है? यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त स्वतंत्रता अपनी व्यक्तिपरक या मनोवैज्ञानिक विषयवस्तु से भी रहित है, बल्कि केवल वाक् और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को ही बनाए रखेगी। एक उदाहरण से हमारी बात स्पष्ट हो जाएगी। किसी कैदी को, चाहे वह उसकी पत्नी हो, बेटा हो या दोस्त, गार्ड की मौजूदगी में उससे मिलने की अनुमति है। कैदी, आगंतुक से बात कर सकता है; लेकिन क्या यह कहा जा सकता है कि वह इस आज़ादी का पूरा आनंद ले रहा है? उसके लिए यह संभव है कि वह आगंतुक के सामने अपने सच्चे और अंतरंग विचार पूरी तरह से व्यक्त कर सके, जैसा वह चाहे। लेकिन उक्त आज़ादी पर लगे प्रतिबंध वैध कानून द्वारा समर्थित हैं। इस सादृश्य को वर्तमान मामले में विस्तारित करने का अर्थ है कि निगरानी में रखे गए व्यक्ति को हमारे देश की सीमाओं के भीतर एक कैदी के रूप में और निगरानी लागू करने वाले प्राधिकारियों को बिना किसी उचित प्रतिबंध के, उनके कार्यों को बनाए रखने या उनकी रक्षा करने वाले प्रहरी के रूप में माना जाए। इस प्रकार, यह माना जाना चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(a) के तहत याचिकाकर्ता की स्वतंत्रता का भी उल्लंघन हुआ है।

14. ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य, एआईआर 1950 एससी 27 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है:

" यदि कोई व्यक्ति स्वतंत्र है, तो केवल तभी वह अन्य अनेक सहायक अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, अर्थात्, वह कुछ सीमाओं के भीतर, जो चाहे बोल सकता है, जहाँ चाहे इकट्ठा हो सकता है, कोई भी संघ या यूनियन बना सकता है, अपनी इच्छानुसार स्वतंत्र रूप से घूम सकता है, जहाँ चाहे निवास और बसावट कर सकता है और कोई भी पेशा अपना सकता है या कोई भी व्यवसाय, व्यापार या कारोबार कर सकता है। ये व्यक्ति की स्वतंत्रता के गुण हैं और फलस्वरूप व्यक्ति से जुड़े हुए हैं।"

15. निगरानी के साये में याचिकाकर्ता निश्चित रूप से इस स्वतंत्रता से वंचित है। ऐसी हिस्ट्रीशीट की मौजूदगी के कारण, याचिकाकर्ता पुलिस की निगरानी के साये में अपनी आवाजाही की स्वतंत्रता के साथ-साथ निजता के अधिकार से भी वंचित है। वह शारीरिक रूप से तो घूम सकता है, लेकिन अपनी सभी गतिविधियों के लिए

स्वतंत्र रूप से ऐसा नहीं कर सकता क्योंकि उस पर नज़र रखी जा रही है और उसे नोट किया जा रहा है। इस हिस्ट्रीशीट की जानकारी के बाद, वह उतनी स्वतंत्रता से काम नहीं कर सकता जितना वह ऐसी हिस्ट्रीशीट के अभाव में करना चाहता है।

16. जहाँ पुलिस अधिकारी ने यह मानने का कोई कारण नहीं बताया है कि याचिकाकर्ता एक हताश व्यक्ति और आदतन अपराधी है, वहाँ उसके विरुद्ध खोली गई हिस्ट्रीशीट संबंधित नियमों के अधीन नहीं है, और इसलिए ऐसी हिस्ट्रीशीट को बंद करने का आदेश देना न्यायसंगत होगा। निगरानी की आड़ में पुलिस द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग, जो याचिकाकर्ता की दैनिक जीवन में स्वतंत्र आवाजाही के संबंध में उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिक्रमण करता है, जबकि उसके विरुद्ध हिस्ट्रीशीट जारी रखने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है।

17. ऊपर बताए गए कारणों से, हम मानते हैं कि याचिकाकर्ता मुन्ना लाल गुप्ता के लिए वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट एक त्रुटिपूर्ण कार्य था, जो तथ्यों की पुष्टि किए बिना, और तत्कालीन पुलिस अधीक्षक द्वारा उचित संतुष्टि प्राप्त किए बिना या विचार किए बिना किया गया था। इस हिस्ट्रीशीट की कभी समीक्षा नहीं की गई क्योंकि नियमों के अनुसार वर्ग-बी हिस्ट्रीशीट मृत्यु तक जारी रहेगी।

26. जब औपनिवेशिक शासकों द्वारा पराधीन भारतीयों के लिए हिस्ट्रीशीट खोलने संबंधी पुलिस नियम बनाए गए थे, तो उनमें प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पालन की कोई आवश्यकता शामिल नहीं की गई थी क्योंकि उस समय राज्य एक लोकतांत्रिक राज्य नहीं था और इसलिए, राज्य जो भी निर्णय लेता था, वह अंतिम होता था। भारत के संविधान के लागू होने के बाद, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित प्राकृतिक न्याय के नियमों के पालन की आवश्यकताएँ अनिवार्य हो गई हैं। इसका पालन वहाँ अधिक आवश्यक है जहाँ किसी व्यक्ति के जीवन, आजीविका और स्वतंत्रता का अधिकार शामिल हो। हिस्ट्रीशीट खोलने का आदेश वरिष्ठ पुलिस अधिकारी द्वारा केवल थाने की रिपोर्ट को स्वीकृत करके पारित किया जाता है। हिस्ट्रीशीट खोलना किसी व्यक्ति को किसी अपराध के कारण आपराधिक मामले में फंसाने के समान नहीं है। हिस्ट्रीशीट खोलने से पुलिस को हिस्ट्रीशीटर की निगरानी का अधिकार मिल जाता है। उच्च पुलिस प्राधिकारी के समक्ष अनुमोदन हेतु प्रस्तुत पुलिस रिपोर्ट सही है या नहीं, इस पर विचार नहीं किया जाता और न ही हिस्ट्रीशीटर बनाए जाने वाले व्यक्ति को पुलिस रिपोर्ट के विरुद्ध अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है। वर्ग-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने के बाद, हिस्ट्रीशीटर आजीवन निगरानी में रहता है और निगरानी के नाम पर उसके स्वतंत्रता के अधिकार पर गंभीर आघात होता है। वह जीवन भर पुलिस के हुकम, धमकियों और दबाव का शिकार होता है। ऐसी स्थिति में, एक संप्रभु लोकतांत्रिक राज्य के नागरिक पर निगरानी रखना भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। ऐसे व्यक्ति की निंदा अनसुनी कर दी जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के तहत प्रदत्त विधि की समानता और विधि के समान संरक्षण की अवधारणा का निर्मम उल्लंघन किया जाता है। क्लास-ए हिस्ट्रीशीट खोलने के लिए सूचीबद्ध अपराध डकैती, संधमारी, मवेशी चोरी, रेलवे-मालगाड़ी की चोरी और उसके लिए उकसाना हैं। उल्लेखनीय है कि उनकी हिस्ट्रीशीट के क्लास-ए में सूचीबद्ध अपराध अब ज़्यादा

नहीं होते। इसलिए, पुलिस को क्लास-बी हिस्ट्रीशीट खोलने के लिए उच्च पुलिस अधिकारी को रिपोर्ट देकर किसी भी अपराध के आधार पर किसी को भी फंसाने का पूर्ण अधिकार है। वर्तमान स्थिति को देखते हुए, व्यक्तिगत एवं राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण बड़े पैमाने पर फैलाए जा रहे झूठे आरोपों को ध्यान में रखते हुए, हिस्ट्रीशीट खोलने संबंधी प्रावधानों की समीक्षा आवश्यक है। राज्य ने महसूस किया है कि हिस्ट्रीशीट खोलने संबंधी पुलिस नियमों का दुरुपयोग किया जा रहा है, इसलिए पुलिस महानिदेशक, उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक 3.11.2022 को दिशा-निर्देश जारी किए गए, जिनमें केवल वर्ग-अ की हिस्ट्रीशीट खोलने/समीक्षा करने का प्रावधान है, जबकि वर्ग-ब की हिस्ट्रीशीट खोलने/समीक्षा करने के लिए ऐसा कोई दिशानिर्देश जारी नहीं किया गया है। इसलिए, हम पाते हैं कि पुलिस के पास देश के किसी भी नागरिक के खिलाफ किसी भी बहाने से क्लास-बी हिस्ट्रीशीट खोलने की पूर्ण शक्तियां हैं, जैसे गैंगस्टर्स एक्ट के तहत एक मामले में फंसाना और मुखबिर के साथ व्यक्तिगत/व्यावसायिक प्रतिद्वंद्विता के कारण उकसावे के एक मामले में अन्य याचिकाकर्ताओं को फंसाना और इसके आधार पर गैंगस्टर्स एक्ट की धारा 2/3 (1) के तहत एक अन्य मामले में फंसाना। पुलिस स्पष्ट रूप से स्वतंत्रता-पूर्व नियमों के आधार पर भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के तहत निर्धारित भारतीय संविधान के अधिदेश के विरुद्ध कार्य कर रही है। अब समय आ गया है कि इस प्रथा पर रोक लगाई जाए और राज्य के किसी भी नागरिक के विरुद्ध वर्ग-अ या वर्ग-ब की हिस्ट्रीशीट खोलने से पहले, उसे अपनी आपत्ति प्रस्तुत करने का एक अवसर दिया जाए, ताकि पुलिस के उच्च अधिकारी द्वारा उसे स्वीकार किया जा सके और ऐसा अधिकारी किसी नागरिक के विरुद्ध किसी भी वर्ग की हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश दे। वर्ग-ए और वर्ग-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश देते समय, उच्च पुलिस प्राधिकारी पुलिस थाने की रिपोर्ट के विरुद्ध दर्ज नागरिक की आपत्ति पर विचार करने के पश्चात किसी भी वर्ग की हिस्ट्रीशीट खोलने का निर्देश देने के अपने कारणों को दर्ज करेगा।

27. तदनुसार, प्रतिवादी संख्या 3, पुलिस उपायुक्त, ग्रेटर नोएडा, गौतमबुद्ध नगर के दिनांक 16.6.2021 के आदेश द्वारा उपरोक्त याचिकाकर्ताओं के संबंध में खोली गई विवादित हिस्ट्रीशीट/शीटें एतद्वारा निरस्त की जाती हैं। याचिकाकर्ताओं की निगरानी तत्काल रोकी जाए।

28. राज्य सरकार को निर्देश दिया जाता है कि वह हिस्ट्रीशीट खोलने की प्रक्रिया पर गौर करे तथा उस व्यक्ति को आपत्ति का अवसर प्रदान करने के लिए आवश्यक संशोधन/दिशानिर्देश जारी करे, जिसके विरुद्ध पुलिस वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के समक्ष वर्ग-ए या वर्ग-बी की हिस्ट्रीशीट खोलने की सिफारिश करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। राज्य सरकार प्रत्येक वर्ष नागरिकों के विरुद्ध खोले गए हिस्ट्रीशीटों की समीक्षा का भी प्रावधान करेगी, ताकि जिन मामलों में ऐसे व्यक्ति शामिल हों जिनके विरुद्ध हिस्ट्रीशीट खोली गई थी और जो बाद में आपराधिक आरोपों से दोषमुक्त/बरी हो गए हों, उनकी हिस्ट्रीशीट बंद कर दी जाए और उनके जीवन एवं स्वतंत्रता पर पुलिस की निगरानी का साया हट जाए।

29. इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (अनुपालन) को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश को एक सप्ताह के भीतर प्रमुख सचिव (गृह) उत्तर प्रदेश राज्य, लखनऊ को प्रेषित करें।

30. उपर्युक्त प्रमुख सचिव तीन माह की अवधि के भीतर इस न्यायालय को अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करेंगे, जिसे इस न्यायालय के रजिस्ट्रार (अनुपालन) द्वारा अभिलेख में रखा जाएगा। यदि उपर्युक्त प्रमुख सचिव से रिपोर्ट प्राप्त नहीं होती है, तो रजिस्ट्रार (अनुपालन) तीन माह की अवधि समाप्त होने के पश्चात इस मामले को पुनः न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

31. इन रिट याचिकाओं का रिकार्ड कार्यालय द्वारा तब तक रखा जाएगा जब तक कि उपरोक्त प्रमुख सचिव की अनुपालन रिपोर्ट इस न्यायालय को प्राप्त नहीं हो जाती।

32. सभी आपराधिक रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती हैं।

(2025) 1 ILRA 675

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 08.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

आपराधिक विविध रिट याचिका संख्या 22470/2024

व्यूनाउ इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के वकील: श्री अनुभव सिंह, श्री मोहम्मद हैदर, श्री अक्षय, श्री जी.एस. चतुर्वेदी (वरिष्ठ अधिवक्ता)

प्रतिवादियों के वकील: जी.ए.

आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226- भारतीय न्याय संहिता, 2023 - धारा 316 (2), 318 (4) और 61 (2) - विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999- धन शोधन निवारण अधिनियम, 2002, धारा 66- एफआईआर - रद्द करना - क्लाइड कर्णों की बिक्री और लीजबैंक के माध्यम से धोखाधड़ी निवेश योजना का आरोप - याचिकाकर्ता कंपनी और उसके सहयोगियों पर गैर-मौजूद क्लाइड डेटा परिसंपत्तियों में निवेश करने के लिए जनता को प्रेरित करने का आरोप - व्यक्तिगत निवेशकों की ओर से कोई शिकायत नहीं - ईडी की रिपोर्ट के आधार पर एफआईआर दर्ज की गई - पॉजी स्कीम का आरोप, जिसमें निवेशकों को नए निवेश से

रिटर्न मिला - माना गया कि जनहित से जुड़े आर्थिक अपराधों की गहन जांच की आवश्यकता है - निवेशकों की ओर से शिकायत का न होना घातक नहीं है, जहाँ प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाले आरोप मौजूद हों - अनुच्छेद 226 के तहत हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता - रिट याचिका खारिज। (पैरा 24, 25 और 26)

अवधारित किया: एफआईआर के अनुसार भी, याचिकाकर्ता और उसकी सहयोगी संस्थाओं का व्यवसाय निष्क्रिय है। धन का लेन-देन होता रहता है और व्यवसाय मॉडल अस्पष्ट और अस्थिर प्रतीत होता है। जाँच एजेंसी ने यह मामला सामने रखा है कि याचिकाकर्ता एक पौजी व्यवसाय चला रहा है, जो बुलबुले की तरह फूट जाएगा और भोले-भाले निवेशकों द्वारा किया गया निवेश, जो वर्तमान में शिकायतकर्ता के रूप में सामने नहीं आ रहे हैं क्योंकि उन्हें नियमित आय प्राप्त हो रही है, बर्बाद हो जाएगा। निवेशकों को असाधारण रिटर्न का लालच आमतौर पर ऐसी चीजों से दिया जाता है जो देखने में तो आकर्षक लगती हैं, लेकिन जानबूझकर अस्पष्ट होती हैं, जैसे ज़मीन में हेज फंड, रिसॉर्ट, टूर और ट्रेवल प्लान, और उच्च-लाभ वाले निवेश कार्यक्रम। इस स्तर पर प्राथमिकी में लगाए गए आरोपों का खंडन नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि याचिकाकर्ता ने भी यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज़ पेश नहीं किया है कि वे एक स्थायी व्यवसाय चला रहे हैं और ग्राहकों से अच्छी-खासी आय अर्जित कर रहे हैं। (पैरा 24)

ललिता कुमारी (सुप्रा) और दिल्ली रेस क्लब (सुप्रा) के मामले में निर्धारित कानून भी याचिकाकर्ता को लाभ नहीं पहुंचाएगा क्योंकि इस न्यायालय की प्रथम दृष्टया राय है कि संज्ञेय अपराध हुआ प्रतीत होता है। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा विस्तृत तलाशी और ज़ब्त की गई है और इसके परिणामस्वरूप प्राथमिकी दर्ज की गई है। पुलिस अधिकारी प्रारंभिक जाँच करने के लिए बाध्य नहीं हैं, जब प्रथम दृष्टया ऐसा प्रतीत होता है कि कोई संज्ञेय अपराध हुआ है। निवेशकों को मासिक नियमित आय प्राप्त करने के लिए बड़ी राशि निवेश करने के लिए लुभाने के आरोप हैं, जिन्हें इस समय नकारा नहीं जा सकता, खासकर जब व्यवसाय मॉडल टिकाऊ नहीं है। न्यायालय को आर्थिक अपराधों से निपटने में सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि इससे व्यापक रूप से जनता प्रभावित होगी। (पैरा 25)

रिट याचिका खारिज (ई-14)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल, 1992 सप (1) एससीसी 335
2. आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य, एआईआर 1960 एससी 866
3. नीहारिका इंफ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2021) 19 एससीसी 401
4. ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार, (2014) 2 एससीसी 1
5. दिल्ली रेस क्लब (1940) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 0 सुप्रीम (एससी) 689

(माननीय न्यायमूर्ति महेश चंद्र त्रिपाठी एवं माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार द्वारा दिया गया)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी को सुना गया, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद हैदर ने की, साथ ही अधिवक्ता श्री अक्षय और राज्य की ओर से विद्वान ए.जी.ए. श्री शशि धर पांडे को भी सुना गया।

2. वर्तमान रिट याचिका अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित राहतों के साथ प्रस्तुत की गई है:-

(a) अभिलेख मंगाएं और उत्प्रेषण या किसी अन्य समान रिट की प्रकृति में आदेश, निर्देश या रिट जारी करें, जिससे दिनांक 24.11.2024 को धारा 318(4), 61(2) और 316(2) बीएनएस 2023 के तहत मामला अपराध संख्या 463/2024 के रूप में पंजीकृत एफआईआर को रद्द किया जा सके, जो पीएस सेक्टर 58, नोएडा जिला आयुक्तालय में पंजीकृत है।

(b) कोई अन्य रिट, आदेश या निर्देश जारी करना जिसे यह माननीय न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उचित और उचित समझे।

(c) याचिकाकर्ता को रिट याचिका की लागत का भुगतान करना।

मामले के तथ्य:

3. 24.11.2024 को पी.एस. नोएडा सेक्टर-58, जिला गौतम बुद्ध नगर में धारा 318(4), 61(2), 316(2) बीएनएस 2023 के तहत एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई थी। एफआईआर के अनुसार, याचिकाकर्ता- मेसर्स व्यूनाउ इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड और अन्य संबंधित कंपनियों और व्यक्तियों के खिलाफ, प्रवर्तन निदेशालय ने 17.10.2024 को याचिकाकर्ता के परिसरों के साथ-साथ संबंधित कंपनियों, जो मेसर्स व्यूनाउ मार्केटिंग सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स ज़ेबाइट इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड और मेसर्स ज़ेबाइट रेंटल प्लैनेट प्राइवेट लिमिटेड और उक्त संस्थाओं से जुड़े व्यक्ति हैं, सहित विभिन्न स्थानों पर तलाशी और जब्ती की। जाँच के दौरान, यह पता चला कि मेसर्स वीएमएसएल अपने माईक्लाउडपार्टिकल ब्रांड के तहत, विभिन्न ग्राहकों को निवेश का अवसर प्रदान कर रहा था, जिसके तहत निवेशकों को सेल और लीज़ बैंक मॉडल के माध्यम से डेटा सेंटर एसेट या क्लाउड पार्टिकल सर्वर खरीदकर निवेश करने के लिए प्रेरित किया जाता था। इस मॉडल के तहत, ग्राहक क्लाउड पार्टिकल खरीदता है, जो क्लाउड में एक स्टोरेज स्पेस होता है और इसे मेसर्स जेडआरपीपीएल और मेसर्स ज़िपल को, जो मेसर्स वीएमएसएल के मार्केटिंग सहयोगी हैं, 10 वर्षों की अवधि के लिए लीज़ पर वापस दे दिया जाता है। इसके जवाब में, ग्राहकों/खरीदारों को दस वर्षों के लिए न्यूनतम गारंटीकृत किराए की पेशकश की जाती है। प्रत्येक क्लाउड पार्टिकल में 1 टीबी क्लाउड स्टोरेज स्पेस होता है।

4. एफआईआर में आगे खुलासा किया गया है कि इन कंपनियों का व्यापार मॉडल यह था कि मेसर्स वीआईपीएल सर्वर (डेटा स्टोरेज सुविधा) और आईटी उपकरण खरीदता था, मेसर्स वीएमएसएल, जो इसके बाद इसे विभिन्न व्यक्तियों/निवेशकों को बेचता था और मेसर्स जीआईपीएल और मेसर्स जेडआरपीपीएल लीज बैंक पॉलिसी के लिए मार्केटिंग कंपनियां थीं, हालांकि, मेसर्स जीआईपीएल और मेसर्स जेडआरपीपीएल को मेसर्स वीआईपीएल से पैसा मिलता है, न कि अपने अंतिम ग्राहकों से और इसे निवेशकों/व्यक्तियों को किराए के रूप में भुगतान किया जा रहा है। खोज के दौरान पाया गया कि 18.10.2024 तक याचिकाकर्ताओं के पास क्लाउड के लिए कुल भंडारण क्षमता केवल 553 टीबी थी और इसमें से केवल 1.9 टीबी का उपयोग किया जा रहा था और शेष 551.1 टीबी अप्रयुक्त रह गया था। परिसर में 1119 सर्वर थे, जो किसी भी बिजली स्रोत से जुड़े नहीं थे, यानी वे काम करने की स्थिति में नहीं थे। यह भी पाया गया कि मेसर्स ZRPPL ने फर्जी आपूर्तिकर्ताओं से सामान और सेवाएँ खरीदकर इनपुट टैक्स क्रेडिट (ITC) अर्जित किया था। ऐसे खरीद लेनदेन का कुल चालान मूल्य 66,23,58,209 रुपये है।

5. एफआईआर में उल्लेख किया गया है कि जांच के दौरान मेसर्स वीआईपीएल के सदस्यों के बयान दर्ज किए गए, जिसमें कहा गया है कि विभिन्न डेटा केंद्रों में कुल लाइव डेटा भंडारण क्षमता 2701 टीबी है। मेसर्स वीआईपीएल द्वारा अपने ग्राहकों को प्रदान की जाने वाली कुल क्वांटम डेटा सुविधा, मेसर्स वीआईपीएल द्वारा व्यक्तियों/निवेशकों को पट्टे पर दिए गए क्लाउड पार्टिकल की मात्रा की तुलना में काफी कम है। मेसर्स वीआईपीएल के निदेशक नितिन श्रीवास्तव के बयान से पता चलता है कि व्यक्तिगत निवेशकों को नए निवेशकों से प्राप्त निवेश से भुगतान किया जा रहा था। मेसर्स वीएमएसएल की बैलेंस शीट के अनुसार, कंपनी को प्राप्त कुल राजस्व 5,33,38,06,158 रुपये था और मेसर्स वीएमएसएल को कुल 2236.07 करोड़ रुपये क्रेडिट के रूप में प्राप्त हुए हैं। विभिन्न तालिकाओं के अवलोकन से पता चलता है कि मेसर्स वीएमएसएल ने व्यक्तियों/निवेशकों को अपनी वास्तविक क्षमता से अधिक क्लाउड पार्टिकल बेचे हैं। मेसर्स वीएमएसएल के सभी डेटा केंद्रों में केवल 2701 टीबी सर्वर क्षमता थी। इस उपलब्ध क्षमता के विरुद्ध, वे पहले ही 1,29,294 टीबी क्लाउड स्पेस बेच चुके हैं।

6. एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता और सहयोगी कंपनियों द्वारा अपनाया गया व्यवसाय मॉडल यह है कि व्यक्तियों/निवेशकों से एकत्रित धन को चक्रित किया जाता है और उन्हें मासिक सुनिश्चित आय के रूप में भुगतान किया जाता है। नए व्यक्तियों/निवेशकों से प्राप्त धन पुराने व्यक्तियों/निवेशकों को मासिक सुनिश्चित किराये की आय के रूप में दिया जाता है। इसके अलावा, एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि यह व्यवसाय मॉडल एक धोखाधड़ी वाली निवेश योजना है क्योंकि यह एक गैर-टिकाऊ व्यवसाय मॉडल है। इस प्रकार का व्यवसाय तब ध्वस्त हो जाता है जब नया निवेश आना बंद हो जाता है, इसलिए, निवेशकों के साथ धोखाधड़ी होने और उनके निवेश के जोखिम में पड़ने की पूरी संभावना है। आरोपियों ने बेईमानी से विभिन्न व्यक्तियों/निवेशकों को क्लाउड पार्टिकल्स में निवेश करने के लिए प्रेरित किया है, जिनका अस्तित्व ही नहीं है और इसलिए, उन्होंने निवेशकों के साथ धोखाधड़ी की है और स्पष्ट रूप से विश्वासघात किया है। यह स्पष्ट है कि आरोपियों ने धारा 318(4), 316(2) और 61(2) बीएनएस 2023 के तहत अपराध किया है।

याचिकाकर्ता के वकील का तर्क

7. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री जी.एस. चतुर्वेदी ने दलील दी कि एफआईआर में आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता ने अपनी सहयोगी कंपनी के साथ मिलकर क्लाउड स्पेस को बेचा या पट्टे पर दिया। प्रवर्तन निदेशालय ने विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम 1999 के तहत जानकारी ली, तलाशी ली, यह राय बनाई कि बीएनएस 2023 के तहत कोई संदिग्ध अपराध हुआ है और कार्यवाही को दरकिनार करने के लिए एक रिपोर्ट तैयार की, क्योंकि उनके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है और वे अप्रत्यक्ष रूप से वह करने की कोशिश कर रहे हैं जो वे सीधे नहीं कर सकते। वर्तमान मामले में किसी भी निवेशक/व्यक्ति की कोई शिकायत नहीं है और प्राधिकारियों ने अपनी मर्जी से कार्रवाई की है।

8. श्री चतुर्वेदी ने दृढ़तापूर्वक तर्क दिया कि धन की कोई हेराफेरी नहीं हुई है। निवेशकों द्वारा कंपनी में निवेश किया गया धन, कंपनी के उपयोग हेतु धन है। यदि निवेशकों ने निवेश किया है और कंपनी को उसका लाभ नहीं मिला है, तो इसे धोखाधड़ी का अपराध नहीं कहा जा सकता। उन्होंने तर्क दिया कि धारा 316(2) बीएनएस आपराधिक विश्वासघात से संबंधित है और यदि कोई निवेशक इसके विपरीत नहीं कह रहा है, तो आपराधिक विश्वासघात का प्रश्न ही नहीं उठता। इस मामले में इस बात का कोई संकेत नहीं है कि किसे धोखा दिया गया है। इसके अलावा, दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 3765/2024 में पारित दिनांक 02.12.2024 के आदेश से स्पष्ट है कि कार्यकारी निदेशक के सहायक निदेशक ने स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता कंपनी के विरुद्ध किसी निवेशक द्वारा कोई शिकायत नहीं है। प्राथमिकी यंत्रवत् और बिना सोचे-समझे दर्ज की गई है। तथ्यों के पूरे परिप्रेक्ष्य में एक भी निवेशक/घटक ऐसा नहीं है जो यह सुझाव दे कि कोई धोखाधड़ी या आपराधिक विश्वासघात कभी हुआ है।

9. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री चतुर्वेदी ने तर्क दिया कि यह एफआईआर ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित अनुपात का पूर्णतः उल्लंघन करते हुए दर्ज की गई है। इस मामले में, यह माना गया है कि यदि प्राप्त सूचना से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं होता है, तो यह पता लगाने के लिए प्रारंभिक जाँच की जा सकती है कि कोई संज्ञेय अपराध हुआ है या नहीं। एफआईआर के मात्र अवलोकन से ही पता चलता है कि कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है। एफआईआर के शब्दों से पता चलता है कि प्रतिवादी संख्या 3 किसी भी अपराध के घटित होने के बारे में निश्चित नहीं है। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा धन शोधन निवारण अधिनियम 2002 की धारा 66 के तहत साझा की गई जानकारी में "संभावना" और "लगता है" जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया गया है और जब प्रवर्तन निदेशालय को ही यकीन नहीं है, तो एफआईआर दर्ज करने जैसा कठोर कदम कैसे उठाया जा सकता है? यहाँ तक कि पुलिस ने भी एफआईआर दर्ज करने से पहले कोई जाँच नहीं की है।

10. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री चतुर्वेदी ने आगे तर्क दिया कि प्राथमिकी की विषयवस्तु धारा 316(2), 318(4), 61(2) बीएनएस के मूल तत्वों को पूरा नहीं करती है। धारा 318 बीएनएस के अनुसार, धोखाधड़ी का अपराध तब होता है जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को धोखे से संपत्ति सौंपने या उसके हितों के विरुद्ध

कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, जिससे पीड़ित को संभावित रूप से नुकसान पहुँच सकता है। हालाँकि, पूरी प्राथमिकी में याचिकाकर्ता या किसी अन्य संस्था द्वारा किए गए प्रलोभन का एक भी उदाहरण नहीं मिलता है।

11. उन्होंने दलील दी कि अगर कोई शिकायत नहीं की जाती है तो क्या कोई तीसरा व्यक्ति यह कह सकता है कि भविष्य में निवेश जोखिम में है और धारा 318 बीएनएस के तहत एफआईआर दर्ज की जा सकती है क्योंकि कोई कपटपूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं है। उन्होंने दिल्ली रेस क्लब (1940) लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में सुप्रीम कोर्ट के फैसले पर भरोसा रखा है, जिसमें सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि धोखाधड़ी के मामले में, प्रलोभन के समय अभियुक्त के इरादे को देखा जाना चाहिए, जिसका बाद के आचरण से आकलन किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए बाद का आचरण एकमात्र परीक्षण नहीं है। केवल अनुबंध का उल्लंघन धोखाधड़ी के लिए आपराधिक अभियोजन को जन्म नहीं दे सकता है जब तक कि लेनदेन की शुरुआत से ही धोखाधड़ी या बेईमान इरादे नहीं दिखाए जाते हैं, यानी उस समय से जब अपराध किया गया कहा जाता है। इसलिए, यही इरादा अपराध का सार है। जबकि, आपराधिक न्यासभंग के लिए, संपत्ति अभियुक्त को सौंपी गई होनी चाहिए या उस पर उसका प्रभुत्व होना चाहिए। जिस संपत्ति के संबंध में न्यासभंग का अपराध किया गया है, वह या तो अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति होनी चाहिए या उसमें लाभकारी हित या स्वामित्व किसी अन्य व्यक्ति का होना चाहिए। अभियुक्त को उस संपत्ति को ऐसे अन्य व्यक्ति के विश्वास पर धारण करना होगा। यद्यपि अपराध, अर्थात् न्यासभंग और धोखाधड़ी के अपराध में बेईमानी का इरादा शामिल है, फिर भी वे परस्पर अनन्य हैं और मूल अवधारणा में भिन्न हैं।

12. उन्होंने अंत में दलील दी कि आपराधिक विश्वासघात और धोखाधड़ी में अंतर है। धोखाधड़ी के लिए, झूठा या भ्रामक बयान देते समय, यानी शुरुआत से ही आपराधिक इरादा ज़रूरी है। आपराधिक विश्वासघात में, केवल सौंपे जाने का सबूत ही पर्याप्त है। इस प्रकार, आपराधिक विश्वासघात के मामले में, अपराधी को वैध रूप से संपत्ति सौंपी गई थी, और उसने बेईमानी से उसका दुरुपयोग किया। जबकि, धोखाधड़ी के मामले में, अपराधी किसी व्यक्ति को धोखे से या बेईमानी से संपत्ति सौंपने के लिए प्रेरित करता है। ऐसी स्थिति में, दोनों अपराध एक साथ नहीं हो सकते। उन्होंने दृढ़ता से तर्क दिया कि प्राथमिकी को पढ़ने मात्र से धारा 318(4), 61(2), 316(2) बीएनएस 2023 के तहत कोई अपराध नहीं बनता है। इस पृष्ठभूमि में, उनका तर्क है कि प्राथमिकी केवल धारणा पर आधारित है और इसे रद्द किया जाना चाहिए।

प्रतिवादी के वकील का तर्क

13. इसके विपरीत, विद्वान ए.जी.ए. श्री शशि धर पांडे राज्य की ओर से उपस्थित हुए और उन्होंने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता और उसके प्रमोटर्स पर कंपनी और अन्य संबंधित व्यक्तियों की जानकारी साझा करने और निवेशकों को गलत जानकारी देकर डेटा सेंटर क्लाउड के माध्यम से निवेश योजनाएं संचालित करने और निवेशकों को निवेश करने के लिए मजबूर करके उनके पैसे में हेरफेर/धोखाधड़ी करने का आरोप है, जिसके संबंध में जांच चल रही है। जाँच के दौरान, परिसर में स्थापित हार्डवेयर के मूल्यांकन के संबंध में याचिकाकर्ता कंपनी के विभिन्न अधिकारियों के बयान दर्ज किए गए। इन अधिकारियों के बयानों में, वर्तमान में केवल 1.9 टीबी

स्थान का उपयोग किया जा रहा है और 551.1 टीबी भंडारण क्षमता उपलब्ध या रिक्त है। याचिकाकर्ता कंपनी द्वारा ग्राहक सेवा जैसी कोई सेवा प्रदान नहीं की जा रही है। परिसर में 1119 सर्वर थे, जो किसी भी विद्युत स्रोत से जुड़े नहीं थे, फिर भी उन्हें विभिन्न लोगों को बेचा गया। 17.10.2024 से 18.10.2024 के बीच पंजाब के मोहाली स्थित एक अलग डेटा सेंटर में की गई तलाशी के दौरान, यह पाया गया कि सभी डेटा सेंटरों की कुल लाइव डेटा स्टोरेज क्षमता 2701 टीबी है। उन्होंने दलील दी कि मामले का सार यह है कि डेटा स्टोरेज सुविधा की मात्रा व्यक्तियों को बेची गई जगह से बहुत कम है। कुल सर्वर क्षमता 2701 टीबी क्लाउड स्पेस है और याचिकाकर्ता कंपनी और अन्य ने एमसीए के आंकड़ों के अनुसार 1,29,294 टीबी या बैंक खाते में जमा राशि के अनुसार कुल क्षमता 5,42,274 टीबी (18% जीएसटी को छोड़कर) पहले ही बेच दी है।

14. उन्होंने जोर देकर कहा कि उक्त संस्थाओं द्वारा इस्तेमाल किया गया मॉडल स्पष्ट रूप से एक चक्रीय संचलन पॉजी योजना और एक गैर-टिकाऊ व्यवसाय मॉडल है। ऐसी योजनाएँ अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए नए निवेश के निरंतर प्रवाह पर निर्भर करती हैं। इसलिए, यह स्थापित हो गया है कि मेसर्स व्यूनाउ मार्केटिंग सर्विसेज लिमिटेड ने अन्य संस्थाओं अर्थात् मेसर्स व्यूनाउ इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड, मेसर्स ज़ेबाइट इन्फोटेक प्राइवेट लिमिटेड और मेसर्स ज़ेबाइट रेंटल प्लैनेट प्राइवेट लिमिटेड के साथ मिलकर विभिन्न व्यक्तियों/निवेशकों को क्लाउड पार्टिकल्स में निवेश करने के लिए बेईमानी से प्रेरित किया है, उन्हें क्लाउड पार्टिकल्स बेचकर, जो अस्तित्व में नहीं हैं और इस प्रकार इन व्यक्तियों/निवेशकों के साथ धोखाधड़ी की है और उनके विश्वास का उल्लंघन किया है।

15. उन्होंने आगे दलील दी कि जहाँ तक प्रवर्तन निदेशालय की कार्यवाही का सवाल है, याचिकाकर्ता ने इसे सिविल विविध रिट याचिका संख्या 30014/2024 के माध्यम से माननीय पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय में चुनौती दी है। इसके अलावा, याचिकाकर्ता की एक सहयोगी कंपनी मेसर्स ZIPL ने भी माननीय दिल्ली उच्च न्यायालय में रिट याचिका दायर कर प्रतिवादी संख्या 3 द्वारा 07.10.2024 को की गई पूरी ज़बती कार्यवाही को रद्द करने की माँग की है, जो अभी भी विचाराधीन है। उन्होंने दावा किया कि याचिकाकर्ता पॉजी स्कीम चला रहे हैं। आरोपियों द्वारा सुझाया और प्रस्तुत किया गया पूरा व्यवसाय मॉडल धोखाधड़ी और ठगी के सिद्धांत पर आधारित है। कंपनी की बैलेंसशीट से पता चलता है कि कंपनी की कोई खास कमाई नहीं है, बल्कि इसके विपरीत, आरोपी भोले-भाले निवेशकों से भारी निवेश लेकर उन्हें उच्च रिटर्न का वादा कर रहे हैं।

16. उन्होंने अंत में दलील दी कि याचिकाकर्ता और अन्य संस्थाएँ यह जानते हुए भी कि यह एक टिकाऊ व्यवसाय नहीं है, उक्त व्यवसाय जारी रखे हुए हैं, क्योंकि पहले के निवेशकों को दिया गया पैसा नए ग्राहकों से प्राप्त धन से है। इसलिए, यह पूरा व्यवसाय एक बड़ा बुलबुला है। जिस दिन यह फूटेगा, हजारों लोग/निवेशक अपना सारा निवेश गँवा देंगे। उन्होंने आगे दलील दी कि इस व्यावसायिक मॉडल और लेन-देन की शुरुआत ही बेईमानी से धोखाधड़ी करने के पूर्व-नियोजित इरादे से हुई थी, जो शुरू से ही मौजूद था। उन्होंने आगे दलील दी कि दिल्ली रेस क्लब (सुप्रा) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा, क्योंकि धोखाधड़ी और हेराफेरी के विश्वसनीय साक्ष्य मौजूद हैं और ऐसे मामले में, विश्वासघात एक दंडनीय

अपराध होगा। आरोपी का पूरा कारोबार धारा 316(2), 318(4), 61(2) बीएनएस के तहत धोखाधड़ी के दायरे में आता है। यह एक उचित मामला है जिसकी जाँच होनी चाहिए ताकि निवेशकों की गाढ़ी कमाई में हेराफेरी न हो।

बहस

17. प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियाँ सुनी गईं और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

18. पक्षों की प्रतिद्वंद्वी दलीलों को समझने के लिए, संबंधित कानूनों पर पुनर्विचार करना आवश्यक होगा।

19. एफआईआर को रद्द करने से संबंधित कानून पहले से ही सुस्थापित है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा राज्य एवं अन्य बनाम भजन लाल एवं अन्य 8 में दोहराया है, जिसमें यह माना गया है कि:

102. (1) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, प्रथम दृष्टया कोई अपराध नहीं बनाते हैं या अभियुक्त के खिलाफ कोई मामला नहीं बनाते हैं।

(2) जहां प्रथम सूचना रिपोर्ट और एफआईआर के साथ दी गई अन्य सामग्री, यदि कोई हो, में लगाए गए आरोप किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो धारा 155(2) के दायरे में मजिस्ट्रेट के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156(1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराया जा सकता है।

xxxxxxx (7) जहां आपराधिक कार्यवाही स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण इरादे से की गई हो और/या जहां कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण तरीके से अभियुक्त पर बदला लेने के गुप्त उद्देश्य से तथा निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उसे परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई हो।

20. यह ध्यान देने योग्य है कि इन पहलुओं पर विचार करते समय, न्यायालय को आरोपित तथ्यों की सत्यता या असत्यता के बारे में सूक्ष्म परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि न्यायालय को अभिलेख में उपलब्ध सामग्री के आधार पर मामले का प्रथम दृष्टया अवलोकन करके ही उसकी जाँच करनी है। यदि आरोपों के तथ्यात्मक स्वरूप पर विचार करने पर, प्रथम दृष्टया ऐसा कोई मामला नहीं बनता है जिसका संज्ञान लिया जा सके, तो न्यायालय हस्तक्षेप करके ऐसी किसी भी शिकायत या प्राथमिकी को रद्द करने के अपने अधिकार में होगा।

21. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आर.पी. कपूर बनाम पंजाब राज्य मामले में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया है, जहाँ माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालयों को जाँच के चरण में आपराधिक कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के प्रति आगाह किया है, लेकिन साथ ही यह भी निर्देश दिया है कि किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित रखने के लिए, न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने नीहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य 10 मामले में अपने निर्णय में कुछ अपवाद भी निर्धारित किए थे। सुलभ संदर्भ के लिए, इन्हें निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:-

(i) जहाँ यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि कथित अपराध के संबंध में आपराधिक कार्यवाही शुरू करने या जारी रखने पर कानूनी रोक है। उदाहरण के लिए, अपेक्षित मंजूरी के अभाव में इस श्रेणी के अंतर्गत मामले प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

(ii) जहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें अंकित मूल्य पर लिया जाए और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया जाए, आरोपित अपराध नहीं बनाते हैं; ऐसे मामलों में साक्ष्य की सराहना करने का कोई प्रश्न नहीं उठता है; यह केवल शिकायत या प्रथम सूचना रिपोर्ट को देखने का मामला है ताकि यह तय किया जा सके कि आरोपित अपराध का खुलासा हुआ है या नहीं।

(iii) जहाँ अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध लगाए गए आरोप कथित अपराध तो हैं, लेकिन मामले के समर्थन में या तो कोई कानूनी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है या प्रस्तुत साक्ष्य स्पष्ट रूप से या प्रत्यक्ष रूप से आरोप को सिद्ध करने में विफल रहा है। इस प्रकार के मामलों से निपटने में, ऐसे मामले जहाँ कोई कानूनी साक्ष्य नहीं है या जहाँ ऐसा साक्ष्य है जो लगाए गए आरोप से स्पष्ट रूप से असंगत है, और ऐसे मामले जहाँ कानूनी साक्ष्य है जो विचाराधीन आरोप का समर्थन कर भी सकता है और नहीं भी कर सकता है, के बीच अंतर को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है। धारा 561-ए के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए, उच्च न्यायालय इस बात की जाँच नहीं करेगा कि संबंधित साक्ष्य विश्वसनीय है या नहीं। यह विचारण मजिस्ट्रेट का कार्य है, और सामान्यतः किसी भी पक्ष के लिए उच्च न्यायालय के अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का आह्वान करना और यह तर्क देना संभव नहीं होगा कि साक्ष्य के उचित मूल्यांकन के आधार पर अभियुक्त के विरुद्ध लगाया गया आरोप सिद्ध नहीं होता। (जोर दिया गया)

22. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा उठाए गए तर्क का मुख्य आधार यह है कि याचिकाकर्ता और उसकी सहयोगी संस्थाओं ने कोई धोखाधड़ी नहीं की है क्योंकि किसी व्यक्ति/निवेशक ने शिकायत नहीं की है और संपूर्ण तलाशी और एफआईआर दर्ज करना केवल धारणा पर आधारित है।

23. त्वरित संदर्भ के लिए बीएनएस 2023 की धारा 316 और 318 को निम्नानुसार पुनः प्रस्तुत किया गया है:

316. आपराधिक विश्वासघात

(1) जो कोई, किसी भी तरह से संपत्ति या संपत्ति पर किसी भी प्रभुत्व के साथ सौंपा गया है, बेईमानी से उस संपत्ति को गबन करता है या अपने उपयोग में परिवर्तित करता है, या बेईमानी से उस संपत्ति का उपयोग करता है या उसका निपटान करता है, कानून के किसी भी निर्देश का उल्लंघन करते हुए, जिसमें उस तरह के ट्रस्ट को निर्वहन करने का तरीका निर्धारित किया गया है, या किसी भी कानूनी अनुबंध, व्यक्त या निहित, जो उसने ऐसे ट्रस्ट के निर्वहन से संबंधित किया है, या जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने की अनुमति देता है, "आपराधिक विश्वास का उल्लंघन" करता है।

स्पष्टीकरण 1

कोई व्यक्ति, जो किसी प्रतिष्ठान का नियोजक है, चाहे वह कर्मचारी भविष्य निधि और प्रकीर्ण उपबंध अधिनियम, 1952 की धारा 17 के अंतर्गत छूट प्राप्त हो या नहीं, जो कर्मचारी को देय मजदूरी से कर्मचारी का अंशदान काटता है, तत्समय प्रवृत्त किसी कानून द्वारा स्थापित भविष्य निधि या परिवार पेंशन निधि में जमा करने के लिए, उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसके द्वारा इस प्रकार काटे गए अंशदान की राशि उसे सौंप दी गई है और यदि वह उक्त कानून का उल्लंघन करते हुए उक्त निधि में ऐसे अंशदान का भुगतान करने में चूक करता है, तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने पूर्वोक्त कानून के निर्देश का उल्लंघन करते हुए उक्त अंशदान की राशि का बेईमानी से उपयोग किया है।

स्पष्टीकरण 2

कोई व्यक्ति, जो नियोजक है, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948 के अधीन स्थापित कर्मचारी राज्य बीमा निगम द्वारा धारित और प्रशासित कर्मचारी राज्य बीमा निधि में जमा करने के लिए कर्मचारी को देय मजदूरी से कर्मचारी अंशदान की कटौती करता है, तो यह समझा जाएगा कि उसके द्वारा इस प्रकार कटौती की गई अंशदान की राशि उसे सौंप दी गई है और यदि वह उक्त अधिनियम का उल्लंघन करते हुए उक्त निधि में ऐसे अंशदान का भुगतान करने में चूक करता है, तो यह समझा जाएगा कि उसने पूर्वोक्त विधि के निर्देश का उल्लंघन करते हुए उक्त अंशदान की राशि का बेईमानी से उपयोग किया है।

(2) जो कोई भी आपराधिक विश्वासघात करेगा, उसे पांच वर्ष तक की अवधि के कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडित किया जाएगा।

(3) जो कोई, वाहक, घाटपाल या भाण्डागारपालक के रूप में संपत्ति सौंपे जाने पर, ऐसी संपत्ति के संबंध में आपराधिक न्यासभंग करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से दण्डित किया जाएगा, जिसे सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, और वह जुर्माने के लिए भी उत्तरदायी होगा।

(4) जो कोई लिपिक या सेवक होते हुए या लिपिक या सेवक के रूप में नियोजित होते हुए और किसी भी प्रकार से ऐसी हैसियत में संपत्ति या संपत्ति पर किसी आधिपत्य के साथ न्यस्त होते हुए उस संपत्ति के संबंध में आपराधिक न्यासभंग करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

(5) जो कोई, किसी भी तरह से संपत्ति के साथ, या एक लोक सेवक की हैसियत से संपत्ति पर किसी भी प्रभुत्व के साथ या एक बैंकर, व्यापारी, फैक्टर, दलाल, वकील या एजेंट के रूप में अपने व्यवसाय के रास्ते में उस संपत्ति के संबंध में आपराधिक विश्वास का उल्लंघन करता है, वह आजीवन कारावास के साथ, या किसी एक अवधि के लिए कारावास जो दस साल तक बढ़ाया जा सकता है के साथ दंडित किया जाएगा, और साथ ही वह जुर्माने के लिए उत्तरदायी होगा।

318. धोखा

(1) जो कोई किसी व्यक्ति को धोखा देकर, कपटपूर्वक या बेईमानी से उस व्यक्ति को किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति देने के लिए या किसी व्यक्ति द्वारा कोई संपत्ति रखने की सहमति देने के लिए प्रेरित करता है, या उस व्यक्ति को जानबूझकर ऐसा कुछ करने या करने से मना करने के लिए प्रेरित करता है जो वह नहीं करता या नहीं करता यदि उसे धोखा नहीं दिया गया होता, और जो कार्य या लोप उस व्यक्ति को शरीर, मन, प्रतिष्ठा या संपत्ति में क्षति या अपहानि पहुंचाता है या पहुंचाना संभाव्य है, उसे "धोखा" देना कहा जाता है।

स्पष्टीकरण

तथ्यों को बेईमानी से छिपाना इस धारा के अर्थ में धोखा है।

(2) जो कोई छल करेगा, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से, जो तीन वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

(3) जो कोई यह जानते हुए छल करेगा कि उसके द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को सदोष हानि होने की संभावना है, जिसका हित उस लेन-देन में, जिससे छल संबंधित है, संरक्षित करने के लिए वह विधि द्वारा या विधिक संविदा द्वारा आबद्ध था, उसे किसी एक अवधि के लिए कारावास से, जो पांच वर्ष तक का हो सकेगा, या जुर्माने से, या दोनों से, दण्डित किया जाएगा।

(4) जो कोई छल करेगा और इस प्रकार बेईमानी से छले गए व्यक्ति को किसी व्यक्ति को कोई संपत्ति देने के लिए, या किसी मूल्यवान प्रतिभूति को, या किसी ऐसी चीज को, जो हस्ताक्षरित या मुहरबंद है, और जो मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित की जा सकती है, संपूर्ण या उसके किसी भाग को बनाने, बदलने या नष्ट करने के लिए उत्प्रेरित करेगा, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि सात वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

24. एफआईआर के अनुसार भी, याचिकाकर्ता और उसकी सहयोगी संस्थाओं का व्यवसाय निष्क्रिय है। धन का लेन-देन होता रहता है और व्यवसाय मॉडल अस्पष्ट और अस्थिर प्रतीत होता है। जाँच एजेंसी ने यह मामला सामने लाया है कि याचिकाकर्ता एक पोंजी व्यवसाय चला रहा है, जो बुलबुले की तरह फूट जाएगा और भोले-भाले निवेशकों द्वारा किया गया निवेश, जो वर्तमान में शिकायतकर्ता के रूप में सामने नहीं आ रहे हैं क्योंकि उन्हें नियमित आय प्राप्त हो रही है, बर्बाद हो जाएगा। निवेशकों को असाधारण रिटर्न का लालच आमतौर पर ऐसी चीजों से दिया जाता है जो देखने में तो आकर्षक लगती हैं, लेकिन जानबूझकर अस्पष्ट होती हैं, जैसे ज़मीन में हेज फंड, रिसॉर्ट, टूर और ट्रैवल प्लान, और उच्च-लाभ वाले निवेश कार्यक्रम। इस स्तर पर एफआईआर में लगाए गए आरोपों का खंडन नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि याचिकाकर्ता ने भी यह साबित करने के लिए कोई दस्तावेज़ पेश नहीं किया है कि वे एक स्थायी व्यवसाय चला रहे हैं और ग्राहकों से अच्छी-खासी आय अर्जित कर रहे हैं।

25. ललिता कुमारी (सुप्रा) और दिल्ली रेस क्लब (सुप्रा) मामले में निर्धारित कानून भी याचिकाकर्ता के लिए लाभकारी नहीं होगा क्योंकि इस न्यायालय का प्रथम दृष्टया यह मत है कि संज्ञेय अपराध हुआ प्रतीत होता है। प्रवर्तन निदेशालय द्वारा विस्तृत तलाशी और जब्ती की गई है और इसके परिणामस्वरूप प्राथमिकी दर्ज की गई है और पुलिस अधिकारी प्रारंभिक जाँच करने के लिए बाध्य नहीं हैं, जब प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध हुआ प्रतीत होता है। निवेशकों को मासिक नियमित आय प्राप्त करने के लिए बड़ी रकम निवेश करने के लिए लुभाने के आरोप हैं, जिन्हें इस समय नकारा नहीं जा सकता, खासकर तब जब व्यवसाय मॉडल टिकाऊ नहीं है। न्यायालय को आर्थिक अपराधों से निपटते समय सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि इससे आम जनता प्रभावित होगी।

26. रिकार्ड में रखी गई सामग्री के आधार पर किए गए उपरोक्त विचार-विमर्श के मददेनजर, हमारा विचार है कि आरोपी कंपनी और उसके सहयोगियों के खिलाफ एफआईआर में लगाए गए आरोपों की गहन जांच की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

27. उपर्युक्त चर्चा और निर्णयों की श्रृंखला को देखते हुए, आक्षेपित प्रथम सूचना रिपोर्ट में हस्तक्षेप का कोई मामला नहीं बनता है।

28. रिट याचिका खारिज की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 685

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

तारीख: लखनऊ 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

द्वितीय अपील संख्या 2 वर्ष 2017

सभापति वर्मा

...अपीलकर्ता

बनाम

वेद प्रकाश

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: मोहम्मद असलम खान

प्रतिवादी के वकील: विकास विक्रम सिंह, अंकित पांडे, राजेश्वर, शरद नंदन ओझा, वीरेंद्र भट्ट

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 99 और 100, - भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1860 - धारा 68 - भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 - धारा 68, - भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 - धारा 63 - जोत चकबंदी अधिनियम, 1950 - धारा 171 - दूसरी अपील - नियमित वाद और सिविल अपील में पारित निर्णयों और डिक्री के विरुद्ध - अपील में कानून के कई ज़रूरी सवाल उठाए गए हैं, जिसमें यह भी शामिल है कि क्या वसीयत, जिसे धोखाधड़ी के आधार पर रद्द करने की मांग की गई थी, एविडेंस एक्ट की धारा 68 के अनुसार साबित हुई थी, और क्या निचली अदालतों का रिकॉर्ड में मौजूद पर्याप्त सबूतों पर विचार किए बिना मुकदमा खारिज करना सही था - मुकदमा - स्थायी रोक के लिए - मुकदमा लंबित रहने के दौरान, प्रतिवादी ने अपने पिता से एक वसीयत बनवाई थी - बाद में, एक संशोधन द्वारा वसीयत रद्द करने की प्रार्थना जोड़ी गई- वादी-अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि वसीयत धोखे से बनाई गई थी, क्योंकि पार्टियों के पिता एक पढ़े-लिखे व्यक्ति थे, लेकिन वसीयत पर सिर्फ उनके अंगूठे का निशान था - वसीयत को एविडेंस एक्ट की धारा 68 के अनुसार साबित नहीं किया गया - ट्रायल कोर्ट ने इस आधार पर मुकदमा खारिज कर दिया कि वादी-अपीलकर्ता विवादित ज़मीन का मालिकाना हक और कब्ज़ा साबित करने में नाकाम रहे - सिविल अपील - निचली अपील कोर्ट ने ट्रायल कोर्ट के फैसले को बरकरार रखा - दूसरी अपील - कोर्ट ने पाया कि, (i) वसीयत को अटेस्टिंग विटनेस ने साबित कर दिया था और वादी-अपीलकर्ता वसीयत को चुनौती देने के आधार साबित

करने में नाकाम रहा और इसके अलावा, वसीयत अपनी मर्जी से और बिना किसी असर या दबाव के बनाई गई थी - (ii) वादी-अपीलकर्ता मरे हुए पिता का असली बेटा नहीं था और एक्ट, 1950 के सेक्शन 171 के हिसाब से पुश्तैनी प्रॉपर्टी में हिस्से का हकदार नहीं था- अवधारित किया- नीचे की दो अदालतों द्वारा दर्ज किए गए एक साथ नतीजों को यह अदालत दूसरी अपील में तब तक रद्द नहीं कर सकती, जब तक कि नतीजे गलत न हों और अधिकार क्षेत्र के बाहर न हों, जो इस मामले में नहीं है - इसलिए, CPC की धारा 99 के मद्देनजर विवादित फैसलों और आदेशों को पलटा या बदला नहीं जा सकता - दूसरी अपील खारिज की जा सकती है। (पैरा - 27, 38, 39)

स्पेशल अपील खारिज। (E-11)

उद्धृत मामले

1. गुरो (श्रीमती) बनाम आत्मा सिंह व अन्य; (1992) 2 एससीसी 507,
2. श्री देवी व अन्य बनाम जयराजा शेठी व अन्य; 2005 ऑल. सी.जे. 631,
3. बेंगा बेहरा व अन्य बनाम ब्रज किशोर नंदा व अन्य; 2007 ऑल. सी.जे. 2249,
4. संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (मृत) एलआर द्वारा; (2001) 3 एससीसी 179,
5. धीरजलाल गिरधारीलाल बनाम आयकर आयुक्त, बॉम्बे; ए.आई.आर. 1955 एस.सी. 271,
6. धन्नूलाल व अन्य बनाम गणेशराम व अन्य; (2015) 12 एससीसी 301,
7. प्रबन्ध समिति, गंगादीन राम कुमार इण्टर कॉलेज, रामगढ़ बरवां, जिला जौनपुर बनाम उप शिक्षा निदेशक व अन्य; 2006 (24) एलसीडी 1328,
8. दया शंकर सिंह बनाम उप संचालक चकबंदी, फैजाबाद व अन्य; 2014 (32) एलसीडी 2167,
9. (श्रीमती) सावित्री व अन्य बनाम सुरेन्द्र मोहन मोहना; 1987 (5) एलसीडी 137,
10. झूरी सिंह बनाम राम कुमार सिंह व अन्य; 2002 (20) 4 एलसीडी 663,
11. राम अधार और अन्य बनाम बैज नाथ; 2002 (20) एलसीडी 701,
12. सावित्री बाई और अन्य बनाम सावित्री बाई; (2024) 4 एससीसी 282,
13. रत्नागिरी नगर परिषद बनाम गंगाराम नारायण आंबेकर और अन्य; (2020) 7 एससीसी 275,
14. हरयाणा राज्य बनाम हरनाम सिंह (मृत) LRs के माध्यम से और अन्य; 2022 (156) आरडी 177,
15. मोइनुद्दीन बनाम श्रीमती कांति व अन्य; 2018 (9) एडीजे 141,
16. मधुसूदन दास बनाम श्रीमती नारायणी बाई व अन्य; 1983 (1) एससीसी 35,
17. फगगन (मृत) व अन्य बनाम भगवान सहाय (मृत) व अन्य; 2008 (7) एडीजे 46,
18. जगदीश सिंह बनाम नाथू सिंह; 1992 (1) एससीसी 647,

19. हफाजत हुसैन बनाम अब्दुल मजीद व अन्य; (2001) 7 एससीसी 189.

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा)

1. वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद आरिफ खान को सुना, जिनकी सहायता श्री मोहम्मद शादाब खान ने की, जो अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद असलम खान का पक्ष रख रहे थे, और वरिष्ठ विद्वान अधिवक्ता डॉ. आर. एस. पांडे को सुना, जिनकी सहायता प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री अंकित पांडे ने की।

2. यह दूसरी अपील सिविल प्रोसीजर कोड, 1908 (जिसे आगे "C.P.C." कहा जाएगा) के सेक्शन 100 के तहत रेगुलर सूट नंबर 1132/1988; सभापति वर्मा बनाम राम किशोर (मृत) में 01.11.2013 को दिए गए फैसले और डिक्री के खिलाफ की गई है, जिसे फर्स्ट एडिशनल सिविल जज (जूनियर डिवीजन), अंबेडकर नगर ने लीगल रिप्रेजेंटेटिव वेद प्रकाश द्वारा बदला था और सिविल अपील नंबर 66/2013; सभापति वर्मा बनाम वेद प्रकाश में एडिशनल डिस्ट्रिक्ट जज, कोर्ट नंबर 3, अंबेडकर नगर ने 03.10.2016 को दिए गए फैसले और डिक्री के खिलाफ की गई है।

3. अपील के मेमो में बताए गए कानून के इन जरूरी सवालों पर अपील मंजूर की गई है:-

" A. क्या जिस वसीयत को अपील करने वाले ने धोखाधड़ी के आधार पर कैंसिल करने की मांग की थी, और जिसे रेस्पॉण्डेंट ने एविडेंस एक्ट के सेक्शन 68 के प्रोविज़न के अनुसार साबित नहीं किया था, तो क्या निचली अदालतों का केस खारिज करना कानूनी तौर पर सही था?

B. क्या निचली अदालतों ने ट्रायल कोर्ट के फैसले में बताए गए रिकॉर्ड पर मौजूद काफी सबूतों को नज़रअंदाज़ करके और उन पर चर्चा किए बिना भी मुकदमा खारिज कर दिया, जो कानूनी तौर पर सही था?

C. क्या राम किशोर, जो एक गैजेटेड ऑफिसर थे और उनकी वसीयत पर उनके अंगूठे का निशान है, रेस्पॉण्डेंट के पक्ष में वसीयत के सही तरीके से लागू होने पर शक पैदा नहीं करता है और रेस्पॉण्डेंट ने एविडेंस एक्ट के सेक्शन 68 के प्रोविज़न के अनुसार वसीयत को साबित नहीं किया है, तो क्या निचली अदालतों का केस खारिज करना कानूनी तौर पर सही था?

D. क्या रिकॉर्ड में मौजूद सेल डीड, फैसलों की कॉपी, हाई स्कूल सर्टिफिकेट जिसमें अपील करने वाले के माता-पिता का नाम राम किशोर बताया गया था, जैसे कई सबूतों को नज़रअंदाज़ किया जा सकता था और निचली

अदालतें सिर्फ अपील करने वाले और रैस्पोंडेंट, जो जीत गए थे, की माँ श्रीमती सुरसती के बयान पर भरोसा करके केस खारिज करने में कानूनी तौर पर सही थीं?

E. क्या निचली अदालतों का यह ज़रूरी नहीं था कि वे केस खारिज करते समय पार्टियों द्वारा फाइल किए गए मौखिक और डॉक्यूमेंट्री सबूतों पर चर्चा करते और उन पर कार्रवाई करते?

F. क्या ट्रायल कोर्ट के सामने रखे गए ज़रूरी डॉक्यूमेंट्री सबूत, जिसमें पहले के केस के फैसले की कॉपी के अलावा कुछ पब्लिक रिकॉर्ड की सर्टिफाइड कॉपी और ओरल सबूत शामिल हैं, यह लोअर अपीलेट कोर्ट की इयूटी नहीं थी कि वह फर्स्ट अपील कोर्ट के तौर पर सभी मामलों और पार्टियों के पेश किए गए सबूतों पर विचार करे, और फिर अपने नतीजे रिकॉर्ड करे और अपील खारिज कर दे, इस बात को नज़रअंदाज़ करते हुए कि अपील एक कीमती अधिकार है और पार्टियों को कानून और फैक्ट्स, दोनों के सवालों पर अपनी बात रखने का अधिकार है?

G. क्या नीचे की अदालतों का दिया गया फैसला और डिक्री न सिर्फ केस के फैक्ट्स और हालात के खिलाफ़ है, बल्कि रिकॉर्ड में मौजूद सबूतों के भी खिलाफ़ है?

4. वादी-अपीलकर्ता के वकील ने कहा कि पार्टियों के पिता वादी-अपीलकर्ता, जो को-टेन्योर होल्डर था, की सहमति के बिना पुश्तैनी प्रॉपर्टी बेचने की कोशिश कर रहे थे, इसलिए परमानेंट इंजंक्शन के लिए केस फाइल किया गया था। केस के पेंडिंग रहने के दौरान, डिफेंडेंट-रिस्पोंडेंट ने पिता राम किशोर से धोखे से एक वसीयत बनवा ली थी, जो इस बात से साफ़ है कि पार्टियों के पिता एक पढ़े-लिखे इंसान थे, लेकिन वसीयत पर सिर्फ़ उनके अंगूठे का निशान लगाया गया था और वसीयत बनने के दो दिन बाद उनकी मौत हो गई, इसलिए, शक का काफ़ी पर्दा था, जिसे डिफेंडेंट-रिस्पोंडेंट हटा नहीं सका, इसलिए, नीचे की पढ़ी-लिखी अदालतों ने गलत तरीके से और गैर-कानूनी तरीके से केस और प्लेनटिफ-अपीलेंट द्वारा फाइल की गई अपील को खारिज कर दिया। वैसे भी, डिफेंडेंट-रिस्पोंडेंट ने इंडियन एविडेंस एक्ट के सेक्शन 68 के प्रोविज़न के हिसाब से वसीयत साबित नहीं की है। नीचे की पढ़ी-लिखी अदालतों ने रिकॉर्ड में मौजूद सबूतों और मटीरियल पर विचार किए बिना ही फैसला और डिक्री पास कर दी है। निचली अपील कोर्ट ने भी, एक ट्रायल कोर्ट के तौर पर कानून और फैक्ट्स के सवालों पर विचार किए बिना, क्योंकि अपील अपील करने वाले का एक कीमती अधिकार है, अपील खारिज कर दी। उन्होंने आगे कहा कि पार्टियों ने जिन फैसलों पर भरोसा किया, उन पर निचली अपील कोर्ट ने विचार नहीं किया था और उन पर विचार किए बिना, अपील इस आधार पर खारिज कर दी गई कि वे मामले के तथ्यों और हालात पर लागू नहीं होते हैं। इस प्रकार, वादी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि नीचे के विद्वान न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री रद्द किए जाने योग्य हैं और वादी-अपीलकर्ता द्वारा दायर

वाद स्वीकार किए जाने योग्य है। वादी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने गुरो (श्रीमती) बनाम आत्मा सिंह और अन्य; (1992) 2 एससीसी 507, श्री देवी और अन्य बनाम जयराजा शेठी और अन्य; 2005 ऑल सी.जे. 631, बेंगा बेहरा और अन्य बनाम ब्रज किशोर नंदा और अन्य; 2007 ऑल सी.जे. 2249, संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (मृत) एलआर द्वारा; (2001) 3 एससीसी 179, धीरजलाल गिरधारीलाल बनाम आयकर आयुक्त, बॉम्बे; ए.आई.आर. पर भरोसा किया। 1955 S.C. 271, धन्नूलाल और अन्य बनाम गणेशराम और अन्य; (2015) 12 एस सी सी 301, मैनेजमेंट कमेटी, गंगादीन राम कुमार इंटर कॉलेज, रामगढ़ बरवां, जिला जौनपुर बनाम डिप्टी डायरेक्टर ऑफ एजुकेशन और अन्य; 2006 (24) एलसीडी 1328, दया शंकर सिंह बनाम डिप्टी डायरेक्टर ऑफ कंसोलिडेशन, फैजाबाद और अन्य; 2014 (32) एलसीडी 2167, (श्रीमती) सावित्री और अन्य बनाम सुरेंद्र मोहन मोहना; 1987 (5) एलसीडी 137, झूरी सिंह बनाम राम कुमार सिंह और अन्य; 2002 (20) एलसीडी 663 और राम अधार और अन्य बनाम बैज नाथ; 2002 (20) एलसीडी 701.

5. इसके उलट, डिफेंडेंट-रिस्पॉन्डेंट के वकील ने कहा कि प्लेनटिफ-अपीलेंट ने परमानेंट इंजंक्शन के लिए एक केस फाइल किया था, जिसमें केस पेंडिंग रहने के दौरान बदलाव किया गया था और डिफेंडेंट-रिस्पॉन्डेंट के फेवर में एक्जीक्यूट की गई विल डीड को कैंसल करने की प्रार्थना जोड़ी गई थी, लेकिन न तो प्लेनटिफ-अपीलेंट का पजेशन साबित हुआ है और न ही वह विल को चैलेंज करने का कारण साबित कर सका। इंडियन एविडेंस एक्ट के सेक्शन 68 के मुताबिक, वसीयत को अटेस्टिंग विटनेस ने साबित कर दिया है। वसीयत को एक्जीक्यूट करने का कारण वसीयत में ही बताया गया है, इसलिए, वसीयत को एक्जीक्यूट करने में कही गई धोखाधड़ी और शक वाली बातें नहीं हैं और वे खत्म हो गई हैं। विल पर अंगूठे के निशान का कारण डिफेंडेंट-रिस्पॉन्डेंट ने बताया और साबित किया है। उन्होंने आगे कहा कि नीचे की कोर्ट ने दलीलों, सबूतों और रिकॉर्ड में मौजूद चीजों पर विचार करने के बाद फैसला और डिक्री पास की हैं। नीचे की कोर्ट द्वारा पास किए गए विवादित फैसले और डिक्री में कोई गैर-कानूनी या गलती नहीं है। अपील गलत और बेबुनियाद वजहों से फाइल की गई है और इसमें कोई दम नहीं है। इस अपील में तैयार किए गए कानून के महत्वपूर्ण प्रश्न इसमें शामिल नहीं हैं। उन्होंने सावित्री बाई एवं अन्य बनाम सावित्री बाई; (2024) 4 एससीसी 282, रत्नागिरी नगर परिषद बनाम गंगाराम नारायण आंबेकर एवं अन्य; (2020) 7 एससीसी 275, हरियाणा राज्य बनाम हरनाम सिंह (मृत) एलआर के माध्यम से एवं अन्य; 2022 (156) आरडी 177, मोइनुद्दीन बनाम श्रीमती कांति एवं अन्य; 2018 (9) एडीजे 141, मधुसूदन दास बनाम श्रीमती नारायणी बाई एवं अन्य; 1983 (1) एससीसी 35 और फगन (मृत) एवं अन्य बनाम भगवान सहाय (मृत) एवं अन्य; 2008 (7) एडीजे 46 पर भरोसा किया।

6. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार किया है तथा अभिलेखों का अवलोकन किया है।

7. वादी-अपीलकर्ता ने स्थायी निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि वादी-अपीलकर्ता के पिता, अर्थात् प्रत्यर्थी- प्रतिवादी राम किशोर, जो मूल प्रतिवादी-अपीलकर्ता थे, उनसे नाराज़ हैं क्योंकि उन्होंने मखदूम नगर में एक क्लिनिक खोल लिया है, इसलिए वे अपना अधिकांश समय घर पर नहीं दे पा रहे हैं, जिसके कारण वे बिना किसी कारण के विवादित भूमि को बेचने की धमकी दे रहे हैं ताकि वादी-अपीलकर्ता की संपत्ति का कुछ हिस्सा नष्ट किया जा सके। वाद के लंबित रहने के दौरान, राम किशोर की 27.01.1991 को मृत्यु हो गई, इसलिए प्रतिवादी-प्रतिवादी, जो राम किशोर के कानूनी प्रतिनिधि और वादी-अपीलकर्ता के भाई हैं, को प्रतिस्थापित किया गया। तत्पश्चात्, वाद में दिनांक 25.01.1991 के वसीयतनामा को रद्द करने की प्रार्थना जोड़ते हुए संशोधन किया गया, इस आधार पर कि प्रत्यर्थी- प्रतिवादी ने मृतक राम किशोर के साथ धोखाधड़ी करके वसीयत बनवाई थी, जिसका पंजीकरण 30.01.1991 को उप-पंजीयक, अकबरपुर के कार्यालय में हुआ था। यह भी आरोप लगाया गया कि मृतक एक शिक्षित व्यक्ति था क्योंकि वह राजपत्रित अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त हुआ था, लेकिन वसीयत पर उसके अंगूठे का निशान लगाया गया था। चूंकि वादी-अपीलकर्ता अपने पिता की देखभाल कर रहा था, इसलिए किसी वसीयत की आवश्यकता नहीं थी। वादी-अपीलकर्ता और प्रत्यर्थी- प्रतिवादी का जन्म उसकी माता श्रीमती सुरसती देवी और पिता राम किशोर से हुआ था।

8. प्रत्यर्थी- प्रतिवादी द्वारा यह वाद प्रस्तुत किया गया था कि उसके दिवंगत पिता राम किशोर की विवाहित पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसने श्रीमती सुरसती से विवाह किया था, जो अपने पहले पति राम अचल वर्मा निवासी मौजा गणेशपुर, परगना एवं तहसील अकबरपुर की मृत्यु के पश्चात् उसके पिता के घर आई थी तथा उसके साथ राम अचल वर्मा से उत्पन्न पुत्र पुदई उर्फ सभापति भी था तथा चूंकि राम किशोर ही उसकी शिक्षा आदि का ध्यान रख रहा था, इसलिए उसका नाम भी पिता के रूप में दर्ज कर दिया गया, क्योंकि वह उसे अपना पुत्र मानता था। मां श्रीमती सुरसती के अनुरोध पर मृतक राम किशोर ने सभापति के लिए मौजा सलाहपुर रजौर, परगना व तहसील टांडा, अंबेडकर नगर में 11 बिस्वा जमीन खरीदी थी तथा उक्त गांव में मकान भी वादी-अपीलकर्ता को दिया था। कुछ समय पश्चात् प्रत्यर्थी- प्रतिवादी के पिता राम किशोर द्वारा सभापति व उनकी पत्नी के लिए 7.25 बीघा कृषि सम्पत्ति व दो बिस्वा आबादी भूमि भी इस आधार पर क्रय कर ली गई कि वह प्रत्यर्थी- प्रतिवादी की पैतृक सम्पत्ति में कोई हिस्सा नहीं लेंगे। तत्पश्चात्, उन्होंने सम्पूर्ण भूमि में आधा हिस्सा लेने की धमकी देना प्रारम्भ कर दिया, जिसके कारण प्रत्यर्थी- प्रतिवादी के पिता व वादी-अपीलकर्ता के मध्य झगड़ा प्रारम्भ हो गया, अतः उन्होंने अपनी पत्नी सुरसती से परामर्श के पश्चात् प्रत्यर्थी- प्रतिवादी के पक्ष में वसीयत कर दी, तदनुसार, विवादित भूमि पर उनका कब्जा व स्वामित्व है, अतः वाद निरस्त किये जाने योग्य है।

9. पक्षों की दलीलों के आधार पर निम्नलिखित 5 मुद्दे तैयार किए गए:-

- अ. क्या वादी विवादित सम्पत्ति का स्वामी एवं आधिपत्यधारी है?
- ब. क्या वाद अवमूल्यांकित है तथा प्रदत्त न्यायशुल्क अपर्याप्त है?
- स. क्या उभय पक्ष एक ही परिवार के सदस्य हैं तथा विवादित सम्पत्ति में वादी का हिस्सा है?
- द. क्या वादी किसी अन्य अनुतोष को पाने का अधिकारी है?
- य. क्या वादपत्र में वर्णित कारणों के आधार पर दस्तावेज वसीयतनामा निरस्त किये जाने योग्य है?

10. उपरोक्त मुद्दों के निर्धारण के पश्चात, पक्षकारों द्वारा दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए। मौखिक साक्ष्य में, वादी-अपीलकर्ता स्वयं पी डब्ल्यू -1 के रूप में उपस्थित हुए तथा फूलचंद्र पी डब्ल्यू -2 के रूप में परीक्षित हुए। प्रत्यर्थी- प्रतिवादी की ओर से वे स्वयं डी डब्ल्यू -1, श्रीमती सुरसती देवी डी डब्ल्यू -2 तथा राजमणि, अर्थात् वसीयत विलेख के सत्यापनकर्ता साक्षी, डी डब्ल्यू -3 के रूप में उपस्थित हुए।

11. पक्षों की दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद, विचारण न्यायालय ने इस आधार पर वाद खारिज कर दिया कि वादी-अपीलकर्ता स्वयं को विवादित भूमि का स्वामी और कब्जाधारी साबित करने में विफल रहा है और वादी-अपीलकर्ता अपनी मां श्रीमती सुरसती के पूर्व पति से उत्पन्न हुआ था, इसलिए उसे मृतक राम किशोर की भूमि में हिस्सा केवल वसीयत के आधार पर ही मिल सकता था और प्रत्यर्थी- प्रतिवादी के हित-पूर्ववर्ती के पक्ष में की गई वसीयत को सत्यापनकर्ता साक्षी द्वारा विधि के अनुसार सिद्ध कर दिया गया है और वसीयत के निष्पादन के कारणों का खुलासा वसीयत में किया गया है, इसलिए वसीयत न तो जाली है और न ही अपास्त किए जाने योग्य है। व्यथित होकर, निचली अपीलीय अदालत के समक्ष सिविल अपील दायर की गई, जिसमें निचली अपीलीय अदालत द्वारा अपील पर निर्णय देते समय आक्षेपित निर्णय और डिक्री में निम्नलिखित निर्धारण बिंदु बनाए गए थे:-

क. क्या अधीनस्थ न्यायालय द्वारा पक्षकारों के अभिवचन तथा उनके द्वारा प्रस्तुत अभिलेखीय एवं मौखिक साक्ष्य के विश्लेषण में कोई त्रुटि की गयी है?

12. विद्वान निचली अपीलीय अदालत ने अभिलेख पर प्रस्तुत दलीलों, साक्ष्यों और सामग्री पर विचार करने के बाद अपील को खारिज कर दिया, क्योंकि उसे निचली अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्री में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं मिली।

13. इस न्यायालय के समक्ष पक्षकारों की दलीलों और प्रस्तुत तर्कों तथा इस अपील में शामिल विधि के उपरोक्त सारवान प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए, विचारणीय प्रथम प्रश्न यह है कि क्या मृतक राम किशोर, जो इस मुकदमे में मूल प्रतिवादी थे, द्वारा प्रतिवादी-प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित वसीयतनामा विधि के अनुसार सिद्ध

हुआ है या नहीं। वसीयतनामा को भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 के अनुसार सिद्ध किया जाना आवश्यक है, जो विधि द्वारा सत्यापित किए जाने हेतु अपेक्षित दस्तावेज़ के निष्पादन का प्रमाण प्रदान करता है, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"68. कानून द्वारा अपेक्षित दस्तावेज़ के निष्पादन का प्रमाण सत्यापित किया जाना चाहिए।

यदि किसी दस्तावेज़ को विधि द्वारा सत्यापित किया जाना अपेक्षित है, तो उसे साक्ष्य के रूप में तब तक उपयोग नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके निष्पादन को सिद्ध करने के प्रयोजनार्थ कम से कम एक सत्यापनकर्ता साक्षी को नहीं बुलाया जाता है, यदि कोई सत्यापनकर्ता साक्षी जीवित हो, तथा न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन हो तथा साक्ष्य देने में सक्षम हो:

[परन्तु यह कि किसी दस्तावेज़ के, जो वसीयत नहीं है, तथा जो भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16) के उपबंधों के अनुसार पंजीकृत किया गया है, निष्पादन के प्रमाण में सत्यापनकर्ता साक्षी को बुलाना आवश्यक नहीं होगा, जब तक कि उस व्यक्ति द्वारा, जिसके द्वारा उसका निष्पादन किया जाना तात्पर्यित है, उसके निष्पादन से विनिर्दिष्ट रूप से इनकार न कर दिया गया हो।]"

14. उपर्युक्त धारा 68 के अनुसार, वसीयत को कम से कम एक सत्यापनकर्ता गवाह द्वारा साबित किया जाना आवश्यक है, जिसे भारतीय पंजीकरण अधिनियम, 1908 के प्रावधानों के अनुसार पंजीकृत किया गया हो। भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 में वसीयत को निष्पादित करने के तरीके का उल्लेख है, जिसका सारांश नीचे दिया गया है:-

"63. विशेषाधिकार रहित वसीयत का निष्पादन

प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित सैनिक या वास्तविक युद्ध में संलग्न सैनिक नहीं है, या ऐसा नियोजित या संलग्न वायुसैनिक या समुद्र में नाविक नहीं है, अपनी वसीयत निम्नलिखित नियमों के अनुसार निष्पादित करेगा:

(a) वसीयतकर्ता वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा या अपनी निशानी लगाएगा, या उसकी उपस्थिति में और उसके निर्देश पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा वसीयत पर हस्ताक्षर किए जाएंगे।

(b) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न, या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर इस प्रकार रखे जाएंगे कि ऐसा प्रतीत हो कि इसका उद्देश्य लिखित रूप में वसीयत को प्रभावी बनाना था।

(c) वसीयत को दो या अधिक गवाहों द्वारा सत्यापित किया जाएगा, जिनमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को वसीयत पर हस्ताक्षर करते या अपना चिह्न लगाते देखा हो या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निर्देश पर किसी अन्य व्यक्ति को वसीयत पर हस्ताक्षर करते देखा हो, या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या चिह्न, या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की व्यक्तिगत पावती प्राप्त की हो; और प्रत्येक गवाह वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर करेगा, लेकिन यह आवश्यक नहीं होगा कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह उपस्थित हों, और सत्यापन का कोई विशेष रूप आवश्यक नहीं होगा।"

15. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गुरो (श्रीमती) बनाम आत्मा सिंह एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह माना है कि कानून में यह सुस्थापित है कि वसीयत को साबित करने का तरीका सामान्यतः किसी अन्य दस्तावेज़ को साबित करने के तरीके से भिन्न नहीं होता, सिवाय भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित विशेष आवश्यकता के। उक्त निर्णय का प्रासंगिक पैराग्राफ 3 नीचे उद्धृत है:-

"3. वसीयत के प्रमाण के संबंध में, कानून सर्वविदित है कि वसीयत को सिद्ध करने का तरीका सामान्यतः किसी अन्य दस्तावेज़ को सिद्ध करने के तरीके से भिन्न नहीं होता, सिवाय भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा

63 द्वारा वसीयत के मामले में निर्धारित विशेष आवश्यकता के। वसीयत को सिद्ध करने का दायित्व प्रस्तावक पर होता है और वसीयत के निष्पादन से संबंधित संदिग्ध परिस्थितियों के अभाव में, वसीयतकर्ता की वसीयती क्षमता का प्रमाण और कानून द्वारा अपेक्षित हस्ताक्षर, दायित्व से मुक्ति के लिए पर्याप्त हैं। हालाँकि, जहाँ संदिग्ध परिस्थितियाँ हों, वहाँ वसीयत को वास्तविक मानने से पहले, प्रस्तावक का दायित्व होगा कि वह अदालत को संतुष्ट करने के लिए उन्हें स्पष्ट करे। ऐसी संदिग्ध परिस्थितियाँ अस्थिर हस्ताक्षर, कमज़ोर मन, संपत्ति का अनुचित और अन्यायपूर्ण निपटान, या स्वयं प्रस्तावक द्वारा वसीयत बनाने में अग्रणी भूमिका निभाना हो सकती हैं जिसके तहत उसे पर्याप्त लाभ प्राप्त होता है। संदिग्ध परिस्थितियों की उपस्थिति प्रारंभिक दायित्व को और अधिक भारी बना देती है और प्रस्तावक को दस्तावेज़ को वसीयतकर्ता की अंतिम वसीयत के रूप में स्वीकार करने से पहले सभी वैध संदेहों को दूर करना होगा। (एस. वैकलाचला लियंगर बनाम बी.एन. थिम्माजम्मा¹, रानी पूर्णिमा देवी बनाम कुमार किलागेंद्र नारायण देव², जसवन्त कौर बनाम अमृत कौर³)।

16. श्री देवी एवं अन्य बनाम जयराजा शेटी एवं अन्य (सुप्रा) मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी ऐसा ही विचार व्यक्त किया है। इस मामले में, वसीयत के निष्पादक की आयु 80 वर्ष थी और वसीयत के निष्पादन के 15 दिनों के भीतर उनकी मृत्यु हो गई। न्यायालय ने पाया कि इसके अलावा, ऐसा कोई भी तथ्य अभिलेख में नहीं लाया गया जिससे यह पता चले कि वसीयतकर्ता का स्वास्थ्य ठीक नहीं था या वह शारीरिक या मानसिक रूप से सक्षम नहीं था। अपीलकर्ता ऐसा कोई भी तथ्य प्रस्तुत करने में विफल रहे जिससे वसीयतकर्ता की वसीयत निष्पादित करने में शारीरिक या मानसिक अक्षमता के बारे में संदेह उत्पन्न हो सके। अतः न्यायालय ने अपील को खारिज कर दिया।

17. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने बेंगा बेहरा एवं अन्य बनाम ब्रज किशोर नंदा एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में यह माना है कि वसीयत के निष्पादन के प्रमाण की आवश्यकता कुछ अन्य दस्तावेजों, जैसे उपहार या बंधक, के मामले में समान है और वसीयत के निष्पादन और सत्यापन को साबित करने के लिए कम से कम एक सत्यापनकर्ता गवाह की जाँच की जानी चाहिए और यह साबित किया जाना चाहिए कि निष्पादक ने कम से कम दो सत्यापनकर्ता गवाहों की उपस्थिति में हस्ताक्षर किए थे और/या अपने अंगूठे का निशान दिया था और सत्यापनकर्ता गवाहों ने निष्पादक की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर किए थे। आगे यह भी माना गया है कि संदिग्ध परिस्थितियों का अस्तित्व ही इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है कि वसीयत का निष्पादन विधिवत सिद्ध नहीं हुआ है।

18. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धन्नीलाल एवं अन्य बनाम गणेशराम एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह माना है कि वसीयत का प्रमाण अन्य दस्तावेजों की तुलना में उच्च स्तर का होता है। संबंधित अनुच्छेद 19 नीचे उद्धृत है:-

"19. वसीयत का प्रमाण अन्य दस्तावेजों की तुलना में उच्च स्तर का होता है। सत्यापनकर्ता गवाहों या अन्य गवाहों द्वारा स्पष्ट रूप से प्रमाणित किया जाना चाहिए कि वसीयत की विषय-वस्तु निष्पादक को पढ़कर सुनाई गई थी और उसने उसे सही मानकर, गवाहों की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर किए थे। निष्पादक के हस्ताक्षर करने के बाद ही सत्यापनकर्ता गवाह निष्पादक की उपस्थिति में अपने हस्ताक्षर करेंगे।

19. इस न्यायालय ने दया शंकर सिंह बनाम उप निदेशक, चकबंदी, फैजाबाद एवं अन्य (सुप्रा) मामले में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों पर विचार करने के बाद, यह निर्णय दिया कि उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 में वर्णित विधि से वसीयत का सत्यापन कोई कोरी औपचारिकता नहीं है। इसका अर्थ है, निष्पादक के हस्ताक्षरों की पुष्टि के लिए किसी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करना। सत्यापनकर्ता साक्षी को वसीयत पर अपने हस्ताक्षर स्वयं ही करने चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि एक ही समय में एक से अधिक गवाह मौजूद हों और

किसी विशेष प्रकार के सत्यापन की भी आवश्यकता नहीं है। चूँकि वसीयत का सत्यापन कानून द्वारा आवश्यक है, इसलिए इसके निष्पादन को धारा और साक्ष्य अधिनियम में निर्धारित तरीके से सिद्ध किया जाना चाहिए, जिसके अनुसार ऐसे दस्तावेज़ के निष्पादन को सिद्ध करने के लिए कम से कम एक सत्यापनकर्ता गवाह से पूछताछ की जानी आवश्यक है। सत्यापनकर्ता गवाह को न केवल वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या वसीयत पर अपनी मुहर लगाने के बारे में बताना चाहिए, बल्कि यह भी बताना चाहिए कि प्रत्येक गवाह ने वसीयतकर्ता की उपस्थिति में वसीयत पर हस्ताक्षर किए थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सावित्री बाई एवं अन्य बनाम सावित्री बाई (सुप्रा) के मामले में भी ऐसा ही दृष्टिकोण अपनाया है।

20. वर्तमान मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मृतक राम किशोर द्वारा प्रतिवादी-प्रतिवादी के पक्ष में वसीयत निष्पादित की गई थी, जिसमें यह खुलासा किया गया था कि मृतक की वर्तमान पत्नी का विवाह पहले राम अचल वर्मा निवासी मौजा गणेशपुर, परगना और तहसील अकबरपुर, जिला-फैजाबाद से हुआ था। राम किशोर की मृत्यु के बाद, श्रीमती सुरसती उनके घर आ गईं। वह अपने पहले पति से जन्मे पुदई उर्फ सभापति के साथ आईं। मृतक राम किशोर और श्रीमती सुरसती से एक पुत्र वेद प्रकाश है। राम किशोर ने सभापति और अपनी पत्नी के लिए ज़मीन खरीदी है। भविष्य में कोई झगड़ा न हो, इसके लिए मकान भी दे दिया है। उन्होंने वेद प्रकाश के पक्ष में वसीयतनामा तैयार कर लिया है। वसीयत को इस आधार पर चुनौती दी गई कि निष्पादक की कोई स्वतंत्र इच्छा नहीं थी और वसीयत जाली और मनगढ़ंत थी। वसीयत अचेतन मन से बनाई गई थी और वसीयत पर अंगूठे के निशान भी हैं, जबकि वसीयत का निष्पादनकर्ता एक सेवानिवृत्त डॉक्टर था। अतः वसीयत के निष्पादन के कारणों और परिस्थितियों का खुलासा वसीयत में ही किया गया है। यह भी बताया गया है कि वसीयत स्वतंत्र इच्छा से और बिना किसी प्रभाव या दबाव के बनाई जा रही है।

21. राजमणि, एक प्रमाणित गवाह, डी.डब्लू. 3 के रूप में उपस्थित हुए। प्रमाणित गवाह ने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा कि पूरा दस्तावेज़ उनकी उपस्थिति में लिखा गया था, उसके बाद, सभी दस्तावेज़ रजिस्ट्रार के समक्ष प्रस्तुत किए गए, जहाँ आवश्यकतानुसार अंगूठे के निशान लिए गए। उन्होंने कहा कि राम किशोर बीमार थे, लेकिन वे स्वयं खड़े हो जाते थे। वे देख और सुन सकते थे। वह पढ़ने में भी सक्षम था। राम किशोर ने उसे वसीयत पर गवाह के तौर पर बुलाया था। राम किशोर ने वसीयत पढ़ी थी। वसीयत पर हस्ताक्षर करते समय उसके हाथ काँप रहे थे और राधेश्याम वसीयत का दूसरा गवाह था। वसीयत वेद प्रकाश के पक्ष में हुई थी। राम किशोर ने बताया था कि वह अपनी ज़मीन की वसीयत अपने छोटे बेटे वेद प्रकाश के नाम कर रहा है। वसीयत राम किशोर के कहने पर लिखी गई थी। राम किशोर ने अपने अंगूठे का निशान लगाया था। वसीयत पढ़कर सुनाई गई। रजिस्ट्री कार्यालय में राम किशोर व अन्य के अंगूठे के निशान लिए गए। यह कहना गलत है कि राम किशोर ने अपनी सहमति से वसीयत नहीं बनवाई थी। यह कहना भी गलत है कि वसीयत के निष्पादन के समय राम किशोर देख और सुन नहीं सकते थे। इस प्रकार, भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 68 और

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 63 के अनुसार, वसीयत का निष्पादन प्रमाणित करने वाले साक्षी डी.डब्लू. 3 द्वारा सिद्ध किया गया। केवल इसलिए कि सत्यापनकर्ता साक्षी ने यह नहीं बताया कि जिन दो गवाहों ने प्रथम पक्ष रखा था, उनमें से किसने वसीयत प्रमाणित नहीं की, यह नहीं कहा जा सकता कि वसीयत प्रमाणित नहीं हुई, क्योंकि उसने कहा कि हस्ताक्षर करते समय सभी रजिस्ट्री कार्यालय में उपस्थित थे। यह भी कहा गया है कि राम किशोर अरैया स्थित उसकी दुकान पर आता-जाता था। उसने बताया कि पुड़ई उर्फ सभापति ने अपने हिस्से का दावा करते हुए वाद दायर किया है, जबकि उसने सभापति और उसकी पत्नी को 8 बीघा जमीन व आबादी दी है तथा पंजीकृत वसीयतनामा निष्पादित किया है, ताकि पैतृक संपत्ति का कोई विवाद न हो। जिरह में ऐसा कुछ भी नहीं निकल सका, जिससे उसकी गवाही पर कोई संदेह उत्पन्न हो या यह कि वसीयतनामा विधि के अनुसार निष्पादित नहीं किया गया था।

22. विद्वान निचली अदालत, सत्यापनकर्ता गवाह और वादी-अपीलकर्ता सभापति के साक्ष्य पर विचार करने के बाद, जिन्होंने अपनी गवाही में स्वीकार किया कि वसीयत पर लगी तस्वीर उनके पिता की है, तस्वीर असली है, लेकिन कहा कि अंगूठे के निशान जाली हैं, हालाँकि यह किसी भी दस्तावेज़ी साक्ष्य या विशेषज्ञ की राय से साबित नहीं हुआ है, इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वसीयत न तो जाली है और न ही रद्द करने योग्य है क्योंकि वादी-अपीलकर्ता वसीयत को चुनौती देने के अपने आधार साबित करने में विफल रहे हैं। विद्वान निचली अपीलीय अदालत ने यह निष्कर्ष दर्ज किया कि सत्यापनकर्ता गवाह राजमणि, जिनकी डी.डब्ल्यू. 3 के रूप में परीक्षा हुई है, ने वसीयत के निष्पादन को साबित कर दिया है।

23. अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वादी-अपीलार्थी मृतक राम किशोर का वास्तविक पुत्र है या नहीं और वह विवादित पैतृक संपत्ति में से आधे हिस्से का हकदार है या नहीं। मृतक राम किशोर ने वसीयतनामा निष्पादित करते समय उसमें यह स्पष्ट किया था कि वादी-अपीलार्थी का जन्म राम अचल वर्मा और श्रीमती सुरसती के विवाह से हुआ था, जो उनके पहले पति की मृत्यु के बाद अपने पहले पुत्र पुड़ई उर्फ सभापति अर्थात् वादी-अपीलार्थी के साथ उनके घर आई थीं।

24. श्रीमती सुरसती, डी.डब्लू. 2 के रूप में उपस्थित हुईं। उन्होंने अपने साक्ष्य में स्वीकार किया कि उनका पहला विवाह मौजा गणेशपुर, परगना व तहसील अकबरपुर निवासी राम अचल वर्मा के साथ हुआ था। इस विवाह से उन्हें एक पुत्र, पुड़ई उर्फ सभापति, का जन्म हुआ। अपने पहले पति की मृत्यु के बाद, उनका विवाह सलाहपुर रजौर निवासी राम किशोर से हुआ। उनसे और राम किशोर से एक पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। सभापति का जन्म गणेशपुर में हुआ था और उनकी खेती गणेशपुर में ही है। वह पुड़ई उर्फ सभापति को अपने साथ राम किशोर के घर ले आई थीं। उनके अनुरोध पर उनके पति राम किशोर ने सभापति को शिक्षा दिलाई। उन्होंने आगे बताया कि उनके अनुरोध पर उनके पति ने पुड़ई उर्फ सभापति के नाम मौजा सलाहपुर रजौर, परगना व

तहसील टांडा, जिला अंबेडकर नगर में 11 बिस्वा जमीन भी खरीदी और मकान भी दिया तथा उनके अनुरोध पर अरैया व सलाहपुर राजौर में आठ बीघा जमीन तथा पुदई उर्फ सभापति व उनकी पत्नी के नाम दो बिस्वा जमीन आबादी के लिए भी खरीदी ताकि भविष्य में उनकी पैतृक संपत्ति को लेकर कोई झगड़ा न हो। सभापति ने अधिकारों के लिए वाद दायर किया, इसलिए उनकी संपत्ति की सुरक्षा के लिए उनके पति ने एक पंजीकृत वसीयतनामा तैयार किया। उन्होंने यह भी कहा कि उनके पति की मृत्यु के बाद, उनका छोटा बेटा वेद प्रकाश विवादित भूमि का स्वामी है और उस पर काबिज है तथा उस पर खेती भी करता है। जिरह में उन्होंने बताया कि उनके पति मृत्यु से एक-दो महीने पहले बीमार थे। बीमारी के दौरान, वह चलता-फिरता था। जब उसकी मृत्यु हुई, तो वह अस्पताल में उसके साथ थी। उसका पति 15 दिनों तक अस्पताल में भर्ती रहा। वह अपनी छड़ी के सहारे खड़ा हो सकता था। उसे देखने और सुनने में समस्या थी। इस प्रकार, वादी-अपीलकर्ता की माँ ने स्वीकार किया कि वादी-अपीलकर्ता उसके पिछले पति राम अचल वर्मा के साथ उसके विवाहेतर संबंध से पैदा हुआ था और वह उसे अपने दूसरे पति राम किशोर के घर ले आई है। इसलिए, जब वादी-अपीलकर्ता की माँ ने स्वीकार कर लिया कि वह राम अचल वर्मा के साथ विवाहेतर संबंध से पैदा हुआ था, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह मृतक राम किशोर का असली पुत्र था, केवल इसलिए कि उसे हाई स्कूल सर्टिफिकेट और अन्य दस्तावेजों में उसके पिता को दिखाया गया है, जो शायद इसलिए हो सकता है क्योंकि उसके पिता की मृत्यु के बाद, वह अपनी माँ के साथ मृतक राम किशोर के घर आया था, जिसने उसे अपने बेटे के रूप में माना और उसके लिए जमीन आदि भी खरीदी, जैसा कि गवाहों ने बताया है, जिस पर विवाद नहीं किया गया है।

25. विद्वान विचारण न्यायालय ने वादी-अपीलकर्ता की माता, जो डी.डब्लू. 2 हैं, के साक्ष्य और परिवार रजिस्टर 89गा की प्रति, जिसमें श्रीमती सुरसती को राम अचल की पत्नी और पुदई उर्फ सभापति को राम अचल का पुत्र दर्शाया गया है, पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष अंकित किया है कि वादी-अपीलकर्ता मृतक राम किशोर का वास्तविक पुत्र नहीं था, अतः सभापति मृतक राम किशोर की संपत्ति का सह-खातेदार नहीं हो सकता और उसका नाम अधिकार अभिलेख में भी इस रूप में दर्ज नहीं है। अतः, उसके पक्ष में कोई वसीयत न होने के कारण, यह नहीं कहा जा सकता कि वादी-अपीलकर्ता मृतक राम किशोर की संपत्ति में आधा हिस्सा पाने का हकदार है।

26. उपरोक्त के मद्देनजर, चूंकि वादी-अपीलकर्ता मृतक राम किशोर का वास्तविक पुत्र नहीं है, इसलिए वह मृतक राम किशोर की विवादित पैतृक संपत्ति में कानूनी रूप से हिस्सा पाने का हकदार नहीं है और वह विवादित भूमि का सह-खातेदार नहीं था। विद्वान विचारण न्यायालय ने विवादित भूमि की खतौनी पत्र संख्या 51ग और 54ग पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष अंकित किया है कि प्रतिवादी राम किशोर पुत्र दलथम्मन, मौजा सलाहपुर राजौर हाल वारीद अरैया का नाम दर्ज है और वादी-अपीलकर्ता का नाम दर्ज नहीं है, इसलिए वह यह साबित करने में विफल रहा है कि वह विवादित भूमि का मालिक है और उसका कब्जा है। वह अपने साक्ष्य में

विवादित भूमि पर कब्जे के संबंध में कोई साक्ष्य भी देने में विफल रहा है, इस प्रकार वह निषेधाज्ञा का हकदार नहीं है।

27. विद्वान विचारण न्यायालय और अवर अपीलीय न्यायालय ने, विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए साक्ष्यों, सामग्री और निष्कर्षों पर विचार करने के बाद और यह कि 'मातृत्व निश्चितता है और पितृत्व अनुमान है' और वादी-अपीलकर्ता की माता श्रीमती सुरसती की स्वीकारोक्ति के मद्देनजर, यह माना कि वादी-अपीलकर्ता का यह दावा कि वह राम अचल के बजाय मृतक राम किशोर का पुत्र है, मान्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, उसका नाम कागज संख्या 89गा में भी राम अचल के पुत्र के रूप में दर्ज है और खतौनी में राम किशोर का नाम दर्ज है, इस प्रकार, अवर न्यायालयों ने विधि के अनुसार अभिलेख पर अभिवचनों, साक्ष्यों और सामग्री पर विचार करने के बाद निर्णय और डिक्री पारित की है। इस प्रकार, अवर विद्वान न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई अवैधता या त्रुटि नहीं है।

28. वादी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने धीरजलाल गिरधारीलाल बनाम आयकर आयुक्त, बॉम्बे (सुप्रा) मामले का हवाला देते हुए तर्क दिया कि निचली अपीलीय अदालत का मन अप्रासंगिक सामग्री से प्रभावित हुआ था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में यह माना है कि यह सर्वविदित है कि जब कोई तथ्यात्मक न्यायालय आंशिक रूप से प्रासंगिक और आंशिक रूप से अप्रासंगिक सामग्री पर कार्य करता है, तो यह कहना असंभव है कि न्यायालय का मन अपने निष्कर्ष पर पहुँचने में प्रयुक्त अप्रासंगिक सामग्री से किस हद तक प्रभावित हुआ था। अस्वीकार्य सामग्री के प्रयोग के कारण ऐसा निष्कर्ष भ्रष्ट हो जाता है और इस प्रकार विधि का प्रश्न उठता है। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि अग्राह्य सामग्री के उपयोग पर कानून का मुद्दा उठ सकता है। हालांकि, दूसरी अपील में जब तक कि कानून का उक्त मुद्दा अभिलेख पर दलीलों, साक्ष्य और सामग्री के आधार पर पर्याप्त न हो, यह नहीं कहा जा सकता है कि यह दूसरी अपील में शामिल कानून का एक महत्वपूर्ण सवाल है और दूसरी अपील को केवल दूसरी अपील में शामिल कानून के महत्वपूर्ण सवाल पर ही ग्रहण, सुना और विनिश्चित किया जा सकता है। वादी-अपीलकर्ता के विद्वान वकील इस अपील में किसी भी अग्राह्य सामग्री को इंगित करने में असफल रहे हैं, जिस पर नीचे के न्यायालयों द्वारा विचार किया जा सकता था। उक्त निर्णय पर इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने प्रबंध समिति, गंगादीन राम कुमार इंटर कॉलेज, रामगढ़ बरवां, जिला जौनपुर बनाम शिक्षा उप निदेशक और अन्य (सुप्रा) के मामले में भरोसा किया है। हालांकि, उक्त निर्णय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होते हैं।

29. माननीय उच्चतम न्यायालय ने संतोष हजारी बनाम पुरुषोत्तम तिवारी (मृतक) एलआर द्वारा (सुप्रा) के मामले में, द्वितीय अपील में धारा 100 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत उच्च न्यायालय की शक्ति पर विचार किया है और संशोधित धारा 100 में प्रयुक्त वाक्यांश "कानून का सारवान प्रश्न" को, जैसा कि संहिता

में परिभाषित नहीं किया गया है, यह माना है कि "कानून के प्रश्न" को योग्य बनाने के लिए सारवान शब्द का अर्थ सारवान, आवश्यक, वास्तविक और उचित मूल्य का, महत्वपूर्ण और विचारणीय है। यह भी माना गया है कि जिस विधि का सारवान प्रश्न पर द्वितीय अपील की सुनवाई की जाएगी, वह आवश्यक रूप से सामान्य महत्व का विधि का सारवान प्रश्न नहीं होना चाहिए। संबंधित अनुच्छेद संख्या 10 से 12 नीचे उद्धृत हैं:-

"10. सर्वप्रथम हम यह बता सकते हैं कि वादी-अपीलकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष दायर द्वितीय अपील का ज्ञापन गंभीर त्रुटिपूर्ण था। संहिता की धारा 100, जैसा कि 1976 में संशोधित किया गया था, उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को केवल मामले से संबंधित विधि के सारवान प्रश्न पर ही द्वितीय अपील की सुनवाई करने तक सीमित करती है। अपीलकर्ता पर यह दायित्व है कि वह अपील ज्ञापन में उस विधि के सारवान प्रश्न का स्पष्ट रूप से उल्लेख करे जिसे अपीलकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रस्ताव रखता है। उच्च न्यायालय को यह विश्वास होना चाहिए कि मामले में विधि का एक सारवान प्रश्न शामिल है और ऐसे प्रश्न का निरूपण उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है। ऐसे प्रश्न या सवाल अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तावित हो सकते हैं या कोई अन्य प्रश्न हो सकता है जो हालांकि अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तावित नहीं है फिर भी उच्च न्यायालय की राय में मामले में शामिल है और प्रकृति में पर्याप्त है। अपील की सुनवाई में, सुनवाई का दायरा उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किए गए प्रश्न से घिरा हुआ है। प्रतिवादी यह दिखाने के लिए स्वतंत्र है कि उच्च न्यायालय द्वारा तैयार किया गया प्रश्न मामले में शामिल नहीं था। उच्च न्यायालय द्वारा दूसरी अपील की सुनवाई के दायरे को निर्धारित करने वाले कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के बावजूद, पहले से तैयार नहीं किए गए किसी अन्य महत्वपूर्ण कानून के प्रश्न पर अपील की सुनवाई करने की इसकी शक्ति दो शर्तों के संतुष्ट होने के अधीन नहीं छीनी जाती है: (i) उच्च न्यायालय को लगता है कि मामले में ऐसा प्रश्न शामिल है, और (ii) उच्च न्यायालय अपनी ऐसी संतुष्टि के कारणों को दर्ज करता है।

11. संहिता की पुरानी धारा 100 (1976 के संशोधन से पहले) के तहत भी, तथ्यों के शुद्ध निष्कर्ष को उच्च न्यायालय में द्वितीय अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती थी। हालांकि, विधि आयोग ने अनेक परस्पर विरोधी निर्णयों पर ध्यान दिया। उसने पाया कि द्वितीय अपीलों पर विचार करते समय, न्यायालय कई अवधारणाएँ विकसित कर रहे थे और उन्हें सफलतापूर्वक अपना रहे थे, जैसे कि तथ्य और विधि का मिश्रित प्रश्न, सिद्ध तथ्यों से निकाला जाने वाला विधिक निष्कर्ष, और यहाँ तक कि यह मुद्दा कि निचली अदालतों द्वारा मामले को उचित रूप से नहीं देखा गया है। इससे जनता के मन में धारा 100 के अंतर्गत द्वितीय अपील के वैध दायरे के बारे में भ्रम पैदा हो रहा था और उच्च न्यायालयों पर अनावश्यक रूप से बड़ी संख्या में द्वितीय अपीलों का बोझ पड़ रहा था। इसलिए, धारा 100 में संशोधन करने का सुझाव दिया गया ताकि यह प्रावधान किया जा सके कि द्वितीय अपील का अधिकार केवल उन्हीं मामलों तक सीमित रहे जहाँ विधि का प्रश्न शामिल हो और ऐसा विधि का प्रश्न सारवान हो। (उद्देश्यों और कारणों का विवरण देखें)। संशोधन विधेयक जिस प्रवर समिति

को भेजा गया था, उसका मानना था कि द्वितीय अपीलों का दायरा सीमित किया जाना चाहिए ताकि मुकदमे लंबे समय तक न खिंचें। संहिता की धारा 100 की उपधारा (4) के अधीन किसी विधि प्रश्न को तैयार करने के लिए, निस्संदेह, कारण बताना आवश्यक नहीं है; यद्यपि उपधारा (4) के अधीन तैयार किए गए प्रश्न के अलावा, किसी अन्य सारवान विधि प्रश्न पर सुनवाई करने की शक्ति का प्रयोग करते समय, ऐसे कारण उपधारा (5) के परन्तुक के अधीन अभिलिखित किए जाने हैं।

12. संशोधित धारा 100 में प्रयुक्त "विधि का सारवान प्रश्न" वाक्यांश को संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है। विधि के अर्हक प्रश्न के रूप में "सारवान" शब्द का अर्थ है - सारवान, आवश्यक, वास्तविक, सार्थक, महत्वपूर्ण या विचारणीय। इसे तकनीकी, सारहीन या परिणामहीन, या केवल शैक्षणिक के विपरीत समझा जाना चाहिए। तथापि, यह स्पष्ट है कि विधानमंडल ने सामान्य महत्व के शब्दों को जोड़कर विधि के सारवान प्रश्न के दायरे को अर्हता प्रदान नहीं करने का निर्णय लिया है, जैसा कि संहिता की धारा 109 या संविधान के अनुच्छेद 133(1)(ए) जैसे कई अन्य प्रावधानों में किया गया है। विधि का वह सारवान प्रश्न जिस पर द्वितीय अपील की सुनवाई की जाएगी, आवश्यक नहीं कि वह सामान्य महत्व का सारवान विधि प्रश्न ही हो। गुरन दिता एवं अन्य बनाम टी. राम दिता, एआईआर 1928 प्रिवी काउंसिल 172 में, "विधि का सारवान प्रश्न" वाक्यांश, जैसा कि सी.पी.सी. की तत्कालीन धारा 110 (जिसे अब संशोधन अधिनियम, 1973 द्वारा हटा दिया गया है) के अंतिम खंड में प्रयुक्त किया गया था, विचारार्थ आया और माननीयों ने यह माना कि इसका आशय सामान्य महत्व के सारवान प्रश्न से नहीं, बल्कि विधि के एक सारवान प्रश्न से था जो पक्षकारों के बीच मामले में अंतर्ग्रस्त था। सर चुन्नीलाल वी. मेहता एंड सस लिमिटेड बनाम द सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड, (1962) सप्प.3 एससीआर 549 में, संविधान पीठ ने रिम्मलपुडी सुब्बा राव बनाम नूनी वीरराजू, आईएलआर 1952 मद्रास 264 में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा लिए गए निम्नलिखित दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की:-

"[जब कोई विधि प्रश्न पर्याप्त रूप से तर्क-योग्य हो, जहाँ उस पर मतभेद की गुंजाइश हो, या जहाँ न्यायालय ने उस प्रश्न पर विस्तार से विचार करना और वैकल्पिक विचारों पर चर्चा करना आवश्यक समझा हो, तो वह प्रश्न विधि का सारभूत प्रश्न होगा। दूसरी ओर, यदि वह प्रश्न व्यावहारिक रूप से सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय द्वारा कवर किया गया हो, या यदि प्रश्न के निर्धारण में लागू किए जाने वाले सामान्य सिद्धांत सुस्थापित हों और केवल उन सिद्धांतों को मामले के विशिष्ट तथ्यों पर लागू करने का प्रश्न हो, तो वह विधि का सारभूत प्रश्न नहीं होगा।"

और यह निर्धारित करने के लिए कि मामले में उठाया गया विधि का प्रश्न सारवान है या नहीं, निम्नलिखित परीक्षण को उचित परीक्षण के रूप में निर्धारित किया:

" हमारी राय में, इस मामले में उठाया गया विधि का प्रश्न सारवान है या नहीं, यह निर्धारित करने का उचित परीक्षण यह होगा कि क्या यह सर्वसाधारण के लिए महत्वपूर्ण है या यह पक्षकारों के अधिकारों को प्रत्यक्ष और सारतः प्रभावित करता है, और यदि ऐसा है, तो क्या यह इस अर्थ में एक खुला प्रश्न है कि यह इस न्यायालय, प्रिवी काउंसिल या संघीय न्यायालय द्वारा अंतिम रूप से तय नहीं किया गया है, या यह कठिनाइयों से मुक्त नहीं है या वैकल्पिक विचारों पर चर्चा की आवश्यकता है। यदि प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया है या प्रश्न के निर्धारण में लागू किए जाने वाले सामान्य सिद्धांत सुस्थापित हैं और केवल उन सिद्धांतों को लागू करने का प्रश्न है, या उठाया गया तर्क स्पष्ट रूप से बेतुका है, तो यह प्रश्न विधि का सारवान प्रश्न नहीं होगा।"

30. वादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने (श्रीमती) सावित्री एवं अन्य बनाम सुरेन्द्र मोहन मोहना (सुप्रा) मामले में दिए गए निर्णय का भी हवाला दिया, जिसमें कहा गया था कि जो व्यक्ति खरीद कर संपत्ति का मालिकाना हक स्थापित करता है, उसे यह साबित करना होगा कि उसके विक्रेता के पास बेची गई संपत्ति का मालिकाना हक था। यह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में लागू नहीं होता।

31. राम अधार एवं अन्य बनाम बैज नाथ (सुप्रा) के मामले में, इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने माना है कि जहां तथ्यों के संबंध में न्यायालय के निष्कर्ष प्रासंगिक साक्ष्य पर विचार न करने या मामले में गलत दृष्टिकोण के कारण दूषित हो गए थे, वहां उच्च न्यायालय को उचित निष्कर्ष दर्ज करने से नहीं रोका जा सकता है, जैसा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने जगदीश सिंह बनाम नाथू सिंह; 1992 (1) एससीसी 647 में माना था।

32. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने, झूरी सिंह बनाम राम कुमार सिंह व अन्य (सुप्रा) मामले में, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय को ध्यान में रखते हुए कि निचली अदालतों के समवर्ती जुर्माने में हस्तक्षेप न करने का नियम सार्वभौमिक रूप से लागू होने वाला पूर्ण नियम नहीं है, मामले को नए सिरे से आयोग गठित करने और उसके बाद विधि के अनुसार अपील पर निर्णय लेने के लिए प्रतिवेदित किया है। इस बात की जाँच की जानी चाहिए कि क्या इसके निष्कर्ष, हफाज़त हुसैन बनाम अब्दुल मजीद व अन्य (2001) 7 एससीसी 189 में दिए गए द्वितीय अपील में हस्तक्षेप के लिए विचारणीय मानदंडों के अनुसार न्यायोचित हैं।

33. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने रत्नागिरी नगर परिषद बनाम गंगाराम नारायण आंबेकर एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह माना कि वादीगण पर अपने तर्क को सिद्ध करने का प्रारंभिक दायित्व था, जिसे सिद्ध करने में वे असफल रहे। ऐसे मामले में, बचाव पक्ष की कमज़ोरी, वादीगण को राहत देने और प्रतिवादियों पर भार

डालने का आधार नहीं हो सकती। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्ष और निष्कर्ष वादीगण के लिए किसी काम के नहीं होंगे।

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हरियाणा राज्य बनाम हरनाम सिंह (मृत) थू एल.आर. एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह माना है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के तहत अपील की सुनवाई करते समय उच्च न्यायालय द्वारा अपने निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विस्तृत तथ्यात्मक जांच की अनुमति नहीं थी। यह भी माना गया है कि निचली अदालत और प्रथम अपीलीय अदालत के निष्कर्षों में उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए था क्योंकि हमें प्रथम दो अदालतों के तथ्यों के आधार पर दिए गए निर्णय में कोई विकृति नहीं दिखती। यह भी माना गया है कि निचली दोनों अदालतों द्वारा दर्ज तथ्यात्मक निष्कर्षों में उच्च न्यायालय तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक कि वे अधिकार क्षेत्र से बाहर और विकृत न हों।

35. इस न्यायालय की समन्वय पीठ ने मोइनुद्दीन बनाम श्रीमती कांति एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह माना है कि निचली अपीलीय अदालत का निष्कर्ष रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री और प्रासंगिक कानून के उचित मूल्यांकन पर आधारित है और माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना है कि यह न्यायालय निचली अपीलीय अदालत द्वारा दर्ज तथ्यों के गलत निष्कर्ष में भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता है जब तक कि यह विकृत न हो।

36. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने मधुसूदन दास बनाम श्रीमती नारायणी बाई एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह निर्णय दिया है कि निचली अदालत के फैसले के विरुद्ध अपील में, जब अपीलीय न्यायालय मौखिक साक्ष्य के आधार पर किसी मुद्दे पर विचार करता है, तो उसे यह ध्यान रखना चाहिए कि उसे वह लाभ नहीं मिल रहा है जो निचली अदालत को गवाहों के समक्ष होने और उनकी गवाही के तरीके को देखने से प्राप्त होता था। इसलिए, अपीलीय न्यायालय केवल निचली अदालत द्वारा की गई गलती के स्पष्ट प्रमाण पर ही हस्तक्षेप कर सकता है। प्रासंगिक अनुच्छेद 8 नीचे उद्धृत है:-

"8. यह प्रश्न कि क्या अपीलकर्ता को वास्तव में जगन्नाथ दास और प्रेमवती ने गोद लिया था, मूलतः मौखिक साक्ष्य के आधार पर निर्धारित किया गया है, और मौखिक साक्ष्य के पूरक के रूप में केवल कुछ दस्तावेजों का उल्लेख किया गया है। इस स्तर पर, इस सामान्य सिद्धांत का उल्लेख करना उचित होगा कि, किसी निचली अदालत के आदेश के विरुद्ध अपील में, जब अपीलीय न्यायालय मौखिक साक्ष्य पर आधारित किसी मुद्दे पर विचार करता है, तो उसे यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसे वह लाभ नहीं मिलता जो निचली अदालत को गवाहों के समक्ष उपस्थित होने और उनके द्वारा दी गई गवाही के तरीके को देखने का लाभ मिलता था। जब किसी मामले में मौखिक साक्ष्य में विरोधाभास हो और उसका समाधान साक्षियों की विश्वसनीयता पर निर्भर करता हो, तो सामान्य नियम यह है कि अपील न्यायालय को विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए तथ्यों के

निष्कर्षों को तब तक प्रभावी रहने देना चाहिए जब तक कि यह स्पष्ट रूप से प्रतीत न हो कि किसी विशेष साक्षी के साक्ष्य की कोई विशेष बात विचारण न्यायालय की जानकारी से छूट गई है या विश्वसनीयता के संबंध में उसकी राय को बदलने के लिए पर्याप्त असंभावना का संतुलन है। इस संबंध में, डब्ल्यू.सी. मैकडोनाल्ड बनाम फ्रेड लैटिमेर, एआईआर 1929 प्रिवी काउंसिल 15, 18 का संदर्भ उपयोगी रूप से लिया जा सकता है, जहां प्रिवी काउंसिल ने निर्धारित किया था कि जब पक्षों के मौखिक साक्ष्य के बीच सीधा संघर्ष होता है, और ऐसा कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं होता है जो स्पष्ट रूप से एक दृष्टिकोण की पुष्टि करता हो या दूसरे का खंडन करता हो, और मौखिक साक्ष्य की सच्चाई के बारे में ट्रायल कोर्ट के निष्कर्षों को विस्थापित करने के लिए असंभावना का पर्याप्त संतुलन नहीं है, तो अपीलीय न्यायालय केवल ट्रायल कोर्ट द्वारा गलती के बहुत स्पष्ट सबूत पर हस्तक्षेप कर सकता है। वाट बनाम थॉमस, 1947 एसी 484, 486 में यह कहा गया था: यह एक ठोस परिस्थिति है कि प्रथम दृष्टया न्यायाधीश को मौखिक गवाही के मूल्य का आकलन करते समय यह लाभ प्राप्त होता है (जो अपील न्यायालयों को नहीं मिलता) कि वह गवाहों को अपने समक्ष रख सकता है और उनके साक्ष्य देने के तरीके का अवलोकन कर सकता है। सारा वीरास्वामी बनाम तल्लूरी नारायण (मृतक), एआईआर 1949 प्रिवी काउंसिल 32 में प्रिवी काउंसिल द्वारा अनुमोदन के साथ इस पर ध्यान दिया गया था और सरजू पार्षद बनाम राजा ज्वालेश्वरी प्रताप नारायण सिंह, 1950 एससीआर 781, 783 में इस न्यायालय ने इसे स्वीकार किया था। हमें लगता है कि इस दृष्टिकोण को इस बात पर विचार करते समय सबसे आगे रखा जाना चाहिए कि क्या उच्च न्यायालय ने निचली अदालत के निष्कर्षों को पलटने का निर्णय लेते समय अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों का सही मूल्यांकन किया था। यह सिद्धांत व्यवहार का है और निचली अदालत द्वारा तथ्यों के निष्कर्ष को दिए जाने वाले महत्व को नियंत्रित करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि विधि के अनुसार, यदि निचली अदालत द्वारा साक्ष्यों के मूल्यांकन में कोई भौतिक अनियमितता है या वह अस्वीकार्य साक्ष्यों पर, या साक्ष्यों के गलत अर्थ पर, या अनुमानों और अनुमानों पर आधारित है, तो अपीलीय अदालत तथ्यों के निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने की हकदार है। प्रतिवादियों ने हमारा ध्यान द एशियाटिक स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड बनाम सब-लेफ्टिनेंट अरबिंदा चक्रवर्ती, (1959) सप्प 1 एससीआर 979 की ओर आकर्षित किया है, लेकिन हमारी राय में, इसमें कही गई कोई भी बात यहाँ प्रतिपादित प्रस्ताव की वैधता को कम नहीं करती है।

37. इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने फग्गन (मृतक) एवं अन्य बनाम भगवान सहाय (मृतक) एवं अन्य (सुप्रा) मामले में यह टिप्पणी की है कि सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 100, सी.पी.सी. के प्रावधानों की उदार व्याख्या और उदारतापूर्वक अनुप्रयोग की निंदा की है, क्योंकि माननीय सर्वोच्च न्यायालय का यह मत था कि केवल इसलिए कि साक्ष्य के मूल्यांकन पर एक अन्य दृष्टिकोण संभव है, धारा 100, सी.पी.सी. के अंतर्गत हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता है। प्रासंगिक अनुच्छेद 18 नीचे उद्धृत है:-

"18. सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 100, सी.पी.सी. के प्रावधानों की उदार व्याख्या और उदारतापूर्वक प्रयोग की निंदा की। माननीय सर्वोच्च न्यायालय का मानना था कि केवल इसलिए कि साक्ष्य के मूल्यांकन पर एक अन्य दृष्टिकोण संभव है, धारा 100, सी.पी.सी. के अंतर्गत हस्तक्षेप के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता। त्वरित संदर्भ के लिए, वीरयी अम्मल बनाम सीनी अम्मल, (2002) 1 एससीसी 134 मामले के पैराग्राफ 7 का अंश नीचे उद्धृत किया गया है:

."7..... हमने दुःख के साथ देखा है कि संशोधन के बावजूद, उच्च न्यायालयों के कुछ न्यायाधीशों द्वारा संहिता की धारा 100 के प्रावधानों की उदारतापूर्वक व्याख्या और प्रयोग किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप धारा 100 के संशोधन द्वारा प्राप्त किया जाने वाला उद्देश्य विफल होता प्रतीत होता है। संहिता की धारा 100 के संशोधन से पहले भी, दूसरी अपील में तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष को बदला नहीं जा सका था। इस न्यायालय ने पारस नाथ ठाकुर बनाम मोहनी दासी में यह निर्णय दिया था: (एआईआर पृष्ठ 1205 पैरा 3)।

प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति और इस न्यायालय के निर्णयों की एक लंबी श्रृंखला से यह बात भली-भाँति स्थापित हो चुकी है कि उच्च न्यायालय, दूसरी अपील पर, तथ्य संबंधी प्रश्नों पर विचार नहीं कर सकता, चाहे तथ्य न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए तथ्य निष्कर्ष कितने भी त्रुटिपूर्ण क्यों न हों। उन निर्णयों का हवाला देना आवश्यक नहीं है। वास्तव में, वादी-प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने यह तर्क नहीं दिया और न ही दे सकते थे कि उच्च न्यायालय दोनों तथ्य न्यायालयों द्वारा एक साथ दर्ज किए गए तथ्य निष्कर्षों पर विचार करने के लिए सक्षम है।"

38. उपरोक्त के मद्देनजर, चूंकि यह साबित हो चुका है कि वादी-अपीलकर्ता मृतक राम किशोर का वास्तविक पुत्र नहीं था और उसका नाम अधिकार अभिलेख में सह-खातेदार के रूप में दर्ज नहीं था, इसलिए वह अपने द्वारा दावा किए गए हिस्से के आधे हिस्से का हकदार नहीं है। मृतक राम किशोर द्वारा प्रतिवादी-प्रतिवादी के हित-पूर्ववर्ती के पक्ष में वसीयत भी निष्पादित की गई है, जो सिद्ध हो गई, तथापि, यदि निचली अदालतों द्वारा दर्ज निष्कर्षों में कोई विसंगति है, तो भी इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि वादी-अपीलकर्ता यह साबित करने में विफल रहे हैं कि इसे कानून के अनुसार निष्पादित नहीं किया गया है। अन्यथा भी वह मृतक राम किशोर की पैतृक संपत्ति में किसी भी हिस्से के लिए हकदार नहीं है, इसलिए वह प्रतिवादी-प्रतिवादी के पिता के पक्ष में निष्पादित वसीयत को चुनौती नहीं दे सकता था और यदि इसे अपास्त भी कर दिया जाता है, तो वादी-अपीलकर्ता को 1950 के अधिनियम की धारा 171 के मद्देनजर मृतक राम किशोर की संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं मिलेगा।

39. जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह भी स्थापित कानून है कि दो निचली अदालतों द्वारा दर्ज समवर्ती निष्कर्षों को इस न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील में तब तक रद्द नहीं किया जा सकता जब तक कि निष्कर्ष विकृत और अधिकार क्षेत्र से बाहर न हों, जो कि यहां मामला नहीं है क्योंकि निचली अदालतों ने तर्कपूर्ण और स्पष्ट आदेश पारित करके अभिलेख पर दलीलों, साक्ष्य और सामग्री पर विचार करने के बाद कानून के अनुसार निर्णय और डिक्री पारित की है और वे विकृत और अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं हैं। वैसे भी, वसीयत के संबंध में निचली अदालतों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में कोई भी त्रुटि, जो विवादित संपत्ति में आधे हिस्से के दावे से संबंधित मामले के गुण-दोष या अदालत के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित नहीं करती है, क्योंकि वादी-अपीलकर्ता विवादित भूमि पर स्वामित्व और कब्जा साबित करने में भी विफल रहे हैं, इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप का आधार नहीं बन सकती। इस प्रकार, सीपीसी की धारा 99 के मद्देनजर, आक्षेपित निर्णय और डिक्री को उलटा या संशोधित नहीं किया जा सकता। इस अपील में प्रस्तुत विधि के उपरोक्त सारवान प्रश्नों का उत्तर तदनुसार दिया गया है। इस प्रकार, यह अपील गलत और निराधार आधार पर दायर की गई है और खारिज किए जाने योग्य है।

40. द्वितीय अपील खारिज की जाती है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 701

अपील क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र

द्वितीय अपील संख्या 12/2018

प्रेम चंद एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

चरत कुमार बंसल

...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के वकील: श्री जगदीश प्रसाद मिश्रा, श्री प्रेम प्रकाश चौधरी

प्रतिवादी के वकील: श्री निपुण सिंह, श्री सुमित डागा

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100 - आदेश XLI नियम 5 - आदेश XLII नियम 1 - आदेश XLIII नियम 1 - सिविल प्रक्रिया संहिता (यूपी संशोधन) - धारा 115, 115 (4) - द्वितीय अपील -

अपील प्रवेश स्तर पर लंबित है - समन जारी करना बनाम मूल रिकॉर्ड को बनाए रखना या वापस करना - प्रतिवादी के वकील ने प्रथम अपीलीय न्यायालय और ट्रायल कोर्ट के मूल रिकॉर्ड की वापसी के बारे में एक मुद्दा उठाया, जिसे उच्च न्यायालय ने अपील स्वीकार किए बिना ही समन कर लिया था - कार्यवाही पर रोक लगाने का विधायी अधिदेश - न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XLI नियम 5 और सी.पी.सी. की धारा 115 में यू.पी. संशोधन के तहत विधायी अधिदेश पर चर्चा की, जिसमें कहा गया है कि केवल अपील या पुनरीक्षण दाखिल करना कार्यवाही पर रोक के रूप में कार्य नहीं करता है - न्यायालय ने पाया कि, - सुप्रीम कोर्ट ने एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी पी. लिमिटेड के मामले में निर्देश दिया था कि मूल रिकॉर्ड के बजाय रिकॉर्ड की फोटोकॉपी या स्कैन की गई प्रतियां मंगाई जानी चाहिए - हालाँकि, एशियन रीसर्फेसिंग में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को बाद में हाईकोर्ट बार एसोसिएशन, इलाहाबाद बनाम उत्तर प्रदेश के एक मामले में संविधान पीठ द्वारा उलट दिया गया था, लेकिन रिकॉर्ड की फोटोकॉपी / स्कैन की गई प्रतियों को बुलाने के निर्देश अप्रभावित रहे - अवधारित किया - कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि जब तक अन्यथा विशेष रूप से निर्देश न दिया जाए, केवल अभिलेखों की फोटोकॉपी/स्कैन की गई प्रतियां ही तलब की जाएं और पहले तलब किए गए किसी भी मूल अभिलेख को वापस भेजा जाए। - रजिस्ट्रार जनरल को भी निर्देश दिए जाते हैं कि वे इस न्यायालय के कार्यालय के साथ-साथ सभी जिला न्यायाधीशों को निर्देशों के अनुसार कार्य करने के लिए आवश्यक परिपत्र/संदेश जारी करें। - अपील लंबित है। (पैरा - 9, 10, 11, 12, 13)

दूसरी अपील लंबित है। (ई-11)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्रा. लिमिटेड बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो - सर्वोच्च न्यायालय का आदेश दिनांक 25.04.2018 - (2018) 16 एससीसी 299),
2. उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन, इलाहाबाद बनाम उत्तर प्रदेश के सेंट एवं अन्य (2024) 6 एससीसी 267।

(माननीय न्यायमूर्ति क्षितिज शैलेन्द्र द्वारा)

मूल रिकॉर्ड को बनाए रखने या वापस करने के संबंध में समन जारी करने के मुद्दे पर

1. प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता श्री सुमित डागा ने एक ऐसा मुद्दा उठाया है जो प्रथम दृष्टया तो बहुत छोटा प्रतीत होता है, लेकिन इसका बहुत महत्व है। इस मामले को एक सीमित मुद्दे के रूप में सामान्य महत्व का माना जा रहा है जो इस न्यायालय के समक्ष कई मामलों में आता रहा है।
2. मामले का उल्लेख सुबह में किया गया था, लेकिन इसकी सुनवाई के लिए नहीं, क्योंकि समय की कमी के कारण आज मामले की सुनवाई नहीं हो सकी, बल्कि प्रथम अपीलीय न्यायालय और निचली अदालत के मूल

रिकार्ड को वापस करने के संबंध में प्रार्थना की गई थी, जिन्हें पहले इस न्यायालय ने अपील स्वीकार किए बिना ही तलब किया था।

3. दिनांक 19.01.2018 के आदेश का हवाला देते हुए, यह तर्क दिया गया है कि आज तक तत्काल अपील को स्वीकार नहीं किया गया है, लेकिन न्यायालय ने सात साल पहले मूल रिकॉर्ड तलब किया था, और 07.03.2019 को, इस आशय का एक आदेश पारित किया गया था कि केवल अपील के लंबित रहने का मतलब डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने वाला कोई अंतरिम आदेश पारित करना नहीं होगा। निवेदन यह है कि यह मामला पिछले कई वर्षों से स्थगित चल रहा है और यद्यपि अपील स्वीकार नहीं की गई है, फिर भी चूंकि मूल अभिलेख इस न्यायालय में प्रवेश हेतु सुनवाई हेतु प्रस्तुत है, इसलिए निष्पादन कार्यवाही रुकी हुई है। वह न्यायालय से अनुरोध करते हैं कि मूल अभिलेख जिला न्यायाधीश को वापस भेज दिया जाए।

4. यह सामान्य बात है और इस न्यायालय की कार्यवाही का एक अंग है कि जब भी यह न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय की कार्यवाहियों, विशेषकर अंतिम रूप से निर्णीत कार्यवाहियों, का अभिलेख तलब करता है, तो ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि उसके समक्ष प्रस्तुत मामले पर, चाहे वह प्रवेश हेतु हो या अंतिम सुनवाई हेतु, विचार करने में सुविधा हो। इसका कारण यह है कि न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेख का हिस्सा बनने वाले दस्तावेजों का अवलोकन करना चाहता है। इसलिए, इस तथ्य पर ध्यान दिए बिना कि अपील या पुनरीक्षण स्वीकार किया गया है या नहीं, मूल रिकॉर्ड को तलब करने से कुछ अप्रत्याशित समस्याएं पैदा होंगी।

5. सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 नियम 5 या उत्तर प्रदेश द्वारा सी.पी.सी. की धारा 115 में किए गए संशोधनों के अंतर्गत निहित विधायी अधिदेश इस आशय से स्पष्ट है कि केवल अपील या पुनरीक्षण दायर करने से कार्यवाही पर रोक नहीं लगेगी। उक्त प्रावधान त्वरित संदर्भ के लिए उद्धृत हैं:-

सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश XLI नियम 5

"5. अपीलीय न्यायालय द्वारा स्थगन- (1) अपील किसी डिक्री या आदेश के अधीन कार्यवाही पर रोक के रूप में कार्य नहीं करेगी, जिसके विरुद्ध अपील की गई है, सिवाय इसके कि अपील न्यायालय आदेश दे, और न ही किसी डिक्री का निष्पादन केवल इस कारण रोका जाएगा कि डिक्री के विरुद्ध अपील की गई है; किन्तु अपील न्यायालय पर्याप्त कारण होने पर ऐसी डिक्री के निष्पादन पर रोक लगाने का आदेश दे सकता है।"

Sub-section (4) of Section 115 of Code of Civil Procedure (U.P. Amendment)

"(4) पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष वाद या अन्य कार्यवाही पर रोक के रूप में कार्य नहीं करेगा, सिवाय इसके कि ऐसे वाद या अन्य कार्यवाही को उच्च न्यायालय द्वारा रोक दिया गया हो।"

6. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLII नियम 1 के अनुसार, आदेश XLII के प्रावधान अपीलीय डिक्री के विरुद्ध अपीलों पर भी लागू होते हैं, इसलिए आदेश XLII का नियम 5 द्वितीय अपीलों पर भी लागू होगा। इसे नीचे उद्धृत किया गया है:-

"1. प्रक्रिया- आदेश 41 के नियम, जहां तक संभव हो, अपीलीय डिक्री से अपीलों पर लागू होंगे।"

7. इसी प्रकार, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश XLIII नियम 1 के तहत, आदेश XLI के प्रावधान आदेशों से अपील पर भी लागू होते हैं और इसलिए, आदेश XLI का नियम 5, जैसा कि ऊपर उद्धृत किया गया है, आदेशों से अपील पर भी लागू होगा।

8. इस संबंध में, इस न्यायालय ने अपने कार्यालय से प्रासंगिक परिपत्र/अधिसूचना आदि मंगवाई ताकि यह समझा जा सके कि अभिलेख की मूल/फोटोस्टेट प्रति किस आधार पर तलब की जा रही है। संबंधित अधिकारियों ने न्यायालय के समक्ष एशियन रीसर्फेसिंग ऑफ रोड एजेंसी प्रा. लिमिटेड एवं अन्य बनाम केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 25.04.2018 के आदेश की एक प्रति प्रस्तुत की और प्रस्तुत किया कि उक्त आदेश में निहित निर्देशों के अनुसरण में अब अभिलेख की मूल प्रति नहीं, बल्कि फोटोस्टेट प्रति तलब की जा रही है। तत्काल संदर्भ के लिए, दिनांक 25.04.2018 के आदेश का उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"1. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना गया।

2. तीन न्यायाधीशों की पीठ के दिनांक 28 मार्च, 2018 के निर्णय के मद्देनजर और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री पर विचार करने के बाद, हमें आरोप निर्धारण आदेश में हस्तक्षेप करने का कोई आधार नहीं मिला।

3. तदनुसार, निचली अदालत को अपने समक्ष लंबित मामले में आगे बढ़ने का निर्देश दिया जाता है। पक्षकारों के सभी तर्क खुले रखे जाते हैं जिन पर निचली अदालत विचार कर सकती है। पक्षकारों को 14 मई, 2018 को निचली अदालत के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

4. इस न्यायालय के दिनांक 28 मार्च, 2018 के निर्णय में दिए गए निर्देशों को प्रभावी करने के लिए, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, हम निर्देश देते हैं कि जहां भी मूल रिकॉर्ड अपीलीय/पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा तलब किया गया है, उसकी फोटोकॉपी/स्कैन की गई प्रतिलिपि संदर्भ के लिए रखी जाए और मूल प्रति तुरंत ट्रायल कोर्ट को लौटा दी जाए।

5. हम यह भी निर्देश देते हैं कि यदि भविष्य में ट्रायल कोर्ट का रिकॉर्ड तलब किया जाता है, तो ट्रायल कोर्ट रिकॉर्ड की फोटोकॉपी/स्कैन की हुई कॉपी भेज सकते हैं और मूल प्रति अपने पास रख सकते हैं ताकि कार्यवाही में कोई रुकावट न आए। ऐसे मामलों में जहाँ मूल रिकॉर्ड की विशेष रूप से आवश्यकता हो और यह माना जाए

कि फोटोकॉपी से उद्देश्य पूरा नहीं होगा, अपीलीय/पुनरीक्षण न्यायालय केवल अवलोकन के लिए रिकॉर्ड मँगवा सकता है और उसकी एक फोटोकॉपी/स्कैन की हुई कॉपी अपने पास रखते हुए उसे वापस कर सकता है।

6. इस आदेश की एक प्रति सभी उच्च न्यायालयों को भेजी जाए। अपीलों का निपटारा किया जाता है।

9. उपर्युक्त आदेश सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एशियन रीसर्फसिंग (सुप्रा) मामले में पारित किया गया था और बाद में, (2018) 16 एससीसी 299 में प्रकाशित इसी मामले में एक निर्णय पारित किया गया था, जिसके पैराग्राफ 36 और 37 में छह महीने की अवधि समाप्त होने के बाद अंतरिम आदेशों को स्वतः रद्द करने के संबंध में निर्देश दिए गए थे। उक्त निर्देशों को बाद में, उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन, इलाहाबाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, (2024) 6 एससीसी 267 में सर्वोच्च न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा रद्द कर दिया गया था। यह न्यायालय यह पाता है कि एशियन रीसर्फसिंग मामले में पिछले निर्णय को उच्च न्यायालय बार एसोसिएशन (सुप्रा) मामले में बाद में दिए गए निर्णय द्वारा उलट दिया जाना इस मुद्दे पर एक प्रमाण है कि क्या उच्च न्यायालय द्वारा दिया गया स्थगन आदेश छह महीने की अवधि समाप्त होने के बाद स्वतः समाप्त हो जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय, अत्यंत सम्मान के साथ, अधीनस्थ न्यायालय के अभिलेख की फोटोस्टेट/स्कैन की गई प्रति तलब करने के संबंध में दिनांक 25.04.2018 के आदेश में निहित निर्देशों को प्रभावित नहीं करेगा और न ही उक्त मुद्दा सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विचार-विमर्श या विचार का विषय बना।

10. उपरोक्त के मद्देनजर, चूंकि एशियन रीसर्फसिंग (सुप्रा) में निर्णय को पलटने के बाद भी, रजिस्ट्री इस न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों के अभिलेखों की फोटोस्टेट/स्कैन की गई प्रति मंगा रही है, इसलिए इस न्यायालय के कार्यालय को निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाते हैं:-

(a) अब से, मूल अभिलेख कार्यालय द्वारा तब तक नहीं मंगाया जाएगा, जब तक कि किसी विशेष मामले में इस न्यायालय द्वारा अन्यथा विशेष रूप से निर्देशित न किया जाए और केवल उसकी फोटोस्टेट/स्कैन की गई प्रति ही मंगाई जाएगी।

(b) जब कभी भी, अतीत में, इस न्यायालय द्वारा मूल अभिलेख मंगाया गया है, तो कार्यालय उसे संबंधित जिला न्यायाधीश के पास वापस भेज देगा, साथ ही संबंधित जिला न्यायाधीश को निर्देश देगा कि वह उक्त अभिलेख की फोटोस्टेट/स्कैन की गई प्रति तुरंत इस न्यायालय को भेजे और उसके बाद, उक्त फोटोस्टेट/स्कैन की गई प्रति को इस न्यायालय द्वारा जारी किए गए पूर्व निर्देशों के अनुसरण में मामले पर विचार करने के प्रयोजनार्थ रखा जाएगा।

11. जहाँ तक वर्तमान मामले का संबंध है, चूंकि न्यायालय ने प्रवेश पर सुनवाई के लिए मूल अभिलेख पहले ही तलब कर लिया है, इस न्यायालय का विचार है कि अभिलेख की फोटोस्टेट प्रति इस प्रयोजन की पूर्ति करेगी।

12. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह निचली अदालतों के मूल अभिलेख दो सप्ताह के भीतर जिला न्यायाधीश को वापस भेज दे। जिला न्यायाधीश, अभिलेख प्राप्त होने के बाद, उसकी फोटोस्टेट प्रति प्राप्त करेगा और उसे तुरंत इस न्यायालय को भेजेगा। फिर, जब भी मामला प्रवेश पर सुनवाई के लिए सूचीबद्ध होगा, उसे इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

13. रजिस्ट्रार जनरल को निर्देश दिया जाता है कि वे इस न्यायालय के कार्यालय के साथ-साथ सभी जिला न्यायाधीशों को इस आदेश के पैराग्राफ संख्या 10 में निहित निर्देशों के अनुसार कार्य करने के लिए आवश्यक परिपत्र/संदेश जारी करें।

(2025) 1 ILRA 705

अपीलीय क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 20.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार

द्वितीय अपील संख्या 400/2011

जिला गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड
बनाम

...अपीलकर्ता

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के वकील: राजीव कुमार सिन्हा

प्रतिवादियों के वकील: डॉ. रवि कुमार मिश्रा, आई एच फारूकी, आई एस फारूकी

सिविल कानून - सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 34 एवं 80 - सामान्य नियम (सिविल), 1957 - नियम 6 - राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र (छठा अंक) नियम, 1981 - नियम 7, 8, 9, 11 - सरकारी बचत प्रमाणपत्र अधिनियम, 1959 - धारा 2(ए), 12 - परिपक्वता राशि - अपीलकर्ता ने एनएससी छठे अंक में 27.09.1984 को 1,50,000/- रुपये की राशि का निवेश किया तथा 19.09.1990 को परिपक्वता पर 3,02,250/- रुपये का भुगतान किया जाना था, लेकिन परिपक्वता पर राशि का भुगतान नहीं किया गया - अपीलकर्ता ने राशि की वसूली के लिए वाद दायर किया, जिसे दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेखों पर विचार किए बिना खारिज कर दिया गया। - अपीलकर्ता ने सिविल अपील दायर की, जिसे आंशिक रूप से स्वीकार किया गया और धारक को ब्याज का हकदार नहीं माना गया - निचली विद्वान अदालतें इस बात पर विचार करने में विफल रहीं कि एनएससी

को सोसायटी के नाम पर जारी किया जा सकता है और अपीलकर्ता सोसायटी ने कानून के अनुसार अपने सदस्यों की ओर से सही तरीके से निवेश किया है। (पैरा 4)

निर्णय दिया गया कि अपीलकर्ता को सोसायटी के नाम पर अनियमित तरीके से एनएससी जारी करने और नियमों का उल्लंघन करने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता, लेकिन प्रतिवादी भी इसके दोषी हैं, क्योंकि यह ठीक से सत्यापित किए बिना जारी किया गया कि यह कानून के अनुसार था या नहीं, प्रतिवादियों को एनएससी की पूरी अवधि के दौरान पता नहीं चला, लेकिन उसके बाद लंबे समय तक और अपीलकर्ता द्वारा पत्राचार के बाद पता चला और उसके बाद प्रतिवादी संख्या 2 ने जमा राशि पर सार्वजनिक खातों पर एसबी ब्याज के भुगतान के लिए अपीलकर्ता की सहमति मांगी, सहमति नहीं दी गई, निवेश की गई राशि वापस नहीं की गई और इस प्रकार अपीलकर्ता जमा की तारीख से भुगतान की तारीख तक एसबी सार्वजनिक खातों पर लागू 6% प्रति वर्ष के ब्याज के लिए हकदार है। (पैरा 28)

अपील आंशिक रूप से स्वीकार की गई। (ई-13)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. यू.पी. वन निगम कर्मचारी भविष्य निधि ट्रस्ट बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, रिट याचिका संख्या 4393/1990, आदेश दिनांक 10.9.1996
2. महेश चंद्र बंसल बनाम कृष्ण स्वरूप सिंघल एवं अन्य, (1997) 10 एससीसी 681 में रिपोर्ट किया गया, (पैरा 4)
3. म्युनिसिपल बोर्ड, चांदपुर बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, 2002 एससीसी ऑनलाइन ऑल 323
4. रोमियो सैम आरम्भन बनाम यू.ओ.आई. एवं अन्य, 2004 (1) एमएच.एल.जे. 56
5. टायरेली लेथ लॉज बनाम यू.ओ.आई.; एआईआर 2004 गुजरात 340, (पैरा 6)
6. अरुलमिघु धनदायुधपानीस्वामी थिरुकोइल, पलानी, तमिलनाडु, इसके संयुक्त आयुक्त बनाम डाकघर महानिदेशक, डाक विभाग एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 4995/2006, आदेश दिनांक 13 जुलाई, 2011
7. पोस्टमास्टर, दरगामिट्टा एच.पी.ओ., नेल्लोर पीएस राजा प्रमीलम्मा (मास), 195 लीगल एगिल (विज्ञान) 587 (1958 (59) भाषण 706)
8. डाकघर अधीक्षक एवं अन्य बनाम हेल्पलाइन ग्राहक मंडल एवं अन्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग, नई दिल्ली द्वारा, पुनरीक्षण याचिका संख्या 12/2010, आदेश दिनांक 16 अप्रैल, 2010

(माननीय न्यायमूर्ति रजनीश कुमार द्वारा)

1. वादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव कुमार सिन्हा और प्रत्यर्थी -प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता डॉ. रवि कुमार मिश्रा को सुना गया।

2. यह द्वितीय अपील सिविल प्रक्रिया संहिता (जिसे आगे सीपीसी कहा जाएगा) की धारा 100 के अंतर्गत अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 6, हरदोई द्वारा सिविल अपील संख्या 52/2007 (जिला गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड हरदोई बनाम भारत संघ एवं अन्य) में दिनांक 03.09.2011 को पारित निर्णय एवं डिक्री तथा सिविल न्यायाधीश, (वरिष्ठ प्रभाग), हरदोई द्वारा नियमित वाद संख्या 144/1993 (जिला गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड हरदोई बनाम भारत संघ एवं अन्य) में दिनांक 10.04.1995 को पारित निर्णय एवं डिक्री के विरुद्ध दायर की गई है तथा राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र (जिसे आगे एनएससी कहा जाएगा) के मुखपृष्ठ पर अंकित परिपक्वता राशि अर्थात रु. 3,02,250/- का भुगतान वाद एवं अपील के लंबित रहने के दौरान 14% ब्याज सहित तथा दावा किए गए, वादी-अपीलकर्ता द्वारा, खर्च सहित करने का आदेश दिया गया है। प्रतिवादी-प्रतिवादियों ने इस द्वितीय अपील में सी.एम. आवेदन संख्या 56905/2013 के साथ एक क्रॉस आपत्ति भी दायर की है, जिसमें अपील को लागत के साथ खारिज करने तथा दिनांक 03.09.2011 के निर्णय और डिक्री को रद्द करने का अनुरोध किया गया है, क्योंकि यह वाद दायर करने की तिथि से वास्तविक भुगतान की तिथि तक 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के भुगतान से संबंधित है।

3. यह अपील निम्नलिखित महत्वपूर्ण कानूनी प्रश्नों पर स्वीकार की गई है:-

I. क्या विद्वान निचली अदालत ने उत्तर प्रदेश वन निगम बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में प्रतिपादित कानून पर विचार न करके, रिट याचिका संख्या 4393/1990 दिनांक 10.9.1996 में विचार न करके कानून की पर्याप्त त्रुटि की है। उक्त निर्णय राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र जारी करने से भी संबंधित है, जो निचली अदालत की अनदेखी करते हुए संस्थान के नाम पर जारी किया गया था, जबकि निचली अदालत रिट याचिका संख्या 4393/1990 में पारित दिनांक 10.9.1996 के निर्णय का पालन करने के लिए बाध्य है?

II. क्या अपीलकर्ता ने वादपत्र में विशिष्ट दलील दी थी और मुकदमे की पूरी अवधि के लिए 14% प्रति वर्ष ब्याज का दावा किया था, यह विचाराधीन था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा महेश चंद्र बंसल बनाम कृष्ण स्वरूप सिंघल मामले में प्रतिपादित कानून, (1997) 10 एससीसी 681 में रिपोर्ट किया गया। विद्वान न्यायालय को 14% ब्याज देना चाहिए था तथा राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र में उल्लिखित राशि भी देनी चाहिए थी, लेकिन न्यायालय ने गंभीर गलती करते हुए अपीलकर्ता द्वारा दावा किए गए अनुसार राहत नहीं दी?

III. क्या प्रतिवादियों ने राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र में उल्लिखित राशि का भुगतान करने का वादा किया था, निवेश की गई राशि का उपयोग किया गया था, प्रतिवादियों ने अनुबंध किया था और उक्त गलत जमा खाता अनुबंध के अनुसार राशि का पुनर्भुगतान या वापसी करने के लिए बाध्य है। वे मुकदमा दायर करने की तिथि तक ब्याज अधिनियम के तहत ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होंगे और धारा 34 सी.पी.सी. के तहत वसूली

की तिथि तक ब्याज का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी होंगे। निम्न न्यायालय ने उपरोक्त सिद्धांत का पालन न करके गंभीर त्रुटि की और अपील को आंशिक रूप से स्वीकार किया?

4. वादी-अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि वादी-अपीलकर्ता ने 27.09.1984 को राष्ट्रीय बचत पत्रों (एनएससी) के छठे अंक में 1,50,000/- रुपये की राशि निवेश की थी। उक्त एनएससी पर अंकित परिपक्वता राशि के अनुसार, 19.09.1990 को परिपक्वता पर 3,02,250/- रुपये का भुगतान किया जाना था, लेकिन उक्त राशि का भुगतान परिपक्वता पर नहीं किया गया। अतः, धारा 80 सीपीसी के तहत नोटिस के बाद वादी-अपीलकर्ता ने उक्त राशि की वसूली के लिए वाद दायर किया, लेकिन वाद को दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेखों पर विचार किए बिना खारिज कर दिया गया। अतः, वादी-अपीलकर्ता ने सिविल अपील दायर की। सिविल अपील आंशिक रूप से स्वीकृत और अधिनिर्णित की गई है। किन्तु निम्न विद्वान न्यायालय इस बात पर विचार करने में विफल रहे हैं कि एनएससी सोसाइटी के नाम पर जारी की जा सकती है और वादी-अपीलकर्ता सोसाइटी ने अपने सदस्यों की ओर से विधि के अनुसार उचित रूप से उसमें निवेश किया था और इसमें कोई अवैधता या त्रुटि नहीं थी, इसलिए वादी-अपीलकर्ता एनएससी की शर्तों के अनुसार परिपक्वता राशि पाने का हकदार है।

5. उन्होंने आगे कहा कि यह मुद्दा इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यू.पी. वन निगम कर्मचारी भविष्य निधि ट्रस्ट बनाम भारत संघ एवं अन्य (रिट याचिका संख्या 4393/1990) के मामले में पारित दिनांक 10.09.1996 के निर्णय एवं आदेश द्वारा कवर किया गया है, लेकिन ट्रायल कोर्ट केवल इस आधार पर इस पर विचार करने में विफल रहा कि उक्त निर्णय रिट कार्यवाही में पारित किया गया है, इसलिए यह सिविल मुकदमे में लागू नहीं होता है और विद्वान निचली अपीलीय अदालत ने वर्तमान मामले के तथ्यों के आधार पर गलत और अवैध रूप से इसमें अंतर किया है, जो सामान्य सिविल नियमों के नियम-6 का उल्लंघन है। इस प्रकार, प्रस्तुतीकरण यह है कि ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित निर्णय और डिक्ली को रद्द किया जा सकता है और निचली अपीलीय अदालत द्वारा पारित निर्णय और डिक्ली तदनुसार संशोधित किए जाने के योग्य है और मुकदमे को लागत के साथ अनुमति दी जानी चाहिए। उन्होंने म्यूनििसिपल बोर्ड, चांदपुर बनाम भारत संघ और अन्य; 2002 एससीसी ऑनलाइन ऑल 323, रोमियो सैम आरम्भन बनाम भारत संघ और अन्य; 2004 (1) एमएचएलजे 56, यू.पी. फॉरेस्ट कॉर्पोरेशन एम्प्लॉइज प्रोविडेंट फंड ट्रस्ट बनाम भारत संघ और अन्य में पारित दिनांक 10.09.1996 के निर्णय और आदेश; रिट याचिका संख्या 4393/1990 और महेश चंद्र बंसल बनाम कृष्ण स्वरूप सिंघल और अन्य; (1997) 10 एससीसी 681 पर भरोसा किया।

6. प्रतिवादी-प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि वादी-अपीलकर्ता ने सचिव के माध्यम से अपने नाम पर एनएससी का छठा अंक खरीदा था, जो अनियमित रूप से जारी किया गया था क्योंकि एनएससी का छठा अंक फर्म या संस्था के नाम पर जारी नहीं किया जा सकता था, इसलिए भुगतान के लिए प्रस्तुत करने पर धारक यानी अपीलकर्ता को एसबी लोक लेखा ब्याज पर भुगतान लेने की सलाह दी गई थी लेकिन वादी-अपीलकर्ता ने इसे लेने से इनकार कर दिया। उन्होंने आगे कहा कि एनएससी पर दिया गया पूर्ण परिपक्वता

मूल्य देय नहीं है, क्योंकि प्रमाण पत्र वादी-अपीलकर्ता के नाम पर अनियमित रूप से जारी किए गए थे और राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र (छठा अंक) नियम, 1981 (जिसे आगे 1981 के नियम कहा जाएगा) के नियम 7 और 11 के मद्देनजर अनियमित एनएससी पर कोई ब्याज देय नहीं है। विद्वान ट्रायल कोर्ट ने सही ढंग से और कानून के अनुसार वादी-अपीलकर्ता द्वारा दायर मुकदमे को खारिज कर दिया है, लेकिन निचली अपीलीय अदालत ने मुकदमे के लंबित रहने की अवधि के लिए ब्याज की अनुमति देकर कानूनी गलती की है, जो कि अनुमति नहीं दी जा सकती थी क्योंकि 1981 के नियम-11 के मद्देनजर कोई ब्याज देय नहीं है। अपीलकर्ता द्वारा आधार बनाया गया न्याय निर्णय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर लागू नहीं होता है। उन्होंने टायरेली लेथ लॉज बनाम भारत संघ; एआईआर 2004 गुजरात 340, सिविल अपील संख्या 4995/2006 में पारित दिनांक 13 जुलाई, 2011 के निर्णय और आदेश; अरुलमिघु धनदायुधपानीस्वामी थिरुकोली, पलानी, तमिलनाडु, इसके संयुक्त आयुक्त के माध्यम से बनाम डाकघर महानिदेशक, डाक विभाग और अन्य तथा पोस्टमास्टर, दरगामिट्टा एच.पी.ओ., नेल्लोर बनाम राजा प्रमीलम्मा (सुश्री); 1995 लीगल ईगल (एससी) 587 (1998 (9) एससीसी 706) और संशोधन याचिका संख्या 12/2010 में पारित दिनांक 16 अप्रैल, 2010 के निर्णय और आदेश; डाकघर अधीक्षक और अन्य बनाम हेल्पलाइन ग्राहक मंडल और राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग, नई दिल्ली द्वारा एक अन्य।

7. उपरोक्त के आधार पर, प्रतिवादी-प्रतिवादियों के विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि अपील लागत के साथ खारिज किए जाने योग्य है और प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा दायर की गई क्रॉस आपति लागत के साथ स्वीकार किए जाने योग्य है और निचली अपीलीय अदालत द्वारा मुकदमा दायर करने की तारीख से 6% प्रति वर्ष ब्याज देने का निर्णय और डिक्री रद्द किए जाने योग्य है और वादी-अपीलकर्ता द्वारा दायर किया गया मुकदमा लागत के साथ खारिज किए जाने योग्य है।

8. मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों पर विचार किया है और अभिलेखों का अवलोकन किया है।

9. वादी-अपीलकर्ता ने एनएससी के नियमों और शर्तों के अनुसार, एनएससी के छठे अंक में 27.09.1984 को छह वर्ष की अवधि के लिए 1,50,000/- रुपये का निवेश किया था। 14% ब्याज देय था और तदनुसार, 27.09.1990 को परिपक्वता पर निवेश की गई राशि का दोगुना भुगतान किया जाना था। परिपक्वता अवधि पूरी होने पर वादी-अपीलकर्ता ने इसे भुगतान के लिए प्रस्तुत किया लेकिन प्रतिवादी-प्रतिवादियों ने एनएससी के अंकित मूल्य पर भुगतान करने से इस आधार पर इनकार कर दिया कि यह वादी-अपीलकर्ता के नाम पर अनियमित रूप से जारी किया गया है, इसलिए, भुगतान के लिए पत्र लिखे गए और वादी-अपीलकर्ता के पत्र संख्या 755-56 दिनांक 27.11.1991 के जवाब में, प्रतिवादी-प्रतिवादियों ने वादी-अपीलकर्ता को पत्र दिनांक 04.12.1991 के माध्यम से अनुरोध किया कि वह एस.बी. लोक लेखा की दर से ब्याज के साथ भुगतान लेने के लिए अपनी सहमति भेजे लेकिन वादी-अपीलकर्ता ने सहमति देने के बजाय अपने वकील के माध्यम से सी.पी.सी. की धारा 80 के तहत एक नोटिस भेजा। इसका उत्तर तो दे दिया गया, लेकिन भुगतान नहीं किया गया, इसलिए वादी-अपीलकर्ता ने 14% ब्याज और मुकदमेबाजी खर्च सहित 3,02,250/- रुपये की वसूली के

लिए निचली अदालत में नियमित वाद संख्या 144/1993 दायर किया। प्रतिवादी-प्रतिवादियों ने लिखित बयान दाखिल करके वाद का विरोध किया। दलीलों के आदान-प्रदान के बाद, निम्नलिखित पाँच मुद्दे तय किए गए:-

- 1) क्या वादी राष्ट्रीय बचत पत्र जो तालिका में दर्शाये गये हैं, पर देय धनराशि प्राप्त करने का अधिकारी है?
- (2) क्या दावा वादी पोषणीय नहीं है?
- (3) क्या दावा वादी धारा 80 सी०पी०सी० से बाधित है?
- (4) वादी किस अनुतोष को प्राप्त करने का अधिकारी है?
- (5) क्या दावा वादी अल्पमूल्यांकित है एवं प्रदत्तन्याशुल्क अपर्याप्त है?

10. वाद-विवाद के पश्चात्, वादी-अपीलकर्ता द्वारा दस्तावेजी एवं मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए गए, जिनमें श्री सुरेन्द्र सिंह वर्मा को पी.डब्लू.-1 के रूप में परीक्षित कराया गया। प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा कोई दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया था, अतः मौखिक साक्ष्य के रूप में श्री एस.एन. सिंह को परीक्षित कराया गया। तत्पश्चात्, पक्षकारों की दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेखों में उपलब्ध सामग्री पर विचार करते हुए, विचारण न्यायालय ने मुद्दा संख्या 1 को नकारात्मक रूप से विनिश्चय किया और तदनुसार दिनांक 10.04.1995 के निर्णय और डिक्री द्वारा वाद को खारिज कर दिया। व्यथित होकर, अपीलकर्ता ने निचली अपीलीय अदालत के समक्ष सिविल अपील संख्या 144/1993 दायर की। अपील में दिए गए आधारों और पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं के तर्कों के आधार पर, विद्वान अपीलीय अदालत ने निम्नलिखित दो बिंदुओं को निर्धारित करते हुए अपील को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया:-

1. क्या वादी दि० 27-09-84 को क्रय किये गये धनराशि राष्ट्रीय बचत पत्र (छठा निर्गम) मूल्य रु० 150000 की परिपक्वता धनराशि रु 302250 प्राप्त करने का अधिकारी है?
2. क्या वादी उपरोक्त राष्ट्रीय बचन पत्रों की परिपक्वता पर देय धनराशि पर 14 प्रतिशत वार्षिक ब्याज प्राप्त करने का अधिकारी है?

11. निचली अपीलीय अदालत ने दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेखों पर सामग्री पर विचार करने के बाद निष्कर्ष निकाला कि एनएससी नियमों के विरुद्ध जारी किए गए थे, जिन पर कोई ब्याज देय नहीं था, लेकिन प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 ने परिपक्वता तिथि से पहले या उसके बाद भी इसके बारे में सूचित नहीं किया था और अपीलकर्ता द्वारा कई पत्रों के बाद, दिनांक 04.12.1991 के पत्र के माध्यम से सूचित किया गया था कि एनएससी अनियमित तरीके से जारी किए गए थे और अपीलकर्ता को एसबी पब्लिक खातों पर ब्याज के भुगतान के लिए अपनी सहमति देने के लिए कहा गया था, इसलिए, नियमों के खिलाफ एनएससी जारी करने के लिए, केवल वादी-अपीलकर्ता को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है और प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 अधिक दोषी है और यह माना कि अपीलकर्ता निवेश की गई राशि की वापसी और उस पर मुकदमा दायर करने की तारीख से

वास्तविक भुगतान की तारीख तक 6% प्रति वर्ष की दर से ब्याज का हकदार है। इसलिए यह अपील दायर की गई है, जिसे उपरोक्त विधि के सारवान प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया है।

12. सरकारी बचत प्रमाणपत्र अधिनियम, 1959 (जिसे आगे 1959 का अधिनियम कहा जाएगा) सरकारी बचत प्रमाणपत्रों के संबंध में अधिनियमित किया गया है। अधिनियम की धारा 2(क) "धारक" की परिभाषा प्रदान करती है, जिसके अनुसार, बचत प्रमाणपत्र के संबंध में "धारक" से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए किसी भी नियम के प्रावधानों के अनुसार जारी किया गया बचत प्रमाणपत्र धारण करता है। अधिनियम की धारा 12, केंद्र सरकार को अधिनियम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए नियम बनाने की शक्ति प्रदान करती है, जिसमें किसी भी वर्ग के बचत प्रमाणपत्रों से संबंधित ब्याज या छूट के भुगतान और अधिकतम सीमा से अधिक धारित किसी भी राशि पर दिए गए ब्याज की वसूली, भू-राजस्व के बकाया के समान या किसी अन्य तरीके से और किसी अन्य मामले के लिए, जो नियम में नहीं दिया गया है, निर्धारित किया जाना है या किया जा सकता है, की शर्तें शामिल हैं। 1959 के अधिनियम की धारा 12 के अंतर्गत, 24.04.1981 की अधिसूचना द्वारा 1981 के नियम बनाए गए थे। उक्त नियमों के नियम-7 में दूसरों की ओर से प्रमाण-पत्र खरीदने का प्रावधान है, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:-

7. दूसरों की ओर से प्रमाण पत्र खरीदना:-

नीचे दी गई तालिका के स्तंभ I में निर्दिष्ट कोई व्यक्ति या निकाय उक्त तालिका के स्तंभ II में संगत प्रविष्टि में अपने नाम के सामने निर्दिष्ट व्यक्तियों की ओर से प्रमाणपत्र खरीद सकता है:

बशर्त कि उक्त कॉलम II में निर्दिष्ट व्यक्ति इन नियमों के तहत पात्र हैं।

I	II
व्यक्ति या निकाय जो खरीद सकते हैं	की ओर से
(i) एक वयस्क	अवयस्क
(ii) एक सहकारी समिति जिसमें एक सहकारी बैंक या एक अनुसूचित बैंक शामिल है	इसके सदस्य, ग्राहक, कर्मचारी या ठेकेदार जिनका धन ऐसी सोसायटी या बैंक के पास जमा या अन्यथा रखा जाता है
(iii) राजपत्रित सरकारी अधिकारी, सरकारी कंपनी या निगम या स्थानीय प्राधिकरण का अधिकारी, या राज्य अधिनियम के तहत स्थापित विपणन समिति जैसे कॉर्पोरेट निकाय का अधिकारी और राज्य सरकार या भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा इस संबंध में अधिकृत।	वह व्यक्ति जिसका धन ऐसे अधिकारी या भारतीय रिजर्व बैंक के पास जमा या अन्यथा रखा जाता है

13. नियम-7 में दी गई उपरोक्त तालिका के खंड-2 के अनुसार, एक सहकारी समिति अपने सदस्यों, ग्राहकों, कर्मचारियों या ठेकेदारों की ओर से एनएससी खरीद सकती है, जिनका पैसा ऐसी समिति के पास जमा या अन्यथा के रूप में रखा जाता है। इस प्रकार, एक सहकारी समिति नियमों के अनुसार केवल अपने सदस्यों आदि की ओर से ही एनएससी का छठा अंक खरीद सकती थी। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता समिति द्वारा एनएससी का छठा अंक सचिव, हरदोई जिला गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड, हरदोई के नाम से खरीदा गया था और यह इंगित नहीं करता है कि इसे उसके सदस्यों की ओर से खरीदा गया है। अपीलार्थी सोसायटी के कर्मचारी श्री सुरेन्द्र सिंह वर्मा पीडब्लू-1 के रूप में उपस्थित हुए। उन्होंने अपने साक्ष्य में कहा कि वे जुलाई 1975 से 1993 तक अपीलार्थी सोसायटी में सहायक लेखाकार थे तथा 17.09.1984 को तत्कालीन सचिव श्री बी.पी. त्रिपाठी ने गन्ना उत्पादकों के धन से एन.एस.सी. खरीदने के लिए पोस्टमास्टर से बात की थी तथा उनकी सलाह पर वादी-अपीलार्थी द्वारा एन.एस.सी. जारी करवाए गए थे। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि एनएससी सोसायटी के नाम पर बनवाई गई थी, हालाँकि, उन्होंने कहा कि ऐसा तत्कालीन पोस्टमास्टर द्वारा नियम देखने के बाद बताया गया था कि एनएससी बनवाई जा सकती है। जिरह में, अभियोगी-1 ने स्वीकार किया कि 1,50,000 रुपये की एनएससी, जिसका एनएससी बनवाया गया था, गन्ना किसानों की थी। इसके लिए कोई बैठक नहीं हुई थी और न ही कोई प्रस्ताव भेजा गया था। एनएससी खरीदने का निर्णय सचिव द्वारा लिया गया था, लेकिन उन्हें इस बात की कोई जानकारी नहीं है कि उन्होंने छह साल की एनएससी खरीदने का निर्णय लिया है या नहीं, और एनएससी खरीदने से पहले पोस्टमास्टर से कोई पत्राचार भी नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि सचिव द्वारा फॉर्म भरने के बाद काउंटर से एनएससी खरीदे गए थे। हालाँकि, भुगतान एनएससी के अंकित मूल्य के अनुसार नहीं किया गया है। इस प्रकार, यह स्वीकार किया जाता है कि एनएससी समिति के सचिव के नाम पर खरीदे गए थे। हालाँकि यह कहा गया है कि एनएससी गन्ना किसानों के पैसे से खरीदे गए थे, लेकिन यह खुलासा नहीं किया गया है कि वे गन्ना किसान कौन थे, जिनकी ओर से एनएससी छठे अंक की खरीदी गई थी और स्वीकार किया जाता है कि उनके नाम फॉर्म में भी नहीं दिए गए थे। यह भी नहीं बताया गया है कि उक्त सदस्य एनएससी खरीदने के पात्र थे, क्योंकि सहकारी समिति उपरोक्त तालिका के कॉलम II में उल्लिखित व्यक्तियों की ओर से भी एनएससी खरीद सकती है; यदि वह उक्त नियमों के तहत एनएससी खरीदने के पात्र थे। इस प्रकार, एनएससी के छठे अंक की खरीद उपरोक्त नियम के उल्लंघन में की गई थी। 1981 के नियम-11 में अनियमित होल्डिंग के बारे में बताया गया है, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है:-

"11. अनियमित होल्डिंग-(1) इन नियमों के उल्लंघन में खरीदे गए या अर्जित किए गए किसी भी प्रमाण पत्र को धारक द्वारा इन नियमों के उल्लंघन में होने के तथ्य का पता चलते ही भुना लिया जाएगा और इन नियमों के उल्लंघन में किसी भी होल्डिंग पर कोई ब्याज नहीं दिया जाएगा।

(2) यदि किसी होल्डिंग पर कोई ब्याज दिया गया है जो इन नियमों का उल्लंघन करता है, तो उसे तुरंत सरकार को वापस कर दिया जाएगा, अन्यथा सरकार निवेशक को सरकार द्वारा देय किसी धनराशि से या भू-राजस्व के बकाया के रूप में संबंधित राशि वसूल करने की हकदार होगी।

14. उपर्युक्त नियम-11 के अनुसार, यदि कोई प्रमाण-पत्र नियमों के उल्लंघन में क्रय या अर्जित किया गया है, तो नियमों के उल्लंघन में धारिता का तथ्य सामने आते ही धारक द्वारा उसे भुनाया जाएगा तथा नियमों के उल्लंघन में धारिता पर कोई ब्याज नहीं दिया जाएगा तथा यदि नियमों के उल्लंघन में धारिता पर कोई ब्याज दिया गया है, तो उसे तुरन्त सरकार को वापस कर दिया जाएगा, अन्यथा सरकार इसे भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करने की हकदार होगी। इस प्रकार, यदि कोई एनएससी छठा अंक नियमों के उल्लंघन में खरीदा या अर्जित किया गया है, तो उसे पता चलते ही तुरंत वापस कर दिया जाना चाहिए था और उस पर कोई ब्याज देय नहीं था। वर्तमान मामले में, यह स्वीकार किया जाता है कि वादी-अपीलकर्ता द्वारा खरीदे गए एनएससी छठे अंक की अवधि के दौरान इसका पता नहीं चला था और भुगतान के लिए अपीलकर्ता द्वारा प्रस्तुत किए जाने और भुगतान के लिए बार-बार अनुरोध करने के बाद ही प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा यह सूचित किया गया कि सोसाइटी के नाम पर एनएससी अनियमित तरीके से जारी किए गए हैं।

15. जैसा कि अभिवचनों से स्पष्ट है, विचाराधीन एन.एस.सी. दिनांक 29.09.1990 को परिपक्व हो गयी थीं तथा इन्हें दिनांक 09.10.1990 को भुगतान हेतु प्रस्तुत किया गया, किन्तु भुगतान नहीं किया गया, अतः दिनांक 30.11.1990 के पत्र द्वारा पुनः अनुरोध किया गया। जिस पर प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 ने आवश्यक कार्यवाही हेतु पटल पर उपस्थित होने का अनुरोध किया। तत्पश्चात् इन्हें काउंटर पर प्रस्तुत किया गया परन्तु भुगतान नहीं किया गया, अतः पत्र दिनांक 27.01.1991 तथा तत्पश्चात् भी भुगतान हेतु अनुरोध किया गया तथा पत्र दिनांक 27.11.1991 के प्रत्युत्तर में पत्र दिनांक 04.12.1991 द्वारा सूचित किया गया कि विभागीय नियमों के अनुसार संस्था के नाम से एन.एस.सी. जारी नहीं की जा सकती, अतः एन.एस.सी. अनियमित तरीके से जारी की गई है तथा इन पर कोई ब्याज देय नहीं है। हालाँकि, यदि अपीलकर्ता लोक लेखा पर बचत खाते के ब्याज सहित भुगतान प्राप्त करने के लिए सहमत है, तो वह दोनों पक्षों की फोटोकॉपी के साथ अपनी सहमति दे सकता है ताकि इस संबंध में महानिदेशक, डाकघरों को एक प्रस्ताव भेजा जा सके। इस प्रकार, प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा अनियमित तरीके से एनएससी जारी किए गए थे और एनएससी की अवधि के दौरान और उसके बाद भी प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 को इस गलती का पता नहीं चला और एक वर्ष से अधिक समय बीत जाने के बाद भी यह सूचित नहीं किया गया कि एनएससी अनियमित तरीके से जारी किए गए हैं। इस प्रकार, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा एनएससी जारी करने में की गई गलती और उस पूरी अवधि के दौरान एनएससी का पता न लग पाना, जिसके दौरान प्रतिवादी-प्रतिवादी द्वारा धनराशि रखी गई और प्रतिवादी-प्रतिवादियों द्वारा उक्त धनराशि का लाभ प्राप्त किया गया, से इनकार नहीं किया जा सकता। प्रतिवादी-प्रतिवादी प्राधिकारियों का यह कर्तव्य था कि वे एनएससी क्रय हेतु प्रस्तुत आवेदन का विधि और नियमों के अनुसार उचित सत्यापन करें और उसके बाद ही एनएससी जारी करें। 1981 के नियम-8 में प्रमाणपत्रों की खरीद के भुगतान के तरीके और नियम-9 में प्रमाणपत्र जारी करने के तरीके बताए गए हैं।

16. नियम-9 के उपनियम (3) के अनुसार, यदि किसी कारणवश प्रमाण-पत्र तत्काल जारी नहीं किया जा सकता है तो अनंतिम रसीद जारी की जाएगी, जिसे बाद में प्रमाण-पत्र के बदले में दिया जा सकेगा, इस प्रकार, नियम आवेदन और पात्रता आदि के सत्यापन के बाद प्रमाण-पत्र जारी करने के लिए पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है

क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि प्रमाण-पत्र तत्काल जारी किया जाए और इसे सत्यापन के बाद जारी किया जा सकता था लेकिन वर्तमान मामले में न केवल वादी-अपीलकर्ता ने अपने सदस्यों की ओर से अपने नाम से प्रमाण-पत्र खरीदने की लापरवाही की है, यदि उनके सदस्यों का पैसा निवेश किया गया था, और इसका खुलासा किए बिना, बल्कि प्रतिवादी-प्रतिवादी अधिक दोषी हैं क्योंकि प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 ने अनियमित तरीके से एनएससी जारी किया, बिना यह सत्यापित किए कि वे कानून के अनुसार हैं या नहीं। निचली अदालत या इस अदालत के समक्ष भी वादी-अपीलकर्ता यह साबित/दिखाने में विफल रहे हैं कि एनएससी किस सदस्य की ओर से खरीदी गई थी, यदि ऐसा था। इसलिए दोनों ही इसके लिए ज़िम्मेदार हैं। निचली अदालत ने दलीलों, साक्ष्यों और अभिलेखों में मौजूद सामग्री और उपरोक्त नियमों पर विचार करने के बाद यह माना कि एनएससी अनियमित तरीके से जारी की गई हैं, इसलिए धारक ब्याज का हकदार नहीं है।

17. विद्वान ट्रायल कोर्ट ने इस बात पर विचार करने के बाद कि प्रत्यर्थी -प्रतिवादियों द्वारा लोक लेखा पर एस.बी. ब्याज के लिए सहमति देने का विकल्प वादी-अपीलकर्ता द्वारा नहीं दिया गया है, यह माना कि अपीलकर्ता किसी भी राहत का हकदार नहीं है और मुकदमा खारिज कर दिया। हालांकि, निचली अपीलीय अदालत ने इस पर और पक्षों के बीच हुए पत्राचार पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष दर्ज किया कि यह स्थापित है कि परिपक्वता की तारीख से पहले या उसके बाद भी प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अनियमित एनएससी जारी करने के संबंध में कोई जानकारी नहीं दी गई थी और सार्वजनिक खातों पर देय एसबी ब्याज के लिए सहमति मांगने के बाद भी, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा आगे कोई कार्रवाई नहीं की गई थी और यहां तक कि निवेश की गई धनराशि भी वापस नहीं की गई थी, यह माना गया कि न केवल वादी-अपीलकर्ता को अनियमित एनएससी जारी करने के लिए दोषी ठहराया जा सकता है, बल्कि प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 अधिक दोषी है और प्रतिवादी-प्रतिवादी निवेश की गई राशि का भुगतान करने से इनकार नहीं कर सकता है, यह कहते हुए कि वादी-अपीलकर्ता सब कुछ के लिए ज़िम्मेदार हैं और यह प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 का कर्तव्य था कि एनएससी के अनियमित जारी होने के बारे में पता चलने पर तुरंत 1,50,000/- रुपये की निवेश की गई राशि वापस कर दे, लेकिन ऐसा नहीं किया गया और निवेश की गई राशि और 6% प्रति ब्याज की दर से वापस करने का निर्देश दिया गया। वाद प्रस्तुत करने की तिथि से भुगतान की तिथि तक प्रतिवर्ष।

18. 1981 के नियम 11(1) में यह प्रावधान है कि नियमों के उल्लंघन में खरीदे गए या जारी किए गए किसी भी प्रमाण पत्र को धारक द्वारा तुरंत भुनाया जाएगा, जैसे ही यह तथ्य पता चलता है कि यह प्रमाण पत्र इस नियम के उल्लंघन में है। उप-नियम (2) में प्रावधान है कि यदि किसी होल्डिंग पर नियमों के विरुद्ध कोई ब्याज दिया गया है, तो उसे तुरंत सरकार को वापस कर दिया जाएगा। इस प्रकार, जब एनएससी को भुनाने के लिए प्रस्तुत किया गया और यह पाया गया कि वे नियमों के विरुद्ध जारी किए गए हैं, तो उन्हें तुरंत भुनाया जाना चाहिए था और वादी-अपीलकर्ता को भुगतान किया जाना चाहिए था, लेकिन प्रत्यर्थी -प्रतिवादियों द्वारा ऐसा नहीं किया गया। इस प्रकार, दोनों पक्षों की लापरवाही के कारण केवल वादी-अपीलकर्ता को ही नुकसान नहीं पहुँचाया जा सकता। वैसे भी, प्रत्यर्थी -प्रतिवादियों ने स्वयं सार्वजनिक खातों पर देय बचत बैंक ब्याज के भुगतान के लिए सहमति की पेशकश की है। प्रत्यर्थी -प्रतिवादियों ने निचली अदालत में दायर लिखित बयान

और इस अदालत में दायर प्रति-आपत्ति में कहा है कि वादी-अपीलकर्ता से बचत बैंक खातों पर देय ब्याज सहित भुगतान लेने के लिए अपनी सहमति भेजने का अनुरोध किया गया था, जिसके लिए धारक हकदार था। हालाँकि, वादी-अपीलकर्ता द्वारा सहमति नहीं दी गई, इसलिए, प्रतिवादी-प्रतिवादी संख्या 2 ने निवेशित राशि का भुगतान भी नहीं किया है।

19. इस न्यायालय ने यू.पी. वन निगम कर्मचारी भविष्य निधि ट्रस्ट बनाम भारत संघ एवं अन्य (सुप्रा) के मामले में, जो छह वर्ष की एनएससी (छठा अंक) के संबंध में है, पोस्ट एवं टेलीग्राफ मैनुअल, खंड 5, भाग-2 के नियम 548(5) एवं 569 के उल्लंघन के आधार पर परिपक्वता पर ब्याज से इनकार करने के मुद्दे पर विचार किया। इस कोर्ट ने माना कि नियम का दायरा बहुत लिमिटेड है क्योंकि यह सिर्फ ऑफिस में ही मिनिस्टीरियल काम देता है और पिटीशनर का उस नियम से कोई लेना-देना नहीं है और इन हालात में यह नहीं कहा जा सकता कि इतने साल बीत जाने के बाद पिटीशनर के पक्ष में गलत तरीके से NSC जारी किया गया है और जब पिटीशनर की तरफ से किसी फ्रॉड का कोई इशारा भी नहीं है, तो इंटरेस्ट देने से मना नहीं किया जा सकता और पिटीशन मान ली गई और मैच्योरिटी वैल्यू के इंटरेस्ट के साथ NSC का पेमेंट करने का निर्देश दिया गया। लेकिन, इस कोर्ट ने देखा कि पोस्ट ऑफिस सेविंग्स सर्टिफिकेट रूल्स, 1960 का रूल 13 दिखाता है कि यह सिर्फ उन मामलों पर लागू होता है जहाँ सर्टिफिकेट तय लिमिट से ज्यादा या नियमों को तोड़कर खरीदा गया हो और इस मामले में पिटीशनर के खिलाफ इन दोनों हेड्स में कोई चार्ज नहीं है और पिटीशनर की तरफ से कोई फ्रॉड या गलत बयानी नहीं हुई थी। इस तरह, इस कोर्ट ने पाया कि उस मामले में NSC नियमों के खिलाफ जारी नहीं किए गए थे, जबकि इस मामले में NSC नियमों के खिलाफ जारी किए गए हैं, इसलिए यह इस मामले के फैक्ट्स और हालात पर लागू नहीं होता।

20. ट्रायल कोर्ट ने, टायरेली लेथ लॉज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (सुप्रा) के मामले में दिए गए नियमों और फैसले पर विचार करने के बाद, यह माना कि इस स्टेज पर ऊपर दी गई रिट पिटीशन में दिए गए फैसले का फायदा देना सही नहीं है। हालाँकि, निचली अपील कोर्ट ने इस पर विचार किया और माना कि यह इस मामले के तथ्यों और हालात पर लागू नहीं होता है। गुजरात हाई कोर्ट ने टायरेली लेथ लॉज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (सुप्रा) के मामले में माना है कि NSC खरीदना पिटीशनर का कोई फंडामेंटल राइट नहीं है। 1981 के रूल्स के तहत स्कीम का दायरा बढ़ाना या बढ़ाना इस कोर्ट का काम नहीं है और एक बार जब पिटीशनर ऊपर बताई गई NSC खरीदने का हकदार नहीं है, भले ही उसे संबंधित पोस्ट ऑफिस ने जारी किया हो, तो 1981 के रूल्स के रूल 11 के अनुसार, उस NSC के ऐसे ईर्रगुलर होल्डर के लिए, यानी पिटीशनर इंटरेस्ट का हकदार नहीं होगा। संबंधित पैराग्राफ-6 नीचे दिया गया है:-

"6. 1981 के रूल्स के रूल 11 से यह बिल्कुल साफ़ है कि अगर कोई सर्टिफिकेट इन रूल्स के उल्लंघन में खरीदा या हासिल किया जाता है, तो होल्डर को जैसे ही पता चले कि वह इन रूल्स के उल्लंघन में है, उसे कैश करवाना होगा और ऐसे होल्डर को नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट के प्रिंसिपल अमाउंट और उस पर कमाए गए इंटरेस्ट पर कोई इंटरेस्ट नहीं दिया जाएगा। 1981 के नियम पिटीशनर के फंडामेंटल राइट्स का उल्लंघन नहीं

हैं। नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट खरीदना पिटीशनर का फंडामेंटल राइट नहीं है। नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट की यह स्कीम केंद्र सरकार ने कुछ खास लोगों के मकसद से शुरू की है। 1981 के नियम 4 और 7 के तहत खरीदारों को तय करके नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट की खरीद को रोक वाला बना दिया गया है। 1981 के नियमों के तहत योजना के दायरे को व्यापक या विस्तारित करना इस न्यायालय का कार्य नहीं है। एक बार जब याचिकाकर्ता उपरोक्त राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र खरीदने का हकदार नहीं है, हालांकि इसे संबंधित डाकघर द्वारा जारी किया गया है, 1981 के नियमों के नियम 11 के अनुसार उक्त राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र के इस प्रकार के अनियमित धारक यानी याचिकाकर्ता राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र की मूल राशि पर ब्याज का हकदार नहीं होगा। पिटीशनर के वकील ने कहा कि पिटीशनर को उसके खरीदे गए नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट्स का 50,000 रुपये का प्रिंसिपल अमाउंट पहले ही मिल चुका है और यह पिटीशन मुख्य रूप से प्रिंसिपल अमाउंट पर इंटरेस्ट पाने के लिए फाइल की गई है।

21. वादी-अपीलकर्ता के वकील ने तर्क दिया था कि ट्रायल कोर्ट ने रिट पिटीशन में इस कोर्ट द्वारा दिए गए ऊपर दिए गए फैसले पर गलत और गैर-कानूनी तरीके से विचार नहीं किया है, जबकि ट्रायल कोर्ट ने इस पर विचार किया है और यह माना है कि इस स्टेज पर कोर्ट इसका कोई फायदा नहीं दे सकता है और निचली अपील कोर्ट ने इस पर विचार किया और पाया कि यह इस मामले के तथ्यों और हालात पर लागू नहीं होता है क्योंकि इस मामले में, रूल्स ऑफ 1981 के रूल-6 और 11 का उल्लंघन किया गया है और पाया गया है। अगर इस कोर्ट का फैसला लागू है और केस के फैक्ट्स और हालात पर लागू होता है, तो ट्रायल कोर्ट उसे मानने से मना नहीं कर सकता। जनरल रूल्स (सिविल), 1957 का रूल-6 कहता है कि सभी सबऑर्डिनेट कोर्ट्स को हाई कोर्ट के लागू फैसलों को मानना होगा। हालांकि, इस केस के फैक्ट्स और हालात को देखते हुए और जैसा कि ऊपर बताया गया है, यह नहीं कहा जा सकता कि ट्रायल कोर्ट ने मानने से मना कर दिया है और अगर ऐसा कहा भी जा सकता है, तो लोअर अपीलेट कोर्ट, जिसे केस को ट्रायल कोर्ट की तरह देखना है, ने भी ऐसा ही माना।

22. इस कोर्ट ने म्युनिसिपल बोर्ड, चांदपुर बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स (सुप्रा) के केस में, जो NSC के Vth इश्यू से जुड़ा है, पिटीशनर बोर्ड के प्रेसिडेंट के NSC खरीदने के हक पर विचार किया और नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट्स (Vth इश्यू), रूल्स, 1973 के रूल-6(a) पर विचार करने के बाद यह माना कि एक लोकल अथॉरिटी ये सर्टिफिकेट्स खरीद सकती है और बोर्ड के प्रेसिडेंट को बोर्ड की ओर से नेशनल सेविंग्स सर्टिफिकेट्स खरीदने से रोका नहीं गया है और यह आरोप कि इसे सिर्फ बोर्ड का कोई ऑफिसर ही खरीद सकता है, गलत पाया गया। यह इस केस के फैक्ट्स और हालात पर लागू नहीं होता।

23. बॉम्बे हाई कोर्ट ने रोमियो सैम आरम्भन बनाम यूनियन ऑफ इंडिया एंड अदर्स (सुप्रा) के केस में कहा कि सुप्रीम कोर्ट ने बार-बार कहा है कि एस्टॉपेल इक्विटी का एक नियम है जो अच्छी नीयत में कमी वाले व्यवहार पर असर डालता है, इसे न्याय देने में कानून की मदद के लिए लागू किया जाता है; लेकिन इसके लिए बहुत बड़ा अन्याय हो सकता था और इस आधार पर पिटीशन मंजूर कर ली कि पिटीशनर को सर्टिफिकेट सोल

प्रोप्राइटरशिप फ़र्म के नाम पर जारी किए गए थे, जो 8 मार्च, 1995 के नोटिफिकेशन के ज़रिए बदले गए 1989 के नियमों के मुताबिक नहीं थे और जैसा कि रेस्पॉंडेंट्स का कहना है, क्लर्क की गलती से और 6% सालाना ब्याज़ दिया गया।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने संयुक्त आयुक्त बनाम डाकघरों के महानिदेशक, डाक विभाग एवं अन्य (सुप्रा) के माध्यम से अरुलमिघु धनदायुधपानीस्वामी थिरुकोली, पलानी, तमिलनाडु के मामले में माना है कि हालांकि अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने इस न्यायालय से तीसरे प्रतिवादी को उसकी चूक के लिए कुछ उचित राशि का भुगतान करने का निर्देश देने का अनुरोध किया था, क्योंकि ऐसा निर्देश नियमों के विपरीत होगा और नियम 17 के अनुसार ऐसी योजना के लिए ब्याज का भुगतान निषिद्ध है, हम इसे स्वीकार करने के लिए इच्छुक नहीं हैं। हमें पता है कि 03.01.1996 तक तीसरे रेस्पॉंडेंट के पास काफी रकम रखी गई थी, जब वह रकम बिना ब्याज के वापस कर दी गई क्योंकि मामले के तथ्यों और हालात के आधार पर सर्विस में कोई कमी नहीं पाई गई थी। हालांकि, मौजूदा मामला सर्विस में कमी का नहीं है।

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पोस्टमास्टर, दरगामिट्टा एच.पी.ओ., नेल्लोर बनाम राजा प्रमीलम्मा (सुश्री) (सुप्रा) मामले में, जो एनएससी (छठी) से संबंधित है, यह माना कि इसमें कोई शक नहीं कि राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रों की बिक्री, उसमें निहित नियमों और शर्तों के साथ, विक्रेता के रूप में भारत सरकार और राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र धारकों के बीच एक अनुबंध है, लेकिन चूंकि यह अनुबंध भारत सरकार द्वारा अधिसूचित शर्तों के विपरीत था और यह कर्मचारियों की असावधानी के कारण हुआ था, यह गैरकानूनी और शून्य होने के कारण भारत सरकार पर बाध्यकारी अनुबंध नहीं बन जाता। इसलिए यह सर्विस में कमी का मामला नहीं है और उस ऑर्डर को रद्द किया जाता है जिसमें यह माना गया था कि भारत सरकार, सुपरिंटेंडेंट ऑफ़ पोस्ट ऑफ़िसेंज़ और अन्य बनाम हेल्पलाइन ग्राहक मंडल और अन्य के मामले में नेशनल कंज्यूमर डिस्प्यूट रिड्रेसल कमीशन, नई दिल्ली के 16.04.2010 के ऑर्डर में दर्ज अनकनेक्टेड मैच्योरिटी वैल्यू का पेमेंट करने के लिए बाध्य थी। सेविंग्स बैंक का ब्याज चुका दिया गया है क्योंकि फाइनेंस मिनिस्ट्री ने इसी तरह के एक पहले के मामले में 6% की दर से ब्याज देने पर सहमति जताई थी।

26. निचली अपील कोर्ट ने पाया कि ट्रायल कोर्ट ने केस के पेंडिंग रहने के दौरान और उसके बाद ब्याज के पेमेंट का ऑर्डर पास किए बिना गलत और गैर-कानूनी तरीके से केस खारिज कर दिया। सेक्शन 34 ब्याज के सवाल को तीन स्टेज में देखता है, पहला है केस शुरू होने की तारीख से पहले का ब्याज, दूसरा स्टेज है केस शुरू होने की तारीख से लेकर डिफ्री की तारीख तक का ब्याज और तीसरा स्टेज है डिफ्री की तारीख से लेकर डिफ्री की रकम मिलने तक का ब्याज। इस तरह, कोर्ट केस शुरू होने से पहले किसी भी समय के लिए मूल रकम पर तय किया गया कोई भी ब्याज दे सकता है और केस शुरू होने की तारीख से डिफ्री की तारीख तक तय की गई मूल रकम पर उस दर पर ब्याज दे सकता है जो सही लगे, साथ ही डिफ्री की तारीख से पेमेंट की तारीख तक या कोर्ट को जो भी पहले की तारीख ठीक लगे, उस दर से छह परसेंट सालाना से ज़्यादा ब्याज नहीं देना होगा। इस तरह, केस फाइल करने की तारीख से पहले और केस के पेंडिंग रहने के दौरान का ब्याज

कोर्ट के तय किए गए तरीके से दिया जा सकता है, लेकिन डिब्री की तारीख से डिब्री की रकम मिलने की तारीख तक ब्याज 6% सालाना से ज्यादा नहीं हो सकता। सेक्शन 34 C.P.C. नीचे दिया गया है:-

"34. ब्याज (1) जहां तक कोई डिब्री पैसे के पेमेंट के लिए है, कोर्ट डिब्री में, केस की तारीख से डिब्री की तारीख तक, तय की गई मूल रकम पर, उस रेट पर ब्याज देने का ऑर्डर दे सकता है, जिसे कोर्ट सही समझे। यह ब्याज, केस शुरू होने से पहले किसी भी समय के लिए तय किए गए मूल रकम पर किसी भी ब्याज के अलावा होगा, [और उस रेट पर ब्याज जो कोर्ट तय की गई मूल रकम पर छह परसेंट सालाना से ज्यादा नहीं होगा, जैसा कोर्ट सही समझे], डिब्री की तारीख से पेमेंट की तारीख तक, या उससे पहले की तारीख तक, जिसे कोर्ट ठीक समझे:

[बशर्ते कि जहाँ इस प्रकार निर्धारित राशि के संबंध में दायित्व किसी वाणिज्यिक लेन-देन से उत्पन्न हुआ हो, वहाँ ऐसे अतिरिक्त ब्याज की दर छह प्रतिशत प्रति वर्ष से अधिक हो सकती है, किन्तु ब्याज की संविदात्मक दर से अधिक नहीं होगी या जहाँ कोई संविदात्मक दर नहीं है, वहाँ वह दर जिस पर वाणिज्यिक लेन-देन के संबंध में राष्ट्रीयकृत बैंकों द्वारा धन उधार दिया जाता है या अग्रिम दिया जाता है, उससे अधिक नहीं होगी।

स्पष्टीकरण- इस उपधारा में राष्ट्रीयकृत बैंक का तात्पर्य बैंकिंग कंपनी (उपक्रमों का अर्जन और अंतरण) अधिनियम, 1970 (1970 का 5) में परिभाषित तत्स्थानी नया बैंक से है।

स्पष्टीकरण 2.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, कोई लेन-देन वाणिज्यिक लेन-देन है, यदि वह दायित्व वहन करने वाले पक्षकार के उद्योग, व्यापार या कारोबार से जुड़ा हो।]

(2) जहां ऐसा आदेश, आदेश की तारीख से पेमेंट की तारीख या उससे पहले की किसी दूसरी तारीख तक [मूल रकम पर] और ब्याज देने के बारे में कुछ नहीं कहता है, तो माना जाएगा कि कोर्ट ने ऐसे ब्याज देने से मना कर दिया है, और इसके लिए अलग से कोई केस नहीं चलेगा।

27. माननीय सुप्रीम कोर्ट ने महेश चंद्र बंसल बनाम कृष्ण स्वरूप सिंघल और अन्य (सुप्रा) के मामले में पैराग्राफ-4 में यह फैसला सुनाया है:-

"4. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील श्री वेंकटरमानी ने आग्रह किया है कि उच्च न्यायालय इस आधार पर कार्यवाही करने में त्रुटि कर रहा है कि धारा 34(1) सिविल प्रक्रिया संहिता के तहत पेंडेंट लिटे ब्याज 6% प्रति वर्ष की दर से प्रदान किया जाना था जब तक कि मामला धारा 34(1) सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रावधान द्वारा शासित न हो। प्रस्तुतिकरण यह है कि प्रावधान केवल धारा 34 के उपधारा (1) के उस भाग को संदर्भित करता है जो यह निर्धारित करता है कि डिब्री पारित होने के बाद ब्याज 6% प्रति वर्ष की दर से प्रदान किया जाएगा। दलील यह है कि जहां तक पेंडेंट लाइट इंटरैस्ट की बात है, सेक्शन 34 सिविल प्रोसीजर

कोड के सब-सेक्शन (1) का मुख्य हिस्सा यह तय करता है कि इंटरेस्ट सही रेट पर दिया जाना चाहिए। हमें वकील की ऊपर कही गई बात में दम लगता है। सेक्शन 34 सिविल प्रोसीजर कोड के सब-सेक्शन (1) का मुख्य हिस्सा यह कहता है कि जिस समय तक केस कोर्ट में पेंडिंग था, इंटरेस्ट सही रेट पर दिया जाना चाहिए और डिक्री पास होने के बाद के समय के लिए इंटरेस्ट 6% सालाना की दर से दिया जाना चाहिए और अगर प्रोविज़ो लागू होता है तो भविष्य में ज़्यादा रेट पर इंटरेस्ट दिया जा सकता है। सवाल बस इतना है कि जिस समय तक कोर्ट में केस पेंडिंग था, उस समय के लिए सही इंटरेस्ट रेट क्या होगा। क्योंकि अपील करने वाले ने अपनी शिकायत में, उस समय सहित पूरे समय के लिए 12% सालाना इंटरेस्ट क्लेम किया है, जिस समय तक केस पेंडिंग है, इसलिए हमारा मानना है कि पेंडेंट लाइट इंटरेस्ट 12% सालाना की दर से दिया जाना चाहिए।

28. उपरोक्त के मददेनजर और मामले के समग्र तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस बात पर है कि चूंकि केवल वादी-अपीलकर्ता को अनियमित तरीके से अपीलकर्ता के नाम पर एनएससी जारी करने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता, बल्कि प्रत्यर्थी -प्रतिवादी भी इसके दोषी हैं, जिसका पता प्रत्यर्थी -प्रतिवादियों द्वारा न केवल एनएससी की पूरी अवधि के दौरान बल्कि उसके बाद भी लंबे समय तक नहीं लगाया जा सका और इसका पता केवल वादी-अपीलकर्ता द्वारा किए गए पत्राचार के बाद ही लगाया जा सका और उसके बाद प्रतिवादी-प्रतिवादी नंबर 2 ने जमा राशि पर लोक खातों पर एसबी ब्याज के भुगतान के लिए अपीलकर्ता की सहमति मांगी थी, लेकिन जमा राशि उसके बाद भी वापस नहीं की गई और अन्य मामले में उसी का भुगतान कर दिया गया है क्योंकि वित्त मंत्रालय ने भुगतान करने पर सहमति व्यक्त की थी, जैसा कि डाकघरों के अधीक्षक और अन्य बनाम के मामले में दर्ज है। नेशनल कंज्यूमर डिस्प्यूट्स रिड्रेसल कमीशन, नई दिल्ली द्वारा हेल्पलाइन ग्राहक मंडल और अन्य (सुप्रा) में दिए गए फैसले और ऑर्डर पर भरोसा करते हुए डिफेंडेंट-रिस्पॉन्डेंट्स ने कोई विवाद नहीं किया है, इसलिए वादी-अपीलकर्ता SB पब्लिक अकाउंट्स पर जमा करने की तारीख से पेमेंट की तारीख तक लागू 6% सालाना ब्याज का हकदार है।

29. ऊपर बताए गए कानून के ज़रूरी सवाल नंबर 1 से 3 पर इसी तरह फैसला किया जाता है। वादी-अपील करने वाला जमा की गई रकम के साथ जमा करने की तारीख से पेमेंट की तारीख तक 6% ब्याज पाने का हकदार है। सिविल अपील नंबर 52/2007 (जिला गन्ना उत्पादक सहकारी समिति लिमिटेड हरदोई बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य) में एडिशनल डिस्ट्रिक्ट जज, कोर्ट नंबर 6, हरदोई द्वारा 03.09.2011 को पास किया गया फैसला और डिक्री, इसी तरह बदली जाती है। अपील करने वाले का फाइल किया गया केस आंशिक रूप से मंजूर किया गया है और इसी तरह डिक्री दी गई है।

30. ऊपर बताई गई बातों के साथ, यह अपील कुछ हद तक मंजूर की जाती है। लागत के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं है।

(2025) 1 ILRA 718

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 20.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला

माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला,

बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका संख्या 439 सन 2023

गुरमेल सिंह एवं अन्य

..... याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

.....

प्रतिवादी

याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ता:

श्री आकाश मिश्रा

प्रतिवादी के अधिवक्ता:

शासकीय अधिवक्ता

आपराधिक कानून - भारतीय संविधान, अनुच्छेद 226- दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 427- स्वापक औषधि एवं मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 बंदी प्रत्यक्षीकरण - अवैध हिरासत - दोषी एनडीपीएस के दो अलग-अलग मामलों में सजा काट रहा है - दूसरी सजा में सजा एक साथ चलने के निर्देश के अभाव में लगातार चलेगी - याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि लगातार हिरासत में रखना अवैध है क्योंकि पहले मामले में सजा पूरी हो चुकी है - माना गया कि धारा 427 सीआरपीसी लगातार सजा का सामान्य नियम प्रदान करती है - जब तक कि अन्यथा निर्देश न दिया जाए - सजा को एक साथ चलाने का आदेश देने का विवेकाधिकार ट्रायल कोर्ट द्वारा प्रयोग नहीं किया गया - एनडीपीएस अधिनियम के तहत दोषसिद्धि गंभीर और समाज के विरुद्ध है - लगातार हिरासत में रखने में कोई अवैधता नहीं पाई गई - बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका खारिज किए जाने योग्य है। (अनुच्छेद 9, 11, 12 और 15)

माना गया

धारा 427 सीआरपीसी में प्रावधान है कि जब कोई व्यक्ति जो पहले से ही कारावास की सजा काट रहा है उसे बाद में दोषसिद्धि पर कारावास या आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है, तो ऐसी कारावास या आजीवन कारावास उस कारावास की समाप्ति पर शुरू होगी जिसकी उसे पहले सजा सुनाई गई थी, जब तक कि अदालत यह निर्देश न दे कि बाद की सजा ऐसी पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी। दूसरे शब्दों में, धारा 427 की उपधारा

(1) अदालत को यह निर्देश देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है कि दोषसिद्धि के बाद की सजा पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी।

(पैरा 9)

यह माना गया है कि यदि अपराधों से संबंधित लेन-देन समान नहीं हैं या दोनों अपराधों को बनाने वाले तथ्य बिल्कुल भिन्न हैं, तो ऐसी स्थिति में बाद की सजा लगातार चलनी चाहिए। इसके अलावा, बाद की सजा के संबंध में किसी निर्देश के अभाव में, धारा 427(1) में प्रतिपादित सामान्य नियम के अनुसार, बाद की सजा एक साथ नहीं, बल्कि लगातार चलेगी। (पैरा 11)

यह भी देखा गया है कि सीआरपीसी की धारा 427(1) के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय भी पिछली सजा के साथ-साथ अगली सजा चलाने के लिए, विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से और किए गए अपराध/अपराधों के आधार पर किया जाना चाहिए। इसलिए, यह देखते हुए कि एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराध बहुत गंभीर प्रकृति के हैं और समाज के विरुद्ध हैं, यह माना जाता है कि ऐसे अभियुक्त के पक्ष में कोई विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया जाएगा जो एनडीपीएस अधिनियम के तहत कई अपराधों में लिप्त है। (पैरा 12)

पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की सुनवाई और अभिलेखों एवं दो हिरासत प्रमाणपत्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि गुरमेल सिंह एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत एक बार-बार अपराधी है और उसे दो अलग-अलग अपराधों में अलग-अलग निचली अदालतों द्वारा दो अलग-अलग लेन-देन में दोषी ठहराया गया है, जिनके अपराध क्रमांक अलग-अलग हैं और ये मामले अलग-अलग जिलों के अलग-अलग पुलिस थानों में दर्ज किए गए हैं और दो अलग-अलग निर्णयों द्वारा तय किए गए हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता सीआरपीसी की धारा 427 के तहत एक साथ सजा के किसी भी लाभ का हकदार नहीं है, खासकर जब ऐसा कोई विशिष्ट आदेश या निर्देश नहीं है कि ये सजाएँ एक साथ चलेगी। वह 31.12.2005 से हिरासत में है। पंजाब में एफआईआर संख्या 306/2005 में उनकी सज़ा 17.09.2019 को पूरी हुई और उसके बाद उत्तर प्रदेश में एफआईआर संख्या 89/2006 में उनकी सज़ा 18.09.2019 को शुरू हुई और आज तक जारी है। उन्होंने लगभग सात साल की सज़ा छूट सहित पूरी की है।

(पैरा 15)

रिट याचिका खारिज (ई-14)

(माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिरला, एवं माननीय न्यायमूर्ति सुश्री नंद प्रभा शुक्ला, द्वारा प्रदत्त किया गया)

1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री आकाश मिश्रा और राज्य के विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता श्री राहुल अस्थाना को सुना गया और अभिलेख का अवलोकन किया गया।

2. वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका इस प्रार्थना के साथ दायर की गई है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति का एक रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 को बंदी प्रत्यक्षीकरण/याचिकाकर्ता संख्या 1 को रिहा करने का निर्देश दिया जाए।

3. याचिकाकर्ता संख्या 1 गुरमेल सिंह ने अपने पुत्र हरप्रीत सिंह, याचिकाकर्ता संख्या 2 के माध्यम से वर्तमान रिट याचिका दायर की है, जिसमें जिला जेल, इटावा से अपनी रिहाई की मांग की गई है।

4. याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील का मुख्य तर्क यह है कि लगभग 68 वर्षीय कॉर्पस गुरमेल सिंह 31.12.2005 से जेल में बंद हैं। यह तर्क दिया गया है कि प्रतिवादी संख्या 2 ने कॉर्पस को अवैध रूप से हिरासत में रखा था क्योंकि 27.08.2008 के निर्णय और आदेश के अनुसार कॉर्पस की हिरासत अवधि जिला जेल, मानसा, पंजाब में काटी गई अवधि की गणना नहीं की गई है। यह भी तर्क दिया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 लुधियाना और इटावा की जिला अदालतों द्वारा दी गई सजा पहले ही पूरी कर चुका है और फिर भी उसे अवैध हिरासत में रखा गया है, जो जेल मैनुअल के नियमों और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का उल्लंघन है। यह भी तर्क दिया गया है कि जेल में कॉर्पस का आचरण अच्छा है और जेल अधीक्षक द्वारा उसके खिलाफ कोई प्रतिकूल टिप्पणी नहीं की गई है। इस बात पर जोर दिया गया है कि जिला न्यायालय, इटावा ने अपराध संख्या 89/2006 में 10 वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाते समय यह स्पष्ट नहीं किया है कि दोनों मामलों में सजाएँ एक साथ चलेंगी या नहीं, जबकि यह निष्कर्ष दर्ज किया गया है कि याचिकाकर्ता संख्या 1 को जिला न्यायालय लुधियाना, पंजाब द्वारा दोषी ठहराया जा रहा है और इसलिए, याचिकाकर्ता को सीआरपीसी की धारा 427 का लाभ दिया जाना चाहिए।

5. अभिलेखों के अवलोकन से पता चलता है कि कॉर्पस को पंजाब और उत्तर प्रदेश में एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत दो अलग-अलग अपराधों में दोषी ठहराया गया है।

(i) संक्षेप में कहा जाए तो, गुरमेल सिंह, पंजाब में दिनांक 04.08.2005 को दर्ज अपराध संख्या 187/2005 के तहत, एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 15/61/85 के अंतर्गत, थाना सदर मानसा, जिला मानसा, पंजाब में दर्ज मामले में एक नामित अभियुक्त था और उसे विद्वान निचली अदालत द्वारा दोषी ठहराया गया था, लेकिन बाद में उसे पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा दिनांक 06.07.2015 के निर्णय एवं आदेश द्वारा बरी कर दिया गया था।

(ii) इसके बाद, कॉर्पस को पंजाब में प्रथम सूचना रिपोर्ट (मामला अपराध संख्या 306/2005) में एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 15/25/60/61/85 के अंतर्गत, थाना सिधवा बेट, जिला लुधियाना, पंजाब में

फिर से फंसाया गया और 30.12.2005 को गिरफ्तार कर लिया गया। विशेष न्यायालय, लुधियाना ने अपने दिनांक 26.08.2008 के निर्णय और आदेश द्वारा याचिकाकर्ता को एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 15 के अंतर्गत दोषी ठहराया और 12 वर्ष के कठोर कारावास और 1,50,000/- रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई और जुर्माना न भरने पर एक और छह महीने के कठोर कारावास की सजा सुनाई। उक्त दोषसिद्धि आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता ने पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ में आपराधिक अपील संख्या सीआरए-डी सं.300-डीबी/2019 (ओएम) दायर की, जिसे दिनांक 30.01.2014 के निर्णय एवं आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

(iii) पंजाब के मानसा स्थित जिला कारागार में निरुद्ध रहने के दौरान, याचिकाकर्ता के विरुद्ध उत्तर प्रदेश के थाना बड़पुरा, जिला इटावा में एन.डी.पी.एस. अधिनियम की धारा 15/18/25 के अंतर्गत अपराध संख्या 89/2006 दिनांक 16.11.2006 को एक और मामला दर्ज किया गया था, जिसमें याचिकाकर्ता को 28.04.2008 को जिला कारागार, मानसा, पंजाब से बी-वारंट के माध्यम से जिला कारागार, इटावा में तलब किया गया था और वह 28.04.2008 से 17.01.2010 तक इटावा में एक विचाराधीन कैदी के रूप में हिरासत में रहा। और उक्त मामले में अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या 1, इटावा द्वारा दिनांक 18.01.2010 के निर्णय और आदेश द्वारा एन.डी.पी.एस. की धारा 25(15) के अंतर्गत अपराध के लिए दोषी ठहराया गया। अधिनियम के तहत 10 वर्ष के कठोर कारावास और 1 लाख रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई है। जुर्माना न चुकाने पर दो वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भी दिया गया है। दोषसिद्धि के उक्त आदेश के विरुद्ध, याचिकाकर्ता संख्या 1 ने इस उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील संख्या 1373/2010 दायर की, जिसे इस न्यायालय ने 09.06.2017 को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया। इस प्रकार, एनडीपीएस अधिनियम की धारा 25(15) के तहत याचिकाकर्ता की दोषसिद्धि की पुष्टि की गई और 10 वर्ष के कठोर कारावास और 1 लाख रुपये के जुर्माने की सजा को भी बरकरार रखा गया, लेकिन जुर्माना न चुकाने पर दो वर्ष की अतिरिक्त सजा को घटाकर एक वर्ष कर दिया गया।

6. इसके विपरीत, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता ने इस तर्क का खंडन किया है अधीक्षक जिला जेल, मानसा, पंजाब द्वारा जारी दो हिरासत प्रमाणपत्रों दिनांक 09.09.2019 और वरिष्ठ अधीक्षक जिला जेल, इटावा द्वारा जारी दिनांक 06.07.2023 का हवाला दिया।

ए. हिरासत प्रमाण पत्र का विवरण, जिला जेल, मानसा, पंजाब दिनांक 09.9.2019

(i)	दोषी का नाम:	गुरमेल सिंह पुत्र नछतर सिंह
(ii)	एफआईआर संख्या:	06/2005, धारा 15/25/60/61/85 एनडीपीएस अधिनियम, थाना: सिधवा बेट, पंजाब
(iii)	विद्वान न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया।	विशेष न्यायालय, लुधियाना, पंजाब
(iv)	निर्णय की तिथि	27.08.2008

(v)	सज़ा की अवधि	20 वर्ष सज़ा (जो रिकॉर्ड में गलत तरीके से दर्ज की गई है। सही सज़ा की अवधि 12 वर्ष सज़ा और 1,50,000/- रुपये का जुर्माना है और इसके न चुकाने पर एक वर्ष और छह महीने की सज़ा भुगतनी होगी)
(vi)	विचाराधीन हिरासत में	दिनांक 31.12.2005 से 26.08.2008 तक
(vii)	दोषसिद्धि के बाद हिरासत	दिनांक 27.08.2008 से 17.09.2019 तक
(viii)	कुल सज़ा, जिसमें छूट भी शामिल है	12 वर्ष

नोट: उपरोक्त एफआईआर संख्या 306/2005 में उक्त दोषी को दी गई वास्तविक सज़ा 17.09.2019 को पूरी हो गई थी और शेष डेढ़ वर्ष की कारावास की सज़ा जुर्माने के बदले में दी जाएगी, जो सज़ा पूरी होने के बाद शुरू होगी। या एफआईआर संख्या 89/2006, धारा 15/18/25 एनडीपीएस अधिनियम, थाना बड़पुरा, जिला इटावा (उत्तर प्रदेश) में जमानत।

बी. हिरासत प्रमाण पत्र का विवरण, जिला कारागार, इटावा (उ.प्र.) दिनांक 06.07.2023

(i)	दोषी का नाम:	गुरमेल सिंह पुत्र नछतर सिंह
(ii)	एफआईआर संख्या:	89/2006, यू/एस 25/15 एनडीपीएस एक्ट, पी.एस. बड़पुरा, जिला इटावा (उ.प्र.)
(iii)	विद्वान न्यायालय द्वारा दोषी ठहराया गया।	अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश, फास्ट ट्रैक कोर्ट-1, इटावा
(iv)	निर्णय की तिथि	18.01.2010
(v)	सज़ा की अवधि	10 वर्ष का सज़ा और 1,00,000/- रुपये का जुर्माना, जुर्माना अदा न करने पर एक वर्ष का अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा।
(vi)	विचाराधीन हिरासत में	दिनांक 28.04.2008 से 17.01.2010 तक
(vii)	दोषसिद्धि के बाद हिरासत	दिनांक 18.09.2019 से 06.07.2023 तक
(viii)	कुल सज़ा, जिसमें छूट भी शामिल है	06.07.2023 को 5 वर्ष, छह महीने और 9 दिन
(ix)	पंजाब में दोषसिद्धि लंबित	एफआईआर संख्या 306/2005, यू/एस 15/25/60/61/85 एनडीपीएस अधिनियम, पी.एस. सिधवा बेट, पंजाब

7. विद्वान शासकीय अधिवक्ता द्वारा यह दावा किया गया है कि कॉर्पस को दो अलग-अलग अदालतों द्वारा दो अलग-अलग मुकदमों में, दो अलग-अलग लेन-देनों में दोषी ठहराया गया है, इसलिए, याचिकाकर्ता धारा 427(1) सीआरपीसी का लाभ नहीं उठा सकते।

8. दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत तर्कों को समझने के लिए, धारा 427 सीआरपीसी के प्रावधानों को प्रस्तुत करना उचित होगा, जो इस प्रकार हैं:

“427. किसी अन्य अपराध के लिए पहले से ही दण्डित अपराधी को दण्ड-(1) जब किसी व्यक्ति को, जो पहले से ही कारावास की सजा काट रहा है, बाद में दोषसिद्धि पर कारावास या आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है, तो ऐसा कारावास या आजीवन कारावास उस कारावास की समाप्ति पर शुरू होगा जिसके लिए उसे पहले दण्डित किया गया है, जब तक कि न्यायालय यह निर्देश न दे कि बाद की सजा ऐसी पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी: बशर्ते कि जहाँ किसी व्यक्ति को, जिसे धारा 122 के तहत किसी आदेश द्वारा कारावास की सजा सुनाई गई है, सुरक्षा प्रदान न करने पर, ऐसी सजा काटते समय, ऐसे आदेश के जारी होने से पहले किए गए किसी अपराध के लिए कारावास की सजा सुनाई जाती है, तो बाद की सजा तुरंत शुरू होगी।

(2) जब किसी व्यक्ति को, जो पहले से ही आजीवन कारावास की सजा काट रहा है, बाद में दोषसिद्धि पर कारावास या आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है, तो बाद की सजा ऐसी पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी।”

9. धारा 427 सीआरपीसी में प्रावधान है कि जब पहले से ही कारावास की सजा काट रहे किसी व्यक्ति को बाद में दोषसिद्धि पर कारावास या आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है, तो ऐसा कारावास या आजीवन कारावास उस कारावास की समाप्ति पर शुरू होगा जिसकी उसे पहले सजा सुनाई गई थी, जब तक कि अदालत यह निर्देश न दे कि बाद की सजा ऐसी पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी। दूसरे शब्दों में, धारा 427 की उपधारा (1) अदालत को यह निर्देश देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है कि दोषसिद्धि के बाद की सजा पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी।

10. हाल ही में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने धारा 427(1) सीआरपीसी पर कानून को स्पष्ट किया है **मोहम्मद जाहिद बनाम राज्य एनसीबी के माध्यम से, (2022) 12 426 सर्वोच्च न्यायालय** में सजाओं के समवर्ती और क्रमिक चलने के संबंध में कानून के सिद्धांत भी निर्धारित किए हैं।

11. यह माना गया है कि यदि अपराधों से संबंधित लेन-देन समान नहीं हैं या दोनों अपराधों को बनाने वाले तथ्य काफी भिन्न हैं, तो ऐसी स्थिति में बाद की सजा क्रमवार चलनी चाहिए - इसके अलावा, बाद की सजा के चलने के संबंध में किसी निर्देश के अभाव में, धारा 427(1) में प्रतिपादित सामान्य नियम के अनुसार, बाद की सजा समवर्ती नहीं, बल्कि क्रमवार चलेगी।

12. यह भी देखा गया है कि सीआरपीसी की धारा 427(1) के तहत अगली सजा को पिछली सजा के साथ-साथ चलाने के विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय भी, विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण तरीके से और किए गए अपराध/अपराधों के आधार पर किया जाना चाहिए। इसलिए, यह देखते हुए कि एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराध बहुत गंभीर प्रकृति के हैं और व्यापक रूप से समाज के विरुद्ध हैं, यह माना जाता है कि ऐसे अभियुक्त के पक्ष में कोई विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया जाएगा जो एनडीपीएस अधिनियम के तहत कई अपराधों में लिप्त है।

13. इसके अलावा, विधि के निम्नलिखित सिद्धांत निर्धारित हैं:

"(i) यदि कोई व्यक्ति पहले से ही कारावास की सजा काट रहा है और उसे बाद में दोषसिद्धि के आधार पर कारावास की सजा सुनाई जाती है, तो कारावास की ऐसी बाद की अवधि सामान्यतः उस कारावास की समाप्ति पर शुरू होगी जिसकी उसे पहले सजा सुनाई गई थी;

(ii) सामान्यतः बाद की सजा कारावास की पहली अवधि की समाप्ति पर शुरू होगी, जब तक कि न्यायालय निर्देश न दे कि बाद की सजा पिछली सजा के साथ-साथ चले;

(iii) सामान्य नियम यह है कि जहाँ अलग-अलग लेन-देन हों, अलग-अलग अपराध संख्याएँ हों और अलग-अलग निर्णयों द्वारा अलग-अलग मामलों का निर्णय किया गया हो, वहाँ धारा 427 के तहत समवर्ती सजा नहीं दी जा सकती;

(iv) धारा 427 (1) के तहत न्यायालय के पास यह निर्देश जारी करने की शक्ति और विवेकाधिकार है कि बाद की सभी सजाएँ पिछली सजा के साथ-साथ चलेंगी, हालाँकि विवेकाधिकार का प्रयोग अपराध की प्रकृति या किए गए अपराधों और स्थिति के तथ्यों के आधार पर विवेकपूर्ण तरीके से किया जाना चाहिए। हालाँकि, एक विशिष्ट निर्देश या आदेश होना चाहिए अदालत से अनुरोध है कि अगली सजा पिछली सजा के साथ-साथ चले।"

14. इसके अलावा, उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ-11 में इस बात पर जोर दिया गया है:

"जैसा कि ऊपर सीआरपीसी की धारा 427 (1) के तहत देखा गया है, न्यायालय के पास यह निर्देश जारी करने की शक्ति और विवेकाधिकार है कि बाद की सजा पिछली सजा के साथ-साथ चले, उस मामले में भी, विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए, जो अपराध की प्रकृति या किए गए अपराधों पर निर्भर करता है। वर्तमान मामले में अपीलकर्ता-आरोपी को एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराधों के लिए दोषी ठहराया गया है। उसे एक मामले में 4 किलोग्राम हेरोइन की बरामदगी के लिए दोषी ठहराया गया है और 12 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है और दूसरे मामले में 750 ग्राम हेरोइन की बरामदगी हुई है और एनडीपीएस अधिनियम की धारा 31 (ii) को ध्यान में रखते हुए, उसे 15 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई है। एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराध के लिए दोषी पाए गए आरोपी के प्रति कोई नरमी नहीं

बरती जानी चाहिए। वे व्यक्ति जो मादक पदार्थ कई निर्दोष युवा पीड़ितों की मृत्यु का कारण बनने या उन्हें घातक आघात पहुँचाने के साधन हैं। ऐसे आरोपी समाज पर हानिकारक प्रभाव और घातक प्रभाव डालते हैं। वे समाज के लिए खतरा हैं। इस देश में मादक पदार्थों और मनोविकार नाशक पदार्थों की गुप्त तस्करी और ऐसी दवाओं और पदार्थों की अवैध तस्करी की ऐसी संगठित गतिविधियाँ समग्र रूप से समाज पर घातक प्रभाव डालती हैं। इसलिए, एनडीपीएस अधिनियम के मामले में सजा या दंड देते समय, समग्र रूप से समाज के हित को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसलिए, सीआरपीसी की धारा 427 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय भी, विवेकाधिकार उस अभियुक्त के पक्ष में नहीं होगा जो मादक पदार्थों और मनोविकार नाशक पदार्थों की अवैध तस्करी में लिप्त पाया जाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सीआरपीसी की धारा 427 के तहत विवेकाधिकार का प्रयोग करते समय भी, पिछली सजा के साथ-साथ अगली सजा चलाने के लिए, विवेकाधिकार का प्रयोग विवेकपूर्ण ढंग से और अपराध/अपराधों के आधार पर किया जाना चाहिए। प्रतिबद्ध। इसलिए, एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराधों को ध्यान में रखते हुए, जो प्रकृति में बहुत गंभीर हैं और बड़े पैमाने पर समाज के विरुद्ध हैं, ऐसे अभियुक्त के पक्ष में कोई विवेकाधिकार नहीं अपनाया जाएगा जो एनडीपीएस अधिनियम के तहत अपराध में लिप्त है।

15. पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं की सुनवाई और अभिलेखों एवं दो हिरासत प्रमाणपत्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि कॉर्पस गुरमेल सिंह एन.डी.पी.एस. अधिनियम के तहत एक बार-बार अपराधी रहा है और उसे अलग-अलग निचली अदालतों द्वारा दो अलग-अलग अपराधों में दोषी ठहराया गया है। अलग-अलग मामलों में अलग-अलग अपराध संख्याएँ हैं और ये मामले अलग-अलग राज्यों के अलग-अलग पुलिस थानों में दर्ज किए गए हैं और दो अलग-अलग निर्णयों द्वारा तय किए गए हैं। इसलिए, याचिकाकर्ता सीआरपीसी की धारा 427 के तहत एक साथ सजा का कोई लाभ पाने का हकदार नहीं है, खासकर जब ऐसा कोई विशिष्ट आदेश या निर्देश नहीं है कि सजाएँ एक साथ चलेंगी। वह 31.12.2005 से हिरासत में है। पंजाब में एफआईआर संख्या 306/2005 में उनकी सज़ा 17.09.2019 को पूरी हुई और उसके बाद उत्तर प्रदेश में एफआईआर संख्या 89/2006 में उनकी सज़ा 18.09.2019 को शुरू हुई और आज तक जारी है। उन्होंने लगभग सात साल की सज़ा काट ली है जिसमें छूट भी शामिल है।

16. विद्वान अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक न्यायालय संख्या 1, इटावा ने दिनांक 18.01.2010 के अपने निर्णय और दोषसिद्धि आदेश में, बाद की सजा सुनाते समय, कोई विशिष्ट आदेश या निर्देश पारित नहीं किया है कि बाद की सजा पिछली सजा के साथ-साथ चलेगी। याचिकाकर्ता/अभियुक्त को एनडीपीएस अधिनियम के तहत एक ऐसे अपराध के लिए बार-बार दोषी ठहराया गया है, जो अत्यंत गंभीर प्रकृति का है और समग्र समाज के विरुद्ध है, इसलिए, याचिकाकर्ता के पक्ष में कोई विवेकाधिकार प्रयोग नहीं किया जाएगा। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के आलोक में, याचिकाकर्ता को पिछली सजा की समाप्ति की तिथि के बाद शेष सजा लगातार काटनी होगी।

17. उपरोक्त के मददेनजर और ऊपर बताए गए कारणों से, प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा कॉर्पस को अवैध रूप से हिरासत में नहीं लिया गया है। वर्तमान बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट याचिका विफल होती है और तदनुसार, उसे **खारिज** किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 724

अपील क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 15.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

विशेष अपील (डी) संख्या 10 सन 2025

सौरभ सक्सेना

...अपीलकर्ता

बनाम

भारत संघ एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

ऋषि राज, गर्व सक्सेना

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई., सी.एस.सी., गौरव मेहरोत्रा, एस.एम. सिंह राँयेकवार

अ. सेवा कानून - उत्तर प्रदेश सरकार औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (प्रशिक्षक एवं फोरमैन प्रशिक्षक) सेवा नियमावली, 2021 - सिलाई प्रौद्योगिकी में प्रशिक्षक का पद - योग्यता - निर्धारण - न्यायालय की योग्यता - परिधान निर्माण प्रौद्योगिकी/पोशाक डिजाइन एवं ट्रेस निर्माण में डिप्लोमा आवश्यक था, लेकिन इसके बजाय, इसके समक्ष योग्यता का दावा किया गया - अनुमति - माना गया, कोई भी व्यक्ति जो आवश्यक डिप्लोमा के समक्ष योग्यता का दावा करता है, वह विज्ञापन के विरुद्ध आवेदन करने के लिए पात्र नहीं होगा - रोजगार के उद्देश्य के लिए पात्रता की जांच के मामले में योग्यता की तुल्यता का प्रश्न, नियोक्ता द्वारा तय किया जाना है और न्यायालय किसी भी योग्यता को नियमों में निर्धारित योग्यता के समक्ष नहीं मान सकते।
(पैरा 15 और 16)

विशेष अपील खारिज। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. श्री सुबीर सूत्रधार बनाम त्रिपुरा राज्य और अन्य; 2023 एससीसी ऑनलाइन ट्राई 183
2. शिफाना पी.एस. बनाम केरल राज्य और अन्य; (2024) 8 एससीसी 309
3. ज़िला जिला कलक्टर अध्यक्ष विजयनगरम बनाम एम. त्रिपुरा सुंदरी देवी; 1990 (3) एससीसी 655
4. जहूर अहमद राथर और अन्य। बनाम शेख इम्तियाज अहमद और अन्य; (2019) 2 एससीसी 404

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी जे. एवं माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा दिया गया)

सी.एम. आवेदन संख्या 1/2025 (विशेष अपील दायर करने में हुए विलम्ब के लिए क्षमा हेतु आवेदन)

1. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री ऋषि राज, राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री प्रफुल्ल यादव, भारत संघ की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री आनंद द्विवेदी, उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम. सिंह रायकवार को सुना गया और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।
2. यह विशेष अपील दायर करने में हुए विलंब को क्षमा करने के लिए एक आवेदन है। प्रतिवादी के विद्वान अधिवक्ता ने आवेदन के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठाई। हम पाते हैं कि आवेदक-अपीलकर्ता द्वारा विलंब को क्षमा करने के लिए उचित और प्रशंसनीय कारण बताए गए हैं।
3. विलंब को क्षमा करने के लिए आवेदन स्वीकार किया जाता है और विशेष अपील दायर करने में हुए विलंब को क्षमा किया जाता है। विशेष
4. अपील को एक नियमित संख्या प्रदान की जाए।

विशेष अपील पर आदेश:

1. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत दायर वर्तमान अंतर-न्यायालय अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता ने इस न्यायालय की माननीय एकल पीठ द्वारा रिट-ए संख्या 1327/2024 में पारित दिनांक 21.02.2024 के निर्णय और आदेश की वैधता को चुनौती दी है, जिसके तहत अपीलकर्ता द्वारा दायर रिट याचिका जिसमें उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग द्वारा पारित दिनांक 15.02.2024 के आदेश को चुनौती दी गई थी, खारिज कर दी गई थी। अपीलकर्ता ने उपरोक्त आदेश की समीक्षा के लिए एक आवेदन दायर किया था जिसे दिनांक 26.11.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है और अपीलकर्ता ने उस आदेश की वैधता को भी चुनौती दी है।

2. संक्षेप में, मामले के तथ्य यह हैं कि उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग ने विभिन्न पदों पर नियुक्तियाँ करने के लिए एक विज्ञापन जारी किया था, जिनमें सिलाई प्रौद्योगिकी में प्रशिक्षकों के कुछ पद भी शामिल हैं। प्रशिक्षक के पद पर नियुक्ति के लिए पात्रता योग्यता इस प्रकार है:

(i) उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण या सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अन्य परीक्षा जो इसके समकक्ष हो,

(ii) परिशिष्ट के स्तंभ 4 में दिए गए अनुसार विभिन्न ट्रेडों/विषयों के लिए पात्रता योग्यता और

(iii) डीजीटी के तहत संबंधित ट्रेड में राष्ट्रीय शिल्प प्रशिक्षक प्रमाणपत्र और परिशिष्ट के स्तंभ 4 में निर्धारित कोई अन्य योग्यता।

विज्ञापन में आगे यह भी प्रावधान किया गया है कि उम्मीदवार के पास परिशिष्ट के स्तंभ 4 में दिए गए अनुसार प्रासंगिक अनुभव होना चाहिए।

3. अपीलकर्ता ने सिलाई प्रौद्योगिकी में प्रशिक्षक के पद के लिए आवेदन किया था, जिसके लिए विज्ञापन में उल्लिखित उत्तर प्रदेश सरकार औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (प्रशिक्षक एवं फोरमैन प्रशिक्षक) सेवा नियम, 2021 के परिशिष्ट के स्तंभ 4 में निर्धारित आवश्यक योग्यता निम्नानुसार है:-

33	सिलाई तकनीक	(4)	यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त किसी कॉलेज/विश्वविद्यालय से फैशन एवं परिधान प्रौद्योगिकी में बी. वोकेशनल/डिग्री और संबंधित क्षेत्र में एक वर्ष का अनुभव। या किसी मान्यता प्राप्त तकनीकी शिक्षा बोर्ड से परिधान निर्माण प्रौद्योगिकी/ पोशाक डिजाइन एवं ड्रेस मेकिंग में डिप्लोमा (न्यूनतम 2 वर्ष) या डी.जी.टी. से संबंधित उन्नत डिप्लोमा (व्यावसायिक) और संबंधित क्षेत्र में दो वर्ष का अनुभव। या “सिलाई प्रौद्योगिकी” (जिसे पहले

			“कटिंग एवं सिलाई” कहा जाता था) के ट्रेड में एनटीसी/एनएसी उत्तीर्ण और संबंधित क्षेत्र में तीन वर्ष का अनुभव।

4. अपीलकर्ता के पास उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड, लखनऊ द्वारा प्रदत्त वस्त्र प्रौद्योगिकी में तीन वर्षीय डिप्लोमा प्रमाणपत्र है और उसके पास राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद द्वारा जारी राष्ट्रीय शिल्प प्रशिक्षक प्रमाणपत्र भी है जिसमें 'कटिंग और सिलाई' ट्रेड शामिल है। उसकी उम्मीदवारी इस आधार पर खारिज कर दी गई कि उसके पास परिशिष्ट के कॉलम 4 में उल्लिखित कोई भी योग्यता नहीं है।

5. अपीलकर्ता ने अपनी सिलाई और कटाई ट्रेड में डिप्लोमा की योग्यता को कॉस्ट्यूम डिज़ाइन और ड्रेस मेकिंग में डिप्लोमा के समकक्ष मानते हुए अपनी उम्मीदवारी पर विचार करने के लिए एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था। इस अभ्यावेदन को उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग द्वारा दिनांक 15.02.2024 को पारित एक आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया है, जिस आदेश को रिट कोर्ट में चुनौती दी गई थी।

6. रिट कोर्ट ने माना कि अपीलकर्ता के पास सिलाई प्रौद्योगिकी ट्रेड में प्रशिक्षक के पद के लिए कोई भी पात्रता योग्यता नहीं है, जो उत्तर प्रदेश सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (प्रशिक्षक और फोरमैन प्रशिक्षक) सेवा नियम, 2021 के परिशिष्ट में उल्लिखित है। अपीलकर्ता के पास वस्त्र प्रौद्योगिकी में डिप्लोमा है, जिसका उल्लेख परिशिष्ट के कॉलम 4 में नहीं है। रिट कोर्ट ने आगे कहा कि राष्ट्रीय व्यावसायिक प्रशिक्षण परिषद द्वारा अपीलकर्ता को जारी किया गया प्रमाण पत्र, कटाई और सिलाई ट्रेड में एक वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, संबंधित नियमों के तहत मान्यता प्राप्त योग्यता नहीं है।

7. अपीलकर्ता ने एक पुनर्विचार याचिका दायर की जिसमें कहा गया कि रिट याचिका खारिज होने के बाद, उसे सचिव, उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड से यह जानकारी मिली थी कि वस्त्र प्रौद्योगिकी और पोशाक डिज़ाइन एवं ड्रेस मेकिंग, प्रमुख विषय 'वस्त्र इंजीनियरिंग' के अंतर्गत समतुल्य हैं। अपीलकर्ता ने दावा किया कि उसने वस्त्र प्रौद्योगिकी में तीन वर्षीय डिप्लोमा पाठ्यक्रम किया है जो 'वस्त्र डिज़ाइन एवं ड्रेस मेकिंग' के समकक्ष है।

8. समीक्षा आवेदन पर निर्णय करते हुए माननीय एकल न्यायाधीश ने यह माना है कि उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड के सचिव द्वारा प्रदान की गई जानकारी उनकी अपनी व्याख्या के अलावा और कुछ नहीं है कि इसे उपर्युक्त पाठ्यक्रमों के समकक्ष माना जा सकता है और उन्होंने यह नहीं कहा है कि यह समकक्ष है।

9. रिट कोर्ट द्वारा पारित आदेशों की वैधता पर आपत्ति जताते हुए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि सचिव उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड ने अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद द्वारा

जारी अनुमोदन प्रक्रिया पुस्तिका, 2022-23 के अनुलग्नक 7 की एक प्रति प्रदान की है, जिसमें डिप्लोमा पाठ्यक्रमों और संबंधित/उपयुक्त शाखाओं की सूची है और उन्होंने कहा है कि इन्हें समकक्ष माना जा सकता है। सचिव उत्तर प्रदेश तकनीकी शिक्षा बोर्ड द्वारा प्रदान की गई जानकारी के साथ संलग्न अनुलग्नक-7 में कई प्रमुख विषयों, उनके संबंधित पाठ्यक्रमों और इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी में डिप्लोमा की संबंधित/उपयुक्त शाखाओं की सूची शामिल है। इस अनुलग्नक में टेक्सटाइल इंजीनियरिंग को एक प्रमुख विषय के रूप में उल्लेखित किया गया है और कई डिप्लोमा पाठ्यक्रमों को विलय के लिए अनुमत बताया गया है, जिनमें टेक्सटाइल टेक्नोलॉजी और कॉस्ट्यूम डिज़ाइन और ड्रेस मेकिंग शामिल हैं। इस दस्तावेज़ के आधार पर, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने तर्क दिया है कि चूँकि अपीलकर्ता के पास वस्त्र प्रौद्योगिकी में डिप्लोमा है, इसलिए इसे परिधान निर्माण प्रौद्योगिकी/पोशाक डिज़ाइन और पोशाक निर्माण में डिप्लोमा के समकक्ष माना जाना चाहिए।

10. अपने तर्क के समर्थन में, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने **श्री सुबीर सूत्रधार बनाम त्रिपुरा राज्य और दो अन्य: 2023 एससीसी ऑनलाइन ट्राई 183** के मामले में त्रिपुरा उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें यह माना गया था कि निर्माण प्रौद्योगिकी और प्रबंधन में इंजीनियरिंग स्नातक की डिग्री, बी.टेक सिविल इंजीनियरिंग के समकक्ष है।

11. इसके विपरीत, उत्तर प्रदेश अधीनस्थ सेवा चयन आयोग के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम. सिंह रॉयकर ने तर्क दिया है कि नियुक्ति के प्रयोजन के लिए योग्यता की समतुल्यता का निर्णय नियोक्ता द्वारा संबंधित नियमों के अनुसार किया जाना है। याचिकाकर्ता द्वारा धारण की गई योग्यता, नियमों में निहित प्रावधानों के अनुसार विज्ञापन में उल्लिखित योग्यता के समतुल्य नहीं है। उन्होंने **शिफाना पी.एस. बनाम केरल राज्य एवं अन्य: (2024) 8 एससीसी 309** के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर कई पूर्व उदाहरणों का हवाला दिया है और निम्नलिखित निर्णय दिया है:

“13. इस न्यायालय ने ज़हूर अहमद राथर एवं अन्य बनाम शेख इम्तियाज अहमद एवं अन्य: (2019) 2 एससीसी 404 के मामले में यह माना कि न्यायिक समीक्षा न तो निर्धारित योग्यताओं के दायरे का विस्तार कर सकती है और न ही निर्धारित योग्यताओं की किसी अन्य दी गई योग्यता के साथ समानता तय कर सकती है। इसलिए, किसी योग्यता की समानता ऐसा मामला नहीं है जिसका निर्धारण न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में किया जा सके। किसी विशेष योग्यता को समकक्ष माना जाना चाहिए या नहीं, यह राज्य का मामला है, भर्ती प्राधिकारी के रूप में, उसे यह तय करना है।

(मूल में जोर)

14. **उन्नीकृष्णन सी.वी. एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य: (2023) 18 एससीसी 546** में, इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ ने, **गुरु नानक देव विश्वविद्यालय बनाम संजय कुमार कटवाल एवं अन्य: (2009)**

1 एससीसी 610 के मामले में पहले के फैसले पर भरोसा करते हुए यह माना कि समतुल्यता एक तकनीकी शैक्षणिक मामला है, इसलिए इसे निहित या मान नहीं लिया जा सकता। विश्वविद्यालय के शैक्षणिक निकाय का समतुल्यता से संबंधित कोई भी निर्णय विशिष्ट आदेश या संकल्प द्वारा, विधिवत प्रकाशित होना चाहिए।”

12. जिला कलेक्टर एवं अध्यक्ष विजयनगरम बनाम एम. त्रिपुरा सुंदरी देवी: 1990 (3) एससीसी 655 में, प्रतिवादी को हिंदी में स्नातकोत्तर शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया था, लेकिन दस्तावेजों की जांच के समय यह पाया गया कि उसके पास विज्ञापन में उल्लिखित पात्रता योग्यता नहीं थी और उसे सेवा में शामिल होने की अनुमति नहीं दी गई। अपील पर निर्णय देते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

“6. सभी संबंधित पक्षों को यह भी समझना होगा कि जब किसी विज्ञापन में किसी विशेष योग्यता का उल्लेख होता है और उसकी अवहेलना करते हुए नियुक्ति की जाती है, तो यह केवल नियुक्ति प्राधिकारी और संबंधित नियुक्त व्यक्ति के बीच का मामला नहीं है। पीड़ित वे सभी लोग हैं जिनकी योग्यताएँ नियुक्त व्यक्ति या नियुक्त व्यक्तियों के समान या उससे भी बेहतर थीं, लेकिन जिन्होंने पद के लिए आवेदन नहीं किया था क्योंकि उनके पास विज्ञापन में उल्लिखित योग्यताएँ नहीं थीं। ऐसी परिस्थितियों में कम योग्यता वाले व्यक्तियों की नियुक्ति करना जनता के साथ धोखाधड़ी है, जब तक कि यह स्पष्ट रूप से न कहा गया हो कि योग्यताएँ शिथिलनीय हैं। किसी भी न्यायालय को इस धोखाधड़ीपूर्ण व्यवहार को जारी रखने में पक्ष नहीं बनना चाहिए। हमें डर है कि न्यायाधिकरण इस तथ्य से अनजान है।”

13. शिफाना पी.एस. (सुप्रा) में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने ज़हूर अहमद राथर एवं अन्य बनाम शेख इम्तियाज अहमद एवं अन्य: (2019) 2 एससीसी 404 के मामले में पूर्ववर्ती निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर अनेक पूर्व उदाहरणों पर विचार किया और निम्नलिखित निर्णय दिया:

“26. हम ज्योति के.के. [ज्योति के.के. बनाम केरल लोक सेवा आयोग, (2010) 15 एससीसी 596] के निर्णय की व्याख्या से सम्मानपूर्वक सहमत हैं जो अनीता (सुप्रा) [पंजाब राज्य बनाम अनीता, (2015) 2 एससीसी 170] के बाद के निर्णय में की गई है। ज्योति के.के. का निर्णय नियम 10(ए)(ii) के प्रावधानों पर आधारित था। ऐसे नियम के अभाव में, यह अनुमति नहीं होगी कि उच्च योग्यता आवश्यक रूप से किसी अन्य, यद्यपि निम्नतर, योग्यता के अधिग्रहण को पूर्व-धारणा करती है। किसी पद के लिए योग्यताएँ भर्ती नीति का मामला है। नियोक्ता के रूप में राज्य पात्रता की शर्त के रूप में योग्यताएँ निर्धारित करने का हकदार है। न्यायिक समीक्षा की भूमिका या कार्य का कोई हिस्सा नहीं है कि वह निर्धारित योग्यताओं के दायरे का विस्तार करे। इसी प्रकार, किसी योग्यता की समतुल्यता ऐसा मामला नहीं है जिसे न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग में निर्धारित किया जा सके। किसी विशेष योग्यता को समतुल्य माना जाना चाहिए या नहीं यह राज्य का मामला है, जो भर्ती प्राधिकारी के रूप में, निर्धारित करता है। ज्योति केके मामले में निर्णय एक विशिष्ट वैधानिक

नियम पर आधारित था जिसके तहत उच्च योग्यता रखने के लिए निम्न योग्यता प्राप्त करना पूर्व-कल्पित हो सकता है। वर्तमान मामले में ऐसे नियम का अभाव अंतिम परिणाम में एक महत्वपूर्ण अंतर डालता है। इस दृष्टिकोण से मामले के संबंध में, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने विद्वान एकल न्यायाधीश के फैसले को पलटने और पृष्ठ 177 पर 10 आईडी पर इस निष्कर्ष पर पहुँचने में उचित ठहराया कि अपीलकर्ता निर्धारित योग्यताएँ पूरी नहीं करते थे। हम पाते हैं खंडपीठ के निर्णय में कोई त्रुटि नहीं है।

27. किसी पद के लिए योग्यताएँ निर्धारित करते समय, राज्य, नियोक्ता के रूप में, वैध रूप से कई विशेषताओं को ध्यान में रख सकता है जिनमें नौकरी की प्रकृति, कर्तव्यों के कुशल निर्वहन के लिए आवश्यक योग्यताएँ, योग्यता की कार्यक्षमता, और योग्यता प्राप्त करने हेतु आवश्यक अध्ययन पाठ्यक्रम की विषयवस्तु शामिल है। राज्य को अपनी सार्वजनिक सेवाओं की आवश्यकताओं का आकलन करने का अधिकार सौंपा गया है। प्रशासन की अनिवार्यताएँ, यह एक सामान्य कानून है, प्रशासनिक निर्णय लेने के क्षेत्राधिकार में आती हैं। एक सार्वजनिक नियोक्ता के रूप में राज्य उन सामाजिक परिप्रेक्ष्यों को ध्यान में रख सकता है जिनके लिए सामाजिक संरचना में रोजगार के अवसरों का सृजन आवश्यक है। ये सभी अनिवार्य रूप से नीतिगत मामले हैं। न्यायिक समीक्षा को सावधानी से आगे बढ़ना चाहिए। इसीलिए ज्योति के के मामले में दिए गए निर्णय को एक विशिष्ट वैधानिक नियम के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसके तहत उच्च योग्यता का होना, जो निम्न योग्यता प्राप्त करने को पूर्वधारणा करता है, पद के लिए पर्याप्त माना गया था। यह विशिष्ट नियम के संदर्भ में ही था कि ज्योति के के मामले में लिया गया निर्णय बदल गया।” (महत्व जोड़ें)

14. वर्तमान मामले में, विज्ञापन में कहा गया है कि पात्रता योग्यता उत्तर प्रदेश सरकारी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (प्रशिक्षक एवं फोरमैन प्रशिक्षक) सेवा नियम, 2021 के परिशिष्ट के कॉलम 4 के अनुसार होगी, जिसमें किसी मान्यता प्राप्त तकनीकी शिक्षा बोर्ड से परिधान निर्माण प्रौद्योगिकी/पोशाक डिजाइन एवं ड्रेस मेकिंग में दो वर्षीय डिप्लोमा या डी.जी.टी. से संबंधित उन्नत डिप्लोमा (व्यावसायिक) के साथ संबंधित क्षेत्र में दो वर्षीय अनुभव या "सिलाई प्रौद्योगिकी" ट्रेड में एनटीसी/एनएसी उत्तीर्ण, जिसे पहले "कटिंग और सिलाई" कहा जाता था, के साथ संबंधित क्षेत्र में तीन वर्ष का अनुभव शामिल है। अपीलकर्ता के पास उपर्युक्त कोई भी योग्यता नहीं है।

15. हालाँकि, विज्ञापन में उल्लेख किया गया था कि उम्मीदवार को उत्तर प्रदेश इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड द्वारा आयोजित हाई स्कूल परीक्षा या राज्य सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी, लेकिन डिप्लोमा की योग्यता के संबंध में समकक्षता का प्रावधान नहीं है। इसलिए, कोई भी व्यक्ति जो परिधान निर्माण प्रौद्योगिकी/पोशाक डिजाइन एवं ड्रेस मेकिंग में डिप्लोमा के समकक्ष योग्यता का दावा करता है या "सिलाई प्रौद्योगिकी" के ट्रेड में एनटीसी/एनएसी उत्तीर्ण है, विज्ञापन के तहत आवेदन करने के लिए पात्र नहीं होगा।

16. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, रोजगार के उद्देश्य से पात्रता की जाँच के मामले में योग्यता की समतुल्यता का प्रश्न, नियोक्ता द्वारा तय किया जाना है और न्यायालय किसी भी योग्यता को नियमों में निर्धारित और विज्ञापन में उल्लिखित योग्यताओं के समतुल्य नहीं मान सकते। यदि अपीलकर्ता के योग्यता की समतुल्यता के दावे को स्वीकार कर लिया जाता है, तो अन्य सभी समान स्थिति वाले व्यक्ति, जिन्होंने आवेदन नहीं किया क्योंकि उनके पास नियमों द्वारा निर्धारित और विज्ञापन में उल्लिखित योग्यताएँ नहीं थीं, भेदभाव और अन्याय का शिकार होंगे।

17. इसलिए, हम माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका को खारिज करते समय लिए गए निर्णय से पूरी तरह सहमत हैं।

18. विशेष अपील में कोई बल नहीं है और इसे एतद्वारा **खारिज** किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 730

अपील क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: लखनऊ 07.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी,

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी,

विशेष अपील संख्या 296 सन 2024

कलामुद्दीन @ शानू

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...अपीलकर्ता

...प्रतिवादी

अपीलकर्ता के अधिवक्ता:

सज्जाद हुसैन

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

सी.एस.सी.

क. व्यवहार एवं प्रक्रिया - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 - अध्याय VIII - नियम 5 - विशेष अपील - पोषणीयता - अभिव्यक्ति 'निर्णय' - अर्थ और क्षेत्र - एक इमारत की छत/विध्वंस पर रोक लगाने के साथ-साथ याचिका को पूरा करने का आदेश पारित किया गया - इसके विरुद्ध अपील की पोषणीयता - माना गया

कि चुनौती के तहत आदेश अंतिमता की विशेषता नहीं रखता है। यह अपीलकर्ता के किसी भी मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है, जो यह दावा नहीं करता है कि इस मामले में उसका कोई भी व्यक्तिगत अधिकार शामिल है। यह कोई 'निर्णय' नहीं है और इस कारण से विशेष अपील स्वीकार्य नहीं है। (पैरा 10)

ख. व्यवहार और प्रक्रिया - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952 - अध्याय VIII - नियम 5 - विशेष अपील - स्वीकार्यता - रिट न्यायालय के समक्ष आदेश उत्तर प्रदेश योजना एवं विकास अधिनियम के तहत अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था। - माना गया कि विशेष अपील में चुनौती दिया गया आदेश उत्तर प्रदेश उच्च न्यायालय की धारा 28 ए (4) के तहत अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते हुए संभागीय आयुक्त द्वारा पारित निर्णय के संबंध में अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका में पारित किया गया है। शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम के अनुसार, ऐसे आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अपील पोषणीय नहीं है। (पैरा 12)

ग. प्रक्रिया और प्रक्रिया - अपील एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दायर की गई थी जो रिट याचिका में पक्षकार नहीं था - अपील दायर करने की अनुमति नहीं मांगी गई थी - प्रभाव - यह माना गया कि न्यायालय की अनुमति लिए बिना दायर की गई विशेष अपील पोषणीय नहीं है। (पैरा 13)

घ. प्रथा और प्रक्रिया - अपीलकर्ता द्वारा रिट याचिका को साफ सुथरे ढंग से दायर न करने का आरोप लगाया गया था - साथ ही उच्च न्यायालय की रजिस्ट्री के अधिकारियों/कर्मचारियों पर रिट याचिका को सरसरी तौर पर पारित करने का आरोप लगाया गया है और न्यायालय पर रिट याचिका दायर करने के दिन ही उस पर सुनवाई की अनुमति देने का आरोप लगाया गया है - अनुमति - माना गया कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय में प्रचलित सामान्य प्रथा यह है कि जिन मामलों के संबंध में न्यायालय संतुष्ट है कि तत्काल सुनवाई की आवश्यकता है, न्यायालय तत्काल सुनवाई के अनुरोध को स्वीकार करता है। अपीलकर्ता ने याचिकाकर्ताओं, उनके विद्वान वकील, इस न्यायालय की रजिस्ट्री के अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ-साथ आदेश पारित करने वाले माननीय न्यायाधीश के खिलाफ लापरवाही से गलत, अस्पष्ट और निराधार आरोप लगाए हैं, जो पूरी तरह से अनुचित और अस्वीकार्य हैं। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता पर 25,000 रुपये का जुर्माना लगाया है। (पैरा 15, 19 और 21) विशेष अपील खारिज। (ई-1)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. आशुतोष श्रोत्रिय बनाम कुलपति, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय; एआईआर 2015 सभी 187: 2015 एससीसी ऑनलाइन सभी 8553

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी.

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी, द्वारा प्रदत्त)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सज्जाद हुसैन, उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री वी.पी. नाग, आवास विकास परिषद की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री पुनीत चंद्रा और विपक्षी पक्ष संख्या 6 व 7 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता मोहम्मद अल्ताफ मंसूर को सुना गया।

2. इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 के अंतर्गत दायर इस अंतर-न्यायालयीय अपील के माध्यम से, अपीलकर्ता, जिसने अपना वर्णन "कलामुद्दीन; शानू, पुत्र नसीरुद्दीन- प्रभारी, विधानसभा (पूर्व); भारतीय किसान यूनियन (अवध) राजू गुप्ता संगठन, उत्तर प्रदेश, लखनऊ, क्षेत्रीय कार्यालय 529/17-सी, स्टेट बैंक के पास, खुर्रम नगर, विकास नगर, लखनऊ 226022" के रूप में किया है, ने इस न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश द्वारा रिट सी संख्या 10189/2024 में पारित दिनांक 26.11.2024 के अंतरिम आदेश को चुनौती दी है, जो आदेश इस प्रकार है:

"1. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री मोहम्मद अल्ताफ मंसूर और प्रतिवादी संख्या 1, 2 और 5 की ओर से नोटिस स्वीकार करने वाले विद्वान स्थायी अधिवक्ता को सुना।

2. वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से उपस्थित हुए श्री पुनीत चंद्रा, अधिवक्ता, स्वीकार करते हैं। प्रतिवादी की ओर से नोटिस क्रमांक 3 और 4। श्री चंद्रा ने याचिका का विरोध किया है, हालाँकि, कहा है कि वह आवश्यक तथ्यों को रिकॉर्ड में लाने के लिए प्रति-शपथपत्र दायर करना चाहते हैं।

3. विद्वान स्थायी अधिवक्ता निर्देश प्राप्त कर सकते हैं और चार सप्ताह के भीतर प्रति-शपथपत्र दायर कर सकते हैं।

4. प्रत्युत्तर हलफनामा, उसके बाद एक सप्ताह के भीतर दायर किया जा सकता है।

5. इस मामले को 22.1.2025 को सूचीबद्ध करें।

6. सूचीबद्ध होने की अगली तिथि तक, अनुलग्नक संख्या 2 में निहित दिनांक 20.5.2004 के आदेश और अनुलग्नक संख्या 14 में निहित दिनांक 16.11.2024 के आदेश के तहत किए गए अनुरोध के अनुसरण में सीलिंग/विध्वंस के लिए कोई और कदम नहीं उठाया जाएगा।

3. विपक्षी पक्षों के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष अपील की विचारणीयता के विरुद्ध तीन प्रारंभिक आपतियाँ उठाई हैं। पहली प्रारंभिक आपति यह है कि रिट याचिका 30.09.2024 के एक अंतरिम आदेश को चुनौती देते हुए दायर की गई थी, जिसके द्वारा विपक्षी पक्षों को प्रति-शपथपत्र दाखिल करने का समय दिया गया था और याचिकाकर्ता को प्रत्युत्तर हलफनामा दाखिल करने का समय दिया गया था और सीलिंग/विध्वंस आदेश के

क्रियान्वयन पर रिट याचिका की अगली सूचीबद्ध तिथि, अर्थात् 22.01.2025 तक रोक लगा दी गई थी। रिट न्यायालय ने इस अपील में चुनौती दिए गए आदेश के किसी भी बिंदु पर निर्णय नहीं दिया है और यह आदेश 'निर्णय' की श्रेणी में नहीं आता है। इसलिए, ऐसे आदेश के विरुद्ध विशेष अपील नहीं की जा सकती।

4. दूसरी आपति यह है कि रिट याचिका आयुक्त, मंडल, लखनऊ द्वारा एक अपील में पारित आदेश के विरुद्ध दायर की गई थी उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 की धारा 28 ए (4) के अंतर्गत और इसलिए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 में निहित प्रावधानों के अनुसार विशेष अपील पोषणीय नहीं है।

5. विपक्षी पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उठाई गई तीसरी आपति यह है कि अपीलकर्ता रिट याचिका में पक्षकार नहीं था और वह इस न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही विशेष अपील दायर कर सकता है। हालाँकि, विशेष अपील न्यायालय की अनुमति प्राप्त किए बिना दायर की गई है, इसलिए यह स्वीकार्य नहीं है।

6. उपरोक्त प्रारंभिक आपतियों के उत्तर में, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने केवल यह प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ताओं ने रिट न्यायालय से कुछ प्रासंगिक तथ्य छुपाए थे और मामले को तत्काल आधार पर लेने का उल्लेख करके जल्दबाजी में एक पक्षीय स्थगन आदेश प्राप्त कर लिया था। अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने कहा कि इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ ने रिट-सी संख्या 8129/2024 में दिनांक 20.09.2024 को एक आदेश पारित किया था, जिसमें यह चिंता व्यक्त की गई थी कि अधिकारी एक विशेष इमारत के खिलाफ कार्यवाही कर रहे हैं, न कि कई अन्य इमारतों के खिलाफ। और आवास विकास परिषद को निर्देश दिया था कि वह विभिन्न इमारतों के मालिकों के खिलाफ कार्रवाई, यदि कोई हो, के बारे में एक हलफनामा दायर करे, जिनका उपयोग व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किया जा रहा है, जिनमें विवाह हॉल भी शामिल हैं, जिन्हें बिना किसी प्रतिबंध के अपना व्यवसाय जारी रखने की अनुमति दी गई है। अपीलकर्ता के विद्वान वकील का तर्क है कि रिट-सी संख्या 8129/2024 और रिट सी संख्या 10189/2024 में याचिकाकर्ता के वकील एक ही हैं और वकील ने रिट-सी संख्या 10189/2024 में दलीलें पेश करते समय न्यायालय से 20.09.2024 के आदेश को छुपाया है और 26.11.2024 का अंतरिम आदेश प्राप्त कर लिया है, जो खंडपीठ द्वारा पारित 20.09.2024 के आदेश के विपरीत है।

7. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने विशेष अपील की स्वीकार्यता के विरुद्ध उठाई गई तीन प्रारंभिक आपतियों में से किसी का भी उत्तर नहीं दिया।

8. प्रारंभिक आपतियों के उचित मूल्यांकन के लिए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय VIII नियम 5 में निहित प्रावधानों पर एक नज़र डालना उचित होगा:

“5. विशेष अपील: न्यायालय में किसी ऐसे निर्णय (जो अपीलीय क्षेत्राधिकार के प्रयोग में पारित निर्णय न हो) से अपील की जा सकेगी जो न्यायालय द्वारा पारित किसी डिक्री या आदेश के संबंध में हो जो न्यायालय के अधीक्षण के अधीन हो और पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में या अपनी अधीक्षण शक्ति के प्रयोग में या आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में या संविधान के अनुच्छेद 226 या अनुच्छेद 227 द्वारा प्रदत्त क्षेत्राधिकार के प्रयोग में किसी भी निर्णय, आदेश या पंचाट के संबंध में पारित आदेश न हो - (क) किसी न्यायाधिकरण, न्यायालय या वैधानिक मध्यस्थ द्वारा किसी उत्तर प्रदेश अधिनियम या किसी केंद्रीय अधिनियम के तहत अधिकार क्षेत्र के प्रयोग या कथित प्रयोग में, राज्य सूची या समवर्ती सूची में सूचीबद्ध किसी भी विषय के संबंध में संविधान की सातवीं अनुसूची, या (ख) सरकार या किसी अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा, जो किसी ऐसे अधिनियम के अंतर्गत अपीलीय या पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के प्रयोग या कथित प्रयोग में बनाया गया हो या बनाया जाना एक न्यायाधीश द्वारा प्रकल्पित हो।

(जोर दिया गया)

9. आशुतोष श्रोत्रिय बनाम कुलपति मामले में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय: एआईआर 2015 ऑल 187 = 2015 एससीसी ऑनलाइन ऑल 8553, इस न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित सिद्धांत तैयार किए हैं कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय VIII नियम 5 में प्रयुक्त शब्द के अनुसार 'निर्णय' क्या होगा:

“30. अब हम शासन के सिद्धांत तैयार करते हैं:

(i) 'निर्णय' शब्द को जानबूझकर विभिन्न उच्च न्यायालयों के लेटर्स पेटेंट में परिभाषित नहीं किया गया था जो एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध उस न्यायालय की खंडपीठ को अपील करने का अधिकार प्रदान करता था;

(ii) 'निर्णय' शब्द को उस संकीर्ण अर्थ में नहीं समझा जाना चाहिए जिसमें 'निर्णय', 'डिक्री' या 'आदेश' शब्द को सीपीसी में परिभाषित किया गया है, बल्कि इसका एक व्यापक और उदार अर्थ निकाला जाना चाहिए;

(iii) किसी उच्च न्यायालय के मूल पक्ष के किसी विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित प्रत्येक आदेश जो मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है या, इस मामले में, किसी विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट क्षेत्राधिकार, निर्णय नहीं होगा। यदि प्रत्येक आदेश को निर्णय माना जाए, तो अपीलों की बाढ़ आ जाएगी और लेटर्स पेटेंट के तहत अपील योग्य आदेशों की संख्या का कोई अंत नहीं होगा;

(iv) किसी भी मध्यवर्ती आदेश को निर्णय बनाने के लिए, अंतिमता की विशेषता होनी चाहिए, इस अर्थ में कि यह किसी पक्ष के मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले या किसी सहायक कार्यवाही में मुकदमे के किसी

महत्वपूर्ण पहलू पर निर्णय दे। एक 'निर्णय' बनाने के लिए, किसी पक्ष पर प्रतिकूल प्रभाव प्रत्यक्ष और तत्काल होना चाहिए, न कि अप्रत्यक्ष या दूरस्थ;

(v) निर्णय बनाने के लिए, एक मध्यवर्ती आदेश को: (a) किसी महत्वपूर्ण मामले का निर्णय करना चाहिए; या (b) पक्षों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को प्रभावित करना चाहिए और संबंधित पक्ष के साथ गंभीर अन्याय भी करना चाहिए:

(vi) दूसरी ओर, नियमित प्रकृति की कार्यवाही के दौरान पारित आदेश, निर्णय नहीं बनेंगे, भले ही वे किसी असुविधा या किसी एक पक्ष को कठिनाई। किसी मामले की प्रगति को सुगम बनाने के लिए एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए नियमित आदेश किसी पक्ष को कुछ असुविधा या पूर्वाग्रह का कारण बन सकते हैं, लेकिन वे 'निर्णय' नहीं बनते क्योंकि वे अंतिम रूप से पक्षों के अधिकारों या दायित्वों का निर्धारण नहीं करते। किसी मामले की प्रगति में सहायता करने वाले या किसी निर्णय को सुगम बनाने वाले प्रक्रियात्मक आदेश, निर्णय नहीं होते।”

(जोर दिया गया)

10. पक्षकारों को अपनी दलीलें पूरी करने के लिए समय देने और रिट याचिका की अगली सुनवाई की तारीख तक किसी इमारत की छत/विध्वंस पर रोक लगाने का आदेश, रिट याचिका में शामिल विवाद के किसी भी पहलू का फैसला नहीं करता है और इसमें अंतिमता की विशेषता नहीं है। यह अपीलकर्ता के किसी भी मूल्यवान अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालता है, जो यह दावा नहीं करता कि उसके कोई भी व्यक्तिगत अधिकार इस मामले में शामिल हैं। इसलिए, हमारा सुविचारित मत है कि विशेष अपील में चुनौती दिया गया आदेश कोई 'निर्णय' नहीं है और इस कारण से विशेष अपील विचारणीय नहीं है।

11. अध्याय VIII के नियम 5 का मात्र अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 226 द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में पारित किसी आदेश के विरुद्ध कोई विशेष अपील नहीं होगी। सरकार या किसी अधिकारी या प्राधिकारी द्वारा किसी राज्य अधिनियम के अंतर्गत अपीलीय या पुनरीक्षण अधिकारिता के प्रयोग या कथित प्रयोग में दिए गए या दिए जाने का अनुमान लगाया गया कोई निर्णय, आदेश या पंचाट एक न्यायाधीश द्वारा।

12. चूंकि इस विशेष अपील में चुनौती दिया गया आदेश संभागीय आयुक्त द्वारा उत्तर प्रदेश शहरी नियोजन एवं विकास अधिनियम की धारा 28 ए (4) के तहत अपीलीय शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किए गए निर्णय के संबंध में अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका में पारित किया गया है, ऐसे आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अपील स्वीकार्य नहीं है।

13. इसके अलावा, अपीलकर्ता रिट याचिका में पक्षकार नहीं था। वह न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही विशेष अपील दायर कर सकता था, लेकिन न तो अपीलकर्ता द्वारा अनुमति हेतु कोई आवेदन दायर

किया गया है, न ही अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस प्रयोजन हेतु आवेदन दायर करने के लिए समय मांगा है। अतः, न्यायालय की अनुमति प्राप्त किए बिना दायर की गई विशेष अपील स्वीकार्य नहीं है।

14. अतः, हमारा यह सुविचारित मत है कि वर्तमान विशेष अपील, जो उत्तर प्रदेश नगर नियोजन एवं विकास अधिनियम की धारा 28 ए (4) के अंतर्गत अपील में पारित आदेश के विरुद्ध एक रिट याचिका में पारित अंतरिम आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दायर की गई है जो रिट याचिका का पक्षकार नहीं है, उपरोक्त सभी तीन कारणों से विचारणीय नहीं है और इसे इस प्रकार खारिज किया जाना चाहिए।

15. अपीलकर्ता ने आरोप लगाया है कि याचिकाकर्ताओं ने रिट-सी संख्या 10189, 2024 दायर करते समय इस न्यायालय में निष्पक्षता से प्रवेश नहीं किया और उन्होंने महत्वपूर्ण तथ्य छिपाए हैं। तथ्यों को छिपाने का आरोप याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील पर भी लगाया गया है और सीलिंग आदेश की वैधता को चुनौती देने वाली रिट याचिका दायर करने के लिए उन्हें बार-बार नामजद और दोषी ठहराया गया है। यह आरोप लगाया गया है कि उसी वकील ने रिट-सी संख्या 8129, 2024 दायर की थी, जिसमें 20.09.2024 को एक आदेश पारित किया गया था। अपीलकर्ता ने तर्क दिया है कि उसे रिट-सी संख्या 10189/2024 दायर नहीं करनी चाहिए थी या उसे रिट-सी संख्या 8129/2024 में पारित दिनांक 20.09.2024 के आदेश का खुलासा करना चाहिए था। इस न्यायालय की रजिस्ट्री के अधिकारियों/कर्मचारियों पर रिट याचिका को सरसरी तौर पर पारित करने के आरोप लगाए गए हैं और न्यायालय पर मामले की तात्कालिकता को ध्यान में रखते हुए रिट याचिका को दायर करने के दिन ही सुनवाई की अनुमति देने के आरोप लगाए गए हैं। माननीय एकल न्यायाधीश, जिन्होंने चुनौती के तहत अंतरिम आदेश पारित किया है, को रिट याचिका को तत्काल मानते हुए विचार करने और विवादित आदेश पारित करने के लिए दोषी ठहराया गया है।

16. इन आरोपों पर विपक्षी पक्ष संख्या 6 और 7 की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने गंभीर आपत्ति जताई है और उन्होंने तर्क दिया है कि ये आरोप पूरी तरह से गलत, निराधार और दुर्भावनापूर्ण हैं।

17. अपीलकर्ता ने इस तथ्य को छुपाया है कि उसने आयुक्त के समक्ष अपील में पक्षकार बनने के लिए एक आवेदन दायर किया था और आवेदन दिनांक 30.09.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसे केवल प्रतिवादी सं. 6 और 7 (याचिकाकर्ता) के कहने पर रिट याचिका में चुनौती दी गई है। अपीलकर्ता ने अपने पक्षकार बनने के आवेदन को खारिज करने के आदेश को चुनौती नहीं दी है। इन परिस्थितियों में, उसे रिट याचिका में पक्षकार बनाने की आवश्यकता नहीं थी। निजी प्रतिपक्षी संख्या 6 और 7 के विद्वान वकील श्री अल्ताफ मंसूर ने न्यायालय को सूचित किया है कि यद्यपि अपीलकर्ता को रिट याचिका में पक्षकार नहीं बनाया गया है, चूँकि उसने एक कैविएट आवेदन दायर किया था, इसलिए रिट याचिका की एक प्रति अपीलकर्ता के विद्वान वकील को दायर करने से पहले ही दे दी गई थी।

18. जहाँ तक अपीलकर्ता के विद्वान वकील के इस तर्क का प्रश्न है कि याचिकाकर्ता के विद्वान वकील ने रिट-सी संख्या 10189/2024 में कुछ महत्वपूर्ण तथ्य छिपाए थे, अपीलकर्ता के विद्वान वकील ने स्वीकार किया कि रिट-सी संख्या 8129/2024 में याचिकाकर्ता रिट-सी संख्या 10189/2024 या वर्तमान अपील के पक्षकार नहीं हैं। रिट-सी संख्या 8129/2024 एक ऐसे व्यक्ति द्वारा दायर की गई थी जिसने अपनी बहन की शादी के लिए संबंधित विवाह हॉल बुक किया था, जबकि रिट-सी संख्या 10189/2024 एक सीलिंग आदेश और अपीलीय आदेश की वैधता को चुनौती देते हुए दायर की गई है। दोनों रिट याचिकाओं के विषय और पक्षकार अलग-अलग हैं। केवल इसलिए कि दोनों रिट याचिकाओं में याचिकाकर्ता के वकील एक ही हैं, वकील किसी अन्य व्यक्ति की ओर से किसी भिन्न आदेश के संबंध में दायर किसी अन्य मामले से संबंधित तथ्यों का खुलासा करने के लिए बाध्य नहीं है। वकील का अपने मुवक्किल के प्रति यह पेशेवर कर्तव्य है कि वह अपने मामले के तथ्यों का खुलासा किसी अन्य व्यक्ति को न करे। इसलिए, तथ्य छिपाने का आरोप गलत है और इसे लापरवाही और गैर-जिम्मेदाराना तरीके से लगाया गया है।

19. यद्यपि अपीलकर्ता ने आरोप लगाया है कि रजिस्ट्री ने रिट याचिका को सरसरी तौर पर पारित किया है, अपीलकर्ता ने रिट याचिका दायर करने में किसी विशिष्ट नियम के प्रावधानों के उल्लंघन का आरोप नहीं लगाया है। रजिस्ट्री के अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा भी किसी नियम के उल्लंघन का कोई विशिष्ट आरोप नहीं है। माननीय न्यायाधीश पर रिट याचिका पर तत्काल सुनवाई के अनुरोध को स्वीकार करने का आरोप लगाया गया है, जबकि इस न्यायालय में प्रचलित सामान्य प्रथा यह है कि जिन मामलों के बारे में न्यायालय संतुष्ट है कि उन पर तत्काल सुनवाई की आवश्यकता है, न्यायालय तत्काल सुनवाई के अनुरोध को स्वीकार कर लेता है। अपीलकर्ता ने याचिकाकर्ताओं, याचिकाकर्ताओं के विद्वान वकील, इस न्यायालय की रजिस्ट्री के अधिकारियों और कर्मचारियों के साथ-साथ आदेश पारित करने वाले माननीय न्यायाधीश के खिलाफ लापरवाही से गलत, अस्पष्ट और निराधार आरोप लगाए हैं, जो पूरी तरह से अनुचित और अस्वीकार्य हैं। हम ऐसे आरोप लगाने में अपीलकर्ता के आचरण की कड़ी निंदा करते हैं।

20. अपीलकर्ता के विद्वान वकील का पेशेवर दायित्व है कि वह अपील का मसौदा सावधानीपूर्वक तैयार करके दाखिल करें और हम अपीलकर्ता के विद्वान वकील के आचरण की निंदा करते हैं, जिसमें उन्होंने विशेष अपील का मसौदा तैयार करते समय ऐसे निराधार आरोप लगाए।

21. उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर, हमारा यह सुविचारित मत है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली के अध्याय VIII नियम 5 में निहित प्रावधानों के दायरे में, इसकी पोषणीयता सुनिश्चित किए बिना, लापरवाह और गैर-जिम्मेदाराना आरोप लगाकर वर्तमान विशेष अपील दायर करना, विधि प्रक्रिया का घोर दुरुपयोग है जिससे न्यायालय का बहुमूल्य समय नष्ट होता है। अतः विशेष अपील 25,000/- रुपये की लागत के साथ खारिज की जाती है, जिसे अपीलकर्ता द्वारा आज से 30 दिनों की अवधि के भीतर इस न्यायालय की रजिस्ट्री में जमा किया जाएगा, अन्यथा वरिष्ठ रजिस्ट्रार संबंधित कलेक्टर को एक वसूली प्रमाण पत्र भेजकर राशि की वसूली के लिए कार्यवाही शुरू करेंगे, जो राशि को भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल करेगा और उसे वसूली

प्रमाण पत्र जारी होने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर इस न्यायालय को प्रेषित करेगा। इस न्यायालय के वरिष्ठ रजिस्ट्रार को निर्देश दिया जाता है कि वे लागत की राशि बाल गृह (बालिका), लखनऊ को प्रेषित करें, जिसका संचालन और रखरखाव महिला एवं बाल विकास विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार के अधीन किया जा रहा है।

(2025) 1 ILRA 736

अपील क्षेत्राधिकार

दीवानी पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 16.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति विवेक कुमार बिड़ला

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव

विशेष अपील संख्या 969 वर्ष 2024

नवीन कुमार श्रीवास्तव एवं अन्य

...अपीलकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता

सिद्धार्थ खरे, वरिष्ठ अधिवक्ता

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

अर्चना सिंह, सी.एस.सी.

सिविल कानून- इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952-अध्याय VIII नियम V---अंतर न्यायालय अपील---
याचिका या अपील के ज़ापन में, कई बिंदु लिए जा सकते हैं, लेकिन बहस के समय उनमें से केवल कुछ बिंदुओं पर ही जोर दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, संबंधित न्यायालय केवल उन्हीं बिंदुओं पर विचार करेगा जिन पर बहस की गई है और यह अनुमान लगाया जाएगा कि संबंधित पक्ष ने अन्य बिंदुओं के आधार पर चुनौतियों को छोड़ दिया है। कानून में सामान्य अनुमान है कि एक न्यायाधीश उन सभी बिंदुओं पर विचार करता है जिन पर उसके समक्ष बहस की गई है, और यदि पक्ष यह तर्क देना चाहता है कि उसने कुछ ऐसे बिंदुओं पर जोर दिया था जिन पर विचार नहीं किया गया है, तो उसके लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह उसी विद्वान न्यायाधीश के समक्ष आवेदन दायर करे जिसने निर्णय दिया था और समीक्षा आदेश की मांग करे। सामान्यतः संबंधित पक्ष के लिए अपील में किसी ऐसे बिंदु पर बहस करना संभव नहीं होता, जिस पर निचली अदालत के समक्ष याचिका में उठाए जाने पर भी न तो बहस की गई और न ही प्रथम दृष्टया अदालत के समक्ष जोर दिया

गया।---भले ही अब अपीलकर्ताओं की ओर से जिन आधारों पर जोर दिया जा रहा है, उन पर विचार किया जाए, फिर भी वर्तमान मामले में शामिल विवाद विशेष अपील त्रुटि संख्या 159/2024 (श्रद्धा यादव बनाम उत्तर प्रदेश के सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग के माध्यम से) में दिनांक 28.02.2024 को पारित निर्णय के संदर्भ में पूरी तरह से समाहित है। (पैरा 15, 16 और 23)

याचिका खारिज। (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. मोहम्मद अकरम अंसारी बनाम मुख्य चुनाव अधिकारी और अन्य (2008) 2 एससीसी 95
2. भारत संघ और अन्य बनाम एन.वी. फणीन्द्रन (1995) 6 एससीसी 45
3. रिट ए संख्या 15163/2023 श्रद्धा यादव और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजाति और अन्य
4. विशेष अपील संख्या 61/2024 श्रीमती राधा बनाम उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजाति और अन्य
5. विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 159/2024 श्रद्धा यादव बनाम उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जनजाति सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग के माध्यम से
6. अपील की विशेष अनुमति (सी) संख्या 10912 सन 2024 राधा बनाम उत्तर प्रदेश एवं अन्य

(माननीय डॉ. योगेंद्र कुमार श्रीवास्तव, न्यायमूर्ति द्वारा प्रदत्त)

1. विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को सुना गया, जिनकी सहायता श्री सिद्धार्थ खरे के लिए अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता, प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह और राज्य प्रतिवादी संख्या 1 और 2 की ओर से उपस्थित विद्वान स्थायी अधिवक्ता श्री तेज भानु पांडे ने भी अपना पक्ष रखा।
2. यह अपील विशेष अपील संख्या 998/2024 (मनोज कुमार एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) के साथ सूचीबद्ध है; हालाँकि, चूँकि अपीलों पर स्वतंत्र रूप से बहस की गई है, इसलिए इन पर अलग-अलग आदेशों द्वारा निर्णय लिया जा रहा है।
3. वर्तमान अंतर-न्यायालय अपील, विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट-ए संख्या 20779/2023 [नवीन कमल श्रीवास्तव एवं 2 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य] में दिनांक 05.01.2024 को पारित निर्णय एवं आदेश के विरुद्ध है, जिसमें निर्णय एवं आदेश में संशोधन करने तथा रिट याचिका को पूर्णतः स्वीकार करने के साथ-साथ यह निर्देश देने का भी अनुरोध किया गया है कि याचिकाकर्ता/अपीलकर्ता, दिनांक 26.06.2023 को उनके स्थानांतरणों को मंजूरी देने वाले मंजूरी आदेशों से प्राप्त सभी लाभों का लाभ उठाने के हकदार होंगे।

4. हमारे समक्ष प्रस्तुत मामले के अभिलेखों से पता चलता है कि रिट याचिका जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, झाँसी द्वारा जारी दिनांक 23.09.2023 के नोटिस और उसके बाद दिनांक 29.11.2023 के आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना करते हुए दायर की गई थी, जिसमें सभी याचिकाकर्ताओं को झाँसी जिले से कार्यमुक्त करने का निर्देश दिया गया था और उन्हें मूल जिला चित्रकूट में वापस रिपोर्ट करने का निर्देश दिया गया था। याचिकाकर्ताओं ने सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद, उत्तर प्रदेश प्रयागराज द्वारा जारी दिनांक 28.06.2023 के परिपत्र पत्र को रद्द करने और प्रतिवादियों को जिला झाँसी में शिक्षकों के रूप में उनके कामकाज में हस्तक्षेप न करने का निर्देश देने की भी मांग की थी और जुलाई 2023 से बकाया सहित उनके नियमित वेतन का भुगतान करने का भी अनुरोध किया था।

5. रिट याचिका का अंतिम रूप से कुछ टिप्पणियों/निर्देशों के साथ निपटारा किया गया दिनांक 05.01.2024 के आदेश के अनुसार, जिसे नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"संशोधन आवेदन संख्या 02/2023 पर आदेश

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अशोक खरे को सुना गया, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री सिद्धार्थ खरे और प्रतिवादी संख्या 3 और 4 की विद्वान अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह ने की। संशोधन आवेदन स्वीकार किया जाता है।

रिट याचिका पर आदेश

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया कि सचिव बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा स्थानांतरण नीति 2023-2024 के अनुसरण में जारी परिपत्र के खंड 5 के मुद्दे पर, इस न्यायालय ने अपना निर्णय सुरक्षित रखा है।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि वर्तमान मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में, प्रतिवादियों द्वारा पारित स्थानांतरण आदेशों के अनुसरण में, याचिकाकर्ताओं को चित्रकूट जिले से कार्यमुक्त कर दिया गया और उन्होंने अपना कार्यभार बेसिक शिक्षा अधिकारी, झाँसी के समक्ष क्रमशः 03.07.2023, 07.07.2023 को प्रस्तुत किया और बाद में उन्हें उनके संबंधित संस्थान आवंटित कर दिए गए और उन्होंने क्रमशः 14.09.2023, 15.09.2023 को कार्यभार भी ग्रहण कर लिया।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि बाद में स्वतंत्र आक्षेपित आदेश दिनांक 29.11.2023 द्वारा याचिकाकर्ताओं के स्थानांतरण आदेश को रद्द कर दिया गया, जिसे एक संशोधन आवेदन के माध्यम से रिकॉर्ड में लाया गया और चुनौती दी गई, और उन्हें अपने मूल जिले चित्रकूट में रिपोर्ट करने का निर्देश दिया गया।

विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि वर्तमान शैक्षणिक वर्ष के मध्य सत्र में, विवादित आदेश छात्रों की पढ़ाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे और प्रार्थना की कि इसे रद्द किया जाए और कम से कम वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाए ताकि वे अपने अंतरराज्यीय स्थानांतरण के लिए नया आवेदन दायर कर सकें, यदि स्थिति ऐसी हो।

प्रतिवादियों की विद्वान अधिवक्ता सुश्री अर्चना सिंह ने उपरोक्त प्रार्थना का विरोध किया है, हालाँकि, उन्होंने इस बात पर कोई विवाद नहीं किया है कि सामान्यतः सत्र के मध्य में स्थानांतरण की अनुमति नहीं होती है।

उपरोक्त परिस्थितियों में, बोर्ड द्वारा जारी परिपत्र के खंड 5 के प्रभाव के संबंध में मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना, मैं याचिकाकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के इस तर्क में योग्यता पाता हूँ कि याचिकाकर्ताओं को सत्र के मध्य में अपने स्थानांतरित स्थान से मुक्त करने की अनुमति देना छात्रों के हित के प्रतिकूल होगा। इस संबंध में दिनांक 02.06.2023 की स्थानांतरण नीति के खंड 18 पर भी ध्यान दिया गया है।

अतः, दिनांक 29.11.2023 के विवादित आदेशों को वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाता है और याचिकाकर्ता अगले शैक्षणिक सत्र के लिए प्रचलित स्थानांतरण नीति के अनुसार नया आवेदन दायर करने के लिए स्वतंत्र होंगे, यदि ऐसा है यह तो रिट याचिका उपरोक्त सलाह, अवलोकन/निर्देशों के साथ निस्तारित की जाती है।”

6. अपील के समर्थन में मुख्य आधार यह प्रस्तुत किया गया है कि जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा पारित आदेश, जिसके अनुसार याचिकाकर्ताओं को चित्रकूट जिला स्थित अपने मूल पदस्थापन स्थान पर पुनः कार्यभार ग्रहण करने के लिए कार्यमुक्त किया गया था, को रिट याचिका में संशोधन करते हुए चुनौती दी गई थी, अतः विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा रिट याचिका पर निर्णय करते समय उपर्युक्त विवाद पर गुण-दोष के आधार पर निर्णय न किए जाने का कोई औचित्य नहीं है। जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी द्वारा याचिकाकर्ताओं को कार्यमुक्त करने वाले आदेशों को यह दावा करते हुए चुनौती दी जा रही है कि उक्त आदेश सचिव, शिक्षा बोर्ड द्वारा जारी दिनांक 28.06.2023 के एक परिपत्र पर आधारित हैं, और इसलिए उक्त आदेशों को उन शर्तों के आधार पर पारित करने का कोई औचित्य नहीं है जो राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश का हिस्सा नहीं थीं।

7. राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता और शिक्षा बोर्ड की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने बताया कि सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा जारी दिनांक 28.06.2023 के परिपत्र का खंड 5, जो रिट याचिका में आरोपित आदेशों का आधार है, कई रिट याचिकाओं में चुनौती का विषय था, जिनमें प्रमुख रिट-ए संख्या 15163/2023 [श्रद्धा यादव एवं 6 अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 10 अन्य] थी, जिस पर विस्तार से सुनवाई हुई थी और न्यायालय ने अपना निर्णय सुरक्षित रख लिया था।

8. यह बताया गया है कि रिट न्यायालय के समक्ष, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने इस संबंध में उचित दलीलें पेश करने के बाद यह दलील दी थी कि वर्तमान शैक्षणिक सत्र के मध्य में, विवादित आदेश छात्रों की पढ़ाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे और तदनुसार उन्होंने प्रार्थना की कि जिन विवादित आदेशों के माध्यम से याचिकाकर्ताओं के स्थानांतरण आदेशों को रद्द कर दिया गया था और उन्हें अपने मूल पदस्थापन स्थान पर कार्यभार ग्रहण करने का निर्देश दिया गया था, उन्हें रद्द कर दिया जाए या कम से कम वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाए।

9. उपरोक्त परिस्थितियों में, विद्वान एकल न्यायाधीश ने बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा जारी परिपत्र के खंड 5 के प्रभाव के संबंध में मामले के गुण-दोष पर विचार किए बिना यह माना कि याचिकाकर्ताओं के तर्क में दम है और छात्रों के हित के लिए प्रतिकूल होगा कि याचिकाकर्ताओं को उनके वर्तमान पदस्थापन स्थान से मध्य सत्र में स्थानांतरित किया जाए। इस संबंध में, दिनांक 02.06.2023 की स्थानांतरण नीति के खंड 18 का भी संज्ञान लिया गया। तदनुसार, रिट याचिका का इस निर्देश के साथ निपटारा किया गया कि दिनांक 29.11.2023 के विवादित आदेशों को वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाए और याचिकाकर्ताओं को अगले शैक्षणिक सत्र के लिए प्रचलित स्थानांतरण नीति के अनुसार नए आवेदन दायर करने की स्वतंत्रता दी गई, यदि ऐसा सलाह दी जाए।

10. अपीलकर्ता के वकील ने अपील ज्ञापन में दिए गए कुछ आधारों पर विचार करने का प्रयास किया है और तर्क दिया है कि वर्ष 2023-2024 के लिए शिक्षकों की स्थानांतरण नीति दिनांक 02.06.2023 के शासनादेश के अनुसार निर्धारित की गई थी, और जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी, झांसी द्वारा जारी दिनांक 29.11.2023 के आदेश, जो दिनांक 28.06.2023 के एक परिपत्र पत्र पर आधारित थे, कानूनी रूप से समर्थित नहीं हैं। यह तर्क दिया गया कि आक्षेपित आदेशों को उन शर्तों के आधार पर पारित करने का कोई औचित्य नहीं था जो दिनांक 02.06.2023 के शासनादेश का हिस्सा नहीं थी।

11. राज्य प्रतिवादियों की ओर से उपस्थित वकीलों और प्रतिवादी संख्या 3 और 4 के वकीलों ने उपर्युक्त दलीलों का खंडन करते हुए कहा है कि अपीलकर्ताओं की ओर से जिन उपरोक्त आधारों पर विचार किया जाना है उन्हें न तो विद्वान एकल न्यायाधीश 6 के समक्ष उठाया गया और न ही उन पर जोर दिया गया। और इसलिए अपीलकर्ता इस स्तर पर उक्त आधारों को उठाकर अपील का समर्थन नहीं कर सकते।

12. यह बताया गया है कि अपील के तहत आदेश को पढ़ने मात्र से ही यह संकेत मिलता है कि रिट कोर्ट के समक्ष याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने उचित रूप से तर्क दिया था कि सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा जारी परिपत्र के खंड 5 की वैधता के मुद्दे पर, न्यायालय ने पहले ही अपना फैसला सुरक्षित रख लिया था। इसी पृष्ठभूमि में, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष उपस्थित वकील ने यह तर्क दिया था कि 29.11.2023 के विवादित आदेश, जिनके अनुसार याचिकाकर्ताओं के स्थानांतरण आदेश रद्द कर दिए गए थे, छात्रों की पढ़ाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे, और यह प्रार्थना की गई थी कि उक्त आदेशों को रद्द किया जाए

या कम से कम वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाए। यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान अपील में जिन आधारों पर अब जोर दिया जा रहा है, उनकी विधिवत जांच रिट याचिकाओं के समूह में की गई है, जिनमें प्रमुख याचिका रिट-ए संख्या 15163/2023 [श्रद्धा यादव एवं 6 अन्य बनाम] है। उत्तर प्रदेश राज्य और 10 अन्य], जिन पर बाद में 09.01.2024 के निर्णय के अनुसार निर्णय लिया गया, और इसी प्रकार की अन्य दलीलें जो उठाई गई थीं, उन्हें खारिज कर दिया गया।

13. यह प्रश्न कि क्या कथित रूप से उठाए गए लेकिन आलोचना किए गए निर्णय में जिन बिंदुओं पर विचार नहीं किया गया है, उनके विरुद्ध अपील के समर्थन में प्रस्तुत किया जा सकता है, **मोहम्मद अकरम अंसारी बनाम मुख्य चुनाव अधिकारी और अन्य¹** के निर्णय में इस पर ध्यान दिया गया था और यह माना गया था कि विधि में यह उपधारणा है कि एक न्यायाधीश उन सभी बिंदुओं पर विचार करता है जो उसके समक्ष उठाए गए हैं और शिकायत करने वाले पक्ष को उसी न्यायालय में जाना चाहिए जिसने निर्णय पारित किया था और यह तर्क देना चाहिए कि अन्य बिंदुओं पर भी विचार किया गया था लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया। इस संबंध में निर्णय में की गई प्रासंगिक टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं:

“14. इस संबंध में हम यह कहना चाहेंगे कि विधि में यह प्रधारणा है कि एक न्यायाधीश उन सभी बिंदुओं पर विचार करता है जो उसके समक्ष उठाए गए हैं। अक्सर ऐसा होता है कि किसी याचिका या अपील में याचिका या अपील के ज्ञापन में कई बिंदु लिए जाते हैं, लेकिन बहस के समय इनमें से कुछ बिंदुओं पर ही प्रधान किया जाता है। स्वाभाविक रूप से एक न्यायाधीश केवल उन्हीं बिंदुओं पर विचार करेगा जो उसके समक्ष बहस में उठाए गए हैं और यह माना जाएगा कि अपीलकर्ता ने अन्य बिंदुओं को छोड़ दिया है, अन्यथा वह उन पर भी विचार करता। यदि किसी न्यायालय के निर्णय में किसी बिंदु का उल्लेख नहीं है, तो यह प्रधारणा है कि वह बिंदु कभी भी विद्वान न्यायाधीश के समक्ष नहीं उठाया गया था और उसे छोड़ दिया गया था। हालाँकि, यह एक खंडनीय प्रधारणा है। यदि याचिकाकर्ता यह तर्क देता है कि उसने उस बिंदु पर भी जोर दिया था (जिस पर आक्षेपित निर्णय में विचार नहीं किया गया है), तो उसके लिए उसी विद्वान न्यायाधीश (या पीठ) के समक्ष एक आवेदन दायर करना स्वतंत्र है जिसने आक्षेपित निर्णय दिया था, और यदि वह न्यायाधीश (या पीठ) के समक्ष यह तर्क दिया जाता है कि अन्य बिंदुओं पर वास्तव में जोर दिया गया था, लेकिन आक्षेपित निर्णय में उन पर विचार नहीं किया गया, इसलिए संबंधित न्यायालय के लिए उचित आदेश पारित करना स्वतंत्र है, जिसमें समीक्षा आदेश भी शामिल है। हालाँकि, सामान्यतः पक्षकार के लिए अपील दायर करना और उस बिंदु पर बहस करना स्वतंत्र नहीं है, जो भले ही निम्न न्यायालय के समक्ष दायर याचिका या ज्ञापन में लिया गया हो लेकिन निम्न न्यायालय के निर्णय में उस पर विचार नहीं किया गया है। जिस पक्षकार की यह शिकायत है, उसे उसी न्यायालय में जाना चाहिए जिसने निर्णय पारित किया था, और यह आग्रह करना चाहिए कि अन्य बिंदुओं पर जोर दिया गया था, लेकिन उन पर विचार नहीं किया गया।

15. चूँकि उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में लाभ के पद के बिंदु के अलावा किसी अन्य बिंदु पर विचार नहीं किया गया है, इसलिए यह अनुमान लगाया जाता है कि उच्च न्यायालय के समक्ष कोई अन्य बिंदु

नहीं उठाया गया था, भले ही वह बिंदु चुनाव याचिका में शामिल रहा हो। इसलिए हम इन बिंदुओं को यहाँ उठाने की अनुमति नहीं देते हैं।”

14. एक ऐसे मामले में, जहाँ आवेदन में कई बिंदु उठाए गए थे, लेकिन तर्क केवल एक ही बिंदु पर सीमित थे, और इसलिए न्यायाधिकरण द्वारा केवल एक ही बिंदु पर निर्णय दिया गया था, **सर्वोच्च न्यायालय ने भारत संघ एवं अन्य बनाम एन.वी. फणीन्द्रन**² के मामले में यह निर्णय दिया कि अपीलकर्ता न्यायाधिकरण के समक्ष शेष प्रश्नों पर विचार करने का अवसर मांगने के हकदार नहीं हैं। यह टिप्पणी इस प्रकार की गई:

“4. आगे यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि गुण-दोष के आधार पर कई तर्क उठाए गए हैं, लेकिन न्यायाधिकरण ने केवल इसी मुद्दे पर विचार किया है और, इसलिए, प्रतिवादी को मामले को न्यायाधिकरण को सौंपकर उन प्रश्नों पर विचार करने का अवसर दिया जा सकता है। हमें इस तर्क को स्वीकार करना कठिन लगता है। यह सच है कि यद्यपि कई बिंदु उठाए गए प्रतीत होते हैं, लेकिन न्यायाधिकरण के समक्ष प्रतिवादी की ओर से प्रस्तुत एकमात्र तर्क न्यायाधिकरण के आदेश के पैराग्राफ 4 में उद्धृत किया गया था। इसमें कहा गया है: “आवेदक की ओर से उपस्थित विद्वान वकील द्वारा हमारे समक्ष प्रस्तुत एकमात्र बिंदु यह है कि मंडल रेल प्रबंधक, नियुक्ति प्राधिकारी न होने के कारण आवेदक पर, जो 425640 रुपये के वेतनमान में एक यात्रा टिकट परीक्षक है, सेवा से हटाने का दंड लगाने के लिए सक्षम नहीं है।”

चूँकि विवाद न्यायाधिकरण के समक्ष केवल इसी बिंदु तक सीमित था, इसलिए हमें मामले को वापस भेजने का कोई औचित्य नहीं दिखता।”

15. वर्तमान मामले में, जिन आधारों पर अपील के समर्थन में जोर दिया जा रहा है, वे रिट याचिका में दिए गए हो सकते हैं, लेकिन आक्षेपित निर्णय यह संकेत नहीं देता कि ऐसा कोई आधार दिया गया था। अपीलकर्ताओं का यह मामला नहीं है कि उपरोक्त आधार, जिन्हें अब अपील में लिया जाना है, विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष तर्क दिए गए थे और उन पर विचार नहीं किया गया है।

16. आमतौर पर यह देखा गया है कि याचिका या अपील के जापन में कई बिंदु लिए जा सकते हैं, लेकिन बहस के समय उनमें से कुछ ही बिंदुओं पर जोर दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में, संबंधित न्यायालय केवल उन्हीं बिंदुओं पर विचार करेगा जिन पर बहस की गई है और यह अनुमान लगाया जाएगा कि संबंधित पक्ष ने अन्य बिंदुओं के आधार पर अपनी चुनौतियाँ छोड़ दी हैं। कानून में सामान्य धारणा है कि एक न्यायाधीश उन सभी बिंदुओं पर विचार करता है जिन पर उसके समक्ष बहस की गई है, और यदि पक्ष यह तर्क देना चाहता है कि उसने कुछ ऐसे बिंदुओं पर जोर दिया था जिन पर विचार नहीं किया गया है, तो उसके लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह उसी विद्वान न्यायाधीश के समक्ष एक आवेदन दायर करे जिसने निर्णय दिया था और पुनर्विचार का आदेश प्राप्त करने का प्रयास करे। संबंधित पक्ष के लिए अपील में ऐसे बिंदु पर बहस करना

सामान्यतः संभव नहीं होगा, जिस पर निचली अदालत के समक्ष याचिका में उठाए जाने पर भी, न तो बहस की गई हो और न ही प्रथम दृष्टया अदालत के समक्ष उस पर जोर दिया गया हो।

17. अंतर-न्यायालयीय अपील में, अपीलीय न्यायालय सामान्यतः सामग्री का पुनर्मूल्यांकन नहीं करेगा और न ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करेगा जो प्रथम दृष्टया न्यायालय द्वारा पहुँचे गए निष्कर्ष से भिन्न हो, यदि उस न्यायालय द्वारा पहुँचा गया निष्कर्ष उपलब्ध सामग्री के आधार पर यथोचित रूप से संभव हो। यह उस मामले में और भी अधिक लागू होगा जहाँ जिन आधारों पर जोर दिया जा रहा है, उन्हें प्रथम दृष्टया न्यायालय के समक्ष कभी नहीं रखा गया था।

18. विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय में स्पष्ट रूप से दर्ज है कि याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने यह तर्क दिया था कि सचिव, उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा जारी दिनांक 28.06.2023 के परिपत्र का खंड 5, जो रिट याचिका में आक्षेपित आदेशों का आधार है, रिट याचिकाओं के एक समूह में चुनौती का विषय था, जिसमें न्यायालय ने अपना निर्णय सुरक्षित रखा था। उक्त पृष्ठभूमि में ही विद्वान अधिवक्ता ने रिट न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि वर्तमान शैक्षणिक सत्र के मध्य में, आक्षेपित आदेश छात्रों की पढ़ाई पर प्रतिकूल प्रभाव डालेंगे और तदनुसार प्रार्थना की कि इन्हें रद्द किया जाए या कम से कम शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाए। उपरोक्त तर्क में योग्यता पाते हुए कि याचिकाकर्ताओं को मध्य सत्र में उनके स्थानांतरित स्थान से मुक्त करने की अनुमति देना छात्रों के हित के प्रतिकूल होगा, विद्वान एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका का निपटारा इस निर्देश के साथ किया कि 29.11.2023 के विवादित आदेश को वर्तमान शैक्षणिक सत्र के अंत तक स्थगित रखा जाए। अपीलाधीन निर्णय यह संकेत नहीं देता कि विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष कोई अन्य आधार प्रस्तुत किया गया था, और इसलिए हमारा यह विचार है कि अपीलकर्ताओं के लिए कोई अन्य आधार प्रस्तुत करना संभव नहीं होगा जिस पर विद्वान एकल न्यायाधीश के समक्ष तर्क न दिया गया हो।

19. वैसे भी, वर्तमान अपील के समर्थन में जिन आधारों पर अब जोर दिया जा रहा है, उन पर रिट याचिकाओं के समूह में विधिवत विचार किया गया है, जिनमें **प्रमुख याचिका रिट संख्या 15163/2023 (श्रद्धा यादव एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य)** है, जिसका निर्णय दिनांक 09.01.2024 के निर्णय के अनुसार किया गया और इसी प्रकार के जो तर्क उठाए गए थे, उन्हें खारिज कर दिया गया। इस संबंध में श्रद्धा यादव (सुप्रा) मामले में दिए गए निर्णय में की गई टिप्पणियाँ निम्नलिखित हैं:-

"१३. याचिकाकर्तागण की सेवायें 'नियमावली १९८१' के प्रावधानों के अधीन हैं। जिसके नियम २१ में 'स्थानान्तरण' का प्रावधान है जो सामान्यतः स्थानान्तरण की अनुमति नहीं देता है और स्थानान्तरण, यदि होता है तो वो, परिषद के अनुमोदन के बिना नहीं हो सकता है।

१४. पूर्व में उल्लेखित निर्णयों से यह भी निर्विवादित है कि स्थानान्तरण नीति मात्र एक प्रशासनिक नीति है, जिसकी पृष्ठभूमि में कोई वैधानिक प्रावधान नहीं है। किसी भी कर्मचारी को अपनी पसंद के स्थान पर स्थानान्तरण का दावा करने का कोई मौलिक या निहित अधिकार प्राप्त नहीं होता है।

१५. शिक्षकों व शिक्षिकाओं के वर्ष २०२३-२०२४ की अन्तर्जनपदीय एवं पारस्परिक स्थानान्तरण नीति को उत्तर प्रदेश शासन के शासनादेश दिनांक ०२, जून, २०२३ द्वारा निर्धारित की गई। इसके खण्ड १६, १७ व १८ पूर्व में उल्लेखित किये जा चुके हैं, के अनुसार परिषद को इस स्थानान्तरण नीति के ' तकनीकी चरण एवं प्रक्रिया के निर्धारण का दायित्व सौंपा गया और उसी क्रम में, और स्थानान्तरण नीति के क्रम में अग्रतर कार्यवाही हेतु सचिव, उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद ने परिपत्र दिनांक १६.०६.२०२३ व २८.०६.२०२३ को निर्गत किया, जिसके अनुसार ऑनलाइन आवेदन के सत्यापन व परीक्षण की प्रक्रिया को निर्धारित किया। इन परिपत्रों के माध्यम से एकल अभिभावक, दिव्यांगता, असाध्य या गंभीर रोग, सरकारी सेवा का लाभ, निलम्बन की स्थिति आदि के विषय में प्रावधान बनाये गये। इसी क्रम में परिपत्र दिनांक २८.०६.२०२३ द्वारा अन्तर्जनपदीय स्थानान्तरण प्रक्रिया के अन्तर्गत स्थानान्तरित शिक्षक एवं शिक्षिका (१६,१६४ शिक्षक एवं शिक्षिका) को कार्यमुक्त किये जाने की कार्यवाही की, विस्तृत प्रक्रिया को भी निर्धारित किया। इसी परिपत्र के खण्ड (५) को निरस्त करने की प्रार्थना याचिकाकर्तागण ने की है। उक्त खण्ड पुनः निम्न उल्लेखित किया जा रहा है:-

"५. प्रोन्नति पद पर कार्यरत शिक्षक एवं शिक्षिका के स्थानान्तरित जनपद में बैच की पदोन्नति वर्ष/मौलिक नियुक्ति तिथि के आधार पर कार्यमुक्त करने की कार्यवाही की जायेगी।"

१६. स्थानान्तरण नीति के खण्ड १६, १७ व १८ के अन्तर्वस्तु से स्पष्ट है, जो परिषद के उक्त परिपत्रों को, जो उक्त नीति के तकनीकी चरण व प्रक्रिया के निर्धारण, इसकी समय सारिणी व कार्यमुक्त कराने के सम्बन्ध में है, निर्गत करने के लिए स्पष्ट रूप से परिषद के सचिव को अधिकृत करते हैं। अतः उक्त परिपत्रों को निर्गत करने का अधिकार सचिव, उ.प्र. बेसिक शिक्षा परिषद को पूर्ण रूप से था। अतः परिपत्र वैधानिक है व विधिक रूप से संधारणीय भी है। यह परिपत्र स्थानान्तरण नीति के क्रम में उसके कार्यवाहन के लिए है, न कि उसकी प्रकृति के विरोध में निर्गत किये गये हैं। स्पष्टता व संदर्भ के लिए स्थानान्तरण नीति के खण्ड १६, १७ व १८ पुनः निम्न उल्लेखित किये जा रहे हैं:-

"(१६) अन्तर्जनपदीय एवं पारस्परिक स्थानान्तरण के लिए निर्गत शासनादेश के अनुसार उ०प्र० बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा अन्तर्जनपदीय एवं पारस्परिक स्थानान्तरण के तकनीकी चरण एवं प्रक्रिया का निर्धारण किया जायेगा तथा शासनादेश के क्रम में अग्रतर कार्यवाही की जायेगी।

(१७) अन्तर्जनपदीय स्थानान्तरण हेतु समय सारिणी सचिव, बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा अपने स्तर से पृथक से निर्गत की जायेगी।

(१८) अन्तर्जनपदीय एवं पारस्परिक स्थानान्तरण के उपरान्त शिक्षक/शिक्षिका को कार्यमुक्त करने तथा कार्यभार ग्रहण करने की कार्यवाही मध्य शैक्षिक सत्र में नहीं की जायेगी। शिक्षक/शिक्षिका को कार्यमुक्त करने तथा कार्यभार ग्रहण करने की कार्यवाही अवकाश के दौरान ही की जायेगी।"

१७. अब न्यायालय को यह निर्धारित करना है कि परिपत्र दिनांक २८.०६.२०२३ के खण्ड (५) में उल्लेखित 'स्थानान्तरित जनपद में बैच की पदोन्नति वर्ष/मौलिक नियुक्ति तिथि के आधार पर' कार्यमुक्त करने की कार्यवाही का कोई न्यायोचित कारण है अथवा नहीं। यहां यह ध्यान रखना होगा कि याचिकाकर्तागण के संबंध में अंतर्जनपदीय स्थानान्तरण का आदेश पारित हो गया था परन्तु उपरोक्त खण्ड (५) के कारण उनको कार्यमुक्त नहीं किया गया है।

१८. उपरोक्त वर्णित खण्ड (५) के अन्तःवस्तु के मात्र परिशीलन से स्पष्टता प्रतीत नहीं होती है परन्तु परिषद के द्वारा दायर प्रतिउत्तर पत्र व उसके विद्वान अधिवक्ता के कथन से स्पष्टता प्रतीत होती है, कि अगर याचिकाकर्तागण जो पदोन्नति पद पर हैं स्थानान्तरित जनपद, जहां उनके बैच के शिक्षकों की पदोन्नति नहीं हुयी है, कार्यभार ग्रहण कराया जाता है तो वो अपने संवर्ग में निम्नतम वरिष्ठता पर रहें। फिर भी वो उनके बैच में कार्यरत शिक्षक/शिक्षिका जिनको पदोन्नति नहीं की गई है, से वरिष्ठ हो जायेंगे और उनके पदोन्नति होने के बाद भी याचिकाकर्तागण ही वरिष्ठ रहेंगे। जिससे असमंजसता की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, चाहे वरिष्ठता सूची मूल जनपद के स्तर पर ही क्यों न हो। यह स्थिति सहकर्मी को साथ कार्य करने के लिए प्रतिकूल होगी। उपरोक्त वर्णित कारण एक नीतियुक्त कारण है जो उपरोक्त खण्ड (५) को वैधानिकता प्रदान करता है। अगर परिषद उक्त खण्ड (५) के अन्तःवस्तु में और स्पष्टता ला पाते तो अच्छा होता। अग्रिम स्थानान्तरण नीति में स्पष्टता का ध्यान रखना चाहिये।

१९. मा० उच्चतम न्यायालय के एक नवीन निर्णय जो **देवेश शर्मा प्रति भारत संघ व अन्य: २०२३ एस.सी.सी. ऑनलाइन एस.सी. ९८५**, के प्रकरण में पारित किया गया है, में पुनः यह प्रतिपादित किया कि:-

" ७३. हमारे मस्तिष्क में निश्चित रूप से कोई संदेह नहीं है, कि साधारणतः राज्य के नीतिगत निर्णयों में संवैधानिक न्यायालयों द्वारा उसके पुनः निरीक्षण अधिकारों के अंतर्गत हस्ताक्षेप नहीं किया जा सकता है। इसी के साथ अगर नीतिगत निर्णय स्वयं में ही विधि के विरुद्ध और वो मनमाना व तर्कहीन हो तो पुनः निरीक्षण के अधिकार का उपयोग करना ही चाहिये।"

२०. मा० उच्चतम न्यायालय द्वारा एक अन्य प्रकरण **सत्यदेव बागुर प्रति राजस्थान शासन व अन्य (२०२२) ५ एस.सी.सी. ३२४**, के प्रकरण में पूर्व में पारित **कृष्णन्न कक्कनाथ प्रति केरल राज्य: (१९९७) ९ एस.सी.सी. ४९५ व शेर सिंह प्रति भारत संघ: (१९९५) ६ एस.सी.सी. ५१५** के निर्णयों का संदर्भलेते हुए यह निर्णीत किया कि:-

"१५. यह अतिसामान्य है कि न्यायालय नीतिगत मामलों में हस्तक्षेप करने में मन्द रहेंगे, जब तक कि नीति स्पष्ट रूप से पक्षपाती और मनमानी न स्थापित हो जाये। यह न्यायालय राज्य की नीतिगत निर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेगा, जब राज्य यह इंगित कर सके कि नीति के कार्यावहन में युक्तियुक्त अंतर है और वो युक्तियुक्त अंतर, उसके उद्देश्य की प्राप्ति से संबंध रखता है।"

२१. जैसा ऊपर विश्लेषण किया गया है कि खण्ड (५) के अन्तःवस्तु का आधार न्यायोचित एवं न्याय संगत है, जो एक युक्तियुक्त अन्तर है, जिसका संबंध उद्देश्य की प्राप्ति के लिये है कि अगर याचिकाकर्ता गणों को स्थानान्तरित जनपद, जहां उनके बैच के सह शिक्षकों की पदोन्नति नहीं हुई है, स्थानान्तरित कर दिया जाये तो वहां अव्यवस्था हो जायेगी और सहकर्मों को साथ काम करने में असहजता होगी। अतः इसको निरस्त करने की प्रार्थना अस्वीकार की जाती है। और यह याचिका बलहीन होने के कारण निरस्त की जाती है।"

20. हमारे संज्ञान में लाया गया है कि इसी तरह की राहत की मांग करने वाली कई रिट याचिकाएँ खारिज कर दी गई थीं, और ऐसे ही एक आदेश के विरुद्ध, विशेष अपील संख्या 61/2024 [श्रीमती राधा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य] दायर की गई थी, और उसे एक समन्वय पीठ द्वारा दिनांक 16.02.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। उपरोक्त आदेश नीचे पुनः प्रस्तुत किया जा रहा है:

"1. 06.02.2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किए गए:

"1. अपीलकर्ता का अंतर-जिला स्थानांतरण नीति के अनुसार मिर्जापुर से लखनऊ स्थानांतरण किया गया था। हालाँकि, उसे इस आधार पर कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई कि यद्यपि उसे मिर्जापुर में प्रधानाध्यापिका के पद पर पदोन्नत किया गया था, लेकिन अपीलकर्ता से वरिष्ठ व्यक्ति अभी भी लखनऊ में सहायक अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। सहायक अध्यापक का संवर्ग अन्यथा जिला स्तरीय संवर्ग है। तदनुसार, प्राधिकारियों ने अपीलकर्ता को लखनऊ में कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है और उसका स्थानांतरण भी रद्द कर दिया है।

2. अपीलकर्ता द्वारा एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया था जिसमें कहा गया था कि वह अपनी पदोन्नति का दावा छोड़ने को तैयार है और वह एक प्राथमिक संस्थान में सहायक अध्यापक के पद पर लखनऊ में अपना स्थानांतरण स्वीकार करेगी। प्रस्तुत किया गया है कि मामले के इस पहलू पर कोई विचार नहीं किया गया है और इसलिए, प्राधिकारी द्वारा याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को अस्वीकार करने का आदेश टिकने योग्य नहीं है।

3. प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वकील मामले में निर्देश प्राप्त करने के लिए एक सप्ताह का समय चाहते हैं।

4. 16.02.2024 को नए सिरे से प्रस्तुत किया जाए।

2. बेसिक शिक्षा बोर्ड की ओर से उपस्थित सुश्री अर्चना सिंह कहती हैं कि पूर्व में भी ऐसे दावे शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं, जिन्होंने प्रधानाध्यापिका के पद पर अपनी पिछली पदोन्नति को त्यागकर अपनी पसंद के स्थान पर अपनी नियुक्ति को प्राथमिकता दी थी। बोर्ड ने ऐसे दावों को खारिज कर दिया था। यह भी प्रस्तुत किया गया है कि शैक्षणिक सत्र के दौरान किसी भी व्यक्ति के स्थानांतरण पर विचार करना शैक्षणिक हित में नहीं होगा। यह भी आग्रह किया गया है कि यदि अपीलकर्ता के दावे को स्वीकार कर लिया जाता है, तो बड़ी संख्या में अन्य व्यक्ति भी इसी तरह के प्रयास कर सकते हैं, जिससे इन संस्थानों के कामकाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। विद्वान वकील ने तब कहा कि जब भी लखनऊ में प्रधानाध्यापिका के पद पर पद उपलब्ध होंगे और वरिष्ठता के दावे का उल्लंघन नहीं होगा, तो नीति के अनुसार अपीलकर्ता के पदोन्नति के दावे पर विचार किया जाना चाहिए।

3. हमें प्रतिवादियों की आपत्ति में दम नज़र आता है, क्योंकि किसी शिक्षक द्वारा अधिकार के तौर पर स्थानांतरण पर ज़ोर नहीं दिया जा सकता। शैक्षणिक संस्थानों के सुचारू संचालन पर विचार करना सर्वोपरि होगा। अन्यथा यह विवादित नहीं है कि अपीलकर्ता से वरिष्ठ व्यक्ति लखनऊ में सहायक शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं, ऐसे में प्रधानाध्यापिका के रूप में स्थानांतरण का उनका दावा अनावश्यक रूप से नाराज़गी पैदा करेगा। पदोन्नति का दावा छोड़ने से भी जटिलताएँ पैदा होती हैं क्योंकि अक्सर ऐसे दावे फिर से सामने आ जाते हैं। अन्यथा इससे अन्य शिक्षकों द्वारा भी इसी तरह के और दावे किए जा सकते हैं। यह निर्विवाद है कि नियमों के तहत शिक्षक/प्रधानाध्यापिका का संवर्ग एक जिला संवर्ग का पद है और जिले के बाहर स्थानांतरण केवल नीति के अनुसार ही अनुमत है।

4. इस मामले को देखते हुए, हमें इस मामले में हस्तक्षेप करने का कोई उचित आधार नहीं मिलता और परिणामस्वरूप, वर्तमान अपील को अभिलेखों में दर्ज किया जाता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब भी विभाग द्वारा नई स्थानांतरण नीति जारी की जाएगी, अपीलकर्ता के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता होगी और उसके दावे की नीति के अनुसार जाँच की जाएगी।“

21. यह भी बताया गया है कि बाद में, अपील के अंतर्गत निर्णय के अनुसार निर्णीत रिट याचिकाओं के समूह में अग्रणी रिट याचिका में से एक याचिकाकर्ता ने एक विशेष अपील दायर की, जो विशेष अपील त्रुटिपूर्ण संख्या 159/2024 [श्रद्धा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग के माध्यम से] थी, जिसे भी श्रीमती राधा (सुप्रा) की अपील में पारित आदेश के अनुसरण में, दिनांक 28.02.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया। विशेष अपील में पारित दिनांक 28.02.2024 का उपरोक्त आदेश इस प्रकार है:

“(संदर्भ: सिविल विविध विलंब क्षमा आवेदन)

1. सुनवाई हुई।

2. वर्तमान अपील दायर करने में हुई देरी को न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार स्पष्ट किया गया है।

तदनुसार, देरी को क्षमा किया जाता है। कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वर्तमान अपील को एक नियमित संख्या आवंटित की जाए।

3. आवेदन स्वीकार किया जाता है।

संदर्भ: अपील

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना गया

5. यह बताया गया है कि इसी याचिका में उठाए गए समान विवाद का इस न्यायालय द्वारा विशेष अपील संख्या 61/2024 (श्रीमती राधा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य) में 16.2.2024 को पारित निम्नलिखित आदेश के तहत निर्णय दिया जा चुका है:

"1. 06.02.2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किए गए:

"1. अपीलकर्ता का अंतर-जिला स्थानांतरण नीति के अनुसार मिर्जापुर से लखनऊ स्थानांतरण किया गया था। हालाँकि, उसे इस आधार पर कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति नहीं दी गई कि यद्यपि उसे मिर्जापुर में प्रधानाध्यापिका के पद पर पदोन्नत किया गया था, परंतु अपीलकर्ता से वरिष्ठ व्यक्ति अभी भी लखनऊ में सहायक अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। सहायक अध्यापक का संवर्ग अन्यथा जिला स्तरीय संवर्ग है। तदनुसार, प्राधिकारियों ने अपीलकर्ता को लखनऊ में कार्यभार ग्रहण करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है और उसका स्थानांतरण भी रद्द कर दिया है।

2. अपीलकर्ता द्वारा एक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया गया जिसमें कहा गया कि वह अपनी पदोन्नति का दावा छोड़ने को तैयार है और वह एक प्राथमिक संस्थान में सहायक अध्यापक के पद पर लखनऊ में अपना स्थानांतरण स्वीकार करेगी। यह प्रस्तुत किया गया है कि मामले के इस पहलू पर कोई विचार नहीं किया गया है और इसलिए, याचिकाकर्ता के अभ्यावेदन को अस्वीकार करने वाला प्राधिकारी का आदेश टिकाऊ नहीं है।

3. प्रतिवादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान वकील मामले में निर्देश प्राप्त करने के लिए एक सप्ताह का समय चाहते हैं।

4. 16.02.2024 को नए सिरे से प्रस्तुत किया जाए।

2. बेसिक शिक्षा बोर्ड की ओर से उपस्थित सुश्री अर्चना सिंह कहती हैं कि पूर्व में भी ऐसे दावे शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं जिन्होंने प्रधानाध्यापिका के पद पर अपनी पिछली पदोन्नति को त्यागकर अपनी पसंद के स्थान पर अपनी नियुक्ति को प्राथमिकता दी थी। बोर्ड ने ऐसे दावों को खारिज कर दिया था। यह भी प्रस्तुत

किया गया है कि शैक्षणिक सत्र के दौरान किसी भी व्यक्ति के स्थानांतरण पर विचार करना शैक्षणिक हित में नहीं होगा। यह भी आग्रह किया गया है कि यदि अपीलकर्ता के दावे को स्वीकार कर लिया जाता है, तो बड़ी संख्या में अन्य व्यक्ति भी इसी तरह के प्रयास करने के लिए सामने आ सकते हैं, जिससे इन संस्थानों के कामकाज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। विद्वान वकील ने तब कहा कि जब भी लखनऊ में प्रधानाध्यापिका के पद पर पद उपलब्ध होंगे और वरिष्ठता के दावे का उल्लंघन नहीं होगा, तो नीति के अनुसार अपीलकर्ता के पदोन्नति के दावे पर विचार किया जाना चाहिए।

3. हमें प्रतिवादियों की आपत्ति में तथ्य मिलता है, क्योंकि एक शिक्षक द्वारा अधिकार के रूप में स्थानांतरण पर जोर नहीं दिया जा सकता है। शैक्षणिक संस्थानों के सुचारु संचालन पर विचार करना सर्वोपरि होगा। यह बात निर्विवाद है कि चूँकि अपीलकर्ता से वरिष्ठ व्यक्ति लखनऊ में सहायक अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं, इसलिए प्रधानाध्यापिका के रूप में स्थानांतरण का उनका दावा अनावश्यक रूप से नाराज़गी पैदा करेगा। पदोन्नति का दावा छोड़ने से भी जटिलताएँ पैदा होती हैं क्योंकि अक्सर ऐसे दावे फिर से सामने आ जाते हैं। अन्यथा, इससे अन्य शिक्षकों द्वारा भी इसी तरह के और दावे किए जा सकते हैं। यह बात निर्विवाद है कि नियमों के तहत शिक्षक/प्रधानाध्यापिका का संवर्ग एक जिला संवर्ग पद है और जिले के बाहर स्थानांतरण केवल नीति के अनुसार ही अनुमत है।

4. इस मामले को देखते हुए, हमें इस मामले में हस्तक्षेप करने का कोई ठोस आधार नहीं मिलता और परिणामस्वरूप, वर्तमान अपील अभिलेखों में दर्ज की जाती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब भी विभाग द्वारा नई स्थानांतरण नीति जारी की जाएगी, अपीलकर्ता के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता होगी और उसके दावे की नीति के अनुसार जाँच की जाएगी।"

6. दिनांक 16.2.2024 के आदेश में दर्ज कारणों और विवाद के समान होने के कारण, इस रिट याचिका का भी उन्हीं शर्तों पर निपटारा किया जाता है।"

22. श्रीमती राधा (सुप्रा) के मामले में विशेष अपील के निर्णय के विरुद्ध, विशेष अपील की अनुमति (सी) संख्या 10912/2024 [राधा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य] नामक एक विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत की गई, जिसे दिनांक 13.05.2024 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया।

23. तदनुसार, यदि अपीलकर्ताओं की ओर से अब जिन आधारों पर तर्क दिया जा रहा है, उन पर विचार भी किया जाए, तो भी वर्तमान मामले में शामिल विवाद विशेष अपील त्रुटि संख्या 159/2024 (श्रद्धा यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सचिव, बेसिक शिक्षा विभाग के माध्यम से) में पारित दिनांक 28.02.2024 के निर्णय के संदर्भ में पूरी तरह से समाहित है।

24. हम इस मामले में कोई भिन्न दृष्टिकोण अपनाने के इच्छुक नहीं हैं।

25. अतः विशेष अपील *खारिज* की जाती है।

(2025) 1 ILRA 747

मूल क्षेत्राधिकार

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 24.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर

रिट ए संख्या 4769 वर्ष 2022

आनंद कुमार

...याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य

...प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता:

राजेश यादव, रुचि मिश्रा

प्रतिवादियों के अधिवक्ता:

मुख्य स्थाई अधिवक्ता, जगन्नाथ मौर्य

सिविल विधि - भारत का संविधान, 1950 - अनुच्छेद 226 - उत्तर प्रदेश मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 - नियम 5(1) - याचिकाकर्ता ने अपनी माता के निधन के कारण अनुकंपा नियुक्ति के साथ-साथ 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के भुगतान का दावा किया, जिसे राज्य सरकार द्वारा कोविड-19 बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार में लगे उन कर्मचारियों के आश्रितों को प्रदान करने का निर्देश दिया गया था, जिनकी वायरस के संक्रमण के परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई थी --- एक मृत सरकारी सेवक का आश्रित 1974 के नियमों के तहत नियुक्ति पर विचार के लिए पात्र है, यदि मृतक का जीवनसाथी सरकारी सेवक नहीं है या पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व वाले या नियंत्रित निगम के अधीन नियोजित नहीं है।

प्रतिवादियों ने कलम के एक ही झटके से, उपस्थिति रजिस्टर में याचिकाकर्ता की माता के लिए 15 अप्रैल से 26 अप्रैल तक की सभी 'P' की प्रविष्टियों को 'A' में बदल दिया है। यह नग्न आंखों से दिखाई देने वाली स्पष्ट जालसाजी का मामला है। यहाँ तक कि कोई लघु हस्ताक्षर भी नहीं किया गया है जो यह दिखाए कि क्या यह किसी प्रकार का सुधार है, न ही कोई नोट है जो यह बताए कि किस प्राधिकारी द्वारा और किन परिस्थितियों में यह सुधार, यदि कोई था, किया गया था। इसलिए, अकाट्य निष्कर्ष यही है कि याचिकाकर्ता की माता ने

अप्रैल के महीने में 26 तारीख तक अपनी इयूटी की, जब वह बीमार पड़ गई और उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया --- याचिकाकर्ता की माता इसी प्रकार (जोखिम के) संपर्क में आई, वायरस से संक्रमित हुई और स्पष्ट रूप से इस घातक बीमारी से उनकी मृत्यु हो गई --- प्रतिवादियों को याचिकाकर्ता की माता की मृत्यु के लिए उचित मुआवजे का भुगतान करने के लिए परमादेश जारी किया जाता है, इसे वैसी मृत्यु मानते हुए जिसके लिए 11.04.2020, 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों के तहत मुआवजा देय है। (पैरा 10, 52 और 54)

याचिका स्वीकार (ई-15)

उद्धृत मामलों की सूची:

1. रीपक कंसल बनाम भारत संघ एवं अन्य, (2021) 9 SCC 251
2. मयूरी कृष्णा जाबारे बनाम महाप्रबंधक, BEST एवं अन्य, 2022 DGLS (Bom) 3782
3. निशा एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा अपर मुख्य सचिव, पंचायती राज विभाग, 2022:AHC-LKO:27037
4. सुनीता प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा मुख्य सचिव (गृह) एवं अन्य, 2023:AHC-LKO:33575
5. प्रियंका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा मुख्य सचिव, वित्त विभाग, लखनऊ एवं अन्य, 2024:AHC-LKO:69440

(माननीय न्यायमूर्ति जे.जे. मुनीर द्वारा पारित)

1. वर्ष 2020-21 के दौरान दुनिया भर में मानवता को तहस-नहस करने वाली कोविड-19 महामारी, मानव जाति के इतिहास में अपने विनाश, मृत्यु, आजीविका की हानि, व्यापार और ऐसी कई अन्य चीजों के लिए अभूतपूर्व है। जबकि इसने जीवित बचे लोगों के लिए अपार त्रासदी पैदा की, भारत सरकार और राज्य सरकारों द्वारा जीवित बचे लोगों की सहायता के लिए हाथ बढ़ाकर इस दुख को कम करने का प्रयास किया गया। विभिन्न वर्गों के लोगों के जीवन को वापस पटरी पर लाने के लिए सरकारों द्वारा राहत के जो भी उपाय हो सकते थे, वे किए गए। पुरुषों और महिलाओं के कुछ ऐसे वर्ग थे, जिन्हें अपने पेशे की प्रकृति के कारण दूसरों के लिए काम करना पड़ा, भले ही अधिकांश अन्य लोग, अपने प्राणों की रक्षा के लिए, लॉकडाउन के कारण वस्तुतः अपने घरों में ही कैद थे। व्यक्तियों के इन वर्गों में, जिन्हें मानवता के हित में काम करना जारी रखना पड़ा, न केवल सरकारी कर्मचारियों की एक निश्चित श्रेणी शामिल थी, बल्कि निगमों, निजी क्षेत्र के कर्मचारी और स्व-नियोजित लोग भी शामिल थे। उनका नियोजता चाहे जो भी हो, वे अपने कर्तव्य के प्रति एक समान भावना साझा करते थे। वे आम तौर पर डॉक्टर, डॉक्टरों के अलावा अन्य स्वास्थ्य कार्यकर्ता, पुलिसकर्मी और विशेष रूप से स्वच्छता बनाए रखने के कार्य में लगे कार्यकर्ता थे, जैसे कि सफाई कर्मचारी (चाहे उन्हें किसी भी नाम

से पुकारा जाए। व्यक्तियों के इन वर्गों को उस समय 'कोरोना वॉरियर्स' (कोरोना योद्धा) कहा जाता था। उन्हें ऐसा इसलिए कहा गया क्योंकि उन्होंने उस समय दूसरों के लिए काम किया जब मानवता का एक बड़ा हिस्सा (दूसरों से) दूर रह रहा था। उन्होंने अपने जीवन को जोखिम में डाला। उनके योगदान को स्वीकार करने और उनके मनोबल को बनाए रखने के लिए, उन्हें 'कोरोना वॉरियर्स' के रूप में सम्मानित किया गया।

2. इस रिट याचिका के केंद्र में श्रीमती आशा हैं, जो नगर पंचायत, खागा, जिला फतेहपुर में एक सफाई कर्मचारी थीं। वह याचिकाकर्ता आनंद कुमार की माता हैं, जिनकी मृत्यु 27.04.2021 को कोविड-19 महामारी के चरम के दौरान हो गई थी। याचिकाकर्ता के अनुसार, उनकी मृत्यु कोविड-19 बीमारी के परिणामस्वरूप हुई, जो उन्हें नगर पंचायत कार्यालय में अपने कर्तव्यों का पालन करने के दौरान हुई थी। याचिकाकर्ता का तर्क है कि श्रीमती आशा ने 24.04.2021 तक कार्यालय में एक सफाई कर्मचारी के रूप में अपना कर्तव्य निभाया, जब वह अचानक बीमार पड़ गई। वह अन्यथा स्वस्थ थीं। उन्हें सीने में दर्द और बेचैनी महसूस हुई। उन्हें चिकित्सा सहायता के लिए नजदीकी क्लिनिक ले जाया गया। डॉक्टर ने उन्हें प्राथमिक उपचार दिया, लेकिन उससे राहत नहीं मिली। अगले दिन, उनमें कोविड-19 के लक्षण दिखे और उन्हें 26.04.2021 को एल-2 सुविधा रायसीना अस्पताल, इलाहाबाद इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, पुरैन मोड़, खागा, फतेहपुर में भर्ती कराया गया। उन्हें 26.04.2021 को शाम 5:00 बजे उक्त अस्पताल में भर्ती किया गया था और 27.04.2021 को सुबह 8 बजकर 10 मिनट पर उनकी मृत्यु हो गई। याचिकाकर्ता की माता के लिए जारी किया गया मृत्यु सारांश/मृत्यु प्रमाण पत्र, जो पेपर-बुक के पृष्ठ संख्या 20 पर संलग्न है, निदान के कॉलम में कहता है, “? कोविड-19 न्यूमोनाइटिस”। मृत्यु सारांश वाला कॉलम खाली है। प्रमाण पत्र पर एल-2 सुविधा रायसीना अस्पताल, इलाहाबाद इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, फतेहपुर में ड्यूटी पर तैनात चिकित्सा अधिकारी के हस्ताक्षर हैं।

3. याचिकाकर्ता का मामला यह है कि उसकी माता की मृत्यु कोविड-19 के कारण हुई थी। जैसा कि याचिकाकर्ता का कहना है, कोविड-19 महामारी के कारण अपनी माता के निधन के बाद, उसने प्रतिवादियों (respondents) के समक्ष दो दावे प्रस्तुत किए। पहला दावा स्वयं के लिए अनुकंपा नियुक्ति की मांग को लेकर था, और दूसरा 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए था। यह राशि राज्य सरकार द्वारा उन कर्मचारियों के आश्रितों को प्रदान करने का निर्देश दिया गया था, जो कोविड-19 बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार में लगे थे और वायरस के संक्रमण के परिणामस्वरूप जिनकी मृत्यु हो गई थी। याचिकाकर्ता ने अपनी माता के निधन के कारण अनुकंपा नियुक्ति और अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए 08.07.2021 को एक आवेदन दिया, जिसके साथ दावे के समर्थन में दस दस्तावेज संलग्न किए गए थे। उक्त आवेदन में याचिकाकर्ता ने 28.06.2021 के एक पूर्व आवेदन का संदर्भ दिया, जो उसने नगर पंचायत, खागा को 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के दावे के लिए दिया था। उसने बताया कि उस आवेदन को एक सप्ताह तक रोके रखा गया और फिर खारिज कर दिया गया। याचिकाकर्ता ने निदेशक, स्थानीय निकाय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ को संबोधित अपने दिनांक 08.07.2021 के आवेदन में, 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के भुगतान और मृतक श्रीमती आशा के आश्रित के रूप में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति, दोनों की मांग की।

4. जब याचिकाकर्ता के उपरोक्त दोनों दावों पर कोई निर्णय नहीं लिया गया, तो उसने इस न्यायालय के समक्ष 'रिट-ए संख्या 11949 वर्ष 2021' दायर की, जिसमें प्रतिवादियों को अनुकंपा नियुक्ति के उसके दावे पर विचार करने का निर्देश देने की मांग की गई थी। इस न्यायालय ने 20.09.2021 के आदेश के माध्यम से उक्त रिट याचिका को निस्तारित कर दिया और उस याचिका के प्रतिवादी संख्या 4 को निर्देश दिया कि वे याचिकाकर्ता के अनुकंपा नियुक्ति के आवेदन पर शीघ्रता से निर्णय लें, प्राथमिकता के आधार पर आवेदन और आदेश की वेब-जनरेटेड प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर। उक्त आदेश के तामील (सर्विस) होने के बाद, अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत, खागा ने याचिकाकर्ता के दोनों दावों-अनुकंपा नियुक्ति और 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के भुगतान-को खारिज कर दिया। इसके लिए उन्होंने 11.11.2021 को पारित अपने आदेश में विभिन्न कारणों का उल्लेख किया।

5. व्यथित होकर, यह रिट याचिका दायर की गई है।

6. दिनांक 25.11.2022 को अधिशासी अधिकारी और अध्यक्ष, नगर पंचायत, खागा, जिला फतेहपुर की ओर से एक प्रति-शपथपत्र दाखिल किया गया, जिस पर याचिकाकर्ता ने 09.08.2023 को अपना प्रत्युत्तर दाखिल किया। इस न्यायालय के दिनांक 31.10.2023 के आदेश के अनुपालन में, जब याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार किया गया और कुछ निर्देश जारी करते हुए जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर को अपना व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने के लिए कहा गया, तब जिला मजिस्ट्रेट का दिनांक 15.11.2023 का व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल किया गया। इस न्यायालय द्वारा पारित आगे के आदेश दिनांक 12.12.2023 के अनुपालन में, अपर मुख्य सचिव, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ने 18.01.2024 को एक व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल किया, जिसमें सरकार के रुख को दोहराया गया। इसके बाद, 29.04.2024 को प्रतिवादी संख्या 3, जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर की ओर से एक प्रति-शपथपत्र प्रस्तुत किया गया।

7. सुनवाई के दौरान, 29.04.2024 को, न्यायालय द्वारा यह इंगित किया गया कि अपर मुख्य सचिव, राजस्व विभाग द्वारा अपने शपथपत्र में लिया गया रुख प्रथम दृष्टया विचारणीय या स्वीकार्य नहीं था। हालांकि, चूंकि मामला संवेदनशील प्रतीत हो रहा था और एक कोविड-19 पीड़ित सफाई कर्मी को अनुग्रह राशि दिए जाने से संबंधित था, जहाँ राज्य के विरुद्ध किसी निर्णय के व्यापक वित्तीय परिणाम हो सकते थे, न्यायालय ने प्रमुख सचिव को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने और मामलों को स्पष्ट करने का अवसर देना उचित समझा। 25.07.2024 को, गुरु प्रसाद, प्रमुख सचिव, राजस्व, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और उन्होंने संबंधित अवधि के दौरान कोविड-19 पीड़ितों को अनुग्रह राहत प्रदान करने की नीति से जुड़ी शर्तों के बारे में विस्तार से बताया। हमने 25.07.2024 के अपने आदेश में वह सब दर्ज किया है जो प्रमुख सचिव को कहना था, और जिसका आवश्यक संदर्भ इस निर्णय के दौरान दिया जाएगा। दिनांक 25.07.2024 को, सभी पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं को अंतिम रूप से सुना गया और निर्णय सुरक्षित रख लिया गया।

8. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजेश यादव और राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जगन्नाथ मौर्य, जिन्हें विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता सुश्री मोनिका आर्य द्वारा सहायता प्रदान की गई, को सुना गया।

9. हमने दोनों पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत तर्कों पर सम्यक विचार किया है और रिकॉर्ड (दस्तावेजों) का परीक्षण किया है।

10. जहाँ तक याचिकाकर्ता के दावे के एक पक्ष का प्रश्न है, अर्थात् अपनी मृतक माता के आश्रित के रूप में अनुकंपा नियुक्ति दिए जाने का उसका अनुरोध, तो इसे प्रतिवादी-नगर पंचायत द्वारा इस आधार पर खारिज कर दिया गया था कि याचिकाकर्ता के पिता, यानी मृतक के पति, गोपाल दास, नगर पंचायत में नायब मुहर्रिर के पद पर कार्यरत थे। न्यायालय का ध्यान 'उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत सरकारी सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974' (संक्षेप में, '1974 की नियमावली'), जैसा कि अब तक संशोधित है, के नियम 5(1) की ओर आकर्षित किया गया। इसमें यह स्पष्ट किया गया है कि मृतक सरकारी सेवक का आश्रित 1974 की नियमावली के तहत नियुक्ति पर विचार के लिए तभी पात्र होता है, यदि मृतक का जीवनसाथी सरकारी कर्मचारी न हो या पहले से ही केंद्र सरकार या राज्य सरकार या केंद्र सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्व वाले या नियंत्रित किसी निगम के अधीन नियोजित न हो। यहाँ, चूँकि मृतक का जीवनसाथी (उनके पति) नगर पंचायत में नायब मुहर्रिर के रूप में कार्यरत हैं, इसलिए 1974 की नियमावली के तहत अनुकंपा नियुक्ति का दावा विचारणीय नहीं था। 1974 की नियमावली के नियम 5 को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि याचिकाकर्ता की माता के निधन की तिथि पर उसके पिता और मृतक के पति नगर पंचायत की सेवा में थे, इसलिए वह अनुकंपा नियुक्ति के लिए वैध उम्मीदवारी नहीं रखता है। अतः, याचिकाकर्ता के दावे के इस हिस्से को प्रतिवादी द्वारा उचित रूप से खारिज कर दिया गया था। इसमें कोई आपत्ति नहीं ली जा सकती।

11. सुनवाई के दौरान, पक्षों के विद्वान अधिवक्ताओं ने स्पष्ट रूप से कहा कि इस याचिका का असली मुद्दा याचिकाकर्ता की उस पात्रता के बारे में है, जिसके तहत वह कोविड-19 संक्रमण की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के लिए इयूटी पर तैनात अपनी माता की सेवाकाल में मृत्यु होने के कारण 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि प्राप्त करने का दावा करता है।

12. यह सच है कि अनिवार्य रूप से एक राजकोषीय (fiscal) मामला होने के नाते, और उससे भी बढ़कर, ऐसे मामलों में राज्य सरकार के लिए यह विशुद्ध रूप से एक नीतिगत निर्णय होने के कारण, यह सरकार पर निर्भर था कि वह कोविड-19 महामारी के पीड़ितों (यहाँ तक कि याचिकाकर्ता की श्रेणी के पीड़ितों) को राहत देने से पहले अपने संसाधनों का जायजा ले। यह न्यायालय राज्य सरकार को यह निर्देश नहीं दे सकता कि वह उन पीड़ितों के आश्रितों को अनुग्रह राशि के रूप में वित्तीय राहत प्रदान करे या एक विशेष राशि का भुगतान करे, जिनकी मृत्यु कोविड-19 की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के लिए इयूटी पर तैनात रहने के दौरान संक्रमण के कारण हुई थी। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ न्यायालय से नियोक्ताओं के विरुद्ध लापरवाही या कर्मचारी

के जीवन के अधिकार की रक्षा करने में विफलता के मामले में न्याय करने के लिए कहा गया है, चूँकि नियोक्ता राज्य के पदाधिकारी हैं, जो आश्रितों को हर्जाने या मुआवजे का हकदार बनाता हो। यह कर्मचारियों के एक विशेष वर्ग को अनुग्रह राशि देने के बारे में है, जिससे याचिकाकर्ता संबंध रखने का दावा करता है और जिन्हें सरकार की नीति के तहत वह लाभ दिया गया है। इसी संदर्भ में यह कहा गया है कि न्यायालय सरकार पर कोई ऐसी नीति नहीं थोप सकता, जिससे राजकोष पर बोझ पड़े।

13. हालाँकि, स्थिति तब भिन्न होती है जब राज्य सरकार वास्तव में एक विशेष वर्ग के कोविड-19 पीड़ितों को क्षतिपूर्ति देने के लिए एक नीति तैयार करती है और उसे कुछ शर्तों के अधीन रखती है, जिन्हें फिर नीति लागू करने के लिए जिम्मेदार राज्य सरकार के अधिकारियों या स्वयं सरकार द्वारा इस तरह लागू किया जाता है कि नीति का क्रियान्वयन या तो मनमाना हो जाता है या भेदभावपूर्ण, या शायद सनक भरा भी। यदि ऐसा मामला है, तो यह न्यायालय निश्चित रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए हस्तक्षेप कर सकता है कि इस आपदा के सभी पीड़ितों को नीति का लाभ बिना किसी मनमानेपन, भेदभाव या उन अधिकारियों की सनक और मर्जी के मिले, जिन्हें नीति के तहत लाभ प्रदान करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। यह बात हमें सीधे उस विषय पर ले जाती है कि राज्य सरकार की वह नीति क्या है, जो उन कर्मचारियों के आश्रितों को अनुग्रह राशि के भुगतान के बारे में है, जिनकी मृत्यु कोविड-19 महामारी के दौरान, बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार में सहायता के लिए ड्यूटी पर तैनात किए जाने के बाद वायरस से संक्रमित होने के कारण हुई थी।

14. वह नीति, जो ऐसे कर्मचारियों के आश्रितों को 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के भुगतान का प्रावधान करती है, राज्य सरकार द्वारा शासनादेशों के माध्यम से पेश की गई थी; और बाद के शासनादेशों के माध्यम से, यह प्रक्रिया सहित अपने कार्यान्वयन के लिए अधिक स्पष्ट और निश्चित शर्तों के रूप में विकसित हुई है। सरकार, स्वायत्त निकायों आदि के कर्मचारियों के आश्रितों को 50 लाख रुपये की अनुग्रह राहत के भुगतान के लिए लागू नीति के संबंध में सबसे महत्वपूर्ण जानकारी जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर और अपर मुख्य सचिव, राजस्व विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ के व्यक्तिगत शपथपत्रों में मिलती है। इन दोनों शपथपत्रों में समय-समय पर जारी किए गए शासनादेशों का विस्तृत विवरण दिया गया है, जो नीति को पेश करने और परिष्कृत करने से संबंधित हैं, साथ ही इन शपथपत्रों के साथ संलग्नक के रूप में प्रासंगिक शासनादेशों की प्रतियां भी शामिल हैं। हम, मुख्य रूप से, जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत शपथपत्र पर भरोसा करेंगे।

15. विचाराधीन श्रेणी के कर्मचारियों के पीड़ितों के आश्रितों को मुआवजा देने की नीति शासनादेश संख्या 249/एक-11-2020-04(जी)/2015-टी0 सी0 दिनांक 11.04.2020 के माध्यम से लागू की गई थी। दिनांक 11.04.2020 का शासनादेश इस प्रकार है:

"उपर्युक्त विषय पर मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि वर्तमान में वैश्विक महामारी कोविड -19 से प्रभावित सम्पूर्ण प्रदेश में इस महामारी की रोकथाम, उपचार एवं उससे बचाव के लिये चिकित्सा विभाग के अलावा भारी संख्या में विभिन्न विभागों के कार्मिक दिन-रात ड्यूटी में लगे हुए हैं।

2. कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव के लिये कार्यरत कार्मिकों में कोविड -19 के संक्रमण की आशंका सदैव बनी रहती है। कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव के लिये कार्यरत कार्मिक की कोविड-19 के संक्रमण से मृत्यु की दशा में उसके आश्रितों को सामाजिक सुरक्षा देने के लिये राज्य द्वारा उस मृतक के आश्रितों को 50.00 लाख की एकमुश्त अनुग्रह धनराशि स्वीकृति किये जाने का निर्णय लिया गया है।

3. उपर्युक्त स्वीकृति हेतु संबंधित जनपद के जिलाधिकारी अधिकृत होंगे। इस हेतु कार्यालयाध्यक्ष का इस आशय का प्रमाण-पत्र कि संबंधित कार्मिक कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव के कार्यों के लिये नियुक्त था तथा साथ ही पोस्टमार्टम रिपोर्ट के आधार पर मुख्य जिकित्साधिकारी का इस आशय का प्रमाण-पत्र कि संबंधित कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुई है, अपेक्षित होगा।

4. उक्त व्यवस्था का लाभ चिकित्सा अनुभाग-1 के शासनादेश संख्या-533/पांच-1-020-आर0 (533) / 2020 दिनांक 07.04.2020 से आच्छादित कार्मिकों से भिन्न समस्त विभागों, निगमों स्वायत्तशासी संस्थाओं प्राधिकरणों आदि अन्य सभी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, संविदा कर्मी, दैनिक वेतन भोगी, आउटसोर्स स्थायी / अस्थायी कार्मिकों के आश्रितों को अनुमन्य / देय होगी, जो कोविड-19 रोकथाम, उसके उपचार व उससे बचाव के लिये कार्यरत हैं।

5. उक्त व्यय वित्तीय वर्ष 2020-2 के आय-व्यय के अनुदान संख्या 51 के अंतर्गत लेखाशीर्षक "2245-प्राकृतिक विपत्ति के कारण राहत-05- स्टेट डिजास्टर रेस्पांस फण्ड-800-अन्य व्यय-06-स्टेट डिजास्टर रेस्पांस फण्ड से व्यय-09-राज्य सरकार द्वारा घोषित अन्य आपदाओं हेतु स्टेट डिजास्टर रेस्पांस फण्ड से व्यय-41 अन्य व्यय" के नामे डाला जायेगा।

उपर्युक्त आदेश वित्त विभाग के अशासकीय संख्या 646/दस-5-2020 दिनांक 11 अप्रैल 2020 में प्राप्त उनकी सहमति से जारी किये जा रहे हैं।"

16. शासनादेश दिनांकित 11.04.2020 को तुरंत शासनादेश संख्या 249(2)/एक-11-2020-04(जी)/2015-टी0 सी0, दिनांकित 11.04.2020 द्वारा संशोधित किया गया था। संशोधित शासनादेश दिनांक 11.04.2020, अपने मुख्य भाग में, निम्नलिखित प्रावधान करता है:

"2. इस सम्बन्ध में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि उक्त शासनादेश संख्या 249/एक-11-2020-04 (जी) / 2015-टी0 सी0 दिनांक 11 अप्रैल, 2020 के प्रस्तर-3 को निम्नानुसार संशोधित किया जाता है:-

उपर्युक्त स्वीकृति हेतु संबंधित जनपद के जिलाधिकारी अधिकृत होंगे। इस हेतु कार्यालयाध्यक्ष का इस आशय का प्रमाण पत्र कि संबंधित कार्मिक कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव के कार्यों के लिये नियुक्त

था तथा साथ ही मुख्य चिकित्साधिकारी का इस आशय का प्रमाण-पत्र कि संबंधित कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुई है, अपेक्षित होगा।"

17. अगला शासनादेश, जिसने निर्दिष्ट श्रेणी के कर्मचारियों के आश्रितों को अनुग्रह राशि के भुगतान की नीति को और अधिक विकसित किया, 22.06.2021 को जारी किया गया था। शासनादेश दिनांकित 22.06.2021 का मुख्य भाग इस प्रकार है:

"2. इस सम्बन्ध में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि विर्तमान वित्तीय वर्ष 2021-22 में भी कोविड-19 के रोकथाम, बचाव व उपचार में चिकित्सा विभाग के कार्मिकों के अलावा ऐसे कार्मिकों को जिनकी ड्यूटी कार्यालयाध्यक्ष / जिलाधिकारी द्वारा कोविड की रोकथाम, बचाव अथवा उपचार में लगायी गयी है, को कोविड संक्रमण से मृत्यु की दशा में उनके आश्रितों को ₹0 50.00 लाख की एकमुश्त अनुग्रह धनराशि दिये जाने का निर्णय लिया गया है।

3. जिलाधिकारी द्वारा सम्बन्धित कार्मिक की कोविड संक्रमण से मृत्यु पर उसके आश्रितों को अनुग्रह धनराशि की स्वीकृति करके सभी अभिलेखों सहित धनराशि अवमुक्त करने हेतु शासन को संस्तुति प्रेषित की जायेगी। जिलाधिकारी द्वारा केवल उन्हीं कार्मिकों के आश्रितों को अहेतुक सहायता राशि (₹0 50.00 लाख) स्वीकृत की जायेगी, जिनकी ड्यूटी कार्यालयाध्यक्ष/जिलाधिकारी द्वारा कोविड की रोकथाम, बचाव अथवा उपचार में लगायी गयी है एवं कोविड संक्रमण से उनकी मृत्यु हुई है। इस हेतु कार्यालयाध्यक्ष द्वारा संलग्न प्रारूप-1 पर इस आशय का प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराया जायेगा कि संबंधित कार्मिक कोविड-19 की रोकथाम, बचाव अथवा उपचार के कार्यों के लिये नियुक्त था एवं मुख्य चिकित्साधिकारी द्वारा संलग्न प्रारूप-2 पर इस आशय का प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराया जायेगा कि सम्बन्धित कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुयी है। सम्बन्धित कार्मिक की सेवा पुस्तिका में दर्ज सभी आश्रितों को बराबर-बराबर अहेतुक सहायता की धनराशि जिलाधिकारी द्वारा वितरित करायी जायेगी। यदि सेवा पुस्तिका में आश्रितों के नाम दर्ज नहीं है तो मृतक कार्मिक के उत्तराधिकारियों में अहेतुक सहायता की धनराशि बराबर -बराबर जिलाधिकारी द्वारा वितरित करायी जायेगी।

4. उक्त व्यवस्था का लाभ चिकित्सा अनुभाग-1 के शासनादेश संख्या-533/पांच-1-2020-आर 0(533)/2020 दिनांक 07.04.2020 से आच्छादित कार्मिकों से भिन्न समस्त विभागों, निगमों स्वायत्तशासी संस्थाओं, प्राधिकरणों आदि अन्य सभी सरकारी, अर्द्ध-सरकारी, संविदा कर्मी, दैनिक वेतन भोगी, आउटसोर्स, स्थायी / अस्थायी कार्मिकों के आश्रितों को अनुमन्य / देय होगी, जिनकी ड्यूटी कार्यालयाध्यक्ष/जिलाधिकारी द्वारा कोविड-19 की रोकथाम, बचाव व उपचार में लगायी गयी हो।

5. कोविड-19 की द्वितीय लहर के दौरान अब तक मृत सरकारी कार्मिकों का विवरण एवं संगत अभिलेखों को राहत आयुक्त कार्यालय की वेबसाइट rahat.up.nic.in पर दिनांक 30 जून, 2021 तक अनिवार्य रूप से फीड

एवं उपलोड करा दिया जाय और भविष्य में भी उक्त वेबसाइट पर कोविड से मृत सभी कार्मिकों का विवरण फीड किया जाता रहेगा।

6. उक्त व्यय वित्तीय वर्ष 2021-22 के आय-व्यय के अनुदान संख्या-51 के अन्तर्गत लेखाशीर्षक "2245-प्राकृतिक विपत्ति के कारण राहत-05-स्टेट डिजास्टर रेस्पांस फण्ड-800-अन्य व्यय-06-स्टेट डिजास्टर रेस्पांस फण्ड से व्य-09-राज्य सरकार द्वारा घोषित अन्य आपदाओं हेतु स्टेट डिजास्टर रेस्पांस फण्ड से व्यय-42 अन्य व्यय" के नामे डाला जायेगा।

उपर्युक्त आदेश वित्त विभाग के अशासकीय संख्या-591/दस-5-2021 दिनांक 18 जून, 2021 में प्राप्त उनकी सहमति से जारी किये जा रहे हैं।"

18. शासनादेश दिनांकित 22.06.2021 से संलग्न प्रपत्र-1 एवं 2 नीचे दिए गए हैं:

शासनादेश संख्या-411/एक-11-2021-04 (जी) / 2015 टी0 सी0, दिनांक 22 जून, 2021 का संलग्नक-1

प्रारूप-1

प्रमाण पत्र संख्या-....

दिनांक

कोविड-19 इयूटी प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री / श्रीमती..... की इयूटी कोविड-19 की रोकथाम बचाव अथवा उपचार के कार्यों में लगायी गयी थी। उक्त कार्मिक की कोविड संक्रमण से दिनांक..... को असामयिक मृत्यु हो गयी है। कार्मिक का विवरण निम्नवत है:-

- 1- मृतक कार्मिक का नाम
- 2- विभाग का नाम
- 3- पदनाम
- 4- कोविड की रोकथाम, बचाव अथवा

उपचार से सम्बन्धित कार्य का विवरण

5- कोविड से सम्बन्धित कार्य का इयूटी स्थल

6. कोविड से सम्बन्धित कार्य की अवधि दिनांक से..... तक कोविड इयूटी आदेश दिनांक की छायाप्रति संलग्न है।

दिनांक: -

हस्ताक्षर

जिलाधिकारी/कार्यालयाध्यक्ष

नाम

विभाग का नाम

जनपद का नाम

(सील मुहर)

संलग्नक-"

"शासनादेश संख्या - 411/एक-11-2021-04(जी)/2015 टी.सी., दिनांक 22 जून, 2021 का संलग्नक-2प्रारूप-2

प्रमाण पत्र संख्या-.....

दिनांक

कोविड-19 मृत्यु प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री / श्रीमती की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से दिनांक को हुयी है।

1-मृतक कार्मिक का नाम

2-पिता का नाम

3. मृतक का पता

4-अस्पताल का नाम (भर्ती की दशा में)

5-RTPCR/एण्टीजनेन टेस्ट का दिनांक, जिससे कोविड की पुष्टि हुयी

6. कोविड टेस्ट लैब / अस्पताल का नाम

7. यदि कोविड की जांच उपरोक्त क्रमांक 5 में वर्णित पद्धति से नहीं की गयी तो कोविड प्रमाणित करने का अन्य स्रोत (विवरण अंकित करें)

दिनांक: -

हस्ताक्षर

मुख्य चिकित्साधिकारी का नाम.....

जनपद.....

(सील मुहर)

संलग्नक-"

19. इस विषय पर जारी किया गया अंतिम शासनादेश 26.07.2021 का है। यह नीति के तहत लाभ प्रदान करने के लिए आवश्यक शर्तों का और अधिक विवरण देता है और यह निर्दिष्ट करता है कि निर्दिष्ट श्रेणी के कर्मचारी, जो कोविड-19 के शिकार हुए हैं, उनके आश्रितों को आवश्यक अनुग्रह राहत प्रदान करने के लिए कौन से दस्तावेज प्रस्तुत करने होंगे। शासनादेश दिनांकित 26.07.2021 का मुख्य भाग इस प्रकार है:

"उपरोक्त विषयक कृपया राजस्व अनुभाग-11 के शासनादेश सं0-411/एक-11-2021-4 (जी)/2015 टी0 सी0 दिनांक 22 जून का संदर्भ ग्रहण करने का कष्ट करें, जिसके द्वारा वित्तीय वर्ष 2021-22 में कोविड-19 की

रोकथाम, बचाव व उपचार में लगाये गये कार्मिकों की कोविड संक्रमण से मृत्यु की दशा में उनके आश्रितों को ₹0 50.00 लाख की एकमुश्त अनुग्रह धनराशि दिये जाने के संबंध में विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किये गये हैं।

2- जनपदों द्वारा आनलाईन अपलोड किये गये प्रस्तावों की समीक्षा में यह पाया गया है कि <https://rahat.up.nic.in> पर जिलाधिकारियों द्वारा अपलोड किये गये प्रस्ताव अपूर्ण हैं तथा शासनादेश दिनांक 22 जून 2021 के साथ प्रेषित प्रारूपों पर सूचना यथा अधिकांश कार्मिक का इयूटी आदेश, जिलाधिकारी की संस्तुति आदि अभिलेख अपलोड नहीं किया गये हैं, सभी अपर जिलाधिकारी, वित्त एवं राजस्व से जूम मीटिंग एवं कन्ट्रोल रूप के माध्यम से सभी वांछित अभिलेख अपलोड करने हेतु कई बार निर्देश दिये गये हैं।

3- उक्त के संबंध में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि उपरोक्त शासनादेश दिनांक 22.06.2021 के क्रम में निम्नलिखित अभिलेख राहत आयुक्त कार्यालय की वेबसाइट <https://rahat.up.nic.in> पर दिनांक 07.08.2021 तक अपलोड कराना सुनिश्चित करें: -

1. सक्षम अधिकारी द्वारा निर्गत मृत्यु पंजीकरण प्रमाण पत्र।
2. मृतक कार्मिक की आर० टी० पी० सी० आर०/एंटीजन/सी० टी० स्कैन की पठनीय प्रति।
3. कोविड इयूटी आदेश की पठनीय प्रति।
4. जिलाधिकारी/कार्यालयाध्यक्ष का कोविड इयूटी प्रमाण पत्र (शासनादेश दि० 22.06.2021 में निर्धारित प्रारूप -1 पर)
5. मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा निर्गत कोविड मृत्यु प्रमाण पत्र (शासनादेश दि० 22.06.2021 में निर्धारित प्रारूप - 2 पर)।
6. अपर जिलाधिकारी वित्त एवं राजस्व का उपरोक्त सभी अभिलेखों के सत्यानोपरान्त अभिलेख सत्यापन प्रमाण पत्र (संलग्न प्रारूप-3 पर)।
7. जिलाधिकारी का संस्तुति पत्र।

अपर जिलाधिकारी क्रमांक 01 से 05 तक के सभी प्रमाण पत्रों/अभिलेखों की सत्यता का प्रमाणित करके ही वेबसाइट पर उपलोड करेंगे। सभी वांछित अभिलेखों पर सक्षम अधिकारी के हस्ताक्षर, सील/मोहर तथा निर्गत करने वाले कार्यालय का पत्रांक भी स्पष्ट अंकित होना चाहिए। सम्बन्धित अपर जिलाधिकारी सभी अभिलेखों की सत्यता की जांच स्वयं करने के उपरान्त ही वेबसाइट पर अपलोड कराना सुनिश्चित करें।"

20. अब, जिला मजिस्ट्रेट ने अपने व्यक्तिगत शपथपत्र में कहा है कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 31.10.2023 को उन्हें व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करने के निर्देश दिए जाने के बाद, उन्होंने सही तथ्यों का पता लगाने के उद्देश्य से, अपने दिनांक 10.11.2023 के आदेश द्वारा एक तीन-सदस्यीय समिति का गठन किया। इस समिति की अध्यक्षता अपर जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), फतेहपुर द्वारा की गई और इसमें मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फतेहपुर तथा मुख्य कोषाधिकारी, फतेहपुर को शामिल किया गया, और उन्हें दो दिनों के भीतर जाँच रिपोर्ट

सौंपने का निर्देश दिया गया। जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9 में कहा गया है कि उनके द्वारा गठित उपरोक्त समिति ने अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत खागा, फतेहपुर, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फतेहपुर की रिपोर्टों और याचिकाकर्ता के दिनांक 14.11.2023 के लिखित बयान को प्राप्त करने के बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उपरोक्त पैराग्राफ संख्या 9 में, जहाँ तक याचिकाकर्ता के 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के दावे का प्रश्न है, अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत, खागा की उस रिपोर्ट के मुख्य अंश को उद्धृत किया गया है जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त समिति ने विचारार्थ लिया था। जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9(a) में उद्धृत रिपोर्ट का हिस्सा इस प्रकार है:

"इस प्रकार नगर पंचायत, खागा के अधिशासी अधिकारी/कार्यालय अध्यक्ष की हैसियत से मृतक श्रीमती आशा देवी पत्नी गोपालदास, सफाई कर्मी, नगर पंचायत, खागा की डियूटी कोविड-19 की रोकथाम, उपचार व उससे बचाव के कार्यों में डियूटी नहीं लगायी गयी थी तथा कोविड-19 के संक्रमण से मृत्यु होने का साक्ष्य एल-02 सी० एच० सी० के चिकित्सा प्रभारी द्वारा अथवा याची आनानंद कुमार द्वारा भी नहीं उपलब्ध कराया गया है।

उक्त के क्रम में निर्गत शासनादेश संख्या: 411/एक-11-2021-04 (जी)/ 2015-टी० सी० दिनांक 22.06.2021 में दिये गये दिशा-निर्देशों के आलोक में मृतक श्रीमती आशा देवी के परिवारिक जनों को मु० 50.00 लाख रु० की सहायता राशि देय नहीं है।"

21. मुख्य चिकित्सा अधिकारी की रिपोर्ट, जिसके आधार पर अपर जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) की समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9(b) में उद्धृत की गई है, जो इस प्रकार है:

"उक्त प्रकरण को संज्ञान लेते हुये मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा 03 चिकित्सकों की संयुक्त टीम को गठित कर जांच कर जांच आख्या 03 दिवस के अन्दर प्रस्तुत करने के निर्देश दिये गये थे। जांच समिति द्वारा प्रकरण की जांच कर मृतका आशा पत्नी राम गोपाल के उपचार सम्बन्धित सभी अभिलेख सामु० स्वा० केन्द्र हरदो, खागा से प्राप्त करके जांच समिति द्वारा अभिलेखों का अवलोकन किया गया, जांच में जो तथ्य प्रकाश में आये वह बिन्दुवार निम्नवत है-

1. मृतिका आशा देवी पत्नी गोपालदास निवासी न्यूनगढी खागा फतेहपुर उम्र लगभग 55 वर्ष दिनांक 26.04.2021 को समय सांय 5.00 बजे एल 0-2 फैशलिटी, रायसीना हॉस्पिटल, इलाहाबाद इन्स्टिट्यूट मेडिकल साइन्सेज पुराईन मोड खागा फतेहपुर में भर्ती हुई थी उसकी मृत्यु दिनांक 27.04.2021 को सुबह 8.10 बजे उपरोक्त हास्पिटल में हुई थी। मृतिका महिला पिछले एक सप्ताह से बिमार थी किन्तु उसका कोविड-19 एण्टीजन टेस्ट भी नहीं कराया गया था जबकि एण्टीजन टेस्ट जनपद में सभी चिकित्सा इकाईयों व मोबाइल टीम द्वारा घर पर भी हो रहा था, फिर भी मृतिका महिला के परिजनों द्वारा एण्टीजन जांच नहीं करायी गयी और इस प्रकरण में आर० टी० पी० सी० आर० जांच/सी० टी० स्कैन चेस्ट भी नहीं कराया गया है। जिस कारण मुख्य चिकित्सा

अधिकारी द्वारा प्रारूप-2 पर इस आशय का प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं कराया जा सकता की कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुई है। जो कि इस प्रकरण में अनुग्रह राशि का लाभ लेने हेतु अति आवश्यक है।

2. मृतिका महिला पहले से ही मधुमेह रोग से ग्रसित थी जिसमें शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिससे मरीज के अन्य रोगों से संक्रमित होने की सम्भावना बढ़ जाती है जिससे मरीज की मृत्यु हो भी सकती है।

3. मृतिका आशा देवी की भर्ती फाइल (केश सीट) पर DIAGNOSIS सम्भावित Covid 19 PNEUMONITIS लिखा गया है किन्तु मृतिका महिला का सी० टी० स्कैन चेस्ट नहीं हो सका, जिस कारण मृतिका महिला के कोविड-19 PNEUMONITIS से ग्रसित होने की पुष्टि नहीं की जा सकती है।

4. मृतिका आशा की भर्ती फाइल के अनुसार उक्त मृतिका आशा एक हफ्ते से बुखार से पीड़ित थी तथा उसे सांस लेने में कठनाई हो रही थी यह लक्षण अन्य बीमारियों जैसे - सी० ओ० पी० डी०, न्यूमोनिया, सांस नली का संक्रमण आदि रोगों में भी हो सकता है।

5. चूँकि उस समय कोविड-19 की लहर चल रही थी ऐसी स्थिति में कोई भी मरीज जिसको बुखार आ रहा हो और सांस लेने में दिक्कत हो और आक्सीजन सैचुरेशन कम हो तो ऐसे सभी मरीजों को कोविड-19 से ग्रसित मानकर एल 0-2 हॉस्पिटल में भर्ती करके उनका इलाज किया जाता था किन्तु कोविड-19 इन्फेक्शन आर० टी० पी० सी० आर जांच/सी० टी० स्कैन / एण्टीजन की रिपोर्ट के आधार पर पॉजिटिव माना जाता था।

6. अपर मुख्य सचिव शासन के शासनादेश संख्या-1394/एक-10-2021-33 (08)/2021 लखनऊ दिनांक 26 जुलाई 2021 के द्वारा वर्ष 2021-22 में कोविड-19 की रोकथाम बचाव व उपचार में लगाये गये कार्मिकों की कोविड संक्रमण से मृत्यु की दशा में उनके आश्रितों को 50.00 लाख की एकमुश्त अनुग्रह धनराशि दिये जाने के सम्बन्ध में योजना के लाभ करने हेतु शासनादेश बिन्दु संख्या-2 पर अंकित मृतक कर्मों की आर० टी० पी० सी० आर/ एण्टीजन / सी० टी० स्कैन की रिपोर्ट की पठनीय प्रति आवश्यक है जो इस प्रकरण में उपलब्ध नहीं है।

निष्कर्ष- मेरे द्वारा गठित जाँच समिति द्वारा उपलब्ध करायी गयी जाँच आख्या का अवलोकन किया गया। मैं जाँच समिति की आख्या / निष्कर्ष से सहमत हूँ। मेरा भी यही मानना है कि यह सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है कि मृतिका महिला की मृत्यु कोविड-19 से हुई थी। मृतिका महिला पहले से ही मधुमेह रोग से ग्रसित थी जिस रोग में मरीज की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है जिससे मरीज में अन्य संक्रमण होने की सम्भावना अधिक रहती है और संक्रमण तेजी से बढ़ता है और रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। उपरोक्त प्रकरण में मृतिका महिला की न तो आर० टी० पी० सी० आर० जाँच / एण्टीजन टेस्ट / सी० टी० स्कैन चेस्ट कराया गया जिस कारण से शासनादेश दिनांक 22.06.2021 के साथ संलग्न प्रारूप -02 पर मुख्य चिकित्साधिकारी, फतेहपुर

द्वारा इस आशय का प्रमाण पत्र भी उपलब्ध नहीं कराया जा सकता कि कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुई है।"

22. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त जांच समिति के समक्ष याचिकाकर्ता के दिनांक 14.11.2023 के बयान को जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 9(c) में उद्धृत किया गया है, जो इस प्रकार है:

"प्रार्थी की माता आशा देवी पत्नी गोपालदास, नगर पंचायत खागा में सफाई कर्मचारी के पद पर कार्यरत थी। कोविड-19 के दौरान डियूटी करते समय बीमार हो गयी थी। इलाज हेतु कोविड-19 L-2 हास्पिटल छिमी पुरइन में दिनांक 26.04.2021 को भर्ती करायी गयी थी। दिनांक 27.04.2021 को L-2 हास्पिटल में ही उनकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु उपरान्त शासन से मिलने वाले 50.00 लाख अनुदान राशि के लिये मेरी माता के पक्ष में जो अभिलेख थे। मेरे द्वारा स्थानीय निकाय, लखनऊ जिलाधिकारी, फतेहपुर अधिशाषी अधिकारी, नगर पंचायत, खागा तथा मा० उच्च न्यायालय, इलाहाबाद को प्रस्तुत किये जा चुके हैं।"

23. जिला मजिस्ट्रेट द्वारा नियुक्त और अपर जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक) की अध्यक्षता वाली समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो 14.11.2023 की ही है। याचिकाकर्ता की माता की मृत्यु के कारण अनुग्रह राशि के दावे के संबंध में इस समिति के जो निष्कर्ष हैं, उन्हें जिला मजिस्ट्रेट के शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 10 में उद्धृत किया गया है, जो इस प्रकार हैं:

"(2) अनुग्रह राशि दिये जाने के सम्बन्ध में समिति का निष्कर्ष

याची को अनुग्रह राशि दिये जाने के सम्बन्ध राजस्व अनुभाग-11 शासनादेश संख्या-249/एक-11-2020-04 (जी) / 2015-टी० सी० दिनांक 11.04.2020 शासनादेश संख्या-411/एक-11-2021-04 (जी) / 2015-टी० सी० दिनांक 22 जून 2021 तथा उ०प्र० राजस्व लखनऊ अनुभाग-10 से निर्गत शासनादेश संख्या-1394/एक-10-2021-33 (08)/2021 दिनांक 26 जुलाई 2021 में अनुग्रह राशि दिये जाने की व्यवस्था दी गयी है तथा शासनादेश संख्या-411/एक-11-2021-04 (जी) / 2015-टी० सी० दिनांक 22 जून 2021 में स्पष्ट उल्लेख है कि "कि चिकित्सा विभाग के कार्मिकों के अलावा ऐसे कार्मिकों को जिनकी डियूटी कार्यालयाध्यक्ष / जिलाधिकारी द्वारा कोविड की रोकथाम, बचाव अथवा उपचार में लगायी गयी है की कोविड संक्रमण से मृत्यु की दशा में उनके आश्रितों को रु० 50.00 की एकमुश्त अनुग्रह धनराशि दिये जाने का निर्णय लिया गया है।

जिलाधिकारी द्वारा सम्बन्धित कार्मिक की कोविड संक्रमण से मृत्यु पर उसके आश्रितों को अनुग्रह धनराशि की स्वीकृति करके सभी अभिलेखों सहित धनराशि अवमुक्त करने हेतु शासन को संस्तुति प्रेषित की जायेगी। जिलाधिकारी द्वारा केवल उन्हीं कार्मिकों के आश्रितों को अहेतुक सहायता राशि (रु० 50.00 लाख) स्वीकृत की जायेगी, जिनकी डियूटी कार्यालयाध्यक्ष / जिलाधिकारी द्वारा कोविड की रोकथाम, बचाव अथवा उपचार में लगायी गयी है एवं कोविड संक्रमण से उनकी मृत्यु हुई है। इस हेतु कार्यालयाध्यक्ष द्वारा संलग्न प्रारूप-1 पर इस आशय का प्रमाण पत्र उपलब्ध कराया जायेगा। कि सम्बन्धित कार्मिक कोविड-19 की रोकथाम, बचाव

अथवा उपचार के कार्यों के लिए नियुक्त था एवं मुख्य चिकित्साधिकारी द्वारा संलग्न प्रारूप 02 पर इस आशय का प्रमाण पत्र उपलब्ध कराया जायेगा कि सम्बन्धित कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुई है।"

1. इस सम्बन्ध में मुख्य चिकित्साधिकारी, फतेहपुर की जाँच आख्या दिनांक 13.11.2023 में स्पष्ट किया गया है कि मृतिका आशा देवी पत्नी गोपालदास निवासी न्यूनगढी खागा फतेहपुर उम्र लगभग 55 वर्ष दिनांक 26.04.2021 को समय सांय 5:00 बजे एल 0-2 फैशलिटी, रायसीना हॉस्पिटल, इलाहाबाद इन्स्टिट्यूट मेडिकल साइन्सेज पुराईन मोड खागा फतेहपुर में भर्ती हुई थी उसकी मृत्यु दिनांक 27.04.2021 को सुबह 8:10 बजे उपरोक्त हॉस्पिटल में हुई थी। मृतिका महिला पिछले एक सप्ताह से बीमार थी किन्तु उसका कोविड-19 एण्टीजन टेस्ट भी नहीं कराया गया था जबकि एण्टीजन टेस्ट जनपद में सभी चिकित्सा इकाईयों व मोबाइल टीम द्वारा घर पर भी हो रहा था, फिर भी मृतिका महिला के परिजनों द्वारा एण्टीजन जांच नहीं करायी गयी और इस प्रकरण में आर० टी० पी० सी० आर० जांच/सी० टी० स्कैन चेस्ट भी नहीं कराया गया है तथा मृतिका महिला पहले से ही मधुमेह रोग से ग्रसित थी, जिसमें शरीर की प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है। जिससे मरीज के अन्य रोगों से संक्रमित होने की सम्भावना बढ़ जाती है, जिससे मरीज की मृत्यु भी हो सकती है। मृतिका आशा की भर्ती फाइल के अनुसार उक्त मृतिका आशा एक हफ्ते से बुखार से पीड़ित थी तथा उसे सांस लेने में कठनाई हो रही थी यह लक्षण अन्य बीमारियों जैसे- सी० ओ० पी० डी०, न्यूमोनिया, सांस नली का संक्रमण आदि रोगों में भी हो सकता है। चूंकि उस समय कोविड-19 की लहर चल रही थी ऐसी स्थिति में कोई भी मरीज जिसको बुखार आ रहा हो और सांस लेने में दिक्कत हो और आक्सीजन सैचुरेशन कम हो तो ऐसे सभी मरीजों को कोविड-19 से ग्रसित मानकर L-2 हॉस्पिटल में भर्ती करके उनका इलाज किया जाता था। किन्तु कोविड-19 इन्फेक्शन आर० टी० पी० सी० आर० जांच/सी० टी० स्कैन /एण्टीजन की रिपोर्ट के आधार पर पॉजीटिव माना जाता था। जिस कारण मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा प्रारूप-2 पर इस आशय का प्रमाण पत्र उपलब्ध नहीं कराया जा सकता कि कार्मिक की मृत्यु कोविड-19 के संक्रमण से हुई है तथा मृतक कार्मिक की डियूटी न तो जिलाधिकारी द्वारा और न ही कार्यालयाध्यक्ष (अधिकांशी अधिकारी नगर पंचायत, खागा) द्वारा कोविड-19 के रोकथाम, बचाव अथवा उपचार के कार्यों के लिए डियूटी लगायी गयी थी, जिससे इस आशय का भी प्रमाण पत्र प्रारूप-01 पर निर्गत नहीं किया गया है। राजस्व अनुभाग-11 शासनादेश संख्या-411/एक-11-2021-04 (जी) / 2015-टी0 सी0 दिनांक 22 जून 2021 में अनुग्रह राशि प्राप्त करने हेतु प्रारूप-01 तथा प्रारूप-02 पर प्रमाण-पत्र उपलब्ध कराया जाना जिलाधिकारी द्वारा कोविड संक्रमण से मृत्यु पर उनके आश्रितों को अनुग्रह धनराशि की स्वीकृति करके सभी अभिलेखों सहित धनराशि अवमुक्त करने हेतु शासन को संस्तुति प्रेषित करने हेतु आवश्यक है।

इस प्रकार मुख्य चिकित्साधिकारी, फतेहपुर की जाँच आख्या दिनांक 13.11.2023 तथा अधिकांशी अधिकारी नगर पंचायत, खागा की जाँच आख्या दिनांक 11.11.2023 एवं शासनादेशों में दिये गये दिशा-निर्देशों में दी गयी विधि व्यवस्थाओं के आधार पर मृतिका आशा देवी पत्नी गोपालदास सफाई कर्मी नगर पंचायत, खागा की मृत्यु के सम्बन्ध में उनके आश्रितों को अनुग्रह राशि के रूप में मु0 50.00 लाख रु० की सहायता नियमानुसार देय नहीं है। परन्तु मृतक महिला आशा नगर पंचायत, खागा में सफाई कर्मी के रूप में कार्यरत था तथा

चिकित्साधिकारी द्वारा कोविड-19 मानते हुए मृतका आशा देवी का उपचार किया जा रहा था। ऐसी स्थिति में मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हुए मृतका के पारिवारिक जनों को अनुग्रह राशि दिये जाने के सम्बन्ध में शासन से उचित मार्ग दर्शन प्राप्त किया जाना भी उचित प्रतीत होता है।"

24. जिला मजिस्ट्रेट ने अपने व्यक्तिगत शपथपत्र के पैराग्राफ संख्या 12, 13, 14 और 15 में याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने के लिए जो पक्ष रखा है, वह इस प्रकार है कि सबसे पहले, ऐसा कोई सबूत उपलब्ध नहीं है, जैसे कि संबंधित कार्यालय अधीक्षक का प्रमाण पत्र, जिससे यह सिद्ध हो सके कि मृतक को कोविड-19 बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के लिए किसी इयूटी पर तैनात किया गया था। दूसरा, मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फतेहपुर द्वारा ऐसी कोई लैब रिपोर्ट/टेस्ट रिपोर्ट या प्रमाणीकरण नहीं दिया गया है कि मृतक श्रीमती आशा की मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई थी। इन दस्तावेजों के अभाव में, दिनांक 11.04.2020 (उसी तिथि को संशोधित), 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों में निर्धारित शर्तों की पूर्ति नहीं होती है, जो याचिकाकर्ता को उसकी माता के निधन के कारण 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि प्राप्त करने का हकदार बनाती हैं। अपर मुख्य सचिव (राजस्व), उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ ने याचिकाकर्ता के दावे का कमोबेश उन्हीं आधारों पर खंडन किया है जो जिला मजिस्ट्रेट के व्यक्तिगत शपथपत्र में बताए गए हैं। इसके अतिरिक्त, अपर मुख्य सचिव ने अपने शपथपत्र के साथ जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर द्वारा पारित दिनांक 16.12.2023 के आदेश की एक प्रति संलग्न की है, जिसमें याचिकाकर्ता के 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के दावे को पूर्वोक्त आधारों पर खारिज कर दिया गया है। दिनांक 16.12.2023 का यह आदेश इस रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान अस्तित्व में आया है। यदि हमारे द्वारा प्रतिवादियों के पक्ष को स्वीकार नहीं किया जाता है, तो अपर मुख्य सचिव के 18.01.2024 को दाखिल शपथपत्र के साथ अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न दिनांक 16.12.2023 के आदेश को रद्द करना होगा, भले ही इस तथ्य के बावजूद कि याचिकाकर्ता ने संशोधन के माध्यम से इस आदेश को चुनौती नहीं दी है। यह आदेश पेंडेंट लाइट (मुकदमे के लंबित रहने के दौरान) तब अस्तित्व में आया जब हमने 31.10.2023 को आदेश पारित कर दिए थे। याचिकाकर्ता के दावे के लिए घातक परिणामों की शर्त पर यह आग्रह करना अत्यंत तकनीकी होगा कि जिला मजिस्ट्रेट के 16.12.2023 के आदेश को चुनौती देने के लिए याचिका में संशोधन किया जाना चाहिए था। इस आदेश की वैधता का निर्णय उसी रिट याचिका के ढांचे के भीतर करना होगा जिसे याचिकाकर्ता ने मूल रूप से दायर किया था।

25. चूँकि मामला वित्तीय परिणामों से जुड़ा था और यह अनुग्रह राशि के समान रूप से भुगतान करने की सरकार की नीति के कार्यान्वयन के बारे में था, इसलिए हमने प्रमुख सचिव (राजस्व) को स्वयं उपस्थित होने और यदि वे चाहें तो सरकार का पक्ष स्पष्ट करने का अवसर दिया। गुरु प्रसाद, प्रमुख सचिव (राजस्व), उत्तर प्रदेश सरकार, इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए और उन्होंने संबंधित अवधि के दौरान कोविड-19 पीड़ितों के आश्रितों को अनुग्रह मुआवजा देने की नीति की शर्तों के बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने नीति की उस विशेषता पर प्रकाश डाला, जिसमें कहा गया है कि अनुग्रह मुआवजा उन कर्मचारियों को दिया जाना है जो कोविड-19 की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के संबंध में इयूटी पर तैनात किए गए थे। उन्होंने हमारे समक्ष कहा कि याचिकाकर्ता की माता, यद्यपि एक सफाई कर्मी थीं, लेकिन उन्हें कोविड-19 बीमारी की

रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के संबंध में इयूटी पर नियुक्त नहीं किया गया था। उन्होंने नीति की विशेषताओं को विस्तार से समझाया, जो कमोबेश वैसी ही थीं जैसा कि शपथपत्र में कहा गया है।

26. अब, जैसा कि स्पष्ट है, याचिकाकर्ता के दावे को मुख्य रूप से दो आधारों पर खारिज किया गया है। पहला, इस बात के साक्ष्य का अभाव कि उनकी माता को कार्यालय प्रमुख या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा कोविड-19 बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार से संबंधित किसी इयूटी पर तैनात किया गया था; और दूसरा, निर्धारित तरीके से या अन्य बाहरी साक्ष्यों द्वारा यह दिखाने के लिए साक्ष्य का अभाव कि उनकी मृत्यु कोविड-19 संक्रमण से हुई थी। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, सरकार के लिए नीतियां तैयार करना हमारा अधिकार क्षेत्र नहीं है, विशेष रूप से वे जो राजकोष पर वित्तीय बोझ डालती हैं। यदि राज्य सरकार ने 11.04.2020, 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों में निहित नीति तैयार नहीं की होती, तो हमारा यह काम नहीं होता कि हम यह कहें कि उन कोविड-19 महामारी के पीड़ितों के आश्रितों को भी अनुग्रह वित्तीय सहायता देने के लिए नीति बनाई जाए, जिन्हें कोविड-19 की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के लिए इयूटी पर तैनात किया गया था और जिनकी इसके परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई। लेकिन, एक बार जब राज्य सरकार इस सहायता को देने के लिए एक नीति लेकर आई है, जैसा कि इस निर्णय में पहले ही कहा जा चुका है, तो यह हमारा अनिवार्य कर्तव्य है कि हम यह सुनिश्चित करें कि नीति को निष्पक्ष, न्यायपूर्ण और तर्कसंगत तरीके से लागू किया जाए। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि नीति के तहत हकदार किसी भी व्यक्ति को किसी अताकिंक मांग या मानक का सहारा लेकर, या किसी अन्य समान तरीके से, मनमाने या सनक भरे ढंग से बाहर न किया जाए, जब वह नीति के अनुसार ठोस रूप से इसका हकदार हो।

27. यह सच है कि एक के बाद एक आए शासनादेशों में, मानक कागजी कार्रवाई को उत्तरोत्तर परिष्कृत (progressive refinement) करके नीति के क्रियान्वयन को और बेहतर बनाया गया है, जिसमें नीति के अंतर्गत आने वाले कर्मचारी के आश्रित के लिए 50 लाख रुपये की अनुग्रह राशि के दावे के समर्थन में आवश्यक दस्तावेजों को भी शामिल किया गया है। हमारी स्पष्ट राय में, वास्तविक और सद्भावी दावों को केवल इसलिए विचार से बाहर कर देना अत्यंत मनमाना होगा क्योंकि सूक्ष्म विवरणों वाले आवश्यक दस्तावेज या कागजात उपलब्ध नहीं हैं। बेशक, इस बात का पता लगाया जाना चाहिए कि क्या मृतक वास्तव में उन तीनों शासनादेशों द्वारा निर्धारित बुनियादी मानदंडों को पूरा करता था, जो उसके आश्रितों को अनुग्रह मौद्रिक राहत का हकदार बनाते हैं। पात्रता के लिए दो मुख्य अनिवार्य आवश्यकताएं ये तथ्य हैं कि संबंधित कर्मचारी को कोविड-19 बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के संबंध में इयूटी पर तैनात किया गया था और ऐसी इयूटी का पालन करते समय वह वायरस से संक्रमित हुआ/हुई, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

28. दिनांक 22.06.2021 के शासनादेश के साथ दो निर्धारित प्रपत्र संलग्न हैं। पहला 'कोविड-19 इयूटी प्रमाणपत्र' से संबंधित है, जिस पर या तो जिला मजिस्ट्रेट या मृतक के कार्यालय प्रमुख के हस्ताक्षर होने चाहिए; और दूसरा प्रपत्र-2 है, जो उसी आदेश के साथ संलग्न है और यह 'कोविड-19 मृत्यु प्रमाणपत्र' है जिसे उस जिले के मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी किया जाना आवश्यक है जहाँ मृतक तैनात था। इन आवश्यकताओं को

26.07.2021 के शासनादेश द्वारा और अधिक विस्तृत और परिष्कृत किया गया, जिससे 11.04.2020 के शासनादेश के तहत देय अनुग्रह राशि के दावे के लिए संलग्न किए जाने वाले दस्तावेजों की कुल संख्या सात हो गई। 11.04.2020 के शासनादेश (जो उसी तिथि के बाद के आदेश द्वारा संशोधित हुआ) में कार्यालय प्रमुख द्वारा जारी एक प्रमाणपत्र की आवश्यकता थी कि संबंधित कर्मचारी कोविड-19 बीमारी की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार में लगा हुआ था, और मुख्य चिकित्सा अधिकारी से एक प्रमाणपत्र कि उसकी मृत्यु कोविड-19 संक्रमण से हुई थी। हालाँकि, प्रपत्र 1 और 2 में प्रमाणपत्र 22.06.2021 के शासनादेश जारी होने के बाद दिए जा सकते थे, और यहाँ तक कि मृतक आशा के लिए वे दस्तावेज भी बाद में तैयार किए जा सकते थे जो 26.07.2021 के शासनादेश की आवश्यकता हैं, लेकिन ये उस समय मौजूद नहीं हो सकते थे जब आशा की मृत्यु हुई। उनकी मृत्यु 27.04.2021 को हुई थी, यानी 11.04.2020 के शासनादेश और उसी तिथि के संशोधन के जारी होने के बाद। बाद के आदेश (जून और जुलाई 2021 वाले) तब तक अस्तित्व में नहीं आए थे। फिर भी, जैसा कि पहले ही कहा गया है, यह बात बहुत निर्णायक नहीं हो सकती है।

29. राज्य की ओर से इस बात पर बहुत जोर दिया गया है कि कार्यालय प्रमुख से इस आशय के ड्यूटी प्रमाणपत्र के अभाव में कि मृतक को कोविड-19 की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार से संबंधित ड्यूटी सौंपी गई थी, और मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी उसकी मृत्यु के संबंध में अन्य प्रमाणपत्र, कि मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई थी, के बिना, याचिकाकर्ता को नीति का लाभ देने का बिल्कुल कोई तरीका नहीं है। यह याद रखना होगा कि राज्य सरकार ने जो नीति बनाई थी, वह एक हितकारी उपाय था, जिसे ऐसे समय में लागू किया गया था जब जीवन के बारे में अनिश्चितता हवाओं में तैर रही थी। यह वह समय था जब कोविड-19 के घातक डेल्टा वेरिएंट ने हमारे देश में दस्तक दी थी और लोग इस बात का सुराग लगे बिना दम तोड़ रहे थे कि वे संक्रमित कैसे हुए। यह हवा में था, एक वास्तव में अत्यंत संक्रामक और घातक संक्रमण। हम इन तथ्यों का न्यायिक संज्ञान लेते हैं क्योंकि हम सभी इसके साक्षी रहे हैं। यह वह समय था जब डॉक्टर संकट में अस्पताल लाए गए हर व्यक्ति को बचाने की पूरी कोशिश कर रहे थे, लेकिन रोगी के प्रबंधन के बारे में बहुत अधिक जानकारी नहीं थी। कुछ जीवित बचे; अन्य की मृत्यु हो गई। हम इस तथ्य का भी न्यायिक संज्ञान लेते हैं, और प्रतिवादियों ने भी इससे इनकार नहीं किया है, कि जिन रोगियों को कोविड-19 के लक्षणों के साथ गंभीर स्थिति में अस्पताल में भर्ती किया गया था, उन्हें इसी धारणा पर भर्ती किया गया था कि वे इस घातक वायरस की चपेट में आ गए हैं। मृतक आशा की 'डेथ समरी/मृत्यु प्रमाणपत्र' में, L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर के ऑन-ड्यूटी मेडिकल ऑफिसर द्वारा निदान के लिए लिखा गया है कि वह 'कोविड-19 न्यूमोनाइटिस' की एक संदिग्ध मामला थी। अब, मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने आशा के मृत्यु प्रमाणपत्र में यह प्रमाणित नहीं किया है कि उनकी मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई थी।

30. हम पहले शासनादेशों की दूसरी आवश्यकता पर विचार कर रहे हैं, यानी यह प्रमाणीकरण कि क्या आशा की मृत्यु वास्तव में कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई थी। हम उन परिस्थितियों का पहले ही उल्लेख कर चुके हैं जो आशा की मृत्यु के समय व्याप्त थीं। हमें चिकित्सा अधिकारी प्रभारी, L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, इलाहाबाद इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, फतेहपुर (अधीक्षक, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, खागा, फतेहपुर)

द्वारा प्रस्तुत दिनांक 19.08.2021 की उस रिपोर्ट पर भी ध्यान देना चाहिए, जिसे अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत, खागा, जनपद फतेहपुर द्वारा याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने वाले आक्षेपित आदेश दिनांक 11.11.2021 में उद्धृत किया गया है। वह रिपोर्ट इस प्रकार है:

"आशा देवी दिनांक 26.04.2021 समय 5:00 PM को सांस लेने की तकलीफ एवं ऑक्सीजन लेवल कम होने के कारण L-2 हास्पिटल में भर्ती करायी गयी थी। उनका इलाज कोविड-19 का केस मानकर किया गया। दिनांक 27.04.2021 को R.T.P.C.R. सेम्पल लेने से पूर्व 8:10 AM पर मृत्यु हो गयी, फलस्वरूप कोविड-19 से सम्बन्धित जांच नहीं की जा सकी।"

31. अब, याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने वाले आक्षेपित आदेश दिनांक 11.11.2021 में इस आधार पर तर्क दिया गया है कि चूंकि आशा की मृत्यु से पहले RT-PCR जांच के लिए कोई नमूना नहीं लिया जा सका था, इसलिए यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उनकी मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई बीमारी से हुई थी। इसी तरह की टिप्पणियां जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर द्वारा रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान पारित अपने आदेश दिनांक 16.12.2023 में दर्ज की गई हैं, जिसमें याचिकाकर्ता के दावे को खारिज कर दिया गया है। वहाँ यह कहा गया है कि अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत, खागा, जनपद फतेहपुर की रिपोर्ट दिनांक 11.11.2021 और अपर जिला मजिस्ट्रेट (न्यायिक), फतेहपुर, वरिष्ठ कोषाधिकारी, फतेहपुर तथा मुख्य चिकित्सा अधिकारी, फतेहपुर की संयुक्त समिति द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट दिनांक 14.11.2023 से यह स्पष्ट है कि आशा को 26.04.2021 को शाम 5:00 बजे सांस लेने में कठिनाई और ऑक्सीजन के कम स्तर के कारण अस्पताल में भर्ती कराया गया था। विशेष रूप से यह कहा गया है कि उन्हें L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर (सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, खागा, फतेहपुर) में भर्ती किया गया था। उन्हें कोविड-19 का रोगी मानकर ही उपचार दिया गया था। लेकिन, 27.04.2021 को, इससे पहले कि RT-PCR जांच के लिए उनका नमूना लिया जा पाता, सुबह 8:10 बजे उनकी मृत्यु हो गई।

32. तथ्यों से निकाले गए गणितीय निष्कर्ष और कानूनी निष्कर्ष के बीच अक्सर, यदि हमेशा नहीं, तो एक निर्णायक अंतर होता है। प्रतिवादियों ने इस मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध निर्णय देने के लिए संदर्भित शासनादेशों के शाब्दिक अर्थों का सहारा लिया है, क्योंकि जिले के मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा जारी ऐसा कोई प्रमाणपत्र नहीं है जो यह कहता हो कि उनकी मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई थी। बाद में जारी किए गए शासनादेश के अनुसार, मुख्य चिकित्सा अधिकारी को निर्धारित प्रोफार्मा में RT-PCR या रैपिड एंटीजन टेस्ट और उसकी तिथि के आधार पर तथ्य को सत्यापित करना आवश्यक था; अन्यथा किसी अन्य स्रोत के आधार पर तथ्य को प्रमाणित करना था, जिसका उल्लेख मुख्य चिकित्सा अधिकारी को प्रमाणपत्र में करना होगा। जैसा कि जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर द्वारा दाखिल (उनके व्यक्तिगत शपथपत्र में) जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ संख्या 23 में सुझाव दिया गया है, वह 'अन्य स्रोत' फेफड़ों का सीटी स्कैन हो सकता था। स्पष्ट रूप से यह भी नहीं किया गया था। इसलिए, मुख्य चिकित्सा अधिकारी ने आवश्यक प्रमाणपत्र जारी नहीं किया कि आशा की मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के कारण हुई बीमारी से हुई थी।

33. तर्क की दो ऐसी मजबूत और ठोस पंक्तियाँ हैं, जिनके आधार पर कोई भी इस अपरिहार्य निष्कर्ष तक पहुँचेगा कि आशा की मृत्यु वास्तव में कोविड-19 बीमारी से हुई थी। पहला यह तथ्य है कि L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर के चिकित्सा अधिकारी की रिपोर्ट के अनुसार, आशा को 26.04.2021 को शाम 5:00 बजे सांस लेने में कठिनाई और ऑक्सीजन के कम स्तर के साथ भर्ती किया गया था, जहाँ उन्होंने अपनी अंतिम सांस ली। उन्हें कोविड-19 का मरीज मानकर ही उपचार दिया गया था। उनकी मृत्यु 27.04.2021 को सुबह 8.10 बजे हुई, इससे पहले कि उनके RT-PCR परीक्षण का नमूना लिया जा पाता। अब, आशा की स्थिति का यह विवरण, और इस तथ्य के साथ कि अप्रैल 2021 वह समय था जब डेल्टा वेरिएंट ने व्यापक कोविड-19 बीमारी और मृत्यु के साथ कहर बरपाया था, किसी को भी, यहाँ तक कि उस समय के किसी डॉक्टर को भी, किसी ठोस मेडिकल टेस्ट के अभाव में इस निष्कर्ष पर पहुँचाने के लिए पर्याप्त होगा कि उनकी मृत्यु संभवतः कोविड-19 संक्रमण से ही हुई थी। सांस लेने में तकलीफ और ऑक्सीजन का कम स्तर, और अस्पताल में भर्ती होने के कुछ ही घंटों के भीतर मृत्यु हो जाना, कोविड-19 बीमारी के स्पष्ट और अचूक लक्षण हैं।

34. यह सच है कि तीनों शासनादेशों द्वारा निर्धारित मानकों और सख्त चिकित्सा प्रोटोकॉल के लिए RT-PCR टेस्ट, रैपिड एंटीजन, या शायद छाती के सीटी स्कैन के माध्यम से सत्यापन की आवश्यकता होगी, लेकिन ऐसा नहीं किया गया था। निर्धारित चिकित्सा परीक्षणों के अभाव में, मृतक की वह नैदानिक स्थिति, जब वह बीमार पड़ी और उनकी मृत्यु हुई, किसी भी सामान्य समझ वाले व्यक्ति और यहाँ तक कि एक डॉक्टर को भी इस निष्कर्ष पर ले जाएगी कि उनकी मृत्यु सबसे अधिक संभावना के साथ, जैसा कि हमने ऊपर टिप्पणी की है, कोविड-19 से ही हुई थी।

35. अब, दूसरा कारण जिसके आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्रदिवादी वास्तव में शासनादेशों के तहत याचिकाकर्ता को मुआवजा देने के लिए उत्तरदायी हैं, वह तथ्य यह है कि आशा को कोविड-19 बीमारी के सभी लक्षणों और इसके एक संदिग्ध मामले के रूप में अस्पताल में भर्ती किया गया था। तत्कालीन प्रभावी प्रोटोकॉल के अनुसार उनका उपचार भी कोविड-19 के रोगी के रूप में ही किया गया था। ऐसे में यह बात तर्क से परे है कि यदि आशा को 26.04.2021 को शाम 5:00 बजे अस्पताल में भर्ती किया गया था, जहाँ वह केवल अगले दिन यानी 27.04.2021 की सुबह 8:10 बजे तक ही जीवित रहीं, तो L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर—जो कि एक समर्पित कोविड-19 सरकारी सुविधा केंद्र था—के डॉक्टरों को उनका रैपिड एंटीजन टेस्ट करने, RT-PCR के लिए नमूना लेने या उनके सीटी स्कैन करने से किसने रोका था। एक बार जब वे सरकारी समर्पित कोविड-19 अस्पताल की देखरेख में आ गई थीं, तो वहाँ के डॉक्टरों का यह पहला कर्तव्य था कि निर्धारित प्रोटोकॉल के अनुसार उनका कोविड-19 परीक्षण किया जाता। अगले 15 घंटे या उससे अधिक समय तक आवश्यक परीक्षण न करके, डॉक्टरों ने न केवल निर्धारित चिकित्सा प्रोटोकॉल का पालन न करके अपने कर्तव्य में लापरवाही बरती, बल्कि राज्य और प्रतिवादियों को ऐसी स्थिति में ला खड़ा किया है, जहाँ अब यह साबित करने का भार उन पर है कि आशा की मृत्यु कोविड-19 बीमारी से नहीं हुई थी। आखिरकार, याचिकाकर्ता या परिवार के अन्य सदस्यों ने मृतक को सांस लेने में अत्यधिक कठिनाई और रक्त में ऑक्सीजन के कम स्तर जैसे गंभीर लक्षणों के साथ कोविड-19 रोगियों के लिए बनी सरकारी चिकित्सा सुविधा में पहुँचाया

था। उनका उपचार एक कोविड-19 रोगी के रूप में किया गया, लेकिन उनका परीक्षण कभी नहीं हुआ। उन परिस्थितियों में मृतक या उनके तीमारदार और क्या कर सकते थे? यह सरकारी कोविड-19 समर्पित L-2 अस्पताल के डॉक्टरों का काम था कि वे आशा का वायरस परीक्षण करते। यह मामला चिकित्सा लापरवाही के बारे में नहीं है, बल्कि आशा की मृत्यु के लिए याचिकाकर्ता को निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से (अपनी नीति के अनुसार) अनुग्रह राशि का भुगतान करने की राज्य की जवाबदेही के बारे में है। सरकारी कोविड सुविधा अस्पताल के डॉक्टरों की इस तरह की चूक निश्चित रूप से प्रतिवादियों पर यह साबित करने का बोझ डालती है कि आशा की मृत्यु कोविड-19 से नहीं हुई थी। अन्यथा, परिस्थितियों की समग्रता को देखते हुए, यही निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि आशा की मृत्यु वास्तव में कोविड-19 संक्रमण से हुई थी।

36. हम पहले ही यह टिप्पणी कर चुके हैं कि 11.04.2020, 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों में निहित नीति, नागरिकों के एक निश्चित वर्ग, यानी सरकार, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों और स्थानीय निकायों के उन कर्मचारियों के आश्रितों को राहत पहुँचाने के लिए राज्य का एक कल्याणकारी उपाय है, जिन्हें कोविड-19 की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार के संबंध में झूटी पर तैनात किया गया था और जिन्होंने झूटी के दौरान वायरस से संक्रमित होने के कारण दम तोड़ दिया। इस प्रकार की नीति को लागू करने में, जो अनिवार्य रूप से राज्य द्वारा अपनाया गया एक अत्यंत महत्वपूर्ण कल्याणकारी उपाय है, एक 'उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण' अपनाया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण किसी राजस्व कानून की व्याख्या करने जैसा शाब्दिक, गणितीय या सटीक नहीं हो सकता। यदि परिस्थितियाँ दृढ़तापूर्वक यह संकेत देती हैं कि एक कर्मचारी (जो अन्यथा पात्र है) की मृत्यु कोविड-19 बीमारी के कारण हुई है, तो आवश्यक प्रमाणपत्रों के लिए सख्त आग्रह करना पूरी तरह से अनुचित होगा। अक्सर ऐसी चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में, एक वास्तविक पीड़ित के आश्रितों के लिए आवश्यक दस्तावेज़ प्राप्त करना या प्रत्येक चिकित्सा परीक्षण सुनिश्चित करना कठिन होता है। यदि तीनों शासनादेशों के प्रत्येक विवरण पर शाब्दिक आग्रह के दृष्टिकोण को स्वीकार किया जाता है, तो सबसे वास्तविक दावे—जो कि याचिकाकर्ता के मामले में पूरी तरह प्रतीत होते हैं—पूरी संभावना के साथ विफल हो जाएंगे। हमारा मानना है कि सरकार, जिला मजिस्ट्रेट और नगर पंचायत के अधिशासी अधिकारी को L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, इलाहाबाद इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइंसेज, खागा, फतेहपुर के चिकित्सा अधिकारी की दिनांक 19.08.2021 की रिपोर्ट से एक तर्कसंगत निष्कर्ष निकालना चाहिए था कि याचिकाकर्ता की माता (आशा) की मृत्यु वास्तव में कोविड-19 बीमारी से हुई थी।

37. उसी निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए कुछ अन्य कारण भी हैं, जो ऊपर बताए गए 'तर्क की दो श्रेणियों' के अतिरिक्त हैं:

38. मृत्यु के प्रमाणीकरण और उसके कारण के संबंध में हमें यह टिप्पणी अवश्य करनी चाहिए कि आशा के संदिग्ध संक्रमण की जांच करने में चिकित्सा प्रोटोकॉल के उल्लंघन के अलावा, यह L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर के चिकित्सा अधिकारी या जिले के मुख्य चिकित्सा अधिकारी का कर्तव्य था कि वे एक सटीक और सही मृत्यु प्रमाणपत्र जारी करें, जिसमें स्पष्ट रूप से इस तथ्य को प्रमाणित किया जाए कि

उनकी मृत्यु कोविड-19 बीमारी के कारण हुई थी या नहीं। यदि मृत्यु का कोई अन्य कारण था, तो उसका उल्लेख भी आशा के मृत्यु प्रमाणपत्र में स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए था। ऐसा न करके, L2 सुविधा रायसीना अस्पताल के चिकित्सा अधिकारी और मुख्य चिकित्सा अधिकारी अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहे हैं, जो इस आधार पर कि आशा की मृत्यु कोविड-19 के कारण हुई थी, मौजूदा नीति के तहत राज्य को अनुग्रह राशि के भुगतान के लिए और अधिक उत्तरदायी बनाता है। राज्य के संबंधित प्राधिकारी का कर्तव्य, जो हमारे विचार में, इस मामले में L2 सुविधा रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर के चिकित्सा अधिकारी और मुख्य चिकित्सा अधिकारी दोनों का था, कि वे मृत्यु का कारण कोविड-19 या कोई अन्य कारण प्रमाणित करें, विशेषकर उन मामलों में जहाँ कोविड-19 राहत की अपेक्षा की जाती है), **रीपक कंसल बनाम भारत संघ एवं अन्य (2021)**

9 एससीसी 251 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित किया गया है, जहाँ यह टिप्पणी की गई है: "48. अब जहाँ तक प्रतिवादी राज्य सरकारों को यह उचित निर्देश देने की प्रार्थना का संबंध है कि वे कोविड-19 के कारण मरने वालों के परिवार के सदस्यों को मृत्यु का कारण 'कोविड-19 संबंधित' बताते हुए एक आधिकारिक दस्तावेज जारी करें, तो यह ध्यान दिया जाना आवश्यक है कि यह प्रत्येक प्राधिकारी का कर्तव्य है कि वह मृत्यु का सही और सटीक कारण बताते हुए सटीक/सही मृत्यु प्रमाणपत्र जारी करे। ऐसा इसलिए ताकि कोविड-19 के कारण मरने वाले व्यक्ति के परिवार के सदस्यों को उन योजनाओं का लाभ प्राप्त करने में किसी भी कठिनाई का सामना न करना पड़े, जो सरकार द्वारा कोविड-19 से हुई मृत्यु के लिए घोषित की जा सकती हैं। मृत्यु प्रमाणपत्र में भी, यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु कोविड-19 और/या कोविड-19 के कारण हुई किसी अन्य जटिलता/बीमारी से हुई है, तो मृत्यु प्रमाणपत्र में इसका विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए।

49. हमने उपरोक्त विषय पर केंद्र सरकार की ओर से दाखिल जवाबी हलफनामे और भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद द्वारा जारी दिशा-निर्देशों के साथ-साथ संबंधित राज्य सरकारों के पंजीकरण अधिकारियों को जारी किए गए प्रारूप और दिशा-निर्देशों का अध्ययन किया है। हालांकि, हमें लगता है कि प्रक्रिया उतनी सरल होनी चाहिए जितनी वह हो सकती है। इसलिए, कोविड-19 के कारण मरने वाले व्यक्ति के परिवार के सदस्यों को मृत्यु का सटीक कारण यानी "कोविड-19 के कारण मृत्यु" बताते हुए एक आधिकारिक दस्तावेज/मृत्यु प्रमाणपत्र जारी करने के लिए केंद्र सरकार और/या उपयुक्त प्राधिकारी द्वारा एक सरलीकृत प्रक्रिया/दिशा-निर्देश जारी करने की आवश्यकता है। मार्गदर्शन के लिए, ऐसे दिशा-निर्देश यह प्रावधान कर सकते हैं कि यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु कोविड पॉजिटिव पाए जाने के बाद दो से तीन महीनों के भीतर हुई है, चाहे वह अस्पताल के भीतर हो या अस्पताल के बाहर या घर पर, तो उसके परिवार के सदस्यों को "कोविड-19 के कारण मृत्यु" बताते हुए मृत्यु प्रमाणपत्र/आधिकारिक दस्तावेज जारी किया जाना चाहिए। उसकी मृत्यु भले ही अन्य जटिलताओं के कारण हुई हो, लेकिन वे कोविड-19 के कारण ही पैदा हुई थीं। दिशा-निर्देशों में यह प्रावधान भी किया जा सकता है कि यदि पीड़ित के परिवार को इस बात की शिकायत है कि प्रमाणपत्र में मृत्यु का सही कारण दर्ज नहीं है, तो उन्हें संबंधित प्राधिकारी के पास जाकर उसे सुधरवाने का विकल्प भी दिया जाना चाहिए।"

39. इस मामले का एक और पहलू भी है। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ याचिकाकर्ता के दावे पर, उपलब्ध रिकॉर्ड के आधार पर, डॉक्टरों और राज्य के अन्य अधिकारियों की एक नामित समिति द्वारा विचार किया गया

हो, ताकि प्राथमिक निर्णय लेने वाले की ओर से कोई फैसला लिया जा सके—जैसा कि ऐसे मामलों में हमेशा किया जाता है। आखिरकार, 11.04.2020, 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों के तहत किए गए दावे पर एक ऐसी समिति द्वारा वस्तुनिष्ठ तरीके से विचार किया जाना चाहिए था जिसमें डॉक्टर और राज्य के कुछ अधिकारी शामिल हों, जो संपूर्ण सामग्री की समीक्षा कर सकें और एक सुविज्ञ निर्णय ले सकें कि क्या याचिकाकर्ता अनुग्रह राशि के लाभ का हकदार था। यहाँ जो हुआ है वह यह है कि याचिकाकर्ता के दावे को दो अधिकारियों—यानी उस नगर पंचायत के अधिशासी अधिकारी जहाँ मृतक कार्यरत थी, और इस याचिका के लंबित रहने के दौरान जिला मजिस्ट्रेट—द्वारा यह कहते हुए खारिज कर दिया गया कि यह वस्तुतः पोषणीय नहीं है। इसे 'पोषणीय नहीं' इसलिए माना गया क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा आवश्यक प्रमाणपत्र संलग्न नहीं किए गए थे या प्रस्तुत नहीं किए गए थे। हम पहले ही यह दर्शा चुके हैं कि अपेक्षित प्रमाणपत्रों को जारी करना या उन प्रमाणपत्रों का आधार बनने वाली आवश्यक कार्यवाही करना, स्वयं प्रतिवादियों के संस्थान में कार्यरत डॉक्टरों की जिम्मेदारी थी। यदि उन्होंने वे प्रमाणपत्र जारी नहीं किए थे, तो एक समिति का होना अनिवार्य था, जो संपूर्ण सामग्री और परिस्थितियों की समीक्षा करती, ताकि यह निर्णय लिया जा सके कि क्या याचिकाकर्ता का मामला वास्तव में ऐसा था जहाँ वह अनुग्रह राशि का हकदार था।

40. यदि राज्य सरकार द्वारा ऐसे दावों की समीक्षा के लिए कोई मंच बनाया जाता, तो उसे जो मानक लागू करना चाहिए था, वह है 'संभावनाओं की प्रबलता'। यदि शासनादेशों के तहत आवश्यक प्रमाणपत्र मौजूद नहीं थे, और इसमें याचिकाकर्ता या मृतक की कोई गलती नहीं थी, तो ऐसी कई अन्य परिस्थितियाँ थीं, जिनका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं, जिन पर इस उद्देश्य के लिए नियुक्त समिति को, या ऐसी समिति के अभाव में उन अधिकारियों को जिन्होंने आक्षेपित आदेश पारित किया है, एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए विचार करना चाहिए था कि क्या मृतक की वास्तव में कोविड-19 संक्रमण के कारण मृत्यु हुई थी। इसमें मृतक के अस्पताल में भर्ती होने के समय के लक्षण, मृत्यु का समय, क्या ऐसा कुछ था जो यह दर्शाए कि उसकी मृत्यु किसी अन्य बीमारी से हुई थी, और वह समकालीन समय जब मृतक बीमार पड़ी और कोविड-19 संक्रमण के प्रसार के संदर्भ में उसकी मृत्यु हुई, जैसे कारकों पर विचार किया जाना शामिल होता। ऐसी किसी समिति के अभाव में, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है, जिन अधिकारियों ने आक्षेपित आदेश पारित किए, उन्हें याचिकाकर्ता के दावे से संबंधित उपलब्ध संपूर्ण साक्ष्यों की गुण-दोषके आधार पर समीक्षा करनी चाहिए थी, उन्हें केवल शासनादेशों के तहत निर्धारित सहायक प्रमाणपत्रों की कमी के कारण इस दावे को यांत्रिक रूप से खारिज नहीं करना चाहिए था। इस संबंध में, बॉम्बे हाई कोर्ट की एक खंडपीठ के निर्णय **मयूरी कृष्णा जबरे बनाम जनरल मैनेजर, बेस्ट एवं अन्य, 2022 DGLS (Bom) 3782** का संदर्भ लिया जा सकता है। 'मयूरी कृष्णा जबरे' (उपरोक्त) मामले में निहित सिद्धांत को समझने के लिए आवश्यक तथ्यों को माननीय खंडपीठ के शब्दों में सबसे अच्छी तरह से इस प्रकार दोहराया जा सकता है:

"1. याचिकाकर्ता दिवंगत कृष्णा दौलत जबरे (इसके बाद 'कृष्णा' के रूप में संदर्भित) की बेटी है। कृष्णा 1998 से बृहन्मुंबई इलेक्ट्रिसिटी सप्लाय एंड ट्रांसपोर्ट अंडरटेकिंग (इसके बाद 'BEST' के रूप में संदर्भित) में बस कंडक्टर के रूप में कार्यरत थी। लगभग 22 वर्षों तक BEST की सेवा करने के बाद, 6 अगस्त, 2020 को

कृष्णा ने अंतिम सांस ली। वह वह समय था जब देश में कोविड-19 की पहली लहर कहर बरपा रही थी। अपनी मृत्यु से पहले, कृष्णा नियमित रूप से बस कंडक्टर के रूप में अपनी इयूटी पर उपस्थित हो रहे थे। बृहन्मुंबई महानगरपालिका (इसके बाद एमसीजीएम के रूप में संदर्भित) के डॉ. आर. वी. मेटकरी द्वारा जारी 'मृत्यु के कारण का प्रमाणपत्र' स्पष्ट रूप से सुझाव देता है कि 'एक्यूट रेस्पिरेटरी डिस्ट्रेस सिंड्रोम' के साथ-साथ 'इन्फ्लुएंजा जैसी बीमारी' कृष्णा की मृत्यु का कारण बनी। डॉ. मेटकरी ने यह भी प्रमाणित किया कि यह 'कोविड-19 मृत्यु का एक संदिग्ध मामला' था और ऐसा प्रमाणपत्र महाराष्ट्र सरकार के दिनांक 9 अप्रैल, 2020 के उस परिपत्र के अनुसार जारी किया गया था, जिसमें 'निदान किए गए संदिग्ध कोविड-19 मामलों, मृत हुए मामलों, अज्ञात और लावारिस शवों तथा मृत्यु समीक्षा प्रक्रियाओं' का विवरण दिया गया था।

2. सरकारी कर्मचारियों और अन्य सार्वजनिक सेवकों, जिनकी सक्रिय इयूटी के दौरान कोविड-19 से मृत्यु हो गई, उनके परिवार के सदस्यों के कष्टों को कम करने के लिए, महाराष्ट्र सरकार (GoM) ने 29 मई, 2020 के सरकारी संकल्प के माध्यम से कुछ परोपकारी उपाय परिकल्पित किए और उन्हें लागू किया। इनमें से एक उपाय मृतक कर्मचारी के शोक संतप्त परिवार के सदस्यों को 50 लाख रुपये का एकमुश्त अनुग्रह मुआवजा देना था। दूसरा उपाय पात्र परिवार के किसी एक सदस्य को त्वरित आधार पर अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करना था, इस तथ्य के बावजूद कि अनुकंपा नियुक्ति की सामान्य प्रक्रिया पहले से मौजूद है जिसके तहत याचिकाकर्ता को एक लंबी कतार में खड़ा होना पड़ता।

3. यह निर्विवाद है कि कृष्णा की मृत्यु के बाद, याचिकाकर्ता ने 50 लाख रुपये के अनुग्रह मुआवजे के साथ-साथ त्वरित अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन किया था। याचिकाकर्ता के आवेदन को BEST द्वारा 25 नवंबर, 2021 के आक्षेपित आदेश के माध्यम से इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि MCGM द्वारा गठित डॉक्टरों की समिति ने स्पष्ट रूप से यह प्रमाणित नहीं किया था कि कृष्णा की मृत्यु कोविड-19 के कारण हुई थी। हमने समिति की रिपोर्ट में पाया कि उसमें कृष्णा के जीवित रहते हुए किसी भी RT-PCR परीक्षण के न करवाए जाने का संदर्भ दिया गया है।

5. यह समझने के लिए कि पैराग्राफ 11 की बातें किस हद तक विश्वसनीय हैं, हमें जुलाई 2020 यानी उनकी मृत्यु से ठीक पिछले महीने के दौरान कृष्णा के उपस्थिति रिकॉर्ड को देखने का अवसर मिला। इससे यह स्पष्ट है कि साप्ताहिक अवकाश और एक-दो अन्य दिनों को छोड़कर, कृष्णा बस कंडक्टर के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए उपस्थित थे। अन्य दस्तावेजों से यह भी स्पष्ट है कि कृष्णा ने अंतिम बार 1 अगस्त, 2020 को इयूटी की थी और अंततः 6 अगस्त, 2020 की सुबह उनका निधन हो गया। ये राष्ट्रव्यापी प्रतिबंधों के दिन थे जिनका प्रत्येक नागरिक को पालन करना आवश्यक था। पैराग्राफ 11 और संबंधित दस्तावेजी साक्ष्यों से जो वैध निष्कर्ष निकाला जा सकता है, वह यह है कि अपनी मृत्यु से पहले के एक महीने की अवधि के दौरान कृष्णा अपनी इयूटी करने के लिए पूरी तरह फिट थे, इसके बावजूद कि महाराष्ट्र राज्य में अनगिनत मौतें दर्ज की जा रही थीं, जो केरल राज्य के साथ बराबरी की टक्कर पर चल रहा था। कोविड-19 के कारण आई इस भयानक महामारी ने सामान्य जीवन को पटरी से उतार दिया था, फिर भी कृष्णा जैसे कर्मचारियों को

कर्तव्य निर्वहन और रिपोर्ट करने के लिए बुलाया गया था। उनकी अंतिम इयूटी की तारीख और उनकी असामयिक मृत्यु के बीच का कम अंतराल, और डॉ. मेटकरी द्वारा प्रमाणित मृत्यु का कारण, ऐसी चीजें थीं जिन्हें BEST द्वारा केवल इस आधार पर खारिज नहीं किया जा सकता था कि डॉक्टरों की समिति ने निर्णायक रूप से यह घोषित नहीं किया था कि कृष्णा की मृत्यु कोविड-19 संक्रमण के परिणामस्वरूप हुई थी।

8. मृत्यु का कारण शव का शव-परीक्षा किए जाने पर सुनिश्चित किया जा सकता है, जिसे सामान्य बोलचाल में पोस्टमार्टम परीक्षण कहा जाता है। कृष्णा के शव का कोई पोस्टमार्टम नहीं किया जा सका क्योंकि चिकित्सा शिक्षा और अनुसंधान निदेशालय द्वारा जारी 9 अप्रैल, 2020 के परिपत्र ने संदिग्ध कोविड-19 मौतों में किसी भी पोस्टमार्टम पर रोक लगा दी थी। डॉ. मेटकरी द्वारा जारी 'मृत्यु के कारण का प्रमाणपत्र' स्पष्ट रूप से 9 अप्रैल, 2020 के उक्त परिपत्र का संदर्भ देता है और यह भी नोट करता है कि कोई पोस्टमार्टम नहीं किया गया था। पोस्टमार्टम के अभाव में, कृष्णा की मृत्यु का वास्तविक कारण शायद कभी सामने ही न आए। इसलिए, 'पोस्टमार्टम' रिपोर्ट की अनुपस्थिति के लिए याचिकाकर्ता को दोष नहीं दिया जा सकता। हालांकि, इन परिस्थितियों में जो आवश्यक था, वह 9 अप्रैल, 2020 के परिपत्र का सख्ती से पालन करना था।"

41. मयूरी कृष्णा जबरे मामले में, अनुग्रह राशि के दावे पर डॉक्टरों की एक समिति द्वारा विचार किया गया था, जो विशेषज्ञ थे, लेकिन उन्होंने इस आधार पर दावे के खिलाफ अपनी राय दी कि मृतक कृष्णा के जीवित रहते हुए उनका RT-PCR टेस्ट नहीं हुआ था। इसलिए, ऐसा प्रतीत होता है कि संदर्भित मामले में, समिति ने लगभग वैसी ही अस्वीकृति की थी जैसी यहाँ के दो अधिकारियों ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए की है; यानी औपचारिक प्रमाणपत्रों या चिकित्सा परीक्षण रिपोर्टों (जैसे RT-PCR आदि) के लिए हठ करना। इन तथ्यों पर, बॉम्बे हाई कोर्ट ने 'मयूरी कृष्णा जबरे' में यह व्यवस्था दी:

"10. डॉ. मेटकरी द्वारा जारी 'मृत्यु के कारण के प्रमाणपत्र' के साथ उपरोक्त खंडों को पढ़ने पर, जो तर्कसंगत निष्कर्ष निकाला जा सकता है, वह यह है: डॉ. मेटकरी ने शव से 'नैसोफेरीजल स्वेब' लेना आवश्यक नहीं समझा क्योंकि उन्हें संदेह था कि कृष्णा की मृत्यु कोविड-19 से हुई थी। इसके अलावा, महत्वपूर्ण बात यह है कि डॉ. मेटकरी ने प्रमाणपत्र में परिजनों या आसपास के लोगों द्वारा किसी भी प्रकार की 'संदिग्ध मिलीभगत' या धोखे की आशंका का उल्लेख नहीं किया। यदि डॉ. मेटकरी को वास्तव में यह संदेह होता कि कृष्णा के परिवार वाले अनुचित लाभ लेने के लिए कोई फर्जी दावा पेश कर रहे हैं, तो हम उनसे यह अपेक्षा करते कि वे प्रमाणपत्र में स्पष्ट शब्दों में ऐसा लिखते। ऐसी किसी टिप्पणी का न होना इस बात का पुख्ता संकेत है कि उनके पास संदेह का कोई कारण नहीं था। 9 अप्रैल, 2020 के परिपत्र के प्रावधानों के तहत शव के बाहरी परीक्षण के आधार पर, उनका यह मानना था कि कृष्णा की मृत्यु 'एक्यूट रेस्पिरटरी डिस्ट्रेस सिंड्रोम' और 'इन्फ्लुएंजा' के कारण हुई थी, जो उस समय किसी व्यक्ति के कोविड-19 संक्रमण की चपेट में आने से गहराई से जुड़े हुए थे।

12. समिति में विशेषज्ञ डॉक्टर शामिल थे। हम उनके निर्णय के विरुद्ध अपील की अदालत के रूप में नहीं बैठ सकते। लेकिन निश्चित रूप से, न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए, हम उस तरीके की जांच कर सकते हैं और हमें करनी चाहिए, जिसके माध्यम से ऐसा निर्णय लिया गया था।

13. समिति की बैठक 24 अगस्त, 2021 को हुई। कृष्णा की मृत्यु एक साल से भी पहले हो चुकी थी। हम बैठक के कार्यवृत्त से यह देख पा रहे हैं कि इसके सदस्यों का दृष्टिकोण बहुत गंभीर नहीं था। जुलाई और अगस्त, 2020 में मुंबई में जो स्थिति थी, उसका न्यायिक संज्ञान लिया जा सकता है। भारत सरकार और महाराष्ट्र सरकार द्वारा लागू किए गए सामाजिक दूरी और अन्य प्रतिबंधात्मक उपायों ने नागरिकों के लिए यह अनिवार्य कर दिया था कि वे अत्यंत आवश्यक कार्य के बिना अपने आवास से बाहर न निकलें। अस्पताल पूरी तरह भरे हुए थे और मरीजों को भर्ती करने में असमर्थ थे। डॉक्टर आसानी से उपलब्ध नहीं थे। यहाँ तक कि RT-PCR टेस्ट के लिए भी व्यक्ति को अपनी बारी आने का इंतज़ार करना पड़ता था। ऐसी असामान्य परिस्थितियों में, जो आवश्यक था वह था 'सभी प्रासंगिक कारकों' को ध्यान में रखना। समिति की बैठक के कार्यवृत्त, जिस पर बैठक के लगभग 40 दिन बाद हस्ताक्षर किए गए थे, प्रासंगिक कारकों पर किसी भी प्रकार के विचार को प्रकट नहीं करते हैं। स्पष्ट रूप से, इस बात पर विचार नहीं किया गया था कि कृष्णा ने 1 अगस्त, 2020 को इयूटी की थी और 6 अगस्त, 2020 की सुबह उनकी मृत्यु हो गई—अर्थात् इयूटी के केवल 4 दिन बाद, जो कि कोविड-19 से होने वाली मौतों के मामलों में बिल्कुल सामान्य था। इसके अलावा, जुलाई 2020 के लगभग पूरे महीने इयूटी करने के बाद कृष्णा की अचानक मृत्यु हो गई। कम से कम, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं था जो यह सुझाव दे कि कृष्णा को पहले से श्वसन संकट की कोई बीमारी थी। उनकी उम्र अभी 50 वर्ष भी नहीं हुई थी। कृष्णा की मृत्यु के बाद बीते हुए समय को ध्यान में रखते हुए, समिति से कम से कम यह अपेक्षित था कि वे दुविधा में रहने के बजाय, अपने सामूहिक विवेक के आधार पर डॉ. मेटकरी द्वारा जारी 'मृत्यु के कारण के प्रमाणपत्र' को या तो स्वीकार करते या अस्वीकार करते। समिति को यह समझना चाहिए था कि बहुत कुछ उनकी रिपोर्ट पर निर्भर था। हालांकि, उनकी रिपोर्ट ऐसी है जिसमें बहुत कुछ वांछित (कमी) रह गया है। हम इस बात से अवगत हैं कि समिति के सदस्य, जो अन्य कोविड-19 प्रभावित मरीजों की जान बचाने की कोशिश करने वाले डॉक्टर थे, उनके पास भी समय की कमी रही होगी और इसलिए उन्होंने पर्याप्त कारण नहीं बताए। फिर भी, समिति के विचार-विमर्श की बहुत अधिक आलोचना न करते हुए, जो बात स्पष्ट रूप से उभरती है वह यह है कि समिति ने कम से कम यह विशेष रूप से दर्ज नहीं किया कि कृष्णा की मृत्यु कोविड-19 संक्रमण से नहीं हुई थी। ऐसी किसी स्पष्ट निष्कर्ष के अभाव में, समिति के लिए उचित मार्ग यह हो सकता था कि वे डॉ. मेटकरी की रिपोर्ट को स्वीकार करते, जो एकमात्र ऐसे डॉक्टर थे जिन्हें कृष्णा के शव का बाहरी परीक्षण करने का अवसर मिला था। डॉ. मेटकरी द्वारा जारी 'मृत्यु के कारण के प्रमाणपत्र' पर अविश्वास न किए जाने के कारण, इसे विश्वसनीय माना जाता है। हमारा यह विचार है कि, अपने सभी नागरिकों को 'सामाजिक और आर्थिक न्याय' सुनिश्चित करने के प्रस्तावना के वादे को ध्यान में रखते हुए, वास्तविक संदेह के मामले में लाभ उस 'कमजोर वर्ग' के पक्ष में दिया जाना चाहिए, जिसके लिए अधिकारियों द्वारा अनुग्रह मुआवजा और त्वरित अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के नीतिगत निर्णय लिए गए थे।

14. मुंबई में कोविड-19 की पहली लहर अपने चरम पर होने के बावजूद, कृष्णा बिना किसी पुराने श्वसन संकट के इतिहास के, एक बस कंडक्टर के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे। 'BEST' ने अपने जवाबी हलफनामे में ऐसा कोई साक्ष्य संलग्न नहीं किया है जो याचिका के पैराग्राफ 11 की सामग्री को गलत साबित कर सके। ऐसी परिस्थितियों में, हमारे लिए यह निष्कर्ष निकालने हेतु न्याय का पलड़ा स्पष्ट रूप से याचिकाकर्ता के पक्ष में झुकेगा कि कृष्णा की मृत्यु, पूरी संभावना के साथ, कोविड-19 से हुई थी। इस प्रकृति के मामले में लागू होने वाला 'सबूत का मानक' 'संदेह से परे सबूत' नहीं हो सकता, बल्कि 'संभावनाओं की प्रबलता' होना चाहिए, जो इस निष्कर्ष की ओर ले जाए कि कोविड-19 के कारण कृष्णा की मृत्यु का तथ्य अधिक संभावित है। अतः, केवल इसलिए कि कोई RT-PCR रिपोर्ट या पर्याप्त चिकित्सा दस्तावेज नहीं थे, यह 9 मई, 2020 के शासकीय संकल्प से मिलने वाले लाशों को अस्वीकार करने का आधार नहीं हो सकता था। यदि हम इस मामले में हस्तक्षेप करने से बचते हैं और कर्तव्य का निर्वहन करते समय मरने वाले कृष्णा के उत्तराधिकारियों को राहत देने से इनकार करते हुए अपने हाथ जोड़ लेते हैं, तो यह वास्तव में हमारी ओर से अमानवीय होगा।
(न्यायालय द्वारा बल)

42. निशा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा अपर मुख्य सचिव, पंचायती राज विभाग (2022:AHC-LKO:27037) के मामले में, पहली याचिकाकर्ता के पति, रमेश कुमार यादव एक सहायक अध्यापक थे। उन्होंने 08.12.2020 को सुल्तानपुर जिले के एक प्राथमिक विद्यालय में सेवा शुरू की थी। उन्हें 10.04.2021 को चुनाव इयूटी के प्रशिक्षण के लिए भेजा गया था। उन्होंने 18.04.2021 और 19.04.2021 को चुनाव इयूटी की। इसके तुरंत बाद, वह बीमार पड़ गए। 21.04.2021 को सुल्तानपुर जिले के सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, बल्दीराय में बुखार और सांस लेने में कठिनाई के लिए उनका इलाज किया गया। जैसे-जैसे उनकी हालत बिगड़ी, उन्हें आपातकालीन उपचार के लिए जिला अस्पताल, सुल्तानपुर रेफर कर दिया गया। जिला अस्पताल सुल्तानपुर में, यादव का RT-PCR परीक्षण करने के लिए नमूना लिया गया। अभी लैब रिपोर्ट आनी बाकी थी कि 23/24.04.2021 की मध्यरात्रि में यादव की मृत्यु हो गई। सेवा में शामिल होने के मात्र चार महीने बाद, 28 वर्ष की अल्पायु में ही उनका निधन हो गया। लैब ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि उन्हें सैंपल कभी प्राप्त ही नहीं हुआ था। इसी कारण से यादव को कोविड-19 रोगी के रूप में नहीं माना गया और वहां याचिकाकर्ता को मुआवजा देने से इनकार कर दिया गया, क्योंकि यह इनकार 01.06.2021 के उस शासनादेश के तहत किया गया प्रतीत होता है, जो चुनाव इयूटी के दौरान कोविड-19 संक्रमण से 30 दिनों के भीतर मरने वाले व्यक्तियों से संबंधित था। वह शासनादेश आश्रितों को अनुग्रह राशि के भुगतान का प्रावधान करता था। मुख्य विचारणीय प्रश्न यह था कि क्या चुनाव इयूटी पर तैनात कोविड-19 पीड़ित के आश्रित के दावे पर विचार करने के लिए आवश्यक मानी जाने वाली RT-PCR रिपोर्ट की अनुपस्थिति में, शासनादेश दिनांक 01.06.2021 के तहत अनुग्रह राशि दी जा सकती है। राज्य (सरकार) का कहना था कि यह नहीं दिया जा सकता। 'निशा' (उपरोक्त) मामले में राज्य के इस तर्क को खारिज करते हुए, न्यायमूर्ति विवेक चौधरी ने निर्णय दिया:

"5. दिनांक 01.06.2022 के शासनादेश का खंड-12 विशेष रूप से प्रावधान करता है कि कोई भी व्यक्ति जो चुनाव इयूटी पर कोविड-19 के कारण 30 दिनों के भीतर कालकवलित (मृत्यु) हुआ है, वह अनुग्रह राशि के

भुगतान का हकदार होगा। मामले के तथ्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि मृतक कोविड-19 के लक्षणों से पीड़ित था और शुरुआत में उसका इलाज सर्दी और बुखार के सामान्य रोगी के रूप में किया गया था। बाद में सांस फूलने और आपातकालीन स्थिति उत्पन्न होने के कारण उसे जिला अस्पताल, सुल्तानपुर रेफर कर दिया गया, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई। मृतक के लक्षण स्वयं यह दर्शाते हैं कि वह कोविड-19 से पीड़ित था। केवल प्रयोगशाला से सैंपल प्राप्त न होना, किसी भी तरह से कोई अंतर पैदा नहीं करेगा।"

43. निशा मामले के सिद्धांत का पालन इस न्यायालय की लखनऊ पीठ के एक अन्य एकल न्यायाधीश ने 'सुनीता प्रजापति बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा प्रमुख सचिव (गृह) और अन्य' 2023:AHC-LKO:33575 के मामले में किया, जहाँ भी RT-PCR रिपोर्ट मौजूद नहीं थी। इसी तरह के सिद्धांत पर, 'प्रियंका बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा प्रमुख सचिव, वित्त विभाग, लखनऊ और अन्य' 2024:AHC-LKO:69440 के मामले में भी राज्य अधिकारियों को दावे पर पुनर्विचार करने के लिए मामला वापस भेजा गया था।

44. यहाँ, हमने ऊपर जो भी टिप्पणियाँ की हैं, उनके अतिरिक्त हमें वापस उस 'डेथ समरी/डेथ सर्टिफिकेट' पर गौर करना चाहिए, जहाँ निदान स्पष्ट रूप से 'संदिग्ध कोविड-19 न्यूमोनाइटिस' बताया गया है। साथ ही, हमें प्रभारी चिकित्सा अधिकारी, L2 फैसिलिटी रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर द्वारा प्रस्तुत 19.08.2021 की रिपोर्ट पर भी ध्यान देना चाहिए। यह रिपोर्ट कहती है कि मृतक को 26.04.2021 को शाम 5:00 बजे सांस लेने में कठिनाई और ऑक्सीजन के कम स्तर के साथ अस्पताल में भर्ती किया गया था और उन्हें कोविड-19 रोगी मानकर उनका इलाज किया गया था। इसके अलावा, रिपोर्ट कहती है कि 27.04.2021 को, इससे पहले कि RT-PCR टेस्ट का नमूना लिया जा पाता, सुबह 8:10 बजे उनकी मृत्यु हो गई, जिसके परिणामस्वरूप उनका कोविड-19 टेस्ट नहीं किया जा सका। ये लक्षण और यह तथ्य कि डॉक्टरों ने उन्हें कोविड-19 रोगी मानकर उनका नैदानिक मूल्यांकन और उपचार किया, उचित रूप से यह निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त है कि पूरी संभावना के साथ, आशा की मृत्यु कोविड-19 से हुई थी। निदान भी 'संदिग्ध कोविड-19 न्यूमोनाइटिस' ही था। मृत्यु सारांश के प्रासंगिक कॉलम में मृत्यु के कारण का उल्लेख नहीं किया गया है। यहाँ, यह प्रमाणपत्र सुप्रीम कोर्ट द्वारा 'रीपक कंसल' (उपरोक्त) मामले में निर्धारित सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

45. हम भी बॉम्बे हाई कोर्ट की खंडपीठ द्वारा 'मयूरी कृष्णा जबरे' मामले में दिए गए तर्क के साथ सहमत हैं कि जिस चिकित्सा अधिकारी ने 26.04.2021 को मृतक आशा को भर्ती किया था, उन्होंने निश्चित रूप से नैदानिक रूप से उन्हें कोविड-19 रोगी के रूप में पहचाना था और उसी के अनुसार उनका उपचार किया था, और इसी कारण से तुरंत RT-PCR टेस्ट नहीं किया। यह एक अलग बात है कि उन्हें तुरंत RT-PCR टेस्ट का नमूना लेना चाहिए था; और ऐसा न करने की उनकी निष्क्रियता का खामियाजा भी अंततः राज्य को ही भुगताना होगा, न कि याचिकाकर्ता को, जिसने कोविड-19 मृत्यु प्रमाण पत्र या RT-PCR रिपोर्ट पेश करने की शर्तों को पूरा नहीं किया है। स्पष्ट रूप से, अप्रैल 2021 के महीने में आशा का इलाज करने वाले चिकित्सा अधिकारी ने बीमारी के नैदानिक लक्षणों को देखते हुए यह सोचा कि आशा को RT-PCR टेस्ट करने में समय बर्बाद करने के बजाय उनके कोविड-19 रोग के तत्काल उपचार की आवश्यकता है, क्योंकि यह उनके लिए

अत्यंत स्पष्ट था। उस समय प्रचलित स्थितियाँ, आशा में दिखने वाले लक्षण और L2 फैसिलिटी रायसीना अस्पताल, खागा, फतेहपुर में चिकित्सा अधिकारी द्वारा उन्हें कोविड-19 रोगी मानते हुए अपनाया गया उपचार, 'संभावनाओं की प्रबलता' के किसी भी मानक के अनुसार, याचिकाकर्ता के इस दावे को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त सबूत हैं कि आशा की मृत्यु कोविड-19 संक्रमण से हुई थी। अनुग्रह राशि का प्रावधान करने वाले शासनादेशों के सख्त शब्दों का हवाला देकर, केवल RT-PCR या रैपिड एंटीजन टेस्ट की अनुपस्थिति के कारण दावे को खारिज कर देना, प्रतिवादियों के ऐसे दृष्टिकोण को उजागर करता है जो मनमाना और विकृत दोनों हैं। साथ ही, RT-PCR टेस्ट रिपोर्ट आदि के आधार पर आवश्यक प्रमाणपत्र प्रस्तुत करने की तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करने का आग्रह करना, प्रतिवादियों को उनकी अपनी गलती का लाभ लेने की अनुमति देना होगा; क्योंकि उन परिस्थितियों में यह वे ही थे जो आवश्यक RT-PCR टेस्ट सुनिश्चित कर सकते थे, जिसके लिए मृतक के अस्पताल में भर्ती होने और अगली सुबह उनकी मृत्यु के बीच पर्याप्त समय था।

46. यह हमें अगले और एकमात्र जीवित प्रश्न की ओर ले जाता है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है, वह यह कि क्या मृतक को कोविड-19 इयूटी पर तैनात किया गया था। यह याद रखा जाना चाहिए कि अप्रैल 2021 वह समय था जब व्यापक लॉकडाउन लगा था और सभी कार्यालय बंद थे। ट्रेनें पटरियों से उतरी हुई थीं और विमान आसमान से दूर थे। सारा कारोबार बंद हो चुका था और देश इस महामारी के प्रकोप से कराह रहा था। उस समय, जिन्हें किसी भी प्रकार की इयूटी पर लगाया गया था, चाहे वे डॉक्टर हों, पुलिसकर्मी हों, सफाई कर्मचारी हों, पेशेवर हों या स्वयंसेवक, वे निश्चित रूप से कोविड-19 की रोकथाम, नियंत्रण और उपचार में सहायता करने के लिए ही तैनात किए गए थे। याचिकाकर्ता की माँ नगर पंचायत में एक सफाई कर्मचारी के रूप में कार्यरत थीं। उस समय सफाई कर्मचारियों का काम, वे जहाँ भी सेवा दे रहे थे, अनिवार्य रूप से कोविड-19 के प्रसार की रोकथाम और नियंत्रण से जुड़ा था। यह श्रमिकों का वह वर्ग था, जो हर तरह के कचरे, कूड़े और धूल के संपर्क में आता था, जिसमें वह घातक वायरस हो सकता था। इसी कारण से सफाई कर्मचारियों को 'कोरोना योद्धा' के रूप में सराहा गया था।

47. तथ्य का एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता की माँ को कोविड-19 संक्रमण के नियंत्रण और रोकथाम के संबंध में इयूटी पर तैनात किया गया था। यदि उन्हें एक सफाई कर्मचारी के रूप में उनकी नियमित इयूटी सौंपी गई थी और उन्होंने उस समय के दौरान काम किया था जिससे यह घटना संबंधित है, तो याचिकाकर्ता की नौकरी की प्रकृति को देखते हुए इस बात का कोई महत्व नहीं रह जाता कि कोई ऐसा आदेश जारी किया गया था या नहीं, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया हो कि उन्हें कोविड-19 नियंत्रण और रोकथाम के संबंध में इयूटी सौंपी गई है। आखिरकार, जैसा कि पहले ही टिप्पणी की जा चुकी है, एक सफाई कर्मचारी के काम में स्वाभाविक रूप से उन सभी चीजों की सफाई और स्वच्छता शामिल होगी, जो उस समय कोरोना वायरस ले जा सकती थीं। यह वायरस एरोसोल में था, धात्विक सतहों और अन्य सभी प्रकार की वस्तुओं और सतहों पर मौजूद था, जिन्हें एक सफाई कर्मचारी को अपनी नौकरी के अंतर्निहित हिस्से के रूप में अनिवार्य रूप से साफ करना ही था। इस प्रकार, एक सफाई कर्मचारी के मामले में, उसे कोविड-19 की रोकथाम और नियंत्रण से संबंधित कर्तव्यों पर तैनात करने वाले किसी औपचारिक आदेश को प्रस्तुत करने पर जोर देने का कोई अर्थ नहीं

है। शासनादेश की वह शर्त, जो कोविड-19 रोकथाम और नियंत्रण के संबंध में इयूटी सौंपने वाले आदेश को प्रस्तुत करने की मांग करती है, उसे एक सफाई कर्मचारी के काम के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। एक सफाई कर्मचारी के लिए, सक्षम प्राधिकारी यानी कार्यालय प्रमुख या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किया गया औपचारिक आदेश कोई मायने नहीं रखता, जब तक कि यह दिखाया जा सके कि संबंधित सफाई कर्मचारी इयूटी कर रहा था।

48. अब, इस चरण पर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री जे.एन. मोर्य द्वारा यह तर्क दिया गया कि एक सफाई कर्मचारी, जो स्वेच्छा से सेवा दे रहा था, वह शासनादेश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगा। यह वह समय था, जैसा कि हमने निर्णय में पहले भी उल्लेख किया है, जब सारा जीवन ठहर गया था। किसी को भी कार्यालय आने या कोई काम करने के लिए नहीं कहा गया था, सिवाय उन लोगों के जिन्हें कोविड-19 संक्रमण की रोकथाम, नियंत्रण या उपचार के संबंध में आवश्यकता थी। निश्चित रूप से, इसमें स्वयंसेवक शामिल नहीं हैं और प्रतिवादियों का यह मामला भी नहीं है कि याचिकाकर्ता की माँ ने अपनी इयूटी करने के लिए स्वयंसेवा की थी। यदि उनका यह मामला होता, तो उन्हें इसके बारे में कुछ साक्ष्य प्रस्तुत करने होते, जो कि पूरी तरह से अनुपस्थित हैं। इसलिए, अकाट्य निष्कर्ष यही है कि यदि याचिकाकर्ता की माँ बीमार पड़ने के समय या बीमार पड़ने से कुछ दिन या एक सप्ताह पहले इयूटी कर रही थी, तो यह प्रतिवादियों के निर्देशों के तहत और कोविड-19 संक्रमण के नियंत्रण और रोकथाम के संबंध में ही था। मामले का एक और पहलू है। 11.04.2020, 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों में कार्यालय प्रमुख या जिला मजिस्ट्रेट से किसी न किसी रूप में 'कोविड इयूटी आदेश' प्रस्तुत करने की जो शर्त है, जो क्रमिक शासनादेशों के साथ बदलती रही, यदि उस पर जोर दिया गया, तो यह सरकार की नीति को ही विफल कर देगा। याचिकाकर्ता की माँ पर यह दुर्भाग्य उस समय टूटा जब कोविड-19 का प्रकोप अपने चरम पर था और चारों ओर लोग दम तोड़ रहे थे। ऐसी स्थिति में, यह उम्मीद करना अतिशयोक्तिपूर्ण, बल्कि काल्पनिक होगा कि एक सफाई कर्मचारी कार्यालय प्रमुख या जिला मजिस्ट्रेट से 'कोविड-19 इयूटी आदेश' प्राप्त करने के बाद ही इयूटी पर जाएगी। यह वह समय था जब इयूटी सौंपी जा रही थी और श्रमिकों को कोविड नियंत्रण की अग्रिम पंक्ति में किसी आपातकाल की तरह तैनात किया जा रहा था। इस प्रकार की कागजी कार्यवाही के लिए बहुत कम समय था; और हमारा मानना है कि बाद के प्रत्येक शासनादेश में इस तरह की आवश्यकताओं को केवल अनुभवजन्य दृष्टि के आधार पर शामिल किया गया है। ये ऐसे मामले हैं, जिनका न्याय करने के लिए अदालत को 'न्यायिक संज्ञान' लेना ही चाहिए ताकि कोविड-19 पीड़ित के आश्रितों को न्याय मिल सके। आखिरकार, वे सीमित चीजें जिनका 'न्यायिक संज्ञान' लिया जा सकता है, वे अदालत की दृष्टि को उस सत्य से ओझल नहीं कर सकतीं जो 2020-21 के दौरान चारों ओर घटित हुआ, जब हर किसी ने कोविड-19 महामारी के उस भयानक चेहरे को अपनी आँखों से देखा था। इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि एक सफाई कर्मचारी, या उस मामले में एक पैरामेडिक, डॉक्टर या पुलिसकर्मी—इन सभी को केवल इतना दिखाने की ज़रूरत है कि वे उस समय सक्रिय इयूटी पर थे जब कोविड-19 अपने चरम पर था और वे संक्रमित हो गए। यदि इस बात के साक्ष्य मौजूद हैं कि कोविड-19 के अग्रिम पंक्ति नियंत्रण और रोकथाम में लगा हुआ कर्मचारी वास्तव में अपनी इयूटी कर रहा था, तो 'कोविड-19 इयूटी आदेश' प्रस्तुत

करने की आवश्यकता पर कड़ाई से जोर नहीं दिया जा सकता। इसी कारण से, कोविड-19 इयूटी सर्टिफिकेट की अनुपस्थिति को याचिकाकर्ता के मामले के लिए घातक नहीं माना जा सकता।

49. अब केवल यही देखना शेष है कि क्या याचिकाकर्ता की माँ वास्तव में उस समय इयूटी पर मौजूद थीं जब वह बीमार पड़ीं या उससे कुछ समय पहले। यह प्रश्न फिर से अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिवादियों ने अपने इस तर्क को पुख्ता करने के लिए कि याचिकाकर्ता की माँ को कोविड-19 की रोकथाम और नियंत्रण की इयूटी पर नहीं लगाया गया था, उन्हें नगर पंचायत द्वारा रखे गए उपस्थिति रजिस्टर में 15.04.2021 से 26.04.2021 तक अनुपस्थित दिखाने का प्रयास किया है, जिसकी एक फोटोकॉपी याचिका के साथ संलग्न है। याचिका के पैराग्राफ 13 में, याचिकाकर्ता ने दावा किया है कि उनकी माँ की मृत्यु कोरोना वायरस के संक्रमण के कारण हुई थी और वह यह देखकर हैरान रह गए कि जालसाजी के जरिए, प्रतिवादियों ने उपस्थिति रजिस्टर में 'P' को काटकर 'A' लिखकर हेरफेर किया है। रिट याचिका के पैराग्राफ 13 में उपस्थिति रजिस्टर में की गई जालसाजी के आरोप के संबंध में, जो मृतक की उपस्थिति दर्ज करने से संबंधित है, प्रतिवादी संख्या 4 और 5 की ओर से नगर पंचायत के अधिशासी अधिकारी द्वारा दाखिल जवाबी हलफनामे के पैराग्राफ 13 में विशेष रूप से कोई इनकार नहीं किया गया है। उन्होंने इस तथ्य के संबंध में विशेष रूप से कोई दलील दी ही नहीं है।

50. जिला मजिस्ट्रेट की ओर से दाखिल जवाबी हलफनामे में भी, रिट याचिका के पैराग्राफ 13 की सामग्री का पैराग्राफ 27 में विशेष रूप से खंडन नहीं किया गया है। उक्त हलफनामे के पिछले पैराग्राफों में भी, जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जालसाजी के इस विशेष तर्क के संबंध में कोई दलील नहीं दी गई है। इसके बावजूद, प्रत्युत्तर शपथ पत्र में उपस्थिति रजिस्टर की एक बेहतर फोटोकॉपी अनुलग्नक संख्या RA-3 के रूप में संलग्न की गई है। किसी भी प्रतिवादी का यह मामला नहीं है कि रिट याचिका के अनुलग्नक संख्या 10 के रूप में संलग्न उपस्थिति रजिस्टर की प्रति, नगर पंचायत के उस उपस्थिति रजिस्टर की प्रति नहीं है, जहाँ मृतक अपनी उपस्थिति दर्ज करती थी। अनुलग्नक संख्या 10 में संलग्न दस्तावेज़ और प्रत्युत्तर शपथ पत्र के साथ अनुलग्नक संख्या RA-1 के रूप में संलग्न उसकी दूसरी प्रति का अवलोकन करने से पता चलता है कि यह अप्रैल 2021 के महीने के लिए नगर पंचायत से संबंधित कर्मचारियों का उपस्थिति रजिस्टर है (क्योंकि इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है)। इसमें कुल मिलाकर दस कर्मचारियों के नाम क्रमानुसार अंकित हैं। याचिकाकर्ता की माँ का नाम क्रम संख्या 7 पर है। यह दर्शाता है कि 14 अप्रैल तक, याचिकाकर्ता की माँ सहित सभी कर्मचारियों ने इस रजिस्टर में अपने हस्ताक्षर किए हैं। 15 तारीख के बाद से, याचिकाकर्ता की माँ, जिन्हें उपस्थित मार्क किया गया था, उन्हें कुछ हेरफेर के माध्यम से अनुपस्थित अंकित कर दिया गया है, जैसा कि प्रतीत होता है। क्रम संख्या 6 पर स्थित कर्मचारी नंदलाल, क्रम संख्या 5 पर सूरदास और 1 से 4, 8, 9 और 10 तक के अन्य कर्मचारियों को 'P' के साथ चिह्नित किया गया है। 15 तारीख के बाद, क्रम संख्या 1 पर स्थित कर्मचारी को छोड़कर, रजिस्टर पर अन्य किसी भी कर्मचारी के हस्ताक्षर नहीं हैं।

51. प्रतिवादियों, विशेष रूप से नगर पंचायत की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया गया कि रजिस्टर के क्रम संख्या 1 के कर्मचारी को छोड़कर, 14 तारीख के बाद अन्य कर्मचारी अपनी दैनिक उपस्थिति पर हस्ताक्षर क्यों नहीं कर रहे थे, और इसके बजाय उन्हें 'P' के साथ उपस्थित क्यों चिह्नित किया गया था। चूँकि कई कर्मचारियों के मामले में इस प्रणाली का पालन किया गया था, इसलिए इसका एकमात्र संभावित स्पष्टीकरण यह हो सकता है कि संस्थान कर्मचारियों को उपस्थिति रजिस्टर छूने या उसके संपर्क में आने से बचाने की कोशिश कर रहा था, क्योंकि इसे लिपिकीय कर्मचारियों और अधिकारियों द्वारा भी संभाला जाना था। यह कोविड-19 के संक्रमण या प्रसार से बचने का एक उपाय प्रतीत होता है। खैर, जो भी हो, यह बहुत अधिक महत्व का विषय नहीं है। जो बात प्रासंगिक है, वह यह है कि उपस्थिति रजिस्टर के अवलोकन से नग्न आंखों को यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि याचिकाकर्ता की माँ को 15 से 26 तारीख तक 'P' के साथ उपस्थित चिह्नित किया गया था, लेकिन इस 'P' को बहुत ही भद्दे तरीके से 'P' के वक्र से एक रेखा खींचकर 'A' में बदल दिया गया था ताकि वह 'A' जैसा दिखे।

52. हमारे मन में कोई संदेह नहीं है कि प्रतिवादियों ने कलम के एक झटके से, याचिकाकर्ता की माँ के लिए उपस्थिति रजिस्टर में 15 अप्रैल से 26 अप्रैल तक की सभी 'P' की प्रविष्टियों को 'A' में बदल दिया है। यह नग्न आंखों से दिखाई देने वाली स्पष्ट जालसाजी का मामला है। यहाँ तक कि कोई 'लघु हस्ताक्षर' भी नहीं किया गया है जो यह दिखाए कि क्या यह किसी प्रकार का सुधार है, न ही कोई नोट है जो यह बताए कि किस प्राधिकारी द्वारा और किन परिस्थितियों में यह सुधार, यदि कोई था, किया गया था। इसलिए, अकाट्य निष्कर्ष यही है कि याचिकाकर्ता की माँ ने 26 तारीख तक अप्रैल के महीने में अपनी ड्यूटी की, जब वह बीमार पड़ गई और उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया। यदि कोई यह मान भी ले कि प्रतिवादियों ने उपस्थिति रिकॉर्ड के साथ जालसाजी नहीं की थी और याचिकाकर्ता की माँ ने 14 अप्रैल के बाद ड्यूटी नहीं की थी, तो भी इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह 14 अप्रैल तक ड्यूटी पर थीं। यदि वह 13 या 14 तारीख के आसपास या उससे कुछ दिन पहले वायरस से संक्रमित हुई थीं और 15 तारीख के बाद बीमार पड़ीं, तो अस्पताल में भर्ती होने और अगले दिन यानी 27.04.2021 को उनकी मृत्यु होने के बीच मात्र 12 दिनों का अंतराल था। अतः निर्विवाद रूप से, याचिकाकर्ता की माँ 26 अप्रैल तक, जिस दिन उन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया था, नगर पंचायत के साथ एक सफाई कर्मचारी के रूप में सक्रिय रूप से अपनी ड्यूटी कर रही थीं; या फिर सबसे खराब स्थिति मान लें तो 14 अप्रैल, 2021 तक, जिसके बाद वह बीमार पड़ गई और उन्हें सांस लेने में तकलीफ और ऑक्सीजन के निम्न स्तर के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया, और अगले दिन उनकी मृत्यु हो गई। हमने पहले ही पर्याप्त रूप से यह टिप्पणी की है कि एक सफाई कर्मचारी के कर्तव्यों ने उस समय उसे उस घातक वायरस के प्रति गंभीर रूप से असुरक्षित बना दिया था। याचिकाकर्ता की माँ भी इसी तरह जोखिम में थीं, वे वायरस की चपेट में आईं और स्पष्ट रूप से उसी घातक बीमारी से उनकी मृत्यु हो गई, जैसे कि उन हज़ारों लोगों की हुई थी जिनका उस समय यही हश्र हुआ था।

53. हमने जो कुछ भी पाया है, उस परिप्रेक्ष्य में यह याचिका सफल होने योग्य है।

1.इला श्रीमती अंजू श्रीवास्तव बनाम उ0प्र0 स्टेट एगो इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य 983

54. परिणामस्वरूप, यह याचिका सफल होती है और स्वीकार की जाती है। अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत, खागा, फतेहपुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 11.11.2021 और जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर का आदेश दिनांक 16.12.2023, जो उत्तर प्रदेश सरकार के राजस्व विभाग के अपर मुख्य सचिव के व्यक्तिगत हलफनामे के साथ अनुलग्नक संख्या 8 के रूप में संलग्न है, को एतद्वारा रद्द किया जाता है। प्रतिवादियों को एक परमादेश जारी किया जाता है कि वे याचिकाकर्ता की माँ की मृत्यु के लिए उचित मुआवजे का भुगतान करें, इसे वैसी मृत्यु मानते हुए जिसके लिए 11.04.2020, 22.06.2021 और 26.07.2021 के शासनादेशों के तहत मुआवजा देय है। इस परमादेश का अनुपालन प्रतिवादियों द्वारा इस आदेश की सूचना प्राप्त होने की तारीख से छह सप्ताह के भीतर किया जाएगा।

55. वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

56. इस आदेश की एक प्रति निबंधक (अनुपालन) द्वारा सचिव, स्थानीय निकाय, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ; अपर मुख्य सचिव, वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ; निदेशक, स्थानीय निकाय, उत्तर प्रदेश, लखनऊ; जिला मजिस्ट्रेट, फतेहपुर और अधिशासी अधिकारी, नगर पंचायत खागा, जिला फतेहपुर को प्रेषित की जाए।

(2025) 1 ILRA 775

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 10.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन

रिट-ए संख्या- 10247/2024

श्रीमती अंजू श्रीवास्तव

...याचिकाकर्ता

बनाम

उ0प्र0 स्टेट एगो इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

बीरेंद्र कुमार यादव, अमित कुमार

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

राजीव कुमार सिन्हा, अखिलेश प्रताप सिंह

(ए) सेवा विधि - ग्रेच्युटी का भुगतान - ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 - धारा 4 - किसी कर्मचारी को ग्रेच्युटी उसकी सेवा समाप्ति पर देय होती है, जब उसने कम से कम पांच वर्ष तक सेवा की हो, या तो उसकी अधिवर्षिता पर या उसकी सेवानिवृत्ति या त्यागपत्र पर या उसकी मृत्यु या दुर्घटना या बीमारी के कारण विकलांगता पर। (पैरा -19,22)

(बी) सेवा विधि - ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 - धारा 4(6) - किसी कर्मचारी की ग्रेच्युटी पूर्णतः या आंशिक रूप से जब्त की जा सकती है यदि उसकी सेवाएं निम्न कारणों से समाप्त की जाती हैं - (i) नियोक्ता की संपत्ति को जानबूझकर नुकसान या हानि पहुंचाना, (ii) दंगा या अव्यवस्थित आचरण, (iii) हिंसा या (iv) नैतिक पतन से जुड़े अपराध - ग्रेच्युटी जब्ती के लिए सेवा समाप्ति आवश्यक है - सेवा समाप्ति ग्रेच्युटी की पूर्ण या आंशिक जब्ती के लिए अनिवार्य शर्त है। (पैरा -20)

याचिकाकर्ता के पति, जो प्रत्यर्थी निगम में स्टोरकीपर थे - की मृत्यु हो गई - नियोक्ता ने उनकी ग्रेच्युटी से 6,20,101.56 रुपये वसूलने की मांग की - स्टोर में कमी का आरोप लगाया - याचिकाकर्ता ने कटौती को चुनौती दी - तर्क दिया कि ग्रेच्युटी रोकी नहीं जा सकती क्योंकि उनके पति को कभी नौकरी से नहीं निकाला गया - कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही कभी शुरू नहीं की गई - याचिकाकर्ता को कर्मचारी जमा लिंकड बीमा (ईडीएलआई) राशि का भुगतान करने में विफल रहे - इसलिए याचिका। (प्रस्तर - 2 से 17)

अभिनिर्धारित: - नियोक्ता कर्मचारी की सेवा समाप्ति के बिना ग्रेच्युटी नहीं रोक सकता। चूँकि मृतक की कभी सेवा समाप्ति नहीं हुई थी, बल्कि उसकी मृत्यु सेवाकाल के दौरान हुई थी, इसलिए ग्रेच्युटी से वसूली अस्वीकार्य है। याचिकाकर्ता के पति की ग्रेच्युटी जब्त करने/कटौती करने संबंधी आक्षेपित आदेश, विधि की दृष्टि में मान्य नहीं हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं। नियोक्ता को आठ सप्ताह के भीतर ब्याज सहित पूरी ग्रेच्युटी का भुगतान करना होगा और उसी अवधि के भीतर ईडीएलआई भुगतान पर भी निर्णय लेना होगा। (प्रस्तर -21,23,26,27)

याचिका स्वीकृत। (ई-7)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. बांके बिहारी चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 101/2015
2. सचिव, ओएनजीसी लिमिटेड एवं अन्य बनाम वी.यू. वारियर, एआईआर 2005 एससी 3039

(माननीय न्यायमूर्ति अब्दुल मोइन द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव कुमार सिन्हा, प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता तथा प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश प्रताप सिंह को सुना गया।

1.इला श्रीमती अंजू श्रीवास्तव बनाम उ०प्र० स्टेट एग्री इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य 985

2. यह याचिका निम्नलिखित राहतों के लिए दायर की गई है:

"(i). पत्र/आदेश संख्या 28/ईपीएफ/24-25 दिनांक 16.05.2024 और पत्र संख्या 175/डीईएल- स्थापना /2023-2024 दिनांक 30.03.2024 को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना, जिसके तहत याचिकाकर्ता के मृत पति की ग्रेच्युटी और अन्य बकाया राशि से 6,20,101.56/- रुपये की वसूली/समायोजन किया जाना है, जिसकी प्रतियां रिट याचिका के अनुलग्नक 1 और 2 में हैं।

(ii) प्रत्यर्थीगण को 12% ब्याज के साथ ग्रेच्युटी राशि जारी करने का आदेश देने के लिए परमादेश की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करना और प्रत्यर्थी संख्या 4 को बाजार दर पर ब्याज के साथ कर्मचारी जमा लिंक बीमा राशि (ईडीएलआई) जारी करने का निर्देश देना।

3. पक्षों के विद्वान अधिवक्तागण ने कहा कि प्रकरण के तथ्य पहले ही दिनांक 11.11.2024 के आदेश में विस्तार से प्रस्तुत किए जा चुके हैं।

4. सुविधा के लिए, दिनांक 11.11.2024 का आदेश नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है:-

"1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री राजीव कुमार सिन्हा, प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार सिंह और प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश कुमार सिंह को सुना गया।

2. चुनौती दिनांक 16.05.2024 के आदेश को दी गई है, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक-1 में है, जिसके तहत प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 ने स्वर्गीय सर्वश्री श्रीवास्तव, जिनकी मृत्यु 10.04.2021 को हुई थी, की विधवा होने के नाते याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी से एक निश्चित राशि वसूलने के बारे में संकेत दिया है।

3. तर्क यह है कि प्रत्यर्थीगण के लिए ग्रेच्युटी की राशि को रोकने का कोई अवसर नहीं हो सकता है ताकि मृतक कर्मचारी द्वारा देय कुछ राशियों की वसूली की जा सके।

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सिन्हा ने कहा कि याचिकाकर्ता को मृतक कर्मचारी की विधवा होने के नाते देय ग्रेच्युटी से कुछ राशि वसूल करने की मांग की गई है, क्योंकि स्टोर में सामान की कमी पाई गई है, जिसे याचिकाकर्ता के पति द्वारा बनाए रखने की आवश्यकता थी, क्योंकि वह अपनी मृत्यु के समय प्रभारी स्टोर कीपर के रूप में काम कर रहे थे और इस प्रकार उपरोक्त राशि को रोकना संभव पाया गया है।

5. श्री सिन्हा ने ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा 6 के प्रावधानों का हवाला देते हुए तर्क दिया है कि नियोक्ता की संपत्ति को किसी प्रकार की क्षति, हानि या विनाश पहुंचाने वाली किसी हानि, जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के संबंध में ग्रेच्युटी रोकी जा सकती है।

6. तर्क यह है कि चूंकि अधिनियम, 1972 स्वयं प्रत्यर्थीगण को ग्रेच्युटी की राशि से कटौती करने का अधिकार देता है, इसलिए आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि नहीं है।

7. हालाँकि, अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा 6 के मात्र अवलोकन से ही पता चलता है कि प्रथम दृष्टया ग्रेच्युटी केवल कुछ परिस्थितियों में ही किसी कर्मचारी की सेवा समाप्ति की स्थिति में रोकी जा सकती है, अन्यथा नहीं। अन्यथा भी, कथित रूप से भंडार की कमी की भरपाई मृतक कर्मचारी की ग्रेच्युटी से करने की कोशिश की जा रही है, वह भी सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना, क्योंकि एक बार कर्मचारी की मृत्यु हो जाने के बाद कोई नोटिस जारी करने का कोई कारण नहीं बनता। हालाँकि, श्री सिन्हा ने एक संक्षिप्त प्रति-शपथपत्र दाखिल करने के लिए 10 दिन का समय माँगा है, जिस पर अगले तीन दिनों के भीतर जवाब दाखिल किया जा सकता है।

8. इसके बाद नए सिरे से सूची बनाएं।

9. इस बीच, प्रत्यर्थी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता यह निर्देश मांगेंगे कि याचिकाकर्ता को कर्मचारी जमा लिंक बीमा (ईडीएलआई) का भुगतान क्यों नहीं किया गया है और यदि भुगतान में कोई विधिक बाधा नहीं है, तो उक्त राशि याचिकाकर्ता को भुगतान की जानी चाहिए।

10. जब भी प्रकरण अगली बार सूचीबद्ध किया जाए, प्रत्यर्थी के अधिवक्ता के रूप में श्री अखिलेश प्रताप सिंह, अधिवक्ता का नाम दर्शाया जाए।

5. उपरोक्त आदेश के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता-विधवा इस न्यायालय के समक्ष ग्रेच्युटी भुगतान अधिनियम, 1972 (जिसे आगे "अधिनियम, 1972" कहा जाएगा) के प्रावधानों के तहत ग्रेच्युटी का भुगतान किए जाने का दावा कर रही हैं, क्योंकि उनके पति की 10.04.2021 को सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई थी। प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 16.05.2024 को एक आदेश पारित किया है, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 1 में है, जिसके द्वारा उन्होंने स्वर्गीय सर्वेश श्रीवास्तव की विधवा अर्थात् याचिकाकर्ता के पति होने की हैसियत से याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी से एक निश्चित राशि वसूलने का संकेत दिया है। साथ ही, दिनांक 30.03.2024 के आदेश के माध्यम से, जिसकी एक प्रति याचिका के अनुलग्नक 2 में है, प्रत्यर्थीगण ने संकेत दिया है कि 6,20,101.56/- रुपये मूल्य का सामान/सामग्री कम पाई गई है।

1.इला श्रीमती अंजू श्रीवास्तव बनाम उ0प्र0 स्टेट एग्री इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन लिमिटेड और अन्य 987

6. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा (6) के प्रावधानों पर भरोसा करते हुए तर्क दिया है कि ग्रेच्युटी से वसूली केवल कर्मचारी की सेवा समाप्ति के प्रकरण में ही की जा सकती है।

7. तर्क यह है कि याचिकाकर्ता के पति की सेवाएं कभी समाप्त नहीं की गईं, बल्कि 10.04.2021 को सेवा के दौरान उनकी मृत्यु हो गई और परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी उस निश्चित राशि को रोकने के लिए आदेश पारित करने के अपने अधिकार में नहीं हैं, जो कथित तौर पर याचिकाकर्ता के पति से स्टोर की कमी के लिए वसूल की जानी थी, जो याचिकाकर्ता के पति की कथित जिम्मेदारी थी।

8. इस संबंध में, **बांके बिहारी चौहान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य** के प्रकरण में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **विशेष अपील दोषपूर्ण संख्या 101/2015** में दिनांक 06.02.2015 को पारित निर्णय पर भी भरोसा किया गया है।

9. इस प्रकार यह तर्क दिया गया है कि प्रत्यर्थीगण ने आक्षेपित आदेश पारित करने तथा आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट राशि को समायोजित करने में स्पष्ट रूप से गलती की है।

10. आगे तर्क यह है कि प्रत्यर्थी संख्या 4 याचिकाकर्ता को कर्मचारी जमा लिंकड बीमा (ईडीएलआई) राशि का भुगतान करने में विफल रहा है।

11. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सिन्हा ने कहा है कि याचिकाकर्ता के पति की मृत्यु के बाद जब सामान की कमी पाई गई, तो परिणामस्वरूप, प्रत्यर्थी अधिनियम, 1972 के प्रावधानों के तहत याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी से उक्त राशि वसूलने के अपने अधिकार में हैं।

12. अन्य बनाम वीयू वारियर एआईआर 2005 एससी 3039 के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया गया है।

13. यह तर्क दिया गया है कि एक बार जब प्रत्यर्थी को भंडार में कमी की राशि वसूलने का अधिकार प्राप्त हो गया, जो भंडार याचिकाकर्ता के पति की जिम्मेदारी थी, परिणामस्वरूप, यदि कमी पाई जाती है तो वे उक्त राशि को ग्रेच्युटी से वसूल कर सकते हैं, जो कि स्वर्गीय सर्वेश श्रीवास्तव की विधवा होने की हैसियत से याचिकाकर्ता को देय है।

14. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अखिलेश प्रताप सिंह का कहना है कि प्रत्यर्थी-संस्था द्वारा ईडीएलआई में नियमित राशि जमा नहीं की गई। अभिलेखों का पता लगाया जा रहा

हैं और याचिकाकर्ता को देय उपरोक्त राशि का भुगतान करने का हर संभव प्रयास किया जाएगा, तथा इस संबंध में अंतिम निर्णय यथाशीघ्र लिया जाएगा।

15. उभय पक्ष के विद्वान अधिवक्तागण को सुना गया तथा अभिलेख का अवलोकन किया गया।

16. अभिलेख के अवलोकन से यह पता चलता है कि याचिकाकर्ता के पति, जो प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 के अधीन कार्यरत थे, की 10.04.2021 को सेवाकाल के दौरान मृत्यु हो गई। प्रत्यर्थीगण ने दिनांक 16.05.2024 को आक्षेपित आदेश पारित किया है जिसके तहत याचिकाकर्ता को सूचित किया गया है कि उसे देय ग्रेच्युटी की राशि 4,83,000/- रुपये या उससे अधिक है, लेकिन लगभग 6,20,000/- रुपये की कमी है, जो याचिकाकर्ता के पति की जिम्मेदारी थी, जिसकी वसूली की मांग की गई है।

17. उपरोक्त आदेशों को चुनौती देते हुए, वर्तमान याचिका दायर की गई है।

18. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के तर्क का मुख्य आधार अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा (6) है। सुविधा के लिए, अधिनियम, 1972 की धारा 4 नीचे पुनः प्रस्तुत की गई है:

धारा 4. ग्रेच्युटी का भुगतान।

(1) किसी कर्मचारी को उसके रोजगार की समाप्ति पर, उसके द्वारा कम से कम पांच वर्ष तक लगातार सेवा करने के पश्चात्, उपदान देय होगा, --

(क) उसकी सेवानिवृत्ति पर, या

(ख) उनकी सेवानिवृत्ति या त्यागपत्र पर, या

(ग) दुर्घटना या बीमारी के कारण उसकी मृत्यु या विकलांगता पर:

बशर्ते कि पांच वर्ष की निरंतर सेवा पूरी करना आवश्यक नहीं होगा, जहां किसी कर्मचारी की नियुक्ति की समाप्ति मृत्यु या विकलांगता के कारण हुई हो:

[इसके अतिरिक्त यह भी प्रावधान है कि कर्मचारी की मृत्यु की स्थिति में उसे देय उपदान उसके नामिती को या यदि कोई नामिती नहीं किया गया है तो उसके उत्तराधिकारियों को दिया जाएगा और जहां ऐसा नामिती या उत्तराधिकारी अवयस्क है, वहां ऐसे अवयस्क का अंश नियंत्रक प्राधिकारी के पास जमा किया जाएगा जो उसे ऐसे अवयस्क के लाभ के लिए ऐसे बैंक या अन्य वित्तीय संस्था में, जैसा कि विहित किया जाए, तब तक निवेश करेगा जब तक कि ऐसा अवयस्क वयस्क न हो जाए।] [1987 के अधिनियम 22 की धारा 4 द्वारा प्रतिस्थापित (1.2.1991 से)]

स्पष्टीकरण-- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, निःशक्तता से ऐसी निःशक्तता अभिप्रेत है जो किसी कर्मचारी को उस कार्य के लिए असमर्थ बना देती है जिसे वह दुर्घटना या बीमारी से पूर्व करने में सक्षम था, जिसके परिणामस्वरूप ऐसी निःशक्तता हुई।

(2) सेवा के प्रत्येक पूर्ण वर्ष या उसके छह माह से अधिक के भाग के लिए, नियोक्ता संबंधित कर्मचारी द्वारा अंतिम बार प्राप्त मजदूरी की दर के आधार पर, पंद्रह दिन की मजदूरी की दर से कर्मचारी को उपदान का भुगतान करेगा:

परंतु यह कि किसी टुकड़ा दर पर काम करने वाले कर्मचारी के प्रकरण में, दैनिक मजदूरी की गणना उसके रोजगार की समाप्ति से ठीक पहले तीन महीने की अवधि के लिए उसके द्वारा प्राप्त कुल मजदूरी के औसत पर की जाएगी, और इस प्रयोजन के लिए, किसी भी ओवरटाइम काम के लिए भुगतान की गई मजदूरी को ध्यान में नहीं रखा जाएगा:

बशर्ते कि [ऐसे कर्मचारी की दशा में जो मौसमी स्थापना में नियोजित है और जो पूरे वर्ष इस प्रकार नियोजित नहीं है] [अधिनियम संख्या 25, 1984 की धारा 3 द्वारा "मौसमी स्थापना में नियोजित कर्मचारी" के स्थान पर प्रतिस्थापित (1.7.1984 से)], नियोक्ता प्रत्येक मौसम के लिए सात दिन की मजदूरी की दर से उपदान का भुगतान करेगा।

[स्पष्टीकरण.-- मासिक दर वाले कर्मचारी की दशा में, पंद्रह दिन की मजदूरी की गणना उसके द्वारा अंतिम बार प्राप्त की गई मासिक मजदूरी दर को छब्बीस से भाग देकर तथा भागफल को पंद्रह से गुणा करके की जाएगी। [1987 के अधिनियम 22 की धारा 4 द्वारा (1.2.1991 से) अंतःस्थापित।]

(3) किसी कर्मचारी को देय उपदान की राशि [ऐसी राशि जो समय-समय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित की जाए] से अधिक नहीं होगी। [दिनांक 28.3.2018 के अधिनियम संख्या 12 द्वारा 'दस लाख रुपए' प्रतिस्थापित।]

(4) ऐसे कर्मचारी को देय उपदान की गणना करने के प्रयोजन के लिए, जो अपनी निःशक्तता के पश्चात् कम मजदूरी पर नियोजित है, उसकी निःशक्तता से पूर्व की अवधि के लिए उसकी मजदूरी उस अवधि के दौरान उसके द्वारा प्राप्त मजदूरी मानी जाएगी, तथा उसकी निःशक्तता के पश्चात् की अवधि के लिए उसकी मजदूरी इस प्रकार कम की गई मजदूरी मानी जाएगी।

(5) इस धारा की कोई बात किसी कर्मचारी के नियोक्ता के साथ किसी पंचाट या करार या अनुबंध के अंतर्गत बेहतर उपदान की शर्तें प्राप्त करने के अधिकार पर प्रभाव नहीं डालेगी।

(6) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, --

(क) किसी कर्मचारी की ग्रेच्युटी, जिसकी सेवाएं किसी ऐसे कार्य, जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के कारण समाप्त कर दी गई हैं, जिससे नियोक्ता की संपत्ति को कोई नुकसान या हानि हुई है या उसका विनाश हुआ है, इस प्रकार हुई क्षति या हानि की सीमा तक जब्त कर ली जाएगी;

(ख) किसी कर्मचारी को देय उपदान [पूर्णतः या आंशिक रूप से जब्त किया जा सकेगा] [1984 के अधिनियम 25 की धारा 3 द्वारा प्रतिस्थापित, "पूर्णतः जब्त किया जाएगा" (1.7.1984 से)]--

(i) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं उसके उपद्रवी या अव्यवस्थित आचरण या उसकी ओर से किसी अन्य हिंसात्मक कार्य के कारण समाप्त कर दी गई हों, या

(ii) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं किसी ऐसे कार्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं जो नैतिक अधमता से संबंधित अपराध है, बशर्ते कि ऐसा अपराध उसके द्वारा उसके नियोजन के दौरान किया गया हो।
[1994 के अधिनियम सं. 34 की धारा 3 द्वारा उपधारा (7) का लोप किया गया (24.5.1994 से)]

19. अधिनियम, 1972 की धारा 4 के अवलोकन से पता चलता है कि किसी कर्मचारी को उसकी नौकरी समाप्त होने पर ग्रेच्युटी देय होती है, जब उसने पांच वर्ष से कम समय तक सेवा नहीं दी हो, चाहे वह उसकी सेवानिवृत्ति पर हो या त्यागपत्र पर हो या दुर्घटना या बीमारी के कारण उसकी मृत्यु या विकलांगता पर हो।

20. अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा (6) में यह प्रावधान है कि उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जो ग्रेच्युटी के भुगतान से संबंधित है, ऐसे कर्मचारी की ग्रेच्युटी, जिसकी सेवाएं किसी ऐसे कार्य, जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के कारण समाप्त की गई हैं जिससे नियोक्ता की संपत्ति को कोई नुकसान या हानि हुई है या उसका विनाश हुआ है, इस प्रकार हुई क्षति या हानि की सीमा तक जब्त कर ली जाएगी और किसी कर्मचारी को देय ग्रेच्युटी पूर्णतः या आंशिक रूप से जब्त की जा सकती है यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं उसके उपद्रवी या अव्यवस्थित आचरण के कारण उसकी ओर से किसी कार्य या हिंसा के लिए समाप्त की गई हैं या यदि कर्मचारी की सेवाएं किसी ऐसे कार्य के लिए समाप्त की गई हैं जो नैतिक अधमता से संबंधित अपराध है। इस प्रकार, सेवा की समाप्ति ग्रेच्युटी को पूर्णतः या आंशिक रूप से जब्त करने के लिए अनिवार्य शर्त है।

21. यह माना जाता है कि याचिकाकर्ता के पति की सेवाएँ कभी समाप्त नहीं हुईं, बल्कि 10.04.2021 को सेवकाल के दौरान उनकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, एकमात्र प्रावधान जिसके तहत प्रत्यर्थी ग्रेच्युटी जब्त कर सकते थे, अर्थात् अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा (6), इस प्रकरण में स्पष्ट रूप से लागू नहीं होती क्योंकि याचिकाकर्ता के पति की सेवाएँ कभी समाप्त नहीं हुईं, बल्कि पाँच वर्ष से अधिक की निरंतर सेवा के बाद उनकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, याचिकाकर्ता स्पष्ट रूप से ग्रेच्युटी की हकदार हो गई।

22. इस प्रकरण के इस पहलू पर इस न्यायालय की खंडपीठ ने बांके बिहारी चौहान (पूर्वोक्त) के प्रकरण में भी विचार किया है, जिसमें खंडपीठ ने निम्नलिखित निर्णय दिया है:

अधिनियम की धारा 4 (6) उन परिस्थितियों का प्रावधान करती है जिनमें किसी कर्मचारी की ग्रेच्युटी, जिसकी सेवाएं समाप्त कर दी गई हैं, जब्त की जा सकती है। धारा 4 (6) निम्नलिखित शब्दों में है:

"4. ग्रेच्युटी का भुगतान.- (1)

(6) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, -

(क) किसी कर्मचारी की ग्रेच्युटी, जिसकी सेवाएं किसी ऐसे कार्य, जानबूझकर की गई चूक या लापरवाही के कारण समाप्त कर दी गई हो, जिससे नियोक्ता की संपत्ति को कोई नुकसान या हानि हुई हो या उसका विनाश हुआ हो, उस नुकसान या हानि की सीमा तक जब्त कर ली जाएगी;

(ख) किसी कर्मचारी को देय उपदान पूर्णतः या आंशिक रूप से जब्त किया जा सकेगा, -

(i) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं उसके उपद्रवी या अव्यवस्थित आचरण या उसकी ओर से किसी अन्य हिंसात्मक कार्य के कारण समाप्त कर दी गई हों, या

(ii) यदि ऐसे कर्मचारी की सेवाएं किसी ऐसे कार्य के लिए समाप्त कर दी गई हैं जो नैतिक अधमता से संबंधित अपराध है, बशर्ते कि ऐसा अपराध उसके द्वारा उसके नियोजन के दौरान किया गया हो।"

वर्तमान प्रकरण में, इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि अपीलकर्ता की सेवाएँ कभी समाप्त नहीं की गईं। अपीलकर्ता सेवा में बने रहे और अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवानिवृत्त हुए। इन परिस्थितियों में, अधिनियम की धारा 4(6) के तहत ग्रेच्युटी जब्त करने की मूल पूर्व शर्त पूरी नहीं हुई।"

23. अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा (6) के प्रावधान और बांके बिहारी चौहान (पूर्वोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय की खंडपीठ के फैसले के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता के पति की ग्रेच्युटी केवल तभी जब्त की जा सकती थी यदि उन्हें सेवा से समाप्त कर दिया गया होता, शायद सामान की कमी के कारण। हालाँकि, सेवाएं कभी समाप्त नहीं की गईं, बल्कि याचिकाकर्ता के पति की 10.04.2021 को सेवा के दौरान मृत्यु हो गई और सेवा में रहते हुए उनके खिलाफ कभी कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की गई और इस प्रकार, अधिनियम, 1972 की धारा 4 की उपधारा (6) में निर्दिष्ट ग्रेच्युटी को जब्त करने या ग्रेच्युटी से कटौती करने की अनिवार्य शर्त कभी उत्पन्न नहीं हुई और इस प्रकार याचिकाकर्ता के पति की ग्रेच्युटी को जब्त करने/उससे कटौती करने के आदेश विधि की नजर में विधिक रूप से मान्य नहीं हैं और रद्द किए जाने योग्य हैं।

24. जहाँ तक **वी.यू. वारियर (पूर्वोक्त)** प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संबंध है, यह कहना पर्याप्त होगा कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि उस प्रकरण में सेवानिवृत्त कर्मचारी की सेवाएँ अधिनियम, 1972 के प्रावधानों द्वारा शासित नहीं थीं, बल्कि तेल एवं प्राकृतिक गैस आयोग (ओएनजीसी), जिसका वह व्यक्ति कर्मचारी था, के बकाया राशि की वसूली से संबंधित अपने नियम थे। इस प्रकार, उक्त निर्णय वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

25. जहाँ तक ईडीएलआई का भुगतान न किए जाने का प्रश्न है, प्रत्यर्थी संख्या 4 की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्रत्यर्थी अभिलेखों का परीक्षण कर रहे हैं और इस प्रकरण में अंतिम निर्णय लेने का प्रयास किया जाएगा। उपरोक्त कथन अभिलिखित है।

26. तदनुसार, रिट याचिका **स्वीकार** की जाती है। दिनांक 16.05.2024 का आक्षेपित आदेश, जिसकी प्रति याचिका के अनुलग्नक 1 में है, और दिनांक 30.03.2024 का आदेश, जिसकी प्रति याचिका के अनुलग्नक 2 में है, निरस्त किए जाते हैं। प्रत्यर्थी संख्या 1 से 3 को निर्देश दिया जाता है कि वे इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से आठ सप्ताह के भीतर याचिकाकर्ता को देय ग्रेच्युटी की पूरी राशि, देय ब्याज सहित, अदा करें।

27. प्रत्यर्थी संख्या 4 उपरोक्त अवधि के भीतर याचिकाकर्ता के कारण ईडीएलआई के भुगतान से संबंधित अंतिम निर्णय भी लेगा।

(2025) 1 ILRA 782

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 06.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

रिट-ए संख्या- 12422/2024

भारत संघ एवं अन्य

...याचिकाकर्ता

बनाम

केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण लखनऊ एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्तागण की ओर से अधिवक्ता:

अजीत कुमार द्विवेदी

प्रत्यर्थागण की ओर से अधिवक्ता:

प्रवीण कुमार

ए. सेवा विधि - अनुशासनात्मक जाँच - यौन उत्पीड़न - षडयंत्र - सीसीएस (सीसीए) नियम, 1965 - नियम 11(i), 29 - केवल राष्ट्रपति के अलावा किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के अभाव में कार्रवाई (पुनरीक्षण शक्ति) को रद्द नहीं किया जा सकता था। याचिकाकर्तागण ने प्रस्तुत किया है कि नियम 29 के मात्र अवलोकन से पता चलता है कि राष्ट्रपति के अलावा, विभागाध्यक्ष और अपीलीय प्राधिकारी भी नियम के तहत पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं। वर्तमान प्रकरण में, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश द्वारा नई कार्रवाई शुरू की गई है। (प्रस्तर 12)

बी. शिकायत में लगाए गए किसी भी आरोप से भारत सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों में परिभाषित "यौन उत्पीड़न" का प्रकरण नहीं बनता। (प्रस्तर 18)

सी. शिकायतकर्ता ने पहले ही GSI के अतिरिक्त निदेशक को पत्र लिखकर बताया है कि उसके और विपक्षी संख्या 2 के बीच विवाद सुलझ गया है। इन परिस्थितियों में, विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई करने का निर्देश देने से पहले, प्राधिकारियों को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए था कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा यौन उत्पीड़न का कोई प्रथम दृष्टया प्रकरण बनता है या नहीं। प्राधिकारियों ने विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही शुरू करने से पहले कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की है। अभिलेखों की जाँच के बाद, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध यौन उत्पीड़न के आरोप पर कोई नई कार्यवाही शुरू करने का कोई प्रकरण नहीं बनता है। (प्रस्तर 19)

डी.(i) विपक्षी संख्या 2 ने महानिदेशक, भारतीय पुस्तकत्व सर्वेक्षण को दो अधिकारियों के विरुद्ध दिनांक 07.05.2023 को एक शिकायत भेजी है, जिसमें एक बातचीत का प्रतिलेख प्रस्तुत किया गया है जिससे पता चलता है कि उन्होंने शिकायतकर्ता को विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध झूठी शिकायत दर्ज कराने के लिए उकसाया था और इस सुझाव के जवाब में शिकायतकर्ता ने कहा था कि विपक्षी संख्या 2 ने उससे कुछ नहीं कहा था। विपक्षी संख्या 2 ने महानिदेशक से उक्त दोनों अधिकारियों के विरुद्ध कार्रवाई करने का अनुरोध किया है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन दोनों अधिकारियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई है। (प्रस्तर 20)

(ii) आंतरिक शिकायत समिति ने विपक्षी संख्या 2 और शिकायतकर्ता दोनों को अपने निजी मुद्दों को इस हद तक बढ़ाने का दोषी पाया कि पूरे कार्यालय को नुकसान हुआ और समिति ने दोनों के विरुद्ध उचित कार्रवाई की सिफारिश की, लेकिन केवल विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध ही कार्रवाई की गई और आंतरिक शिकायतकर्ता समिति की सिफारिश के बावजूद शिकायतकर्ता के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई। इससे प्रथम दृष्टया यह संकेत मिलता है कि अधिकारियों ने विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध बदले की भावना से कार्रवाई की है और अन्य दोषी व्यक्तियों को बचाया है। (प्रस्तर 20)

इन परिस्थितियों में, विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध इस आधार पर कोई नई कार्यवाही नहीं की जा सकती कि उसने शिकायतकर्ता के विरुद्ध यौन उत्पीड़न का कृत्य किया है। (प्रस्तर 21)

ई. अधिकारिता- यद्यपि यह विधि का एक सामान्य सिद्धांत है कि किसी आदेश की वैधता की जांच उस आदेश में उल्लिखित कारणों के आधार पर की जानी चाहिए। यह भी समान रूप से स्थापित है कि यदि किसी आदेश में कुछ अवैधता भी हो, तो उच्च न्यायालय उसे रद्द करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा यदि इससे किसी अन्य अवैधता की बहाली हो या इससे अन्याय को बढ़ावा मिले। उच्च न्यायालय, जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 में उल्लिखित है, एक न्यायालय अभिलेख है, तथा ऐसे न्यायालय में न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए सभी अंतर्निहित शक्तियां रखता है। न्यायाधिकरण द्वारा पारित आक्षेपित आदेश में इस आधार पर हस्तक्षेप करने से कि आदेश को रद्द करने के लिए न्यायाधिकरण द्वारा दिया गया कारण गलत है, प्रतिपक्ष संख्या 2 के विरुद्ध नई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू हो जाएगी, जो इस आदेश में उल्लिखित कारणों से उचित नहीं है और जो न्याय के हित में नहीं होगा। (प्रस्तर 22)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

वर्तमान याचिका में केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ बेंच, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 08.05.2024 के निर्णय और आदेश को रद्द करने की मांग की गई है, जिसमें विपक्षी संख्या 2 द्वारा दायर मूल प्रार्थना पत्र संख्या- 332/00365/2023 को स्वीकृत किया गया।

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी
और
माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्तागण-भारत संघ और उसके अधिकारियों के विद्वान अधिवक्ता श्री अजीत कुमार द्विवेदी और विपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रवीण कुमार को सुना गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर इस रिट याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्तागण ने केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, लखनऊ बेंच, लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 08.05.2024 के निर्णय और आदेश को रद्द करने की मांग की है, जिसमें विपक्षी संख्या 2 - आकाश गोयल द्वारा दायर मूल आवेदन संख्या 332/00365/2023 को स्वीकृत की गई थी।

3. संक्षेप में कहा जाए तो प्रकरण के तथ्य यह हैं कि जब विपक्षी संख्या 2 भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर के कार्यालय में सहायक के रूप में काम कर रहा था, तब एक महिला सहकर्मी ने उसके खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। शिकायत को आंतरिक शिकायत समिति को भेज दिया गया, जिसने एक विस्तृत

जांच की और 21.11.2022 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। निदेशक (जी) और एचओडी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी, जीएसआई, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर ने 14.02.2023 को एक कार्यालय ज्ञापन जारी किया जिसमें कहा गया कि विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ सीसीएस (सीसीए) नियम, 1965 के नियम 16 के तहत अनुशासनात्मक कार्रवाई प्रस्तावित की गई थी। कदाचार के आरोप का बयान ज्ञापन के साथ संलग्न किया गया था और विपक्षी संख्या 2 को प्रस्ताव के खिलाफ अभ्यावेदन देने का अवसर दिया गया था। कदाचार के आरोपों के बयान में निम्नलिखित दो आरोप लगाए गए थे:

अनुच्छेद 1

जैसा कि महिला अधिकारी ने 23 मई 2027 को अपनी लिखित शिकायत में बताया है, आंतरिक शिकायत समिति की बैठक की कार्यवाही के दौरान यह पाया गया है कि शिकायतकर्ता के सम्मान के साथ जीवन जीने के अधिकार और गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन किया गया है। श्री आकाश गोयल, सहायक, जीएसआई, डब्ल्यूआर, जयपुर द्वारा महिला की गरिमा को प्रभावित करते हुए उसकी सहमति के बिना उसकी निजी जानकारी जैसे कि व्हाट्सएप चैट सामग्री और गर्भावस्था रिपोर्ट दूसरों के साथ साझा की गई। इसलिए, श्री आकाश गोयल, सहायक, भारतीय भूवैज्ञानिक प्रतिभूति, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर ने सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1)(ii) और (iii) और 3-सी(1) का उल्लंघन करते हुए एक सरकारी कर्मचारी के रूप में अनुचित तरीके से कर्तव्य की उपेक्षा करते हुए घोर कदाचार किया।

अनुच्छेद-II

उक्त श्री आकाश गोयल, सहायक, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर ने आंतरिक शिकायत समिति की बैठक की कार्यवाही के दौरान यह भी पाया कि प्रकरण व्यक्तिगत मुद्दे से शुरू हुआ था और इतना बढ़ गया कि पूरे कार्यालय को नुकसान उठाना पड़ा। इसलिए, श्री आकाश गोयल, सहायक, भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर कर्तव्य के प्रति समर्पण बनाए रखने में विफल रहे हैं और सीसीएस (आचरण) नियम, 1964 के नियम 3(1) (ii) और (iii) का उल्लंघन करते हुए सरकारी कर्मचारी के अनुचित तरीके से काम किया है।

4. विपक्षी संख्या 2 ने उपरोक्त ज्ञापन के विरुद्ध 15.02.2023 को अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह कहा गया कि विचाराधीन प्रकरण व्यक्तिगत प्रकृति का है और यह कार्यालय से संबंधित नहीं है, जैसा कि विपक्षी संख्या 2 और शिकायतकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से हस्ताक्षरित दिनांक 01.04.2022 के पत्र द्वारा कार्यालय को स्पष्ट रूप से सूचित किया गया था। विपक्षी संख्या 2 और शिकायतकर्ता द्वारा संयुक्त रूप से लिखे गए दिनांक 01.04.2022 के पत्र की एक प्रति उत्तर के साथ संलग्न की गई थी। विपक्षी संख्या 2 ने अपने उत्तर में आगे कहा कि आरोप यौन उत्पीड़न का प्रकरण नहीं बनाते हैं। उत्तर में यह भी कहा गया कि विपक्षी संख्या 2 ने पहले ही दिनांक 20.12.2022 को एक व्यापक अभ्यावेदन प्रस्तुत किया था जिसमें कहा गया था कि शिकायतकर्ता ने प्रकरण को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया

5. विपक्षी संख्या 2 ने कहा कि उनके कर्तव्यों का निर्वहन 15.06.2022 और 20.09.2022 को जारी प्रशंसा पत्रों से स्पष्ट है, जिनकी प्रतियां उत्तर के साथ संलग्न हैं। विपक्षी संख्या 2 का जयपुर से लखनऊ और परिवादी का जयपुर से नई दिल्ली स्थानांतरण हो चुका है। इन परिस्थितियों में, प्रकरण में आगे कोई कार्रवाई आवश्यक नहीं है।

6. सम्पूर्ण सामग्री पर विचार करने के पश्चात, निदेशक (जी) एवं विभागाध्यक्ष तथा अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दिनांक 28.02.2023 को एक आदेश पारित किया, जिसमें सीसीएस (सीसीए) नियम, 1965 के नियम 11 के उप-नियम (i) के अनुसार विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध निंदा प्रविष्टि का दंड लगाया गया।

7. 12.05.2023 को विपक्षी संख्या 2 ने पुलिस स्टेशन जवाहर सर्किल, जिला जयपुर शहर (पूर्व) में धारा 384, 211, 120 बी आईपीसी के तहत (i) राज कुमार चौहान, उप निदेशक (व्यक्तिगत और प्रशासन) जीएसआई, महानिदेशक शिविर कार्यालय, नई दिल्ली और (ii) अशोक कुमार सिंह, सहायक निदेशक (व्यक्तिगत और प्रशासन) जीएसआई, नई दिल्ली के खिलाफ एक प्रथम सूचना रिपोर्ट संख्या 0326 दर्ज कराई, जिसमें कहा गया कि विपक्षी संख्या 2 ने शिकायतकर्ता के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित किए थे जो कार्यालय में कनिष्ठ लिपिक के रूप में कार्यरत थे। उनकी शादी तय हो गई और 25.10.2021 को रोक़ा समारोह किया गया। हालाँकि, उनकी शादी नहीं हो सकी लेकिन फिर भी विपक्षी संख्या 2 और शिकायतकर्ता अच्छे दोस्त बने रहे। 2.

8. विपक्षी संख्या 2 ने आरोपों के समर्थन में साक्ष्य के रूप में शिकायतकर्ता और आरोपी अधिकारियों के बीच हुई कुछ बातचीत को एक पेन-ड्राइव में रिकॉर्ड करके प्रस्तुत किया था। बातचीत की प्रतिलिपि विपक्षी संख्या 2 द्वारा महानिदेशक, जीएसआई को दिनांक 07.05.2023 को भेजी गई शिकायत का एक भाग है, जिसमें दर्शाया गया है कि श्री राज कुमार चौहान, उप निदेशक (कार्मिक एवं प्रशासन), जीएसआई ने शिकायतकर्ता को विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध झूठी शिकायत दर्ज कराने के लिए उकसाया था, जिसमें आरोप लगाया गया था कि वह उसे परेशान और ब्लैकमेल कर रहा है और इस सुझाव के जवाब में शिकायतकर्ता ने कहा था कि विपक्षी संख्या 2 ने उससे कुछ नहीं कहा था।

9. 07.07.2023 को, विपक्षी सं. 2 ने महानिदेशक, जीएसआई को एक अभ्यावेदन प्रस्तुत कर दिनांक 28.02.2023 के दंड आदेश को रद्द करने का अनुरोध किया। हालाँकि, रिकॉर्ड से पता चलता है कि अतिरिक्त महानिदेशक और विभागाध्यक्ष तथा अपीलीय प्राधिकारी ने पहले ही 20.06.2023 को एक निर्देश जारी कर दिया था जिसमें कहा गया था कि डीओपीटी के दिनांक 16.07.2015 के कार्यालय ज्ञापन में निर्धारित उचित प्रक्रियाओं का पालन किए बिना विपक्षी सं. 2 पर निंदा का दंड लगाया गया था और इसलिए, दिनांक 28.02.2023 के आदेश को वापस ले लिया गया ताकि दिनांक 16.07.2015 के कार्यालय ज्ञापन के अनुसार विपक्षी सं. 2 के विरुद्ध आगे की कार्रवाई शुरू की जा सके। दिनांक 29.08.2023 को एक नया आरोप-पत्र जारी किया गया जिसमें वही दो आरोप शामिल थे जो पहले लगाए गए थे। 2 और ज्ञापन में कहा गया है कि नियम 14 सीसीएस (सीसीए) नियम, 1965 के तहत जांच की जाएगी। विपक्षी संख्या 2 ने मूल आवेदन संख्या 332/00365/2023

दाखिल करके केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष उपरोक्त आदेशों को चुनौती दी, जिसे आरोपित आदेश द्वारा अनुमति दी गई है।

10. केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने सीसीएस (सीसीए) नियम, 1965 के नियम 29 में निहित प्रावधानों का उल्लेख किया, जो इस प्रकार हैं: -

“भाग VIII- पुनरीक्षण और समीक्षा

29. पुनरीक्षण

(1) इन नियमों में किसी बात के होते हुए भी-

(i) राष्ट्रपति; या

(ii) भारतीय लेखा परीक्षा और लेखा विभाग में कार्यरत सरकारी कर्मचारी के प्रकरण में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक; या

(iii) डाक सेवा बोर्ड में या उसके अधीन सेवारत सरकारी कर्मचारी के प्रकरण में सदस्य (कार्मिक) डाक सेवा बोर्ड और दूरसंचार बोर्ड में या उसके अधीन सेवारत सरकारी कर्मचारी के प्रकरण में सलाहकार (मानव संसाधन विकास), दूरसंचार विभाग; या

(iv) केन्द्रीय सरकार के सीधे अधीन किसी विभाग का प्रमुख, यदि कोई सरकारी कर्मचारी किसी विभाग या कार्यालय (सचिवालय या डाक और तार बोर्ड से भिन्न) में सेवारत है, जो ऐसे विभाग प्रमुख के नियंत्रण में है; या

(v) अपीलीय प्राधिकारी को, संशोधित किए जाने वाले प्रस्तावित आदेश की तारीख से छह महीने के भीतर या

(vi) राष्ट्रपति द्वारा किसी सामान्य या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य प्राधिकारी, तथा ऐसे सामान्य या विशेष आदेश में विहित समय के भीतर;

किसी भी समय, स्वप्रेरणा से या अन्यथा किसी जांच के अभिलेख मंगा सकेगा और इन नियमों के अधीन या नियम 34 द्वारा निरसित नियमों के अधीन किए गए किसी आदेश को, जिसके विरुद्ध अपील की अनुमति है, किन्तु जिसके विरुद्ध कोई अपील नहीं की गई है या जिसके विरुद्ध कोई अपील की अनुमति नहीं है, आयोग से परामर्श के पश्चात्, जहां ऐसा परामर्श आवश्यक है, पुनरीक्षित कर सकेगा और-

(क) आदेश की पुष्टि करना, उसे संशोधित करना या रद्द करना; या

(ख) आदेश द्वारा अधिरोपित दंड की पुष्टि करना, उसे कम करना, बढ़ाना या रद्द करना, या जहां कोई दंड नहीं लगाया गया है वहां कोई दंड लगाना; या

(ग) प्रकरण को उस प्राधिकारी को, जिसने आदेश दिया था, या किसी अन्य प्राधिकारी को, ऐसे प्राधिकारी को, ऐसी अतिरिक्त जांच करने का निर्देश देते हुए, जो वह प्रकरण की परिस्थितियों में उचित समझे, भेज सकेगा; या

(घ) ऐसे अन्य आदेश पारित करना जो वह उचित समझे:

बशर्ते कि किसी पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा कोई शास्ति अधिरोपित करने या बढ़ाने का कोई आदेश तब तक नहीं दिया जाएगा जब तक कि संबंधित सरकारी सेवक को प्रस्तावित शास्ति के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का उचित अवसर न दे दिया गया हो और जहां नियम 11 के खंड (v) से (ix) में निर्दिष्ट कोई शास्ति अधिरोपित करने या संशोधित किए जाने वाले आदेश द्वारा अधिरोपित शास्ति को उन खंडों में निर्दिष्ट किसी शास्ति तक बढ़ाने का प्रस्ताव है, और यदि प्रकरण में नियम 14 के तहत जांच पहले से ही नहीं की गई है तो नियम 19 के प्रावधानों के अधीन नियम 14 में अधिकथित तरीके से जांच के बाद ही ऐसी कोई शास्ति अधिरोपित की जाएगी, और जहां ऐसा परामर्श आवश्यक है वहां आयोग के परामर्श के बाद ही ऐसा कोई शास्ति अधिरोपित किया जाएगा और सरकारी सेवक को नियम 15 के उप-नियम (3) के खंड (ख) में निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर आयोग की सलाह के विरुद्ध अभ्यावेदन करने का अवसर दिया गया है,

बशर्ते कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, सदस्य (कार्मिक), डाक सेवा बोर्ड, सलाहकार (मानव संसाधन विभाग), दूरसंचार विभाग या विभागाध्यक्ष, जैसा भी प्रकरण हो, द्वारा पुनरीक्षण की कोई शक्ति का प्रयोग तब तक नहीं किया जाएगा, जब तक कि-

- (i) वह प्राधिकारी जिसने अपील में आदेश दिया था, या
 - (ii) वह प्राधिकारी जिसके समक्ष अपील की जाएगी, जहां कोई अपील नहीं की गई है, उसके अधीनस्थ है।
- (2) पुनरीक्षण के लिए कोई कार्यवाही तब तक प्रारंभ नहीं की जाएगी जब तक कि-
- (i) अपील के लिए सीमा अवधि की समाप्ति, या
 - (ii) अपील का निस्तारण, जहां ऐसी कोई अपील प्रस्तुत की गई हो।
- (3) पुनरीक्षण के लिए आवेदन पर उसी प्रकार से कार्रवाई की जाएगी, जैसे कि वह इन नियमों के अधीन अपील हो।

11. केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण ने माना कि प्राधिकारियों द्वारा राष्ट्रपति का कोई आदेश प्रस्तुत नहीं किया गया था और राष्ट्रपति के आदेश के अभाव में, खान मंत्रालय की टिप्पणियों के आधार पर लगाए गए जुर्माने को वापस लेने और आरोपों का नया जापन जारी करने में पुनरीक्षण प्राधिकारी, अपीलीय प्राधिकारी और अनुशासनात्मक प्राधिकारी की कार्रवाई असंवैधानिक है।

12. याचिकाकर्तागण के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि ऊपर उद्धृत नियम 29 के मात्र अवलोकन से ही पता चलता है कि अध्यक्ष के अलावा, विभागाध्यक्ष और अपीलीय प्राधिकारी भी नियम के तहत पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं। वर्तमान प्रकरण में, अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश द्वारा नई कार्रवाई शुरू की गई है और इसलिए, केवल इस आधार पर कि आदेश अध्यक्ष के अलावा किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया था, कार्रवाई को रद्द नहीं किया जा सकता था। हम इस तर्क से सहमत हैं

और केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण द्वारा आक्षेपित आदेश पारित करने के लिए दिया गया एकमात्र कारण विधि की दृष्टि में टिकने योग्य नहीं है।

13. हालाँकि, हमने रिट याचिका के साथ प्रस्तुत दस्तावेजों का अवलोकन किया है, जिसमें विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध की गई शिकायत और आंतरिक शिकायत समिति द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट शामिल है। शिकायतकर्ता का विवरण नीचे दिया जा रहा है: -

“भारत का भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण

पश्चिम रेलवे, जयपुर

कृपया ध्यान दें - विभागाध्यक्ष पश्चिम रेलवे, जयपुर

विषय:- एक व्यक्ति के विरुद्ध शिकायत

आदरणीय महोदय,

मैं यह पत्र आपको भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, पश्चिम रेलवे, जयपुर में कार्यरत एक व्यक्ति के अनुचित व्यवहार के बारे में सूचित करने के लिए लिख रहा हूँ। जिस संख्या से मुझे परेशान किया जा रहा है और बदनामी का सामना करना पड़ रहा है, वह 9468623803 है, जो टू-कॉलर से है और जिसका नाम कुशाल सिंह हाड़ा (सहायक APAR सेल), भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण, पश्चिम रेलवे, जयपुर है।

मैंने ऊपर दिए गए कुछ स्क्रीनशॉट संलग्न किए हैं और मुझे पूरी उम्मीद है कि आप तत्काल आवश्यक कार्रवाई करेंगे और साथ ही मैं आपकी ओर से यथासंभव सकारात्मक प्रतिक्रिया की भी उम्मीद कर रहा हूँ।

धन्यवाद

सूचनार्थ प्रतिलिपि भेजें

आंतरिक शिकायत समिति अध्यक्ष जीएसआई, पश्चिम रेलवे, जयपुर

सादर

** * **

एलडीसी”

14. समिति की टिप्पणियों में निम्नलिखित टिप्पणियां शामिल हैं:-

iii. दोनों को फोन कॉल के साथ-साथ आमने-सामने की बातचीत को भी रिकॉर्ड करने की आदत है, जिसे बाद में समिति को सौंप दिया जाता है।

vii. शिकायतकर्ता सुश्री * * * ने श्री आकाश गोयल के साथ अपने संबंधों की प्रकृति के बारे में भी समिति को गुमराह किया था। पहले तो उन्होंने इनकार किया, बाद में स्वीकार किया कि वे साथ रह रहे थे। उन्होंने आईसी द्वारा अनुशंसित छुट्टी लेते समय अपने ठहरने के स्थान के बारे में भी समिति को गुमराह किया। इसके अलावा, आकाश गोयल के प्रवेश की पुष्टि करने के लिए जीएसआई कॉलोनी के गेट पर प्रवेश रजिस्टर की जाँच

करते समय, आईसी ने पाया कि जीएसआई कॉलोनी के प्रभारी से प्राप्त प्रति सुश्री * * * द्वारा कार्यालय को प्रस्तुत की गई प्रति से बहुत भिन्न है। उन्होंने अपनी रूम पार्टनर सुश्री * * * के साथ अपने संबंधों के बारे में भी समिति के सामने झूठ बोला।

viii. उसने धमकी और अपनी सुरक्षा से संबंधित कई बातों को बढ़ा-चढ़ाकर बताया, उदाहरण के लिए उसे कुछ गुमनाम फोन कॉल आए, जिसके लिए उसने बिना किसी सबूत के प्रत्यर्थांगण को दोषी ठहराया। समिति ने उन नंबरों पर कॉल करके सत्यापन करने का प्रयास किया, लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। आईसी ने उन दोनों से कई मौकों पर एक-दूसरे के साथ हुई आखिरी बातचीत के बारे में पूछा, जिस पर आकाश गोयल ने आईसी को सूचित किया कि 16.04.2022 को उसके बहनोई के साथ कॉन्फ्रेंस कॉल पर हुई टेलीफोन पर बातचीत ही * * * के साथ उसकी आखिरी बातचीत थी, जिसके बाद उसने * * * की उपस्थिति में उससे बातचीत नहीं की। इसलिए ऐसा लगता है कि सुश्री * * * द्वारा 23.05.2022 के पत्र के माध्यम से श्री आकाश गोयल के खिलाफ लगाए गए आरोप कि उन्होंने उसे फोन किया और उसका पीछा किया, झूठे हैं।

xii. उसने कुछ बयानों पर अपने हस्ताक्षर कर दिए हैं और बाकी पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया है। समिति ने उसे बयानों को बार-बार पढ़ने की अनुमति दी और उसकी काउंसलिंग की, लेकिन वह संतुष्ट नहीं हुई और उसने यह तर्क देते हुए हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया कि बयानों में विस्तार से जानकारी होनी चाहिए क्योंकि यह प्रकरण न्यायालय में जाएगा। उसने समिति से कुछ घटनाओं पर विस्तार से जानकारी देने को भी कहा।

xiii. सुश्री * * * ने कार्यालय की पूर्व अनुमति के बिना अपने मोबाइल फोन की चोरी के संबंध में पुलिस को कार्यालय में लाकर कार्यालय की छवि धूमिल की है। पुलिस की शिकायतों के कारण, अधिकांश गवाह डरे हुए थे, कोई भी जानकारी साझा नहीं करना चाहते थे।

xiv. कार्यवाही में गवाह के रूप में बुलाए गए सभी सहयोगियों ने बताया कि * * * और आकाश दोनों अपने-अपने अनुभागों में दोपहर के भोजन के समय एक-दूसरे से मिलते थे और सामान्य चर्चा करते थे और उन्होंने उन्हें झगड़ते या अशिष्टता से बात करते नहीं देखा। पार्टी बिल अनुभाग के एलडीसी श्री अरुण यादव ने आईसी को सूचित किया कि * * * मार्च, 2022 के महीने में बहुत परेशान और तनावग्रस्त थे, जैसा कि फोन पर बात करते समय उनके चेहरे के भाव से पता चलता है।

xv. ऐसा लगता है कि प्रशासनिक कार्रवाई में कुछ चूक के कारण भी प्रकरण बिगड़ गया। अगर कार्यालय प्रशासन ने सीसीएस आचरण नियमों के आधार पर शुरूआती शिकायतों पर कार्रवाई की होती, तो प्रकरण जल्दी सुलझ सकता था। इतनी सारी शिकायतों के बाद, शिकायतकर्ता और प्रत्यर्थी, दोनों के बैठने की व्यवस्था अलग-अलग भवनों या विंग में की जा सकती थी।

xvii. कार्यालय में पुलिस को लाने के लिए सीसीएस आचरण नियमों के तहत सुश्री * * * के खिलाफ कार्रवाई की जानी चाहिए थी, जिससे कार्यालय की छवि खराब हुई। (एसआईसी) इस संबंध में सुरक्षा अधिकारी द्वारा लिखित शिकायत के बावजूद, मौखिक चेतावनी के अलावा कोई कार्रवाई नहीं की गई है।

xviii. समिति ने कहा कि सब कुछ उनके निजी मुद्दे से शुरू हुआ। समय के साथ उनके संबंध इस हद तक बिगड़ गए कि, प्रकरण कार्यालय को भी शामिल करने लगा और इस तरह कार्यालय का बहुमूल्य समय बर्बाद हुआ और काम के घंटों की उत्पादकता प्रभावित हुई। रोका की समाप्ति के बाद और सुश्री * * *, एलडीसी और श्री आकाश गोयल, सहायक के बीच संबंध से ऐसा लगता है कि एक दूसरे से बदला लेने और दूसरे को बदनाम करने के दुर्भावनापूर्ण इरादे से आरोप-प्रत्यारोप का खेल चल रहा था। उन्होंने इस प्रकरण में कार्यालय को भी अनावश्यक रूप से शामिल किया, बावजूद इसके कि दोनों ने 1 अप्रैल, 2022 को कार्यालय को एक पत्र सौंपा था जिसमें स्वीकार किया गया था कि यह उनका निजी प्रकरण है और वे कार्यालय को आगे शामिल नहीं करेंगे। सुश्री * * * एलडीसी को बदनाम करने के दुर्भावनापूर्ण इरादे से उनकी व्यक्तिगत सामग्री और संवेदनशील गर्भावस्था रिपोर्ट दूसरों के साथ साझा करना श्री आकाश ग्याल, सहायक का कृत्य एक महिला की मर्यादा को भंग करने का प्रयास है।

15. आंतरिक शिकायत समिति ने निम्नलिखित सिफारिशों की थीं:-

i. यह प्रकरण व्यक्तिगत मुद्दे से शुरू हुआ और इतना बढ़ गया कि पूरे कार्यालय को इसका खामियाजा भुगतना पड़ा, जिसके लिए सीसीएस आचरण नियमों के अनुसार प्रत्यर्थी और शिकायतकर्ता दोनों पर उचित कार्रवाई की जा सकती है।

ii. प्रत्यर्थी द्वारा शिकायतकर्ता के सम्मानपूर्वक जीवन जीने के अधिकार और गोपनीयता के अधिकार का उल्लंघन किया गया है। उसने महिला की सहमति के बिना उसकी निजी जानकारी, जैसे कि व्हाट्सएप चैट सामग्री, गर्भावस्था रिपोर्ट, दूसरों के साथ साझा की है, जिससे महिला की गरिमा को ठेस पहुँची है। अतः, महिला को परेशान करने और सरकारी कर्मचारी के आचरण के विरुद्ध कार्य करने के लिए प्रत्यर्थी श्री आकाश गोयल के विरुद्ध सीसीएस और आचरण नियमों के अनुसार उचित कार्रवाई की जाए।

iii. यद्यपि शिकायतकर्ता सुश्री * * * को जीएसआई, जयपुर से डीजीसीओ, नई दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया है, समिति श्री आकाश गोयल के स्थानांतरण की भी सिफारिश करती है, क्योंकि उन्होंने एक महिला की जानकारी को अन्य सहकर्मी के फोन का उनकी सहमति के बिना उपयोग करके साझा करके कार्यालय के माहौल को बिगाड़ा और उच्च अधिकारियों के माध्यम से समिति को प्रभावित करने की कोशिश की और कार्यवाही की गोपनीय सामग्री को अन्य अधिकारियों को लीक कर दिया।

iv. सुश्री * * * ने कुछ बयानों पर हस्ताक्षर किए हैं तथा अन्य पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया है, जबकि समिति ने उनकी चिंताओं पर ध्यान देने के लिए सभी प्रयास किए हैं, जिसके लिए उन्हें परामर्श की आवश्यकता है।

16. शिकायतकर्ता ने विपक्षी संख्या 2 के साथ संयुक्त रूप से दिनांक 01.04.2022 को निदेशक (जी) एवं कार्यालय प्रमुख जीएसआई, पश्चिमी क्षेत्र, जयपुर को एक आवेदन प्रस्तुत किया था जिसमें कहा गया था कि उनके बीच प्रकरण सुलझा लिया गया है।

17. रिकार्ड से यह भी पता चलता है कि शिकायतकर्ता को उसकी अपनी इच्छा के अनुसार नई दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया था और आंतरिक शिकायत समिति की सिफारिशों के बावजूद उसके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई।

18. भारत सरकार ने यौन उत्पीड़न की शिकायतों से निपटने के लिए दिशानिर्देश जारी किए हैं। दिशानिर्देश का प्रासंगिक अंश, जो "यौन उत्पीड़न" से संबंधित है, इस प्रकार है:-
यौन उत्पीड़न क्या है?

2. "यौन उत्पीड़न" में निम्नलिखित में से कोई एक या अधिक कार्य या व्यवहार (चाहे प्रत्यक्ष रूप से या निहितार्थ से) शामिल हैं, अर्थात:-

(i) शारीरिक संपर्क और प्रगति; या

(ii) यौन संबंधों की मांग या अनुरोध करना; या

(iii) यौन रंजित टिप्पणी; या

(iv) कोई अश्लील साहित्य दिखाना; या

(v) यौन प्रकृति का कोई अन्य अवांछित शारीरिक, मौखिक, गैर-मौखिक आचरण।

3. अन्य परिस्थितियों के साथ-साथ, यौन उत्पीड़न के किसी कृत्य या व्यवहार से संबंधित निम्नलिखित परिस्थितियां यौन उत्पीड़न मानी जाएंगी: -

- (i) रोजगार में अधिमान्य व्यवहार का निहित या स्पष्ट वादा; या
- (ii) रोजगार में हानिकारक व्यवहार की निहित या स्पष्ट धमकी; या

- (iii) उसकी वर्तमान या भविष्य की रोजगार स्थिति के बारे में निहित या स्पष्ट धमकी; या
 - (iv) उसके काम में हस्तक्षेप करना या उसके लिए डराने वाला या आक्रामक या शत्रुतापूर्ण कार्य वातावरण बनाना; या
 - (v) अपमानजनक व्यवहार जिससे उसके स्वास्थ्य या सुरक्षा पर असर पड़ने की संभावना हो।
- शिकायत का अवलोकन करने से पता चलता है कि शिकायत में लगाए गए किसी भी आरोप से भारत सरकार द्वारा जारी दिशा-निर्देशों में परिभाषित "यौन उत्पीड़न" का प्रकरण नहीं बनता है।

19. शिकायतकर्ता ने पहले ही अतिरिक्त निदेशक, जीएसआई को पत्र लिखकर बताया है कि उसके और विपक्षी संख्या 2 के बीच विवाद सुलझ गया है। इन परिस्थितियों में, विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई करने का निर्देश देने से पहले, प्राधिकारियों को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए था कि विपक्षी संख्या 2 द्वारा यौन उत्पीड़न का कोई प्रथम दृष्टया प्रकरण बनता है या नहीं। प्राधिकारियों ने विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध नए सिरे से कार्यवाही शुरू करने से पहले कोई संतुष्टि दर्ज नहीं की है। अभिलेखों की जाँच करने पर, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध यौन उत्पीड़न के आरोप पर कोई नई कार्यवाही शुरू करने का कोई प्रकरण नहीं बनता है।

20. विपक्षी संख्या 2 ने विभाग के दो उच्च अधिकारियों के खिलाफ पुलिस स्टेशन जवाहर सर्किल, जिला जयपुर शहर (पूर्व) में धारा 384, 211, 120 बी आईपीसी के तहत एफआईआर संख्या 0326 दर्ज कराई है जिसमें आरोप लगाया गया है कि उन्होंने साजिश रची और शिकायतकर्ता को झूठी शिकायत दर्ज करने के लिए उकसाया और उन्होंने पेन ड्राइव में रिकॉर्ड की गई बातचीत के रूप में आरोप के समर्थन में सबूत पेश किए हैं। विपक्षी संख्या 2 ने महानिदेशक, जीएसआई को दिनांक 07.05.2023 को (i) राज कुमार चौहान, उप निदेशक (कार्मिक और प्रशासन) जीएसआई, महानिदेशक कैम्प कार्यालय, नई दिल्ली और (ii) अशोक कुमार सिंह, सहायक निदेशक (कार्मिक और प्रशासन) जीएसआई, नई दिल्ली के खिलाफ उपरोक्त बातचीत की प्रतिलिपि प्रस्तुत करते हुए एक शिकायत भेजी है जिसमें दिखाया गया है कि उन्होंने शिकायतकर्ता को विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ झूठी शिकायत दर्ज करने के लिए उकसाया था 2 ने उससे कुछ नहीं कहा था। विपक्षी सं. 2 ने महानिदेशक से उक्त दोनों अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई करने का अनुरोध किया है लेकिन ऐसा लगता है कि उन दोनों अधिकारियों के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई है। आंतरिक शिकायत समिति ने विपक्षी सं. 2 के साथ-साथ शिकायतकर्ता को अपने व्यक्तिगत मुद्दों को इस हद तक बढ़ाने का दोषी पाया कि पूरे कार्यालय को नुकसान हुआ और समिति ने विपक्षी सं. 2 और शिकायतकर्ता दोनों के खिलाफ उचित कार्रवाई करने की सिफारिश की थी लेकिन केवल विपक्षी सं. 2 के खिलाफ कार्रवाई की गई है और आंतरिक शिकायतकर्ता समिति की सिफारिश के बावजूद शिकायतकर्ता के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई है। यह प्रथम दृष्टया इंगित करता है कि अधिकारियों ने अन्य दोषी व्यक्तियों को बचाते हुए विपक्षी सं. 2 के खिलाफ प्रतिशोध की भावना से काम किया है।

21. इन परिस्थितियों में, विपक्षी संख्या 2 के विरुद्ध इस आधार पर कोई नई कार्यवाही नहीं की जा सकती कि उसने शिकायतकर्ता के विरुद्ध यौन उत्पीड़न का कृत्य किया है।

22. यद्यपि यह विधि का एक सामान्य सिद्धांत है कि किसी आदेश की वैधता की जांच उस आदेश में उल्लिखित कारणों के आधार पर की जानी चाहिए। यह भी समान रूप से स्थापित है कि यदि कोई आदेश कुछ अवैधता से ग्रस्त है, तब भी उच्च न्यायालय उसे रद्द करने के लिए अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं करेगा यदि इससे किसी अन्य अवैधता की बहाली हो या इससे अन्याय को बढ़ावा मिले। उच्च न्यायालय एक न्यायालय अभिलेख है जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 215 में उल्लिखित है, ऐसे न्यायालय में न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए सभी अंतर्निहित शक्तियां हैं। न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश में इस आधार पर हस्तक्षेप करना कि आदेश को रद्द करने के लिए न्यायाधिकरण द्वारा निर्दिष्ट कारण गलत है, परिणामस्वरूप विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ नई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जाएगी, जो इस आदेश में उल्लिखित कारणों से उचित नहीं है और जो न्याय के हित में नहीं होगा।

23. उपर्युक्त चर्चा के मद्देनजर, हमें केंद्रीय प्रशासनिक अधिकरण, लखनऊ पीठ, लखनऊ द्वारा मूल आवेदन संख्या 332/00365/2023 में पारित दिनांक 08.05.2024 के निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करने और विपक्षी संख्या 2 के खिलाफ नई अनुशासनात्मक कार्यवाही की अनुमति देने का कोई अच्छा आधार नहीं मिलता है, हालांकि, कारण न्यायाधिकरण द्वारा आक्षेपित आदेश में उल्लिखित कारण से भिन्न हैं।

24. तदनुसार, रिट याचिका **खारिज** की जाती है। लागत के सम्बन्ध में आदेश नहीं।

(2025) 1 ILRA 792

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: लखनऊ 03.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

रिट-ए संख्या- 12938/2024

श्रीमती पिन माया कुमल

...याचिकाकर्ता

बनाम

भारत सरकार एवं अन्य

...प्रत्यर्थी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

अशोक कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थीगण की ओर से अधिवक्ता:

ए.एस.जी.आई.

ए. सेवा विधि - पेंशन - रक्षा सेवा विनियमन: विनियमन 333; हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 - दूसरा विवाह केवल कुछ परिस्थितियों में ही किया जा सकता है और वह भी सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी प्राप्त करने के बाद और इस प्रावधान का कोई भी उल्लंघन संबंधित कर्मचारी की सेवा समाप्ति को आकर्षित कर सकता है। (प्रस्तर 16)

वर्तमान प्रकरण में, स्वर्गीय टेक बहादुर थापा एक नेपाली गोरखा थे और ऊपर उद्धृत विनियमन 333 के अनुसार, वे निम्नलिखित परिस्थितियों में पुनर्विवाह कर सकते थे: -

- (i) जब पत्नी असाध्य पागलपन से पीड़ित हो,
- (ii) जब विवाह के दस वर्ष तक कोई संतान न हो,
- (iii) जब पत्नी लकवाग्रस्त हो और हिल-डुल न सके,
- (iv) जब पत्नी दोनों आँखों से अंधी हो जाए।
- (v) जब पत्नी किसी संक्रामक असाध्य यौन संचारित रोग से पीड़ित हो। (पैरा 7)

स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की पहली शादी से चार बेटियाँ और एक बेटा था और यह कोई भी प्रकरण नहीं है कि उनकी पहली पत्नी श्रीमती दल्ली माया कुमल सेना विनियम 333 (बी) (ए) में उल्लिखित किसी भी बीमारी/दुर्बलता से पीड़ित थीं। श्री टेक बहादुर थापा ने विनियम 333 (बी) (बी) में उल्लिखित किसी भी आधार पर बहु विवाह करने की मंजूरी के लिए आवेदन नहीं किया था। सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी प्राप्त किए बिना बहु विवाह करने वाले व्यक्ति की सेवा सेना विनियम 333 (बी) (जी) में निहित प्रावधानों के तहत समाप्ति की जा सकती है, लेकिन स्वर्गीय टेक बहादुर थापा द्वारा बहु विवाह करने का तथ्य उनकी सेवा अवधि के दौरान या उसके बाद उनके जीवनकाल के दौरान अधिकारियों के ध्यान में नहीं लाया गया था। इसलिए, उनकी सेवा समाप्ति के लिए कोई प्रशासनिक कार्रवाई नहीं की गई थी। (प्रस्तर 6, 8)

बी. याचिकाकर्ता विधि का ऐसा कोई प्रावधान नहीं बता सका जिसके तहत यह विवाह (पहला विवाह) अमान्य हो। इसलिए, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता कि स्वर्गीय टेक बहादुर थापा और श्रीमती दल्ली माया कुमल का विवाह अमान्य था। (प्रस्तर 14)

सी. यह दलील कि याचिकाकर्ता एक अशिक्षित व्यक्ति है और वह अपने दिवंगत पति के सेवा अभिलेखों के उचित रखरखाव के लिए जिम्मेदार नहीं थी और स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के सेवा अभिलेखों का सही ढंग से रखरखाव करना और उसमें याचिकाकर्ता का नाम पत्नी के रूप में दर्ज करना प्राधिकारियों का काम था, कोई बल नहीं रखती क्योंकि परिवार के सदस्यों/आश्रितों के बारे में जानकारी संबंधित कर्मचारी/अधिकारी द्वारा स्वयं प्राधिकारियों को दी जाती है। (प्रस्तर 15)

सशस्त्र बल न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर मूल आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उसका नाम मृतक सैनिक के सेवा रिकॉर्ड में दर्ज नहीं है। (प्रस्तर 9)

स्वर्गीय टेक बहादुर थापा ने श्रीमती दल्ली माया कुमाल का नाम अपनी पत्नी के रूप में उल्लेख किया था और याचिकाकर्ता ने स्वीकार किया है कि श्रीमती दल्ली माया कुमाल वास्तव में स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की पत्नी थीं। स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के साथ याचिकाकर्ता का विवाह विनियमन 333 के प्रावधानों का उल्लंघन था और इससे याचिकाकर्ता को स्वर्गीय टेक बहादुर थापा द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से संबंधित या उनसे उत्पन्न होने वाले किसी भी लाभ का कोई अधिकार नहीं मिलता। (प्रस्तर 16)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

पूर्व उदाहरण:

1. विद्याधारी बनाम सुखराना बाई, (2008) 2 एससीसी 238 (पैरा 17)
2. तुलसा देवी निरोला बनाम राधा निरोला, 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 283 (पैरा 17)
3. रामेश्वरी देवी बनाम बिहार राज्य, (2000) 2 एससीसी 431 (पैरा 18)

(माननीय न्यायमूर्ति अताउ रहमान मसूदी

और

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा पारित)

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री अशोक कुमार श्रीवास्तव, भारत के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता/उप महाधिवक्ता श्री एस.बी. पांडे तथा विपक्षी के विद्वान अधिवक्ता श्री वरुण पांडे को सुना गया तथा रिकार्ड पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया गया।

2. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दायर इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत की मांग की है: -

“(i) सशस्त्र बल न्यायाधिकरण (आरबी), लखनऊ द्वारा पारित दिनांक 20.11.2023 और 08 अप्रैल 2024 के विवादित आदेशों को रद्द करने के लिए उत्प्रेषण की प्रकृति में एक रिट, आदेश या निर्देश जारी करें, जो इस याचिका के साथ क्रमशः अनुलग्नक संख्या 1 और 2 के रूप में संलग्न हैं और इस प्रकार उन्हें 14 जुलाई 2016 से अर्थात् 13 जुलाई 2016 को उनके पति की मृत्यु के अनुसरण में साधारण पारिवारिक पेंशन का हकदार प्रदान करें।

(ii) दिनांक 14.07.2016 से अर्थात् 13.07.2016 को उसके पति की मृत्यु के बाद याचिकाकर्ता की साधारण पारिवारिक पेंशन से इनकार करने वाले आदेशों को समन करने और रद्द करने/रद्द करने के लिए उचित प्रकृति का आदेश या निर्देश जारी करना/पारित करना।

(iii) याचिकाकर्ता को 14.07.2016 से अर्थात् 13 जुलाई 2016 को उसके पति की मृत्यु के बाद साधारण पारिवारिक पेंशन, एलटीए और आगामी लाभ प्रदान करने के लिए विपक्षीयता को उचित प्रकृति का आदेश या निर्देश जारी करना/पारित करना।

(iv) परमादेश की प्रकृति में एक रिट, निर्देश आदेश जारी करें जिसमें प्रत्यर्थी को सभी बकाया राशि और साधारण पारिवारिक पेंशन के बकाया का भुगतान नियत तिथि से लेकर पूर्वोक्त बकाया के वास्तविक संवितरण तक 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित करने का आदेश दिया जाए।

(v) न्याय के हित में याचिकाकर्ता के पक्ष में एक रिट, निर्देश आदेश जारी करें जिसे यह माननीय न्यायालय प्रकरण के तथ्यों और परिस्थितियों के तहत उचित और उचित समझे।

(vi) रिट याचिका को लागत के साथ स्वीकार किया जाए।”

3. संक्षेप में कहा जाए तो याचिकाकर्ता की ओर से प्रकरण के तथ्य यह हैं कि याचिकाकर्ता स्वर्गीय सूबेदार टेक बहादुर थापा (नेपाल के एक गोरखा) की दूसरी पत्नी हैं। स्वर्गीय टेक बहादुर थापा 28.11.1961 को भारतीय सेना में भर्ती हुए थे और उन्हें 30.11.1989 से सेवा से मुक्त कर दिया गया था। 13.07.2016 को उनकी मृत्यु तक उन्हें पेंशन का भुगतान किया गया था। याचिकाकर्ता का दावा है कि उनका विवाह 06.03.1969 को स्वर्गीय टेक बहादुर थापा से हुआ था। अपनी शादी के बाद, याचिकाकर्ता को पता चला कि उनके पति की पहले से ही श्रीमती दल्ली माया कुमल से 07.02.1953 को शादी हो चुकी थी और उस विवाह से उनकी चार बेटियां और एक बेटा था। टेक बहादुर थापा की मृत्यु के समय, उनकी पहली पत्नी के सभी पांच बच्चे 25 वर्ष से अधिक उम्र के थे और विवाहित थे स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के सेवा रिकार्ड में उनकी पत्नी का नाम श्रीमती दल्ली माया कुमल अंकित है, लेकिन संलग्न फोटो में याचिकाकर्ता को स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की पत्नी बताया गया है।

4. याचिकाकर्ता ने पारिवारिक पेंशन के भुगतान के लिए दावा किया, जिसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया कि उसका नाम स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के सेवा दस्तावेजों में दर्ज नहीं था और यह भी कि स्वर्गीय टेक बहादुर थापा ने याचिकाकर्ता से शादी करने से पहले श्रीमती दल्ली माया कुमल से शादी की थी और इस प्रकार उन्होंने सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी प्राप्त किए बिना कई बार शादी की थी।

5. अपने दावे को अस्वीकार किये जाने से व्यथित होकर, याचिकाकर्ता ने सशस्त्र बल न्यायाधिकरण, क्षेत्रीय पीठ, लखनऊ के समक्ष मूल आवेदन संख्या 989/2022 दायर किया, जिसे दिनांक 20.11.2023 के निर्णय और आदेश के माध्यम से खारिज कर दिया गया, जिस आदेश को तत्काल रिट याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई है।

6. सशस्त्र बल न्यायाधिकरण ने पाया कि स्वर्गीय टेक बहादुर थापा ने श्रीमती दल्ली माया कुमाल के साथ अपनी पहली शादी के दौरान सक्षम प्राधिकारी की अनुमति के बिना याचिकाकर्ता से विवाह किया था और रक्षा सेवा विनियमों के नियम 333 के अनुसार, याचिकाकर्ता के साथ उनका दूसरा विवाह अमान्य था। उपरोक्त विनियमों के नियम 333 में निम्नलिखित प्रावधान हैं:-

“333. बहुविवाह- (क) विशेष विवाह अधिनियम 1954 और हिंदू विवाह अधिनियम 1955 'एकपत्नीत्व' का नियम निर्धारित करते हैं, अर्थात् विवाह के समय किसी भी पक्ष का कोई जीवित जीवनसाथी नहीं होता है। ये अधिनियम विवाह की शून्यता, वैवाहिक अधिकारों की पुनर्स्थापना, न्यायिक पृथक्करण और तलाक के आदेश और गुजारा भत्ता तथा बच्चों की कस्टडी के आदेश भी प्रदान करते हैं। हिंदू विवाह अधिनियम सभी हिंदुओं, बौद्धों, जैनियों और सिखों पर लागू होता है और उन सभी अन्य व्यक्तियों (कुछ अपवादों को छोड़कर) पर भी लागू होता है जो धर्म से मुस्लिम, ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं हैं। ईसाई, पारसी और यहूदी भी अपने-अपने व्यक्तिगत कानूनों के तहत बहुविवाह करने से वंचित हैं। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति जिसने विशेष विवाह अधिनियम के तहत अपना विवाह संपन्न या पंजीकृत किया है या जो ईसाई, पारसी या यहूदी है या जिस पर हिंदू विवाह अधिनियम 1955 लागू होता है, अब अपनी पत्नी या पति के जीवनकाल में पुनर्विवाह नहीं कर सकता है। नीचे उप-अनुच्छेद (ग) (क) से (ग) लागू होते हैं। केवल ऐसे व्यक्तियों पर लागू होता है। एक मुस्लिम या ऐसा अन्य व्यक्ति जिस पर हिंदू विवाह अधिनियम लागू नहीं होता है और जिसका व्यक्तिगत विधि बहुविवाह या बहुपतित्व को प्रतिबंधित नहीं करता है, वह अपनी पत्नी या पति के जीवनकाल के दौरान विवाह कर सकता है और नीचे दिए गए उप-पैरा (बी) (ए) से (एच) केवल ऐसे व्यक्तियों पर लागू होते हैं।

(बी) ऐसे व्यक्तियों द्वारा बहुविवाह जिनके प्रकरण में यह अनुमेय है: -

(ए) नेपाली अधिवास के गोरखा कार्मिकों को छोड़कर सेना अधिनियम के अधीन कोई भी व्यक्ति सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना अपनी पत्नी के जीवनकाल में पुनः विवाह नहीं कर सकता है। वे परिस्थितियां जिनके अंतर्गत ऐसे गोरखा कार्मिक बहुविवाह कर सकते हैं, वे हैं:-

- (i) जब पत्नी असाध्य पागलपन से पीड़ित हो,
- (ii) जब विवाह के दस वर्ष तक कोई संतान न हो,
- (iii) जब पत्नी लकवाग्रस्त हो और हिल-डुल न सके,
- (iv) जब पत्नी दोनों आँखों से अंधी हो जाए।

(v) जब पत्नी किसी संक्रामक असाध्य यौन संचारित रोग से पीड़ित हो।

(ख) कोई व्यक्ति अपनी पत्नी के जीवनकाल में निम्नलिखित में से किसी एक या अधिक आधार पर बहुविवाह करने की मंजूरी के लिए आवेदन कर सकता है:-

(i) उसकी पत्नी ने उसे त्याग दिया है और ऐसे त्याग का पर्याप्त सबूत है;

(ii) उसकी पत्नी को चिकित्सकीय रूप से पागल घोषित कर दिया गया है;

(iii) पत्नी की बेवफाई न्यायालय में साबित हो गई है; और

(iv) कोई अन्य विशेष परिस्थितियाँ जो ब्रिगेड या समकक्ष कमांडर की राय में बहुविवाह को उचित ठहराती हों।

(ग) आवेदन में उस विधि का उल्लेख होगा जिसके अंतर्गत मौजूदा विवाह संपन्न, पंजीकृत या संपन्न हुआ था और जहां लागू हो, वहां निम्नलिखित विवरण शामिल होंगे:-

(i) क्या पिछली पत्नी पति के साथ रहना जारी रखेगी;

(ii) यदि पिछली पत्नी पति के साथ रहने का प्रस्ताव नहीं रखती है, तो कितना भरण-पोषण भत्ता दिया जाना प्रस्तावित है और किस प्रकार से; और

(iii) पूर्व विवाह से उत्पन्न प्रत्येक संतान का नाम, आयु और लिंग, तथा प्रत्येक संतान के लिए प्रस्तावित भरण-पोषण भत्ता, यदि ऐसा कोई संतान माता की अभिरक्षा में रहती है। सभी प्रकरण में, आवेदक को इस आशय का प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना होगा कि वह धर्म से ईसाई, पारसी या यहूदी नहीं है, उसने विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अंतर्गत अपना पूर्व विवाह संपन्न या पंजीकृत नहीं कराया था और हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 उस पर लागू नहीं होता।

(डी) आवेदन सामान्य माध्यमों से भेजे जाएँगे और प्रत्येक मध्यवर्ती कमांडर अपनी विशिष्ट सिफारिशों का समर्थन करेगा। ऐसी सिफारिशों पर कमांडर स्वयं हस्ताक्षर करेगा या व्यक्तिगत रूप से अनुमोदित होगा। अपनी सिफारिशें देने से पहले, कमांडर स्वयं आश्वस्त होगा कि प्रस्तावित बहुविवाह के लिए दिए गए कारण पर्याप्त साक्ष्यों द्वारा पूरी तरह समर्थित हैं।

(ई) जिस व्यक्ति का विवाह किसी प्रथागत या वैयक्तिक विधि के अनुसार, लेकिन न्यायिक आदेश द्वारा नहीं, विच्छेदित हुआ है, वह तलाक के तुरंत बाद, विवाह विच्छेद की सभी परिस्थितियों और कथित प्रथा या वैयक्तिक विधि के अस्तित्व के वैध प्रमाण की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। यदि आवश्यक समझा जाए, तो कथित प्रथा या वैयक्तिक विधि के अस्तित्व और वैधता का सत्यापन सिविल प्राधिकारियों से करवाया जाएगा और यदि सिविल प्राधिकारियों द्वारा इसकी पुष्टि हो जाती है, तो विवाह विच्छेद हेतु कैजुअल्टी प्रकाशित करने की कार्रवाई की जाएगी। इसके बाद, उस व्यक्ति को दूसरा विवाह करने के लिए अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी।

(एफ) यदि आवेदन की अनुशंसा कमांडिंग ऑफिसर तथा उससे वरिष्ठ अधिकारी द्वारा न की गई हो तो उसे सेना मुख्यालय भेजने की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसे संबंधित कमांड के जीओसी-इन-सी द्वारा अस्वीकृत किया जा सकता है।

(जी) ऐसे प्रकरण जहां यह पाया जाता है कि किसी व्यक्ति ने उपर्युक्त खंड (क) में अपेक्षित पूर्व सरकारी मंजूरी प्राप्त किए बिना बहुविवाह किया है, उन पर निम्नानुसार कार्रवाई की जाएगी:-

(i) अधिकारियों के प्रकरण की रिपोर्ट सामान्य माध्यम से सेना मुख्यालय (एजी/डीवी-2) को इस सिफारिश के साथ भेजी जाएगी कि क्या पूर्वव्यापी मंजूरी प्राप्त की जानी चाहिए या व्यक्ति के विरुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई की जानी चाहिए।

(ii) जेसीओ और ओआर के प्रकरण कमांड के जीओसी-इन-सी को प्रस्तुत किए जाएंगे, जो यह निर्णय लेंगे कि क्या पूर्वव्यापी स्वीकृति प्राप्त की जानी चाहिए या व्यक्ति के विरुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई की जानी चाहिए। ऐसे प्रकरण में, जहाँ यह निर्णय लिया जाता है कि व्यक्ति के विरुद्ध प्रशासनिक कार्रवाई की जानी चाहिए, सक्षम प्राधिकारी के आदेशानुसार उसकी सेवा समाप्त कर दी जाएगी। उच्च अधिकारियों को प्रकरण की सूचना देते समय, मध्यवर्ती कमांडर अपनी विशिष्ट सिफारिशों पर कारण सहित हस्ताक्षर करेंगे। यहाँ भी सिफारिशें कमांडरों द्वारा स्वयं हस्ताक्षरित की जाएंगी या उनके द्वारा व्यक्तिगत रूप से अनुमोदित की जाएंगी। साथ ही, सेवा समाप्ति के आदेश के विरुद्ध 'कारण बताओ' का अवसर संबंधित व्यक्ति को हमेशा दिया जाएगा।

(एच) किसी भी परिस्थिति में किसी व्यक्ति के विरुद्ध, जो उपरोक्त खंड (क) के प्रावधानों का उल्लंघन करता पाया जाता है, न्यायालय मार्शल या संक्षिप्त निपटान द्वारा मुकदमा चलाकर अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी। हालाँकि, यदि यह पाया जाता है कि व्यक्ति ने बहुविवाह करने के अपने कृत्य से संबंधित कोई अन्य अपराध भी किया है, तो संबंधित अपराध के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है और सामान्य तरीके से आगे बढ़ाई जा सकती है।

(सी) ऐसे व्यक्तियों द्वारा बहुविवाह जिनके प्रकरण में यह अनुमेय नहीं है-

(ए) ऐसा व्यक्ति जिसका विवाह हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 20(2) सहपठित धारा 3(क) के प्रावधानों के अंतर्गत किसी मान्यता प्राप्त रिवाज या विशेष अधिनियम के अनुसार, किन्तु न्यायिक आदेश द्वारा नहीं, विच्छेदित हुआ है, तलाक के तुरंत बाद, विवाह विच्छेद की संपूर्ण परिस्थितियों और कथित मान्यता प्राप्त रिवाज या विशेष अधिनियम के अस्तित्व के वैध प्रमाण की रिपोर्ट देगा। कथित रिवाज या विशेष अधिनियम के अस्तित्व और वैधता का सत्यापन सिविल प्राधिकारियों से कराया जाएगा और यदि सिविल प्राधिकारियों द्वारा तलाक के वैध होने की पुष्टि हो जाती है, तो विवाह विच्छेद हेतु आकस्मिक सूचना प्रकाशित करने हेतु कार्रवाई की जाएगी। इसके बाद उस व्यक्ति को दूसरा विवाह करने के लिए स्वीकृति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होगी।

(बी) ऐसे किसी भी व्यक्ति द्वारा अनुष्ठापित, अनुबंधित या संपन्न बहुविवाह शून्य और अमान्य हैं और उसके किसी भी पक्ष द्वारा न्यायालय में प्रस्तुत याचिका पर, शून्यता की डिक्री द्वारा उसे शून्य घोषित किया जा सकता है। न केवल बहुविवाह शून्य है, बल्कि द्विविवाह का अपराध भी घटित होता है। हालाँकि, यह अपराध केवल पीड़ित पक्ष द्वारा सिविल प्राधिकारी को की गई शिकायत पर ही विचारणीय है। द्विविवाह के अपराध के लिए दंड भारतीय दंड संहिता की धारा 494 और 495 में निर्धारित है।

(सी) जब किसी भी स्रोत से शिकायत प्राप्त होने पर यह पाया जाता है कि किसी भी ऐसे व्यक्ति ने बहुविवाह की रस्म निभाई है, तो उसके खिलाफ न्यायालय मार्शल या संक्षिप्त निपटारे के जरिए कोई अनुशासनात्मक कार्रवाई नहीं की जाएगी, लेकिन उसकी सेवा समाप्त करने के लिए प्रशासनिक कार्रवाई शुरू की जाएगी और प्रकरण की सूचना ऊपर उप-पैरा (बी) (जी) में निर्धारित तरीके से उच्च अधिकारियों को दी जाएगी। ऐसे प्रकरण में जहां सक्षम क्षेत्राधिकार वाले सिविल न्यायालय द्वारा संज्ञान लिया गया है, प्रकरण को विचाराधीन माना जाना चाहिए और कोई भी कार्रवाई करने से पहले न्यायालय के फैसले का इंतजार किया जाना चाहिए। जब किसी व्यक्ति को द्विविवाह के अपराध का दोषी ठहराया गया हो या जहां बहुविवाह के आधार पर न्यायालय के फैसले से उसकी शादी को शून्य घोषित किया गया हो, तो सेना नियम 14 के साथ एए सेक्शन 19 या सेना नियम 17 के साथ एए सेक्शन 20 के तहत उसकी सेवा समाप्त करने की कार्रवाई की जाएगी। कोई पूर्व-कार्योत्तर मंजूरी नहीं दी जा सकती है क्योंकि इस तरह के विवाह देश के विधि के विपरीत हैं।”

(प्रभाव वर्द्धित)

7. स्वर्गीय टेक बहादुर थापा एक नेपाली गोरखा थे और ऊपर उद्धृत विनियमन 333 के अनुसार, वे निम्नलिखित परिस्थितियों में पुनर्विवाह कर सकते थे: -

- (i) जब पत्नी असाध्य पागलपन से पीड़ित हो,
- (ii) जब विवाह के दस वर्ष तक कोई संतान न हो,
- (iii) जब पत्नी लकवाग्रस्त हो और हिल-डुल न सके,
- (iv) जब पत्नी दोनों आँखों से अंधी हो जाए।
- (v) जब पत्नी किसी संक्रामक असाध्य यौन संचारित रोग से पीड़ित हो।

8. ऐसा कोई आरोप नहीं है कि उपर्युक्त पाँच परिस्थितियों में से कोई भी स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के याचिकाकर्ता के साथ दूसरे विवाह को उचित ठहराती है। स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की पहली शादी से चार बेटियाँ और एक बेटा था और यह किसी का भी दावा नहीं है कि उनकी पहली पत्नी श्रीमती दल्ली माया कुमाल सेना विनियमावली के विनियम 333(बी)(ए) में उल्लिखित किसी भी बीमारी/दुर्बलता से पीड़ित थीं। श्री टेक बहादुर थापा ने विनियम 333(बी)(बी) में उल्लिखित किसी भी आधार पर बहु विवाह करने की अनुमति के लिए आवेदन नहीं किया था। सक्षम प्राधिकारी से अनुमति प्राप्त किए बिना बहु विवाह करने वाले व्यक्ति की सेवा सेना विनियमावली के विनियम 333(बी)(जी) में निहित प्रावधानों के तहत समाप्त की जा सकती है,

लेकिन स्वर्गीय टेक बहादुर थापा द्वारा बहु विवाह करने का तथ्य उनकी सेवा अवधि के दौरान या उसके बाद भी उनके जीवनकाल में प्राधिकारियों के ध्यान में नहीं लाया गया था। इसलिए, उनकी सेवा समाप्ति के लिए कोई प्रशासनिक कार्रवाई नहीं की गई।

9. स्वर्गीय टेक बहादुर थापा ने याचिकाकर्ता का नाम अपनी पत्नी के रूप में सेवा अभिलेखों में दर्ज नहीं करवाया था। सशस्त्र बल न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता द्वारा दायर मूल आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया कि उनका नाम मृतक सैनिक के सेवा अभिलेखों में दर्ज नहीं है।

10. याचिकाकर्ता ने रिट याचिका या इसके समर्थन में दायर हलफनामे पर अपने हस्ताक्षर नहीं किए हैं और इन पर प्रेम बहादुर नामक व्यक्ति द्वारा हस्ताक्षर और सत्यापन किया गया है, जो स्वर्गीय टेक बहादुर थापा का चचेरा भाई बताया जाता है।

11. भानु नगर पालिका, 4 संख्या वार्ड कार्यालय, तनहुँ, गंडकी प्रांत, नेपाल द्वारा जारी एक प्रमाण पत्र रिट याचिका के साथ संलग्न किया गया है जिसमें यह प्रमाणित किया गया है कि स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की दो पत्नियाँ थीं, पहली पत्नी श्रीमती दल्ली और दूसरी पत्नी श्रीमती पिन माया कुमाल (याचिकाकर्ता) थीं। पहली पत्नी श्रीमती दल्ली का 15.03.2019 को निधन हो गया। स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की पहली पत्नी से पाँच बच्चे थे और दूसरी पत्नी (याचिकाकर्ता) से तीन बच्चे थे, जिनमें से सबसे छोटे बच्चे का जन्म 16.05.1990 को हुआ था।

12. पारिवारिक पेंशन के भुगतान के लिए याचिकाकर्ता के दावे को खारिज करने की वैधता पर आपत्ति जताते हुए, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने दलील दी है कि अभिलेखों में उपलब्ध जानकारी के अनुसार, टेक बहादुर थापा की आयु 11 वर्ष और दल्ली माया कुमाल की आयु 12 वर्ष थी और उनकी आयु विवाह योग्य नहीं थी। इसलिए, दल्ली माया कुमाल के साथ स्वर्गीय टेक बहादुर थापा का पहला विवाह अमान्य था और याचिकाकर्ता, टेक बहादुर थापा की एकमात्र विधिक रूप से विवाहित पत्नी थी।

13. यह सच है कि याचिकाकर्ता एक नेपाली नागरिक है और स्वर्गीय टेक बहादुर थापा और उनकी पहली पत्नी श्रीमती दल्ली माया कुमाल भी नेपाली नागरिक थे। उनका विवाह 07.02.1953 को संपन्न हुआ था।

14. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 के प्रावधान पूरे भारत पर लागू होते हैं और यह अधिनियम नेपाल पर लागू नहीं होता है। यहाँ तक कि वर्ष 1955 में लागू किया गया यह अधिनियम भी श्री टेक बहादुर थापा के 07.02.1953 को विवाह के समय अस्तित्व में नहीं था। इसके अलावा, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 में यह प्रावधान नहीं है कि अधिनियम की धारा 5(iii) के अनुसार, यदि वर की आयु 21 वर्ष और वधू की आयु 18 वर्ष पूरी नहीं हुई है, तो उसका विवाह अमान्य होगा। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता विधि के किसी भी प्रावधान की ओर संकेत नहीं कर सके जिसके तहत यह विवाह अमान्य हो। इसलिए, हम याचिकाकर्ता के

विद्वान अधिवक्ता के इस तर्क को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि स्वर्गीय टेक बहादुर थापा और श्रीमती दल्ली माया कुमल का विवाह अमान्य था।

15. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का दूसरा तर्क यह है कि याचिकाकर्ता एक निरक्षर व्यक्ति है और वह अपने दिवंगत पति के सेवा अभिलेखों के उचित रखरखाव के लिए ज़िम्मेदार नहीं थी। यह प्राधिकारियों का काम था कि वे स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के सेवा अभिलेखों का सही ढंग से रखरखाव करें और उसमें याचिकाकर्ता का नाम पत्नी के रूप में दर्ज करें।

16. हमें दूसरे अनुरोध में भी बल नहीं लगता है क्योंकि परिवार के सदस्यों/आश्रितों के बारे में जानकारी संबंधित कर्मचारी/अधिकारी द्वारा स्वयं प्राधिकारियों को दी जाती है। स्वर्गीय टेक बहादुर थापा ने श्रीमती दल्ली माया कुमल का नाम अपनी पत्नी के रूप में उल्लेख किया था और याचिकाकर्ता द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि श्रीमती दल्ली माया कुमल वास्तव में स्वर्गीय टेक बहादुर थापा की पत्नी थीं। ऊपर उद्धृत सेना विनियमनों के विनियमन 333 में निहित प्रावधान स्पष्ट रूप से प्रदान करते हैं कि दूसरा विवाह केवल कुछ निश्चित परिस्थितियों में ही किया जा सकता है और वह भी सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी प्राप्त करने के बाद और इस प्रावधान का कोई भी उल्लंघन संबंधित कर्मचारी की सेवा समाप्ति को आकर्षित कर सकता है। निस्संदेह, स्वर्गीय टेक बहादुर थापा ने श्रीमती दल्ली माया कुमल के साथ अपनी पहली शादी के अस्तित्व के दौरान याचिकाकर्ता से शादी करने के लिए सक्षम प्राधिकारी से कोई मंजूरी नहीं ली थी। इसलिए, स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के साथ याचिकाकर्ता का विवाह ऊपर उल्लिखित विनियमन 333 के प्रावधानों का उल्लंघन था और इससे याचिकाकर्ता को स्वर्गीय टेक बहादुर थापा द्वारा प्रदान की गई सेवाओं से संबंधित या उनसे उत्पन्न होने वाले किसी भी लाभ का कोई अधिकार नहीं मिलेगा।

17. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने अंततः प्रस्तुत किया कि भले ही याचिकाकर्ता का विवाह वैध नहीं था, वह स्वर्गीय टेक बहादुर थापा के साथ उनकी पत्नी के रूप में रहती थी और वह माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **विद्याधरी बनाम सुखराना बाई: (2008) 2 एससीसी 238 और तुलसा देवी निरोला बनाम राधा निरोला: 2020 एससीसी ऑनलाइन एससी 283** में निर्धारित विधि के मद्देनजर पेंशन लाभ प्राप्त करने की हकदार है।

18. **विद्याधरी बनाम सुखराना बाई (पूर्वोक्त)** प्रकरण दूसरी पत्नी द्वारा उत्तराधिकार प्रमाणपत्र प्रदान करने के दावे से उत्पन्न हुआ था और सेना विनियमों के विनियम 333 के प्रभाव का प्रश्न इसमें शामिल नहीं था। उस प्रकरण में भी, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **रामेश्वरी देवी बनाम बिहार राज्य (2000) 2 एससीसी 431** के प्रकरण में दिए गए एक पूर्व निर्णय का अनुसरण किया, जिसमें यह माना गया था कि यदि किसी सरकारी कर्मचारी ने अपनी पहली शादी के रहते हुए दूसरी शादी कर ली हो, तो भी ऐसी दूसरी शादी से पैदा हुए बच्चे वैध माने जाएंगे, हालाँकि दूसरी शादी स्वयं अमान्य होगी। न्यायालय ने माना कि ऐसी संतानें पेंशन की हकदार होंगी, लेकिन दूसरी पत्नी नहीं।

19. तुलसा देवी निरोला बनाम राधा निरोला (पूर्वोक्त) प्रकरण में मृतक ने प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ 09.05.1987 को अपना दूसरा विवाह किया था, जबकि सिक्किम राज्य में हिंदू विवाह अधिनियम लागू नहीं हुआ था। 1963 के नियम 27 में निम्नलिखित लिखा है: -

“27. इस नियम में निहित कोई भी बात इसके प्रावधानों के तहत संपन्न न हुए किसी भी विवाह की वैधता को प्रभावित नहीं करेगी; न ही इस नियम को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विवाह के किसी भी तरीके की वैधता को प्रभावित करने वाला माना जाएगा।”

अपीलकर्तागण द्वारा कोई भी ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया कि दूसरा विवाह 1963 के नियमों के अंतर्गत संपन्न हुआ था, और इसलिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि यह मृतक के प्रत्यर्थी संख्या 1 के साथ दूसरे विवाह को अमान्य नहीं करता। मृतक ने अपनी दोनों पत्नियों के बीच अपनी चल और अचल संपत्तियों के संबंध में एक समझौता विलेख (समझौता विलेख) तैयार किया था। विलेख को स्वीकार करने और उस पर अमल करने के बाद, अपीलकर्ता संख्या 1 के लिए अब उससे मुकरना संभव नहीं था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहा कि: -

“9. पारिवारिक पेंशन निस्संदेह मृतक की संपत्ति का हिस्सा नहीं है और इसे पेंशन नियमों द्वारा विनियमित किया जाएगा जो इसके लिए पात्र लाभार्थी को वैधानिक अधिकार प्रदान करते हैं।”

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा जिन प्रकरण पर भरोसा किया गया है, वे वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू नहीं होते हैं और वे सेना विनियमों के विनियमन 333 के प्रभाव से संबंधित नहीं हैं।

21. उपर्युक्त चर्चाओं के मद्देनजर, हमें याचिकाकर्ता को पारिवारिक पेंशन के भुगतान के दावे को खारिज करने वाले आदेश में कोई अवैधता नहीं दिखती। रिट याचिका में कोई गुण-दोष नहीं है और तदनुसार इसे खारिज किया जाता है।

(2025) 1 ILRA 800

मूल अधिकारिता

सिविल पक्ष

दिनांक: इलाहाबाद 15.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट

रिट ए संख्या- 17483 वर्ष 2024

आशीष यादव

...याचिकाकर्ता

बनाम

प्रबंध निदेशक, उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य

...प्रतिपक्षी

याचिकाकर्ता की ओर से अधिवक्ता:

निखिल कुमार, वागीश यादव

प्रतिपक्षीगण की ओर से अधिवक्ता:

मृत्युंजय मोहन सहाय, एस.एम. मिश्रा

क. सेवा विधि- अनुकंपा नियुक्ति उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मरणासन्न शासकीय सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियम, 1974 अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा एक आदर्श नियोक्ता द्वारा उठाया गया कल्याणकारी उपाय है। हालांकि, अनुकंपा के आधार पर एक अनुचित उदार दृष्टिकोण जो लागू सेवा नियमों के अनुरूप नहीं है, इससे वंचित और अयोग्य उम्मीदवारों को लाभ मिलेगा और साथ ही योग्य और मेधावी उम्मीदवारों के शासकीय पदों पर नियुक्ति के अधिकारों और वैध दावों का हनन होगा। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों को बिना शर्त और निहित अधिकार मानना और इसे भर्ती का स्रोत बनाना वैधता के उस पतले पर्दे को हटा देगा जो ऐसी नियुक्तियों को असंवैधानिकता के दोष से बचाता है। तब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की अवधारणा ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के प्रकोप के अधीन हो जाएगी। (प्रस्तर 14)

ख. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां प्रदान करने का उद्देश्य तभी पूरा हो सकता है और उनकी संवैधानिकता को तभी बचाया जा सकता है जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां प्रदान करने के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाए। (प्रस्तर 15)

अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य मृतक के आश्रितों को वर्तमान आर्थिक कठिनाई से राहत दिलाना है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अपवाद है क्योंकि प्रतिपक्षी को समान योग्यता वाले अन्य उम्मीदवारों की तुलना में वरीयता दी जाती है और इसलिए इसे अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। यह नियुक्ति ऐसी नियुक्ति के नियमों के अनुसार की जानी चाहिए। ऐसी नियुक्ति चाहने वाले आश्रित को ऐसे विचार के लिए पात्र होना चाहिए तथा नियमों द्वारा निर्धारित सीमा तक वित्तीय कठिनाई का सामना करना चाहिए। (प्रस्तर 18)

ग. उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत शासकीय सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए एक अनिवार्य शर्त यह है कि शासकीय सेवक की मृत्यु की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर रोजगार के लिए आवेदन किया जाना चाहिए। हालाँकि, उक्त प्रावधान राज्य शासकीय को उचित प्रकरणों में पूर्वोक्त समय सीमा को समाप्त करने या शिथिल करने का भी अधिकार देता है। राज्य शासकीय/सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रासंगिक तथ्यों पर समुचित विचार करने के पश्चात विलम्ब को क्षमा करने का उक्त प्रावधान अनिवार्य प्रकृति का है। राज्य शासकीय/सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रासंगिक कारकों पर समुचित विचार करने के पश्चात अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने में हुए विलम्ब को क्षमा न करने पर नियुक्ति अमान्य हो जाएगी। (प्रस्तर 21)

अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन करने में सक्षम प्राधिकारी द्वारा डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत विलम्ब के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षा का उल्लंघन किया गया है। याचिकाकर्ता की संविदा कर्मचारी के रूप में नियुक्ति डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत नहीं की गई थी। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को नियमित रूप से नियुक्त कर्मचारी नहीं माना जा सकता और वह अपने द्वारा दावा किए गए लाभों का हकदार नहीं है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत इस विलम्बित चरण में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता। (प्रस्तर 29)

घ. वंशानुक्रम पर आधारित नियुक्तियाँ या आनुवंशिकता पर आधारित नियुक्ति के दावे, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के अंतर्गत घृणित हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए दावा करने में देरी, वर्तमान वित्तीय तंगी के प्रकरण को कमजोर कर देती है, और परिणामस्वरूप अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अधिकार को समाप्त कर देती है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ दावेदारों के वयस्क होने या उन्हें अतिरिक्त योग्यताएँ प्राप्त करने और उक्त नियुक्तियों में बेहतर स्थान पाने में सक्षम होने तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। वास्तव में, ऐसे आधार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे के विरुद्ध हैं। (प्रस्तर 23)

वर्तमान प्रकरण में, याचिकाकर्ता अपने पिता की मृत्यु के समय नाबालिग था। वयस्क होने तक उसके लिए कोई पद आरक्षित नहीं किया जा सकता था। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने में लगभग सात वर्षों की देरी को राज्य शासकीय/सक्षम प्राधिकारी द्वारा डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत कभी भी क्षमा नहीं किया गया। (प्रस्तर 28)

इस प्रकरण के तथ्यों के अनुसार, उक्त प्रकृति के संविदात्मक रोजगार को डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत नियुक्ति में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यदि इस प्रक्रिया को अनुमति दी जाती है, तो यह विशिष्ट वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने का एक नया तरीका बन जाएगा। (प्रस्तर 31)

रिट याचिका खारिज। (ई-4)

मिसाल का पालन किया गया:

1. उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य, (1994) 4 एससीसी 138 (प्रस्तर 11)
2. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक बनाम पुष्पेंद्र कुमार, (1980) 5 एससीसी 192 (प्रस्तर 12)
3. रूपम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, रिट-ए संख्या 15512 वर्ष 2019 (प्रस्तर 13)
4. कर्नाटक में कोषागार निदेशक एवं एक अन्य बनाम सोम्याश्री, सिविल अपील संख्या 5122 वर्ष 2021 (प्रस्तर 16)
5. इस्पिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2018) 2 सीएलएल एलटी 177 (एचसी) (प्रस्तर 17)

1. इला आशीष यादव बनाम प्रबंध निदेशक उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य 1017
6. श्री बिजोन मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, (2018) 3 सीएल एलटी 136 (एचसी) (प्रस्तर 18)
7. अंकिता साहा एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य, डब्ल्यूपीए संख्या 12287 वर्ष 2019 (प्रस्तर 19)
8. संजय कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, 2000 (7) एससीसी 192 (प्रस्तर 24)
9. सोनल लवीनिया और एक अन्य बनाम यू.ओ.आई. और एक अन्य, 2003 (5) ए डब्लू सी 4070 (प्रस्तर 25)
10. शिव कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 (2) एडीजे 312 (प्रस्तर 26)

मिसाल प्रतिष्ठित:

उमेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2017 (9) एडीजे 327 (प्रस्तर 30)

(माननीय न्यायमूर्ति अजय भनोट द्वारा प्रदत्त)

1. प्रतिपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम.मिश्रा द्वारा दायर प्रति-शपथपत्र तथा याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल कुमार द्वारा दायर प्रत्युत्तर शपथपत्र को अभिलेख में लिया गया है।
2. याचिकाकर्ता का दावा है कि वह 25.08.2014 को संविदा कर्मचारी के रूप में नियुक्ति की तारीख से नियमित नियुक्ति और वेतन पाने का हकदार है।
3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल कुमार, जिनकी सहायता के लिए याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वागीश यादव उपस्थित थे, का तर्क है कि याचिकाकर्ता की नियुक्ति 25.08.2014 को संविदा कर्मचारी के रूप में हुई थी। वास्तव में, उनकी नियुक्ति उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत्यु प्राप्त शासकीय सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 (जिसे आगे "सेवाकाल में मृत्यु प्राप्त नियमावली, 1974" कहा जाएगा) के अंतर्गत की गई थी। अतः वे अपनी नियुक्ति की उपरोक्त तिथि से नियमित नियुक्ति और वेतन पाने के हकदार हैं।
4. इसके विपरीत, प्रतिपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम.मिश्रा ने तर्क दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति हेतु आवेदन करने में पाँच वर्ष से अधिक का विलंब हुआ। सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस विलंब को क्षमा नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता की नियुक्ति डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत नहीं की गई है। याचिकाकर्ता को उसके द्वारा दावा की गई राहत प्रदान नहीं की जा सकती।

5. विद्वान अधिवक्ता श्री निखिल कुमार को सुना गया, जिनकी सहायता याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री वागीश यादव और प्रतिपक्षीगण के विद्वान अधिवक्ता श्री एस.एम.मिश्रा ने की।

6. प्रकरण के स्वीकृत तथ्य ये हैं। याचिकाकर्ता के पिता की मृत्यु 10.02.2006 को सेवाकाल के दौरान हो गई। याचिकाकर्ता वर्ष 2013 में 18 वर्ष का हो गया। उसने 05.07.2013 को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन दायर किया। प्रतिपक्षी-निगम में अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के तहत की जाती हैं, जैसा कि प्रतिपक्षी-निगम पर लागू होता है। बेशक, उक्त आवेदन पिता की मृत्यु के पांच साल से अधिक समय बाद दायर किया गया था। पांच साल से अधिक की उपरोक्त देरी को वर्तमान प्रकरण में सक्षम प्राधिकारी द्वारा माफ नहीं किया गया है, जैसा कि डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 में परिकल्पित है। याचिकाकर्ता को 25.08.2014 को प्रतिपक्षी-निगम में एक संविदा कर्मचारी के रूप में नियुक्त किया गया था।

7. इस रिट याचिका में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या याचिकाकर्ता की उपरोक्त संविदा नियुक्ति डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत की गई थी और परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को संविदा कर्मचारी के रूप में उसकी नियुक्ति की तिथि 25.08.2014 से स्थायी कर्मचारी माना जाना चाहिए?

8. भारतीय संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थ के अंतर्गत सार्वजनिक पदों, शासकीय सेवाओं और राज्य के विभिन्न निकायों में नियुक्तियाँ संविधान में निहित व्यापक प्रावधानों द्वारा शासित और विनियमित होती हैं। संवैधानिक योजना में एक खुली भर्ती और एक पारदर्शी प्रक्रिया की परिकल्पना की गई है जो बड़े पैमाने पर नागरिक वर्ग के सभी पात्र वर्गों की अधिकतम भागीदारी को सक्षम बनाती है। अंतिम नियुक्तियाँ प्रतिस्पर्धी योग्यता के आधार पर निष्पक्ष चयन के बाद की जाती हैं। उक्त नियुक्तियाँ करते समय पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और विधि के अनुसार पहचाने गए समाज के अन्य वर्गों के प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण के लिए संविधान के तहत आरक्षण नीति या सकारात्मक कार्यवाई का विधिवत पालन किया जाना चाहिए। शासकीय सेवाओं और शासकीय उपक्रमों में भर्ती और नियुक्ति की जाँच संवैधानिक न्यायालयों द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15 और 16 के संदर्भ में की गई थी। संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों ने शासकीय और अनुच्छेद 12 के तहत पदों पर नियुक्तियों के लिए पूर्वोक्त तरीकों और प्रक्रियाओं को संवैधानिक विधि के ढांचे में अपरिवर्तनीय रूप से स्थापित कर दिया है।

9. इसके विपरीत, अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ खुले बाज़ार से आवेदन आमंत्रित करने के बाद भर्ती की पारदर्शी और सार्वजनिक प्रक्रिया के माध्यम से नहीं की जाती हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ नियमित भर्ती प्रक्रियाओं से विचलन और अन्य छूटों को भी जन्म देती हैं। डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के तहत नियुक्तियाँ, शासकीय और शासकीय उपक्रमों में पदों पर नियुक्तियों के लिए उपरोक्त संवैधानिक रूप से अनिवार्य योजना का अपवाद हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ विशिष्ट सेवा नियमों से उत्पन्न होती हैं और संवैधानिक न्यायालयों द्वारा विकसित सेवा विधि न्यायशास्त्र द्वारा युक्तिसंगत बनाई जाती हैं।

10. अनुकंपा के आधार पर की गई नियुक्तियाँ संवैधानिक वैधता की कसौटी पर मामूली अंतर से खरी उतरतीं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ करने का एकमात्र औचित्य यह है कि मृतक कर्मचारी की मृत्यु के बाद उसके आश्रितों को अप्रत्याशित आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ता है और उन्हें वर्तमान सहायता की आवश्यकता होती है। कर्मचारी की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक आर्थिक संकट से तुरंत उबरने के लिए परिवार को अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ प्रदान की जाती हैं। केवल इसी विशेषता के आधार पर मृतक कर्मचारी के परिजनों को एक वर्ग में रखा गया और इसी आधार पर संवैधानिक न्यायालयों द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के औचित्य को उचित ठहराया गया।

11. **उमेश कुमार नागपाल बनाम हरियाणा राज्य**¹ प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने अनुकंपा के उद्देश्य को निम्नलिखित शब्दों में समझाया:

"2. प्रश्न उन विचारों से संबंधित है जो अनुकंपा के आधार पर सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति देते समय मार्गदर्शन करना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि इस मुद्दे पर काफी अस्पष्टता है। एक नियम के रूप में, सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियाँ आवेदनों के खुले निमंत्रण और योग्यता के आधार पर सख्ती से की जानी चाहिए। नियुक्ति का कोई अन्य तरीका या कोई अन्य विचार स्वीकार्य नहीं है। न तो शासकीय और न ही सार्वजनिक प्राधिकरण किसी अन्य प्रक्रिया का पालन करने या निर्धारित योग्यताओं में ढील देने के लिए स्वतंत्र हैं। पद के लिए नियम। हालाँकि, इस सामान्य नियम के, जिसका हर प्रकरण में कड़ाई से पालन किया जाना है, न्याय के हित में और कुछ आकस्मिकताओं को पूरा करने के लिए कुछ अपवाद बनाए गए हैं। ऐसा ही एक अपवाद ऐसे कर्मचारी के आश्रितों के पक्ष में है जो सेवाकाल के दौरान मर जाता है और अपने परिवार को गरीबी और आजीविका के किसी भी साधन के बिना छोड़ जाता है। ऐसे प्रकरण में, विशुद्ध मानवीय विचार से, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत प्रदान नहीं किया जाता है, परिवार दो वक्त की रोटी जुटाने में सक्षम नहीं होगा, नियमों में मृतक के आश्रितों में से एक को लाभकारी रोजगार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है जो ऐसे रोजगार के लिए पात्र हो सकता है। इस प्रकार अनुकंपा के आधार पर रोजगार देने का पूरा उद्देश्य परिवार को अचानक आए संकट से उबरने में सक्षम बनाना है। उद्देश्य ऐसे परिवार के किसी सदस्य को पद देना नहीं है, मृतक द्वारा धारित पद के बदले कोई पद देना तो दूर की बात है। इसके अलावा, सेवाकाल के दौरान किसी कर्मचारी की मृत्यु मात्र से उसके परिवार को आजीविका के ऐसे स्रोत का अधिकार नहीं मिल जाता। शासकीय या संबंधित लोक प्राधिकरण को मृतक के परिवार की आर्थिक स्थिति की जाँच करनी होगी, और केवल तभी जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि रोजगार के प्रावधान के बिना, परिवार संकट का सामना करने में सक्षम नहीं होगा, परिवार के पात्र सदस्य को नौकरी की पेश की जानी चाहिए। तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के पद गैर-शारीरिक और शारीरिक श्रेणियों में सबसे निचले पद हैं और इसलिए केवल इन्हें ही अनुकंपा के आधार पर दिया जा सकता है, जिसका उद्देश्य परिवार को आर्थिक अभाव से मुक्त करना और उसे इस आपात स्थिति से उबरने में मदद करना है। नियम में अपवाद बनाकर ऐसे निम्नतम पदों पर रोजगार का प्रावधान न्यायोचित और मान्य है क्योंकि यह भेदभावपूर्ण नहीं है। ऐसे पदों पर मृतक कर्मचारी के आश्रितों को दिया जाने वाला अनुकूल व्यवहार, प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य, अर्थात् अभाव से राहत, के साथ तर्कसंगत

संबंध रखता है। इस उद्देश्य के लिए लोक प्राधिकरणों द्वारा कोई अन्य पद दिए जाने की अपेक्षा या आवश्यकता नहीं है। इस संबंध में यह याद रखना चाहिए कि मृतक के निराश्रित परिवार के अलावा, लाखों अन्य परिवार भी हैं जो समान रूप से, यदि अधिक नहीं, तो, निराश्रित हैं। मृतक कर्मचारी के परिवार के पक्ष में बनाए गए नियम का अपवाद उसके द्वारा प्रदान की गई सेवाओं और वैध अपेक्षाओं तथा पूर्ववर्ती रोजगार के कारण परिवार की स्थिति और प्रकरण में उत्पन्न परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है, जो अचानक बदल जाता है।"

12. शिक्षा निदेशक (माध्यमिक) बनाम पुष्पेन्द्र कुमार² प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने भी इसी प्रकार की भावना व्यक्त की थी :

8. अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने के प्रावधान का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक संकट से उबरने में सक्षम बनाना है, जिससे परिवार कंगाल हो गया है और आजीविका का कोई साधन नहीं बचा है। विशुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि जब तक आजीविका का कोई स्रोत उपलब्ध नहीं कराया जाता, परिवार अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाएगा, मृतक के आश्रितों में से किसी एक को, जो ऐसी नियुक्ति के लिए पात्र हो, लाभकारी नियुक्ति देने का प्रावधान किया गया है। ऐसा प्रावधान एक विशेष प्रक्रिया का पालन करके पद पर नियुक्ति के सामान्य प्रावधानों से अलग है। चूंकि ऐसा प्रावधान उक्त प्रक्रिया का पालन किए बिना नियुक्ति करने में सक्षम बनाता है, इसलिए यह सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है। कोई अपवाद उस मुख्य प्रावधान को समाहित नहीं कर सकता जिसका वह अपवाद है और इस प्रकार मुख्य प्रावधान द्वारा प्रदत्त अधिकार को पूरी तरह से छीनकर मुख्य प्रावधान को निरस्त नहीं कर सकता। इसलिए, यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुकंपा आधारित रोजगार प्रदान करने का प्रावधान, जो सामान्य प्रावधानों के अपवाद की प्रकृति का है, अन्य व्यक्तियों के अधिकारों में अनुचित रूप से हस्तक्षेप न करे, जो वे उस पद पर रोजगार पाने के लिए नियुक्ति के पात्र नहीं हैं जो उन्हें उपलब्ध होता, परंतु मृतक कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति देने के प्रावधान के कारण ऐसा नहीं हो पाया..."

13. इस न्यायालय ने रूपम मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं 4 अन्य³ प्रकरण में निम्नलिखित निर्णय दिया:

"16. अनुकंपा नियुक्तियों का उद्देश्य ही उनका औचित्य प्रदान करता है। कमाने वाले की मृत्यु से मृतक का परिवार कंगाल हो जाता है। वित्तीय संकट की तात्कालिकता के कारण वर्तमान निवारण की आवश्यकता उत्पन्न होती है। अनुकंपा नियुक्तियों की अवधारणा केवल शोक संतप्त परिवार को वर्तमान वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाने के लिए बनाई गई है।"

14. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा एक आदर्श नियोक्ता द्वारा उठाया गया कल्याणकारी उपाय है। हालाँकि, एक चेतावनी भी है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के अधिकार की अति-उदारवादी

व्याख्या ऐसी नियुक्तियों की बाढ़ ला देगी और उन्हें भर्ती का एक वास्तविक स्रोत बना देगी। अनुकंपा के आधार पर एक अनुचित उदार दृष्टिकोण, जो लागू सेवा नियमों के अनुरूप नहीं है, वंचित और अयोग्य उम्मीदवारों को लाभ प्रदान करेगा, और साथ ही योग्य और मेधावी उम्मीदवारों के शासकीय पदों पर नियुक्ति के अधिकारों और वैध दावों को नकार देगा। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों को एक बिना शर्त और निहित अधिकार मानकर और इसे भर्ती का स्रोत बनाकर, वैधता का वह झीना पर्दा हटा दिया जाएगा जो ऐसी नियुक्तियों को असंवैधानिकता के दोष से बचाता है। तब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों की अवधारणा ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 , 15 , 16 के कोप का शिकार हो जाएगी।

15. अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां प्रदान करने का उद्देश्य तभी पूरा किया जा सकता है तथा उनकी संवैधानिकता को तभी बचाया जा सकता है जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियां प्रदान करने के नियमों का कड़ाई से अनुपालन किया जाए।

16. कर्नाटक में कोषागार निदेशक एवं एक अन्य बनाम सोम्याश्री⁴ प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने विधि का सारांश इस प्रकार प्रस्तुत करते हुए उक्त नियुक्तियों को प्रदान करने के लिए निर्धारित मानदंडों के अनुरूप अनुकंपा नियुक्तियां करने के विधि की सुस्थापित स्थिति को जोरदार ढंग से दोहराया:

"7....(i) अनुकंपा नियुक्ति सामान्य नियम का अपवाद है;

(ii) किसी भी अभ्यर्थी को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नहीं है;

(iii) राज्य की सेवा में किसी सार्वजनिक पद पर नियुक्ति भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 के अनुसार सिद्धांत के आधार पर की जानी है;

(iv) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल राज्य की नीति द्वारा निर्धारित मानदंडों को पूरा करने और/या नीति के अनुसार पात्रता मानदंडों की संतुष्टि पर की जा सकती है;

(v) आवेदन पर विचार की तिथि को प्रचलित मानदंड अनुकंपा नियुक्ति के दावे पर विचार करने का आधार होना चाहिए।

17. कलकत्ता उच्च न्यायालय ने इप्सिता चक्रवर्ती बनाम पश्चिम बंगाल राज्य⁵ प्रकरण में अनुकंपा के आधार पर नियमों का कड़ाई से पालन करने की आवश्यकता को संक्षेप में प्रस्तुत किया था। विभिन्न संवैधानिक न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के बाद इप्सिता चक्रवर्ती (पूर्वोक्त) ने यह निर्णय दिया:

(क) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति उस सामान्य नियम का अपवाद है जिसके तहत सार्वजनिक सेवाओं में भर्ती पारदर्शी और जवाबदेह तरीके से की जानी है, जिससे सभी पात्र व्यक्तियों को चयन प्रक्रिया में प्रतिस्पर्धा करने और भाग लेने का अवसर मिल सके।

(ख) सेवाकाल के दौरान मृत कर्मचारी के आश्रित को अनुकंपा नियुक्ति का अधिकार नियोक्ता द्वारा तैयार की गई योजना, कार्यकारी अनुदेशों, नियमों आदि पर आधारित है तथा नियोक्ता द्वारा प्रदत्त उपरोक्त योजना के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का कोई अधिकार नहीं है।

(ग) अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति केवल कमाने वाले की मृत्यु के कारण परिवार को होने वाली तात्कालिक कठिनाई को पूरा करने के लिए दी जाती है। जब अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति की जाती है, तो उसे केवल उस उद्देश्य तक ही सीमित रखा जाना चाहिए जिसकी प्राप्ति प्रतीत होती है, न कि अनंत अनुकंपा प्रदान करने के उद्देश्य से।

(घ) अनुकंपा नियुक्ति केवल तभी दी जानी चाहिए जब नियुक्ति प्रदान करने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ और परिस्थितियाँ मौजूद हों तथा इसमें मार्गदर्शक कारक परिवार की वित्तीय स्थिति होनी चाहिए।

18. इसके अलावा, **श्री बिजोन मुखर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं अन्य**⁶ प्रकरण में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पुनः कहा कि विधि की अब तक की स्थापित स्थिति यह है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ केवल कर्मचारी पर लागू विशिष्ट नियमों के अनुरूप ही की जानी चाहिए:

"26. पक्षों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत अनुपात और विधिक स्थितियाँ तथा ऊपर दिए गए उदाहरणों का अवलोकन करने के बाद, मैं यह मानने के लिए सहमत हूँ कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य मृतक के आश्रितों द्वारा झेली जा रही तात्कालिक वित्तीय कठिनाई को दूर करना है। यह संविधान के अनुच्छेद 14 और 16 का अपवाद है क्योंकि प्रतिपक्षी को समान योग्यता वाले अन्य उम्मीदवारों की तुलना में वरीयता दी जाती है और इसलिए इसे अधिकार के रूप में दावा नहीं किया जा सकता। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, मेरे लिए यह स्पष्ट है कि यह नियुक्ति ऐसी नियुक्ति के नियमों के अनुसार ही की जानी चाहिए। ऐसी नियुक्ति चाहने वाले आश्रित को इस तरह के विचार के लिए पात्र होना चाहिए और नियमों द्वारा निर्धारित सीमा तक वित्तीय कठिनाई का सामना करना चाहिए।"

19. कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा **इप्सिता चक्रवर्ती (पूर्वोक्त) और श्री बिजोन मुखर्जी (पूर्वोक्त)** में दिए गए निर्णय का अनुसरण **अंकिता साहा एवं अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य एवं एक अन्य**⁷ में किया गया।

20. इस स्तर पर उत्तर प्रदेश सेवाकाल में मृत शासकीय सेवकों के आश्रितों की भर्ती नियमावली, 1974 के प्रासंगिक प्रावधानों को उद्धृत करना समीचीन होगा, जो इस प्रकरण पर लागू होते हैं:

नियम 5. मृतक के परिवार के सदस्य की भर्ती.-

(1) यदि किसी शासकीय सेवक की इन नियमों के लागू होने के पश्चात सेवाकाल में मृत्यु हो जाती है और मृतक शासकीय सेवक का पति या पत्नी पहले से ही केन्द्रीय शासकीय या राज्य शासकीय या केन्द्रीय शासकीय या राज्य शासकीय के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी निगम के अधीन नियोजित नहीं है, तो उसके परिवार के एक सदस्य को, जो पहले से ही केन्द्रीय शासकीय या राज्य शासकीय या केन्द्रीय शासकीय या राज्य शासकीय के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी निगम के अधीन नियोजित नहीं है, उक्त प्रयोजनों के लिए आवेदन करने पर, सामान्य भर्ती नियमों में छूट देते हुए, उत्तर प्रदेश लोक सेवा आयोग के क्षेत्राधिकार में आने वाले पद को छोड़कर, किसी पद पर शासकीय सेवा में उपयुक्त नियोजन दिया जाएगा, यदि ऐसा व्यक्ति-

(i) पद के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यताएं पूरी करता हो,

(ii) अन्यथा शासकीय सेवा के लिए योग्य है, और

(iii) शासकीय कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से पांच वर्ष के भीतर रोजगार के लिए आवेदन करता है:

परन्तु जहां राज्य शासकीय का यह समाधान हो जाता है कि रोजगार के लिए आवेदन करने के लिए नियत समय-सीमा किसी विशिष्ट प्रकरण में अनुचित कठिनाई उत्पन्न करती है, वहां वह प्रकरण को न्यायसंगत और साम्यापूर्ण ढंग से निस्तारण के लिए, जैसा वह आवश्यक समझे, आवश्यकता को समाप्त कर सकती है या उसमें ढील दे सकती है।

(2) जहां तक संभव हो, ऐसा रोजगार उसी विभाग में दिया जाना चाहिए जिसमें मृतक शासकीय कर्मचारी अपनी मृत्यु से पहले कार्यरत था।

(3) उपनियम (1) के अधीन की गई प्रत्येक नियुक्ति इस शर्त के अधीन होगी कि उपनियम (1) के अधीन नियुक्त व्यक्ति मृतक शासकीय सेवक के परिवार के अन्य सदस्यों का भरण-पोषण करेगा, जो उसकी मृत्यु से ठीक पूर्व मृतक शासकीय सेवक पर आश्रित थे तथा अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं।

(4) जब उपनियम (1) के अधीन नियुक्त व्यक्ति किसी ऐसे व्यक्ति का भरण-पोषण करने में उपेक्षा करता है या इंकार करता है, जिसका भरण-पोषण करने का दायित्व उपनियम (3) के अधीन है, तो उसकी सेवा समय-समय पर यथा संशोधित उत्तर प्रदेश शासकीय सेवक (अनुशासन एवं अपील) नियमावली, 1999 के अनुसार समाप्त की जा सकेगी।"

21. उपर्युक्त डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए एक अनिवार्य शर्त यह है कि शासकीय कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर रोजगार के लिए आवेदन किया जाना चाहिए। हालाँकि, उक्त प्रावधान राज्य शासकीय को उचित प्रकरण में उक्त समय सीमा को समाप्त करने या उसमें छूट देने का भी अधिकार देता है। राज्य शासकीय/सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रासंगिक तथ्यों पर समुचित विचार करने के पश्चात विलम्ब को क्षमा करने का उक्त प्रावधान अनिवार्य प्रकृति का है। राज्य शासकीय/सक्षम प्राधिकारी द्वारा प्रासंगिक कारकों पर समुचित विचार करने के पश्चात अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने में हुए विलम्ब को क्षमा न करने पर नियुक्ति अमान्य हो जाएगी।

22. सक्षम प्राधिकारी द्वारा विलम्ब की क्षमा के लिए उपरोक्त प्रावधान को सख्ती से लागू करने का औचित्य अच्छे प्राधिकारियों द्वारा दिया गया है।

23. वंशानुक्रम पर आधारित नियुक्तियाँ या आनुवंशिकता पर आधारित नियुक्ति के दावे, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 के अंतर्गत घृणित हैं। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा करने में देरी, तात्कालिक वित्तीय तंगी के प्रकरण को कमजोर कर देती है और परिणामस्वरूप अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के अधिकार को समाप्त कर देती है। अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियाँ, दावेदारों के वयस्क होने या उन्हें अतिरिक्त योग्यताएँ प्राप्त करने और उक्त नियुक्तियों में बेहतर स्थान पाने में सक्षम बनाने तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। वास्तव में, ऐसे आधार अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के दावे के विरुद्ध हैं।

24. **संजय कुमार बनाम बिहार राज्य एवं अन्य**⁸ प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने परिवार में कमाने वाले की मृत्यु से उत्पन्न आकस्मिक संकट से निपटने के लिए अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों के उद्देश्य पर जोर दिया। साथ ही, ऐसे व्यक्ति को वयस्क होने में सक्षम बनाने के लिए रिक्ति के आरक्षण को सर्वोच्च न्यायालय ने इस प्रकार नकार दिया:

"3. हम याचिकाकर्ता के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता की दलीलों से सहमत नहीं हैं। इस न्यायालय ने कई प्रकरण में माना है कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का उद्देश्य मृतक कर्मचारी के परिवार को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न अचानक संकट से उबरने में सक्षम बनाना है, जिसने परिवार को गरीबी और आजीविका के बिना छोड़ दिया था। वास्तव में ऐसा विचार याचिकाकर्ता द्वारा शिक्षा निदेशक बनाम पुष्पेंद्र कुमार [(1998) 5 एससीसी 192: 1998 एससीसी (एल और एस) 1302: (1998) 2 पैट एलजेआर 181] में उद्धृत निर्णय में व्यक्त किया गया है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि जिस तारीख को याचिकाकर्ता ने 2-6-1988 को पहला आवेदन किया था, उस समय याचिकाकर्ता नाबालिग था और नियुक्ति के लिए पात्र नहीं था। यह याचिकाकर्ता द्वारा स्वीकार किया जाता है। प्रावधान। अनुकंपा नियुक्ति का मूल आधार यह देखना है कि परिवार को वर्तमान राहत मिले।"

25. इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस मुद्दे पर प्राधिकारियों का हवाला देते हुए यह भी निष्कर्ष निकाला कि श्रीमती सोनल लाविनिया एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य⁹ के प्रकरण में यदि कर्मचारी की मृत्यु के काफी वर्षों बाद आवेदन किया गया हो तो वित्तीय दरिद्रता समाप्त हो जाती है:

"38. ऐसा रोजगार प्रदान करने का उद्देश्य उस परिवार को वित्तीय सहायता प्रदान करना है, जिसने कर्मचारी की मृत्यु के तुरंत बाद अपने कमाने वाले को खो दिया है। यदि आवेदन साढ़े नौ वर्ष की अवधि समाप्त होने के बाद दायर किया गया है, तो वर्तमान आवश्यकता का तत्व समाप्त हो गया है और प्रतिपक्षीगण के लिए ऐसी राहत के लिए याचिकाकर्ता के प्रकरण पर विचार करने का कोई अवसर नहीं है। विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा की गई टिप्पणियाँ माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुरूप हैं और इसमें कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता।"

26. डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के सख्त अनुपालन की आवश्यकता और डाइंग-इन-हार्नेस नियमों के तहत नियुक्ति के लिए आवेदन दाखिल करने में देरी के परिणाम और संबद्ध मुद्दों को शिव कुमार दुबे बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹⁰ के प्रकरण में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के समक्ष रखा गया था। संदर्भ की आसानी के लिए, शिव कुमार दुबे (पूर्वोक्त) के प्रासंगिक हिस्से नीचे पुनः प्रस्तुत किए गए हैं:

"29. अब हम उन सिद्धांतों को तैयार करने के लिए आगे बढ़ते हैं जो डाइंग इन हार्नेस नियमों के अनुसरण में अनुकंपा नियुक्ति को नियंत्रित करेंगे:

(i) अनुकंपा नियुक्ति का प्रावधान इस सिद्धांत का अपवाद है कि सार्वजनिक रोजगार के प्रकरण में अवसर की समानता होनी चाहिए। इस अपवाद को संवैधानिक रूप से वैध बनाने के लिए इसे सावधानीपूर्वक संरचित और कार्यान्वित किया जाना चाहिए ताकि अनुकंपा नियुक्ति केवल उन्हीं स्थितियों तक सीमित रहे जो उस मूल उद्देश्य और प्रयोजन की पूर्ति करती हों जिसकी प्राप्ति का प्रयास किया जा रहा है;

[जोर दिया गया]

(ii) अनुकंपा नियुक्ति का कोई सामान्य या निहित अधिकार नहीं है। अनुकंपा नियुक्ति का दावा केवल तभी किया जा सकता है जब किसी योजना या नियमों में ऐसी नियुक्ति का प्रावधान हो। जहाँ किसी प्रशासनिक योजना या वैधानिक नियमों में ऐसा प्रावधान किया गया हो, वहाँ अनुकंपा नियुक्ति पूरी तरह से योजना या, जैसा भी प्रकरण हो, नियमों के अंतर्गत ही होनी चाहिए;

(iii) अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का उद्देश्य और प्रयोजन मृतक कर्मचारी के परिवार के आश्रित सदस्यों को कमाने वाले की मृत्यु के कारण उत्पन्न तात्कालिक वित्तीय संकट से उबरने में सक्षम बनाना है;

[जोर दिया गया]

(iv) यह निर्धारित करने में कि क्या परिवार वित्तीय संकट में है, परिवार की आय, उसकी देनदारियों, परिवार द्वारा प्राप्त टर्मिनल लाभ; उसके सदस्यों की आयु, निर्भरता और वैवाहिक स्थिति, साथ ही रोजगार के किसी अन्य स्रोत से आय सहित सभी प्रासंगिक पहलुओं को ध्यान में रखा जाना चाहिए;

(v) जहां मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तारीख से काफी समय बीत चुका है, वहां अनुकंपा नियुक्ति प्राप्त करने की वर्तमान आवश्यकता समाप्त हो जाएगी और यह एक प्रासंगिक परिस्थिति होगी, जिसे अधिकारियों को यह निर्धारित करते समय ध्यान में रखना होगा कि अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने का प्रकरण बनाया गया है या नहीं;

[जोर दिया गया]

(vi) नियम 5 के अनुसार, सामान्यतः अनुकंपा नियुक्ति के लिए आवेदन मृतक कर्मचारी की मृत्यु की तिथि से पाँच वर्ष के भीतर किया जाना चाहिए। प्रथम परंतुक द्वारा प्रदत्त शक्ति, अनुचित कठिनाई के प्रकरण में अवधि में छूट देने और प्रकरण को न्यायसंगत एवं समतापूर्ण तरीके से निस्तारण का विवेकाधिकार है;

(vii) जहाँ पाँच वर्ष की अवधि के भीतर आवेदन करने में देरी होती है, वहाँ कारणों और दस्तावेज़ी एवं अन्य साक्ष्यों द्वारा समर्थित औचित्य के आधार पर प्रकरण स्थापित करने का दायित्व आवेदक का होता है। सभी तथ्यों पर विचार करने के बाद उचित निर्णय लेना राज्य शासकीय का कार्य है। छूट देने की शक्ति अपवाद स्वरूप है और शासकीय की संतुष्टि के लिए वस्तुनिष्ठ विचारों की उपस्थिति पर निर्भर करती है;

[जोर दिया गया]

(viii) अनुकंपा नियुक्ति प्रदान करने के प्रावधान मृतक कर्मचारी के परिवार के किसी सदस्य के पक्ष में किसी पद का आरक्षण नहीं करते हैं। अतः, ऐसा कोई सामान्य अधिकार नहीं है जिसका दावा इस प्रकार किया जा सके कि परिवार का कोई सदस्य जो मृत्यु के समय नाबालिग था, वयस्क होने पर अनुकंपा नियुक्ति का दावा करने का हकदार होगा। जहाँ नियमों में एक निश्चित समयावधि का प्रावधान है जिसके भीतर आवेदन करना होता है, वहाँ परिवार के किसी सदस्य के अल्पवयस्क होने पर नियम का प्रभाव निलंबित नहीं होता है।" (जोर दिया गया)

27. डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के तहत नियुक्ति प्रदान करने के लिए आवेदन करने में देरी को माफ करते हुए, राज्य शासकीय (या सक्षम प्राधिकारी) संवैधानिक न्यायालयों के उपरोक्त निर्णयों के प्रकाश में प्रकरण पर विचार करने के लिए विधि के बाध्य दायित्व के तहत है।

28. पहले बताए गए प्रकरण के तथ्यों को अब ऊपर चर्चा किए गए प्राधिकारियों के प्रकाश में देखा जा सकता है। याचिकाकर्ता अपने पिता की मृत्यु के समय नाबालिग था। उसके वयस्क होने तक उसके लिए कोई पद आरक्षित नहीं किया जा सकता था। अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति के लिए आवेदन करने में लगभग सात वर्षों की देरी को राज्य शासकीय/सक्षम प्राधिकारी द्वारा डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के तहत कभी भी क्षमा नहीं किया गया।

29. इस प्रकार, सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुकंपा नियुक्ति हेतु आवेदन करने में विलंब के लिए क्षमादान की अनिवार्य पूर्वशर्त का उल्लंघन किया गया है। याचिकाकर्ता की संविदा कर्मचारी के रूप में नियुक्ति, डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत नहीं की गई थी। परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता को नियमित नियुक्त कर्मचारी नहीं माना जा सकता और वह अपने द्वारा दावा किए गए लाभों का हकदार नहीं है। इसके अतिरिक्त, याचिकाकर्ता डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के अंतर्गत इस विलम्बित चरण में अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति का दावा प्रस्तुत नहीं कर सकता।

30. **उमेश कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹¹ में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भरोसा करना गलत है। तथ्यों के आधार पर निर्णय भिन्न है। उमेश कुमार (पूर्वोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय ने विशेष रूप से यह टिप्पणी की है कि प्रतिपक्षीगण ने यह तर्क नहीं दिया है कि उनके पिता की मृत्यु को पाँच वर्ष से अधिक समय बीत चुका है। इस प्रकरण में याचिकाकर्ता को केवल इस आधार पर अयोग्य घोषित किया गया है कि नियुक्ति के लिए आवेदन करने में पाँच वर्ष से अधिक का विलंब हुआ था और सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस विलंब को क्षमा नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, **उमेश कुमार (पूर्वोक्त)** प्रकरण में निर्णय 11.07.2003 के शासकीय आदेश द्वारा अनुकंपा के आधार पर नियुक्तियों पर कथित रूप से लगाए गए प्रतिबंध के संदर्भ में दिया गया था। इस प्रकरण में प्रतिबंध कोई मुद्दा नहीं है।

31. इस प्रकरण के तथ्यों के आधार पर, उक्त प्रकृति के संविदात्मक रोजगार को डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के तहत नियुक्ति में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। यदि इस तरीके को अनुमति दी जाती है तो यह विशिष्ट वैधानिक प्रावधानों का उल्लंघन करने का एक नया तरीका बन जाएगा।

32. उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम के प्रबंध निदेशक इस बात की जांच कराएंगे कि किस प्रकार इस प्रकार की नियुक्तियाँ केवल अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर डाइंग-इन-हार्नेस नियम, 1974 के प्रावधानों का उल्लंघन करने के साधन के रूप में की जा रही हैं। इसके बाद विधि के अनुसार उचित कार्रवाई की जाएगी।

33. रिट याचिका खारिज की जाती है।

(2025) 1 ILRA 811

मूल क्षेत्राधिकार

आपराधिक पक्ष

दिनांक: लखनऊ 22.01.2025

समक्ष

माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा

माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

माननीय न्यायमूर्ति मोहम्मद फैज आलम खान

आपराधिक संदर्भ संख्या- 1/2024

संदर्भ- आपराधिक अपीलों की सुनवाई में पालन की जाने वाली प्रक्रिया

... आवेदक

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... विपक्षी

आवेदक की ओर से अधिवक्ता:

स्वयं संज्ञान, अपूर्व तिवारी, आयुष टंडन, आलोक मिश्रा, नदीम मुर्तजा, नावेद अली, रजत गंगवार, एस एम सिंह रोयेकवार, विकास विक्रम सिंह

विपक्षी की ओर से अधिवक्ता:

जी.ए.

(ए) आपराधिक विधि - द0प्र0सं0, 1973 - धारा 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 81, 86, 341, 349, 372, 374, 377, 378, 390 और 446 - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952 - नियम 18, 22 और 41 - आपराधिक संदर्भ - द0प्र0सं0 की धारा 390 के तहत आरोपी व्यक्ति को बुलाते समय बरी होने के खिलाफ अपील में दंडात्मक प्रक्रिया भी अपीलकर्ता के खिलाफ जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट की प्रकृति के संबंध में जारी किया जा सकता है। प्रत्येक प्रकरण के अजीबोगरीब तथ्यों और परिस्थितियों के लिए, लेकिन इसका मतलब यह नहीं लगाया जा सकता है कि बरी करने के खिलाफ प्रत्येक अपील में आरोपी व्यक्ति को जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करके अलग-अलग रूप से बुलाया जाना चाहिए और एक उपयुक्त प्रकरण में समन भी जारी किया जा सकता है और दोषसिद्धि के खिलाफ अपील में जिसमें एक अपीलकर्ता को पहले ही जमानत पर रिहा कर दिया गया है और उसका अधिवक्ता अपील पर बहस करने के लिए पेश नहीं हो रहा है, कोई वारंट नहीं है उसके खिलाफ सीधे गिरफ्तारी जारी की जा सकती है और उसका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए पहली बार में केवल जमानती वारंट जारी किया जा सकता है। (पैरा - 119)

(बी) आपराधिक विधि - दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - धारा 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 81, 86, 341, 349, 372, 374, 377, 378, 390 और 446 - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952- नियम 18, 22 और 41 - आपराधिक संदर्भ - जहां अपीलकर्ता के खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं - दोषसिद्धि के खिलाफ या बरी होने के खिलाफ अपील में - और - क्या ऐसे अभियुक्त व्यक्ति या अपीलकर्ता जिनके खिलाफ उच्च न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, उच्च न्यायालय के आदेश में ऐसी किसी भी शर्त के बिना जिला न्यायालय या संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर रिहा किया जा सकता है - अभिनिर्धारित किया जाता है कि उनके पास ऐसे व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है - इस प्रकार, शासकीय अपील संख्या 454/2022 में पारित आदेश दिनांक 18.01.2024 और शासकीय अपील संख्या 2552/1981 में दिनांक 19.01.2024 के निर्देशों में निहित अवलोकन और निर्देशों को विधि का सही विचार नहीं कहा जा सकता है। (पैरा - 120, 155)

(सी) आपराधिक विधि - द0प्र0सं0, 1973 - धारा 70, 71, 72, 73, 74, 75, 76, 77, 78, 79, 81, 86, 341, 349, 372, 374, 377, 378, 390 और 446 - इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमावली, 1952- नियम 18, 22 और 41 - आपराधिक संदर्भ - क्या अपील, या तो बरी होने या दोषसिद्धि के खिलाफ, आरोपी विपक्षी या दोषसिद्ध-अपीलकर्ता के लिए एक न्यायमित्र नियुक्त करके सुनी जा सकती है - एक अपीलकर्ता जो न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है और अपील की सुनवाई में सहयोग नहीं करने के लिए ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है, अभिनिर्धारित किया जाता है कि यदि अपीलीय न्यायालय संतुष्ट है कि ऐसे अभियुक्त या अपीलकर्ता/दोषी द्वारा देरी की रणनीति अपनाई जा रही है, तो वह 'बानी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य', सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, और 'के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य' और 'अनोखीलाल बनाम म0प्र0 राज्य' के प्रकरण में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार कार्य कर सकता है - तदनुसार उत्तर दिया गया। (पैरा - 155)

निस्तारित। (ई-11)

उद्धृत प्रकरण की सूची:

1. उ0प्र0 राज्य बनाम गीता देवी और अन्य- आदेश दिनांक 18.01.2024 - शासकीय अपील संख्या 454/2022,
2. उ0प्र0 राज्य बनाम शमसुद्दीन खान और अन्य - आदेश दिनांक 19.01.2024 - शासकीय अपील संख्या 2552/1981,
3. राज नारायण, आपराधिक अपील संख्या 1817/2003, 23.06.2023 को निर्णीत,
4. राजू @ रमाकांत बनाम म0प्र0 राज्य, 2012 (8) एससीसी 553,
5. रघुवंश दीवान चंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य, 2012 (9) एससीसी 791,
6. इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य, 2007 (12) एससीसी 1,

7. धनंजय राय @ गुड्डू राय बनाम बिहार राज्य 2022 (14) एससीसी 95,
8. के. मुरुगानंदम और अन्य बनाम राज्य, 2021 (20) एससीसी 642,
9. हुसैनारा खातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य, पटना, 1981 एससी 928 (4),
10. अनोखी लाल बनाम म0प्र0 राज्य, 2019 (20) एससीसी 196,
11. जाहिरा हबीबुल्लाह शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2004 (4) एससीसी 158,
12. मोहम्मद हुसैन बनाम राज्य 2012 (9) एससीसी 408,
13. नीरज देवनारायण शुक्ल एवं अन्य बनाम गुजरात राज्य, 2015 एससीसी ऑनलाइन गुजरात 6269,
14. बानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1996 (4) एससीसी 720,
15. सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2014 (14) एससीसी 222,
16. के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य, 2013 (3) एससीसी 721,
17. दिलीप एस डहानुकर बनाम कोटक महिंद्रा कॉम्प. लिमिटेड, 2007 (6) एससीसी 528,
18. सत्येंद्र कुमार अंतिल बनाम सीबीआई 2022 (10) एससीसी 51,
19. सारा मैथ्यू बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियोवैस्कुलर डिजीज, 2014 (2) एससीसी 62,
20. धन्ना लाल बनाम कलावती बाई, 2002 (6) एससीसी 16,
21. दयाल सिंह बनाम उत्तरांचल राज्य, 2012 (3) एससीसी 263,
22. मोहम्मद फिरोज बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2022 (7) एससीसी 443,
23. राज्य (दिल्ली एनसीटी) बनाम शिव कुमार यादव, 2016 (2) एससीसी 402,
24. सोमेश चौरसिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2022 (19) एससीसी 480,
25. अब्दुल बासित बनाम मोहम्मद अब्दुल कादिर चौधरी, 2014 (10) एससीसी 754,
26. पुरुषोत्तम बनाम तमिलनाडु राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 1410,
27. आशीष चड्ढा बनाम आशा कुमारी और अन्य, 2012 (1) एससीसी 680,
28. मदन मोहन बनाम राजस्थान राज्य और अन्य, 2018 (12) एससीसी 30,
29. श्रीमती माया दीक्षित बनाम उ0प्र0 राज्य, 2010 (83) एएलआर 664,
30. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अनिल कुमार शर्मा और अन्य, 2015 (6) एससीसी 716,
31. प्रणीता प्रकाश नवगे बनाम महाराष्ट्र राज्य 2012 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 1085,
32. लोकप्रिय मुथैया बनाम राज्य जरिए पुलिस निरीक्षक, 2006 (7) एससीसी 296,
33. संजय दुबे बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2023 एससीसी ऑनलाइन सुप्रीम कोर्ट 610,
34. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू और अन्य, 1976 (3) एससीसी 1 31 कबीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1982 एससीसी (आपराधिक) 144,

- 1.इला संदर्भ- आपराधिक अपीलों की सुनवाई में पालन की जाने वाली प्रक्रिया बनाम उत्तर प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1031
35. मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य 2011 (4) एससीसी 729,
36. ए.एस. मोहम्मद रफी बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य, एआईआर 2011 एससी 308,
37. मान सिंह और अन्य बनाम म०प्र० राज्य 2008 (9) एससीसी 542,
38. बापू लिंबाजी कांबले बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2005 (11) एससी 412,
39. बालकृष्ण महादेव लाड बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2012 एससीसी ऑनलाइन बॉम्बे 1490,
40. पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर और अन्य, 2011 (14) एससीसी 770,
41. लक्ष्मण दास बनाम रेशम चंद कालिया और अन्य, 2018 (3) एससीसी 187,
42. महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश करीमन टिकी और अन्य, 2023 (1) एससीसी (आपराधिक) 137,
43. लक्ष्मण दास छगन लाल भाटिया और अन्य बनाम राज्य जरिए बॉम्बे उच्च न्यायालय, एआईआर 1968 बॉम्बे 400,
44. इम्तियाज रजा खान बनाम महाराष्ट्र राज्य, 2018 (9) एससीसी 160,
45. खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, (1981) 1 एससीसी 627,
46. सुक दास बनाम केंद्र शासित प्रदेश अरुणाचल प्रदेश, (1986) 2 एससीसी 401,
47. श्याम देव पांडे बनाम बिहार राज्य, (1971) 1 एससीसी 855,
48. राम नरेश यादव बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1987 एससी 1500,
49. धर्म पाल और अन्य बनाम उ०प्र० राज्य, (2008) 17 एससीसी 337,
50. क्रिस्टोफर राज बनाम के. विजयकुमार, (2019) 7 एससीसी 398.

(माननीय न्यायमूर्ति श्रीमती संगीता चंद्रा और माननीय न्यायमूर्ति पंकज भाटिया और माननीय न्यायमूर्ति मो. फैज आलम खान द्वारा पारित)

1. हमने श्री अपूर्वा तिवारी, श्री वली नवाज खान, हर्षवर्धन केडिया और सुश्री स्मिग्धा सिंह की सहायता से श्री नदीम मुर्तजा, श्री सुमीत ताहिलरामानी की सहायता से श्री एस.एम. सिंह रॉयेकवार, श्री विकास विक्रम सिंह, श्री नावेद अली, श्री रजत गंगवार, श्री आलोक मिश्रा, श्री आयुष टंडन की सहायता से श्री अजीत कुमार मिश्रा, विद्वान अधिवक्ताओं के साथ-साथ डॉ. वी.के. सिंह, विद्वान शासकीय अधिवक्ता, श्री उमेश चंद्र वर्मा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता-1, श्री पवन कुमार मिश्रा, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता, श्री शिवेंद्र शिवम सिंह राठौर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता, श्री भावेश चांदेल और श्री शिवांग तिवारी, विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है।

2. यह संदर्भ आपराधिक अपील संख्या 465 का 1999: सुरेंद्र प्रसाद मिश्रा और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पारित आदेश दिनांक 12.03.2024 से उत्पन्न हुआ है, जिसमें एक खंड पीठ (इसके बाद

'लखनऊ पीठ' के रूप में संदर्भित) को अपील की सुनवाई के दौरान समन्वयक पीठ (इसके बाद 'इलाहाबाद पीठ' के रूप में संदर्भित) द्वारा शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गीता देवी और अन्य में पारित आदेश दिनांक 18.01.2024; और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981: उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शम्सुद्दीन खान और अन्य में पारित आदेश दिनांक 19.01.2024 की सूचना दी गई थी।

3. इलाहाबाद खंड पीठ द्वारा शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 में पारित आदेश दिनांक 18.01.2024 को नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"1. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान अ.शा.अधि. और प्रतिवादियों के विद्वान अधिवक्ता को सुना।

2. प्रस्तुत शासकीय अपील राज्य द्वारा दिनांक 7.6.2018 को अपर सत्र न्यायाधीश / एफ.टी.सी. संख्या 3, मुजफ्फरनगर द्वारा एस.टी. संख्या 299 वर्ष 2007, धारा 302, 201, 364, 120बी भा.दं.सं. (राज्य बनाम ब्रजपाल और अन्य) में पारित दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध योजित की गई है।

3. हमने इस न्यायालय के दिनांक 9.9.2022 के आदेश को देखा है, जो दिनांक 7.6.2018 के दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध राज्य द्वारा योजित अपील पर पारित किया गया था। दिनांक 9.9.2022 के आदेश द्वारा, प्रतिवादियों को विद्वान सी.जे.एम. की संतुष्टि पर समान राशि के दो जमानतदारों के साथ व्यक्तिगत बंधपत्र प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था। हालांकि, यह प्रतीत होता है कि उन्हें तामील नहीं किया जा सका और तत्पश्चात् गैर-जमानती वारंट जारी किए गए और उन्हें गिरफ्तार किया गया।

4. विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि दोनों प्रतिवादी 27.11.2022 से अर्थात् एक वर्ष और तीन महीने की अवधि से हिरासत में हैं।

5. यद्यपि पीठ दोषमुक्ति के निर्णय को चुनौती देने वाली शासकीय अपील में न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया से सहमत नहीं है कि गैर-जमानती वारंट जारी करना यह व्याख्या करेगा कि पुलिस अधिकारी उसे निष्पादित करेगा और संबंधित व्यक्ति को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेगा जिससे उनकी जमानत के संबंध में कोई प्रभावी आदेश पारित किया जा सके। हालांकि, इस मामले में दोषमुक्ति के बाद भी, प्रतिवादी एक वर्ष और तीन महीने से अधिक समय से न्यायिक हिरासत में हैं, क्योंकि जमानती वारंट निष्पादित नहीं किए गए। दं.प्र.सं. की धारा 390 को प्रस्तुत करना उल्लेखनीय है जो निम्नलिखित है:

"धारा 390: दोषमुक्ति से अपील में अभियुक्त की गिरफ्तारी:-जब धारा 378 के अधीन अपील प्रस्तुत की जाती है, तो उच्च न्यायालय एक वारंट जारी कर सकता है जिसमें निर्देश हो कि अभियुक्त को गिरफ्तार कर उसके या किसी अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, और जिस न्यायालय के समक्ष उसे प्रस्तुत किया जाता है, वह अपील के निस्तारण तक उसे जेल भेज सकता है या उसे जमानत पर छोड़ सकता है।"

6. इसी प्रकार, अभियुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति प्राप्त करने के लिए, न्यायालय के पास दं.प्र.सं. की धारा 83 के अधीन फरार व्यक्ति की संपत्ति की कुर्की का आदेश देने का वैकल्पिक विकल्प है। इसके अतिरिक्त, दं.प्र.सं. की धारा 80 उस व्यक्ति की गिरफ्तारी का प्रावधान करती है जिसके विरुद्ध वारंट जारी किया गया है और यह न्यायालय के समक्ष प्रस्तुति के लिए दं.प्र.सं. की धारा 71 के अधीन सुरक्षा लेने का प्रावधान करती है, ऐसे व्यक्ति को दं.प्र.सं. की धारा 81 के अधीन रिहा किया जा सकता है।

7. दं.प्र.सं. की धारा 390 का अवलोकन स्पष्ट रूप से उस न्यायालय को, जिसके समक्ष अभियुक्त को लाया जाता है, यह शक्ति देता है कि या तो उसे जेल भेजे या उसे जमानत पर छोड़े। यह भी उल्लेखनीय है कि बारंबार इस प्रकार के मामले आ रहे हैं, जहां उच्च न्यायालय द्वारा उन अभियुक्तों के विरुद्ध जारी गैर-जमानती वारंट के अनुसरण में अपील में, जो विचारण न्यायालय से दोषमुक्त हुए थे, वे एक वर्ष से अधिक समय से जेल में पड़े हुए हैं क्योंकि या तो उन्हें वारंट की तामील नहीं हुई या वे उच्च न्यायालय में अधिवक्ता नियोजित नहीं कर सके। बॉम्बे उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दं.प्र.सं. की धारा 390 के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस धारा का वास्तविक उद्देश्य न्यायालय के समक्ष अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है। उपरोक्त के दृष्टिगत, हम न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक को निर्देश निर्गत करना उचित समझते हैं कि वे सभी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों के साथ-साथ सचिव, जिला विधिक सेवा प्राधिकरण का ऑनलाइन सेमिनार लें और सूचित करें कि:

(क) जब भी दोषमुक्ति से अपील में गैर-जमानती वारंट जारी किए जाएं और अभियुक्त को सी.जे.एम./इलाका मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, तो उसे उनकी संतुष्टि के अनुरूप जमानत बांड प्रस्तुत करने और न्यायालय के आदेश के अनुसार निर्दिष्ट तिथि पर उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने के वचनबंध पर जमानत पर रिहा किया जाएगा।

(ख) यहां तक कि उन मामलों में भी, जहां दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में लंबित है और सजा स्थगित है और या तो वह या उसका अधिवक्ता उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हो सका और गैर-जमानती वारंट जारी कर सी.जे.एम. के समक्ष प्रस्तुत किया गया है, तो उन्हें संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अनुसार जमानत पर रिहा किया जाएगा और यह वचनबंध लिया जाएगा कि वे उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे।

(ग) न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक उत्तर प्रदेश राज्य में एक सर्वेक्षण करेंगे, जिससे यह पता लगाया जा सके कि गैर-जमानती वारंट जारी करने के संदर्भ में या तो दोषमुक्ति के विरुद्ध जमानत के मामले में या उस मामले में जहां अभियुक्त की सजा स्थगित है, लेकिन बाद में वह उपस्थित होने

में असफल रहा, काफी लंबे समय से जेल (कारागार) में है, तो उन्हें उपरोक्त उप प्रस्तर (क) और (ख) में उल्लिखित शर्तों के अनुसार जमानत पर रिहा किया जाएगा।

(घ) चूंकि किसी व्यक्ति को बिना किसी औचित्य के लंबे समय तक न्यायिक हिरासत में रखना ऐसे व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार का उल्लंघन करता है, इसलिए इस आदेश के 30 दिन बाद, यदि जमानत नहीं जाती है, तो यह न्यायालय रु.50,000/- का अर्थदंड अधिरोपित करेगा, जो संबंधित जिला राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण द्वारा देय होगा।

8. जो भी हो, न्यायालय प्रतिवादियों को जमानत पर रिहा करना उचित समझता है।

9. प्रतिवादी अर्थात् गीता देवी और अफजल को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए।

10. इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे आज से एक सप्ताह के भीतर इस आदेश को न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक को संप्रेषित करें और अगली नियत तिथि पर अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

अपील पर आदेश

वाद को 30.01.2024 को सूचीबद्ध करें।"

4. इलाहाबाद की उसी पीठ द्वारा शासकीय अपील संख्या-2552 वर्ष 1981 में पारित आदेश दिनांक 19.01.2024 में की गई टिप्पणियां भी नीचे प्रस्तुत की जा रही हैं:-

"1. यह शासकीय अपील वर्ष 1981 में विपक्षीयों के पक्ष में पारित दोषमुक्ति के निर्णय को चुनौती देते हुए योजित की गई थी।

2. दिनांक 14.12.2022 के पूर्व आदेश के अनुसार, अभियुक्त-प्रतिवादी संख्या 1 के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किए गए थे और संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अनुपालन रिपोर्ट भेजने का निर्देश दिया गया था।

3. दिनांक 20.01.2023 की एक कार्यालय रिपोर्ट बाद में प्रस्तुत की गई, जिसमें यह बताया गया था कि विपक्षी/प्रतिवादी संख्या 1 शम्सुद्दीन के जमानतदार बशीर हैं, जिनकी 08.04.2016 को मृत्यु हो गई और राम कृपाल हैं, जो लगभग 70 वर्ष के हैं और चल नहीं सकते, जबकि प्रतिवादी संख्या 2 और 5 के सभी जमानतदारों की मृत्यु हो गई है।

1.इला

संदर्भ- आपराधिक अपीलों की सुनवाई में पालन की जाने वाली प्रक्रिया बनाम उत्तर

प्रदेश राज्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य

1035

4. तत्पश्चात् पुनः विपक्षी संख्या 1 और 4 के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किए गए और वाद काफी लंबे समय से लंबित रहा।

5. प्रतिवादी संख्या 1, अर्थात् शम्सुद्दीन खान के विद्वान अधिवक्ता का प्रस्तुतीकरण है कि वह जेल में है और वर्तमान में जिला जेल, बांदा में बंद है। इसके बाद भी मामला कई बार सूचीबद्ध हुआ लेकिन दिनांक 10.04.2023 के आदेश में यह कहा गया है कि प्रतिवादी संख्या 1 अर्थात् शम्सुद्दीन खान का पता नहीं लगाया जा सकता है, हालांकि वह पहले से ही जिला जेल, बांदा में बंद है। विपक्षी संख्या 1, 23.02.2023 से न्यायिक हिरासत में है।

6. विद्वान अ.शा.अधि. उपरोक्त तर्क का विरोध नहीं कर सके।

7. मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए, प्रतिवादी संख्या 1 की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी करना, जिससे वह एक अधिवक्ता नियोजित कर सके और अधिवक्ता के माध्यम से अपने पक्ष का बचाव कर सके, की कोई प्रासंगिकता नहीं है। हम अभियुक्त-प्रतिवादी संख्या 1 अर्थात् शम्सुद्दीन खान को जमानत देना उचित समझते हैं।

8. विपक्षी संख्या 1- शम्सुद्दीन खान को संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के अधीन जमानत पर रिहा किया जाए।

9. शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गीता देवी और अन्य) में इस न्यायालय ने समान स्थिति में पहले ही न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक को निर्देश दिया है कि उत्तर प्रदेश राज्य के सभी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों का ऑनलाइन सेमिनार हो, उन अभियुक्तों की जमानत देने के मामले में अपनाई जाने वाली प्रक्रियाओं के संबंध में, जो लंबे समय से जेल में हैं और उनकी अपीलें विचाराधीन हैं।

10. उपरोक्त शासकीय अपील में उल्लिखित ऐसी प्रक्रियाएं मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय विशेषकर इलाका मजिस्ट्रेट को उन मामलों में जमानत देने का विवेकाधिकार देती हैं, जहां गैर-जमानती वारंट जारी करने का उद्देश्य अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करना है, विशेष रूप से उन मामलों में जहां एक अभियुक्त व्यक्ति को विचारण न्यायालय से दोषमुक्त किया गया है और राज्य द्वारा योजित अपील में गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं।

11. इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे आज से एक सप्ताह के भीतर तुरंत इस आदेश को न्यायिक प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक को संप्रेषित करें और अगली नियत तिथि पर अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करें।

अपील पर आदेश

12. इस वाद को 30.01.2024 को सूचीबद्ध करें।"

5. आपराधिक अपील संख्या 465 वर्ष 1999: सुरेंद्र प्रसाद मिश्रा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य की सुनवाई करने वाली लखनऊ पीठ, इलाहाबाद की समन्वयक पीठ द्वारा दिनांक 18.01.2024 और 19.01.2024 के आदेशों में व्यक्त किए गए मत से सहमत नहीं थी, और आदेश दिनांक 12.03.2024 के द्वारा प्रकरण को माननीय मुख्य न्यायमूर्ति को संदर्भित किया है। लखनऊ खंड पीठ ने एक वृहद पीठ द्वारा विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न विरचित किए हैं:-

प्रश्न संख्या (1) क्या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या कोई अन्य मजिस्ट्रेट किसी दोषमुक्त व्यक्ति या अपराध के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति को ऐसे मामले में भी जमानत पर छोड़ सकता है, जहाँ दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में, जैसा भी हो, उच्च न्यायालय या किसी अन्य अपीलीय न्यायालय ने उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गैर-जमानती वारंट निर्गत किए हैं, बिना उसमें अवर न्यायालय द्वारा रिहाई की किसी ऐसी शर्त के, वह भी तब जब ऐसा गैर-जमानती वारंट अपील के अनुवर्ती चरण में निर्गत किया गया है, न कि अंगीकृत होने के चरण में?

प्रश्न संख्या (2) यह मानते हुए कि मजिस्ट्रेट के पास प्रश्न संख्या 1 में संदर्भित क्षेत्राधिकार है, क्या उच्च न्यायालय द्वारा मजिस्ट्रेट को ऐसी रिहाई के लिए अनिवार्य प्रकृति का सामान्य निर्देश निर्गत किया जा सकता है, जैसा कि शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 में दिनांक 18.01.2024 के आदेश और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981 में दिनांक 19.01.2024 के आदेश के द्वारा किया गया है, और क्या यह चर्चा किए गए निर्णयों के दृष्टिकोण से प्रत्येक मामले के आधार पर ऐसी रिहाई पर विचार करने के संबंध में मजिस्ट्रेट को उसके विवेकाधिकार से वंचित नहीं करता है?

प्रश्न संख्या (3) क्या शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गीता देवी और अन्य) में दिनांक 18.01.2024 के आदेश में निहित टिप्पणियां व निर्देश और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शम्शुद्दीन खान और अन्य) में दिनांक 19.01.2024 के निर्देश विधि के अनुसार हैं?

प्रश्न संख्या (4) उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में दोषमुक्त व्यक्ति या जो दोषसिद्ध किया गया है, की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए विधि में निर्धारित तरीके क्या हैं और ऐसी अपीलों की सुनवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए ऐसी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अपने अपीलीय आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा सामान्यतः कैसा मार्ग अपनाया जाना चाहिए?

प्रश्न संख्या (5) क्या कोई अपील, चाहे दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के विरुद्ध हो, जैसा भी हो, अभियुक्त-प्रतिवादी या दोषसिद्ध-अपीलकर्ता की सहमति के बिना और बिना सूचना के, न्याय-मित्र नियुक्त करके सुनी जा सकती है, यदि वह अपीलीय कार्यवाही में उपस्थित नहीं हो रहा है, यद्यपि उसकी उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है। यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में?

6. इस वृहद पीठ के गठन के बाद और वाद इस न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध होने के बाद, यह इंगित किया गया कि आपराधिक अपील संख्या 465 वर्ष 1999 बहस के दौरान और इस संदर्भ में निर्णय दिए जाने तक लंबित रहेगी, हालांकि खंड पीठ द्वारा इस न्यायालय को संदर्भित किए गए प्रश्नों का आपराधिक अपील संख्या 465 वर्ष 1999 के गुण-दोष से बिल्कुल कोई लेना-देना नहीं था, बल्कि आपराधिक अपीलों की सुनवाई में अपनाई जाने वाली सामान्य प्रथा और प्रक्रिया से संबंधित था। इसलिए इस न्यायालय ने 22.03.2024 को आदेश पारित किया, जिसमें रजिस्ट्री को निर्देश दिया गया कि वह आपराधिक अपील संख्या 465 वर्ष 1999 के अभिलेख को अलग करे और उसे उसके गुण-दोष पर निर्णय के लिए उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करे और संदर्भ को अलग वाद शीर्षक के अधीन पंजीकृत करे अर्थात्: "आपराधिक अपीलों की सुनवाई में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में"

7. इसके अतिरिक्त, यह न्यायालय 2:1 के बहुमत से इस मत का था कि संदर्भ लंबित रहने की अवधि में, शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022, और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981 में इलाहाबाद खंड पीठ द्वारा दिए गए निर्देश स्थगित रहने चाहिए और तदनुसार आदेश पारित किया।

8. हमने बार के सभी सदस्यों से हमारे समक्ष विरचित व संदर्भित प्रश्नों के संबंध में न्यायालय को संबोधित करने को कहा था क्योंकि हम इस मत के थे कि यह बार के सभी सदस्यों के लिए अत्यधिक रुचि का विषय होगा कि हमारे समक्ष संदर्भित प्रश्नों पर बार के सभी सदस्यों की सहायता से विचार-विमर्श किया जाए क्योंकि ऐसे प्रश्नों के उत्तर भविष्य में इस न्यायालय द्वारा सभी आपराधिक अपीलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया को नियंत्रित करेंगे।

9. हमें बार के सभी युवा सदस्यों और विद्वान शासकीय अधिवक्ता और उनकी अपर शासकीय अधिवक्ताओं की टीम द्वारा इस न्यायालय को मामले पर गहन चर्चा करने और उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर देने में सहायता करने के लिए किए गए प्रयासों के लिए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए।

10. श्री नदीम मुर्तजा ने तर्क दिया है कि दं.प्र.सं. के अधीन कई प्रकार की अपीलों का प्रावधान है और दोषसिद्धि और दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों के अतिरिक्त, दं.प्र.सं. का अध्याय 29 उच्च न्यायालय में अन्य प्रकार की अपीलों का प्रावधान करता है, जैसे:-

धारा 372 -- पीड़ितों का दोषमुक्ति के विरुद्ध या कम अपराध की दोषसिद्धि के विरुद्ध या अपर्याप्त मुआवजे के विरुद्ध अपील करने का अधिकार।

धारा 374 -- दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील।

धारा 377 -- सजा की अपर्याप्तता के आधार पर राज्य सरकार द्वारा अपीलें।

धारा 378- दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलें (केवल उच्च न्यायालय की अनुमति से)।

दं.प्र.सं. में अपीलों के संबंध में अध्याय न तो पूर्ण है और न ही विस्तृत है, क्योंकि उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलों से संबंधित कई प्रावधान दं.प्र.सं. में उक्त अध्याय के बाहर भी प्रदान किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं:

--

धारा 86- कुर्क संपत्ति की बहाली के लिए आवेदनों को अस्वीकार करने के आदेशों से अपीलें।

धारा 341 -- न्याय प्रशासन को प्रभावित करने वाले अपराधों के संबंध में अपीलें।

धारा 449 -- धारा 446 के अधीन आदेशों से अपील (अर्थात् बंधपत्रों की जब्ती के मामलों में)।

11. श्री नदीम मुर्तजा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए लखनऊ खंडपीठ के संदर्भ आदेश द्वारा संदर्भित प्रश्न विशुद्ध रूप से दं.प्र.सं. की धारा 390 के दायरे में नहीं आते हैं, क्योंकि धारा के अधीन शक्ति अपील के अंगीकृत होने के समय प्रयोग की जाती है जबकि ऐसे प्रश्न विशेष रूप से अपील के बाद के चरण में किसी व्यक्ति की गैर-उपस्थिति से संबंधित हैं, अर्थात् जब यह अंगीकृत की गई है और मामला अंतिम सुनवाई के लिए तैयार है।

12. सी.जे.एम. या किसी अन्य मजिस्ट्रेट को एक दोषमुक्त व्यक्ति या अपराध के लिए दोषी ठहराए गए व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने के निर्देशों के संबंध में, यहां तक कि उन मामलों में भी जहां उच्च न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट जारी किया है, दं.प्र.सं. के अध्याय VI का संदर्भ दिया गया है, जो उपस्थिति को सुनिश्चित करने वाली प्रक्रियाओं से संबंधित है, जिन्हें चार अलग भागों में विभाजित हैं, अर्थात् क- सम्मन; ख - गिरफ्तारी वारंट; ग -घोषणा और कुर्की; और घ- प्रक्रिया के संबंध में अन्य नियम।

अध्याय VI का भाग ख, जो गिरफ्तारी वारंट से संबंधित है, धारा 70 से शुरू होता है और धारा 81 पर समाप्त होता है।

धारा 70 गिरफ्तारी वारंट के प्रारूप और इसकी अवधि का प्रावधान करती है। धारा 70 (2) स्पष्ट करती है कि प्रत्येक वारंट तब तक प्रभावी रहेगा, जब तक कि इसे जारी करने वाले न्यायालय द्वारा रद्द नहीं किया जाता है या जब तक कि इसका उस व्यक्ति की गिरफ्तारी के माध्यम से निष्पादन नहीं हो जाता है, जिसके लिए इसे जारी किया गया था।

धारा 71 गिरफ्तारी वारंट जारी करते समय न्यायालय को यह निर्देश देने का विवेकाधिकार प्रदान करती है कि गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से एक निर्दिष्ट समय पर न्यायालय के समक्ष उपस्थिति के लिए सुरक्षा ली जाए, और यदि ऐसी सुरक्षा प्रदान की जाती है, तो गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसके अनुपालन के बाद रिहा किया जाना है।

धारा 72 प्रावधान करती है कि वारंट एक या अधिक पुलिस अधिकारियों को निर्देशित किया जा सकता है, और इसे सभी या उनमें से किसी एक या अधिक द्वारा निष्पादित किया जा सकता है।

धारा 73 प्रावधान करती है कि मजिस्ट्रेट किसी भागे हुए दोषी, घोषित अपराधी, या किसी ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए अपने स्थानीय क्षेत्राधिकार के भीतर किसी भी व्यक्ति को वारंट निर्देशित कर सकता है जो गैर-जमानती अपराध का अभियुक्त है और गिरफ्तारी से बच रहा है। धारा 73(3) प्रावधान करती है कि जब ऐसे वारंट जारी किए गए व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाता है, तो उसे वारंट के साथ निकटतम पुलिस अधिकारी को सौंपा जाना चाहिए, जब तक कि धारा 71 के अधीन सुरक्षा नहीं ली जाती है, क्षेत्राधिकार वाले मजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने का कारण बनेगा।

धारा 74 प्रावधान करती है कि पुलिस अधिकारी को निर्देशित वारंट को किसी अन्य पुलिस अधिकारी द्वारा भी निष्पादित किया जा सकता है जिसका नाम उस अधिकारी द्वारा वारंट पर अनुमोदित है जिसे यह निर्देशित है।

धारा 75 वारंट की अधिसूचना का प्रावधान करती है।

धारा 76 प्रावधान करती है कि वारंट निष्पादित करने वाला पुलिस अधिकारी या व्यक्ति अनावश्यक देरी के बिना गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उस न्यायालय के समक्ष लाएगा, जिसके समक्ष उसे विधि द्वारा ऐसे व्यक्ति को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। हालांकि ऐसे मामले में विधि का मार्ग क्या होगा, जिसके समक्ष गिरफ्तार व्यक्ति को विधि द्वारा लाने की आवश्यकता है, धारा में उल्लेख नहीं है, उक्त धारा का परंतुक स्पष्ट करता है कि गिरफ्तार व्यक्ति को प्रस्तुत करने में देरी किसी भी मामले में, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक की यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर, 24 घंटे से अधिक नहीं होगी। यह स्पष्ट है कि वारंट के अनुसरण में गिरफ्तार होने के बाद, एक व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत करने की आवश्यकता है, हालांकि, धारा 76 गिरफ्तार व्यक्ति के प्रस्तुतीकरण के बाद मजिस्ट्रेट

के लिए उपलब्ध विकल्पों/विकल्पों का प्रावधान नहीं करती है। बल्कि, धारा 76 केवल पुलिस अधिकारी या उस व्यक्ति की शक्तियों और कर्तव्यों से संबंधित है जिसने किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया है जिसके विरुद्ध वारंट जारी किया गया है।

धारा 77 से धारा 80 वारंट जारी करने वाले न्यायालय के स्थानीय क्षेत्राधिकार के बाहर की गई गिरफ्तारी से संबंधित हैं।

धारा 77 प्रावधान करती है कि गिरफ्तारी वारंट भारत में किसी भी स्थान पर निष्पादित किया जा सकता है।

धारा 78 प्रावधान करती है कि जब वारंट को इसे जारी करने वाले न्यायालय के क्षेत्राधिकार के बाहर निष्पादित करना हो, तो ऐसा न्यायालय पुलिस अधिकारी को वारंट निर्देशित करने के बजाय, इसे डाक द्वारा या अन्यथा किसी कार्यकारी मजिस्ट्रेट या जिला पुलिस अधीक्षक या पुलिस आयुक्त को अग्रेषित कर सकता है, न्यायालय की स्थानीय सीमाओं के भीतर, जिसके क्षेत्राधिकार के भीतर इसे निष्पादित करना है। धारा 78(2) प्रावधान करती है कि उपधारा (1) के अधीन वारंट जारी करने वाला न्यायालय वारंट के साथ, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के विरुद्ध जानकारी का सार, ऐसे अभिलेखों के साथ, यदि कोई हों, जो धारा 81 के अधीन कार्य करने वाले न्यायालय को यह तय करने के लिए पर्याप्त हो कि व्यक्ति को जमानत दी जानी चाहिए या नहीं, अग्रेषित करेगा।

धारा 79 कार्यकारी मजिस्ट्रेट या पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी के रैंक से कम नहीं के पुलिस अधिकारी द्वारा वारंट के निष्पादन के लिए अपनाई जाने वाली प्रक्रिया का प्रावधान करती है, और धारा 80 उस व्यक्ति की गिरफ्तारी की प्रक्रिया का प्रावधान करती है, जिसके लिए वारंट जारी किया गया है।

13. श्री नदीम मुर्तजा ने तर्क दिया है कि इस न्यायालय की विभिन्न पीठें गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए अलग-अलग मानक अपनाती हैं और उन्होंने इस न्यायालय के सामने अपीलीय क्षेत्राधिकार में दोषसिद्ध-अपीलकर्ता या प्रतिवादी-अभियुक्त के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करने वाले न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न आदेश भी प्रस्तुत किए हैं। यह तर्क दिया गया है कि यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय ने बारंबार यह कहा है कि गैर-जमानती वारंट को अंतिम उपाय के रूप में जारी किया जाना चाहिए, जब वादकारी नोटिस/सम्मन और जमानती वारंट का जवाब देने में असफल रहता है; कभी-कभी यह न्यायालय नियमित तरीके से अपीलकर्ताओं के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करता है और मजिस्ट्रेट को निर्देश देता है कि वे अपीलकर्ताओं को हिरासत में ले लें और जब वे गिरफ्तार हों या न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करें तो उन्हें जेल भेज दें और मजिस्ट्रेट को मामले में निर्धारित तिथि पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने का निर्देश दिया जाता है। कभी-कभी गैर-जमानती वारंट इस विशिष्ट निर्देश के साथ जारी किए जाते हैं कि जैसे ही अपीलकर्ता गिरफ्तार होते हैं या न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण करते हैं, वे संबंधित सी.जे.एम. द्वारा दो पर्याप्त जमानतदार और एक व्यक्तिगत बंधपत्र, उनमें से प्रत्येक समान राशि के लिए, प्रस्तुत करने और इस वचनबंध पर कि वे व्यक्तिगत रूप से या अधिवक्ता

के माध्यम से अगली निर्धारित तिथि पर इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहेंगे, जमानत पर रिहा किए जाएंगे। अन्य अवसरों पर, न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट जारी करते समय यह कहा है कि अपील लंबे समय से लंबित है और अपीलकर्ताओं को जमानत पर रिहा किया गया था लेकिन उनकी ओर से मामले की बहस के लिए कोई उपस्थित नहीं हुआ है। कभी-कभी, न्यायालय ने पेपर बुक तैयार करने का निर्देश दिया है या विचारण न्यायालय अभिलेख मंगाया है और साथ ही न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 446 के अधीन जमानतदारों को नोटिस जारी करने का निर्देश दिया है और गैर-जमानती वारंट भी जारी किया है। कभी-कभी न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट इस विशिष्ट निर्देश के साथ जारी किया है कि यदि ऐसा गैर-जमानती वारंट निष्पादित नहीं होता है, तो संबंधित सी.जे.एम. अपना व्यक्तिगत शपथपत्र दाखिल करेंगे।

14. 23.06.2023 को निर्णीत आपराधिक अपील संख्या 1817 वर्ष 2003, राज नारायण प्रकरण में, प्रारंभ में अपील में बहस करने के लिए अपीलकर्ता की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ था और इस न्यायालय ने जमानती वारंट जारी करने का निर्देश दिया था। कार्यालय रिपोर्ट से पता चला कि अपीलकर्ता ने अपनी संपत्ति बेच दी थी और कहीं और चला गया था। अपीलकर्ता के विरुद्ध नया गैर-जमानती वारंट तथा दं.प्र.सं. की धारा 82 और 83 के अधीन प्रक्रिया जारी की गई और साथ ही दं.प्र.सं. की धारा 446 के अधीन जमानतदारों को नोटिस जारी किया गया और सी.जे.एम. को अपीलकर्ता को पकड़ने में जिले के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की सहायता लेने का निर्देश दिया गया। अपीलकर्ता को गिरफ्तार कर लिया गया और विधिक सहायता सेवा प्राधिकरण ने उच्च न्यायालय के समक्ष उसके पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त किया। उसने न्यायालय को बताया कि अपीलकर्ता ने सात वर्ष की सश्रम कारावास की अवधि पूरी कर ली थी और 2009 में ही केंद्रीय जेल से रिहा कर दिया गया था, जिस तथ्य को अपील में न्यायालय के संज्ञान में नहीं लाया जा सका था। परिणामस्वरूप, जब अपील के लिए अपीलकर्ता की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ, तो न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट के साथ-साथ उपर्युक्त अन्य निर्देश जारी किए। जारी गैर-जमानती वारंट के अनुसरण में, अपीलकर्ता को फिर से गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया। न्यायालय ने अपना पूर्व आदेश वापस लिया और अपीलकर्ता को तुरंत रिहा करने का निर्देश दिया।

15. कुंदन लाल की आपराधिक अपील संख्या 2277 वर्ष 2008 में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता न्यायालय में उपस्थित थे, लेकिन उन्होंने इस न्यायालय को सूचित किया कि अपीलकर्ता से उनका कोई संपर्क नहीं था, और इसलिए, वह मामले की बहस करने की स्थिति में नहीं थे। इसलिए न्यायालय ने अपीलकर्ता के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किया। अगली निर्धारित तिथि पर एक पूरक शपथपत्र दाखिल किया गया, जिसमें यह तथ्य अभिलेख पर लाया गया कि आपराधिक अपील दं.प्र.सं. की धारा 449 के अधीन विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द करने के लिए दाखिल की गई थी, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं के विरुद्ध वसूली जारी की गई थी, जो केवल अभियुक्त के जमानतदार थे। अभियुक्त ने विचारण न्यायालय के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था और जमानत प्राप्त करने के लिए अन्य व्यक्तियों के नए जमानतदार प्रस्तुत किए थे।

16. *राजू उर्फ रामकंत बनाम मध्य प्रदेश राज्य*¹ में, सर्वोच्च न्यायालय एक ऐसे व्यक्ति की अपील की सुनवाई कर रहा था जिसकी अपील उच्च न्यायालय द्वारा निरस्त कर दी गई थी। सर्वोच्च न्यायालय ने *सुकदास बनाम अरुणाचल प्रदेश संघ राज्यक्षेत्र, 1986 (2) SCC 401* में अपनी टिप्पणियों पर भरोसा किया, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्धन व्यक्ति और अपराध के अभियुक्त व्यक्ति को निःशुल्क और पर्याप्त विधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करने की आवश्यकता को दोहराया था। एक अभियुक्त को विधिक सहायता मांगने की आवश्यकता नहीं है-न्यायालय को आजीवन कारावास के मामलों से निपटते समय उसे निःशुल्क विधिक सहायता की पात्रता के बारे में सूचित करना चाहिए। एक व्यक्ति, जिस पर ऐसे अपराध का आरोप है, जिसमें उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता को खतरा हो सकता है, राज्य के व्यय पर निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकारी है। हालांकि, कुछ अपवाद बनाए गए हैं, जैसे आर्थिक अपराधों या वेश्यावृत्ति को प्रतिबंधित करने वाले विधि के विरुद्ध अपराधों, या बाल दुर्व्यवहार और इसी तरह के मामलों में, जहां सामाजिक न्याय की आवश्यकता हो सकती है कि राज्य द्वारा निःशुल्क विधिक सेवाएं प्रदान नहीं की जाएं। यह भी देखा गया कि न तो संविधान और न ही विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, अभियुक्त या हिरासत में व्यक्ति को निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करने के प्रयोजनों के लिए विचारण और अपील के बीच कोई भेद करते हैं।

17. श्री नदीम मुर्तजा ने *रघुवंश देवन चंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य*² पर भी भरोसा किया है। अपीलकर्ता द्वारा यह तर्क दिया गया था कि चूंकि न तो दं.प्र.सं. की धारा 70, और न ही धारा 71 गैर-जमानती अभिव्यक्ति का उपयोग करती है, एक मजिस्ट्रेट गिरफ्तारी का गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए अधिकृत नहीं है, तब भी जब अभियुक्त न्यायालय में उपस्थित होने में असफल रहता है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस तर्क को नकार दिया।

18. *इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य*³ पर भरोसा करते हुए, यह चेतावनी दी गई कि गैर-जमानती वारंट जारी करने से पहले, न्यायालय को समाज के हित और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच संतुलन बनाना चाहिए और सावधानी से अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिए। *इंदर मोहन गोस्वामी* में निर्णय के प्रस्तर 53 का संदर्भ देते हुए, न्यायालय ने उन परिस्थितियों को बताया जब गैर-जमानती वारंट जारी किया जा सकता है, उदाहरण के लिए जब न्यायालय आश्वस्त हो कि सम्मन या जमानती वारंट का वांछित प्रभाव होने की संभावना नहीं है, कि व्यक्ति स्वेच्छा से न्यायालय में उपस्थित नहीं होगा। कि पुलिस अधिकारी किसी व्यक्ति को खोजने में असमर्थ थे।

19. *धनंजय राय उर्फ गुड्डू राय बनाम बिहार राज्य*⁴ में, सर्वोच्च न्यायालय एक अपीलकर्ता-दोषसिद्ध की अपील के निरस्त होने के मामले से निपट रहा था, जिसे प्रारंभ में उच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए अंगीकृत किया गया था, लेकिन बाद में इस आधार पर कि अपीलकर्ता फरार है, इसके गुण-दोष की चर्चा किए बिना निरस्त कर दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि न्यायालय विधि के स्थापित सिद्धांत से विचलित नहीं हो सकता था कि एक बार अपीलीय न्यायालय ने अपील को संक्षेप में निरस्त करने से इनकार कर दिया था, तो उसे गुण-दोष पर सुना जाना चाहिए। दं.प्र.सं. की धारा 385 और 386 अदम-पैरवी या अभियोजन नहीं

करने के लिए अपील की खारिजी की परिकल्पना नहीं करती हैं, बल्कि केवल अभिलेख के अवलोकन के बाद गुण-दोष पर निस्तारण की परिकल्पना करती हैं। धारा 385 की भाषा यह स्पष्ट करती है कि यदि अपीलीय न्यायालय अपील को साधारण निरस्तीकरण के लिए उपयुक्त नहीं मानता है, तो उसे अभिलेख मांगना चाहिए और धारा 386 अनिवार्य करती है कि अभिलेख प्राप्त होने के बाद, अपीलीय न्यायालय अभियुक्त या उसके अधिवक्ता की सुनवाई के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है। विधि स्पष्ट रूप से अपेक्षा करता है कि अपीलीय न्यायालय अपील का निस्तारण गुण-दोष पर करे, केवल आक्षेपित निर्णय में विचारण न्यायालय के तर्क का अवलोकन करके नहीं, बल्कि अभिलेख के साक्ष्य के साथ तर्क की जांच करके यह संतुष्ट करने के दृष्टिकोण से कि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए तर्क और निष्कर्ष अभिलेख की सामग्री के साथ संगत हैं। न्यायालय ने *बनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹, और *सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*², और *के.एस. पांडुरंग बनाम कर्नाटक राज्य*³ में दिए गए निर्णयों का संदर्भ दिया, और यह भी कहा कि यदि अपीलकर्ता और उसका अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हैं तो न्यायालय को मामले को स्थगित करना आवश्यक नहीं है। यह विचारण न्यायालय के अभिलेख और निर्णय का अवलोकन करके अपील का निस्तारण कर सकता है।

के. मुरुगानंदम और अन्य बनाम राज्य⁴ में, सर्वोच्च न्यायालय ने पाया कि उच्च न्यायालय दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील को निरस्त नहीं कर सकता है, यदि अभियुक्त उसके द्वारा नियुक्त अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित नहीं होता है। न्यायालय न्याय-मित्र नियुक्त करने के बाद ही मामले की सुनवाई के साथ आगे बढ़ने के लिए बाध्य है।

20. यह तर्क दिया गया है कि राजू (उपरोक्त) को *अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य*⁵ में अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है, जहाँ अनुच्छेद 39ए का संदर्भ देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि यह न्याय प्राप्त करने के अवसरों को आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण किसी भी नागरिक से वंचित न होने देने के लिए निःशुल्क विधिक सहायता का प्रावधान करता है। विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम 1987 अनुच्छेद 39ए के अधिदेश को प्राप्त करने के लिए अधिनियमित किया गया है। निःशुल्क विधिक सेवाओं का अधिकार अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के लिए उचित, निष्पक्ष और न्यायसंगत प्रक्रिया का एक आवश्यक घटक है और अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत अधिकार में निहित है। सर्वोच्च न्यायालय ने बेस्ट बेकरी मामले अर्थात् *जाहिरा हबीबुल्लाह शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य*⁶, और *मोहम्मद हुसैन बनाम राज्य*⁷ में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया; और बल दिया कि आपराधिक मुकदमे का उद्देश्य सत्य की खोज करना है, और मुकदमा तकनीकताओं पर एक मुकाबला नहीं है और इसे इस तरीके से संचालित किया जाना चाहिए, जो निर्दोष की रक्षा करे और दोषी को दंडित करे।

21. श्री नदीम मुर्तजा ने *निरज देवनारायण शुक्ला और अन्य बनाम गुजरात राज्य*⁸ में गुजरात उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया है, जहाँ दो समन्वयक पीठों के बीच इस मतभेद

पर विचार किया गया कि दं.प्र.सं. की धारा 374 के अधीन एक दोषसिद्ध द्वारा योजित आपराधिक अपील को कैसे सुना जाए, जो अंतिम सुनवाई के समय फरार है।

22. प्रश्न का उत्तर देने के बाद, वृहद पीठ ने उस प्रक्रिया को भी विस्तृत किया, जो उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध अपील से निपटते समय, अंतिम सुनवाई के चरण में, जब अधिवक्ता और/या दोषसिद्ध न्यायालय की सहायता के लिए उपलब्ध नहीं है, अपनाई जानी चाहिए।

वृहद पीठ ने *बनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹, और *सूर्य बख्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*², *के.एस. पांडुरंग बनाम कर्नाटक राज्य*³ और *दिलीप एस दहानुकर बनाम कोटक महिंद्रा कंपनी लिमिटेड*⁴ में दिए गए निर्णयों का संदर्भ दिया, और तब वृहद पीठ ने प्रस्तर 22 में निम्नलिखित रूप में कहा-

"22. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांत के दृष्टिगत, हमारी राय है कि एक उच्च न्यायालय के लिए दोषसिद्ध अपील से निपटते समय, जहां दोषसिद्ध/अधिवक्ता उपलब्ध नहीं है/हैं, अंतिम सुनवाई के समय निम्नलिखित प्रक्रिया पर विचार किया जाना आवश्यक है:

i. यदि अपीलकर्ता दोषसिद्ध के लिए उपस्थित अधिवक्ता उपस्थित है और अपील पर बहस करने के लिए तैयार है, तो न्यायालय को गुण-दोष पर इसका निर्णय करना है और एक तर्कसंगत निर्णय देना है, भले ही दोषसिद्ध फरार हो।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि दोषसिद्ध को हमेशा उसकी फरारी के परिणामों के अधीन होना चाहिए।

ii. यदि दोषसिद्ध फरार है और उसका अधिवक्ता अनुपस्थित है, और यदि दोषसिद्ध ने उच्च न्यायालय द्वारा दी गई जमानत/अस्थायी जमानत का उल्लंघन किया है, तो उच्च न्यायालय स्वयं फरार दोषसिद्ध की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का सहारा लेगा और गैर-जमानती वारंट जारी कर सकता है, उसकी संपत्ति की कुर्की के आदेश पास कर सकता है, उसे घोषित अपराधी घोषित कर सकता है, आदि, आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 82, 83, 84 और 85 के अधीन।

सभी संभावित प्रयास समाप्त करने के बाद, यदि दोषसिद्ध का पता नहीं लगाया जा सका, और यदि उच्च न्यायालय संतुष्ट है और इस राय का है कि दोषसिद्ध दुराग्रही है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के प्रति पूर्ण अनादर दिखाया है और जमानत/अस्थायी जमानत का उल्लंघन किया है, तो उच्च न्यायालय संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग कर सकता है और अपील को निरस्त कर सकता है।

iii. यदि दोषसिद्ध राज्य के संबंधित विभाग/जेल अधिकारी के द्वारा पारित आदेशों के अनुसरण में रिहा किया गया था (जैसे फर्लो छुट्टी, आदि) और अपील की सुनवाई के समय उपलब्ध नहीं है, तो जेल अधिकारी फरार दोषसिद्ध की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए संबंधित विभाग/जेल अधिकारी द्वारा उठाए गए कदमों के बारे में उच्च न्यायालय को विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। यदि उच्च न्यायालय उसकी रिपोर्ट से संतुष्ट है और इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि दोषसिद्ध दुराग्रही है और न्यायिक प्रणाली के प्रति कम सम्मान दिखाया है, तो उसकी अपील को निरस्त किया जा सकता है।

iv. यदि दोषसिद्ध की अनुपलब्धता के आधार पर अपील निरस्त की जाती है और बाद में, यदि दोषसिद्ध आत्मसमर्पण करता है या गिरफ्तार होता है, तो वह गुण-दोष पर सुनवाई के लिए अपनी अपील की पुनर्स्थापना के लिए आवेदन योजित कर सकता है।

23. प्रस्तर 23 में, गुजरात उच्च न्यायालय की वृहद पीठ ने कहा-

"23. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यदि पीठ एक आपराधिक अपील को सुनती है और यह पाती है कि फरार दोषसिद्ध का मामला उपरोक्त संदर्भित आकस्मिकताओं में से किसी में नहीं आता है, तो यह संहिता की धारा 482 के अधीन प्रदान की गई अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग कर सकती है, जो इसे न्याय के अंत को सुरक्षित करने के लिए आवश्यक आदेश देने का अधिकार देगी। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनी सिंह (उपरोक्त), के.एस. पांडुरंग (उपरोक्त), के साथ-साथ सूर्य बख्श सिंह (उपरोक्त) में निर्णय पर विचार करते हुए, और कई निर्णयों पर विचार करते हुए, हम एतद्वारा अभिनिर्धारित करते हैं कि फरार दोषसिद्ध के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा बनी सिंह, के.एस. पांडुरंग (उपरोक्त) को सूर्य बख्श सिंह (उपरोक्त) के साथ पढ़ने पर निर्धारित सिद्धांत प्रवर्त होगा, न कि न्यायालय द्वारा दिलीप एस. दहानुकर (उपरोक्त) में निर्धारित सिद्धांत, क्योंकि वह संहिता की धारा 357 और 374 से संबंधित है-----।"

24. श्री नदीम मुर्तजा ने आपराधिक अपील संख्या 1074 वर्ष 2017: शरीफ अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में 01.05.2024 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया है, जहां यह कहा गया है कि गैर-जमानती वारंट को नियमित रूप से जारी नहीं किया जाना चाहिए। सत्येंद्र कुमार अंतिल बनाम सी.बी.आई.¹⁵, और इंदर मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य¹⁶ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भी भरोसा रखा गया है। यहां तक कि जहां गैर-जमानती वारंट जारी किए जाते हैं, उच्च न्यायालय को ऐसे मामलों को प्राथमिकता के आधार पर सूचीबद्ध करने का निर्देश देना चाहिए और वाद-सूची में ऐसी अपीलों के लिए एक अलग शीर्षक बनाया जाना चाहिए। जहां अभियुक्त को केवल उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गैर-जमानती वारंट के अनुसरण में पुनः गिरफ्तार किया जाता है, मजिस्ट्रेट को तुरंत वारंट के निष्पादन के संबंध में रिपोर्ट भेजनी चाहिए और ऐसी अपीलों का निर्णय करने या यथासंभव शीघ्रता से उपयुक्त आदेश पारित करने का प्रयास किया जाना चाहिए। श्री नदीम मुर्तजा द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि यदि अभियुक्त गिरफ्तार होता है और

मजिस्ट्रेट को ऐसे अभियुक्त को जमानत पर रिहा करने या जेल भेजने के संबंध में कोई विशिष्ट निर्देश नहीं दिया गया है, तब भी, कुछ असाधारण परिस्थितियां हैं जहां मजिस्ट्रेट को गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने पर विचार करने की अनुमति दी जानी चाहिए। मजिस्ट्रेट द्वारा ऐसे व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने पर दं.प्र.सं. के अधीन कोई स्पष्ट बाधा नहीं है और श्री नदीम मुर्तजा ने *सारा मैथ्यू बनाम इंस्टीट्यूट ऑफ कार्डियोवास्कुलर डिजीजेज*⁶, *धन्ना लाल बनाम कलावती बाई*⁷ में दिए गए निर्णय पर भरोसा रखा है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने पाया है कि दं.प्र.सं. एक प्रक्रियात्मक विधि है और यह अच्छी तरह से स्थापित है कि प्रक्रियात्मक विधि की उदारतापूर्वक व्याख्या की जानी चाहिए, जिससे यह न्याय की दासी के रूप में काम करे न कि उसकी मालकिन के रूप में।

25. श्री अपूर्वा तिवारी ने आकाश सिंह, शिवांग तिवारी, अधिवक्ताओं के साथ तर्क दिया है कि निष्पक्ष मुकदमे की अवधारणा में अभियुक्त, पीड़ित और राज्य तथा अभियोजन एजेंसियों के माध्यम से कार्य करने वाले समाज के हित की परिचित त्रिभुजीकरण शामिल है। न्याय के उचित प्रशासन में सार्वजनिक हित को व्यक्तिगत अभियुक्त के हित जितना महत्व दिया जाना चाहिए। *जाहिरा हबीबुल्ला शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य*⁸, *दयाल सिंह बनाम उत्तरांचल राज्य*⁸, और *मोहम्मद फिरोज बनाम मध्य प्रदेश राज्य*⁹ में दिए गए निर्णय पर भरोसा रखा गया है।

26. श्री अपूर्वा तिवारी ने *राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र) बनाम शिव कुमार यादव*⁰ में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों की भी ओर इशारा किया है, और प्रस्तर 10 और 11 पर भरोसा रखा गया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि :-

"मुकदमे की निष्पक्षता को न केवल अभियुक्त के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए, बल्कि पीड़ित और समाज के दृष्टिकोण से भी देखा जाना चाहिए। निष्पक्ष मुकदमे के नाम पर, प्रणाली को बंधक नहीं बनाया जा सकता है, हालांकि अभियुक्त अपनी पसंद के अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व का, सभी प्रासंगिक अभिलेख प्रदान किए जाने का, अभियोजन साक्षियों की प्रति-परीक्षा करने का और अपने बचाव में साक्ष्य पेश करने का अधिकारी है।"

27. श्री अपूर्वा तिवारी ने *सोमेश चौरसिया बनाम मध्य प्रदेश राज्य*¹ में दिए गए निर्णय का भी संदर्भ दिया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने *अब्दुल बासित बनाम मोहम्मद अब्दुल कादिर चौधरी*² में अपनी टिप्पणियों पर भरोसा रखा।

*सोमेश चौरसिया*¹ में निर्णय के प्रस्तर 42 और 43 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था:-

"42. इस न्यायालय ने *पंपापति बनाम मैसूर राज्य*, 1966 Supplement SCR 477; में अभिनिर्धारित किया था कि उच्च न्यायालय के पास दं.प्र.सं. 1898 की धारा 561ए के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्ति का उपयोग करते हुए, आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 426 की उप-धारा (1) और (2) के अधीन दी गई सजा

के निलंबन को रद्द करने की शक्ति थी, जहां अभियुक्तों पर आरोप था कि उन्होंने सजा निलंबित होने के दौरान अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया था। दं.प्र.सं. 1898 की धारा 426 की उप-धारा (1) और (2) वर्तमान दं.प्र.सं. की धारा 389 (1) के समान हैं। यह ध्यान दिया जा सकता है कि पंपापति में दं.प्र.सं., 1898 की धारा 561ए का सहारा लेकर दोषसिद्ध की जमानत रद्द करने का बिन्दु इसलिए उत्पन्न हुआ था क्योंकि दूसरा परंतुक, जो अब दं.प्र.सं. की धारा 389 की उप-धारा (1) में जोड़ा गया है, पहले विधिक ढांचे के अधीन मौजूद नहीं था। हालांकि, चूंकि दं.प्र.सं. की धारा 389 की उप-धारा (1) का दूसरा परंतुक अब जमानत रद्द करने से संबंधित है, अपीलीय न्यायालय में अपील की लंबितता के दौरान दोषसिद्ध व्यक्ति को दी गई सजा के निलंबन और जमानत के रद्दीकरण के लिए कोई अंतर्निहित शक्ति की आवश्यकता नहीं होगी।

"43. इस न्यायालय ने रमेश कुमार सिंह बनाम झब्बर सिंह 2003 (10) SCC 195 में पारित अपने आदेश में अभिनिर्धारित किया है कि यदि अभियुक्तों ने दं.प्र.सं. की धारा 389 (1) के अधीन सजा के निलंबन के दौरान अन्य अपराध करके स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया, तो वे जमानत पर रिहा होने के विशेषाधिकार के अधिकारी नहीं हैं। उस मामले में, अभियुक्त को शिकायतकर्ता के पिता की हत्या के लिए धारा 302 भा. दं. सं. के अधीन दोषी ठहराया गया था। उसकी सजा के निलंबन के दौरान, जब वह जमानत पर बाहर था, उसने शिकायतकर्ता के भाइयों की हत्या कर दी थी। इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को दी गई जमानत को रद्द कर दिया।"

28. श्री अपूर्वा तिवारी ने पुरुषोत्तम बनाम तमिलनाडु राज्य³ पर भी भरोसा किया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय एक अपीलकर्ता-अभियुक्त के मामले पर विचार कर रहा था, जिसे विचारण न्यायालय द्वारा बच्चों को यौन अपराधों से सुरक्षा अधिनियम 2012 की धारा 6 के अधीन अपराध के लिए दोषी ठहराया गया था। अपीलकर्ता द्वारा दोषसिद्धि के विरुद्ध प्राथमिकता दी गई अपील को उच्च न्यायालय द्वारा 2018 में अंगीकृत किया गया था और अपीलकर्ता की मूल सजा स्थगित कर दी गई थी और उसे जमानत पर रिहा करने का आदेश दिया गया था। जब जुलाई 2023 में अपील सुनवाई के लिए आई, तो उसके अधिवक्ता ने चार सप्ताह का स्थगन मांगा, केवल इस आधार पर कि अपीलकर्ता जमानत की सुविधा का आनंद ले रहा है और उसके अधिवक्ता ने स्थगन के लिए आवेदन किया, उच्च न्यायालय ने जमानत रद्द करने की कार्यवाही की। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि-

".....किसी प्रकरण में यदि अपीलकर्ता-अभियुक्त के लिए उपस्थित अधिवक्ता ने अस्थिर और अनुचित आधारों पर स्थगन मांगी, तो अपीलीय न्यायालय स्थगन की प्रार्थना को अस्वीकार करने की अपनी शक्ति के भीतर है। ऐसे मामले में, इस न्यायालय के बनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के मामले में निर्णय द्वारा सुझाई गई कार्यप्रणाली में से एक को उच्च न्यायालय द्वारा सदैव अपनाया जा सकता है। उच्च न्यायालय के पास एक अधिवक्ता नियुक्त करने का विवेक है, जब अपीलकर्ता द्वारा नियुक्त अधिवक्ता अनुचित आधारों पर अपील की बहस करने से इनकार कर देता है। हालांकि उच्च न्यायालय के पास अपील के गुण-दोष पर विचार करने

और गुण-दोष पर इसका निर्णय करने का विकल्प है, उच्च न्यायालय को हमेशा अपीलकर्ता के कारण का समर्थन करने के लिए एक अधिवक्ता नियुक्त करने का पहला मार्ग अपनाना चाहिए। दं.प्र.सं. की धारा 389 की उप-धारा (1) के दूसरे परंतुक का संदर्भ देते हुए न्यायालय स्वमेव नोटिस जारी कर सकता है, जिसमें अभियुक्त को कारण बताने को कहा जा सकता है कि उसकी जमानत क्यों रद्द नहीं की जानी चाहिए। किसी भी परिस्थिति में, दं.प्र.सं. की धारा 389 की उप-धारा (1) के अधीन अभियुक्त को दी गई जमानत अभियुक्त को सुने जाने का उचित अवसर दिए बिना रद्द नहीं की जा सकती है। अभियुक्त द्वारा नियुक्त अधिवक्ता की चूक के लिए, अपीलीय न्यायालय केवल इस आधार पर कि उसके अधिवक्ता ने स्थगन मांगी है और वह भी जमानत रद्द करने के बिन्दु पर उसे सुने जाने का अवसर दिए बिना, उसकी जमानत रद्द करके अभियुक्त को दंडित नहीं कर सकता है।"

पुरुषोत्तम (उपरोक्त) में यह भी देखा गया है कि उच्च न्यायालय को केवल इसलिए सजा के निलंबन के लिए आवेदन को अस्वीकार नहीं करना चाहिए क्योंकि अभियुक्त के अधिवक्ता ने गुण-दोष पर अपील की बहस करने से मना कर दिया। जब केवल सजा के निलंबन के लिए आवेदन सुनवाई के लिए सूचीबद्ध है तो अभियुक्त के अधिवक्ता से अपील के गुण-दोष पर बहस करने के लिए तैयार होने की अपेक्षा नहीं की जाती है।

29. श्री अपूर्वा तिवारी ने उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय 18 नियम 22 और नियम 41 की भी ओर इशारा किया है, जहां शासकीय अधिवक्ता, अभियुक्त-प्रतिवादी, और दोषसिद्ध अपीलकर्ता को नोटिस देने के प्रावधान निर्धारित किए गए हैं और यह प्रावधान किया गया है कि सुनवाई के लिए तैयार मामलों की सूची समय-समय पर नोटिस बोर्ड पर चिपकानी होगी।

30. श्री अपूर्वा तिवारी ने *आशीष चड्ढा बनाम आशा कुमारी और अन्य*⁴, और इसके प्रस्तर 18, 27, 28 और 29 पर भी भरोसा किया है, यह तर्क देने के लिए कि कभी-कभी अभियुक्त जानबूझकर न्यायालय में उपस्थिति से बच सकता है और फिर दं.प्र.सं. की धारा 303 का आधार ले सकता है और इस आधार पर विचारण न्यायालय के आदेश को चुनौती दे सकता है कि उसे अपनी पसंद के अधिवक्ता द्वारा बचाव का अधिकार से वंचित कर दिया गया। न्यायालय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देख सकता है और फिर अपने लिए तय कर सकता है, कि क्या अभियुक्त केवल विलंबकारी रणनीति में लिप्त था और ऐसी दलील को अस्वीकार कर सकता है।

31. *मदन मोहन बनाम राजस्थान राज्य और अन्य*⁵ में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि दं.प्र.सं. की धारा 437 से 439 के अधीन जमानत देना या अस्वीकार करना इस पर विचार करने वाले न्यायालय का विवेक है, उच्च न्यायालय अवर न्यायालय को निर्देश नहीं दे सकता है कि वह जिस दिन जमानत आवेदन दाखिल किया जाता है, उसी दिन इस पर विचार करे और स्वीकार करे, यह केवल अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत देने के लिए विचारण न्यायालय के पास जाने का निर्देश दे सकता है और यदि कोई आवेदन दाखिल किया जाता है, तो यह विचारण न्यायालय द्वारा इसके गुण-दोष पर और विधि के अनुसार शीघ्रता से निर्णीत किया जाएगा।

32. इस न्यायालय के दिनेश कुमार सिंह उर्फ सोनू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में पूर्ण पीठ निर्णय में, सन्दर्भ के लिए विरचित प्रश्न था: --

"क्या माननीय उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति, अकेले या खंडपीठ में बैठे न्यायमूर्तिगण, माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा उनको आवंटित क्षेत्राधिकार में किसी भी प्रकरण की सुनवाई करते हुए, किसी अन्य पीठ के क्षेत्राधिकार में सुनवाई कर सकते हैं, यदि प्रकरण की सुनवाई करते हुए कोई सार्वजनिक हित के प्रश्न सहित कोई प्रश्न या बिन्दु उत्पन्न होता है, जो उनके समक्ष सूचीबद्ध प्रकरण से सम्बद्ध नहीं है, और जो उनकी राय में निर्णीत होना आवश्यक है, और अग्रेतर ऐसे प्रकरणों में, जहां उनके विवेक में, ऐसे प्रश्न को निर्णीत करना आवश्यक है, अपनाई जाने वाली प्रक्रिया क्या होनी चाहिए?"

33. दिनेश सिंह में पूर्ण पीठ ने इस न्यायालय की एक अन्य पूर्ण पीठ श्रीमती माया दीक्षित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य⁶ में की गई टिप्पणियों का संदर्भ दिया, जिसने यह भी इस प्रश्न पर विचार किया था कि क्या इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमों के अध्याय V के संदर्भ में एक विशेष क्षेत्राधिकार प्रदत्त पीठ किसी अन्य पीठ को प्रदत्त मामलों की सुनवाई कर सकती है और प्रस्तर 17 और 17ए में पाया गया कि एक विशेष क्षेत्राधिकार प्रदत्त खंड पीठ केवल प्रदत्त कार्य को ही कर सकती है और किसी अन्य खंड पीठ को प्रदत्त कार्य को नहीं कर सकती है, यहां तक कि ऐसे मामले भी, जिसे वह पूर्व में सुन रही थी। यदि कोई पीठ रोस्टर के अनुसार इसे प्रदत्त क्षेत्राधिकार की सुनवाई कर रही थी, और यदि सुनवाई के दौरान, यह याचिका में न मांगी गई राहत पर विचार करने के लिए आगे बढ़ती है, लेकिन जो जनहित याचिका के क्षेत्राधिकार के भीतर आएगी, तो पीठ रजिस्ट्री को निर्देश देने के लिए बाध्य है कि मामले को उपयुक्त निर्देशों के लिए मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष या उपयुक्त जनहित याचिका पीठ के समक्ष रखे। दूसरे शब्दों में, यदि उस पीठ को जनहित याचिका का कार्य नहीं सौंपा गया है, तो यह मामले की सुनवाई के साथ आगे नहीं बढ़ सकती है।

34. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम अनिल कुमार शर्मा और अन्य⁷ में, सर्वोच्च न्यायालय रिट क्षेत्राधिकार में बैठे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर विचार कर रहा था, जिसमें राज्य को मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय में मामलों की सुपुर्दगी के संबंध में दं.प्र.सं. की धारा 209 के अधीन निर्धारित प्रक्रिया में संशोधन करने का निर्देश दिया गया था, जिससे पुलिस को सत्र मामलों के संबंध में चार्ज-शीट सीधे सत्र न्यायालय के समक्ष दाखिल करने में सक्षम बनाया जा सके और पुलिस द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों की गैर-गिरफ्तारी के कारण मुकदमे में देरी पर भी विचार करते हुए, इसने विचारण न्यायालय को निर्देश दिया कि वह दं.प्र.सं. की धारा 173 के अधीन चार्ज-शीट स्वीकार न करे जब तक कि अभियुक्त व्यक्तियों को उनके समक्ष प्रस्तुत न किया जाए और फोटोकॉपी मशीनों को पुलिस स्टेशन में स्थापित करने का भी निर्देश दिया, जिससे दं.प्र.सं. की धारा 207 के अधीन अभियुक्त व्यक्तियों को तुरंत आपूर्ति किए जाने वाले सभी अभिलेखों की प्रतियां तैयार की जा सकें। सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि जबकि निर्देश सराहनीय उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जारी किए गए थे, वे जारी नहीं किए जा सकते थे क्योंकि खंड पीठ जनहित याचिका क्षेत्राधिकार में नहीं

बैठी थी और केंद्र सरकार, जो रिट याचिका में पक्षकार भी नहीं थी, को दं.प्र.सं. में संशोधन कराने का निर्देश दिया गया था।

35. श्री एस.एम. सिंह रॉयकवार ने अन्य अधिवक्ताओं के कमोबेश समान तर्क दिया है, और कहा है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील के मामले में, यदि उच्च न्यायालय या कोई अन्य अपीलीय न्यायालय, अपील के अनुवर्ती चरण में, जमानत पर दोषसिद्ध की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी करता है, तो केवल ऐसे अपीलीय न्यायालय के पास इस प्रकार गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने की शक्ति है। सी.जे.एम. या किसी अन्य मजिस्ट्रेट के पास ऐसे गिरफ्तार व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने की शक्ति नहीं है। यदि संबंधित सी.जे.एम. के माध्यम से अपीलीय न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया जाता है, तब भी गिरफ्तार व्यक्ति को रिहा करने की शक्ति केवल न्यायालय के पास है। उच्च न्यायालय के समक्ष दोषमुक्ति के विरुद्ध अपीलों के मामले में, यदि उच्च न्यायालय दोषमुक्त प्रतिवादी की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गैर-जमानती वारंट जारी करता है, अपील के अनुवर्ती चरण में, सी.जे.एम. द्वारा गैर-जमानती वारंट के निष्पादन के अनुसरण में गिरफ्तारी के बाद ऐसे व्यक्ति की जमानत पर रिहाई दं.प्र.सं. की धारा 390 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा जारी निर्देश की प्रकृति/भाषा पर मामले के आधार पर निर्भर करेगी।

36. श्री एस.एम. सिंह रॉयकवार द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 390 के दृष्टिगत सीमित मामलों में मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार के बाद भी भी, यदि न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया गया है तो दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में गिरफ्तार व्यक्ति की रिहाई के लिए उच्च न्यायालय द्वारा मजिस्ट्रेट को सभी/किसी भी परिस्थिति में अनिवार्य प्रकृति का सामान्य निर्देश जारी नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार इलाहाबाद की खंड पीठ द्वारा जारी टिप्पणियां और निर्देश विधि के अनुसार नहीं हैं।

37. श्री रॉयकवार द्वारा यह तर्क दिया गया है कि जब अपील अपीलीय न्यायालय के समक्ष सुनवाई के लिए आती है तो दोषमुक्त व्यक्ति या दोषसिद्ध व्यक्ति, जो जमानत पर रिहा है, की उपस्थिति सुनिश्चित करने के तरीके दं.प्र.सं. के अध्याय VI द्वारा शासित हैं। ऐसे मामलों में अपील की सुनवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा सामान्यतः अपनाए जाने वाले कोई समान, कड़े सूत्र/मार्ग/तरीके निर्धारित नहीं किए जा सकते हैं। यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा।

38. यह भी तर्क दिया गया है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की सुनवाई ऐसे अभियुक्त-प्रतिवादी या दोषसिद्ध-अपीलकर्ता के लिए न्याय-मित्र नियुक्त करके हो सकती है, यदि उसने जमानत का उल्लंघन किया है या उसका अधिवक्ता अपील की सुनवाई के दौरान बार-बार उपस्थित होने और न्यायालय की सहायता करने में असफल रहता है। अपीलीय न्यायालय द्वारा ऐसे न्याय-मित्र की नियुक्ति में देरी नहीं होनी चाहिए और अपीलीय न्यायालय को ऐसे व्यक्ति को सूचित करने और उसकी सहमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए क्योंकि ऐसे व्यक्ति की उपस्थिति आसानी से सुनिश्चित नहीं की जा सकती है। यह केवल असाधारण परिस्थितियों में है, जहां जो व्यक्ति अभियुक्त है वह जेल में है, तो सूचना और सहमति प्राप्त की जानी चाहिए

क्योंकि ऐसे व्यक्ति ने अपील के शीघ्र निस्तारण के लिए न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने में जानबूझकर चूक नहीं की है। वह अपनी निरंतर कारावास के कारण अपील में अपने मामले को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न अक्षमताओं से पीड़ित हो सकता है।

39. श्री एस. एम. सिंह रॉयेकवार ने *धनंजय राय उर्फ गुड्डू राय बनाम बिहार राज्य*⁴ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय की ओर इशारा किया है, जहां सर्वोच्च न्यायालय ने *अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य* में स्थापित विधि को दोहराया है और कहा है कि एक आपराधिक अपील का निर्णय न्याय-मित्र नियुक्त करने के बाद बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता है, यदि अभियुक्त या उसका अधिवक्ता न्यायालय की सहायता के लिए नहीं आ रहा है। हालांकि, ऐसा कार्य सावधानी के साथ किया जाना चाहिए और ऐसे न्याय-मित्र नियुक्त करने से पहले अभियुक्त को सम्मन के माध्यम से या अपील की सुनवाई की सूची और अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता की अनुपस्थिति के बाद भी इसकी जानकारी के बारे में जमानती वारंट जारी करने के माध्यम से नोटिस पर रखा जाना चाहिए। अभियुक्त तब बाद के चरण में यह दावा नहीं कर सकता है कि उसे अपनी पसंद का अधिवक्ता नियुक्त करने के अवसर से वंचित कर दिया गया था। यह भी तर्क दिया गया है कि पुरानी आपराधिक अपीलों में, जो दशकों बाद अचानक अंतिम सुनवाई और निस्तारण के लिए सूचीबद्ध होती हैं, परिस्थितियां अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व करने के लिए अधिवक्ता की अनुपस्थिति को उचित ठहरा सकती हैं और ऐसे मामलों में, अपीलकर्ता को जमानती वारंट की सेवा एक नए अधिवक्ता की नियुक्ति को सुविधाजनक बना सकती है क्योंकि अपीलकर्ता को अपने पहले के अधिवक्ता की अनुपस्थिति की जानकारी प्राप्त होगी।

40. श्री एस.एम. सिंह रॉयेकवार ने आपराधिक अपील संख्या 588 वर्ष 1971, *पंजाब राज्य बनाम बछितर सिंह और अन्य*, 1972 (1) आईएलआर (पंजाब और हरियाणा) में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के निर्णय दिनांक 13.09.1971 पर भरोसा रखा है। प्रस्तर 10 में, न्यायालय पुरानी दं.प्र.सं. 1898 की धारा 427 से निपट रहा था, जो दं.प्र.सं. 1973 की धारा 390 के अनुरूप है, और धारा की भाषा उद्धृत करने के बाद, न्यायालय ने पाया:--

"उपरोक्त कही गई भाषा के सरसरी अवलोकन पर भी यह स्पष्ट है कि उन व्यक्तियों की जमानत पर रिहाई के लिए, जिनके विरुद्ध दोषमुक्ति अपीलें योजित की गई हैं, कोई भी वैधानिक रोक मौजूद नहीं है। विधान, आरोपों पर अपीलों और अन्य के बीच कोई भेद नहीं करता है। वास्तव में, धारा ऐसी अपील के निस्तारण तक जमानत देने के लिए स्पष्ट प्रावधान करती है। यहां तक कि शुरुआत में वारंट जारी करना पूरी तरह से विवेकाधीन है और अपीलीय न्यायालय, अपील के प्रवेश के प्रारंभिक चरण में भी, अपना हाथ रोक सकता है और प्रतिवादी अभियुक्त व्यक्तियों की गिरफ्तारी या आशंका की आवश्यकता के बिना नोटिस, सम्मन, या जमानती आदेशों का निर्देश देने से संतुष्ट रह सकता है।-- -- विधायिका का इरादा उजागर होता है और बोल्ड

रिलीफ में लाया जाता है, जब दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील करने वाले व्यक्तियों को जमानत देने का अधिकार देने वाले समान प्रावधान से तुलना की जाती है। दं.प्र.सं. की धारा 426 (1) (2) निम्नलिखित है: --

"426(1). किसी दोषसिद्ध व्यक्ति की किसी अपील के लंबित रहने पर, अपीलीय न्यायालय, लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से, आदेश दे सकता है कि जिस सजा या आदेश के विरुद्ध अपील की गई है, उसके निष्पादन को निलंबित कर दिया जाए और, यदि वह कारावास में है, तो उसे जमानत पर या अपने बंधपत्र पर रिहा कर दिया जाए।

"426(2). इस धारा द्वारा अपीलीय न्यायालय को प्रदान की गई शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा भी किसी दोषसिद्ध व्यक्ति की उसके अवर न्यायालय में अपील के मामले में किया जा सकता है"

"दो प्रावधानों की तुलना करते हुए, यह स्पष्ट है कि जबकि दं.प्र.सं. की धारा 426 सजा के निलंबन और जमानत देने के लिए कारणों को उल्लिखित करने की परिकल्पना करती है, दं.प्र.सं. 1898 की धारा 427 के अधीन विधि द्वारा ऐसी कोई पाबंदी या शर्त नहीं लगाई गई है। दं.प्र.सं. 1898 की धारा 427 के अधीन पूर्णतया प्रयोज्य शक्ति दी गई है, अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने के लिए यदि बिल्कुल उनकी हिरासत को मूल रूप से निर्देशित किया गया था। फिर धारा 427 में, जमानत न केवल उच्च न्यायालय द्वारा ही दी जा सकती है, बल्कि यह निर्देश दे सकता है कि अभियुक्त व्यक्ति को किसी अवर न्यायालय के समक्ष लाया जाए और ऐसे व्यक्ति को जमानत पर रिहा करने की शक्ति अवर न्यायालयों को सौंपी जा सकती है। इसलिए, किसी भी वैधानिक बाधा का सुझाव देने से कहीं दूर, दं.प्र.सं. 1828 की धारा 427 के प्रासंगिक प्रावधान विधायिका के इरादे को प्रदर्शित करते हैं, न्यायिक डिक्टम के अनुकूल कि जमानत देना नियम है और इसका इनकार अपवाद है।"

41. श्री रॉयेकवार ने प्रणीता प्रकाश नावगे बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य⁸ में दिए गए निर्णय के प्रस्तर 17 का भी संदर्भ दिया है।

42. श्री एस.एम. सिंह रॉयेकवार ने मामले की बहस करते समय यह भी इंगित किया है कि एक बार अपीलीय न्यायालय अपील की सुनवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गिरफ्तारी वारंट जारी करने का निर्णय लेता है, तो उसे एक विशिष्ट तिथि निर्दिष्ट करनी चाहिए, जिसके द्वारा इसे वापस आना चाहिए, चाहे निष्पादित हो या न हो, और ऐसे मामलों को वाद-सूची में प्राथमिकता सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाना चाहिए और वाद-सूची में ही उल्लेख के साथ कि क्या ऐसा वारंट जमानती/गैर-जमानती निष्पादित किया गया है या नहीं। यदि गैर-जमानती वारंट निष्पादित हो गया है और दोषसिद्ध को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया है, तो संबंधित मजिस्ट्रेट को गैर-जमानती वारंट में उल्लिखित निर्दिष्ट तिथि की प्रतीक्षा किए बिना तुरंत उच्च न्यायालय को जानकारी भेजनी चाहिए। यदि गैर-जमानती वारंट के निष्पादन के संबंध में जानकारी न्यायालय को प्राप्त होती है, तो अनुभाग को गैर-जमानती वारंट में उल्लिखित

निर्दिष्ट तिथि की प्रतीक्षा किए बिना *प्राथमिकता सुनवाई* मामलों के अधीन उपयुक्त आदेशों के लिए तुरंत अपील सूचीबद्ध करनी चाहिए। ऐसी प्राथमिकता सुनवाई वाली अपीलें, जिनमें जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट निष्पादित किए गए हैं, अपीलीय न्यायालय के विशिष्ट तर्कसंगत आदेश द्वारा अन्यथा निर्देशित किए जाने तक सुनवाई के लिए न्यायालय के बोर्ड पर रहने चाहिए।

43. जब धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन गिरफ्तारी का वारंट जारी किया जाता है, तो उच्च न्यायालय को विशेष रूप से उल्लेख करना चाहिए कि इसके निष्पादन के बाद अभियुक्त को इसके समक्ष लाया जाना है या उसे किसी अन्य अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना है। यदि अभियुक्त को उच्च न्यायालय के समक्ष लाना है, तो फिर से तुरंत उसकी गिरफ्तारी की सूचना संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा उच्च न्यायालय को भेजी जानी चाहिए और मामले को "*प्राथमिकता सुनवाई*" के शीर्षक के अधीन सूची में सूचीबद्ध किया जाना चाहिए। साथ ही उच्च न्यायालय वारंट जारी करते समय अवर न्यायालय को निर्देश दे सकता है कि ऐसे वारंट के निष्पादन के बाद उसे जमानत पर छोड़ा जाए या जेल भेजा जाए। यदि उच्च न्यायालय अवर न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ता है, तो उच्च न्यायालय को अपने आदेश में एक अलग आदेश द्वारा मामले के विवरण का विशेष उल्लेख करना चाहिए, जैसे कि वारंट जारी करने की परिस्थितियाँ, अपराध की प्रकृति और गंभीरता, अभियुक्त के संबंधित पूर्ववृत्त, साक्ष्य की प्रकृति, अभियुक्त की आयु और चिकित्सा स्थिति, यदि कोई हो, और अपील की लंबितता की अवधि तथा ऐसी अपील की अंतिम सूचीबद्धता की तिथि। मजिस्ट्रेट को उच्च न्यायालय के ऐसे निर्देशों के अनुसार अभियुक्त के समक्ष प्रस्तुत होने पर तुरंत उसकी गिरफ्तारी की सूचना उच्च न्यायालय को देनी चाहिए।

44. श्री नावेद अली ने संदर्भ आदेश के प्रश्न 1, 2 और 3 पर बहस करते हुए धारा 482 दं.प्र.सं. और संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली अंतर्निहित शक्तियों का संदर्भ दिया है। उन्होंने *पॉपुलर मुथैया बनाम राज्य (द्वारा पुलिस निरीक्षक)* 29 के मामले में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण या अपीलीय शक्ति का प्रयोग करते समय अपनी अंतर्निहित शक्ति का भी प्रयोग कर सकता है, दोनों मूलभूत और प्रक्रियात्मक मामलों के संबंध में, कभी-कभी न्याय के हित में *स्वप्रेरणा* से भी। इसके लिए कोई आवेदन दाखिल करना आवश्यक नहीं है। हालांकि, दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन शक्ति असीमित नहीं है और न्यायालय द्वारा केवल वहीं प्रयोग की जानी है, जहाँ दं.प्र.सं. मौन है। जहाँ संहिता में विशिष्ट प्रावधान है वहाँ ऐसी शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाएगा। धारा 482 दं.प्र.सं. के अधीन शक्ति *Ex Debito Justitiae* का प्रयोग किया जाता है और वास्तविक और सार्थक न्याय कर सकता है।

45. श्री नावेद अली ने तर्क दिया है कि *संजय दुबे बनाम मध्य प्रदेश राज्य* 30 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक पुलिस स्टेशन के प्रभारी निरीक्षक द्वारा योजित अपील को निरस्त करते हुए, जिसके विरुद्ध उच्च न्यायालय द्वारा जमानत आवेदन की सुनवाई के दौरान कुछ टिप्पणियाँ की गई थीं, यह कहा गया कि उच्च न्यायालय

एक संवैधानिक न्यायालय है, जिसके पास शक्तियों का व्यापक भंडार है। उच्च न्यायालय के पास संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन मूल, अपीलीय और स्वप्रेरणा शक्तियां हैं। संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन शक्तियां उन स्थितियों की देखभाल के लिए हैं, जिनमें उच्च न्यायालय महसूस करता है कि न्याय के हित में कुछ निर्देश/आदेश आवश्यक हैं।

46. लेकिन संजय दुबे³⁰ के निर्णय के प्रस्तर 14 में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:-

"हमारा मत है कि विद्वान एकल पीठ संविधान के अनुच्छेद 226 का सहारा लेते हुए, कारणों और विचाराधीन बिंदुओं को विरचित करने के बाद, अलग कार्यवाही संस्थित करने का निर्देश दे सकती थी। तत्पश्चात्, मामले को उच्च न्यायालय के विद्वान मुख्य न्यायमूर्ति के पास उपयुक्त पीठ के समक्ष सूचीबद्ध करने के लिए भेजा जाना चाहिए था, जो निश्चित रूप से, उस/उन व्यक्ति(व्यक्तियों) को पर्याप्त अवसर देने के बाद विधि के अनुसार आगे बढ़ती, जिनके विरुद्ध कार्यवाही की जानी थी।"

47. श्री नावेद अली द्वारा यह तर्क दिया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 226 या 227 और यहाँ तक कि धारा 482 दं.प्र.सं. के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को न्याय के हित के लिए आवश्यक निर्देश जारी करने को मान्यता दी। हालांकि, यदि कोई सामान्य या व्यापक निर्देश जारी किए जाने हैं, तो उससे प्रभावित होने वाले हितधारकों को पहले सुना जाना चाहिए या पहले विधिक प्रश्न विरचित करना चाहिए और उस विशेष उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को भेजा जाना चाहिए, जो बाद में इसे उपयुक्त पीठ के समक्ष भेजेंगे।

48. श्री नावेद अली ने दं.प्र.सं. के अध्याय VI की भी ओर इशारा किया है, जो "उपस्थिति बाध्य करने की प्रक्रिया" से संबंधित है। दं.प्र.सं. की धारा 70 और 71 और दं.प्र.सं. की अनुसूची II के फॉर्म 2 का संदर्भ देते हुए, यह तर्क दिया गया है कि यह केवल गिरफ्तारी के वारंट की बात करता है। अतः, यदि गिरफ्तारी का वारंट जारी करने वाले उच्च न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार में विशिष्ट शब्दों में निर्देश दिया था कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध ऐसा गिरफ्तारी का वारंट निर्गत किया गया है, उसे एक निर्दिष्ट समय पर न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त जमानतदारों के साथ एक बंधपत्र का निष्पादन करना चाहिए और इसके बाद, तो इसे जमानती वारंट कहा जाएगा। हालांकि, यदि दं.प्र.सं. की धारा 71 के अनुसार गिरफ्तारी के वारंट पर जमानतदार लेने का कोई ऐसा निर्देश/समर्थन/विनिर्देश नहीं किया गया है, तो उक्त गिरफ्तारी का वारंट गैर-जमानती वारंट माना जाएगा। जो व्यक्ति गिरफ्तार किए गए हैं, उन्हें उस न्यायालय के समक्ष लाया जाएगा जिसने गैर-जमानती वारंट जारी किया है, और उसके पास उसे न्यायिक हिरासत/पुलिस हिरासत में भेजने या जमानत पर छोड़ने का विकल्प होगा। अतः, यदि एक अपीलीय न्यायालय आपराधिक अपील के दौरान गैर-जमानती वारंट जारी करता है, तो इसे रद्द करने की शक्ति केवल इसे जारी करने वाले अपीलीय न्यायालय के पास ही है या यदि इसका निष्पादन हो जाता है। उसे जमानत देने की शक्ति केवल अपीलीय न्यायालय के पास है। मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या कोई अन्य मजिस्ट्रेट केवल तभी किसी व्यक्ति को जमानत पर बड़ा सकता है

जब अपीलीय न्यायालय गिरफ्तारी का वारंट जारी करते समय यह निर्दिष्ट करे कि उसकी गिरफ्तारी की स्थिति में जमानतदार लिए जा सकते हैं और यदि गिरफ्तारी के वारंट में ऐसा कोई विनिर्देश नहीं दिया गया है तो मजिस्ट्रेट ऐसे व्यक्ति को हिरासत में भेजने और बिना देरी के अपीलीय न्यायालय को इसके निष्पादन की जानकारी देने के लिए बाध्य है।

49. यह भी तर्क दिया गया है कि यदि मान भी लें कि मजिस्ट्रेट को जमानत देने का विवेकाधिकार प्रदान किया गया है, विशेष रूप से जब अपीलीय न्यायालय एक अपील की सुनवाई में व्यस्त है जहाँ अभिलेख मंगाए गए हैं, तो कुछ जानकारी का तत्व या ऐसे अभिलेख होने चाहिए जो मजिस्ट्रेट को यह तय करने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त हों कि जब वह अपीलीय न्यायालय द्वारा जारी गिरफ्तारी के वारंट के निष्पादन में उसके समक्ष लाया जाता है तो उस व्यक्ति को जमानत देना चाहिए या नहीं। दं.प्र.सं. की धारा 167 के अधीन मजिस्ट्रेट को प्रदान की गई विवेकाधीन शक्ति उसे अभियुक्त को हिरासत में रिमांड करने या जमानत पर छोड़ने का विवेकाधिकार प्रयोग करने की अनुमति देती है लेकिन अपनाए जाने वाले क्रम का निर्धारण करने के लिए, दं.प्र.सं. की धारा 167 (1) के अधीन अनिवार्य के अनुसार "डायरी में प्रविष्टियाँ" की एक प्रति गिरफ्तार व्यक्ति के साथ भेजी जानी है। यह तर्क दिया गया है कि इसी तरह, यदि संज्ञान लेने के बाद कोई मजिस्ट्रेट किसी अभियुक्त व्यक्ति के लिए बाद की प्रक्रिया/गिरफ्तारी का वारंट जारी करता है और ऐसी प्रक्रिया के निष्पादन के बाद, अभियुक्त व्यक्ति को गिरफ्तार करके वारंट जारी करने वाले न्यायालय के समक्ष लाया जाता है, तो ऐसे न्यायालय के पास अभिलेख होते हैं, जिनसे वह यह विचार कर सकता है कि ऐसे व्यक्ति को आगे हिरासत में रिमांड करना है या दं.प्र.सं. की धारा 437 के अधीन जमानत देनी है। यदि अभियुक्त को दं.प्र.सं. की धारा 209B के अधीन हिरासत में रिमांड किया जाता है, तो अभियुक्त को दं.प्र.सं. की धारा 439 के अधीन सक्षम न्यायालय के समक्ष जमानत आवेदन योजित करने का अधिकार है जिसके समक्ष मामला सुपुर्द किया गया है।

50. यदि गिरफ्तारी का वारंट दं.प्र.सं. की धारा 78 के अनुसार क्षेत्राधिकार के बाहर निष्पादित किया जाना है, तो वारंट जारी करने वाला न्यायालय वारंट के साथ, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के विरुद्ध जानकारी का सार, ऐसे अभिलेखों के साथ, यदि कोई हो, जो मजिस्ट्रेट को यह तय करने में सक्षम बनाने के लिए पर्याप्त हों कि ऐसे व्यक्तियों को जमानत देना चाहिए या नहीं, को आगे भेजेगा। धारा 71, 78, और 81 दं.प्र.सं. के आधार पर, यह तर्क दिया गया है कि यदि निर्देश के माध्यम से मजिस्ट्रेट को विवेकाधीन शक्तियाँ दी जाती हैं, तो यह अनिवार्य है कि उसके पास कुछ अभिलेख/तत्व होने चाहिए, जिसके आधार पर वह अपने विवेक का प्रयोग कर सके। हालांकि, चूंकि विधिक प्रक्रिया मजिस्ट्रेट को कोई ऐसा विवेक प्रदान नहीं करती है जो केवल अपीलीय न्यायालय द्वारा जारी गिरफ्तारी के वारंट के निष्पादन के साथ अनुपालन कर रहा है, यह उचित नहीं होगा कि मजिस्ट्रेट को कोई विवेक दिया जाए, सिवाय उस के जो पहले से ही दं.प्र.सं. की धारा 71 के अधीन प्रदान किया गया है।

51. श्री नावेद अली द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू और अन्य³¹ में सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणियों और इंद्र मोहन गोस्वामी और अन्य बनाम उत्तरांचल राज्य, 2007 (12) SCC 1 का संदर्भ दिया गया है, जहाँ न्यायालयों को चेतावनी दी गई थी कि-

"शक्ति विवेकाधीन होने के कारण अत्यधिक सावधानी और एहतियात के साथ न्यायसंगत रूप से प्रयोग की जानी चाहिए। न्यायालय को वारंट जारी करने से पहले व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक हित दोनों को उचित रूप से संतुलित करना चाहिए। वारंट जारी करने के लिए कोई निश्चित सूत्र नहीं हो सकता है, लेकिन सामान्य नियम के रूप में, जब तक कि अभियुक्त पर घोर अपराध कारित करने का आरोप नहीं है, और यह आशंका नहीं है कि वह साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ या नष्ट करने की संभावना है या विधिक प्रक्रिया से बचने की संभावना है, गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचना चाहिए"

52. यह आगे तर्क दिया गया है कि हालांकि, एक बार जब न्यायालय द्वारा उचित सावधानी के बाद ऐसे विवेक का प्रयोग किया जाता है और गैर-जमानती वारंट जारी किए जाते हैं, तो इलाहाबाद की खंडपीठ द्वारा जारी किए गए सामान्य निर्देशों की तरह, उन व्यक्तियों को जमानत देने के लिए मजिस्ट्रेट को निर्देश देने की कोई आवश्यकता या आवश्यकता नहीं है जिनके विरुद्ध ऐसे गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं। यह केवल ऐसे वारंट जारी करने वाले अपीलीय न्यायालय के डोमेन में होगा कि वह उस व्यक्ति को कोई राहत देने की शक्ति का प्रयोग करे जिसके विरुद्ध उसने गैर-जमानती वारंट जारी किया है और किसी अन्य निचले न्यायालय के नहीं।

53. प्रश्न संख्या 4 के उत्तर में, श्री नावेद अली द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि जब अपीलीय न्यायालय के समक्ष दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील योजित की जाती है, तो न्यायालय के पास धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन उस व्यक्ति को जमानत देने की शक्ति है जिसके विरुद्ध अपील योजित की गई है। दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील के मामले में भी अपीलीय न्यायालय के पास धारा 389 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त को दी गई सजा को निलंबित करने और उसकी अपील के लंबित रहने की अवधि में उसे जमानत पर छोड़ने की शक्ति है। दोनों मामलों में, जब न्यायालय ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया है और अभियुक्त व्यक्ति को जमानत दी है, तो यह निहित है कि ऐसे अभियुक्त व्यक्ति ने यह सुनिश्चित करके अपील की सुनवाई में सहयोग करने का वचन दिया है कि जब भी मामला सूचीबद्ध हो तो उसका अधिवक्ता उपस्थित होगा और अनावश्यक स्थगन की मांग के बिना इसकी बहस करेगा। हालांकि, यदि अधिवक्ता की निरंतर अनुपस्थिति है, तो न्यायालय को सामान्यतः ऐसे अभियुक्त व्यक्ति को नोटिस/सम्मन (बिना बलपूर्वक कार्यवाही के) जारी करना चाहिए, उसे सूचित करते हुए कि जमानत आदेश में निहित शर्तों का उसके द्वारा उल्लंघन किया गया है और अपीलीय न्यायालय अगली निर्धारित तिथि पर उसकी जमानत रद्द करने पर विचार करेगा या उसकी अपील की सुनवाई में सहायता के लिए एक न्याय मित्र की नियुक्ति करेगा। निर्धारित अगली तिथि पर, न्यायालय सेवा रिपोर्ट सत्यापित करने के बाद, ऐसे अभियुक्त व्यक्ति की जमानत रद्द कर सकता है और न्याय-मित्र की नियुक्ति करके अपील की सुनवाई करने के लिए आगे बढ़ सकता है। श्री नावेद अली द्वारा कबीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य³² में दिए गए

निर्णय का संदर्भ दिया गया है, जहाँ इस बात पर महत्व प्रदत्त है कि न्यायालय को केवल अधिवक्ता की अनुपस्थिति के कारण अपील को निरस्त नहीं करना चाहिए और इसके बजाय न्याय-मित्र की नियुक्ति करनी चाहिए और फिर अपील को उसके गुण-दोष के आधार पर निपटाने के लिए आगे बढ़ना चाहिए।

54. इसी तरह का दृष्टिकोण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य*³³; *कै. मुरुगानंदम और अन्य बनाम राज्य*⁵ में लिया गया है।

55. यह तर्क दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में प्रश्न 4 और 5 से व्यापक रूप से निपटा है और इस न्यायालय द्वारा इसका पालन किया जाना चाहिए।

56. श्री विकास विक्रम सिंह, रजत गंगवार के साथ मामले की बहस करते हुए, अन्य विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा किए गए अधिकतर प्रस्तुतियों को अपनाया है और इस बात पर भी बल दिया है कि अभियुक्त प्रतिवादी या दोषसिद्ध-अपीलकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति सामान्यतः उच्च न्यायालय में आवश्यक नहीं है, जहाँ उनकी प्रतिनिधित्व उनके अधिवक्ताओं द्वारा किया जाता है। हालाँकि, यदि अधिवक्ता न्यायालय की सहायता के लिए उपस्थित होने में असफल रहता है, तो न्यायालय को ऐसे व्यक्ति को सम्मन जारी करने का निर्देश देना चाहिए और नोटिस की सेवा की संतुष्टि के बाद, जमानती वारंट जारी किया जा सकता है। यदि जमानती वारंट का निष्पादन नहीं हो सकता है, तो गैर-जमानती जारी किया जाना चाहिए। वारंट स्थानीय भाषा में जारी किए जाने चाहिए क्योंकि भारत में विधिक साक्षरता का प्रतिशत कम है। वारंट की सामग्री स्व-व्याख्यात्मक होनी चाहिए और वारंट जारी करने के सटीक कारणों को स्पष्ट करना चाहिए और उच्च न्यायालय को आपराधिक अपीलों से संबंधित अनुभाग में जिम्मेदार अधिकारियों की एक समर्पित हेल्पलाइन या ईमेल पता भी प्रदान करना चाहिए, जहाँ वारंट जारी किए गए व्यक्ति स्पष्टीकरण मांग सकते हैं, यदि आवश्यकता हो।

57. प्रश्न संख्या 4 के संबंध में, श्री विकास विक्रम सिंह द्वारा यह तर्क दिया गया है कि अपील की सुनवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा एक न्याय-मित्र की नियुक्ति की जा सकती है। हालाँकि, ऐसा करने से पहले, अभियुक्त को सूचना भेजी जानी चाहिए और जिला विधिक सेवा प्राधिकरण को भी भेजी जानी चाहिए। जिला विधिक सेवा प्राधिकरण के बारे में विवरण भी अभियुक्त प्रतिवादी/दोषसिद्ध-अपीलकर्ता को भेजे जाने चाहिए और उनका संपर्क नंबर और पता भी साझा किया जाना चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि एक सद्भावना वादी को अपने अधिवक्ता की लापरवाही के लिए नुकसान न उठाना पड़े। यदि न्याय-मित्र की नियुक्ति के बाद अभियुक्त के लिए कोई अधिवक्ता उपस्थित होता है, तो न्याय-मित्र की सहायता को समाप्त नहीं किया जाना चाहिए, और उसे सामान्यतः मुकदमेबाजी के अंत तक जारी रखने की अनुमति दी जानी चाहिए क्योंकि वह न्यायालय का मित्र है। यदि बाद की तारीखों पर, अभियुक्त का अधिवक्ता फिर से उपस्थित नहीं होता है, तो न्याय-मित्र को आगे बढ़ने और मामले की स्वतंत्र रूप से बहस करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। साथ ही, एक न्याय-मित्र को नियोजित करते समय उससे विवरण फॉर्म लिया जाना चाहिए कि

मामले में कोई हितों का टकराव नहीं है और यदि किसी भी समय ऐसा कोई टकराव उत्पन्न होता है, तो इसे तत्काल न्यायालय की जानकारी में लाया जाना चाहिए।

58. यदि न्यायालय संतुष्ट है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में एक अभियुक्त को छोड़ गया है और वह अपील के निस्तारण में देरी करने के लिए जानबूझकर उपस्थिति से बच रहा है, तो न्यायालय न्याय-मित्र की सहायता से अपील का निर्णय करने के लिए आगे बढ़ सकता है और साथ ही साथ अभियुक्त की जमानत रद्द करने के लिए कदम उठा सकता है और दं.प्र.सं. के प्रावधानों के अनुसार आगे बढ़ सकता है। साथ ही, यह सुझाव दिया गया है कि न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किए गए मामलों के लिए एक अलग शीर्षक वाद-सूची में दिखाया जाना चाहिए, जिससे न्यायालय को ऐसे मामलों को प्राथमिकता के आधार पर तय करने में मदद मिल सके।

59. श्री आलोक मिश्रा, अधिवक्ता, ने लखनऊ खंडपीठ द्वारा संदर्भित प्रश्न 1 के उत्तर में कहा है कि धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या कोई मजिस्ट्रेट एक दोषी को जमानत पर छोड़ सकता है और उन परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिनमें इलाहाबाद खंडपीठ ने दिनांक 18.01.2024, और 19.01.2024 के आदेश पारित किए। दोनों मामलों में, विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त व्यक्ति को हिरासत में ले लिया गया था, क्योंकि उच्च न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया गया था, जिसमें मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को प्रतिवादी/अभियुक्त की विशेष परिस्थितियों पर विचार करने की शक्ति नहीं दी गई थी। दोषमुक्त व्यक्ति केवल इसलिए जेल में था, क्योंकि अपील को जल्दी नहीं सुना जा सका, जैसे ही गैर-जमानती का निष्पादन हुआ, और इस तथ्य को समय पर न्यायालय की जानकारी में नहीं लाया जा सका। श्री आलोक मिश्रा द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि यद्यपि इलाहाबाद खंडपीठ ने अनिवार्य निर्देश जारी करते हुए धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोग किए जाने वाले विवेक पर अतिक्रमण किया है, और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू31 में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर विचार भी नहीं किया है, फिर भी खंडपीठ ने सारभूत न्याय किया है और इलाहाबाद खंडपीठ द्वारा पारित आदेश को अपास्त नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसे संशोधित किया जा सकता है, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के लिए खुला छोड़ते हुए जहाँ प्रतिवादी, एक दोषमुक्त व्यक्ति को उसके समक्ष गैर-जमानती वारंट के निष्पादन पर केवल इसलिए लाया जाता है क्योंकि उसका अधिवक्ता उपस्थित होने में असफल रहा और जब अपील सुनवाई के लिए आई तो न्यायालय की सहायता करने में असफल रहा।

60. यह भी तर्क दिया गया है कि जहाँ तक प्रश्न संख्या 4 का संबंध है, दं.प्र.सं. की धारा 81, 82 और 83 अभियुक्त/दोषी की उपस्थिति सुनिश्चित करने के तरीके प्रदान करती हैं और विधायिका ने पहले से ही स्थिति का ख्याल रखा है और न्यायालय को इस संबंध में कोई आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं हो सकती है।

61. यह भी तर्क दिया गया है कि जहाँ तक न्याय-मित्र की नियुक्ति के संबंध में प्रश्न का संबंध है, *अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य*⁷ में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने पूरी समस्या से निपटा है और प्रस्तर 22 और 23 में कुछ दिशानिर्देश निर्धारित किए हैं, जिनका वृहद पीठ द्वारा पालन किया जाना चाहिए और कोई अलग आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं है।

62. श्री आलोक मिश्रा ने 24.02.2011 को निर्णीत आपराधिक अपील संख्या 546 वर्ष 2011: *मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य*³³ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय पर भी भरोसा किया है, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय इस प्रश्न पर विचार कर रहा था-*"क्या आपराधिक वाद में, यदि अभियुक्त का अधिवक्ता किसी भी कारण से उपस्थित नहीं होता है, तो क्या अधिवक्ता की अनुपस्थिति में, वाद का निर्णय अभियुक्त के विरुद्ध किया जाना चाहिए, या न्यायालय को अभियुक्त का बचाव करने के लिए न्याय-मित्र नियुक्त करना चाहिए?"*

सर्वोच्च न्यायालय ने संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पॉवेल बनाम अलाबामा 287 U.S. 45 (1932) में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया; जहाँ यह कहा गया था: --

"तो फिर, सुनवाई में क्या शामिल है? ऐतिहासिक रूप से और व्यावहारिक रूप में, कम से कम हमारे देश में, इसमें हमेशा अधिवक्ता की सहायता का अधिकार निहित है, जब अधिकार का दावा करने वाले पक्ष द्वारा प्रदान किए जाने की इच्छा है। सुने जाने का अधिकार कई मामलों में बहुत कम उपयोग का होगा यदि इसमें अधिवक्ता द्वारा सुने जाने का अधिकार शामिल न हो। यहाँ तक कि बुद्धिमान और शिक्षित आम आदमी के पास भी विधि का कम और कभी-कभी तो कोई भी कौशल नहीं होता है। यदि अपराध का आरोप लगाया जाता है, तो वह आम तौर पर, अपने लिए यह निर्धारित करने में असमर्थ है कि अभियोग सही है या गलत। वह साक्ष्य के नियमों से अपरिचित है। अधिवक्ता की सहायता के बिना छोड़ देने पर, वह उचित आरोप के बिना विचारण में डाला जा सकता है, और अक्षम साक्ष्य, या बिन्दु के लिए अप्रासंगिक या अन्यथा अस्वीकार्य साक्ष्य पर दोषी ठहराया जा सकता है। उसके पास अपने बचाव को पर्याप्त रूप से तैयार करने का कौशल और ज्ञान नहीं है, भले ही वह पूर्ण हो। उसे अपने विरुद्ध कार्यवाही के हर कदम में अधिवक्ता के मार्गदर्शक हाथ की आवश्यकता है। इसके बिना, यद्यपि वह दोषी न हो, वह दोषसिद्धि के खतरे का सामना करता है क्योंकि वह नहीं जानता कि अपनी बेगुनाही कैसे स्थापित करनी है। यदि यह बुद्धिमान पुरुषों के लिए सत्य है, तो अज्ञानी और निरक्षर, या कम बुद्धि वाले लोगों के लिए कितना अधिक सत्य है। यदि किसी भी मामले में, नागरिक या आपराधिक, कोई राज्य या संघीय न्यायालय मनमाने तरीके से किसी पक्ष को अधिवक्ता द्वारा सुने जाने से इनकार कर दे, जो उसके द्वारा नियोजित है, और उसके लिए उपस्थित है, तो यह उचित रूप से संदेह नहीं किया जा सकता कि ऐसा इनकार सुनवाई से इनकार होगा, और इसलिए, संवैधानिक अर्थ में उचित प्रक्रिया का।"

63. अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय को ए.एस. मोहम्मद रफी बनाम तमिलनाडु राज्य और अन्य³⁴ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया था।

इसी तरह का दृष्टिकोण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा *मान सिंह और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य*³⁵, और *बापू लिम्बाजी कांबले बनाम महाराष्ट्र राज्य*³⁶ में भी लिया गया था।

64. श्री आयुष टंडन ने इस न्यायालय का ध्यान इलाहाबाद उच्च न्यायालय के नियमों के अध्याय XVIII नियम (1) और (2) की ओर आकर्षित किया है, जो आपराधिक मामलों में अपील और पुनरीक्षण के लिए आवेदन की प्रस्तुति से संबंधित हैं। न्यायालय अपील को अंगीकृत नहीं कर सकता, यदि वह पाता है कि यह पूर्ण नहीं है क्योंकि आवश्यक अभिलेख गुप्त हैं या अन्यथा यह ठीक नहीं है या समय के भीतर प्रस्तुत नहीं किया गया है, और यह इसे प्राप्त करने से इनकार कर सकता है या अस्वीकार कर सकता है या ऐसा आदेश पारित कर सकता है, जो वह उचित समझे। जहाँ न्यायालय पाता है कि ऐसी याचिका या आवेदन क्रम में है और समय पर प्रस्तुत किया गया है और आवश्यक अभिलेख के साथ है, यह अपील के मामले में, इसे अंगीकृत करने और नोटिस जारी करने का आदेश दे सकता है और पुनरीक्षण के लिए आवेदन के मामले में, इसे निरस्त कर सकता है या नोटिस जारी करने का निर्देश दे सकता है या ऐसा अन्य आदेश पारित कर सकता है, जो वह उचित समझे। नियम (2) की परंतुक स्पष्ट करती है कि नियम में कुछ भी पीठ को दं.प्र.सं. की धारा 384 के अधीन किसी अपील को निरस्त करने से नहीं रोकेगा, या आवेदन की सूचना जारी करने की आवश्यकता नहीं होगी, जहाँ ऐसे आवेदन की सूचना पहले से ही दूसरे पक्ष या उसके अधिवक्ता को दी गई है।

65. यह तर्क दिया गया है कि ऐसा हमेशा नहीं है कि अपील की प्रस्तुति, अंगीकृत आदेश की ओर ले जाती है। यदि अपील अंगीकृत की जाती है, तो ऐसा हमेशा नहीं है कि वारंट या जमानती या अन्यथा जारी किया जाता है। कभी-कभी न्यायालय अपील को अंगीकृत करते समय केवल प्रतिवादी को नोटिस जारी कर सकता है। यह भी तर्क दिया गया है कि यद्यपि मजिस्ट्रेट के पास व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने की शक्ति नहीं है, यदि उच्च न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट जारी करने का आदेश दिया है, तो वह जमानतदार ले सकता है और ऐसे अधिकारियों को सत्यापित कर सकता है और अभिलेखों की प्रतियां आगे के आदेशों के लिए उच्च न्यायालय को प्रस्तुत की जा सकती हैं।

66. विद्वान शासकीय अधिवक्ता, डॉ. वी.के. सिंह, श्री उमेश वर्मा, विद्वान अ.शा.अधि.-1 और श्री शिवेंद्र शिवम सिंह राठौर के साथ, लखनऊ खंडपीठ द्वारा विरचित प्रश्न संख्या 1 के उत्तर में, बंबई उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ के आपराधिक जमानत आवेदन संख्या 265 वर्ष 2012 में आपराधिक अपील संख्या 812 of 2011: *बालकृष्ण महादेव लाड बनाम महाराष्ट्र राज्य*³⁷ के निर्णय का संदर्भ दिया। निर्णय माननीय न्यायमूर्ति ए.एम. खानविलकर (जैसा कि वे तब थे) द्वारा दिया गया था। बंबई उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा निम्नलिखित कहा गया:-

"इसी तरह, यदि उच्च न्यायालय कारण दर्ज करते हुए गैर-जमानती वारंट जारी करता है, जो केवल अभियुक्त को जेल भेजने का संकेत देता है, तो उस स्थिति में भी, अगर न्यायालय, जिसके समक्ष अभियुक्त को प्रस्तुत किया जाता है या इस प्रकार जारी वारंट के जवाब में उपस्थित होता है, के पास ऐसे अभियुक्त को जेल भेजने

के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा। हालांकि, सत्र न्यायालय अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग कर सकता है, जब उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में अभियुक्त को जेल भेजने या अपील के निस्तारण तक उसे जमानत पर छोड़ने के लिए किसी भी तरह से संकेत नहीं किया है। दूसरे शब्दों में, यदि उच्च न्यायालय अपने आदेश में केवल संहिता की धारा 390 के अधीन कार्रवाई शुरू करने का निर्देश देता है और यदि अभियुक्त को अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो अवर न्यायालय के लिए, मामले के सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए, अभियुक्त को ऐसे नियमों और शर्तों पर जमानत पर छोड़ना या उसे जेल भेजना उपलब्ध होगा, जो वह उचित समझे, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि वे लंबित अपील में आवश्यक होने पर अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। उस न्यायिक विवेक का प्रयोग स्थापित मापदंडों के आधार पर किया जाना है, अन्य बातों के साथ-साथ, इस प्रश्न को ध्यान में रखते हुए कि क्या अभियुक्त को जमानत पर छोड़ना उच्च न्यायालय में अपील के निस्तारण तक उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने में बाधा डालेगा।"

67. उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू और अन्य³¹ में शीर्ष न्यायालय ने कहा है कि विविध विचारों को कंप्यूटरीकृत करना और अपरिवर्तनीय सूत्र में ढालना संभव नहीं है जिसके आधार पर इस विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए। उदाहरण के द्वारा, शीर्ष न्यायालय ने अपराध की प्रकृति और गंभीरता, साक्ष्य का चरित्र, जनता और राज्य के हित जैसे कारकों का संदर्भ दिया है। उच्च न्यायालय, जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करते समय, उस अवधि को भी ध्यान में रखना है, जिसके दौरान अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही अवर न्यायालय में लंबित थी और वह अवधि जो उच्च न्यायालय में अपील के अंतिम सुनवाई के लिए आने से पहले बीतने की संभावना है। शीर्ष न्यायालय ने नोट किया है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील निस्तारण के लिए लंबित होने पर भी अभियुक्त की पुनः गिरफ्तारी का निर्देश देना या अभियुक्त को जेल भेजना, अनुच्छेद 21 या भारत के संविधान के भाग III में गारंटीकृत किसी अन्य मौलिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करता है, क्योंकि यह अभियुक्त को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के अतिरिक्त किसी अन्य तरीके से उसकी स्वतंत्रता से वंचित नहीं करता है।"

68. प्रश्न संख्या 2 के संबंध में, विद्वान अ.शा.अधि. ने ऊपर संदर्भित निर्णय के दूसरे प्रस्तर की ओर इशारा किया है, अर्थात् बालकृष्ण महादेव लाड³⁷, जहाँ यह कहा गया था: --

"हमारा विचारित मत है कि संहिता की धारा 390 का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि सत्र न्यायाधीश के पास अभियुक्त के प्रस्तुत होने पर, उसे तुरंत जमानत पर छोड़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इसके बजाय, हम मानते हैं कि अवर न्यायालय, जिसके समक्ष अभियुक्त को पहले उच्च न्यायालय के आदेश के संदर्भ में जारी वारंट के संबंध में प्रस्तुत किया जाता है, उसे प्रत्येक मामले के आधार पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करना चाहिए और विशेष रूप से उस संबंध में दोषमुक्ति के विरुद्ध लंबित अपील में उच्च न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखना चाहिए। इसका पूर्व अनुमान यह होगा कि सत्र न्यायाधीश, उपयुक्त मामले में, अपील के निस्तारण तक अभियुक्त को जेल भेज सकता है। वास्तव में, उस मामले में, अभियुक्त के लिए उच्च

न्यायालय के समक्ष सत्र न्यायाधीश के निर्णय पर सवाल उठाना उपलब्ध होगा, जिस कार्यवाही में उच्च न्यायालय जमानत प्रदान करने के लिए अभियुक्त के दावे पर विचार कर सकता है। अतः, अवर न्यायालय द्वारा जमानत प्रदान करना अधिकार नहीं है।"

69. प्रश्न संख्या 3 के संबंध में, जैसा कि हमें संदर्भित किया गया है, श्री वर्मा ने तर्क दिया है कि दं.प्र.सं. 1973 की धारा 386 का संदर्भ देना उचित होगा, जो अपीलीय न्यायालय की शक्तियों के बारे में बात करती है, जिसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है: --

"धारा 386, अपीलीय न्यायालय की शक्तियां:-

"ऐसे अभिलेख का अवलोकन करने और अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता, यदि वह उपस्थित होता है, और लोक अभियोजक, यदि वह उपस्थित होता है, और धारा 377 या धारा 378 के अधीन अपील के मामले में, अभियुक्त, यदि वह उपस्थित होता है, की सुनवाई के बाद, न्यायालय, यदि वह मानता है कि हस्तक्षेप करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है, अपील को निरस्त कर सकता है या कर सकता है -

क. दोषमुक्ति के आदेश से अपील में ऐसे आदेश को निरस्त कर देना और निर्देश देना कि आगे जांच की जाए, या अभियुक्त पर फिर से मुकदमा चलाया जाए या मुकदमे के लिए सुपुर्द किया जाए, जैसा भी हो, या उसे दोषसिद्ध करे और विधि के अनुसार उस पर सजा अधिरोपित करना;

ख. दोषसिद्धि से अपील में -

(i) निष्कर्ष और सजा को निरस्त कर देना और अभियुक्त को दोषमुक्त करना या उन्मोचित करना, या उसे ऐसे अपीलीय न्यायालय के अधीनस्थ सक्षम क्षेत्राधिकार के न्यायालय द्वारा फिर से मुकदमा चलाने का आदेश देना या मुकदमे के लिए सुपुर्द करना, या

(ii) निष्कर्ष को बदलना, सजा को बनाए रखना, या

(iii) निष्कर्ष को बदले बिना, सजा की प्रकृति या सीमा को बदलना, लेकिन इसे बढ़ाने के लिए नहीं;

ग. सजा बढ़ाने के लिए अपील में,

(i) निष्कर्ष और सजा को निरस्त कर देना और अभियुक्त को दोषमुक्त करना, या उन्मोचित करना, या उसे अपराध का मुकदमा चलाने के लिए सक्षम न्यायालय द्वारा फिर से मुकदमा चलाने का आदेश देना,

(ii) निष्कर्ष को बदलना और सजा को बनाए रखना,

(iii) निष्कर्ष को बदलने के साथ या बिना, सजा की प्रकृति या सीमा को बदलना, जिससे इसे बढ़ाया या कम किया जा सके।

घ. किसी अन्य आदेश से अपील में, ऐसे आदेश को बदलना, या निरस्त कर देना;

ङ . कोई संशोधन या कोई परिणामी या आकस्मिक आदेश देना, जो न्यायसंगत या उचित हो:

बशर्ते कि सजा तब तक नहीं बढ़ाई जाएगी, जब तक कि अभियुक्त को ऐसी वृद्धि के विरुद्ध कारण दिखाने का अवसर न मिला हो:

अग्रेतर यह कि अपीलीय न्यायालय उस अपराध के लिए उससे अधिक सजा नहीं देगा, जो उसकी राय में, अभियुक्त ने कारित किया है, जितनी उस अपराध के लिए उस न्यायालय द्वारा दी जा सकती थी, जो अपील के अधीन आदेश या सजा पारित कर रहा है।"

70. श्री उमेश वर्मा ने तर्क दिया है कि संहिता की धारा 386 के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अपील की सुनवाई करते समय, उच्च न्यायालय की शक्ति बहुत व्यापक है और ऐसी शक्ति की सीमा के संबंध में कोई स्पष्ट/विशिष्ट प्रतिबंध नहीं है, लेकिन न्यायिक अनुशासन और शिष्टता के रूप में, अपीलीय न्यायालय आपराधिक अपील की सुनवाई करते समय स्वयं को अप्रदत्त असाधारण मूल आपराधिक क्षेत्राधिकार को ग्रहण नहीं कर सकता है, क्योंकि यह पक्षकारों के महत्वपूर्ण और मूल्यवान अधिकारों को इस तरह प्रभावित करता है, जो उन्हें गंभीर अन्याय कारित करने का कारण बनेगा।

71. श्री वर्मा ने इंगित किया है कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम, 1952, भाग डी, नियम 10 और नियम 11 के अध्याय XVIII के अधीन न्यायालय के सामान्य आपराधिक क्षेत्राधिकार, विचारण के अतिरिक्त के संदारभ में हैं।

72. श्री वर्मा द्वारा यह तर्क दिया गया है कि उच्च न्यायालय की खंडपीठों के समक्ष मामलों की सुनवाई सख्ती से इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम 1952 के अधीन क्षेत्राधिकार आवंटन/रोस्टर आवंटन को नियंत्रित करने वाले नियमों के अनुसार की जाती है, और यदि कोई विशेष मामला किसी विशेष पीठ को आवंटित है, तो वह उसी विशेष पीठ द्वारा सुना और निर्णीत किया जाना चाहिए, न कि किसी अन्य पीठ द्वारा, और इसलिए, यदि किसी मामले का संज्ञान किसी ऐसी पीठ द्वारा लिया जाता है, जिसे माननीय मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामांकित नहीं किया गया है, तो उस पीठ द्वारा पारित आदेश अधिकार क्षेत्र की अधिकता या अनुपस्थिति में होगा और एक शून्यता के रूप में माने जाने योग्य होगा।

73. विद्वान अधिवक्ता द्वारा यह प्रस्तुत किया गया है कि इलाहाबाद में दिनांक 18.01.2024 और 19.01.2024 के आदेश आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार में बैठी खंडपीठ द्वारा सामान्य निर्देशों के रूप में पारित

किए गए हैं और, इसलिए, ये मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा इसे आवंटित क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त व अनुपस्थिति में हैं।

74. यह भी तर्क दिया गया है कि इलाहाबाद की खंडपीठ ने न केवल ऐसा क्षेत्राधिकार का उपयोग किया है, जो मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा रोस्टर के आवंटन के तरीके से उसे नहीं दिया गया था, बल्कि इसने ऐसे आदेश भी पारित किए हैं, जो बिना क्षेत्राधिकार के हैं क्योंकि निर्देश गंभीर अपराधों में जमानत देने या न देने के लिए दं.प्र.सं. के अधीन मजिस्ट्रेट में निहित विवेक को छीनने के समान हैं।

क्षेत्राधिकार के प्रयोग और क्षेत्राधिकार होने के बीच अंतर है। दोनों मौलिक रूप से अलग हैं। क्षेत्राधिकार की धारणा और उपयोग में वैधानिक आवश्यकताओं का पालन करने में विफलता के परिणाम विधि में एक निर्णय को शून्यता बना सकते हैं। किसी वाद को निर्णीत करने का अधिकार और उसमें दिया गया निर्णय नहीं, यह वह है जो क्षेत्राधिकार बनाता है और जब व्यक्ति और विषय वस्तु का क्षेत्राधिकार है, तो मामले में उत्पन्न होने वाले अन्य सभी प्रश्नों का निर्णय क्षेत्राधिकार के प्रयोग के रूप में माना जाएगा।

75. *किरण सिंह बनाम चमन पासवान*, AIR 1954 Supreme Court 340 में, न्यायालय ने देखा कि क्षेत्राधिकार का दोष -- -- न्यायालय के किसी भी डिग्री को पारित करने के अधिकार के मूल पर आघात करता है और ऐसा दोष पक्षकारों की सहमति से भी ठीक नहीं हो सकता।" इलाहाबाद की खंडपीठ आपराधिक अपील की सुनवाई कर रही थी और विषय वस्तु का विशेष रूप से सीमित क्षेत्राधिकार था। यह अपील की लंबितता के दौरान जमानत आवेदन पर विचार कर रही थी और इस तरह, इलाहाबाद की खंडपीठ के लिए विषय वस्तु से आगे जाने और उन मुद्दों पर निर्देश पारित करने का कोई अवसर नहीं था, जो इसके निर्धारण के लिए वहाँ नहीं थे।

76. इलाहाबाद की खंडपीठ ने संभवतः दं.प्र.सं. की धारा 482 के साथ अनुच्छेद 226 के अधीन प्रदान किए गए अपने क्षेत्राधिकार का आह्वान किया। इसके निर्देश सख्ती से दं.प्र.सं. की धारा 378, 386 और 390 के प्रावधानों के अनुसार नहीं थे।

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार में बैठकर निर्देश जारी करने के लिए दं.प्र.सं. की धारा 482 के साथ संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन क्षेत्राधिकार का आह्वान इलाहाबाद की खंडपीठ के क्षेत्राधिकार के दायरे से परे था।

77. श्री वर्मा ने इंगित किया है कि इलाहाबाद की खंडपीठ द्वारा जारी किए गए निर्देश 31.12.2009 से धारा 372 में संशोधन के माध्यम से मान्यता प्राप्त पीड़ितों के अधिकारों को नोटिस किए बिना थे। किसी विशेष मामले में जमानत आवेदन की सुनवाई करते समय न्यायालय के पास सामान्य अनिवार्य निर्देश जारी करने के लिए पर्याप्त जानकारी नहीं होती है जो दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में पीड़ितों को बहुत नुकसान पहुंचा सकती है, या यहाँ तक कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में भी उन्हें अपना मामला रखने का वास्तविक और सार्थक अवसर दिए बिना। *पंजाब राज्य बनाम दविंदर पाल सिंह भुल्लर और अन्य* 38 में, उच्च न्यायालय ने अपील का निर्णय करने के बाद असंबद्ध मामलों में अन्य अपराधियों के संबंध में आदेश पारित करना जारी रखा, और

सर्वोच्च न्यायालय ने देखा कि मुख्य मामले के दायरे के बाहर ऐसा क्षेत्राधिकार का आह्वान अन्यायपूर्ण था। इसने देखा "एक अंतर्निहित शक्ति पेंडोरा के बॉक्स को खोलने के लिए एक सर्वव्यापी शक्ति नहीं है, वह भी उन मुद्दों के लिए जो मुख्य संदर्भ के लिए बाहरी हैं। शक्ति का आह्वान एक उद्देश्य के लिए होना चाहिए, जो एक कार्यवाही से जुड़ा हो और बिल्कुल नए बिन्दु को अंकुरित करने के लिए नहीं। एक शक्ति अपने स्वयं के निर्माण से परे अपने अधिकार से अधिक नहीं हो सकती। -- --।"

78. इलाहाबाद की खंडपीठ द्वारा जारी किए गए ऐसे निर्देशों के न केवल न्याय प्रशासन पर दूरगामी परिणाम हैं, बल्कि राज्य कोष पर भी, क्योंकि खंडपीठ ने ऐसे कैदियों को व्यय/क्षतिपूर्ति के भुगतान का निर्देश दिया था, जो अपील के लंबित रहने की अवधि में न्यायालय के आदेशों पर जेल की सलाखों के पीछे डाले गए थे।

79. विद्वान अ.शा.अधि. ने इंगित किया है कि प्रश्न संख्या 4 का उत्तर दं.प्र.सं. के अध्याय VI में निहित है, जहां अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए फॉर्म और साथ ही तरीके निर्धारित हैं। इसके अतिरिक्त, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियम 1952 ने भी अपील की लंबितता के दौरान वारंट जारी करके अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए उच्च न्यायालय को अधिकार दिया। अतः, जमानत देने के लिए सामान्य निर्देश जारी करना शक्ति का सही प्रयोग नहीं माना जा सकता है, और *per in-curium* होने के कारण अपास्त किए जाने योग्य हैं, जो न सिर्फ दं.प्र.सं. के अध्याय VI के अधीन दिए गए वैधानिक प्रावधानों की अज्ञानता में निर्गत किए गए हैं, बल्कि उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू और अन्य 31 में संविधान पीठ द्वारा की गई टिप्पणियों की अज्ञानता में भी।

80. श्री वर्मा ने प्रश्न संख्या 5 का उत्तर देते हुए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 01.12.2023 को निर्णीत आपराधिक अपील संख्या 3757 वर्ष 2023, कृष्ण कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य के निर्णय का संदर्भ दिया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह कहा गया था कि: --

"इस न्यायालय ने बारंबार यह दृष्टिकोण लिया है कि किसी दिए गए मामले में जहां दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने वाले अधिवक्ता द्वारा अनुचित स्थगन की मांग की जाती है, न्यायालय के पास अभियुक्त के कारण का समर्थन करने और गुण-दोष के आधार पर अपील की सुनवाई के लिए न्याय-मित्र नियुक्त करने का विकल्प है। उच्च न्यायालय द्वारा उक्त पथ अपनाया जाना चाहिए था।"

81. श्री उमेश वर्मा, विद्वान अ.शा.अधि.-1 द्वारा यह तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. 1973 में चार प्रकार के आपराधिक मुकदमे हैं। पहले, अध्याय 18 के अधीन, सत्र न्यायालय के समक्ष मुकदमे को धारा 225 से 237 के अधीन रखा गया है। फिर अध्याय 19 के अधीन, मजिस्ट्रेट द्वारा वारंट केसों का मुकदमा धारा 238 से 250 में रखा गया है। इसी तरह, अध्याय 20 के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा सम्मन केसों का मुकदमा धारा

251 से 259 के अधीन रखा गया है, और अध्याय 21 के अधीन, संक्षिप्त मुकदमे के मामले धारा 260 से 265 में रखे गए हैं।

"सम्मन केस" और "वारंट केस" को संहिता की धारा 2 के अधीन निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया गया है -

2(डब्लू) सम्मन केस का अर्थ है, अपराध से संबंधित मामला, जो वारंट केस नहीं हो

2(एक्स) वारंट केस का अर्थ है मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय अपराध से संबंधित मामला।

यह तर्क दिया गया है कि यदि हम सम्मन केस और वारंट केस की परिभाषा को ध्यान में रखते हैं, तो यह स्पष्ट है कि हर सत्र मुकदमा एक वारंट केस है और दोषमुक्ति के मामले में जब सत्र न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध राज्य द्वारा अपील की जाती है, अभियुक्त व्यक्तियों को बरी करने के बाद, धारा 378 उप-खंड (3) के अधीन आवश्यक अनुमति प्रदान की जाने के बाद, उच्च न्यायालय द्वारा धारा 390 दं.प्र.सं. के अनुसार गिरफ्तारी का वारंट जारी किया जाता है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में यह सामान्य प्रथा अपनाई जाती है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में पहली बार, जमानती वारंट जारी किए जाते हैं और संबंधित न्यायालय को निर्देश दिया जाता है कि अभियुक्त को अपना व्यक्तिगत बंधपत्र और संबंधित न्यायालय की संतुष्टि के लिए समान राशि के दो जमानतदार दाखिल करने पर छोड़ा जाए, और केवल किसी विशेष मामले में बाध्यकारी परिस्थितियों में जब जमानती वारंट जारी करने की प्रक्रिया का जानबूझकर अनुपालन नहीं किया जा रहा है, और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश निष्फल हो जाते हैं, तो उच्च न्यायालय प्रतिवादी की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए, प्रतिवादी के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी करता है और इस हद तक, धारा 390 दं.प्र.सं. का प्रावधान दं.प्र.सं. की योजना के अनुकूल प्रतीत होता है क्योंकि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील की स्वीकृति और वारंट/गैर-जमानती वारंट जारी करने के बाद अभियुक्त की स्थिति एक वारंट मुकदमे के अभियुक्त के रूप में बहाल हो जाती है, जैसा कि *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू और अन्य*³¹ में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में प्रतिपादित किया गया है।

82. श्री वर्मा ने इस न्यायालय का ध्यान दं.प्र.सं. के साथ संलग्न प्रथम अनुसूची की ओर भी आकर्षित किया है, जो भा.दं.सं. के अधीन प्रदान की गई धारा, अपराध और सजा का वर्णन करती है। तालिका वर्णित करती है कि अपराध संज्ञेय है या गैर-संज्ञेय और जमानती है या गैर-जमानती और यह भी कि किस न्यायालय द्वारा अपराध का मुकदमा चलाया जा सकता है। यह भी तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. की प्रथम अनुसूची और द्वितीय अनुसूची के अधीन अपराधों के वर्गीकरण के आधार पर, यह स्पष्ट है कि भा.दं.सं. या किसी अन्य कानूनों के अधीन अपराध, जिसके लिए सात वर्ष से अधिक या आजीवन कारावास या मृत्यु की सजा निर्धारित की गई है, को संज्ञेय, गैर-जमानती और सत्र न्यायालय द्वारा मुकदमे योग्य (कुछ अपवादों जैसे धारा 467 भा.दं.सं. को छोड़कर) निर्धारित किया गया है। इन मामलों में, सामान्यतः मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट सहित मजिस्ट्रेट के न्यायालय, मुकदमे से पहले के चरण में भी, जमानत देने के क्षेत्राधिकार के प्रयोग से बचते/इनकार

करते हैं। इसी तरह, जब सत्र न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाए गए मामले में दोषमुक्ति दर्ज की जाती है, जिसे धारा 378 दं.प्र.सं. के अधीन राज्य द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी जाती है या धारा 372 दं.प्र.सं. के संशोधित प्रावधान के अधीन निर्धारित अपराध के पीड़ित द्वारा चुनौती दी जाती है और उच्च न्यायालय अपील को सुनते हुए, तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, उस विशेष मामले के गुण-दोष से संतुष्ट होकर अपील को अंगीकृत करता है और धारा 390 दं.प्र.सं. के प्रावधानों के प्रकाश में अभियुक्त/प्रतिवादियों के विरुद्ध गिरफ्तारी का वारंट जारी करने का निर्देश देता है, यह आदेश में ही निर्धारित कुछ शर्तों पर मजिस्ट्रेट को जमानत देने का निर्देश भी जारी कर सकता है, और संबंधित न्यायालय या मजिस्ट्रेट के पास उच्च न्यायालय द्वारा जारी आदेश की शर्तों का अनुपालन करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं छोड़ा जाता है।

83. श्री उमेश वर्मा द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 जैसे कुछ विशेष कानूनों में, 26.01.2016 से प्रभावी संशोधन की अधिसूचना के बाद, और दूसरे विशेष विधि, अर्थात् राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम, 2008 में, विशेष न्यायालयों में विशेष और अनन्य क्षेत्राधिकार के गठन का प्रावधान है और आगे किसी भी निर्णय, सजा या आदेश, जो अंतरिम आदेश न हो, के विरुद्ध उच्च न्यायालय में तथ्य और विधि दोनों पर अपील दाखिल करने के लिए विशेष प्रक्रिया का प्रावधान है। इन विशेष कानूनों में दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील का अंतर समाप्त कर दिया गया है और इस तरह या तो दोषसिद्धि के आदेश से व्यथित अभियुक्त या राज्य या पीड़ित/शिकायतकर्ता, जैसा भी हो, विचारण न्यायालय के आदेश से व्यथित महसूस करते हुए, एस.सी./एस.टी. अधिनियम 1989 की धारा 14 ए के अधीन या राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम 2008 की धारा 21 के अधीन उच्च न्यायालय में अपील योजित कर सकते हैं। इसी तरह, सांसद/विधायक के मामलों से निपटने के लिए विशेष न्यायालय, एक जनहित याचिका में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों के अधीन बनाए गए हैं। एक विशेष न्यायालय की शक्ति और क्षेत्राधिकार के संबंध में विशेष प्रावधान, जहाँ उक्त विशेष कानूनों में अभियुक्त और पीड़ित के उपचार के लिए प्रक्रिया निर्धारित की गई है, वर्तमान संदर्भ में शामिल मुद्दों का निर्णय करते समय और इस पूर्ण पीठ के पास संदर्भित प्रश्नों के उत्तर देते समय विचार की आवश्यकता है।

84. श्री उमेश वर्मा ने इस न्यायालय का ध्यान दं.प्र.सं. की धारा 386 के अधीन प्रदान की गई अपीलीय न्यायालय की शक्तियों की ओर भी आकर्षित किया है।

धारा 386 दं.प्र.सं. के आधार पर यह तर्क दिया गया है कि अपील की सुनवाई के समय अपीलकर्ता या अधिवक्ता की उपस्थिति आवश्यक है और यदि अपील की सुनवाई के समय, अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता अपील की सुनवाई में न्यायालय की सहायता के लिए उपस्थित नहीं होता है, तो अपीलीय न्यायालय किसी मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करने के लिए अधिकृत है।

85. श्री उमेश वर्मा ने इस न्यायालय की सहायता करने वाले कई अन्य अधिवक्ताओं द्वारा दिए गए तर्कों से भिन्न दृष्टिकोण अपनाते हुए तर्क दिया कि दं.प्र.सं. का अध्याय VI उपस्थिति बाध्य करने की प्रक्रिया प्रदान करता है, और भाग बी गिरफ्तारी के वारंट से संबंधित है, जो धारा 70 से 81 तक के अंतर्गत आता है। धारा 70 से 81 का अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वे जांच एजेंसी और विचारण न्यायालय या मजिस्ट्रेट की सहायता के लिए जांच की निरंतरता के दौरान और तत्पश्चात् मजिस्ट्रेट या विचारण न्यायालय की सहायता के लिए मुकदमे के चरण में बनाए गए हैं, जहाँ कार्यवाही के दौरान विभिन्न चरणों में, अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक है। इन प्रावधानों का सहारा अपील के चरण में नहीं लिया जाना है, जहाँ अभियुक्त एक पूर्ण मुकदमे के बाद या तो दोषसिद्ध किया गया है या दोषमुक्त किया गया है। श्री उमेश वर्मा ने हमारा ध्यान प्रथम और द्वितीय अनुसूची के बाद दं.प्र.सं. के साथ संलग्न वारंट के विभिन्न फॉर्मों की भाषा और पाठ की ओर आकर्षित किया है, जो इसे स्पष्ट करते हैं।

86. धारा 70 और 71 से संबंधित फॉर्म संख्या 2, धारा 81 से संबंधित फॉर्म संख्या 3 का संदर्भ दिया गया है। यह तर्क दिया गया है कि धारा 82 और 83 फरार होने पर अभियुक्त की संपत्ति की कुर्की की घोषणा से संबंधित हैं, और अपील की सुनवाई के चरण में विशेष रूप से दोषमुक्ति के विरुद्ध योजित अपील में इसका कोई अनुप्रयोग नहीं है। इसलिए, *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गीता देवी और अन्य* में दिनांक 18.01.2024 के निर्णय और आदेश के प्रस्तर 7 (क) और (ख) में इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा जारी निर्देश, संहिता की योजना के अनुसार नहीं हैं और एस.सी./एस.टी. अधिनियम, एन.आई.ए. अधिनियम और उनके अधीन बनाए गए विशेष न्यायालयों जैसे विशेष कानूनों के प्रावधानों के विपरीत हैं और साथ ही सांसद/विधायक मामलों के संबंध में भी। यह एस.सी./एस.टी. अधिनियम, 1989 और पीओसीएसओ अधिनियम 2012 के पीड़ितों के मूल्यवान अधिकारों का भी उल्लंघन करता है, इसके अतिरिक्त उन पीड़ितों के जिन्हें धारा 372 दं.प्र.सं. के परंतुक में प्रदान की गई अपील के लिए अनुमति मांगे बिना दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील योजित करने का मूल्यवान अधिकार दिया गया था। अन्य उप-प्रस्तरों, अर्थात् (सी) और (डी) में दिए गए निर्देश भी क्षेत्राधिकार की अधिकता में प्रतीत होते हैं और जनहित में पारित किए गए हैं जबकि न्यायालय आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार में बैठा था।

87. श्री उमेश वर्मा द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि आपराधिक अपील उच्च न्यायालय में सत्र न्यायालय के आदेश के विरुद्ध योजित की जाती है न कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के आदेश के विरुद्ध, आपराधिक अपील/सत्र मुकदमे में निर्णय से संबंधित अभिलेख सत्र न्यायालय में संरक्षित हैं और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास अपीलकर्ता अभियुक्त के अपीलीय न्यायालय के समक्ष लगातार उपस्थित होने या उसके भविष्य के आचरण और अपील के निस्तारण में उसके सहयोग के बारे में संभावना का आकलन करने के लिए कोई अभिलेख नहीं हैं और, इसलिए, उसे ऐसे मामले में जमानत देने का विवेकाधिकार नहीं दिया जा सकता है, जहाँ उच्च न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट जारी किए हैं।

यह तर्क दिया गया है कि दं.प्र.सं. की धारा 81, 85 और 88 केवल विचाराधीन कैदी के लिए हैं।

88. श्री उमेश वर्मा ने *अमीन खान बनाम राजस्थान राज्य* में दिए गए निर्णय पर भरोसा रखा है, जहाँ अपीलीय न्यायालय ने अपराध की घृणित प्रकृति को देखते हुए और विचारण न्यायालय के निर्णय से प्रथम दृष्टया असंतुष्ट होकर पहली बार में गैर-जमानती वारंट जारी किया था। यह प्रस्तुत किया गया है कि यदि अपीलीय न्यायालय ने किए गए अपराध की प्रकृति और विचारण न्यायालय के स्पष्ट रूप से गलत निर्णय को देखते हुए गैर-जमानती वारंट जारी करने का आदेश पारित किया है, तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट को अभियुक्त को जमानत देने की अनुमति देना न्याय का मजाक होगा। इस बात पर महत्व प्रदत्त है कि मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के पास दं.प्र.सं. की धारा 437 और 439 के अधीन केवल मुकदमे के दौरान जमानत देने का विवेकाधिकार हो सकता है, लेकिन जब अपील उच्च न्यायालय के समक्ष है, तो उसे इस संबंध में उच्च न्यायालय का विशिष्ट निर्देश होने के बिना अपने स्वयं के स्तर पर जमानत देने का विवेकाधिकार नहीं दिया जाना चाहिए।

89. यह प्रस्तुत किया गया है कि धारा 437-ए के अधीन प्रस्तुत जमानतदार केवल छह महीने की अवधि के लिए प्रभावी हैं और यह धारा केवल इसलिए प्रस्तुत की गई थी क्योंकि उच्च न्यायालय में अपील योजित करने के समय तक अधिकांश मामलों में दोषमुक्ति के बाद अभियुक्त का पता नहीं लगाया जा सकता था। राज्य प्रतिवादी के अधिवक्ता ने धारा 390 दं.प्र.सं. और *सूर्य बक्श सिंह* में दिए गए निर्णय की ओर भी इशारा किया है। यह तर्क दिया गया है कि यदि न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध-अपीलकर्ता के तर्क से *प्रथम दृष्टया* संतुष्ट होकर दोषसिद्धि के आदेश के संचालन को स्थगित कर दिया जाता है, तो केवल अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अदम-पैरवी के कारण, गैर-जमानती वारंट जारी करना उचित नहीं होगा। इसके बजाय यह आवश्यक होगा कि न्यायालय पहले जमानत आदेश को रद्द करे या अधिकारियों को नोटिस जारी करे, और फिर शायद ऐसे आदेशों के अनुपालन में विफलता और अपीलकर्ता की निरंतर गैर-हाजिरी पर, इस प्रकार अपील के निस्तारण में बाधा डालते हुए, एक गैर-जमानती वारंट जारी किया जा सकता है। *सूर्य बक्श सिंह* में, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि केवल दं.प्र.सं. की धारा 446 के अधीन प्रक्रिया की समाप्ति के बाद, न्यायालय गुण-दोष के आधार पर मामले का निर्णय कर सकता है।

90. श्री उमेश वर्मा द्वारा यह भी तर्क दिया गया है कि दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के विरुद्ध या यहाँ तक कि सजा बढ़ाने के लिए और धारा 384 और 385 के अधीन अपील योजित की जा सकती है। ऐसी अपील योजित करने पर पहले अभिलेख मंगाया जाना चाहिए। धारा 384, 385 और 386 का जिक्र करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने *मल्लिकार्जुन* में देखा था कि अभिलेख मंगाना आवश्यक है। यह भी तर्क दिया गया है कि धारा 437 और 439 केवल विचाराधीनों तक सीमित हैं। साथ ही, धारा 390 दं.प्र.सं. केवल अपील के अंगीकृत होने के चरण में लागू होती है। धारा 389 के अधीन, दोषी ठहराने वाला न्यायालय जमानत पर छोड़ सकता है और जमानतदार प्रस्तुत करने पर, लेकिन ऐसे जमानतदार केवल सीमित अवधि के लिए हैं।

91. श्री वर्मा ने *लक्ष्मण दास बनाम रेशम चंद कालिया और अन्य* 39 में दिए गए निर्णय और उसके प्रस्तर 24 पर भरोसा रखा है, यह तर्क देने के लिए कि उच्च न्यायालय विचारण न्यायालय को जमानत देने का आदेश नहीं दे सकता है और इस प्रकार, विचारण न्यायालय की स्वतंत्रता का हनन कर सकता है।

92. श्री वर्मा ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति या उन्मोचन के आदेश को निलंबित करने के लिए धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन इस उच्च न्यायालय की शक्ति के संबंध में अपने तर्क को बल दिया है। उन्होंने *महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश करीमन तिकी और अन्य* 40 में दिए गए निर्णय के प्रस्तर 11 का संदर्भ दिया है, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-11 में कहा कि "यह विवाद में नहीं है कि धारा 390 दं.प्र.सं. और *उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू* 31 में इस न्यायालय के निर्णय पर भी विचार करते हुए, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में न्यायालय अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति/उन्मोचन के आदेश को निलंबित भी कर सकता है...."

सिद्धांत स्थापित कहे जा सकते हैं, कठिनाई अक्सर उनकी प्रयोज्यता में उत्पन्न होती है। कोई भी दो मामले एक समान नहीं होते। जैसा कि लॉर्ड विस्काउंट साइमन ने 1952 (1) AER 1044 में कहा था:-

"यह याद रखना चाहिए कि हर मामले का निर्णय उसके तथ्यों पर किया जाता है, और जब न्यायालय विशेष तथ्यों पर विचार कर रहा हो तो प्रयुक्त अभिव्यक्तियाँ, या यहाँ तक कि बताए गए सिद्धांत, हमेशा इस तरह प्रवृत्त नहीं किए जा सकते, जैसे कि वे सभी परिस्थितियों में लागू होने वाले निरपेक्ष नियम हों।"

93. श्री वर्मा ने बंबई उच्च न्यायालय द्वारा लक्ष्मण दास चगन लाल भाटिया और अन्य बनाम राज्य में दिए गए निर्णय के प्रस्तर 355, 356, और 357 पर भरोसा रखा है, जो निम्नलिखित हैं:

"355. -- -- -- अपील योजित करने के बाद, उन्होंने इस न्यायालय से जमानत प्राप्त की। इसके कुछ समय बाद, उन्होंने न केवल जमानत का उल्लंघन किया, बल्कि इस देश से भाग गए हैं और वे अब इस न्यायालय की प्रक्रिया के अधीन नहीं हैं। प्रश्न यह है कि उनकी अपील से कैसे निपटा जाना चाहिए।

"356. यह सभी तर्कों के विपरीत है कि इस न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर अपील की सुनवाई करने के लिए बाध्य होना चाहिए, भले ही अभियुक्त ने, जमानत प्राप्त करने के बाद, खुद को इस न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर निकाल लिया हो। यदि ऐसा होता, तो वह अपील में सफलता का मौका लेता और यदि उसकी अपील स्वीकार हो जाती तो विजयी होकर देश वापस लौटता, लेकिन यदि उसकी अपील निरस्त हो जाती, तो वह कहता कि उसे न्यायालय के आदेशों की परवाह नहीं है। इसलिए, जब तक कि न्यायालय पर अपील सुनने की कोई बाध्यता न हो, न्यायालय केवल इस आधार पर इसे निरस्त करने में न्यायसंगत होगा।

"357. आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1998 की धारा 423 (1) अपील के अंगीकृत होने के बाद इसे निस्तारित करने की न्यायालय की शक्तियों से संबंधित है। इसके लिए न्यायालय को अभिलेख का अवलोकन करने और अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता की सुनवाई के बाद निर्णय करने की आवश्यकता होती है, यदि वह उपस्थित

होता है। इसलिए यह धारा दर्शाती है कि यदि अपीलकर्ता अपनी अपील की बहस के लिए उपस्थित नहीं होता है, तो भी न्यायालय को गुण-दोष के आधार पर अपील की सुनवाई करनी चाहिए। इस शब्दावली के कारण, बड़ी संख्या में मामलों में यह निर्धारित किया गया है कि केवल इसलिए कि अपीलकर्ता उपस्थित नहीं होता है, उसकी अपील को अदम-पैरवी में निरस्त नहीं किया जा सकता है। फिर भी, इस धारा का सिद्धांत ऐसे अपीलकर्ता के मामले में लागू नहीं हो सकता है, जिसने जमानत प्राप्त की है और जमानत का उल्लंघन किया है। इस धारा के साथ धारा 561ए को भी पढ़ा जाना चाहिए, जो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के बारे में बात करती है कि वह ऐसे आदेश दे सकता है, जो संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक हो, या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए या अन्यथा न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए। जमानत प्राप्त करना और फिर इसके क्षेत्राधिकार को छोड़ना और इसके आदेशों को लागू करना असंभव बना देना निस्संदेह इस न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है। जब तक कि संहिता के अन्य प्रावधान न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने की उच्च न्यायालय की इस शक्ति को सीमित नहीं करते हैं, हमारे विचार में, हम गुण-दोष के आधार पर अपील की सुनवाई से इनकार करने और इसे *Limine* में निरस्त करने में न्यायसंगत होंगे। इस संबंध में, यह देखा जा सकता है कि इंग्लैंड में आपराधिक अपील न्यायालय की प्रथा, जहाँ अपीलकर्ता जेल से भाग जाता है और अपील की सुनवाई में उपस्थित नहीं होता है, या तो अपील को स्थगित करना या मामले के न्याय के अनुसार इसे निरस्त करना है। (देखें 1965 (3) AER 669) निस्संदेह अंग्रेजी प्रथा की कोई प्रासंगिकता नहीं हो सकती है जब हमें आपराधिक प्रक्रिया संहिता की व्याख्या करनी हो। हमने इसका संदर्भ केवल यह दिखाने के लिए दिया है कि एक अपील को निरस्त करने में कोई अन्याय नहीं हो सकता है, जहाँ अपीलकर्ता ने जमानत का उल्लंघन किया है और न्यायालय में उपस्थित नहीं होता है। परिणामस्वरूप, अभियुक्त संख्या 11 द्वारा अपील संख्या 625 वर्ष 1963 असफल होती है और निरस्त की जाती है।"

इमतिआज़ रजा खान बनाम महाराष्ट्र राज्य⁴² में, सर्वोच्च न्यायालय अनुच्छेद 21 और जेल में बंद अभियुक्त की ओर से उचित विधिक प्रतिनिधित्व के अधिकार पर विचार कर रहा था। न्यायालय ने नोट किया कि क्योंकि न्याय-मित्र को अभियुक्त के साथ संवाद करने का लाभ नहीं होता है, कभी-कभी, यह अधिवक्ताओं की ओर से प्रयासों में गंभीर रूप से बाधा डालता है। अधिवक्ता और उसके मुवक्किल के बीच संवाद को सुविधाजनक बनाने के ऐसे सभी प्रयास न्याय के कारण को आगे बढ़ाएंगे और विधिक सहायता को सार्थक बनाएंगे। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा:-

"इसलिए हम प्रत्येक राज्य में सभी विधिक सेवा प्राधिकरणों/समितियों को निर्देश देते हैं कि वे प्रत्येक आपराधिक मामले में इसी तरह की सुविधाएं प्रदान करें, जहाँ भी अभियुक्त जेल में बंद हो। वे एक ओर अधिवक्ता और दूसरी ओर अभियुक्त या मामले की जानकारी रखने वाले किसी भी व्यक्ति के बीच वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग की सुविधा प्रदान करेंगे, जिससे न्याय का हित अच्छी तरह से सिद्ध हो।"

94. हमने हमारे समक्ष उपस्थित विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है और इलाहाबाद खंडपीठ द्वारा पारित दिनांक 18.01.2024 और 19.01.2024 के आदेशों के अवलोकन से पता चलेगा कि उक्त पीठ उक्त अपील में अपनाई गई प्रक्रिया से सहमत नहीं थी, जिसमें विचारण न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति के निर्णय को चुनौती दी गई थी, क्योंकि खंडपीठ की राय में गैर-जमानती वारंट जारी करने का मतलब यह होगा कि पुलिस अधिकारी उन्हें निष्पादित करेंगे और संबंधित व्यक्ति को उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करेंगे। हालांकि, खंडपीठ के समक्ष अपीलों में विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त होने के बाद भी, प्रतिवादी/अभियुक्त व्यक्ति एक वर्ष से अधिक समय से न्यायिक हिरासत में थे, क्योंकि वे उच्च न्यायालय द्वारा जारी गैर-जमानती वारंट के निष्पादन में गिरफ्तार किए गए थे और दं.प्र.सं. की धारा 390 और बंबई उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा निर्धारित विधि पर विचार करते हुए, न्यायिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के निदेशक को निर्देश दिया कि वे राज्य के मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेटों से आग्रह करें कि वे ऐसे अभियुक्त व्यक्तियों को जमानत पर छोड़ें, जिन्हें विचारण न्यायालय द्वारा जारी गैर-जमानती वारंट के निष्पादन में गिरफ्तार किया गया है बशर्ते वे जमानत बंधपत्र और उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का वचन प्रस्तुत करें। इसी तरह के निर्देश उन अपीलकर्ताओं के संबंध में दिए गए थे, जो दोषसिद्धि के विरुद्ध योजित की गई अपीलों में अपीलकर्ताओं के विरुद्ध जारी गैर-जमानती वारंट के अनुसरण में गिरफ्तार किए गए थे, जिनकी सजा उच्च न्यायालय द्वारा निलंबित की गई है। इलाहाबाद की खंडपीठ ने अभियुक्त व्यक्तियों की दोषमुक्ति के विरुद्ध योजित की गई अपीलों में उपरोक्त आदेश पारित किए प्रतीत होते हैं।

95. लखनऊ खंडपीठ उपरोक्त आपराधिक अपीलों में इलाहाबाद खंडपीठ द्वारा जारी व्यापक निर्देशों के दूरगामी परिणामों और उच्च न्यायालय द्वारा जारी गैर-जमानती वारंट के निष्पादन में गिरफ्तार किए गए अपीलकर्ता को जमानत पर छोड़ने के मजिस्ट्रेट के क्षेत्राधिकार के संबंध में अधिक चिंतित प्रतीत होती है, चाहे वह दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में हो या दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में, संहिता 1973 की धारा 437 में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए और यह भी कि क्या अपील की सुनवाई में ऐसी प्रकृति के सामान्य निर्देश जारी किए जा सकते थे।

96. अब हम इस पीठ के पास संदर्भित प्रश्नों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं और हमारे विचार से प्रश्न संख्या 1, 2 और 3 आपस में जुड़े हुए हैं और संयुक्त रूप से विचार किए जाने चाहिए, जबकि प्रश्न संख्या 5 न्याय-मित्र की नियुक्ति के संबंध में है और इससे अलग से निपटा जाना चाहिए। हालांकि, हमारी विचारित राय में, यह प्रश्न संख्या 4 है, जिससे प्राथमिकता के साथ निपटा जाना चाहिए क्योंकि अन्य सभी प्रश्न इसी से निकलते हुए प्रतीत होते हैं। हम सुविधा के लिए दोषमुक्ति के विरुद्ध योजित आपराधिक अपील (दं.प्र.सं. की धारा 372 और 378 के अधीन) और दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील (दं.प्र.सं. की धारा 374 के अधीन) के संबंध में बिन्दु से अलग से निपटेंगे।

दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील

97. दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में यदि यह संहिता 1973 की धारा 378 के अधीन राज्य द्वारा योजित की गई है और आवश्यक अनुमति प्रदान करने के बाद, न्यायालय पाता है कि पुनर्विचार के लिए एक प्रथम दृष्टया मामला बन रहा है तो विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए गए अभियुक्त की उपस्थिति चाहता है, दं.प्र.सं. की धारा 390 लागू होगी, जिसे नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"390. दोषमुक्ति से अपील में अभियुक्त की गिरफ्तारी-जब धारा 378 के अधीन अपील प्रस्तुत की जाती है, उच्च न्यायालय एक वारंट जारी कर सकता है, जो निर्देश देता है कि अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाए और उसके समक्ष या किसी अवर न्यायालय के समक्ष लाया जाए, और जिस न्यायालय के समक्ष उसे लाया जाता है, वह अपील के निस्तारण तक उसे जेल भेज सकता है या उसे जमानत पर छोड़ सकता है।"

98. संहिता 1898 की धारा 427, जो संहिता 1973 की धारा 390 के अनुरूप है, पूरा (उपरोक्त)31 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विस्तार से विचार किया गया था और शीर्ष न्यायालय के समक्ष बिन्दु यह था कि अनुमति देते समय या कुछ मामलों में विशेष अनुमति के लिए क्या न्यायालय के पास उस अभियुक्त व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए गैर-जमानती वारंट जारी करने की शक्ति है, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया है और बिन्दु के गहन विश्लेषण के बाद, सर्वोच्च न्यायालय का विचार था कि दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध अपील लंबित रहने की अवधि में, अभियुक्त की गिरफ्तारी और जेल में नजरबंदी कराने की शक्ति दोषमुक्ति के आदेश के विरुद्ध योजित की गई अपील में क्षेत्राधिकार के प्रभावी प्रयोग के लिए सहायक और आवश्यक है। संविधान पीठ का यह भी विचार था कि जब न्यायालय संतुष्ट है कि दोषमुक्ति के आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता है और प्रतिवादी/अभियुक्त के लिए प्रक्रिया जारी करने की आवश्यकता है, तो अभियुक्त व्यक्ति के रूप में उसकी स्थिति पुनर्जीवित हो जाएगी और उसकी स्थिति वैसी ही होगी, जैसी विचारण न्यायालय के समक्ष थी। हालांकि, यह विचार करते समय कि क्या ऐसे अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करके सुनिश्चित की जानी चाहिए, यह पूर्णतः न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ दिया गया था। पूरा (उपरोक्त)31 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संबंधित अंश नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है:

".....क्या मामले की परिस्थितियों में, अभियुक्त प्रतिवादी की उपस्थिति जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट जारी करके सर्वोत्तम रूप से सुनिश्चित की जा सकती है यह एक ऐसा मामला है, जो पूर्णतः न्यायालय के विवेकाधिकार पर निर्भर करता है। यद्यपि, विवेकाधिकार न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाता है, विविध विचारों को कंप्यूटरीकृत करना और अपरिवर्तनीय सूत्रों में संक्षेपित करना संभव नहीं है, जिसके आधार पर यह विवेकाधिकार प्रयोग किया जाता है। मोटे तौर पर, न्यायालय विभिन्न कारकों को ध्यान में रखेगा जैसे, "अपराध की प्रकृति और गंभीरता, साक्ष्य का चरित्र, अभियुक्त की विशेष परिस्थितियां, उसके फरार होने की संभावना, साक्ष्य के साथ छेड़छाड़, जनता और राज्य के बड़ा हित"-राज्य बनाम कैप्टन जगजीत सिंह(2) देखें। इसके अतिरिक्त, न्यायालय उस अवधि को भी ध्यान में रख सकता है, जिसके दौरान अवर न्यायालयों में अभियुक्त

के विरुद्ध कार्यवाही लंबित थी और वह अवधि जो इस न्यायालय के समक्ष अपील के अंतिम सुनवाई के लिए आने से पहले बीतने की संभावना है। संदर्भ में, यह याद रखना चाहिए कि अनुच्छेद 136 के अधीन यह अतिव्यापी विवेकाधीन क्षेत्राधिकार असाधारण मामलों में संयमपूर्वक आह्वान किया जाता है, जहाँ उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज दोषमुक्ति का आदेश विकृत या स्पष्ट रूप से गलत है और न्याय की घोर हानि का परिणाम है।

"..... न हम (हम नहीं) इस तर्क में कोई गुण पाते हैं कि एक अभियुक्त-प्रतिवादी की पुनः गिरफ्तारी और नजरबंदी का निर्देश देने वाला आदेश जिसे उच्च न्यायालय द्वारा एक पूंजी अपराध से दोषमुक्त किया गया था, किसी भी तरह से, अनुच्छेद 21 या संविधान के भाग III में गारंटीकृत किसी अन्य मौलिक अधिकार का उल्लंघन करता है। ऐसा आदेश इस न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 136 और 142 द्वारा प्रदत्त अपनी पूर्ण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में बनाया जाता है। कल्पना के किसी भी विस्तार से यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा आदेश अभियुक्त-प्रतिवादी को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार के अतिरिक्त किसी अन्य तरीके से उसकी स्वतंत्रता से वंचित करता है।"

99. इस प्रकार पूसू (उपरोक्त) 31 में दिए गए उपरोक्त संविधान पीठ के निर्णय के अवलोकन से पता चलेगा कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में, यदि यह राज्य द्वारा योजित की गई है और न्यायालय इसमें तथ्य पाता है, तो यह प्रत्येक मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर, जैसा भी हो, जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करके अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति सुनिश्चित कर सकता है, लेकिन पूसू (उपरोक्त) 31 में निर्धारित सिद्धांत को हमारी विचारित राय में कभी भी इस अर्थ में नहीं समझा जा सकता कि विचारण न्यायालय या अपील में उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए गए अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध प्रक्रिया जारी करने वाला न्यायालय अनिवार्य रूप से जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करे, यदि उसकी उपस्थिति किसी अन्य तरीके से जैसे सम्मन या नोटिस, जैसा भी हो, के माध्यम से सुनिश्चित की जा सकती है।

100. हमारी राय में संहिता 1973 की धारा 390 के अधीन आया शब्द 'may' को 'must' या 'shall' के रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता और उपयुक्त मामले में न्यायालय अपने समक्ष अभियुक्त व्यक्ति की उपस्थिति प्राप्त करने के लिए सम्मन की प्रक्रिया भी जारी कर सकता है, हालांकि, यह प्रक्रिया जारी करने वाले न्यायालय के विवेकाधिकार के भीतर होगा कि वह सम्मन, जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करे और इस संबंध में सार्वभौमिक प्रयोग का कोई सूत्र तैयार नहीं किया जा सकता है। प्रत्येक आपराधिक मामले का अपना तथ्यात्मक मैट्रिक्स, परिस्थितियां और स्वाद होता है और उस विशेष मामले की विशिष्टताओं को ध्यान में रखते हुए, उस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जा सकता है।

101. किसी मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन सम्मन, जमानती वारंट या यहाँ तक कि गैर-जमानती वारंट की प्रक्रिया जारी की जा सकती है, हालांकि, प्रक्रिया जारी करने वाला न्यायालय यदि सीधे गैर-जमानती वारंट जारी करना चुनता है तो कारण बताने के लिए बाध्य होगा।

102. बंबई उच्च न्यायालय ने **प्रणीता प्रकाश नवागे बनाम महाराष्ट्र राज्य** 28 में, संहिता 1973 दं.प्र.सं. की धारा 372, 378, 390 पर विचार करते हुए निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया:-

"16. इस प्रकार, दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन इस न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के अतिरिक्त, दं.प्र.सं. की धारा 372 के प्रावधान द्वारा शासित दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील के मामले में, अपील के अंतिम निस्तारण तक प्रतिवादी अभियुक्त को जेल में गिरफ्तारी और नजरबंदी का आदेश देने या जमानत पर उसका छोड़ने का निर्देश देने की शक्ति को दं.प्र.सं. की धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील की शक्ति के प्रभावी प्रयोग के लिए आवश्यक और सहायक शक्ति के रूप में पढ़ा जाना होगा। ऐसी सहायक शक्ति के अस्तित्व के लिए नहीं, विधायिका द्वारा पीड़ित को दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील योजित करने का अधिकार अप्रभावी और निरर्थक हो जाएगा। यह विधायिका का अभिप्राय नहीं हो सकता।

"17. हालांकि, वारंट जारी करने और प्रतिवादी अभियुक्त को जेल में निरुद्ध करने या उसे जमानत पर छोड़ने की शक्ति से निपटते समय, यह न्यायालय स्वाभाविक रूप से सुस्थापित विधि से बंधा होगा। ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय सबसे पहला विचार यह होगा कि दोषमुक्ति का आदेश अभियुक्त की निर्दोषता की धारणा को और मजबूत करता है। जैसा कि दं.प्र.सं. की धारा 390 के मामले में, अपील को स्वीकार करने के समय यह अनिवार्य नहीं है कि गिरफ्तारी की शक्ति हर मामले में प्रयोग की जाए। उक्त शक्ति का प्रयोग दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील के किसी भी चरण में किया जा सकता है। धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील में, इस न्यायालय द्वारा अपील अंगीकृत किए जाने के बाद, प्रतिवादी अभियुक्त को अपील की सूचना जारी करने की आवश्यकता होती है। उपरोक्त शक्ति का प्रयोग करने का प्रश्न, गिरफ्तारी वारंट जारी करने और अपील के निस्तारण तक प्रतिवादी को निरुद्ध करने या उसे जमानत पर छोड़ने का, अपराध की गंभीरता, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य की प्रकृति, प्रतिवादियों की पृष्ठभूमि और आपराधिक पूर्ववृत्त आदि जैसे विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त चरण में प्रयोग करना होगा। इस संबंध में कोई सख्त और कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता। यदि धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील की सूचना की सेवा के बाद, प्रतिवादी अभियुक्त उपस्थित होता है और एक अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है और यदि यह आश्वासन दिया जाता है कि उक्त प्रतिवादी अंतिम सुनवाई के समय उपस्थित होगा, तो यह न्यायालय हमेशा संबंधित प्रतिवादी के विरुद्ध वारंट जारी करने की कार्रवाई को स्थगित कर सकता है। यदि यह न्यायालय पाता है कि अपील की सूचना की सेवा के बाद, प्रतिवादी न्यायालय के समक्ष उपस्थिति नहीं कराता है, उस चरण में, यह न्यायालय हमेशा प्रतिवादी को वारंट जारी कर सकता है और अपील के निस्तारण तक प्रतिवादी को कैद करने या उपयुक्त जमानत पर प्रतिवादी की रिहाई का निर्देश दे सकता है। यह सब प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है। यह कहना पर्याप्त है कि ऐसी कठोर शक्ति का प्रयोग अपील को अंगीकृत करने के चरण में प्रत्येक अपील में करने की आवश्यकता नहीं है, कारण यह है कि धारा 390 की प्रयोज्यता के अभाव में, उक्त शक्ति का प्रयोग उक्त दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन होगा। विधि अच्छी तरह से स्थापित है कि दं.प्र.सं. की धारा 482 के अधीन शक्ति का प्रयोग संयमपूर्वक और दुर्लभ मामलों में किया जा सकता है।

“18. अब, हम धारा 372 के परंतुक के अधीन अपीलों की अगली श्रेणी की ओर मुड़ते हैं। अगली श्रेणी कम अपराध के लिए अभियुक्त को दोषी ठहराने के आदेश की है। यह सत्य है कि अपीलों की इस श्रेणी में भी, उपरोक्त बताई गई अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग इस न्यायालय द्वारा किया जा सकता है। हालांकि, ऐसी अपीलों के मामले में, आगे की बाधाएं होंगी। यदि अभियुक्त पहले से ही कम अपराध के लिए पर्याप्त सजा भुगत चुका है, तो यह वारंट जारी करने की शक्ति के प्रयोग के लिए एक अतिरिक्त विचार होगा। यदि प्रतिवादी अभियुक्त ने दोषसिद्धि के आदेश के विरुद्ध अपील योजित की है और यदि वह ऐसी अपील में जमानत पर छोड़ा गया है, तो यह स्पष्ट है कि यह न्यायालय पीड़ित के कहने पर योजित की गई अपील में अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग प्रतिवादी के विरुद्ध वारंट जारी करने और उसे जेल में निरुद्ध करने का निर्देश देकर नहीं कर सकता है।

“19. जहाँ तक अपर्याप्त मुआवजा देने के आदेश के विरुद्ध अपीलों की तीसरी श्रेणी का संबंध है, हमें यहाँ यह ध्यान देना चाहिए कि वारंट जारी करने और अपील के निस्तारण तक उसकी कैद का निर्देश देने की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि अपील केवल अपर्याप्त मुआवजा देने के आदेश तक सीमित है।

“20. इस स्तर पर, हमें यह जोड़ना चाहिए कि, अपीलों की सभी तीन श्रेणियों के मामले में, दं.प्र.सं. के अध्याय VI के अधीन इस न्यायालय में हमेशा यह शक्ति प्रदान की गई है कि प्रतिवादी की न्यायालय के समक्ष उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए प्रक्रिया जारी की जा सके। हम यह संकोच से जोड़ सकते हैं कि अध्याय VI के अधीन शक्ति न्यायालय के समक्ष उपस्थिति बाध्य करने की है और उक्त शक्ति अपील के निस्तारण तक प्रतिवादी को हिरासत में कैद करने की शक्ति नहीं है। इसलिए, अपीलों की इन सभी तीन श्रेणियों में, यदि यह न्यायालय पाता है कि पीड़ित की अपील की सूचना की सेवा के बाद, प्रतिवादी ने उपस्थिति नहीं कराई है या सूचना की सेवा के बाद, प्रतिवादी अभियुक्त उपस्थित होने में असफल रहता है, तो न्यायालय हमेशा प्रतिवादी अभियुक्त की इस न्यायालय के समक्ष उपस्थिति सुनिश्चित करने और बाध्य करने के लिए अध्याय VI के प्रावधानों का सहारा ले सकता है।

“23. दं.प्र.सं. की धारा 372 के परंतुक के अधीन अपील की विशेष प्रकृति को देखते हुए, भले ही अपील को अंगीकृत करते समय इस न्यायालय का कोई विशिष्ट निर्देश सूचना जारी करने के लिए न हो, यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी अभियुक्त को अपील की सूचना दी जानी होगी। सूचना की सेवा के बाद, रजिस्ट्री को ऐसी अपीलों को संबंधित न्यायालय के समक्ष रखना होगा, जिससे न्यायालय यह पता लगा सके कि प्रतिवादी अभियुक्त ने अपील की सूचना के आधार पर अपील में उपस्थिति कराई है या नहीं। यदि न्यायालय पाता है कि सूचना की सेवा के बाद भी, प्रतिवादी ने उपस्थिति नहीं कराई है, तो यह न्यायालय हमेशा वैसी कार्रवाई कर सकता है जैसी हमने निर्णय के पूर्व भाग में चर्चा की थी।”

103. बंबई उच्च न्यायालय की खंडपीठ का विचार था कि संहिता 1973 की धारा 378 या 374 के अधीन दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में, जैसा भी हो, न्यायालय के समक्ष अभियुक्त की उपस्थिति

सुनिश्चित करने के लिए संहिता के अध्याय VI के अधीन प्रक्रिया जारी की जा सकती है, सिवाय कम अपराध में दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील या अपर्याप्त मुआवजा के विरुद्ध अपील के, क्योंकि दोषी/अभियुक्त ने स्वयं आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 374 के अधीन अपील योजित करके दोषसिद्धि के निर्णय और आदेश को चुनौती दी हो सकती है और ऐसी अपील की लंबितता के दौरान अपीलीय न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया हो सकता है।

104. इस स्तर पर **महाराष्ट्र राज्य बनाम महेश करीमन तिकी**, (2022)10 SCC 207 में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर चर्चा करना भी उपयोगी है, जिसने **निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया है**:

"11. यह विवादित नहीं हो सकता है और विवाद में नहीं है कि धारा 390 दं.प्र.सं. और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम पूसू में इस न्यायालय के निर्णय पर विचार करते हुए भी, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अपीलीय न्यायालय, अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित दोषमुक्ति/उन्मोचन के आदेश को निलंबित भी कर सकता है। इसलिए, यह विवादित नहीं है कि यह न्यायालय उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त को बरी/मुक्त करने वाले निर्णय और आदेश को निलंबित कर सकता है।"

105. **बालकृष्ण महादेव लाड बनाम महाराष्ट्र राज्य**³⁷ में बंबई उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने इसी बिन्दु पर विचार करते हुए निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया है:-

"5. उल्लेखनीय रूप से, उपरोक्त अवलोकन पूसू (उपरोक्त) के मामले में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधिक स्थिति का संदर्भ दिए बिना किए गए हैं। निर्विवाद रूप से, एक व्यक्ति जो विधिक न्यायालय द्वारा आपराधिक आरोपों से दोषमुक्त किया गया है, को दोषमुक्ति के बाद एक दिन भी जेल में नहीं रहना चाहिए। लेकिन, इससे यह जरूरी नहीं है कि अवर न्यायालय, जिसके समक्ष दोषमुक्त किया गया अभियुक्त, उसकी दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश के संबंध में प्रस्तुत किया जाता है, उसे जेल नहीं भेज सकता है, भले ही तथ्यात्मक स्थिति इसकी अपेक्षा करती हो।"

"8. इस प्रावधान के अवलोकन मात्र से कोई संदेह नहीं रह जाता कि उच्च न्यायालय से अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्येक मामले के आधार पर अपने न्यायिक विवेक का प्रयोग करके वारंट (जमानती या गैर-जमानती) जारी करे, जो निर्देश दे कि अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाए और उसके समक्ष लाया जाए या उसके अनुपालन के लिए अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। इस धारा का आरंभिक भाग यह स्पष्ट करता है कि न्यायिक विवेक का प्रयोग संहिता की धारा 378 के अधीन अपील की प्रस्तुति के बाद किसी भी चरण में किया जा सकता है। इस प्रकार, ऐसी अपील की प्रस्तुति संहिता की धारा 390 के अनुसार इस न्यायिक विवेक के प्रयोग के लिए अनिवार्य शर्त है।"

106. इस संबंध में **इंद्र मोहन गोस्वामी बनाम उत्तरांचल राज्य**³ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित सिद्धांत को याद किया जा सकता है, जिसमें शीर्ष न्यायालय द्वारा निम्नलिखित प्रस्तरों में कुछ निर्देश जारी किए गए हैं:-

"53. गैर-जमानती वारंट किसी व्यक्ति को न्यायालय में लाने के लिए तब जारी किया जाना चाहिए, जब सम्मन या जमानती वारंट से वांछित परिणाम मिलने की संभावना न हो। यह तब हो सकता है जब:

- * यह मानना उचित हो कि व्यक्ति स्वेच्छा से न्यायालय में उपस्थित नहीं होगा; या
- * पुलिस अधिकारी व्यक्ति को सम्मन की तामील के लिए खोजने में असमर्थ हैं; या
- * यह माना जाता है कि व्यक्ति तुरंत हिरासत में न रखे जाने पर किसी को नुकसान पहुंचा सकता है।"

"54. जहाँ तक संभव हो, यदि न्यायालय की राय है कि सम्मन अभियुक्त को न्यायालय में उपस्थित करवाने के लिए पर्याप्त होगा, तो सम्मन या जमानती वारंट को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। वारंट चाहे जमानती हो या गैर-जमानती, कभी भी तथ्यों की उचित जांच और पूर्ण मनन के बिना जारी नहीं किया जाना चाहिए, वारंट जारी करने पर होने वाले अत्यधिक गंभीर परिणामों और प्रभावों के कारण। न्यायालय को बहुत सावधानी से यह जांच करनी चाहिए कि आपराधिक परिवाद या प्रसूरी कुटिल उद्देश्य से योजित तो नहीं किया गया है।"

"55. शिकायती मामलों में, पहली बार में, न्यायालय को शिकायत की प्रति के साथ सम्मन की तामील का निर्देश देना चाहिए। यदि अभियुक्त सम्मन से बचता प्रतीत होता है, तो न्यायालय को दूसरी बार में जमानती वारंट जारी करना चाहिए। तीसरी बार में, जब न्यायालय पूर्णतः संतुष्ट हो जाता है कि अभियुक्त जानबूझकर न्यायालय की कार्यवाही से बच रहा है, तो गैर-जमानती वारंट जारी करने की प्रक्रिया का सहारा लेना चाहिए। व्यक्तिगत स्वतंत्रता सर्वोपरि है, इसलिए, हम पहली और दूसरी बार में न्यायालयों को गैर-जमानती वारंट जारी करने से बचने की चेतावनी देते हैं।"

107. **रघुवंश देवानचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य**² में, सर्वोच्च न्यायालय ने **इंद्र मोहन गोस्वामी**³ पर भरोसा रखते हुए कहा कि:-

"13. हम इन निर्देशों से सम्मानपूर्वक सहमत हैं, और इस बात पर बल देते हैं कि चूंकि ये निर्देश हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 और 22(1) में निहित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से उद्धरित होते हैं, इनका सख्ती से अनुपालन करने की आवश्यकता है। हालांकि, हमें यह कहने में संकोच है कि ये केवल व्यापक दिशानिर्देश हैं और सार्वभौमिक प्रयोग के कड़े नियम नहीं हैं, जब तथ्य और व्यवहारिक पैटर्न प्रत्येक मामले में अलग होने वाले हैं। चूंकि इस संबंध में विवेकाधिकार न्यायालय को दिया गया है, यह सलाह देना उचित नहीं है कि अपरिवर्तनीय सूत्र निर्धारित किए जाएं, जिनके आधार पर विवेकाधिकार का प्रयोग किया जा सके। जैसा कि कहा गया है, संबंधित न्यायालय के लिए स्थिति का आकलन करना और न्यायसंगत, निष्पक्ष और पूर्वाग्रह के बिना विवेकाधिकार का प्रयोग करना है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो, हमें यह कहते हुए

खेद हो रहा है कि वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता के विरुद्ध परिवाद की प्रकृति और समुदाय में उसके स्तर और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि स्वीकृत रूप से अपीलकर्ता नियमित रूप से न्यायालय की कार्यवाही में उपस्थित हो रहा था, यह एक ऐसा मामला नहीं था, जहाँ अतिरिक्त मुख्य महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए था। हमारी राय में, अपीलकर्ता की उपस्थिति सम्मन जारी करके या अधिक से अधिक जमानती वारंट द्वारा सुनिश्चित की जा सकती थी। इसलिए, हम उच्च न्यायालय से पूर्ण सहमति में हैं कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, गैर-जमानती वारंट जारी करना स्पष्ट रूप से अनुचित था।"

108. उपरोक्त चर्चा की गई विधिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए, और पूसू (उपरोक्त) के संविधान पीठ के निर्णय के दृष्टिकोण से, जो आज तक प्रवृत्त है, प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यात्मक मैट्रिक्स के आधार पर, दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में, धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त व्यक्तियों की उपस्थिति सुनिश्चित करते समय न्यायालय द्वारा जमानती या गैर-जमानती वारंट की प्रकृति की उपयुक्त प्रक्रिया जारी की जा सकती है और प्रक्रिया जारी करना (सम्मन, जमानती या गैर-जमानती वारंट) न्यायालय का विवेकाधिकार होगा।

दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील

109. संहिता 1973 की धारा 374 दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील को नियंत्रित करती है और यह कहती है कि दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील या तो सत्र न्यायालय या उच्च न्यायालय में उसमें दिए गए प्रावधान के अनुसार की जा सकती है।

110. दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में सामान्यतः दोषसिद्ध-अपीलकर्ता पहले से ही जेल में निरुद्ध होता है, जब तक कि उसे संहिता 1973 की धारा 389(3) के अधीन दोषी ठहराने वाले न्यायालय द्वारा अंतरिम जमानत पर छोड़ा न गया हो और उस स्थिति में भी उसे अपीलीय न्यायालय से नियमित जमानत प्राप्त करने की आवश्यकता होगी क्योंकि वह केवल अपील योजित करने के उद्देश्य से दोषी ठहराने वाले न्यायालय द्वारा अंतरिम जमानत पर छोड़ा गया है।

111. दोनों स्थितियों में, जब अपीलकर्ता को उच्च न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा जाता है, दोषी की हिरासत उसके जमानतदारों को सौंप दी जाती है। यहाँ हम केवल उन दोषसिद्ध-अपीलकर्ताओं से संबंधित हैं, जिन्हें इस न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है क्योंकि जिस प्रश्न पर हम विचार कर रहे हैं, वह इस न्यायालय द्वारा सामान्यतः उस दोषसिद्ध-अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अपनाए जाने वाली प्रक्रिया से संबंधित है, जिसे जमानत पर छोड़ा गया है और जिसके अधिवक्ता की अदम-पैरवी पर उसके द्वारा योजित अपील की सुनवाई को सुविधाजनक बनाना है।

112. सामान्यतः, दोषसिद्धि के विरुद्ध अपीलें, जिसमें दोषी को जमानत दी गई है, कुछ देरी के साथ सूचीबद्ध होती हैं, विशेष रूप से खंडपीठों से संबंधित अपीलें, जहाँ पेपर बुक की तैयारी भी अनिवार्य है, इलाहाबाद उच्च न्यायालय नियमों के अधीन निहित प्रावधान को ध्यान में रखते हुए और जब ये अपीलें सूचीबद्ध होती हैं तो अपीलकर्ता/दोषी के अधिवक्ता सामान्यतः उपस्थित नहीं होते हैं और यह अपीलकर्ता को सुने जाने का अवसर प्रदान करने की खोज में है कि उच्च न्यायालय द्वारा जमानती या गैर-जमानती वारंट की प्रकृति की बलपूर्वक प्रक्रिया जारी की जाती है।

113. यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि *बनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹¹ में शीर्ष न्यायालय ने अपीलकर्ता के अधिवक्ता या अपीलकर्ता स्वयं की सुनवाई के बाद गुण-दोष के आधार पर आपराधिक अपीलों के निस्तारण की आवश्यकता पर बल दिया है और जब अपीलकर्ता का अधिवक्ता जानबूझकर या अनजाने में न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहा है, तो उसे सुने जाने का अवसर प्रदान करने के लिए अपीलकर्ता की उपस्थिति की आवश्यकता उभरती है। इस दृष्टिकोण को *के.एस. पांडुरंगा*¹³ और *सूर्य बक्स सिंह*¹² में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दोहराया गया है। इन मामलों में निर्धारित विधि के दृष्टिकोण से यह स्थापित हो गया था कि एक आपराधिक अपील, जो सुनवाई के लिए अंगीकृत की गई है, को अदम-पैरवी या गैर-अभियोजन के लिए निरस्त नहीं किया जाना चाहिए और केवल गुण-दोष के आधार पर निर्णित की जानी चाहिए और सुनवाई का अवसर या तो अपीलकर्ता-दोषसिद्ध या उसके अधिवक्ता को प्रदान किया जाना चाहिए।

114. अब, जो प्रश्न हमारे सामने है, वह यह है कि उस दोषसिद्ध-अपीलकर्ता के विरुद्ध क्या प्रक्रिया अपनाई जाए, जिसका न्यायालय द्वारा सुनवाई के लिए अपील लेने पर उसके अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जा रहा है और जिसे इस न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है। हम याद कर सकते हैं कि उपरोक्त मामलों में निर्धारित विधि के दृष्टिकोण से उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति में अपीलकर्ता को सुने जाने का अवसर प्रदान करने की आवश्यकता है।

115. हम इस तथ्य का संज्ञान ले सकते हैं कि उच्च न्यायालय में दोषी को सजा निलंबित करने के बाद जमानत पर छोड़ते समय सामान्यतः उस पर इस न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहने की कोई शर्त नहीं लगाई जाती है, जिला न्यायालयों के विपरीत जहाँ विचारण न्यायालय या अपीलीय न्यायालय के समक्ष व्यक्तिगत रूप से उपस्थित रहने की शर्त सामान्यतः अपीलकर्ता पर लगाई जाती है। ऐसी शर्त के अभाव में अपीलकर्ता/दोषी बाध्य नहीं है कि वह हर उस तिथि पर व्यक्तिगत रूप से इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहे, जब उसकी अपील सुनवाई के लिए ली जानी हो। इस परिदृश्य में इस न्यायालय की विचारित राय में उसके जमानत आदेश में ऐसी किसी शर्त के अभाव में, अपीलकर्ता को उसके अधिवक्ता द्वारा की गई चूक के लिए दंडित नहीं किया जा सकता है।

116. इस प्रकार, यदि यह न्यायालय दोषसिद्ध/अपीलकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति चाहता है, जिससे उसे सुने जाने का अवसर प्रदान किया जा सके, जैसा कि *बनी सिंह*¹¹, *सूर्य बक्स सिंह*¹² और *के. एस. पांडुरंगा*¹³

में शीर्ष न्यायालय द्वारा रेखांकित किया गया है, तो ऐसे दोषसिद्ध-अपीलकर्ता के लिए इस न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति के लिए प्रारंभ में जमानती वारंट जारी करने की आवश्यकता है या तो व्यक्तिगत रूप से अपना मामला बहस करने के लिए या अपनी पसंद का दूसरा अधिवक्ता नियोजित करने के लिए, लेकिन हमारी विचारित राय में शुरुआत में जमानती वारंट जारी किए बिना, उसके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी नहीं किया जा सकता है।

117. हम दोहरा सकते हैं कि किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता को केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही कम किया जा सकता है और अन्यथा नहीं। अतः, दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अनुपस्थिति में, जहाँ अपीलकर्ता को जमानत पर छोड़ा गया है, अपीलकर्ता की उपस्थिति के लिए सीधे गिरफ्तारी का वारंट जारी नहीं किया जा सकता है। निश्चित रूप से यदि ऐसा अपीलकर्ता, जमानती वारंट जारी करने के बाद भी जानबूझकर न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है, तो उस परिदृश्य में गैर-जमानती वारंट की प्रकृति की उपयुक्त प्रक्रिया या अभियुक्त की संपत्ति के विरुद्ध दं.प्र.सं. की धारा 82 और 83 के अधीन प्रक्रिया या संहिता 1973 की धारा 446 के अधीन उसके और उसके जमानतदारों के विरुद्ध प्रक्रिया जारी की जा सकती है।

इस मोड़ पर यह स्पष्ट किया जाता है कि संहिता की धारा 439 (2) के अधीन प्रदान की गई शक्ति के आधार पर न्यायालय अपीलकर्ता को दी गई जमानत को भी रद्द कर सकता है यदि स्थिति की अपेक्षा हो, लेकिन उसके अधिवक्ता की चूक पर सीधे उसके विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी नहीं किए जा सकते हैं।

118. इस प्रकार हम प्रश्न संख्या 4 का उत्तर इन शब्दों में देते हैं कि पूरा (उपरोक्त) 31 में प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में उपयुक्त मामले में ऐसे मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त के विरुद्ध जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट की प्रकृति की बलपूर्ण प्रक्रिया जारी की जा सकती है, लेकिन यह नहीं समझा जा सकता कि दोषमुक्ति के विरुद्ध सभी अपीलों में किसी व्यक्ति को सम्मन करते समय वारंट अनिवार्य रूप से जारी किए जाएंगे क्योंकि उपयुक्त मामलों में, न्यायालय के विवेकाधिकार में सम्मन भी जारी किए जा सकते हैं। हालांकि, दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में जहाँ अपीलकर्ता को पहले से ही जमानत पर छोड़ा गया है और उसका अधिवक्ता अपील की बहस के लिए उपस्थित नहीं हुआ है। सामान्यतः, उसके विरुद्ध सीधे गिरफ्तारी का वारंट जारी नहीं किया जा सकता है और ऐसे दोषसिद्ध-अपीलकर्ता के विरुद्ध पहली बार में जमानती वारंट जारी किए जाने चाहिए इस कारण से कि उसे पहले से ही न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है और उस पर सुनवाई के प्रत्येक दिन उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति की कोई शर्त नहीं लगाई गई है। इस प्रकार प्रश्न संख्या 4 का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

119. अब, हम प्रश्न संख्या 1, 2 और 3 पर निम्नलिखित रूप में विचार करेंगे:-

प्रश्न संख्या 4 का उत्तर देते समय, हमने पहले ही उत्तर दे दिया है कि दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में धारा 390 दं.प्र.सं. के अधीन अभियुक्त व्यक्ति को सम्मन करते समय प्रत्येक मामले के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपीलकर्ता के विरुद्ध जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट की प्रकृति की बलपूर्ण प्रक्रिया जारी की जा सकती है, लेकिन यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि दोषमुक्ति के विरुद्ध हर अपील में अभियुक्त व्यक्ति को जमानती या गैर-जमानती वारंट जारी करके अनिवार्य रूप से सम्मन किया जाना चाहिए और उपयुक्त मामले में सम्मन भी जारी किए जा सकते हैं और दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में जहाँ अपीलकर्ता को पहले से ही जमानत पर छोड़ा गया है और उसका अधिवक्ता अपील की बहस के लिए उपस्थित नहीं हो रहा है तो उसके विरुद्ध सीधे गिरफ्तारी का वारंट जारी नहीं किया जा सकता है और केवल उसके प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए पहली बार में जमानती वारंट जारी किया जाना चाहिए।

120. अब हम उस स्थिति से निपटेंगे, जहाँ दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में अपीलकर्ता के विरुद्ध या दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में अभियुक्त व्यक्ति के विरुद्ध गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, और यह कि क्या ऐसे अभियुक्त व्यक्ति या अपीलकर्ता जिसके विरुद्ध इस न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, को उच्च न्यायालय के आदेश में ऐसी कोई शर्त के बिना जिला न्यायालय या संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा जमानत पर छोड़ा जा सकता है।

121. **बालकृष्ण महादेव लाड**³⁷ में बंबई उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने निम्नलिखित रूप में माना है:-

"..... जब अवर न्यायालय द्वारा पूर्ण विचारण के बाद अभियुक्त दोषमुक्त किया जाता है, उच्च न्यायालय, संहिता की धारा 390 के अधीन शक्तियों के प्रयोग में निर्देश जारी करते समय, किसी दिए गए मामले में, "जमानती वारंट" जारी कर सकता है, जो अभियुक्त को उसके समक्ष या उसके अनुपालन के लिए अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करने का निर्देश देता है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा जारी ऐसे "जमानती वारंट" के अनुसरण में अभियुक्त को अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो अवर न्यायालय उस अभियुक्त को ऐसे नियमों और शर्तों पर जमानत पर छोड़ सकता है, जो अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए न्यायसंगत और उचित होनी चाहिए। वास्तव में, यदि अभियुक्त जमानत पर रिहाई के लिए नियमों और शर्तों को पूरा करने में असमर्थ है, तो अवर न्यायालय अभियुक्त को जेल भेजने का निर्देश देने में न्यायसंगत होगा। हालांकि, उसे जल्द ही उसके बाद उस तथ्य की सूचना उच्च न्यायालय को देनी चाहिए। संहिता की धारा 390 के अधीन अवर न्यायालय को दी गई शक्ति के बाद भी, यह निर्देश नहीं दे सकता कि अभियुक्त को जेल भेजा जाए भले ही वह जमानत के नियमों और शर्तों का पालन करने में सक्षम हो और इच्छुक हो। आगे, यदि उच्च न्यायालय ने "जमानती वारंट" जारी करने वाले अपने आदेश में पहले से ही नियमों और शर्तों को स्पष्ट कर दिया है, तो अवर न्यायालय ऐसी शर्तों को जोड़ या शिथिल नहीं कर सकता है, लेकिन उच्च न्यायालय के उन निर्देशों के अनुपालन को सुनिश्चित करने की अपेक्षा की जाती है।"

"10. इसी तरह, यदि उच्च न्यायालय "गैर-जमानती वारंट" जारी करता है जो कारण दर्ज करते हुए केवल अभियुक्त को जेल भेजने का संकेत देता है, तो उस स्थिति में भी, अवर न्यायालय, जिसके समक्ष अभियुक्त को प्रस्तुत किया जाता है या इस प्रकार जारी वारंट के जवाब में उपस्थित होता है, के पास ऐसे अभियुक्त को जेल भेजने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा।"

"11. हालांकि, सत्र न्यायालय अपने न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग कर सकता है, जब उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में अभियुक्त को जेल भेजने या अपील के निस्तारण तक उसे जमानत पर छोड़ने के लिए किसी भी तरह से संकेत नहीं किया है। दूसरे शब्दों में, यदि उच्च न्यायालय अपने आदेश में केवल संहिता की धारा 390 के अधीन कार्रवाई शुरू करने का निर्देश देता है और यदि अभियुक्त को अवर न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो अवर न्यायालय के लिए, मामले के सभी पहलुओं को ध्यान में रखने के बाद, या तो अभियुक्त को ऐसे नियमों और शर्तों पर जमानत पर छोड़ना या उसे जेल भेजना उपलब्ध होगा, जो वह उपयुक्त समझे, इस बात को ध्यान में रखते हुए कि वे लंबित अपील में आवश्यक होने पर अभियुक्त की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हैं। उस न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग स्थापित मापदंडों के आधार पर करना है और, अन्य बातों के साथ-साथ, इस प्रश्न को ध्यान में रखना है कि क्या अभियुक्त को जमानत पर छोड़ना उच्च न्यायालय में दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील के निस्तारण तक उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने में बाधा नहीं डालेगा।"

.....

"13. हमारा विचारित मत है कि संहिता की धारा 390 का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि सत्र न्यायाधीश के पास अभियुक्त के प्रस्तुत होने पर, उसे तुरंत जमानत पर छोड़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इसकी जगह, हम मानते हैं कि अवर न्यायालय, जिसके समक्ष अभियुक्त को उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसार जारी वारंट के अनुसरण में प्रस्तुत किया जाता है, उसे प्रत्येक मामले के आधार पर अपने न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए और विशेष रूप से उस संबंध में दोषमुक्ति के विरुद्ध लंबित अपील में उच्च न्यायालय के आदेश को ध्यान में रखना चाहिए। इसका पूर्व अनुमान यह होगा कि सत्र न्यायाधीश, उपयुक्त मामले में, अपील के निस्तारण तक अभियुक्त को जेल भेज सकता है। वास्तव में, उस मामले में, अभियुक्त के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष सत्र न्यायाधीश के उस निर्णय पर सवाल उठाना खुला होगा, जिस कार्यवाही में उच्च न्यायालय जमानत के अनुदान के लिए अभियुक्त के दावे पर विचार कर सकता है। अतः, अवर न्यायालय द्वारा जमानत प्रदान करना कोई अधिकार नहीं है।"

(महत्व प्रदत्त)

122. संहिता 1973 की धारा 437 और 439 के अधीन निहित जमानत के सामान्य प्रावधान मुकदमे के दौरान जमानत प्रदान करने के संबंध में हैं और सजा का निलंबन और परिणामी रूप से दोषी की जमानत पर रिहाई विचारण न्यायालय द्वारा उसकी दोषसिद्धि के बाद संहिता 1973 की धारा 389 के अधीन निहित है

और ऐसे दोषी द्वारा अपील योजित करने पर, अपीलकर्ता अभियुक्त की उपस्थिति आवश्यक है। दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में, यदि अपील में तथ्य पाने के बाद यह अंगीकृत की जाती है या, यदि आवश्यक हो, अनुमति दी जाती है और विचारण न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किए गए अभियुक्त व्यक्ति को अपीलीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित रहने के लिए संहिता 1973 की धारा 390 के अधीन सम्मन किया जाता है और उपयुक्त मामलों में दोषमुक्ति का निर्णय भी निलंबित किया जा सकता है।

123. यह स्पष्ट किया जाता है कि संहिता 1973 में जमानती या गैर-जमानती वारंट के रूप में कोई ऐसी नामपद्धति नहीं दी गई है। संहिता 1973 के अध्याय VI में निहित दं.प्र.सं. की धारा 70 और 71 प्रक्रिया जारी करने से संबंधित है और उपरोक्त उल्लिखित प्रावधान को ध्यान में रखते हुए यह केवल गिरफ्तारी के वारंट पर किया गया समर्थन होगा, जो इसे जमानती या गैर-जमानती वारंट के रूप में लेबल कर सकता है। संहिता 1973 की धारा 70 और 71, जो प्रासंगिक प्रतीत होती है, नीचे प्रस्तुत की जा रही है:-

"70. गिरफ्तारी के वारंट का प्रारूप और अवधि---(1) इस संहिता के अधीन न्यायालय द्वारा जारी गिरफ्तारी का हर वारंट लिखित में होगा, ऐसे न्यायालय के पीठासीन अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होगा और न्यायालय की मुहर लगी होगी।

(2) ऐसा हर वारंट तब तक प्रवत रहेगा जब तक कि इसे जारी करने वाला न्यायालय इसे रद्द न कर दे, या जब तक कि यह निष्पादित न हो जाए।"

"71. सुरक्षा लेने का निर्देश देने की शक्ति---(1) किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी करने वाला कोई न्यायालय अपने विवेकाधिकार में वारंट पर समर्थन द्वारा निर्देश दे सकता है कि, यदि ऐसा व्यक्ति एक निर्दिष्ट समय पर न्यायालय के समक्ष उसकी उपस्थिति के लिए और उसके बाद जब तक न्यायालय द्वारा अन्यथा निर्देश न दिया जाए, पर्याप्त जमानतदारों के साथ एक बंधपत्र का निष्पादन करता है, तो जिस अधिकारी को वारंट निर्देशित है वह ऐसी सुरक्षा ले सकता है और ऐसे व्यक्ति को हिरासत से मुक्त कर सकता है।

(2) पृष्ठांकन में बताया जाएगा---

(क) जमानतदारों की संख्या;

(ख) वह राशि जिसमें वे और वह व्यक्ति जिसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी किया गया है, क्रमशः बाध्य होने हैं;

(ग) वह समय जब उसे न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना है।

(3) जब भी इस धारा के अधीन सुरक्षा ली जाती है, जिस अधिकारी को वारंट निर्देशित है वह बंधपत्र को न्यायालय को भेजेगा।"

124. **रघुवंश देवानचंद भसीन बनाम महाराष्ट्र राज्य**² में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर संख्या 25, 26 में इस अंतर को नोट किया है, जो निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत हैं:-

"25. यह सत्य है कि न तो धारा 70 और न ही धारा 71 जो संहिता के अध्याय VI में उपस्थिति सुनिश्चित करने की प्रक्रियाओं की गणना करते हुए प्रकट होती है और न ही फॉर्म 2 "गैर-जमानती" जैसी अभिव्यक्ति का उपयोग करता है। धारा 70 केवल गिरफ्तारी के वारंट के रूप की बात करती है, और आज्ञा देती है कि यह तब तक प्रवृत्त रहेगा जब तक कि यह रद्द न हो जाए। इसी तरह, धारा 71 न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति की बात करती है कि संहिता की धारा 70 के अधीन जारी वारंट के निष्पादन के अनुसरण में उसकी गिरफ्तारी पर व्यक्ति को छोड़े जाने की स्थिति में ली जाने वाली सुरक्षा के बारे में निर्दिष्ट करे। संहिता की धारा 71 की उप-धारा (2) उन समर्थनों को निर्दिष्ट करती है, जो वारंट पर किए जा सकते हैं। फिर भी, हमें लगता है कि वारंट पर "गैर-जमानती" अभिव्यक्ति का समर्थन निष्पादनकारी प्राधिकरण के साथ-साथ उस व्यक्ति की सुविधा के लिए है जिसके विरुद्ध वारंट निष्पादित किया जाना है जिससे उन्हें जारी किए गए वारंट की प्रकृति के बारे में अवगत कराया जा सके।"

"26. हमारे विचार में, केवल इसलिए कि संहिता की धारा 476 के अधीन जारी और द्वितीय अनुसूची में निर्धारित फॉर्म 2, कहीं भी जमानती या गैर-जमानती वारंट की अभिव्यक्ति का उपयोग नहीं करता है, यह न्यायालयों को वारंट जारी करते समय उक्त शब्द या अभिव्यक्ति का उपयोग करने या इस प्रकार जारी वारंट पर उस प्रभाव के लिए समर्थन करने से रोकता नहीं है। कोई भी समर्थन/भिन्नता, जो उस व्यक्ति के लाभ के लिए ऐसे वारंट पर की जाती है, जिसके विरुद्ध वारंट जारी किया गया है या उन व्यक्तियों के लिए जिन्हें वारंट निष्पादित करने की आवश्यकता है, वारंट को विधि में बुरा नहीं बनाएगी। जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि न्यायालय में वारंट जारी करने की शक्ति निहित है और उस शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर न्यायसंगत रूप से किया जाना है। ऐसा होने के कारण, केवल इसलिए कि वारंट "गैर-जमानती" जैसी अभिव्यक्ति का उपयोग करता है और ऐसी शब्दावली संहिता की धारा 70 या धारा 71 में नहीं मिलती है, वह अपने आप में वारंट को विधि में बुरा नहीं बना सकती। तर्क पदार्थ से रहित है और तदनुसार अस्वीकार किया जाता है।"

125. हमारी राय है कि संहिता 1973 की धारा 390 के अधीन न्यायालय निर्देश दे सकता है कि अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाए और उसके समक्ष लाया जाए या उसके अनुपालन के लिए अवर न्यायालय (विचारण न्यायालय) के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, यदि अभियुक्त को न्यायालय द्वारा जारी ऐसे जमानती वारंट के संबंध में गिरफ्तार किया जाता है तो अवर न्यायालय के लिए उसे जमानत पर छोड़ना वैध होगा और यदि वह शर्तों का अनुपालन करने में असफल रहता है, तो उसे जेल में कैद किया जा सकता है और जब उच्च न्यायालय ने गैर-जमानती वारंट जारी किया है, जो संकेत देता है कि अभियुक्त को केवल जेल भेजा जाए, उस स्थिति में अवर न्यायालय के पास उसे हिरासत/जेल भेजने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं होगा।

126. यह आगे स्पष्ट किया जाता है कि विवेकाधिकार का प्रयोग केवल विचारण न्यायालय द्वारा तभी किया जा सकता है जब उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में या तो अभियुक्त को जेल भेजने या उसे जमानत पर भर्ती करने का संकेत नहीं किया है, अर्थात् जहाँ उच्च न्यायालय ने केवल संहिता 1973 की धारा 390 के अधीन कार्रवाई करने का निर्देश दिया है।

127. यह स्पष्ट है कि जहाँ उच्च न्यायालय ने सचेत रूप से अपीलकर्ता के कैद या गिरफ्तारी के लिए गैर-जमानती वारंट जारी किया है, ऐसे वारंट जारी करने का अभिप्राय अभियुक्त/अपीलकर्ता या दोषी को जेल भेजना है और उस स्थिति में मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश, जैसा भी हो, के पास ऐसे व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। यह उच्च न्यायालय के उस आदेश की शर्तें होंगी, जिसके अधीन गैर-जमानती वारंट जारी किए गए हैं, जो अभियुक्त या अपीलकर्ता/दोषसिद्ध के भाग्य को नियंत्रित करेंगी और न तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और न ही सत्र न्यायाधीश के पास ऐसे अपीलकर्ता या अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने का क्षेत्राधिकार होगा, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि गैर-जमानती वारंट दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में जारी किया गया है या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में।

128. हालांकि, यदि अपीलकर्ता या अभियुक्त को गिरफ्तार करके उच्च न्यायालय के निर्देशानुसार जेल भेज दिया जाता है, तो संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश द्वारा ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी की सूचना तुरंत उच्च न्यायालय को दी जानी चाहिए।

129. हम इस सुविचारित मत के भी हैं कि अपील के चरण का अवर न्यायालय के विवेकाधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता क्योंकि यह केवल उच्च न्यायालय के लिए होगा कि वह तथ्यात्मक परिदृश्य और साक्ष्य का आकलन करे, जिससे वह इस निर्णय पर पहुंचे कि किसी विशेष मामले में गैर-जमानती वारंट जारी किया जाए या नहीं और एक बार उच्च न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी कर दिया जाता है, तो अवर न्यायालय ऐसे अपीलकर्ता या अभियुक्त व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने के किसी भी क्षेत्राधिकार से वंचित हो जाएगा, जब तक कि उच्च न्यायालय द्वारा अन्यथा निर्देश न दिया जाए।

130. जहाँ तक जमानती वारंट जारी करने का संबंध है, विवेकाधिकार हमेशा अवर न्यायालय का होगा कि वह ऐसे अपीलकर्ता या अभियुक्त को जमानत पर छोड़े बशर्ते कि वह उच्च न्यायालय द्वारा अपने आदेश में संकेत की गई विशेष तिथि को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो। इस प्रकार प्रश्न संख्या 1, 2 और 3 का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

131. अब हम प्रश्न संख्या 5 पर निम्नलिखित रूप में विचार करेंगे:-

132. लखनऊ खंडपीठ द्वारा विचार के लिए विरचित प्रश्न संख्या 5 को मोटे तौर पर निम्नलिखित उप-शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है:-

"(i) क्या दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील की सुनवाई, दोषसिद्धि/अपीलकर्ता या प्रतिवादी/अभियुक्त की सहमति के बिना दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में या दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में, जैसा भी हो, न्याय-मित्र नियुक्त करके की जा सकती है, जब वे न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहे हैं?"

(ii) क्या ऐसा न्याय-मित्र तब भी नियुक्त किया जा सकता है, जब दोषसिद्धि या अभियुक्त की उपस्थिति उसकी सहमति के बिना और उसे कोई सूचना दिए बिना सुनिश्चित की जा सकती है? यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में?"

133. प्रश्न संख्या 5 का उत्तर देने के लिए, सबसे पहले हमें यह विचार करना होगा कि क्या दोषसिद्धि या दोषमुक्ति के विरुद्ध कोई अपील, न्याय-मित्र नियुक्त करके सुनी जा सकती है जब अपीलकर्ता या अभियुक्त व्यक्ति, जैसा भी हो, न्यायालय में उपस्थित नहीं हो रहा है। यह बिन्दु अब कोई *res integra* नहीं रह गया है।

134. **हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य**⁶ में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 39-ए पर विचार करते हुए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर-7 में निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया है:-

"7. हम अनुच्छेद 39-ए का भी संदर्भ दे सकते हैं, जो मौलिक संवैधानिक निर्देश है जो निम्नलिखित रूप में है:

"39-ए. समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता---राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक व्यवस्था का संचालन समान अवसर के आधार पर न्याय को बढ़ावा देता है, और विशेष रूप से, उपयुक्त विधान या योजनाओं या किसी अन्य तरीके से निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करेगा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि न्याय प्राप्त करने के अवसर आर्थिक या अन्य अक्षमताओं के कारण किसी भी नागरिक से वंचित न हों।"

135. (2012) 8 SCC 553, (**राजू उर्फ रामकांत बनाम मध्य प्रदेश राज्य**)¹ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फिर से निम्नलिखित शब्दों में अभियुक्त को निष्पक्ष विचारण प्रदान करने की आवश्यकता पर बल दिया। सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 39-ए को शामिल करने वाले संवैधानिक संशोधन और विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 की घोषणा को भी नोट किया और फिर प्रस्तर-11 में निम्नलिखित रूप में कहा:-

"11. इस संदर्भ में यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अधिनियम की धारा 12 और 13 विधिक सेवाएं प्रदान करने के लिए विचारण के चरण और अपीलीय चरण के बीच कोई अंतर नहीं करती हैं। दूसरे शब्दों में, एक पात्र व्यक्ति कार्यवाही के किसी भी चरण में विधिक सेवाओं का अधिकारी है, जिसका वह अभियोजन या बचाव कर रहा है। वास्तव में सर्वोच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति इस न्यायालय में पात्र व्यक्तियों को विधिक सहायता

प्रदान करती है। यह स्पष्ट करता है कि विधिक सेवाएं एक पात्र व्यक्ति को कार्यवाही के सभी चरणों में, विचारण के साथ-साथ अपीलीय स्तर में भी प्रदान की जानी चाहिए। यह भी ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि अनुच्छेद 39-ए के संवैधानिक आदेश के दृष्टिकोण से, विधिक सेवाएं या विधिक सहायता एक पात्र व्यक्ति को निःशुल्क प्रदान की जाती है।"

136. निष्पक्ष और न्यायसंगत प्रक्रिया के साथ निःशुल्क और निष्पक्ष विचारण प्रदान करने की आवश्यकता को **खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य**⁴³ में और **सुक दास बनाम अरुणाचल प्रदेश संघ राज्य क्षेत्र**⁴⁴ में भी शीर्ष न्यायालय द्वारा रेखांकित किया गया है। इन मामलों में विचारण को दूषित माना गया क्योंकि अभियुक्त व्यक्तियों को विधिक प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया था।

137. **जहीरा हबीबुल्लाह शेख और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य**⁸ में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने न केवल अभियुक्त को बल्कि अपराध के पीड़ित सहित सभी हितधारकों के लिए निष्पक्ष विचारण और प्रक्रिया के महत्व को रेखांकित किया है।

138. इस प्रकार, यह अच्छी तरह से स्वीकृत है कि निःशुल्क विधिक सहायता या सेवा का अधिकार निष्पक्ष और निःशुल्क विचारण व प्रक्रिया का एक आवश्यक घटक है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन निहित है। विचारण या अपील में अपनाई गई विचारण व प्रक्रिया को यह दर्शाना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा की जाए और दोषी व्यक्तियों को दंडित किया जाए।

139. **बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹ में, दो समन्वयक पीठों अर्थात् **श्याम देव पांडेय बनाम बिहार राज्य**⁴⁵ और **राम नरेश यादव बनाम बिहार राज्य**⁴⁶ के निर्णयों के बीच संघर्ष पाते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने प्रस्तर 13, 14, 15 और 16 में इसका समाधान किया है, जो नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं:-

"13. ऐसे में इस न्यायालय के दो निर्णयों के बीच संघर्ष का क्षेत्र क्या है? श्याम देव मामले में, इस न्यायालय ने निर्णय दिया कि एक बार अपीलीय न्यायालय ने गुण-दोष के आधार पर सुनी जाने के लिए अपील को अंगीकृत कर लिया है, तो वह अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता की गैर-हाजिरी में गैर-अभियोजन के लिए अपील को निरस्त नहीं कर सकता है, लेकिन मामले के अभिलेख की जांच करने के बाद अपील को गुण-दोष के आधार पर निपटाना चाहिए। इसने आगे माना कि यदि अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता अनुपस्थित है, तो अपीलीय न्यायालय अपील को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है लेकिन यह अभिलेख का अवलोकन करने के बाद इसे गुण-दोष के आधार पर निस्तारित कर सकता है। राम नरेश यादव में, न्यायालय ने संहिता के संबंधित प्रावधानों का विश्लेषण नहीं किया और न ही श्याम देव मामले में लिए गए दृष्टिकोण को नोटिस किया लेकिन माना कि यदि अपीलकर्ता का अधिवक्ता अनुपस्थित है, तो उचित मार्ग गैर-अभियोजन के लिए अपील को निरस्त करना होगा लेकिन गुण-दोष पर नहीं; इसे केवल अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता की सुनवाई के बाद या अभियुक्त

की ओर से मामले की बहस करने के लिए राज्य के व्यय पर दूसरे अधिवक्ता की नियुक्ति के बाद ही गुण-दोष के आधार पर निस्तारित किया जा सकता है।"

"14. हमने इस न्यायालय के उक्त दो निर्णयों में व्यक्त दृष्टिकोण पर सावधानी से विचार किया है और, हम यह कह सकते हैं कि श्याम देव मामले में लिया गया दृष्टिकोण एक मामूली स्पष्टीकरण को छोड़कर सही प्रतीत होता है, जिसका उल्लेख करना हम आवश्यक समझते हैं। धारा 385 की सरल भाषा यह स्पष्ट करती है कि यदि अपीलीय न्यायालय अपील को संक्षिप्त रूप में निरस्त करने के लिए उपयुक्त नहीं समझता है, तो वह अभिलेख 'अवश्य' मंगाना चाहिए और धारा 386 अनिवार्य करती है कि अभिलेख प्राप्त होने के बाद, अपीलीय न्यायालय अभियुक्त या उसके अधिवक्ता की सुनवाई के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है। इसलिए, धारा 385-386 की सरल भाषा गैर-अभियोजन के लिए अपील की निरस्त की परिकल्पना नहीं करती है। इसके विपरीत, संहिता, अभिलेख के अवलोकन और जांच के बाद अपील के गुण-दोष के आधार पर निस्तारण की परिकल्पना करती है। विधि स्पष्ट रूप से अपेक्षा करती है कि अपीलीय न्यायालय अपील को गुण-दोष के आधार पर निस्तारित करे, केवल निर्णय में विचारण न्यायालय के तर्क का अवलोकन करके नहीं, बल्कि अभिलेख पर साक्ष्य के साथ तर्क को क्रॉस-चेक करके यह संतुष्ट होने के दृष्टिकोण से कि विचारण न्यायालय द्वारा दर्ज तर्क और निष्कर्ष अभिलेख पर सामग्री के अनुकूल हैं। इसलिए, विधि व्यतिक्रम या गैर-अभियोजन के लिए अपील के निरस्त होने की परिकल्पना नहीं करती है बल्कि केवल अभिलेख के अवलोकन के बाद गुण-दोष के आधार पर निस्तारण की परिकल्पना करती है। इसलिए, सम्मान के साथ, हमें राम नरेश यादव में दिए इस सुझाव से सहमत होने में कठिनाई है कि यदि अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, तो उचित मार्ग गैर-अभियोजन के लिए अपील को निरस्त करना होगा।"

"15. दूसरे, विधि अपेक्षा करती है कि अपीलीय न्यायालय अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को, यदि वह उपस्थित है, और लोक अभियोजक को, यदि वह उपस्थित है, अपील के गुण-दोष के आधार पर निस्तारण से पहले सुनवाई दे। धारा 385 यह प्रावधानित करती है कि यदि अपील को संक्षिप्त रूप से निरस्त नहीं किया जाता है, तो अपीलीय न्यायालय अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को समय और स्थान की सूचना देगा, जब अपील की सुनवाई होगी। धारा 386 फिर प्रावधान करती है कि अपीलीय न्यायालय अभिलेख का अवलोकन करने के बाद, अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को सुनेगा, यदि वह उपस्थित होता है। यह देखा जाएगा कि धारा 385 अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को अपील की सुनवाई के समय और स्थान की सूचना दिए जाने का प्रावधान करती है और दोनों को नहीं संभवतः क्योंकि अधिवक्ता को सूचना भी पर्याप्त मानी गई थी क्योंकि वह अपीलकर्ता का प्रतिनिधित्व कर रहा था। इसी प्रकार धारा 386 अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को, यदि वह उपस्थित है, सुनवाई दिए जाने का प्रावधान करती है, और दोनों को सुने जाने की आवश्यकता नहीं है। अपीलकर्ता और उसके अधिवक्ता का दायित्व है कि जब अपील सुनवाई के लिए पोस्ट की गई हो तो वे नियत दिन, समय और स्थान पर उपस्थित रहें। धारा 385-386 के सरल पाठ पर यह संहिता की एक आवश्यकता है। विधि यह आज्ञा नहीं देती कि यदि अपीलकर्ता और उसका अधिवक्ता दोनों अनुपस्थित हैं तो न्यायालय

मामले को स्थगित करेगा। यदि न्यायालय विवेक या उदारता के रूप में ऐसा करता है, तो यह एक अलग बात है, लेकिन यह मामले को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है। यह अभिलेख और विचारण न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है। हालांकि, हम यह संकोच के साथ कह रहे हैं कि यदि अभियुक्त जेल में है और स्वयं न्यायालय में नहीं आ सकता है, तो यदि उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, तो अभियुक्त/अपीलकर्ता की उपस्थिति को सुविधाजनक बनाने के लिए मामले को स्थगित करना और दूसरी तिथि नियत करना उचित होगा। यदि अधिवक्ता अनुपस्थित है, और न्यायालय राज्य के व्यय पर अपनी सहायता के लिए अधिवक्ता नियुक्त करना उपयुक्त समझता है, तो विधि में ऐसा करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं है। इसलिए, हमारी राय है और हम सम्मान के साथ कहते हैं, कि खंडपीठ जिसने राम नरेश यादव मामले का निर्णय किया था, उसने संहिता की धारा 385-386 के प्रावधानों को सही तरीके से लागू नहीं किया था, जब उसने यह कहा था कि यदि अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता अनुपस्थित रहता है तो अपीलीय न्यायालय पर मामले को दूसरी तिथि के लिए स्थगित करने का दायित्व था।"

"16. ऐसा दृष्टिकोण गतिरोध की स्थिति ला सकता है। अपीलकर्ता और उसका अधिवक्ता दंडाभाव में अनुपस्थित रह सकते हैं, एक बार नहीं बल्कि बार-बार तब तक जब तक कि न्यायालय अपीलकर्ता की उपस्थिति के लिए वारंट जारी नहीं करता है। गैर-हाजिरी के लिए बार काउंसिल में अधिवक्ता के विरुद्ध शिकायत, अपील की प्रगति में सहायक नहीं हो सकती है। यदि राज्य के व्यय पर दूसरा अधिवक्ता नियुक्त किया जाता है, तो उसे भी निर्देशों के लिए अपीलकर्ता की उपस्थिति की आवश्यकता होगी और यह न्यायालय को उसी स्थिति में ले आएगा। इसलिए, ऐसी प्रक्रिया बोज़िल साबित हो सकती है और अनुशासनहीनता को बढ़ावा दे सकती है। यहां तक कि अगर अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाता है, तो उच्चतर न्यायालय स्थिति का समाधान कर सकता है, यदि न्याय में विफलता हुई है। यह समान रूप से लागू होगा, यदि अभियुक्त प्रतिवादी है स्पष्ट कारण के लिए कि यदि प्रतिवादी या उसके अधिवक्ता को सुने बिना अपील का निस्तारण नहीं किया जा सकता है, तो अपील की प्रगति रुक जाएगी।"

(हमारे द्वारा महत्व प्रदत्त)

140. धर्म पाल और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य⁴⁷ में, उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता के गैर-प्रतिनिधित्व के बिन्दु पर विचार करते हुए, क्योंकि उसके अधिवक्ता ने सूचित किया कि अपीलकर्ता उसके द्वारा लिखे गए विभिन्न पत्रों का जवाब नहीं दे रहा है और उच्च न्यायालय ने लोक अभियोजक को सुनने के बाद अपील को गुण-दोष के आधार पर निर्णित किया।

सर्वोच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 385 और 386 के प्रावधानों को नोट करने के बाद, निम्नलिखित रूप में कहा:-

"दं.प्र.सं. की धारा 385 और 386 के अधीन प्रावधानों की जांच करने के बाद, जैसा कि ऊपर नोट किया गया है, और बनी सिंह में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित सिद्धांतों को लागू करते हुए हम अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा रखे गए तर्क से सहमत नहीं हैं कि उच्च न्यायालय को अपीलकर्ताओं की अनुपस्थिति में

अपील को गुण-दोष के आधार पर निर्णित नहीं करना चाहिए था, क्योंकि उच्च न्यायालय के पास धारा 385 या 386 के अधीन ऐसा करने की कोई शक्ति या क्षेत्राधिकार नहीं था।"

"11.....यहां तक कि अगर हम मान लें कि अपीलकर्ताओं को अपील की सूचना नहीं दी गई थी, तो भी, यह स्वीकृत स्थिति थी कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता अपील का अभियोजन करने के लिए उनके लिए उपस्थित हुए थे और इसलिए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की उपस्थिति के बाद, यह माना जाना चाहिए कि अपील की सूचना विधिवत दी गई थी। दोहराव के जोखिम पर, हम नोट कर सकते हैं कि अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ताओं को बार-बार अनुस्मारक देने के बाद भी, अपीलकर्ता जवाब नहीं दे रहे थे और इसलिए, अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष मामले की बहस करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की।"

"13. आपराधिक अपील के निस्तारण की प्रक्रिया से निपटते समय, बनी सिंह मामले में इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से निर्धारित किया है कि मामले के गुण-दोष में जाए बिना अदम-पैरवी या गैर-अभियोजन के लिए अपील की निरस्त स्पष्ट रूप से अवैध है और अपीलीय न्यायालय को अभिलेख के अवलोकन और जांच के बाद और अपील के गुण-दोष के आधार पर निस्तारण से पहले पक्षकारों को, यदि उपस्थित हैं, सुनवाई देने के बाद अपील को गुण-दोष के आधार पर निस्तारित करना चाहिए। इस न्यायालय ने, उस निर्णय में, आगे माना कि अपीलीय न्यायालय को अभिलेख और विचारण न्यायालय के निर्णय के अवलोकन के बाद अपील का निस्तारण करना चाहिए भले ही अपील की सुनवाई के समय अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता उपस्थित न हो। एकमात्र अपवाद, जैसा कि हम इस न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से पाते हैं, यह है कि यदि अपीलकर्ता जेल में हैं और उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, तो न्यायालय को अपीलकर्ता की उपस्थिति को सुविधाजनक बनाने के लिए मामले को स्थगित करना चाहिए।"

"14. इस नियम का एक और अपवाद है, अर्थात्, उपयुक्त मामले में, न्यायालय, अपनी सहायता के लिए राज्य के व्यय पर अधिवक्ता नियुक्त कर सकता है। इसलिए, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय सहायक शासकीय अधिवक्ता की सहायता लेने और ऐसी सहायता लेने और अभिलेख पर पूरे साक्ष्य पर विचार करने के बाद, उच्च न्यायालय ने हमारे समक्ष अपील के अधीन निर्णय पारित किया कि अपीलकर्ता धारा 302/34 भा.द.सं. के अधीन नहीं बल्कि धारा 304 भाग II भा.द.सं. के अधीन अपराध के दोषी थे और उन्हें 7 वर्ष के सश्रम कारावास की सजा भुगतने का निर्देश दिया। ऐसा करने में, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निष्कर्षों की पुष्टि की लेकिन अपीलकर्ताओं द्वारा किए गए अपराध और उन्हें दी जाने वाली संबंधित सजा के बिंदु पर मतभेद किया।"

141. (के. मुरुगानंदम और अन्य बनाम राज्य द्वारा डिप्टी सुपरिंटेंडेंट ऑफ पुलिस और अन्य)⁵ में, यह बल देते हुए कि आपराधिक अपील को गैर-अभियोजन के लिए निरस्त नहीं किया जाना चाहिए, प्रस्तर-6 में निम्नलिखित रूप में निर्धारित किया गया था:

"6. यह सुस्थापित है कि यदि अभियुक्त उसके द्वारा नियुक्त अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित नहीं होता है, तो न्यायालय केवल न्याय-मित्र नियुक्त करने के बाद ही मामले की सुनवाई के साथ आगे बढ़ने के लिए बाध्य है, लेकिन केवल अभियुक्त के अधिवक्ता की गैर-प्रतिनिधित्व या अदम-पैरवी के कारण अपील को निरस्त नहीं कर सकता है (देखें कबीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1981 Supp SCC 76 और मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य, (2011)4 SCC 729."

142. कबीरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य³² में, जहाँ अपीलकर्ता की उपस्थिति की चूक में उच्च न्यायालय द्वारा अपील को निरस्त कर दिया गया था, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सावधान किया गया है:-

".....इसलिए, हमारे विचार से अपीलकर्ता द्वारा योजित अपील का उचित निस्तारण नहीं हुआ है। अपील को विद्वान न्यायमूर्ति द्वारा उपस्थिति की चूक के लिए निरस्त नहीं किया जा सकता था। यदि अपीलकर्ता उपस्थित नहीं था, तो विद्वान न्यायमूर्ति को किसी अधिवक्ता को न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त करना चाहिए था और फिर अपील को गुण-दोष के आधार पर निस्तारित करने के लिए आगे बढ़ना चाहिए था। अपील को निरस्त करते हुए विद्वान न्यायमूर्ति द्वारा 7 अगस्त, 1979 को पारित आदेश, साथ ही विद्वान न्यायमूर्ति द्वारा 7 अगस्त, 1979 की तिथि वाला तर्कयुक्त निर्णय तदनुसार अपास्त किया जाना चाहिए।"

143. स्थापित दृष्टिकोण यह प्रतीत होता है कि विधि अपेक्षा करता है कि अपीलीय न्यायालय अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को, यदि वह उपस्थित है, और साथ ही अपील के गुण-दोष के आधार पर निस्तारण से पहले लोक अभियोजक को सुनवाई का अवसर दे, क्योंकि विधि यह मानता है कि यदि संहिता 1973 की धारा 384 के अधीन अपील को संक्षिप्त रूप से निरस्त नहीं किया गया है तो अपीलीय न्यायालय समय और स्थान की सूचना देगा, जिस पर अपील सुनी जाएगी, (संहिता 1973 की धारा 385 के अधीन) अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को अधिसूचित करने के लिए और यह भी कि विधि इसकी अनुमति नहीं देती कि अपीलकर्ता (जो जमानत पर हो सकता है) या उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति में अपील को स्थगित किया जाए और अभिलेख और विचारण न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने के बाद इसका निस्तारण किया जा सकता है। हालांकि, एक अपीलकर्ता, जो जेल में है, को मामले की बहस स्वयं करने या कोई अन्य अधिवक्ता लगाने का अवसर दिया जाना होगा और उपयुक्त मामलों में राज्य के व्यय पर, अधिवक्ता की सेवा (न्याय-मित्र) भी ऐसे दोषसिद्ध या अभियुक्त को प्रदान की जा सकती है।

144. के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य³³ में, अपीलकर्ता के अधिवक्ता की अनुपस्थिति में क्या अपील को बिना कोई न्याय-मित्र नियुक्त किए गुण-दोष के आधार पर निर्णित किया जा सकता है के बिन्दु पर विचार

करते हुए, और **मोहम्मद सुकुर अली बनाम असम राज्य**³³, **बनी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹¹, **राम नरेश यादव बनाम बिहार राज्य**⁴⁶ और **बापू लिम्बाजी कांबले बनाम महाराष्ट्र राज्य**³⁶ में निर्धारित विधि पर विचार करने के बाद प्रस्तर-19 (19.1 से 19.6), 20 और 32 में निम्नलिखित रूप में मत व्यक्त किया:-

"19. बनी सिंह [(1996) 4 SCC 720:1996 SCC (Cri) 848: AIR 1996 SC 2439] के उपरोक्त निर्णय से, जो स्थापित सिद्धांत हैं, वे हैं:

19.1. यह कि उच्च न्यायालय गुण-दोष का परीक्षण किए बिना गैर-अभियोजन में अपील को निरस्त नहीं कर सकता है;

19.2. यह कि यदि अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता/प्लीडर दोनों अनुपस्थित हैं, तो न्यायालय मामले को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है;

19.3. यह कि न्यायालय, विवेक या उदारता के रूप में, मामले को स्थगित कर सकता है लेकिन वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है;

19.4. यह कि यह अभिलेख और विचारण न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है;

19.5. यह कि यदि अभियुक्त जेल में है और स्वयं न्यायालय में नहीं आ सकता है, तो यदि उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, तो अपीलकर्ता-अभियुक्त की उपस्थिति को सुविधाजनक बनाने के लिए मामले को स्थगित करना और दूसरी तिथि नियत करना उचित होगा, और यदि अधिवक्ता अनुपस्थित है और न्यायालय अपनी सहायता के लिए राज्य के व्यय पर अधिवक्ता नियुक्त करना उपयुक्त समझता है, तो विधि में न्यायालय को ऐसा करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं होगा; और

19.6. यह कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाता है, तो उच्चतर न्यायालय स्थिति का समाधान कर सकता है।"

"20. बापू लिम्बाजी कांबले और मान सिंह में, इस न्यायालय ने एक सिद्धांत के रूप में यह नहीं निर्धारित किया है कि अपीलकर्ता के लिए अधिवक्ता की अनुपस्थिति में उच्च न्यायालय के लिए आपराधिक अपील में गुण-दोष की ओर ध्यान देना बिल्कुल अनुमन्य नहीं है।"

"32. उपरोक्त विधिक घोषणा के दृष्टिकोण से, यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मोहम्मद सुकुर अली में सिद्धांत इस प्रभाव के लिए कि न्यायालय अभियुक्त के लिए अधिवक्ता की अनुपस्थिति में आपराधिक अपील का निर्णय नहीं कर सकता है और वह भी यदि अधिवक्ता जानबूझकर उपस्थित नहीं होता है या उपस्थित होने में लापरवाही दिखाता है, बनी सिंह में वृहद पीठ द्वारा निर्धारित सिद्धांत के विपरीत होने के कारण, *per incuriam* है। हम यह संकोच से कह सकते हैं कि उक्त पहलू को छोड़कर, हम उक्त निर्णय पर कुछ भी कहने का इरादा नहीं रखते हैं, जहाँ तक न्याय-मित्र की नियुक्ति या उसमें प्राप्त तथ्यात्मक मैट्रिक्स के संबंध में दिया गया निर्णय या बार एसोसिएशन या अधिवक्ताओं की भूमिका का संबंध है। इस प्रकार,

अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता का तर्क कि उच्च न्यायालय को अधिवक्ता की उपस्थिति के बिना अपील को उसके गुण-दोष पर निर्णित नहीं करना चाहिए था, स्वीकार करने योग्य नहीं है। इसके अतिरिक्त, यह ध्यान देने योग्य है कि खुले न्यायालय में निर्णय सुनाए जाने के बाद, अधिवक्ता उपस्थित हुआ और उसे अपनी प्रस्तुतियां रखने की अनुमति दी गई और उनसे निपटा गया।"

145. **सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य**¹² में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय एक ऐसी स्थिति से निपट रहा था, जहाँ दोषसिद्ध और उसका अधिवक्ता अनुपस्थित था और अपीलकर्ता की अपील को उच्च न्यायालय द्वारा गुण-दोष के आधार पर निरस्त कर दिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सभी उदाहरणों और विधि का एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तर-3, 6, 7, 12, 13, 14, 15, 16 और 24 में लिया था, जो नीचे प्रस्तुत हैं:-

"3. उन मामलों में अपीलों के निरस्तीकरण में विभेद करना आवश्यक है, जहाँ न्यायालय द्वारा गैर-जमानती वारंट जारी करने सहित बलपूर्ण साधनों द्वारा अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाए गए हैं या आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 ("दं.प्र.सं.", संक्षेप में) के अध्याय VI के भाग सी का सहारा लेकर अपीलकर्ता को घोषित अपराधी घोषित करने की कार्यवाही शुरू करने से एक ओर, और वे जहाँ अपीलकर्ता आकस्मिक रूप से और अनजाने में अनुपस्थित हो सकता है जब उसकी अपील सुनवाई के लिए ली जाती है। जिस समस्या से हम परेशान हैं, वह दोषसिद्ध का स्वयं प्रारंभ की गई अपीलीय कार्यवाही से जानबूझकर हटना है, जब वह जमानत पर स्वयं को छोड़े जाने या आत्मसमर्पण से छूट प्राप्त करने में सफल हो गया है।"

"6. धारा 386 दं.प्र.सं. हमारे वर्तमान उद्देश्यों के लिए महत्वपूर्ण है। यह अपीलीय न्यायालय से अपेक्षा करती है कि वह अभिलेख का अवलोकन करे, और अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता को सुने, यदि वह उपस्थित होता है; तत्पश्चात् यदि वह पाता है कि हस्तक्षेप के लिए अपर्याप्त आधार है तो अपील को निरस्त कर सकता है। दोषमुक्ति के आदेश से अपील (न्यायालयीय भाषा में राज्य अपील) के मामले में यह आदेश को अपास्त कर सकता है और निर्देश दे सकता है कि आगे जांच की जाए या अभियुक्त का पुनः विचारण किया जाए या विचारण के लिए सुपुर्द किया जाए। दोषमुक्ति के आदेश से अपील में भी अपीलीय न्यायालय उसे दोषी पाने और विधि के अनुसार उस पर सजा पारित करने के लिए सक्षम है। इस धारा का परंतुक निर्धारित करता है कि सजा तब तक नहीं बढ़ाई जाएगी, जब तक कि अभियुक्त को ऐसे प्रस्ताव के विरुद्ध कारण देने का अवसर न मिला हो, इस प्रकार यह अनिवार्य करता है कि यदि दोषमुक्ति के आदेश को अपास्त व निरस्त करना है तो अभियुक्त उपस्थित होना चाहिए और सुना जाना चाहिए। इस प्रकार यह महत्वपूर्ण है, और इसलिए हम दोहराते हैं, कि विधायिका ने अपीलीय न्यायालय पर केवल मृत्यु संदर्भों के मामले में अपील को उसके गुण-दोष पर निर्णित करने का दायित्व डाला है, भले ही दोषी द्वारा अपील योजित की गई हो या न हो।"

"7. हमारे विधिक मूल्यांकन में अंतिम, लेकिन किसी भी तरह से कम से नहीं, धारा 482 दं.प्र.सं. एकांत वैभव में खड़ी है। यह उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति को संरक्षित करती है। यह घोषित करती है कि

दं.प्र.सं. में कुछ भी उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने के लिए नहीं माना जाएगा कि वह ऐसे आदेश दे सके जो आवश्यक हों, पहले, दं.प्र.सं. के अधीन किसी आदेश को "प्रभावी बनाने के लिए", ऐसे शब्द जो दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (इसके बाद "सी.पी.सी." के रूप में संदर्भित) में नहीं मिलते हैं। अतः, उच्च न्यायालय अपने आपराधिक क्षेत्राधिकार में अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, अपने आदेशों के अनुपालन के लिए सभी आवश्यक कदम उठा सकता है। लाभकारी रूप में धारा 482 दं.प्र.सं. आपराधिक न्यायालय को इसके आदेशों की आज्ञाकारिता सुनिश्चित करने के संबंध में, दीवानी न्यायालय की तुलना में कहीं अधिक प्रभावी और सर्वव्यापी बनाती है। दूसरे, धारा 482 स्पष्ट करती है कि दं.प्र.सं. कार्यवाही के आरंभ से उनकी परिणति तक, अपनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्च न्यायालय के लिए उपलब्ध कार्रवाइयों को सीमित नहीं करती है। न्यायिक प्रक्रिया में प्रतिवादी को इसके समक्ष उपस्थित होने के लिए बाध्य करना शामिल है। जब न्यायालय एक जिद्दी अपीलकर्ता/दोषसिद्ध का सामना करता है, जो अपनी अपील का अभियोजन करने में नगण्य रुचि दिखाता है, दं.प्र.सं. के अध्याय XXIX में अपीलों से संबंधित कोई भी धारा इसे अपीलों को निरस्त करने से रोकती या हतोत्साहित नहीं करती है। हमें लगता है कि ऐसे आदेश पारित करना अंततः सभी के लिए यह स्पष्ट कर देगा कि अपील का अभियोजन करने में जानबूझकर और बार-बार विफलता अनिवार्य रूप से न केवल कारावास की ओर ले जाएगी बल्कि अधिक महत्वपूर्ण रूप से अपील की खारिजी के परिणामस्वरूप दोषसिद्धि और सजा की पुष्टि की ओर ले जाएगी। तीसरे, दं.प्र.सं. का कोई भी प्रावधान संभवतः न्याय के उद्देश्यों को अन्यथा सुरक्षित करने की उच्च न्यायालय की शक्ति को सीमित नहीं कर सकता है। जबकि "न्याय" की अवधारणा को परिभाषित करना संभव नहीं है, यह कहना पर्याप्त है कि इसमें न केवल दोषी के अधिकार शामिल हैं, बल्कि अपराध के पीड़ितों के साथ-साथ समाज के विधि का पालन करने वाले वर्ग के भी, जो न्यायालयों की ओर शांति के संरक्षण और विधि का उल्लंघन करने वालों को दंडित करके अपराध में कमी या नियंत्रण के लिए महत्वपूर्ण उपकरणों के रूप में देखते हैं। यदि दोषी अपनी दोषसिद्धि के परिणाम को दरकिनार कर सकते हैं, तो समाज में शांति, स्थिरता और सद्भाव एक मृगतृष्णा में कमी हो जाएगी। धारा 482 एक ओर न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने और दूसरी ओर न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के बीच का अंतर प्रकाशित करती है। हमें लगता है कि आपराधिक न्यायालयों द्वारा अधिरोपित दंडों को रद्द करने के लिए केवल अपीलों को दाखिल करने की व्यापक कुप्रथा से लड़ने में धारा 482 दं.प्र.सं. को उचित महत्व नहीं दिया गया है।"

"12. वास्तव में, बनी सिंह मामले में न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता, जानबूझकर फरार नहीं हुआ था। यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने अपने समक्ष अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक कदम नहीं उठाए थे। इसके विपरीत इसने स्पष्ट रूप से केवल अपील को निरस्त करने का कम कठिन मार्ग अपनाया था। विशेष रूप से, न्यायालय ने पाया था कि अनुशासन लागू करने के लिए अपील को गैर-अभियोजन के लिए निरस्त किया जा सकता है। यह प्रकट करने के लिए कोई सामग्री नहीं थी कि अपीलकर्ता ने अपनी अपील को त्याग दिया था या इसका अभियोजन करने का कोई इरादा नहीं था। बनी सिंह में न्यायालय का ध्यान 2-11-1992 को चार साल पहले निर्णीत किशन सिंह में समन्वयकारी पीठ के विचारों की ओर आकर्षित

नहीं किया गया था। दोनों मतों को सावधानी से पढ़ने के बाद हमें यह स्पष्ट करना महत्वपूर्ण लगता है कि बनी सिंह उस न्यायालय के लिए उपलब्ध विकल्पों पर विचार या प्रतिबिंब नहीं करता है, जो एक हठी अपीलकर्ता का सामना कर रहा है, जो अपने पक्ष में दिए गए जमानत आदेशों के स्पष्ट उल्लंघन और दुरुपयोग में अपनी अपील का अभियोजन नहीं कर रहा है। किशन सिंह अपील की प्रारंभिक सुनवाई में अपीलीय न्यायालय के लिए खुले विकल्पों से ठीक निपटता है।"

"13. इस विधिक पहलू पर कोई भी चर्चा धर्म पाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य की विवेचना और आत्मसात के बिना अधूरी होगी। अभियुक्त की ओर से यह तर्क दिया गया था कि न्याय की हानि हुई थी क्योंकि अपीलकर्ता को उच्च न्यायालय द्वारा अपील की सूचना नहीं दी गई थी, जिसने फिर भी अपील को एकपक्षीय रूप से निर्णित किया था। बनी सिंह का संदर्भ दिया गया था, साथ ही सामान्य रूप से दं.प्र.सं. के अध्याय XXIX और विशेष रूप से धारा 385 और 386 का; स्पष्ट रूप से धारा 482 दं.प्र.सं. का उल्लेख तक नहीं किया गया था। धर्म पाल के विद्वान अधिवक्ता ने उच्च न्यायालय के समक्ष मामले की बहस करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की थी। वर्तमान मामले की तरह, इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय का अवलोकन किया था और इसे अच्छी तरह से गुणवत्तापूर्ण और अभिलेख पर सामग्री के सावधानीपूर्वक विचार पर विधिवत आधारित पाया था। यह देखा गया था कि:

"15.... स्थिति, निश्चित रूप से, अलग होती यदि उच्च न्यायालय ने गुण-दोष में गए बिना केवल अपील को निरस्त कर दिया होता। ... वह स्थिति होने के कारण, यह नहीं कहा जा सकता कि उच्च न्यायालय ने अपील को एकपक्षीय रूप से निस्तारित करते समय आपराधिक न्याय के बुनियादी सिद्धांतों की उपेक्षा की थी।"

"14. धर्म पाल और उस मामले के लिए बनी सिंह या श्याम देव पांडेय न तो धारा 482 दं.प्र.सं. के आह्वान को प्रतिबंधित करते हैं और न ही यह मत व्यक्त करते हैं कि धारा 482 के अधीन अपील का निस्तारण, अच्छे कारणों के लिए जो स्पष्ट रूप से स्पष्ट किए गए हों, अनुचित है। यह अब तक यह भी विचार नहीं किया गया है कि धारा 482 दं.प्र.सं. को अपीलकर्ता/दोषसिद्ध के जानबूझकर फरार होने की परिस्थितियों में लागू किया जाना चाहिए, जो उन नियमों और शर्तों के अवमानना और जानबूझकर अवज्ञा में हैं, जिन पर वह जमानत पर छोड़ा गया था या आत्मसमर्पण से छूट दी गई थी।"

"15. चर्चा परसुराम पटेल बनाम उड़ीसा राज्य और मदन लाल कपूर बनाम राजीव थापर में आदेशों को नोटिस के बिना पूरी नहीं होगी। इन मामलों में से किसी में भी अपीलीय न्यायालय ने अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए इसके लिए उपलब्ध कदम नहीं उठाए थे। इसके बजाय, ऐसा प्रतीत होता है कि संबंधित उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कम कठिन दृष्टिकोण अपनाया था कि अपीलों को केवल इसलिए निरस्त कर दिया जाए क्योंकि जब मामला सुनवाई के लिए पुकार गया तो न तो अपीलकर्ता और न ही उसका अधिवक्ता उपस्थित था। न्यायालय ने उस न्यायिक कुप्रथा पर विचार नहीं किया था, जो अब स्थानिक हो गई है अर्थात्

आपराधिक न्यायालयों द्वारा पारित सजाओं को निष्फल और दरकिनार करने के स्पष्ट इरादे से दोषियों द्वारा अपीलों का दाखिल करना।"

"16. हम इस वास्तविकता से आंखें नहीं मूंद सकते कि बीस प्रतिशत से कम अभियोजन सफल होते हैं; बाकी मुख्यतः अक्षम, घटिया या घटिया जांच और अभियोजन के कारण निष्फल होते हैं। उन मामलों में भी जहाँ अभियोजन अभियुक्त के अपराध को सिद्ध करने में सफल होता है, दोषियों द्वारा सजा को नपुंसक बना दिया जाता है न कि अपीलीय न्यायालय द्वारा उनकी दोषसिद्धि को निरस्त और अपास्त करने में सफल होने के कारण, बल्कि अपीलीय न्यायालय से कारावास से राहत प्राप्त करने के बाद भूमिगत हो जाने और समाज से गायब हो जाने के कारण। हम आश्वस्त हैं कि समाज के बड़े हित को दोषियों के "मानवाधिकारों" के लिए अतिरंजित, यदि गलत जगह नहीं तो, चिंता के लिए बार-बार बलिदान किया जा रहा है। न्यायालय के हाल के निर्णयों में अभियुक्त के मौन के अधिकार जैसे विधिक सिद्धांतों का एक बोधगम्य कमबलपन है। सर्वोच्च न्यायालय ने, कई मामलों में, इस नियम से पृथक मार्ग लिया है और अन्य बातों के साथ-साथ यह घोषणा की है कि अभियुक्त अपनी संलिप्तता पर संदेह को दूर करने के लिए अपने विशिष्ट और व्यक्तिगत ज्ञान के तथ्यों का वैध स्पष्टीकरण देने के लिए कर्तव्यबद्ध हैं। यहाँ तक कि आधी शताब्दी पहले भी यह एक न्यायिक अभिशाप होता। अभियोजन की दयनीय सफलता दर को देखते हुए, यदि अपेक्षाकृत कम संख्या में दोषियों को भी अपनी सजाओं को दरकिनार करने की अनुमति दी जाती है, तो अपराध निश्चित रूप से समाज को घेर लेगा। विधि गतिशील है और अपरिवर्तनीय या स्थिर नहीं है। यह समाज की गंभीर रूप से बदलती बाध्यताओं के अनुकूल लगातार खुद को ढालता है।"

"24. हमें लगता है कि अपीलीय न्यायालय के लिए आवश्यक है जो दोषी के साथ-साथ उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति का सामना कर रहा है, तुरंत उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करे, जिन्होंने दोषसिद्ध को जमानत दिए जाने के समय जमानत दी थी, क्योंकि यह उसकी खोज और न्यायालय में पेशी की ओर ले जा सकती है। यदि यह अभ्यास भी दोषसिद्ध को खोजने और सामने लाने में असफल रहता है, तो अपीलीय न्यायालय अपील को निरस्त करने के लिए अधिकृत है। हम के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य में विधि के अद्यतन स्पष्टीकरण, जो गहरा लेकिन स्पष्ट है, से पूर्ण रूप से व सम्मानपूर्वक सहमत हैं।"

146. इस प्रकार, बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹¹ में जो रेखांकित किया गया है, उसके अतिरिक्त सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹² में बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹¹ के साथ सहमत होते हुए यह निष्कर्षित किया गया कि सूचीबद्धता की तिथि पर अपीलकर्ता और उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति पर, न्यायालय को तुरंत न्यायालय में अपीलकर्ता की उपस्थिति का प्रयास करना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए उसके जमानतदारों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है और जब, प्रयासों के बाद भी, अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित नहीं हो सके, तो न्यायालय अपील को गुण-दोष के आधार पर निस्तारित कर सकता है और जब दोषसिद्ध जेल में हो, तो न्यायालय अधिवक्ता की उपस्थिति को सुविधाजनक बनाने

के लिए सुनवाई को स्थगित कर सकता है और न्यायालय के विवेकाधिकार में न्याय-मित्र की भी नियुक्ति की जा सकती है।

147. **क्रिस्टोफर राज बनाम के. विजयकुमार**⁴⁸ में, जब दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील का निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिवादी-अभियुक्त की अनुपस्थिति में किया गया था, तो प्रस्तर-8 में निम्नलिखित रूप में रेखांकित किया गया था:-

“8. स्वीकृत रूप से, अपीलकर्ता-अभियुक्त उच्च न्यायालय के समक्ष आपराधिक अपील में उपस्थित नहीं हुआ था। जब अभियुक्त ने उच्च न्यायालय में उपस्थिति दर्ज नहीं की है, हमारे विचार में, उच्च न्यायालय को अपीलकर्ता-अभियुक्त को दूसरी सूचना जारी करनी चाहिए थी या उच्च न्यायालय विधिक सेवा समिति को कोई अधिवक्ता नियुक्त करने के लिए या उच्च न्यायालय न्याय-मित्र की सहायता ले सकता था। जब अभियुक्त का प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था, अभियुक्त की रक्षा के लिए न्याय-मित्र के रूप में किसी अधिवक्ता की नियुक्ति के बिना, उच्च न्यायालय को आपराधिक अपील को गुण-दोष के आधार पर निर्णित नहीं करना चाहिए था; और वह भी तब, जब अपीलकर्ता-अभियुक्त को दोषमुक्ति का लाभ मिला था। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता-अभियुक्त को कोई अवसर प्रदान किए बिना या उसकी ओर से मामले की बहस करने के लिए न्याय-मित्र नियुक्त किए बिना दोषमुक्ति को निरस्त करने में त्रुटि की।”

148. **अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य**⁴⁹ के एक अन्य महत्वपूर्ण निर्णय में न्याय-मित्र की नियुक्ति के बिन्दु पर विचार करते हुए, जब अपीलकर्ता-दोषसिद्ध और उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं हो रहा है और उसे निष्पक्ष विचारण प्राप्त करने के लिए पर्याप्त और उचित समय प्रदान करने के संबंध में, शीर्ष न्यायालय ने प्रस्तर 31 (31.1 से 31.4) में मत व्यक्त किया, जो नीचे प्रस्तुत हैं:-

“31. इससे पहले कि हम समाप्त करें, हमें कुछ मानदंड निर्धारित करने चाहिए जिससे वर्तमान मामले में हमने जो कमियां देखी हैं, वे दोहराई न जाएं:

31.1. उन सभी मामलों में, जहाँ आजीवन कारावास या मृत्युदंड की संभावना है, बार में न्यूनतम 10 वर्षों के अनुभव वाले विद्वान अधिवक्ताओं को ही न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किए जाने या विधिक सेवाओं के माध्यम से अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने के लिए विचार किया जाए।

31.2. मृत्युदंड की पुष्टि से संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा निपटाए जाने वाले सभी मामलों में, न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ताओं को पहले न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए।

31.3. जब भी कोई विद्वान अधिवक्ता न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किया जाता है, अधिवक्ता को मामला तैयार करने में सक्षम बनाने के लिए कुछ उचित समय प्रदान किया जा सकता है। इस संबंध में कोई सख्त नियम नहीं हो सकता। हालांकि, न्यूनतम सात दिनों का समय सामान्यतः उपयुक्त और पर्याप्त माना जा सकता है।

31.4. अभियुक्त की ओर से न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किसी भी विद्वान अधिवक्ता को सामान्यतः संबंधित अभियुक्त के साथ बैठकों और चर्चा की अनुमति दी जानी चाहिए। ऐसी बातचीत सहायक साबित हो सकती है, जैसा कि इमतियाज़ रमज़ान खान, (2018) 9 SCC 160 (2018) 3 SCC (Cri) 721 में पाया गया था।"

149. अनोखी लाल में कुछ टिप्पणियों की गई थीं, जिन्हें आपराधिक अपील संख्या 771 वर्ष 2024:अशोक बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2024 SCC OnLine 3580 में फिर से समझाया गया है।

अभियुक्त अशोक को बरी करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने पाया था कि अपीलकर्ता को समय पर विधिक सहायता प्रदान करने में राज्य की विफलता थी। उन्होंने उसे दी गई विधिक सहायता की गुणवत्ता को भी खराब पाया। न्यायालय ने हुसैनारा खातून में अपनी टिप्पणियों और फिर एम.एच. होस्कोट बनाम महाराष्ट्र राज्य, 1978 (3) SCC 544 का संदर्भ दिया, जहाँ प्रस्तर-25 में यह कहा गया था कि :-

"25. यदि कारावास की सजा पाया एक बंदी, विधिक सहायता के अभाव में, विशेष अनुमति अपील सहित अपील के संवैधानिक और वैधानिक अधिकार का प्रयोग करने में वस्तुतः असमर्थ है, तो संविधान के अनुच्छेद 142 सपठित अनुच्छेद 21 व 39ए, न्यायालय में पूर्ण न्याय करने के लिए ऐसे बंदी व्यक्ति के लिए अधिवक्ता नियुक्त करने की शक्ति निहित है। यह संहिता द्वारा प्रदत्त अपील के अधिकार और संविधान के अनुच्छेद 136 द्वारा अनुमति प्राप्त का एक आवश्यक घटक है। यह अनुमान पर्याप्त है कि यह राज्य का कर्तव्य है और सरकारी दान नहीं। समान रूप से सकारात्मक यह निहितार्थ है कि जबकि विधिक सेवाएं लाभार्थी के लिए निःशुल्क होनी चाहिए, अधिवक्ता को स्वयं अपनी सेवाओं के लिए उचित पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। निश्चित रूप से, पेशे की लोगों के लिए एक सार्वजनिक प्रतिबद्धता है, लेकिन अपने सदस्यों की परोपकारिता पर निर्भर हो सकती है। उनकी सेवाओं का, विशेष रूप से जब वे राज्य की ओर से हों, भुगतान किया जाना चाहिए। स्वाभाविक रूप से, राज्य की चिंता यह है कि फीस एक उचित राशि होनी चाहिए, जो न्यायालय कैदी को अधिवक्ता नियुक्त करते समय तय कर सकता है। निश्चित रूप से, न्यायालय स्थिति का न्याय कर सकता है और सभी कोणों से विचार कर सकता है कि क्या न्याय के उद्देश्यों के लिए विशेष मामले में विधिक सहायता उपलब्ध कराना आवश्यक है। हर देश में जबकि निःशुल्क विधिक सेवाएं दी जाती हैं, यह सभी मामलों में नहीं किया जाता है, लेकिन केवल वहाँ जहाँ सार्वजनिक न्याय अन्यथा पीड़ित होता है। वह विवेकाधिकार न्यायालय में निहित है।"

अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य के निर्णय और उसके प्रस्तर 11 और प्रस्तर 20 में की गई टिप्पणियों का संदर्भ देते हुए, यह भी पाया गया कि कुछ मामलों में न्याय-मित्र को बचाव की तैयारी के लिए दिया गया समय पूर्णतः अपर्याप्त था और मृत्युदंड की सजा से अभियुक्त के जीवन से वंचित होना और विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का उल्लंघन हुआ बशरा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 1969 (1) SCR 32 में निर्णय और आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा अल्ला नागेश्वर राव, AIR 1957 AP 505 में दिए गए निर्णय का संदर्भ देते हुए;

यह कहा गया कि नियम के केवल औपचारिक अनुपालन के अधीन, जिसके द्वारा अधिवक्ता को बचाव की तैयारी के लिए पर्याप्त समय दिया जाना था, नियम के अंतर्निहित उद्देश्य को पूरा नहीं करेगा। यह आगे कहा गया कि अवसर वास्तविक होना चाहिए, जहाँ अधिवक्ता को तैयारी के लिए पर्याप्त और समुचित समय दिया जाता है। यह देखा गया कि यदि विचारण न्यायालय उसी दिन मामले में पर्याप्त प्रगति करती है, जिस दिन अधिवक्ता को न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किया गया था, तो यह नहीं कहा जा सकता कि मामला तैयार करने के लिए अधिवक्ता को पर्याप्त अवसर दिया गया था।

अशोक (उपरोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने *अनोखी लाल* में दिए गए निर्णय के प्रस्तर 31 और उसमें की गई टिप्पणी का संदर्भ दिया कि उन सभी मामलों में, जहाँ आजीवन कारावास या मृत्युदंड की संभावना है, बार में न्यूनतम 10 वर्षों के अनुभव वाले विद्वान अधिवक्ताओं को ही न्याय-मित्र के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए या विधिक सेवा प्राधिकरण के माध्यम से अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने के लिए विचार किया जाना चाहिए और मृत्युदंड की पुष्टि से संबंधित उच्च न्यायालय द्वारा निपटाए जाने वाले सभी मामलों में, न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ताओं को पहले *न्याय-मित्र* के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने दं.प्र.सं. की धारा 303 और 304 और भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता 2023 (संक्षेप में 'बीएनएसएस') की धारा 340 और 341 का संदर्भ दिया, जो संगत धाराएं हैं, और यह पाया गया कि यह न्यायालय का कर्तव्य है कि यह सुनिश्चित करे कि अभियुक्त के पक्ष का समर्थन करने के लिए विधिक सहायता अधिवक्ता नियुक्त किया जाए।

अशोक (उपरोक्त) में दिए गए निर्णय के प्रस्तर-23 में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में कहा:--

ए. यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अभियुक्त को उचित विधिक सहायता प्रदान करना सुनिश्चित करे;

बी. जब अभियुक्त का किसी अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जा रहा है, तो हर लोक अभियोजक का यह कर्तव्य है कि वह न्यायालय को उसे निःशुल्क विधिक सहायता प्रदान करने की आवश्यकता की याद दिलाए। कारण यह है कि यह लोक अभियोजक का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि मुकदमा निष्पक्ष और विधिक रूप से चलाया जाए;

सी. यहां तक कि यदि न्यायालय ऐसे मामले में आरोप विरचित करने या अभियोजन साक्षियों के मुख्य परीक्षण को दर्ज करने की इच्छा रखता है, जहाँ अभियुक्त ने कोई अधिवक्ता नियुक्त नहीं किया है, तो लोक अभियोजक के लिए यह अनिवार्य है कि वह न्यायालय से अभियुक्त को विधिक सहायता प्रदान किए बिना आगे न बढ़ने का अनुरोध करे;

डी. यह लोक अभियोजक का कर्तव्य है कि वह दं.प्र.सं. की धारा 313 के अधीन अभियुक्त के बयान की रिकॉर्डिंग में विचारण न्यायालय की सहायता करे। यदि न्यायालय अभियुक्त के विरुद्ध अभिलेख पर लाई गई किसी गंभीर परिस्थिति को डालना भूल जाता है, तो लोक अभियोजक को अभियुक्त की मुख्य परीक्षा दर्ज की

जाते समय इसे न्यायालय की जानकारी में लाना चाहिए। उसे अभियुक्त से पूछे जाने वाले प्रश्नों को तैयार करने में न्यायालय की सहायता करनी चाहिए, क्योंकि यह लोक अभियोजक का कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि जो अपराध कारित करने के दोषी हैं उन्हें दंडित किया जाना चाहिए, उसका यह भी उसका कर्तव्य है कि वह यह सुनिश्चित करे कि मुकदमे के संचालन में कोई कमियां न हों, जो अभियुक्त को पूर्वाग्रह का कारण बनेंगी;

ई. एक अभियुक्त, जिसका किसी अधिवक्ता द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं किया जा रहा है, वह रिमांड से शुरू होने वाले सभी महत्वपूर्ण चरणों में निःशुल्क विधिक सहायता का अधिकारी है, हर अभियुक्त को जमानत याचिका योजित करने के लिए भी विधिक सहायता पाने का अधिकार है;

एफ. आरोप विरचित करने के चरण, साक्ष्य दर्ज करने, आदि सहित सभी महत्वपूर्ण चरणों में, यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह अभियुक्त को निःशुल्क विधिक सहायता पाने के उसके अधिकार के बारे में जागरूक बनाए। यदि अभियुक्त व्यक्त करता है कि उसे विधिक सहायता चाहिए, तो विचारण न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि अभियुक्त का प्रतिनिधित्व करने के लिए विधिक सहायता अधिवक्ता नियुक्त किया जाए;

जी. जैसा कि अनोखी लाल के प्रकरण में निर्धारित किया गया है, उन सभी मामलों में जहाँ आजीवन कारावास या मृत्युदंड की संभावना है, केवल उन विद्वान अधिवक्ताओं को, जिन्हें आपराधिक पक्ष में न्यूनतम 10 वर्षों का अनुभव है, न्याय-मित्र या विधिक सहायता अधिवक्ता के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए विचार किया जाना चाहिए। यहाँ तक कि ऊपर उल्लिखित श्रेणियों द्वारा आच्छादित न किए गए मामलों में भी, अभियुक्त विधिक सहायता अधिवक्ता का अधिकारी है, जिसे विधि का अच्छा ज्ञान हो और आपराधिक पक्ष में मुकदमे करने का अनुभव हो। यह आदर्श होगा यदि सभी स्तरों पर विधिक सेवा प्राधिकरण नव नियुक्त विधिक सहायता अधिवक्ताओं को न केवल व्याख्यान आयोजित करके, बल्कि नव नियुक्त विधिक सहायता अधिवक्ताओं को आवश्यक संख्या में मुकदमों में बार के वरिष्ठ सदस्यों के साथ काम करने की अनुमति देकर भी उचित प्रशिक्षण दें;

एच. राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण विधिक सहायता अधिवक्ताओं के काम की निगरानी करने के लिए सभी स्तरों पर विधिक सेवा प्राधिकरणों को निर्देश जारी करेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक सहायता अधिवक्ता उन्हें सौंपे गए मामलों के सूचीबद्ध होने पर नियमित और समय पर न्यायालय में उपस्थित हों।

आई. यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि वही विधिक सहायता अधिवक्ता पूरे मुकदमे के दौरान बना रहे, जब तक कि ऐसा न करने के लिए बाध्यकारी कारण न हों, या जब तक कि अभियुक्त अपनी पसंद का अधिवक्ता नियुक्त न करे।

जे. उन मामलों में, जहाँ अपराध बहुत गंभीर प्रकृति के हैं और जटिल विधिक और तथ्यात्मक बिन्दु शामिल हैं, न्यायालय, एक पैनलबद्ध विधिक सहायता अधिवक्ता नियुक्त करने के बजाय, अभियुक्त के पक्ष का समर्थन करने के लिए विचारण का व्यापक अनुभव रखने वाले बार के एक वरिष्ठ सदस्य को नियुक्त कर सकता है, जिससे अभियुक्त को सर्वोत्तम संभावित विधिक सहायता मिले;

के. आपराधिक मुकदमे में अपनी रक्षा करने का अभियुक्त का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीयुक्त है। वह निष्पक्ष विचारण का अधिकारी है। लेकिन यदि प्रभावी विधिक सहायता ऐसे अभियुक्त को उपलब्ध नहीं कराई जाती है, जो अधिवक्ता नियोजित करने में असमर्थ है, तो यह अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीयुक्त उसके मौलिक अधिकारों का हनन होगा;

एल. यदि विधिक सहायता केवल प्रदान करने के लिए प्रदान की जाती है, तो इससे कोई उद्देश्य नहीं सधेगा। विधिक सहायता प्रभावी होनी चाहिए। अभियुक्त के पक्ष का समर्थन करने के लिए नियुक्त अधिवक्ताओं को अन्य महत्वपूर्ण कानूनों के अतिरिक्त आपराधिक कानूनों, साक्ष्य विधि और प्रक्रियात्मक कानूनों का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। जैसा कि विधिक सहायता का संवैधानिक अधिकार है, वह अधिकार केवल तभी प्रभावी होगा जब प्रदान की गई विधिक सहायता अच्छी गुणवत्ता की हो। यदि अभियुक्त को प्रदान किया गया विधिक सहायता अधिवक्ता मुकदमे को कुशलता से चलाने के लिए पर्याप्त सक्षम नहीं है, तो अभियुक्त के अधिकारों का उल्लंघन होगा।"

150. उपरोक्त निर्णयों के अवलोकन से स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि इस पीठ द्वारा विचार के लिए संदर्भ न्यायालय द्वारा विरचित किया गया प्रश्न संख्या 5, पहले ही *बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹, *सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*² और *के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य*³ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि द्वारा निस्तारित किया जा चुका है, हालांकि, *सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*² में शीर्ष न्यायालय द्वारा उन दोषियों के बीच अंतर किया गया है, जिन्हें अपनी अपीलों की सुनवाई की कोई सूचना नहीं है, और उन लोगों के बीच, जो उपस्थित नहीं होकर प्रक्रिया का दुरुपयोग कर रहे हैं और इन निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित सिद्धांत को निम्नलिखित रूप में संक्षेपित किया जा सकता है:-

1. यह कि उच्च न्यायालय गुण-दोष की जांच के बिना गैर-अभियोजन में अपील को निरस्त नहीं कर सकता है;
2. यह कि यदि अपीलकर्ता या उसका अधिवक्ता/प्लीडर दोनों अनुपस्थित हैं, तो न्यायालय वाद को स्थगित करने के लिए बाध्य नहीं है;

3. यह कि न्यायालय, विवेक या उदारता के रूप में, वाद को स्थगित कर सकता है लेकिन वह ऐसा करने के लिए बाध्य नहीं है;

4. यह कि वह अभिलेख और विचारण न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करने के बाद अपील का निस्तारण कर सकता है;

5. यह कि यदि अभियुक्त जेल में है और स्वयं न्यायालय में नहीं आ सकता है, तो यदि उसका अधिवक्ता उपस्थित नहीं है, तो अभियुक्त-अपीलकर्ता की उपस्थिति को सुविधाजनक बनाने के लिए वाद को स्थगित करना और दूसरी तिथि नियत करना उचित होगा, और यदि अधिवक्ता अनुपस्थित है और न्यायालय इसकी सहायता के लिए राज्य के व्यय पर अधिवक्ता नियुक्त करना उपयुक्त समझता है, तो विधि में न्यायालय को ऐसा करने से रोकने के लिए कुछ भी नहीं है;

6. यह कि यदि अपीलकर्ता की अनुपस्थिति में मामले का गुण-दोष के आधार पर निर्णय किया जाता है, तो उच्चतर न्यायालय स्थिति का समाधान कर सकता है;

7. हालांकि, अपीलों के निरस्तीकरण में एक अंतर किया जाना है, जहाँ एक ओर बलपूर्ण प्रक्रिया अर्थात् गैर-जमानती वारंट आदि जारी करके अपीलकर्ता की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए न्यायालय द्वारा कदम उठाए गए हैं और दूसरा जहाँ अपीलकर्ता आकस्मिक रूप से और अनजाने में अनुपस्थित रहा हो, जब उसकी अपील सुनवाई के लिए ली गई हो (सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य का प्रस्तर-3); और

8. दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में अपीलकर्ता या उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति और दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में प्रतिवादी और उसके अधिवक्ता की अनुपस्थिति पर, न्यायालय उपयुक्त प्रक्रिया जारी करके उसकी उपस्थिति चाहेगा और जमानतदारों को सूचना भी जारी कर सकता है और यदि यह प्रयास अपीलकर्ता को खोजने और न्यायालय में लाने में असफल रहता है, तो न्यायालय लोक अभियोजक की सहायता से निर्णय पारित कर सकता है और अपने विवेकाधिकार में अपनी सहायता के लिए राज्य के खर्च पर अधिवक्ता (न्याय-मित्र) भी नियुक्त कर सकता है।

151. बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹¹, सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹² और के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य¹³ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तीन प्रसिद्ध निर्णयों की उपरोक्त टिप्पणियों का सार, इस प्रकार, लखनऊ खंडपीठ द्वारा इस पीठ के विचार के लिए विरचित प्रश्न संख्या 5 को सम्पूर्ण रूप से आच्छादित करता है और हमारी विचारित राय में, इस पीठ द्वारा किसी नए प्रयास की आवश्यकता नहीं है, उस एक बिंदु पर भी, जिसे लखनऊ की खंडपीठ द्वारा रेखांकित किया गया है अर्थात्

क्या दोषसिद्ध, अपीलकर्ता या अभियुक्त-प्रतिवादी की सहमति के बिना, न्याय-मित्र की नियुक्ति तब भी की जा सकती है, जब उनकी उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती हो।

152. उपरोक्त विधिक उदाहरण स्पष्ट रूप से यह स्थापित करेंगे कि शीर्ष न्यायालय का बल उस अपीलकर्ता को सुने जाने का अवसर प्रदान करने पर है, जो अपीलीय न्यायालय के साथ सहयोग करने को इच्छुक है या उसके अधिवक्ता और इस संबंध में उसे सुने जाने का अवसर देने के उद्देश्य से उसकी उपस्थिति सुनिश्चित कराने के लिए एक प्रक्रिया उसे जारी करने की आवश्यकता है और जब न्यायालय संतुष्ट है कि ऐसा अपीलकर्ता जानबूझकर न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है, ऐसी स्थिति में, न्यायालय *बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹¹, *सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य*¹² और *के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य*¹³ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनुमोदित तरीके से अपील का निस्तारण कर सकता है (अर्थात् लोक अभियोजक और न्याय-मित्र की सहायता से, यदि नियुक्त किया गया है, विचारण न्यायालय के निर्णय व अभिलेख/साक्ष्य का अवलोकन करने के बाद) और हमारे पास उपरोक्त प्रकरणों में शीर्ष न्यायालय द्वारा निर्धारित स्थापित प्रस्ताव से विचलित होने का कोई कारण नहीं है, इसके अतिरिक्त, न्याय-मित्र की नियुक्ति केवल अपीलकर्ता को निष्पक्ष विचारण प्रदान करने के उद्देश्य से और न्यायालय को सहायता प्रदान करने के लिए भी है।

153. यह दोहराया जाना है कि इस संबंध में हर परिस्थिति के अनुकूल होने के लिए कोई सूत्र या सार्वभौमिक प्रयोग का सिद्धांत तैयार नहीं किया जा सकता है। न तो दो आपराधिक मामलों या अपीलों का तथ्यात्मक मैट्रिक्स समान होता है और न ही अपील की सभी प्रक्रियात्मक जटिलताओं को समान प्रयोग के तैयार सिद्धांत को निकालने के लिए पूर्वाभास किया जा सकता है और न्यायालय को दी गई स्थिति में न्यायसंगत और निष्पक्ष निर्णय लेना होगा, हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय के उपरोक्त निर्णय पर्याप्त रूप से संकेत देंगे कि एक अपीलकर्ता, जो न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है और अपील की सुनवाई में सहयोग नहीं कर रहा है, उसे ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और यदि अपीलीय न्यायालय संतुष्ट है कि ऐसे अभियुक्त या अपीलकर्ता/दोषसिद्ध द्वारा देशी की रणनीति अपनाई जा रही है, तो यह उपरोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार कार्य कर सकता है और इस स्थिति में अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करके और उन सभी संभावित तर्कों को ध्यान में रखते हुए अपील को गुण-दोष के आधार पर निर्णित करने में न्यायसंगत होगा, जो अपीलकर्ता द्वारा किए जा सकते थे, यदि उसका अधिवक्ता अपीलीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता, हालांकि, यह अपीलीय न्यायालय को *अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य*¹⁴ में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार न्याय-मित्र नियुक्त करने से रोकेगा नहीं।

154. ऊपर की गई टिप्पणियों के साथ, हम प्रश्न संख्या 5 का उत्तर तदनुसार देते हैं।

155. उपरोक्त चर्चाओं के निष्कर्ष में, इस पीठ के पास संदर्भित प्रश्नों के उत्तर निम्नलिखित रूप में हैं:-

प्रश्न संख्या (1) क्या मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या कोई अन्य मजिस्ट्रेट किसी दोषमुक्त व्यक्ति या अपराध के लिए दोषसिद्ध व्यक्ति को ऐसे मामले में भी जमानत पर छोड़ सकता है, जहाँ दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में, जैसा भी हो, उच्च न्यायालय या किसी अन्य अपीलीय न्यायालय ने उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए गैर-जमानती वारंट निर्गत किए हैं, बिना उसमें अवर न्यायालय द्वारा रिहाई की किसी ऐसी शर्त के, वह भी तब जब ऐसा गैर-जमानती वारंट अपील के अनुवर्ती चरण में निर्गत किया गया है, न कि अंगीकृत होने के चरण में?

प्रश्न संख्या (2) यह मानते हुए कि मजिस्ट्रेट के पास प्रश्न संख्या 1 में संदर्भित क्षेत्राधिकार हैं, क्या उच्च न्यायालय द्वारा मजिस्ट्रेट को ऐसी रिहाई के लिए अनिवार्य प्रकृति का सामान्य निर्देश निर्गत किया जा सकता है, जैसा कि शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 में दिनांक 18.01.2024 के आदेश और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981 में दिनांक 19.01.2024 के आदेश के द्वारा किया गया है, और क्या यह चर्चा किए गए निर्णयों के दृष्टिकोण से प्रत्येक मामले के आधार पर ऐसी रिहाई पर विचार करने के संबंध में मजिस्ट्रेट को उसके विवेकाधिकार से वंचित नहीं करता है?

प्रश्न संख्या (3) क्या शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गीता देवी और अन्य) में दिनांक 18.01.2024 के आदेश में निहित टिप्पणियाँ व निर्देश और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शम्शुद्दीन खान और अन्य) में दिनांक 19.01.2024 के निर्देश विधि के अनुसार हैं?

उत्तर- जहाँ उच्च न्यायालय ने सचेत रूप से अपीलकर्ता की गिरफ्तारी के लिए गैर-जमानती वारंट निर्गत किया है, मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश, जैसा भी हो, के पास ऐसे व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा।

यह उच्च न्यायालय के उस आदेश की शर्तें होंगी, जिसके अधीन गैर-जमानती वारंट निर्गत किए गए हैं, जो अभियुक्त या अपीलकर्ता/दोषसिद्ध के भाग्य को नियंत्रित करेंगी और न तो मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट और न ही सत्र न्यायाधीश के पास ऐसे अपीलकर्ता या अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने का क्षेत्राधिकार होगा, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि गैर-जमानती वारंट दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील में निर्गत किया गया है या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में।

यदि अपीलकर्ता या अभियुक्त को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया जाता है, तो संबंधित मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट या सत्र न्यायाधीश द्वारा ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के संबंध में उच्च न्यायालय को तुरंत इसकी सूचना दी जानी चाहिए।

जहाँ तक जमानती वारंट निर्गत करने का संबंध है, विवेकाधिकार हमेशा अवर न्यायालय का होगा कि वह ऐसे अपीलकर्ता या अभियुक्त को जमानत पर छोड़े, बशर्ते कि वह उच्च न्यायालय द्वारा अपने आदेश में रेखांकित या संकेत की गई विशेष तिथि को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित हो।

उपरोक्त के दृष्टिकोण से शासकीय अपील संख्या 454 वर्ष 2022 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम गीता देवी और अन्य) में दिनांक 18.01.2024 के आदेश में निहित टिप्पणियां व निर्देश और शासकीय अपील संख्या 2552 वर्ष 1981 (उत्तर प्रदेश राज्य बनाम शम्शुद्दीन खान और अन्य) में दिनांक 19.01.2024 के निर्देश विधि के सही विवेचन नहीं कहे जा सकते हैं।

प्रश्न संख्या (4) उच्च न्यायालय के समक्ष अपील में दोषमुक्त व्यक्ति या जो दोषसिद्ध किया गया है, की उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए विधि में निर्धारित तरीके क्या हैं और ऐसी अपीलों की सुनवाई को सुविधाजनक बनाने के लिए ऐसी उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए अपने अपीलीय आपराधिक क्षेत्राधिकार के प्रयोग में उच्च न्यायालय द्वारा सामान्यतः कैसा मार्ग अपनाया जाना चाहिए?

उत्तर- पूसू (उपरोक्त)31 में प्रतिपादित विधि को ध्यान में रखते हुए दोषमुक्ति के विरुद्ध अपील के उपयुक्त प्रकरणों में, प्रत्येक प्रकरण के विशेष तथ्यों व परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त के विरुद्ध जमानती वारंट या गैर-जमानती वारंट की प्रकृति की बलपूर्ण प्रक्रिया निर्गत की जा सकती है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि दोषमुक्ति के विरुद्ध सभी अपीलों में किसी व्यक्ति को सम्मन करते समय वारंट अनिवार्य रूप से निर्गत किए जाएंगे क्योंकि उपयुक्त मामलों में, न्यायालय के विवेकाधिकार में सम्मन भी जारी किए जा सकते हैं।

दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील में, जहाँ अपीलकर्ता को पहले से ही जमानत पर छोड़ा गया है और उसका अधिवक्ता अपील की बहस के लिए उपस्थित नहीं हुआ है, सामान्यतः, उसके विरुद्ध पहली बार में सीधे गिरफ्तारी का वारंट निर्गत नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे पहले से ही न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है और उस पर सुनवाई के प्रत्येक दिन उसकी व्यक्तिगत उपस्थिति की कोई शर्त नहीं लगाई गई थी। कार्यालय द्वारा यह रिपोर्ट करने के बाद कि विचारण न्यायालय का अभिलेख प्राप्त हो गया है और पेपर-बुक तैयार हो गई है, जमानती वारंट निर्गत किया जा सकता है।

प्रश्न संख्या (5) क्या कोई अपील, चाहे दोषमुक्ति या दोषसिद्धि के विरुद्ध हो, जैसा भी हो, अभियुक्त-प्रतिवादी या दोषसिद्ध-अपीलकर्ता की सहमति के बिना और बिना सूचना के, न्याय-मित्र नियुक्त करके सुनी जा सकती है, यदि वह अपीलीय कार्यवाही में उपस्थित नहीं हो रहा है, यद्यपि उसकी उपस्थिति सुनिश्चित की जा सकती है। यदि हाँ, तो किन परिस्थितियों में?

उत्तर- यह प्रश्न अब कोई *res integra* नहीं है और बनी सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹¹, सूर्य बक्श सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य¹² और के.एस. पांडुरंगा बनाम कर्नाटक राज्य¹³ और अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य⁷ में शीर्ष न्यायालय द्वारा इन शब्दों में निस्तारित किया गया है कि एक अपीलकर्ता, जो न्यायालय के समक्ष अपनी उपस्थिति से बच रहा है और अपील की सुनवाई में सहयोग नहीं कर रहा है, उसे ऐसा करने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और यदि अपीलीय न्यायालय संतुष्ट है कि ऐसे अभियुक्त या अपीलकर्ता/दोषसिद्ध द्वारा देशी की रणनीति अपनाई जा रही है, तो यह उपरोक्त निर्णयों में माननीय सर्वोच्च

न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार कार्य कर सकता है और इस स्थिति में अपीलीय न्यायालय, विचारण न्यायालय के निर्णय का अवलोकन करके और उन सभी संभावित तर्कों को ध्यान में रखते हुए अपील को गुण-दोष के आधार पर निर्णित करने में न्यायसंगत होगा, जो अपीलकर्ता द्वारा किए जा सकते थे, यदि उसका अधिवक्ता अपीलीय न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता, हालांकि, यह अपीलीय न्यायालय को अनोखी लाल बनाम मध्य प्रदेश राज्य (उपरोक्त) में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार न्याय-मित्र नियुक्त करने से रोकेगा नहीं, विशेष रूप से ऐसी अपील में, जहाँ अपीलकर्ता जेल में है।

हमारे लिए उपरोक्त निर्णयों में शीर्ष न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के स्थापित सिद्धांत से विचलन का कोई कारण नहीं है, इसके अतिरिक्त, न्याय-मित्र की नियुक्ति अपीलकर्ता को निष्पक्ष विचारण प्रदान करने के उद्देश्य से और न्यायालय को आवश्यक सहायता प्रदान करने के लिए भी है, विशेष रूप से ऐसे मामले में जहाँ दोषसिद्ध-अपीलकर्ता जेल में है।

संदर्भ का उत्तर तदनुसार दिया जाता है।

156. संदर्भ निस्तारित किया जाता है।

157. हम एक बार फिर से विद्वान अधिवक्ताओं-श्री अपूर्वा तिवारी, श्री वली नवाज़ खान, हर्ष वर्धन खेड़िया व सुश्री स्मिग्धा सिंह की सहायता से श्री नदीम मुर्तजा, श्री सुमीत ताहिलरामानी की सहायता से श्री एस.एम. सिंह रोयेकवार, श्री विकास विक्रम सिंह, श्री नावेद अली, श्री रजत गंगवार, श्री अजीत कुमार मिश्रा व श्री आयुष टंडन की सहायता से श्री आलोक मिश्रा साथ ही डॉ. वी.के. सिंह, विद्वान शासकीय अधिवक्ता, श्री उमेश चंद्र वर्मा, विद्वान अपर अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता-I, श्री पवन कुमार मिश्रा, विद्वान अतिरिक्त शासकीय अधिवक्ता, श्री शिवेंद्र शिवम सिंह राठौर, राज्य के विद्वान अधिवक्ता और श्री भावेश चंदेल व श्री शिवांग तिवारी के समर्पण के साथ हमारी सहायता करने के लिए, अपनी सराहना को दोहराते हैं। इस प्रकार हम इन अधिवक्ताओं द्वारा प्रदान की गई सक्षम सहायता के लिए अपनी सराहना को अभिलिखित कर रहे हैं।

158. उपरोक्त उल्लिखित अपीलों के अभिलेख को अपीलों की आगे की प्रगति के लिए वर्तमान रोस्टर में क्षेत्राधिकार रखने वाली उपयुक्त पीठों के समक्ष रखा जाए।
